जीवन के झरोखे भाग-२

(लघुकथा, प्रेरक प्रसंग)

** जिन्हें सपने देखना अच्छा लगता है, उन्हें रात छोटी पड़ती है,*
जिन्हें सपने पूरे करना अच्छा लगता है उन्हें दिन छोटा पड़ता है।

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकीम

* छायांकन :- श्री सुधीर वासुदेवराव लिंगायत
आर्टटेक ग्राफीक्स, ७८९/९०, गुरुवार पेठ, पुणे- मो. ९४२२३६३३११

* सौजन्य :- पार्टस् कॉटेज, ६-ए, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, ताडीवाला रोड, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल

*** भागवतकार :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया**

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १
फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९ मो. ९३७१११६६८३

* प्रकाशन **नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट**
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

** असफलताएं मनुष्य को तोड़ देती हैं, जीवन की राहों को नया मोड़ देती हैं,*
जो करते हैं जी जान से पूरा प्रयास, असफलताएं उनका पीछा छोड़ देती हैं।

* मूल्य - आपकी ज्ञानवृद्धि

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) डॉ. सुशील भारूका
आर्च डेव्हलपर्स, सिटी प्राईड, मोंढा नाका, जालना रोड,
औरंगाबाद फो. ०२४०-२३४५९५५ मो. ९८२३०२८४१२

५) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

६) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

७) श्री सुशीलकुमारजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपुर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

८) श्री प्रेमप्रकाश फूलचंद सूतवाला
पी-१/१/३, पद्म अपार्टमेंट, १६/१६, सिव्हील लाईन्स,
कानपुर (उ.प्र.)- २०८००१ मो. ९८३९११७७२२

९) श्रीमती गीता जयप्रकाश गोयल
बिल्डिंग ९ए, ११ वां मजला, गंगा सॅटेलाईट,
वानवडी, पुणे- ४११०४० मो. ९८६०००००२२२
फोन नं. ऑ. २६१४०२५१ घर- २६८३७४३४

१०) शंकरलाल रिणवाँ
धानूका आश्रम, परिक्रमा मार्ग, रमण रेती,
वृंदावन- २८११२१ (यू.पी.) मोबाईल -०९७५६२५८२४२
फोन नं. ०५६५-३२९०८०४, २५४००७५, २५४०७३१

११) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

१२) श्री बनवारीलाल अग्रवाल
१६-११-७४१/डी/३६, मूसारामबाग,
हैद्राबाद- ५०००३६ मो. ९४२४६३५४९१९

१३) श्री किरण अग्रवाल
कुसुम बंगलो, आकाशगंगा सोसायटी,
कृष्णचरन अपार्टमेंटस् के सामने, काठे गल्ली,
द्वारका, नासिक- ४२२००१
फो. (०२५३) ८०४६३३, २५९५१०४, मो. ९८५०३०४०६१

१४) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१५) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१६) अग्रवाल समाज, पुणे
श्री अग्रसेन भवन (वासुदेव जानी)
१०८८, रविवार पेठ, पुणे- ४११००२
फोन- २४४७६१६५, २४४७७७५६

१७) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

१८) बनवारीलाल जाजोदिया
रघुमणि, डी-३४, एचआयजी कॉलनी,
शॉपिंग कॉम्प्लेक्स के पीछे, आग्रा-मुंबई रोड,
इंदौर- ४५२००१ (म.प्र.)
फो. २५५९४५१ मो. ९३००५६९४७१

१९) श्रीकांत रामस्वरूप मोरारका
नानसा गेट, स्टेशन नवलगढ़- ३३३०४२
जिल्हा- झुनझुनु (राजस्थान) मो. ९४१४३१५७३०

*** सहयोगी दल * १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल, ३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल, ६) श्री राजेश अग्रवाल**

संग्रहकर्ता की कलम से

किताबें अपने देश की संस्कृति को प्रकाशित करनेवाला दीपस्तंभ है।

लेखन विचारों को भाषा रूप में उतारता है और लेखन के ही माध्यम से हम अपने विचारों को तेजी से अन्य व्यक्तियों तक पहुंचा सकते है। जब आप यथार्थ की कठोर धरती पर खड़े होते हैं तो केवल कहानी लिख सकते हैं और जब आपके पाँव कल्पना के वायवीय धरातल पर होते हैं तब आप कविता लिखते हैं।

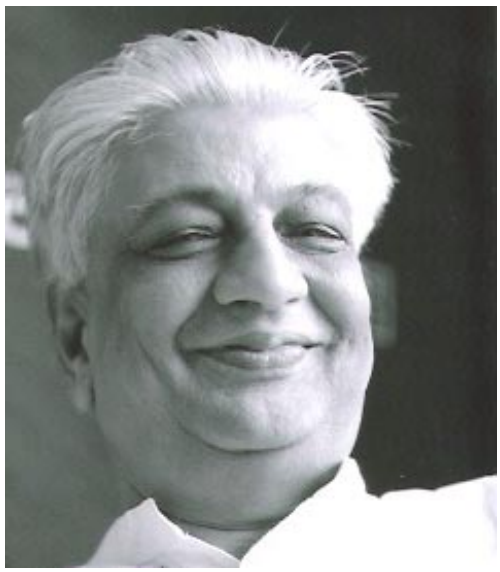

पुस्तकें हमारी सबसे अच्छी मार्गदर्शक होती हैं। वे कुछ बोलती तो नहीं, पर शब्दों के जरिए कुछ कहती जरूर हैं। जरूरत है, पुस्तकों पर जमी धूल को हटाने, उन्हें सहेजने-संवारने की। जब व्यक्ति के लिए सभी दरवाजे बंद हो जाते हैं, तब पुस्तक के पन्ने ही उसे जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। हमारे ऋषि-मुनियों, साहित्यकारों ने किताबों का अथाह भंडार इकट्ठा किया है। पर आज हमारे पास इन्हें पढ़ने के लिए समय ही नहीं है। अत: हम भटक रहे हैं।

साहित्य के वकीलों से नहीं, कभी कभार उनकी वकालात से डर लगता है।

व्यंग्य उपन्यास लिखना बेहद जटिल काम है। औपन्यासिक कथा सूत्रों में संतुलन बनाते हुए, व्यंग्य का आद्योपांत निर्वाह आसान नहीं है। यही कारण है कि हिन्दी व्यंग्य में उपन्यासों की संख्या काफी कम है और उनमे भी स्तरीय तो अँगुलियों पर गिनने लायक हैं। इसका बड़ा कारण यह है कि जब आप कथावस्तु को एक बड़े कलेवर में बांधते हैं तो उसे सहेजना कष्टसाध्य होता है और जब उसे किसी तरह साध लेते हैं तो व्यंग्य का शिल्प बिखरने लगता है बिरले ही इन दोनों को साध पाते हैं। पर जब वे साध लेते हैं तो साहित्य को दुर्लभ कृतियां दे जाते हैं, राग दरबारी ऐसी ही दुर्लभ कृति है। राग दरबारी किसी भी देशी-विदेशी भाषा की सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य औपन्यासिक कृति है।

अध्ययन हमें आनन्द प्रदान करता हैं, अलंकृत करता है और योग्यता प्रदान करता है। किताबें ही हमें समाज बनाने व सुधारने की जिम्मेदारी सिखाती है। उनसे पढ़कर ही हम समझ सकते हैं उन्होंने हमें क्या संदेश दिया और हम कहां खड़े है। किताबें चिकित्सा भी करती है। किस्से कहानियां पढ़ने या सुनने से मन एकाग्रता को प्राप्त होता है तथा कल्पना शक्ति का विकास होता है, अच्छी सोच पैदा होती है। मन को एक दशा से दूसरी दशा में रूपांतरित कर दुख दर्द से निजात पा लेती है। जैसे दवा लेने से दर्द की शिद्दत कम हो जाती

है उसी तरह किसी कहानी, कथा को सुनने से भी दर्द की शिद्दत कम हो सकती है। उसे सुनकर हम अपनी पीड़ा को भूल जाते है। यदि व्यक्ति अनिद्रा से पीड़ित हो तो बिस्तर पर लेटकर किताबें पढ़ने से शीघ्र नींद प्राप्त कर सकता है, क्योंकि आंखें बोझिल होने लगती है तो व्यक्ति सोने को विवश हो जाता है। इसप्रकार पुस्तक चिकित्सा अनिद्रा का प्रभावी उपचार है। अच्छी किताबें पढ़ने से सिर्फ ज्ञान ही नहीं मिलता बल्कि स्वास्थ्य सुधार भी होता है। किताबें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। कहानी की किताबें पढ़ने से बच्चों में ध्यान और सोचने की क्षमता बेहतर होती है। बचपन में किताबें पढ़ने से मस्तिष्क का विकास होता है और तनाव कम होता है। किताबें पढ़ते समय उसमें दर्ज, आवाज, गंध और स्वाद भी मस्तिष्क महसूस करता है। ऐसा लगने लगता है कि सब कुछ वास्तव में अपने सामने ही हो रहा है। किताबें पढ़ने से दिमाग का व्यायाम भी होता है।

किताबें शब्दों का सम्मान हैं। किताबें वक्त की पहचान हैं। किताबें है कलाओं का खजाना। किताबें है इल्म का खजाना। किताबों में छिपे मोती निकाले। किताबों में बसी किलकारियां हैं। किताबें खुशबू की क्यारियां हैं। किताबों में जवानी की कहानी, किताबों में प्रेम की फुलवारी भी हैं। समय रहते हम किताबों को संभाले, किताबों से मोती निकाले, किताबें सिलसिला है दोस्ती का। किताबें फलसफा है जिन्दगी का। किताबें अमूल्य बुर्जगों के तजुर्बे, किताबें ज्यों समंदर रोशनी का। किताबें रुह के अन्दर समा हैं। किताबों में छिपे मोती निकालें।

किताबें भविष्य का निर्माण करती हैं। समय की चाबी हैं। किस्मत का दरवाजा यानी खुल जा सिम सिम है। दरअसल हम किताबें नहीं पढ़ते बल्कि किताबें हमें पढ़ाती हैं। समय की पहरूम्स हैं, किताबों के अभाव में समय भी अपंग है, विकलांग है। किताबें जन्नत हैं हूर हैं बिना किताबों के सारा जग कब्रिस्तान है। किताबें, वर्तमान काल-भूतकाल-भविष्यकाल का आईना हैं। किताबें आदमी को जलवा दिखाती हैं।

इस पुस्तक में मैंने शिक्षाप्रद कहानियों का संग्रह किया है, जो शैशव और किशोरावस्था के युवकों के लिए बहुत ही लाभदायक है।

✲ कोई ऐसी स्मृति नहीं है जिसे समय भुला न दे, कोई ऐसी पीड़ा नहीं है जिसे मृत्यु समाप्त न कर दे।

✲ इतिहास, पुराण सभी साक्षी हैं कि मनुष्य के संकल्प के सम्मुख देव, दानव सभी पराजित होते हैं।

✲ यहां हर कोई पिशाच है, हर कोई छोटा बड़ा शैतान थामे किसके हाथ को सब के सब बेईमान। इसके बारे में सोचकर परेशान और दुविधा में है इन्सान।

✲ सिर्फ राजनैतिक गुणाभाग की गणित से समय की धारा को नहीं बदला जा सकता।

✲ मनुष्य कितना भी गोरा क्यों न हो, उसकी परछाई सदैव काली ही रहती है।

माता-पिता

*** मां के बिना दुनिया की हर चीज कोरी है, दुनियां का सबसे सुन्दर संगीत मां की लोरी हैं।**

माँ ही जीवन का आधार है। मानव जीवन का सृजन करने के लिए ईश्वर ने नारी का निर्माण किया। जब नारी अपनी शक्ति का प्रयोग करके जीवन का सृजन करती है तो उसे मां कहा जाता है। इस सृष्टि में सबसे ज्यादा पवित्र और करुणामयी सत्ता मां ही है, इसीलिए भक्त भी ईश्वर को मां के रूप में पुकारते है। ऐसा करने से उन्हें ईश्वर की निकटता का जल्द अनुभव होता है और मां रूपी ईश्वर का लगातार प्यार मिलता रहता है। माँ का सम्मान न करने से, माँ के साथ सम्बन्ध ठीक न रखने से व्यक्ति को मानसिक तनाव का सामना करना पड़ता है और किसी न किसी कारण से जीवन में उलझन बनी रहती है। व्यक्ति को मानसिक अवसाद रहने लगता है। यात्राओं में व्यक्ति को समस्या होने लगती है। जीवन में कभी भी स्थिरता नहीं आती। माँ का सम्मान करने से व्यक्ति को बीमारियों में शीघ्र लाभ मिलता है। व्यक्ति का मन प्रसन्न रहता है। जीवन सामान्यत: आराम से कट जाता है। संतान पक्ष की हर समस्या का हल निकल जाता है।

अगर आपका कोई छोटा भाई-बहन है तो माता-पिता से उसकी उपस्थिति में झगड़ा नहीं करने का अनुरोध करें। उन्हें अपनी बहस के लिए एक समय सारणी बनाने को कहें। अगर बच्चों के सामने विवाद हो भी जाए तो माता-पिता को बच्चों के बाहर जाने तक झगड़े को स्थगित कर देना चाहिए। झगड़े को स्थगित करने पर दोनों को सोचने का मौका मिल जाता है और कई बार उनका गुस्सा शांत भी हो जाता है।

कुछ विशेष बातें होती हैं जिससे आपके माता-पिता में से एक को गुस्सा आ जाता है, गुस्सा भड़कने का कारण, व्यंग्यभरी टिप्पणियां या पहले की किसी गलती को याद दिलाना हो सकता है। जब भी आपको ऐसा लगे कि ऐसी कोई स्थिति होनेवाली है, आप तुरंत बात को पलट दें।

अगर माता-पिता में से कोई दूसरे के बारे में आपको नकारात्मक बात बताते हैं तो आप नजर अंदाज कर दें। शारीरिक प्रताड़ना की स्थिति (जो ज्यादातर पिता की तरह से होती है) मां हमेशा अपना दु:ख बच्चों को बताती है। अपने परिवार की बात को राज रखने के लिए वे अपने दोस्त को ये बाते नहीं बतातीं। ऐसे में उनकी बातों को ध्यान से सुनें और उन्हें भावनात्मक समर्थन दें।

अगर आपके माता-पिता अपने मतभेदों को दूर करने में खुद असमर्थ हैं और उनके संबंध और बिगड़ते जा रहे हैं, तो उन्हें विशेषज्ञों या मनोचिकित्सक से मिलने की सलाह दें। अपने माता-पिता के बीच के तनाव को अपने पर हावी न होने दें। अपना ख्याल रखें और अपनी पसंद के काम में व्यस्त रहें। अपनी प्रतिभा को लेकर खुश रहें। आप धीरे-धीरे निराशा से निकल आएंगे। कई बार बच्चों के कारण तनावपूर्ण शादियां बनी रहती है।

माँ की मातृछाया में इतनी शक्ति होती है कि उसके साए तले हम अपना जीवन हृष्ट पृष्ठ व शिक्षित बनाकर दीर्घ जीवन पाते है। इसकी तुलना किसी भी शक्ति से नहीं की जा सकती। मां की शक्ति का प्रताप देखना हो तो जब भी आप घर से बाहर निकले अपने माता-पिता के चरण छुएं उसके बाद ही घर से प्रस्थान करें। आपका सारा दिन सुखमय बीतेगा और बड़ी बड़ी दिक्कतों का सामना करने में आपकी राह में कोई बाधा नहीं आयेगी। समाज में आपका मान-सम्मान बढ़ेगा व

धन-दौलत की कोई कमी नहीं होगी। जमीन-जायदाद, परिवार के सभी सुख प्राप्त होंगे। माँ के चरणों में जुड़े रहने से आप चमत्कारिक सिद्धि प्राप्त कर सकते है। यह आपके जीवन में निखार ला सकती है। मृगतृष्णा को छोड़कर माँ के चरणस्पर्श व उनकी सेवा करनी चाहिए तो सारी शक्तियां अपने आप ही चरणों में आ जायेगी।

माता-पिता के पत्र पढ़ने में किसी पुत्र को असफलता नहीं मिली है, परन्तु उनके अन्तरमन को पढ़ने में तो भले-भले विनयवान पुत्र भी धोखा खा गये।

साबुन कपड़े को साफ करता है, यह अनुभव तो किया है, परन्तु माता-पिता अपने लाड़ले को सावधानीपूर्वक साफ भी करते हैं व प्रसन्नतापूर्वक माफ करते हैं।

मां-बाप तुम्हारे लिए सबसे बड़े देवता हैं, उनकी दुआएं और आशीर्वाद लेना मत भूलना। मां-बाप की सेवा स्वयं करना, क्योंकि पत्नी से प्रेम करने और मां-बाप की सेवा करने के लिए नौकर नहीं रखे जाते। मां-बाप की जो कमाई है उसे दान-धर्म में खर्च करना। अपने उपयोग में नहीं लाना क्योंकि मां-बाप की कमाई तुम्हारे लिए बहन जैसी है और बहन का उपभोग नहीं किया जाता। उसका तो कन्या-दान ही होता है।

जिस प्राणी की माता लक्ष्मी और पिता स्वयं हो विष्णु के उपासक भाई हो तो तीनों लोक उसके लिये अपने देश के समान हो जाते है, वह सदा सदा के लिये सुखी हो जाता है।

अपनी जुबान की ताकत कभी भी अपने माता-पिता पर मत आजमाओ जिन्होंने तुम्हें बोलना सिखाया।

हिमगिरि जैसी ऊंचाई है सागर जैसी गहराई है दुनिया में जितनी खुशबू है मां कं आंचल से आई है।

मां के आंचल ने युगों-युगों से भगवानों को पाला है मां के चरणों में जन्नत है गिरिजाघर और शिवाला है।

मां की ममता को देख मौत भी आगे हट जाती है गर मां अपमानित होती धरती की छाती फट जाती है।

माना मेरे घर की दीवारों में चन्दा सी मूरत है पर मेरे मन के मंदिर में बस केवल मां की मूरत है।

स्नेह, शांति, सुख, सदा ही करते वहां निवास, निष्ठा जिस घर मां बने, पिता बने विश्वास।

मां श्रद्धा, प्यार, ममता और विश्वास है, बच्चे के मन की पहली मासूम आस है।

जिनकी छाँव तले अंकुर वृक्ष बन जायें, आँचल में बहती जिनके अमृत धार है।

प्यार का कलकल झरता हो झरना जैसे, चरणों में जिनके जीवन का सार है।।

माँ घर का गौरव है, तो पिता घर का अस्तित्व है। मां के पास अश्रुधारा होती है, पिता के पास संयम होता है। दोनों समय का भोजन बनाने की जिम्मेदारी मां की होती है। जीवनभर भोजन की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी पिता की होती है। पिता को हम सहज ही भूल जाते है। कभी जीवन में ठोकर लगी, चोट लगी तो मुंह से ओ मां ही निकलता है, लेकिन रास्ता पार करते कोई ट्रक पास में आकर ब्रेक लगाती है तो शीघ्र ही मुंह से बाप रे निकलता है। छोटे-छोटे संकटों के लिए मां होती है और बड़े संकट आने पर पिता ही याद आते है। पिता एक वटवृक्ष है जिसकी शीतल छांव में सम्पूर्ण परिवार सुख से रहता है।

मां के जो करीब होते हैं, दुश्मन भी उनके हबीब होते हैं। मां जिनके पास होती है वो सबसे बड़ा धन है वो लोग कभी गरीब नहीं हो सकते। मां जिनकी जिन्दा होती है वो बहुत ही बड़े खुशनसीब होते है।

माता-पिता दुनिया में सबसे पवित्र संबंध मां का है। मां ईश्वर की तरह जहां प्रेम, त्याग और करुणा की मूर्ति है, वहीं पर सृजनकर्ता भी है। मां अपनी रचना को सर्वोत्तम बनाने के लिए वह सब करती है जो उसकी क्षमता में हो। यह सब मां बिना किसी स्वार्थ के सहज भाव से करती है, इसलिए व्यक्ति वही बनता है जो उसकी मां चाहती है।

गांधीजी की गीता माता आज भी है और सदा रहेगी। हमारी माताएं भी गीता माता की तरह मार्गदर्शन करती है। माता विश्व की दिव्य शक्ति है। इसलिए आवश्यक है कि मां की इस महत्ता को बनाए रखने के लिए प्रकृति की इस स्वाभाविक शक्ति को पहचानें, गीता का अमृतपान करें, गीता और माता से मार्गदर्शन लेते रहें। मातृ शक्ति के साथ गीता को स्मरण करें। उसकी शरण में जाते रहें।

इसके लिए आवश्यक है कि हम निरन्तर गीता का अध्ययन व मनन चिंतन करें। वह हमें नए-नए अर्थ देकर नए-नए मार्ग बताती रहेगी। युग कितना ही बदले, कितनी ही आधुनिकता व्याप्त हो, गीता का मार्गदर्शन हमें परिवर्तित समय में भी दिशा दान देगा। गीता माता को याद भर कीजिए। इस दुनियाँ में केवल पिता ही एक मनुष्य है, जो सोचते है उनके बेटे उनसे भी ज्यादा कामयाब हो। झरता पानी खुश्क नयन, पिता ही होता है, दर्द घना और आह न निकले, पिता ही होता है। अंदर कोमल, बाहर पत्थर, दु:ख सहकर हँसता है, एक अनोखा जीव जगत में, पिता ही होता है। विश्व के निर्माण में जिसने सबसे अधिक संघर्ष किया है और सबसे अधिक कष्ट उठाए हैं वह मां है। बूढ़े माँ बाप की दवाई की पर्ची खो जाती है अक्सर मगर बेटा वसीयत बहुत संभाल कर रखता है। जिंदा बाप कोई न पूजे मरे बाद पुजवाया, मुट्ठीभर चावल लेके कौवे को बाप बनाया। मां-बाप वो वृक्ष हैं जो स्वादिष्ट फल दे पाएं या न दे पाएं लेकिन अपनी औलाद को दुनिया की धूप से ठंडी छाया जरूर देते हैं।

प्रिय मां,

मधुर गीत गा नींद बुलाना, थपकी दे दे मुझे सुलाना।

मेरा जरा विकल हो जाना, तेरा टप-टप अश्रु गिरना।

वह अब तो मुझे रुलाता है, मां तेरी याद दिलाता है।

मुझको रख दिया छाँव में और खुद जलती रही धूप में, मैंने देखा है एक ऐसा फरिश्ता अपनी माँ के रूप में।

मां के आंचल के साये में बड़े से बड़े दु:ख की तपिश भी शीतल पड़ जाती है।

✻ प्रथम पूजनीय सृष्टि में, मां चरणों की करो वंदना। प्रथम प्रणाम करो उस मां को, जो जनम और आधार दिया है।

प्रभु तुमसे मेरी यही विनती, मां का उपकार कभी ना भूलूं। अंगुली पकड़ सिखाया चलना, कदम कदम बढ़ना बतलाया। स्नेह सिक्त रस पिला पिलाकर, शक्ति का संचार किया है।

दुनिया में सिर्फ मां बाप ही ऐसे हैं जो बिना किसी स्वार्थ के प्यार करते हैं।

व्यक्ति का सर्वप्रथम दायित्व जन्म देकर पालन पोषण करनेवाले माता पिता की देखरेख का होता है। यही सच्चा ईश-पूजन है, क्योंकि माता पिता अप्रत्यक्ष रूप में भगवान होते हैं।

हर मां बाप के लिए बेटा नेमत और बेटी रहमत होती है।

इस पृथ्वीपर सिर्फ मां कह दें तो मनुष्य का संपूर्ण इतिहास, वर्तमान और भविष्य समा जाता है। हम सब माता पिता को

ही ढूंढने में संपूर्ण दृश्य जगत-अदृश्य जगत को प्रकट कर रहे हैं। पुत्र अपनी माता को ढूंढ रहा है। पुत्री अपने पिता को ढूंढ रही है। जहां इनकी एक झलक भी मिलती है, वहां दोनों सुख आनंद शांति महसूस करते हैं। पूर्णता का अनुभव करते है। हमने हर उस प्राणी वस्तु को मां का दर्जा दिया, जिसका उपकार इतना गहरा है कि आप सिर्फ एहसास कर सकें, लौटा न सके। वैसे तो इस जगत में वह हर व्यक्ति जिसने आपको एक क्षण के लिए भी प्रेम किया है, उसका अनंत उपकार है, क्योंकि वह क्षण उस प्रेम से भरा, फला-फूला। हमने आत+मा कहकर अंदर की चेतना को मातृत्व भाव दिया और परम+आत+मा कहकर विश्वभर में फैले जीवन को मां कहा। मातृत्व भाव से भरा।

मां ही बच्चों में संस्कार डालती है और उन्हें नीति अनीति का भेद समझाती है। आज की माताओं के अंदर संस्कार कितने हैं। वे ही जानती हैं। ऐसी माताएं बच्चों में क्या संस्कार डालेंगी। कितनी प्यारी होती है मां की छत्र छाया, जिस छाया में इतनी शक्ति होती है कि हम उनके साए तले हृष्ट-पुष्ट व शिक्षित बनकर दीर्घ जीवन पाते हैं। मां की छत्र छाया की तुलना किसी भी शक्ति से नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? यदि आप अपनी मां की शक्ति का प्रताप देखना चाहते हैं तो जब भी आप घर से बाहर निकलें सबसे पहले अपनी मां के चरण छुए और इसके बाद घर से प्रस्थान करें। आपका सारा दिन सुखमय बीतेगा और बड़ी से बड़ी दिक्कतें आपकी राह में रोड़ा नहीं अटका पाएंगी। समाज में आपका मान-सम्मान बढ़ेगा ही धन दौलत की कमी भी कभी नहीं आएगी। जमीन-जायदाद व परिवार के सभी सुख प्राप्त होंगे। मां के चरणों से जुड़े रहने से आप चमत्कारिक सिद्धि भी प्राप्त कर सकते हैं। यह आपके जीवन में निखार ला सकती है। इसलिए हिरन की तरह भटकता छोड़कर मां के चरणस्पर्श, उनकी सेवा करें, तो सारी शक्तियां आपके चरणों में आ जायेगी।

पिता की सेवा अथवा उनकी आज्ञा के पालन के समान कोई भी दूसरा धर्म नहीं है।

माँ से बेहतर किसी को भी नहीं माना जा सकता है, उसके प्यार और देखरेख को।

खुदा का दूसरा रूप है माँ, ममता की गहरी झील है माँ। वो घर किसी जन्नत से कम नहीं, जिस घर में खुदा की तरह पूजी जाती है माँ।

हर एक के जीवन में माँ एक अनमोल इंसान के रूप में होती है जिसके बारे में शब्दों से बयाँ नहीं किया जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि भगवान हर किसी के साथ नहीं रह सकता इसलिए उसने माँ को बनाया हालाँकि माँ के साथ कुछ महत्वपूर्ण क्षणों को वर्णित किया जा सकता है। एक माँ हमारे जीवन की हर छोटी बड़ी जरूरतों का ध्यान रखनेवाली और खूबसूरत इंसान होती है। हमारे जीवन में माँ की भूमिका हमेशा अलग होती है और जीवन में शामिल दूसरे लोगों से अनमोल होती है। साथ रहनेवाले भगवान के रूप में सभी के जीवन में इस दुनिया में माँ सबसे अलग होती है जो अपने बच्चों के सभी दुख ले लेती है और उन्हें प्यार और संरक्षण देती है। माँ ही वो इंसान है जो अपने बच्चों के बुरे दिनों और बीमारियों में उनके लिये रात-रात भर जागती है। वो उनकी हर खुशी में शामिल होती है और उनके हर पसंद-नापसंद को समझती है। वो हमेशा अपने बच्चों को सही राह पर आगे बढ़ने के लिये मार्गदर्शन करती है और जीवन में सही कार्य करने को प्रेरित करती है। वो हमारी पहली अध्यापक होती है जो जीवन के हर कदम पर हमें नयी नयी सीख देती है और हमें सही गलत का अंतर समझाती है। वो हमेशा हमें अनुशासन का पालन करना, अच्छा व्यवहार करना और देश, समाज, परिवार के लिये हमारी जिम्मेदारी और भूमिका का अहसास कराती है।

१) किसान की सीख- जर्मनी के महान समाजसेवी ओबरलीन एक बार अपनी यात्रा के दौरान तूफान में फंस गए। तेज आंधी और ओलों ने उन्हें बुरी तरह परेशान कर दिया। वह मदद के लिए चिल्लाते रहे, लेकिन सबको अपनी जान बचाने की पड़ी थी, सो उनकी पुकार कौन सुनता। वह बेहोशी की हालत में नीचे गिर पड़े। कुछ देर बाद उन्हें अहसास हुआ कि किसी व्यक्ति ने उन्हें थामा है और सुरक्षित जगह पर ले जाने की कोशिश कर रहा है। होश में आने पर ओबरलीन ने देखा कि एक गरीब किसान उनकी सेवा में जुटा हुआ है। ओबरलीन ने किसान से कहा कि वह उसकी सेवा के एवज में उसे इनाम देंगे। फिर उन्होंने किसान से उसका नाम जानना चाहा। यह सुनकर किसान मुस्कराया और बोला- मित्र बताओ, बाइबिल में कहीं किसी परोपकारी का नाम लिखा है। नहीं न। तो फिर मुझे भी अनाम ही रहने दो। आप भी तो नि:स्वार्थक सेवा में विश्वास रखते हो। मुझे इनाम का लालच क्यों दे रहे हो? वैसे भी पुरस्कार का लालच किसी को भी नि:स्वार्थ सेवा करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। सेवा की भावना तो हमारे अंदर से उत्पन्न होती है। ओबरलीन उस निर्धन किसान की बातें सुनकर दंग रह गए। वह मन ही मन सोचने लगे कि आज इस किसान ने एक पाठ पढ़ाया है। सेवा जैसा भाव तो अनमोल है। उसकी कोई कीमत नहीं लगाई जा सकती और सच्ची सेवा के लिए नि:स्वार्थ होना जरूरी है। उन्हें अफसोस हुआ कि उन्होंने किसान को इनाम देने की बात कही। ओबरलीन ने किसान से कहा- अगर आपके जैसे इंसान हर जगह हों तो चारों तरफ खुशहाली और प्रसन्नता रहेगी।

२) प्रेम समर्पण है, उसमें न तो स्वार्थ है न आसक्ति- एक दिन एक घर के बाहर बरामदे में अचानक चार लोग आ गए। वे घर के मुखिया की प्रतीक्षा करने लगे। ये चार थे- प्रेम, वैभव, सफलता और नीति। मुखिया ने प्रणाम किया और परिचय पूछा। चारों ने बारी-बारी अपना परिचय बताया। उन्हें भीतर आने के लिए कहा तो वह बोले, हम सबको एक साथ अंदर आने की क्या जरूरत है। आप किसी एक को बुला लें। मुखिया असमंजस में पड़ गया कि किसे पहले बुलाएं। परिवार से विचार-विमर्श करने के लिए वापस लौट गया और परिवार के सदस्यों से सलाह करने लगा।

मुखिया की पत्नी बोली, हमें वैभव को पहले अंदर बुलाना चाहिए। उसके आने से बाकी की कमी भी पूरी हो सकती है। लेकिन उसकी बात काटते हुए मुखिया ने कहा, वैभव सफलता का मोहताज है। इसलिए सफलता को ही बुलाओ। उसके साथ होने से वैभव अपने आप आ जाएगा। इस पर बेटे ने सलाह दी, नहीं पिताजी, आप सबसे पहले नीति को बुलाइए। जहां नीति होती है, वहीं सफलता मिलती है और जहां सफलता मिलती है, वहां वैभव अपने आप आ जाता है। इसके बाद सभी बहू की राय जानने के लिए उसकी ओर देखने लगे। वह धीरे से बोली, मेरी मानिए तो आप लोग सबसे पहले प्रेम को ही बुलाइए। बाकी सभी तो बाहरी जीवन के मददगार हैं। घर-परिवार में सबसे बड़ा मित्र प्रेम ही होता है। प्रेम बना रहे तो अन्य आगंतुकों का सहचर्य किसी न किसी तरह हो ही जायेगा। बहू की सलाह पर मुखिया ने सबसे पहले प्रेम को निमंत्रित किया। लेकिन जैसे ही प्रेम भीतर आया तो उसके पीछे-पीछे बाकी तीनों भी आ गए। आपने हम तीनों में से किसी एक को बुलाया होता, तो हम अकेले ही आते। पर प्रेम जहां जाता है, वहां हम अवश्य साथ होते हैं।

३) गुलाब सा जीवन- जर्मनी में एक बालक विलहेम पढ़ने से जी चुराता था। उसकी मां जब उसे स्कूल ले जाती तो वह नखरे करता। स्कूल में भी पढ़ता कम और शरारत ज्यादा करता रहता था। एक दिन स्कूल से लौटते हुए वह सड़क

पर खेल रहे बच्चों को देखकर मां से बोला, आप मुझे स्कूल क्यों भेजती हैं? ये बच्चे भी तो बिना स्कूल गए ही बड़े हो रहे हैं। ये कितने खुश हैं। मां चुपचाप सुनती रही। दूसरे दिन उसने विलहेम को घर के बाहर उग आए झाड़-झंखाड़ की ओर दिखाते हुए उससे पूछा, बताओ बेटा, इन्हें किसने उगाया है? विलहेम बोला, मां, ये तो खुद ही उग आते हैं और ओस, बारिश का पानी और सूरज की गर्मी पाकर बढ़ जाते हैं। फिर मां ने घर में लगे गुलाब के पौधों को दिखाते हुए पूछा, और अब बताओ, ये फूल कैसे लग रहे हैं? विलहेम ने जवाब दिया, मां, ये तो बहुत ही सुंदर लग रहे हैं। इन्हें तो पिताजी रोज तराशते हैं और नियम से खाद-पानी भी देते हैं। मां विलहेम से यही सुनना चाहती थी। उसने तपाक से कहा, बिल्कुल ठीक। ये फूल इसलिए ज्यादा सुंदर हैं क्योंकि इन्हें प्रयास करके ऐसा बनाया गया है। जीवन भी ऐसा ही है। हमें अच्छा जीवन प्रयासों से ही मिलता है। इसके लिए अच्छी शिक्षा, बेहतर प्रशिक्षण और परिश्रम की जरूरत पड़ती है। तुम में और उन स्कूल न जानेवाले बच्चों में क्या फर्क है, यह तुम्हें आगे चलकर पता चलेगा। मां की यह सीख विलहेम ने गांठ बांध ली। वह पढ़ाई में मन लगाने लगा।

४) साख का सवाल- प्रसिद्ध रसायनज्ञ प्रफुल्ल चंद्र राय ने सन १८९२ में दवा की नामी कंपनी बंगाल केमिकल्स की शुरुआत आठ सौ रुपये की मामूली पूंजी से की थी। राय देशभक्त थे और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े थे। वे अपने काम के प्रति समर्पित रहते थे। बंगाल केमिकल्स को लेकर अनेक लोगों की मान्यता थी कि यह विदेशी दवा कंपनियों के आगे नहीं टिक पाएगी। लेकिन प्रफुल्ल चंद्र राय ने संकल्प लिया था कि इसमें बनी कोई भी दवा विदेशी दवा से हल्की या कमजोर नहीं होगी। एक दिन जब एक दवा बन रही थी, तो कई सौ बोतलों का रसायन कुछ बिगड़ गया। इस पर कारखाने के एक कर्मचारी ने कहा, थोड़ा सा ही तो बिगड़ा है। किसी को कुछ भी पता नहीं चलेगा। बाजार में यह आसानी से बिक जाएगी। इससे दवा के गुणों पर भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इस पर दूसरा कर्मचारी बोला, वैसे भी अब बंगाल केमिकल्स अच्छी और सर्वोत्तम दवाओं की निशानी बन गई है। इसलिए इन्हें खरीदने में भी किसी को शंका नहीं होगी। कर्मचारियों की बातें सुनकर प्रफुल्ल चंद्र राय बोले, नहीं-नहीं। ऐसी दवाओं से हमारी हानि होगी। हमारी कंपनी को दाग लगेगा। थोड़े से रुपयों का नुकसान हमारी कंपनी के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह लगा देगा। मैं ग्राहकों से विश्वासघात नहीं कर सकता। किसी भी कंपनी की सफलता ग्राहकों के विश्वास के दम पर होती है। मैं इस साख को नहीं गिरने दूंगा, चाहे मुझे कितना भी बड़ा नुकसान क्यों न उठाना पड़े। इसके बाद प्रफुल्ल चंद्र राय ने उस रसायन को फिंकवा दिया और नए सिर से दवा बनाने में जुट गए। इस तरह कंपनी के कर्मचारियों को एक बड़ी सीख मिली।

५) मां की सीख- संत विनोबा भावे का जीवन दूसरों के लिए समर्पित था। उनके आदर्शों से प्रभावित होकर कई लोग उनके अनुयायी बन गए। परोपकार की भावना उनमें बचपन से ही थी। निश्चय ही इसके संस्कार उन्हें मां-पिता से मिले थे। जब वह छोटे थे, तब भी वह किसी की मदद का मौका नहीं छोड़ते थे। इसके लिए सब उनकी प्रशंसा करते थे। दूसरे बच्चों के मां-बाप उनकी मिसाल दिया करते थे। बचपन में उनके माता-पिता उन्हें विनायक नाम से पुकारते थे, लेकिन महात्मा गांधी ने एक बार उनके पिता को पत्र लिखा, जिसमें उनके लिए विनोबा शब्द का प्रयोग किया। तभी से सब लोग उन्हें विनोबा कहने लगे। एक बार विनोबा के पड़ोस में रहनेवाले किसी परिवार का कोई सदस्य बीमार हो गया। ऐसी

कठिन परिस्थिति में बिनोबा की मां ने पड़ोसी की बहुत मदद की। वह अपने घर का भोजन बनाने के बाद पड़ोसी के घर जाकर उसका खाना बनाती और बीमार व्यक्ति की सेवा भी करती थी। एक दिन विनोबा ने अपनी मां से कहा- मां। आप कितनी मतलबी हैं कि अपने घर का खाना पहले तैयार करती हैं, फिर पड़ोसी के घर खाना बनाने जाती हैं। मां ने उत्तर दिया- तू समझता नहीं है। यदि पड़ोसी के लिए भोजन पहले बना दिया तो उनका भोजन ठंडा हो जाएगा। इसलिए मैं वहां खाना बाद में बनाती हूं ताकि वे लोग ताजा खाना खा सकें। मां की इस बात से विनोबा को एक नई दृष्टि मिली। वह समझ गए कि परोपकार का वास्तविक अर्थ है खुद को भुलाकर दूसरों को सुख पहुंचाना। यह बात उन्होंने और लोगों को भी बताई और स्वयं भी इस पर अमल किया।

६) ज्ञान में तर्क-वितर्क होता है लेकिन भक्ति में समर्पण चाहिए- नर्मदा के तट पर स्वामी परमानंद जी का सुंदर आश्रम था। एक दिन वह अपनी शिष्य मंडली के साथ नदी के तट पर टहल रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि आश्रम के पास झुरमुट के पास दो युवक बैठे हुए थे। स्वामी जी को संदेह हुआ कि कहीं ये आश्रम से कुछ चुराने तो नहीं आए हैं। शिष्यों ने बताया कि ये दोनों भक्त हैं और आपके प्रवचन सुनने आते हैं। उनका हुलिया देखकर परमानंद जी को बात कुछ जंची नहीं। ये क्या समझेंगे, जरूर प्रसाद के लोभ में आते होंगे। उन्होंने उन दोनों युवकों को बुलवाया फिर हंसते हुए बोले, तुम्हारी समझ में क्या आया, हमको बताओ। दोनों कुछ नहीं बोले तो स्वामी जी ने डपट कर कहा- भागो, यहां बेकार भीड़ न लगाओ। कल सुबह जब मेरा प्रवचन हो, तब आना। प्रसाद भी तभी मिलेगा। दोनों सहज भाव से वहां से चले गए। उनके जाने के बाद स्वामी जी ठहाका मारकर हंसे। वे शिष्यों को जताना चाहते थे कि उन्हें अभी सही-गलत भक्तों की पहचान नहीं है। सत्संग में रस लेना इतना सहज नहीं है। उसके लिए उनके जैसा गहन अध्ययन और विषय चिंतन चाहिए। दूसरे दिन स्वामीजी के आश्रम में संत समागम था। सैकड़ों विद्वानों और भक्तजनों के बीच स्वामी जी का प्रवचन होना था। लेकिन रात को भयंकर वर्षा हो गई। नदी का पुल बह गया। सभी मार्ग टूट गए। आनेवाले भक्तगण उधर के उधर ही रुक गए। कोई भी आश्रम तक नहीं आ पाया। स्वामीजी आश्रम की खिड़की से पानी का तेज बहाव देख रहे थे। सहसा उन्होंने देखा कि उसी में गिरते-पड़ते दो युवक आश्रम की ओर चले आ रहे हैं। नजदीक आने पर स्वामीजी ने उन्हें पहचान लिया। वे दोनों वही युवक थे जिनका कल उन्होंने अपमानित किया था। वे उनके प्रवचन सुनने आज उफनती नदी पार करके आश्रम में पहुंचे थे।

वे दोनों युवक पहले की तरह आश्रम के एक कोने में वृक्ष के नीचे दुबक कर बैठ गए। स्वामीजी धीरे-धीरे उनके पास पहुंचे। दोनों ने विनम्र भाव से खड़े होकर स्वामीजी को प्रणाम किया। अचानक उनमें स्वामी जी को अपने इष्ट के दिव्य रूप के दर्शन हुए। झुककर स्वामीजी ने दोनों के चरण पकड़ लिए और भाव विभोर हो उठे। स्वामीजी का ज्ञान का अभिमान छू मंतर हो गया। भक्ति की एक लहर ने स्वामी जी का सारा अहंकार बहा दिया।

७) अध्यापक का आदर्श- प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी सूर्यसेन की नियुक्ति बंगाल के एक विद्यालय में हुई थी। वह बेहद स्वाभिमानी और आदर्शवादी थे। शिक्षक के रूप में उन्होंने छात्रों के दिल में एक जगह बना ली थी। उन दिनों विद्यालय में वार्षिक परीक्षाएं चल रही थीं। उन्हें परीक्षा का निरीक्षण करना था। जिस कमरे में उनकी ड्यूटी लगी थी, उसी कमरे में

विद्यालय के अंग्रेज प्रधानाध्यापक का पुत्र भी परीक्षा दे रहा था। परीक्षा कक्ष में घूमते हुए सूर्यसेन उसके पास पहुंचे। तो वह नकल कर रहा था। उन्होंने उसे पकड़ लिया और परीक्षा देने से रोक दिया। जब परिणाम घोषित हुआ तो वह फेल था। अब सभी शिक्षक घबरा गए। उन्हें लगा कहीं सूर्यसेन की नौकरी न चली जाए। एक दिन अचानक सूर्यसेन को प्रधानाध्यापक का बुलावा आ गया। सभी शिक्षक सहम गए। पर प्रधानाध्यापक ने सूर्यसेन का स्वागत किया और स्नेहपूर्वक बोले, मुझे यह जानकर गर्व हुआ कि मेरे विद्यालय में आप जैसे कर्त्तव्यनिष्ठ और आदर्शवादी अध्यापक भी हैं, जिन्होंने मेरे पुत्र को भी दंड देने में संकोच नहीं किया। सच कहूं, यदि आपने उसे नकल करने के बाद भी पास कर दिया होता तो मैं आपको बर्खास्त कर देता। इस पर सूर्यसेन ने हंसकर कहा, और महोदय, यदि आप अब भी मुझे उसे पास करने पर मजबूर करते तो मैं त्यागपत्र दे देता। मैं तो अपना इस्तीफा जेब में रखकर आया हूं। यह सुनकर प्रधानाध्यापक महोदय की दृष्टि में उनका सम्मान दोगुना हो गया। शिक्षकों के लिए यह आश्चर्य का विषय था। सूर्यसेन की निर्भीकता से वे बेहद प्रभावित हुए। प्रधानाध्यापक महोदय को लेकर भी उनकी राय बदल गई।

८) वह महान इंजीनीयर- तब देश में अंग्रेजों का शासन था। एक दिन बंबई मेल यात्रियों से खचाखच भरी हुई तेज गति से दौड़ी जा रही थी। यात्रियों में अधिकतर अंग्रेज थे। पर एक डिब्बे में सांवले रंग का धोती-कुर्ता पहने एक भारतीय यात्री गुमसुम बैठा था। सभी अंग्रेज यात्री उसे बेवकूफ समझकर उस पर व्यंग्य कर रहे थे। कुछ देर बाद अचानक उस व्यक्ति ने उठकर रेल की जंजीर खींच दी। गाड़ी की रफ्तार धीमी पड़ गई। उस व्यक्ति को अन्य यात्री बुरा-भला कहने लगे। जब रेल रुकी तो गार्ड अंदर आया और उसने पूछा कि जंजीर किसने और क्यों खींची है? इस पर वह व्यक्ति बोला, जंजीर मैंने खींची है। मुझे ऐसा अनुमान हुआ कि यहां से लगभग एक फलांग दूर रेल की पटरी उखड़ी हुई है। गार्ड हैरानी से उस व्यक्ति को देखते हुए बोला, आपको कैसे पता लगा? वह व्यक्ति बोला, दरअसल गाड़ी की स्वाभाविक गति में अंतर आ गया था। इससे प्रतिध्वनित होनेवाली आवाज से मुझे खतरे का आभास हो गया। गार्ड उस व्यक्ति के साथ कुछ अन्य यात्रियों को लेकर एक फलांग से आगे पहुंचा और यह देखकर गार्ड के साथ अन्य लोग भी दंग रह गए कि वास्तव में एक जगह रेल की पटरी के जोड़ खुले हुए थे और नटबोल्ट अलग पड़े थे। अब सभी लोग उस व्यक्ति की सराहना करने लगे। गार्ड ने उससे पूछा, आप कौन हैं? आपका क्या नाम है? वह व्यक्ति सहज भाव से बोला, मैं एक इंजीनियर हूं और मेरा नाम डॉ. एम विश्वेश्वरैया है। नाम सुनते ही सब सन्न रह गए। डॉ. एम, विश्वेश्वरैया का नाम देश के महान इंजीनियरों में गर्व से लिया जाता है।

९) दोस्ती का अंदाज- यह प्रसंग उस समय का है जब डॉ. जाकिर हुसैन विशेष अध्ययन के लिए जर्मनी गए हुए थे। वहां कोई भी अनजान व्यक्ति दूसरे अनजान को देखकर अपना नाम बताते हुए हाथ आगे बढ़ा देता था। इस प्रकार अपरिचित लोग भी एक दूसरे के दोस्त बन जाते थे। दोस्ती करने का यह रिवाज वहां काफी लोकप्रिय था। एक दिन जाकिर हुसैन के कॉलेज में वार्षिकोत्सव का मनाया जा रहा था। कार्यक्रम का समय हो चुका था। सभी विद्यार्थी व शिक्षक वार्षिकोत्सव के लिए निर्धारित स्थल पर पहुंच रहे थे। जाकिर साहब भी जल्दी-जल्दी वहां जाने के लिए अपने कदम बढ़ा रहे थे। जैसे ही उन्होंने कॉलेज में प्रवेश किया, एक शिक्षक महोदय भी वहां पहुंचे। दोनों ही जल्दबाजी और अनजाने में एक-दूसरे से टकरा गए। शिक्षक महोदय जाकिर साहब से टक्कर होने पर गुस्से से उन्हें देखते हुए बोले, इडियट। यह

सुनकर जाकिर साहब ने फौरन अपना हाथ आगे की ओर बढ़ाया और बोले, जाकिर हुसैन। भारत से यहां पढ़ने के लिए आया हुआ हूं। यह देखकर शिक्षक महोदय का गुस्सा मुस्कराहट में बदल गया। वह बोले, बहुत खूब। आपकी हाजिरजवाबी ने मुझे प्रभावित कर दिया। इस तरह परिचय देकर आपने हमारे देश के रिवाज को भी मान दिया है और साथ ही मुझे मेरी गलती का अहसास भी करा दिया है। वाकई हम अनजाने में एक-दूसरे से टकराए थे। ऐसे में मुझे क्षमा मांगनी चाहिए थी। अपशब्द नहीं बोलने चाहिए थे। शिक्षक का जवाब सुनकर जाकिर साहब बोले, कोई बात नहीं। इसी बहाने आपसे दोस्ती तो हो गई। फिर दोनों मुस्कराकर एक साथ वार्षिकोत्सव में भाग लेने के लिए चल पड़े।

१०) सिगरेट का धुआं- एक बार पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद नाव से अपने गांव जा रहे थे। नाव में कई लोग सवार थे। राजेंद्र बाबू के नजदीक ही एक अंग्रेज बैठा हुआ था। वह बार-बार राजेंद्र बाबू की तरफ व्यंग्य से देखता और मुस्कराने लगता। कुछ देर बाद अंग्रेज ने उन्हें तंग करने के लिए एक सिगरेट सुलगा ली और उसका धुआं जानबूझकर राजेंद्र बाबू की ओर फेंकता रहा। कुछ देर तक राजेंद्र बाबू चुप रहे। लेकिन वह काफी देर से उस अंग्रेज की ज्यादती बर्दाश्त कर रहे थे। उन्हें लगा कि अब उसे सबक सिखाना जरूरी है। कुछ सोचकर वह अंग्रेज से बोले, महोदय, यह जो सिगरेट आप पी रहे हैं क्या आपकी है? यह प्रश्न सुनकर अंग्रेज व्यंग्य से मुस्कराता हुआ बोला, अरे, मेरी नहीं तो क्या तुम्हारी है? महंगी और विदेशी सिगरेट है। अंग्रेज के इस वाक्य पर राजेंद्र बाबू बोले, बड़े गर्व से कह रहे हो कि विदेशी और महंगी सिगरेट तुम्हारी है। तो फिर इसका धुआं भी तुम्हारा ही हुआ न। उस धुएं को हम पर क्यों फेंक रहे हो? तुम्हारी सिगरेट तुम्हारी चीज है। इसलिए अपनी हर चीज संभाल कर रखो। इसका धुआं हमारी ओर नहीं आना चाहिए। अगर इस बार धुआं हमारी ओर मुड़ा तो सोच लेना कि तुम अपनी जबान से ही मुकर जाओगे। तुम्हारी चीज तुम्हारे पास ही रहनी चाहिए, चाहे वह सिगरेट हो या धुआं। राजेंद्र प्रसाद का यह दो टूक जवाब सुनकर अंग्रेज दंग रह गया। उसे सबके सामने लज्जित होना पड़ा और उसने उसी क्षण वह सिगरेट बुझाकर फेंक दी। पूरे रास्ते वह मुंह झुकाकर बैठा रहा और समझ गया कि किसी पर व्यर्थ व्यंग्य करना भारी भी पड़ सकता है।

११) नियम का पालन- बात उन दिनों की है, जब लालबहादुर शास्त्री रेल मंत्री थे। मंत्री होते हुए भी उनका जीवन बिल्कुल सीधा-सादा था। वे नियमों का सख्ती से पालन करते थे और दूसरों से भी ऐसी ही आशा रखते थे। एक बार उन्हें बनारस से रेलगाड़ी में कहीं जाना था। बहुत कोशिश करने के बावजूद वे समय पर स्टेशन नहीं पहुंच पाए। गाड़ी का सिग्नल हो चुका था पर जैसे ही गार्ड को पता चला कि मंत्री महोदय गाड़ी पकड़ने के लिए स्टेशन पर पहुंचनेवाले हैं, उसने हरी झंडी नीची कर ली। वह शास्त्रीजी का इंतजार करने लगा। सभी यात्री परेशान थे कि सिग्नल होने पर भी गाड़ी चल क्यों नहीं रही है? कुछ ही देर में शास्त्रीजी स्टेशन पर पहुंच गए और अपने डिब्बे की तरफ बढ़े। गार्ड भागा-भागा उनके सामने आया और बोला- जैसे ही मैंने सुना कि आप आ रहे हैं, मैंने ट्रेन को चलने नहीं दिया। शास्त्रीजी ने एक क्षण उसकी तरफ देखा और ट्रेन में सवार हो गए। गार्ड बेहद खुश था और सोच रहा था कि मंत्री जी उसके इस कार्य से प्रसन्न हुए होंगे और अब उसकी यह खुशी रफूचक्कर हो गई जब उसे अपनी ड्यूटी ठीक से न करने के आरोप में पदमुक्त कर दिया गया। शास्त्री जी मानते थे कि नियमों की अवहेलना ऊंचे से ऊंचे पद पर बैठे व्यक्ति को भी नहीं करनी चाहिए। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा कि उनकी वजह से ट्रेन में सवार सैकड़ों यात्रियों को असुविधा हुई इसलिए उन्होंने इसके लिए जिम्मेदार उस गार्ड को तुरंत पदमुक्त करने का आदेश दे दिया था।

१२) शंकर की मां- आदि शंकराचार्य के बचपन का नाम था- शंकर। आठ साल की उम्र में ही उन्होंने तत्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए घर छोड़ने का निश्चय किया। यह उनकी माता विशिष्टा देवी के लिए एक आघात था। उन्होंने जब अपने बेटे को रोकना चाहा तो शंकर ने उन्हें नारद से संबंधित कथा सुनाई। कथा के मुताबिक नारद जब मात्र पांच वर्ष के थे, तभी वे अपने स्वामी की अतिथिशाला में अतिथियों के मुंह से हरिकथा सुनकर साक्षात हरि से मिलने के लिए व्याकुल हो गए। मगर अपनी मां के स्नेह के कारण नारद अपने गृह त्याग का साहस न जुटा पाए। एक रात सर्पदंश से उनकी मां की मृत्यु हो गई। इसे ईश्वर की कृपा मानकर नारद ने गृह त्याग कर दिया। यह कथा सुनाकर बालक शंकर ने अपनी मां से कहा- मां, जब नारद ने घर का त्याग किया, तब वे मात्र पांच वर्ष के थे। उन्हें मातृ वियोग सहन करना पड़ा था। मैं तो आठ वर्ष का हूं और मेरे ऊपर तो मातृछाया सदैव रहेगी चाहे मैं संसार में कहीं भी क्यों न रहूं। मां के प्रति शंकराचार्य की अटूट भक्ति थी। जब उन्होंने मां को छोड़ा तो बार-बार कहा- मैं कोई पत्थर हृदय नहीं हूं जो मां को रोता-बिलखता छोड़कर जा रहा हूं। बाद में शंकर ने अपनी मां के बारे में लोगों को बताया- मेरी मां ने जब संतान मांगी थी, तो उन्हें बता दिया गया था कि पुत्र यदि अल्पज्ञ होगा तो दीर्घजीवी होगा और सर्वज्ञ होगा तो अल्पजीवी होगा। मां ने तब सर्वज्ञ मांगा था। चूंकि अल्पायु में ही मुझे बहुत कुछ करना है, इसलिए वृहत्तर कल्याण के लिए मैंने अपनी मातृभक्ति का बलिदान दिया। शंकराचार्य ने जो संकल्प किया था, वह करके दिखाया।

१३) वह असाधारण लेखिका- यह घटना उस समय की है, जब अमेरिका में दास प्रथा चरम पर थी। हालांकि कई लोग इसके खिलाफ भी थे। एक गृहिणी दास प्रथा से बहुत दुखी रहती थी। उसके मन में हमेशा आता था कि दास प्रथा का अंत कर दे। उसके ऊपर पारिवारिक जवाबदेही के साथ ही अनेक और जिम्मेदारियां थीं। वह अपने घर के कामकाज करती, बच्चों की देखभाल करती। इन सबके बीच लोगों की बातें भी सुनती कि दास प्रथा ने सभी को अत्यंत लाचार बना दिया है। एक दिन घर की सफाई करते समय गृहिणी के हाथ में कुछ खाली कागज लगे। उसने उन्हें अपने पलंग के पास रख लिया। जब उसके बच्चे सोए हुए होते तो वह उन पर अपने विचार लिखती रहती। रात के समय लिखने का उसका नियम बन गया। धीरे-धीरे उसे लेखन में आनंद आने लगा और अब वह घर के कार्य करते हुए भी लेखन करने लगी। उसने अपने लेखन में गुलामी को मुख्य विषय बनाया था। कुछ समय बाद एक मोटी पुस्तक तैयार हो गई। संयोगवश एक प्रेस के लोगों ने उसे पढ़ा तो उन्हें लगा कि उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित होकर जनता के सामने आना चाहिए। कुछ ही समय बाद वह पुस्तक प्रकाशित हो गई। पुस्तक का नाम था- अंकल टॉम्स केबिन (टॉम काका की कुटिया)। यह किताब हाथोंहाथ बिकी और लोग उसके दीवाने हो गए। उसमें लेखिका ने दास प्रथा के बारे में विस्तार से लिखा था। कहते हैं कि इस पुस्तक ने दास प्रथा को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे दास प्रथा के खिलाफ लड़नेवालों को प्रेरणा मिली। वह गृहिणी थी हैरियट बीचर स्टो। असाधारण लेखन ने उन्हें अमर बना दिया।

१४) शहीद का बचपन- दिल्ली सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली में सरदार भगत सिंह के साथ बम फेंककर अंग्रेजी शासन की नींव हिला देनेवाले महान क्रांतिकारी बटुकेश्वर दत्त बचपन से ही बेहद संवेदनशील थे। जब भी वह किसी गरीब को असहाय हालत में देखते, तो उनका हृदय करुणा से भर उठता। जरूरतमंद की सहायता के लिए वे हमेशा तैयार रहते

थे। एक दिन जब वे स्कूल जा रहे थे तो रास्ते में उन्होंने एक भिखारी को बहुत दयनीय हालत में पड़े देखा। वह बीमार था और भूख-प्यास से तड़प रहा था। बालक बट्टुकेश्वर ने फौरन उसे पानी पिलाया और फिर एक राहगीर की मदद से उसे उठाकर पास के एक खाली मकान में ले गए। उस दिन से वह उसकी देखभाल में जुट गए। रोज स्कूल जाते समय वह उसे अपना खाना और जेबखर्च के लिए मिले पैसे दे जाते। भिखारी तेजी से ठीक होने लगा। वह इस बालक को आशीर्वाद देते नहीं थकता था। वह सोचता, आज इस दुनिया में भाई-भाई की मदद नहीं करता और एक यह बालक मेरी सेवा में पूरे मन से जुटा रहता है। एक दिन स्कूल जाते वक्त बट्टुकेश्वर ने पाया कि भिखारी अपनी जगह पर नहीं है। पड़ोसियों से पूछा तो पता चला कि बीती रात अचानक भिखारी की तबीयत खराब हो गई और उसकी मृत्यु हो गई। पड़ोसियों ने उसका दाह संस्कार कर दिया था। यह सुनते ही बट्टुकेश्वर के हाथ से स्कूल बैग छूट गया। उन्होंने भीगी आंखों से आसमान की ओर देखा और फिर फूट-फूट कर रोने लगे। लोगों ने चुप कराने की बहुत कोशिश की पर वह घंटों वहीं बैठकर रोते रहे। लोग छोटे से बालक का भिखारी के लिए ऐसा प्रेम देखकर दंग रह गए।

१५) ईमानदारी की ताकत- प्राचीन बड़ौदा राज्य में मेहसाना के जिला जज थे- ए.आर.शिंदे। वह अत्यंत ईमानदार और स्पष्टवादी थे। बड़ौदा के महाराज सयाजीराव के हृदय में श्री शिंदे के प्रति गहरी श्रद्धा थी। महाराज जब-जब विदेश जाते, अपने निजी सहायक के रूप में श्री शिंदे को साथ ले जाते थे। एक बार फ्रांस यात्रा के दौरान महाराज ने शिंदे की सलाह पर पैरिस के एक बड़े जौहरी की दुकान से अत्यंत कीमती रत्न खरीदे। अगले दिन दुकानदार का एक प्रतिनिधि शिंदे के पास आया और उसने पूछा, सर आपका कमिशन चेक से दिया जाए या नकद भुगतान से। शिंदे प्रतिनिधि की बात सुनकर हैरानी से बोले, किस बात का कमिशन? प्रतिनिधि बोला, सर्राफा की दुकानों में यह चलन है कि अच्छे ग्राहक लानेवाले व्यक्ति को कमिशन दिया जाता है। शिंदे बोले, आपके यहां जो भी चलन हो पर मैं सरकारी कर्मचारी हूं और यह नहीं ले सकता। प्रतिनिधि बोला, यह तो हमारी दुकान की परिपाटी है। मैं यह बात आपके महाराज के समक्ष भी स्पष्ट कर सकता हूं। शिंदे बोले, आप कमिशन काट कर के अपना बिल बना दीजिए। इस कमिशन पर ग्राहक का हक होना चाहिए न कि उस व्यक्ति का, जो दुकान में ग्राहक लेकर आए। शिंदे के आगे प्रतिनिधि की एक न चली। उसने कमिशन काट कर बिल बना दिया और बोला, सर, आपकी ईमानदारी की सूचना महाराज तक अवश्य जानी चाहिए। शिंदे ने कहा- इस बात का जिक्र किसी से न करें। इस बात को यहीं दबा दें। इस पर प्रतिनिधि ने कहा, धन्य है भारत और धन्य हैं आप।

१६) कलाकार का अभिमान- प्रस्तर नामक एक मूर्तिकार बेहद सुंदर मूर्तियां बनाया करता था। उसकी मूर्तियां लोग बहुत पसंद करते थे। उसने अपने बेटे अहं को भी मूर्तिकला का ज्ञान देना शुरू किया। कुछ वर्षों में बेटा भी मूर्तियां बनाने में निपुण हो गया। अब पिता-पुत्र दोनों बाजार जाते और मूर्तियां बेचकर आ जाते। कुछ समय बाद प्रस्तर ने अहं की मूर्तियों को अलग से बेचना शुरू कर दिया। अहं की मूर्तियां प्रस्तर की मूर्तियों से ज्यादा दामों पर बिकने लगीं। एक रात अहं जब मूर्ति बना रहा था तो प्रस्तर उसकी मूर्ति को देखते हुए उसमें कमी बताने लगा। पिता को मूर्ति में जगह-जगह कमी बताते देख अहं खीज गया। वह चिढ़कर बोला, पिताजी, आपको तो मेरी मूर्ति में दोष ही नजर आता है। यदि मेरी मूर्ति में कमी होती तो आज मेरी मूर्ति आपसे ज्यादा कीमत में नहीं बिकती। बेटे की बातें सुनकर पिता दंग रह गया। वह

चुपचाप अपने बिस्तर पर आकर लेट गया। कुछ देर बाद अहं को लगा कि उसे पिता से इस तरह बात नहीं करनी चाहिए थी। वह पिता के पैरों के पास आकर बैठ गया। अहं के आने की आहट से प्रस्तर उठ बैठा और बोला, बेटा, जब मैं तुम्हारी उम्र का था तो मुझे भी अभिमान हो गया था। उस समय मेरी एक मूर्ति पांच सौ रुपये में बिकी थी और मेरे पिता की पांच रुपये में। तब से लेकर आज तक मैं पाच सौं से आगे नहीं बढ़ पाया। मैं नहीं चाहता कि अभिमान करने से जो नुकसान मुझे हुआ, वह तुम्हें भी हो। मनुष्य हर पल सीखते रहता है। अहं ने पिता से कहा, आगे से आप मेरी हर कमी बताइएगा, मैं उसे सुधारने की कोशिश करूंगा। प्रस्तर ने अपने बेटे को आशीर्वाद दिया।

१७) देह और आत्मा- धर्मकीर्ति ने महर्षि याज्ञवल्क्य के आश्रम में उच्च शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा समाप्त कर वह घर लौटे। पिता धनपति ने शानदार स्वागत की व्यवस्था की थी। परिवार के लोग धर्मकीर्ति के लौटने पर बहुत प्रसन्न हुए। दो-तीन दिनों तक उत्सव चलता रहा। उसके बाद धनपति ने उनसे कहा कि वह अब सांसारिक दायित्व संभालें और विवाह करें। धर्मकीर्ति ने कहा- मैं विवाह नहीं करूंगा। पिता ने पूछा- क्यों? धर्मकीर्ति ने कहा- दुनिया के सारे संबंध नाशवान हैं। मैं तो मोक्ष प्राप्त करूंगा। विचलित धनपति ने उन्हें बहुत समझाया, पर धर्मकीर्ति टस से मस न हुए। फिर धनपति ने महर्षि याज्ञवल्क्य को यह बात बताई। महर्षि ने धर्मकीर्ति को वापस आश्रम बुला लिया। एक दिन उन्होंने धर्मकीर्ति को फूल चुनने भेजा। जिस उपवन में वह फूल चुन रहे थे, उसका मालिक संयोगवश वहीं आ गया। उसने आव देखा न ताव, अपनी कुल्हाड़ी लेकर उन्हें मारने दौड़ा। धर्मकीर्ति भागकर आश्रम पहुंचे। फिर वह महर्षि के कक्ष में पहुंच गए। उनके पीछे भागता हुआ उपवन का मालिक भी वहां पहुंच गया। महर्षि ने बड़े शांत स्वर में धर्मकीर्ति से कहा- वत्स, यह देह तो नाशवान है। उपवन का स्वामी तुम्हारी इस देह को ही तो नष्ट करना चाहता है। करने दो। वह तुम्हारी आत्मा को तो क्षति नहीं पहुंचा रहा, फिर तुम भयभीत क्यों हो? धर्मकीर्ति को कोई जवाब न सूझा। वह महर्षि को अपलक देखते रह गए। महर्षि ने समझाया- आत्मा के साथ देह भी सत्य है। जाओ, दोनों को साधो। देह और आत्मा, दोनों के ही कल्याण की साधना करो। तभी जीवन साथर्क होगा। धर्मकीर्ति वापस घर आ गए।

१८) अध्ययन की शक्ति - अमेरिका में एथेंस नामक एक अनाथ युवक रहता था। उसे पढ़ने का बेहद शौक था। एक दिन उसने किसी किताब में पढ़ा कि अध्ययन से व्यक्ति विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर सकता है। इससे वह न सिर्फ धन-संपदा का मालिक बन सकता है बल्कि सदाचरण के मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल बना सकता है। एथेंस ने संकल्प किया कि वह बिना कर्म के प्राप्त धन का उपयोग नहीं करेगा और दुर्व्यसनों से दूर रहेगा। एथेंस ने प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। कुछ संपन्न परिवारों के विद्यार्थी उसकी अनूठी प्रतिभा और लगन देखकर उससे ईर्ष्या करते थे। एक दिन कुछ ईर्ष्यालु विद्यार्थियों ने उस पर चोरी का इलजाम लगाकर उसे कठघरे में खड़ा कर दिया। न्यायाधीश ने एथेंस से कहा, तुम्हारे सहपाठियों का कहना है कि तुम चोरी करके अपनी फीस जमा करते हो। आखिर तुम्हारे जैसा अनाथ विद्यार्थी इतने महंगे विश्वविद्यालय का खर्च कैसे वहन करता है? इस पर एथेंस विनम्रतापूर्वक बोला, सर, मैं बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर अपना खर्च निकालता हूं। मैंने यही सीखा है कि बिना परिश्रम के धन संचय करना पाप है। मेरे दोस्त साबित करके दिखाएं कि मैंने चोरी की है। एथेंस की बात का उसके सहपाठी जवाब न दे पाए। न्यायाधीश ने इस

बात की जांच की और एथेंस के कहे गए तथ्यों को सही पाया। उसे मुक्त कर दिया गया। एथेंस ने मेहनत और कर्म से अपना व्यक्तित्व निखारा। आज भी अमेरिका के प्रमुख बुद्धिजीवियों में एथेंस का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

१९) वैज्ञानिक का जवाब- यह उन दिनों की बात है, जब महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंसटाइन की शोहरत दुनिया भर में फैल चुकी थी। उन्हें विभिन्न समारोहों में बुलाया जाता था। लोग अकसर उन्हें घेर लेते और तरह-तरह के सवाल करते। वे सबकी जिज्ञासा पूरी करने की कोशिश करते। एक बार एक लड़के ने पूछा, सर, आज दुनिया भर में आपका नाम है। सभी आपकी प्रशंसा करते हैं। आपको महान कहते हैं। कृपया मुझे बताएं कि आखिर महान बनने का मंत्र क्या है? क्या हर कोई महान बन सकता है? आइंसटाइन मुस्कराए। फिर कुछ देर सोचने के बाद बोले- तुम्हारे सवाल का बस एक जवाब है- लगन। लड़के ने तत्काल कहा- जी, मैं कुछ समझा नहीं। आइंसटाइन ने उसे समझाया- जब मैं तुम्हारी उम्र का था, तब गणित से बहुत डरता था, जैसे आज तुम डरते हो। मैं गणित में फेल हो जाता था। मुझे सजा मिलती, मेरे दोस्त मुझसे आगे बढ़ जाते। वे मेरा मजाक उड़ाते। मैं मन मारकर रह जाता। एक दिन मैंने सोचा कि कहीं मुझमें कोई कमी तो नहीं है? फिर मैं गणित से क्यों घबराता हूं? बस, उस दिन के बाद मैं गणित के सवाल हल करने लगा। बार-बार असफल हुआ। दोस्तों के मजाक का पात्र बना। पर मुझमें एक ही लगन थी कि गणित पर अधिकार करके रहूंगा। इसी लगन का फल है कि आज लोग मेरे सिद्धांतों को अपनाते हैं। फिर मैंने विज्ञान में भी काम करना शुरू किया। मेरा काम सबके सामने है। लगन ही मेरा मूलमंत्र है। तुम भी इसे कभी मत छोड़ना। लड़का आइंसटाइन के प्रति आभार व्यक्त करके लौट आया।

२०) हांडी के चावल - यह प्रसंग उस समय का है, जब वाल्टर हाइन्स पेज प्रसिद्ध अमेरिकी मासिक पत्रिका दि वर्ल्डर्स वर्क्स के संपादक थे। उस पत्रिका में रचना प्रकाशित होना किसी भी लेखक के लिए सम्मान की बात होती थी। इसलिए पेज के पास रचनाओं का अंबार लगा रहता था। उन्हें रोज अनेक रचनाओं को स्वीकृत-अस्वीकृत करना पड़ता था। एक बार एक लेखक ने उन्हें पत्र लिखा- पिछले हफ्ते आपने मेरी कहानी सखेद लौटा दी। मेरा दावा है कि आपने मेरी कहानी पढ़ी ही नहीं। मेरा अनुमान सही था कि आप जैसे संपादक अपने कार्य में अक्सर ईमानदारी नहीं बरतते। इसलिए मैंने अपनी कहानी के बीच के पृष्ठों को एक साथ चिपका दिया था। जब आपने मेरे पास कहानी सखेद वापस की तो कहानी के बीच के पन्ने वैसे ही चिपके हुए थे। यह आपकी पेशे के प्रति बेईमानी नहीं तो और क्या है। इससे स्पष्ट होता है कि आप अच्छे लेखकों के बजाय चाटुकारों को ही अपनी पत्रिका में स्थान देते हैं। पत्र पढ़कर पेज ने जवाब दिया- आपका ज्ञान अभी कच्चा है। हांडी में चावल पके हैं या नहीं, यह जानने के लिए सिर्फ एक चावल को टटोला जाता है, पूरी हांडी को उलटकर चावलों को टटोलने की जरूरत नहीं पड़ती। यदि एक चावल पक जाता है तो पूरे चावल पके हुए होते हैं और यदि पहला चावल ही कच्चा है तो पूरे चावल भी कच्चे होंगे। यह जवाब पढ़कर वह लेखक अत्यंत लज्जित हुआ। उसने विनम्रतापूर्वक माफी मांगते हुए पेज को लिखा- आज से आप मेरे गुरु हैं। आपने मुझे छोटे से उदाहरण से बड़ा ज्ञान दिया है। मैं अब हांडी के सारे चावलों को पकाने का अभ्यास करूंगा।

२१) झील का चांद- एक व्यक्ति एक प्रसिद्ध संत के पास गया और बोला, गुरुवर, मुझे जीवन के सत्य का पूर्ण ज्ञान है। मैंने शास्त्रों का अध्ययन भी किया है। फिर भी मेरा मन किसी काम में नहीं लगता। जब भी कोई काम करने बैठता हूं

तो मन भटकने लगता है और मैं उस काम को छोड़ देता हूं। इस अस्थिरता का कारण क्या है? कृपया मेरी इस समस्या का समाधान कीजिए। संत ने उसे रात का इंतजार करने को कहा।

रात होने पर वह उसे एक झील के पास ले गए और झील के अंदर चांद के चमचमाते प्रतिबिंब को दिखाकर बोले, एक चांद आकाश में है और एक झील में। तुम्हारा मन इस झील की तरह है। तुम्हारे पास ज्ञान तो है लेकिन तुम उसका प्रयोग करने के बजाय सिर्फ उसे अपने मन में लेकर बैठे हो, ठीक उसी तरह जैसे झील असली चांद का प्रतिबिंब लेकर बैठी है। तुम्हारा ज्ञान तभी सार्थक हो सकता है जब तुम उसे व्यवहार में एकाग्रता व संयम के साथ अपनाने की कोशिश करो। झील का चांद तो मात्र एक भ्रम है। भला यह चांद मुक्त आकाश के चंद्रमा की बराबरी कहां कर सकता है? उसी तरह तुम्हें काम में मन लगाने के लिए स्वयं को आकाश के चंद्रमा की तरह बनाना है। झील का चंद्रमा पानी में कंकड़-पत्थर गिरने पर हिलने लगता है। तुम्हारा मन भी जरा-जरा सी बात में डोलने लग जाता है। तुम्हें अपने ज्ञान व विवेक को जीवन में नियमपूर्वक प्रयोग में लाना होगा, तभी तुम अपना लक्ष्य हासिल कर सकोगे। तुम्हें शुरू में थोड़ी परेशानी आएगी किंतु कुछ समय बाद तुम अभ्यस्त हो जाओगे। व्यक्ति संत का आशय समझ गया।

२२) समय का महत्व- यह घटना उस समय की है, जब स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ रहा था। गांधीजी घूम-घूमकर लोगों को स्वराज और अहिंसा का संदेश देते थे। एक बार उन्हें एक सभा में बुलाया गया। सभा का संचालन एक स्थानीय नेता को करना था। गांधीजी समय के पाबंद थे। वह निर्धारित समय पर सभास्थल पर पहुंच गए। उन्होंने देखा कि सभास्थल पर सभी लोग पहुंच गए हैं, लेकिन जिन नेता को सभा का संचालन करना था, वह नहीं पहुंच पाए हैं। सभी लोग बेसब्री से उस नेता की प्रतीक्षा करते रहे। वह पूरे पैंतालीस मिनट बाद सभास्थल पर पहुंचे। उन्होंने देखा कि उनकी अनुपस्थिति में ही सभा चल रही है। यह देखकर वह लज्जित हुए। मंच पर पहुंच कर उन्होंने आयोजनों से पूछा कि उनके बिना सभा कैसे प्रारंभ हुई? इस पर आयोजक कुछ नहीं बोले। गांधीजी नेताजी के हाव-भाव से उनकी बातें समझ गए। वह मंच पर आए और नेताजी की ओर देखते हुए बोले, माफ कीजिएगा, लेकिन जिस देश के अग्रगामी नेतागण ही महत्वपूर्ण सभा में पैंतालीस मिनट देर से पहुंचेंगे वहां पर स्वराज भी उतनी ही देर से आएगा। नेता के इंतजार में अन्य लोग भी कार्य प्रारंभ नहीं कर सकते। यह सोचकर मैंने सभा शुरू करा दी क्योंकि मुझे डर था कि आपके देर से आनेकी आदत धीरे-धीरे अन्य लोगों को भी न लग जाए। मेरा मानना है कि लोग एक दूसरे की अच्छी बातें ही सीखें, बुरी बातें नहीं। गांधीजी की बात सुनकर नेताजी को शर्मिंदगी महसूस हुई। उन्होंने उसी क्षण संकल्प लिया कि आगे से वह भी वक्त का महत्व समझेंगे और अपना हर कार्य निर्धारित समय पर करेंगे।

२३) राष्ट्रपति का बड़प्पन- डॉ. राजेंद्र प्रसाद उन दिनों देश के राष्ट्रपति थे। वह अपने साथ काम करनेवाले कर्मचारियों का पूरा-पूरा ख्याल रखते थे। छोटे से छोटे पद पर काम करनेवाला कर्मचारी भी उनके स्नेह का पात्र था। उनका एक चपरासी था तुलसी। वह उनकी खूब सेवा करता था। राजेन्द्र बाबू को उससे विशेष लगाव था। लेकिन उनके लाड़-प्यार की वजह से तुलसी थोड़ा लापरवाह हो गया। राजेन्द्र बाबू को जब पता चला तो उन्हें पहली बार क्रोध आ गया और उन्होंने तुलसी का तबादला अपने दफ्तर में किसी और जगह करने का आदेश दे दिया। तुलसी चला गया। पर उस

दिन राजेन्द्र बाबू का मन किसी काम में नहीं लगा। वह लगातार तुलसी के बारे में सोच रहे थे। उनके मन में तरह-तरह के विचार आने लगे कि बेचारा हमेशा सेवा में लगा रहता था। थोड़ा लापरवाह है तो क्या हुआ, ईमानदार और निष्ठावान तो है ही। आखिरकार उन्होंने तुलसी को अपने पास आने का संदेश भिजवा दिया। तुलसी डरते-डरते हाजिर हुआ और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। राजेन्द्र बाबू थोड़ी देर उसे देखते रहे फिर हाथ जोड़कर खड़े हो गए और बोले- तुलसी, मुझे माफ कर दो, मुझसे गलती हो गई है। बेचारा तुलसी शर्म से गड़ा जा रहा था। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। राजेन्द्र बाबू ने दोबारा माफी मांगी। तुलसी बोला- कसूर तो मैंने किया है और माफी आप मांग रहे हैं। वह फिर से उनकी सेवा में जुट गया।

२४) भारत का स्वाभिमान- बात उन दिनों की है, जब देश में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन मजबूत होता जा रहा था। अंग्रेज अपने-आपको भारतीयों से बहुत ऊंचा मानते थे। भारतीयों से बुरा बर्ताव करना उनकी दिनचर्या बन चुका था। उनके सामने कोई भी हिंदुस्तानी पालकी या घोड़े की सवारी नहीं कर सकता था। एक दिन राजा राममोहन राय एक पालकी में बैठकर कहीं जा रहे थे। रास्ते में कलक्टर हेमिल्टन खड़ा था। उसे देखकर भी राम मोहन राय पालकी से नीचे नहीं उतरे। हेमिल्टन गुस्से से लाल-पीला हो गया। उसे यह नागवार गुजर रहा था कि एक हिंदुस्तानी उसके सामने से पालकी में बैठकर निकले। उसने पालकी रुकवा ली। राममोहन राय नीचे उतर आए और विनम्रतापूर्वक कलेक्टर हेमिल्टन से पूछा कि बात क्या है? हेमिल्टन उन्हें भला-बुरा कहने लगा। उस समय राममोहन राय ने बात बढ़ाना ठीक नहीं समझा। वह हेमिल्टन की उपेक्षा कर पालकी में वापस जा बैठे और आगे बढ़ गए। उन्होंने इस बात की शिकायत लार्ड मिंटो से की। लार्ड मिंटो ने हेमिल्टन को मामूली चेतावनी देकर बात समाप्त कर दी पर राममोहन राय इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए। उनके एक मित्र ने उन्हें समझाया कि अब तो हेमिल्टन को उसके लिए झाड़ भी पड़ चुकी है इसलिए बात बढ़ाने से कोई फायदा नहीं है। राममोहन राय बोले- यह भारत के स्वाभिमान का मुद्दा है। अगर अभी इस भेदभाव का विरोध नहीं किया गया तो यह समस्या बढ़ती ही जाएगी। उन्होंने हिंदुस्तानियों से अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे बुरे बर्ताव के खिलाफ कानून बनवाने की ठान ली और बाद में अपने अथक प्रयासों से ऐसा कानून बनवाने में सफल भी हुए।

२५) शिक्षा और सौंदर्य- एक अत्यंत सुंदर और बलिष्ठ युवक था। सभी उसके शारीरिक सौष्ठव की खूब सराहना करते थे पर उसमें एक कमी यह थी कि वह बिल्कुल अनपढ़ था। वह अक्सर ऐसे स्थानों पर जाने से परहेज करता था, जहां शिक्षा से संबंधित कार्य होता था। लेकिन एक दिन उसे किसी आवश्यक कार्य से कचहरी जाना पड़ा। उसके पास संबंधित कागजी दस्तावेज थे, पर उन दस्तावेजों के बारे में कोई ज्ञान न था। वह कागजों के बारे में जानकारी लेने के लिए कचहरी के मुंशी के पास गया तो मुंशी ने उसे झिड़क दिया। कुछ देर वह शांत खड़ा रहा। कुछ देर बाद वह दोबारा मुंशी के पास कागज पढ़वाने के लिए गया तो मुंशी गुस्से में बोला, देखने में तो आकर्षक लगते हो लेकिन पढ़ना नहीं जानते। बिना पढ़ाई के तुम्हारे सुंदर शरीर का कोई महत्व नहीं है। लाइन में लगो। जब फुरसत मिलेगी तब तुम्हारे कागज पढूंगा। मुंशी की बात सुनकर वहां उपस्थित लोगों के चेहरों पर व्यंग्य भरी मुस्कान आ गई। युवक इस अपमान से अत्यंत लज्जित हुआ। खड़े-खड़े उसके पैर दुखने लगे। लगभग दो-ढाई घंटे बाद मुंशी ने उस युवक के कागजों को अहसान समझकर पढ़ा। युवक कचहरी से लौटते हुए एक संकल्प कर चुका था। उसने बिना एक क्षण भी गंवाए उसी समय से शिक्षा प्रारंभ

की और खूब मन लगाकर पढ़ने लगा। उसे हर क्षेत्र में असाधारण सफलता मिली। वह युवक और कोई नहीं, सर गणेश दत्त सिंह थे, जो ब्रिटिश शासन के अधीन बिहार-उड़ीसा प्रांत के मंत्री बने और एक शिक्षाविद के रूप में भी विख्यात हुए। इस तरह इन उपलब्धियों से उन्होंने अपने शारीरिक व्यक्तित्व को और निखार दिया।

२६) बेकार की लड़ाई- इंग्लैंड के सर वाल्टर रैले तलवारबाजी के लिए प्रसिद्ध थे। उनके सरल स्वभाव और सहजता की भी खूब प्रशंसा होती थी। उनकी ख्याति महारानी के कानों तक भी पहुंच चुकी थी। वह भी उनके प्रति श्रद्धा-भावना रखती थीं। उन दिनों यूरोप में द्वंद्व युद्ध का प्रचलन था। तलवारों से आमने-सामने द्वंद्व होता था और लाखों लोग उस लड़ाई को देखने के लिए जमा होते थे। एक बार एक युवक ने सर रैले को चुनौती देते हुए कहा, सुना है कि आपकी तलवारबाजी का जवाब नहीं। यदि आप ऐसा मानते हैं तो कृपया मेरे साथ युद्ध करें। युवक की बात सुनकर सर रैले बोले, युवक, महज मनोरंजन के लिए युद्ध करना समझदारी नहीं है। युद्ध से शांतिप्रियता अधिक अच्छी है। इसलिए व्यक्ति को शांत और सुखूपर्वक जीवन जीने में विश्वास करना चाहिए। सर रैले की बात सुनकर युवक व्यंग्य से मुस्कराकर बोला, आपमें हिम्मत ही नहीं है कि मुझसे तलवार लेकर भिड़ सकें। इसके बाद युवक ने सर रैले के मुंह पर थूक दिया। यह देखकर सब ओर अफरातफरी मच गई और लोग युवक को पकड़ने के लिए दौड़े। सर रैले ने सहजता से रूमाल निकालकर थूक पोंछा और युवक से बोले, यदि थूक पोंछने जितनी सरलता से मैं मनोरंजन के लिए की गई मानव हत्या का पाप पोंछने की ताकत रखता तो मैं तुम्हारे साथ तलवार लेकर भिड़ने में देरी नहीं करता। यह सुनते ही युवक के पैरों तले जमीन खिसक गई। वह सर रैले के पैर पकड़कर बोला, सर, आप महान हैं। आपकी सहनशीलता, करुणा, दया और न्यायप्रियता का जवाब नहीं। इसके बाद से वह युवक सर रैले का भक्त बन गया।

२७) शून्य पर सवाल- यह महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन के बचपन की घटना है। एक बार गणित की कक्षा में अध्यापक ने ब्लैकबोर्ड पर तीन केले बनाए और पूछा- यदि हमारे पास तीन केले हों और तीन विद्यार्थी, तो प्रत्येक विद्यार्थी के हिस्से में कितने केले आएंगे? एक बालक ने तपाक से जवाब दिया- प्रत्येक विद्यार्थी को एक-एक केला मिलेगा। अध्यापक ने कहा- बिल्कुल ठीक। भाग देने की क्रिया को अध्यापक समझाने ही जा रहे थे कि रामानुजन ने सवाल किया- यदि किसी भी बालक को कोई केला न बांटा जाए, तो क्या तब भी प्रत्येक को एक केला मिलेगा? यह सुनते ही सारे के सारे विद्यार्थी हो-हो करके हंस पड़े। उनमें से एक ने कहा- यह क्या मूर्खतापूर्ण सवाल है। इस बात पर अध्यापक ने मेज थपथपाई और बोले- इसमें हंसने की कोई बात नहीं है। मैं आपको बताऊंगा कि यह बालक क्या पूछना चाहता है। बच्चे शांत हो गए। वे कभी आश्चर्य से शिक्षक को देखते तो कभी रामानुजन को। अध्यापक ने कहा- यह बालक यह जानना चाहता है कि यदि शून्य को शून्य से विभाजित किया जाए, तो परिणाम क्या एक होगा? आगे समझाते हुए अध्यापक ने बताया कि इसका उत्तर शून्य ही होगा। उन्होंने यह भी बताया कि यह गणित का एक बहुत महत्वपूर्ण सवाल था तथा अनेक गणितज्ञों का विचार था कि शून्य को शून्य से विभाजित करने पर उत्तर शून्य होगा, जबकि अन्य कई लोगों का विचार था कि उत्तर एक ही होगा। अंत में इस समस्या का निराकरण भारतीय वैज्ञानिक भास्कर ने किया। उन्होंने सिद्ध किया कि शून्य को शून्य से विभाजित करने पर परिणाम शून्य ही होगा न कि एक।

२८) मिट्टी की पूजा- महान क्रांतिकारी भगत सिंह को उनकी चाची बचपन में देशभक्ति और बलिदान की कहानियां सुनाया करती थीं। उनके कोमल मन पर इन शौर्यगाथाओं ने गहरा प्रभाव डाला था। उन्होंने छोटी उम्र में ही ठान लिया था कि वे बड़े होकर देश की सेवा करेंगे। जालियांवाला बाग कांड का उन पर गहरा असर पड़ा। अमृतसर के जालियांवाला बाग में एक शांतिपूर्ण सभा पर जनरल डायर ने गोली चलवा दी थी। इसमें सैकड़ों लोग मारे गये। सारा देश हिल उठा। बारह वर्षीय भगत सिंह भी अमृतसर पहुंचे। उन्होंने देखा कि जालियांवाला बाग की मिट्टी खून से लाल हो गई है। वह गुस्से से कांप उठे। उन्होंने खून से सनी थोड़ी मिट्टी उठाकर शीशे की एक बोतल में भरी और घर लौट आए। घर पहुंचे तो उनकी बहन दौड़ती हुई उनके पास आई और बोली- आज तुमने इतनी देर कहां लगा दी? आओ खाना खा लो। भगत सिंह के चेहरे पर गहरे दुख और गुस्से का भाव था। वह बोले- आज मैं कुछ नहीं खाऊंगा। बहन ने घबराकर पूछा - क्यों क्या बात है? भगत सिंह ने कहा- अंग्रेजों ने हमारे बहुत सारे लोगों को गोलियों से भून दिया है। फिर वह बहन को बोतल दिखाते हुए बोले- इसमें देश के शहीदों का खून भरा है। फिर उन्होंने कुछ फूल उस बोतल के चारों तरफ रख दिए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। उन्होंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि देश के बेकसूर लोगों का खून बहानेवाले अंग्रेजों को भगाकर ही दम लूंगा। भगत सिंह बहुत दिनों तक उस मिट्टी की पूजा करते रहे, जो उन्हें याद दिलाती थी कि उन्हें एक दिन देश के लिए अपने जीवन का बलिदान करना है।

२९) गुलाम की सीख- बल्ख के बादशाह हजरत इब्राहिम अपनी उदारता के लिए जाने जाते थे। वे एक आम इंसान की तरह बेहद सादगी भरा जीवन जीते थे और अपने सहयोगियों को भी वैसा ही जीवन जीने के लिए प्रेरित करते थे। उनमें जरा भी अहंकार नहीं था। वे हर समय जनकल्याण के कार्यों में लगे रहते और जब भी फुरसत मिलती इबादत करते या विद्वानों के साथ विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श करते। वे हर समय हर किसी से कुछ नया सीखने के लिए तैयार रहते थे। उस समय गुलामी प्रथा प्रचलित थी। एक बार उन्होंने भी अपने निजी कार्यों में मदद के लिए एक गुलाम खरीदा। उन्होंने गुलाम से पूछा- बता तेरा नाम क्या है? गुलाम ने उत्तर दिया- जिस नाम से आप पुकारें। बादशाह ने फिर पूछा- तू क्या खाएगा? गुलाम ने कहा- जो आप खिलाएंगे। बादशाह ने थोड़ी हैरत से पूछा- तुझे कैसे कपड़े पसंद है? गुलाम ने जवाब दिया- जो आप पहनने को दें। बादशाह फिर बोले- तू क्या काम करेगा? गुलाम ने विनम्रतापूर्वक कहा- आप जो भी हुक्म करें। बादशाह दंग रह गए। उन्होंने इस तरह की बातें कभी नहीं सुनी थी। उन्होंने पूछा- आखिर तू चाहता क्या है? गुलाम ने सिर झुकाकर जवाब दिया- हुजूर। गुलाम की अपनी क्या चाह? बादशाह गद्दी से उतरकर उसे गले लगाते हुए बोले- आज से तुम मेरे उस्ताद हो। तुमने अनजाने में ही मुझे बहुत बड़ी सीख दी है। किसी मनुष्य को यह हक नहीं कि दूसरे को गुलाम बनाए। तेरी बातों से पला चला कि खुदा के साथ हमारा रिश्ता कैसा होना चाहिए। हमें ज्यादा पाने की चाह नहीं रखनी चाहिए। और पूरी तरह अपने आपको उसके हवाले कर देना चाहिए।

३०) संत की सीख- बाबा अनंतराम हर समय लोगों की सेवा में जुटे रहते थे। उनके लाख मना करने पर भी लोग उन्हें खूब चढ़ावा चढ़ाया करते थे। बाबा उसे गरीबों में बांट देते थे। एक दिन एक सेठ ढेर सारे हीरे-मोती उनके चरणों में रखते हुए बोला- बाबा, मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार करें। बाबा ने हीरे-मोतियों की ओर देखा तक नहीं और श्रद्धालुओं की समस्या का समाधान करते रहे। सेठ को क्रोध आ गया। वह बड़बड़ाते हुए बोला- यह बाबा तो ढोंगी किस्म का मालूम

होता है। हीरे-मोतियों को देखा तक नहीं, लेकिन मेरे जाते ही उन पर ऐसे टूटेगा जैसे कुछ देखा ही न हो। बाबा ने सेठ की बात सुन ली। उन्होंने बस इतना ही कहा कि सेठ जी आप कल आइएगा, कल आपको जवाब मिल जाएगा। अगले दिन सेठ फल व मिठाइयां लेकर वहां पहुंचा तो बाबा उसकी लाई मिठाइयों और फलों को एकटक देखते रहे। सेठ के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह धीरे से बोला- अजीब बात है, कल मैं महंगे हीरे-मोती लाया तो उन्हें देखा तक नहीं और मिठाइयों व फल पर बाबा की ऐसी नजर है जैसे आज तक कुछ खाया ही न हो। बाबा बोले- सेठजी, लोभी मनुष्य दूसरों को भी अपने जैसा ही समझता है। कल मैंने आपके हीरे-मोती नहीं देखे, तब भी आपने मुझे लोभी ठहराया और आज मामूली मिठाई व फल देखने पर भी लालची कहा। मैं एक मामूली संत हूं। हीरे-मोती, फल, मिठाई से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं समाज का दुख दूर करने में ही अपना जीवन सार्थक समझता हूं। बस आप लोगों का धन निर्धनों तक पहुंचा देता हूं। यह सुनकर सेठ लज्जित हो गया।

३१) नींव का पत्थर- लाल बहादुर शास्त्री नि:स्वार्थ भाव से जनता की सेवा करने में विश्वास करते थे। वे जनसेवा का कार्य बड़े उत्साह के साथ करते थे, पर उसके प्रचार-प्रसार में उनकी थोड़ी भी दिलचस्पी नहीं थी। एक दिन एक स्वयंसेवक ने उनसे पूछ ही लिया- भाई। आपको अखबारों में अपना नाम छपवाने से इतना परहेज क्यों है? शास्त्रीजी ने कहा- मित्र। आज भी मुझे लाला लाजपतराय के वे शब्द याद है। उन्होंने एक बार कहा था कि ताजमहल में दो तरह के पत्थर लगे हैं एक है बढ़ियां संगमरमर, जिससे मेहराब और गुबंद बने हैं। दुनिया उन्हीं पर मुग्ध होती है, उन्हीं की प्रशंसा करती है। दूसरे हैं नींव के पत्थर, जिनकी कोई प्रशंसा नहीं करता। जिनके बारे में कोई सोचना भी नहीं चाहता। यह कहकर शास्त्रीजी थोड़ा ठहरे, फिर उन्होंने विनम्रता से अपनी मंशा जाहिर की- और मित्र मैं नींव का ही पत्थर बने रहना चाहता हूं। मैं कुछ पाने की आशा में कोई काम नहीं कर रहा। मैं जो भी कर रहा हूं, उसे अपना फर्ज समझता हूं। राज्यसभा के एक सदस्य ने, जो उद्योगपति भी थे, एक बार शिकायत भरे लहजे में कहा- नेहरू स्मारक कोष में जमा किए जा रहे धन के बारे में शिकायतें सुनने में आ रही हैं। उस सांसद महोदय ने इसे एक घोटाला करार दिया और जोरदार शब्दों में इसकी निंदा की और जांच के लिए अपील की। शास्त्री जी को पूरा भरोसा था कि कोष में किसी तरह का घोटाला नहीं है और शिकायत केवल शिकायत के लिए की जा रही है। शास्त्रीजी उठ खड़े हुए और बोले- माननीय सदस्य को अपनी ओर से एक बड़ी राशि इस कोष में जमा करनी चाहिए। फिर उन्हें इस बात का सबूत मिल जाएगा कि उनके द्वारा दी गई राशि जमा की गई है या नहीं। यह बात सुनकर उस सज्जन को मानो सांप सूंघ गया। फिर उन्होंने यह बात कभी नहीं उठाई।

३२) बात के पक्के - बात उन दिनों की है, जब राममनोहर लोहिया बर्लिन में थे। वह अपने वचन के पक्के थे। जो एक बार कह देते, उस पर टिके रहते थे। एक रात वह अपने एक मित्र के साथ कार में घूमने निकले। लोहिया जी तेजी से गाड़ी चला रहे थे। सामने सड़क पर एक किसान बिना लाइट की मोटरगाड़ी में सब्जियां रखकर ला रहा था। लोहिया जी की गाड़ी किसान की गाड़ी से टकरा गई। किसान अपनी सब्जियां समेत सड़क पर जा गिरा। उसे चोट लगी और सिर से खून निकलने लगा। उसने लोहिया जी को भला-बुरा कहना शुरू कर दिया। वह बोला, तुम यहां से भागना नहीं, मैं अभी पुलिस बुलाकर लाता हूं। बहुत समझाने के बाद भी जब वह नहीं माना तो लोहिया जी बोले, ठीक है आप पुलिस को बुला

लाइए, मैं वचन देता हूं कि आप का यही पर इंतजार करूंगा। किसान पुलिस को बुलाने चला गया। उसके जाते ही लोहिया जी का मित्र बोला, मुसीबत टल गई है अब यहां से भाग चलो। पर लोहिया जी नहीं माने। मित्र के बहुत समझाने के बाद भी वह टस से मस नहीं हुए। थोड़ी देर बाद किसान पुलिस को भला बुरा कहते हुए लौट आया क्योंकि पुलिस ने उसके साथ आने से मना कर दिया था। लोहिया जी को वहीं खड़ा पाकर वह आश्चर्यचकित रह गया और बोला, मैं तो सोच रहा था कि अब तक तुम भाग चुके होंगे। लोहिया जी ने कहा, भागता कैसे? जब मैंने वचन दिया था कि आपके लौटने से पहले यहां से नहीं जाऊंगा तो मैं भाग कैसे सकता था? वह किसान लोहिया जी से बेहद प्रभावित हुआ और चुपचाप चला गया। लोहिया जी का मित्र यह देखकर दंग रह गया।

३३) अमृत की खोज- ईरान के बादशाह खुसरो के प्रधानमंत्री बुर्जोई राजचिकित्सक भी थे। वह नई औषधियों पर शोध करते और उन पर लिखे ग्रंथ भी पढ़ते रहते थे। एक बार उन्हें पता लगा कि भारत में किसी पर्वत पर संजीवनी नाम की बूटी होती है, जिससे मृत व्यक्ति जीवित हो जाता है और स्वस्थ व्यक्ति यदि उसका सेवन कर ले तो वह हमेशा स्वस्थ और जवान बना रहता है। बुर्जोई यह सुनकर रोमांचित हो उठे। उन्होंने अपने बादशाह से भारत आने की इजाजत ली। वह भारत आए और संजीवनी बूटी की खोज में लग गए। वह अनेक पर्वतों और जंगलों में गए लेकिन कहीं भी उन्हें संजीवनी नजर नहीं आई। एक दिन वह एक पेड़ की छांव में आराम कर रहे थे, तभी एक पंडित जी वहां पहुंचे। वह बुर्जोई को देखकर बोले, आप परदेसी मालूम होते हैं। बुर्जोई बोले, हां भई, मैं परदेसी ही हूं। मैंने सुना है कि आपके यहां संजीवनी बूटी के रूप में अमृत मिलता है। मैंने यहां बहुत तलाश किया लेकिन वह बूटी मुझे कहीं नजर नहीं आई। यह सुनकर पंडित जी मुस्कराने लगे और बोले, संजीवनी बूटी तो केवल हनुमान ही तलाश कर पाए थे। आज के समय में तो संजीवनी बूटी शायद न मिले लेकिन अमृत अवश्य मिल सकता है। हमारे यहां अमृत पंचतंत्र नामक ग्रंथ में है। जो उस ग्रंथ को समझ-बूझकर पढ़ लेता है, समझ लीजिए उसने अमृत ग्रहण कर लिया। वह ग्रंथ जीवन में अमृत घोल देता है और व्यक्ति जब तक जीवित रहता है सकारात्मक विचारों से भरा रहता है। बुर्जोई पंडित जी की बात से प्रभावित हुए। वह पंचतंत्र की एक प्रति लेकर अपने देश लौट गए।

३४) दोस्तों की कुश्ती- यह जर्मनी के एक स्कूल में साथ पढ़नेवाले दो दोस्तों की कहानी है। एक दिन स्कूल से छुट्टी के बाद दोनों दोस्त अपने-अपने घर को चले। रास्ते में एक अखाड़े पर उनकी नजर पड़ी। वे दोनों अखाड़े के अंदर गए और कुश्ती देखने लगे। फिर दोनों ने आपस में कुश्ती लड़ने की सोची। कुछ ही देर में जो कमजोर बालक था, वह हार गया। हारने के बाद वह कमजोर बालक बोला, अगर मैं भी अमीर घर में पैदा हुआ होता तो मुझे अच्छा और पौष्टिक भोजन खाने को मिलता, फिर मैं कमजोर नहीं होता। गरीबों का जीवन तो दो वक्त की रोटी के लिए तरसते हुए बीत जाता है। कमजोर बालक की बात सुनकर बलिष्ठ बालक मन ही मन बहुत दुखी हुआ। वह अपने दोस्त के गले में बांहें डालकर बोला, कोई बात नहीं। अब मैं तुम्हें भी अपने खाने में से कुछ हिस्सा दिया करूंगा। मित्र को यह कहकर उसने अपने मन में कुछ निश्चय किया। उस दिन के बाद वह बालक मन लगाकर पढ़ने लगा। वह पढ़ाई में अव्वल आने लगा और डॉक्टर बन गया। उसे मित्र की बात अब भी याद थी। उसने अन्य डॉक्टरों से अलग रास्ता चुना। उसने निर्बल और गरीबों की सहायता को अपना लक्ष्य बना लिया। दूसरों की मदद करते हुए उसने अपना वतन छोड़ दिया और अफ्रीका रवाना हो

गया। वहां उसने एक सेवाग्राम स्थापित किया और पीड़ित व असहाय लोगों की सेवा में जुट गया। उसकी नि:स्वार्थ सेवाओं की चर्चा पूरे विश्व में फैल गई और उसे नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वह डॉक्टर अल्बर्ट श्वाइत्जर थे, जिन्होंने बचपन के अपने उस मित्र की बात कभी नहीं भुलाई।

३५) फर्ज की हिफाजत- बात उन दिनों की है, जब महान देशभक्त सरदार वल्लभ भाई पटेल वकालत कर रहे थे। उनके पास हत्या का एक पेचीदा मुकदमा आया। वकील की एक छोटी सी गलती से ही आरोपी को फांसी की सजा हो सकती थी। काफी सोच-विचार के बाद जब सरदार पटेल को पूरा विश्वास हो गया कि आरोपी बेकसूर है, तो उन्होंने मुकदमे की पेरवी करना स्वीकार कर लिया और आरोपी को बचाने के लिए रात-दिन एक कर दिया। एक दिन इसी संदर्भ में अदालत में महत्वपूर्ण हुआ था। पटेल एकाग्रचित्त होकर बहस कर रहे थे। तभी अदालत में उनके नाम का एक तार आया। उन्होंने तार पढ़ा। एक क्षण के लिए उनके चेहरे पर गहरे दुख का भाव उभरा पर दूसरे ही क्षण सहज भाव से उन्होंने वह तार अपनी जेब में रख लिया और फिर से बहस करने लगे। आखिरकार बहस समाप्त हुई और अदालत का समय भी समाप्त हो गया। पटेल के एक साथी ने पूछा, उस तार में क्या लिखा था? उन्होंने जवाब दिया कि उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई है। तार में वही सूचना दी गई थी। जिसने भी यह बात सुनी, उसका मुंह खुला का खुला रह गया। एक दिन पटेल के एक करीबी मित्र ने साहस करके पूछ ही लिया, पत्नी की मृत्यु की खबर पाकर भी तुम किस तरह बहस करते रहे? पटेल बोले, और मैं क्या करता? वह तो इस दुनिया से चली ही गई थी, अगर बहस बीच में छोड़ता तो एक बेकसूर व्यक्ति का जीवन खतरे में पड़ जाता। उस समय मेरा फर्ज यही था कि अदालत न छोडूं और मैंने अपना फर्ज निभाया।

३६) ज्ञान का अभिमान - नालंदा विश्वविद्यालय का एक होनहार छात्र था कौशल। उसने धर्मशास्त्रों में विशेष योग्यता हासिल की थी, मगर उसे अपने ज्ञान पर अभिमान होने लगा था। नालंदा छोड़ते समय कौशल ने अपने गुरु से कहा, गुरुदेव, आपने जो भी ज्ञान मुझे दिया, मैंने उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया परंतु मेरी ज्ञान-पिपासा अभी शांत नहीं हुई है। मैं और अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं। उसके गुरु ने उसे पाटलिपुत्र के धर्माचार्य योगी महाराज के आश्रम में जाने को कहा। धर्माचार्य ने जब कौशल से उसके आने का प्रयोजन पूछा तो उसने कहा, गुरुदेव। मैं नालंदा से आपके पास और अधिक ज्ञान प्राप्त करने आया हूं। कृपया मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लें। धर्माचार्य कौशल से उसके अध्ययन के बारे में पूछने लगे। कौशल ने कहा, मुझे लगभग हर तरह का ज्ञान प्राप्त है, मैंने सभी धर्म ग्रंथों का कई बार अध्ययन किया है। मैंने शास्त्रार्थ में अच्छे-अच्छे विद्वानों को पराजित किया है। बातचीत के बाद धर्माचार्य ने अपने सहायक को गर्म दूध लाने के लिए कहा। सहायक एक पात्र में दूध तथा दो प्याले रखकर चला गया। धर्माचार्य एक प्याले में दूध डालने लगे। दूध का प्याला भर गया, पर उन्होंने दूध डालना बंद नहीं किया। दूध छलक कर प्याले से बाहर गिरने लगा। धर्माचार्य तब भी दूध डालते गए। कौशल ने हैरत से देखा और कहा, गुरुदेव, यह आप क्या कर रहे हैं? दूध का प्याला तो भर चुका है। अब इसमें और दूध नहीं समाएगा। कौशल की बात सुनकर धर्माचार्य ने दूध डालना बंद कर दिया, फिर मुस्कुराकर बोले, वत्स, जिस प्रकार दूध भरने के लिए खाली प्याला चाहिए, उसी प्रकार ज्ञान ग्रहण करने के लिए भी खुला मन आवश्यक है। मन में ग्रहणशीलता होनी चाहिए। तुमने अपने ज्ञान के बारे में अपने मन में अनेक भ्रम

एवं पूर्वाग्रह भर रखे हैं। ऐसे में मेरा दिया हुआ अतिरिक्त ज्ञान कहां समाएगा? कौशल का सारा अभिमान चूर-चूर गया।

३७) दोषी की तलाश - फादर जोनाथन अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध थे। वह हर समय हर किसी की मदद के लिए तैयार रहते थे। एक दिन उनके घर से उनका चांदी का कीमती फूलदान गायब हो गया। उनकी पत्नी कैरोलिन ने सोचा कि अगर बाहर का कोई चोर होता तो वह जरूर ज्यादा चीजें ले जाता। यह जरूर उनकी नौकरानी सामंथा का काम होगा। कैरोलिन ने अपने मन की बात फादर को बताई पर उन्होंने इसे गंभीरता से नहीं लिया। उन्होंने कैरोलिन से इसे भूल जाने को कहा पर वह इस मामले को भूलने के लिए तैयार नहीं थीं। उन्होंने सामंथा से इस बारे में सख्ती से पूछताछ की पर उसने साफ कहा कि उसने चोरी नहीं की है। फिर भी कैरोलिन का मन शांत नहीं हुआ। उन्होंने मामले को धर्म न्यायालय में ले जाना तय किया ताकि धर्म गुरुओं के सामने सामंथा गुनाह कबूल कर ले। कैरोलिन को तैयार होते देख फादर ने भी अपना चोगा उठाया और चर्च जाने के लिए तैयार होने लगे। उन्हें तैयार देख कैरालिन ने कहा- आप रहने दीजिए। वहां सबसे निपटने के लिए मैं ही काफी हूं। इस पर फादर बोले- माना कि तुम्हें हर चीज की जानकारी है और तुम वहां ढंग से वाद-विवाद कर लोगी पर सामंथा जो अनपढ़ है और अव्यावहारिक भी। वह ऐसे मामलों में कभी पड़ी नहीं। मैं उसका पक्ष रखूंगा। वह दोषी हुई तो उसे सजा मिलेगी और अगर निर्दोष हुई तो मैं उसे बचाने में कोई कसर बाकी नहीं रखूंगा। सामंथा के प्रति अपने पति के इस विश्वास को देखकर कैरोलिन ने अपना इरादा बदल दिया।

३८) अनुशासन का पाठ- गुरु अंबुजानंद के पास अनेक शिष्य शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। उनका आश्रम लंबे समय से चल रहा था। अब चूंकि अंबुजानंद काफी वृद्ध हो गए थे, गुरुकुल चलाना उनके लिए कठिन हो रहा था। वह अपने शिष्यों में से ही किसी एक को गुरुकुल का सारा कार्यभार सौंपना चाहते थे। एक दिन उन्होंने अपने अठारह सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों को अपने पास बुलाया। उन्होंने उनसे कहा, आप सभी प्रतिभाशाली, मेहनती और ईमानदार हैं। यदि मैं आपको शिक्षा के लिए किसी विशेष क्षेत्र में नियुक्त करना चाहूं तो आप कौन-कौन से क्षेत्र को चुनना चाहेंगे? यह सुनकर सभी शिष्य कुछ देर सोचते रहे और फिर सत्रह विद्यार्थियों ने अपने-अपने मनपसंद क्षेत्रों के नाम गुरु को बता दिए। अठारहवां शिष्य आयुष अभी तक कुछ सोच ही रहा था। उसे चुप देखकर गुरु ने पूछा, बेटा आयुष, तुमने अपने लिए किसी क्षेत्र का चुनाव नहीं किया? गुरु की बात सुनकर आयुष ने सिर झुकाकर कहा, गुरुजी, मैंने आपसे ही शिक्षा ग्रहण की है। मैं आपके द्वारा सीखी गई शिक्षा को जन-जन तक फैलाना चाहता हूं। इसके लिए मुझे किसी क्षेत्र विशेष का चुनाव करने की आवश्यकता नहीं है। मैं हर क्षेत्र में आपके द्वारा प्रदान की गई शिक्षाओं को दूसरों तक पहुंचाना चाहूंगा। हालांकि क्षेत्र से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है आपके दिए गए मूल्य या संस्कार का प्रसार, जो शास्त्रों से अलग है। मैं चाहता हूं कि लोग उसे जानें ताकि वे नैतिक दृष्टि से भी श्रेष्ठ हों। मात्र पुस्तकीय ज्ञान से कुछ नहीं होनेवाला है। आपने जो अनुशासन का पाठ हमें पढ़ाया है, उसे तो मैं विशेष रूप से सिखाना चाहूंगा। ज्ञान पाने के लिए व्यक्तित्व को एक खास सांचे में ढालना पड़ता है। आपने जिस तरह हमें ढाला है, मैं भी दूसरों को ढालना चाहूंगा। आयुष की बात सुनकर गुरु अंबुजानंद का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उन्होंने उसे गले से लगाकर कहा, बेटा, आज से यह गुरुकुल तुम्हारी देखरेख में ही चलेगा।

३९) नदी और सागर - सुखदेव ऋषि के आश्रम में कई शिष्य रहते थे। उनमें अनुज नामक शिष्य काफी तेज था।

धीरे-धीरे वह स्वयं को अन्य शिष्यों से श्रेष्ठ मानकर दूसरों को हीन समझने लगा। ऋषि उसके अंदर छिपे अहं को समझ गए और उसे एक दिन अपने साथ एक सागर के पास ले गए। विशालकाय सागर अत्यंत आकर्षक दिख रहा था। उसकी लहरें जब अठखेलियां करतीं तो मन प्रसन्न हो जाता। ऋषि ने अनुज से सागर का पानी पीने के लिए कहा। अनुज ने जैसे ही पानी मुंह में डाला, वैसे ही उसने बुरा सा मुंह बनाकर पानी बाहर निकाल दिया और बोला, गुरुजी यह पानी तो खारा है। मेरा मुंह का स्वाद कसैला हो गया। ऋषि उसकी बात सुनकर मुस्कराए। वह उसे अपने साथ लेकर आगे बढ़ते रहे। आगे एक छोटी सी नदी आई। ऋषि ने अनुज से नदी का जल पीने के लिए कहा। अनुज ने जैसे ही जल मुंह में डाला, वैसे ही उसके मन को अत्यंत तृप्ति मिली। वह बोला, गुरुजी, नदी के जल ने मुंह का स्वाद बढ़ा दिया है। इतना ठंडा और मीठा जल बहुत कम देखने को मिलता है, जबकि सागर का पानी एकदम खारा था। उसके ऐसा ही कहते ही ऋषि बोले, पुत्र, देखा तुमने, छोटे-बड़े से कुछ नहीं होता। तुमने सागर के अहं को देखा। वह सब कुछ अपने में ही भरे रहता है। लेकिन इसका जल खारा होता है। जबकि छोटी सी नदी जो पाती है उसका अधिकांश बांटती है, इसलिए उसके जल में मिठास है। व्यक्ति को बड़े होने पर भी अहं को अपने पास नहीं फटकने देना चाहिए अन्यथा उसका हाल भी सागर की तरह ही होता है। अनुज को अपनी गलती का अहसास हो गया। उसने अपने भीतर से अपना अहं निकाल फेंका।

४०) ज्ञान के रास्ते पर - गौतम बुद्ध के प्रवचन में एक व्यक्ति रोज आता था और बड़े ध्यान से उनकी बातें सुनता था। बुद्ध अपने प्रवचन में लोभ, मोह, द्वेष और अहंकार छोड़ने की बात करते थे। एक दिन वह व्यक्ति बुद्ध के पास आकर बोला- मैं लगभग एक महीने से आपके प्रवचन सुन रहा हूं। पर क्षमा करें, मेरे ऊपर उनका कोई असर नहीं हो रहा है। इसका कारण क्या है? क्या मुझमें कोई कमी है? बुद्ध ने मुस्कराकर पूछा- यह बताओ, तुम कहां के रहनेवाले हो? उस व्यक्ति ने कहा- श्रावस्ती। बुद्ध ने पूछा- श्रावस्ती यहां से कितनी दूर है? उसने दूरी बताई। बुद्ध ने पूछा- तुम वहां कैसे जाते हो? व्यक्ति ने कहा- कभी घोड़े पर तो कभी बैलगाड़ी में बैठकर जाता हूं। बुद्ध ने फिर प्रश्न किया- कितना समय लगता है? उसने हिसाब लगाकर समय बताया। बुद्ध ने कहा- यह बताओ क्या तुम यहां बैठे-बैठे श्रावस्ती पहुंच सकते हो? व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा- यहां बैठे-बैठे भला वहां कैसे पहुंचा जा सकता है। इसके लिए चलना तो पड़ेगा या किसी वाहन का सहारा लेना पड़ेगा। बुद्ध बोले- तुमने सही कहा। चलकर ही लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है। इसी तरह अच्छी बातों का प्रभाव भी तभी पड़ता है जब उन्हें जीवन में उतारा जाए। उसके अनुसार आचरण किया जाए। कोई भी ज्ञान तभी सार्थक है जब उसे व्यावहारिक जीवन में उतारा जाए। मात्र प्रवचन सुनने या अध्ययन करने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। उस व्यक्ति ने कहा- अब मुझे अपनी भूल समझ में आ रही है। मैं आपके बताए मार्ग पर आज से ही चलूंगा।

४१) सुधार का तरीका - इग्लैंण्ड में होमरलेन नामक एक विद्वान थे। उन्होंने असहाय और अनाथ बालकों के लिए रिपब्लिकन नाम से एक आश्रम खोला। एक दिन पुलिस ने एक ऐसे बालक को पकड़ा जो कई बार चोरी कर चुका था। होमरलेन को जब पता चला तो वह उसे अपने आश्रम ले आए। आश्रम में आते ही उसने उत्पात मचाना शुरू कर दिया। वह वहां रह रहे अन्य लड़कों से लड़ता। उनकी किताबें फाड़ देता। उसकी हरकतों से परेशान होकर आश्रम के प्रबंधक ने होमरलेन से उसकी शिकायत की, यह लड़का दूसरे लड़कों को भी बिगाड़ देगा। इसको आश्रम में रखना ठीक नहीं है।

होमरलेन ने कहा, मुझे इस पर दया आती है। अगर यह यहां रहकर भी नहीं सुधरा तो फिर कहां जाकर सुधरेगा? इसका तो सारा जीवन ही बर्बाद हो जाएगा। खैर, इसे तुम यहां नहीं रख सकते हो तो मुझे दो, मैं इसे अपने पास रखुंगा। ऐसा कहकर होमरलेन उस बालक को अपने घर ले आए। घर पर भी बालक का वही हाल रहा। वह घर की कीमती चीजों को तोड़ने-फोड़ने लगा। एक दिन उसने एक साथ कई चीजों को तोड़ दिया। फिर भी होमरलेन ने गुस्सा नहीं किया। उन्होंने एक घड़ी ली और उसे उस लड़के को देते हुए कहा, बेटा तुमने तो हर चीज तोड़ डाली। पर लगता है तुम इस घड़ी को नहीं देख पाए। लो इसे भी तोड़ डालो। इस वाक्य का लड़के पर गहरा असर हुआ। उसने माफी मांगते हुए कहा, आज के बाद मैं शिकायत का कोई मौका नहीं दूंगा। उस दिन से उस लड़के का जीवन पूरी तरह बदल गया।

४२) हाथों की शोभा- ईश्वरचंद्र विद्यासागर की मां हर किसी की मदद के लिए हमेशा तैयार रहती थीं। वह इस बात की परवाह नहीं करती थीं कि घर में पैसे हैं या नहीं। तंगी के दिनों में भी वह अपनी चिंता छोड़ दूसरों का ज्यादा ख्याल रखती थीं। जब विद्यासागर जी अच्छे पद पर नियुक्त हो गए और घर की आर्थिक स्थिति सुधरी, तब भी उनके रहन-सहन में कोई बदलाव नहीं आया। उन्होंने अपनी सादगी नहीं छोड़ी। एक दिन विद्यासागर जी के एक मित्र घर पर आए। मित्र ने विद्यासागर जी की मां को प्रणाम किया। वह उनके सहज-सरल स्वभाव को देखकर दंग रह गए। उन्होंने पूछा, माताजी, यदि आप आज्ञा दें तो आपसे एक प्रश्न करने की जिज्ञासा हो रही है। माताजी सहज मुस्कान के साथ बोली, बेटा, पूछो क्या जानना चाहते हो? मित्र बोला, माताजी, अब तो आपके बेटे बड़े अधिकारी बन गए हैं। उनका समाज में काफी नाम और सम्मान है। ऐसे में यदि उनकी मां मामूली हाथी दांत की चूड़ियां पहने तो यह थोड़ा अटपटा लगता है। अब तो आपको सोने के गहने पहनने चाहिए। यह सुनकर विद्यासागर जी की मां जोर से हंस पड़ी और बोली पुत्र, विद्यासागर की मां के हाथ की शोभा न तो ये चूड़ियां हैं, न सोने-चांदी के गहने। इन हाथों की शोभा तो सदा गरीबों की सेवा करते रहना ही है। उनका ऐसा जवाब सुनकर मित्र उनके पैर छूकर बोले, माताजी, आज मुझे विद्यासागर के सद्गुणों और परोपकारी स्वभाव का रहस्य पता चल गया है। जिनकी माता सद्गुणों की खान हो, उनका बेटा सदा ही अच्छे गुणों से भरपूर होगा। आप धन्य हैं जिन्होंने स्वयं के साथ ही अपने पुत्र को भी लायक बनाया है। तभी विद्यासागर जी आ गए और अपने मित्र से बोले, मैं स्वयं चाहता हूं कि मेरे जैसी मां हर भारतवासी के घर में हो, जो स्वयं के साथ-साथ अपनी संतान को भी सही रास्ता दिखाए।

४३) ईश्वर का दोस्त - एक संत ने एक रात स्वप्न देखा कि उनके पास एक देवदूत आया है। देवदूत के हाथ में एक सूची थी। उसने कहा, यह उन लोगों की सूची है, जो प्रभु से प्रेम करते हैं। संत ने कहा, मैं भी प्रभु से प्रेम करता हूं। मेरा नाम तो इसमें अवश्य होगा। देवदूत बोला, नहीं, इसमें आप का नाम नहीं है। संत उदास हो गए। फिर उन्होंने पूछा, इसमें मेरा नाम क्यों नहीं है? मैं ईश्वर से ही प्रेम नहीं करता बल्कि गरीबों से भी प्रेम करता हूं। मैं अपना अधिकतर समय निर्धनों की सेवा में लगाता हूं। उसके बाद जो समय बचता है उसमें प्रभु का स्मरण करता हूं। तभी संत की आंख खुल गई। दिन में वह स्वप्न को याद कर उदास थे। एक शिष्य ने उदासी का कारण पूछा तो संत ने स्वप्न की बात बताई और कहा, लगता है सेवा करने में कहीं कोई कमी रह गई है। दूसरे दिन संत ने फिर वही स्वप्न देखा। वही देवदूत फिर उनके सामने खड़ा था। इस बार भी उसके हाथ में कागज था। संत ने बेरुखी से कहा, अब क्यों आए हो मेरे पास? मुझे प्रभु से कुछ नहीं

चाहिए। देवदूत ने कहा, आपको प्रभु से कुछ नहीं चाहिए, लेकिन प्रभु का तो आप पर भरोसा है। इस बार मेरे हाथ में दूसरी सूची है। संत ने कहा, तुम उनके पास जाओ जिनके नाम इस सूची में हैं। मेरे पास क्यों आए हो? देवदूत बोला, इस सूची में आपका नाम सबसे ऊपर है। यह सुनकर संत को आश्चर्य हुआ। बोले, क्या यह भी ईश्वर से प्रेम करनेवालों की सूची है। देवदूत ने कहा, नहीं, यह वह सूची है जिन्हें प्रभु प्रेम करते हैं। ईश्वर से प्रेम करनेवाले तो बहुत हैं, लेकिन प्रभु उसको प्रेम करते हैं जो गरीबों से प्रेम करते हैं। प्रभु उसको प्रेम नहीं करते जो दिन रात कुछ पाने के लिए प्रभु का गुणगान करते रहते हैं।

४४) एक ही लक्ष्य- एक व्यक्ति ने एक साधु से पूछा, क्या मोक्ष-प्राप्ति के लिए घर छोड़ना आवश्यक है? साधु ने कहा, बिल्कुल आवश्यक नहीं है। घर छोड़ना यदि आवश्यक होता तो जनक गृहस्थ रहते हुए भी विदेह कैसे हो जाते? कुछ दिनों के बाद दूसरे व्यक्ति ने उस साधु से यही प्रश्न किया। साधु ने उत्तर दिया, मोक्ष के लिए घर-द्वार छोड़ना अत्यंत आवश्यक है। यदि घर का परित्याग किए बिना ही मोक्ष मिल जाता तो सुखदेव जैसे संन्यासी यहां कैसे पैदा होते? जैनों में, बौद्धों में, वैदिकों में जो हजारों-हजार संन्यासी बने हैं, मुनि बने हैं, भिक्षु बने हैं, वे क्यों भटकते जंगलों में? क्यों अनगिनत कष्ट सहते? एक बार संयोगवश दोनों व्यक्ति कहीं मिल गए। पहले ने कहा, महाराज ने कहा है कि मोक्ष पाने के लिए घर छोड़ना जरूरी नहीं है। दूसरे ने कहा, तुम झूठ बोल रहे हो। मैंने भी पूछा था उनसे। उन्होंने कहा था कि मोक्ष पाने के लिए घर छोड़ना बहुत जरूरी है। दोनों में विवाद हो गया। दोनों अपनी-अपनी बातों पर अड़े थे। उन्हें कोई समाधान नहीं मिल रहा था। दोनों उसी साधु के पास आए। बोले, महाराज। आपने हमें लड़ा दिया। प्रश्न एक था पर आपने उसके दो उत्तर दिए, वे भी एक-दूसरे से उलटे। साधु मुस्कुराया फिर उसने पहले व्यक्ति से कहा, देखो, तुम्हारी मनोवृत्ति घर छोड़ने की नहीं थी। तुम घर छोड़कर साधना नहीं करना चाहते थे। इसलिए मैंने कहा कि मोक्ष प्राप्ति के लिए घर छोड़ना जरूरी नहीं है। तुम घर में रहकर भी साधना कर सकते हो। फिर साधु ने दूसरे व्यक्ति से कहा, तुम मानसिक तौर पर घर छोड़ने के लिए तैयार हो गए थे, इसलिए मैंने कहा था कि मोक्ष प्राप्ति के लिए घर छोड़ना आवश्यक है। जिसकी जैसी मनोदशा थी, उससे मैंने वही कहा। इसमें कठिनाई ही क्या है। लक्ष्य दोनों का एक ही है- मोक्ष प्राप्ति। दोनों अपने-अपने मार्ग से इसे पा सकते हो।

४५) गुरु और तीन शिष्य - एक गुरु थे। वह जंगल में कुटिया के अंदर रहते थे। उनके यहां तीन शिष्य शिक्षा ग्रहण करने आये। उन तीनों को गुरु शिक्षा दिया करते थे, वर्षों पश्चात अब तीनों शिष्यों की परीक्षा ली जाये, ताकि पता तो चले कि किस शिष्य की परीक्षा पूर्ण हुई है।

दूसरे दिन गुरु ने तीनों शिष्यों को बुलाया और कहा कि मैं तुम तीनों को एक-एक कबूतर देता हूं और तुम लोग उसे मारकर लेकर आओ और याद रहे इसको मारते समय कोई न देखे? ऐसी जगह पर मारना, तीनों अलग-अलग दिशा में जाना, पहला शिष्य घोर जंगल में गया और देखा कि इधर तो कोई प्राणी नहीं दिख रहा है, क्यों न इधर ही मार दिया जाये और उसने उस कबूतर को मार डाला। दूसरे शिष्य ने सोचा कि इसको बंद कमरे में अंधेरे में मारना चाहिए ताकि मारकर मैं गुरु के पास चलूं जल्दी से और कोई नहीं देख रहा है और दूसरे शिष्य ने भी कबूतर का काम तमाम कर दिया। अब तीसरा शिष्य रात के अंधेरे में कबूतर को जंगल के अंदर मार रहा था तब उसे एकाएक याद आया कि इधर कोई नहीं देख रहा है, इस रात के अंधेरे में, परंतु भगवान तो देख ही रहा है। उससे मारने का राज छिपा नहीं है। उसने मारना छोड़ उस

कबूतर को जिन्दा गुरुदेव के पास लेकर गया। पहला और दूसरा शिष्य दोनों खड़े थे और वहां गुरु ने कहा पहलेवाले शिष्य को? क्यों शिष्य। मारते वक्त किसी ने देखा नहीं, उस शिष्य ने कहा गुरुदेव किसी ने नहीं देखा मैं उस समय बिल्कुल अकेला था और मार दिया उस कबूतर को। दूसरे ने गुरुदेव से कहा कि गुरुदेव मैंने रात के अंधेरे में बंद कमरे में उस कबूतर को मार दिया। तीसरे ने कहा कि गुरुदेव जब मैं मार रहा था तो मुझे याद आया कि कोई नहीं देख रहा है, परंतु भगवान तो देख रहा है। भगवान चाहे रात हो, चाहे दिन हो वो तो देखता है कि कौन प्राणी क्या कर रहा है, इसलिए मैंने उस कबूतर को छोड़ दिया, मारा नहीं। तब गुरुदेव ने कहा कि तीसरे शिष्य की शिक्षा पूर्ण हुई, वह अपने घर जा सकता है और तुम दोनों शिष्यों की शिक्षा अपूर्ण है। तीसरा शिष्य इस परीक्षा में उत्तीर्ण है और तुम दोनों असफल हो?

४६) निंदा और प्रशंसा - बहुत पुरानी कथा है। किसी राज्य में एक मूर्तिकार रहता था। उसकी जीवंत मूर्तियों को देख कर लोग दांतों तले उंगली दबा लेते थे। उसने अनेक राजाओं व महान हस्तियों की ऐसी मूर्तियाँ बनाई थीं कि वे स्वयं भी धोखा खा जाते थे कि मूर्तियों का अस्तित्व असली है या स्वयं उनका। धीरे-धीरे मूर्तिकार की ख्याति दूर-दूर तक फैलती गई। एक दिन एक साधु उसके पास आया और बोला, पुत्र, अब केवल तुम्हारी एक माह की आयु शेष है। तुम चाहे कोई भी युक्ति आजमाओ तुम्हें मौत के मुंह में जाने से कोई नहीं रोक सकता। यह कहकर साधु चला गया। साधु के जाते ही मूर्तिकार सोच में पड़ गया। आखिरकार उसने मौत से बचने की एक तरकीब सोच ही ली। उसने अपनी कई मूर्तियाँ बनाईं। नियत दिन यमदूत के आते ही वह स्वयं उन मूर्तियों के बीच मूर्तिवत खड़ा हो गया। यमदूत हैरान रह गया। वह असली मूर्तिकार को मूर्तियों के बीच में से पहचान ही नहीं पा रहा था किंतु मूर्तिकार के प्राण तो लेने ही थे, इसलिए यमदूत ने युक्ति से काम लिया। उसने मूर्तियों के करीब जाकर उनमें दोष न होते हुए भी दोष निकालने शुरू कर दिए। वह तरह-तरह से मूर्तिकार की आलोचना करने लगा। मूर्तियों में कमियां सुनकर असली मूर्तिकार की भौंहें टेढ़ी-मेढ़ी होने लगीं। इस तरह यमदूत ने असली मूर्तिकार को पहचान लिया और इसके बाद कुछ मूर्तियों की प्रशंसा शुरू कर दी। अपनी तारीफ सुनकर मूर्तिकार के चेहरे पर चमक व प्रसन्नता के भाव आ गए। इसके बाद यमराज ने असली मूर्तिकार का हाथ पकड़ा और बोला, मानवीय भावों में निंदा और प्रशंसा के कारण ही मनुष्य मृत्यु को नहीं जीत पाता और जब तक जीवन है तब तक उसमें निंदा और प्रशंसा के भाव आते ही रहेंगे और मृत्यु का सिलसिला भी अनवरत चलता ही रहेगा। यह कहकर यमदूत मूर्तिकार को अपने साथ लेकर चला गया।

४७) सेवा और धर्म- एक बार गांधीजी सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने काशी आए। वहां कई विद्वान और संत भी आए हुए थे। उन सबने गांधीजी की चर्चा सुन रखी थी और उनसे मिलने को बेहद उत्सुक थे। वे उनसे अनौपचारिक बातचीत में उनके निजी जीवन के कई पहलुओं को जानना चाहते थे। सम्मेलन खत्म होने के बाद एक संत ने गांधीजी से पूछा, आप कौन सा धर्म मानते हैं और भारत के भावी धर्म का क्या स्वरूप होगा? गांधीजी ने कहा, सेवा करना ही मेरा धर्म है और मेरा मानना है कि आप लोगों को भी इस धर्म को अपनाना चाहिए। संत ने फिर पूछा, मगर सेवा तो सभी करते है। तो क्या यह मान लिया जाए कि पूजा- पाठ, धर्म-कर्म सब मिथ्या है। इसको छोड़ देना चाहिए। गांधीजी ने कहा, मेरा मतलब यह नहीं कि पूजा पाठ छोड़ दिए जाए। मन की शांति के लिए यह सब करना भी जरूरी है। पर यदि मेरे लिए लेटे-

लेटे चरखा चलाना संभव हो और मुझे लगे कि इससे ईश्वर पर मेरा चित्त एकाग्र होने में मदद मिलेगी तो मैं जरूर माला छोड़कर चरखा चलाने लगूंगा। चरखा चलाने की शक्ति मुझमें हो और मुझे यह चुनाव करना हो कि माला फेरूं या चरखा चलाऊं, तो जब तक देश में गरीबी और भुखमरी है, तब तक मेरा निर्णय निश्चित रूप से चरखे के पक्ष में होगा और उसी को मैं अपनी माला बना लूंगा। चरखा, माला और राम नाम सब मेरे लिए एक ही हैं। वे सब एक ही उद्देश्य पूरा करते हैं। वह है मानव की सुरक्षा करना, अपनी रक्षा करना। मैं सेवा का पालन किए बिना अहिंसा का पालन नहीं कर सकता और अहिंसा धर्म का पालन किए बिना मैं सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता और आप तो मानते होंगे कि सत्य के सिवा दूसरा कोई धर्म भी नहीं है। सभी संतों ने गांधीजी के विचारों से सहमति जताई और उसी रास्ते पर चलने का संकल्प किया।

४८) राजा और संतरी - एक राजा ने सुचारू रूप से राज्य संचालन के लिए कुछ नियम बना रखे थे, जिनका पालन सभी के लिए अनिवार्य था। उल्लंघन की दशा में दंड का प्रावधान भी था। इन्हीं नियमों में से एक नियम यह था कि सूर्यास्त के बाद राजधानी काद्वार किसी के लिए भी नहीं खुलेगा। इसलिए राजमहल के लोग भी अपना कार्य समाप्त कर सूर्यास्त से पहले ही आ जाते थे। एक बार राजा किसी कारणवश पड़ोसी राजा के यहां गया और लोटते समय काफी देर हो गई। सूर्यास्त हो चुका था। जब राजा राजधानी के द्वार तक पहुंचा तो द्वार बंद हो चुका था। राजा के मंत्री ने संतरी को द्वार खोलने के लिए कहा। लेकिन संतरी बोला- मैं अपने राजा की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा। मंत्री के बार-बार आग्रह करने पर भी संतरी ने द्वार नहीं खोला। विवश होकर राजा और उसके साथ गए मंत्रियों को पास के किसी गांव में रात बितानी पड़ी। राजा ने सुबह संतरी को दरबार में बुलाया। सभी को लगा कि आज तो संतरी को फांसी की सजा सुनाई जाएगी। राजा ने संतरी से पूछा- तुमने रात को राजधानी का द्वार क्यों नहीं खोला? संतरी बिना डरे बोला- मैं तो आपके द्वारा बनाए गए नियम का पालन कर रहा था। मैं मानता हूं कि अपने कर्त्तव्य पालन में सदैव ईमानदारी और सजगता बरतनी चाहिए। मुझे इसके लिए जो भी दंड दिया जाएगा मैं स्वीकार करूंगा। राजा संतरी के पास आकर बोला- तुम दंड के नहीं, पुरस्कार के अधिकारी हो। कोई भी व्यवस्था तुम्हारे जैसे कर्त्तव्यनिष्ठ कर्मचारियों से ही चलती है।

४९) कला का ज्ञान - एक युवा ब्रह्मचारी ने कई देशों में घूमकर अनेक कलाएं सीखीं। एक देश में उसने एक व्यक्ति से बाण बनाने की कला सीखी। कुछ दिनों के बाद वह अन्य देश की यात्रा पर गया। वहां उसने जहाज बनाने की कला सीखी क्योंकि वहां बहुतायत में जहाज बनाए जाते थे। फिर वह किसी तीसरे देश में गया और कई ऐसे लोगों के संपर्क में आया, जो गृह निर्माण करते थे। यहां उसने गृह निर्माण कला सीखी। इस प्रकार वह सोलह देशों में गया और कई कलाओं का ज्ञाता होकर लौटा। अपने घर वापस आकर वह अहंकार में भरकर लोगों से पूछता- इस संपूर्ण पृथ्वी पर मुझ जैसा कोई गुणी व्यक्ति है? लोग हैरत से उसे देखते। धीरे-धीरे यह बात बुद्ध तक भी पहुंची। बुद्ध उसे जानते थे। वह उसकी प्रतिभा से भी परिचित थे। वह इस बात से चिंतित हो गए कि कहीं उसका अभिमान उसका नाश न कर दे। एक दिन वे एक भिखारी का वेश बनाकर हाथ में भिक्षापात्र लिए उसके सामने गए। ब्रह्मचारी ने बड़े अभिमान से पूछा- कौन हो तुम? बुद्ध बोले- मै। आत्मविजय का पथिक हूं। ब्रह्मचारी ने उनके कथन का अर्थ जानना चाहा तो वे बोले- एक मामूली हथियार

निर्माता भी बाण बना लेता है, नौ चालक जहाज पर नियंत्रण रख लेता है, गृह निर्माता घर भी बना लेता है। केवल ज्ञान से ही कुछ नहीं होने वाला है, असल उपलब्धि है निर्मल मन। अगर मन पवित्र नहीं हुआ तो सारा ज्ञान व्यर्थ है। अहंकार से मुक्त व्यक्ति ही ईश्वर को पा सकता है। यह सुनकर ब्रह्मचारी को अपनी भूल का अहसास हो गया।

५०) लिंकन की उदारता - राष्ट्रपति बनने से पहले ही अब्राहम लिंकन पूरे अमेरिका में लोकप्रिय हो गए थे। अच्छा वक्ता होने के कारण उनको व्याख्यान के लिए देश की विभिन्न जगहों से निमंत्रण मिलते रहते थे। एक बार एक बड़े शहर में लिंकन का व्याख्यान चल रहा था। सभागार खचाखच भरा था। संयोग से श्रोताओं के बीच लिंकन के गांव का एक गरीब किसान भी बैठा था। सभा समाप्त होते ही किसान मंच पर जा चढ़ा। सभागार के लोग उसे आश्चर्य से देखने लगे। उसने मंच पर पहुंचकर लिंकन के कंधे पर हाथ रखा और कहा- अरे अब्राहम, तू तो बड़ा आदमी बन गया रे। तुम्हें सुनने को तो पूरा शहर ही उमड़ पड़ा है। शाबाश तूने तो पूरे गांव का नाम रोशन कर दिया। तभी आयोजनों की नजर उस किसान पर पड़ी। वे समझ नहीं पाए कि यह कौन है और कैसे मंच पर चढ़ गया। वे उसे मंच से उतारने के लिए आगे बढ़े। तभी लिंकन ने किसान का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा- अरे, आप यहां। ये तो मेरा सौभाग्य है कि आप मेरा व्याख्यान सुनने आए और गांव में सब ठीक है न? फिर लिंकन उसे एक कोने में ले गए और उससे अपने गांव के लोगों के बारे में विस्तार से पूछने लगे। लिंकन से मिलने की चाह रखनेवाले कई लोग खड़े रहे और बातचीत खत्म होने का इंतजार करते रहे। किसान ने लौटते हुए कहा- तुमने मुझे जो सम्मान दिया है वह मेरे लिए जीवन की अनमोल निधि बन गया है। फिर लिंकन उसे बाहर तक छोड़ने आए। लोगों ने लिंकन की सहजता और उदारता की प्रशंसा की।

५१) अनाथों के साथ - ब्रिटेन के शिक्षाविद् मिस्टर बूथ ने सेवानिवृत्त होने के बाद ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन लगाने का फैसला किया। वह पादरी बन गए और जगह-जगह जाकर ईसा मसीह का संदेश लोगों तक पहुंचाने लगे। एक दिन वह चर्च जा रहे थे, तभी रास्ते में उन्हें लोगों के चीखने-चिल्लाने की आवाज सुनाई पड़ी। वह आवाज की दिशा में बढ़ चले। उन्होंने देखा कि लोग एक चौदह-पंद्रह वर्ष के लड़के के पीछे दौड़ रहे हैं। अचानक लड़का सड़क पर गिर गया और लोगों ने उसे पकड़ लिया। वे पकड़कर उसकी पिटाई करने लगे। मिस्टर बूथ ने बीच-बचाव किया और उसे लोगों से छुड़ाया। फिर उन्होंने उससे पूछा, बेटे, क्या वास्तव में तुमने चोरी की थी? यह सुनकर लड़का रोने लगा और बोला, फादर, मैं अनाथ हूं। न ही मेरे रहने का कोई ठिकाना है और न ही खाने-पीने के लिए मेरे पास कुछ है। मैं कई दिनों से भूखा था। जब भूख मुझसे बर्दाश्त नहीं हुई तो मैंने हिम्मत करके एक होटल से दो रोटियां चुरा लीं। पर मैं चोर नहीं हूं और आपसे वादा करता हूं कि आगे से कभी भी चोरी नहीं करूंगा। उसकी बात सुनकर मिस्टर बूथ दुखी हो गए। वह उसे अपने साथ ले गए और उसे एक स्थान पर भोजन कराया। फिर उन्होंने उस लड़के को देखकर सोचा कि धर्मप्रचार से ज्यादा महत्वपूर्ण कार्य तो अनाथ बच्चों को आत्मनिर्भर बनाना है और यह भी तो एक तरह से ईश्वर की ही सेवा है। बस यह सोचकर वह उसी समय से अनाथों के लिए आजीविका की व्यवस्था करने में जुट गए। उन्होंने अनाथों व बेरोजगारों के लिए अनेक रोजगार केंद्र खोले। उनके द्वारा स्थापित अनाथ कल्याण आश्रम अनेक देशों में आज भी अनाथों की सेवा में रात-दिन जुटे हैं और असहाय लोगों को नए जीवन की रोशनी प्रदान कर रहे हैं।

५२) ईश्वर का दरवाजा - हेलेन केलर जब केवल डेढ़ साल की थी, तभी वह तेज बुखार से पीड़ित हो गई। इससे उनके देखने, सुनने और बोलने की शक्ति चली गई। घर के सभी सदस्य उनकी बदकिस्मती पर आंसू बहाने लगे। जब वह कुछ बड़ी हुई तो उनकी मां ने उन्हें अनेक चिकित्सकों को दिखाया लेकिन कहीं पर भी उनका इलाज नहीं हो पाया। तभी उन्हें एक कुशल अध्यापिका एनी सुलिवान मिलीं। वह स्वयं कुछ सालों तक दृष्टिहीन रह चुकी थीं। डॉ. एनेग्नास ने उनकी आंखों के नौ ऑपरेशन कर उन्हें आंखों की रोशनी प्रदान की थी। उसके बाद एनी सुलिवान नेत्रहीन बच्चों को पढ़ाने लगी थीं। एनी हेलेन को उनके माता-पिता से कुछ समय के लिए दूर ले गईं और वहां पर उन्होंने समझाया कि मनुष्य जो पाना चाहता है, उसके लिए उसे सही तरीके से परिश्रम करना पड़ता है। कुछ दिनों के बाद हेलेन में सीखने की ललक के साथ-साथ काम करने का उत्साह भी पैदा होता गया और एनी के अथक प्रयासों से हेलेन अंग्रेजी, लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं की जानकार बन गई। हेलेन में लिखने की लालसा जागी और उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। आज उनकी विश्व प्रसिद्ध कृतियां मेरा धर्म और मेरी जीवन कहानी अनेक भटके हुए लोगों को राह दिखाती हैं। उन्होंने ब्रेल लिपि में अनेक ग्रंथ लिखे और कई कृतियों को ब्रेल लिपि में प्रकाशित करवाया। वह पूरे विश्व के सामने एक अद्‌भुत व महान महिला बनकर उभरीं जिन्होंने अपनी किस्मत पर आंसू बहाने के बजाय मेहनत व लगन से जीवन को संवारा। उनका कहना था कि ईश्वर एक दरवाजा बंद करता है तो दूसरा खोल देता है, पर हम उस बंद दरवाजे की ओर टकटकी लगाए बैठे रहते हैं। दूसरे खुले दरवाजे की ओर हमारी दृष्टि ही नहीं जाती। उनकी उपलब्धियों ने सिद्ध कर दिया कि शारीरिक अपंगता विकास में बाधक नहीं होती।

५३) दो ईमानदार दोस्त- श्रीलंका के सीलोन नगर में महता शैसा नामक एक व्यक्ति रहता था। वह ईश्वर का परम भक्त था और बहुत ही ईमानदार भी। वह सदाचार पर अडिग रहता था। कठिन से कठिन परिस्थितियां भी उसे ईमानदारी और सदाचार से नहीं डिगा पाई थीं। वह जंगलों से जड़ी-बूटियां लाकर उन्हें बेचकर अपनी जीविका चलाता था। सभी लोग शैसा को बहुत पसंद करते थे। शैसा का एक परम मित्र था लरोटा। लरोटा एक धनी व्यापारी था और उसके अनेक बाग-बगीचे थे, लेकिन इन दिनों वह गरीबी के दिन बिता रहा था। एक दिन शैसा को पता चला की लरोटा के बगीचे की जमीन में अनेक महत्वपूर्ण जड़ी-बूटियां हैं तो उसने जमीन खोदकर वहां पर जड़ी-बूटियों की तलाश शुरू कर दी। जब वह काफी सारी जमीन खोद चुका तो उसे वहां एक घड़ा नजर आया। उसने घड़े को बाहर निकालकर देखा तो दंग रह गया। उसमें सोने की अशर्फियां भरी हुई थीं। इतनी अशर्फियों को देखकर भी शैसा के मन में लालच नहीं आया। उसने उस घड़े को वापस मिट्टी में दबाया और लरोटा के पास पहुंचकर उसे सूचना दी कि उसके वीरान पड़े बगीचे में अशर्फियों से भरा घड़ा निकला है। लरोटा यह खबर सुनकर बहुत खुश हुआ। इन दिनों वह बेहद तंगहाली में गुजारा कर रहा था। वे अशर्फियां उसकी मुश्किलें आसान कर सकती थीं। उसने शैसा से कहा कि अशर्फियों को उसने देखा है इसलिए वह भी आधी अशर्फियों का हकदार है। दोनों वहां आए और उन्होंने खोदकर घड़ा निकाला। जब लरोटा ने शैसा को अशर्फियां देनी चाही तो शैसा बोला, मुझे अशर्फियां नहीं चाहिए। दूसरे का धन विष के समान होता है। व्यक्ति को हमेशा मेहनत से कमाए धन का ही प्रयोग करना चाहिए। परिश्रम में ही सुख व सच्ची शांति मिलती है। लरोटा अपने मित्र की बातों से बहुत प्रभावित हुआ। उसने शैसा को गले से लगा लिया।

५४) सादगी का पाठ- एक बार प्रसिद्ध समाजवादी चिंतक तथा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर आचार्य नरेन्द्रदेव काशी में रिक्शे पर बैठकर कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें उनके एक परिचित मिले। उन्होंने आचार्य को रिक्शे पर जाते देख उन्हें रुकने का संकेत किया। संकेत पाकर उन्होंने रिक्शा रुकवाया। परिचित उनके पास आया और बोला, कैसे हैं आचार्य जी? आचार्य जी बोले, ठीक हूं, आप बताएं। इसके बाद परिचित हैरानी से उन्हें देखकर बोला, आचार्य जी, आप इतने बड़े व्यक्ति होकर भी रिक्शे से क्यों जा रहे हैं? परिचित की बात पर आचार्य बोले, अरे भैया, मैं बड़ा आदमी कहा हूं। मैं तो साधारण परिवार का व्यक्ति हूं। अब मैं रिक्शे से नहीं जाऊंगा तो भला और किस साधन से जाऊंगा? उनकी यह बात सुनकर परिचित बोला, आचार्य जी, आप देश के अत्यंत प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर हैं। इतने बड़े पद पर होने के कारण आपको कार तो मिली ही होगी। आचार्य बोले, भैया, कार तो है, लेकिन मैं उसका खर्च वहन नहीं कर सकता। यह सुनकर परिचित बोले, आप यह क्यों कह रहे हैं कि मैं कार का खर्च वहन नहीं कर सकता। यह सुनकर आचार्य मुस्कराने लगे और बोले, मैं मानता हूं कि मेरे पास कार है, लेकिन पहली बात तो उस कार पर मेरा अधिकार नहीं है, वह सरकारी है और मुझे विश्वविद्यालय के कार्य से आने-जाने के लिए मिली है। आज मैं अपने एक बीमार संबंधी को देखने के लिए अस्पताल जा रहा हूं। यह मेरा निजी कार्य है। ऐसे में मै अपने निजी कार्य के लिए उस कार का इस्तेमाल कैसे कर सकता हूं जो मुझे विश्वविद्यालय के कार्य से आने-जाने के लिए मिली है। उनका यह जवाब सुनकर परिचित दंग रह गया। वह उनकी सादगी और उनके आदर्श को देखकर मन ही मन उनके प्रति नतमस्तक हो गया।

५५) बापू की सीख- उन दिनों बापू यरवदा जेल में थे। जेल में ही उनका ऑपरेशन हुआ था। ऑपरेशन होने के बाद वह बहुत कमजोर हो गए थे। चलने-फिरने में भी उनको कठिनाई होती थी। वे हमेशा खड़ाऊ पहनते थे। जेल में भी वह खड़ाऊं पहनकर ही गए थे। गांधीजी जो खड़ाऊं पहनकर जेल गए थे वे टूट गई थीं और जेल से मिलने वाली खड़ाऊं अत्यंत भारी थीं, जिन्हें पहनकर उन्हें तकलीफ होती थी। ऑपरेशन होने के बाद तो उन्हें पहनकर चलना और भी मुश्किल हो गया था। एक रात को उन्हें खड़ाऊं पहनकर चलने में अत्यंत तकलीफ का सामना करना पड़ा। उनकी पीड़ा को उनके आश्रम के सहयोगी ने देखा तो बहुत दु:खी हुआ। वह वहां उनसे मिलने आया था। उसने अगले दिन चुपके से खड़ाऊं की हल्की जोड़ी लाकर वहां पर रख दी और जेल से मिली भारी खड़ाऊं वहां से हटा दी। सुबह होने पर गांधीजी जब खड़ाऊं पहनने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने अपनी खड़ाऊं की तलाश शुरू कर दी। जब वे कहीं नहीं मिलीं तो उनकी नजर नई खड़ाऊं पर पड़ी। गांधीजी ने उन्हें पहना नहीं और बोले, पता नहीं कौन अपनी खड़ाऊं यहां छोड़ गया है। संयोग से उस समय वह आश्रमवासी भी वहीं था। वह उनके पास आकर बोला, बापू, ये नई खड़ाऊं मैं आपके लिए ही लाया हूं। आपको अपनी खड़ाऊं पहनने में तकलीफ होती थीं। मुझसे आपकी तकलीफ देखी नहीं गई। इसलिए मैंने उन्हें यहां से हटा दीं। इस पर गांधीजी बोले, लगता है, आश्रम के चारों तरफ रुपयों की बरसात हो रही है। शायद इसलिए तुम्हें नई खड़ाऊं लाने की सूझी है। क्या तुम जानते हो कि जो लोग आश्रम को रुपये भेजते हैं, उन्हें विश्वास है कि उनकी एक-एक पाई का सदुपयोग होता होगा। लेकिन यह तो उनके साथ विश्वासघात हुआ। यह सुनकर आश्रमवासी चुप हो गया। बापू ने कहा कि आश्रम का एक रुपया भी व्यर्थ के कार्यों पर खर्च न किया जाए।

५६) सिपाही की उदारता- एक बहादुर फ्रांसिसी सिपाही लेफायेटे अमेरिकी क्रांति के बाद जब अपने गांव वापस पहुंचा तो वहां की हालत देख परेशान हो गया। उन दिनों उसके और उसके आसपास के गावों में गेहूं की फसल खराब हो गई थी। गांव के सभी लोग फसल खराब होने के कारण दुखी थे। बच्चे व बूढ़े भूख से तड़प रहे थे। किसी को समझ में नहीं आ रहा था कि इस आकस्मिक आपदा से फिलहाल कैसे निपटा जाए? लेफायटे जब अपने घर में दाखिल हुआ तो यह देखकर भी हैरान रह गया कि उसके गोदाम गेहूं से भरे हुए हैं। उसे पता चला कि उसके परिवार वालों ने पिछले कुछ सालों में दिन-रात मेहनत कर गेहूं इकट्ठा करके गोदाम में रख दिया था। गांव के प्रधान को जब इसका पता चला तो वह लेफायटे के पास आकर बोला, आपके यहां तो गेहूं के गोदाम भरे हुए हैं। मेरे ख्याल से यह एक अच्छा अवसर है। कम समय में ज्यादा कमाई करने का इससे बेहतर जरिया कोई हो ही नहीं सकता। आपको अपने गोदाम में जमा गेहूं को भूखे मर रहे लोगों को ऊँचे दाम पर बेचकर काफी मुनाफा कमा लेना चाहिए। लेफायेटे प्रधान की बात सुनकर दंग रह गया। वह बोला, आपको ऐसा कहना शोभा नहीं देता। मेरे गांव के लोग भूखे मर रहे हैं और आप मुझे कह रहे हैं कि मैं गेहूं ऊंचे दामों पर बेचकर मुनाफा कमाऊं। इससे बड़ी शर्मनाक बात कोई हो ही नहीं सकती। यह वक्त तो गेहूं सबको बांटने का है ताकि इस विपदा से सहजता से जूझा जा सके। यह पाप मैं नहीं कर सकता। यह सुनकर प्रधान शर्मिंदा हो गया। उसने भी अपने गोदामों में जमा गेहूं तत्काल बांटने का फैसला कर लिया।

५७) राहगीर का जवाब- एक बार ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लायर्ड जॉर्ज एक युवा सांसद के साथ कार में बैठकर कहीं जा रहे थे। वे रास्ता भटक गए। जॉर्ज सांसद से बोले, यहां से आगे जाने का रास्ता मुझे मालूम नहीं है। किसी राहगीर से आगे का रास्ता पूछना होगा। लेकिन काफी देर तक उन्हें वहां कोई नजर नहीं आया। यह देखकर जॉर्ज सांसद से बोले, यहां तो कोई नजर ही नहीं आ रहा। हम आगे कैसे जाएं? क्या तुम्हें आगे के रास्ते की कोई जानकारी है? सांसद बोला, सर, मुझे भी इस रास्ते की कोई जानकारी नहीं है। काफी देर बाद एक व्यक्ति आता हुआ दिखा। उसे आते देखकर जॉर्ज उसके पास अपनी गाड़ी ले जाकर बोले, महाशय, क्या आप बता सकते हैं कि हम इस वक्त कहां हैं? यह सुनकर राहगीर जॉर्ज को देखते हुए बोला, महोदय, आप इस वक्त अपनी गाड़ी में हैं। यह कहकर वह आगे बढ़ गया। जॉर्ज सांसद से बोले, यह बड़ा ही हाजिरजवाब था। हमारे मंत्रियों को पार्लियामेंट में पूछे गए प्रश्नों का जवाब इस नागरिक के समान चतुराई से देना चाहिए। इसके उत्तर में तीन गुण हैं। पहला यह कि उत्तर संक्षिप्त है। दूसरा यह कि उत्तर तथ्य से पूर्ण और सही है और तीसरा खास गुण यह है कि प्रश्न पूछनेवाला व्यक्ति ठीक उतनी ही जानकारी पाता है कि जितनी कि उत्तर पाने के पहले उसे थी। जॉर्ज की यह बात सुनकर सांसद दंग रह गया। वह मुस्कराते हुए बोला, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। मैं भी ऐसी हाजिरजवाबी और कुशलता अपने अंदर लाने का प्रयास करूंगा।

५८) सुख का विस्तार- कर्नाटक के बेलगांव में प्रसिद्ध विद्वान पंडित चिदंबर दीक्षित रहा करते थे। ज्ञान, भक्ति और सेवा कार्यों में उनका कोई सानी न था। आसपास के लोग उनके पास विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए आते रहते थे। एक दिन एक महिला दीक्षित जी के घर पहुंची। वह पंडित जी से संतान प्राप्ति का आशीर्वाद लेने आई थी। उसने बताया कि वह सभी व्रत-उपवास करती है, लेकिन इसके बावजूद उसकी मनोकामना पूरी नहीं हो पा रही है। इसलिए उसका

जीवन दुखद हो गया है। वह अपने को अकेली और असहाय समझती है। दीक्षित जी ने उसे पास पड़े चने में से दो मुट्ठी चने दिए और एक कोने में बैठकर इंतजार करने को कहा। वह महिला घर के बाहर एक कोने में बैठकर चने खाने लगी, तभी सड़क पर खेल रहे बच्चे उस महिला का मुंह ताकने लगे। कुछ ने चने पाने की आशा में अपने हाथ भी उस महिला के सामने फैला दिए। महिला ने दूसरी तरफ मुंह मोड़ लिया और चुपचाप चने खाती रही। बच्चे मायूस होकर उसे देख रहे थे और उसने देखते ही देखते चने खत्म कर दिए। पंडित जी भी दूर से सारा दृश्य देख रहे थे। उन्होंने महिला को बुलाकर कहा, तुम मुफ्त में मिले चने भी भगवान रूपी बच्चों के साथ मिल बांटकर नहीं खा सकती, तो तुम भगवान से कैसे आशा करती हो कि वे तुम्हें बच्चों का सुख प्रदान करेंगे। तुम संतान चाहती हो लेकिन तुम्हारे भीतर बच्चों के लिए कोई ममता ही नहीं है। तुम यह सोचती हो कि तुम्हारे अपने बच्चे होंगे तभी तुम उन्हें प्यार करोगी। दूसरों के बच्चों से तुम्हें क्या मतलब। यह एक गलत सोच है। तुम अपने हृदय का विस्तार करो। सबको गले लगाओ। सबके ऊपर ममता लुटाओ। दूसरों के बच्चों को भी अपनी ही संतान समझो। तुम देखोगी कि तुम्हारा जीवन एकदम बदल गया हैं तुम अपने को अकेली और असहाय समझना बंद कर दोगी। महिला ने वचन दिया कि वह अपनी सोच बदलेगी।

५९) पश्चात्ताप- कर्णवास का एक पंडित महर्षि दयानंद सरस्वती को प्रतिदिन गालियाँ दिया करता था, पर महर्षि शांत भाव से उन्हें सुनते रहते और उसे कुछ भी उत्तर न देते। एक दिन जब वह गाली देने नहीं आया तब महर्षि ने लोगों से उसके न आने का कारण पूछा। लोगों ने बताया, वह बीमार है। महर्षि फल और औषध लेकर उसके घर पहुँचे। वह महर्षि को देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा और अपने असद व्यवहार के लिए क्षमा माँगने लगा। इसके बाद उसका गाली देना सदा के लिए छूट गया।

६०) मालिक और ग्राहक - विश्वप्रसिद्ध फोर्ड कार के निर्माता अमेरिकी उद्योगपति हेनरी फोर्ड अपनी सादगी और हाजिरजवाबी के लिए मशहूर थे। उन्होंने कार की एक बड़ी कंपनी स्थापित की थी लेकिन खुद बहुत ही साधारण जीवन जीते थे। अपने कर्मचारियों के प्रति उनका व्यवहार भी काफी मधुर था। एक बार वह किसी निजी काम से लंदन गए। लोगों को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वह फोर्ड में नहीं बल्कि रॉल्स रॉयस कार में घूम रहे थे। पर किसी ने इस बारे में उनसे कोई सवाल नहीं किया। लेकिन इंग्लैंड के सम्राट जॉर्ज पंचम ने उनसे पूछ ही लिया, क्यों जनाब, आप अपनी कार के विज्ञापन में लिखते हैं कि फोर्ड संसार की सबसे अच्छी कार है लेकिन यहां तो आप अपनी कंपनी की बजाय दूसरी कंपनी की कार में घूम रहे हैं। क्या यह थोड़ा अटपटा नहीं लगता? इस पर फोर्ड साहब ने मुस्कराते हुए कहा, महोदय, मैं इस बात को तो अब भी कहता हूं कि मेरी कार विश्व की सबसे बढ़िया कार है। मैं अपने सिद्धांत पर कायम हूं। लेकिन क्या बताऊं अपने मैनेजर को मैं कई बार कह चुका हूं कि मुझे अपने इस्तेमाल के लिए एक फोर्ड कार चाहिए पर हर बार वह यही कहता है कि कार तैयार होते ही बिक जाती है। अब मैं अपने ग्राहक को दूं या अपने मालिक को? यही कारण है कि मैं अपनी कार में घूम नहीं पाता और बाजार में बिक रही सेकेंड बेस्ट कार रॉल्स रॉयस में सफर करता हूं। फोर्ड का यह जवाब सुनकर जॉर्ज पंचम उनका मुंह ताकते रह गए। बाद में जब लोगों तक यह प्रसंग पहुंचा तो उन्होंने समझ लिया कि फोर्ड की सफलता का कारण क्या है।

६१) फर्ज के लिए - बात उस समय की है, जब अहमद शाह अब्दाली से महादजी सिंधिया का युद्ध चल रहा था।

दोनों ओर के सैनिक वीरतापूर्वक लड़ रहे थे। लड़ते-लड़ते एक अवसर ऐसा आया जब सिंधिया बुरी तरह से घायल हो गए। उनके शरीर के लगभग हर अंग से खून बह रहा था और वे अचेत हो गए थे। ऐसी स्थिति में राणे नामक भिश्ती उन्हें अपने बैल पर युद्ध के मैदान से दूर एक जंगल में ले गया। वहां घने पेड़ों की ओट में उसने महादजी को लिटा दिया। फिर वह थोड़ा पानी लेकर आया और महादजी को पिलाया। तब उनकी चेतना लौटी। उन्होंने राणे को धन्यवाद दिया। तभी घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई दी। राणे ने महादजी को वहीं बैठे रहने के लिए कहा और खुद आगे निकल आया। कुछ ही देर बाद घुड़सवार सैनिकों के एक दल ने राणे को घेर लिया और एक सैनिक ने उसकी गर्दन पर तलवार लगाते हुए कहा- सही-सही बता कि महादजी को तूने देखा है या नहीं वरना तेरी गर्दन इस तलवार से उड़ा दूंगा। राणे ने आसमान की ओर देखते हुए कहा- अल्लाह कसम मैंने उन्हें नहीं देखा। सैनिकों के जाने के बाद महादजी सिंधिया ने राणे से कहा- तुमने अल्लाह की झूठी कसम क्यों खाई? राणे ने उत्तर दिया- महाराज। मेरे झूठ बोलने से आपकी जान बच गई। किसी बड़े मकसद के लिए बोला गया झूठ उतना ही नैतिक होता है, जितना सच। मुझे यकीन है अल्लाह मुझे जरूर माफ कर देगा। आपका सुरक्षित रहना हम सबके लिए बेहद जरूरी है। मैंने आपको बचाकर अपना फर्ज पूरा किया है। राणे की बात सुनकर महादजी ने उसे गले लगा लिया।

६२) संत और नगरवधू- पाटलिपुत्र की नगरवधू कोशा की सुंदरता की चर्चा दूर-दूर तक होती थी। उसकी एक मुस्कान पर बड़े-बड़े लोग सब कुछ लुटाने को तैयार रहते थे। एक दिन शाल्वन बुद्ध पीठ के मठाधीश वसंत गुप्त उधर से निकले तो कोशा पर उनकी नजर पड़ी। उन्होंने उसे देखा तो सब कुछ भूल गए। वे उसी संत वेश में नगरवधू के घर जा पहुंचे। कोशा का अनुमान था कि वे भिक्षाटन के लिए आए होंगे, सो उसने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया और अपनी एक सेविका को उन्हें भिक्षा देने के लिए कहा। पर वसंत गुप्त का इरादा तो कुछ और ही था। वह तो प्रणय निवेदन कर रहे थे।

कोशा के लिए यह किसी आघात से कम न था। पर उसने तिरस्कार करना तो ठीक न समझा, पर शर्त लगा दी कि इतनी रत्नराशि वे प्रस्तुत कर सकें, तो ही उनकी मनोकामना पूर्ण हो सकेगी। वसंत गुप्त चल दिए और जिन धनिकों से उनका परिचय था, उन सभी से रत्न मांगकर उन्होंने उतनी संपदा जुटा ली। फिर वे लंबे डग भरते हुए आए और वह सब कुछ कोशा के चरणों में रख दिया। कोशा ने उन रत्नों से अपने पैर रगड़-रगड़ कर घिसे और उन्हें नाली में फेंक दिया। यह देख वसंत गुप्त घबराए। कोशा ने उनसे कहा, देव। आप का वेश और तप मेरे मलिन शरीर से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ है। उसका उपार्जन इसी प्रकार नाली में चला जाएगा, जैसे कि यह रत्नराशि इस गंदी नाली में बह गई। कोशा की यह बात वसंत गुप्त के हृदय को तीर की तरह चुभी। अचानक उनका विवेक जागा। वे लज्जित हुए। वे कोशा को प्रणाम कर उलटे पैर लौट गए। कोशा के मन के ऊपर से बोझ कम हो गया।

६३) शिष्य की परीक्षा - वेदव्यास के शिष्य थे जैमिनी। व्यास को उत्तर मीमांसा (वेदांत) लिखने के कारण प्रसिद्धि मिली पर उनमें अभिमान नहीं आया। पर जैमिनी को अपनी तप-साधना पर गर्व था। वह बार-बार वेदांत के ज्ञान की बात करते। यह भी कहते कि मैं ही ब्रह्म हूं। उस पर तर्क भी करते, पर व्यास कहते- देह रहते देहातीत की कल्पना वे ही कर सकते हैं, जो देह से मुक्त हो चुके हैं। इस पर दोनों में अक्सर बहस छिड़ जाती। गुरु ने अपने शिष्य को, जो ज्ञान पाकर अहं की पराकाष्ठा पर था, सही राह पर लाना ही ठीक समझा। जैमिनी जंगल में कुटिया बनाकर रहते थे। रात का समय

था। अचानक तेज आंधी आई। जैमिनी उस समय कुटिया में बैठे लिख रहे थे। इतने में देखा, एक अतित सुंदर युवती भीगे वस्त्रों में वहां आई। बोली- आप महापुरुष हैं, आप के पास क्या डर। आज्ञा हो तो कुटिया में शरण ले लें। जैमिनी बोले- हमारे कक्ष में चली जाओ, विश्राम करो, दरवाजा अंदर से बंद कर लो। रात गहरी होती गई। एक स्त्री की कुटिया में उपस्थिति ने उनके मन को विचलित कर दिया। न जाने किस स्थिति में होगी, यह सोचकर दरवाजा खटखटाया। अंदर से आवाज आई- हम सवेरे मिलेंगे। हम ठीक हैं। आवेग कुछ ऐसा गहराया कि दरवाजा तोड़कर अंदर जाने का मन हुआ, पर फूस की छत से खपरैल हटा कर अंदर कूद गए। देखा तो गुरुदेव महर्षि व्यास देव आसन पर बैठे मुस्करा रहे थे। यह उन्हीं की लीला थी। उन्होंने कहा- देखा, देह के रहते आसक्ति का त्याग विरलों से ही संभव है। जैमिनी चरणों में गिर गए और उसके बाद उनका अहं समाप्त हो गया।

६४) लेखक का सफर - मैक्सिम गोर्की को बचपन से पढ़ना बहुत पसंद था। पर घर में पढ़ाई के लायक स्थितियां नहीं थीं। पर वह पढ़ना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने एक कबाड़ी के यहां नौकरी कर ली। कबाड़ी की दुकान में रोज हजारों पुस्तकें आती थीं। पुस्तकों को देखते ही गोर्की का मन उन्हें पढ़ने के लिए लालयित हो उठता था। काम के बाद जब भी उन्हें समय मिलता, वे किताबें पढ़ते। जिस दिन वह कुछ पढ़ नहीं जाते, वह दिन उन्हें अधूरा-अधूरा लगता। शुरू-शुरू में गोर्की को कई पुस्तकें समझ में ही नहीं आती थीं। फिर भी वे उन्हें पढ़ते और समझने की कोशिश करते। जल्दी ही उन्होंने दुनिया भर की हजारों किताबें पढ़ डालीं। कुछ समय के बाद गोर्की को महसूस हुआ कि उन्हें केवल पढ़ने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि लिखने का भी प्रयास करना चाहिए। एक दिन गोर्की ने खेल-खेल में एक कहानी लिखकर उसे समाचार-पत्र में छपने के लिए भेज दिया। कुछ दिनों बाद वही कहानी न सिर्फ प्रकाशित हुई, बल्कि एक सुप्रसिद्ध लेखक ने उस कहानी के लिए बधाई पत्र भी भेजा। यह देखकर गोर्की का उत्साह बढ़ गया। अब उन्होंने अपना सारा ध्यान लेखन और अध्ययन पर लगा दिया। वह लगातार लिखने लगे। फिर उन्होंने मां जैसी महान रचना लिखी। इसने दुनिया के प्रमुख लेखकों में उनकी जगह पक्की कर दी। इस प्रकार मैक्सिम गोर्की ने साबित किया कि यदि मन में लगन और आगे बढ़ने की चाह हो तो बड़ी से बड़ी बाधा भी ध्वस्त होकर गिर जाती है। लेनिन और दूसरे क्रांतिकारी नेता भी मानते थे कि रूस के सामाजिक-राजनीतिक बदलाव में गोर्की के लेखन का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

६५) तिलक की हाजिरजवाबी- लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक अपनी धुन के पक्के थे। उनकी एक ओर विशेषता थी- विनोदप्रियता। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वह मनोविनोद करते हुए समस्या को सुलझा लेते थे। वह मराठी दैनिक केसरी निकालते थे, जिसके तीखे तेवर से अंग्रेज सरकार परेशान रहती थी। वह छोटी-छोटी बात को लेकर उन पर मुकदमा कर देती थी। एक बार हाई कोर्ट में उन पर एक मुकदमा चल रहा था। तिलक की ओर से एक सीनीयर बैरिस्टर पैरवी कर रहे थे। संयोगवश उस दिन उनको अदालत में आने में विलंब हो गया। जब वह काफी देर तक नहीं आए तो वहां मौजूद एक युवा बैरिस्टर पैरवी कर रहे थे। जब वह काफी देर तक नहीं आए तो वहां मौजूद एक युवा बैरिस्टर अपने एक अन्य मित्र बैरिस्टर को लेकर उनके समीप गया और बोला, सर, लगता है आपके बैरिस्टर साहब को जरूरी काम आ गया है। तभी तो उन्हें आने में देर हो रही है। आप कहें तो हम दोनों उनके स्थान पर आपकी सहायता करने के लिए तत्पर हैं। उस युवा

बैरिस्टर की बात पर तिलक बोले, अच्छा तो आप मेरे सीनियर बैरिस्टर की जगह लेने के लिए बिल्कुल तैयार हैं। युवा बैरिस्टर बोला, जी सर, आप हमें अवसर तो दीजिए। तिलक मुस्कराकर बोले, मेरे बैरिस्टर आपसे लगभग दोगुनी उम्र के होंगे। युवा बैरिस्टर बोला, कोई बात नहीं सर। हम बहुत अच्छा काम करेंगे। तिलक ने कहा, बीस-बाइस वर्ष की किसी कन्या के लिए वर के स्थान पर क्या दस-बारह वर्ष के दो किशोर चल सकते हैं? तिलक की बात सुनकर वहां उपस्थित सभी लोग हंस पड़े। एक व्यक्ति के मुंह से निकला, तिलक जी, आपने क्या मजेदार जवाब दिया है। दोनों युवा बैरिस्टर खिसियाकर बैठ गए।

६६) भूमि का दान- संत विनोबा भावे भूदान आंदोलन के माध्यम से गरीबों के कल्याण में लगे हुए थे। वह संपन्न लोगों के पास जाते और उनसे निर्धनों व बेसहारा व्यक्तियों को मदद देने का निवेदन करते। इसी सिलसिले में वह अलीगढ़ जिले के पिसावा गांव पहुंचे। वहां राजा श्यौदान सिंह का राज था। राजा श्यौदान सिंह ने भव्य जनसभा में विनोबा जी का स्वागत किया। विनोबा जी ने राजा से कहा, महाराज, आप मुझे गोद ले लीजिए। इस पर जनसभा में हंसी की लहर दौड़ गई। लेकिन राजा ने विनोबा की बात को अन्यथा न लेते हुए कहा, मुझे स्वीकार है। मैं आपको विधिवत् गोद लेने की घोषणा करता हूं। यह सुन लोग दंग रह गए। इसके बाद विनोबा जी बोले, पिताजी, अब आप मुझे अलग कर दीजिए। मैं आपका तीसरा पुत्र हूं। आप मुझे अपना भूमि का केवल छठवां भाग दे दीजिए। यह सुनकर भी सभी चकित रह गए। लेकिन राजा वचन के पक्के थे। उन्होंने विनोबा जी के कथनानुसार उन्हें तुरंत लगभग दो हजार बीघा भूमि दे दी। वह भूमि लेने के बाद विनोबा जी ने उसके हिस्से कर उसे बेघर, निर्धन और बेसहारा लोगों में बांट दिया। जमीन पाने वाले विनोबा जी को दुआएं देने लगे तो विनोबा जी ने कहा, यह भूमि मेरे कारण नहीं बल्कि दानशील राजा श्यौदान सिंह के कारण मिली है। उन्हें दुआएं दीजिए। यह सुनकर अनेक लोगों ने राजा के पास जाकर उन्हें धन्यवाद दिया। जब राजा को यह पता चला कि उनके द्वारा विनोबा जी को दान की गई भूमि बेघर और निर्धनों में बांट दी गई है, तो वह अत्यंत प्रसन्न हुए और जीवन भर लोगों के कल्याण में लगे रहे।

६७) महामना की सीख- काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के कुछ ही समय बाद की बात है। कभी-कभार अध्यापक उद्दंड छात्रों को उनकी गलतियों के लिए आर्थिक दंड दे दिया करते थे। मगर छात्र दंड माफ कराने मालवीय जी के पास पहुंच जाते और महामना माफ भी कर देते थे। यह बात शिक्षकों को अच्छी नहीं लगती थी। एक बार वे मालवीय जी के पास जाकर बोले, महामना, आप उद्दंड छात्रों का आर्थिक दंड माफ कर उनका मनोबल बढ़ा रहे हैं। इससे उनमें अनुशासनहीनता को बढ़ावा मिल रहा है। आप अनुशासन बनाए रखने के लिए उनके दंड माफ न करें। मालवीय जी ने शिक्षकों की बातें ध्यान से सुनीं फिर बोले, मित्रों, जब मैं प्रथम वर्ष का छात्र था तो एक दिन गंदे कपड़े पहनने के कारण मुझ पर छह पैसे का अर्थ दंड लगाया गया था। आप सोचिए, उन दिनों मुझ जैसे छात्रों के पास दो पैसे साबुन के लिए नहीं होते थे तो दंड देने के लिए छह पैसे कहां से लाता। इस दंड की पूर्ति किस प्रकार की, यह याद करते हुए मेरे हाथ स्वत: छात्रों के प्रार्थना पत्र पर क्षमा लिख देते हैं। यह सुनकर वे शिक्षक निरुत्तर हो गए। एक बार महामना छात्रावास का निरीक्षण कर रहे थे तभी उन्होंने देखा कि एक छात्र दीवार के कोने में कुछ लिख रहा है। मालवीय जी ने उसे समझाया, मेरे दिल में तुम्हारे प्रति जितनी ममता और लगाव है, उतना ही प्रेम विश्वविद्यालय की प्रत्येक ईंट से भी है। आशा है, भविष्य में तुम ऐसी गलती फिर न करोगे।

फिर महामना ने जेब से रूमाल निकालकर दीवार को साफ कर दिया। यह देखकर छात्र का सिर लज्जा से झुक गया।

६८) वह खादी प्रदर्शनी- सन १९२२ में अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन काकीनाड़ा में हुआ था। इस अवसर पर एक खादी प्रदर्शनी आयोजित की गई थी, जिसमें चरखा पर बुनी खादी के विभिन्न तरह के वस्त्र और अन्य उत्पाद प्रदर्शित किए गए थे। प्रदर्शनी देखने के लिए दो आने का टिकट निर्धारित था। प्रदर्शनी के प्रवेश द्वार पर एक युवा स्वयंसेविका खड़ी की गई थी, जो टिकट की जांच करती थी। वह टिकट देखकर ही लोगों को अंदर जाने देती थी। एक सज्जन बिना टिकट दिखाए ही अंदर जाने लगे। उस स्वयंसेविका ने उन्हें रोका और कहा कि वह टिकट दिखाएं। उस सज्जन ने अपनी जेब टटोली और बुदबुदाते हुए वापस जाने लगे कि अरे इसका तो ख्याल ही नहीं था। अभी तो मेरे पास दो आने भी नहीं हैं। कोई बात नहीं कल देख लूंगा। पास में ही एक वयोवृद्ध कांग्रेसी खड़े थे। उन्होंने स्वयंसेविका से पूछा- क्या तुम जानती हो कि ये कौन हैं? स्वयंसेविका ने कहा- हां, मैं इन्हें अच्छी तरह जानती हूं। ये पं. जवाहरलाल नेहरू हैं। पर मुझे कहा गया है कि मैं बिना टिकट किसी को अंदर न जाने दूं। मैं तो बस नियम का पालन कर रही हूं। संयोग से जवाहर लाल ने यह बातचीत सुन ली। वे उस स्वयंसेविका के पास गए और उसकी पीठ थपथपाकर उसे शाबाशी दी। फिर उन्होंने उस वयोवृद्ध नेता से कहा- यह ठीक ही तो कह रही है। हां, यदि आपके पास दो आने हों तो दीजिए। मैं भी यह प्रदर्शनी देख लूं। और पंडित जी ने टिकट खरीदकर प्रदर्शनी देखी। वह स्वयंसेविका थी श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, जो आगे चलकर संसद सदस्य, योजना आयोग की सदस्य और समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्ष बनीं।

६९) एक ईमानदार मुख्यमंत्री- यह घटना उस समय की है, जब पं. गोविंद वल्लभ पंत उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। उनकी गिनती देश के सबसे ईमानदार राजनेताओं में होती थी। वह कोई विशेष सुविधा नहीं लेते थे न ही कभी सरकारी पैसे से अपना कोई निजी काम करते थे। एक बार पंतजी ने सरकारी बैठक की। उसमें चाय नाश्ते का प्रबंध किया गया था। जब उसका बिल पास होने के लिए आया तो उसमें हिसाब में छह रुपये और बारह आने लिखे हुए थे। पं. गोविंद वल्लभ पंत ने बिल पास करने से मना कर दिया। जब उनसे इस बिल को पास न करने का कारण पूछा गया तो वह बोले, सरकारी बैठकों में सरकारी खर्चे से केवल चाय मंगवाने का नियम है। ऐसे में नाश्ते का बिल नाश्ता मंगवानेवाले व्यक्ति को स्वयं चुकाना चाहिए। हां, चाय का बिल अवश्य पास हो सकता है। अधिकारियों ने उनसे कहा कि कभी-कभी चाय के साथ नाश्ता मंगवाने में कोई हर्ज नहीं होगा। ऐसे में इसे पास करने से कोई गुनाह नहीं होगा। उस दिन चाय के साथ नाश्ता पंत जी की बैठक में आया था। कुछ सोचकर पंतजी ने अपनी जेब से रूपये निकाले और बोले, चाय का बिल पास हो सकता है लेकिन नाश्ते का नहीं। नाश्ते का बिल मैं अदा करूंगा। नाश्ते पर हुए खर्च को मैं सरकारी खजाने से चुकाने की इजाजत कतई नहीं दे सकता। उस खजाने पर जनता और देश का हक है हम मंत्रियों का नहीं। यह सुनकर सभी अधिकारी दंग रह गए। उन्होंने उन्हें आश्वासन दिया कि सरकारी नियमों की अवहेलना नहीं की जाएगी। यह सुनकर पंत जी संतुष्ट हुए और अपने काम में लग गए।

७०) जब राजमूर्ख ने हंसकर पूछा, क्या-क्या लेकर जाओगे- दरबार में एक से एक बढ़कर विद्वान, संगीतज्ञ, कलाकार और पहलवान आदि थे। राजा की इच्छा हुई कि एक मूर्ख भी होना चाहिए। उसने मंत्री को एक मूर्ख की नियुक्ति

के आदेश दिए। मूर्ख की खोज के लिए राज्य में घूमते हुए अनुचरों ने एक स्थान पर देखा कि एक व्यक्ति जिस डाल पर बैठा है, उसी को काट रहा है। उन्होंने उसे अगले दिन दरबार में पेश किया। राजा ने उसकी कहानी सुनी और उसकी राजमूर्ख के पद पर नियुक्ति कर दी। उसे राजकीय पोशाक व राजदंड के प्रतीक के रूप में एक लाठी दे दी गई। जब राजा का मन करता, उसके साथ हंसी-मजाक किया करता। कुछ दिनों बाद राजा बीमार हो गया। उसका दरबार में आना बंद हो गया। राजमूर्ख को पता चला कि राजा बीमार हैं, तो वह राजकीय पोशाक पहन और हाथ में राजदंड लेकर उनकी खबर लेने महल में पहुंचा। राजा को प्रणाम कर उसने पूछा, महाराज आपकी तबीयत कैसी है? दरबार में कब आएंगे? राजा ने कहा, मूर्ख, अब हम लंबी यात्रा की तैयारी कर रहे हैं। यह सुन मूर्ख ने उत्सुकतापूर्वक पूछा, कितने दिन की यात्रा पर जा रहे हो, कितनी दूर है, कितने सैनिक, कौन-कौन रानियां और कितना खजाना आपके साथ जाएगा? सवारी के लिए हाथी-घोड़े तैयार करने के लिए कह दिया? वहां से फिर कब और कितने दिनों में वापिस आओगे? राजा ने कहा, अरे मूर्ख, जो उस यात्रा पर चला जाता है, फिर वह वापिस लौट कर नहीं आता। तब मूर्ख ने कहा, राजन्, जब आपको यह पता है कि अंतिम यात्रा में कुछ साथ नहीं जाता। यह आलीशान महल रानियां, खजाना सब कुछ यहीं रह जाएगा तो फिर इनके लिए व्यर्थ ही युद्ध आदि करते रहे। छल-कपट, मारकाट कर किसके लिए इतना बड़ा साम्राज्य खड़ा किया? पूरा जीवन यहां का खजाना भरने के चक्कर में लगा दिया। राजा सही मायने में मूर्ख मैं नहीं, आप हैं, जिसने सारा जीवन यों ही बर्बाद कर दिया। वहां जब खाली हाथ ही जाना है, तो यह पकड़ो अपना राजदंड। मैं ही इसे रखकर क्या करूंगा?

७१) ऋषि का जीवन- यह नेताजी सुभाषचंद्र बोस के बचपन की घटना है। एक रात बालक सुभाष अचानक पलंग से उतरकर जमीन पर सो गए। बगल में सोई उनकी मां यह देखकर चौंक गई। उन्हें लगा शायद उनका बेटा उनसे नाराज हो गया है। उन्होंने पूछा- बेटा क्या बात है? इस तरह जमीन पर क्यों सो गए? सुभाष का उत्तर था- मां, आज हमें स्कूल में मास्टरजी ने बताया कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि थे, वे भूमि पर ही सोते थे और कठोर जीवन जीते थे। मां, मैं भी ऋषि बनूंगा, सो कठोर जीवन का अभी से अभ्यास कर रहा हूं। मां को हंसी आ गई। वह समझ नहीं पा रही थीं कि अपने बेटे को कैसे समझाएं। इस बीच मां और बेटे की आवाज सुनकर सुभाष के पिता भी जाग गए। सुभाष की मां ने उन्हें बताया कि क्यों उनका बेटा जमीन पर सो रहा है। तब सुभाष के पिता ने उनसे कहा- बेटे, केवल जमीन पर सोकर तुम ऋषि नहीं बन सकोगे। ऋषि बनने के लिए तुम्हें ज्ञान हासिल करना होगा और सेवा का संकल्प भी लेना होगा। चलो, मां के पास सो जाओ। जब बड़े हो जाना, तब यह काम करना। सुभाष ने अपने शिक्षक की ही नहीं, अपने पिताजी की सीख भी गिरह बांध ली। बड़े होकर उन्होंने भारत की सर्वोच्च प्रशासनिक सेवा इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास की। जब ब्रिटिश सरकार का एक सीनियर अफसर बनने की बात सामने आई, तब उन्होंने कहा- मैं बचपन में ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर चुका हूं। मैं अफसर नहीं बनूंगा, मातृभूमि की सेवा करूंगा। यह बात और लोगों को अटपटी लगी पर उनकी मां और पिताजी को थोड़ा भी आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने अपने बेटे को आशीर्वाद दिया। सुभाष तब से देश की सेवा में जुट गए।

७२) अहंकार का पुतला- एक राजा बहुत अहंकारी था। जब एक दिन उसके मंत्री ने उससे कहा कि नगर में परम ज्ञानी और संत पुरुष महात्मा बुद्ध पधारे हैं और आपको चलकर उनका स्वागत करना चाहिए तो उसने अजीब मुंह बनाकर

कहा- मैं बुद्ध का स्वागत करने क्यों जाऊं? आखिर मैं एक राजा हूं। एक राजा की कोई गरिमा होती है। सभी लोग मुझसे मिलने महल में आते हैं, चाहे वे कोई भी हों। बुद्ध को यदि मुझसे मिलना होगा, तो वे स्वयं मेरे महल में आएंगे। राजा की बात सुनकर मंत्री को झटका लगा। वह बोला- आप राजा हैं इसलिए सभी आपसे मिलने आते हैं लेकिन संत पुरुष राजा से भी ऊपर होते है। चूंकि प्रजा के लिए भी वे श्रद्धा के पात्र होते हैं, इसलिए उनका आदर करके आप लोगों के भी प्रिय पात्र बनेंगे। पर राजा को यह बात समझ में नहीं आई। उसने पलटकर कहा- क्या मैं प्रजा का कोई दास हूं कि जो वह करे और चाहे, वही मैं करूं? अरे भाई, मैं राजा हूं राजा, इसलिए मैं जो चाहूंगा, वही करूंगा। मंत्री को राजा का व्यवहार उचित नहीं लगा। उसने कहा- मैं अब आपकी सेवा में नहीं रह सकता आप में तनिक भी बड़प्पन नहीं है। राजा ने कहा- मैं सिर्फ अपने बड़प्पन के कारण बुद्ध के स्वागत हेतु नहीं जा रहा हूं। मंत्री ने कहा- अपने घमंड को बड़प्पन मत समझिए। बुद्ध भी कभी महान सम्राट के पुत्र थे। उन्होंने राज्य का त्याग कर भिक्षु बनना स्वीकार किया। इसका अर्थ है कि राज्य के मुकाबले उनका त्याग अधिक बड़ा है। आप तो अभी बुद्ध से बहुत पीछे हैं। राजा बात का मर्म समझ गया और न केवल बुद्ध का स्वागत करने गया, बल्कि उसने उनसे दीक्षा भी ग्रहण की। उसने अपने मंत्री को राजपाट की जवाबदेही सौंप दी।

७३) ज्ञान और व्यवहार- दक्षिण भारत में एक बड़े ही ज्ञानी एवं तपस्वी साधु हैं- सदाशिव ब्रहेन्द्र स्वामी। उन दिनों वे अपने गुरुदेव के आश्रम में वेदांत का अध्ययन कर रहे थे। उनका सारा समय अध्ययन-चिंतन एवं तप में बीतता था। एक दिन एक सुविख्यात पंडित आश्रम में पधारे। आते ही किसी बात पर उनका सदाशिव से विवाद हो गया। सदाशिव स्वामी ने देखते ही देखते उन पंडित के तर्कों को अपनी विद्वता से तहस-नहस कर डाला। यहां तक कि उन आगंतुक पंडित को सदाशिव से क्षमायाचना करनी पड़ी। इससे सदाशिव प्रसन्न हो गए और बड़े ही उत्साह से गुरुदेव से यह घटना सुनाई। सोचा था कि गुरुदेव प्रसन्न होकर पीठ थपथपाएंगे पर ऐसा कुछ नहीं हुआ, बल्कि इसका ठीक उल्टा हुआ। गुरुदेव ने सदाशिव स्वामी को फटकार लगाई। बोले- सदाशिव, श्रेष्ठ चिंतन की सार्थकता तभी है, जब उससे श्रेष्ठ चरित्र बने एवं श्रेष्ठ चरित्र तभी सार्थक है, जब वह श्रेष्ठ व्यवहार बनकर प्रकट हो। तुमने वेदांत का चिंतन तो किया, पर सच्चे ज्ञानी साधक का चरित्र नहीं गढ़ सके और न ही तुम योग्य साधक का व्यवहार करने में समर्थ हो पाए। इसलिए तुम्हारे अब तक के सारे अध्ययन-चिंतन को बस धिक्कार योग्य ही माना जा सकता है। गुरुदेव के इन वचनों को सुनकर सदाशिव स्वामी का अहंकार चूर-चूर हो गया। उन्होंने बड़े ही विनम्र भाव से पूछा- गुरुदेव, श्रेष्ठ व्यक्तित्व कैसे गढ़ा जाए? गुरुदेव बोले- वत्स। व्यक्तित्व को नए सिरे से गढ़ने के लिए पहले अपने विचारों में उसकी रूपरेखा स्पष्ट होनी चाहिए। साधक के व्यक्तित्व के गठन के लिए साधक के चिंतन में हर पल उसकी ज्ञान-साधना घुली-मिली रहे।

७४) अहिंसा का पाठ- स्वामी विवेकानंद को व्यायाम का बड़ा शौक था। बचपन से ही अखाड़े में जाने के कारण और व्यायाम करने के कारण उनका शरीर अत्यंत बलिष्ठ था। उनके चेहरे पर एक चमक थी जो सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। एक दिन वो अपने मित्रों के साथ व्यायाम कर रहे थे कि तभी एक अंग्रेज नाविक किसी बात पर उनसे बहस करने लगा। बहस में उत्तेजित होकर अंग्रेज नाविक ने उन पर हाथ चला दिया। विवेकानंद ने अपने बचाव में बस अपना हाथ आगे किया जो व्यायामशाला के एक खंभे पर जा लगा। खंभा कमजोर था। वह सीधा अंग्रेज नाविक के

सिर पर गिरा। खंभा गिरते ही नाविक बेहोश हो गया। उसे काफी चोट पहुंची और खून बह निकला। अंग्रेज नाविक के सिर से खून बहते देख विवेकानंद के सभी मित्र बेहद घबरा गए और वहां से भाग गए। लेकिन विवेकानंद वहीं पर खड़े रहे। उन्होंने अंग्रेज नाविक के सिर को अपनी गोद में रखा। इसके बाद पानी से उसके घाव को साफ किया। वह उस पर पट्टी बांधने के लिए इधर-उधर देखने लगे। जब उन्हें नाविक की चोट पर बांधने के लिए कुछ नहीं मिला तो उनका ध्यान अपनी शर्ट पर गया। उन्होंने तुरंत अपनी शर्ट फाड़ी और कसकर नाविक के सिर पर बांध दी। इसके बाद उसकी आंखों पर पानी के छींटे डाले। नाविक धीरे-धीरे होश में आया। होश में आने पर वह यह देखकर दंग रह गया कि स्वामी जी उसे छोड़कर भागे नहीं बल्कि उन्होंने उसकी मरहम पट्टी की। इस घटना का नाविक पर गहरा असर हुआ। उस दिन के बाद से वह अंग्रेज नाविक विवेकानंद का मित्र बन गया और अहिंसा के मार्ग पर चलने लगा। वह अक्सर सब से कहता- स्वामी विवेकानंद ने मुझे अहिंसा का पाठ पढ़ाया है। मैं इस पाठ को आजीवन याद रखूंगा और अपने जीवन में उतारूंगा। विवेकानंद ने बाद में ऐसे ही कई लोगों के जीवन को प्रभावित किया।

७५) ज्ञान का प्रकाश- एक संत के शिष्य ने उनसे पूछा- गुरुवर। शिक्षा का निचोड़ क्या है? इस पर संत ने मुस्कराकर कहा- एक दिन तुम स्वयं जान जाओगे। उस समय बात आई-गई हो गई, लेकिन कुछ समय बाद एक रात संत ने उस शिष्य को एक पुस्तक देकर कहा- वत्स। इस पुस्तक को मेरे कमरे में एक तख्त पर रख दो। शिष्य पुस्तक लेकर कमरे में गया, लेकिन तत्काल उसे कमरे में रखे बिना ही लौट आया। वह डर से कांप रहा थां संत ने पूछा- क्या हुआ? इतना डरे हुए क्यों हो? शिष्य ने कहा- गुरुवर। कमरे में सांप है। संत ने कहा- यह तुम्हारा भ्रम होगा। कमरे में सांप कहां से आएगा। तुम फिर जाओ। शिष्य फिर आया। उसने किसी मंत्र का जाप भी किया, लेकिन सांप उसी स्थान पर था। वह डरकर फिर बाहर आ गया और संत से बोला- सांप वहां से जा ही नहीं रहा है। संत ने कहा- इस बार तुम दीपक लेकर जाओ। सांप होगा तो दीपक के प्रकाश से भाग जाएगा। शिष्य इस बार दीपक लेकर गया तो देखा कि वहां सांप नहीं है। सांप की जगह एक रस्सी लटकी हुई थी। अंधकार के कारण शिष्य को रस्सी का वह टुकड़ा सांप नजर आ रहा था। कमरे से बाहर आकर उसने कहा- गुरुवर। वहां सांप नहीं, रस्सी का टुकड़ा है। अंधेरे में मैंने उस रस्सी के टुकड़े को सांप समझ लिया था। संत ने कहा- वत्स। इसी को भ्रम कहते हैं।

७६) सिक्कों की चमक- अवंतिका राज्य के नगर सेठ उदयमल नियमित दान दिया करते थे। लेकिन जब वे भिक्षुओं की झोली में अन्न डालते, तब अपने हृदय की झोली में देने का घमंड भी डालते जाते थे। उनकी इच्छा थी कि अपने दान के कारण वे राजा भोज और भामाशाह की पंक्ति में गिने जाएं। संयोग से राजकुमारी के विवाह के अवसर पर आभूषण बेचने से सेठ को काफी लाभ हुआ। एक दिन सेठ ने अपनी माता के सामने लाखों के मुनाफे का बखान किया। सेठ की मां बड़ी सरल और साधारण थीं। बोलीं- बेटा, क्या एक लाख सिक्के एक संदूक में आ जाते होंगे? सेठ ने कहा- नहीं मां, उससे भी अधिक होते हैं। मैं कल ही उनका ढेर लगवा दूंगा। देख लेना कितने होते हैं। दूसरे दिन हवेली के आंगन में लाख सिक्कों का ढेर लग गया। सेठ की मां ने जीवन में पहली बार चांदी के चमकते सिक्कों का इतना बड़ा ढेर देखा था। उनकी आंखें चमचमा उठीं और वह ढेर के ऊपर जा बैठीं। मां को खुश देख सेठ बोले- मेरी इच्छा है कि मैं राज पुरोहित को

बुलाकर यह विशाल धन उन्हें दान करूं। इससे मेरे दान की महिमा राजदरबार तक पहुंचेगी। लोग मुझे उपाधियां देने आएंगे। सेठ ने राज पुरोहित से कहा- राजपुरोहित जी। मैं ये लाख सिक्कों का ढेर आपको दान देना चाहता हूं। ऐसा दान आपने किसी हवेली में देखा-सुना न होगा। सेठ का अभिमान उनके चेहरे पर चमक रहा था। राज पुरोहित की विद्वता और ज्ञान को सेठ का यह अभिमान सहन नहीं हुआ। उन्होंने अपनी जेब से एक सिक्का निकाला और ढेर पर डाल कर कहा- सेठ-जी। आपके सिक्कों के ढेर पर अपना भी सिक्का देकर इन सबको त्यागता हूं। फिर उन्होंने जोर से कहा- सेठजी। आपने भी इतना विशाल त्याग कहीं देखा-सुना न होगा। यह कहकर राजपुरोहित चले गए।

७७) मां का संदेश- जापान में आए एक भयंकर भूकंप की सच्ची घटना है। भूकंप के बाद, जैसे ही सब शांत हो गया, बचाव दल के सदस्य एक खंडहर में पहुंचे तो देखा कि एक स्त्री का शरीर पड़ा है। उसका शरीर ऐसे झुका हुआ था मानो प्रार्थना की मुद्रा में हो। उसने शरीर आगे की ओर झुकाकर दोनों हाथ किसी वस्तु से टिका रखे थे। खंडहर के किसी भारी अंश ने उसकी कमर व सिर को बुरी तरह घायल कर दिया था। काफी मुश्किल से बचाव दल का लीडर खंडहर में एक तंग जगह से घुसकर उस स्त्री तक पहुंच गया। उसे आशा थी कि वह शायद जीवित हो। लेकिन उसका शरीर बिल्कुल ठंडा और अकड़ा था। टीम के सदस्य किसी दूसरे मकान की ओर निकल गए। लेकिन लीडर के मन की आवाज ने उसे वापस उसी मृत स्त्री के पास लौटा दिया। वह घुटनों के बल बैठकर मृत स्त्री के नीचे की खाली जगह से कुछ ढूंढने का प्रयास करने लगा। अचानक, वह चिल्ला उठा, एक बच्चा... यहां एक बच्चा है। पूरी टीम वापस आई। उसके सदस्य महिला के आसपास के मलबे को हटाने लगे। एक तीन माह का बालक, एक सुंदर कंबल में लिपटा, स्त्री के मृत शरीर के नीचे पड़ा था। साथ है, उस मां ने अपने बच्चे को बचाने के लिए अपने प्राण गंवा दिए थे। जब महिला का मकान गिर रहा था, उसने अपने शरीर को ढाल बना कर बच्चे को बचा लिया था। जब टीम लीडर ने उस बच्चे को उठाया तो वह शांत सो रहा था। डाक्टरों ने फौरन बच्चे की जांच की। कंबल उतारा तो देखा उसके अंदर एक सेलफोन था। फोन के स्क्रीन पर एक संदेश था अगर तुम बच गए तो याद रखना तुम्हारी मां तुम्हें बहुत प्यार करती है। सारे उपस्थित लोग उस संदेश को बारी-बारी पढ़ रहे थे। जिसने भी पढ़ा, उसकी आंखें छलछला उठीं।

७८) सच्चा साधु- एक दिन भगवान बुद्ध ने सोचा अपने शिष्यों को दीक्षा देने के बाद उनकी परीक्षा ली जाए। उन्होंने शिष्यों से कहा, तुम सभी जहां कहीं भी जाओगे वहां तुम्हें अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के लोग मिलेंगे। अच्छे लोग तुम्हारी बातों को गौर से सुनेंगे और तुम्हारी सहायता करेंगे। लेकिन बुरे लोग तुम्हारी निंदा करेंगे और तुम्हें गालियां देंगे। तुम्हें इससे कैसा लगेगा? एक गुणी शिष्य ने बुद्ध को जवाब दिया, मैं तो किसी को बुरा नहीं समझता। यदि कोई मेरी निंदा करेगा या मुझे गालियां भी देगा तो मैं समझूंगा कि वह भला व्यक्ति है क्योंकि उसने मुझे सिर्फ गालियां ही दीं, कम से कम मुझ पर धूल तो नही फेंकी। बुद्ध ने पूछा, और यदि कोई तुम पर धूल ही फेंक दे तो? फिर भी मैं उसे भला ही कहूंगा क्योंकि उसने सिर्फ धूल ही तो फेंकी, थप्पड़ तो नहीं मारा। और कोई थप्पड़ ही मार दे तो क्या करोगे? मैं उन्हें बुरा नहीं कहूंगा क्योंकि उन्होंने मुझे थप्पड़ ही तो मारा, डंडा तो नहीं मारा। यदि कोई डंडा मार दे तो? मैं उसे धन्यवाद दूंगा क्योंकि उसने मुझे डंडे से ही मारा, हथियार से तो नहीं मारा। लेकिन डाकू तुम पर घातक हथियार से प्रहार कर सकते हैं। मैं तो

उन्हें दयालु ही समझूंगा, क्योंकि वे मारते ही हैं, मार नहीं डालते और यदि वे तुम्हें मार ही डालें तो? शिष्य बोला, इस जीवन और संसार में केवल दु:ख ही है। जितना अधिक जीवित रहूंगा उतना अधिक दु:ख देखना पड़ेगा। जीवन से मुक्ति के लिए आत्महत्या करना तो महापाप है। यदि कोई जीवन से ऐसे ही छुटकारा दिला दे तो उसका भी उपकार मानूंगा। शिष्य के यह वचन सुनकर बुद्ध को संतोष हुआ। बोले- तुम ही सच्चे साधु हो। जो दूसरों में बुराई नहीं देखता वही सच्चा परिव्राजक होने के योग्य है। तुम सदैव धर्म के मार्ग पर चलोगे।

७९) शाहबाजपुर के एक उद्यान में स्वामी दयानंद ने अपना डेरा लगा रखा था। वह दोपहर के भोजन के पश्चात कुछ देर यही कोई पंद्रह-बीस मिनट आराम करते। लेट जाते। आंखें बंद होती। हल्की-सी झपकी लेकर स्वत: उठ बैठते। निश्चित समय से एक मिनट भी अधिक विश्राम न करते।

आज भी लेटे ही थे कि कुछ लोग उन्हें मिलने आ पहुंचे। उन्हें रोकने तथा बतानेवाला कोई न था। यदि होता तो भी वे जबरदस्ती आ पहुंचे। उन्हें स्वामीजी को कोई विशेष सूचना जो पहुंचानी थी। पांव की आहट सुनकर स्वामी दयानंद उठकर बैठ गए। चैनसिंह तुम। कासगंज से कब आए? और साथ में ये कौन है।

स्वामीजी। एक शोक समाचार लेकर आया हूं। अभी-अभी यहां पहुंचा ही हूं। ये भी मेरे मित्र हैं। तथा आपके खूब प्रशंसक। कहो। कैसा समाचार? जी, स्वामीजी। श्री विरजानंद दंडी महाराज नहीं रहे। उनका देहांत क्वार बदी १३ संवत् १९२५ को हो गया है। इतना सुनते ही दयानंद सरस्वती का चेहरा उतर गया। रंग देखते ही देखते सौम्य से पीला पड़ने लगा। उन्होंने मुंह से कोई शब्द नहीं बोला। आंखें बंद कर लीं। उनकी आंखों से आंसू गिरने लगे। पद्मासन में बैठे स्वामीजी की टांगों को भिगोने लगे। जो अपने घर को, माता-पिता, भाई-बंधुओं को त्यागते समय जरा भी उदास नहीं हुआ, आज रो रहा है। उन्हें रह-रहकर गुरु का प्यार, दुलार, डांट, दंड सब याद आते गए। बहुत देर तक यों ही गुरु की याद में मौन बैठे रहे। बहुत देर बाद बोले आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है।

८०) सच्चे प्रेम का मतलब- स्वामी रामतीर्थ उन दिनों अमेरिका में थे। लोग उनके पास अपनी समस्याएं लिए आते और संतोष की मुस्कान के साथ लौटते थे। एक दिन एक महिला आई, जो बड़ी गुमसुम थी, अवसाद के कुहासे में घिरी हुई। किसी ने उसे बताया था कि स्वामी रामतीर्थ उसकी समस्या सुलझा सकते हैं। वह जैसे-तैसे आ तो गई थी, पर कुछ बोल पाने में असमर्थ थी। काफी देर वह जड़ बैठी रही। रामतीर्थ ने भी उससे कुछ कहा नहीं, बस करुणा भरी नजरों से उसे निहारते रहे। थोड़ी देर बाद महिला रोने लगी। स्वामीजी बस उसे स्नेह भाव से निहारे जा रहे थे। फिर आंसू भरी आंखों से, भरे हुए गले से उसने अपनी कथा सुनाई। कथा का सार यह था कि वह प्रेम में छली गई थी। तन-मन-धन, सब कुछ लुटाने के बाद भी उसे धोखा मिला था, हताशा मिली थी। उसकी सारी बातें सुनने के बाद रामतीर्थ बोले बहन, यहां हर कोई अपनी क्षमता के अनुसार ही बर्ताव करता है। जिसके पास जितनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक क्षमता है, वह उसी के अनुसार व्यवहार करने के लिए विवश है। जिनकी भावनाएं स्वार्थ एवं कुटिलता में सनी हैं, वे तो बस केवल क्षमा के पात्र है। उन्हें प्रेमपूर्ण हृदय से क्षमा कर देना चाहिए। बड़े ही विवश हैं वे बेचारे। इस पर महिला का प्रश्न था- तब क्या जीवन में सच्चा प्रेम पाना असंभव है? स्वामी रामतीर्थ ने कहा- ऐसा नहीं है। सच्चा प्रेम मिलता है, पर उन्हें

जो सच्चा प्रेम करना जानते हैं। इस पर महिला बोली- मेरा प्रेम भी तो सच्चा था। स्वामीजी बोले- नहीं बहन, तुम्हारे प्रेम में स्वार्थ था। कुछ पाने की अपेक्षा थी। जबकि सच्चे प्रेम में कुछ पाने की भावना नहीं होती, सिर्फ देने का ही भाव होता है। सच्चा प्रेम सेवा, करुणा एवं श्रद्धा के रूप में ही प्रकट होता है। वह महिला उनका आशय समझ गई।

८१) दयानंद का जवाब- आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद ने अपने समय में एक बड़ी सामाजिक-धार्मिक क्रांति की थी। वेदों के अलावा और भी अनेक विषयों का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। उनकी प्रतिभा का लोहा सभी मानते थे पर अनेक विद्वान मन ही मन उनसे ईर्ष्या भी करते थे। वे उन्हें नीचा दिखने का मौका ढूंढते रहते थे। पर दयानंद इससे विचलित नहीं होते थे। वे अपनी प्रखर बौद्धिकता और विनोदप्रियता से उन्हें मात दे देते थे। अनेक विरोधी बड़े उत्साह और जोश से उनके पास आते लेकिन उनसे पराजित होकर लौट जाते थे। एक दिन दक्षिण से जिज्ञासुओं का दल उनसे अपनी शंका का समाधान कराने आया। दयानंद ने उन सबका यथोचित स्वागत किया और प्रेमपूर्वक बैठने को कहा। उनमें से वेंकटगिरी नामक एक अतिथि बोला- जिस आसन पर आप विराजते हैं, मैं तो वहीं बैठूंगा। दयानंद ने उसके लिए अपना आसन छोड़ दिया। तभी आंगन में एक पेड़ पर बैठा कौवा कांव-कांव करने लगा। दयानंद बोले- देख लीजिए, वह कौवा कितने ऊंचे स्थान पर बैठा है। पर क्या केवल उच्च स्थान पर बैठने से कौवा भी विद्वान माना जाएगा? तभी एक अन्य सज्जन ने उन्हें घेरने के लिए प्रश्न किया- बताइए, आप विद्वान है या एक सामान्य पुरुष? दयानंद उसका आशय समझ गए। उन्होंने सोचा कि अगर वे स्वयं को विद्वान कहेंगे तो उसमें आत्मप्रशंसा झलकेगी और यदि स्वयं को सामान्य बताएंगे तो प्रश्न उठेगा कि उन्हें दूसरों को उपदेश देने का अधिकार कैसे मिला? उन्होंने कहा- भाइयो, मैं वेद, व्याकरण, धर्म, दर्शन का विद्वान हूं पर व्यापार, चिकित्साशास्त्र आदि में एकदम शून्य। दयानंद का यह उत्तर सुनकर उन लोगों की बोलती बंद हो गई। उन्होंने उनसे क्षमा मांगी।

८२) मन की शक्ति - उन दिनों स्वामी विवेकानंद देश भ्रमण में लगे थे। साथ में उनके एक गुरु भाई भी थे। जहां कहीं अच्छे ग्रंथ मिलते, वे उनको पढ़ना नहीं भूलते थे। किसी नई जगह जाने पर उनकी सबसे पहली तलाश किसी अच्छे पुस्तकालय की रहती। एक जगह एक पुस्तकालय ने उन्हें बहुत आकर्षित किया। उन्होंने सोचा, क्यों न यहां थोड़े दिनों तक डेरा जमाया जाए। उनके गुरुभाई उन्हें पुस्तकालय में संस्कृत और अंग्रेजी की नई-नई किताबें लाकर देते थे। स्वामीजी उन्हें पढ़कर अगले दिन वापस कर देते। रोज नई किताबें वह भी पर्याप्त पृष्ठोंवाली- इस तरह से देते एवं वापस लेते हुए उस पुस्तकालय का अधीक्षक बड़ा हैरान हो गया। उसने स्वामीजी के गुरुभाई से कहा- क्या आप इतनी सारी नई-नई किताबें केवल देखने के लिए ले जाते हैं? यदि इन्हें देखना ही है तो मैं यों ही यहां पर दिखा देता हूं। रोज इतना वजन उठाने की क्या जरूरत है। लाइब्रेरियन की इस बात पर स्वामीजी के गुरु भाई ने गंभीरतापूर्वक कहा- हमारे गुरु भाई इन सब पुस्तकों को पूरी गंभीरता से पढ़ते हैं, फिर वापस कर देते हैं। लाइब्रेरियन ने कहा- यदि ऐसा है तो मैं उनसे मिलना चाहूंगा। अगले दिन स्वामीजी उससे मिले और कहा- महाशय आप हैरान न हों। मैंने न केवल उन किताओं को पढ़ा है बल्कि उनको याद भी कर लिया हैं। इतना कहते हुए उन्होंने कुछ किताबें उसे थमाई और उनके कई महत्वपूर्ण अंशों को शब्दश: सुना दिया। लाइब्रेरियन चकित रह गया। उसने उनकी याददाश्त का रहस्य पूछा। स्वामीजी बोले- अगर पूरी

तरह एकाग्र होकर पढ़ा जाए तो चीजें दिमाग में अंकित हो जाती हैं। पर इसके लिए आवश्यक है कि मन की धारण शक्ति अधिक से अधिक हो और यह शक्ति अभ्यास से ही आती है।

८३) संत की पहचान - गुरु और शिष्य भ्रमण पर निकले थे। अनेक विषयों पर चर्चा चल रही थी। अचानक साधुओं के चरित्र का प्रसंग निकल गया। शिष्य का प्रश्न था कि कुछ लोग आंख मूंदकर साधु-संतों पर विश्वास करते हैं तो कुछ लोग उन पर संदेह भी करते हैं। इस पर गुरु का कहना था कि सारे संत एक जैसे हों, यह आवश्यक नहीं। उनमें भी कई तरह के लोग पाए जाते हैं। दोनों चलते हुए एक ऐसे इलाके में पहुंचे, जहां अनेक संतों के आश्रम थे। एक जगह उन्होंने देखा कि एक साधु ध्यान की मुद्रा में बैठा है। लोग आते और वहां पैसे, फल-फूल आदि रखकर चले जाते। लोगों के जाते ही वह साधु पैसे गिनने में लग जाता। गुरु ने शिष्य से कहा-देखो, यह लोभी है। यह साधु बना ही इसलिए है कि धन कमा सके। दूसरे लोग कारोबार के जरिए पैसे कमाते हैं इसने धर्म को ही कारोबार बना लिया है। गुरु और शिष्य आगे बढ़े। आगे जाकर देखा कि एक साधु अपनी कुटिया के बाहर शीर्षासन कर रहा है। उसे देखने के लिए लोगों की भीड़ जमा थी। उस साधु को देख शिष्य जोर से हंसा। उसकी हंसी पर साधु को गुस्सा आ गया। वह उन्हें मारने दौड़ा। दोनों वहां से भागे। अगले आश्रम में उन्होंने देखा कि दरिद्रनारायण भोजन चल रहा है। एक साधु स्वयं अपने हाथों से गरीबों को भोजन परोस रहा था। इस बीच एक अन्य साधु ने उसे आवाज दी तो वह उसे भी पानी देने चला गया। गुरु ने कहा, देखा, तीन तरह के संत हैं। एक परम लोभी है, दूसरा साधना तो कर रहा है पर उसे क्रोध पर ही नियंत्रण नहीं है। फिर साधना का क्या मतलब है। इनको देखो, इनके चेहरे पर परम निश्चिंतता है। चेहरे पर जरा भी अहंभाव नहीं है। ये निर्धनों को प्रेमपूर्वक खिला रहे हैं और दूसरे साधु की सेवा भी कर रहे हैं। ये सच्चे संत हैं।

८४) पादरी का जवाब- बहुत पुरानी कथा है। यूरोप में एक व्यक्ति था, जो अक्सर धर्मग्रंथों का मजाक उड़ाया करता था। वह विचार से नास्तिक था पर वह ईश्वर में विश्वास करनेवालों का सम्मान नहीं करता था। एक दिन वह एक पादरी के पास पहुंचा। उसका मकसद पादरी की खिंचाई करना था। उसने पादरी से पूछा- अगर मैं खजूर खाऊं तो क्या मुझे पाप लगेगा? पादरी ने सहजता से कहा- नहीं। उस व्यक्ति ने फिर पूछा- और अगर मैं खजूर के साथ थोड़ा पानी मिला लूं तो क्या मुझे पाप लगेगा? पादरी ने उसी तरह कहा- इससे भी कोई अंतर नहीं पड़ेगा। उस शख्स ने फिर अगला सवाल पेश किया- और महोदय, यदि मैं उस खजूर में पानी के साथ थोड़ा खमीर मिला लूं तो क्या यह धार्मिक दृष्टि से गलत होगा? पादरी ने उसकी मंशा ताड़ ली पर उन्होंने बिना झुंझलाए कहा- बिल्कुल नहीं। उस पर उस व्यक्ति ने दलील दी- फिर धर्मग्रंथों में शराब पीना पाप क्यों बताया गया है, जबकि शराब इन्हीं तीनों से मिलकर बनती है। पादरी ने इसका जवाब देने की बजाय उससे प्रश्न किया- अगर मैं तुम पर मुट्ठी भर धूल फेंकू तो क्या तुम्हें चोट लगेगी। इस पर उस व्यक्ति ने कहा- नहीं तो। पादरी ने कहा- और अगर मैं धूल में थोड़ा पानी मिलाकर फेंकू तो क्या तुम्हें चोट लगेगी? उस व्यक्ति ने सिर हिलाकर कहा- नहीं। पादरी ने मुस्कराते हुए फिर पूछा- और अगर मैं उस मिट्टी और पानी में कुछ पत्थर मिलाकर तुम्हारे ऊपर फेंकू तो क्या होगा? चोट लगेगी कि नहीं। यह सवाल सुनकर वह थोड़ा घबराया। उसने कुछ सोचकर कहा- मेरा तो सिर ही फूट जाएगा। पादरी ने कहा- मुझे विश्वास है कि तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा। वह व्यक्ति

शर्मिंदा हो गया। उसने अपने व्यवहार के लिए पादरी से क्षमा मांगी।

८५) लिंकन का दोस्त- अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के पास रोज अनेक पत्र आते थे। अपने देश ही नहीं, दूसरे देशों से भी उन्हें लोग चिट्ठी लिखते थे। दिलचस्प बात तो यह थी कि समाज के हर वर्ग के लोग उन्हें पत्र भेजते थे। लिंकन के मन में उन पत्रों के लिए बेहद सम्मान था। वह चाहते थे कि हरेक पत्र को खुद पढ़ें और उनका जवाब जरूर दें। इसके लिए वह खास तौर से समय निकालते थे। तमाम व्यस्तताओं के बीच वह पत्रों को जवाब देने का काम करते रहते। कई बार कुछेक अधिकारियों और सहयोगियों ने साहस करके उनसे कहा भी कि वे इस पर अपना समय नष्ट न करें और दूसरे कार्यों को महत्व दें। पर उन्होंने साफ कह दिया कि जनता से संवाद बनाए रखना उनके लिए बेहद जरूरी है। राष्ट्रपति के रूप में यह उनका सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। इससे वे जान सकते हैं कि जनता के मन में क्या चल रहा है। जनता को भी यह जानने का अधिकार है कि उनका राष्ट्रपति उन्हें लेकर क्या सोचता है। उनके पास क्षमा दान के लिए भी पत्र आते थे, जिनमें खास तौर से फांसी की सजा पाए कैदी क्षमा का अनुरोध करते थे। ऐसे पत्रों के साथ किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति की सिफारिशी चिट्ठी भी होती थी। एक दिन एक सैनिक का पत्र लिंकन को मिला, लेकिन उसके साथ कोई सिफारिश नहीं थी। सैनिक ने विस्तार से अपने जीवन के बारे में और उस वारदात के बारे में लिखा था, जिसमें उसे सजा मिली थी। लिंकन ने पत्र की भाषा से ही यह अनुमान लगा लिया कि वह निर्दोष है। उन्होंने सचिव से पूछा- क्या इस सैनिक की किसी बड़े आदमी से जान-पहचान नहीं है, जो इसकी सिफारिश कर सके? सचिव ने कहा- शायद ही ऐसा हो। लिंकन ने कहा- फिर वह मुझे अपना दोस्त समझे। उसकी सिफारिश मैं करता हूं और सैनिक को क्षमादान मिल गया।

८६) बिना बांह का कुर्ता- दादा कोण्डदेव शिवाजी के प्रमुख दरबारियों में एक थे। वह शिवाजी के शस्त्र-विद्या के गुरु और सलाहकार भी थे। एक बार गर्मी के दिनों में दादा कोण्डदेव दरबार से अपने निवास लौट रहे थे। रास्ता राज उद्यान से होकर जाता था। उद्यान से गुजरते समय उनकी नजर आमों से लदे पेड़ की ओर गई। रसीले आम देखकर उनका मन ललचा उठा और उन्होंने चटनी के लिए कुछ आम तोड़ लिए। घर ले जाकर उन्होंने पत्नी से उनकी चटनी बनाने के लिए कहा। पत्नी ने पूछा, ये आपको कहां से मिले? कोण्डदेव बोले, राज उद्यान से तोड़े हैं। उनकी पत्नी बोली, क्या आपने आम तोड़ने से पहले आज्ञा ली थी? यह सुनकर कोण्डदेव को अपनी भूल का अहसास हुआ। उन्होंने प्रायश्चित के लिए अपनी पत्नी से सलाह मांगी तो वह बोलीं, जो हाथ चोरी के लिए बढ़े, उन्हें राष्ट्रहित को देखते हुए काटकर अलग कर देना चाहिए जिससे यह गलती दोबारा न हो। इतना सुनते ही कोण्डदेव ने घर में रखी तलवार निकाल कर ज्यों ही अपना हाथ काटना चाहा, उनकी पत्नी ने उन्हें पकड़ लिया और बोली, आपके ये हाथ आपके न होकर राष्ट्र के हैं। इन्हें काटकर आप राष्ट्र को नुकसान पहुंचाएंगे। प्रण कीजिए कि आज के बाद इनसे होनेवाले सभी कार्य राष्ट्रहित में ही होंगे। इस पर कोण्डदेव बोले, पर यह कैसे पता चलेगा कि इन हाथों ने अपराध किया था। पत्नी बोली, यदि ऐसा है तो कुर्ते की बांह काटकर प्रायश्चित संभव है। कोण्डदेव ने वैसा ही किया। अगले दिन जब वे बिना बांह का कुर्ता पहनकर दरबार गए तो लोगों में हंसी की लहर दौड़ गई। कारण पूछने पर उन्होंने सारी बात बता दी। इससे सभी दरबारी बहुत प्रभावित हुए। इसके बाद दादा कोण्डदेव ने जीवन भर बांहवाला कुर्ता नहीं पहना।

८७) सफलता का राज- एक बार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एक सभा में मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित थे। कार्यक्रम की समाप्ति पर जब उन्होंने अपना वक्तव्य दिया तो लोग चकित रह गए। उनके भाषण ने सबका मन मोह लिया। जब उनका वक्तव्य समाप्त हुआ तो लोग मानो नींद से जागे। तालियों की गड़गड़ाहट से पूरा हॉल गूंज उठा। कुछ श्रोतागण उन्हें घेरकर खड़े हो गए। एक श्रोता ने पूछा, तिलक जी, आप अत्यंत ओजस्वी वक्ता हैं, प्रकांड विद्वान और देशभक्त हैं। आखिर आप इतने सारे कार्य एक साथ कैसे कर पाते हैं? इस पर तिलक बोले- समय-सारिणी बनाकर व्यक्ति ढेर सारे कार्यों को अंजाम दे सकता है। मैं निरंतर पुस्तकों का अध्ययन करता हूं, राजनीति में होनेवाले प्रत्येक परिवर्तन पर नजर रखता हूं, समयानुसार कार्य करता हूं। किसी से द्वेष भाव नहीं रखता। यह बात सुनकर दूसरा श्रोता बोला, समय-सारिणी बनाकर भी अधिक कार्य को करना संभव नहीं होता। फिर कई बार अधैर्य और चिंता, समय-सारिणी के अनुसार काम ही नहीं करने देतीं। आप तो बस हमें अपनी सफलता का राज बताएं। दूसरे श्रोता की बात पर तिलक मुस्कराकर बोले, भइया मेरी सफलता का राज केवल इतना है कि मैं हर कार्य को तनावमुक्त होकर अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार करता हूं, इस पर ध्यान नहीं देता कि लोग मेरे बारे में क्या बातें कर रहे हैं। समय सबके पास इतना ही होता है लेकिन वे उसे अधिकतर इस बात में व्यर्थ कर देते हैं कि दूसरे उनके बारे में क्या बातें कर रहे हैं? फिर अपनी निंदा अक्सर लोग सहन नहीं कर पाते और दूसरे व्यक्ति से उलझकर उसमें अपना समय व्यर्थ कर देते हैं।

८८) सुख और शांति- संत सिद्धेश्वर एक दिन एक टीले पर बैठे थे। तभी एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला, प्रणाम, मैं सेठ मणिमल हूं। मेरा एक मित्र है सुखीराम। उसका नाम तो सुखीराम है लेकिन उसके जीवन में सुख का अभाव है। मैं विश्व भ्रमण करके लौट रहा हूं। जब मैंने अपने मित्र से पूछा था कि मैं उसके लिए क्या उपहार लेकर आऊं तो उसने मुझसे सुख और शांति मांगी। मैं समझ नहीं पाया कि ये वस्तुएं उसे कैसे दूं। लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगा कि मैं अपने दुखी मित्र को और निराश करूं सो मैंने सोचा कि उसे उपहार दूंगा अवश्य। लेकिन कौन सी वस्तु दूं जिससे सुख और शांति प्राप्त हो, यह नहीं समझ सका। उसके पास धन की कोई कमी तो है नहीं फिर उसे क्या दिया जाए, यह समझ में नहीं आ रहा था। मैंने बाजारों की खाक छानी पर कुछ नहीं मिला। किसी ने आपके पास आने का सुझाव दिया और कहा कि आप मुझे अवश्य सुख और शांति दे सकते हैं। संत ने उससे कागज और कलम मांगी। वह उस पर कुछ लिखकर देते हुए बोले, इसमें सुख और शांति मौजूद है। लेकिन इसे आप तब तक मत पढ़ना जब तक आपका मित्र इसे न पढ़े क्योंकि यह उसी के लिए है। संत की बात सुनकर सेठ सिर झुकाकर बोला, जी महाराज, मैं ऐसा ही करूंगा। इसके बाद उसने अपने मित्र सुखीराम को वह कागज थमा दिया। कागज में लिखे वाक्य पढ़कर सुखीराम अत्यंत प्रसन्न हो गया और बोला, दोस्त, आखिर तुमने मेरी मित्रता निभाई और मेरे लिए सबसे अनमोल वस्तुएं सुख व शांति खोज ही लाए। सुखीराम की बात पर सेठ मणिमल ने कागज पढ़ा। उस पर लिखा था, अगर मन में विवेक की चांदनी छिटकती हो, संतोष व धैर्य की धारा बहती हो, तो उसमें सुख और शांति का निवास होता है।

८९) संतोष का धन - पंडित श्रीरामनाथ नगर के बाहर एक कुटिया में अपनी पत्नी के साथ रहते थे। एक दिन जब वे विद्यार्थियों को पढ़ाने जा रहे थे, उनकी पत्नी ने उनसे पूछा- आज भोजन क्या बनेगा? घर में एक मुट्ठी चावल ही है। पंडित

जी ने पत्नी की ओर पलभर के लिए देखा और बिना कोई उत्तर दिए चले गए।

भोजन के समय जब उन्होंने थाली में थोड़े-से चावल और उबली हुई कुछ पत्तियां देखी तो पत्नी से पूछा- भद्रे, यह स्वादिष्ट शाक किसका है? पत्नी बोली- मेरे पूछने पर आपकी दृष्टि इमली के वृक्ष की ओर गई थी। मैंने उसी के पत्तों का साग बनाया है। पंडित जी ने बड़ी ही निश्चिंतता से कहा- इमली के पत्तों का शाक इतना स्वादिष्ट होता है। तब तो हमें भोजन की कोई चिंता ही नहीं रही। जब नगर के राजा शिवचंद्र को पंडित जी की गरीबी का पता चला तो उन्होंने पंडित जी के सामने नगर में आकर रहने का प्रस्ताव रखा, किन्तु उन्होंने मना कर दिया। तब राजा ने स्वयं उनकी कुटिया में जाकर यह बात पूछने का निर्णय किया। हालांकि वह समझ नहीं पा रहे थे कि यह बात कैसे पूछें। काफी देर असमंजस में रहने के बाद उन्होंने पूछा- आपको किसी चीज का अभाव तो नहीं? पंडित जी हंसकर बोले- यह तो मेरी पत्नी ही जानें। तब राजा ने वही बात उनकी पत्नी से पूछी। वह बोलीं- राजन्, मेरी कुटिया में कोई अभाव नहीं। मेरे पहनने का वस्त्र अभी इतना नहीं फटा कि उपयोग में न आ सके। जल का मटका अभी तनिक भी फूटा नहीं है और फिर मेरे हाथ में जब तक चूड़ियां हैं, मुझे क्या अभाव। उस देवी की बातें सुनकर राजा उनके समक्ष श्रद्धा से झुक गए। वह चुपचाप लौट आए।

९०) परिंदों के साथ - एक व्यक्ति किसी प्रसिद्ध सूफी संत के पास धर्म संबंधी ज्ञान हासिल करने गया। उस फकीर की चारों ओर ख्याति थी। कहा जाता था कि उनके आशीर्वाद से बीमार लोग स्वस्थ हो जाते थे और बहुतों की परेशानियां दूर हो जाती थीं। दूर प्रांतों से दुखी-पीड़ित लोग उनके यहां दुआएं मांगते और प्रसन्न होकर जाते।

जब वह व्यक्ति संत के पास पहुंचा तो उसने देखा कि संत के हाथ में एक टोकरी थी और वे उसमें से दाना निकालकर पक्षियों को चुगा रहे थे। परिंदे मजे में दाना चुग रहे थे। यह देख संत किसी बच्चे की तरह खुश हो रहे थे। इस तरह दाना चुगाते हुए लंबा समय बीत गया। संत ने उस व्यक्ति की ओर देखा तक नहीं। वह शख्स परेशान हो गया और जब वह संत की ओर बढ़ा, तो संत ने उसे बिना कुछ कहे उसके हाथ में टोकरी थमा दी और कहा- अब तुम पक्षियों के साथ मजे करो। वह व्यक्ति सोचने लगा, कहां मैं इनसे आध्यात्मिक साधना का रहस्य जानने आया हूं और ये हैं कि मुझे पक्षियों को दाना चुगाने को कह रहे हैं।

संत ने उसके मन की बात पढ़ ली और बोले- स्वयं की परेशानियों को भुलाकर हर जीव को आनंद पहुंचाने का प्रयत्न ही जीवन की हर सिद्धि और आनंद का राज है। यदि तुम स्वयं सुख और आनंद पाना चाहते हो तो वही दूसरे को भी देना सीखो। तुम यदि यह साध सके तो समझ लो यही तुम्हारी साधना है। जो लोग आध्यात्मिकता को किसी खास नियम और जीवनशैली में देखते हैं वे उसके नैसर्गिक पक्ष से वंचित रह जाते हैं। फकीर की बात से वह व्यक्ति संतुष्ट हुआ।

९१) बहुत पुरानी बात है। एक राजा ने अपने मंत्री से पूछा कि चरित्र बड़ा है या ज्ञान। उसने कहा कि कुछ दिन बाद बताऊंगा। अगले दिन वह खजाने से चार अशर्फी उठा लाया। खजांची ने सोचा कि आज जल्दी में हैं कल बता देंगे किस लिए ले गये हैं। इस प्रकार कई दिन तक ऐसा करने पर खजांची बहुत परेशान हो गया क्योंकि वो मंत्री बहुत ही ईमानदार था तो खजांची समझ ही नहीं पा रहा था कि क्या किया जाये। अंत में उसने निश्चय किया कि अब तो राजा को बता ही देना चाहिए। उसने राजा को बता दिया कि मंत्री जी ऐसा कर रहे हैं। रोज अशर्फी ले जाते हैं और कुछ भी नहीं बताते। राजा को गुस्सा आ गया। उसने मंत्री को बुलाया और कहां कि तुम्हें फांसी पर चढ़ाया जायेगा। तुम बताना चाहोगे कि

तुमने ऐसा क्यों किया? मंत्री ने कहा कि महाराज ये आपके सवाल का जवाब है, कल जितना ज्ञान था आज भी मेरे पास उतना ही ज्ञान है परन्तु इन चार दिनों में मेरा चरित्र गिर गया है। जिसके कारण मुझे फांसी पर चढ़ाया जा रहा है। इसलिए ज्ञानी होना बड़ी बात नहीं है, बल्कि चरित्रवान होना बड़ी बात है।

९२) उस्ताद की सीख- उस्ताद बड़े गुलाम अली खां साहब को एक संगीत कार्यक्रम में मंच की ओर ले जाया जा रहा था। मंच के करीब आते ही वे अचानक रुक गए और आयोजकों से बोले, भाई, जिनसे मिलने मुझे बुलाया गया है, पहले उन लोगों के दर्शन तो कर लूं। जरा मेरी मुलाकात तो सबसे हो जाने दीजिए। इससे दर्शकों में हलचल मच गई। वे इस बात से उत्साहित हो गए कि उन्हें उस्ताद जी को काफी करीब से देखने का अवसर मिलेगा। हालांकि आयोजक थोड़ा परेशान हो गए। सोचने लगे कि पता नहीं क्या होगा। मंच के सामने संगीत के कुछ विद्यार्थी और कला प्रेमी जमा थे। उस्ताद विद्यार्थियों से संगीत के बारे मे पूछने लगे। वे हर व्यक्ति से एक सवाल जरूर करते थे- आपने संगीत में क्या-क्या सीखा है? हर विद्यार्थी बड़े गर्व से उत्तर दे रहा था- मैंने सौ राग सीख लिए हैं। कोई कहता- मैं विशारद कर रहा हूं। किसी का जवाब था- मैं एमए कर रहा हूं। किसी ने कहा- मुझे डेढ़-सौ राग-रागिनी याद हैं। सभी छात्र खुद को बहुत बड़ा संगीतज्ञ सिद्ध करने में जुटे थे। इतने स्वयंभू दिग्गजों के बीच पचास राग सीखा हुआ एक छात्र ही मिला। विद्यार्थियों की बातें सुनने के बाद उस्ताद मंच पर आए और सारे विद्यार्थियों की तरफ हाथ जोड़कर बोले- मेरे उस्तादो, मैं भला यहां क्या गा सकता हूं। आप सभी सौ-डेढ़ सौ राग जाननेवाले हैं और मुझे तो भैया इतने बरस हो गए रोज रियाज करते-करते, मगर अभी तक ठीक से सा लगाना भी नहीं आया। आप लोगों के सामने मैं गाने की हिम्मत कैसे कर सकता हूं। आप लोग ही कुछ सुनाइए, ताकि मैं कुछ सीख सकूँ। यह कहकर उस्ताद बैठ गए। चारों तरफ एक सन्नाटा छा गया। सब लोगों की निगाहें नीचे हो गईं। वे मन-ही-मन शर्मिंदा हो रहे थे।

९३) एक दिन तमिल और कर्नाटक प्रदेश की कई बहनें गांधीजी से मिलने के लिए आईं। कर्नाटक की बहनों में एक प्रौढ़ा थी और एक सोलह साल की लड़की। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने प्रौढ़ा का परिचय कराते हुए गांधीजी से कहा, यह वही बहन हैं, जिनके पति ने स्वयं आजीवन सूत कातने और एक हजार कातनेवालों की सेना इकट्ठी करने की प्रतिज्ञा ली है। वह सज्जन अपनी एक नोटबुक गांधीजी के पास छोड़ गए थे। चाहते थे कि गांधीजी उनकी प्रतिज्ञा का हिंदी अनुवाद अपने हाथ से अपने शब्दों में लिख दें। वह प्रौढ़ा वही नोटबुक लेने के लिए आई थी। गांधीजी बोले, जिस पर कातने का इतना रंग चढ़ा हो, भला उसकी पत्नी खादी क्यों न पहने? जब तक तुम खादी पहनकर नहीं आती तब तक नोटबुक नहीं मिल सकती। वह बहन बोलीं, अच्छी बात है, मैं खादी पहनकर ही नोटबुक लेने के लिए आऊंगी। अब गांधीजी उस लड़की की ओर मुड़े और पूछा, क्यों, तुम्हारा क्या विचार है? तुम खादी पहनोगी न? लड़की ने उत्तर दिया, अब पहनूंगी। यही बात गांधीजी ने तमिल बहनों से कही। वे भी खादी पहनने के लिए तैयार हो गईं। अब प्रश्न यह था कि पहले कौन पहनेगा? दोनों प्रांत की बहनें एक-दूसरे को हराने की बात कहने लगीं। इसी बीच कुछ और व्यक्ति आ गए। गांधीजी उनसे बातचीत पूरी कर भी न पाए थे कि क्या देखते हैं, कर्नाटक प्रदेश की दोनों बहनें खादी के कपड़े पहने हुए उनके सामने उपस्थित हैं। उन्हें देखकर गांधीजी चकित रह गए। बोले, तुमने तो गजब कर दिया। अब तो मुझे तुम्हारे पति के लिए

उस नोटबुक में अभी लिखकर देना पड़ेगा।

और सब काम छोड़कर उन्होंने तुरंत अनुवाद किया। नोटबुक में लिखा। साथ में एक पत्र भी लिखा, जिसमें उनकी पत्नी की प्रशंसा की। वह बोली, आपकी इस कृपा के लिए अनुगृहीत हूं। आपके सामने संकल्प करती हूं कि आज से खादी के अतिरिक्त और कुछ नहीं पहनूंगी। गांधीजी ने अब लड़की की ओर देखा। कहा, तूने भारी हिम्मत दिखाई है। तुझे तो दत्तक पुत्री बना लेने को जी चाहता है। अच्छा, अब अपनी शाला में खादी का प्रचार करेगी न? दृढ़ स्वर में उस लड़की ने कहा, अवश्य करूंगी। गांधीजी उन्हें विदा देते हुए बोले, अच्छा बहनो, फिर आना।

९४) एक विदेशी को अपराधी समझ जब राजा ने फांसी का हुक्म सुनाया तो उसने अपशब्द कहते हुए राजा के विनाश की कामना की। राजा ने अपने मंत्री से, जो कई भाषाओं का जानकार था, पूछा- यह क्या कह रहा है? मंत्री ने विदेशी की गालियां सुन ली थीं, किंतु उसने कहा- महाराज। यह आपको दुआएं देते हुए कह रहा है- आप हजार साल तक जिएं।

राजा यह सुनकर बहुत खुश हुआ, लेकिन एक अन्य मंत्री ने जो पहले मंत्री से ईर्ष्या रखता था, आपत्ति उठाई- महाराज। यह आपको दुआ नहीं गालियां दे रहा है। वह दूसरा मंत्री भी बहुभाषी था। इसने पहले मंत्री की निंदा करते हुए कहा- ये मंत्री जिन्हें आप अपना विश्वासपात्र समझते हैं, असत्य बोल रहे हैं। राजा ने पहले मंत्री से बात कर सत्यता जाननी चाही, तो वह बोला- हां महाराज। यह सत्य है कि इस अपराधी ने आपको गालियां दीं और मैंने आप से असत्य कहा।

पहले मंत्री की बात सुनकर राजा ने कहा- तुमने इसे बचाने की भावना से अपने राजा से झूठ बोला। मानव धर्म को सर्वोपरि मानकर तुमने राजधर्म को पीछे रखा। मैं तुमसे बेहद खुश हुआ।

फिर राजा ने विदेशी और दूसरे मंत्री की ओर देखकर कहा- मैं तुम्हें मुक्त करता हूं। निर्दोष होने के कारण ही तुम्हें इतना क्रोध आया कि तुमने राजा को गाली दी और मंत्री महोदय तुमने सच इसलिए कहा, क्योंकि तुम पहले मंत्री से ईर्ष्या रखते हो। ऐसे लोग मेरे राज्य में रहने योग्य नहीं। तुम इस राज्य से चले जाओ।

९५) बेकार की तपस्या- ऋषि भारद्वाज के पुत्र यवक्रीत को अपनी विद्वता पर काफी अभिमान था। वह सोचते थे कि अगर उन्होंने थोड़ी और विद्वता अर्जित कर ली तो लोगों में उनका आतंक हो जाएगा। उन्होंने इसके लिए तपस्या आरंभ कर दी। उन्हें कठोर तपस्या करते देख उनके एक शुभचिंतक आकर बोले- यवक्रीत, क्यों इस तरह कठोर तपस्या करके अपने शरीर को पीड़ा पहुंचा रहे हो। यवक्रीत ने कहा- स्वामीजी, मैं चाहता हूं कि मुझे संपूर्ण वेदों, उपनिषदों तथा शास्त्रों का ज्ञान बिना अध्ययन किए ही सुलभता से हो जाए। इस पर शुभचिंतक ने कहा- किंतु ज्ञान के लिए तो गुरु की और अभ्यास की आवश्यकता है। इस पर यवक्रीत हंस पड़े। शुभचिंतक बोले- उचित यह होगा कि किसी योग्य आचार्य के पास जाकर अध्ययन करो। परिश्रम के माध्यम से प्राप्त किया गया ज्ञान ही फलदायक होता है। इस पर यवक्रीत ने ध्यान नहीं दिया और तपस्या में लीन रहे। एक दिन वह स्नान करने के लिए गंगा तट पर पहुंचे। वहां देखा कि एक वृद्ध मुट्ठी में रेत भर-भर कर गंगा में डाल रहे थे। यवक्रीत ने इसका कारण पूछा तो वृद्ध ने जवाब दिया- पुत्र, मैं तैरकर उस पार जाने में समर्थ नहीं हूं इसलिए रेत का बांध तैयार करने में लगा हूं। इस पर यवक्रीत हंस पड़े। उन्होंने कहा- बेकार का परिश्रम कर अपने को मत थकाओ। बहती हुई गंगा की धारा में एक मुट्ठी बालू द्वारा बांध का निर्माण एक मूर्खतापूर्ण और

हास्यास्पद प्रयोग है जो कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। वृद्ध मुस्कुराते हुए बोले- यदि बिना गुरु की सहायता व अभ्यास के समस्त वेदों व शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने का तुम्हारा प्रयत्न सफल हो सकता है, तो यह भी संभव है। यवक्रीत उनका आशय समझ गए। उन्होंने तपस्या छोड़ दी और शास्त्रों के अध्ययन में लग गए।

९६) नदी और गांव- गौतम बुद्ध भिक्षाटन के लिए एक बड़े गांव में पहुंचे। वहां कुछ दूरी पर एक नदी बहती थी। उस नदी के कारण वह इलाका काफी उपजाऊ था, इसलिए वहां खुशहाली थी। नदी के दोनों तटों पर विभिन्न समुदायों के लोग रहते थे। उनमें एक-दूसरे के लिए प्रेम और सम्मान था। वे किसी भी संकट का मिलकर सामना करते थे। लेकिन गर्मी के मौसम ने उनमें तनाव पैदा कर दिया। हुआ यह कि इस बार कुछ ज्यादा ही गर्मी पड़ी थी। नदी में जल की मात्रा काफी कम हो गई इसलिए एक तट पर बसनेवाले लोग नदी से पानी अपने खेतों में पहुंचाने के लिए एक नहर निकालने की कोशिश करने लगे तो दूसरे तट पर रहनेवाले ग्रामवासियों ने उन्हें रोकते हुए कहा, यदि तुम लोग नहर निकालकर पानी को अपने खेतों में ले जाओगे तो हमारा क्या होगा? इस प्रकार दोनों तटों पर रहनेवाले लोगों के बीच नदी के पानी को लेकर झगड़ा शुरू हो गया। दोनों दलों के लोग लाठियां ले आए। उनके झगड़े का शोर सुनकर गौतम बुद्ध वहां आए और उन्होंने उन लोगों से पूछा, ग्रामवासियों, पानी का मूल्य क्या होता है? दोनों दलों के लोगों ने जवाब दिया, भगवन, प्रकृति के उपहार पानी का तो कोई मूल्य नहीं है। फिर बुद्ध ने पूछा प्यारे भाइयों, मनुष्य के रक्त का क्या मूल्य है? दोनों दलों के लोग इस प्रश्न पर चुप हो गए। फिर उनमें से एक ने कहा, भगवन्, हम आपका आशय समझ गए हैं। हमें पानी के लिए झगड़कर एक-दूसरे का रक्त नहीं बहाना चाहिए। इस तरह बुद्ध के हस्तक्षेप से पानी पर रक्तपात होते-होते रह गया। दोनों किनारे के लोगों ने मिलकर अपनी आवश्यकता के हिसाब से पानी खर्च करने का निर्णय किया। इसने एक परंपरा का ही रूप ले लिया। बाद में जब भी सूखा पड़ता, लोग उसी तरह पानी का प्रयोग करते।

९७) गांव का दर्जी- किसी गांव में एक दर्जी रहता था। वह दिन भर काम में लगा रहता था और उसी बीच समय निकालकर ईश्वरोपासना करता। वह कहीं जाता नहीं था, लोग ही उसके पास आते। कई बार वह लोगों की बड़ी-बड़ी से समस्याएं चुटकियों में सुलझा देता था। गांव के लोग कहते कि उसका स्वभाव फकीर जैसा है। उसके एक बेटा भी था, जो गांव की पाठशाला में पढ़ता था। एक दिन वह पाठशाला से जल्दी लौट आया। आकर वह अपने पिता के पास बैठ गया। वह बड़े ध्यान से अपने पिता को काम करते हुए देखने लगा। उसने देखा कि उसके पिता कैंची से कपड़े को काटते हैं और कैंची को पैर के पास टांग से दबाकर रख देते हैं। फिर सुई से उसको सिलते हैं और सिलने के बाद सुई को अपनी टोपी पर लगा लेते हैं। जब उसने इसी क्रिया को चार-पांच बार देखा तो उससे रहा नहीं गया और उसने अपने पिता से कहा कि वह उनसे एक बात पूछना चाहता है। दर्जी ने कहा- बोलो, क्या पूछना चाहते हो? बेटा बोला- मैं बड़ी देर से आपको देख रहा हूं। आप कपड़ा काटने के बाद कैंची को पैर के नीचे दबा देते हैं और सुई से कपडा सिलने के बाद उसे टोपी पर लगा लेते हैं। ऐसा क्यों? अपने बेटे के इस प्रश्न पर दर्जी मुस्कराया, फिर उसने जवाब दिया- बेटा, कैंची काटने का काम करती है और सुई जोड़ने का काम करती है। काटनेवाले की जगह हमेशा नीचे होती है पर जोड़नेवाले की जगह हमेशा ऊपर होती है। यही कारण है कि मैं सुई को टोपी पर लगाता हूं और कैंची को पैर के नीचे। बेटे को इस वाक्य में जीवन का सार मिल गया।

९८) जैसे को तैसा- एक गुरु के दो शिष्य हमेशा लड़ते रहते थे। वे हमेशा एक-दूसरे को नीचा दिखने की कोशिश में लगे रहते। एक दिन गुरु ने उन्हें एक कथा सुनाई- एक बार एक जंगल में भैंस और घोड़े में लड़ाई हो गई। भैंस ने सींग मार-मारकर घोड़े को अधमरा कर दिया। घोड़े ने जब देख लिया कि वह भैंस से जीत नहीं सकता तब वह वहां से भागा। वह मनुष्य के पास पहुंचा। घोड़े ने उससे अपनी सहायता की प्रार्थना की। मनुष्य ने कहा- भैंस की बड़ी-बड़ी सींगें हैं, वह बहुत बलवान है। मैं उससे कैसे जीत सकूंगा? घोड़े ने समझाया- मेरी पीठ पर बैठ जाओ, एक मोटा डंडा ले लो। मैं जल्दी-जल्दी दौड़ता रहूंगा। तुम डंडे से मार-मारकर भैंस को अधमरी कर देना और फिर रस्सी से बांध देना। मनुष्य ने कहा- मैं उसे बांधकर भला क्या करूंगा? घोड़े ने बताया- भैंस बड़ा मीठा दूध देती है। तुम उसे पी लिया करना। मनुष्य ने घोड़े की बात मान ली। बेचारी भैंस जब पिटते-पिटते गिर पड़ी, तब मनुष्य ने उसे बांध लिया। घोड़े ने काम समाप्त होने पर कहा- अब मुझे छोड़ दो मैं चरने जाऊंगा। मनुष्य जोर-जोर से हंसने लगा। उसने कहा- मैं तुमको भी बांध देता हूं। मैं नहीं जानता था कि तुम मेरे चढ़ने के काम आ सकते हो। मैं भैंस का दूध पीऊंगा और तुम्हारे ऊपर चढ़कर घूमा करूंगा। घोड़ा बहुत रोया और पछताया। पर अब क्या हो सकता था? कथा समाप्त कर गुरु बोले- तुम दोनों अगर एक-दूसरे के खिलाफ षडयंत्र करोगे तो कोई तीसरा आकर उसका लाभ उठा लेगा। जैसे घोड़े ने भैंस के साथ जो किया वैसा ही फल उसे खुद भोगना पड़ा। दोनों शिष्यों ने उस दिन से लड़ना बंद कर दिया।

९९) आदेश का तरीका- वीरसिंह नामक राजा अपनी प्रजा का बहुत ध्यान रखता था। वह अपनी प्रजा के लिए कभी भी अपने सुख की परवाह नहीं करता था। लेकिन उसमें एक कमी थी कि वह जब भी किसी को कार्य करने के लिए आदेश देता तो उसे यह अहसास कराता था कि वही सर्वेसर्वा है और अन्य सभी उसके नौकर। लोग उसके आदेश का पालन मन से नहीं बल्कि मन मारते हुए करते थे। धीरे-धीरे लोगों ने राजा के आदेश को मानना कम कर दिया। अब राजा वीरसिंह को चिंता हुई। वह इस बारे में परामर्श करने के लिए अपने राजगुरु सुदीप्त ऋषि के पास पहुंचा और उनसे बोला- राजगुरु, क्या आप मुझे राजपाट को बेहतर ढंग से चलाने के लिए कोई परामर्श दे सकते हैं? राजगुरु सुदीप्त राजा की कमी से परिचित थे। वह मुस्कराते हुए बोले- बिल्कुल राजन्, हम तुम्हें राजपाट का एक ऐसा गहन परामर्श दे सकते हैं जिससे तुम सदियों तक प्रजा के मस्तिष्क में विराजमान रह सकते हो। इस पर राजा वीरसिंह बोले- राजगुरु, बताइए न, हम आपसे वह राय जानने के लिए बेचैन हैं। राजगुरु ने कहा- यदि तुम यह सीख लो कि आदेश कैसे दिया जाता है तो जीवनभर प्रजा के प्रिय बनकर रह सकते हो। राजा बोला- महाराज, आदेश देने का तरीका कैसा हो? राजगुरु बोले- राजन्, तुम्हारा आदेश देने का तरीका ऐसा हो कि अन्य व्यक्ति बिना किसी हीनभावना के उसका पालन करे। राजा वीरसिंह बोला- राजगुरु, आपने मुझे प्रजा का प्रिय बनने का गुर सिखा दिया है। मैं हमेशा उसका पालन करूंगा। इसके बाद राजा वीरसिंह इस तरह से आदेश देता कि दूसरे को हीनभावना न हो और वह खुशी-खुशी कार्य को अंजाम दे।

१००) बुराई का परिणाम घृणा व तिरस्कार होता है- एक साधु थे। उनके पास एक पालतू तोता बड़ा ही विचित्र था। वह मनुष्यों की भाषा में बात करता था। उसकी एक विशेषता यह थी कि वह किसी के भी मन की बात जान लेता था। यही नहीं, वह सबके विषय में सही-सही बात बता देता था।

चारों दिशाओं में तोते की विद्वता की चर्चा होने लगी। साधु की कुटिया में हमेशा लोगों की भीड़ लगी रहती थी। सभी तोते से अपने-अपने भविष्य के विषय में अनेक प्रश्न करते थे। धीरे-धीरे तोते के अंदर अहं-भाव ने जन्म लिया। अहं हो जाने से वह सोचने लगा कि मैं ही इस दुनिया में सबसे बड़ा विद्वान हूं। घमंड का फल यह हुआ कि उसे सभी लोग मूर्ख लगने लगे और अपने से नीचे दिखने लगे। अब वह दूसरों के गुण, कर्म एवं दोष अधिक देखने लगा। उसे सबमें बुराइयां की बुराइयां दिखाई पड़ने लगीं।

एक बार वहां के राजा ने उस साधु को दरबार में आमंत्रित किया। साधु अपने साथ उस तोते को भी लेकर राज-दरबार में उपस्थित हुआ। वहां साधु ने उस तोते का परिचय दिया। उसकी विशेषताएं बताई। सभा में बैठे सभी को आश्चर्य हुआ कि तोता सभी के प्रश्नों का उत्तर देता है। सभी के बारे में सही-सही बताता भी है। राजा ने सबसे पहले अपने बारे में जानने की जिज्ञासा बताई। तोता बोला- राजन्, आपका दांपत्य जीवन कलह से भरा हुआ है। आप रानी से लड़ते हैं। राजा इतना सुनकर चुप हो गये। फिर राजा ने दरबार में बैठे सभी सलाहकार एवं मंत्रियों के विषय में पूछा। एक-एक के बारे में तोते को बताने को कहा। तोते के अंदर घमंड तो था ही, साथ ही साथ उसका स्वभाव भी दूसरों की बुराई देखनेवाला हो गया था। उसने सभी सलाहकारों एवं मंत्रियों के बारे में कुछ न कुछ दोष राजा को बता दिए। किसी को राजा की बुराई करनेवाला, किसी को चोर एवं किसी को गलत सलाह देनेवाला। राजा ने तोते की बातों पर विश्वास कर लिया। उन्हें बहुत गुस्सा आया कि उनके मंत्री अच्छे नहीं हैं। राजा अपने सेनापति आदि के विषय में भी तोते से जानना चाहता था, पर उस समय रात्रि होने को थी। दरबार खत्म होने पर राजा ने विनती की कि वे आज रात उनके अतिथि बनें। साधु खुशी-खुशी रुक गये। रात में साधु सोने चले गये। तो सभी मंत्रियों ने आपस में सलाह की। उन्होंने सोचा कि चुपके से इस तोते को मरवा देना चाहिए। यह तोता जब से आया है, हमारी बुराई ही कर रहा है। यह हम सबको राज्य से निकलवा देगा। प्रधानमंत्री ने एक सेवक को साधु के कमरे में भेजा। वे गहरी नींद में सो रहे थै। अवसर पाकर नौकर ने चुपके से जाकर तोते को मार दिया।

जब साधु सोकर उठे, तो उन्होंने तोते को मरा हुआ पाया। यह देखकर वे बहुत दु:खी हुए। फिर उनकी समझ में आ गया कि तोते को क्यों मारा गया है? उसमें सबके केवल दोष देखने की प्रवृत्ति थी। जो दूसरों की बुराई करता है, उसे कोई नहीं चाहता। इसी कारण उसे मरवा दिया गया। वस्तुत: दूसरों की निंदा करनेवाला सबसे घृणा और तिरस्कार ही पाता है।

१०१) लोभ से कोसों दूर थे चाणक्य- चाणक्य अपने देश, धर्म एवं संस्कृति को समृद्धिशाली बनाने हेतु प्रारंभ से ही प्रयत्नशील थे जिस समय सिकंदर का आक्रमण भारत पर हुआ, उस समय वह तक्षशिला में अध्यापन कार्य करते थे। विदेशी युद्ध विद्या सीखने के उद्देश्य से उन्होंने चन्द्रगुप्त को सिकंदर की सेना में भर्ती होने को कहा। उधर महापन्दनंद द्वारा फैलाए जा रहे अत्याचार व अनाचार से प्रजा भी पीड़ित थी। उसके स्थान पर चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाया गया। महामात्य होते हुए भी वह कुटिया में रहते थे और आजीवन ब्रह्मचारी रहे। समस्त साम्राज्य उनके इशारे पर चलता था, पर पद धन का कोई लोभ उन्हें छू तक नहीं पाया।

१०२) दूसरे की गलती - एक बार गुरु श्यामानंद ने अपने चार शिष्यों को एक पाठ पढ़ाया। पढ़ाने के बाद वह अपने शिष्यों से बोले, अब तुम चारों इस पाठ का बार-बार अध्ययन कर इसे याद करो। इस बीच यह ध्यान रखना कि तुममें से

कोई बोले नहीं। थोड़ी देर बाद मैं तुमसे इस पाठ के बारे में बात करूंगा। यह कहकर श्यामानंद वहां से चले गए। उनके जाने के बाद चारों शिष्य अलग-अलग बैठकर पाठ का अध्ययन करने लगे। अचानक बादल घिर आए और वर्षा की संभावना बन गई। यह देखकर एक शिष्य बोला, लगता है, तेज बारिश होगी। यह सुनकर दूसरे ने कहा, तुम्हें बोलना नहीं चाहिए था। तभी तीसरा बोला, तुम लोगों ने बोलकर गुरुजी की आज्ञा भंग कर दी है। चौथा शिष्य चुपचाप पाठ पढ़ता रहा। इसी बीच श्यामानंद वहां आ गए। उन्हें देखकर पहला शिष्य बोला, गुरुजी, यह मौन नहीं रहा और बोलने लगा। दूसरा शिष्य बोल पड़ा, तो तुम कौन सा मौन थे। तुम भी तो बोल पड़े थे। तीसरे ने कहा, इन दोनों ने बोलकर आपकी आज्ञा भंग कर दी है। यह सुनकर दोनों तपाक से बोले, तुम भी तो बोल ही पड़े थे। मगर चौथा शिष्य अभी भी चुप था। उसे देखकर गुरुजी बोले, तुममें से केवल इसने ही मेरी आज्ञा मानी। यह निश्चय ही आगे चलकर बड़ा और महत्वपूर्ण कार्य करेगा क्योंकि इसके भीतर पर्याप्त धैर्य और एकाग्रता है। यह किसी के बहकावे में नहीं आता न ही किसी क्षणिक हलचल से विचलित होता है। तुम तीनों के भविष्य को लेकर मुझे शंका है क्योंकि तुम तीनों एक दूसरे का दोष निकालने के कारण स्वयं भी गलती कर बैठे। यह सुनकर तीनों शिष्यों का सिर शर्म से झुक गया।

१०३) धर्म का अर्थ - किसी संत के पास एक युवक आया और उसने उनसे धर्म ज्ञान देने की प्रार्थना की। संत ने कहा कि वह उनके साथ कुछ दिन रहे, फिर वे उसे धर्म का सार बताएंगे। युवक उनके आश्रम में रहने लगा। वह संत की हर बात मानता और उनकी सेवा करता। इस तरह कई दिन बीत गए। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि संत उसे धर्म के बारे में कब बताएंगे। वह उनसे धर्म की चर्चा करने के लिए उत्सुक था। वह चाहता था कि उनसे शिक्षा प्राप्त कर घर लौट जाए पर संत कुछ खास कह ही नहीं रहे थे। युवक का धैर्य जवाब दे रहा था। एक दिन उसने पूछ ही दिया- मुझे आए इतने दिन हो गए पर अब तक आपने मुझे धर्म का सार नहीं बताया। आखिर मैं कब तक प्रतीक्षा करूं? संत ने हंसकर कहा- कैसी बात कर रहे हो। तुम जिस दिन से मेरे साथ रह रहे हो उस दिन से मैं तुम्हें धर्म का सार बता रहा हूं। पर तुम ध्यान ही नहीं दे रहे। युवक ने चौंककर कहा- वो कैसे? संत बोले- जब तुम मेरे लिए पानी लाते हो, मैं उसे सदैव प्रेम से स्वीकार करता हूं। तुम जब मेरा कोई काम करते हो तो मैं तुम्हारे प्रति आभार भी प्रकट करता हूं। जब-जब तुमने मुझे आदरपूर्वक प्रणाम किया, मैंने तुम्हारे साथ नम्रता का व्यवहार किया। यही तो धर्म है जो हमारे दैनंदिन व्यवहार में झलकता है। धर्म कोई पुस्तकीय ज्ञान नहीं है। तुम मेरे और कार्यों पर गौर करो। मैं लोगों से कैसे मिलता हूं और किस तरह उनकी सहायता करता हूं। इससे अलग कुछ भी धर्म नहीं है। युवक संत का आशय समझ गया।

१०४) मूर्खों की चिंता- महान दार्शनिक सुकरात बेहद साधारण जीवन जीते थे। उन्हें जो मिल जाता वह उसी में संतोष करते थे। उनके प्रशंसकों और मित्रों की एक बड़ी जमात थी। एक दिन दोपहर में सुकरात विश्राम कर रहे थे। तभी उनके कुछ मित्र आ गए। सुकरात ने आगे बढ़कर स्नेहपूर्वक उनका स्वागत किया। फिर अनेक मुद्दों पर बातचीत होने लगी। बात करते हुए अचानक सुकरात को ख्याल आया कि उन्होंने तो मित्रों से भोजन के बारे में पूछा ही नहीं। सुकरात ने अपने दोस्तों से कहा, माफ कीजिए, मैं एक बात तो पूछना भूल ही गया। यह बताएं कि आप लोग भोजन करके आए हैं या आप सबका भोजन तैयार कराऊं? मित्रों ने कहा, भोजन हुआ तो नहीं है। यदि कष्ट न हो तो तैयार कराएं। सुकरात

घर के अंदर गए। उन्होंने पत्नी से कहा, मेरे कुछ दोस्त आए हुए हैं। उनके लिए भोजन का प्रबंध करना है। पत्नी नाराज हुई। बोली, आप कैसी बात कर रहे हैं। आखिर घर में रखा ही क्या है जो मेहमानों को प्रस्तुत किया जाए। अभी तो प्रबंध होना संभव नहीं। सुकरात ने कहा, घर में जो कुछ है, वही तैयार कर मेहमानों को परोस दो। कोई परेशानी नहीं है। पत्नी बोली, अच्छा नहीं लगेगा। अपनी बात अलग है। मेहमान क्या सोचेंगे और क्या कहेंगे। सुकरात हंसे और बोले, तुम जो कुछ है वही तैयार कर लो। यदि वे बुद्धिमान होंगे तो हमारी मजबूरी समझेंगे और कुछ न कहेंगे और यदि बुद्धिमान न हुए, मूर्ख हुए तो जो कहना चाहें कहें। हम मूर्खों की चिंता क्यों करें।

१०५) पत्थर की पूजा - संत नामदेव के जीवन से जुड़ी यह चर्चित कथा है। उनके पिता दामाशेट दर्जी थे। वह चाहते थे कि नामदेव उनका कारोबार आगे बढ़ाएं पर नामदेव तो दिन भर मंदिर में कीर्तन करते रहते थे। इससे दामाशेट दुखी रहते थे। एक दिन उन्होंने नामदेव को कपड़ों का एक गट्ठर सौंप दिया और कहा कि इसे वह बाजार में बेच आएं। नामदेव बाजार पहुंचे। वहां गट्ठर सामने रख विट्ठल के ध्यान में मग्न हो गए। सभी की कमाई हुई, पर नामदेव खाली ही रहे। वहीं पास में खेत में कुछ पत्थर पड़े थे। उन्होंने पत्थरों को कपड़ों से ढक दिया और एक बड़े पत्थर से कहा कि आठ दिन बाद फिर आऊंगा, पैसे दे देना, ताकि पिता को हिसाब दे सकूं। पिता ने पूछा तो कहा कि आठ दिन बाद पैसे मिलेंगे। आठ दिन बाद नामदेव उस बड़े पत्थर के पास गए। पैसे मांगने लगे। पर वह कहां से देता। नामदेव ने गुस्से में उसे उठाया और पंढरपुर के विट्ठल मंदिर ले आए और बोले- यहीं बापू को जवाब दे देना। दामाशेट गुस्से में बौखला रहे थे- कपड़ों के बदले पत्थर। लेकिन जब उन्होंने नजदीक आकर देखा तो वह पूरा पत्थर सोने का हो गया था। देखते ही देखते यह समाचार सब ओर फैल गया। जिस किसान के खेत का पत्थर था, वह आकर सोने का पत्थर मांगने लगा। नामदेव ने अपने कपड़े के पैसे मांगे व पत्थर उसे दे दिया। घर जाकर किसान ने देखा कि वह तो फिर पत्थर बन गया। वह गुस्से में नामदेव जी के घर वह पत्थर वापस रख गया। आज भी उस पत्थर की पूजा नामदेव के मंदिर में होती है।

१०६) सादगी का संदेश - पूर्व प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री सादगीपूर्ण जीवन के लिए प्रसिद्ध थे। उन्हें किसी भी तरह का दिखावा या आडम्बर पसंद नहीं था। वह मानकर चलते थे कि जनता के लिए काम करनेवाले नेताओं को बिल्कुल उसी तरह रहना चाहिए जिस तरह आम आदमी रहता है। यही नहीं उन्हें यथासंभव अपनी सुविधाओं का त्याग कर देना चाहिए। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जेल में भी शास्त्रीजी बिल्कुल सादगी के साथ रहते थे। राजनैतिक कैदी होने के कारण उनको जेल प्रशासन की ओर से कुछ विशेष सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती थी, जिनमें से एक उनकी भोजन की थाली भी थी। मगर शास्त्रीजी वह विशिष्ट थाली स्वयं न खाकर अपने अन्य कैदी साथियों में बांट दिया करते थे और स्वयं आम कैदियों को मिलने वाला साधारण भोजन ही उनके साथ बैठकर किया करते थे। इस दौरान वे उनका हालचाल भी पूछ लेते थे। जेलर को इस बात का पता चला तो वह उनके पास जांच के लिए आया और बोला, महाशय, यह जेल प्रशासन की ओर से आपके लिए बनाया गया भोजन होता है, मगर आप इसे औरों को बांट देते हैं। आखिर आप ऐसा क्यों करते हैं? इस पर शास्त्रीजी बोले, मेरे भाई, मुझे यहां सदा के लिए तो रहना नहीं है। आज यहां मिलनेवाला उम्दा भोजन मुझे बाहर तो मिलनेवाला नहीं है, फिर क्यों इसे खाकर मैं अपना स्वाद और आदत खराब करूं। मेरे लिए यह सादा भोजन ही छप्पन

भोग के समान है। यह कहकर शास्त्रीजी जेल का साधारण खाना खाने लगे। जेलर भी उनके प्रति नतमस्तक हो गया।

१०७) असली गरीब - एक भिक्षुक को दिनभर में जो कुछ मिलता था, उसे वह खा-पीकर समाप्त कर देता था। प्राय: उसे आवश्यकता के अनुसार भिक्षा मिल जाया करती थी। एक दिन उसे उसकी जरूरत से ज्यादा एक पैसा मिल गया। वह सोचने लगा- इसका क्या उपयोग करूं? उसने उस एक पैसे को अपने चीथड़े के कोने में बांध लिया और एक पंडित के पास गया। उसने उनसे पूछा, महाराज, मैं अपनी संपत्ति का क्या सदुपयोग करूं? पंडित जी ने पूछा, तुम्हारे पास कितनी संपत्ति है? उसने कहा, एक पैसा। इस पर पंडित जी चिढ़ गए। उन्होंने कहा, जा-जा, तू एक पैसे के लिए मुझे परेशान करने आया है। वह भिक्षुक निराश नहीं हुआ। वह कई पंडितों के पास गया। कहीं हंसी मिली तो कहीं दुत्कार। किसी सज्जन ने सलाह दी कि पैसा किसी गरीब को दे दो। अब भिक्षुक गरीब की तलाश में चल पड़ा। उसने अनेक भिखारियों से प्रश्न किया कि तुम गरीब हो? परंतु एक पैसे के लिए किसी ने गरीब बनना स्वीकार नहीं किया। तभी भिक्षुक को पता चला कि किसी देश का राजा अपने पड़ोसी राज्य पर चढ़ाई करने जा रहा है। उसने लोगों से पूछा, राजा चढ़ाई क्यों कर रहे हैं? लोगों ने बताया, धन-संपत्ति प्राप्त करने के लिए। भिक्षुक को लगा कि राजा बहुत गरीब होगा। तभी तो धन-संपत्ति के लिए मारकाट करने पर आमादा है। क्यों न उसे ही पैसा दे दिया जाए। जब राजा की सवारी उसके पास से गुजरने लगी, तो वह खड़ा हो गया और झटपट अपने चीथड़े में से पैसा निकालकर उसने राजा के हाथ पर डाल दिया। उसने कहा, मुझे बहुत दिनों से एक गरीब की तलाश थी। आज आपको पाकर मेरा मनोरथ पूरा हो गया, आप मेरी पूंजी संभालिए। राजा रुक गया। भिक्षुक ने उसे अपनी कहानी सुनाई तो उसने धावा बोलने का इरादा बदल दिया और सारी फौज के सामने यह बात कबूल की- असली गरीब वह है, जिसके लालच का कोई अंत नहीं।

१०८) किताबी ज्ञान - पुराने जमाने की बात है। एक व्यक्ति अध्ययन करने काशी गया। विभिन्न शास्त्रों की जानकारी प्राप्त करने में उसे बारह वर्ष लग गए। जब वह लौटा तो घर के लोग काफी प्रसन्न हुए। पत्नी ने उसके स्नान के लिए गर्म पानी तैयार किया। वह उस बर्तन को लेकर स्नान गृह गई। उसने देखा कि वहां हजारों चीटियां हैं। उसने सोचा कि कहीं वे बेचारी बेमौत न मर जाएं, इसलिए उसने गर्म पानी के बर्तन को दूसरे स्थान पर रख दिया। पति आया और बर्तन को उठाकर फिर पहलेवाले स्थान पर ले गया और वहीं स्नान करने लगा। पत्नी ने देखा तो वह परेशान हो गई। उसने कहा, मैंने गर्म पानी का बर्तन वहां रखा था, यहां कैसे आ गया? पति ने कहा, तुम भी अजीब बात करती हो। स्नान का स्थान यही है। मैं यहीं नहाऊंगा न। मैं ही उस बर्तन को यहां उठा लाया। इस पर पत्नी बोली, मैं भी पहले यहीं रखना चाह रही थी, लेकिन यहां चींटियां बहुत हैं। आपके स्नान के पानी से वे सब मर जाएंगी। इसलिए मैंने इसे दूसरे स्थान पर रखा था। पति बोला, यह तो अजीब मूर्खतापूर्ण बात है। क्या मैं चींटियों को जिलाने के लिए ही जनमा हूँ? अगर मैं इसी तरह हर किसी की चिंताए करता रहा तो जीना मुश्किल हो जाएगा। इस बात से पत्नी दुखी हो गई। उसने कहा, बारह वर्ष तक आपने विद्याध्ययन किया। काशी में रहे लेकिन समझ में नहीं आता कि आपने क्या हासिल किया। ऐसे किताबी ज्ञान से क्या लाभ, जो आपके भीतर संवेदना न पैदा कर सके। क्या आप इतना भी नहीं समझ सके कि किसी प्राणी को अकारण पीड़ा नहीं पहुंचानी चाहिए। ज्ञान का सार तो संवेदनशीलता है। यह सुनकर पति लज्जित हो गया और वहां से निकलकर दूसरी जगह नहाने लगा।

१०९) सच्चा सहयोगी- किसी राजा को अपने मंत्रियों में से एक बहुत प्रिय था। वह राजा का विश्वासपात्र था। राजा हर मामले में उसकी सलाह जरूर लेता था। कुछ ईर्ष्यालु स्वभाववाले मंत्रियों-दरबारियों को यह सहन नहीं होता था। उनमें से कुछ ने एक दिन राजा से शिकायत की। वे बोले, अपराध क्षमा हो, राजन्। जिस मंत्री को आप अपना प्रिय व विश्वासपात्र समझते हैं वास्तव में वह भ्रष्टाचारी है। राज्य में जो भ्रष्टाचार फैला हुआ है, इसका मुख्य कारण यह मंत्री ही है। यह सुनकर राजा ने अपने उस प्रिय मंत्री को उन मंत्रियों के सामने बुलाया और कहा, ये लोग तुम्हारे ऊपर जो आक्षेप लगा रहे हैं उसके निराकरण के लिए तुम्हें एक सप्ताह का समय दिया जाता है। तुम्हें खुद को निर्दोष सिद्ध करना पड़ेगा नहीं तो दंड भुगतना पड़ेगा। उस मंत्री ने अपने घर आकर राजा को एक पत्र लिखा, राजन्। अपमानित होने से मरना अच्छा है, इसलिए मैं मरने जा रहा हूं, अलविदा। और मंत्री पत्र लिखकर अज्ञात स्थान पर चला गया। राजा ने पत्र पढ़ा और उसकी छानबीन की। मंत्री के न मिलने से राजा ने उसे मृत समझकर शोकसभा आयोजित की। वह मंत्री भी वेश बदलकर अपनी शोकसभा में पहुंचा। वहां उपस्थित जन समूह उसको श्रद्धांजलि दे रहा था। शिकायत करनेवाले भी कह रहे थे, मंत्री जी बहुत ईमानदार, विश्वासपात्र व उच्च विचारोंवाले व्यक्ति थे। उनकी असामयिक मृत्यु से हम सब दुखी हैं। यह सुनते ही वह मंत्री अपने असली रूप में आ गया। उसे देख उसके विरोधियों के होश उड़ गए। मंत्री ने राजा से कहा, देखा महाराज। इन लोगों की राय कैसे बदल गई। अगर मैं बुरा था तो आज ये मेरी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं। क्या आप ऐसे लोगों पर विश्वास करेंगे जिनके विचार हमेशा बदलते रहते हैं। राजा को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने उस मंत्री को गले से लगाया और उन लोगों को राजसेवा से निकाल बाहर किया जिन्होंने मंत्री की शिकायत की थी।

११०) विनम्रता का पाठ - पंडित विद्याभूषण बहुत बड़े विद्वान थे। दूर-दूर तक उनकी चर्चा होती थी। उनके पड़ोस में एक अशिक्षित व्यक्ति रहते थे- रामसेवक। वे अत्यंत सज्जन थे और लोगों की खूब मदद किया करते थे। पंडित जी रामसेवक को ज्यादा महत्व नहीं देते थे और उनसे दूर ही रहते थे। एक दिन पंडित जी अपने घर के बाहर टहल रहे थे। तभी एक राहगीर उधर आया और मोहल्ले के एक दुकानदार से पूछने लगा- भाई यह बताओ कि विद्याभूषण जी का मकान कौन सा है। यह सुनकर पंडित जी की उत्सुकता बढ़ी। वह सोचने लगे कि आखिर यह कौन है जो उनके घर का पता पूछ रहा है। तभी दुकानदार ने उस राहगीर से कहा- मुझे तो किसी पंडित जी के बारे में नहीं मालूम। तब राहगीर ने कहा- क्या रामसेवक जी का घर जानते हो? दुकानदार ने हंसकर कहा- अरे भाई उन्हें कौन नहीं जानता। वे बड़े भले आदमी हैं। फिर उसने हाथ दिखाकर कहा- वो रहा रामसेवक जी का घर। फिर दुकानदार ने राहगीर से सवाल किया- लेकिन आपको काम किससे है? पंडित जी से या रामसेवक जी से? राहगीर कहने लगा- भाई काम तो मुझे रामसेवक जी से है। पर उन्होंने ही बताया था कि उनका मकान पंडित विद्याभूषण जी के पास है। सुनकर पंडित जी ग्लानि से भर उठे। सोचने लगे कि उन्होंने हमेशा ही रामसेवक को हीन समझा और उपेक्षा की पर वह कितना विनम्र है। वह खुद बहुत प्रसिद्ध होते हुए भी उन्हें ज्यादा महत्व देता है। फिर पंडित जी ने रामसेवक से क्षमायाचना की और दोनों गहरे मित्र बन गए।

१११) प्रजा का खजाना - फारस के शासक साइरस अपनी प्रजा की भलाई में जुटे रहते थे। लेकिन खुद उनका जीवन सादगी से भरा था। वह रियासत की सारी आमदनी व्यापार, उद्योग और खेतीबाड़ी में लगा देते थे। इस कारण शाही

खजाना हल्का रहता था। लेकिन प्रजा खुशहाल थी। एक दिन साइरस के दोस्त और पड़ोसी शासक क्रोशियस उनके यहां आए। उनका मिजाज साइरस से बिल्कुल अलग था। उन्हें प्रजा से ज्यादा अपनी खुशहाली की चिंता रहती थी। उनका खजाना हमेशा भरा रहता था। बातों-बातों में जब क्रोशियस को साइरस के खजाने का हाल मालूम हुआ तो उन्होंने साइरस से कहा, अगर आप इसी तरह प्रजा के लिए खजाना लुटाते रहोगे तो एक दिन वह एकदम खाली हो जाएगा। आप कंगाल हो जाओगे। अगर आप भी मेरी तरह खजाना भरने लगें तो आपकी गिनती मेरी तरह सबसे धनी शासकों में होने लगेगी। साइरस मुस्कराए फिर बोले, आप दो दिन ठहरिए मैं इस मामले में लोगों का इम्तिहान लेना चाहता हूं। उन्होंने घोषणा करवा दी कि एक बहुत बड़े काम के लिए साइरस को दौलत की निहायत जरूरत है। उन्हें पूरी उम्मीद है कि प्रजा मदद करेगी। दो दिन पूरा होने से पहले ही शाही महल के बाहर मोहरों, सिक्कों व जेवरों का बड़ा ढेर लग गया। साइरस ने कहा, मैंने खजाना लोगों की खुशहाली पर खर्च करके एक तरह से उन्हीं को सौंप दिया है लोग उसमें इजाफा करते रहते हैं। मुझे जब जरूरत होगी वे लौटा देंगे जबकि तुम्हारा खजाना बांझ है, वह कोई बढ़ोतरी नहीं कर रहा है।

११२) सर्वश्रेष्ठ राजा कौन - राजा मलिक अपनी प्रजा की सेवा में दिन-रात जुटा रहता था। उसकी प्रजा परम संतुष्ट थी। एक दिन राजा ने सोचा कि मेरी कीर्ति चारों ओर फैली हुई है। सब मेरी प्रशंसा करते हैं। मुझे इस बात का पता लगाना चाहिए कि क्या मैं सचमुच श्रेष्ठ हूँ? उसने अपने राज्य के विद्वानों से पूछा तो सभी ने कहा, महाराज आप तो सर्वश्रेष्ठ हैं। आपका चरित्र, व्यवहार और विचार चंद्रमा के समान धवल है। राजा ने सोचा, हो सकता है मुझे प्रसन्न करने के लिए ये मेरी प्रशंसा कर रहे हों। इसलिए उसने सच जानने के लिए गांव-गांव जाकर पता किया। सभी स्थानों पर यही उत्तर मिला। राजा मलिक गर्व से फूला जब अपनी राजधानी लौट रहा था, तब उसका सामना राजा ब्रह्मदत्त से हो गया। दोनों के रथ आमने-सामने थे। ब्रह्मदत्त के सारथी ने मलिक से कहा, मेरे रथ पर समस्त गुणों के भंडार बैठे हैं। अपना रथ हटा लीजिए। राजा मलिक ने कहा, सभी गुणों का भंडार तो मैं हूं। आप अपने रथ को बगल में कर लो। ब्रह्मदत्त बोले, आप अपने को श्रेष्ठ क्यों समझते हैं? राजा मलिक ने कहा, क्योंकि मैं बुराई करनेवालों के साथ बुराई और भलाई करनेवालों के साथ भलाई करता हूं। इस पर ब्रह्मदत्त ने कहा, लेकिन इतने से ही आप श्रेष्ठ कैसे हो गए? सर्वश्रेष्ठ तो वह है, जो बुराई करनेवालों के साथ भी भलाई करता है और उसे सदाचार के मार्ग पर ले आता है। ब्रह्मदत्त की यह बात सुनकर राजा मलिक को अपनी गलती का अहसास हुआ और वह ब्रह्मदत्त के प्रति श्रद्धा से भर उठा।

११३) सबसे बड़ी दौलत- एक विधवा अध्यापिका के दो बेटे थे। वह उन्हें गुरुकुल में अच्छी शिक्षा दिला रही थी। वह खुद भी अनेक बच्चों को संस्कृत पढ़ाती थी। इससे उसे जो कुछ प्राप्त होता था, उसी से वह अपना जीवनयापन करती थी। उसने अत्यंत गरीबी के दिनों में भी कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाए। उसके स्वाभिमान को देख अनेक लोग अध्यापिका का बहुत आदर करते थे। एक दिन एक बहुत बड़े सेठ को अध्यापिका की विद्वता व उसकी निर्धनता के बारे में मालूम हुआ। उस सेठ के कोई संतान नहीं थी। उसने सोचा हुआ था कि वह कुछ गरीब बच्चों को अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिए उन्हें धन प्रदान करेगा। सेठ अध्यापिका के घर पहुंचा और बोला, देवी, आप निर्भीक व स्वाभिमानी हैं। मैं चाहता हूँ कि आपके बच्चे अच्छी शिक्षा ग्रहण करें। उसके लिए आप यह कुछ रुपये स्वीकार करें। इसके बाद उसने

रुपयों की थैली अध्यापिका की ओर बढ़ाई। अध्यापिका हाथ जोड़कर सेठ से बोली, शायद आपको कुछ भ्रम हो गया है। मैं इतनी गरीब भी नहीं हूं कि अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा न दे पाऊं। मेरे पास जितनी दौलत है, उतनी शायद ही किसी के पास हो। सेठ अचरज से बोला, कहां है दौलत, जरा हमें भी तो बताइए। अध्यापिका ने अपने दोनों पुत्रों को आवाज लगाई तो दोनों पुत्र तुरंत वहां आए और अपनी मां के पैर छूने के बाद उन्होंने सेठ के पैर छुए। फिर उन्होंने मां से पूछा, कहिए कैसे याद किया? दोनों पुत्रों की ओर देखकर अध्यापिका बोली, यही दोनों मेरी सबसे बड़ी दौलत हैं। दोनों लड़कों को देखकर सेठ अभिभूत हो गया और बोला, बिलकुल सही, जिसकी संतान संस्कारी और गुणी है, वह कभी गरीब हो ही नहीं सकता। अध्यापिका ने सेठ से कहा, जो कुछ आप मुझे देने आए हैं, उसे अनाथों को शिक्षित करने के लिए दे दें। सेठ ने वैसा ही किया।

११४) महारानी का संदेश - बेबीलोन की शासिका माटीक्रिस ने जीवन के अंतिम दिनों में परिवार के लोगों को आदेश दिया कि मेरी कब्र के ऊपर पत्थर पर यह लिखवा देना कि इसके नीचे जमीन में सोना तथा हीरे दबे हुए हैं। इसके बाद उन्होंने कागज पर कुछ लिखा तथा उसे बंद लिफाफे में रखकर कहा, इसे संदूक में रखकर कब्र के नीचे दबा देना। कुछ ही समय बाद महारानी की मृत्यु हो गई। उनकी इच्छानुसार सब कुछ किया गया। कुछ समय बाद ईरान के बादशाह डेरियस ने बेबीलोन पर हमला कर उसे जीत लिया। वे महारानी माटीक्रिस की कब्र पर श्रद्धा सुमन अर्पित करने गए। उनकी नजर पट्टिका पर लिखे शब्दों पर पड़ी। उन्होंने उसे पढ़ा तो यह जानकर उत्साहित हो गए कि उन्हें यहां काफी दौलत मिलेगी। उन्होंने यह तक नहीं सोचा कि इस तरह धन गाड़कर कोई क्यों रखेगा और फिर उसके बारे में लिखेगा ही क्यों? और लिखे जाने के बाद क्या अब तक किसी ने धन निकालने की कोशिश नहीं की होगी? उन्होंने सैनिकों को कब्र खोदने का आदेश दिया। कब्र खोदने पर उसके नीचे से एक भारी संदूक निकला। डेरियस ने जल्दी से संदूक को खोला तो उसमें एक कागज पर लिखा था, अरे नादान इंसान, बिना मेहनत का धन हासिल करने के लालच में तुझे मृतक की कब्र खोदते हुए शर्म नहीं आई। बिना परिश्रम से अर्जित दौलत आदमी को सिर्फ नाकारा नहीं बनाती, बल्कि उसकी जिंदगी के तमाम अच्छे कामों पर पानी फेरकर उसके लिए नरक के रास्ते खोल देती है। यह पढ़कर डेरियस काफी शर्मसार हुए। उन्होंने माटीक्रिस की कब्र पर सिर झुकाया और अपने आंसू पोंछते हुए वहां से बाहर आ गए।

११५) शास्त्री जी और चावल - यह घटना उस समय की है जब लालबहादुर शास्त्री देश के प्रधानमंत्री थे। उन दिनों केरल में सूखा पड़ा हुआ था। चावल की खेती पूरी तरह तहस-नहस हो गई थी। लोग चावल के दाने-दाने को तरसने लगे थे। केरल के निवासियों का मुख्य भोजन चावल ही है इसलिए राज्य सरकार चिंतित थी कि केरल निवासी गुजर-बसर कैसे करेंगे? शास्त्रीजी भी यह जानकर अत्यंत परेशान थे। उन्होंने केरल सरकार को आश्वासन दिया कि हर केरलवासी को चावल मिलेगा। बिना चावल के एक भी भाई-बहन भूखा नहीं रहेगा। केरल की जनता को चावल के लिए त्राहि-त्राहि करते देखकर उन्होंने अधिकारियों को चावल की कमी पूरी करने के आदेश दिए। देश के अन्य क्षेत्रों से चावल खरीदकर केरल भेजा जाने लगा। ऐसे में अन्य प्रदेशों में चावल की कमी तो होनी ही थी। शास्त्रीजी ने रोटी खा सकनेवाले लोगों से अनुरोध किया कि वे चावल का प्रयोग कम से कम करें और जो लोग स्वाद के लिए प्रतिदिन चावल का प्रयोग करते हैं, वे भी इसका प्रयोग अनिवार्य होने पर ही करें। उन्होंने अपने घर में भी सख्त निर्देश दिए थे कि जब तक केरल में चावल

की कमी पूरी नहीं हो जाती तब तक उनके घर में चावल नहीं पकाए जाएंगे। यह आदेश सुनकर प्रधानमंत्री जी के बच्चे दुखी हुए क्योंकि वे चावल खाने के शौकीन थे। लेकिन सबने शास्त्री जी के आदेश का पालन किया। प्रधानमंत्री निवास में तब तक चावल नहीं पकाए गए जब तक कि केरल की स्थिति पर पूरी तरह से काबू नहीं पा लिया गया। केरल की सरकार व निवासियों के साथ ही पूरा भारत शास्त्रीजी की यह बात जानकर उनके प्रति नतमस्तक हो गया कि उन्होंने केरल की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर प्रधानमंत्री निवास तक में चावल बनने पर रोक लगा दी।

११६) मनुष्यता का पाठ - यह घटना उस समय की है, जब क्रांतिकारी रोशन सिंह को काकोरी कांड में मृत्युदंड दिया गया। उनके शहीद होते ही उनके परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। घर में एक जवान बेटी थी और उसके लिए वर की तलाश चल रही थी। बड़ी मुश्किल से एक जगह बात पक्की हो गई। कन्या का रिश्ता तय होते देखकर वहां के दरोगा ने लड़के वालों को धमकाया और कहा कि क्रांतिकारी की कन्या से विवाह करना राजद्रोह समझा जाएगा और इसके लिए सजा भी हो सकती है। किंतु वर पक्ष वाले दरोगा की धमकियों से नहीं डरे और बोले, यह तो हमारा सौभाग्य होगा कि ऐसी कन्या के कदम हमारे घर पड़ेंगे, जिसके पिता ने अपना शीश भारत माता के चरणों पर रख दिया। वर पक्ष का दृढ़ इरादा देखकर दरोगा वहां से चला आया पर किसी भी तह इस रिश्ते को तोड़ने के प्रयास करने लगा। जब एक पत्रिका के संपादक को यह पता लगा तो वह आगबबूला हो गए और तुरंत उस दरोगा के पास पहुंचकर बोले, मनुष्य होकर जो मनुष्यता ही न जाने वह भला क्या मनुष्य? तुम जैसे लोग बुरे कर्म कर अपना जीवन सफल मानते हैं किंतु यह नहीं सोचते कि तुमने इन कर्मों से अपने आगे के लिए इतने कांटे बो दिए हैं जिन्हें अभी से उखाड़ना भी शुरु करो तो अपने अंत तक न उखाड़ पाओ। अगर किसी को कुछ दे नहीं सकते तो उससे छीनने का प्रयास भी न करो। संपादक की खरी-खोटी बातों ने दरोगा की आंखें खोल दीं और उसने न सिर्फ कन्या की मां से माफी मांगी, अपितु विवाह का सारा खर्च भी खुद वहन करने को तैयार हो गया। विवाह की तैयारियां होने लगीं। कन्यादान के समय जब वधू के पिता का सवाल उठा तो वह संपादक उठे और बोले, रोशन सिंह के न होने पर मैं कन्या का पिता हूं। कन्यादान मैं करूंगा। वह संपादक थे- महान स्वतंत्रता सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी।

११७) साहस और संकल्प - मगध सम्राट कुमारगुप्त का पुत्र स्कंदगुप्त जब किशोर ही था, तब उसे पता चला कि हूण बार-बार भारत पर आक्रमण करते हैं और युद्ध के नियमों के विपरीत छल का सहारा लेकर भारी नुकसान पहुंचाते हैं। स्कंदगुप्त से देश का अपमान देखा न गया। उसने पिता से आग्रह किया कि उसे हूणों पर आक्रमण की आज्ञा दी जाए। पिता बड़े असमंजस में थे क्योंकि एक तो स्कंदगुप्त अभी किशोर ही था, शारीरिक बल और युद्ध कौशल की दृष्टि से उसे अभी बच्चा ही कहा जा सकता था। दूसरे, हूणों का क्षेत्र बहुत दूर था। हिमाच्छादित पहाड़ों की चोटियां पार करके वहां जाना होता था। ऐसे दुर्गम मार्ग को पार करना सेना के लिए भी कठिन था, फिर हूण युद्ध में धोखे से ही काम लेते थे। ऐसी स्थिति में उसे आक्रमण की आज्ञा कैसे दी जाए? लेकिन कुमारगुप्त अपने पुत्र की देशभक्ति और साहस देखकर झुक गए। उन्होंने उसे चढ़ाई की आज्ञा दे दी। स्कंदगुप्त दो लाख सैनिक लेकर चल पड़ा। पंजाब से आगे बढ़कर हिमाच्छादित चोटियों को पार करती हुई उसकी सेना हूणों के इलाके में पहुंची और इस वीरता के साथ लड़ी कि शत्रुओं के छक्के छुट गए। उन्हें परास्त होना पड़ा। इस तरह स्कंदगुप्त ने आज के ईरान और अफगानिस्तान तक अपना राज्य कायम किया। इस

विजय अभियान के बाद जब स्कंदगुप्त भारत लौटा तो उसके स्वागत में मगध से पांच कोस तक मार्ग सजाए गए और पूरे देश में विजयोत्सव मनाया गया। सबने स्वीकार किया कि साहस और संकल्प से कोई भी कठिन लड़ाई जीती जा सकती है।

११८) बड़ा कौन- एक बार सम्राट अशोक अपने विश्वस्त मंत्री भ्रामात्य के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक संत को आते देख वह घोड़े से नीचे उतरे और उन्होंने संत को दंडवत प्रणाम किया। यह बात भ्रामात्य को अच्छी नहीं लगी। संत के जाने के बाद भ्रामात्य ने अशोक से पूछा, राजन्, मेरी समझ में नहीं आया कि इतने बड़े सम्राट होकर आपने एक साधारण साधु को दंडवत प्रणाम क्यों किया। उस समय अशोक ने कोई उत्तर नहीं दिया। दो दिनों के बाद उसने कई जानवरों के मुखौटों के साथ एक साधु और एक राजा का सुंदर मुखौटा भ्रामात्य को देते हुए कहा, गांव में जाकर इन मुखौटों को बेच दीजिए। मैं जानना चाहता हूँ कि प्रजा किसे ज्यादा पसंद करती है। भ्रामात्य उन मुखौटों को बेचने के लिए गांव में गया। साधु का मुखौटा सबसे पहले बिक गया। उसके बाद सभी जानवरों के मुखौटे भी बिक गए। मगर राजा का मुखौटा किसी ने नहीं खरीदा। भ्रामात्य उसे लेकर लौट आया। अशोक ने उसे फिर से जाने को कहा। और यह भी निर्देश दिया कि यह मुखौटा किसी को मुफ्त दे दे। भ्रामात्य दोबारा गया मगर गांववालों ने मुखौटा लेने से इनकार कर दिया। बोले, इस कचरे को लेकर हम क्या करेंगे। भ्रामात्य फिर लौट आया और सम्राट को गांव वालों की बात बताई। अशोक ने कहा, अब तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा। संत हमेशा पूजनीय होते हैं क्योंकि वे मोह माया से दूर रहकर पूरे समाज के हित की बात सोचते हैं। राजा का महत्व तात्कालिक होता है पर संत की कीर्ति हमेशा बनी रहती है।

११९) मूर्ति की गवाही - एक व्यापारी ने कपास के अनेक गट्ठर बनाए और उन्हें बेचने चला। रास्ते में तेज धूप थी। जब चलते-चलते वह थक गया तो एक पेड़ की छाया देख वहां आराम करने लगा। उसकी आंख लग गई। जब वह सोकर उठा तो उसके सभी गट्ठर गायब थे। उसका दिल बैठ गया। उसे कपास की बिक्री से अच्छे मुनाफे की उम्मीद थी। वह रोते-कलपते न्यायाधीश के पास पहुंचा। न्यायाधीश ने व्यापारी से पूछा कि जब वह विश्राम कर रहा था तो क्या वहां पर कोई और भी था? व्यापारी वापस उसी जगह पर गया। वहां पर किसी व्यक्ति के होने का कोई निशान न था। कुछ ऊंचाई पर एक पत्थर की मूर्ति बनी हुई थी। व्यापारी ने न्यायाधीश को बताया कि वहां पर उस समय उसके अलावा पत्थर की एक मूर्ति थी। न्यायाधीश ने उस मूर्ति को न्यायालय में लाने का आदेश दिया और कहा कि उसकी गवाही होगी। यह खबर चारों ओर फैल गई। लोग हैरान थे कि एक मूक प्रतिमा भला कैसे गवाही देगी। उसके आधार पर न्यायाधीश सही निर्णय कैसे करेंगे। अनेक लोग न्यायालय में पहुंचे और मूर्ति को देखकर हंसने लगे। न्यायाधीश ने व्यक्तियों के ठहाके और शोर से खीझ कर सभी को जुर्माने के रूप में एक-एक गट्ठर कपास लाने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि जो जुर्माना नहीं भरेगा उसे अदालत का अनादर करने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया जाएगा। यह सुनकर सभी लोग अगले दिन कपास का गट्ठर लेकर न्यायालय में हाजिर हो गए। व्यापारी ने अपने चोरी हुए एक गट्ठर को पहचान लिया। उस गट्ठर के मालिक को बुलाकर उससे बाकी गट्ठर भी मंगवाए गए और ससम्मान व्यापारी को दिलवा दिए गए। न्यायाधीश अंत में बोले, इस मूर्ति ने ही चोर को पकड़वाया है। अगर मैं इसे अदालत में लाने की बात नहीं करता तो सभी लोगों के साथ चोर इस विचित्र मुकदमे को देखने के लिए नहीं पहुंचता और कभी पकड़ा नहीं जाता।

१२०) छोटी सी बात - जर्मनी के एक स्कूल की छुट्टी हुई तो दो दोस्त रोज की तरह खेलते-कूदते घर की ओर चले। यह उनका रोज का नियम था। दोनों स्कूल साथ-साथ आते भी थे और साथ-साथ घर भी लौटते थे। रास्ते में एक अखाड़ा देख वे मस्ती के मूड़ में आ गए। वे बस्ता एक ओर रखकर कुश्ती लड़ने लगे। दोनों में जो कमजोर बालक था वह हार गया और बलवान जीत गया। जीतनेवाला बालक शेखी बघारने लगा। कमजोर बालक ने कहा- देखो अगर मैं भी तुम्हारी तरह अमीर घर में पैदा हुआ होता तो मुझे भी खाने में पौष्टिक खुराक मिलती। तब शायद तुम्हारी जगह मैं जीतता। यह छोटी सी बात उस विजयी बालक के दिल को छू गई। वह मित्र की बात से बेहद दुखी हुआ लेकिन उसने मन ही मन कुछ निश्चय कर लिया। वह उस दिन से खूब मन लगाकर पढ़ने लगा। उसने खेलना-कूदना कम कर दिया और शरारतें भी छोड़ दी। पढ़ाई में वह अव्वल आने लगा और फिर एक दिन वह डॉक्टर बन गया। लेकिन बचपन के उस मित्र की छोटी सी बात वह कभी नहीं भूला। उसने और डॉक्टरों से अलग रास्ता चुना। उसने निर्बलों और गरीबों की सहायता करना अपना लक्ष्य बना लिया। उसने अपना वतन छोड़कर अफ्रीका की राह पकड़ ली। वहां उसने एक सेवाग्राम स्थापित किया और अफ्रीका के पीड़ित और असहाय लोगों की सेवा में जुट गया। उसकी नि:स्वार्थ सेवा की चर्चा पूरी दुनिया में होने लगी। वह बालक था अल्बर्ट श्वाइत्जर। शाइत्जर को उनकी सेवाओं के लिए नोबेल शांति पुरस्कार प्रदान किया गया।

१२१) धन का भार - पाटलिपुत्र में नाभिकुमार की गिनती सबसे संपन्न लोगों में होती थी। लेकिन अपार धन-संपत्ति होते हुए भी उन्होंने कभी दान नहीं दिया था। कई लोगों ने उन्हें इस बारे में कहा था पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। एक रात उनके घर चोर ने सेंध लगाई। उसने सावधानी से घर का कीमती सामान एकत्र किया और उसकी एक बड़ी पोटली बनाई। पोटली सिर पर रखते ही वह गिर गई और आवाज होते ही नाभिकुमार की आंखें खुल गईं। वह चोर के पास आए और पोटली उठाने में उसकी मदद करने लगे। चोर को डर से कांपते हुए देखकर नाभिकुमार ने उससे कहा- डरो मत, तुम यह सब ले जा सकते हो। मगर तुम भी मेरे ही जैसे लगते हो मैंने भी अपने जमा धन से किसी और के लिए कुछ नहीं निकाला इसलिए मेरा धन भी मुझपर भार की तरह है। अगर तुम भी मेरी तरह नहीं करते और पोटली में से थोड़ा सामान निकाल लिए होते तो तुम्हारे लिए इसे उठाना आसान हो जाता। खैर, तुम अब यह सामान ले जा सकते हो। चोर यह सुनकर दंग रह गया। उसने प्रायश्चित करने के उद्देश्य से कहा- आप यह सब वापस ले लीजिए और मुझे क्षमा कीजिए। नाभिकुमार ने कहा- तुम्हें एक ही शर्त पर क्षमा किया जा सकता है। तुम इसमें से कुछ धन ले लो और कोई काम- धंधा शुरू कर दो। इस प्रकार मेरा धन परोपकार के काम में लग जाएगा और तुम्हारा जीवन भी सुधर जाएगा। चोर ने वैसा ही किया। नाभिकुमार उस दिन से हर किसी की सहायता करने लगे।

१२२) विचारों की उपयोगिता - एक राजा इस बात से परेशान रहता था कि धर्म और दर्शन को लेकर विचारकों में आपसी सहमति क्यों नहीं बनती। उसने विभिन्न धर्मों के उपदेशकों को बुलाया और सबको कारागार में डालते हुए कहा, जब तक आप सब एकमत नहीं हो जाते, एक विचारवाले नहीं हो जाते, तब तक यहीं रहना पड़ेगा। जब यह बात एक विद्वान आचार्य ने सुनी तो वह राजा के पास गए। राजा ने आचार्य से पूछा, महाराज, आपने मेरा नगर देखा है? आचार्य बोले, हां राजन, मैंने नगर का अवलोकन किया है। राजा ने फिर पूछा, वह कैसा लगा? आचार्य ने कहा, नगर सुंदर है, किंतु

अव्यवस्थित है। राजा ने आश्चर्य से पूछा, कैसी अव्यवस्था आचार्य बोले, बाजार अच्छे नहीं हैं। उसमें सैकड़ों दुकानें हैं। क्या आवश्यकता है इतनी दुकानों की? क्या सब दुकानों को एक कर बड़ी दुकान नहीं बनाई जा सकती थी? जब एक ही बड़ी दुकान होगी तो वह बाजार सुंदर दिखने लगेगा। इस पर राजा ने कहा, यह बात अव्यावहारिक है। आप व्यवहार की दुनिया को नहीं जानते। मनुष्य के जीवन को चलाने के लिए सैकड़ों चीजें चाहिए। किसी को आटा चाहिए, किसी को नमक और किसी को चावल। किसी को सोना चाहिए तो किसी को चांदी। फिर भला सबकी आवश्यकताएं एक ही दुकान पूरी कर सके, यह कैसे संभव है? एक दुकान में इतनी चीजें कैसे रखी जा सकती हैं? कैसे इन्हें बेचा जा सकता है? दुकानें अलग-अलग होने से यह दुविधा नहीं रहती। सबकी आवश्यकताएं पूरी होती हैं और कोई अव्यवस्था नहीं होती। इस पर आचार्य बोले, राजन्, आपका कथन बिल्कुल सही है। आप सर्वशक्तिसंपन्न हैं, फिर भी जब आप सभी दुकानों को एक नहीं कर सकते और उन्हें एक करने की आवश्यकता नहीं मानते तो विभिन्न विचारों की दुकान एक कैसे हो सकती है? वे अलग-अलग हैं और उन सबकी अपनी-अपनी उपयोगिता है। राजा को बात समझ में आ गई। उसने तत्काल सभी धर्म उपदेशकों को मुक्त कर दिया।

१२३) संत की सीख - एक धनी सेठ ने एक संत के पास आकर उनसे प्रार्थना की, महाराज, मैं आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए साधना करता हूं पर मेरा मन एकाग्र ही नहीं हो पाता है। आप मुझे मन को एकाग्र करने का कोई मंत्र बताएं। सेठ की बात सुनकर संत बोले, मैं कल तुम्हारे घर आऊंगा और वहां पर तुम्हें एकाग्रता का मंत्र प्रदान करूंगा। यह सुनकर सेठ बहुत खुश हुआ। उसने इसे अपना सौभाग्य समझा कि इतने बड़े संत उसके घर पधारेंगे। उसने अपनी हवेली की सफाई करवाई और संत के लिए स्वादिष्ट पकवान तैयार करवाए। नियत समय पर संत उसकी हवेली पर पधारे। सेठ ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया। सेठ की पत्नी ने मेवों व शुद्ध घी से स्वादिष्ट हलवा तैयार किया था। चांदी के बर्तन में हलवा सजाकर संत को दिया गया तो संत ने फौरन अपना कमंडल आगे कर दिया और बोले, यह हलवा इस कमंडल में डाल दो। सेठ ने देखा कि कमंडल में पहले ही कूड़ा-करकट भरा हुआ है। वह दुविधा में पड़ गया। उसने संकोच के साथ कहा, महाराज, यह हलवा मैं इसमें कैसे डाल सकता हूं। कमंडल में तो यह सब भरा हुआ है। इसमें हलवा डालने पर भला वह खाने योग्य कहां रह जाएगा, वह भी इस कूड़े-करकट के साथ मिलकर दूषित हो जाएगा। यह सुनकर संत मुस्कराते हुए बोले, वत्स, तुम ठीक कहते हो। जिस तरह कमंडल में कूड़ा करकट भरा है उसी तरह तुम्हारे दिमाग में भी बहुत सी ऐसी चीजें भरी हैं जो आत्मज्ञान के मार्ग में बाधक हैं। सबसे पहले पात्रता विकसित करो तभी तो आत्मज्ञान के योग्य बन पाओगे। यदि मन-मस्तिष्क में विकार तथा कुसंस्कार भरे रहेंगे तो एकाग्रता कहां से आएगी। एकाग्रता भी तभी आती है जब व्यक्ति शुद्धता से कार्य करने का संकल्प करता है। संत की बातें सुनकर सेठ ने उसी समय संकल्प लिया कि वह बेमतलब की बातों को मन-मस्तिष्क से निकाल बाहर करेगा।

१२४) मित्र के बर्तन - बांग्ला के प्रसिद्ध कवि- नाटककार गिरीशचन्द्र घोष के एक रईस मित्र थे। वे अपनी रईसी अपने व्यवहार में भी दिखाते रहते थे। जैसे वह कहीं भी जाते तो उनका नौकर उनके लिए चांदी के बर्तन साथ लेकर चलता था। वे अपना खाना उसी में खाते थे। घोष महाशय को यह बात अखरती थी। पर वह मित्र का दिल नहीं दुखाना

चाहते थे। फिर भी उन्होंने तय किया कि वह उसकी आदतों को सुधार कर रहेंगे। एक दिन घोष महाशय ने दावत दी और अपने उस रईस दोस्त को भी बुलाया। हमेशा की तरह उनके मित्र अपने नौकर के साथ पहुंचे। नौकर बर्तन लेकर आया था। लेकिन घोष महाशय अपने मित्र के आते ही उन्हें और लोगों के बीच ले गए। जब तक मित्र कुछ समझ पाते तब तक उनके सामने पत्तल में खाना परोस दिया गया। बाकी लोगों के सामने भी पत्तल में खाना रखा था। मित्र संकोच में पड़ गए। उन्होंने नौकर को आवाज देना चाहा लेकिन तब तक सब लोग खाने लगे और उनसे भी खाने का अनुरोध करने लगे। बेचारे को उनके साथ पत्तल में खाना पड़ा। खाने के बाद ज्यों ही वे उठे, घोष महाशय उनके बर्तनों में व्यंजन लेकर उनके सामने हाजिर हुए। उन्होंने हंसते हुए मित्र से कहा- थोड़ी गलतफहमी हो गई थी। जब तुम्हारे नौकर को घर की महिलाओं ने बर्तन लेकर आते देखा तो उन्हें लगा कि शायद तुम अपने बच्चों के लिए खाना ले जाना चाहते हो। उन्होंने इसमें खाना दे दिया है। मित्र लज्जित होकर चले गए। उन्हें गलती का अहसास हो गया। उन्होंने प्रदर्शन करना छोड़ दिया।

१२५) सच्चा कलाकार - प्रख्यात चित्रकार माइकल एंजेलो से कई चित्रकार ईर्ष्या करते थे। उन्हीं में से एक चित्रकार ने सोचा कि मैं एक ऐसा चित्र बनाऊंगा जिसके आगे एंजेलो की कलाकृति फीकी पड़ जाएगी। यह सोचकर उसने काफी मेहनत से एक महिला का चित्र बनाया। उसने उस चित्र को एक ऊंचे स्थान पर रखा ताकि वहां से गुजरते लोग उसे आसानी से देख सकें। यद्यपि चित्र बहुत सुंदर था, फिर भी चित्रकार को अहसास हो रहा था कि इसमें कुछ कमी रह गई है। पर कमी कहां है और क्या है, यह जानने में वह खुद को असमर्थ पा रहा था। एक दिन एंजेलो उस रास्ते से जा रहे थे। उनकी नजर उस चित्र पर पड़ी। उन्हें वह चित्र बड़ा खूबसूरत लगा और उसमें जो कमी थी, वह भी उनके ध्यान में आ गई। एंजेलो चित्रकार के घर पहुंचे। चित्रकार ने एंजेलो को पहले कभी देखा नहीं था। उसने उनका स्वागत किया और आने का कारण पूछा। एंजेलो ने कहा, तुमने चित्र तो बहुत सुंदर बनाया है, पर मुझे इसमें एक कमी लग रही है। चित्रकार बोला, हां मुझे भी आभास हो रहा है कि कुछ कमी रह गई है। एंजेलो ने कहा, जरा तुम अपनी कूची देना, मैं उस कमी को पूरा कर देता हूं। चित्रकार बोला, मैंने उसे बड़ी मेहनत से बनाया है, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे हाथ से मेरा चित्र बिगड़ जाए। एंजेलो ने कहा, विश्वास करो, मैं तुम्हारा चित्र खराब नहीं करूंगा। उस चित्रकार से कूची लेकर एंजेलो ने चित्र की दोनों आंखों में दो बिंदी लगा दी। दरअसल चित्रकार आंखों में दो काली बिंदियां लगाना भूल गया था, जिस कारण चित्र अपूर्ण लग रहा था। अब वह चित्र सजीव प्रतीत होने लगा। उसका सौंदर्य बढ़ गया। उस चित्रकार के पूछने पर जब एंजेलो ने अपना नाम बताया तो चित्रकार के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने एंजेलो को बताया कि वह उनके बारे में क्या सोचता रहा था। उसने एंजेलो से क्षमा मांगी।

१२६) मूर्ख कौन- चरवाहा या जौहरी - एक चरवाहे को कहीं से चमकीला पत्थर मिल गया। चमकीला पत्थर लेकर वह बाजार में गया। फुटपाथ पर बैठे दुकानदार ने वह पत्थर उससे आठ आने में खरीदना चाहा, परन्तु उसने उसे बेचा नहीं। आगे गया तो सब्जी बेचनेवाले ने उसका मूल्य लगाया दो मूली। कपड़े की दुकान पर गया तो दुकानदार ने उसका दाम लगाया - थान भर कपड़ा। चरवाहे ने फिर भी नहीं बेचा, क्योंकि उसका मूल्य लगातार बढ़ता जा रहा था। तभी एक व्यक्ति उसके पास आया और बोला, पत्थर बेचोगे? बेचूंगा, सही दाम मिला तो? दाम बोलो- हजार रुपए। दिन

में सपने देखते हो चमकीला है, तो क्या हुआ। कहकर वह व्यक्ति आगे बढ़ गया। वह जौहरी था। समझ गया कि चरवाहा पत्थर का मूल्य नहीं जानता। वह चला गया कि फिर आता हूं। कहकर उसके जाते ही एक दूसरा जौहरी आया। पत्थर को देखते ही उसकी आंखें खुल गईं। दाम पूछा, तो चरवाहे ने बताया डेढ़ हजार रुपए। जोहरी ने डेढ़ हजार में हीरा खरीद लिया। अब पहले वाला जौहरी उसके पास आया और बोला, कहां है तुम्हारा पत्थर ? चरवाहे ने कहा, वह तो बेच दिया। कितने में? डेढ़ हजार रुपए में। जौहरी बोला, मूर्ख आदमी, वह हीरा था जो लाखों का था। तुमने कौड़ी के भाव बेच दिया। चरवाहा बोला, मूर्ख मैं नहीं, तुम हो। वह तो मुझे भेड़ चराते हुए मुफ्त में मिला था। मैंने उसे डेढ़ हजार में बेच दिया। लेकिन तुमने उसका मूल्य जानते हुए भी घाटे का सौदा किया। मूर्ख तुम हो या मैं। जौहरी के पास अब कोई जवाब नहीं था।

१२७) पहले पुरुषार्थ करें, बेबस होने पर ही देवी-देवताओं को पुकारे - एक आदमी बैलगाड़ी लेकर जा रहा था। मार्ग में एक जगह दलदल आया और बैलगाड़ी उसमें फंस गई। बैलों ने जोर मारा, लेकिन गाड़ी का पहिया कीचड़ में धंसता गया। बैलगाड़ी वाला गाड़ी में बैठा बैलों को तो ललकारता है, किंतु गाड़ी को आगे बढ़ाने में सहारा नहीं देता। तभी देवी का एक मंदिर दिखाई दिया तो गाड़ीवाले ने देवी-मां की गुहार लगाई और गाड़ी को निकाल देने की प्रार्थना की।

कुछ देर बाद एक हट्टा-कट्टा आदमी वहां आया, उसने कहा, गाड़ी में बैठने से क्या होगा? आओ, गाड़ी से नीचे उतरो और मेरे साथ गाड़ी को आगे की ओर धक्का लगाओ। बैलगाड़ी वाले ने कहा, मेरे धक्का देने से क्या होगा? गाड़ी खींचने के लिए बैल हैं न? आगंतुक ने कहा, तुम्हें गाड़ी निकालनी है या नहीं। गाड़ीवाले ने कहा, गाड़ी निकालने के लिए ही तो देवी मां से विनती कर रहा हूं। उस व्यक्ति ने कहा, निकालनी है तो जैसा कह रहा हूं, वैसा करो। हारकर गाड़ी वाला नीचे उतरा, पहिये में हाथ लगाकर आगे की ओर धक्का दिया। बैलों को भी सहारा मिला और गाड़ी कीचड़ से निकल गई। आगंतुक ने गाड़ी वाले को नसीहत देते हुए कहा, जिस काम को हम कर सकते हैं, उसके लिए देवी-देवताओं को बुलाना, उनसे मदद की आशा करना अच्छी बात नहीं है। अपने पुरुषार्थ का प्रयोग करना सीखो। जहां अपनी शक्ति काम न करें, अपर्याप्त सिद्ध हो, वहां देवी-देवताओं की पुकार करनी चाहिए।

१२८) सेवा ही धर्म है - एक बार राजेंद्र प्रसाद ट्रेन के तीसरे दर्जे में बैठकर कहीं जा रहे थे। गर्मी का महीना था। गाड़ी में भीड़ बहुत थी। ट्रेन एक स्टेशन पर रुकी। संयोग से उसी समय प्लैटफॉर्म के दूसरी ओर भी एक गाड़ी आकर रुकी। उसमें भी बहुत भीड़ थी। राजेंद्र बाबू ने देखा कि दूसरी ट्रेन के एक डिब्बे में लोग पानी के लिए चिल्ला रहे हैं। चूंकि भीड़ बहुत ज्यादा थी इसलिए वे डिब्बे से नीचे उतर नहीं सकते थे। कोई उन पर ध्यान नहीं दे रहा था। तभी राजेंद्र बाबू की नजर एक महिला पर गई जो अपने छोटे बच्चे को गोद में लिए खिड़की से पानी-पानी चिल्ला रही थी। प्यास से बच्चा रो रहा था। उसकी तरफ भी किसी का ध्यान नहीं जा रहा था। राजेंद्र बाबू से रहा नहीं गया। वह अपने डिब्बे के लोगों को धकियाते हुए किसी तरह नीचे उतरे और दौड़कर नल से अपने लोटे में पानी भरकर उसे दिया। तब तक उनकी गाड़ी खुल गई। लेकिन दौड़कर किसी तरह उन्होंने अपनी ट्रेन पकड़ ली। उनकी सीट के बगलवाले व्यक्ति ने कहा, आप तो दुबले-पतले कमजोर आदमी हैं। इस तरह जोखिम उठाकर आपको ऐसा काम नहीं करना चाहिए था। यात्रियों की सुविधा का ध्यान रखना तो सरकार का काम है। राजेंद्र बाबू बोले, भइया, जब हम लोग ही दूसरे की मदद नहीं करेंगे तो सरकार क्या करेगी। उसको क्यों

दोष देते हो। वैसे भी प्यासे को पानी पिलाना तो पुण्य का काम है। आप तो हट्टे-कट्टे हो। आपको यह काम सबसे पहले करना चाहिए था। बातचीत में जब उस व्यक्ति को मालूम हुआ कि यह सज्जन कोई और नहीं राजेंद्र बाबू हैं, तो वह शर्मिंदा हो गया और उसने राजेंद्र बाबू से क्षमा मांगी। राजेंद्र बाबू ने कहा, अरे इसमें क्षमा मांगने की क्या बात है। आज से तुम भी प्रण कर लो कि जरूरतमंद की सेवा का कोई अवसर नहीं छोड़ोगे। सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। उस व्यक्ति ने वैसा ही करने का वचन दिया।

१२९) और नेपालियन ने युवा कैदी को छोड़ दिया - नेपोलियन बोनापार्ट के आदेशानुसार फ्रांसीसी तट पर सभी अंग्रेजी जहाजों को पकड़कर रखा गया था। उन्हीं में सत्रह वर्ष का एक नाविक लेनार्ड भी था। दूसरे दिन इंग्लैंड से आया एक और लड़का पकड़ा गया। जब उसे लेनार्ड वाले कटघरे में बंद किया गया तब उसने एक पत्र लेनार्ड को दिया जिसमें लिखा था, मां बहुत बीमार है। शायद ही बच सकेगी। उसकी आखिरी तमन्ना लेनार्ड को देखने की है। लेनार्ड तड़प उठा। उसी रात वह जेल से भाग निकला, पर थोड़ी दूर जा पाया था कि पकड़ा गया। अबकी बार उसके साथ और सख्ती की गई। लेनार्ड को अपनी मां की याद बहुत सताने लगी। उसने इस बार भी अथक परिश्रम करके धीरे-धीरे बेड़ियां काट डालीं। वह फिर भागा और फिर पकड़ा गया। हिम्मत करके लेनार्ड तीसरी बार भी भागा, पर दुर्भाग्यवश पकड़ा गया। अगले ही दिन दौर पर नेपोलियन आया। जेल अधिकारी ने नेपोलियन से लेनार्ड के भागने का जिक्र किया।

नेपोलियन के सामने लेनार्ड को पेश किया गया। नेपालियन ने पूछा, लड़के ऐसी कौन सी वजह है, जो तुझे बार-बार भागने की हिम्मत बंधाती है? लेनार्ड आंखों में आंसू भरकर बोला, श्रीमान। मेरी मां मर रही है, मरने से पहले वह मुझे देखना चाहती है। नेपोलियन ने अपनी जेब से सोने का सिक्का निकालकर लेनार्ड को दिया और फिर जेल के अफसर से बोला, इसे जाने दो, इसको मां की ममता खींच रही है, मेरे जैसे सौ नेपोलियन भी इसे रोक नहीं पाएंगे।

१३०) खुदा के करीब होने पर कुछ खबर ही कहां रहती है- उमर खैयाम अपने अलमस्त स्वभाव के लिए मशहूर थे। वह अक्सर अपने साथियों के साथ या कभी-कभी अकेले भी भ्रमण के लिए निकल पड़ते थे।

कभी वह ईश्वर का ध्यान करने लगते तो कभी अलमस्ती में अपना काफी समय गुजार देते। एक दिन वह अपने एक शिष्य के साथ घने जंगल से गुजर रहे थे कि नमाज का वक्त हो गया। दोनों उसी वक्त एक जगह अपनी-अपनी चादरें बिछाकर नमाज अदा करने बैठ गए। तभी पास के जंगल से शेर की दहाड़ सुनाई दी। शिष्य तो घबराकर जान बचाने के लिए पेड़ पर चढ़ गया, लेकिन खैयाम इन सबसे अनजान आराम से नमाज अदा करते रहे। शेर ने नजदीक आकर पहले खैयाम को देखा फिर पेड़ पर चढ़े शिष्य की ओर देखा।

शिष्य से आंखें मिलते ही वह जोर से दहाड़ा और फिर खैयाम के पास से होते हुए उसी जंगल की तरफ चला गया। जब शिष्य को पूरी तरह से संतुष्टि हो गई कि शेर जा चुका है, तब कहीं वह पेड़ से नीचे उतरा। अब तक खैयाम भी नमाज पूरी कर चुके थे। शिष्य को पेड़ से नीचे उतरता देख वह फौरन माजरा समझ गए। इसके बाद उन दोनों ने अपनी-अपनी चादरें समेटीं और चुपचाप आगे की राह पर चल दिए। तभी एकाएक खैयाम ने अपने गाल पर एक जोर का थप्पड़ मारा। शिष्य को बड़ा ताज्जुब हुआ। उसने पूछा- आपने अपने ही गाल पर थप्पड़ क्यों मारा? खैयाम ने कहा- मेरे गाल पर एक मच्छर काट रहा था मैंने उसी को मारने के लिए ये थप्पड़ मारा। शिष्य ने हैरान होकर फिर प्रश्न किया- जब शेर आया तब

तो आप जरा भी विचलित नहीं हुए, लेकिन इस छोटे से मच्छर के काटने से आप इतने विचलित हो उठे। खैयाम ने हंसते हुए उत्तर दिया- दोनों हालात में जमीन-आसमान का अंतर है। उस वक्त मैं तन और मन से खुदा के करीब था, लेकिन इस वक्त एक बंदे के करीब हूं। खुदा के करीब होने पर किसी को भी कुछ खबर ही कहां रहती है?

१३१) ऐसी होती है सच्ची खेल भावना- एक दिन गोपाल (गोपाल कृष्ण गोखले) अपने बड़े भाई गोविंद के साथ कबड्डी खेल रहे थे। गोविंद राव विरोधी टीम में थे। गोविंद राव जब कबड्डी डालने गोपाल के पाले में आए तो उन्होंने गोपाल को इशारा किया कि वह उसे पकड़े नहीं और नंबर ले लेने दे परंतु गोपाल ने उन्हें पकड़ने में अपनी पूरी ताकत लगा दी। गोविंद राव जब पकड़े गए तो उन्हें गोपाल की यह बात बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगी।

खेल खत्म होने पर जब वे दोनों भाई घर वापस लौट रहे थे तो गोविंद राव बोले, गोपाल एक बात तो बता जब मैंने तुम्हें मुझे पकड़ने के लिए मना किया था तो फिर तुम मुझे क्यों पकड़ा? तू मेरा कैसा भाई है जो मेरी इतनी-सी बात भी नहीं मान सकता। गोविंद राव के चेहरे की ओर गौर से देखते हुए गोपाल बोले, भैया, आपके प्रति मेरे मन में पूरी श्रद्धा है। आप जो कहें मैं वह कर सकता हूं परंतु जब खेल में आप मेरी विरोधी टीम में हों तो मैं आपका साथ नहीं दे सकता। ऐसा करने की बजाय मैं उस खेल से हट जाना पसंद करूंगा। अपने छोटे भाई के मुख से सिद्धांतों से ओत-प्रोत यह बात सुनकर गोविंद राव अवाक रह गए।

१३२) जीवन की कीमत - एक दिन एक व्यक्ति एरिजोना इलाके से गुजर रहा था। उसी समय अचानक तेज आंधी और वर्षा होने लगी। व्यक्ति की कार में गैस खत्म हो गई। वह एक गैस स्टेशन पर अपनी गैस भरवाने के लिए रुका। भारी बारिश के बीच वह गाड़ी में बैठा रहा और वहीं से गैस भरनेवाले व्यक्ति को निर्देश देता रहा। जब उसकी गाड़ी में गैस भर गई तो वह गैस भरनेवाले से बोला, मुझे माफ करना। मैंने तुम्हें इतनी बारिश में कष्ट दिया। यह सुनकर गैस भरनेवाला कर्मचारी मुस्कराकर बोला, कोई बात नहीं सर। मैंने आपकी गाड़ी में खुशी-खुशी गैस भरी है। मुझे इस काम में कोई भी तकलीफ नहीं हुई। गैस भरनेवाले कर्मचारी की बात सुनकर गाड़ी का मालिक गाड़ी में से ही बोला, अरे भारी तूफान और बारिश है और तुम कहते हो कि गैस भरते हुए जरा भी परेशानी नहीं हुई। गैस कर्मचारी मुस्कराकर बोला, जी सर, सचमुच कोई परेशानी नहीं हुई है। दरअसल मैंने हर हाल में खुश रहना सीख लिया है। अब गाड़ी का मालिक और हैरान हुआ। वह बोला, तुम हर समय खुश रहते हो। क्या कोई व्यक्ति हर हाल में खुश रह सकता है? कर्मचारी बोला, बिल्कुल। यदि कोई मौत को करीब से देख ले तो वह हर हाल में खुश रह सकता है। वियतनाम युद्ध के दौरान शत्रुओं की घेराबंदी में जब पल-पल मौत मेरी ओर बढ़ रही थी, तभी मैंने तय कर लिया था कि जीवित बच गया तो जीवन का हर पल खुशी से जिऊंगा। कर्मचारी की बात सुनकर गाड़ी मालिक कर्मचारी को गले लगाकर बोला, आज तुमने मुझे जीवन को अच्छी तरह जीने की बड़ी सीख दी है।

१३३) छात्र का जवाब- पूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन मद्रास (चेन्नई) के एक मिशनरी स्कूल के छात्र थे। वह पढ़ने में काफी तेज थे। वह और बच्चों से अलग जीवन के महत्वपूर्ण सवालों पर सोचते रहते थे। एक बार उनकी कक्षा में एक ईसाई अध्यापक पढ़ा रहे थे, जो बेहद संकीर्ण मनोवृत्ति के थे। पढ़ाते हुए वह धर्म के बारे में बच्चों को बताने लगे और बताते-बताते हिंदू धर्म पर कटाक्ष करते हुए उसे दकियानूसी, रूढ़िवादी, अंधविश्वासी और न जाने क्या-क्या कहने लगे। राधाकृष्णन कुछ देर तक यह सब सुन रहे थे। फिर उन्होंने अपने स्थान पर खड़े होकर अध्यापक से पूछा,

सर। क्या आपका ईसाई मत दूसरे धर्मों की निंदा करने में विश्वास रखता है? एक छोटे से बालक के मुंह से इस तरह की गंभीर बात सुनकर अध्यापक चौक गए। वह थोड़ा संभलकर बोले, क्या हिंदू धर्म दूसरे धर्म का सम्मान करता है? अध्यापक के पूछते ही बालक राधाकृष्णन ने जवाब दिया, बिल्कुल। हिंदू धर्म किसी भी धर्म में कभी बुराई नहीं ढूंढता। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा था कि पूजा के अनेक तरीके हैं। अनेक मार्ग हैं। हर मार्ग एक ही लक्ष्य पर पहुंचाता है। क्या इस भावना में सब धर्मों को स्थान नहीं मिलता, सर? इसलिए हर धर्म के पीछे एक ही भावना है, वह तो व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि वह अपनी आस्था किस में मानता है? कोई भी धर्म किसी अन्य धर्म की निंदा करने की शिक्षा कभी नहीं देता। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति वह है, जो सभी धर्मों का सम्मान करे और उनकी अच्छी बातें ग्रहण करे। जवाब सुनकर अध्यापक हैरान हो गए। उन्होंने फिर कभी ऐसी बातें न करने का प्रण किया।

१३४) गुस्से का वक्त- सूफी फकीर जुनैद बहुत ही शांत स्वभाव के थे। लोग उनके पास अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आया करते थे। कुछ तो बेहद गुस्से में आते और कहते, जिस शख्स के कारण मैं गुस्से में हूं, उसे सबक सिखाने का कोई नुस्खा बताइए ताकि आगे से वह मेरे साथ वैसी हरकत न करे। जुनैद मुस्कराते और कहते, इस समस्या का हल मैं अभी नहीं कल इसी समय बताऊंगा। तब उसके साथ-साथ तुम भी गुस्सा भूल जाओगे। अगले दिन जब लोग उनके पास आते तो वाकई वे गुस्से पर नियंत्रण करना सीख जाते हैं। एक दिन जुनैद से उनके एक युवा शिष्य ने पूछा, आखिर गुस्सा करनेवाले शख्स को आप चौबीस घंटों का समय क्यों देते हैं? उसे उसी समय अपनी बात कहने का मौका क्यों नहीं देते? जुनैद बोले, बेटा, गुस्से की हालत में अगर फौरन जवाब दिया जाए तो आदमी बेकाबू हो जाता है। वह दोस्ती, रिश्ते नाते भी भुला देता है। मगर चौबीस घंटे बाद जब वह शांत होता है, तो उसे यह जानकर दुख होता है कि गुस्से ने उसके रिश्तेदारों या वक्त को खा लिया है। इस पर शिष्य बोला, फिर चौबीस घंटे का वक्त ही क्यों? दो-तीन दिन का समय क्यों नहीं? इस पर जुनैद बोले, चौबीस घंटे तक कोई लगातार गुस्से में नहीं रह सकता। उसे अपनी गलती का अहसास होने लगता है। वहीं दो-तीन दिनों बाद वह और कामों में व्यस्त हो जाता है और अपनी गलती भूल जाता है। इसलिए चौबीस घंटे के अंदर कोई शख्स अगर अपने गुस्से पर सोच दे, तो वह उसे न सिर्फ काबू कर सकता है, दूसरों को भी उनकी गलती का अहसास करा सकता है।

१३५) सफलता का राज- एक बार मशहूर वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन अपने एक सहायक के साथ ऑफिस में काम कर रहे थे। काम खत्म हो जाने के बाद बहुत सारे कागज मेज पर इकट्ठे हो गए। उन सभी को बराबर करके बांधने के लिए आइंस्टीन पेपर क्लिप ढूंढने लगे। उन्हें एक जगह व्यवस्थित करके रखना जरूरी था नहीं तो वे इधर-उधर हो जाते। लेकिन उस समय आइंस्टीन व उनके सहायक को कहीं भी पेपर क्लिप नजर नहीं आ रही थी। आखिर आइंस्टीन को एक खराब सी मुड़ी हुई क्लिप मिली, मगर उसे सीधा करना जरूरी था, तभी वह काम आती। आइंस्टीन उस क्लिप को सीधा करने में जुट गए। काफी देर हो गई। इसी बीच उनका सहायक बाजार जाकर पेपर क्लिप का नया पैकेट खरीद लाया। उसने नई पेपर क्लिप लाकर कागजों में लगा दी और फिर अपने काम में जुट गया। एक-दो घंटे में अपना काम खत्म करने के बाद सहायक आइंस्टीन के पास आया तो यह देखकर दंग रह गया कि वह अभी भी उस खराब व मुड़ी हुई क्लिप

को सीधा करने में लगे थे। सहायक ने कहा, सर, मुझे पेपरों को क्लिप में लगाए लगभग दो घंटे होनेवाले हैं और आप अभी भी इसे सीधा करने में लगे हैं। अब इसकी कोई जरूरत नहीं। अब तो बहुत सारी नई क्लिप आ गई हैं। सहायक की बात सुनकर आइंस्टीन बोले, तुम अपनी जगह ठीक हो। लेकिन मै। एक बार जब अपना कोई लक्ष्य तय कर लेता हूं तो उससे हटना मेरे लिए मुश्किल हो जाता है। मैं उसे पूरी करके ही रहता हूं। यह सुनकर सहायक दंग रह गया। उसे आइंस्टीन की सफलता का राज समझ में आ गया।

१३६) जॉर्ज वाशिंगटन की दावत- अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन समय के बड़े पाबंद थे। उनका हर काम वक्त पर होता था। वह निर्धारित समय पर उठते थे। नियत समय पर नाश्ता करते और तय समय पर अपने काम में लग जाते थे। एक बार उन्होंने अमेरिकी कांग्रेस के कुछ नए सदस्यों को अपने यहां रात्रिभोज के लिए आमंत्रित किया और संदेश भिजवा दिया कि वे रात आठ बजे पहुंच जाएं। दरअसल वे हर हाल में आठ बजे भोजन कर लेते थे। लेकिन नए सदस्यों को क्या पता कि जार्ज के लिए समय का कितना महत्व है। उन्होंने इस पहलू पर गौर नहीं किया। उन्हें पहुंचने में थोड़ी देर हो गई। इधर आठ बजते ही जॉर्ज का खाना लग गया और उन्होंने भोजन करना शुरू कर दिया। वह जब आधा खाना खा चुके, तब अमेरिकी कांग्रेस के वे नए सदस्य वहां पहुंचे। उन्हें जॉर्ज को खाना खाते देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने पहली बार देखा था कि मेहमानों के आने से पहले ही कोई मेजबान खाना शुरू कर दे। उन्हें जॉर्ज की यह विचित्र मेजबानी समझ में नहीं आई। जब सदस्यों ने इस बारे में पूछा तो जॉर्ज ने कहा, मेरे भोजन कर लेने से आप लोगों को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मेरा रसोइया कभी यह नहीं देखता कि निमंत्रित अतिथि आ गए हैं या नहीं। आठ बजते ही वह खाना लगा देता है। उसके खाना लगाते ही मै खाना शुरू कर देता हूं। उसने आज भी यही किया। मैं इसी तरह हर काम तय समय पर करता हूं। आपको असुविधा हुई, इसका खेद है। इतना कहने के बाद जॉर्ज वाशिंगटन भोजन करने में व्यस्त हो गए। मेहमान झेंपते हुए एक-दूसरे का मुंह देखने लगे।

१३७) अर्जुन का अहंकार- एक बार अर्जुन को अहंकार हो गया कि वही कृष्ण के सबसे बड़े भक्त हैं। श्रीकृष्ण उनके इस अहंकार को भांप गए। एक दिन वह अर्जुन को अपने साथ घुमाने ले गए। रास्ते में उनकी मुलाकात एक गरीब ब्राह्मण से हुई। वह सूखी घास खा रहा था और उसकी कमर से तलवार लटक रही थी। अर्जुन ने उससे पूछा, आप तो अहिंसा के पुजारी हैं। जीव हिंसा के भय से सूखी घास खाकर अपना गुजारा करते हैं। लेकिन फिर तलवार क्यों आपके साथ है? ब्राह्मण ने जवाब दिया, मैं कुछ लोगों को दंडित करना चाहता हूं। अर्जुन ने जिज्ञासा जाहिर की, आपके शत्रु कौन हैं? ब्राह्मण ने कहा, मैं चार लोगों को खोज रहा हूं, ताकि उनसे हिसाब चुकता कर सकूं। सबसे पहले तो मुझे नारद की तलाश है, जो मेरे प्रभु को आराम नहीं करने देते। सदा भजन-कीर्तन कर उन्हें जगाए रखते हैं। फिर मैं द्रौपदी पर क्रोधित हूं। उसने मेरे प्रभु को ठीक उसी समय पुकारा, जब वह भोजन करने बैठे थे। उन्हें खाना छोड़ पांडवों को दुर्वासा ऋषि के श्राप से बचाने जाना पड़ा। तीसरा शत्रु है हृदयहीन प्रह्लाद। उस निर्दयी ने मेरे प्रभु को गरम तेल के कड़ाह में प्रविष्ट कराया, हाथी के पैरों तले कुचलवाया और खंभे से प्रकट होने के लिए विवश किया और चौथा शत्रु है अर्जुन। उसने मेरे भगवान को अपना सारथी बना डाला। कितना कष्ट हुआ होगा मेरे प्रभु को। यह कहते ही ब्राह्मण की आंखों में आंसू आ गए। यह

देख अर्जुन का घमंड चूर-चूर हो गया। उसने श्रीकृष्ण से क्षमा मांगते हुए कहा, मान गया प्रभु, इस संसार में न जाने आपके कितने तरह के भक्त हैं। मैं तो कुछ भी नहीं हूं।

१३८) बापू का बड़प्पन - यह घटना आजादी के पहले की है। बिहार के चंपारण जिले में इंग्लैंड से आए कुछ अंग्रेज नील की खेती करते थे। वे निलहे कहलाते थे। ये वहां के किसानों पर बड़ा जुल्म ढाते थे और तरह-तरह से उनका शोषण करते थे। इससे वहां के किसान बेहद त्रस्त थे। उनमें से एक किसान ने गांधीजी से चंपारण आने की प्रार्थना की। गांधीजी ने किसान का आग्रह मान लिया। वे निलहों द्वारा वहां के किसानों पर किए जानेवाले जुल्मों की जांच करने के लिए चंपारण पहुंचे। वहां की जनता बापू के आगमन से प्रसन्न हो उठी। लेकिन निलहों को इससे गुस्सा आ गया। वे आग-बबूला हो उठे। पर गांधीजी इन सबसे अविचलित अपने काम में लगे रहे। एक दिन गांधीजी को पता चला कि पास का एक निलहा उनसे इतना गुस्सा है कि उन्हें मार डालना चाहता है। यह जानकर एक रात गांधीजी स्वयं चलकर उस निलहे की कोठी पर पहुंचे। निलहे ने उनसे पूछा- तुम कौन हो? वह बापू को पहचानता नहीं था। बापू ने सरल भाव से कहा- मैं गांधी हूं। शायद आपने नाम सुना होगा। निलहा आश्चर्यचकित होता हुआ बोला- तुम यहां किसलिए आए हो? गांधीजी ने कहा- सुना है कि आप मुझे मार डालना चाहते हैं। आपको कष्ट न हो इसलिए मैं स्वयं आपके पास आ गया हूं। लीजिए, आप मुझे मार डालिए। बापू के इन वचनों को सुनकर उस निलहे के होश उड़ गए। उससे कुछ कहते न बना और वह सिर झुकाए बापू के चरणों की ओर देखता रह गया। इसके बाद उसने किसानों को सताना बंद कर दिया। बापू की निडरता व उनके बड़प्पन को वह जीवन भर नहीं भूला।

१३९) सत्य की राह - यह घटना उन दिनों की है, जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में थे। एक बार कुछ युवक बापू के आश्रम में भर्ती हुए। युवक वहां आश्रम के नियमों पर चलने लगे। उन युवकों ने एक महीने तक बिना नमक का भोजन करने की प्रतिज्ञा की। कुछ दिनों तक तो वे अपनी प्रतिज्ञा पर अमल करते रहे, लेकिन शीघ्र ही वे सादे भोजन से उकता गए। जब बिना नमक के चलाना उनके लिए मुश्किल हो गया, तो एक दिन युवकों ने डरबन से खाने की मसालेदार और स्वादिष्ट चीजें मंगवाई और चुपचाप खा लीं। बाद में उन्हीं में से एक युवक ने जाकर बापू को सब बता दिया। बापू सारी बात जानकर थोड़ा विचलित हुए, लेकिन उस समय उन्होंने कुछ नहीं कहा। शाम की प्रार्थना के बाद बापू ने उन युवकों को अपने पास बुलाया और मसालेदार खाना खाने के बारे में पूछा। युवकों ने इस प्रकार का खाना खाने से साफ इनकार कर दिया। यही नहीं, उन लोगों ने बापू को यह भेद देनेवाले को ही झूठा ठहरा दिया। बापू को यह सहन न हुआ। वह जोरों से अपने गालों को पीटने लगे और बोले- मुझसे सच्चाई छिपाने में कसूर तुम्हारा नहीं है मेरा है। लगता है, अभी तक मैंने सत्य का गुण प्राप्त नहीं किया है। सत्य मुझसे दूर भागता है। दोषी मैं हूं, इसलिए मैं अपने को सजा देता हूं। बापू को ऐसा करते देख उन युवकों को गहरा झटका लगा। वे एक-एक करके बापू के चरणों में गिर पड़े और सबने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। युवकों द्वारा अपनी भूल स्वीकार करने पर बापू ने सबको क्षमा कर दिया और फिर झूठ के दुष्परिणामों के बारे में सबको विस्तार से समझाया।

१४०) काले तंबू वाले - मगध नरेश श्रेणिक ने घोषणा करवाई कि जो लोग धर्म के मार्ग का अनुसरण करेंगे और श्रावक व्रत धारण करेंगे, उनसे चुंगी नहीं ली जाएगी। घोषणा सुनकर हलचल मच गई। आपराधिक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति भी

स्वयं को श्रावक बताकर इसका लाभ उठाने लगे। इससे राज्य की आय कम होने लगी। चिंतित होकर राजा ने मंत्री से इस बारे में परामर्श किया। मंत्री बोला, आप चिंता न करें। मैं असली और नकली श्रावक की पहचान कर लूंगा। इसके बाद उसने मैदान में दो तरह के तंबू लगवाए- एक सफेद और एक काला। सभी श्रावकों को बुलाया गया और घोषणा की गई कि जो सच्चे श्रावक हैं वे सफेद तंबू में आ जाएं। यह सुनते ही भीड़ उस तंबू में घुसने के लिए आपाधानी करने लगी। मंत्री ने देखा कि काले तंबू में बहुत कम लोग थे। वह राजा को काले तंबू में लेकर गया। राजा ने वहां मौजूद लोगों से पूछा कि उन्होंने सफेद तंबू में घुसने की कोशिश क्यों नहीं की? इस पर एक व्यक्ति बोला, महाराज, हम स्वयं को सच्चा श्रावक नहीं मानते। हम व्रत का पालन करने की कोशिश तो करते हैं लेकिन कई बार अनजाने में हमसे पाप हो ही जाता है। जवाब सुनकर राजा समझ गए कि ये ही असली श्रावक हैं। उधर सफेद तंबू में जगह पाने के लिए आपाधापी जारी थी। मंत्री ने वहां पहुंच कर कहा, जो स्वयं को सच्चा श्रावक सिद्ध करने के लिए मारीपट करे वह सच्चा श्रावक नहीं हो सकता। काले तंबू वालों को छोड़कर सब पर चुंगी फिर से लगा दी गई।

१४१) अपनी पहचान बनाएं- अंग्रेजी के विश्वविख्यात लेखक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ बेहद हंसमुख और मिलनसार थे। कई बार वह अपनी हाजिरजवाबी और सटीक टिप्पणी से लोगों को चमत्कृत कर देते थे। उनकी लोकप्रियता इतनी ज्यादा थी कि वह जहां भी जाते, लोग उन्हें घेर लेते थे। एक बार वह किसी कॉलेज के कार्यक्रम में मुख्य अतिथि थे। जब कार्यक्रम समाप्त हुआ तो हमेशा की तरह उनसे ऑटोग्राफ लेनेवालों की भीड़ लग गई। एक नौजवान ने ऑटोग्राफ बुक उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा, सर, मुझे साहित्य का बहुत शौक है और मैंने आपकी सभी पुस्तकें पढ़ी हैं। आप मेरे प्रिय लेखक हैं। मैं अपने जीवन में अभी तक अपनी अलग पहचान नहीं बना पाया हूं लेकिन बनाना चाहता हूं। मैं क्या करूं? इसके लिए आप मुझे कोई संदेश देकर अपना हस्ताक्षर करें तो बहुत मेहरबानी होगी। बर्नार्ड शॉ नौजवान की बात पर मुस्कराए फिर उन्होंने उसके हाथ से हस्ताक्षर पुस्तिका ली और उस पर संदेश लिखकर हस्ताक्षर किया और पुस्तिका लौटा दी। नौजवान ने पुस्तिका खोलकर देखा तो हैरान रह गया। बर्नार्ड शॉ ने लिखा था, अपना समय दूसरों के हस्ताक्षर इकट्ठा करने में नष्ट न करें, बल्कि खुद को इस योग्य बनाएं कि दूसरे आपके हस्ताक्षर प्राप्त करने के लिए लालायित रहें। अपनी अलग-अलग पहचान बनाने के लिए हर पल मेहनत करना और संघर्षरहित रहना आवश्यक है। यह पढ़कर नौजवान ने कहा, सर, मैं आपके इस संदेश को जीवन भर याद रखूंगा और अपनी एक अलग पहचान बनाकर दिखाऊंगा। इस पर जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने नवयुवक की पीठ थपथपाई और भविष्य के लिए शुभकामनाएं दी।

१४२) अन्न का यज्ञ- दक्षिण भारत के संत रामलिंगम् स्वामी करुणा और प्रेम को ही भक्ति का मूल आधार बताया करते थे। एक बार उनके पास कुछ धनी व्यापारी आए। सभी के पास घी, बढ़िया चावल, गेहूं, शक्कर आदि थे। एक ने कहा, महाराज, हम एक यज्ञ का आयोजन करने का संकल्प लेकर आए हैं। हम चाहते हैं कि यज्ञ में पहली आहुति आप ही डालें ताकि हमारा यज्ञ सफल हो और हम सर्वश्रेष्ठ कर्म की ओर अग्रसर हों। उनकी बात सुनकर रामलिंगम् स्वामी बोले, यज्ञ अवश्य होगा। कल सवेरे आप यज्ञ में होम करने के लिए बढ़िया वस्तुएं लेकर आइएगा। मैं कल आपको यज्ञ के माध्यम से साक्षात देव-दर्शन कराऊंगा। यह सुनकर सभी व्यापारी खुश होकर वहां से चले गए। अगले दिन सवेरे-सवेरे

उनके पास यज्ञ के लिए बढ़िया सामग्री जिसमें खाद्य सामग्री भी शामिल थी, पहुंचा दी गई। स्वामीजी ने यज्ञ के लिए दी गई खाद्य सामग्री से हलवा, खीर, पूरी और सब्जी आदि व्यंजन तैयार करा दिए। इसके बाद उन्होंने आसपास के इलाके से गरीब और अभावग्रस्त लोगों को आमंत्रित किया। उन्हें एक पंक्ति में बिठाया और फिर व्यापारियों से बोले, इन सबको सम्मान और प्रेम के साथ भोजन कराओ। यह अनुभव करो कि तुम यज्ञ में सच्चे मन से आहुतियां डाल रहे हो। अपने मन में किसी भी किस्म का राग-द्वेष मत आने दो। ये सोचो कि सभी अभावग्रस्त और दो वक्त की रोटी को तरसते ये लोग साक्षात देवता बनकर आहुतियां ग्रहण कर रहे हैं। व्यापारियों ने उनकी बात मान कर ऐसा ही किया। उन्हें वाकई असीम संतोष और अद्‌भुत आनंद प्राप्त हुआ। सभी धनी व्यक्तियों और अभावग्रस्त लोगों के चेहरों पर प्रसन्नता देखकर स्वामी रामलिंगम् बोले, जब किसी भूखे-असहाय व्यक्ति को भोजन देकर उसकी भूख तृप्त की जाती है, उस समय उसके अंत:करण से निकला कृतज्ञता का भाव ईश्वर का आशीर्वाद होता है। स्वामी जी के अनुयायियों ने आज भी अन्नदान की परंपरा को जीवित रखा है।

१४३) जीवन संपदा की अपेक्षा- एक सेठ चतुराई से व्यापार चलाता था। उसके घर में तीन प्राणी थे- पति, पत्नी और एक छोटा बच्चा। दिन बड़े सुख से गुजार रहे थे। एक दिन घर में अचानक आग लग गई। जब आग पलंग के निकट आ गई, सेठ-सेठानी जागे। चिल्लाए, पर आवाज पड़ोस तक नहीं पहुंची। दोनों मिलकर बहुमूल्य वस्तुएं बचाने में जुट गए। पड़ोसी भी शोर सुनकर जाग गए और सामान निकालने में मदद करने लगे। आग काबू में आ गई। सेठ-सेठानी ने बचे हुए सामान पर नजर डाली तो संतोष की सांस ली। बहुमूल्य सामान आग की चपेट से बचा लिया गया था। जब सब कुछ शांत हो गया तो देखा कि अपना प्राण प्यारा बच्चा तो है ही नहीं। जले हुए घर में जाकर देखा तो पाया कि सोनेवाले कमरे में ही बच्चा पलंग पर पड़ा रहा और समाप्त हो गया। हाहाकार मच गया। माता-पिता विलाप कर रहे थे। संबंधी कुटुंबियों ने उसकी अन्त्येष्टि की। माता-पिता विक्षिप्त बने बैठे थे। मिलने आने वालों में से एक ने कहा- अग्निकांड देख कर आप लोग संपत्ति बचाने तो दौड़े, पर बच्चे का ध्यान क्यों नहीं दिया? उसे पहले बचाने की याद क्यों नहीं रही? दुर्घटना की चर्चा जहां-तहां बहुत दिनों तक होती रही। एक गोष्ठी में उस घटना का उदाहरण देकर एक ज्ञानी बता रहे थे- मनुष्य धन-दौलत को ही सब कुछ समझता है और उसी को बढ़ाने बचाने के लिए हाथ-पैर मारता रहता है। अंत में इतना घाटा आता है, जिसकी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती। उस सेठ की तरह हम सब भी तो सदा जीवन संपदा की ऐसी ही उपेक्षा करते हैं।

१४४) निर्भीकता व स्पष्टवादिका का असर- गुलामी से मुक्त हुआ- तैमूरलंग एक अत्याचारी शासक के रूप में विख्यात था। जिस राज्य को लूटता, वहां से बड़ी संख्या में गुलामों को पकड़ता। पकड़े हुए गुलामों का सौदा वह स्वयं ही मोलभाव करके तय करता था। एक बार उसके द्वारा पकड़े गए गुलामों में तुर्किस्तान के प्रसिद्ध दार्शनिक अहमदी थे। तैमूर ने उनसे पूछा, बताओ पास में खड़े इन दो गुलामों की कीमत कितनी होनी चाहिए।

अहमदी ने कहा, ये नेक और समझदार मालूम पड़ते हैं। इनकी कीमत चार-चार अशर्फियों से तो कम नहीं होनी चाहिए। तैमूर को पता नहीं क्या सूझा, उसने एक विचित्र सवाल किया अहमदी से- और मेरी कीमत क्या हो सकती है?

कुछ सोचकर अहमदी ने कहा, दो अशर्फी। दो अशर्फी से ज्यादा आपकी कीमत नहीं है।

यह सरासर तैमूर का अपमान था। वह गुस्से में गरजा, तुम्हें मालूम है तुम क्या कह रहे हो? इतनी अशर्फियों की तो मेरी

एक चादर है, जो मैंने ओढ़ रखी है। गुस्से से लाल तैमूर को बड़ी निर्भयता से देखते हुए अहमदी ने कहा, यह कीमत मैंने तुम्हारी चादर देखकर ही बताई है। अन्यथा तुम जैसे निर्दयी, हृदयहीन और अत्याचारी शासक की कीमत दो कौड़ी की भी नहीं हो सकती। दार्शनिक अहमदी की निर्भीकता और स्पष्टवादिता देखकर तैमूर का गुस्सा ठंडा पड़ गया। पता नहीं क्या सोचकर उसने अहमदी को गुलामी से मुक्त कर दिया।

१४५) स्त्री का स्वाभिमान- राजा सुशांत सिंह एक धर्मपरायण और न्यायप्रिय शासक थे। वह अक्सर वेश बदलकर अपनी प्रजा का हालचाल जानते रहते थे। एक दिन उन्हें पता चला कि उनके राज्य में रहनेवाली एक महिला का पति गलत संगति में पड़ गया है और नाराज होकर महिला ने अकेले रहना शुरू कर दिया है। महिला के पास रोजगार का कोई नियमित साधन नहीं था, इसलिए उसका जीवन कठिनाई में बीत रहा था। राजा वेश बदलकर उस महिला के पास पहुंचे। उन्होंने कहा, देवी, आप अत्यंत कठिनाई में अपना जीवन गुजार रही हैं। क्या आप बेसहारा हैं? यह सुनकर स्त्री चौंककर बोली, आपसे किसने कहा, मैं बेसहारा हूं। मैं बिल्कुल बेसहारा नहीं हूं। इस पर राजा बोले, अकेले रहने का यह अर्थ नहीं है कि मैं बेसहारा हूं। मेरे तो तीन-तीन सहारे हैं। राजा ने पूछा, आपके तीन सहारे कौन हैं? क्या मैं उनका नाम जान सकता हूं। महिला बोली, बिल्कुल जान सकते हैं। मेरे दोनों हाथ, मेरा धर्म और मेरा ईश्वर मेरा सहारा हैं। अब आप ही बताइए जिस महिला के पास जगत के सबसे बड़े सहारे मौजूद हों, वह बेसहारा कैसे हो सकती है? महिला के इस जवाब ने राजा को निरुत्तर कर दिया। वह गर्व से बोले, जिस राज्य में आप जैसी स्वाभिमानी और कर्मठ महिला रहती हो, वह राज्य धनी है। मैं क्षमा चाहता हूं कि मैंने आपको बेसहारा कहा। फिर उन्होंने उस महिला को अपना सही परिचय दिया। उन्होंने उस महिला को अपने महल की रसोई का कार्यभार संभालने का काम सौंप दिया।

१४६) किसी की उपेक्षा करना अच्छी बात नहीं - किसी परिवार में एक व्यक्ति के चार बेटे और चार बहुएं थीं। पिता वृद्ध और लाचार हो गया तो उसकी उपेक्षा होने लगी। बेटों और बहुओंको उसकी सेवा भारी लगने लगी। चारों भाइयों ने मिलाकर विचार किया और वृद्ध पिता को पशुओं के बाड़े में डाल दिया। उसे एक टोकरा दे दिया यह कहकर कि भूख लगे तो उसे बजा दिया करो, भोजन भिजवा दिया जाएगा।

पशुओं के बाड़े में पड़ा, वृद्ध पिता अपनी असमर्थता पर आंसू बहाता। भूख से विकल होकर वह कांपते हाथों से टोकरा बजाता तो घर का कोई सदस्य अनिच्छापूर्वक बाड़े में जाता और एक पात्र में रूखी रोटियां डाल देता। कुछ दिन तक क्रम चलता रहा। एक दिन उस वृद्ध के पौत्र ने कौतूहलवश बाड़े में झांका। उसने देखा- दादाजी दयनीय अवस्था में एक टूटी चारपाई पर पड़े कराह रहे हैं। वह बच्चा बाड़े के भीतर गया, दादा से सारी बात पूछी।

वहां मिट्टी के कुछ जूठे ठीकरे पड़े हुए थे। वह उन्हें उठा लाया और अपने कमरे के बाहर रख दिया। बच्चे के पिता ने उन्हें देखा तो पूछा, इन्हें यहां लाकर क्यों रखा है?

बच्चे ने जवाब दिया, आपके लिए। एक दिन जब आपको हम जानवरों के बाड़े में डाल देंगे तो खाना देने के लिए इन ठीकरों की जरूरत पड़ेगी। हम उसका पहले से प्रबंध कर रहे हैं। पिता बेटे का यह उत्तर सुनकर सुन्न रह गया। वह बाड़े में गया और पिता को घर में ले आया। हर व्यक्ति को यह सोचना है कि उसके द्वारा डाली गई परम्परा का पालन अगली पीढ़ी करेगी,

इसलिए ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जो स्वयं को अप्रिय लगे। उपेक्षा की तो आपकी भी एक दिन उपेक्षा जरूर होगी।

१४७) मानव सेवा ही वास्तव में सर्वोत्तम सेवा होती है- ईश्वरचंद्र विद्यासागर मानव सेवा को ही सर्वोत्तम मानते थे। एक बार कोलकाता महामारी की चपेट में आ गया। ऐसे ही विकट समय में ईश्वरचंद्र विद्यासागर कॉलेज जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक व्यक्ति को सड़क पर बुरी तरह कराहते हुए देखा। उसके समीप ही झाड़ू-पंजर पड़ा हुआ था। झाड़ू आदि देखकर वह समझ गये कि यह सफाईकर्मी है और महामारी की चपेट में आ गया है। उन्होंने हाथ लगाया तो पाया कि वह तेज बुखार से पीड़ित है। मौके की नजाकत समझते हुए वह उस सफाईकर्मी को अपने घर ले आये। उसे बिस्तर पर लिटाकर डॉक्टर को दिखाया और दवा दिलवाई। सफाईकर्मी महामारी से पीड़ित होकर अत्यंत कमजोर हो चुका था। वह उठने में असमर्थ था। यह देखकर ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने उसे पकड़ कर बिठाया, उसके शरीर की सफाई की। उस मरीज की इतनी सेवा करते देख उनके एक निकट संबंधी ने कहा, आप इन्हें पहचानते हैं कि यह कौन है?

विद्यासागर बोले, हां, यह और मैं दोनों ही इंसान हैं और एक ही पेशे के हैं। पेशे में फर्क इतना है कि मैं ज्ञान के माध्यम से समाज में फैली बुराइयों की सफाई करता हूं और सफाईकर्मी होने के कारण यह समाज में फैली गंदगी की सफाई करते हैं। हमपेशा होने के कारण यह मेरे भाई हुए। उस मरीज ने जब ईश्वरचंद्र विद्यासागर के ये शब्द सुने तो उनकी आंखें भर आईं और निकट संबंधी भी अपना-सा मुंह लेकर रह गये। तब विद्यासागर अपने निकट संबंधी से बोले, मित्र, वास्तव में मानव सेवा ही सर्वोत्तम सेवा है।

१४८) आत्मबल के लिए- एक गरीब बुढ़िया थी। अपनी झोपड़ी में अकेली रहती थी। उसके पास एक गाय थी। बस उसी के सहारे वह अपना जीवन निर्वाह करती थी। पर्युषण पर्व चल रहा था। वह अपनी झोपड़ी में बैठी-बैठी रोज देखती थी कि गांव के लोग बहुत ठाट-बाट से पूजा की थाल और प्रसाद आदि लेकर लिए मंदिर जा रहे हैं। उन्हें देखकर बुढ़िया सोचती थी, मैं इतनी ठाट से पूजा नहीं कर सकती, मेरे पास पर्याप्त साधन नहीं है। पूजा की इच्छा दब जाती। एक दिन उसने सोचा, यदि पूजा नहीं कर सकती तो आरती तो कर सकती हूं। बस, यह सोचकर वह उठी, अपनी गाय के दूध से निकाला हुआ घी लिया। पड़ोसी के एक कपास के खेत में से थोड़ी-सी रूई ले आई। एक मिट्टी के दीपक में आरती संजोकर चल दी मंदिर की ओर। अत्यंत श्रद्धा भक्ति से उसने आरती की, जिसके परिणाम स्वरूप आगामी भव में उसे अत्यंत ज्ञानी मुनिराज की पर्याय प्राप्त हुई। न कोई उपवास, न कोई व्रत, केवल पवित्र भावना, श्रद्धा और भक्ति से उसे यह प्राप्त हुआ। किसी शक्ति हीन व्रती प्राणी का उपहास मत कीजिए। संभव है, उसमें शक्ति की अल्पता हो पर भक्ति की प्रबलता हो। कोई छोटा बच्चा पवित्र भावना लेकर व्रत करना चाहता है, तो उसे रोकिए मत, करने दीजिए। उसकी भावनाओं को खंडित मत कीजिए, ठेस मत पहुंचाइए। बल्कि उसे व्रत के वास्तविक उद्देश्य को समझाकर उसके इरादे को और दृढ़ बनाइए। तप के मार्ग को सामान्य मत समझिए। कुछ लोग कहते हैं, तप में क्या रखा है? बेकार है? व्यर्थ है। ऐसा वे लोग कहते हैं जिनमें पुरुषार्थ का अभाव है। जो स्वयं पालन नहीं कर सके, उन्हें कहना चाहिए हम तो नहीं कर पाते, पर आप कर रहे हैं, यह अच्छी बात है। आपका कल्याण हो। उसके प्रति कम से कम अपनी भावनाएं पवित्र रखनी चाहिए। तप की सबसे बड़ी पूंजी आत्मशक्ति की उत्पत्ति है। इस आत्मशक्ति के माध्यम से हमारे में विरोध में भी जीने का साहस उत्पन्न होता है।

१४९) शांति सबसे जरूरी - भगवान विष्णु के सामने भीड़ लगी थी अपने आसन पर विराजमान प्रभु सभी प्राणियों को त्रिलोक की संपदा बांट रहे थे। उन्होंने संकल्प किया था कि आज किसी को खाली हाथ नहीं जाने देंगे। वे धन-धान्य, संतान, वैभव-विलास, यश सब कुछ खुले हाथों से दे रहे थे। बैकुंठ का कोष खाली होते देख लक्ष्मी से रहा नहीं गया और वह दौड़कर विष्णु का हाथ थामकर बोलीं, हे प्रभु। यह आप क्या कर रहे हैं। यदि आप मुक्त भाव से यों ही संपदा लुटाते रहे तो बैकुंठ में कुछ भी नहीं बचेगा। ऐसे में तो हमारा सुख-चैन सब छिन जाएगा। लक्ष्मी की बात पर विष्णु मंद-मंद मुस्कराने लगे और बोले- देवी, इसके लिए चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। धन-संपदा लुटाने से हमारा सुख पहले की तरह ही बना रहेगा। लक्ष्मी हैरानी से बोलीं, कैसे प्रभु? सब कुछ तो आपने लुटा दिया। विष्णु बोले- हां, सब कुछ लुटाने पर भी एक अमूल्य निधि ऐसी है जो हमारे पास सुरक्षित है और उसे वहां उपस्थित नर, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर एवं असुर में से किसी ने भी नहीं मांगा है। वह निधि ऐसी है कि उससे धन-संपदा स्वयं खड़ी हो जाती है और यदि वह नहीं है तो धन-संपदा, वैभव का कोई मोल नहीं रह जाता। लक्ष्मी फिर बोलीं- प्रभु, पहेलियां न बुझाइए। बताइए वह है क्या? विष्णु बोले वह निधि है- शांति। शांति के बिना धन-संपदा, वैभव-विलास का कोई अर्थ नहीं है। विष्णु की बात सुनकर लक्ष्मी संतुष्ट हो गईं और बोली- हां प्रभु, आप सही कह रहे हैं। अब मैं निश्चिंत हूं।

१५०) जब एक बच्चे से बायजीद ने सीख पाई- बायजीद नाम का एक मुसलमान फकीर हुआ है। वह गांव से गुजर रहा था। सांझ का समय था, वह रास्ता भटक गया। तभी उसने एक बच्चे को हाथ में दीपक ले जाते हुए देखा। उसने बच्चे को रोककर पूछा, यह दीया किसने जलाया और इसे लेकर तुम कहां जा रहे हो?

बच्चे ने कहा, दीया मैंने ही जलाया है और इसे मैं मंदिर में रखने के लिए जा रहा हूं। बायजीद ने फिर पूछा, क्या यह पक्की बात है कि दीया तुमने ही जलाया है? ज्योति तुम्हारे ही सामने जली है? अगर ऐसी बात है तो तुम मुझे बताओ कि ज्योति कहां से आई और कैसे?

उस बच्चे ने बायजीद की ओर से देखा और फिर फूंक मारकर दीए को बुझा दिया। दीया बुझाने के बाद उस बच्चे ने पूछा, अभी आपके सामने ज्योति समाप्त हो गई। वह ज्योति कहां गई और कैसे चली गई, कृपाकर आप मुझे समझाएं।

बच्चे के इस प्रश्न से बायजीद अवाक् रह गया। उसने बच्चे से कहा, मुझे आज तक भ्रम था कि मैं ही जानता हूं कि जीवन कहा से आया और कहां चला गया। आज मुझे अपनी हकीकत का पता चला है। जो मैं गुरुओं और बड़े औलियों से नहीं सीख पाया, वह मैं तुमसे सीख कर जा रहा हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। किसी को भी यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि वह एक सच्चे धर्म का अनुयायी है और दूसरे सब भटके हुए हैं।

जरूरत है हमारा दृष्टिकोण बदले। कोई व्यक्ति यह धारणा क्यों करे कि वही सब कुछ जानता है। सब उसी से सीखें। सीख तो एक बच्चे से भी ली जा सकती है।

१५१) कुछ ऐसा करें जिससे मानव कल्याण का रास्ता खुले- एक राजा को विश्व का इतिहास तैयार करवाने की इच्छा हुई। वित्त की व्यवस्था की गई। राज्य के इतिहासविदों को इकट्ठा किया गया और इसके लिए तीन वर्ष का समय निर्धारित किया गया। निश्चित अवधि के बाद इतिहासकारों ने अपना श्रम और पुरुषार्थ राजा के सामने प्रस्तुत किया।

चार ऊंटों पर विशालकाय पचास इतिहास के ग्रंथ लाद कर इतिहासकार लाए।

राजा ने पोथों को देखकर उन्हें अमान्य कर दिया। कहा, मुझे इतना विस्तृत इतिहास नहीं चाहिए मुझे इतना समय कहां कि इन ग्रंथों को पढ़ूं। इन्हें छोटा करो। इतिहासकारों ने उन ग्रंथों को छोटा किया तो पचास की जगह पच्चीस ग्रंथ बन गए। किंतु राजा संतुष्ट नहीं हुआ उसने और छोटा करने की बात कही तो इतिहासकार ने सारी सामग्री दस ग्रंथों में समेट दी। राजा की आपत्ति अब भी कायम थी। एक इतिहासकार ने उन्हें दस से पांच कर दिया। राजा अब भी संतुष्ट न हुआ तो इतिहास केवल एक ग्रंथ में समाहित कर दिया गया। लेकिन राजा ने और छोटा करने को कहा तो इतिहासकार ने एक पंक्ति लिखी और राजा के समक्ष रख दिया। उसमें लिखा था। आदमी जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है- यही है दुनिया का इतिहास। राजा ने उसे स्वीकार कर जिला।

जन्म और मरण- इन दो में सारी सच्चाइयों का समावेश है। हम यह नहीं जानते कि कौन व्यक्ति कहां से आया है। और मरने के बाद कहां गया है? जन्म उन्हीं को सार्थक है, जो दुनिया में अपनी शक्ति का विकसित करते हैं।

१५२) सीमा और असीम दोनों का अपना महत्व होता है- एक आदमी यात्रा पर निकला। पुराने जमाने में ढाबों की परंपरा चलती थी। वृद्ध महिलाएं ढाबे चलाती थीं। वह एक बुढ़िया के ढाबे पर गया और रात्रि भर वहां विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की। बुढ़िया से वह बोला, मांजी, भोजन करना है।

करो, बेटा, भोजन तैयार है। यात्री ने भोजन किया। फिर बुढ़िया से बोला, रात बहुत बीत गई है। क्या रात भर यहां विश्राम कर सकता हूँ? बुढ़िया ने कहा, हमारे यहां विश्राम की भी व्यवस्था है। तुम जैसी चाहो वैसी खाट ले सकते हो। किराया कितना होगा? एक खाट के चार पैसे। यात्री को एक खाट के चार पैसे कुछ ज्यादा लगे। यात्री ने विचार किया कि चारपाई पर सोकर व्यर्थ में चार पैसे क्यों बर्बाद करूं। ढाबे के सामने बड़ा लान है। वहां जमीन पर कपड़ा बिछाकर रात क्यों न काट ली जाये। यही सोचकर उसने बुढ़िया से कहा, मांजी। मैं तो बिना खाट के जमीन पर सोने का आदी हूं। अगर यों ही जमीन पर सो जाऊं तो उसका क्या मूल्य होगा?

बुढ़िया बोली, एक रुपया लगेगा। यात्री को यह मूल्य विचित्र-सा लगा। खाट के चार पैसे और बिना खाट के कठोर भूमि पर सोने का एक रुपया। उसने अपनी जिज्ञासा बुढ़िया के सामने रखी तो बुढ़िया बोली, भले आदमी। खाट पर सोने की एक सीमा है। खाट जितना स्थान ही तुम ले सकोगे, किंतु आंगन में अगर बिना खाट के सोओगे तो पता नहीं कितनी जमीन घेर लोगे। सीमा का अपना मूल्य होता है और असीम का अपना मूल्य होता है। हम इसके मूल्य को समझें।

१५३) जो जिस दृष्टि से देखता है उसे वैसा ही दिखाई देता है - एक बार पांडुपुत्र युधिष्ठिर द्वारिका गए। द्वारिका श्रीकृष्ण की नगरी थी। वहां कृष्ण ने युधिष्ठिर का बहुत सत्कार किया और कहा, आप विवेक और बुद्धि के भंडार हैं। आप धर्मराज कहे जाते हैं। आप मेरा एक काम करें। आपका आभारी रहूंगा। मेरी इस द्वारिका नगरी में आप इस बात की खोज करें कि यहां कितने अच्छे आदमी हैं और कितने बुरे आदमी हैं? मेरा विश्वास है कि आप यह कार्य भली प्रकार करसकते हैं। युधिष्ठिर ने कृष्ण की बात स्वीकार कर ली। कुछ दिनों बाद दुर्योधन भी कृष्ण से मिलने द्वारिका पहुंच गया तो कृष्ण ने यही काम दुर्योधन को भी सौंप दिया। उसने भी कृष्ण की बात स्वीकार कर ली। भला, कृष्ण के काम को कौन टालता

या मानने से इनकार करता। सब खुशी-खुशी करते।

युधिष्ठिर और दुर्योधन ने अलग-अलग दिशाओं में पूरी द्वारिका नगरी का व्यापक सर्वेक्षण किया और कुछ दिन बाद क्रम से अपनी-अपनी रिपोर्ट दी। युधिष्ठिर की पूरी बही कोरी की कोरी थी। उसमें मात्र एक ही वाक्य लिखा था कि बहुत खोजने पर भी मुझे द्वारिका में कोई बुरा व्यक्ति नहीं मिला।

दुर्योधन ने सर्वेक्षण के बाद जो बही सौंपी, वह भी खाली थी, किंतु उसमें जो वाक्य लिखा हुआ था, वह युधिष्ठिर के बिल्कुल विपरीत था। उसमें लिखा, व्यापक खोजबीन के बाद भी मुझे आपकी नगरी में कोई अच्छा आदमी नहीं मिला कहने का अर्थ है कि सबकी अपनी-अपनी दृष्टि है। जो जिस दृष्टि से देखता है, उसे वैसा ही दिखाई पड़ता है।

१५४) मूर्खता की हद- एक आदमी मूर्ख के रूप में विख्यात था। सब उसे मूर्ख ही कहते थे। वह था भी मूर्ख। उसके सारे काम मूर्खतापूर्ण होते थे। लेकिन दिक्कत यह थी कि मूर्ख का मतलब वह जानता था, इसलिए मूर्ख कहे जाने पर उसे दुख होता, चिढ़ होती। लेकिन सब लोग उसे मूर्ख कहते थे, इसलिए वह भला किस-किससे झगड़ा करता? अंतत: उसने फैसला किया कि यह गांव ही छोड़ दूंगा। कहीं दूर चला जाऊंगा। वहां लोग मुझे मूर्ख नहीं कहेंगे। फैसले को वह अमल में लाया। गांव छोड़कर चल पड़ा। दिन भर चलता रहा। चलते-चलते बहुत दूर निकल आया। भूख-प्यास से बेहाल। तभी एक नगर आया। वहां नगर पालिका के नल से बहता पानी देखा। पानी पीकर उसने अपनी प्यास बुझाई, फिर हाथ जोड़कर नल से बोला- पानी पिला दिया भाई, बड़ी दया की। बस, अब और पानी नहीं चाहिए, बंद हो जाओ। लेकिन कहने से नल बंद क्यों होता? वह बहता ही रहा। उसने झल्लाकर कहा- कितनी बार कहा भाई सुनते नहीं हो क्या? अब बंद हो जाओ। पास से गुजर रहे आदमी ने उसे नल से बात करते देखा तो बोला- मूर्ख हो क्या? इतना सुनने पर उसने अपना सिर पीट लिया। बोला- इतनी दूर चला आया, फिर भी पहचान लिया गया। हे भगवान- अब मैं कहां जाऊं? कहने का मतलब यह कि केवल नाम बदलने से कुछ नहीं होगा। नाम के अनुरूप काम होना चहिए।

१५५) स्मरण रहे कोई भी आदमी पूरी तरह भला-बुरा नहीं होता- एक चोर भूल से एक आश्रम में चला गया। कुटिया में एक सन्यासी बैठा था। सन्यासी जाग रहा था। चोर ने सोचा- गलत स्थान पर आ गया, मैंने समझा था कुछ और, आ गया कहीं और। चोर ने सन्यासी को प्रणाम किया। सन्यासी ने पूछा- भाई। तुम कौन हो? चोर ने सोचा- यहां क्यों झूठ बोलूं? उसने कहा- महाराज। मैं चोर हूं, चोरी करने आया हूं। सन्यासी बोला- यहां क्या मिलेगा तुम्हें? पर आ गये हो, तो निराश नहीं लौटने दूंगा। सन्यासी खड़ा हुआ, उसने देखा- एक कंबल टंगा हुआ है। उसने कंबल उतारा और कहा- सर्दी का मौसम है, ठिठुरते जाओगे। यह कंबल साथ ले जाओ, काम आयेगा। चोर कंबल लेकर चला गया। संयोग ऐसा मिला- पुलिस ने चोर को पकड़ लिया। चोरी का सामान बरामद कर लिया। घोषणा हो गई- जिनका सामान हो, वे आकर ले जायें। सन्यासी को पता चला, सन्यासी भी गया। सन्यासी ने कहा- यह कंबल मेरा है। क्या आपका है? पहले था, पर अब मेरा नहीं है। इस चोर ने चुरा लिया? यह चोर नहीं है। यह आदमी मेरी कुटिया में आकर खाली जा रहा था। मैंने कहा- भाई। खाली क्यों जाते हो। मैंने वह दान दिया है, इसने चोरी नहीं की है, इसलिए मैं वापस ले नहीं सकता।

चोर ने सन्यासी के पैर पकड़ लिए। उसने गद्‌गद् स्वर में कहा-एक तुम ही मुनि हो, जो भला आदमी कहते हो, दूसरा

कोई मुझे भला कहनेवाला नहीं है। क्या चोर भला आदमी है? सबकी दृष्टि में बुरा और सन्यासी की दृष्टि में भला। यह अपना-अपना दृष्टिकोण है। कोई भी आदमी पूरी तरह बुरा नहीं होता और कोई भी आदमी नितांत भला नहीं होता।

१५६) भावना की शक्ति प्रसरणशील होती है- एक बुढ़िया सिर पर गठरी लिए जा रही थी। एक आदमी घोड़े पर चढ़कर जा रहा था। बुढ़िया को देखकर उसके मन में दया जागी। उसने कहा, माँ। मैं तुम्हारे गांव ही जा रहा हूं। लाओ, गठरी घोड़े पर रख दो। आगे मैं ठहरूंगा, वहां ले लेना। बुढ़िया ने गठरी दे दी। कुछ दूर जाकर घुड़सवार रुका। बुढ़िया भी पहुंच गई। पानी पीया। बुढ़िया बोली, भाई। अब तुम जाओ, घोड़ा भी थक गया है। गठरी दे दो। बड़ी कृपा की, इतनी दूर गठरी ले आये। घुड़सवार ने गठरी बुढ़िया को दे दी।

घुड़सवार आगे बढ़ गया। थोड़ी दूर जाने पर उसके मन में आया, मैं भूलकर बैठा। बुढ़िया की गठरी भारी थी। यदि मैं उस गठरी को लेकर चला जाता तो बुढ़िया क्या कर पाती? आया हुआ माल व्यर्थ ही लौटा दिया। वह वहीं रुक गया। इतने में बुढ़िया भी धीरे-धीरे वहां पहुंच गई। घुड़सवार बोला, मां। थक गई होगी। लाओ गठरी दो। आगे रुक जाऊंगा। बुढ़िया बोली, नहीं, अब गठरी नही दूंगी। बुढ़िया जान गई कि अब घुड़सवार के मन में धोखा देने की भावना आ गई है। भावना की शक्ति प्रसरणशील होती है। भावना हमारी सूक्ष्म भाषा है। यह सूक्ष्म वाणी है। एक व्यक्ति के मन में जो भाव या भाषा बनती है, सामनेवाले व्यक्ति के मन में उसकी प्रतिक्रिया भाषा में बन जाती है। यह जाना-पहचाना सत्य है, जिसे कोई उलट नहीं सकता। एक व्यक्ति किसी के बारे में अच्छे विचार करता है, सामनेवाले में अपने आप अच्छे विचार आ जाते हैं। बुरा विचार करता है तो सामनेवाले के मन में उसके प्रति अप्रियता की भावना जाने-अनजाने पैदा हो जाती है।

१५७) राजा और चित्रकार - एक राजा के दरबार में एक चित्रकार था। वह अद्‌भुत चित्र बनाया करता था जिनकी सभी प्रशंसा करते थे। राजा भी उससे प्रभावित था। एक दिन उसने चित्रकार से पूछा- अच्छा यह बताओ कि कौन सी चीजों के चित्र बनाना कठिन है और ऐसी कौन सी वस्तुएं हैं जिन्हें बड़ी आसानी से बनाया जा सकता है? इस पर चित्रकार बोला- राजन्, जो वस्तु हमारी जानी-पहचानी हैं जिन्हें हम रोज देखते हैं, उनका चित्र बनाना कठिन है। लेकिन अज्ञात चीजें जैसी देवी-देवता, राक्षस भूत-प्रेत के चित्र बड़े आसानी से बनाए जा सकते हैं। इस उत्तर पर राजा हैरत में पड़ गया। उसने कहा- यह तो तुम उलटी बात कर रहे। जो चीज जानी-पहचानी है उनका चित्र बनाना तो आसान होना चाहिए न। चित्रकार ने समझाया- जिन चीजों को लोग अच्छी तरह जानते हैं, उनकी तस्वीर बनाना इसलिए कठिन है कि लोग उनकी कमियों को आसानी से पकड़ सकते हैं। उनके दिमाग में उन वस्तुओं की एक छवि बनी रहती है जिससे वे हमारे चित्रों का मिलान करने लगते हैं। लेकिन जिन चीजों को उन्होंने देखा ही नहीं है उसके बारे में कोई निश्चित छवि वे अपने भीतर नहीं बना पाते हैं। जैसे देवी देवता आदि की तस्वीरें। वैसी तस्वीरों को एक चित्रकार अपनी कल्पना के सहारे जैसा चाहे वैसा बना सकता है। उन पर लोग आपत्ति नहीं करते। चित्रकार उन्हें जिन रूपों में प्रस्तुत करता है लोग स्वीकार कर लेते हैं। वे उनमें कोई कमी नहीं निकालते। राजा को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया।

१५८) शासक नहीं सेवक- एक दिन छत्रपति शिवाजी ने सोचा कि चूंकि उनके गुरु के ऊपर कोई विशेष दायित्व नहीं है, शायद इसलिए वे हरदम प्रसन्न रहते हैं। क्यों न वह भी शासन कार्य के झंझटों से छुटकारा पा लें। उसी समय

समर्थ गुरु रामदास आ पहुंचे। शिवाजी ने उनसे अपने मन की बात कह दी। गुरुदेव सहज भाव से बोले- ठीक है, संन्यास ले लो। इससे अच्छी बात और क्या होगी। शिवाजी ने उत्साहित होकर पूछा- तो फिर आप बताएं कौन ऐसा व्यक्ति है, जिसे राजकाज सौंप कर मैं आत्मकल्याण की साधना करूं? गुरुदेव ने कहा- मुझे ही राज्य देकर चले जाओ। मैं चलाऊंगा राजकाज। शिवाजी ने हाथ में जल लेकर राज्य दान का संकल्प कर लिया। गुरुदेव ने कहा- अब तो तुम राज्य का दान कर चुके हो। इस पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं रहा। जब शिवाजी चलने लगे तो गुरुदेव ने पूछा- भविष्य में निर्वाह की व्यवस्था क्या होगी? शिवाजी बोले- जो भी हो जाए, कुछ मजदूरी या किसी की नौकरी कर लूंगा। गुरुदेव बोले- जब नौकरी ही करनी है तो मैं तुम्हारे लिए बढ़िया सी नौकरी की व्यवस्था कर देता हूं। तुम यह राज्य मुझे दे ही चुके हो। इसकी देखरेख और व्यवस्था के लिए किसी को भी नियुक्त कर सकता हूं। मुझे किसी योग्य व्यक्ति की आवश्यकता है। सोचता हूं कि तुमसे ज्यादा योग्य कौन होगा। इस भाव से राज्य का संचालन करना कि तुम केवल सेवक मात्र हो। यह राज्य मेरा है। शिवाजी गुरु का आशय समझ गए। उस दिन से वह तटस्थ भाव से राजकाज चलाने लगे। सारी चिंताएं दूर हो गईं।

१५९) फकीर और परिंदा - एक सूफी फकीर मस्जिद में बैठकर अल्लाह से अपनी लौ में लीन थे। चारों तरफ प्रकाश फैला था। तभी अचानक झरोखे से एक पक्षी अंदर आ गया। वह कुछ देर तक तो अंदर इधर-उधर करता रहा फिर बाहर निकलने की कोशिश करने लगा। कभी वह इस कोने से निकलने की कोशिश करता तो कभी उस कोने से। उसकी छटपटाहट बढ़ती जा रही थी। कभी वह दीवार से टकराता तो कभी छत से किंतु उस तरफ नहीं जाता जिस झरोखे से वह अंदर आया था। फकीर बहुत ध्यान से देख रहा था उसे चिंता हो रही थी कि उसे कैसे समझाए कि जैसे अंदर आने का रास्ता निश्चित है उसी प्रकार बाहर जाने का रास्ता भी निश्चित है। द्वार तो वही होता है किंतु सिर्फ दिशा बदल जाती है। फकीर ने उसे बाहर निकालने की कोशिश की किंतु वो उतना ही घबरा जाता और बेचैन होने लगा। उसे लगता कि यह उसे मारने आया है। फकीर का ध्यान पक्षी से हटा और वह कुछ सोचने लगा। तभी उसे ख्याल आया कि इस पक्षी की यह हालत जिंदगी का एक सच बयान कर रही है। फकीर ने सोचा कि इस संसार में आकर हम क्या इसी परिंदे की तरह नहीं उलझ जाते? जब हम जीवन में प्रवेश कर जाते हैं तब हमारे पास उससे निकलने का रास्ता तो होता है पर अज्ञान के कारण हम उसे रास्ते को देख नहीं पाते। हम जीवन के प्रपंचों में उलझे रहते हैं और वे प्रपंच हमें भांति-भांति से कष्ट पहुंचाते रहते हैं और हम छटपटाते रहते हैं इसी पक्षी की तरह। फकीर इधर इन विचारों में खोया था, उधर वह परिंदा जा चुका था।

१६०) प्रकृति का दंड - राजकुमार स्थावर सर्ग की उच्छृंखल वृत्तियों और उद्दंडता से जितना उनके पिता राजा दुमिल दुखी थे, उससे अधिक वहां की प्रजा थी। महाराज दुमिल ने एक से एक विद्वान बुलाए, अच्छे-अच्छे नैतिक उपदेशों की व्यवस्था की, किंतु जिस तरह चिकने घड़े पर पानी का प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार राजकुमार स्थावर सर्ग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनका वही रवैया जारी रहा। अंत में महाराज दुमिल ने पूज्यपाद अश्वत्थ की शरण ली। प्रजा के हित की दृष्टि से महर्षि अश्वत्थ ने राजकुमार को ठीक करने का आश्वासन तो दे दिया, पर उन्होंने महाराज से स्पष्ट कह दिया कि उनकी किसी भी योजना में बाधा उत्पन्न नहीं की जानी चाहिए। महाराज दुमिल ने उस शर्त को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

महर्षि अश्वत्थ की आज्ञा से सर्वप्रथम स्थावर सर्ग की राज्य वृत्ति रोक दी गई। उनके पास की सारी संपत्ति छीन ली और सम्राट की ओर से उन्हें बंदी बनाकर अप-द्वीप पर निष्कासित कर दिया गया। यह वह स्थान था, जहां न तो पर्याप्त भोजन ही उपलब्ध था और न ही जल। अतिवृष्टि के कारण रात में सो सकना कठिन था, वहां दिन में हरदम हिंसक जंतुओं का भय बना रहता था। कुछ ही दिन में स्थावर सर्ग सूख कर कांटा हो गए। अब तक तो उनके मन में जो अहंकार था वह प्रकृति की कठोर यातनाओं के आघात से टूटकर चकनाचूर हो गया। महाराज को इस बीच कई बार पुत्र के मोह ने सताया भी, पर वह अश्वत्थ को वचन दे चुके थे, इसलिए कुछ बोल भी नहीं सकते थे। समय पूरा होने को आया। प्रकृति के संसर्ग में रहकर स्थावर सर्ग बदले और जब वे लौटकर आए, तो सबने उनका मुखमंडल दर्प से नहीं, करुणा व सौम्यता से दीप्तिमान देखा। जो काम मनुष्य नहीं कर सके, वह प्रकृति की दंड व्यवस्था ने पूरा कर दिखाया।

१६१) साबुन और शब्द - विख्यात लेखक अर्नेस्ट हेमिंग्वे को अपने घर के वातावरण से बहुत कुछ सीखने को मिला। बचपन से ही उनसे कहा गया था कि जीवन में हमेशा अच्छे शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए। अच्छे व सकारात्मक शब्द असफलता के दौर में भी प्रेरक बनकर सही राह दिखाते हैं। किसी से लड़ाई-झगड़ा हो जाने पर भी अनुचित भाषा व शब्दों का प्रयोग व्यक्ति की गरिमा के खिलाफ है। बचपन में जब भी उनके मुंह से कोई गलत शब्द निकल जाता तो उन्हें साबुन से कुल्ला करके मुंह धोना पड़ता था। दरअसल घर के बड़े-बुजुर्गों ने ऐसा नियम बना दिया था। यही नहीं अपशब्दों की एक सूची भी बनाई जाती थी। इस तरह हिसाब रखा जाता था कि किसने कितने गलत शब्द कहे। धीरे-धीरे अर्नेस्ट के गलत व अनुचित शब्दों की संख्या बढ़ती जाती थी और उन्हें हर बार साबुन से कुल्ला करना पड़ता था। यह बड़ा ही कटु अनुभव था। बार-बार साबुन से कुल्ला करने के कारण उनकी हालत खराब होती जा रही थी। आखिर उन्होंने निश्चय किया कि साबुन और शब्दों की लड़ाई में जीत शब्दों की होनी चाहिए, साबुन की नहीं। ऐसा करते-करते वे शब्दों के महारथी बन गए और उनकी लेखन पर पकड़ मजबूत होती गई। बाद में उन्होंने अपने इसी अनुभव पर एक लेख लिखा- इन डिफेंस ऑफ डर्टी वर्ड्स। उनका वह लेख काफी सराहा गया। अनेक लोगों ने उनके लेख को पढ़कर अपने व्यक्तित्व में और बोलने की भाषा में सुधार किया। इस प्रकार घर के स्वच्छ वातावरण ने अर्नेस्ट हेमिंग्वे को एक महान लेखक बनाकर पूरे विश्व के सामने प्रस्तुत किया।

१६२) सबसे बड़ा दान- संत फ्रांसिस एक बगीचे में बैठकर बाइबिल का अध्ययन कर रहे थे। अपने को भुलाकर इस तरह बाइबिल में रम जाना उनका रोज का नियम था। वह घंटों बैठे रहते और बाइबिल के एक-एक वाक्य पर गंभीरतापूर्वक विचार करते। वहां से गुजरने वाले उन्हें श्रद्धा से देखते और चुपचाप चले जाते। कोई उनके कार्य में बाधा नहीं डालता था। लेकिन उस दिन कहीं से घूमती हुई एक भिखारिन उनके पास आई और हाथ जोड़कर करुण स्वर में बोली- मैं और मेरे बच्चे कई दिनों से भूखे हैं। कहीं से कुछ नहीं मिला है। आप कृपया प्रभु के नाम पर कुछ दे दो। संत उस भिखारिन की बात सुनकर द्रवित हो उठे। लेकिन उन्हें समझ में नहीं आया कि वह उसके लिए क्या करें। वह खुद ही फक्कड़ थे और संपत्ति के नाम पर उनके पास बस पहने हुए कपड़े ही थे, धनराशि तो बहुत दूर की बात थी। वह कुछ देर सोच-विचार करते रहे। फिर बाइबिल की अपनी प्रति उठाकर उस भिखारिन को देते हुए बोले- बहन, आज मेरे पास इसके सिवा कुछ

भी नहीं है। तुम इसे बेचकर अपनी और अपने बच्चों की भूख मिटा लेना। मैं तुम्हारी मदद करना चाहता हूं पर मैं शर्मिंदा हूं कि आज मैं तुम्हें इसके सिवा और कुछ नहीं दे पा रहा। वह भिखारिन उन्हें दुआ देती हुई चली गई। फिर संत शून्य की ओर ताकते हुए बोले- हे प्रभु, मुझे क्षमा करना। आज मुझे आपके दया, प्रेम और परोपकार जैसे शब्दों को सार्थक करने के लिए आपका शब्द भंडार ही दान करना पड़ा।

१६३) संत का स्वभाव- सिखों के छठे गुरु हरगोविंद सिंह ने सबसे पहले सिखों के शस्त्रीकरण की बात कही थी। उनका मानना था कि मजबूत शरीर में ही सबल मन का निवास होता है। सभी लोग उनकी इस बात से सहमत थे। पर जहां गुरु हरगोविंद सिंह की ख्याति चारों ओर फैलती जा रही थी वहीं उनके दुश्मनों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी। कुछ समय बाद सम्राट जहांगीर ने दीवान चंदूलाल की शिकायत पर गुरुजी को ग्वालियर के किले में कैद कर लिया। गुरुजी को कैद करने पर चारों तरफ हंगामा मच गया। तब लाहौर के मशहूर फकीर मियां मीर ने जहांगीर को चेतावनी दी कि एक दुष्ट दीवान के कहने पर एक सच्चे तपस्वी को बंदी बनाने का परिणाम उसे भुगतना होगा। यदि उसने गुरुजी को मुक्त नहीं किया तो भारी गड़बड़ी फैल सकती है। यह सुनकर जहांगीर घबरा गया। उसे अपनी गलती का अहसास हो गया। उसने तुरंत गुरु हरगोविंद सिंह को मुक्त करने का हुक्म दिया। शाही हरकारे बादशाह का हुक्मनामा लेकर ग्वालियर के किले में पहुंचे। लेकिन गुरुजी ने कैद से छूटने से इंकार कर दिया। सब चकित हो उठे। जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो वे बोले, मैंने इस कैदखाने में तमाम बेगुनाहों को जुल्म सहते देखा है। साधु हमेशा बंधन मुक्त होता है। जो आजाद है, वह दूसरों के बंधन को भी नहीं झेल सकता। गुरुजी ने चेतावनी देते हुए हरकारे से कहा, बादशाह जहांगीर से कह दो कि या तो सभी बेगुनाह कैदियों को छोड़ दें या फिर मुझे भी यहीं कैद रखा जाए। गुरुजी की बात का इतना असर था कि जहांगीर ने सभी बेगुनाह कैदियों को रिहा कर दिया। सिख परंपरा आज भी गुरु हरगोविंद के नाम के आगे बंदी छोड़ का विशेषण लगाती है। गुरु हरगोविंद ने अपनी जान की परवाह न करते हुए भी एक सच्चे संत की तरह पहले दूसरों की भलाई के बारे में सोचा।

१६४) महर्षि की परीक्षा- महर्षि मुद्गल गृहस्थ होते हुए भी जनपदों में महर्षि का मान पाते थे। पूर्णिमा, अमावस्या में उनकी कुटी में बड़ा समारोह होता। इन दिनों अतिथि भरपेट प्रसाद पाते। अंत में महर्षि का परिवार भोजन करने बैठता। पूर्णिमा का चंद्रमा अभी थोड़ा ही निकला था, महर्षि ने आज्ञा दी हमें कुछ देर और प्रतीक्षा करना उचित होगा। तभी बाहर कुछ शोर सुनाई दिया। महर्षि ने द्वार की ओर देखा, बाल बिखरे धूर-धूसरित एक पगला कुटी में प्रवेश कर रहा था। कहां है मुदगल? भोजन दे मुझे। भूखा हूं मैं... बस मैं मुद्गल के ही यहां प्रसाद पाऊंगा। महर्षि बोले- सेवा स्वीकार करें। महर्षि ने उन्हें एक पीठिका पर बिठाया फिर भोजन परोसा। महर्षि परोसते ही गए, वह खाता चला गया। ऋषि परिवार की पूर्णिमा बिना खाए ही गुजर गई। पगले को विदा किया। निराहार रहते रहते महर्षि का शरीर छूट चला। पूर्णिमा फिर से आ गई। महर्षि दुर्वासा पदचाप सुनकर चौंके कि तीसरे प्रहर आज कौन आया इस एकांत स्थली में? ओह, स्वागत महर्षे। दुर्वासा ऋषि बांधाबर से उठे। इन शब्दों से अपराधी बनूंगा मैं। बहुत छोटा हूं आप से? महर्षि मुद्गल ने हाथ जोड़े। अच्छा विराजिए तो... हंसे दुर्वासा ऋषि। मुद्गल जी। कहते हुए गंभीर हो रहे दुर्वासा दूसरी ओर देखते कहते गए वे... आज तीन मास से प्रति पंद्रहवें दिन तो मैं ही जीमता चला आ रहा हूं आप के यहां। क्षमा करें परीक्षा का कठिन कार्य मुझे ही करना

पड़ा। आप उत्तीर्ण हुए। आप जितने सदाशयी हैं उतने ही संवेदना से ओत-प्रोत। आत्मनिग्रह ही तो महायज्ञ कहा गया है। ब्रह्मर्षि के इन वचनों से महर्षि मुद्गल कृतार्थ हुए और कृतकृत्य भी।

१६५) वह विशाल पेड़- एक बार चीन के नानपोह कस्बे के संत त्सुचि शांग पर्वतों पर आराम कर रहे थे। तभी उन्हें कुछ दूर पर एक अत्यंत विशाल वृक्ष दिखाई पड़ा। वह इतना बड़ा था कि दूर-दूर तक केवल उसी पर नजर जाती थी। वृक्ष को देखकर संत त्सुचि के मुंह से सहसा निकला, इतना विशाल भी कोई वृक्ष हो सकता है, जिसकी छांह में राहगीर अपनी थकान मिटाते हैं। यह किस प्रजाति का होगा, वह सोचने लगे। फिर वह वृक्ष के नजदीक पहुंच गए। उन्होंने स्वयं से कहा, जरूर ही इसकी लकड़ी बहुत अच्छी किस्म की होगी। वह पेड़ के चारों ओर घूमे तो उन्होंने देखा कि हर ओर उसकी शाखाएं टेढ़ी-मेढ़ी हैं। उन्होंने सोचा कि इस वृक्ष की शाखाएं तो इतनी ज्यादा मुड़ी हुई हैं कि उनसे एक नाव तक नहीं बनाई जा सकती। पेड़ के तने में इतनी गांठें हैं कि उनसे एक लकड़ी का तख्त तक तैयार नहीं किया जा सकता। फिर उन्होंने पेड़ का एक पत्ता तोड़ा और उसे मुंह में डाला तो वे परेशान हो उठे। पत्ते की तेज गंध व तीखेपन ने उनके जीभ और होठों को छील दिया। वृक्ष का पूर्ण रूप से परीक्षण करने के बाद वे स्वयं से बोले, अगर, कोई भूल से इन पत्तों को चख ले तो दो-तीन दिनों तक वह अपनी सुध-बुध ही भूल जाएगा। वे वृक्ष से थोड़ा दूर हुए और उसे निहारते हुए बोले, ओह, अब पता चला कि यह वृक्ष इतना विशाल क्यों है? बुद्धिमानों को इससे सीख लेनी चाहिए। यदि वे किसी के काम न आएं तब उनके बड़े होने का क्या लाभ? व्यक्ति छोटा होने पर भी यदि किसी के काम आता है तो भी उसे सराहा जाता है किंतु बड़ा व्यक्ति यदि काम नहीं आ सकता तो उसका अस्तित्व व्यर्थ है।

१६६) बीज और धन- किसी गांव में एक धनी व्यक्ति रहता था। उसने धन-संपत्ति स्वयं अर्जित नहीं की थी, सब कुछ उसे पिता से मिला था। वह दिन-रात और अधिक संपत्ति पाने के सपने देखता रहता था। पर इसके लिए वह कोशिश नहीं करता था। एक दिन उसने सोचा कि धन कमाने के लिए क्यों न किसी साधु-महात्मा से राय ली जाए। एक दिन वह एक संत के पास पहुंचा। उसने संत को प्रणाम कर कहा- महात्मा जी, आप तो जीने की कला जानते हैं। कृपया कोई ऐसी युक्ति बताइए जिससे मेरी संपत्ति में लगातार वृद्धि हो। संत ने उसे कुछ बीज देते हुए कहा- ये बीज बड़े चमत्कारी हैं। तुम इन्हें अपने आंगन के किसी कोने में नमी वाली जगह पर बो देना। तुम्हारे धन में बढ़ोतरी होने लगेगी। वह धनी व्यक्ति बीज ले आया और उसने उन्हें आंगन के एक कोने में बो दिए। कुछ दिनों के बाद पौधे उग आए। पौधे बड़े हुए, उसमें फल आने लगे पर उसकी संपत्ति नहीं बढ़ी। वह फिर संत के पास पहुंचा और दुखी होकर बोला- महाराज, मैंने तो बीज बो दिए पर मेरी संपत्ति में थोड़ी भी बढ़ोतरी नहीं हुई। संत ने मुस्कराकर कहा- मैंने सोचा था कि तुम मेरी बात समझ जाओगे पर तुम तो कुछ समझ ही नहीं पाए। तुमने बीजों का सही उपयोग किया। उन्हें बोया और अब वे फल दे रहे हैं। तुम ही नहीं तुम्हारा सारा परिवार उनका सुख ले रहा है। तुमने बीज बोया, पौधों को पानी दिया तभी तो फल मिला। उसी तरह अपने धन को भी किसी उद्यम में लगाओ। इससे तुम्हें भी लाभ होगा और अनेक लोगों के लिए रोजी-रोजगार की व्यवस्था होगी। फिर उससे जो पैसे मिलें उन्हें जनकल्याण में लगाओ। बिना उद्यम के संपत्ति कैसे बढ़ सकती है। धन का उपयोग बीज की तरह करो नहीं तो जो धन है वह भी नष्ट हो जाएगा। उस व्यक्ति को बात समझ में आ गई। वह उस दिन से मेहनत करने लगा।

१६७) बेचारे दार्शनिक महोदय - एक दार्शनिक हमेशा पढ़ने में लगे रहते थे। वह लोगों को तात्विक ज्ञान देने का प्रयास भी करते थे। उनके घर के नजदीक ही एक नदी बहती थी। उस नदी में बांध बनाकर एक तालाब बनाया गया था। उसका पानी बहुत साफ था। वह लोगों के आकर्षण का केंद्र बन गया था। लोग उसके किनारे आकर बैठते, उसमें तैरते। लोगों को उसमें तैरते देखकर दार्शनिक का मन भी उसमें तैरने को करता था लेकिन उन्हें तैरना नहीं आता था। जब तालाब में लहरें उठतीं तो उनका मन थिरक उठता। वह सोचते काश इन लहरों में मैं प्रवेश करता और उनकी शीतलता का आनंद लेता। एक दिन उनके एक शिष्य ने उन्हें एक पेटी लाकर दी और बोला, आपका तैरने का बहुत मन करता है न। आपके लिए मैं एक पेटी लेकर आया हूं। इस पेटी के सहारे आप गहरे पानी में जाकर भी डूबेंगे नहीं, पानी की सतह पर तैरते रहेंगे। यह देखकर दार्शनिक का मन बल्लियों उछलने लगा। अगले ही दिन वह पेटी लेकर तालाब में कूद गए। ज्यों ही वह कूदे कि अतल गहराई में चले गए। उनके हाथ और पेटी तो पानी की सतह पर आ गए, किंतु वह स्वयं पानी के अंदर ही छटपटाते रहे। संयोग से एक व्यक्ति उस समय वहां स्नान कर रहा था। दार्शनिक को डूबता देखकर वह तुरंत उनके पास आया और उन्हें किनारे पर ले गया। दार्शनिक घबरा हुए से किनारे पर बैठ गए और बोले, यह पेटी तो व्यक्ति को पानी में डूबने ही नहीं देती। फिर मैं कैसे डूब गया? इस पर वह व्यक्ति हंसते हुए बोला, महाराज, जीवन में किताबी ज्ञान के साथ ही व्यवहारिक ज्ञान भी आवश्यक है। यह पेटी तभी मदद करती है जब इसे पेट पर बांधा जाता है। खाली पेटी हाथ में लेने से ही सुरक्षा नहीं होती। व्यक्ति की बातें सुनकर दार्शनिक को समझ में आ गया कि जीवन में किताबी ज्ञान के साथ-साथ व्यवहारिक ज्ञान भी अनिवार्य है।

१६८) मां की शिक्षा - एक बार मालदा शहर के एक बगीचे में एक अफगान व्यापारी बशीर मुहम्मद ने रात बिताई। सवेरे अपना सामान समेटकर वह वहां से चल पड़ा। कई मील पहुंचने पर जब उसने अपना सामान देखा तो याद आया कि रुपयों से भरी थैली तो एक पेड़ की डाली पर ही लटकी रह गई है। यह जानकर वह काफी दुखी हुआ। उसने सोचा, थैली तो मिलने से रही, फिर रूपयों के बिना व्यापार के लिए भी आगे नहीं जाया जा सकता। दुखी मन से वह वापस उसी ओर चल पड़ा। संयोगवश वीरेश्वर मुखोपाध्याय नामक एक बालक बगीचे में पहुंचा। खेलते-खेलते वह उस पेड़ के पास पहुंच गया जिस पर रुपयों से भरी थैली टंगी थी। बालक ने उत्सुकतावश थैली उतारी। उसके अंदर सोने की मुद्राएं देखकर वह हैरान रह गया। उसने माली से पूछा कि यहां कौन आया था? माली ने बताया कि काबुल का व्यापारी रात गुजारकर यहां से दक्षिण की ओर रवाना हुआ है। यह सुनते ही बालक थैली लेकर दक्षिण की ओर दौड़ चला। तभी उसे बशीर मुहम्मद उस ओर आता हुआ नजर आया। बालक ने उसकी पोशाक देखकर अंदाजा लगा लिया कि यही काबुली व्यापारी है। उधर बशीर मुहम्मद ने भी बालक के हाथ में अपनी थैली देखी। बालक बोला, शायद यह थैली आपकी ही है। मैं इसे आपको लौटाने के लिए आ रहा था। एक नन्हे बालक के मुंह से यह सुनकर बशीर मुहम्मद दंग होकर बोला, क्या तुम्हें रुपयों से भरी थैली देखकर लालच नहीं आया। यह सुनकर बालक सहजता से बोला, मेरी मां मुझे कहानियां सुनाते हुए बताया करती है कि दूसरे के धन को मिट्टी के समान समझना चाहिए। चोरी करना घोर पाप है। बालक की बात पर बशीर मुहम्मद बोला, धन्य है तुम्हारी मां। अगर हरेक मां अपने बच्चे को ऐसी ही शिक्षा दे तो समाज से बुराई पूरी तरह खत्म हो जाएगी।

१६९) उदारता का उदाहरण- यह उन दिनों की बात है जब महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में थे। वे वहां रंगभेद के विरुद्ध सत्याग्रह चला रहे थे। अपने तमाम आदर्शों और सिद्धांतों को उन्होंने अमल में लाना शुरू कर दिया था। उनका यह आंदोलन और उनकी सक्रियता बहुतों को चुभती थी। ऐसे ही कुछ लोगों ने गांधीजी को मारने की साजिश रची। एक दिन वे कहीं चले जा रहे थे तो मीर आलम नामक व्यक्ति ने अचानक ही उनके सिर पर लाठी से हमला किया। गांधीजी सड़क पर गिरे और बेहोश हो गए। भारी भीड़ जमा हो गई। गांधीजी को उठाकर पास के ही एक दफ्तर में ले जाया गया। वहां उनका थोड़ा बहुत उपचार हुआ तो वे होश में आ गए। तभी वहां यह समाचार पहुंचा कि मीर आलम को पकड़ लिया गया है। यह सुनते ही उस समय दर्द से कराह रहे गांधीजी ने कहा- मीर आलम को छोड़ देना चाहिए। यह सुनकर वहां खड़े लोग भौंचके रह गए। कुछ लोगों ने कहा- आपको गंभीर चोट लगी है। आप आराम कीजिए। पर गांधीजी का हृदय तो मीर आलम की पीड़ा से तड़प रहा था। उन्होंने तुरंत ही अटॉर्नी जनरल के नाम तार किया- मीर आलम ने जो मुझ पर हमला किया है, उसके लिए मैं उन्हें दोषी नहीं मानता हूं। मैं चाहता हूं कि उन्हें छोड़ दिया जाए। यह खबर वहां के लोगों में आग की तरह फैल गई। लोगों को यकीन नहीं हो रहा था कि कोई व्यक्ति अपने ऊपर हमला करनेवाले को छुड़ाने के लिए खुद ही कैसे प्रयास कर सकता है। चरित्र की इस विलक्षणता से उनके प्रति लोगों में श्रद्धा और बढ़ी। कुछ दिनों के बाद मीर आलम गांधी जी को एक सभा में मिला। गांधीजी ने स्नेहपूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया और कहा- मीर, मैंने तुम्हारे विरुद्ध कभी नहीं सोचा। तुम मेरी तरफ से निश्चिंत रहना। यह सुनकर मीर आलम लज्जित हो गया।

१७०) एक अनोखा फैसला - चीन का दार्शनिक लाओत्से अपने विचार और बुद्धि के कारण काफी प्रसिद्ध था। चीन के राजा ने लाओत्से से प्रधान न्यायाधीश बनने का अनुरोध किया और कहा- संपूर्ण विश्व में आप जैसा बुद्धिमान और न्यायप्रिय कोई नहीं है। आप न्यायाधीश बन जाएंगे तो मेरा राज्य आदर्श राज्य बन जाएगा। लाओत्से ने इनकार करते हुए कहा कि वह उस पद के लिए उपयुक्त नहीं है। लेकिन राजा नहीं माना। लाओत्से ने उसे समझाया- मुझे न्यायालय में एक दिन कार्य करते देखकर आपको अपना विचार बदलना पड़ेगा। मेरा मानना है कि संपूर्ण व्यवस्था में ही दोष है। आपके प्रति आदर भाव रखने के कारण ही मैंने आपसे सत्य नहीं कहा है। अब या तो मैं न्यायाधीश बना रहूंगा या आपके राज्य की कानून-व्यवस्था बनी रहेगी। देखें, क्या होता है। पहले ही दिन न्यायालय में एक चोर को लाया गया जिसने राज्य के सबसे धनी व्यक्ति का लगभग आधा धन चुरा लिया था। लाओत्से ने मामले को अच्छे से सुना और अपना निर्णय सुनाया- चोर और धनी व्यक्ति दोनों को छह-छह महीने की जेल की सजा दी जाए। धनी व्यक्ति ने कहा- आप यह क्या कर रहे हैं? चोरी मेरे घर में हुई है। मेरा धन चुरा लिया गया है, फिर भी आप मुझे जेल भेजने का निर्णय कर रहे हैं। यह कैसा न्याय है? लाओत्से ने कहा- मुझे तो लगता है कि मैंने चोर के प्रति न्याय नहीं किया है। तुम्हें वास्तव में अधिक लंबा कारावास देने की आवश्यकता है। क्योंकि तुमने आवश्यकता से अधिक धन जमा करके बहुत से लोगों को संपत्ति से वंचित कर दिया है। देश में हजारों लोग भूखे मर रहे हैं लेकिन धन संग्रह करने की तुम्हारी लालसा कम नहीं होती। तुम्हारे लालच के कारण ही ऐसे चोर पैदा हो रहे हैं। अपने घर में होनेवाली चोरी के लिए तुम ही जिम्मेदार हो। तुम अधिक बड़े अपराधी हो। राजा ने लाओत्से को उसी दिन हटा दिया।

१७१) सच और झूठ को समझें, इसी में जीवन की सार्थकता है - एक महात्माजी एक गांव में आए, महात्मा ने अपने प्रवचन में कहा, गांव में एक बहुत बड़े सेठ हैं और तुम लोग मजदूरी करने दूसरे गांव में जाते हो। तुम सभी को खुशहाल बना देने के लिए तो यह सेठ ही काफी हैं। ग्रामीणों ने कहा, महात्मन, यह सेठ बड़ा कंजूस है। इसे किसी की चिंता है ही नहीं। चाहें तो आप भी प्रयत्न करके देख ले। महात्मा ने कहा, कोशिश करता हूं।

महात्मा जी ने सेठ के द्वार पर दस्तक दी। सेठ ने बाहर निकलकर महात्माजी के पैर छुए। धनधान्य से पुरित होने का वरदान मांगा और हाथ जोड़कर कहा, यदा कदा पधारकर मेरे घर को पावन करते रहें। महात्मा ने कहा, अलिकेत साधु हूं। कुछ पास में रखता नहीं। भिक्षा में जो मिल जाता है खा लेता हूं। पर एक काम की चीज मेरे पास है। उसे रखने में परेशानी हो रही है। एक सुई है जो मैं अपने फटे कपड़े को सिलने में इस्तेमाल करता हूं। आप इसे रख लें। आप भी तो मेरी हम उम्र ही हैं। लगता है दोनों की गति एक होगी। आपसे स्वर्ग में मुलाकात होगी, तब यह सुई मुझे दे देना। सेठ ने कहा, महात्मा जी आप भी विनोद करते हैं। मरने के समय कुछ साथ नहीं जाता। ज्ञानी होकर भी आप इतने भोलेपन की बात क्यों करते हैं।

महात्मा बोले, ज्ञान की बात तो तुमने मुझे समझा दी, पर तुम क्यों संग्रह कर रहे हो। सेठ महात्मा की बात समझ गया। कहने का अर्थ यह कि हम सच्चाई और मिथ्या दोनों को ठीक समझ सकें, इसी में जीवन की सार्थकता है। जब मैं दूसरे लोक में पहुँचूंगा तो कोई मुझसे यह नहीं पूछेगा आप ने क्या क्या योजनाएँ बनाईं? वे पूछेंगे आपने किया क्या?

१७२) मन की ताकत - गणेश शंकर विद्यार्थी अपने समय के जाने-माने पत्रकार थे। वह राष्ट्रीय एकता और आम आदमी के हक के लिए हमेशा संघर्षरत रहे। जिन दिनों वह कानपुर में थे, उन दिनों वहां कुछ शरारती तत्व शहर का सांप्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने पर लगे थे। शहर की हालत से गणेश शंकर विद्यार्थी बेहद परेशान थे और किसी तरह शांति स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने दंगा-फसाद करनेवालों को सबक सिखाने की ठान ली। विद्यार्थी जी शरीर से दुबले-पतले थे, मगर आत्मविश्वास और साहस उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। एक दिन वह लोगों को शांत कराते हुए जनरल गंज की ओर निकल गए। वहां पहुंचकर उन्होंने देखा कि पहलवान जैसा दिखनेवाला एक आदमी जूते की दुकान को लूट रहा है। वह जूतों को एक बोरे में भर रहा था और दुकानदार उसके सामने हाथ जोड़े गिड़गिड़ा रहा था। यह देखकर विद्यार्थी जी जोर से बोले, ठहरो। वहां कई लोग खड़े थे। वे यह देखकर हैरान रह गए कि एक दुबला- पतला व्यक्ति भीमकाय शरीर वाले बदमाश को ललकार रहा है। बदमाश विद्यार्थी जी की ओर लपका तो वह उसे दुत्कारते हुए बोले, तुम्हें शर्म नहीं आती? दुकान का माल क्या मुफ्त का है? इतने तगड़े होकर भी सेवा या मदद तो कर नहीं रहे, उलटे दूसरों को लूट रहे हो। बदमाश यह सुनकर शर्म से गड़ गया और सारा सामान छोड़कर वहां से चंपत हो गया। उसके जाने के बाद लोग विद्यार्थी से बोले, वह व्यक्ति आपसे तगड़ा था, आपको उससे डर नहीं लगा? विद्यार्थी बोंले, वह तगड़ा कहां था। सिर्फ शरीर से तगड़े को मैं तगड़ा नहीं मानता। मन से वह दुर्बल था, तभी तो गलत काम कर रहा था। गलत काम करनेवाला शरीर से भले ही मजबूत हो, मन से बहुत कमजोर होता है। यदि हम मनुष्य होकर भी मनुष्यता से दूर भागते हैं तो मनुष्यता का अर्थ ही क्या रह जाता है? विद्यार्थी की इस बात पर वहां उपस्थित सभी लोग शर्मिंदा हो गए।

१७३) बुद्धि वही है जो समस्या को हल कर दे- एक लौकिक कहानी है। सैला, सांप और सियार तीनों मित्र थे।

जहा मित्रता होती है वहां हर प्रकार की चर्चा चल पड़ती है। एक बार तीनों के मन में प्रश्न उभरा- हम तीनों में बुद्धिमान कौन है? जहां बुद्धिमत्ता का प्रश्न आता है वहां प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको बुद्धिमान बताने की कोशिश करता है। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि मैं पूरी तरह सही हूं। सामनेवाला व्यक्ति ठीक नहीं है। भोला आदमी भी दूसरे की त्रुटि निकालने में होशियार होता है।

सांप ने कहा- मैं सौ तरह की बुद्धियां जानता हूं। सैला बोला- मैं पचास तरह की बुद्धियां जानता हूं। सियार ने कहा- मैं तो न सौ बुद्धियां जानता हूं और न पचास। मुझमें तो एक ही बुद्धि है। जब समस्या आती है, तब उस बुद्धि को काम में ले लेता हूं। बात समाप्त हो गई। कुछ दिन बाद अचानक जंगल में आग लग गयी। आग सारी जंगल में फैलने लगी। सांप आग से बचकर निकल नही सका। सैले का चलना तो और भी कठिन था। कांटो का भार लिए दौड़ना कब संभव था? दोनों आग में जलकर भस्म हो गए। सियार बहुत तेजी से दौड़ा और दौड़ता ही चला गया जंगल के समाप्त होने पर खुले मैदान में पहुंचकर उसने राहत की सांस ली। वह जंगल की भभकती आग को देखकर बोल उठा जिसमें सौ बुद्धियां हैं, वह रस्सी जैसा पड़ा है। जिसमें पचास बुद्धिया हैं, वह गेंद जैसा गोल बन गया है। मेरी अकेली बुद्धि ही अच्छी है। जिसमें मैं सकुशल जीवित खड़ा हूं। कहने का अर्थ यह है कि बुद्धि ही एक ऐसी चीज है, जिसके सामने सारी की सारी चीजें धरी रह जाती हैं।

१७४) महान संगीतज्ञ भी रहे हनुमान - हनुमान एक शक्तिशाली योद्धा होने के साथ-साथ महान संगीतज्ञ भी रहे। एक पौराणिक कथा के अनुसार एक समय नारद एवं तुम्बुरा में यह बहस छिड़ गयी कि कौन महान संगीतज्ञ है और इसका निर्णय करवाने के लिए जाते हैं विष्णु के पास। नारद और तुम्बुरा ने भगवान विष्णु से कहा- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में श्रेष्ठतम संगीतज्ञ हम दोनों में से कौन है? इसका निर्णय करिए।

विष्णु मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहते हैं- मैं संगीत के विषय में कुछ नहीं जानता लेकिन इस विषय के महान ज्ञाता हनुमान हैं। आप उनसे फैसला करवा लें। दोनों ऋषियों के पैरों तले जमीन खिसक गई और बोले- वही हनुमान। जिन्होंने लंका दहन किया। वे भला निर्णायक कैसे हो सकते हैं और वह भी संगीत के? असंभव है।

विष्णु भगवान समझाते हैं- आप लोग जाएं तो सही, हिमालय में मिलेंगे। जाने में हानि क्या है? बैकुंठ से चलते हैं हिमालय की ओर, यह विचार करते हुए कि चलो वानर है, कुछ मनोरंजन हो जायेगा क्योंकि उन्हें मालूम नहीं था कि हनुमान एक अच्छे संगीतज्ञ हैं। विष्णु ने अपना पल्ला छुड़ाया। इन दोनों से कि कौन बैठे-ठाले झगड़ा मोल लिया जाए क्योंकि अगर कह देते हैं कि हनुमान तुम दोनों से भी महान हैं तो वे नाराज हो जाते। अंततोगत्वा नारद व तुम्बुरा पहुंचते हैं हिमालय पर और यह देखकर आश्चर्य में डूब जाते हैं कि हनुमान जी मधुर स्वर में कुछ गा रहे हैं और इतने लीन हैं कि उन्हें दोनों आगंतुकों का होश ही नहीं हैं। नेत्र बन्द कर ईश-स्तुति के पद गा रहे हैं और अपने आप में मस्त हैं। दोनों ऋषियों ने करतल बजाते हुए हनुमान का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। हनुमान जी ने आंखें खोलीं तो देखते हैं कि दोनों ऋषि नारद व तुम्बुरा खड़े हैं, कुछ तमतमाये हुए से। उन्होंने कहा- भगवान विष्णु ने हमें आपके पास भेजा है यह फैसला करने के लिए कि हम दोनों में से महान सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ कौन हैं? चूंकि हमारे पास

समय नहीं है, इसलिए शीघ्र ही अपना निर्णय सुना दें। हनुमान जी ने उनका ईर्ष्यालु व घमंडी स्वभाव देखा लेकिन चूंकि स्वयं हनुमान विनीत व सरल प्रकृति के थे, इसलिए कुछ न कहकर उन्होंने अपनी वीणा उठाई और वीणा के तार साधने लगे ताकि एक विशेष प्रकार की संगीत धुन बजाई जा सके। नारद और तुम्बुरा सोच रहे हैं। यह क्या हो रहा है? कैसे अज्ञानी हैं यह हनुमान? व्यर्थ में समय नष्ट कर रहे हैं।

वे दोनों इस प्रकार ऊट पटांग सोच रहे हैं और इतने में तो हनुमान ने सुमधुर राग छेड़ दिया वीणा के तारों पर और महान आश्चर्य घटित होने लगता है जिसके बारे में इन ऋषियों ने कल्पना भी नहीं की थी। कैसा आश्चर्य? हिमालय की बर्फ पिघलकर बह रही है और पहाड़ों से गुजरते हुए नीचे पानी की तेज धारा में प्रवाहित हो रही है।

नारद व तुम्बुरा यह दृश्य देखकर चकरा गये। हनुमान जी के सुमधुर संगीत के सामने हिमालय नत-मस्तक है, बर्फ बनकर बह रहा है। देखते-देखते नारद व तुम्बुरा उस जल में डूबने लगते हैं और हनुमान से प्रार्थना करते हैं बचाने हेतु। हनुमान ने वीणा के तारों पर से अपनी अंगुलियां हटाई और संगीत थम गया तथा वह पानी पुन: बर्फ बन जाता है। तब हनुमान जी ने कहा- आप तो दो महान संगीतकार हैं। मैं तो एक साधारण सा विद्यार्थी हूं संगीत कला का। आप दोनों में से जो बर्फ को पिघलाकर पानी बना दें, वही श्रेष्ठ संगीतज्ञ होगा। अब क्या था? दोनों अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए वीणा के तारों पर कवायद करने लगे लेकिन अफसोस कि कोई भी संगीत द्वारा बर्फ को पिघला नहीं सके। अब निर्णय स्वयं ही हो चुका था। दोनों हार चुके थे। संगीतज्ञ की सर्वश्रेष्ठता में और हनुमान ही उस समय के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ है, ऐसा उन्होंने स्वीकार किया। सचमुच में शायद ही हनुमान की इस कला से लोगों को मालूम होगा कि हनुमान जी राम के परम भक्त होने के साथ-साथ महान योद्धा और महान संगीतकार भी थे।

१७५) धार्मिक व्यक्ति पीड़ा के बदले भी स्नेह ही देता है- एक संस्कृत कवि बैठा था और अजीबोगरीब हरकतें कर रहा था। कभी-कभी ऐसा होता है कि आदमी प्रयोग की भूमिका में होता है तो उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है। वह कवि अपने सामने तराजू रखे है। पास में दूध से भरा पात्र है और चिंतन में डुबा कुछ सोच रहा है। एक व्यक्ति ने उससे पूछा, कविश्रेष्ठ। तुम तो मसिजीवी हो, सरस्वती के आराधक हो, यह तराजू कब से हाथ में ले ली? क्या तोलना चाहते हो इस पर?

कवि ने कहा, तराजू के एक पलड़े पर मैं दूध रखना चाहता हूं, किंतु दूसरे पलड़े पर क्या रखूं, यह सोच रहा हूं सोचने को क्या बात है। दूध को तोलना चाहते है तो दूसरे पलड़े पर बाट रखो। आगंतुक ने कहा।

नहीं, मैं पदार्थ को पदार्थ से तोलना चाहता हूं। लेकिन एक प्रश्न है- दूध के बराबर वाले दूसरे पलड़े पर कौन बैठ सकता है? दूध श्वेत और पवित्र है। सहज मधुर है। इसके बराबर रखने के लिए इसी के तरह की गुणधर्म वाली कोई चीज चाहिए। दूध की तरह श्वेत रुई या चांदी को रख लो। रही बात मधुरता की तो कोई दूसरी मीठी चीज रखी जा सकती है। कवि को यह परामर्श भी जंचा नहीं। दूध की सबसे बड़ी विशेषता है कि उसे तपाओ, फिर उसे जमाओ, फिर दही बनने के बाद उसे मथानी से मथो। इसके बाद दूध जो चीज हमें देगा, वह है स्नेह या नवनीत। है कोई ऐसी चीज जो इतना प्रताड़ित करने के बाद भी नवनीत या स्नेह प्रदान करें? अगर ऐसी कोई चीज है तो वही दूध के बराबर तुला पर रखी जाने की अधिकारी है। कहने का अर्थ यह है कि धार्मिक व्यक्ति को कितनी ही पीड़ा दो, वह स्नेह ही देगा।

१७६) गुरुकुल के बाहर - गुरुकुल में अपनी शिक्षा पूरी करके एक शिष्य अपने गुरु से विदा लेने आया। गुरु ने कहा- वत्स, यहां रहकर तुमने शास्त्रों का समुचित ज्ञान प्राप्त कर लिया। किंतु कुछ उपयोगी शिक्षा शेष रह गई है। इसके लिए तुम मेरे साथ चलो। शिष्य गुरु के साथ चल पड़ा। गुरु उसे गुरुकुल से दूर एक खेत के पास ले गए। वहां एक किसान खेतों को पानी दे रहा था। गुरु और शिष्य उसे गौर से देखते रहे। पर किसान ने एक बार भी उनकी ओर आंख उठाकर नहीं देखा। जैसे उसे इस बात का अहसास ही न हुआ हो कि पास में कोई खड़ा भी है। वहां से आगे बढ़ते हुए उन्होंने देखा कि एक लुहार भट्ठी में कोयला डाले उसमें लोहे को गर्म कर रहा था। लोहा लाल होता जा रहा था। लुहार अपने काम में इस कदम मगन था कि उसने गुरु-शिष्य की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। गुरु ने शिष्य को चलने का इशारा किया। फिर दोनों आगे बढ़े। आगे थोड़ी दूर पर एक व्यक्ति जूता बना रहा था। चमड़े को काटने, छीलने और सिलने में उसके हाथ काफी सफाई के साथ चल रहे थे। गुरु ने शिष्य को वापस चलने को कहा। शिष्य समझ नहीं सका कि आखिर गुरु का इरादा क्या है? रास्ते में चलते हुए गुरु ने शिष्य से कहा- वत्स, मेरे पास रहकर तुमने शास्त्रों का अध्ययन किया लेकिन व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा बाकी थी। तुमने इन तीनों को देखा। ये अपने काम में संलग्न थे। अपने काम में ऐसी ही तल्लीनता आवश्यक है, तभी व्यक्ति को सफलता मिलेगी।

१७७) एक बार एक राज्य के सैनिकों ने शत्रुदेश का एक गुप्तचर पकड़ लिया। तलाशी लेने पर उसके पास कोई आपत्तिजनक वस्तु नहीं मिली, मगर उसके पास मिठाइयों का एक डिब्बा बरामद किया गया। मिठाइयों को देख सैनिकों के मुंह में पानी आ गया परंतु उन्हें आशंका भी हुई कि कहीं मिठाइयों में जहर तो नहीं मिला हुआ है। जांच करने के लिए उन्होंने पहले गुप्तचर को ही मिठाई खिलाई। जब गुप्तचर ने बिना हिचक थोड़ी सी मिठाई खा ली तो सैनिकों का डर दूर हो गया और उन्होंने मिलकर तुरंत मिठाई का पूरा डिब्बा खत्म कर लिया। पेट भर जाने के बाद वे उस गुप्तचर को राजा के पास ले जाने लगे। इतने में उस गुप्तचर को चक्कर आने लगे और वो उल्टियां करने की कोशिश करने लगा। उसकी हालत देखकर सिपाहियों के होश उड़ गए। वे बोले कि लगता है मिठाइयों में धीमा जहर मिला हुआ था जिसका असर खाने के बाद चालू होता है लगता है। इधर वह गुप्तचर नीचे ढेर हो गया और घबराए सैनिक उसे वहीं छोड़कर वैद्य की तलाश में भागे। सैनिकों के भागने के बाद गुप्तचर उठ खड़ा हुआ और अपनी धूल झाड़कर वहां से रफूचक्कर हो गया।

सार- थोड़ी सी चतुराई हमें भारी आपदा से बचा सकती है।

१७८) सम्राट चंद्रगुप्त ने एक दिन अपने प्रतिभाशाली मंत्री चाणक्य से पूछा क्या कोई ऐसा उदाहरण है जहां गुण के सामने रूप फीका दिखे। ऐसे तो कई उदाहरण हैं महाराज, चाणक्य ने कहा, पहले आप पानी पीकर मन को हल्का करें बाद में इस विषय पर बात करेंगे। फिर उन्होंने दो पानी के गिलास बारी-बारी से राजा की ओर बढ़ा दिए। महाराज पहले गिलास का पानी इस सोने के घड़े का था और दूसरे गिलास का पानी काली मिट्टी की उस मटकी का था। अब आप बताएं, किस गिलास का पानी आपको मीठा और स्वादिष्ट लगा। सम्राट ने जवाब दिया- मटकी से भरे गिलास का पानी शीतल और स्वादिष्ट लगा और उससे तृप्ति भी मिली। वहां उपस्थित महारानी ने मुस्कराकर कहा, महाराज। हमारे प्रधानमंत्रीजी ने बुद्धिचातुर्य से प्रश्न का उत्तर दे दिया। भला यह सोने का खूबसूरत घड़ा किस काम का जिसका पानी बेस्वाद लगता है।

दूसरी ओर काली मिट्टी से बनी यह मटकी, जो कुरूप तो लगती है लेकिन उसमें गुण छिपे हैं। उसका शीतल सुस्वादु पानी पीकर मन तृप्त हो जाता है। अब आप ही बतला दें कि रूप बड़ा है या गुण और बुद्धि?

सार- किसी वस्तु के गुणों का महत्व उसके बाह्य सौन्दर्य से अधिक होता है।

१७९) खलीफा बनने लायक- खलीफा हजरत उमर सादे कपड़ों में प्रजा का हाल जानने निकले। साथ में उनका सेवक असलम भी था। एक जगह उन्होंने देखा कि एक मैदान में तंबू सा गड़ा है, जिसमें से बच्चों के रोने की आवाज आ रही है। खलीफा ने पास आकर पूछा- बच्चे क्यों रो रहे हैं? एक औरत ने, जो हांडी में कुछ पका रही थी, कहा- बच्चे भूखे हैं। खलीफा बोले- तो उन्हें खाने को क्यों नहीं दे देती। औरत बोली- कुछ हो तब तो दें। खलीफा बोले- तो इस हांड़ी में क्या पका रही हो? औरत ने कहा- घर में कुछ है नहीं तो पकाऊंगी क्या। बच्चे जिद कर रहे थे इसलिए हांडी में पानी चढ़ा दिया। शायद बच्चे बहल जाएं और सो जाएं। फिर वह गुस्से में बोली- तीन रोज से मुझ बेवा के पास खाने-पीने को कुछ भी नहीं है। फाका हो रहा है। खैर, मेरा और खलीफा का हिसाब तो अल्लाह के ही यहां होगा। इस पर खलीफा बोले- क्या खलीफा को तुम्हारे इस हाल की खबर है? औरत बोली- वह हमारा खलीफा बनता है तो उसे हमारी खबर क्यों नहीं है? खलीफा लौटे फिर एक बोरी में खाने-पीने का सामान, बरतन, पैसे आदि रखे और असलम से कहा- इसे मेरी पीठ पर लाद दो। असलम ने कहा- नहीं, इसे मैं ले चलता हूं। खलीफा बोले- कयामत के रोज तू ही मेरा बोझ उठा कर अल्लाह के सामने जाएगा क्या? मुझे इसे उठाने दे। खलीफा ने बोरी उस औरत को दे दी। जब वह चलने लगे तो औरत ने कहा- वैसे तुम खलीफा बनने लायक हो।

१८०) सिकन्दर के गुरु डायोनीज को एक व्यक्ति ने बहुत महंगी और पुरानी शराब उपहार में दी। दरबार के सारे लोग डायोनीज की तरफ ललचाई नजरों से देख रहे थे। जाहिर है वे यही सोच रहे थे कि काश यह उपहार उन्हें मिला होता, पर डायोनीज को न जाने क्या सूझा। उन्होंने उसके सामने ही शराब को मिट्टी पर उड़ेल दिया। यह देखकर वह व्यक्ति क्रोधित हो उठा। उसने कहा, आपने मेरे बहुमूल्य उपहार को मिट्टी में क्यों मिला दिया? नहीं लेनी थी तो वापस दे दिया होता। डायोनीज ने कहा, जीवन भर इस बात को याद रखना। अगर मैंने शराब को मिट्टी में न मिलाया होता तो यह मुझे मिट्टी में मिला देती। उसकी बात का उस व्यक्ति पर इतना असर हुआ कि उस दिन के बाद उसने कभी शराब नहीं छुई।

सार- नैतिक बल के सामने व्यसन घुटने टेक देता है।

१८१) सुख का सार- एक व्यक्ति अपने जीवन से बहुत परेशान था। हारकर वह एक संत के पास पहुंचा और उन्हें अपनी समस्या बताई। युवक की बात सुनकर संत ने एक कांच का जार मंगवाया और उसमें ढेर सारी खूबसूरत रंग-बिरंगी गेंदे भर दीं फिर युवक से पूछा, क्या यह जार भर गया है? युवक बोला, हां महाराज, जार तो गेंदों से भर गया है। युवक की बात सुनकर संत मुस्कराए और उन्होंने उस जार में छोटे-छोटे मोती भरने शुरू कर दिए। मोती जार में उस जगह पर समा गए जहां पर गेंदों के बीच रिक्त स्थान बचा हुआ था। इसके बाद उन्होंने युवक से फिर पूछा, क्या अब जार भर गया है? युवक जार को भलीभांति देखकर बोला, हां, अब तो इसमें कहीं भी जगह शेष नहीं है। फिर संत ने जार में रेत डालना शुरू किया। रेत भी जार में मोती के साथ बचे रिक्त स्थान में समा गई। यह देखकर युवक बहुत

हैरान हुआ। संत बोले, बेटा, इस कांच के जार को तुम अपना जीवन समझो। इसमें जो रंग-बिरंगी गेंदे हैं वो तुम्हारे जीवन का आधार यानी परिवार हैं। इसमें जो अनेक मोती हैं वे तुम्हारा रोजगार, आवास, शिक्षा आदि है और जो रेत है वह जीवन में होनेवाले झगड़े, मनमुटाव, तनाव, क्लेश आदि हैं। जीवन ऐसा ही होना चाहिए। अब यदि तुम जार में पहले रेत ही रेत भर दो, तो उसमें गेंदों व मोती के लिए जगह ही नहीं बचेगी। इसलिए पहले अपने जीवन को रंग-बिरंगी गेंदों व मोतियों से भरो। युवक को सुख का सार समझ में आ गया।

१८२) प्रतिभा का सम्मान- एक राजा को चित्रकारी का बहुत शौक था। वह अपने राज्य के योग्य चित्रकारों को समय-समय पर सम्मानित भी करता रहता था। एक बार राजा ने एक चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन रखा और दूर-दूर से मशहूर चित्रकारों को आमंत्रित किया। अनेक चित्रकार निर्धारित स्थल पर पहुंचने लगे। राजा ने सभी चित्रकारों को यथोचित सम्मान व स्थान देकर उन्हें ठहराया। एक चित्रकार बेहद गरीब सा दिख रहा था। वह फटे-पुराने मगर स्वच्छ वस्त्र पहने था। राजा ने उसे एक नजर देखा, फिर अनदेखा कर दिया। नियत समय पर प्रतियोगिता आरंभ हो गई। निर्णय करते समय तीन श्रेष्ठ चित्रों को चुना गया। अंत में निर्णायकों द्वारा उन तीन में से सर्वश्रेष्ठ चित्र को पुरस्कार देने की घोषणा की गई। पुरस्कृत चित्र के चित्रकार का नाम पुकारे जाने पर वही गरीब चित्रकार मंच पर आया। उसे देखकर राजा ने पुरस्कार दिया और कुछ दिन के लिए राजमहल में ठहरने का निवेदन किया। कुछ दिन राजमहल में बिता कर जब चित्रकार लौटने लगा तो राजा ने उसे बहुमूल्य उपहार दिए और उससे बहुत ही विनम्रता से पेश आया। यह देखकर चित्रकार बोला, महाराज, जब मैं प्रारंभ में आपके पास आया था तो आपने मुझे देखकर भी अनदेखा कर दिया था, किंतु आज आप मेरे साथ बहुत ही सम्मानपूर्वक पेश आ रहे हैं। आखिर आपके व्यवहार में यह बदलाव क्यों? उसकी बात पर राजा मुस्कुराया फिर बोला, जब आप प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए आए थे तो आप मेरे लिए अनजान थे और साथ ही मैं आपकी प्रतिभा से भी अनजान था। तो आपकी वेश-भूषा और रूप-रंग के आधार पर ही अपना व्यवहार तय किया। अब मुझे आपकी प्रतिभा की भी जानकारी हो गई, इसलिए मेरे व्यवहार में आपके साथ आपकी प्रतिभा के प्रति भी सम्मान झलक रहा है। <u>व्यक्ति की पहचान उसके काम से ही होती है</u>। मेरे लिए उस समय भी आपकी आर्थिक स्थिति का कोई महत्व नहीं था और आज भी नहीं है। मैं आपकी प्रतिभा को तराशकर उसे चोटी पर पहुंचाने का प्रयास कर रहा हूं। सुनकर चित्रकार संतुष्ट हो गया।

१८३) मां की ममता - महाभारत युद्ध के दौरान द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने एक रात चोरी-छिपे द्रौपदी के पांचों पुत्रों को मार दिया। सुबह उनके शव देखकर पांडव खेमे में हलचल मच गई। हर ओर रूदन व चीख-पुकार के स्वर गूंजने लगे। द्रौपदी तो अपने पांचों पुत्रों के शवों को देखकर विक्षिप्त सी हो गई। वह रह-रहकर अचेत हो जाती फिर जरा सा होश में आते ही जोर-जोर से विलाप करने लगती। उसके करुण क्रंदन से पूरे वातावरण में हाहाकार मच गया। पांडव यह देखकर हत्यारे की खोज में लग गए। कुछ ही देर में उन्हें पता चल गया कि पांडव पुत्रों का वध गुरु पुत्र अश्वत्थामा ने किया है। वे उसे पकड़कर द्रौपदी के सामने ले आये उस समय द्रौपदी जड़वत बैठी थी। पांडव द्रौपदी की दयनीय दशा देखकर बोले, पांचाली, लो इस पापी का सिर धड़ से अलग कर दो। अपराधी तुम्हारे सामने है। सभी द्रौपदी की ओर

देखने लगे। द्रौपदी ने यह सुनकर आंसुओं से भरा अपना चेहरा उठाया और एकटक अपराधी अश्वत्थामा को देखने लगी। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। उसने कहा, अश्वत्थामा को छोड़ दो। इसे मारने पर आपके गुरु और गुरु पत्नी को तीव्र वेदना और पीड़ा होगी जैसी कि इस समय मुझे हो रही है। इसे मारने पर इसकी मां का हृदय छलनी हो जाएगा। इसकी जान लेने से मेरे बेटे तो मुझे वापस नहीं मिलेंगे किंतु एक मां की ममता का खून अवश्य हो जाएगा। मैं एक मां की गोद सूनी नहीं करूंगी। द्रौपदी की यह बात सुनकर पांडव व वहां उपस्थित सभी लोग हैरान रह गए।

१८४) सोने की खेती - एक बार एक चोर चोरी करते रंगे हाथों पकड़ा गया। उसे राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उसे मौत की सजा सुना दी। फांसी के दिन जब जल्लाद उसे लेने आए तो उसने कहा- मैं सोने की खेती करना जानता हूं। यदि मैं मर गया तो वह हुनर भी मेरे साथ ही खत्म हो जाएगा। जल्लादों ने यह खबर राजा को दी। राजा ने चोर को बुलवाया और पूछा- बताओ कैसे की जाती है सोने की खेती? चोर बोला- महाराज, एक किलो सोने के सरसों जैसे दाने सुनार से बनवाकर मंगवा दीजिए और अपने ही राजमहल के प्रांगण में क्यारी बनाने की जगह मुझे बता दीजिए। जब तक सोने के दाने आएंगे, तब तक मैं क्यारियां तैयार कर लूंगा। चोर ने फावड़े से मिट्टी खोदी। फिर खुरपे और हाथों की सहायता से मिट्टी भुरभुरी की। इतने में सोने के दाने आ गए। चोर ने राजा से कहा- मुझे अपने उस गुरु की बात याद आ गई जिनसे मैंने यह विद्या सीखी थी। मैंने चोरी की है इसलिए मैं अपने हाथों से यह सोने के दाने नहीं बो सकता। सोने की खेती वही कर सकता है जिसने कभी चोरी या गलत काम न किया हो। राजा शर्मिंदा होकर बोला- मैंने तो एक षड्यंत्र के तहत पहले राजा को मरवा कर राजगद्दी हथियाई थी, इसलिए मैं भी तो चोर हुआ। राजा ने सभी मंत्रियों को बुलाया और सोने की खेती की शर्त बताई। लेकिन एक भी मंत्री ऐसा नहीं निकला जिसने कभी हेराफेरी न की हो। राजा बोला- यहां सभी चोर हैं इसलिए सोने की खेती नहीं हो सकती। यह सुनकर चोर बोला- जिस राज्य का राजा चोर हो, वहां प्रजा से ईमानदारी की अपेक्षा करना न्यायपूर्ण नहीं है। राजा ने चोर की सजा माफ कर उसे अपना सलाहकार नियुक्त कर लिया।

१८५) लेखक का सपना - एक बार रूस के महान साहित्यकार मैक्सिम गोर्की अपने देश के एक अन्य महान रचनाकार चेखोव से मिलने उनके घर गए। चेखोव गोर्की से अत्यंत गर्मजोशी से मिले और अनेक विषयों पर उनसे चर्चा करने लगे। बातचीत के दौरान गोर्की ने चेखोव से पूछा, आप समाज के विभिन्न वर्गों में किसे अधिक महत्व देते हैं? गोर्की की बात सुनकर चेखोव बोले, वैसे तो सभी वर्गों की अपनी-अपनी जगह विशेष अहमियत है किंतु मैं शिक्षक वर्ग को सबसे अधिक महत्व देता हूं। शिक्षक निस्संदेह ही पूजनीय एवं सर्वश्रेष्ठ हैं। यह सुनकर गोर्की बोले, शिक्षक वर्ग की ऐसी कौन सी खासियत है जिसके कारण आप उन्हें सर्वश्रेष्ठ समझते हैं? इस पर चेखोव बोले, किसी भी देश की नई पीढ़ी को अच्छे संस्कार देकर आदर्श नागरिक बनाने का दायित्व शिक्षकों पर ही होता है। यदि शिक्षक सुखी-समृद्ध होगा तभी तो वह निश्चिंत होकर देश की आदर्श पीढ़ी के निर्माण में पूरी तन्मयता से लगा रह सकता है। चेखोव की बातें सुनकर वह बोले, तो ऐसे में आप शिक्षकों की कुछ मदद करना चाहते हैं? यह सुनकर चेखोव बोले, मैं गुरुजन के प्रति बहुत श्रद्धा रखता हूं। यदि मेरे पास ढेर सारा धन आ जाए तो मैं उससे गांव में शिक्षकों के लिए सुविधाजनक मकान बनवाऊंगा। गोर्की बोले, यह तो बहुत ही नेक निर्णय है। इस पर चेखोव बोले, इतना ही नहीं मैं एक ऐसे बड़े

पुस्तकालय की व्यवस्था भी करूंगा कि अध्यापक, छात्र तथा ग्रामीण लोग पुस्तकों का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त कर सकें। मैं तो शिक्षकों की भूमिका को सर्वाधिक महत्व देता हूं। हमें इस वर्ग के प्रति कृतज्ञता दर्शानी चाहिए। यह सुनकर चेखोव के प्रति गोर्की के मन में सम्मान और बढ़ गया।

१८६) राजा का सपना - एक राजा को शिकार का नशा था। वह राजकाज छोड़कर हर समय शिकार में लगा रहता था। वह जिससे मिलता उससे शिकार के किसी प्रसंग पर ही बात करता। एक बार जब वह शिकार करने पहुंचा तो एक हिरन उसके सामने आ खड़ा हुआ। राजा उसे देखकर चकित रह गया। तभी कोमल वाणी में हिरन ने कहा, राजन, आप प्रतिदिन वन में जाकर जीवों का शिकार करते हैं। कुछ जीव आपके हाथी-घोड़ों द्वारा कुचल दिए जाते हैं। मेरे शरीर के भीतर कस्तूरी का भंडार है। आपसे प्रार्थना है कि आप इस भंडार को ले लें और वन के प्राणियों का शिकार करना छोड़ दें। हिरन की बात सुन राजा विस्मय से बोला, क्या तुम उन्हें बचाने के लिए अपने प्राण देना चाहते हो? तुम जानते हो कस्तूरी पाने के लिए मुझे तुम्हारा वध करना होगा। हिरन बोला, राजन, आप मुझे मारकर कस्तूरी का भंडार ले लीजिए, पर निरापराध जीवों को मारना छोड़ दीजिए। राजा ने पुन: कहा, तुम्हारा शरीर बहुत सुंदर है। तुम्हारे भीतर कस्तूरी का भंडार है। हिरन ने जवाब दिया, राजन् यह शरीर तो नश्वर है। मैं दूसरों के प्राण बचाने के लिए मर जाऊं इससे अच्छी बात क्या हो सकती है। मृग की ज्ञान भरी वाणी ने राजा के मन में प्रकाश पैदा कर दिया। वह सोचने लगा, यह जानवर होकर दूसरों के लिए अपने प्राण दे रहा है और मैं मनुष्य होकर रोज जीवों को मारता हूं। धिक्कार है मुझ पर। तभी उसकी नींद टूट गई। इस सपने ने उसकी आंखें खोल दी थीं। उस दिन से राजा हिंसा छोड़कर सब पर दया करने लगा।

१८७) अनोखा दंड- बहुत पुरानी बात है। दक्षिण भारत में वीरसेन नामक एक राजा राज्य करते थे। वीरसेन थे तो बहुत प्रतापी पर उन्हें अपनी प्रशंसा सुनना काफी अच्छा लगता था। चापलूस दरबारी उनकी तथा राज्य के शासन-व्यवस्था की हमेशा प्रशंसा करते रहते थे, जिससे राजा को राज्य की वास्तविक स्थिति का पता नहीं चल पाता था। राज्य में पंडित विष्णुदेव नामक एक निर्धन ब्राह्मण थे, जो भिक्षा मांगकर किसी तरह अपने परिवार का पेट पालते थे। एक बार अकाल पड़ा और भिक्षा भी बंद हो गई। बच्चों के पेट में अन्न गए तीन दिन बीत गए। पंडितजी जब तीसरे दिन भी खाली हाथ लौटे तो पत्नी रोते हुए बोली, अब मुझसे बच्चों की हालत देखी नहीं जाती। कोई भी मां अपने बच्चों को इस तरह मरते हुए नहीं देख सकती। तुम्हें कुछ-न-कुछ करना ही होगा। पंडित ने झल्लाकर कहा, क्या करूं? चोरी करूं? पत्नी ने कहा हां, चोरी करो क्योंकि इसके सिवा और कोई चारा नहीं बचा है। पंडितजी ने अनेक तर्कों द्वारा पत्नी को मनाने का प्रयास किया पर वह पत्नी की जिद के आगे नतमस्तक हो गए। रात को वह राजमहल के भंडार गृह में पहुंचे। उन्होंने अपनी पगड़ी उतारी और उसमें अनाज रखकर गट्ठर बांधा और तेजी से बाहर आ गए। लेकिन घर लौटकर पंडित जी को नींद नहीं आई। रात भर करवटें बदलते रहे और सुबह होते ही सीधे राजदरबार जा पहुंचे। अपना अपराध सुनाने के बाद उन्होंने राजा से अनुरोध किया कि वह उन्हें चोरी की सजा दें। सारी कथा सुनकर राजा उदास हो गए। थोड़ी देर सोचने के बाद उन्होंने कहा, सजा तो मैं अवश्य दूंगा पर आपको नहीं बल्कि स्वयं को। आज से मैं घूम-घूमकर प्रजा के सुख-दु:ख की जानकारी लूंगा जिससे फिर किसी को चोरी करने की आवश्यकता ही न पड़े। चूंकि आपने अपनी ईमानदारी प्रमाणित कर दी

है इसलिए आपको दंड मुक्त किया जाता है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति के कारण पूरे राज्य की प्रजा सुखी हो गई।

१८८) भाग्य और पुरुषार्थ- राजा विक्रमादित्य के दरबार में कई ज्योतिषी थे। मगर वह कोई काम शुभ लग्न देखकर या ज्योतिषी की सलाह लेकर नहीं करते थे। एक दिन राज ज्योतिषी उनके पास आए और बोले, महाराज, आपके दरबार में कई ज्योतिषी हैं। आपकी तरफ से उन्हें सभी सुविधाएं मिली हुई हैं, पर आप कभी हमारी सेवाएं नहीं लेते। आज मैं आपकी हस्तरेखा देखकर यह जानना चाहता हूं कि आप ऐसा क्यों करते हैं? राजा ने कहा, मेरे पास इतना समय नहीं रहता कि मैं आप लोगों से सलाह ले सकूं। जहां तक हस्तरेखा की बात है तो मैं इसमें विश्वास नहीं रखता। लेकिन आप कह रहे हैं तो देख लीजिए। हाथ देखकर राज ज्योतिषी चक्कर में पड़ गए। उनकी आवाज बंद हो गई। राजा ने पूछा, क्या हुआ। आप इतने परेशान क्यों हैं? राज ज्योतिषी ने कहा, राजन् आपकी हस्तरेखाएं तो कुछ और कहती हैं। ज्योतिष के अनुसार आपको तो दुर्बल और दीन हीन होना चाहिए था। लेकिन आप तो इसके विपरीत हैं। हजारों साल से ज्योतिष विद्या पर विश्वास करनेवाले लोग आपकी रेखाएं देखकर भ्रमित हो जाएंगे। समझ में नहीं आ रहा कि ज्योतिष को सच मानूं या आपकी रेखाओं को। विक्रमादित्य ने कहा, अभी तो आपने मेरे बाहरी लक्षणों को ही देखा है, अब आप हमारे अंदर झांक कर देखिए। इतना कह कर राजा ने तलवार की नोक अपने सीने में लगा दी। राज ज्योतिषी घबरा कर बोले, बस महाराज। रहने दीजिए। राजा ने कहा, ज्योतिषी महाराज, आप परेशान मत हों। ज्योतिष विद्या भी तभी सिद्ध होती है जब मनुष्य में कुछ करने का संकल्प हो। हस्तरेखाएं तो भाग्य नहीं बदल सकतीं लेकिन मनुष्य में यदि पुरुषार्थ है, अभाग्य से लड़ने की शक्ति है तो उसकी नकारात्मक रेखाएं भी अपने रूप बदल सकती हैं। लगता है मेरे साथ ऐसा ही हुआ है। राज ज्योतिषी अवाक हो गए।

१८९) एक मुस्कुराहट के सामने- जब चैतन्य महाप्रभु गृहस्थ थे उनका नाम था निमाई पंडित। एक सुबह नौका में जा रहे थे, हाथ में एक न्याय का हस्तलिखित ग्रंथ था और साथ में थे सहपाठी रघुनाथ पंडित। रघुनाथ ने आग्रह किया तो चैतन्य प्रभु अपना ग्रंथ उन्हें पढ़कर सुनाने लगे। ज्यों-ज्यों वह ग्रंथ सुनाते जाते, तैसे-तैसे रघुनाथ पंडित का दुख बढ़ता जाता और चित्त उदास होता जाता। अंत में रघुनाथ पंडित रो पड़े। निमाई ने कारण पूछा, तो उन्होंने कहा- क्या बताऊं, मैंने भी बड़े परिश्रम से एक ग्रंथ लिखा है- दिधिति। समझता था कि यह ग्रंथ न्याय के ग्रंथों में सबसे प्रधान होगा, पर तुम्हारे इस ग्रंथ के आगे उसे कौन पूछेगा? इसलिए मैं दुखी हो गया हूं। तुम्हारा ग्रंथ निश्चित उससे श्रेष्ठ है। मेरे वर्षों की मेहनत व्यर्थ गई। निमाई हंसकर बोले- बस, इतनी छोटी-सी बात। इतनी सी छोटी बात के लिए इतना दुख। यह लो और उन्होंने पोथी को जल में फेंक दिया। एक क्षण न लगा। पोथी जल में डूब गई। पोथी के पन्ने जल में बिखर गये। रघुनाथ ने कहा- यह तुमने क्या किया? इतने महान ग्रंथ को ऐसे फेंक दिया। निर्माइ ने कहा- महान कुछ भी नहीं, सब शब्दों का जाल है। बड़ा इसका मूल्य नहीं है। दो कौड़ी की बात है। तुम सुखी हो सको, इसके मुकाबले यह कुछ भी नहीं। तुम्हारे होंठ पर मुस्कुराहट आ सके, तो ऐसे हजार ग्रंथ नदी में फेंक दूं।

१९०) लेखक की पत्नी- संस्कृत के प्रतिष्ठित दार्शनिक वाचस्पति पंडित ने ब्रह्मसूत्र की टीका भामती की रचना की थी। भामती की रचना के पीछे एक त्याग भरी कहानी है। भामती वाचस्पति पंडित के संपूर्ण जीवन की साधना है। उन्होंने

इसकी रचना में लगभग अपना पूरा जीवन लगा दिया। वह प्रतिदिन अध्ययन-मनन और लेखन करते और थक जाने पर आंखें बंद कर लेते। आंखें खोलते ही फिर रचना में लग जाते। रचना पूर्ण होने पर जब उनका ध्यान स्वयं व अपने घर पर गया तो उन्होंने पाया कि बहुत समय बीत चुका था। घर में कई तरह के परिवर्तन आ गए थे। उसी दिन शाम को उन्होंने देखा कि प्रौढ़ावस्था की एक महिला उनके कमरे में दीपक जलाकर जा रही है। वह उसे जाते हुए देखकर बोले, देवी, आप कौन हैं और मेरे घर में कैसे? इस पर वह महिला बोली, पंडित जी मैं आपकी पत्नी हूं। लगभग कई वर्षों पहले मेरा आपके साथ विवाह हुआ था, तब से मैं आपके ही घर में रह रही हूं। आप लेखन में इतने खोये रहते थे कि आपका मेरी ओर ध्यान ही नहीं गया। मैंने भी आपके कार्य में व्यवधान डालना उचित नहीं समझा। महिला की बात सुनकर पंडित जी का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। उन्हें याद आया कि विवाह जैसी रस्में हुई तो थीं, पर काम के बीच में ऐसा लगता था कि वह एक स्वप्न मात्र था। वे ग्लानि से भर गए। उस महिला ने अपना नाम भामती बताया। अब कुछ सोचने-समझने को बचा नहीं था। उसी क्षण पंडित जी ने अपनी पुस्तक का नाम भामती रख दिया। अपनी पत्नी के त्याग और सेवा के बदले वे और उसे दे भी क्या सकते थे।

१९१) सिलाई मशीन की सुई- सिलाई मशीन के आविष्कारक एलियास होवे ने सिलाई मशीन बना तो ली, लेकिन जब भी वह उसे चलाने का प्रयास करते बार-बार या तो धागा उलझ जाता या टूट जाता। एलियास ने मशीन की अच्छी तरह जांच-परख की तो उन्हें पता चला कि बाकी सब तो ठीक है केवल सुई ही परेशानी पैदा कर रही है। एलियास की भूख-प्यास सब उड़ गई थी। सुई में क्या कमी है, यह बात उन्हें बार-बार परेशान किए जा रही थी। नींद में भी उनके दिमाग में हर समय सुई घूमती रहती थी। एक दिन उन्होंने सपने में देखा कि एक आदिवासी अपना भाला लेकर उन्हें मारने के लिए आ रहा है। भाला धूप में चमक रहा था। अचानक एलियास की तेज नजर उस भाले पर गई तो उसने भाले की नोक पर एक छेद देखा। छेद धूप में चमक रहा था। एलियास सपने में बार-बार उस छेद को देखते रहे। तभी उनकी नींद खुल गई। वह खुशी से उछल पड़े और अपनी सिलाई मशीन के पास गए। उन्होंने इस बार उसके लिए एक ऐसी सुई बनाई जिसकी नोक के पास छेद बना हुआ था। इसके बाद उन्होंने उस सुई को मशीन में फिट किया। सुई की नोक में धागा डाला। धागा डालने के बाद उन्होंने मशीन चलाई तो धागा निरंतर चाल के साथ दौड़ता रहा, न उलझा और न टूटा। उन्होंने अपने इस प्रयोग को कई बार किया और हर बार पाया कि मशीन के साथ ही सुई में कहीं कोई कमी न थी। इस तरह सिलाई मशीन का आविष्कार पूरा हुआ, जिसकी सुई की नोक के छेद की प्रेरणा एलियास ने सपने में दिखे भाले की नोक पर बने छेद से ली थी। एक सपने ने उनका सपना साकार किया।

१९२) विद्यासागर का जवाब- बात उन दिनों की है जब पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर देश में शिक्षा के प्रसार में लगे हुए थे। फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रिंसिपल मार्शल ने उनसे इस कॉलेज में एक अहम पद की जिम्मेदारी संभालने का अनुरोध किया। विद्यासागर ने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि वह अपने ज्ञान का उपयोग देश की गरीब और अशिक्षित जनता को जागरूक बनाने में करना चाहते हैं। वह नौकरी करके इसे सीमित नहीं करना चाहते। मार्शल के यह विश्वास दिलाने पर कि इस नौकरी से उनके अभियान पर कोई असर नहीं पड़ेगा, उन्होंने यह पद स्वीकार कर लिया। इस कॉलेज

में सबसे पहला सुधार उन्होंने यह कराया कि अब सभी जातियों के बच्चों को इसमें दाखिला मिलने लगा। उन दिनों इंग्लैंड से सिविल सर्विस के लिए जो अंग्रेज भारत भेजे जाते थे उन्हें इस कॉलेज में प्रशिक्षण दिया जाता था। उन्हें हिंदी की परीक्षा पास करनी पड़ती थी। इसके बगैर उनका प्रशिक्षण पूर्ण नहीं माना जाता था। उनकी यह परीक्षा विद्यासागर जी लिया करते थे। यह कार्य वह पूरी निष्ठा के साथ करते थे। एक बार मार्शल ने अपने एक रिश्तेदार को पास करने की सिफारिश की। पर सिद्धांतवादी विद्यासागर ने साफ कहा कि मैं इस तरह की बेईमानी नहीं कर सकता। मेरे ऐसा करने से अयोग्य लोग प्रशासन में आ जाएंगे और भारतीय जनता को इसका फल भुगतना पड़ेगा। अगर आपको यह काम कराना है तो पहले मेरे स्थान पर किसी दूसरे परीक्षक की नियुक्ति करानी होगी वरना मेरे रहते तो यह अन्याय हो नहीं पाएगा। विद्यासागर जी का जवाब सुनकर मार्शल की बोलती बंद हो गई।

१९३) मां की सीख- इंग्लैंड में एक मरणासन्न मां ने अपने पुत्र से कहा- मुझे इस बात का अफसोस है बेटा कि मैं तुझे पढ़ा न सकी और अब तो मेरे पास ज्यादा समय भी नहीं है। तेरे लिए कुछ नहीं कर सकती। यह समझ ले कि अब तेरे लिए सारा संसार ही पाठशाला है। तुझे जहां से जो मिल सके, वहां से सीखना, वही तेरे काम आएगा। उसी से तुझे रोशनी मिलेगी। यह कहकर मां ने हमेशा के लिए आंखें मूंद लीं। बेटा देखता रह गया। अपने भीतर उमड़ रहे आंसू को उसने रोका। उसने मां की सीख गांठ बांध ली। अपने दादा जी को पत्थर तोड़ते देख वह पत्थर तोड़ने का काम करने लगा। इस संबंध में जब उसका ज्ञान एक खास स्तर तक पहुंच गया तो वह गोताखोरी करने लगा और उसने समुद्री चट्टानों के विषय में पर्याप्त जानकारी हासिल कर ली। इसके बाद उसने संगतराश के घर नौकरी कर ली और पत्थरों के गुणों का अध्ययन करने लगा। धीरे-धीरे लाल पत्थर के बारे में उसका ज्ञान एक ऊंचाई तक पहुंच गया। वह उसका विशेषज्ञ माना जाने लगा। तब उसने अपने अनुभवों को लिखना शुरू किया। रात-दिन एक कर लिखता रहा। फिर वह अपने अनुभव लोगों से बांटने लगा। उसकी बातें सुन लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे। धीरे-धीरे उसकी ख्याति फैलने लगी। पहले अपने देश में फिर उसके बाहर भी उसे लोग जानने लगे। वह समूचे विश्व में चर्चित हो गया। यह बालक और कोई नहीं ह्यू मिलर था, जो अपनी मां की सीख के कारण विश्वप्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री बना। उसने साबित किया कि किताबी ज्ञान से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है जीवन के अनुभवों से अर्जित ज्ञान।

१९४) आजादी के लिए- उन दिनों महान स्वतंत्रता सेनानी और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद देश के नामी वकीलों में गिने जाते थे। उनके पास मान-सम्मान और पैसे की कोई कमी नहीं थी। लेकिन जब गांधीजी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया तो राजेन्द्र बाबू ने वकालत छोड़ दी और अपना पूरा समय मातृभूमि की सेवा में लगाने लगे। हालांकि अपने एक पुराने मित्र रायबहादुर हरिहर प्रसाद सिंह को दिए वचन के कारण उनके मुकदमों की पैरवी के लिए उन्हें इंग्लैण्ड जाना पड़ा। सीनियर बैरिस्टर अपजौन इंग्लैण्ड में हरि जी का केस लड़ रहे थे, जिनके साथ राजेन्द्र बाबू को काम करना था। अपजौन देखते कि राजेन्द्र बाबू सुबह से शाम तक अपना काम बिना कुछ बोले, पूरी निष्ठा और लगन के साथ करते रहते हैं। वह उनकी सादगी और विनम्रता से बेहद प्रभावित हुए। एक दिन किसी ने अपजौन को राजेंद्र बाबू के बारे में बताया कि वह एक सफल वकील रहे हैं पर अपने देश को आजाद कराने के लिए उन्होंने वकालत छोड़ दी और अब गांधीजी के

निकटतम सहयोगी हैं। अपजौन को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगे कि ये इतने दिनों से मेरे साथ काम कर रहे है पर अपने मुंह से आज तक अपने बारे में कुछ नहीं बताया। अपजौन एक दिन राजेन्द्र बाबू से बोले- लोग सफलता, पद और पैसे के पीछे भागते हैं और आप हैं कि इतनी चलती हुई वकालत को ठोकर मार दी। आपने गलत किया। राजेन्द्र बाबू ने जवाब दिया- एक सच्चे हिंदुस्तानी को अपने देश को आजाद कराने के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए। वकालत छोड़ना तो एक छोटी सी बात है। अपजौन अवाक रह गए।

१९५) विश्वविजेता और फकीर- भारत आने से पहले सिकंदर डायोजिनीस नामक फकीर से मिलने गया, जो हमेशा लगभग नग्न और परमानंद की अवस्था में रहते थे। सिकंदर को देखते ही डायोजिनीस ने पूछा- तुम कहां जा रहे हो? सिकंदर ने कहा- मुझे पूरा एशिया महाद्वीप जीतना है। डायोजिनीस ने पूछा- उसके बाद क्या करोगे? सिकंदर ने उत्तर दिया- उसके बाद भारत जीतना है। डायोजिनीस ने पूछा- उसके बाद? शेष दुनिया को जीतूंगा। डायोजिनीस ने फिर पूछा- और उसके बाद? सिकंदर ने खिसियाते हुए उत्तर दिया- उसके बाद मैं आराम करूंगा। डायोजिनीस हंसने लगे और बोले- जो आराम तुम इतने दिनों बाद करोगे, वह तो मैं अभी ही कर रहा हूं। यदि तुम आखिरकार आराम ही करना चाहते हो तो इतना कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है? मैं इस समय नदी के तट पर आराम कर रहा हूं। तुम भी यहां आराम कर सकते हो। सिकंदर एक पल के लिए डायोजिनीस की बात को सुनकर शर्मिंदा भी हुआ। उसने सोचा कि उसके पास सब कुछ है पर चैन नहीं। डायोजिनीस के पास कुछ नहीं है पर उसका मन शांत है। सिकंदर ने डायोजिनीस से कहा- आपको देख मुझे ईर्ष्या हो रही है। मैं ईश्वर से यही मांगूगा कि वह अगले जन्म में मुझे आपके जैसा बनाए। लेकिन मुझे जाना होगा क्योंकि मेरी यात्रा अभी पूरी नहीं हुई है। डायोजिनीस ने उत्तर दिया- इसमें तुम ईश्वर को क्यों बीच में ला रहे हो? मेरे लिए सिकंदर बनना कठिन है लेकिन तुम्हारे लिए डायोजिनीस बनना सरल है। कपड़े शरीर से अलग करो और अभी से आराम करना शुरू करो। सिकंदर अवाक् रह गया।

१९६) शिक्षा की पवित्रता- बात उन दिनों की है जब पूर्व राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन जामिया मिलिया के वाइस चांसलर थे। इस शिक्षा संस्थान के जरिए वे देश की युवा पीढ़ी में शिक्षा और नई चेतना की रोशनी फैलाना चाहते थे। वह पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ अपना काम करते थे। एक बार उनके एक रिश्तेदार उनसे मिलने आए। उनका आदर-सत्कार करने के बाद डॉ. हुसैन ने उनके आने का मकसद पूछा तो वह महाशय बोले- डॉ. साहब, मेरा इकलौता बेटा पिछले तीन साल से नौवीं में फेल हो रहा है और जब वह नौवीं पास नहीं कर लेता, दसवीं की परीक्षा में नहीं बैठ पाएगा। डॉ. हुसैन ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा- हां, बात तो सही है। वह सज्जन अधिकारपूर्वक बोले, इसीलिए तो मैं आपके पास आया हूं। अब आप ही मेरी इस समस्या का समाधान कर सकते है। डॉ. हुसैन ने पूछा- भला मैं आपकी समस्या का समाधान कैसे कर सकता हूं? वह बोले- आप अपनी हैसियत का इस्तेमाल करके उसे नौवीं पास करवा दें और दसवी की परीक्षा में बिठा दें। डॉ. हुसैन कुछ देर तक उस व्यक्ति का चेहरा देखते रहे और फिर बोले- जब मुझे अपने अधिकारों का प्रयोग करना ही है तो क्यों न उसे सीधे बीए की परीक्षा में बिठा दूं? वह जब तक कुछ समझ पाते, डॉ. हुसैन गुस्से से भड़क उठे और बोले- आपने मुझे समझ क्या रखा है? आपकी हिम्मत कैसे

हुई मुझसे ऐसा कहने की? मैं अपने ओहद का इस्तेमाल अपने बेटे के लिए भी नहीं कर सकता। आगे से आप किसी गलत काम के लिए मेरे पास न आएं। डॉ. हुसैन के रिश्तेदार का सिर शर्म से झुक गया।

१९७) बुद्ध का क्रोधी शिष्य- गौतम बुद्ध अपने शिष्यों के साथ एकदम शांत बैठे हुए थे। उन्हें इस प्रकार बैठे देख उनके शिष्य चिंतित हुए कि कहीं वे अस्वस्थ तो नहीं। एक शिष्य ने उनसे पूछा कि वह आज इस प्रकार से मौन क्यों बैठे हैं। क्या शिष्यों से कोई गलती हो गई है? इसी बीच एक अन्य शिष्य पूछ बैठा कि क्या वह अस्वस्थ है? पर बुद्ध मौन ही रहे। तभी कुछ दूर खड़ा एक व्यक्ति जोर से चिल्लाया- आज मुझे सभा में बैठने की अनुमति क्यों नहीं दी गई। बुद्ध आंखें बंद कर ध्यानमग्न हो गए। वह व्यक्ति फिर उसी तरह चिल्लाया- मुझे प्रवेश की अनुमति क्यों नहीं मिली? इस बीच एक उदार शिष्य ने उसका पक्ष लेते हुए कहा कि उसे सभा में आने की अनुमति प्रदान की जाए। बुद्ध ने आंखें खोली और बोले- नहीं वह अस्पृश्य है, उसे आज्ञा नहीं दी जा सकती। यह सुन शिष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ। बुद्ध उनके मन का भाव समझ गए। बोले- हां, वह अस्पृश्य है। इस पर कई शिष्य एक साथ कह उठे- हमारे धर्म में तो जांतपात का कोई भेद नहीं, फिर वह अस्पृश्य कैसे हो गया? तब बुद्ध ने स्पष्ट किया- आज यह क्रोधित होकर आया है। क्रोध से जीवन की एकता भंग होती है। मेरा मानना है कि क्रोधी व्यक्ति मानसिक हिंसा करता है इसलिए वह अस्पृश्य होता है। उसे कुछ समय एकांत में ही खड़ा रहना चाहिए। पश्चाताप की अग्नि में तपकर वह समझ लेगा कि अहिंसा ही हमारा महान कर्त्तव्य और परम धर्म है। बुद्ध की यह बात सुनकर वह व्यक्ति बुद्ध के चरणों में गिर गया और उसने कभी क्रोध न करने की शपथ ली। इस तरह बुद्ध के शिष्यों ने एक नया पाठ सीखा।

१९८) मन की सुंदरता- एक दिन विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात अपने कमरे में बैठे हुए शीशे में अपना चेहरा देख रहे थे। वह बहुत गौर से खुद को निहार रहे थे। उसी समय उनका एक प्रिय शिष्य उनके कमरे में आ गया। शिष्य ने उन्हें इस प्रकार अपना चेहरा निहारते पाया, तो वह बड़ा आश्चर्यचकित हुआ। शिष्य कुछ बोला नहीं, सिर्फ मुस्कराने लगा। सुकरात ने शिष्य की मुस्कुराहट देखी, तो वह उसकी दुविधा भांप गए। शिष्य कोई सवाल करे उससे पूर्व ही सुकरात बोल उठे- मैं जान गया कि तुम क्यों हंस रहे हो? शायद तुम सोच रहे हो कि मुझ जैसा कुरूप व्यक्ति आखिर शीशे में अपना मुंह क्यों देख रहा है? शिष्य कुछ बोला नहीं। उसकी गलती पकड़ी जा चुकी थी। वह लज्जित हो गया और नजर नीची किए खड़ा रहा। सुकरात ने फिर कहा- शायद तुम नहीं जानते कि मैं यह शीशा क्यों देखता हूं। शिष्य नें कहा- नहीं। इस पर सुकरात बोले- मैं कुरूप हूं, इसलिए रोज शीशा देखता हूं। शिष्य को यह बात थोड़ी अटपटी लगी। उसने प्रश्न किया- पर ऐसा क्यों? सुकरात कहने लगे- मैं ऐसा इसलिए करता हूं ताकि इसे देखकर मुझे अपनी कुरूपता का अहसास हो जाए। मैं अपने असली रूप को पहचानता हूं। इसलिए हर रोज कोशिश करता हूं कि ऐसे अच्छे काम करूं, जिससे मेरी यह कुरूपता ढक जाए। शिष्य ने जिज्ञासा प्रकट की- तो क्या सुंदर लोगों को कभी शीशा नहीं देखना चाहिए? सुकरात ने समझाया- सुंदर लोगों को भी आईना अवश्य देखना चाहिए ताकि उन्हें ध्यान रहे कि वे जितने सुंदर है, उतने ही सुंदर काम भी करें, वरना उनके बुरे काम उनकी सुंदरता कम कर देंगे।

१९९) शास्त्रीजी का कोट- यह बात उन दिनों की है, जब लाल बहादुर शास्त्री केंद्रीय मंत्री थे। सादगी और ईमानदारी में शास्त्री जी बेजोड़ थे। एक बार की बात है। प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें एक जरूरी काम से कश्मीर जाने

के लिए कहा। शास्त्रीजी ने निवेदन किया कि किसी और को उनकी जगह भेज दिया जाए। नेहरू जी ने जब इसका कारण पूछा तो शास्त्री जी बोले- कश्मीर में इस समय बेहद ठंड पड़ रही है और मेरे पास गर्म कोट नहीं है। यह सुनकर बहुत इनकार करने के बावजूद नेहरू जी ने अपना एक कोट शास्त्री जी को दे दिया। शास्त्रीजी ने पंडित जी का कोट पहन कर देखा। वह बहुत लंबा था और बहुत नीचे तक लटक रहा था। शास्त्रीजी अपने एक मित्र को साथ लेकर एक नया कोट खरीदने बाजार पहुंचे। बाजार में काफी कोट देखे गए पर मनपसंद कोट नहीं मिला। या तो महंगा इतना होता कि शास्त्रीजी दाम चुकाने में असमर्थ होते या फिर साईज ऐसा होता कि उनको ठीक नहीं आता। एक दुकानदार ने उन्हें एक ऐसे दर्जी का पता दिया जो सस्ता और अच्छा कोट सिलकर दे सकता था। शास्त्रीजी अपने मित्र के साथ उस दर्जी के पास पहुंचे। और एक सस्ता कोट सिलने को दे दिया। शास्त्री जी के मित्र बोले- आप केंद्रीय मंत्री हैं। आप चाहें तो सैकड़ों कीमती कोट आपके पास हो सकते हैं लेकिन आप एक मामूली कोट के लिए बाजार में मारे-मारे घूम रहे हैं। शास्त्री जी ने मुस्कराकर जवाब दिया- भाई, मुझे इतनी तनख्वाह नहीं मिलती कि मैं कीमती कपड़े खरीद सकूं। मेरे लिए तो देश सेवा ही सबसे बढ़कर है जो मैं मामूली कपड़ों में भी कर सकता हूं।

२००) क्रांतिकारियों की तस्वीर- जब बंगाल विभाजन को लेकर आंदोलन जोरों पर था उस समय सुभाषचंद्र बोस उस वक्त मात्र दस साल के थे। उन्होंने लोगों से सुना कि खुदीराम बोस और कन्हाईलाल दत्त हंसते-हंसते फांसी पर चढ़ गए। शहीदों की चिता की राख से लोगों ने ताबीज बनाए और अपने बच्चों के गले मे डाले। सुभाष बाबू जिधर जाते दत्त और बोस की प्रशंसा सुनते। उन्होंने इन दोनों शहीदों के चित्र अखबार से काटे और गत्ते पर चिपकाकर अपने कमरे की दीवार पर सजा दिए। वह रोज घंटों इन चित्रों को निहारते रहते थे। एक दिन उनके एक रिश्तेदार घर आए। सुभाष के कमरे में जब उन्होंने क्रांतिकारियों के चित्र लगे देखे तो सुभाषचंद्र के पिता जानकी बाबू को सलाह दी- इन तस्वीरों को हटवा दो वरना किसी ने सरकार से शिकायत कर दी तो मुसीबत में पड़ जाओगे। जानकी बाबू ने चित्र हटवा दिया। सुभाष बाबू ने जब उन चित्रों को अपने कमरे में नहीं पाया तो परेशान हो उठे। उनके पिता ने उन्हें बताया कि न चाहते हुए भी ऐसा करना पड़ा क्योंकि अंग्रेज इसे अपराध मानते हैं। सुभाष बाबू बोले- यह देश हमारा है और हम आदेश विदेशियों का मानते हैं? क्या हम अपने घरों में उन लोगों के चित्र भी नहीं लगा सकते जिन्होंने हमारे लिए अपने प्राणों की आहुति दी है। यह तो जुल्म है। आज मुझे आजादी का महत्व समझ में आ गया है। इस घटना के बाद सुभाष बाबू पर देशभक्ति का रंग और गहरा हो गया। अंग्रेजी शासन उन्हें शूल की तरह चुभने लगा। उन्होंने तय कर लिया कि वह आगे चलकर जरूर स्वाधीनता आंदोलन में शामिल होंगे

२०१) कोई गरीब नहीं होता- उन दिनों अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन थे। एक दिन उनके पास एक युवक आया जो अपनी बेकारी से तंग आ चुका था और भीख मांगने के बारे में सोच रहा था। उसने लिंकन से कहा- मैं बहुत गरीब हूं। ईश्वर ने मुझे कुछ भी नहीं दिया है, कृपया दया करें। लिंकन ने उस युवक को ऊपर से नीचे तक देखा। फिर कहा- ठीक है, मैं तुम्हें दो हजार डॉलर दे देता हूं, तुम अपने दोनों पैर मुझे दे दो। युवक परेशान होकर बोला- मैं पैर तो नहीं दे सकता। क्योंकि फिर मैं चलूंगा कैसे? इसके बाद लिंकन बोले- अच्छा पैर नहीं दे सकते। कोई बात नहीं अपने

दोनों हाथ मुझे दे दो। मैं तुम्हें दस हजार डॉलर दे देता हूं। इस पर युवक बोला- सर, दस हजार डॉलर तो क्या, कोई मुझे पचास हजार डॉलर भी दे तो मैं उसे अपने हाथ नहीं दे सकता। लिंकन ने हंसकर कहा- चलो, अपनी आंखें ही दे दो। मैं अभी तुम्हें एक लाख डॉलर नकद दिलवा देता हूं। इस पर युवक ने कहा- आप कैसी बात करते हैं, कभी पैर मांगते हैं, कभी हाथ मांगते हैं तो कभी आंखें और इनकी कीमत आप डॉलर में आंकते है। कोई अपना अंग भला कैसे दे सकता है? इस पर लिंकन ने ठहाका लगाया और बोले- देखो युवक जब ईश्वर ने तुम्हें इतनी कीमती चीजें दी हैं तो तुम गरीब कैसे हुए? क्या तुम्हें यह कहना शोभा देता है कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है। जाओ, मेहनत-मजदूरी करो। मैं खुद भी मजदूरी करता था। और आज यहां तक पहुंचा हूं। ये हाथ भीख मांगने के लिए नहीं हैं। इन्हें काम के लिए उठाओ या प्रभु की प्रार्थना के लिए। वह युवक लिंकन का आशय समझ गया।

२०२) सुई और विनम्रता- एक बार बाबा फरीद से मिलने के लिए एक राजा आया। वह बड़ा अहंकारी था। वह बाबा के लिए उपहारस्वरूप एक नायाब तलवार लेकर आया। उसने बाबा से कहा, यह भेंट आपके लिए है। भेंट देखकर बाबा फरीद बोले, राजन, मैं शुक्रगुजार हूं कि तुम मेरे लिए बेशकीमती तलवार लेकर आए। लेकिन यह मेरे किसी काम की नहीं। मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो सुई के साथ विनम्रता का उपहार दो। वह मेरे लिए ऐसी सौ तलवारों से भी अधिक कीमती होगा। बाबा की बात सुनकर राजा दंग रह गया। वह बोला, बाबा, सुई और विनम्रता ऐसी सौ तलवारों का मुकाबला कैसे कर सकती है? बाबा बोले, तलवार लोगों को मारने-काटने का काम करती है। जबकि सुई सिलने का काम करती है। एक बेशकीमती तलवार सिर्फ मार-धाड़ और काटने का काम कर सकती है जबकि एक छोटी सी सुई चीजों को जोड़ती है। तोड़ना आसान है और जोड़ना कठिन। इसी तरह विनम्रता से व्यक्ति उन सभी को जीत लेता है जिन्हें वह अहंकारवश नहीं जीत सकता। विनम्रता और प्रेम के आगे सब पराजित हो जाते हैं। तुम्हीं बताओ, ऐसे में कौन ज्यादा कीमती है? तलवार, अहंकार या सुई और विनम्रता। राजा समझदार था। वह बाबा का संकेत समझ गया और उनके चरणों में अपना सिर रखकर बोला, बाबा, आज आपने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी है। आज से मैं जोड़ने का काम करूंगा और विनम्रता से अपनी प्रजा की सेवा करूंगा। इसके बाद उसने वह तलवार फेंक दी और विनम्रता धारण कर अहंकार त्याग दिया। कुछ ही समय में वह दूर दूर तक प्रसिद्ध हो गया।

२०३) राजकुमारी की शर्त- एक राज्य की राजकुमारी के स्वयंवर का आयोजन किया गया। अलग-अलग राज्यों के राजकुमार तथा अन्य इच्छुक युवक उसमें हिस्सा लेने आए। राजकुमारी ने शर्त रखी कि जो भी पानी पर चलेगा उसी से वह ब्याह करेगी। राजकुमारी की इच्छा के अनुसार एक नदी के किनारे बहुत बड़ा मंच लगाया गया। पूरे साम्राज्य की जनता इकट्ठा हुई। एक राजकुमार ने कहा, अरे, भला पानी पर कैसे चल सकते हैं। दूसरे ने कहा, पानी पर चलेंगे तो डूब जाएंगे। तीसरे ने कहा, मैं अगर प्रयास करूंगा और विफल हो जाऊंगा तो राजकुमारी सोचेगी बेचारा लालच के मारे डूबकर मरने को भी तैयार हो गया। इस तरह जब सभी राजकुमार हिम्मत हार गए तो एक युवक ने, जो देखने में सामान्य सा लगता था, साहस दिखाया। उसने उस स्वयंवर की शर्त के अनुसार पानी पर चलने की चुनौती स्वीकार कर ली। उसने एक खाली बाल्टी मांगी। उसे तत्काल बाल्टी दे दी गई। बाल्टी से उसने नदी से पानी लेकर किनारे पर डालना शुरू कर

दिया। सब लोग कहने लगे, क्या नदी में से पानी कम करके नदी पर चलेगा क्या? लेकिन उसने किसी की परवाह किए बगैर ढेर सारा पानी नदी के किनारे डाल दिया। जब जमीन पर पानी भरा दिखने लगा तो वह उस पर चलने लगा। यह देखकर सभी हतप्रभ रह गए। राजकुमारी उठी और उसने उस युवक को वर चुन लिया और कहा, मुझे बुद्धिमान पति ही चाहिए था। मेरी शर्त थी पानी पर चलने की, नदी पर चलने की नहीं। आशंकाओं और भय से घिर कर बैठे रहने से समस्याएं हल नहीं होतीं। हमेशा बुद्धिमानी दिखानी चाहिए।

२०४) देश का सम्मान- यह उन दिनों की बात है, जब स्वामी रामतीर्थ जापान में थे। स्वामीजी रेल से एक शहर से दूसरे शहर घूम रहे थे। उन दिनों वह अन्न नहीं खाते थे, फलाहार ही करते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि वह गाड़ी से यात्रा कर रहे थे और उन्हें खोजने पर भी अपने लिए कहीं फल नहीं मिल सके। स्वामीजी को बहुत तेज भूख लगी हुई थी। उसी समय गाड़ी एक स्टेशन पर ठहरी। स्वामीजी ने इधर-उधर नजर दौड़ाई, मगर उन्हें फल न दिखाई दिए। सहसा उनके मुंह से निकल पड़ा, लगता है, जापान फलों के मामले में बड़ा गरीब है। स्वामीजी के डिब्बे के सामने खड़े एक युवक ने उनकी यह बात सुन ली। वह अपनी पत्नी को गाड़ी में बैठाने आया था। यह सुनकर वह दौड़ा-दौड़ा स्टेशन से बाहर गया और एक टोकरी फल लेकर स्वामीजी के पास आया और बोला, ये लीजिए फल। आपको इनकी जरूरत है। स्वामीजी ने समझा, शायद यह कोई फल बेचनेवाला है। उन्होंने फल ले लिए और पूछा, इनका मूल्य कितना है? युवक ने कहा, इनका कोई मूल्य नहीं है, ये आपके लिए हैं। स्वामीजी ने फिर पैसे लेने का आग्रह किया, तो युवक बोला, आप फलों की कीमत देना ही चाहते हैं, तो आपसे प्रार्थना है कि आप अपने देश जाकर किसी व्यक्ति से यह न कहें कि जापान फलों के मामले में बहुत गरीब देश है। बस यही इनका मूल्य है।

स्वामी रामतीर्थ उस जापानी युवक का उत्तर सुनकर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने मन ही मन सोचा कि जिस देश का हरेक नागरिक अपने देश के सम्मान का इतना ध्यान रखता है, वह मुल्क सचमुच महान है।

२०५) आजादी का मतलब- जवाहरलाल नेहरू जब भी इलाहाबाद में होते, गंगा के दर्शन करने जरूर जाते। वहां उन्हें काफी सुकून मिलता था। प्रधानमंत्री बनने के बाद भी यह सिलसिला जारी रहा। एक बार जब कुंभ मेला लगा तो नेहरू जी भी आए। उनके आने से लोग रोमांचित थे। अपार जनसमूह के बीच उनकी कार किसी तरह धीरे-धीरे आगे खिसक रही थी। जैसे ही लोग नेहरू जी को देखते, जोर-जोर से चिल्लाने लग जाते, पंडित जी आ गए, जवाहरलाल नेहरू की जय, प्रधानमंत्री जी की जय। तभी न जाने कहां से एक बूढ़ी महिला भीड़ को चीरती हुई उनकी कार के पास आई और हाथ उठाकर जोर-जोर से पुकारने लगी, अरे ओ जवाहर। रुक जा, खड़ा तो रह। तू कहता है न कि आजादी मिल गई है, लेकिन आजादी है कहां? किसको मिली है? हां, शायद तुझे मिली हो क्योंकि तू है जो मोटर में घूम रहा है। मेरे लड़के को तो एक नौकरी तक नहीं मिल रही। कहां है आजादी, बता? वृद्धा को देखकर नेहरू जी ने फौरन गाड़ी रुकवाई और नीचे उतरकर उस बुढ़िया के पास गए और हाथ जोड़कर कहा, मां जी। आप कहती है कि आजादी कहां हैं? जहां आप अपने देश के प्रधानमंत्री को तू कहकर पुकार सकती हैं, उसे डांट सकती हैं, क्या यह आजादी नहीं है? क्या पहले ऐसा था? नहीं न। आप बेहिचक चली आईं हमारे पास अपनी शिकायत रखने। यही तो आजादी है। आपकी

शिकायत पर ध्यान दिया जाएगा। यह सुनकर महिला थोड़ी देर के लिए चुप होकर नेहरू जी को देखती रही। फिर बोली, सच ही कहा था बापू ने कि नेहरू जी हर किसी से बड़े प्यार से बात करते हैं।

२०६) बापू की सीख- गांधी जी के करीबी मित्रों में से एक थे डॉ. प्राणजीवन मेहता। रेवाशंकर और जगजीवन दास डॉ. मेहता के भाई थे। गांधीजी के प्रति रेवाशंकर के मन में अपार श्रद्धा थी। इसलिए गांधीजी जब मुंबई जाते तो प्राय: रेवाशंकर के घर पर ही ठहरते थे। रेवाशंकर बापू का खूब स्वागत-सत्कार करते थे। एक दिन गांधीजी मुंबई आए तो उनके साथ आनंदस्वामी भी थे। रेवाशंकर उन्हें देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों का यथोचित स्वागत किया। आनंदस्वामी की रेवाशंकर के रसोइये के साथ किसी बात पर अनबन हो गई। रसोइये ने तैश में आकर कुछ ऐसा बोल दिया, जो आनंदस्वामी को बहुत बुरा लगा। वह क्रोधित हो उठे और उन्होंने रसोइये को चांटा जड़ दिया। शिकायत गांधीजी तक पहुंची। उन्होंने आनंदस्वामी को बुलाकर समझाया, तुम्हारा यह आचरण अशोभनीय है। तुमने ऐसा क्यों किया? आनंदस्वामी ने जवाब दिया, मुझे क्रोध आ गया था। इस पर गांधीजी बोले, क्रोध में भी प्राय: अपने से कमजोर लोगों को ही निशाना बनाते हैं। यदि बड़े लोगों से तुम्हारा ऐसा झगड़ा हो जाता तो उन्हें तो तुम थप्पड़ नहीं लगाते। वह नौकर है इसलिए तुमने उसे चांटा जड़ दिया। अभी जाकर क्षमा मांगो। जब आनंदस्वामी ने आनाकानी की तो गांधीजी ने कहा, अपने अपराध का प्रायश्चित तभी होता है, जबकि पीड़ित से सच्चे हृदय से क्षमा मांग ली जाए। क्षमा से न केवल अपराध का बोझ समाप्त होता है बल्कि आत्म परिष्कार भी होता है। तुम स्वयं में सुधार नहीं कर सकते तो मेरे साथ भी नहीं रह सकते। आनंदस्वामी ने तत्काल रसोइये के पास जाकर उससे क्षमा मांग ली।

२०७) संघर्ष की मिसाल- जॉर्ज वॉशिंगटन कार्वर अमेरिका के नीग्रो परिवार में पैदा हुए थे। जब वह बालक ही थे तभी उनके परिवार को एक रईस ने गुलाम के रूप में खरीद लिया। कार्वर ने मालिक के बच्चों को स्कूल जाते देख अपनी मां से स्कूल जाने की जिद की। मालिक रहमदिल व्यक्ति था। उसने कार्वर की इच्छा को देखते हुए उसे स्कूल में भर्ती करा दिया। वह मन लगाकर पढ़ते और पूरे तन-मन से अपने मालिक की सेवा भी करते। उनकी योग्यता और सेवाओं से खुश होकर मालिक ने उन्हें दासता से मुक्त कर दिया लेकिन कार्वर के लिए स्थितियां और दुखदायी हो गईं। उन्हें किसी भी कॉलेज ने यह कहकर दाखिला नहीं दिया कि वह गुलाम हैं। गुलामों को पढ़ने का अधिकार नहीं होता। पर कार्वर ने हार मानना नहीं सीखा था। उन्होंने अपनी जीविका के लिए लोगों के कपड़े धोना और प्रेस करना आरंभ कर दिया। समय मिलने पर वह घर पर ही पढ़ते थे। कई जगहों से उनका आवेदन ठुकराया गया। पर उन्होंने पढ़ाई के लिए अपनी कोशिशें जारी रखीं। इंडियाना पोलिस के सिंपसन कॉलेज के प्रिंसिपल एक नेक इंसान थे। उन्होंने कार्वर से कहा, मान लो मैं तुम्हें दाखिला दे भी दूं पर आगे क्या तुम्हें नौकरी मिल पाएगी? कार्वर बोले, मेरी शिक्षा सिर्फ पैसे कमाने के लिए नहीं है। मैं इससे समाज का भला करना चाहता हूं। प्रधानाचार्य ने कार्वर का आवेदन कॉलेज की कमेटी के आगे रखा। कार्वर को प्रवेश दे दिया गया। उन्होंने अपनी योग्यता से वहां न सिर्फ सर्वाधिक अंक हासिल किए बल्कि वहीं पर उन्हें शिक्षक भी बना दिया गया। बाद में वे एक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक के रूप में उभरे।

२०८) क्रांतिकारी की मां- भारत के स्वाधीनता संग्राम में कई महान विभूतियों का योगदान रहा है। इनमें से कुछ अहिंसा के रास्ते पर चलते थे तो कुछ क्रांतिकारी उपायों में विश्वास रखते थे। ये देश को न केवल राजनैतिक स्वतंत्रता

दिलाना चाहते थे बल्कि सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से भी उन्नत बनाना चाहते थे। ये एक बेहतर समाज बनाने का स्वप्न देखते थे। इनका व्यक्तिगत जीवन त्याग और आदर्श से भरा था। इन्हीं में से एक थे यतींद्रनाथ बोस, जो क्रांतिकारी थे। उन्होंने आजादी के लिए लड़ते हुए अपनी जान दे दी। उन्हीं के जीवन की यह घटना है। एक दिन वह चिलचिलाती धूप में कोलकाता की एक सड़क पर पैदल कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक जगह उन्होंने भारी भीड़ देखी। यतींद्रनाथ भीड़ को चीरते हुए अंदर घुसे तो अवाक रह गए। उन्होंने देखा कि एक वृद्धा गर्मी से परेशान, बोझा उठाने में असमर्थ होकर नीचे गिर पड़ी थी। उसे घेरकर खड़े लोग मौखिक सहानुभूति तो जता रहे थे, मगर उसे उठाकर घर पहुंचाने के लिए कोई तैयार नहीं था। सब आपस में ही बहस में उलझे थे कि उस महिला की मदद कैसे की जाए। यतींद्रनाथ ने उस वृद्धा को सहारा देकर उठा लिया और बोले- चलो मां, घर चलें। घर पहुंचकर उन्होंने पूछा- तुम्हारा और कोई नहीं है क्या? यह सुनकर वृद्धा रो पड़ी और बोली- एक ही बेटा था, जो महामारी के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गया। अब बोझा ढोकर पेट की आग बुझाती हूं। यतींद्रनाथ बोले- मां, यह बेटा अभी जीवित है। अब तुम्हें कभी बोझ नहीं ढोना पड़ेगा। यह कहते हुए उन्होंने उसके चरण छूकर उसे कुछ रुपए दिए और फिर आजीवन उसका भरण-पोषण किया।

२०९) सबसे अच्छे की तलाश- एक युवक ने एक संत से कहा, महाराज, मैं जीवन में सर्वोच्च शिखर पाना चाहता हूं लेकिन इसके लिए मैं निम्न स्तर से शुरुआत नहीं करना चाहता। क्या आप मुझे कोई ऐसा रास्ता बता सकते हैं जो मुझे सीधा सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा दे। संत बोले, अवश्य बताऊंगा। पहले तुम आश्रम के बगीचे से सबसे सुंदर गुलाब का फूल लाकर मुझे दो। लेकिन एक शर्त है। जिस गुलाब को तुम पीछे छोड़ जाओगे, उसे पलटकर नहीं तोड़ोगे। युवक यह आसान सी शर्त मानकर बगीचे में चला गया। वहां एक से एक सुंदर गुलाब खिले थे। जब भी वह एक गुलाब तोड़ने के लिए आगे बढ़ता उसे कुछ दूर पर उससे भी अधिक सुंदर गुलाब नजर आते और वह उसे छोड़ आगे बढ़ जाता। ऐसा करते-करते वह बगीचे के मुहाने पर आ पहुंचा। लेकिन यहां उसे जो फूल नजर आए वे एकदम मुरझाए हुए थे। आखिरकार वह फूल लिए बिना ही वापस आ गया। उसे खाली हाथ देखकर संत ने पूछा, क्या हुआ बेटा, गुलाब नहीं लाए? युवक बोला- बाबा, मैं बगीचे के सुंदर और ताजा फूलों को छोड़कर आगे और आगे बढ़ता रहा, मगर अंत में केवल मुरझाए फूल ही बचे थे। आपने मुझे पलटकर फूल तोड़ने से मना किया था। इसलिए मैं गुलाब के ताजा और सुंदर फूल नहीं तोड़ पाया। उस पर संत मुस्कराकर बोले, जीवन भी इसी तरह से है। इसमें शुरुआत से ही कर्म करते चलना चाहिए। कई बार अच्छाई और सफलता प्रारंभ के कामों और अवसरों में ही छिपी रहती है। जो अधिक और सर्वोच्च की लालसा पाकर आगे बढ़ते रहते हैं, अंत में उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ता है। युवक समझ गया।

२१०) क्रोध की जगह- विश्व प्रसिद्ध रोमन सम्राट जूलियस सीजर की गिनती दुनिया के श्रेष्ठ योद्धाओं में की जाती है। उसका जन्म एक अभिजात कुल में हुआ था, जिसके लोग स्वयं को वीनस देवी का वंशज मानते थे। सीजर भी अपने पूर्वजों की राह पर चलते हुए एक तानाशाह बन गया। उसने अपने जीवन में अनेक युद्ध लड़े। उसके दोस्तों की संख्या भी अच्छी-खासी थी और दुश्मन भी अनेक थे, जो तरह-तरह से उसके खिलाफ साजिश रचते थे। लेकिन सीजर इन सब चीजों की परवाह नहीं करता था। वह मानता था कि जीवन के हर पल को भरपूर जीने में ही सुख है। इसलिए घोर विपत्ति

में भी वह जरा भी परेशान नहीं होता था। उसमें काम करने की एक धुन थी। उसके बारे में मशहूर है कि वह एक बार में तीन काम एक साथ करता था। एक दिन सीजर अपने कुछ मित्रों के साथ बैठा था कि तभी उसे पत्रों का एक पुलिंदा मिला। वे पत्र उसके किसी विरोधी ने लिखे थे। सीजर ने उन्हें बिना पढ़े ही आग के हवाले कर दिया। यह देखकर उसके एक मित्र ने कहा- आपने पत्र जलाकर अच्छा नहीं किया। अपने शत्रु के खिलाफ ये एक महत्वपूर्ण प्रमाण साबित हो सकते थे। इनके जरिए हम उनके षडयंत्रों का पर्दाफाश कर सकते थे। अपने उस हितैषी को परामर्श के लिए धन्यवाद देने के बाद बड़े सधे अंदाज में सीजर ने कहा- मैं क्रोध के प्रति बेहद सतर्क रहता हूं। पर मेरी दृष्टि में उससे भी ज्यादा आवश्यक कदम यह है कि क्रोध के कारण को ही मिटा दिया जाए। आखिर क्रोध को जीवन में क्यों ज्यादा जगह दी जाए। उसके मित्र सीजर को आश्चर्य से देखने लगे।

२११) वैज्ञानिक - महान वैज्ञानिक सर जगदीश चंद्र बोस ने यह सिद्ध करके संसार को अचंभे में डाल दिया कि पेड़-पौधों में भी संवेदना होती है। वे भी मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों की तरह सुख-दुख, सर्दी-गर्मी, प्रकाश तथा शोर का अनुभव करते हैं। बोस के लिए उनका स्वाभिमान सबसे महत्वपूर्ण था। वह इस मामले में कोई समझौता नहीं करते थे। वह किसी भी स्थिति में अपने स्वाभिमान को ठेस नहीं लगने देते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी का अध्ययन करने के बाद वह कैंब्रिज युनिवर्सिटी चले गए। वहां से १८८४ में बैचलर की उपाधि लेने के बाद भारत लौटे। यहां भौतिकी के अध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हो गई। उस समय अंग्रेजों का शासन था। अंग्रेज भारतीयों को हेय दृष्टि से देखते थे। किसी भी भारतीय अध्यापक को यूरोपीय अध्यापक से कम वेतन दिया जाता था। चूंकि बोस अस्थायी थे सो यूरोपीय प्रोफेसर को जितना वेतन जा रहा था, उसका आधा बोस के लिए तय किया गया। इससे वह क्षुब्ध हो गए। उनका साफ कहना था, मैं वेतन लूंगा तो पूरा ही लूंगा नहीं तो लूंगा ही नहीं। और सचमुच उन्होंने तीन साल तक वेतन नहीं लिया। आर्थिक तंगी के कारण उन्हें कलकत्ता का अपना बड़ा व महंगा मकान छोड़कर शहर से दूर एक सस्ता सा मकान लेना पड़ा। काम पर कलकत्ता आने के लिए वे पत्नी के साथ नाव से हुगली नदी पार करते। पत्नी नाव लेकर वापस जाती फिर शाम को बोस को लेने के लिए नाव लेकर आती। इन सब कठिनाइयों के बावजूद वह अपने निश्चय से डिगे नहीं। अंतत: अंग्रेजों को हार माननी ही पड़ी। बोस को भी अंग्रेजों के बराबर वेतन मिलने लगा।

२१२) बेटे की सीख- यह उन दिनों की बात है जब न्यायाधीश के रूप में महादेव गोविंद रानाडे की ख्याति बढ़ती जा रही थी। कानूनी कार्यवाही से जुड़े कामों में वे किसी का भी हस्तक्षेप पसंद नहीं करते थे। एक दिन उनके एक रिश्तेदार घर आए और उनके पिताजी का एक मुकदमे के बारे में बताते हुए बोले, मेरा काम होना ही चाहिए। रिश्तेदार की बात सुनकर रानाडे चुप रहे। उन्हें चुप देखकर रानाडे चुप रहे। उन्हें चुप देखकर वह बोले, यदि अभी आप व्यस्त हैं तो मैं फिर कभी आकर आपको अपने सभी दस्तावेज दिखा दूंगा। इसके बाद वह चले गए। उनके जाने के बाद महादेव अपने पिता से बोले, पिताजी, यहां हमारे बहुत से रिश्तेदार तथा मित्र हैं। हमने उन्हें थोड़ी भी छूट दी तो आए दिन हर कोई अपने काम के लिए यहां आएगा और अपने मुकदमे में जीत के लिए मुझ पर किसी न किसी तरह का दबाव डालेगा। अगर हम एक बार इस दलदल में गिरे तो फिर उलझते चले जाएंगे। किसी भी मुकदमे से संबंधित व्यक्ति से घर पर न मिलने तथा उससे

व्यक्तिगत बातचीत न करने का मैंने संकल्प लिया है और न्याय में सत्य का पक्ष लेना ही मेरा परम कर्त्तव्य है। मेरे पिता होने के नाते आप मुझे ईमानदारी, कर्त्तव्य और जिम्मेदारी से काम करने की प्रेरणा दें न कि परिचितों के कामों को आंख मूंदकर करने की। यह सुनकर उनके पिताजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले, आज तक मैंने पिता द्वारा बेटों को शिक्षा देते तो बहुत देखा है लेकिन एक बेटे द्वारा पिता को जीवन की इतनी बड़ी सीख देते पहली बार देखा है। सचमुच मैं धन्य हूं तुम जैसा बेटा पाकर। इसके बाद उन्होंने कभी रानाडे के काम में हस्तक्षेप नहीं किया।

२१३) कवि और घड़ा- कवि कनकदास का जन्म विजयनगर साम्राज्य के बंकापुर के प्रांत में एक निर्धन परिवार में हुआ था। वह अपना अधिकांश समय अपने इष्टदेव के लिए पदों की रचना में बिताते थे। गरीबों की सेवा के लिए वह हमेशा तत्पर रहते थे। एक बार उन्हें सोने की मुद्राओं से भरा घड़ा मिला। उन्होंने यह बात जब सबको बताई तो घड़े के मालिक को खोजने के प्रयास किए गए पर उसका कोई मालिक सामने नहीं आया। आखिरकार घड़ा कनकदास को सौंप दिया गया। कनकदास उस धन को अपने ऊपर खर्च करना पाप समझते थे। काफी सोच-विचार करके उन्होंने उस धन में से आधा हिस्सा निर्धनों के कल्याण पर खर्च कर दिया तथा आधे से कुलदेवता आदि केशव का मंदिर बनवाया। इसके बाद भी थोड़ा बहुत धन बच गया। वह विचार करने लगे कि इस धन को कहां खर्च किया जाए तभी उनके परिवार के एक सदस्य ने कहा कि इसका कुछ अंश क्यों न अपने परिवार की आवश्यकताओं पर खर्च किया जाए। यह सुनकर वह अपने घर के सदस्यों से बोले, बिना परिश्रम के प्राप्त धन का अपनी सुख-सुविधाओं के लिए उपयोग करना धर्म के विरुद्ध है। मैं अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों को धर्माचरण का उपदेश देता हूं फिर स्वयं अधर्म का आचरण कैसे कर सकता हूं? मैं अपने परिवार की आवश्यकता के लिए परिश्रम से धन अर्जित कर सकता हूं। आप सभी जानते हैं कि मुझे काव्य से अत्यंत प्रेम है। मुझे अपनी क्षमता को निखारकर धन अर्जित करना चाहिए। उसी धन का उपयोग मेरे लिए सही है। यह सुन परिवार के सदस्य चुप हो गए। कनकदास ने बचे धन को अपंगों में बांट दिया।

२१४) सेवा की राह- इटली के असीसी प्रांत में एक बालक सीसो रहता था। उसके पिता पीत्रो एक धनी व्यापारी थे। सीसो का मन पढ़ाई में नहीं लगता था। वह अपने पिता के काम में हाथ बंटाता था। वह और बच्चों से अलग था। उसके भीतर दीन-दुखियों के प्रति करुणा भावना भरी थी। एक बार उसे रास्ते में कोढ़ से ग्रस्त भिखारी मिला। सीसो ने उसे रुपये दिए तो वह कातर भाव से उसे देखने लगा। सीसो को लगा कि कोढ़ी व्यक्ति को पैसों से ज्यादा सेवा और स्नेह की जरूरत है। वह उसकी सेवा में जुट गया। फिर उसे दूसरे बीमार लोग मिले। वह उनकी भी सेवा करने लगा। पिता ने सीसो को व्यापार में मन लगाने को कहा, लेकिन उसने साफ कह दिया कि पीड़ितों की सेवा ही उसका लक्ष्य है। सीसो कोढ़ियों-बीमारों की सेवा ही नहीं करता, उनमें जीने की उमंग भी पैदा करता। उसने एक बार एक चर्च बनाने का फैसला किया। इस काम में उसने गरीब-दुखियों को भी शामिल किया। सबने मिलकर चर्च के लिए पत्थर जमा किए। सीसो के काम की प्रसिद्धि धीरे-धीरे फैलने लगी। अनेक धनी-मानी लोग उसके साथ जुड़ गए। सीसो ने अपने इन्हीं मित्रों के साथ मिलकर एक संगठन द पुअर ब्रदर्स ऑफ असीसी बनाया जिसका मकसद सेवा और निर्माण कार्य करना था। समय के साथ इस संगठन के अनुयायी बढ़ते गए और कुछ समय बाद इसका नाम फ्रांसिस्कोस रख दिया गया। मात्र पैंतालीस की आयु में

सीसो ने कोढ़ियों की सेवा करते हुए प्राण त्याग दिए। लेकिन उसका यह संगठन आज भी दीन-दुखियों का सहारा बना हुआ है। सीसो को सेंट फ्रांसिस ऑफ असीसी के रूप में याद किया जाता है।

२१५) राष्ट्रपति का पत्र- अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट की एक विचित्र आदत थी। जब भी उनका निजी सचिव उनका कोई पत्र टाइप करके उनके पास लाता, वह उसमें अपनी कलम से कहीं न कहीं सुधार कर देते थे या कुछ जोड़ देते थे। इससे सचिव परेशान हो जाता था। वह समझ नहीं पाता था कि राष्ट्रपति महोदय सब कुछ पहले से तय करके या पूरी तरह मन में चीजें व्यवस्थित करके क्यों नहीं लिखते। एक बार आदतन उन्होंने पत्र में कुछ जोड़ा, सचिव उसे पुन: टाइप करके ले आया और रूजवेल्ट से हस्ताक्षर करवाने के लिए उनके समक्ष रखा। उसे यह देखकर बड़ी हैरानी हुई कि उन्होंने पत्र में फिर से कुछ नए शब्द और जोड़ दिए। राष्ट्रपति की रोज-रोज की इस आदत से परेशान होकर उसने आखिर एक दिन पूछ ही लिया- आपको जो कुछ भी लिखना होता है, वह सब आप डिक्टेशन देते समय ही क्यों नहीं लिखवा देते। टाइप किए हुए पत्र में हाथ से लिखा हुआ कुछ अलग से भद्दा नहीं लगता? इस पर रूजवेल्ट मुस्कराए फिर उन्होंने उसे प्यार से समझाया- मित्र। यह तुम्हारी भूल है, मेरे हाथ से लिख देने से उसकी शोभा और बढ़ जाती है। मेरे हाथ के कुछ शब्दों को देखकर व्यक्ति इसे मात्र औपचारिक पत्र नहीं समझता है, बल्कि उसके दिल में यह बात समा जाती है कि राष्ट्रपति ने यह शब्द खासतौर पर सस्नेह उसके लिए लिखे हैं। कलम से लिख देने से कोई भी पत्र हो, वह रस्मी या आधिकारिक भर नहीं रह जाता, बल्कि आत्मीय और सौहार्दपूर्ण हो जाता है। राष्ट्रपति का सचिव यह सुनकर दंग रह गया। उसके मन में रूजवेल्ट के प्रति श्रद्धा और बढ़ गई।

२१६) पापों का बोझ- एक चोर अक्सर एक साधु के पास आता और उससे ईश्वर से साक्षात्कार का उपाय पूछा करता था। लेकिन साधु टाल देता था। वह बार-बार यही कहता कि वह इसके बारे में फिर कभी बताएगा। लेकिन चोर पर इसका असर नहीं पड़ता था। वह रोज पहुंच जाता। एक दिन चोर का आग्रह बहुत बढ़ गया। वह जमकर बैठ गया। उसने कहा कि वह बगैर उपाय जाने वहां से जाएगा ही नहीं। साधु ने चोर को दूसरे दिन सुबह आने को कहा। चोर ठीक समय पर आ गया।

साधु ने कहा, तुम्हें सिर पर कुछ पत्थर रखकर पहाड़ पर चढ़ना होगा। वहां पहुंचने पर ही ईश्वर के दर्शन की व्यवस्था की जाएगी। चोर के सिर पर पांच पत्थर लाद दिए गए और साधु ने उसे अपने पीछे-पीछे चले आने को कहा। इतना भार लेकर वह कुछ दूर ही चला तो उस बोझ से उसकी गर्दन दुखने लगी। उसने अपना कष्ट कहा तो साधु ने एक पत्थर फिंकवा दिया। थोड़ी देर चलने पर शेष भार भी कठिन प्रतीत हुआ तो चोर की प्रार्थना पर साधु ने दूसरा पत्थर भी फिंकवा दिया। यही क्रम आगे भी चला। ज्यों-ज्यों चढ़ाई बढ़ी, थोड़े पत्थरों को ले चलना भी मुश्किल हो रहा था। चोर बार-बार अपनी थकान व्यक्त कर रहा था। अंत में सब पत्थर फेंक दिए और चोर सुगमतापूर्वक पर्वत पर चढ़ता हुआ ऊंचे शिखर पर जा पहुंचा।

साधु ने कहा, जब तक तुम्हारे सिर पर पत्थरों का बोझ रहा, तब तक पर्वत के ऊंचे शिखर पर तुम्हारा चढ़ सकना संभव नहीं हो सका। पर जैसे ही तुमने पत्थर फेंके वैसे ही चढ़ाई सरल हो गई। इसी तरह पापों का बोझ सिर पर लादकर कोई मनुष्य ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। चोर ने साधु का आशय समझ लिया। उसने कहा, आप ठीक कह रहे हैं। मैं ईश्वर को पाना तो चाहता था पर अपने बुरे कर्मों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। उस दिन से चोर पूरी तरह बदल गया।

२१७) क्या कभी संत राबिया की राह पर चलेगा गृहयुद्ध में जलता इराक- इराक में कुछ समय से एक ही धर्म की दो शाखाओं में परस्पर जानलेवा अभियान चल रहा है। वहां की सरकार भी अलगाव की नीति अपना रही है। ऐसे में बार-बार ध्यान आता है उसी देश की संत राबिया का। वहां आठवीं शताब्दी में बसरी के पास एक गांव में इस संत ने जन्म लिया था। इस्लाम धर्म का उदार रूप प्रस्तुत करने का श्रेय इस संत को है। उसकी कविताओं में मुहब्बत का पैगाम है, सर्वधर्म समभाव को बढ़ावा देने का लक्ष्य है। मेरी आत्मा में/एक मंदिर, एक सराय, एक मस्जिद, एक ही गिरजा जहां मैं सर झुकाती हूं।

राबिया का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ। राबिया शब्द का अर्थ अरबी में चौथा या बसंत या जीवन साथी कहा जाता है। पिता ने चौथी बेटी को अल्लाह का प्रसाद माना। वह बड़ी होकर गरीबों की साथी बनी। अल्लाह के प्रेम का वसंत बनकर सब के दिलों पर छा गई। ग्यारह साल तक राबिया पिता के साथ नमाज पर बैठा करती। छोटी उम्र में ही पिता का साया सिर से उठ गया। पिता की मृत्यु के बाद जब राबिया की मां बसरा में आ गई तो फिर आपदा का सामना करना पड़ा। देश में भीषण अकाल पड़ गया। लोग भोजन की तलाश में ठोकरें खाने लगे।

ऐसे ही एक कारवां में राबिया परिवार से बिछड़ गई। भटकते हुए वह डाकुओं के चंगुल में फंस गई। उन्होंने उसे बाजार में बेच देने के लिए तहखाने में डाल दिया। भूखी प्यासी वह हर समय नजाम पढ़ती रहती। डाकू उससे चिढ़ जाते। एक दिन बगदाद के बाजार में विवस्त्रा राबिया को एक बूढ़ा खरीद कर ले गया। वह उसे लकड़ी लाने के लिए जंगल भेजता। वह रातभर नमाज पर बैठती। एक रात मालिक उसे देखने आया। नमाज में मगन राबिया के आसपास अद्भुत प्रकाश का घेरा था।

मालिक इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसे आजाद कर दिया। राबिया बसरा लौट गई। खंडहर हो चुके घर में ही इबादत करने लगी। उसने गुलामों को आजाद करवा के इस्लाम को घेरे में ले लिया। औरतों को बुलाकर शिक्षा देने लगी। अल्लाह से सीधे मुहब्बत का उपदेश उसकी भक्ति का मूल है। वह कहती- अल्लाह और बंदे में सीधा संपर्क होना चाहिए। प्रेम में दिल से दिल के बीच और कुछ नहीं/वाणी तो लालसा से जनमती है/स्वाद जो लेता है- वही जानता है/वर्णन कहनेवाला झूठा है।

भक्ति का उद्देश्य भक्ति ही हो। न दोजख का डर न बहिश्त का लालच। वह प्रार्थना करती कि अल्लाह अगर मैं नरक के डर से भक्ति करती हूं तो मुझे नरक ही देना। स्वर्ग की आशा से करूं तो उससे वंचित कर देना। यदि मैं निस्वार्थ प्रेम करती हूं तो अपने नूर से दूर मत करना।

२१८) जैसा हम बनना चाहते हैं, वैसे लोगों की संगत में रहें - महान चीनी विचारक मेन्सियस की मां एक समझदार महिला थी। अपने जीवन काल में अपने बेटे के कारण तीन बार उसने अपना निवास बदला। पहले वह एक कब्रिस्तान के पास रहती थी। एक दिन उसे लगा कि उसका बेटा धीरे-धीरे गहरे दुख में डूबता जा रहा है। दरअसल, कब्रिस्तान में आनेवाले लोग दुख से रोते-बिलखते रहते थे। वह बालक उन्हें रोज ही देखता था। इसलिए वह उन्हीं की तरह बर्ताव करने लगा था।

मेन्सियस की मां को चिंता हुई और उसने वहां से दूसरी जगह जाना तय कर लिया। अब वह चहल-पहल भरे एक बाजार में रहने लगी। कुछ समय बाद उसने देखा कि उसका बेटा मेन्सियस एक दुकानदार की तरह बर्ताव करने लगा है।

वह घर का सामान सजाकर एक दुकानदार और उनके ग्राहकों के बीच जैसी बातचीत सुनी थी, वैसी ही बातचीत वह करने लगा। उसकी मां अपने बेटे का ऐसा व्यवहार देखकर चिंतित हो गई।

उसने वहां से भी निकलना तय कर लिया। इस बार उसने एक विद्यालय के पास मकान लिया। वहां मेन्सियस मेधावी विद्यार्थियों का अनुसरण करने लगा। वह अनेक विषयों की जानकारी पाने की कोशिश करने लगा और अनेक विषयों पर गहन अध्ययन करने लगा। मां यह देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसे लगा कि उसके बेटे पर माहौल का सही प्रभाव पड़ा था। इस वातावरण में बड़ा होकर मेन्सियस चीन का एक बहुत बड़ा विद्वान बना। यह कहानी हमारी जीवन पर हमारी संगत का प्रभाव भी दिखाती है।

कहा जाता है कि मनुष्य अपनी संगत से जाना जाता है। यदि हम धनवान लोगों के साथ समय व्यतीत करते हैं तो अधिकतर समय धन के विषय में ही सोचते रहेंगे। यदि हम नशीले पदार्थों का सेवन करनेवालों की संगत में रहेंगे तो हममें वही दुर्गुण पनपने की संभावना होगी।

यदि हम जुआ खेलनेवालों की संगत में रहेंगे तो आसानी से जुए की लत से प्रभावित हो जाएंगे। और यदि हम झगड़ा करनेवालों के संपर्क में रहेंगे तो हमारा स्वभाव भी बात-बात पर लोगों से झगड़ा या बहसबाजी करनेवाला बन जाएगा।

यदि हम कलाकार बनना चाहते हैं तो हमें कलाकारों की संगत में रहना चाहिए। हम विद्वान बनना चाहते हैं तो हमें उनके साथ समय बिताना चाहिए जो पढ़ने-लिखने में लगे रहते हैं। यदि हम सद्गुणों से भरपूर होना चाहते हैं तो उनकी संगत में रहें जो अच्छाई से भरपूर हैं।

जो लोग हमें अपने लक्ष्य से दूर ले जाएं, उनके साथ समय बिताना समय व्यर्थ है। समय रहते तय कर लेना चाहिए कि हम जीवन में क्या बनना चाहते हैं।

२१९) मनुष्य की जड़ें- चीन में एक लड़का अपनी दादी के साथ रहता था। दादी ने एक बगीचा लगा रखा था। एक बार दादी बीमार पड़ गईं। चलने-फिरने में भी असमर्थ हो गईं। उन्होंने लड़के को बुलाकर कहा कि वह बगीचे के पेड़-पौधों का ध्यान रखे। लड़के ने दादी से वादा किया कि वह बगीचे का पूरा ध्यान रखेगा। कुछ समय बाद जब दादी स्वस्थ हो गईं, तो वह बगीचा देखने पहुंची। उन्होंने देखा कि कुछ पौधे सूखकर मर गए हैं और बहुत से बुरी स्थिति में हैं। उन्होंने लड़के से प्यार भरी नाराजगी जताते हुए कहा- तुमने अपना वादा पूरा नहीं किया। बगीचे की बिल्कुल देखभाल नहीं की। लड़के ने रोते हुए कहा- मैं तो रोज ही पत्तियों को पोंछा करता था और पेड़ों की जड़ों में रोटी के टुकड़े डाला करता था, फिर भी वे सूख गए। दादी ने कहा- पत्तियों को पोंछने और पेड़ों की जड़ों में रोटी के टुकड़े डालने से पेड़ नहीं बढ़ते। तुम्हें पेड़ की जड़ों में पानी डालना चाहिए था। पेड़ों में इतनी शक्ति होती है कि वे मिट्टी से भोजन प्राप्त कर लेते हैं और बढ़ते रहते हैं। लड़का सोच में पड़ गया। फिर उसने पूछा- दादी, मनुष्य की जड़ें कहां होती हैं? दादी ने उत्तर दिया- हमारे मन के साहस और भुजाओं के बल में हमारी जड़ें होती हैं। यदि इनको रोजाना पोषण नहीं मिलेगा तो हम ताकतवर नहीं बन सकते। लड़के ने फैसला किया कि वह अपनी जड़ें मजबूत करेगा। अपने साथ अपने साथियों को भी शक्तिशाली बनाएगा। यह लड़का आगे चलकर माओ त्से तुंग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने न सिर्फ चीन को बल्कि पूरी दुनिया को एक नई

व्यवस्था का सपना दिया। दुनिया उन्हें माओ के नाम से याद करती है।

२२०) वीणा का सम्मान- मैसूर के श्री शेषण्णा वीणा बजाने में माहिर थे। मैसूर के महाराजा उनका बहुत सम्मान करते थे। हालांकि यश और सम्मान पाने के बावजूद शेषण्णा के भीतर अहंकार जरा भी नहीं आया था। वह अत्यंत विनम्र स्वभाव के थे। एक बार बड़ौदा (वडोदरा) के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने शेषण्णा को अपने यहां आमंत्रित किया। शेषण्णा वहां गए और अनेक सम्मानित व्यक्तियों के बीच उन्होंने वीणावादन किया। उनकी वीणा सुनकर वहां उपस्थित सभी श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए। कार्यक्रम समाप्त होने पर गायकवाड़ चिंता में पड़ गए कि पुरस्कार में श्री शेषण्णा को क्या दें? मैसूर के महाराजा ने तो उन्हें पहले ही बहुत कुछ दिया हुआ था। काफी सोच-विचारकर उन्होंने शेषण्णा को एक सुंदर जड़ाऊ पालकी भेंट की और कहा कि वे अगले दिन उनके दरबार में पालकी में बैठकर आएं। श्री शेषण्णा संकोच में पड़ गए। उन्हें धन-संपत्ति और दूसरे तामझाम से कोई खास मतलब नहीं था। बहुत सोच-विचार के बाद दूसरे दिन उन्होंने अपनी वीणा को पालकी में रख दिया और स्वयं पैदल चलकर दरबार में पहुंचे। उन्हें इस तरह आते देखकर महाराजा गायकवाड़ बोले, यह क्या। मैंने तो आपको पालकी में बैठकर आने के लिए कहा था। इस पर श्री शेषण्णा बोले, महाराज, आपने मुझे जो सम्मान दिया वह इस वीणा के कारण दिया। इसी के कारण लोग भी मुझे सम्मान देते हैं। वीणा मुझसे श्रेष्ठ है, इसलिए पालकी में बैठने का सम्मान भी वीणा को ही मिलना चाहिए। महाराजा श्री शेषण्णा का कला के प्रति सम्मान देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

२२१) हम रोज गड्ढों में गिर रहे हैं- एक अमावस की रात्रि में एक अंधा मित्र अपने किसी मित्र के घर मेहमान था। आधी रात ही उसे वापस विदा होना था। जैसे ही वह घर से विदा होने लगा उसके मित्र ने कहा कि साथ में लालटेन लेते जायें तो अच्छा होगा। रात बहुत अंधेरी है और आपके पास आंखें भी नहीं हैं। उस अंधे आदमी ने हंसकर कहा कि मेरे हाथ में प्रकाश का क्या अर्थ हो सकता है?

मैं अंधा हूं, मुझे रात और दिन बराबर हैं। मुझे दिन का सूरज भी वैसा है, रात की अमावस भी वैसी है। मेरे हाथ में प्रकाश का कोई अर्थ नहीं है लेकिन मित्र का परिवार मानने को राजी न हुआ और उन्होंने कहा कि तुम्हें तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन तुम्हारे हाथ में प्रकाश देखकर दूसरे लोग अंधेरे में तुमसे टकराने से बच जायेंगे इसलिए प्रकाश लेते जाओ।

यह तर्क ठीक मालूम हुआ और वह अंधा आदमी हाथ में लालटेन लेकर विदा हुआ लेकिन २०० कदम भी नहीं जा पाया कि कोई उससे टकरा गया। वह बहुत हैरान हुआ और हंसने लगा। उसने कहा कि मैं समझता था कि वह तर्क गलत है, आखिर वह बात ठीक ही हो गई। दूसरी तरफ जो आदमी था उससे कहा कि मेरे भाई, क्या तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता कि मेरे हाथ में लालटेन है? तुम भी क्या अंधे हो? उस टकरानेवाले आदमी ने कहा- मैं तो अंधा नहीं हूं लेकिन आपके हाथ की लालटेन बुझ गई है।

अंधे आदमी के हाथ में लालटेन हो तो यह पता चलना कठिन है कि वह कब बुझ गई है लेकिन अंधे आदमी को भी एक बात पता चल जाती है कि कोई उससे टकरा गया है। मनुष्यता इससे भी ज्यादा अंधी मालूम पड़ती है। हम रोज टकराते हैं लेकिन हमें यह पता नहीं चलता कि हमारे हाथ का प्रकाश बुझ गया होगा। अंधे हम हैं, यह तो मनुष्य जाति का पूरा

इतिहास कहेगा कि हमारे पास जैसे आंखें नहीं हैं क्योंकि हम उन्हीं गड्ढों में रोज गिर जाते हैं जिनमें कल भी गिरे थे और परसों भी, और पीछे भी, और पीछे भी।

२२२) नींव का पत्थर- प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री अपनी प्रशंसा और प्रचार प्रसार से दूरी बनाए रखते थे। वह अपनी सादगी के लिए जाने जाते थे। देश का प्रधानमंत्री होने के बावजूद अपना नाम अखबारों में छपवाने में भी उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रहती थी। लोग उनकी चर्चा करें यह उन्हें कतई पसंद नहीं था। एक बार उनके एक मित्र ने उनसे पूछ ही लिया- शास्त्रीजी, आप अपने प्रचार, प्रशंसा और स्वागत कार्यक्रमों से दूर रहते हैं। ऐसा क्यों? शास्त्रीजी ने जवाब दिया, मुझे इसकी जरा भी चाह नहीं है। इस पर मित्र बोला, आप राजनीति में हैं और देश के प्रधानमंत्री हैं। फिर आपके कार्य और उपलब्धियां ऐसी हैं कि लोग आपको सम्मान देना चाहते हैं। फिर आप मना क्यों करते हैं? शास्त्रीजी बोले, मेरे इनकार के पीछे भी एक कारण है। लाला लाजपतराय ने एक बार मुझसे कहा था- लाल बहादुर, ताजमहल में दो प्रकार का पत्थर लगाया गया है। एक तो सफेद संगमरमर का पत्थर है जो ताजमहल की बाहरी सुंदरता को बढ़ाता नजर आता है और सबकी प्रशंसा का पात्र है। दूसरा वह साधारण-सा पत्थर है जो नींव में लगाया गया है और अंधेरे में पड़ा रहता है जिसको कोई देख नहीं पाता। यही वह पत्थर है जो इस भवन का बोझ संभाले हुए है। ताजमहल की सुंदरता इसी नींव के पत्थर ने संभाल रखी है। लालबहादुर हमेशा याद रखना, तुम्हें भी ऐसी ही नींव का पत्थर बनना है। जिस पर समाज और देश खड़ा हो सके। शास्त्रीजी आगे बोले, लाला लाजपत राय के ये शब्द मुझे हमेशा याद रहते हैं। इसलिए मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नींव का पत्थर बनकर ही करना चाहता हूं।

२२३) ईश्वर का रूप- एक बार फकीर जुन्नैद कई लोगों के साथ बैठकर बातचीत कर रहे थे। एक व्यक्ति ने उनसे पूछा, बाबा, क्या ईश्वर सचमुच है? जुन्नैद बोले, हां भाई, ईश्वर सचमुच है और वह हर जगह मौजूद है। इस पर वह व्यक्ति बोला, यदि ईश्वर हर जगह मौजूद है तो वह हमें दिखाई क्यों नहीं देता? फकीर ने कहा, ईश्वर कोई वस्तु तो है नहीं, वह तो हमें मार्गदर्शन देनेवाला, हमारी मदद करनेवाला एक फरिश्ता है और उसे हम कई बार नेक व दयालु इंसानों के रूप में देख भी पाते हैं। इस पर भी वह व्यक्ति संतुष्ट नहीं हुआ और बोला, ये बातें तो हम सदियों से सुनते आ रहे हैं। लेकिन कभी तो ईश्वर की झलक मिलती। यह कहकर जैसे ही वह वहां से जाने लगा वैसे ही फकीर जुन्नैद ने आवाज दी, जरा रुको। उसके रुकते ही उन्होंने एक नुकीला पत्थर अपने पैर में मार लिया। पत्थर लगते ही वहां से खून की धारा बह निकली। वह व्यक्ति घबराकर बोला, बाबा, आपने यह क्या किया? आपको तो बहुत तकलीफ हो रही होगी। इस पर जुन्नैद बोले, देखो बेटा, जैसे मेरे पैर में खून की धारा बहते देख तुमने महसूस किया कि मुझे पीड़ा हो रही होगी, वैसे ही हम ईश्वर को भी मन से महसूस करते हैं। पीड़ा भी तो महसूस ही की जाती है। क्या वास्तव में पीड़ा का कोई रूप है? नहीं न। वह तो प्रत्येक व्यक्ति के अंदर चोट लगने पर अलग-अलग तरह से उभरती है। उसी तरह ईश्वर भी लोगों के भीतर अलग-अलग रूप में महसूस किया जाता है।

२२४) स्वप्न का संदेश- एक संत की साधना और भक्तिमय जीवन की बड़ी ख्याति थी। एक रात उन्होंने स्वप्न देखा कि उनकी मृत्यु हो चुकी है और वह एक देवदूत के सामने खड़े हैं। देवदूत सब मृत लोगों से उनके कर्मों का ब्योरा मांग

रहा था। काफी देर बाद जब उनकी बारी आई, तो देवदूत ने उनसे पूछा, आप बताएं, आपने जीवन में क्या अच्छे कार्य किए जिनका आपको पुण्य मिला हो? संत सोचने लगे- मेरा तो सारा जीवन ही पुण्य कार्यों में व्यतीत हुआ है, मैं कौन सा एक काम बताऊं। वह बोले, मैं पांच बार तीर्थयात्रा कर चुका हूं। देवदूत बोला, आपने तीर्थयात्राएं तो कीं, लेकिन आप अपने इस कार्य की चर्चा हर व्यक्ति से करते रहे। इसके कारण आपके सारे पुण्य नष्ट हो गए। संत को भारी ग्लानि हुई। फिर कुछ हिम्मत कर उन्होंने कहा, मैं प्रतिदिन भगवान का ध्यान और उनके नाम का स्मरण करता था। देवदूत ने कहा, जब आप ध्यान करते और कोई दूसरा व्यक्ति वहां आता, तो आप कुछ अधिक समय तक जपध्यान में बैठते थे। चलिए कोई और पुण्य कार्य बताइए। संत को लगा कि उनकी अब तक की सारी तपस्या बेकार चली गई। उनकी आंखों से पश्चाताप के आंसू बह निकले। इतने में उनकी नींद खुल गई। वह स्वप्न का संदेश समझ गए। वह समझ गए कि उन्हें अपनी साधना पर गर्व हो गया था। वे अपने त्यागमय जीवन के बदले दूसरों से कुछ अपेक्षाएं रखने लगे थे। उस दिन से उन्होंने स्वयं को बदलने का फैसला किया और सहज होकर साधना करने लगे।

२२५) बेईमानी से आर्थिक लाभ भले ही हो जाए पर सुकून नहीं मिलता- एक आदमी रोज अलसुबह मंदिर में जाता और अत्यंत श्रद्धाभाव से दीपक जलाकर रख देता। मंदिर में उस समय आनेवाले लोग उसे देखकर बड़े ही आदत-भाव से भर उठते। एक दिन उससे एक युवक ने पूछा, भाईसाहब। आपकी ईश भक्ति सच में प्रणम्य है। आपके जैसा श्रद्धाभाव मैं स्वयं में भी पैदा करना चाहता हूं। उसकी बात सुनकर आदमी हंसकर बोला, भाई। सवाल श्रद्धा का नहीं है। सत्य तो यह है कि एक बार मैं एक मुकदमे में फंस गया। मैंने उस समय भगवान से प्रार्थना की कि यदि मैं मुकदमा जीत गया तो रोज मंदिर में आकर दीपक जलाऊंगा। भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली और मैं जीत गया। तभी से मैं अपने वचन का पालन कर रहा हूं। युवक ने मुकदमे के विषय में जानना चाहा तो वह बोला, मैं चाहता था कि मेरे पड़ोसी की उपजाऊ जमीन मेरी हो जाए। मैंने अधिकारियों को रिश्वत देकर वह जमीन अपने नाम पर करा ली। पड़ोसी ने मुझ पर मुकदमा कर दिया, किंतु भगवान की कृपा से मैंने उसे हरा दिया, यह सुनकर युवकके मन में उसके प्रति सम्मान जाता रहा और वह बोला, भगवान ने कैसे तुम्हारे अन्यायमें तुम्हारा साथ दिया मैं नहीं जानता, किंतु इस धोखाधड़ी का फल तुम्हें जरूर मिलेगा। पड़ोसी का श्राप तुम्हें लगेगा। वह आदमी व्यंग्य से हंसकर अपनी राह चला गया। युवक ने समझ लिया कि बाहर दीपक जलानेवाले इस आदमी के भीतर का दीपक बुझा हुआ है।

२२६) फकीर की रोटियां - ईरानी शासक शाह जूसा इतना सरल और परोपकारी था कि संत और फकीर भी उसका खूब सम्मान करते थे। उसकी पुत्री अत्यंत सुंदर और सुशिक्षित थी। अनेक राजाओं ने उससे विवाह की इच्छा जताई थी, पर शाह ने उन सबका प्रस्ताव यह कहकर ठुकरा दिया, मुझे पुत्री के लिए राजा नहीं कोई त्यागी पुरुष चाहिए। संयोग से कुछ समय बाद ही शाह को एक युवा फकीर मिला। शाह उससे बहुत प्रभावित हुआ और उसने उससे पूछा कि क्या वह शादी करना चाहता है? फकीर ने हंस कर उत्तर दिया, करना तो चाहता हूं पर मुझ फकीर से कौन अपनी लड़की की शादी करेगा? शाह बोला, मैं आपको अपना दामाद बनाऊंगा। फकीर ने कहा, कहां आप राजा और दूसरी तरफ मैं, जिसके पास आज केवल तीन पैसे हैं। शाह ने कहा, जाओ, इन तीन पैसों से शगुन की कुछ चीजें ले आओ। बड़ी सादगी के साथ शाह

ने अपनी पुत्री का विवाह उस फकीर के साथ कर दिया। शादी करके फकीर शाह की लड़की को अपनी झोंपड़ी में ले आया। फिर उसने पूछा, तुम मेरे साथ इस कुटिया में कैसे रहोगी? लड़की ने कहा, मेरी खुद ही मर्जी थी सादा जीवन बिताने की। लेकिन आपकी झोंपड़ी में रोटियों का ढेर देखकर मन में ग्लानि सी हो रही है। इतनी रोटियां किसलिए? क्या आपको कल पर भरोसा नहीं है? फकीर ने उत्तर दिया, सोचा कुछ रोटियां बचाकर रख लूं। कल काम आएंगी। लड़की बोली, आप संग्रह की आदत छोड़ दें तो मैं आपकी झोपड़ी को भी महल समझकर रह लूंगी। फकीर ने संग्रह न करने का प्रण किया और दोनों सादगी भरा चिंतारहित जीवन बिताने लगे।

२२७) लेखक की जवाबदेही - महान कवि और नाटककार भारतेन्दु हरिश्चंद्र को खड़ी बोली का जनक माना जाता है। हिंदी के विकास में उनका अमूल्य योगदान है। एक बार एक महाजन ने उनके विरुद्ध तीन हजार रुपये का दावा कर दिया। उसका कहना था कि भारतेंदु जी ने उससे एक नाव खरीदी थी और कुछ रुपये उधार लिए थे, जिन्हें वे अभी तक लौटा न पाए थे। न्यायाधीश ने भारतेंदु जी को अकेले में बुलाकर पूछा कि नाव का वास्तविक मूल्य क्या था और उन्होंने कितने रुपये उधार लिए थे। न्यायाधीश को जवाब देते हुए भारतेंदु जी बोले, दावे में लिखा मूल्य सही है और नकद राशि भी सही हैं। वहां उपस्थित लोगों ने उन्हें अकेले में समझाया कि, कुछ दे-दिलाकर इस मामले से छूटकारा पा लो। सजा मिलने पर अत्यंत परेशानी होगी। वे सब की सुनते रहे। भारतेंदु जी से जब दोबारा पूछा गया कि क्या उन्होंने वास्तव में उनसे नाव खरीदी थी और दावे में लिखी गई रकम ली थी तो वे अपनी बात दोहराते हुए बोले, महाजन ने सही दावा किया है। तभी एक व्यक्ति बोला, भारतेंदु जी, आप एक जाने-माने लेखक हैं। ऐसे में आप यदि दावे से मुकर भी जाते तो महाजन आपका कुछ नहीं कर सकता था। भारतेंदु जी बोले, आपने ही कहा कि मैं एक जाना-माना लेखक हूं। ऐसे में तो मेरी सत्य पर चलने की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। यदि मैं असत्य की डगर पर चलूंगा तो कल को लोग कहेंगे कि लेखक की कथनी और करनी में अंतर था। यह कैसा लेखक हुआ? महाजन भारतेंदु जी की सत्यवादिता से अत्यंत प्रभावित हुआ और उसने अपना मुकदमा वापस ले लिया।

२२८) बहुरूपिये की जिद - एक बहुरूपिया राजा भोज के दरबार में पहुंचा और उसने पांच मुद्राओं की दक्षिणा मांगी। भोज ने कहा, कलाकार को कला के प्रदर्शन पर पुरस्कार दिया जा सकता है लेकिन दक्षिणा दान नहीं। बहुरूपिया स्वांग दिखाने के लिए तीन दिन का समय मांग चला गया। अगले दिन राजधानी के बाहर एक पहाड़ी पर एक जटाधारी तपस्वी को समाधि रूप में देख चरवाहों का समूह इकट्ठा हो गया। किसी ने पूछा, महाराज, इस भूमि को पवित्र करने आप कहां से पधारे? लेकिन तपस्वी ने न तो आंखें खोली और न अपने शरीर को रंचमात्र हिलाया। चरवाहों से उस तपस्वी का वर्णन सुन लोगों का जमघट उस पहाड़ी पर लग गया। दूसरे दिन भोज के प्रधानमंत्री दर्शनार्थ पहुंचे और तपस्वी के चरणों में रत्नों की थैली रख आशीर्वाद देने की प्रार्थना की, मगर बाबा पर कोई असर नहीं पड़ा। तीसरे दिन भोज खुद तपस्वी के पास जा पहुंचे। उनके चरणों में अशर्फियां, फल-फूलों के साथ चढ़ाकर आशीर्वाद मांगते रह गए, लेकिन तपस्वी के मौन के समक्ष उन्हें भी निराश होकर वापस लौटना पड़ा। चौथे दिन बहुरूपिये ने दरबार में उपस्थित होकर बताया कि तपस्वी का स्वांग उसी ने किया था। अब उसे पुरस्कार के रूप में पांच मुद्राएं दी जाएं। राजा भोज ने

कहा- मूर्ख। मैंने तेरे चरणों में अशर्फियां रखकर स्वीकार करने की प्रार्थना की, तब तो तूने आंख तक नहीं खोली और अब मात्र पांच मुद्राएं मांग रहा है। बहुरूपिया बोला, महाराज। तब सारे वैभव तुच्छ थे। मुझे तपस्वी वेश की लाज रखनी थी। लेकिन अब अपनी कला और परिश्रम का पुरस्कार चाहता हूं।

२२९) उस बच्चे की तरह- प्रसिद्ध वैज्ञानिक माइकल फैराडे ने विद्युत के रूप में शक्ति का एक नया स्रोत खोजा। एक बार उन्होंने इससे संबंधित अपने प्रयोग को सार्वजनिक तौर पर प्रदर्शित करने का फैसला किया। इसे देखने के लिए देश-विदेश से बड़ी संख्या में लोग आए। दर्शकों की भीड़ में अपनी गोद में बच्चा लिए एक महिला भी शामिल थी। फैराडे ने मेज के सामने खड़े होकर अपना प्रयोग प्रदर्शित किया। उन्होंने तांबे के तारों की एक कुंडली के सिरों को एक गैलवेनोमीटर से जोड़ दिया। फिर उन्होंने एक छड़ चुंबक को तेजी से इस कुंडली में प्रविष्ट कराया। चुंबक के कुंडली में प्रवेश करते ही झट सो गैलवेनोमीटर की सुई हिली। जब उन्होंने चुंबक को कुंडली से बाहर निकाला तो सुई विपरीत दिशा में हिली। यह दिखाने के बाद फैराडे ने दर्शकों को बताया कि इस प्रकार हम बिजली उत्पन्न कर सकते हैं। प्रयोग समाप्त होने के बाद वह महिला गुस्से में फैराडे के पास पहुंची और बोली- यह भी कोई प्रयोग है। क्या उपयोग ई इसका? क्या तुमने लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए बुलाया था। यह सुनकर फैराडे बड़ी विनम्रता के साथ बोले- मैडम। जिस प्रकार आपका बच्चा अभी छोटा है, ऐसे ही मेरा प्रयोग भी आज एक छोटे बच्चे के रूप में है। आज आपके बच्चे की कोई उपयोगिता नहीं है। हो सकता है कल को बड़ा होकर यह एक महान इंसान बने। ऐसे ही संभव है कि आगे चलकर मेरा यह प्रयोग भी महत्वपूर्ण सिद्ध हो जाए। सुनकर महिला चुप हो गई और यह बात तो दुनिया भलीभांति जानती है कि आगे चलकर फैराडे का यह प्रयोग बिजली के उत्पादन में कितना महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

२३०) अहंकार धीरे-धीरे बुद्धि को नष्ट कर देता है - न्यायप्रिय राजा हरि सिंह बेहद बुद्धिमान थे। वह प्रजा के हर सुख-दुख की चिंता अपने परिवार की तरह करते थे। लेकिन कुछ दिनों से उन्हें स्वयं के कार्य से असंतुष्टि हो रही थी। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि वह अभिमान से दूर रहे पर वह इस समस्या का हल निकालने में असमर्थ थे। एक दिन राजा जब राजगुरु प्रखरबुद्धि के पास गए तो राजगुरु राजा का चेहरा देखते ही उसके मन में हो रही इस परेशानी को समझ गए। उन्होंने कहा, राजन यदि तुम मेरी तीन बातों को हर समय याद रखोगे तो जिंदगी में कभी भी असफल नहीं हो सकते।

प्रखरबुद्धि बोले, पहली बात, रात को मजबूत किले में रहना। दूसरी बात, स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करना और तीसरी, सदा मुलायम बिस्तर पर सोना। गुरु की अजीब बातें सुनकर राजा बोले, गुरु जी, इन बातों को अपनाकर तो मेरे अंदर अभिमान और भी अधिक उत्पन्न होगा। इस पर प्रखरबुद्धि मुस्कुरा कर बोले, तुम मेरी बातों का अर्थ नहीं समझे। मैं तुम्हें समझाता हूं। पहली बात सदा अपने गुरु के साथ रहकर चरित्रवान बने रहना। कभी बुरी आदत के आदी मत होना। दूसरी बात, कभी पेट भरकर मत खाना जो भी मिले उसे प्रेमपूर्वक खाना। खूब स्वादिष्ट लगेगा। और तीसरी बात, कम से कम सोना। अधिक समय तक जागकर प्रजा की रक्षा करना। जब नींद आने लगे तो राजसी बिस्तर का ध्यान छोड़कर घास, पत्थर, मिट्टी जहां भी जगह मिले वहीं गहरी नींद सो जाना। ऐसे में तुम्हें हर जगह लगेगा कि मुलायम बिस्तर पर हो। बेटा, यदि तुम त्यागी बनकर अपनी प्रजा का ध्यान रखोगे तो कभी भी अभिमान, धन व राजपाट का मोह तुम्हें नहीं छू पाएगा।

अहंकार बुद्धि को धीरे-धीरे नष्ट कर देता है। राजा को भी अहंकार होने लगा था। ऐसे में राजा ने तो राजगुरु से परामर्श कर अपनी परेशानी का हल निकाल लिया पर अगर आप इस परेशानी से जूझ रहे हों तो जल्द ही अपने मन के रावण रूपी अहंकार को निकाल कर राम नाम का जप कर जिंदगी को खुशहाल बनाएं ताकि आप हमेशा खुशी के पलों को महसूस कर सकें।

२३१) संगीत की परीक्षा- बुंदेलखंड के बांदा जनपद में पैदा हुए प्रसिद्ध पखावज वादक कुदऊ सिंह दतिया राज्य में रहकर संगीत की साधना किया करते थे। किसी बात पर वहां के दीवान से नाराज होकर वह समरथ राज्य चले गए। नए राज्य में कुदऊ सिंह का स्वागत किया गया। हालांकि कुछ लोगों को उनका आना रास नहीं आया। वे किसी न किसी बात को लेकर उनकी शिकायत राजा चतुर सिंह से करते थे। एक दिन उन्होंने उस संगीत साधक की परीक्षा के लिए राजा को तैयार कर लिया। तय हुआ कि दशहरा समारोह के दौरान कुदऊ सिंह परीक्षा देंगे। एक मदमस्त हाथी को खुला छोड़ दिया गया। हाथी इधर-उधर दौड़ता हुआ चिल्लाने लगा। लोगों में आतंक फैल गया। कुछ क्षणों के लिए समारोह स्थल पर अफरातफरी मच गई। लोग अनहोनी की आशंका से भयभीत हो गए, तभी कुदऊ सिंह ने एक ऊंचे टीले पर बैठकर पखावज की ताल ठोंकना शुरू किया। जैसे ही उन्होंने गजपरण ताल बजाया और यह ध्वनि मदमस्त हाथी के कानों तक पहुंची, वह क्रोधित हाथी शांत हो गया और झूमता हुआ उनकी ओर आने लगा। पखावज की ध्वनि से मोहित होकर वह एक आज्ञाकारी शिष्य की तरह अपना मस्तक पखावज और कुदऊ सिंह के पैरों के आगे झुका कर समर्पण का भाव प्रकट करने लगा। यह दृश्य देखकर राजा चतुर सिंह सहित सभी दरबारी आश्चर्यचकित रह गए। राजा ने समारोह में ही कुदऊ सिंह को तिलक लगाकर उनके पखावज का पूजन करने के साथ एक हजार स्वर्ण मुद्राएं एवं एक हाथी उपहार में दिया। यह देखकर कुदऊ सिंह से जलनेवाले लोग लज्जित हो गए।

२३२) कर्ण के नैतिकता- कौरव-पांडवों के बीच युद्ध चल रहा था। कौरवों की ओर से कर्ण और पांडवों की ओर से अर्जुन एक दूसरे से भिड़े हुए थे। कभी अर्जुन का पलड़ा भारी पड़ता तो कभी कर्ण का। अचानक अर्जुन ने अपनी धनुष विद्या का प्रयोग कर कर्ण को पस्त कर दिया। कर्ण धराशायी सा हो गया। हालांकि वह भी धनुर्धर था लेकिन अर्जुन के आगे टिकना मुश्किल हो गया। तभी एक भयंकर और विषैला सर्प कर्ण के तूणीर में घुस गया। कर्ण ने अपने तूणीर में से जब बाण निकाला तो उसे उसका स्पर्श कुछ अजीब सा लगा। सर्प बाण की मुद्रा में तूणीर में जा बैठा था। कर्ण ने सर्प को पहचानकर कहा, तुम मेरे तूणीर में कैसे घुस आए? इस पर सर्प बोला, हे कर्ण, अर्जुन ने खांडव वन में आग लगाई थी। उसमें मेरी माता जल गई थी। मैं अर्जुन से प्रतिशोध लेने का अवसर देख ही रहा था। आज मैं आसानी से अपनी माता की मौत का बदला ले सकता हूं। आप मुझे तीर के स्थान पर चला दें। मैं सीधा अर्जुन को जाकर डस लूंगा और कुछ ही क्षणों में उसका अंत हो जाएगा तुम विजयी कहलाओगे। सर्प की बात सुनकर कर्ण सहजता से बोले, हे सर्पराज, जब अर्जुन ने खांडव वन में आग लगाई होगी तो उनका उद्देश्य तुम्हारी माता को जलाना कभी न रहा होगा। दूसरा अनैतिक तरह से विजय प्राप्त करना मेरे संस्कारों में नहीं है। आप वापिस लौट जाएं और अर्जुन को कोई नुकसान न पहुंचाए। कर्ण की नैतिकता देखकर सर्प का मन बदल गया और वह बोला, हे कर्ण, वाकई तुम्हारे दान और नैतिकता की यह मिसाल युगों-युगों तक दी जाती रहेगी। सर्प वहां से उड़ गया और कर्ण को अपने प्राण गंवाने पड़े।

२३३) मातृभाषा की पहचान- एक बार राजा कृष्णचंद्र की सभा में बाहर से आए एक पंडित पधारे। वह उस समय के भारत की अधिकांश प्रचलित भाषाएं, यहां तक कि संस्कृत, अरबी, फारसी आदि प्राचीन भाषाओं में धाराप्रवाह बोलते हुए अपना परिचय देने लगे। पंडित जी द्वारा कई भाषाओं में बोलने पर राजा कृष्णचंद्र ने अपने दरबारियों की ओर संशय भरी दृष्टि से देखा। लेकिन दरबारी यह अनुमान न लगा सके कि दरबार में पधारे पंडित जी की मातृभाषा क्या है? राजा कृष्णचंद्र ने गोपाल भांड से पूछा, क्या तुम कई भाषाओं के ज्ञाता अतिथि पंडित की मातृभाषा बता सकते हो? गोपाल भांड ने बड़ी विनम्रता के साथ कहा, राजन, मैं तो भाषाओं का जानकार हूं नहीं, किंतु यदि मुझे अपने हिसाब से पता करने की आजादी दी जाए तो मैं यह काम कर सकता हूं। राजा कृष्णचंद्र ने गोपाल को पता लगाने के लिए अपनी तरह आजादी लेने की स्वीकृति दे दी। दरबार की सभा होने के बाद सभी दरबारी सीढ़ियों से उतर रहे थे। गोपाल भांड ने तभी अतिथि पंडित को एक ऐसा धक्का दिया कि वे बेचारे हठात अपनी मातृभाषा में गाली देते हुए नीचे आ पहुंचे। दरबारियों ने चकित होकर पूछा, इस व्यवहार का क्या अर्थ है? गोपाल भांड ने विनम्रता से कहा, देखिए तोते को आप राम राम और राधेश्याम सिखाया करते हैं। वह भी हमेशा राम नाम या राधेश्याम सुनाया करता है। किंतु जब बिल्ली आकर उसे दबोचना चाहती है, तो उसके मुख से टें-टें के सिवाय और कुछ नहीं निकलता। आराम के समय सब भाषाएं चल जाती हैं, किंतु आफत में मातृभाषा ही काम देती है।

२३४) राजा और लुटेरा- बात उन दिनों की है, जब सिकंदर भारत में था। अपने गुरु के कहने पर वह यहां के साधु-संतों के जीवन का अध्ययन कर रहा था। एक बार जाड़े के दिनों में सिकंदर ने देखा कि अधिकांश साधु नाममात्र के वस्त्र पहने हुए हैं। सिकंदर ने उनमें से कुछ को कपड़े देने का निश्चय किया। एक दिन उसने नौकरों के सिर पर कपड़ों की गठरी लदवाई और साधुओं के आश्रमों की ओर चल पड़ा। वहां पहुंचने पर एक वृद्ध महात्मा ने उससे प्रश्न किया- तुम कौन हो? सिकंदर ने अपना परिचय दिया- मैं विश्व विजेता सिकंदर हूं। महात्मा ने पूछा- क्यों आए हो यहां? सिकंदर बोला- आप लोगों को कुछ गरम कपड़े देना चाहता हूं। यह सुनकर महात्मा ने कटाक्ष करते हुए कहा- उससे क्या लें, जिसके पास कुछ भी नहीं है। सिकंदर ने महात्मा का यह अटपटा कथन सुना, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने प्रश्न किया- मैं आपका मतलब नहीं समझा। महात्मा ने उसे समझाते हुए सरलतापूर्वक कहा- अरे नादान, क्या तू नहीं जानता कि लूटमार कौन करता है? इतनी सी बात क्या तुझे नहीं मालूम कि लूट खसोट वही करता है, जिसके पास कुछ नहीं होता? तू तो लुटेरा है, लुटेरा, जो दूसरों को लूटता फिर रहा है। जा, तेरे वस्त्र लेकर हम क्या करेंगे? तू अपनी कमाई का नहीं, बल्कि लूट का माल हमें देने आया है। यह लूट का सामान हमारे किस काम का? तू कहता तो अपने को विश्व-विजेता है, लेकिन तू ही सोच कि असल में तू राजा है या रंक? महात्मा की भेद भरी बातें सुनकर सिकंदर को बड़ी ग्लानि हुई। वह उदास होकर वहां से सारा सामान साधुओं को बांटे बिना वापस लौट गया।

२३५) अपने घर का खाना- प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. हरगोविंद खुराना बचपन से ही पढ़ने में काफी तेज थे। पढ़ाई में उनकी लगन देखकर उन्हें उच्च शिक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा इंग्लैंड भेजा गया जहां से वे डॉक्ट्रेट की उपाधि लेकर वापस लौटे। खुराना भारत में कुछ नया करना चाहते थे। वे आनुवंशिकी विज्ञान में खोज करने के लिए उत्सुक थे। पर

दुर्भाग्य से देश में खुराना को अपने योग्य कोई काम नहीं मिल सका, इसलिए मजबूरन उन्हें विदेश वापस लौटना पड़ा। वे अमेरिका चले गए जहां उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए, नोबेल पुरस्कार हासिल किया और भारत का नाम रोशन किया। लेकिन अमेरिकी नागरिक होकर भी वह अपनी मातृभूमि को कभी भूल नहीं पाए। जब भी उन्हें अवकाश मिलता वे अपने रिश्तेदारों और मित्रों से मिलने के लिए भारत आते रहते। एक बार लंबे अंतराल के बाद वे दिल्ली आए। उनके एक प्रशंसक ने उन्हें आमंत्रित किया। वहां उनसे मिलने कई और लोग आए। जब भोजन का समय हुआ, तो मेज पर पश्चिमी खाना लगा देखकर उन्हें बड़ी हैरानी हुई। उन्होंने जब इसका कारण जानना चाहा, तो किसी ने कहा- हमने सोचा कि आप लंबे समय से अमेरिका में रह रहे है, तो अब तक आप पश्चिमी खानों के आदी हो चुके होंगे। शायद आपको देसी खाना पसंद न आए, इसलिए आपके लिए यह व्यवस्था की गई है। इस पर डॉ. खुराना बोले- नहीं भाई, ऐसा नहीं है। मैं अपने घर, अपने देश को भूला नहीं हूं। मुझे यह खाना नहीं चाहिए। मुझे तो चाहिए बाजरे की मोटी-मोटी रोटियां और सरसों का साग। मैं अपने घर आया हूं। मुझे मेहमान न समझा जाए।

२३६) साधु के मेहमान- एक साधु थे- बड़े ही विनम्र और परोपकारी। एक निर्जन स्थान पर रहते थे, एक छोटी सी झोपड़ी में। एक दिन वह कुटिया में लेटे थे कि अचानक बादल घिर आए और जोरों की वर्षा होने लगी। भयानक ढंग से बिजली भी कड़क रही थी। तभी दरवाजे पर थपथपाहट की आवाज सुनाई दी। साधु ने उठकर दरवाजा खोल दिया। उन्होंने देखा कि दरवाजे पर एक व्यक्ति खड़ा है। वह पानी से पूरी तरह भीगा था। वह बोला, महाराज, भयंकर आंधी-वर्षा में मैं रास्ता भूलकर इधर आ गया हूं। आसपास समय गुजारने की और कोई जगह नहीं है। कृपया मुझे रात भर गुजारने का आश्रय दे दें। प्रसन्नता से साधु बोले- भाई, तुम तो बहुत भीग चुके हो, अंदर आ जाओ। मेरी झोपड़ी में इतनी जगह तो है ही कि हम दोनों आराम से सो न पाएं, तो आराम से बैठ तो सकते हैं। वह अंदर आ गया। साधु उससे बातचीत करने लगे। अभी थोड़ी देर ही हुई थी कि दरवाजे पर फिर थपथपाहट हुई। साधु ने दरवाजा खोला। दोनों ने देखा कि पानी से बुरी तरह भीगा एक व्यक्ति खड़ा है। लड़खड़ाते शब्दों में उसने कहा- कृपया मुझे आश्रम दे दीजिए और इस विपत्ति से बचाइए। विनम्र भाव से साधु बोले- भाई, मेरी झोपड़ी छोटी सही पर तुम्हें यहां ठहरने की जगह मिल जाएगी। इसमें दो आदमी बैठ सकते हैं, तो तीन आदमी खड़े होकर समय गुजार सकते हैं। तुम्हारी सहायता करना मेरा फर्ज है। आओ भाई, अंदर आ जाओ। यह कहकर साधु ने उस व्यक्ति को झोपड़ी के अंदर ले लिया और फिर दरवाजा बंद कर दिया। साधु की छोटी सी कुटिया में वर्षा से बचे वे तीनों खड़े-खड़े आराम से बातें कर रहे थे।

२३७) दूसरों के भले के लिए- संत रब्बी इसाक के शिष्य थे- रब्बी नहमन। एक दिन नहमन ने अध्ययन पूरा करने के बाद इसाक से अपने लिए दुआ करने को कहा। रब्बी इसाक ने जवाब में एक कहानी सुनानी शुरू की- एक व्यक्ति किसी रेगिस्तान में यात्रा कर रहा था। उसके पास भोजन समाप्त हो गया, तभी उसे वहां एक पेड़ दिखाई दिया जिस पर पके हुए फल लगे थे। उसने उस पेड़ के मीठे और रसीले फल खाए और वहीं छांव में आराम करने लगा। नींद टूटी तो उठकर पेड़ के नीचे एक स्रोत से पानी पिया। उसने बेहतर महसूस किया और बोला- मैंने जीवन में ऐसे मधुर फल नहीं खाए। जब मेरे प्राण संकट में थे तब इस पेड़ ने मुझे भोजन और आराम करने के लिए आश्रय दिया। मैं कैसे इसे शुक्रिया कहूं। इसे

क्या दुआएं दूं? तभी रब्बी इसाक नहमन से बोले- क्या उस आदमी को यह दुआ करनी चाहिए कि उस पेड़ के फल और मीठे हों? यह मूर्खता होगी क्योंकि उसके फल वह पहले ही चख चुका है। यदि यह दुआ दे कि तुम और अधिक छांवदार बनो तो वह पहले ही उसकी छांव में आराम कर चुका है और यदि वह यह कहे कि तुम्हारी जड़ों के पास सोता बना रहे तो वह भी मौजूद है। रब्बी नहमन ने पूछा- आप ही बताएं पेड़ को क्या दुआ दी जानी चाहिए? रब्बी इसाक ने कहा- दुआ करनी चाहिए कि सभी पेड़ इसी जैसे कल्याणकारी बनें। यदि मैं तुम्हें ज्ञान की दुआ दूं तो वह तुम्हारे पास मौजूद है। धन भी तुम्हारे पास है। बाल-बच्चों की दुआ दूं तो तुम्हारे पहले से ही हैं। दुआ करता हूं कि तुम्हारे बच्चे तुम्हारी तरह ही बड़े हों और दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करें।

२३८) सीखने की धुन- यह घटना १९४७ के आसपास की है। लेस्टर वंडरमैन नामक युवक न्यूयॉर्क की एक विज्ञापन एजेंसी में काम कर रहा था। एक दिन एजेंसी के मालिक को लगा कि यदि वह कुछ कर्मचारियों की छंटनी कर दे तो उसे अधिक मुनाफा होगा। यह सोचकर उसने अनेक कर्मचारियों को एजेंसी से हटा दिया। वंडरमैन भी उनमें से एक था। लेकिन नौकरी से निकाले जाने के बाद भी वह एजेंसी में आकर कार्य करता रहा। वहां के कर्मचारी उससे बोले, वंडरमैन, जब तुम्हें यहां से निकाल दिया गया है तो तुम यहां काम क्यों कर रहे हो। वंडरमैन ने कहा, मैं बिना तनख्वाह के काम कर रहा हूं। मुझे लगता है कि मैं इस एजेंसी के मालिक से बहुत कुछ सीख सकता हूं। एजेंसी के मालिक सकैहीम वंडरमैन को देखकर भी नजरअंदाज करते रहे। उन्होंने एक महीने तक उसे नजरअंदाज किया और तनख्वाह भी नहीं दी लेकिन वंडरमैन ने हार नहीं मानी और वहां काम करता रहा। कुछ समय बाद सैकहीम वंडरमैन के पास आकर बोले, ठीक है, तुम जीत गए। मैंने पहले कभी ऐसा आदमी नहीं देखा, जिसे तनख्वाह से ज्यादा काम प्रिय हो। वंडरमैन वहीं पर काम करता रहा। उसने वहां विज्ञापन की बहुत सी बारिकियां समझीं। जब उसे काम करते हुए काफी अनुभव हो गया तो उसने अपने तरीके और समझ से विज्ञापन बनाना आरंभ कर दिया। वह विज्ञापन की दुनिया में छा गया। आज वंडरमैन को डायरेक्ट मार्केटिंग के जनक के रूप में याद किया जाता है।

२३९) देश की असली सेना- ब्रिटिश उपनिवेशवाद के चंगुल से अपने राष्ट्र को मुक्त कराने के बाद अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वॉशिंगटन ने जब अपनी सेना को भंग करने की घोषणा की तो सब भौंचके रह गए। लोगों को समझ में ही नहीं आया कि आखिर वाशिंगटन ने ऐसा फैसला क्यों किया। कहां तो यह सोचा जा रहा था कि भावी अमेरिका में एक विशाल सेना होगी लेकिन अब तो उलटा ही फैसला किया जा रहा था। वाशिंगटन के कुछ प्रमुख मिलिट्री अफसरों ने थोड़े भय और आश्चर्य से पूछा, सेना तो किसी भी राष्ट्र की रीढ़ होती है। हम अभी-अभी आजाद हुए हैं। न जाने किस-किस की नजर हम पर लगी हुई है। सेना के बिना कोई देश कब तक स्थिर और सुरक्षित रह सकता है? वाशिंगटन बहुत ध्यान से यह सब बातें सुन रहे थे। फिर उन्होंने स्नेहपूर्वक कहा- आप यह क्यों भूल रहे हैं कि किसी भी राष्ट्र की रीढ़ उसकी सेना नहीं बल्कि उसकी सामूहिक शक्ति और समृद्धि तथा वहां की जनता का चरित्र बल होता है। हमें ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है जो देश की रक्षा के अपने उत्तरदायित्व को ठीक से समझे और उसे निभाने की लगन, शक्ति और साहस उसमें हो। जब भी कोई संकट आए और राष्ट्र की रक्षा का प्रश्न उठे, तो वह अपने रक्त की अंतिम

बूंद तक बहा देने का दृढ़ संकल्प लेकर सैनिक की वर्दी में खुद ब खुद खड़ा हो जाए। क्यों न देश का हर नागरिक खुद को एक सैनिक समझे। मैं चाहता हूं कि उसमें लड़ने का जज्बा हो और हर पल चुनौतियों से जूझने की तैयारी। सारे सैनिक अधिकारी वाशिंगटन की इस बात से सहमत हो गए।

२४०) कोलंबस का जवाब- यह घटना उस समय की है जब कोलंबस एक नई दुनिया का पता लगाकर स्पेन वापस पहुंचे थे। स्पेन की रानी ने उनकी असाधारण सफलता पर भोज का आयोजन किया, जिसमें सभी प्रमुख सभासद और सामंत आदि आमंत्रित थे। उनमें से कुछ लोग कोलंबस से ईर्ष्या करते थे। वे उन्हें नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे थे और उन पर व्यंग्य कर रहे थे। लेकिन कोलंबस बिल्कुल शांत रहे। कुछ देर बाद जब उन्हें बोलने के लिए आमंत्रित किया गया तो वही लोग उनसे अजीबोगरीब प्रश्न करने लगे। इस पर कोलंबस बोले, मैं आप सबके सवालों का जवाब दूंगा लेकिन उससे पहले मैं आपको एक तमाशा दिखाना चाहता हूं। उन्होंने पास ही रखा एक अंडा उठाया और बोले, आपमें से जो भी इसे मेज पर सीधा खड़ा कर देगा, वह सबसे अधिक बुद्धिमान माना जाएगा। सभी लोगों को लगा कि यह तो बड़ी आसान सी बात है। सबने अंडे को सीधा खड़ा करने का प्रयास किया लेकिन उसे सीधा खड़ा न कर सके। जब सब लोग हार मान चुके तो कोलंबस बोले, मैं इसे खड़ा करके दिखाता हूं। इसके बाद उन्होंने अंडे का एक सिरा झटके से तोड़ा और उसे सीधा खड़ा करके दिखा दिया। यह देखकर वहां उपस्थित लोग बोले, यह तो बहुत आसान था। ऐसे तो कोई भी अंडे को खड़ा कर सकता था। इस पर कोलंबस बोले, तो फिर क्यों नहीं किया? सबके पास बुद्धि है। लेकिन आपने अंडे को सीधा खड़ा करने के बारे में नहीं सोचा। दरअसल उस समय आप लोग मुझे ईर्ष्यावश नीचा दिखाने में लगे हुए थे। यह सुनकर उन पर व्यंग्य करनेवाले लोगों ने सिर नीचे झुका लिया।

२४१) बांग्ला की परीक्षा- उन दिनों सुभाषचंद्र बोस स्कूल में पढ़ते थे। वह सभी विषयों में तो बहुत तेज थे लेकिन बांग्ला भाषा पर उनकी पकड़ कम थी। एक दिन बांग्ला के अध्यापक ने विद्यार्थियों को एक निबंध लिखने के लिए दिया। सुभाष चूंकि बांग्ला में कमजोर थे, इसलिए उनके निबंध में अनेक कमियां निकलीं। सभी विद्यार्थी उनका मजाक उड़ाने लगे। कक्षा का एक विद्यार्थी सुभाष से बोला, वैसे तो तुम देशभक्त बनते हो मगर अपनी ही भाषा पर तुम्हारी पकड़ कमजोर है। सुभाष को यह बात चुभ गई। अब उन्होंने बांग्ला के व्याकरण का अध्ययन करना आरंभ कर दिया। उन्होंने दृढ़ संकल्प किया कि अब वे बांग्ला भाषा में केवल पास होने लायक अंक ही नहीं लाएंगे बल्कि उसमें अव्वल होंगे। कुछ समय बाद सुभाष ने बांग्ला में महारत हासिल कर ली। वार्षिक परीक्षाएं निकट थीं। अधिकतर विद्यार्थी बालक सुभाष को देखकर बोलते, चाहे तुम कक्षा में प्रथम आ जाओ किंतु बांग्ला विषय में पास हुए बिना तुम सर्वप्रथम नहीं कहला सकते। वार्षिक परीक्षाएं हुईं। परिणाम के दिन जब शिक्षक ने कक्षा में सर्वप्रथम आनेवाले विद्यार्थी के रूप में सुभाष का नाम पुकारा तो उनसे ईर्ष्या करनेवाला विद्यार्थी बोला, भला यह कैसे संभव है? बांग्ला में तो यह मुश्किल से पास होता है। फिर यह सर्वप्रथम कैसे? इस पर शिक्षक मुस्कराकर बोले, हैरानी तो इसी बात की है कि इस बार सुभाष ने सभी विषयों के साथ-साथ बांग्ला में भी सबसे अधिक अंक प्राप्त किए है। यह सुनकर सभी विद्यार्थी दंग रह गए। सुभाष विद्यार्थियों से बोले, यदि लगन और एकाग्रता हो तो इंसान सब कुछ हासिल कर सकता है।

२४२) रामकृष्ण का संदेश- एक दिन रामकृष्ण परमहंस के पास एक व्यक्ति आया। उसने अशर्फियों से भरी पोटली उनके सामने रखी और कहा- गुरुदेव, ये अशर्फियां आपके चरणों में समर्पित हैं। रामकृष्ण ने उससे कहा- इनकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। आखिर इनकी हिफाजत कौन करेगा? उन्होंने कुछ देर विचार किया और फिर बोले हमने इनको स्वीकार किया, लेकिन तू इतना मेरे लिए कर कि इनको गंगा में फेंक आ। उस व्यक्ति को यह बात जंची नहीं। लेकिन रामकृष्ण के सामने वह कुछ कह नहीं सका। भारी मन से उसने अशर्फियां पोटली में बांधी और गंगा किनारे चल दिया। काफी देर बाद भी जब वह नहीं लौटा तो रामकृष्ण चिंतित हुए। वह अपने शिष्यों से बोले- देखो, वह कहां चला गया? कहीं ऐसा तो नहीं कि अशर्फियों को गंगा किनारे छोड़ खुद डूब गया हो। धन बचाने के लिए आदमी खुद को मिटा देता है। उनकी आज्ञा पाकर कुछ शिष्य गंगा किनारे पहुंचे तो देखा वह आदमी एक-एक अशर्फियों को गिन-गिनकर नदी में फेंक रहा है। उसे देखकर काफी भीड़ जमा हो गई थी। रामकृष्ण के शिष्यों ने उससे कहा कि परमहंस देव ने तुम्हें शीघ्र बुलाया है। रामकृष्ण ने उससे कहा- धन एकत्रित करते समय उसे गिना जाता है लेकिन फेंकते समय क्यों गिनना? तुम्हारा उन अशर्फियों से मोह अंत-अंत तक नहीं जा रहा था जबकि अशर्फियां तुमने मुझे दे दी थीं। जिन्हें नहीं रखना उन्हें खो ही देना चाहिए। परमात्मा से साक्षात्कार तभी संभव है जब सारे अवरोध दूर हो जाएं। इस बात का उस व्यक्ति पर गहरा असर पड़ा। वह उनका शिष्य बनकर प्रभु भक्ति में रम गया।

२४३) लोहिया का जवाब- बात उन दिनों की है जब डॉ. राममनोहर लोहिया जर्मनी के हम्बोल्ट विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पीएचडी कर रहे थे। भारत में अंग्रेजी शासन के खिलाफ गांधीजी के नेतृत्व में स्वाधीनता आंदोलन जोरों पर था। लोहियाजी के पिता हीरालाल जी भी स्वाधीनता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। पिता पुलिस के अत्याचारों की सूचना पत्र द्वारा अपने पुत्र को देते रहते थे, जिन्हें पढ़कर लोहिया जी के हृदय में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा की भावना प्रबल हो उठती थी। इसी समय जिनेवा में लीग ऑफ नेशंस का अधिवेशन होने जा रहा था, जिसमें भारत का प्रतिनिधित्व बीकानेर के महाराजा कर रहे थे। बहुत कोशिशों के बाद लोहिया जी ने इस अधिवेशन की दर्शक दीर्घा में बैठने के दो पास हासिल कर लिए और अपने एक भारतीय मित्र के साथ दर्शक दीर्घा में जा बैठे। बीकानेर के महाराजा का भाषण भारत में अंग्रेजी शासन की प्रशंसा और चापलूसी से भरा था। भाषण के दौरान लोहिया जी और उनके मित्र ने खूब सीटी बजाई और हूटिंग की। सभा अध्यक्ष ने तुरंत उन्हें बाहर निकालने का आदेश दे दिया। अगले दिन के समाचार पत्र में लोहिया द्वारा सभापति को लिखा एक पत्र छपा, जिसमें उन्होंने भारत में हो रहे अंग्रेजों के अत्याचार की विस्तार से चर्चा कर भारतीय प्रतिनिधि के भाषण की धज्जियां उड़ाई थी। जब किसी ने उनसे इस विषय पर पूछा तो उनका जवाब था कि मेरा मकसद दुनिया के सामने भारत में चल रहे अन्यायपूर्ण अंग्रेजी शासन की पोल खोलना था जो मैंने कर दिखाया।

२४४) शिक्षा का लक्ष्य- महान गणितज्ञ यूक्लिड में थोड़ा भी अहंकार नहीं था। वह बेहद सरल स्वभाव के थे। उनका मानना था कि अपना ज्ञान दूसरों में हरदम बांटते रहना चाहिए। इसलिए जब भी कोई उनके पास किसी तरह की जानकारी लेने आता तो वे उत्साहपूर्वक उसे सब कुछ बताते थे। इससे उन्हें संतोष मिलता था। इसलिए उनसे गणित सीखनेवालों

की संख्या अच्छी-खासी हो गई थी। कई बार तो वह अपना निजी काम छोड़कर भी दूसरों की जिज्ञासा शांत करते रहते थे। एक दिन यूक्लिड के पास एक लड़का आया और उसने उनसे रेखागणित पढ़ाने का आग्रह किया। यूक्लिड ने अपनी आदत के मुताबिक यह प्रस्ताव सहज रूप से स्वीकार कर लिया। वह उसे उसी क्षण से रेखागणित पढ़ाने लगे। लड़का काफी प्रतिभाशाली था। उसने बड़ी तेजी से सीखना आरंभ कर दिया। इससे यूक्लिड काफी प्रसन्न थे। एक बार यूक्लिड उसे एक प्रमेय पढ़ा रहे थे। अचानक लड़के ने सवाल कर दिया- इस प्रमेय को पढ़ने से मुझे क्या लाभ होगा? यह सुनते ही यूक्लिड नाराज हो गए और अपने नौकर से बोले- इसे एक ओबेल (यूनानी सिक्का) दे दो, क्योंकि वह विद्या हासिल करने में कम, धन कमाने में अधिक रुचि रखता है और जो धन कमाने में रुचि रखता है उसके लिए किसी भी तरह की शिक्षा बेकार है। उनके मुंह से यह सुनकर न सिर्फ वह लड़का बल्कि दूसरे छात्र भी दंग रह गए। उस लड़के ने यूक्लिड से क्षमा मांगी। यूक्लिड ने कहा- शिक्षा आत्मसमृद्धि का मार्ग है। उसे कभी भौतिक लाभ के तराजू में नहीं तौलनी चाहिए और वह जहां से जिस मात्रा में मिले, उसे आत्मीयता से ग्रहण करना चाहिए।

२४५) कारखाने की घंटी- औद्योगिक क्रांति ने इंग्लैंड के सामाजिक जीवन को पूरी तरह बदल दिया। अब रहन-सहन और कामकाज का नया स्वरूप सामने आया। कई फैक्ट्रियां खुलीं जिनमें लाखों लोग काम करते थे। उस समय इन कारखानों में बजनेवाली घंटियों पर ही लोगों की दिनचर्या निर्भर थी। घंटियों से काम शुरू होने या खत्म होने की सूचना दी जाती थी। ज्यादातर लोगों को उसी से सही समय की जानकारी मिलती थी। खासकर मजदूरों को जिनके पास अपनी घड़ी नहीं होती थी। जिनके पास होती भी थी वे भी उसके आधार पर अपना काम करते थे। फैक्ट्री में घंटी बजाना एक महत्वपूर्ण काम था। यह काम किसी जिम्मेदार व्यक्ति को ही दिया जाता था। इंग्लैंड की एक फैक्ट्री का फोरमैन रोज सुबह काम पर जाते हुए घड़ी मरम्मत की एक दुकान के बाहर रुककर अपनी कलाई घड़ी का समय मिलाता था। घड़ीसाज रोज उसे ऐसा करते हुए देखता था। उसे हैरत होती थी। वह उससे इसका कारण पूछना चाहता था पर पूछ नहीं पाता था। घड़ीसाज एक दिन अपनी उत्सुकता दबा नहीं पाया और आखिरकार उसने फोरमैन से घड़ी का समय मिलाने की वजह पूछ ही ली। फोरमैन ने बताया कि वह सामने के एक कारखाने में नौकरी करता है। उसका काम प्रतिदिन शाम पांच बजे घंटी बजाकर कर्मचारियों को शिफ्ट खत्म होने की सूचना देना है। वह अपना काम अच्छी तरह कर सके इसलिए वह रोज उस घड़ीसाज की दुकान में लगी एक घड़ी से अपनी घड़ी का समय मिलाता है। घड़ीसाज कुछ देर मौन रहने के बाद मुस्कराते हुए बोला कि वह खुद रोज शाम अपनी दुकान की घड़ियां उसकी फैक्ट्री की घंटी से मिलाता है।

२४६) मनुष्य का स्वभाव- उन दिनों चर्चिल ब्रिटेन के रक्षा मंत्री थे। नौसेना अध्यक्ष एडमिरल लार्ड फिशर से उनकी नहीं बनती थी। फिशर भी कम ताकतवर नहीं थे। ब्रिटिश सत्ता के प्रभावशाली लोगों तक उनकी पहुंच थी। चर्चिल और फिशर की अनबन बढ़ती ही चली गई और चर्चिल को अपना पद छोड़ना पड़ गया। चर्चिल के लिए यह गहरा आघात था, फिर भी उन्होंने फिशर के बारे में कहीं भी एक शब्द उल्टा-सीधा नहीं कहा। कई लोग उन्हें उकसाते पर चर्चिल खामोश रहते। अरसे बाद बातचीत के दौरान उनके किसी मित्र ने वह प्रसंग फिर छेड़ दिया और फिर फिशर की निंदा की। चर्चिल ने मित्र की बात सुनने के बाद स्पष्ट शब्दों में कहा- यदि मुझे फिर से वही पद मिल जाए तो मैं फिशर को बुलाकर उन्हें फिर

से वही काम सौंप दूंगा। एक कुशल प्रबंधक के रूप में आज भी मेरे दिल में फिशर के लिए इज्जत बरकरार है, उतनी ही मात्रा में। यह सुनकर चर्चिल के मित्र को बहुत आश्चर्य हुआ। लेकिन फिशर का रवैया एकदम उलटा था। कुछ सालों के बाद फिशर की जीवनी प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने चर्चिल की कठोर आलोचना की थी। पुस्तक पढ़ते समय चर्चिल को कई बातें बेढंगी लगीं फिर भी उन्होंने उनकी निंदा में एक शब्द भी नहीं कहा। और तो और पुस्तक समाप्त कर चुकने पर उन्होंने पुस्तक की प्रशंसा में एक लंबा लेख तैयार किया और उसे छपने के लिए एक पत्रिका को भेज दिया। लोगों ने इस बारे में जब चर्चिल से पूछा तो उन्होंने कहा कि फिशर अपने स्वभाव के मुताबिक काम करें। मैं अपने स्वभाव से काम कर रहा हूं। किसी और के लिए मैं अपना स्वभाव क्यों बदल लूं।

२४७) धर्म की भूमिका- गौतम बुद्ध कहीं जा रहे थे। रास्ते में विश्राम के लिए एक नदी के किनारे रुके। देखा कि एक भिक्षुक स्नान कर रहा है। फिर उसने छह दिशाओं में प्रणाम किया और जाप करने लगा। जब उसकी पूजा समाप्त हुई तो बुद्ध ने पूछा- महाशय, आपने अभी-अभी छहों दिशाओं को प्रणाम किया। इसका क्या अभिप्राय है? उस भिक्षुक ने संकोच के साथ उत्तर दिया- यह तो मुझे नहीं मालूम। सभी करते हैं इसलिए कर रहा हूं। बुद्ध ने हंसते हुए कहा- जब मूल उद्देश्य जानते ही नहीं, तो पूजा-पाठ और जाप का क्या महत्व है? तब वह भिक्षुक बोला- आप ही बता दीजिए कि छहों दिशाओं को प्रणाम करने का क्या प्रयोजन है? बुद्ध बोले- माता-पिता और गृहपति ये पूर्व दिशा हैं, आचार्य दक्षिण, स्त्री तथा पुत्र-पुत्रियां पश्चिम और मित्रादि उत्तर दिशा। रही ऊर्ध्व और अधो दिशा, तो ऊर्ध्व दिशा ब्राह्मण हैं तथा सेवक अधो दिशा हैं। इन छहों दिशाओं को किया गया प्रणाम इन सभी व्यक्तियों को प्रणाम करने के समान होता है। भिक्षुक बोला- मगर सेवक को प्रणाम करने का क्या उद्देश्य है? प्रणाम तो उन्हें सबको करना चाहिए। बुद्ध ने कहा- सेवक भी मनुष्य हैं और हम भी मनुष्य हैं। जब वे हमारी सेवा करते हैं, तो हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उनकी सेवा के बदले उनके प्रति स्नेह और वात्सल्य प्रकट करें। सेवकों को प्रणाम करते समय हम उनके प्रति स्नेहभाव व्यक्त कर रहे होते हैं। उन्हें तुच्छ भाव से नहीं देखना चाहिए। हरेक मनुष्य एक-दूसरे के समान है चाहे वह किसी भी तरह का कार्य करता हो। धर्म हमें यही तो सिखाता है। इस उत्तर से भिक्षुक संतुष्ट हो गया।

२४८) ईश्वर है या नहीं- एक बार की बात है। गौतम बुद्ध से एक व्यक्ति ने कहा, मैं ईश्वर को नहीं मानता। आपकी क्या राय है? बुद्ध बोले- तुम गलत हो। संसार में ईश्वर के अलावा कुछ और सत्य है ही नहीं। कुछ दिन बाद दूसरे व्यक्ति ने प्रश्न किया- प्रभो, ईश्वर में मेरी बड़ी श्रद्धा है। क्या मैं सही नहीं हूं? बुद्ध बोले- ईश्वर के होने की बात असत्य है, इसलिए उसे मानने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह सुन बुद्ध का प्रिय शिष्य आनंद सोच में पड़ गया कि आखिर बुद्ध कहना क्या चाहते हैं। इस बीच एक शिष्य ने तथागत से पूछा- सही-सही बताइए, ईश्वर है या नहीं? बुद्ध ने प्रश्न को अनसुना कर दूसरे विषय पर बात जारी रखी। शिष्य कुछ देर उत्तर की प्रतीक्षा कर चला गया। आनंद ने पूछा- देव, कभी आप कहते हैं, ईश्वर है, तो कभी कहते हैं नहीं है और अभी-अभी इस बारे में जब हमारे मित्र ने वास्तविकता जाननी चाही, तो आपने उत्तर ही नहीं दिया। तथागत बोले- मैं उन लोगों की मान्यता को तोड़ देना चाहता था। जो नास्तिक होता है, उसकी आत्मा परतंत्र होती है। इसलिए मैंने उससे कहा कि ईश्वर है, ताकि उसे ईश्वर के अस्तित्व

पर विश्वास हो। दूसरे व्यक्ति की इस मान्यता को भी कि ईश्वर का अस्तित्व है, मैं दूर करना चाहता था। जिससे वह अपनी धारणा की जंजीरों से मुक्त हो और सत्य को जानने की स्वयं पहल करे। रहा तीसरा व्यक्ति, तो उसका स्वयं का कोई मत न था। मेरी इच्छा थी कि वह जानने का प्रयास करे कि ईश्वर सचमुच है या नहीं। अलग-अलग उत्तर देने का उद्देश्य यही था कि वे अपनी मान्यता में न बंधे और स्वयं सत्य तक पहुंचें।

२४९) पेटी की शोभा- एक बार एक सैनिक अधिकारी ने सिकंदर को एक सुंदर स्वर्णजड़ित पेटी भेंट की। सिकंदर पेटी की नक्काशी देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उसने दरबारियों से पूछा, इसमें किसी कीमती वस्तु को रखने से इसकी शोभा और बढ़ेगी। वह वस्तु क्या हो सकती है? इस पर एक दरबारी बोला, महाराज, इसमें हीरे और जवाहरात रखे जाने से इसकी सुंदरता बढ़ सकती है। दूसरा दरबारी बोला, इस कीमती पेटी में राजसी और कीमती वस्त्र रखे जाने पर यह और कीमती हो जाएगी। तीसरा दरबारी बोला, मेरे विचार में तो इस कीमती पेटी में खजाने की चाबियों का गुच्छा रखना ज्यादा अच्छा रहेगा। चौथा दरबारी बोला, इस पेटी में तो गोपनीय और निजी दस्तावेजों को ही रखना चाहिए। इससे इस पेटी की शोभा निखरेगी। सिकंदर को उनमें से किसी का भी सुझाव पसंद नहीं आया। वह सोचने लगा कि आखिर ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसने उसके जीवन पर असर डाला है। वह काफी देर तक विचार करता रहा। तभी उसने सोचा कि आज जो गौरव और ख्याति उसे मिली है, वह न तो हीरे-जवाहरातों से मिली है, न ही मुल्कों को जीतने से बल्कि उसके जीवन को नई दिशा दी है एक ऐसी किताब ने जिसे पढ़कर ही उसे अपने अंदर छिपी शक्ति का ज्ञान हुआ था। यह सोचकर सिकंदर ने आदेश दिया, इस पेटी में महाकवि होमर की कृति इलियड रखो। उसी किताब को रखने से इस पेटी की शोभा बढ़ सकती है। सारे दरबारी दंग रह गए। उस पेटी के अंदर होमर की वह महान रचना रख दी गई।

२५०) सफलता और असफलता- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेता राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन कर्मठ पत्रकार, तेजस्वी वक्ता और समाज सुधारक भी थे। एक बार वह बीमार पड़े। उन्हें देखने के लिए उनके एक पुराने सहपाठी प्रयाग पहुंचे। बहुत देर तक इधर-उधर की बातें हुईं फिर राजर्षि पुराने दिनों को याद करने लगे। उन्होंने अपने जीवन के बारे में बताना शुरू किया- किसी समय मैं देशी रियासतों में राजाओं के कामकाज में सुधार करने के लिए एक आदर्श योजना बना रहा था, ताकि यह दिखाने का अवसर मिले कि भारतीय शासक अंगरेजों से अच्छा शासन कर सकते है। इसी उद्देश्य के लिए बनाई गई योजना को अमल में लाने के लिए मैंने नाभा रियासत में नौकरी भी की थी, पर मैं असफल रहा। इस असफलता से मुझे पहले तो दुख हुआ, लेकिन अब लगता है कि वह मेरे लिए आगे की सफलता की भूमिका थी। उनके मित्र ने पूछा- वह कैसे? राजर्षि बोले- देखो, वहां मैं अंग्रेजों के कारण ही असफल हुआ। फिर मैंने अपना ध्यान देश से अंग्रेजों को हटाने में लगा दिया। नाभा में सफल होने पर संभव था कि मैं कूपमंडूक ही बना रह जाता। वहां से बाहर मैं कुछ देख ही न पाता। अपनी छोटी सी सफलता को ही महत्वपूर्ण मान अपने आप में संतुष्ट रहता। लेकिन इस असफलता ने मेरे लिए साधना का नया द्वार खोल दिया। मैं एक बड़े दायरे में आया। कई नई चुनौतियां मिलीं। मैंने उनका सामना किया और देश के लिए काफी कुछ करने की कोशिश की। यह बताने के बाद राजर्षि ने कहा- असफलता के प्रति सृजनात्मक दृष्टि अपनाने से ही हमें सफलता भी मिलती है। इसलिए सफलता में भी संभावना देखनी चाहिए।

२५१) पत्नी की प्रेरणा- अंग्रेजी के महान लेखक नाथानिएल हौथोर्न की कामयाबी के पीछे उनकी पत्नी सोफिया की अहम भूमिका थी। एक दिन वह परेशान घर लौटे और सोफिया से बोले, आज मुझे कस्टम हाउस की नौकरी से निकाल दिया गया है। अब क्या होगा? सोफिया यह सुनकर पहले तो परेशान हुईं फिर मुस्कराकर बोलीं, इसमें चिंता की क्या बात है। अगर आपका यह रास्ता बंद हुआ है तो इसके साथ ही एक ऐसा रास्ता खुला है जो आपको भविष्य में दुनिया में प्रसिद्ध कर देगा। पत्नी की बात सुनकर नाथानिएल हैरानी से बोले, तुम भी कैसी बातें कर रही हो। मेरा यह दरवाजा बंद होने से कौन सा ऐसा दरवाजा खुल गया है जो मुझे प्रसिद्ध कर देगा? इस पर सोफिया बोलीं, आप बहुत अच्छा लिखते हैं। समय मिलने पर आपने अपनी लिखी हर कहानी और लेख मुझे पढ़वाया है। अब तक नौकरी के कारण ही आप लेखन को पूरा समय नहीं दे पा रहे थे। लेकिन अब तो आपके पास समय ही समय है। आप लेखन करिए, सफलता अवश्य मिलेगी। पत्नी की बात सुनकर नाथानिएल बोले, लेकिन तब तक घर का खर्च कैसे चलेगा? सोफिया मुस्कराकर बोलीं, आप निश्चिंत होकर अपने लेखन को निखारिए तब तक घर खर्च मैं चलाऊंगी। पत्नी का गहरा आत्मविश्वास और समर्पण देखकर नाथानिएल मुस्तैदी से लेखन में जुट गए। साल खत्म होते-होते उपन्यास द स्कार्लेट लैटर लिख डाला। आज भी उन्हें इसी उपन्यास से पहचाना जाता है। वह अपनी सफलता का श्रेय पत्नी को देते थे, जिन्होंने उनकी विलक्षण लेखन प्रतिभा का अहसास कराया।

२५२) जीवन में व्यावहारिक संतुलन धरती को स्वर्ग बनाएगा- एक दिन महादेव शिव दोपहर में आकर पार्वती से बोले- भोजन दो। पार्वती ने कहा- तुम भोजन तो मांग रहे हो, लेकिन घर-गृहस्थी की भी कुछ खबर रखते हो कभी? तुम तो एक श्मशान से दूसरे श्मशान में घूमते रहते हो और घर की जिम्मेदारी मेरी हो गयी है। उसे मुझे ही पूरा करना पड़ता है। तुम शायद न जानते हो कि आज न चूल्हा जला न हांडी चढ़ी। आज भोजन ही नहीं बना। घर में कुछ था ही नहीं तो बनता कहां से। न चावल है न दाल। आज तुम्हें भोजन नहीं मिलेगा। मांड़-भात के लिए भी तो चावल चाहिए। शिव ने बड़ी हैरानी से पूछा- बहुत दिन पहले मैं भिक्षा मांग कर बहुत सारा चावल-दाल लेकर आया था, वह सब कहां चला गया? पार्वती ने उत्तर दिया- वह सब समाप्त हो गया है। अपने भंडार में छह पल्ला धान रखा था, उसे भी गणेश के चूहों ने खा लिया। तुम तो कुछ देखते भालते हो नहीं, इसीलिए तुम्हें कुछ पता भी नहीं रहता।

जब कभी घर में कुछ न बचे तो इस विषय में घर की महिलाओं को दोष देना ठीक नहीं है। लेकिन यह याद रखना होगा कि छोटे और बड़े, दोनों संसारों में हमें एक संतुलन बनाकर चलना होगा। इसे बनाए रखना गृहस्थ व्यक्ति का कर्त्तव्य है। लेकिन संन्यासी का इससे कोई लेना-देना नहीं। संन्यासी के पास तो जो भी कुछ आता है, उसे वह बड़े संसार के लिए दान कर देगा, पूरा का पूरा। वह अपने लिए कुछ भी नहीं रखेगा। अपना समय भी देगा और उसके पास जो कुछ अस्थायी संपदा होगी, वह सब भी दान कर देगा। संन्यासी की कोई स्थाई संपदा तो होती नहीं। सब कुछ दान कर देना ही उसका कर्त्तव्य है। उसे इसी में आनंद मिलता है। दरअसल, गृहस्थी और संन्यासी के जीवन के ऐसे ही अलग अलग नियम हैं। मनुष्य को सभी अवस्थाओं में, सभी उम्रों में धर्म साधना करनी होती है। यदि वह साधना नहीं करता तो समझ लें कि वह बेहतर मनुष्य होने लायक नहीं है। यदि साधना करता है तो वह सही अर्थों में बुद्धिमान है। यह

साधना कोई एकदम अलग चीज नहीं है। अपने कर्त्तव्य को समझना और उनका पालन करना ही साधना है। यदि हर मनुष्य कर्त्तव्य पूरा करता जाएगा तो पृथ्वी ही इतनी सुंदर हो जाएगी कि स्वर्ग यहीं नजर आने लगेगा। तब फिर हमें किसी काल्पनिक स्वर्ग की खोज करने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। अपने आध्यात्मिक, मानसिक और सामाजिक कर्त्तव्य का पालन करते रहना जरूरी है। इसलिए व्यक्ति को जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन बनाए रखना चाहिए। यह समझना जरूरी है कि जितना बाहर का क्षेत्र महत्वपूर्ण है उतना ही घर के भीतर का भी।

२५३) लीलावती का संकल्प - प्रसिद्ध गणितज्ञ और ज्योतिषी भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती कम उम्र में ही विधवा हो गई। वह हमेशा दुखी रहने लगी। भास्कराचार्य से अपनी पुत्री का दुख देखा न गया और वह उसे उसकी ससुराल से अपने घर ले आए। लीलावती यहां भी सारा दिन बैठकर अपने भाग्य पर आंसू बहाती, कुछ खाती न पीती, केवल शून्य में निहारती रहती। उसे रोते देखकर एक दिन भास्कराचार्य बोले, बेटी, मैं तुम्हारा दुख समझता हूं। लेकिन जो हो चुका वह वापस तो नहीं आ सकता। यदि तुम इसी प्रकार रो-रोकर घुलती रही तो तुम्हारे अस्तित्व और व्यक्तित्व का नामोनिशान ही मिट जाएगा। तुम्हें अपने समय को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए और अपने व्यक्तित्व को सार्थक रूप देने का प्रयास करना चाहिए। यह सुनकर लीलावती बोली, पिताजी, मैं क्या करूं? मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा। आप ही बताइए कुछ। भास्कराचार्य बोले, बेटी, तुम प्रखर बुद्धि की हो। अपना मन गणित सीखने में लगाओ। यह तुम्हें सदमे तथा दुख को भुलाने में मदद करेगा और तुम्हें जीने की एक नई दिशा देगा। अपने पिता की यह बात लीलावती को ठीक लगी और उसने अपना समय गणित सीखने में लगा दिया। धीरे-धीरे वह अपना सारा दुख भूलने लगी। अब वह दिन-रात गणित के प्रश्नों व पहेलियों में खोई रहती। काफी मेहनत करके उसने अंकगणित के अनेक नए नियम निर्धारित किए। उसके बनाए नियम आज तक माने जाते हैं। उसने अंकगणित पर अनेक ग्रंथों की रचना भी की। लीलावती ने पिता भास्कराचार्य को गणित संबंधी शोध कार्य में इतना सहयोग दिया कि उसके पिता ने अपने एक ग्रंथ का नाम भी लीलावती के नाम पर रखा। इस ग्रंथ ने लीलावती तथा भास्कराचार्य को अमर कर दिया। इस तरह लीलावती ने साबित किया कि यदि व्यक्ति दृढ़ संकल्प कर ले तो वह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी एक अलग पहचान बना सकता है।

२५४) काम का महत्व- रूसी क्रांति के बाद का दौर था। देश की कमान लेनिन के हाथ में आ चुकी थी। क्रांति के बाद पूरे देश की अर्थव्यवस्था चरमराई हुई थी। रूसी मजदूरों ने उस वक्त अपनी शनिवार की छुट्टी को, जो कानूनन उन्हें मिलती थी, स्वेच्छापूर्वक राष्ट्र को समर्पित कर दिया था। उस दिन भी वे काम पर आते थे। लेनिन उनके अगुआ थे। वह कहते थे- साम्यवादियों का श्रम समाज निर्माण के लिए होता है। वह किसी ईनाम या पुरस्कार की इच्छा से नहीं, बल्कि बहुजन हिताय अर्पित किया जाता है। उन दिनों लेनिन के गले में तकलीफ थी क्योंकि एक हमलावर ने उन पर छर्रे भरी पिस्तौल चला दी थी। कुछ छर्रे तो निकाल दिए गए थे लेकिन कुछ गले में ही रह गए थे और बहुत कष्ट देते थे। फिर भी लेनिन कष्ट की परवाह न करते हुए मजदूरों का साथ देने के लिए स्वयं सुबह से शाम तक काम में जुटे रहते थे। मजदूर मना करते और कहते कि आप कोई हल्का काम ले लें, किंतु लेनिन नहीं मानते। बल्कि वह खेल-खेल में मजदूरों से मुकाबला करते कि कौन सबसे भारी काम कर सकता है। एक दिन एक मजदूर ने उनसे पूछा, श्रीमान आप देश चलाते

हैं। आपके पास कई बड़े-बड़े काम हैं, फिर भी आप इन छोटे कामों को महत्व क्यों देते हैं? लेनिन ने उस मजदूर के कंधों पर हाथ रखा और कहा, देखो दोस्त, कोई काम छोटा नहीं होता। मुझमें और तुझमें कोई अंतर नहीं है। अगर है भी तो यही कि तेरी भुजाएं मुझसे बलिष्ठ हैं। इतना कहकर वह ठठाकर हंस पड़े।

२५५) सच्चा कर्मयोगी - एक बार सेवाग्राम में गांधीजी से एक कार्यकर्ता ने पूछा, आप के जीवन पर किस व्यक्ति का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा? गांधीजी ने कहा, भाई रायचन्द्र, टास्ल्टाय और रस्किन से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं, मगर मेरे ऊपर सबसे ज्यादा प्रभाव भाई रायचन्द्र का ही पड़ा है। कार्यकर्ता ने पूछा, वह कैसे? गांधीजी ने कहा, भाई रायचन्द्र का बहुत बड़ा व्यापार था। वह हीरे मोती की परख करते थे और लाखों का कारोबार करते थे। कार्यकर्ता ने गांधीजी को आश्चर्य से देखा। उसे यह बात थोड़ी अटपटी लग रही थी कि गांधीजी आखिर एक व्यापारी से क्यों प्रभावित हुए। गांधीजी ने उसकी मनोदशा को भांपकर कहा, लेकिन वह साधारण कारोबारी नहीं थे। वह एक संत थे। उनकी गद्दी पर कोई और चीज हो या न हो, कोई धार्मिक पुस्तक अवश्य रखी होती थी। बगल में वह एक डायरी भी रखते थे। जब भी उन्हें फुरसत मिलती, वह पढ़ने लगते। पुस्तक में मन को छूने वाली कोई बात होती तो वह उसे डायरी में नोट कर लेते। जो व्यक्ति लाखों की लेन-देन की बात करके फौरन ज्ञान की पुस्तक पढ़ने लगे और आत्मज्ञान की बात लिखने लगे, वह व्यापारी नहीं बल्कि शुद्ध ज्ञानी कहा जाएगा। मेरे साथ उनका कोई स्वार्थ नहीं था। मगर जब भी मैं उनकी दुकान पर पहुंचता, वह धर्म चर्चा शुरू कर देते थे। उस समय मुझे धर्म चर्चा में रुचि नहीं थी फिर भी मैं भाई रायचन्द्र की बातों को ध्यान से सुनता था। इसके बाद मैं कई संत-महात्माओं से मिला, मगर किसी ने मुझे इतना प्रभावित नहीं किया। मुझसे लोग पूछते हैं कि आखिर रायचन्द्र में क्या खास बात है जिससे मैं इतना प्रभावित हुआ। मुझे उनके कर्मयोग ने प्रभावित किया। आम धारणा यह है कि एक काम करते हुए दूसरा काम करना कठिन है। मगर रायचन्द्र को देख कर लगा कि मनुष्य सांसारिक जीवन जीते हुए भी संत और ज्ञानी हो सकता है। इसी कारण मुझे रायचन्द्र सच्चे कर्मयोगी नजर आए।

२५६) सबकी क्षमताएं व स्थितियां अलग हैं - प्राचीन समय में वैद्य रोगी की नाड़ी देखकर सारा निदान कर देते थे। वैद्यजी ने एक रोगी की नाड़ी देखी और कहा, सर्दी का मौसम है। तुम गोंद या मेथी के लड्डू बनवा लो और उसका सेवन करो। इसके बाद वैद्यजी ने दूसरे रोगी को देखना शुरू किया। जांच करने के बाद उन्होंने कहा, तुम गरिष्ठ भोजन को बिल्कुल छोड़ दो। सिर्फ, रूखी चपाती और रूखा खांखरा खाओ। जैसे ही वैद्यजी ने रोगी को यह पथ्य बताया, उसके चेहरे पर अप्रसन्नता के भाव आ गये। वह बोला, वैद्यजी, चिकित्सक के लिए सब बराबर होते हैं। किंतु आप तो भेदभाव कर रहे हैं। किसी को घी और मेवा-मिष्ठान खाने की सलाह देते हैं और किसी को रूखी रोटी, यह न्यायपूर्ण बात नहीं है। कोई पैसावाला रोगी रहा होगा। उसने जब ऐसी बात कही तो वैद्य ने कहा, हमारे यहां फीस सबकी बराबर है, फिर भेदभाव की बात कहां से आ गई? जहां तक पथ्य की बात है, वह शरीर की स्थिति के अनुसार बताया जाता है। अभी तुमसे पहले जो रोगी मैंने देखा, उसके शरीर को पोषक तत्वों की जरूरत है। उनके अभाव में उसका शरीरबल क्षीण हो रहा है और उसके कारण अन्य रोगी के भी सक्रिय होने की आशंका है। इसलिए मैंने उसे पौष्टिक भोजन करने का परामर्श दिया है और जहां तक तुम्हारी बात है, तुम्हारा पाचनतंत्र बहुत कमजोर हो रहा है। गरिष्ठ

भोजन कर तुमने अपने पाचनतंत्र का काफी नुकसान कर लिया, इसलिए तुम्हें तेल-घी युक्त चीजों के सेवन से बचना है। कहने का तात्पर्य यह कि सबकी अलग-अलग स्थितियां हैं।

२५७) परमात्मा तो हर जगह मौजूद रहता है - गुरू और शिष्य साथ जा रहे थे। रास्ते में एक गुरूकुल आया। शिष्य ने जिज्ञासावश अपने गुरू से पूछा। गुरुदेव, सामने ये जो बैठे तीन विद्यार्थी पढ़ रहे हैं आप बताएं, इसमें कौन स्वर्ग जाएगा और कौन नरक में?

गुरु ने कहा, इन तीनों में से एक राजपुत्र है, दूसरा कुलपति का पुत्र और तीसरा एक साधारण गृहस्थ का पुत्र। तीनों में यह साधारण विद्यार्थी स्वर्ग में जाएगा। शेष दोनों तो नरकगामी हैं। गुरू की यह भविष्यवाणी गुरुकुल के कुलपति तक पहुंच गई। उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने तीनों की परीक्षा लेने का निश्चय किया। उन्होंने तीनों को बुलाया। उनके हाथ में आटे के बने तीन मुर्गे देते हुए कहा, तुम तीनों जाओ और इन मुर्गों की गर्दन काटकर लाओ। लेकिन ध्यान रहे, गर्दन ऐसी जगह काटी जाए जहां कोई न देखे।

गुरु की आज्ञा पर तीनों अलग-अलग दिशाओं में चले गए। कुछ ही क्षण बीता कि राजपुत्र कुलपति की सेवा में हाजिर हो गया। उसने कटी गर्दनवाला मुर्गा उनके हाथ में देते हुए कहा, यह लें गुरुदेव, एक निर्जन स्थान पर जहां कोई नहीं था, वहां मैंने इसकी गर्दन काटकर अलग कर दी। इतने में ही कुलपति का पुत्र भी मुर्गा का धड़ और गर्दन लिए आ गया। उसने भी यही उत्तर दिया कि किसी ने उसे देखा नहीं है। काफी देर बाद गृहस्थ का पुत्र हाजिर हुआ। उसके हाथ में सलामत मुर्गा था। उसने क्षमा के साथ कहा कि मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सका, क्योंकि हर जगह मुझे परमात्मा देख रहा था। गुरू को समाधान मिल गया। जब आप अपनी समस्याएं भगवान को सौंप देते हैं और उनके बारे में भूल जाते हैं, तो वे अपने आप सुलझ जाती हैं।

२५८) अद्‌भुत बलिदान- यह उस समय की बात है जब चीन के महान विद्वान ह्वेनसांग भारत आए हुए थे। वह भारत की शिक्षा व संस्कृति से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने नालंदा विश्वविद्यालय में भारतीय धर्मग्रंथों का संग्रह किया ताकि अपने देश वापस लौटने के बाद वह वहां इनके महत्व बता सके। जब वह अपने देश की ओर रवाना हुए तो उन्होंने अपने साथ अनेक ग्रंथ और कोई कई कलात्मक मूर्तियां रख लीं। मार्ग में नदी पड़ती थी इसलिए वह नौका में अपनी इस बहुमूल्य संपदा के साथ बैठ गए। पांच भारतीय छात्र भी उनके साथ थे। अभी वे कुछ ही दूर पहुंचे थे कि अचानक नदी में जोर का भंवर आया और नौका डगमगाने लगी। यह देखकर नौका चालक ने कहा, यदि नौका में से कुछ वजन कम कर दिया जाए तो यह डूबने से बच सकती है। यह सुनकर ह्वेनसांग चिंता में पड़ गए और बोले, अब तो पुस्तकों के गट्ठरों को पानी में फेंकना ही होगा। इनके पानी में बहने के साथ ही मेरा उद्देश्य अधूरा रह जाएगा। वापस पहुंचने पर मैं अपने देश में भारत के महान धर्मशास्त्रों का प्रचार नहीं कर पाऊंगा। इतने कठोर परिश्रम से एकत्रित किए गए धर्मशास्त्र व्यर्थ हो जाएंगे। विद्वान ह्वेनसांग की बात सुनकर पांचों भारतीय छात्र बोले, आप चिंतित न हों। आपका परिश्रम व्यर्थ नहीं होगा और न ही आपका उद्देश्य अधूरा रहेगा। ग्रंथों की जगह हम नदी में कूद जाते हैं। यह कहकर वे पांचों तुरंत उफनती नदी में कूद गए। उनमें से तीन तो तैरकर सकुशल नदी पार कर गए लेकिन दो छात्र भारतीय धर्मशास्त्रों की अमूल्य धरोहर को बचाने के

लिए नदी की भेंट चढ़ गए। ह्वेनसांग ने चीन पहुंच कर इन धर्मशास्त्रों का अनुवाद किया और इनकी रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करनेवाले छात्रों के प्रति जीवन भर कृतज्ञता व्यक्त करते रहे।

२५९) सही चुनाव- एक राजा को अपने दरबार के किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद के लिए योग्य और विश्वसनीय व्यक्ति की तलाश थी। उसने अपने आस-पास के युवकों को परखना शुरू किया। लेकिन वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाया। तभी एक महात्मा का पदार्पण हुआ, जो इसी तरह यदा-कदा अतिथि बनकर सम्मानित हुआ करते थे। युवा राजा ने वयोवृद्ध संन्यासी के सम्मुख अपने मन की बात प्रकट की- मैं तय नहीं कर पा रहा हूँ। अनेक लोगों पर मैंने विचार किया। अब मेरी दृष्टि में दो हैं, इन्हीं दोनों में से एक को रखना चाहता हूँ। कौन हैं ये दोनों? एक तो राज परिवार से ही संबंधित हैं, पर दूसरा बाहर का है। उसका पिता पहले हमारा सेवक हुआ करता था, उसका देहांत हो गया है। उसका यह बेटा पढ़ा-लिखा सुयोग्य है और राज परिवार से संबंधित युवक? उसकी योग्यता मामूली है। आपका मन किसके पक्ष में है? मेरे मन में द्वंद्व है, स्वामी। किस बात को लेकर? राज परिवार का रिश्तेदार कम योग्य होने पर भी अपना है, और... राजन्। रोग शरीर में उपजता है तो वह भी अपना ही होता है, पर उसका उपचार जंगलों और पहाड़ों पर उगनेवाली जड़ी-बूटियों से किया जाता है। ये चीजें अपनी नहीं होकर भी हितकार होती हैं। राजा की आँखों के आगे से धुंध छँट गई। उसने निरपेक्ष होकर सही आदमी को चुन लिया।

२६०) राजा भोज ने मरने के बाद भी लोगों को प्रेरणा दी- धारा नगरी के राजा भोज अत्यंत परोपकारी एवं न्यायप्रिय थे। वह अपना अधिकतर समय प्रजा की उचित देखभाल करने व गरीबों की सेवा- सहायता और धर्मशास्त्रों के अध्ययन में बिताते थे। प्रजा अपने राजा के राजकाज से बेहत प्रसन्न थी। लेकिन समय व मौत भला किसकी प्रतीक्षा करते हैं? एक दिन मौत ने राजा भोज को भी अपने पंजों में दबोच लिया। प्राण छोड़ने से पहले राजा ने अपने मंत्री व सेवकों से अपनी अंतिम इच्छा पूर्ण करने को कहा। मंत्री व सेवकों ने जब उनकी अंतिम इच्छा जानने की राय प्रकट की तो राजा भोज बोले, जब मेरा शव श्मशान ले जाओ, तो मेरा एक हाथ सफेद रंग से तथा दूसरा काले रंग से रंग देना। दोनों हाथ रंगने के बाद मेरे हाथ कफन से बाहर निकाल देना, जिससे समुचित प्रजा व अन्य लोग उन्हें देख सकें। मंत्री व सेवक सभी राजा भोज की इस अजीबोगरीब अंतिम इच्छा को सुनकर हैरत में पड़ गये। मंत्री द्वारा पूछने पर राजा भोज बोले, दीवानजी, मैं चाहता हूं कि मेरा मृत शरीर भी लोगों को अच्छी प्रेरणा दे। मेरे दोनों खाली हाथ प्रजा को प्रेरणा देंगे कि राजा हो या रंक, मरने के बाद सभी खाली हाथ परलोक जाते हैं। अपने साथ कोई कुछ नहीं ले जाता। मेरे हाथों का सफेद और काला रंग लोगों को यह प्रेरणा देगा कि यदि मरने के बाद साथ कुछ जाता है तो वह हमारे सफेद व काले अर्थात् अच्छे व बुरे कर्म होते हैं। राजा भोज की अंतिम इच्छा का अभिप्राय जानकर मंत्री व सेवक दंग रह गये और राजा भोज के प्रति नतमस्तक हो गये।

२६१) विवेक की शक्ति- एक दिन महान दार्शनिक सुकरात अपने शिष्यों के साथ बैठे थे। किसी गंभीर विषय पर चर्चा चल रही थी। तभी एक ज्योतिषी वहां आ पहुंचा। वह चेहरा देखकर चरित्र बताने के लिए मशहूर था। वह गौर से सुकरात को देखते हुए उनके शिष्यों से बोला, तुम लोगों ने इस व्यक्ति को अपना गुरु बनाया है, इसका सम्मान करते हो,

लेकिन इसका चरित्र गंदा है। इसके नथुनों की बनावट बता रही है कि यह क्रोधी है। यह सुनते ही सुकरात के शिष्य ज्योतिषी को मारने दौड़े पर सुकरात ने उन्हें फौरन रोक दिया और कहा, ये विद्वान हैं, इन्हें बोलने दो। इस पर ज्योतिषी तेज आवाज में बोला, मैं सत्य को छिपाकर सत्य का अपमान नहीं करना चाहता। इस व्यक्ति के सिर की बनावट से पता चलता है कि यह अत्यधिक लालची है और ठोड़ी बताती है कि यह सनकी है। इसके होठों से मालूम होता है कि यह देशद्रोही निकलेगा। सुकरात मुस्कराते रहे। उन्होंने उस व्यक्ति को उपहार देकर आदर के साथ विदा किया। एक शिष्य से रहा नहीं गया। उसने पूछ ही लिया, गुरुदेव, वह आदमी लगातार बकवास करता रहा, फिर भी आपने उसे इतना सम्मान दिया। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा। सुकरात गंभीर होकर बोले, उस व्यक्ति ने बकवास नहीं की बल्कि उसने सत्य कहा और सत्य की तरफ से मुंह मोड़ना बुरी बात है। यह सुनकर सारे शिष्य हैरत भरी नजरों से सुकरात को देखने लगे। एक शिष्य ने पूछा, यानी आप वैसे ही हैं, जैसा उसने बताया है? सुकरात बिना संकोच के बोले, हां, उसने जो कहा है, वह सत्य है। मुझमें भी कई अवगुण हैं लेकिन। सारे शिष्य एक साथ बोले, लेकिन क्या गुरुदेव? शिष्यों को समझाते हुए सुकरात ने कहा, क्रोधावेग में उससे एक चूक हो गई। शिष्यों ने पूछा कैसी चूक? सुकरात बोले, उसने मेरे विवेक पर ध्यान नहीं दिया जिसकी शक्ति से मैं अपने सभी दुर्गुणों को कैद करके रखता हूँ।

२६२) दर्पण पर कीचड़ फेंकने से उस पर क्या असर? - कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में जन्मी लल्लेश्वरी का बचपन से ही ध्यान-पूजा के प्रति लगाव था। बारह साल की उम्र में जब वह शादी के बाद ससुराल गईं, तो सौतेली सास उन्हें कष्ट देने लगी। उसे रूखा-सूखा भोजन दिया जाता और वह उसे ही भगवान का प्रसाद मानकर ग्रहण करतीं। भोग और तृष्णा से रहित होकर वह ईश्वर भजन को महत्व देतीं। एक बार उनकी ससुराल में कोई उत्सव था। एक पड़ोसन ने उन्हें तालाब के किनारे बर्तन मांजते देखा, तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने लल्लेश्वरी को जब उत्सव के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा, मुझे पकवानों में कोई रुचि नहीं है। मैं तो रूखे-सूखे भोजन से ही संतुष्ट हूं। ससुर को यह बात पता चली, तो गुस्से में उन्होंने लल्लेश्वरी को घर से निकाल दिया। अब लल्लेश्वरी मुक्त थीं। वह गलियों-बाजारों में घूम-घूमकर शिव के गीत गाती। लोग उनके गीत सुनकर मुग्ध हो जाते, पर बच्चे उन पर पत्थर फेंकते। जब बुढ़े-बुजुर्ग उसके प्रति दया दिखाते, तो वह कहतीं, लोग मुझे गालियां देने या दुर्वचन कहने के लिए स्वतंत्र हैं। शिव की भक्त होने के कारण मुझे यह सब सहन करना चाहिए। दर्पण पर कीचड़ फेंकने से भला दर्पण का क्या बिगड़ेगा? मन एक गधे समान है, जिसे वश में रखना ही उचित है। इसका लोगों पर असर पड़ने लगा और वे लल्लेश्वरी के भक्त बनने लगे। अंतत: लोगों ने उनकी निश्छल भक्ति स्वीकार कर ली।

२६३) संसार एक धर्मशाला, लोग कुछ दिन रहने के बाद चले जाते हैं- एक सन्यासी राजमहल के दरवाजे पर पहुंचा और द्वारपाल से बोला, मैं इस मकान में रहना चाहता हूं।

द्वारपाल ने समझा कि कोई सिरफिरा साधु है। उसने कहा, बाबा, यह मकान नहीं, राजमहल है।

सन्यासी ने कहा, राजमहल कहां, यह तो धर्मशाला है। इतने सारे लोग रहते हैं इस बड़ी धर्मशाला में, तो मैं क्यों नहीं रह सकता? तुम इस धर्मशाला के मालिक तक मेरी बात पहुंचाओ। विवाद के बाद भी सन्यासी वहां से नहीं हटा तो द्वारपाल ने राजा को जिद्दी साधु के बारे में सूचना दी। राजा ने सोचा, जरूर कुछ बात है और साधु को अंदर आने की इजाजत दे

दी। सन्यासी राजा के पास पहुंचा तो बोला, इस धर्मशाला की व्यवस्था ठीक नहीं है श्रीमानजी। मुझे यहां आने से रोका क्यों गया? राजा ने कहा, महात्माजी। आपको गलतफहमी हुई है। मैं राजा हूं और यह मेरा महल है। यहां जिस-तिस को आने की इजाजत नहीं है। साधु ने कहा, महल होगा आपकी दृष्टि में। आप बताएं कि इसका निर्माता कौन है? राजा ने कहा, मेरे पूर्वजों ने इस महल का निर्माण करवाया। कहां हैं वे? आप उनसे हमें मिलवाएं। अब वे कहां है? मैं उनकी पांचवी पीढ़ी का वंशज हूं। आपके पिताजी तो होंगे? वे भी नहीं हैं। सन्यासी ने राजा से कहा, आपकी पांच पीढ़ियां इस मकान में कुछ दिन रहीं, फिर चली गईं। स्पष्ट है कि यह भवन उनका नहीं था। इसमें वे कुछ दिन के लिए आए और फिर चले गए। तो धर्मशाला कहकर मैंने क्या अनुचित कहा?

२६४) अतिकल्पना आदमी को बिल्कुल निठल्ला बना देती है - दो यात्री रेल के डिब्बे में बैठे यात्रा कर रहे थे डिब्बा लगभग खाली था। आसपास की बर्थ पर केवल दो ही आदमी थे। सर्दी का समय था। एक आदमी उठा और उसने खिड़की फिर से बंद कर दी। दूसरे यात्री के चेहरे पर भी गुस्से का भाव आया और जब नहीं रहा गया तो उसने जाकर फिर खिड़की खोल दी। आखिर दोनों में वाद-विवाद हो गया। तभी टीटी आ गया और उसने विवाद का कारण पूछा तो एक ने कहा, मुझे ठंड लगती है, इसलिए खिड़की बंद रहनी चाहिए। ये श्रीमानजी बार-बार उसे खोल देते हैं।

दूसरे ने कहा- इतनी ज्यादा ठंड नहीं है। खिड़की बंद देने पर मुझे घुटन-सी होने लगती है। इसलिए मैं खिड़की खुली रखना चाहता हूं। टीटी खिड़की के पास गया और उसे हाथ लगाया तो उसका हाथ खिड़की के बाहर चला गया। उसने कहा, इसमें शीशा ही नहीं है। तुम किसे खोलना और किसे बंद करना चाहते हो?

दरअसल, उस खिड़की में कोई शीशा नहीं था, वह मात्रा खिड़की का फ्रेम था, जिसे दोनों बार-बार खोलते और बंद करते थे। कल्पना का बड़ा विचित्र संसार है। इसमें कल्पना से ही ठंड लगती है और कल्पना से ही गर्मी लगती है। अतिकल्पना आदमी को बिल्कुल निठल्ला बना देती है। वह जीवन में दुख के अतिरिक्त और कुछ हासिल नहीं कर पाता।

२६५) लोभ और त्याग- गौतम बुद्ध के एक अनुयायी ने अपनी सारी धन-दौलत लोकोपयोगी कार्यों में लगा दी और संयम का जीवन जीना शुरू कर दिया। वह हर वक्त प्रत्येक व्यक्ति की सहायता के लिए तैयार रहते। चारों तरफ उनके सत्कार्यों की चर्चा होने लगी। एक दिन कुछ लोग उनके पास आए। उनमें से एक व्यक्ति बोला, महानुभाव आपका त्याग प्रशंसनीय है। आपकी सेवाओं को लेकर समाज आपका कृतज्ञ है। हम सब लोग सार्वजनिक रूप से आपका अभिनंदन कर आपको दानवीर तथा मानव-रत्न के अलंकरण से विभूषित करना चाहते हैं। हम आपके पास यह निवेदन करने आए हैं कि आप सहर्ष हमें इसकी सहमति दें ताकि हम अपने कार्य को खुशी-खुशी निर्विघ्न संपन्न कर सकें। उस व्यक्ति की बात सुनकर बुद्ध के अनुयायी ने मुस्कराते हुए कहा, आप सब लोगों ने मुझे जितना आदर व सम्मान दिया है इसलिए मैं आपका आभारी हूं। किंतु मैंने कोई त्याग नहीं किया है। मेरे जिन गुणों का आप आदर कर रहे हैं, उन्होंने तो मुझे लाभ ही लाभ दिया है। ठीक उसी तरह जिस तरह बैंक में रुपये जमा करना त्याग नहीं, ब्याज का लाभ है। आप सभी जानते हैं कि दुकानदार ग्राहक को कोई वस्तु देकर त्याग नहीं करता बल्कि अपना लाभ कमाता है। उसी तरह मैंने भी अपने व्यक्तित्व से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को छोड़कर अपने स्वभाव में अहिंसा, परोपकार, क्षमा, सत्य दया आदि जैसे सद्गुण को

स्थान दिया है। इस तरह देखा जाए तो मैंने छोड़ा कम पाया ज्यादा। मुझे तो लाभ ही मिला। मैंने अतिरिक्त तो कुछ किया नहीं। यह सुनकर सब उनके प्रति नतमस्तक हो गए।

२६६) संगीत का सौंदर्य - फ्रांस के प्रसिद्ध संगीतकार गाल्फर्ड के पास एक लड़की संगीत सीखने आया करती थी जो अत्यंत कुरुप थी। एक दिन लड़की ने गाल्फर्ड को बताया कि जब कभी वह मंच पर जाती है तो सोचने लगती है कि अन्य लड़कियां तो बहुत ही आकर्षक हैं। कहीं लोग उसकी हंसी तो नहीं उड़ाएंगे। इस आशंका से वह ढंग से नहीं गा पाती। लेकिन घर पर अपने लोगों के बीच वह ठीक से गाती है और वहां सभी उसके गायन की प्रशंसा करते हैं। बस मंच पर जाने के समय ही वह अपनी सारी क्षमता गंवा बैठती है। गाल्फर्ड ने उसकी बातें ध्यान से सुनी। फिर अत्यंत स्नेहपूर्वक बोले, बेटी, संगीत का अपना सौंदर्य होता है। जो उस सौंदर्य का रस पीने आते हैं, वे गायक व गायिका का रूप नहीं देखते। फिर भी तुम ऐसा करो कि रोजाना एक बड़े शीशे के सामने खड़े होकर अपनी छवि निहारो और ऐसा करते हुए गीत गाओ। इससे तुम्हारी झिझक अपने आप खत्म हो जाएगी और यह भी समझ में आ जाएगा कि संगीत की मधुरता और संगीतकार के रूप का आपस में कोई संबंध नहीं है। दर्पण के सामने जब तुम भाव विभोर होकर गाओगी तो तुम्हारे मन से हर तरह का डर निकल जाएगा। फिर धीरे-धीरे तुम मंच पर बेफिक्र होकर गा सकोगी। लड़की ने अपने गुरु की सलाह पर उसी दिन से अमल करना शुरू कर दिया। इससे उसके भीतर आत्मविश्वास आने लगा। फिर जब वह मंच पर उतरी तो उसकी झिझक पूरी तरह खत्म हो गई। संगीत के क्षेत्र में उसने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। उसका नाम था मेरी वुडलनाल्ड।

२६७) थोपी गई अहिंसा भी हिंसा का रूप है - एक जैन मुनि हुए। बड़े प्रसिद्ध मुनि थे। नाम था शीतलप्रसाद। आगरा उनका आगमन हुआ। आगरा में एक कवि रहते थे बनारसीदास। वे उनके दर्शन को गये। कवि थे, मस्त आदमी थे। पूछा कि महाराज, आपका नाम जान सकता हूँ? उन्होंने कहा, मेरा नाम शीतलप्रसाद है। फिर कुछ बात चलने लगी। कवि जरा भुलक्कड़ स्वभाव के थे। थोड़ी देर बाद भूल गये। उन्होंने कहा, महाराज। आपका नाम जान सकता हूँ? मुनि थोड़े नाराज हुए। कहा, कह दिया- शीतलप्रसाद। फिर थोड़ी बात चली। कवि फिर भूल गये। वे जरा भुलक्कड़ थे। उन्होंने पूछा, महाराज। आपका नाम जान सकता हूं? तो शीतलप्रसाद ने डंडा उठा लिया और कहा कि मूरख। कितनी बार बताया कि शीतलप्रसाद। कवि ने कहा, महाराज। ज्वालाप्रसाद होता तो ठीक था। शीतलप्रसाद जमता नहीं। ऊपर से ढांक लोगे, भीतर न हो जायेगा। भीतर ज्वाला ही रहेगी, ऊपर से तुम कितने ही शीतलप्रसाद हो जाओ। नहीं, अहिंसा को ऊपर से मत थोपना, न सत्य को ऊपर से ओढ़ना।

२६८) लोककथा - ऊंट और सियार में अच्छा खासा प्रेम था। जंगल में हमेशा साथ घूमते थे। एक दिन सियार ने ऊंट से कहा- यार ऊंट। यदि इच्छा हो तो नदी के उस पार चले। ऊंट-क्यों भाई। वहां क्या विशेषता है? सियार ने कहा- वहां अपने को खाने के लिए काफी चीजें मिल जाएंगी, किंतु नदी में पानी ज्यादा होने से मैं तुम्हारे सहयोग के बिना अकेला नहीं जा सकता। चलो हरे-भरे खेतों में फल भी खा लेंगे और साथ-साथ सैर भी हो जाएगी। सियार ऊंट की पीठ पर बैठ गया। दोनों रवाना हुए और दोनों एक खेत में जा पहुंचे। खेत का मालिक सोया हुआ था। दोनों की मौज हो गई। खेत को तहस-नहस करते हुए फल-फूल खाने लगे। सियार का पेट छोटा होने से जल्दी ही भर गया। थोड़ी देर बाद सियार बोला- मित्र।

मुझे तो बुल-बुली (हूंकने की इच्छा) आती है। ऊंट ने कहा- भाई। अभी कुछ समय के लिए चुप रहना अन्यथा खेत का मालिक जग जाएगा, तो दोनों को मार पड़ेगी। ऊंट ने जवाब दिया। सियार नहीं माना। वह तो जोर-जोर से बोलने लगा। खेत के मालिक की आंखें खुलीं और हाथ में लाठी लेकर दोनों को मारने के लिए दौड़ा। सियार तो चालाक था। वह वहां से भाग गया किंतु ऊंट को मार खानी पड़ी। नदी के किनारे पर बैठा-बैठा सियार ऊंट की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में ही ऊंट आया। सियार ने पूछा- क्या बात है दोस्त? ऊंट बोला- मित्र। आज तो लेने के देने पड़ गए। अब तो कभी इस खेत में आना नहीं है। यदि तुम थोड़े समय के लिए मौन रख लेते, तो मार क्यों खानी पड़ती? सियार बोला- खैर, जो हुआ सो हुआ, अब यहां अधिक समय लगाना अच्छा नहीं है। शीघ्र चलो। कहीं वह खेत का मालिक पीछे से आ जाएगा, तो फिर और मार खानी पड़ेगी। दोनों चले। जैसे ही नदी के बीच मंझधार में पहुँचे त्योंही ऊंट बोला- मित्र सियार। मुझे तो लुटलुटी (लोटने की इच्छा) आती है। सियार घबराता हुआ बोला- भाई। अभी अगर तू लुटलुटी लेगा, तो मुझे बेमौत मरना पड़ेगा। नदी में पानी बहुत है। मैं तो डूब जाऊंगा। तू मेरा पुराना साथी है। मित्रता निभाना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। अत: अभी लुटलुटी मत लेना। नदी पार होने के बाद ले लेना। ऊंट बोला- दूसरों को उपदेश देना सरल है। मैंने कहा था- थोड़ी देर के लिए तू चुप रहना, तब भी तुमसे बुलबुली लिए बिना नहीं रहा गया, तो मुझसे भी लुटलुटी बिना नहीं रहा जाता। आखिर ऊंट पानी में लेट गया। ऊंट अपने स्थान पहुंच गया, उसकी थोड़ी भी हानि नहीं हुई, किंतु सियार पानी में डूबकर मर गया।

२६९) संत का धर्म - एक संत ने बचपन में ही घर बार छोड़कर संन्यास ले लिया था। बाल ब्रह्मचारी रहकर उन्होंने घोर तपस्या की। गृहस्थ जीवन को वे जीवन का बंधन मानते थे। अपना अधिक समय भगवान की उपासना में व्यतीत करते और भिक्षाटन से भोजन करते। एक दिन उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। उन्हें लेकर यमदूत चित्रगुप्त के पास गए। चित्रगुप्त ने उनका बहीखाता देखकर कहा, मैंने मोह, माया, घृणा, अहंकार आदि तमाम बुराइयों को तिलांजलि देकर शुद्ध मन से भगवान की आराधना की है। प्रभु की उपासना के सिवाय मैंने जिंदगी में कुछ नहीं किया, ताकि मुझे दोबारा पृथ्वी पर जन्म नहीं लेना पड़े। मुझे मोक्ष चाहिए। चित्रगुप्त ने कहा, यह सही है कि आपने मोह माया त्यागकर सच्चे मन से प्रभु की आराधना की है। किसी को दुख नहीं पहुंचाया, फिर भी आपको मोक्ष नहीं मिल सकता।

क्यों? संत ने पूछा। चित्रगुप्त ने कहा, इसका जवाब तो धर्मराज ही दे सकते हैं। यमदूत उन्हें लेकर धर्मराज के पास पहुंचे। धर्मराज ने भी उनका बही खाता देख कर कहा, वत्स, चित्रगुप्त का निर्णय सही है। आपको मोक्ष नहीं मिल सकता। संत ने कहा, यह हमारे साथ अन्याय है। धर्मराज ने कहा, वत्स यहां किसी के साथ अन्याय नहीं होता। सभी को उचित न्याय मिलता है। आप यही जानना चाहते हैं कि आपको मोक्ष क्यों नहीं मिल रहा है। हां, मैं जानना चाहता हूँ कि मुझमें कमी कहां रह गई कि मैं मोक्ष से वंचित हो रहा हूं, संत ने कहा। धर्मराज ने कहा, वत्स। पृथ्वी पर जितने प्राणी जन्म लेते हैं उनका कुछ न कुछ समाज के प्रति उत्तरदायित्व होता है। मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले हर व्यक्ति का सबसे बड़ा धर्म है कि वह सबसे पहले मानवता की सेवा करे, अपने परोपकार से दूसरों के दुख-दर्द को दूर करे। आपने तो इनमें से एक भी कर्म नहीं निभाया। आप का ध्यान तो सिर्फ अपने मोक्ष पर था। इसलिए अपना कर्म पूरा करने के लिए आपको पुन: पृथ्वी पर भेजा जा रहा है।

२७०) फूलों का देश - जापानी फूलों के बड़े शौकीन होते हैं। कमल, चेरी और गुलदाऊदी आदि के फूल उन्हें बहुत प्रिय हैं। जापान में कदम-कदम पर इन फूलों के बगीचे मिलेंगे। फूलों के मौसम में जापानी इनके स्वागत में कई उत्सव मनाते हैं, जो कमलोत्सव, चेरी-उत्सव और गुलदाऊदी-उत्सव आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इन फूलों में सुगंध तो नहीं होती, परंतु इनके रंग बहुत आकर्षक होते हैं। गरमियों में जब चेरी के वृक्ष पर फूल आते हैं तो उनकी शोभा देखने को सारा जापान उमड़ पड़ता है। जापानी लोग अपने पूरे परिवार के साथ बगीचों में जाते हैं और घंटों फूलों को निहारते रहते हैं। वे फूलों पर कविता करते हैं और उन कविताओं को फूलों के पौधों पर ही लटकाकर घर लौट आते हैं। पूरी बहार में खिले हुए फूलों की शोभा देखने के लिए निर्धन-से-निर्धन जापानी भी सौ मील तक की यात्रा खुशी के साथ कर लेता है। कमलों के मौसम में शिक्षकगण अपने विद्यार्थियों को सूर्योदय से पूर्व कमल के तालाब पर ले जाते हैं और समझाते हैं कि कमल किस तरह खिलते हैं। फूल चुनकर इकट्ठा करने के लिए मत ठहरो। आगे बढ़े चलो, तुम्हारे पथ में निरंतर फूल खिलते रहेंगे।

२७१) अतिथि सत्कार - श्री ईश्वरचंद विद्यासागर उस समय कलकत्ता के एक सुदूर क्षेत्र में रहते थे। आवश्यकतावश एक व्यक्ति उनको ढूंढता हुआ उनके घर पहुंचा। वह कई दिनों से विद्यासागरजी की तलाश में था। विद्यासागरजी उसे जानते भी नहीं थे। उसकी रामकथा सुनकर उन्होंने कहा- देखिए, भोजन तैयार है, पहले आप भोजन कर लें, फिर बात होगी।

आगुन्तक बहुत ही निर्धन था, जिसे संसार में कोई नहीं पूछता था, उसके साथ यही होता आया था। विद्यासागरजी जैसे महान व्यक्ति की उदारता देखकर उसकी आंखों से आंसू निकल आए। यह देखकर विद्यासागर बोले- आप रोते क्यों हैं? मैंने तो तुम्हें केवल भोजन के लिए कहा है, इसमें मुझ से कोई भूल हो गई हो तो मैं क्षमा चाहता हूं। मेरे यहां भोजन न कर सकें तो आप स्वयं भोजन बना लीजिए, उसकी व्यवस्था तुरंत हो जाएगी। वह बोला- मुझे तो आपकी दयालुता ने रुलाया है। इन दिनों मैं बहुत भटका हूं, कई दिनों से मुझे कुछ नहीं मिला है। किसी ने मुझे बैठने के लिए भी नहीं कहा, किंतु आप... विद्यासागरजी को अपनी प्रशंसा सुनने का अभ्यास तो था ही नहीं। उन्होंने कहा- इसमें विशेष क्या हो गया है? अपने घर पर कोई अतिथि आए तो उसका सत्कार करना तो सभी का कर्त्तव्य है। आप झटपट चलकर भोजन कर लीजिए। उसके भोजन कर चुकने के उपरांत ही विद्यासागरजी ने उसके आने के प्रयोजन के बारे में पूछताछ की।

२७२) लोककथा - बहुत पहले उद्मूर्त इलाके में एक लालची और भोंदू अमीर रहता था। उसके खेतों में कमेरे काम करते थे। उसे हमेशा उनसे शिकायत रहती थी कि वे काम तो धीरे-धीरे करते हैं, पर खाते बहुत ज्यादा हैं। सबसे ज्यादा अफसोस उसे इस बात का होता था कि दिन बड़ी जल्दी बीत जाता है। एक बार उसने सोचा कि चलकर किसी ऐसे आदमी को ढूंढूंगा जो यह जानता हो कि दिन को और लंबा कैसे किया जाए। चलते-चलते उसे मजाकिया लोप्शो मिला। अरे मालिक आप बड़े खुशकिस्मत हैं, लोप्शो बोला, दस बोरे आटे के मेरे घर ले आइये मैं आपको दिन लंबा खींचना सिखा दूंगा। अमीर सोचने लगा दस बोरे थोड़े नहीं, पर खैर इस काम के लिए इतनी कुर्बानी देनी ही होगी। वह आटे ले आया। तब मजाकिया लोप्शो उससे कहने लगा। देखिए मालिक, दिन इसलिए बीतता है कि सूरज आसमान पर चलता है। दिन लंबा खींचने के लिए आसमान पर सूरज को रोकना होगा। इसका एक ही

उपाय है कि पांचा लेकर सबसे ऊंचे पेड़ पर चढ़ जाइये। सूरज की ओर पांचा बढ़ाकर उसे पांचे में अटका लीजिए। बस, फिर पांचे को जितना कसकर पकड़े रखेंगे उतना ही धीरे सूरज चलेगा। हां ऊपर कहीं सूरज आपके शरीर को झुलसा न दे इसलिए आप भेड़ की खाल का मोटा कोट, मोटा टोप और गरम बूट पहनकर चढ़ियेगा। एक बात और किसी को यह काम सौंपना नहीं, खुद ही कीजिएगा ताकि किसी को पता न चले कि आप कैसे दिन लंबा खींचते हैं। अमीर खुश हो गया- अब तो कमेरों से खूब काम लूंगा। अगले दिन उसने गरम कपड़े पहने, पांचा लिया और चोरी-चोरी जंगल में चला गया। वहां सबसे ऊंचे पेड़ पर चढ़कर उसने पांचा सूरज की ओर बढ़ाया और उसे आसमान पर रोकने लगा। वह पांचा उठाये खड़ा था और सोच रहा था- सचमुच ही समय धीरे बीत रहा है, सूरज तो रूक ही गया लगता है। जल्दी ही उसे गरमी लगने लगी, पसीना निकलने लगा, ऊपर उठायी बाहें सुन्न हो गयीं। उसे लग रहा था जैसे कितने घंटे बीत गये हैं हालांकि बीता एक ही घंटा था। वाह, कैसे रोक रखा है मैंने सूरज को। वह तो जैसे चल ही नहीं रहा। आज खूब काम करेंगे मेरे कमेरे। हाय, बांहे दुख रही हैं। दोपहर होते-होते अमीर से रहा न गया। पेड़ से उतरकर वह अपने खेतों पर चला गया। हां, तो कमेरों। आज तुमने खूब काम किया है। आज के लिए बहुत है। जाओ, खाना खाओ, आराम करो। कमेरों की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था कि मालिक को हो क्या गया। अभी तो दोपहर ही हुई है, पर जैसा मालिक का हुक्म। छाया में बैठकर उन्होंने खाना खाया और लेट गये। अमीर ने आगे से सूरज न रोकने का फैसला किया। बेहद लंबा दिन हो गया था।

२७३) क्रोध का स्पर्श - सुबह का समय था। काशी में गंगा के घाट पर स्नान करनेवाले श्रद्धालुओं की भारी भीड़ थी। कुछ गंगा में डुबकी लगाकर आ रहे थे तो कुछ स्नान के लिए जा रहे थे। एक कर्मकांडी संत भी गंगा में डुबकी लगाने के बाद सीढ़ियों से ऊपर आ रहे थे। संत कर्मकांडी थे, इसलिए चाहते थे कि उनसे किसी का स्पर्श न हो। वह लोगों से बच-बचाकर ऊपर आ रहे थे, लेकिन संयोग से उनका स्पर्श एक चांडाल से हो गया। वह भी स्नान करके लौट रहा था। स्पर्श होते ही संत को क्रोध आ गया। वह चांडाल से बोले, तू अंधा है क्या? देखकर नहीं चलता। चांडाल बोला, नहीं गुरुवर, मैं अंधा नहीं हूं, लेकिन भीड़ इतनी ज्यादा है कि न चाहते हुए भी आपसे स्पर्श हो गया। लेकिन संत का गुस्सा इससे शांत नहीं हुआ और उन्होंने उसे दो छड़ी जमा दी और बोले, इस चांडाल के छूने से मुझे दोबारा नहाना पड़ेगा। इतना कहकर संत दोबारा गंगा में डुबकी लगाने चले गए। नहाते समय संत ने देखा कि वह चांडाल भी दोबारा स्नान कर रहा है। संन्यासी को चांडाल के नहाने पर आश्चर्य हुआ। दोनों नहा कर जब ऊपर आए तो संत से रहा नहीं गया। उन्होंने कहा, मैं तो तुम्हारे छूने से स्नान करने गया था लेकिन तुम क्यों नहाने गए? चांडाल विनम्र भाव से बोला, गुरुवर, एक बात पूछूं, गंगा में हम दोनों ने एकसाथ स्नान किया। स्नान करते समय किसी तरह की छुआछूत नहीं थी। उसी जल से आप भी नहा रहे थे और मैं भी। फिर बाहर आते ही हमारे स्पर्श से आप अपवित्र कैसे हो गए? रही बात दोबारा स्नान करने की, तो बाबा सबसे अपवित्र तो क्रोध है। मैं तो चांडाल हूं इसलिए अपवित्र हूं, लेकिन क्रोध तो एक चांडाल से भी ज्यादा अपवित्र है। क्रोध ने आपके भीतर प्रवेश करके मुझे छू दिया, इसलिए मुझे भी पवित्र होने के लिए स्नान करना पड़ा। इतना सुनते ही संत लज्जित हो गए और चुपचाप भीड़ में कही गुम हो गए।

२७४) स्वप्न का रहस्य - राजा जनक ने एक रात विचित्र स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि मिथिला को लूट लिया गया है और वह भिखारी बने भूख-प्यास से बेहाल जंगल में भटक रहे हैं। वे भटकते हुए एक ऐसे नगर में पहुँचे, जहां भूखों को खिचड़ी बांटी जा रही थी। जनक भी कतार में खड़े हो गए। लेकिन जब उनकी बारी आई तो खिचड़ी समाप्त हो गई। बांटनेवाले ने कहा, पतीले के पेंदे में लगा हुआ खुरचन है। कहो तो वह दे दूं। जनक के पास कोई चारा नहीं था। वह खुरचन लेने के लिए तैयार हो गए। बांटनेवाले ने जनक को पत्तल पर खुरचन दे दी। तभी कही से उड़ती हुई एक चील आ पहुंची। उसने पत्तल पर झपट्टा मारा तो खुरचन जमीन पर गिर गई। तभी जनक की आंखें खुल गईं। सपने से वह काफी भयभीत हुए। सोचने लगे- मैं तो खा-पीकर सोया था। मुझे तो जरा भी भूख नहीं है। मैं सोने के पलंग पर सोया हूं। मिथिला का राजा हूं। फिर सपने में लुटा-पिटा भिखारी क्यों बना? मुझे भूख ने व्याकुल क्यों किया? इन दोनों में सच क्या है, इसका संकेत क्या है? वह अपनी जिज्ञासा लेकर ऋषि अष्टावक्र के पास पहुंचे। अष्टावक्र ने इसका रहस्य समझाते हुए कहा, राजन्, दोनों में एक भी सत्य नहीं है। बस तुम ही सत्य हो। स्वप्न में तुम भिखारी थे, मगर जागने पर तुम्हारा भिखारी होना नहीं रहा। स्वप्न में तुम्हारा राजा होना नहीं रहा, लेकिन भिखारी होने में भी तुम थे और राजा होने में भी तुम ही थे। जो मिथ्या है, वह रहता नहीं और जो सत्य है वह कभी मिटता नहीं। सत्य तीनों काल में रहता है। स्वप्न और संसार एक ही है। स्वप्न में संसार रहता है और संसार भी स्वप्न है। इसलिए न वह सच था और न यह सच है। सबसे बड़ा सत्य है कि तुम हो। तुम्हारा होना सबसे बड़ा सच है। बाकी तुम्हारे दूसरे रूपों का कोई मतलब नहीं है।

२७५) संस्कृति की विशेषता - एक बार एक विदेशी मेहमान देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से मिलने पहुंचा। डॉ. प्रसाद के सेवक ने आगंतुक को बाहर बिठाया और प्रतीक्षा करने को कहा। उसने यह भी बताया कि राजेन्द्र बाबू अभी पूजा कर रहे हैं। वह विदेशी मेहमान कुछ देर बैठा रहा, फिर उसके भीतर उत्सुकता जागी। वह देखना चाहता था कि आखिर राजेन्द्र बाबू किस तरह पूजा कर रहे हैं, हालांकि वह अंदर जाने से कतरा रहा था। लेकिन उससे नहीं रहा गया। आखिरकार वह वहां पहुंच ही गया। वहां जाकर वह राजेन्द्र बाबू को पूजा करते हुए देखने लगा। डॉ. प्रसाद के मंदिर में मिट्टी की एक डली भी रखी हुई थी जिसके सामने उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़े व शीश झुकाया। यह देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। राजेन्द्र जी पूजा से उठे तो सामने विदेशी आगंतुक को पाकर प्रसन्न हो गए और उसे बैठक में ले गए। वह उस आगंतुक के चेहरे के भाव को देखकर ही समझ गए कि उसके भीतर उनकी पूजा को लेकर कोई न कोई सवाल उठ रहा है। बैठक में पहुंचते ही सबसे पहले आगंतुक ने उनसे मिट्टी की डली को पूजने का कारण पूछा और इसके पीछे के दर्शन को स्पष्ट करने को कहा।

राजेन्द्र बाबू उसकी जिज्ञासा मिटाते हुए बोले, मिट्टी की यह डली भारत की पवित्र माटी की प्रतीक है। हमारे यहां मिट्टी को ईश्वर की नियति माना गया है। इस पवित्र मिट्टी व नदियों के जल के माध्यम से ही हम असंख्य उपयोगी द्रव्य प्राप्त करते हैं, इसलिए हम भारतीय प्रकृति के कण-कण में ईश्वर के दर्शन करते हैं। यहां तक कि भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव, पशु-पक्षी, कंकड़-पत्थर सब में ईश्वर विराजमान है। यही हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

राजेंद्र बाबू के मुख से भारतीय संस्कृति की विशालता व ईश्वर की सर्वव्यापकता की व्याख्या से विदेशी आगंतुक बेहद

प्रभावित हुआ और भारतीय संस्कृति की महानता के आगे मन ही मन नतमस्तक हो गया।

२७६) सच्ची पूजा - एक बार संत राबिया बेतहाशा सड़क पर भागी जा रही थीं। उनके एक हाथ में पानी से भरा प्याला था और दूसरे में जलती मशाल। लोगों ने उन्हें इस तरह देखा तो हैरत में पड़ गए। आमतौर पर राबिया अध्यात्म का कोई गूढ़ तथ्य समझाने के लिए विचित्र कहानियों और रूपकों का प्रयोग करती थीं, लेकिन यह आचरण उन सबसे अलग था। लोग कुछ पूछें इसकी गुंजाइश भी नहीं थी क्योंकि वह तेजी से दौड़ती जा रही थीं और साथ में कुछ कहती भी जा रही थीं। हालांकि जिस किसी ने ध्यान दिया उसने राबिया के वचनों को सुना। वह कह रही थीं कि मैं स्वर्ग को जला देना और नरक को पानी में डुबो देना चाहती हूं। सुनने वालों को समझ में नहीं आया कि ऐसा कहने के पीछे आशय क्या है। राबिया की बात का मर्म जानने की उत्सुकता हर किसी में थी। लोग उनका सम्मान करते थे और उनकी बातें बड़ी गंभीरता से सुनते थे। इसलिए कई और लोग उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। एक जगह एक बुजुर्ग फकीर ने राबिया को रोका और पूछा कि वह ऐसा क्यों करना चाहती हैं। राबिया ने कहा, मैं स्वर्ग को जलाना और नरक को डुबाना इसलिए चाहती हूं कि लोग सही मायने में धार्मिक हो सके। लोग जन्नत के लालच में नेक काम करते हैं या दोजख से डरकर बुरे कामों से बचते हैं। लालच और डर जहां हो वहां ईश्वर के प्रति सच्चा प्रेम नहीं हो सकता। स्वर्ग और नरक नहीं होंगे तो लालच और डर मिट जाएगा और हम ऊपरवाले की बंदगी ज्यादा अच्छी तरह कर सकेंगे।

२७७) सर्वोत्तम ग्रंथ - गांधीजी के साथ उनके आश्रम में कुछ दिन रहे एक व्यक्ति ने देखा कि वे रामचरितमानस की बहुत प्रशंसा करते हैं और अक्सर उसके उदाहरण भी सुनाते रहते हैं। आश्रम से जाने के बाद उसने मानस का बड़े ही मनोयोग से अध्ययन किया, फिर कुछ विद्वानों से भी उस पर बात की। उसके बाद गांधीजी को एक पत्र लिखा, बापू, रामचरितमानस में स्त्री जाति की निंदा है, बालि के वध और विभीषण के देशद्रोह की प्रशंसा है। काव्य चातुर्य भी उसमें कुछ विशेष नजर नहीं आता। फिर भी आप उसे सर्वोत्तम ग्रंथ क्यों मानते हैं? समझ में नहीं आता कि आपके जैसा व्यक्ति इसके दोषों को नजरअंदाज कैसे कर गया। फिर आप हर समय इसका हवाला देते रहते हैं। आखिर दूसरों को इसके माध्यम से आप क्या संदेश देना चाहते हैं? गांधीजी पत्र पढ़कर मुस्कराए। फिर बाकी काम छोड़कर पहले उसी का जवाब देने बैठ गए। जवाब में गांधीजी ने लिखा, मेरे सामने ऐसे विचार पहले भी कुछ विद्वान लोग व्यक्त कर चुके हैं। वे दुर्भाग्य से अपने ज्ञान की सार्थकता रामचरितमानस को दोषों का पिटारा साबित करने में ही समझते हैं। यूं तो वेद, कुरान और बाइबल के भी आलोचकों का अभाव नहीं हैं, पर जो गुणदर्शी हैं, वे उनमें दोष नहीं देखते। मानस को मैं सर्वोत्तम इसलिए नहीं कहता कि कोई उसमें एक भी दोष नहीं निकाल सकता, बल्कि इसलिए कहता हूं कि उससे करोड़ों लोगों को शांति मिलती है। वह भक्ति और अनुभवजन्य ज्ञान का भंडार है। गांधीजी का जवाब पाकर उस व्यक्ति की आंखें खुल गईं।

२७८) सत्य की राह - जब मार्टिन लूथर ने ईसाई धर्म में प्रचलित रूढ़ियों के विरोध में आवाज उठाई तो एक खास तबके ने उन्हें और उनके सहयोगियों को तरह-तरह से परेशान करना शुरू कर दिया। इससे उकताकर एक दिन मार्टिन लूथर के एक शिष्य ने उनसे कहा, अब तो हद हो गई है, अब आप एक शाप देकर इन सब लोगों को जलाकर खाक कर

दीजिए। मार्टिन लूथर ने कहा, ऐसा कैसे हो सकता है? शिष्य बोला, आपकी प्रार्थना तो भगवान सुनते हैं। उन्हें प्रार्थना में कह दें कि इन सब पर बिजली गिरे। मार्टिन लूथर ने कहा, यदि मैं भी ऐसा ही विचार करने लगूं तो मुझमें और उनमें क्या अंतर रहा जाएगा? यह सुनकर शिष्य सोच में पड़ गया। उसने फिर कहा, लेकिन इन लोगों का अविवेक, अन्याय और नासमझी तो देखिए। आप जैसे सात्विक सज्जन और परोपकारी संत को ये न जाने क्या-क्या कहते हैं। मार्टिन लूथर बोले उसे देखना हमारा काम नहीं है। हमें तो अपने ढंग से असत्य और विकृतियों को उखाड़ फेंकने का काम करना है। शिष्य सारा काम ईश्वर को स्वयं देखना है। शिष्य फिर भी संतुष्ट न हुआ। उसने पुन: विनम्रता से कहा, आप अपनी शक्ति आजमा कर ही उन्हें क्यों नहीं बदल देते? आप तो सर्वसमर्थ हैं। इस पर मार्टिन लूथर ने कहा, यदि राग और द्वेष, रोग और दोष अंत:करण से न घटे तो गुरु उसमें किस प्रकार सहायक बन सकते हैं। मेरा काम है पाप का विसर्जन कर सत्य और शुभ का नवसर्जन करना। दूसरों को जो करना हो, करें। अपना काम तो अपने रास्ते पर दृढ़तापूर्वक चलना है।

२७९) असली लड़ाई - इस्लाम अपने आरंभिक चरण में था और अपने-आप को पुनर्गठित कर रहा था। हजरत मोहम्मद साहब इस मुहिम का नेतृत्व कर रहे थे। अरब कबीले के सरदार इस्लाम को दबाने और समाप्त करने के लिए मुस्लिमों पर अत्याचार कर रहे थे। मुसलमानों का अपने घर से निकलना, व्यापार करना तथा रोजी-रोटी कमाना तक दूभर हो गया। इसी सिलसिले में छोटी-छोटी लड़ाइयां होती रहती थीं। ऐसी ही एक लड़ाई को जीत कर आए दो युवक हजरत मोहम्मद साहब के पास पहुंचे और अपनी बहादुरी का बखान करने लगे। उनकी बातों में अभिमान का भाव देख हजरत मोहम्मद साहब ने उन्हें बड़े प्यार से अपने पास बिठाया और फरमाया, ये असली लड़ाई नहीं बल्कि असली लड़ाई तो अभी शुरू होनी है, जो तुम्हें खुद से लड़नी है। अपने अभिमान को भुलाकर अपने हृदय में प्यार, दया और इंसानियत के जज्बे को कायम रखना है और अल्लाह की राह में खुद को लगाना है। जो अपनी इंद्रियों पर काबू पा लेता है वही असली विजेता है। इन बातों को सुनकर उन युवकों का अभिमान जाता रहा।

२८०) एक बार हजरत मूसा के मन में यह विचार घर कर गया कि वह सबसे ज्यादा अल्लाह की इबादत करनेवाले व्यक्ति हैं। उनसे बड़ा इबादतगार कोई दूसरा नहीं है। अल्लाह तो मन की बात जाननेवाला है। वह हजरत मूसा के इस विचार को भी जान गया। अल्लाह ने इशारा किया और कायनात (ब्रह्माण्ड) की हर चीज चैतन्य हो उठी। हजरत मूसा को हर वस्तु अल्लाह का जाप करती दिखाई देने लगी। पत्थर, पेड़, कीड़े, मकोड़े, जानवर, फरिश्ते सभी इबादत में व्यस्त नजर आए। उन्हें लगा कि पत्थर और पेड़-पौधे तो हजारों सालों से इबादत में लगे हुए हैं, लेकिन वह अपने थोड़े दिनों की इबादत को ही अधिक मानकर उस पर घमंड कर रहे हैं। यह सोचकर हजरत मूसा नतमस्तक हो गए और रो-रोकर अपने घमंड के लिए क्षमा याचना करने लगे। जब उन्होंने अपना सिर उठाया तो कायनात पहले जैसी ही शांत थी।

२८१) लोककथा - एक बुढ़िया थी। उसके एक बेटा था घर में बड़ी गरीबी थी। बुढ़िया ने कहा- पुत्र। बाजार में जाओ, किसी समझदार से पूछकर आओ कि अपनी गरीबी कैसे दूर हो सकती है? बेटा बाजार में गया। दुकानदारों से पूछने लगा। एक व्यापारी ने कहा- यहां से पचास कोस पर एक महात्मा रहते हैं, वह इस सवाल का जवाब देने में समर्थ हैं। घर आया और मां से बोला- मां, मुझे आशीर्वाद दो, मैं महात्माजी के पास आपके सवाल का जवाब लेने जाता हूं। मां ने खुशी-

खुशी विदाई दी। वह घर से चल पड़ा। चलते-चलते एक गांव में आया। रात हो गई थी। वह नगर सेठ की हवेली में आया। रात हो गई थी। उसने नगर सेठ की हवेली में विश्राम किया। सुबह जाने लगा, तो सेठानी ने उससे सारी बात की जानकारी ली। वह बोली- मेरे भी एक सवाल का जवाब लेते आना- मेरी लड़की जन्मजात गूंगी है। वह कब बोलेगी? बुढ़िया का बेटा आगे बढ़ा। जंगल में उसे एक बाबाजी मिल गए। बातचीत हुई। बाबाजी ने कहा- मुझे साधु हुए पचास साल हो गए किन्तु अभी तक मुझे ज्ञान नहीं मिला। इस सवाल का भी जवाब महात्माजी से लेते आना। वह फिर आगे बढ़ा। रास्ते में उसे एक माली मिला। उसने कहा- मेरे बगीचे के अनार के पेड़ के चारों तरफ कोई भी वृक्ष जड़ क्यों नहीं पकड़ रहा है, इसका जवाब महात्माजी से जरूर लेते आना। बुढ़िया का बेटा चलते-चलते महात्माजी के पास पहुंचा। नमस्कार किया और बोला- मैं कुछ सवालों का जवाब लेने आया हूं।

महात्मा ने कहा- मैं एक बार में तीन सवालों का जवाब दे सकता हूं, इसलिए जोचाहो वे तीन सवाल पूछ लो। उसके पास चार सवाल थे। किसका सवाल छोड़े वह असमंजस में पड़ गया। आखिर उसने अपना सवाल छोड़ने का फैसला किया। सबसे पहले माली मिला। बुढ़िया के बेटे ने कहा- मालीजी। अनार के वृक्ष के चारों तरफ मोहरों से भरे हुए चार कलश दबे पड़े हैं। जब कलश रहेंगे तब तक कोई भी दूसरा वृक्ष जड़ नहीं पकड़ेगा। माली ने जमीन को खोदा। चार कलश मिल गए। माली ने आभार प्रदर्शित करते हुए मोहरों का एक कलश बुढ़िया के बेटे को दे दिया। कलश लेकर वह आगे चला। बाबाजी मिले। उसने कहा- महाराज। आपकी जटा में रत्न छिपा हुआ है। जब तक यह रहेगा, तब तक साधना का स्वाद नहीं आएगा और न ही ज्ञान मिलेगा। बाबाजी ने कहा- तुम भले आदमी हो। मेरा सवाल पूछ आए। बाबाजी ने जटा खोलकर रत्न बुढ़िया के बेटे को दे दिया। आगे वह सेठजी के घर पहुंचा। उसने सेठानी से कहा- आपकी लड़की जब अपने पति का मुंह देखेगी तब वह बोलने लग जाएगी। अचानक वह लड़की आ गई। बुढ़िया के बेटे को देखते ही बोलने लगी। सेठानी ने कहा- इसका मतलब इसके होनेवाले पतिदेव आप ही हैं। बुढ़िया के बेटे की शादी भी हो गई। लाखों का धन लेकर रथ में बिठाकर वह पत्नी सहित घर पहुंचा। मां ने पूछा- पुत्र। गरीबी कैसे दूर होगी, जवाब ले आया? बेटा बोला- माताजी। आपके आशीर्वाद से लाखों का धन मिल गया और मेरी शादी भी हो गई। बेटे ने सारी राम कहानी सुनाई। बुढ़िया ने कहा- तुमने अपने स्वार्थ के सवाल को दूर रखा इसलिए जिन्दगी में खूब ठाठा-बाट हो गए। जो दूसरों के सवाल के जवाब ढूंढता है उसे अपने सवाल का जवाब अपने आप मिल जाता है।

२८२) कुत्ता घर का और गाँव का - एक बार घर का कुत्ता और गाँव का कुत्ता रास्ते में टकरा गए। गाँव के कुत्ते ने देखा कि उसका मित्र काफी तंदुरुस्त और हट्टा-कट्टा है। जबकि उसकी अपनी हालत बड़ी नाजुक थी। पूरे-पूरे दिन उसे खाने को नहीं मिलता था। तभी घर के कुत्ते ने सहानुभूति से भरकर उसे बताया, अगर तुम चाहो तो तुम्हें भी पेट भरकर खाना मिल सकता है। गाँव के कुत्ते ने पूछा, वह कैसे? घर के कुत्ते ने जवाब दिया, तुम्हें हमारे मालिक के घर की चौकीदारी करनी होगी। मैं तैयार हूं। गाँव का कुत्ता बोला, पर तुम्हारे गले में यह क्या है? पट्टा। घर के कुत्ते ने बताया, रात में मैं पहरेदारी करता हूँ। दिन में हमारा मालिक मुझे बाँधकर एक कोने में बिठा देता है। यह सुनकर गाँव का कुत्ता चलता बना। <u>यशस्वी होने का सबसे छोटा रास्ता अंतरात्मा के अनुसार चलना है</u>।

२८३) छोटा और बड़ा काम - अब्राहम लिंकन जब अमेरिका की धारा सभा के सदस्य चुने गए तो उनका अभिनंदन करने के लिए अपार मानव समूह उमड़ पड़ा। उसमे अनेक जाने-माने और धनी लोग थे। जब ये सारे लोग लिंकन के घर पहुँचे तो वे अपनी गाय दुह रहे थे। कुछ समय तक विस्मय का वातावरण बना रहा। आखिर जब एक सज्जन से न रहा गया तो उसने पूछ डाला, अरे, आप देश के अग्रणी नेता होकर अपने हाथ से गाय दुह रहे हैं। लिंकन ने मुसकराकर उत्तर दिया, भाइयो, काम कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। हम लोग श्रम से डरते हैं और अपना काम औरों पर छोड़ देते हैं। यह हमारे भीतर की एक बड़ी कमी है। वही सफल होता है जिसका काम उसे निरंतर आनंद देता है।

२८४) मूल्य का ज्ञान - एक सेठ ने एक संन्यासी से निवेदन किया, स्वामीजी, आप कृपया मेरे घर भोजन के लिए पधारें। आप आएंगे तो कुछ धर्म चर्चा भी होगी। मेरे ज्ञान में थोड़ी वृद्धि होगी। संन्यासी ने सोचा अगर इसे कुछ लाभ हो जाए तो उनका जाना ही उचित है। वह भोजन के लिए सेठ के घर पहुंचे। सेठ ने संन्यासी के सामने स्वादिष्ठ व्यंजन परोसे और फिर अपनी उपलब्धियों की चर्चा करने लगा। उसन कहा, मेरे पास सैकड़ों एकड़ जमीन है। मेरा कारोबार देश भर में फैला है। मैंने धर्म के प्रचार के लिए क्या-क्या नहीं किया है। मैंने एक नहीं सैकड़ों धर्मशालाएं बनवाई है। मैंने शहर में कई जगहों पर ऐसी व्यवस्था की है कि वहां पहुंचनेवाले हर भिखारी को एक-एक किलो खिंचड़ी अवश्य मिले। मेरे लड़के भी मेरी ही तरह योग्य है। उनका भी व्यापार चारों तरफ फैला है। संन्यासी ने देखा कि सेठ का चेहरा घमंड से फूला हुआ है। वह अपनी हर बात पर गदगद हो रहा था। संन्यासी ने उसका ध्यान दीवार पर टंगे एक नक्शे की ओर आकृष्ट करते हुए कहा, यह विश्व का नक्शा है। इसमें पूरा संसार समाहित है। अब बताओ इसमें हमारा देश कहां हैं? सेठ ने तुरंत उंगली रखकर भारत को दर्शाया। संन्यासी ने कहा, अब अपना राज्य और गांव ढूंढकर दिखाओ। सेठ ने राज्य तो खोज लिया पर गांव न खोज सका। संन्यासी ने कहा, जब तेरे गांव का पता नहीं है तो तेरी उस जमीन का पता कैसे लगेगा जिस पर तू इतना घमंड कर रहा है। संसार में तेरे से अधिक धनवान है और उनसे भी अधिक धनवान है। उनके सामने तेरा वैभव कुछ भी नही है। फिर इतना अभिमान क्यों? जिस समृद्धि पर तू इतना फूल रहा है वह स्थायी नहीं है। नश्वर वैभव की चकाचौंध में तू आत्मा को भूल गया है। तूने मुझे बुलाया था धर्म चर्चा के लिए पर तू तो केवल अपनी चर्चा में लगा रहा। संभल जा। अपने को पहचान। सेठ को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने संन्यासी से क्षमा मांगी।

२८५) समय का उपयोग - एक बार प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार डॉ. जॉन से उनके एक मित्र ने अपनी परेशानियों का बखान करते हुए कहा, देखिए दिन-रात में कुल मिलाकर २४ घंटे होते हैं। इनमें से ८ घंटे सोने में, ८ घंटे दफ्तर में और बाकी ८ घंटों में न जाने कितने काम करने पड़ते है। खाना-पीना, हजामत बनाना, भेंट-मुलाकात, पत्र व्यवहार जैसे काम इन्हीं ८ घंटों में निपटाने पड़ते है। मैं तो बेहद परेशान हो जाता हूं। इतनी व्यस्त जिंदगी में लाख इच्छा रहने पर भी मैं न किसी धार्मिक चर्चा में शामिल हो पाता हूं, न धर्मग्रन्थों को पढ़ने के लिए ही अवकाश निकाल पाता हूं। इनसे पीछा छूटे तभी धार्मिक क्रियाकलापों में लगूंगा। डॉ. जॉनसन मुस्कराए और बोले तब तो लगता है मुझे भूखों मरना पड़ेगा। क्यों? मित्र ने पूछा। डॉ. जॉनसन ने कहा, आप जानते हैं कि मैं अधिक खानेवाला व्यक्ति हूं। लेकिन दुनिया में अन्न उपजाने के लिए सिर्फ एक चौथाई जमीन है। उसमें भी न जाने कितने पहाड़, समुद्र, नदियां और रेगिस्तान है जबकि संसार में मेरे जैसे

पेट भरनेवाले करोड़ों है। मित्र बोला, आप तो व्यर्थ ही परेशान होते हैं। दुनिया में सदा से करोड़ों लोग रहते आए हैं। उनके भोजन का इंतजाम भी होता आया है। फिर आप किसलिए चिंता कर रहे है। यह सुनकर डॉ. जॉनसन बोले आप ठीक कहते हैं। यदि मेरे जीवन का प्रबंध हो सकता है तो फिर कोई कारण नहीं है कि आपको धार्मिक समारोह में शामिल होने व धर्मग्रंथ पढ़ने का समय न मिले। मित्र निरुत्तर हो गया।

२८६) पश्चात्ताप - कर्णवास का एक पंडित महर्षि दयानंद सरस्वती को प्रतिदिन गालियाँ दिया करता था, पर महर्षि शांत भाव से उन्हें सुनते रहते और उसे कुछ भी उत्तर न देते। एक दिन जब वह गाली देने नही आया तब महर्षि ने लोगों से उसके न आने कारण पूछा। लोगों ने बताया, वह बीमार है। महर्षि फल और औषध लेकर उसके घर पहुँचे। वह महर्षि को देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा और अपने असद्व्यवहार के लिए क्षमा माँगने लगा। इसके बाद उसका गाली देना सदा के लिए छूट गया।

२८७) नकली मोर - एक कौए ने मोर के पंख लगा लिये और अपने आपको मोर समझकर मोरों की एक टोली में जा घुसा। उसे देखकर मोरों की टोली ने उसे फौरन पहचान लिया। फिर क्या, दूसरे ही पल सारे मोर उसपर झपट पड़े। चोंच मारकर उसे अपनी टोली से दूर खदेड़ दिया। रूआँसा होकर कौआ अपनी जमात में वापस लौट आया। उसके अपने भाई-बंधु भी उसकी इस हरकत से नाराज हो गए थे। वे भी उसपर टूट पड़े। सारे कौओं ने मिलकर उसके पंख नोच डाले। नकल को अकल कहाँ।

२८८) अनोखा फैसला - पुरानी कथा है। चीन में एक विचारक की काफी धूम थी। लोग उससे बेहद प्रभावित थे। राजा ने उसकी तारीफ सुन उसे न्यायाधीश बना दिया। उन्हीं दिनों नगर के सबसे धनवान सेठ के घर में चोरी हो गई। सब जानते थे कि सेठ ने इतनी अकूत संपत्ति बेईमानी व लोगों का शोषण करके इकट्ठा की है। किंतु चोरी तो चोरी थी इसलिए चोर को पकड़ने के लिए अभियान छेड़ा गया। चोर पकड़ा गया। उसने अपनी गलती स्वीकार कर ली। न्यायाधीश ने उसे चोरी के जुर्म में एक साल की सजा सुना दी। चोर को सजा सुनाने के बाद न्यायाधीश ने सेठ की संपत्ति की जांच शुरू करवा दी लेकिन सेठ की दलील थी कि उसने सारी कमाई तिजारत से हासिल की है। उसने किसी का शोषण कर या गलत तरीके से धन अर्जित नहीं किया है। लेकिन न्यायाधीश ने इस बात को नहीं माना। उसने फैसला सुनाते हुए कहा, इस संपत्ति का कुछ हिस्सो चुरानेवाले चोर को तो एक वर्ष की सजा दी गई है मगर इस संपत्ति के मालिक को दो वर्ष की सजा दी जाती है। सेठ ने फैसले पर सवाल उठाया तो न्यायाधीश ने कहा, चोर ने तो चोरी की बात मान ली। उसके हृदय परिवर्तन की गुंजाइश है। लेकिन तुमने तो झूठ बोलकर सही रास्ते पर आने के सारे रास्ते बंद कर लिए हैं। चोर को सजा जरूर मिलनी चाहिए किंतु जब तक केवल चोरों को सजा मिलती रहेगी और आम आदमी का शोषण करनेवाले खुलेआम घूमते रहेंगे तब तक चोरी बंद नहीं होगी। इसलिए तुम्हें सजा सुनाई गई है।

२८९) एकता का रहस्य - जापान के सम्राट यामातो के भूतपूर्व मंत्री ओचो-सान के परिवार के दो-तीन पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते थे। उसके परिवार में लगभग एक हजार सदस्य थे, पर उनके बीच एकता का अटूट बंधन था। परिवार के किसी भी सदस्य पर मुसीबत आने पर सब एक हो जाते थे। यह बात सम्राट यामातो के कानों तक भी पहुंची। उसे

विश्वास नहीं हो रहा था कि हजार व्यक्तियों का परिवार प्रेम से एक साथ रह सकता है। वह इस बात की जांच करने के लिए बिना कोई सूचना दिए ओ-चो-सान के घर जा पहुंचा। ओ-जो-सान काफी वृद्ध हो गया था, इसलिए हमेशा घर में ही रहता था। उसके घर में सम्राट का काफी स्वागत-सत्कार किया गया। औपचारिक बातें करने के बाद सम्राट यामातो ने ओ-चो-सान से पूछा, मंत्री जी। जापान के हरेक घर में आपके परिवार की मिसाल दी जाती है। क्या आप बताएंगे कि एक हजार से अधिक व्यक्तियों वाले आपके परिवार में एकता और स्नेह संबंध किस तरह बना हुआ है? ओ-चो-सान वृद्धावस्था के कारण अधिक बातें नहीं कर पाता था। इसलिए उसने सम्राट की बात का जवाब देने के लिए अपने पोते को संकेत से कागज और कलम लाने के लिए कहा। उनका पोता तुरंत कागज-कलम ले आया। इसके बाद ओ-चो-सान ने अपने कांपते हाथ से कागज पर कुछ शब्द लिखे और फिर कागज सम्राट की ओर बढ़ा दिया। सम्राट ने उत्सुकतावश कागज की ओर देखा तो हैरान रह गया। ओ-चो-सान ने पूरे कागज पर एक ही शब्द लिखा हुआ था- सहनशीलता, सहनशीलता, सहनशीलता। सम्राट को अपना उत्तर मिल गया।

२९०) दूसरे को ज्यादा पैसे मिलते देख नाराज हुआ मजदूर- एक बहुत बड़े ठेकेदार के यहां हजारों मजदूर काम करते थे। एक बार उस क्षेत्र के मजदूरों ने अपनी मांगों को लेकर हड़ताल कर दी। महीनों हड़ताल चलती रही। नतीजतन मजदूर भूखे मरने लगे और रोजी-रोटी कमाने के लिए दूसरी बस्तियों में चले गए, लेकिन दूसरी बस्तियों के गरीब मजदूर इस बस्ती में आ पहुंचे। ठेकेदार नित्य ही ऐसे लोगों की तलाश में रहता था, जो उसके ठेके का काम पूरा कर सकें।

अत: एक दिन वह बस्ती के चौराहे पर आकर खड़ा हो गया। तभी एक मजदूर कंधे पर कुदाली रखे वहां आया। ठेकेदार ने उससे पूछा- क्या मजदूरी लेगा? मजदूर ने कहा- बारह आने। ठेकेदार ने उससे कहा- अच्छा दूंगा, जाकर मेरे ईंटों के भट्ठी के लिए मिट्टी खोदो। इसके बाद एक दूसरा मजदूर वहां आया, ठेकेदार ने उससे भी मजदूरी पूछा वह बोला- तीन रुपए।

ठेकेदार ने उसे खान में कोयला खोदने भेज दिया। तीसरे मजदूर ने बड़े ताव से दस रुपए अपनी मजदूरी बताई। ठेकेदार ने उसे हीरे की खान में भेज दिया। शाम को तीनों मजदूरी लेने पहुंचे। पहले ने सौ टोकरी मिट्टी खोदी। दूसरे ने दस मन कोयला निकाला और तीसरे को एक हीरा मिला। तीनों के हाथ पर जब मजदूरी रखी गई तो पहला मजदूर तीसरे मजदूर के हाथ पर दस रुपए देखकर नाराज होने लगा।

तब ठेकेदार बोला- तुम्हारी मजदूरी तुमने ही तय की थी। जिसमें जितनी शक्ति और इच्छा थी, उसने उतनी मजदूरी बताई और सभी ने काम भी उसी के अनुरूप किया है। यह सुनकर पहला मजदूर चुप हो गया। शक्ति ही जीवन है, दुर्बलता ही मृत्यु है। अत: आशावादी, दृढ़ व अनुकूल विचारों को अपनाकर तदनुकूल कर्म करना चाहिए।

२९१) दोस्ती की मिसाल - सिसली के सिराक्यूज नगर के राजा डायोनीसियस ने किसी सामान्य अपराध के लिए डेमन नाम के एक युवक को प्राणदंड की सजा सुना दी। डेमन ने सिर झुकाकर सजा स्वीकार की, लेकिन राजा से यह प्रार्थना भी की कि उसे एक वर्ष का समय दिया जाए। वह ग्रीस जाकर अपनी संपत्ति व परिवार के लिए जरूरी व्यवस्था करके ठीक समय पर लौट आएगा। राजा ने शर्त रखी, यह तभी मुमकिन है जब कोई तुम्हारी जमानत दे और वचन दे कि तुम न लौटे तो तुम्हारी जगह वह फांसी चढ़ेगा। राजा का निर्णय सुनकर डेमन का मित्र पीथियस आगे आया और उसने

डेमन की जमानत ले ली। एक वर्ष पूरा होने पर भी डेमन नहीं लौटा। लोगों ने पीथियस को मूर्ख कहा, किंतु वह खुश था। पीथियस ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि किसी तरह समुद्र में तूफान आ जाए और डेमन का जहाज मार्ग से भटक जाए। आखिर जब तय समय तक डेमन नहीं पहुंचा तो पीथियस को फांसी स्थल पहुंचा दिया गया। उसे बस सजा मिलनी ही थी कि तभी दौड़ता-हांफता डेमन वहां पहुंचा और चिल्लाया, मेरे मित्र को फांसी मत दो। वास्तव में डेमन का जहाज समुद्री तूफान में फंस गया था। किसी तरह किनारे पहुंचकर डेमन को जो भी सवारी मिली उसी से वह भागा। उसका घोड़ा काफी तेज दौड़ने के कारण गिरकर मर गया। डेमन भूखा था और उसके पैरों में छाले पड़ गए थे। राजा दोनों दोस्तों का प्रेम देखकर प्रभावित हुआ। उसने डेमन की सजा माफ कर दी और खुद भी उसका मित्र बन गया।

२९२) महावीर की बात सुनकर चरणों में लौट गया दुष्ट- महावीर स्वामी तपस्या में लीन थे। एक दुष्ट उनके पीछे लग गया। कई बार उसने महावीर स्वामी का अपमान किया, लेकिन वे सदैव शांत ही रहते। उन्होंने तो संसार को प्रेम का पाठ पढ़ाया था। वे कहते थे सदा प्रेम करो, प्रेम में ही परमतत्व छिपा है। जो तुम्हारा अहित करे उसे भी प्रेम करो।

उनके इन उपदेशों को सुनकर वह दुष्ट यह देखना चाहता था कि कष्ट देनेवालों से कौन और कैसे प्रेम कर सकता है? अत: वह प्राय: उन्हें कष्ट दिया करता था। एक दिन महावीर एक पेड़ के नीचे तपस्या में लीन थे। वह दुष्ट उनके पास आया और उसने उनके साथ छेड़छाड़ शुरू कर दी। महावीर शांत रहे। दुष्ट ने देखा कि उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा तो उसने लकड़ी का एक टुकड़ा महावीर के कान में डाल दिया। उनके कान से खून बहने लगा। फिर उनके दूसरे कान में भी उसने वैसा ही किया। वह कान भी खून से लथपथ हो गया। तब भी महावीर शांत रहे।

दुष्ट ने देखा कि महावीर की आंखों से आंसू बहने लगे हैं और वे कराह रहे हैं। यह देखकर वह थोड़ा पसीजा और बोला- तुम्हें मैंने बहुत कष्ट दिया। तुम्हें पीड़ा हो रही है? महावीर ने कहा- पीड़ा मेरे तन को नहीं, मन को हो रही है। दुष्ट बोला- लेकिन घायल तो तुम्हारा तन हुआ है। महावीर ने कहा- तन के विषय में मुझे नहीं मालूम। तुम्हें जो अच्छा लगे, करो। तुमने जो कर्म किया है उसके लिए तुम्हें कितना कष्ट भोगना पड़ेगा, बस यही सोचकर दुखी हो रहा हूं। यह सुनकर दुष्ट उनके चरणों में गिर पड़ा।

२९३) सुख का विस्तार - कर्नाटक के बेलगांव में प्रसिद्ध विद्वान पंडित चिदंबर दीक्षित रहा करते थे। ज्ञान, भक्ति और सेवा कार्यों में उनका कोई सानी न था। आसपास के लोग उनके पास विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए आते रहते थे। एक दिन एक महिला दीक्षित जी के घर पहुंची। वह पंडित जी से संतान प्राप्ति का आशीर्वाद लेने आई थी। उसने बताया कि वह सभी व्रत-उपवास करती है, लेकिन इसके बावजूद उसकी मनोकामना पूरी नहीं हो पा रही है। इसलिए उसका जीवन दुखद हो गया है। वह अपने को अकेली और असहाय समझती है। दीक्षित जी ने उसके पास पड़े चने में से दो मुट्ठी चने दिए और एक कोने में बैठकर इंतजार करने को कहा। वह महिला घर के बाहर एक कोने में बैठकर चने खाने लगी, तभी सड़क पर खेल रहे बच्चे उस महिला का मुंह ताकने लगे। कुछ ने चने पाने की आशा में अपने हाथ भी उस महिला के सामने फैला दिए। महिला ने दूसरी तरफ मुंह मोड़ लिया और चुपचाप चने खाती रही। बच्चे मायूस होकर उसे देख रहे थे और उसने देखते ही देखते चने खत्म कर दिए। पंडित जी भी दूर से सारा दृश्य देख रहे थे। उन्होंने महिला

को बुलाकर कहा, तुम मुफ्त में मिले चने भी भगवान रूपी बच्चों के साथ मिल बांटकर नहीं खा सकती, तो तुम भगवान से कैसे आशा करती हो कि वे तुम्हें बच्चों का सुख प्रदान करेंगे। तुम संतान चाहती हो लेकिन तुम्हारे भीतर बच्चों के लिए कोई ममता ही नहीं है। तुम यह सोचती हो कि तुम्हारे अपने बच्चे होंगे तभी तुम उन्हें प्यार करोगी। दूसरों के बच्चों से तुम्हें क्या मतलब। यह एक गलत सोच है। तुम अपने हृदय का विस्तार करो। सबको गले लगाओ। सबके ऊपर ममता लुटाओ। दूसरों के बच्चों को भी अपनी ही संतान समझो। तुम देखोगी कि तुम्हारा जीवन एकदम बदल गया है। तुम अपने को अकेली और असहाय समझना बंद कर दोगी। महिला ने वचन दिया कि वह अपनी सोच बदलेगी।

२९४) सबसे बड़ी कला - बहुत पुरानी कथा है। किसी गांव में एक बड़ा ही होशियार लड़का रहता था। वह नई-नई चीजें सीखने में लगा रहता था। उसने एक तीर बनाने वाले से तीर बनाना सीखा, नाव बनानेवाले से नाव बनाने की कला सीखी। मूर्तिकार से मूर्तिकला की जानकारी हासिल की। इस तरह धीरे-धीरे वह एक के बाद एक बहुत सी कलाएं सीख गया। लेकिन उसे इस बात का अहंकार हो गया। वह हमेशा सबसे कहता फिरता, मेरे बराबर दुनिया में कोई गुणवान नहीं है। संयोग से उन्हीं दिनों गौतम बुद्ध घूमते हुए वहां आ पहुंचे। उन्हें जब उस लड़के के बारे में पता चला तो वह भिक्षापात्र लेकर उसके पास पहुंच गए। लड़के ने उन्हें देखकर पूछा, आप कौन है? बुद्ध ने उत्तर दिया, मैं अपने शरीर को काबू में रखनेवाला एक आदमी हूं। लड़का उनकी बात समझ नहीं पाया और बोला, मैं आपकी बात का मतलब नहीं समझा। कृपा करके विस्तारपूर्वक समझाएं। इस पर बुद्ध ने कहा, देखो, जो तीर चलाना जानता है, वह तीर चलाता है, जो नाव चलाना जानता है, वह नाव चलाता है और जो मूर्ति बनाना जानता है वह मूर्ति बनाता है। लेकिन जो ज्ञानी है, वह अपने ऊपर शासन करता है। लड़के ने पूछा- वह कैसे? बुद्ध ने जवाब दिया, अगर कोई उसकी प्रशंसा करता है तो उसका मन चंचल नहीं होता। अगर कोई उसकी निंदा करता है तो भी वह शांत रहता है। ऐसा आदमी हमेशा सुखी रहता है। यह सबसे बड़ी कला है। लड़का उनका आशय समझ गया। उसने वचन दिया कि वह अपने भीतर से अपना अहंकार निकाल बाहर करेगा।

२९५) प्यार की पुचकार - एक राजा घोड़ों का बड़ा शौकीन था। एक बार उसने एक व्यापारी से घोड़े मंगवाए। राजा ने अपने दोनों पुत्रों को बुलवाया और कहा, इनको दौड़ाकर इनका गुण-दोष परखो। वे लाखों रुपयों के मूल्यवान घोड़े थे। राजा को श्रेष्ठ घोड़े खरीदने थे। राजकुमारों ने घोड़ों पर बैठकर कुछ दूर जाकर उन्हें जांचा। राजा ने राजकुमारों से पूछा, बोलो, कैसे हैं ये? क्या हम इन्हें खरीद लें? बड़ा राजकुमार बोला, महाराज, बिल्कुल खराब घोड़े हैं। ये हमारे किसी काम के नहीं हैं। छोटे राजकुमार से पूछा गया तो वह कहने लगा, महाराज, बहुत बढ़िया घोड़े हैं। इन्हें बिना कुछ सोचे खरीद लीजिए। राजा के सामने दुविधा खड़ी हो गई। एक राजकुमार घोड़ों को अयोग्य कह रहा था, जबकि दूसरा राजकुमार उन्हें योग्य और उपयोगी बता रहा था। आखिर किसकी राय को महत्व दें। राजा ने छोटे राजकुमार से कहा, बेटा, तुम्हारा भाई तो तुम्हारे विपरीत मत प्रकट कर रहा है। आखिर तुमने इनमें क्या अच्छाई देखी? छोटे राजकुमार ने कहा, महाराज भैया की राय भी ठीक है और मैं जो कह रहा हूं, वह भी ठीक है। वास्तव में भैया ने घोड़ों को अपनाया नहीं, बल्कि सीधे उन पर सवारी गांठनी चाही तो घोड़ों ने उन्हें गिरा दिया और मैंने पहले घोड़ों को प्यार

दिया, फिर उन पर सवारी की इसलिए मेरे सामने कोई समस्या नहीं आई। मुझे लगता है अपरिचित घोड़े पर सीधे सवारी नहीं करनी चाहिए, पहले उसे प्यार से पुचकारना चाहिए। इंसान हो या जानवर, सब प्यार के भूखे होते हैं। यह सुनकर राजा ने छोटे राजकुमार को गले लगा लिया।

२९६) भूख और हवन - विंध्य प्रदेश का राजा धार्मिक और दयालु प्रवृत्ति का था। एक बार सूखे के कारण राज्य में अकाल पड़ गया। आदमी और जानवर भूख से तड़पने लगे। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच गई। दरबार के आचार्यों ने सुझाव दिया, राजन इस अकाल से छुटकारा पाने के लिए राज्य भर में हवन करना होगा। राजा ने आचार्यों की बात मान ली। राजमहल से लेकर गली गांव तक हवन होने लगे। हजारों टन गेहूं और देसी घी हवन कुंड में जला दिए गए, लेकिन न देवता प्रसन्न हुए और न ही अकाल दूर हुआ। जब राजा की मृत्यु हुई तो यमदूतों ने उसे धर्मराज के सामने पेश किया। उसी समय राजा का एक पुराना नौकर भी धर्मराज के सामने लाया गया था। धर्मराज ने बही खाता देखा और राजा को नरक में तथा नौकर को स्वर्ग में भेजने का आदेश दिया। राजा ने कहा, मैंने हमेशा धर्म का काम किया, फिर मुझे नरक और इस नौकर ने कभी कोई धर्म कर्म नहीं किया, फिर भी इसे स्वर्ग- यह तो अन्याय हैं। धर्मराज ने कहा, तुम ठीक कहते हो, लेकिन तुम्हारे एक अकर्म ने सभी अच्छे कर्मों को निष्फल कर दिया। सूखे के समय जब जनता को अनाज की सख्त जरूरत थी, तब उस अनाज को जनता में न बांट कर, तुमने उसे कर्मकांड के लिए जला दिया। तुम्हारे अन्न के भंडार भूखों के लिए बंद थे, लेकिन हवन के लिए खोल लिए गए। इससे बड़ा पाप कोई और नहीं हो सकता। इसी अधर्म के कारण तुम्हें नरक मिला है। रही बात नौकर की। उसने कभी पूजा पाठ नहीं किया लेकिन यह भूखा- प्यासा सात दिन तक आपके हवन कुंड के पास इस आशा में बैठा रहा कि हवन के बाद अनाज के जो दाने बिखरे मिल जाएंगे, उससे वह अपनी भूख मिटा लेगा। लेकिन उसे एक दाना नहीं मिला और वह वहीं भूख से मर गया। उसने जब तक तुम्हारे यहां काम किया पूरी मेहनत और ईमानदारी से किया, इसलिए उसको स्वर्ग मिला।

२९७) सेवा का संदेश - यह घटना उस समय की है जब स्वामी शिवानंद सरस्वती जी महाराज मलाया में रहकर चिकित्सा कार्य करते थे। उन दिनों अंग्रेजों के रबर के बगीचों में अनेक भारतीय भी काम करते थे। अधिकतर भारतीय निर्धन थे। स्वामी जी एक बगीचे के पास स्थित अपने क्लीनिक में रोगियों की चिकित्सा करते थे। एक दिन एक बहुत ही गरीब श्रमिक अपनी पत्नी को साथ लेकर उनके पास पहुंचा। उसकी पत्नी गंभीर रूप से बीमार थी और बुरी तरह कराह रही थी। यह देखकर स्वामीजी द्रवित हो उठे और तुरंत उसके इलाज में लग गए। जब श्रमिक ने देखा कि स्वामी जी बिना कुछ कहे उसकी पत्नी का इलाज कर रहे हैं तो वह रोता हुआ बोला, स्वामीजी, मेरे पास इस समय आपको देने के लिए एक रुपया तक नहीं है। मैंने तो यह भी नहीं पूछा कि आप मेरी पत्नी के इलाज की कितनी फीस लेंगे। इलाज करने के बाद यदि मैं आपकी फीस न चुका पाया तो क्या होगा? कृपया आप मुझे अपनी फीस बताइए ताकि मैं उसका इंतजाम कर सकूं। श्रमिक की बात सुनकर स्वामीजी बोले, परेशान होने की जरूरत नहीं है। पहले मुझे इसकी जांच तो कर लेने दो। वह ठीक हो जाए फिर फीस भी आ ही जाएगी। स्वामीजी ने श्रमिक की पत्नी की बीमारी का पता लगाकर उसके लिए जड़ी-बूटियां बनाई और उसे पिलाईं। कुछ देर बाद वह श्रमिक को अनेक दवाइयां और उसके साथ ही कुछ रुपये देते हुए

बोले, इस समय तुम्हारी पत्नी को इन दवाइयों के साथ ही पौष्टिक भोजन व फल की भी सख्त जरूरत है। तुम इन दवाइयों के साथ इसे फल, दूध व अन्य पौष्टिक आहार देते रहना। कुछ ही दिनों में यह स्वस्थ हो जाएगी। जब कभी तुम्हारे पास रुपये आ जाएं तो किसी रोगी व जरूरतमंद की मदद कर देना। समझ लेना मुझे मेरी फीस मिल गई। यह सुनकर श्रमिक स्वामी जी के प्रति नतमस्तक हो गया।

२९८) संतोष का धन- आसफउद्दौला एक नेक बादशाह था। जो भी उसके सामने हाथ फैलाता, वह उसकी झोली भर देता। एक दिन उसने एक फकीर को गाते सुना- जिसको न दे मौला उसे दे आसफउद्दौला। बादशाह खुश हुआ। उसने फकीर को एक बड़ा तरबूज दिया। फकीर ने तरबूज ले लिया, मगर वह दुखी था। उसने सोचा कि बादशाह को कुछ बहुमूल्य चीज देनी चाहिए थी। कुछ ही देर बाद एक और फकीर बादशाह के पास से गाता हुआ गुजरा- आसफउद्दौला है कौन भला, देनेवाला तो सिर्फ मौला। ये बोल बादशाह को अच्छे नहीं लगे। उसने फकीर को बेमन से दो आने दिए। फकीर दो आने लेकर खुशी से झूमता हुआ वहां से चल दिया। रास्ते में दोनों फकीरों की मुलाकात हुई। पहले फकीर ने दूसरे से पूछा कि उसे बादशाह ने क्या दिया। यह जानकर कि उसे दो आने मिले हैं, वह बोला- तुम्हें तो फिर भी अधिक मिले, मुझे तो सिर्फ तरबूज मिला। फिर पहले फकीर ने दूसरे से दो आने लेकर वह तरबूज उसे बेच दिया। दूसरा फकीर खुशी-खुशी तरबूज लेकर घर लौटा। उसने तरबूज काटा तो उसकी आंखें फटी रह गईं। उसमें अशर्फियां भरी हुई थीं। कुछ दिन बाद पहला फकीर फिर आसफउद्दौला के पास खैरात मांगने पहुंचा। आसफउद्दौला ने उसे पहचानकर पूछा, उस दिन जो तरबूज दिया था, वह कैसा निकला? फकीर ने बताया कि उसे तो उसने दो आने में बेच दिया। तब बादशाह ने कहा- तरबूज में अशर्फियां थीं, पर तुमने उसे बेच दिया। तुम्हारे पास संतोष का धन नहीं है, इसलिए दूसरा कोई धन तुम्हारी चाह पूरी नहीं कर सकता।

२९९) बापू की रजाई- गांधीजी रोज अपने आश्रम की हर चीज का बारीकी से मुआयना करते थे। जाड़े के दिनों में एक बार वह आश्रम की गोशाला में पहुंचे। उन्होंने गायों को सहलाया और प्यार से बछड़ों को थपथपाया। उनका प्रेम भरा स्पर्श पाकर जानवरों ने भी गर्दन हिलाकर उनके स्नेह का जवाब दिया। वह वहां से बाहर निकल ही रहे थे कि तभी उनकी नजर पास खड़े एक गरीब लड़के पर गई। उन्होंने पूछा, तू रात को यहीं सोता है? गांधीजी का प्रश्न सुनकर लड़का धीमे से बोला, जी बापूजी। मैं रात यहीं बिताता हूं। गांधीजी बोले, बेटा, इन दिनों तो बहुत ठंड है। ऐसे में क्या तुम्हें सर्दी नहीं सताती? लड़का बोला, सर्दी तो बहुत लगती है। बापू ने कहा, फिर तुम ठंड से बचने के लिए क्या ओढ़ते हो? लड़के ने एक फटी चादर दिखाते हुए कहा, मेरे पास ओढ़ने के लिए बस एक यही चादर है। लड़के की बात सुनकर बापू आश्चर्य से उसे देखते रहे, फिर अपनी कुटिया में लौट आए। उन्होंने उसी समय कस्तूरबा से दो पुरानी साड़ियां मांगी, कुछ पुराने अखबार तथा थोड़ी सी रूई मंगवाई। रूई को अपने हाथों से धुना। साड़ियों की खोली बनाई, अखबार और रूई भरकर एक रजाई तैयार कर दी। जब रजाई पूरी तरह तैयार हो गई तो बापू ने गोशाला से उस लड़के को बुलवाया। लड़का सहमता हुआ उनके पास आया तो गांधीजी ने उसके सिर पर प्यार से हाथ रखा और रजाई उसे देते हुए कहा, इसे ओढ़कर देखना कि रात में ठंड लगती है या नहीं। लड़का खुशी-खुशी रजाई लेकर चला गया। अगले दिन जब गांधीजी गोशाला की ओर

गए तो उन्हें वही लड़का नजर आया। बापू ने उससे पूछा, क्या तुझे कल भी ठंड लगी? लड़का तपाक से बोला, नहीं बापू जी, कल तो आपकी दी हुई रजाई ओढ़कर मुझे बहुत गरमाहट महसूस हुई और बड़ी मीठी नींद आई। लड़के का जवाब सुनकर बापू हंस पड़े और बोले, सच, तब तो मैं भी ऐसी ही रजाई ओढ़ूंगा।

३००) मन की साधना - चतुर्मास का समय निकट आया तो भिक्षु सुशांत ने बुद्ध से आग्रह किया, प्रभु, मैं नगरवधू सोमलता के सान्निध्य में अपना चतुर्मास व्यतीत करना चाहता हूं। कृपया इसकी आज्ञा प्रदान करें। यह सुनकर बुद्ध मुस्कराए। वह समझ गए कि यह वहां जाकर मन को साधकर सच्चा साधक होना चाहता है। लेकिन अन्य भिक्षुओं ने इस पर आपत्ति जताई। उन्हें संदेह था कि सुशांत कहीं अपने पथ से विचलित न हो जाए। पर बुद्ध ने भिक्षुओं के विरोध के बावजूद उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, जाओ और आगे बढ़कर आना। सुशांत सोमलता के पास पहुंचा। वहां सब उसे देखकर आश्चर्यचकित रह गए। लेकिन सुशांत अपने संकल्प पर अड़िग था। इधर सोमलता के घुंघरूओं की आवाज गूंजती और उधर सुशांत अपनी साधना में लीन रहता। सोमलता सुशांत को रिझाने का प्रयास करती, मगर वह निर्लिप्त रहता। एक मास गुजर गया मगर सोमलता सुशांत को डिगा न सकी। हां, उससे थोड़ी सहानुभूति अवश्य होने लगी। उसने दूसरों को भी साधना के क्षणों में शांत रहने को कह दिया। चौथा मास आते-आते सुशांत ने अपने मन पर नियंत्रण पा लिया था। वह सोमलता या अन्य सुंदरियों की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता था। संगीत उसे बुद्ध-वाणी की तरह लगता था और नृत्यालय देवालय की तरह। चार मास पूर्ण हुए और सुशांत अपने मठ की ओर वापस चला तो सबने आश्चर्य से देखा- भिक्षुणी बन सोमलता उसके पीछे-पीछे अपना सर्वस्व त्याग कर जा रही थी। सोमलता अपने रूप-रंग से सुशांत को रिझा न सकी, मगर सुशांत के तप का प्रभाव सोमलता पर दिख रहा था। सुशांत वास्तव में आगे बढ़ गया था।

३०१) सूर्य और दीपक - चीन के सम्राट हुआन शी को पढ़ने का शौक था। उनका पुस्तकालय और सोने का कमरा दुनिया भर की किताबों से भरा रहता था। वह अपना अधिकतर समय पढ़ने में ही लगाते थे। एक दिन सम्राट ने अपने मंत्री शान ची से कहा- मैं अब सत्तर वर्ष का हो चला हूं। मगर पढ़ने की लालसा मन से जाती नहीं है। पर लगता है कि अब इस उम्र में पुस्तकों को अधिक समय नहीं दे पाऊंगा। मंत्री ने जवाब दिया- राजन्, आप इस देश के सूर्य हैं। आपके ज्ञान के प्रकाश से ही देश का शासन सफलतापूर्वक चलता रहा है। अगर आप सूर्य नहीं बने रहना चाहते तो कृपया दीपक बन जाए। सम्राट को लगा मंत्री ने सूर्य से दीपक बनने को कहकर उन्हें उनके स्तर से गिराया है। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने अपने मंत्री से नाराजगी भरे स्वर में कहा - शान ची, मैं गंभीर होकर यह बात कह रहा हूं और तुम इसे माजक में ले रहे हो। मैं तो तुमसे मार्गदर्शन की अपेक्षा कर रहा था। सम्राट को गुस्से में देखकर शान ची ने हाथ जोड़कर कहा- आपने मेरी बात ठीक से समझी नहीं शायद। कोई किशोर या युवा जब अध्ययन कर रहा होता है तो उसका भविष्य सूर्य के समान होता है जिसमें अपार संभावनाएँ छिपी होती हैं और प्रौढ़ावस्था में यही सूर्य दीपक के समान हो जाता है। दीपक में सूर्य जितना प्रकाश तो नहीं होता फिर भी उसका उजाला अंधेरे में रोशनी दिखाकर भटकने से बचाता है। इसी प्रकार आप भी पढ़ने की अपनी रुचि का पूर्ण त्याग न करके इसमें मन लगाए रखें। सम्राट को यह बात समझ में आ गई।

३०२) लिंकन का संकल्प - यह अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की युवावस्था के दिनों की घटना है। वह बहुत निर्धन थे, लेकिन उनके भीतर बहुत कुछ कर गुजरने की अद्‌भुत ललक थी। एक बार उन्हें पता चला कि उनके गांव के किनारे बहनेवाली नदी के दूसरी ओर एक रिटायर्ड जज रहते हैं जिनके पास कानून की पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। लिंकन वे किताबें पढ़ने के लिए बेचैन हो गए। उन्होंने उनके घर जाने का निश्चय कर लिया। उन दिनों कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। पर लिंकन ने इसकी परवाह नहीं की। वे उस बर्फीली नदी में नाव लेकर अकेले चल पड़े। आधी नदी पार करने के बाद ही नाव बर्फ के एक बड़े चट्टान से टकराकर टूट गई। फिर भी लिंकन निराश नहीं हुए। उन्होंने बड़ी मुश्किल से नदी तैरकर पार की और जा पहुंचे उस रिटायर्ड जज के घर। जज महोदय लिंकन को देखकर हैरत में पड़ गए। उन्हें समझ में नहीं आया कि लिंकन की आंखों में दृढ़ निश्चय को पढ़ लिया था। सो उन्होंने एक शर्त पर उन्हें अपने यहां कुछ दिनों के लिए रख लिया और अपनी किताबें पढ़ने की इजाजत दे दी। शर्त यह थी कि लिंकन उनके घर का छोटा-मोटा काम कर देंगे। असल में जज का नौकर बाहर गया हुआ था। लिंकन ने शर्त मान ली। वह जज साहब के लिए लकड़ियां काट कर लाते। फिर घर में पानी भरते। इसके बदले वे उनकी किताबें पढ़ते। जज ने उनके व्यवहार से प्रसन्न होकर कुछ किताबें उपहार में भी दे दीं।

३०३) सच्चा यज्ञ- एक बार युधिष्ठिर ने विधि-विधान से महायज्ञ का आयोजन किया। उसमें दूर-दूर से राजा-महाराजा और विद्वान आए। यज्ञ पूरा होने के बाद दूध और घी से आहुति दी गई, लेकिन फिर भी आकाश-घंटियों की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ी। जब तक घंटियां नहीं बजतीं, यज्ञ अपूर्ण माना जाता। महाराज युधिष्ठिर को चिंता हुई। वह सोचने लगे की आखिर यज्ञ में कौन सी कमी रह गई कि घंटियां सुनाई नहीं पड़ीं। उन्होंने भगवान कृष्ण से अपनी समस्या बताई। कृष्ण ने कहा, किसी गरीब, सच्चे और निश्छल हृदय वाले व्यक्ति को बुला कर उसे भोजन कराएं। जब उसकी आत्मा तृप्त होगी तो आकाश की घंटियां अपने आप बज उठेंगी। कृष्ण ने ऐसे एक व्यक्ति का पता दिया। धर्मराज स्वयं उसकी खोज में निकले। आखिरकार उन्हें उस निर्धन की कुटिया मिल गई। युधिष्ठिर ने अपना परिचय देते हुए उससे प्रार्थना की, बाबा, आप हमारे यहां भोजन करने की कृपा करें। पहले तो उसने मना कर दिया लेकिन काफी प्रार्थना करने पर वह तैयार हो गया। युधिष्ठिर उसे लेकर यज्ञ स्थल पर आए। द्रौपदी ने अपने हाथ से स्वादिष्ट खाना बनाकर उसे खिलाया। भोजन करने के बाद उस व्यक्ति ने ज्यों ही संतुष्ट होकर डकार ली, आकाश की घंटियां गूंज उठीं। यज्ञ की सफलता से सब प्रसन्न हुए। युधिष्ठिर ने कृष्ण से पूछा, भगवन, इस निर्धन व्यक्ति में ऐसी कौन सी विशेषता है कि उसके खाने के बाद ही यज्ञ सफल हो सका। कृष्ण ने कहा, धर्मराज, इस व्यक्ति में कोई विशेषता नहीं है। यह गरीब है। आपने पहले जिन्हें भोजन कराया वे सब तृप्त थे। जो व्यक्ति पहले से तृप्त हैं, उन्हें भोजन कराना कोई विशेष उपलब्धि नहीं है। जो लोग अतृप्त हैं, जिन्हें सचमुच भोजन की जरूरत है, उन्हें खिलाने से उनकी आत्मा को जो संतोष मिलता है, वही सबसे बड़ा यज्ञ है। वही सच्ची आहुति है। आपने जब एक अतृप्त व्यक्ति को भोजन कराया तभी देवता प्रसन्न हुए और सफलता की सूचक घंटियां बज गईं।

३०४) एक किसान था। उसकी पत्नी बड़ी पतिव्रता थी। पति का वह हमेशा ध्यान रखती थी। किसान का स्वभाव भी अच्छा था। वह कलह से दूर रहता था। खेत में सैकड़ों मन अनाज होता था। दो गाड़ी, चार बैल और बीस-बीस गाएं थीं।

दोनों दूध, दही और घी खाकर मस्त रहते थे। किसी भी तरह की चिन्ता नहीं थीं।

एक दिन किसी बात को लेकर पति-पत्नी में मन-मुटाव हो गया। झगड़ा इतना बढ़ा कि बोलचाल भी बंद हो गई। आषाढ़ का महीना आया। वर्षा होने लगी। गांव के किसान खेतों में जाने लगे। पत्नी ने सोचा-खेत का समय आ गया।

वह मुंह फेरकर बोली- लोक चाल्या लावणी, लोक क्यू नी जाए। किसान भी बहुत चतुर था और खुशमिजाज भी। वह भी मुंह फेर कर बोला- लोक चाल्या खाय पी, लोक किनै खाय। पत्नी बोली- छीको पड़ी राबड़ी, उतार क्युं नी लै। किसान बोला- अबै आपा बोल्या चाल्या घाल क्युं नी दै। बस, उसी वक्त दोनों का मन-मुटाव मिट गया और प्रेम उमड़ आया।

३०५) भगवान की मूर्ति- अलवर के राजा मूर्तिपूजा के सख्त खिलाफ थे। एक दिन उन्होंने स्वामी विवेकानंद को अपने विचार सुनाए। उनके विचार को सुनकर स्वामी जी ने कहा, मूर्ति पूजा उपासना का एक स्वरूप भर है। इसमें गलत क्या है। लेकिन अलवर के राजा उनसे सहमत नहीं हुए। उन्होंने अपनी बात के समर्थन में तरह-तरह के तर्क पेश किए। तब विवेकानंद ने उनके एक कर्मचारी से दीवार पर टंगी राजा की तस्वीर लाने को कहा। फिर उन्होंने उस कर्मचारी से कहा कि वह उस तस्वीर पर थूके। कर्मचारी हैरत में पड़ गया और बोला, अपने आदरणीय महाराज की तस्वीर पर कैसे थूक सकता हूं।

विवेकानंद अलवर नरेश से बोले, देखा आपने। यह आपकी तस्वीर है। आपके कर्मचारी ने उस पर थूकने से मना कर दिया, क्योंकि यह चित्र आपका ही प्रतीक है। इसी प्रकार मूर्तियों को हम ईश्वर के प्रतीक के रूप में देखते हैं। चूंकि लोगों के लिए भगवान के अमूर्त रूप को समझना थोड़ा कठिन है, इसलिए महात्माओं ने प्रतीक के रूप में मूर्तियों को चुना। मूर्ति पूजा अंतत: ईश्वर की आराधना है। अलवर के राजा को बात समझ में आ गई।

३०६) लगन और उत्साह- यह उस समय की बात है, जब रावण ने सीता का हरण कर लिया था। राम सीता को ढूंढने के क्रम में सुग्रीव के पास पहुंचे। जब राम ने उनसे पूछा कि लंका कितनी दूर है, तो सुग्रीव के कुछ कहने से पहले ही उनके सेनापति जाम्बवंत ने कहा, लंका इतनी दूर है कि हजारों वर्षों में वहां नहीं पहुंचा जा सकता लेकिन वह इतनी पास भी है कि वहां जाने के लिए बस एक कदम उठाने की जरूरत है। राम हैरान होकर जाम्बवंत का मुंह देखने लगे। बोले, भाई। यह कैसी बात है। एक तरफ तो आप कहते हैं कि वहां हजारों वर्षों में नहीं पहुंचा जा सकता। दूसरी तरफ कह रहे हैं कि वहां जाने के लिए बस एक कदम उठाने की आवश्यकता है। आपकी इन बातों का रहस्य क्या है? जाम्बवंत ने कहा- महाराज, जिस व्यक्ति के हृदय में लगन, उत्साह और पुरुषार्थ की भावना नहीं है वह तो वर्षों बीतने पर भी लंका नहीं पहुंच सकता। किंतु जिसके भीतर पूर्ण विश्वास और दृढ़ भावना है वह कुछ ही समय में वहां पहुंच सकता है।

३०७) ग्रीस के एक दार्शनिक को आत्मप्रशंसा की लत पड़ गई थी। हालांकि वह साधारण भोजन करता था, झोपड़ी में रहता था। उसका त्यागमय जीवन वास्तव में प्रशंसनीय था, पर वह इस बात को बार-बार दोहराता था कि लोग सादगी उससे सीखें। चूंकि वह यह बात हमेशा कहता था इसलिए उसकी बात का कोई खास असर नहीं पड़ता था। जब सुकरात को इसका पता चला तो उन्होंने उसे बुलाकर कहा, सादगीपूर्ण जीवन का अहंकार भी घातक होता है। आप प्रशंसा पाने के लिए साधारण वस्त्र, भोजन, घर आदि का उपयोग करते हैं। यह तपस्या नहीं है। तपस्या निष्काम होनी चाहिए और अपने मुंह से उसका बखान कर उसका महत्व नहीं नष्ट करना चाहिए। दूसरों के द्वारा जिसके गुणों का वर्णन किया जाता

है, वह गुणहीन भी गुणवान हो जाता है। यह सुनकर वह दार्शनिक लज्जित हो गया।

३०८) स्वर्ग की कौड़ी- एक बूढ़े सेठ ने सुना था कि स्वर्ग की एक कौड़ी भी पृथ्वी के करोड़ों रुपयों के बराबर होती है। यह बात उस सेठ के मन में समाई हुई थी। एक दिन वह घर पहुंचा तो उसकी हृदय गति रुक गई और उसका निधन हो गया। वह स्वर्ग पहुंचा। वहां अप्सराएं और देवगण उसके स्वागत में खड़े हुए हैं। सेठजी ने कहा, मुझे आवभगत की आवश्यकता नहीं है। पहले अपनी एक कौड़ी लाकर दो। इस पर देवगण बोले, बस एक क्षण रुकिए सेठजी, अभी देते हैं। सेठजी झेंपकर चुप हो गए। धीरे-धीरे एक क्षण क्या, एक दिन बीत गया, सप्ताह बीता, महीना बीता फिर एक वर्ष बीत गया। एक दिन सेठजी ने देवगण से पूछा, आप लोग तो कह रहे थे कि मुझे एक क्षण में कौड़ी लाकर देते क्यों नहीं? देवगण हंसे और बोले, सेठजी, जब स्वर्ग की एक कौड़ी करोड़ों रुपयों की हो सकती है, तो एक क्षण भी तो करोड़ों क्षणों का होगा।

३०९) चीन के मशहूर दार्शनिक लाओत्से रोज सुबह एक पहाड़ी पर घूमने जाया करते थे। रास्ते में उन्हें उनका एक मित्र मिलता था, जो उन्हें नमस्कार करता था मगर उसके नमस्कार का जवाब लाओत्से आधे घंटे बाद दिया करते थे क्योंकि वह अपने विचारों में खोये रहते थे। एक बार उनके मित्र के साथ उसका कोई रिश्तेदार भी आ गया। उसने भी लाओत्से को नमस्कार किया और थोड़ा आगे जाकर बोला, कितनी शानदार सुबह है। यहां पर क्या खुशनुमा नजारे हैं। लाओत्से ने अपने मित्र और उसके रिश्तेदार को घूरकर गुस्से से देखा। दिन में जब लाओत्से का मित्र उनसे मिलने उनके घर गया तो लाओत्से ने कहा, तुम्हारा वह रिश्तेदार बहुत बोलता है। आगे से उसे लेकर मत आना। अरे सबको दिख रहा है कि सुबह के नजारे बहुत सुंदर हैं, यह कहने की क्या जरूरत है।

३१०) गुड़िया रानी- हमारे देश में गुड़ियों का एक रोचक त्योहार मनाया जाता है- श्रावण शुक्ल पंचमी के दिन। इस दिन सारे देश में नागपंचमी का पर्व मनाया जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में लड़कियाँ अपनी-अपनी गुड़ियाँ लेकर गाँव के बड़े मैदान में या नदी के किनारे जाती हैं, जहाँ गाँव के लड़के टेढ़े-मेढ़े सर्प के आकार के डंडे लेकर उन गुड़ियों को पीटते हैं। कहा जाता है कि नागपंचमी के दिन सर्पाकार डंडों से गुड़ियों को पीटने के पीछे इतिहास की उस घटना का स्मरण है, जब कुषाणों को नागों ने पीटा था। जो हो चुका और जिसका कोई उपाय नहीं किया जा सकता, उसका रंज न करो।

३११) स्वाभिमान की रक्षा- एक बार मेवाड़ के राजा का एक चारण अकबर के दरबार में पहुंचा। उसके सिर पर पगड़ी थी। अकबर का अभिवादन करने से पहले उसने अपनी पगड़ी उतार दी। पगड़ी उतार कर अभिवादन करने से अकबर को क्रोध आ गया लेकिन अपने को नियंत्रित करते हुए उन्होंने कहा, राजपूत राजा का चारण होने के कारण तुम्हें राजदरबार के नियम-कायदे की समझ तो होगी ही। तुम्हें पता होगा कि एक चारण को नंगे सिर किसी बादशाह का अभिवादन नहीं करना चाहिए। फिर तुमने ऐसा क्यों किया? चारण बोला, जहांपनाह, गुस्ताखी माफ हो। मुझे दरबार के इस नियम का ज्ञान है कि एक चारण को राजदरबार में बादशाह का अभिवादन करते समय पगड़ी नहीं उतारनी चाहिए। लेकिन मेरे सिर पर जो पगड़ी है, वह कोई कपड़े की मामूली पगड़ी नहीं है। अकबर ने पूछा क्या इसमें हीरे-जवाहरात जड़े हैं कि पगड़ी झुकाते ही वे छिटक कर गुम हो जाएंगे।

चारण ने कहा, हुजूर, इस पगड़ी की कीमत हीरे मोतियों से मत आंकिए। यह अमूल्य है। अकबर ने क्रोध में कहा, साफ साफ कहो, तुमने यह गुस्ताखी क्यों की। चारण ने कहा, एक बार मेवाड़ के महाराणा प्रताप ने घास की रोटी खाने पर मजबूर होते हुए भी प्रसन्न होकर मुझे यह पगड़ी भेंट की थी और कहा था कि इसकी लाज रखना। जब जंगलों की खाक छानने और घास की रोटियां खाने के बावजूद महाराणा आपके सामने कभी नतमस्तक नहीं हुए तो उनके द्वारा दी गई पगड़ी को आपके सामने झुकाने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। यदि मैं ऐसा करता तो राणा के स्वाभिमान को चोट पहुंचती। एक चारण अपनी जान तो दे सकता है लेकिन ऐसा कुछ नहीं कर सकता जिससे कि उसके स्वामीके स्वाभिमान को ठेस पहुंचे। चारण की बात सुनकर अकबर ने कहा, मैं तुम्हारे स्वाभिमान को देखकर बहुत खुश हूं। उन्होंने उसे ढेर सारा इनाम दे कर विदा किया।

३१२) आत्मा की रक्षा- राजनर्तकी आम्रपाली ने राह में एक युवा संन्यासी को देखा। वह उसके आकर्षण में बंधकर उसके पीछे चलने लगी। थोड़ी देर बाद संन्यासी एक वृक्ष की छाया में बैठ गया। आम्रपाली भी बैठ गई। उसने संन्यासी से प्रश्न किया, आपने युवावस्था में ही संन्यास क्यों ग्रहण किया? सन्यासी ने उत्तर दिया, सत्य की खोज में। आम्रपाली ने कहा, उस सत्य का क्या लाभ, जिसे पाने में आपका यौवन ही खत्म हो जाए। संन्यासी ने कहा, पूर्ण आनंद तो साधु जीवन में ही है और तुम जिसे सुख समझ रही हो वह तो क्षणिक है। इस पर आम्रपाली बोली, आपका यह विश्वास असत्य सिद्ध होगा। आप कृपया मेरा आतिथ्य स्वीकार करें, जिसके लिए राजकुमार भी लालायित रहते हैं।

संन्यासी ने कुछ सोचकर कहा, यदि मेरे गुरु ने इसकी अनुमति दे दी तो मैं आऊंगा। यह कहकर संन्यासी ने अपने झोले से एक आम निकालकर आम्रपाली को दिया और कहा, इसे संभालकर रखना। जब तक मैं आऊं यह खराब न हो। संन्यासी ने सारी घटना बुद्ध को बताई। बुद्ध ने संन्यासी को आम्रपाली का अतिथि बनने की अनुमति दे दी। इस पर कुछ अन्य शिष्यों ने आपत्ति व्यक्त की। बुद्ध ने उनकी शंका का निवारण करते हुए कहा, इसकी आंखों में थोड़ी भी तृष्णा या वासना नहीं है। यदि मैं मना कर देता तो भी यह मेरी बात अवश्य मानता। इस बीच आम्रपाली आम को ताजा रखने का प्रयत्न करती रही लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। कुछ दिनों बाद संन्यासी उसके पास पहुंचा और उसने वह आम मांगा। लेकिन वह सड़ गया था, उसमें कीड़े पड़ गए थे। संन्यासी ने उसकी गुठली निकाल ली और बाकी का हिस्सा फेंक दिया। उसने आम्रपाली से कहा, इस गुठली का कुछ नहीं बिगड़ा। इसमें अब भी पुन: उगने की शक्ति है। उसी तरह शरीर गल या सड़ जाएगा लेकिन आत्मा बची रहेगी। आत्मा का ध्यान करो। यह सुनकर आम्रपाली ने भी बुद्ध की शरण में जाने का फैसला किया।

३१३) दो मित्र- दो मित्र थे। दोनों ने एक साथ एक ही गुरु के पास विद्याध्ययन किया। अध्ययन के बाद दोनों अपने गांव लौटे। वैसे तो दोनों ने बराबर शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की थी पर उनमें से एक अपने-आपको बड़ा विद्वान और ज्ञानी समझता था। उसमें इतना अहंकार भर गया था कि वह अपने सामने दूसरों को तुच्छ समझता था। उसका मित्र उसकी इस दशा पर चिंतित रहता था। एक दिन वह अपने घमंडी मित्र को समुद्र तट पर घुमाने ले गया। वहां उसने अपनी हथेली पर थोड़ा जल लेकर कहा, देखो, मेरे पास कितना सारा पानी है। घमंडी मित्र बोला, लगता है तुम पागल हो गए हो। तुम्हारे

सामने विशाल सागर है, जिसमें अथाह पानी है। पर तुम कुछ बूंदें लेकर ही खुश हो रहे हो। भला इस सागर के समक्ष तुम्हारी हथेली की ये बूंदें क्या मायने रखती हैं? पहला मित्र यही तो सुनना चाहता था। उसने झट कहा, मित्र, तुम मुझे पागल साबित कर रहे हो पर तुम स्वयं कम पागल हो क्या? ज्ञान का सागर अथाह है पर तुम बूंद के समान थोड़ी सी विद्या प्राप्त करके ही अपने को महाज्ञानी समझ रहे हो। यह अहंकार तुम्हें नष्ट कर देगा। दूसरा मित्र लज्जित हो गया।

३१४) एक बार शेख सादी को अपनी निर्धनता पर इतना खेद हुआ कि वह मन ही मन कहने लगे कि पता नहीं खुदा मुझ पर इतना खफा क्यों है कि मैं आराम से खा-पी भी नहीं सकता। मुझे कम से कम ऐसी जिंदगी तो मिलनी चाहिए थी कि मैं आराम से खा-पी सकूं। इसके बाद जब वह घर से बाहर निकले तो उनकी नजर भिखारियों पर पड़ी। उनमें से कई गूंगे और लंगड़े थे। यह देखकर शेख सादी ने खुदा का शुक्र अदा करते हुए कहा, आपने मुझ पर कितनी मेहरबानी की है कि मुझे कम से कम हाथ पैर तो दिए। ये भिखारी दूसरों का दिया खाते हैं जबकि मैं खुद कमाकर खा सकता हूं। यह क्या कम है।

३१५) मृत्यु का भय- एक व्यक्ति चाहकर भी अपने दुर्गुणों पर काबू नहीं कर पा रहा था। एक बार उसके गांव में संत फरीद आए। उसने उनसे अपनी परेशानी बताई। फरीद ने कहा, दृढ़ संकल्प से ही दुर्गुण छूटते हैं। यदि तुम इच्छाशक्ति मजबूत कर लोगे तो तुम्हें अपने दोषों से मुक्ति मिल जाएगी। वह व्यक्ति प्रयास करके थक गया मगर उसे सफलता नहीं मिली। वह फिर फरीद के पास गया। फरीद ने पहले उसके माथे की रेखाएं देखने का नाटक किया, फिर बोले, अरे तुम्हारी जिंदगी के चालीस दिन ही शेष हैं। अगर इन बचे दिनों में तुमने दुर्गुण त्याग दिए तो तुम्हें सद्बुद्धि मिल जाएगी। यह सुनकर वह आदमी परेशान हो गया। वह किसी तरह घर पहुंचा और व्यसनों की बात तो दूर, खाना-पीना तक भूल गया। वह हर पल ईश्वर को याद करता रहा। उसने एक भी गलत कार्य नहीं किया। चालीस दिन बीतने पर वह फरीद के पास पहुंचा। उन्होंने पूछा, इतने दिनों में तुमने कितने गलत कार्य किए? उस व्यक्ति ने जवाब दिया, मैं क्या करता। मैं तो हर पल ईश्वर को याद करता रहा। संत फरीद मुस्कराते हुए बोले, जाओ अब तुम पूरी तरह सुरक्षित हो। तुम अच्छे इंसान बन गए हो। जो व्यक्ति हर समय मृत्यु को ध्यान रखकर जीवनयापन करता है वह भला इंसान बन जाता है।

३१६) गरीब- फकीर ने अपना अंत समय आया देख अपने शिष्यों से कहा, मेरे पास जो भी धन-संपत्ति है उसे मैं सबसे गरीब व्यक्ति को दूंगा। अगले दिन उसकी कुटिया के आगे निर्धनों की भीड़ लग गई पर फकीर ने उन्हें कुछ नहीं दिया। तभी उधर से अपने रथ पर राजा निकला। फकीर ने धन की थैली उसकी ओर फेंक दी। राजा ने हंसकर कहा, तुम पागल हो गए हो क्या? मैं तो यहां का राजा हूं। फकीर बोला, तुम्हारे पास अपार धन-दौलत है पर संतोष नहीं। तुम लालची हो इसलिए मैं तुम्हें सबसे ज्यादा गरीब मानता हूं। राजा शर्मिंदा हो गया और उस दिन से प्रजा की भलाई में जुट गया।

३१७) एक करोड़ का सिक्का- उन दिनों गांधीजी देश भर में घूम-घूम कर चरखा संघ के लिए धन इकट्ठा कर रहे थे। वे जहां भी जाते अपार जन समूह उनके दर्शन करने और उन्हें धन देने के लिए जुट जाता था। इसी क्रम में वे उड़ीसा में एक सभा को संबोधित करने पहुंचे। उनके भाषण के बाद एक बूढ़ी गरीब महिला खड़ी हुई, जिसके बाल सफेद हो चुके थे। कपड़े फटे हुए थे और वह झुक कर चल रही थी। उसने याचना भरे स्वर में आग्रह किया, मुझे गांधीजी को देखना है। किसी तरह वह भीड़ से होते हुए गांधीजी के पास पहुंची और उनके पैर छुए। फिर उसने अपनी साड़ी के पल्लू में बंधा तांबे

का एक सिक्का निकला और गांधीजी के चरणों में रख दिया। गांधीजी कुछ देर तक उस बूढ़ी महिला को श्रद्धा भाव से देखते रहे और फिर उन्होंने सावधानी से सिक्का उठा कर अपने पास रख लिया। उस समय चरखा संघ का कोष जमनालाल बजाज संभाल रहे थे। उन्होंने सिक्का मांगा लेकिन गांधीजी ने मना कर दिया। जमनालाल जी ने हंसते हुए कहा, मैं चरखा संघ के लिए हजारों रुपये, कीमती गहने और चेक संभालता हूं, फिर भी आप मुझ पर इस तांबे के सिक्के को लेकर यकीन नहीं कर रहे। गांधीजी बोले, यह मात्र एक सिक्का नहीं है। यदि किसी के पास लाखों हैं तो वो हजार-दो हजार दे देता है। उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन यह सिक्का शायद उस औरत की कुल जमा पूंजी थी। उस वृद्धा ने अपना संपूर्ण धन दान में दे दिया। जो उदारता उसने दिखाई उसका कोई मोल नहीं हो सकता। इस तांबे के सिक्के का मूल्य मेरे लिए एक करोड़ से भी अधिक है।

३१८) निर्धन का पैसा- किसी नगर में गंगा के किनारे बैठकर एक भिखारी भीख मांगा करता था। उसके हाथ में एक कटोरा रहता था, जिसे जो देना होता था, वह कटोरे में डाल देता था। वर्षों से भिखारी के जीवन का यही क्रम चलता आ रहा था। जाड़ा हो या गर्मी, वर्षा हो या वसंत, वह बड़े तड़के वहां आकर बैठ जाता और जब शाम का अंधेरा होने लगता तो वह उठकर चला जाता। कभी किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की कि वह कहां से आता है और कहां जाता है?

लेकिन वह भिखारी दूसरे भिखारियों की तरह गिड़गिड़ाता नहीं था, दीनता नहीं दिखाता था कोई सामने आता, तो कटोरा आगे बढ़ा देता, मुंह से कुछ भी याचना नहीं करता था।

एक दिन की बात है कि एक आदमी उधर आया, उसकी चाल-ढाल, कपड़े-लत्ते, भारी-भरकम शरीर और गले में पड़ी सोने की जंजीर से उसने समझ लिया कि वह कोई पैसेवाला आदमी है, उसने कटोरा आगे बढ़ा दिया। उस आदमी ने भिखारी की ओर देखकर ऐसा मुंह बनाया जैसे कोई कड़वी चीज मुंह में आ गई हो, फिर जेब में हाथ डालकर बड़े अनमने भाव से दस पैसे का सिक्का निकाला और भिखारी के सामने जमीन पर फेंककर आगे बढ़ गया। वह भिखारी ये हरकतें देख रहा था।

उसने आव देखा न ताव, सिक्के को उठाकर उस आदमी की ओर फेंकते हुए बोला- यह ले अपनी दौलत मुझे तुझ जैसा पैसा नहीं चाहिए। उस आदमी के पैर ठिठक गए। उसने एक क्षण भिखारी की आंखों को देखा, उसकी भाव-भंगिमा को देखा, तभी उसे एक धर्म-ग्रंथ में पढ़ी बात याद आ गई, जिस दान के साथ दानदाता अपने को नहीं देता, वह दान व्यर्थ है और जिसके पास दिल नहीं है, वह करोड़ों की संपत्ति होते हुए भी सबसे गरीब है।

३१९) जब लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक-कान काट दिए- चौदह वर्ष के वनवास के दौरान श्रीराम, सीता और लक्ष्मण पंचवटी में एक पर्णकुटी बनाकर रह रहे थे। एक दिन रावण की बहन राक्षसी शूर्पणखा आकाश मार्ग से उस ओर से गुजर रही थी तभी वह श्रीराम और लक्ष्मण के सुंदर और मोहक रूप को देखकर मोहित हो गई। वह तुरंत ही जमीन पर उतर आई और अतिसुंदर स्त्री का रूप बना लिया। वह सुसज्जित सुंदर स्त्री श्रीराम को रिझाने के लिए उनके पास गई और उससे विवाह करने हेतु प्रस्ताव रखा। तब श्रीराम ने सीता का ध्यान करके कहा कि मेरा छोटा भाई कुमार है। वह सुंदरी लक्ष्मण के पास जाकर विवाह करने का आग्रह करने लगी। तब लक्ष्मण ने कहा मैं तो उन प्रभु का दास हूं अत: पराधीन

हूं, मुझसे विवाह करने में तुम्हें सुख प्राप्त नहीं होगा। क्योंकि सेवक को सुख प्राप्त नहीं होता। वह सुंदरी पुन: श्रीराम के पास गई और राम ने उसे पुन: लक्ष्मण के पास भेजा। अब लक्ष्मण ने फिर उस सुंदरी को समझाकर राम के पास भेजा तो वह क्रुद्ध होकर अपने भीषण रूप में प्रकट हो गई। उसे इस रूप में देखकर श्रीराम का इशारा पाते ही लक्ष्मण ने तुरंत ही शूर्पणखा को बिना नाक और कान की कर दिया। अब शूर्पणखा ऐसी लग रही थी मानो काले पर्वत से गेरु की धारा बह रही हो, वह और भी विकराल हो गई।

३२०) दूषित अन्न का प्रभाव - महाभारत युद्ध समाप्त हो गया था। धर्मराज युधिष्ठिर एकछत्र सम्राट हो गए थे। श्रीकृष्ण की सम्मति से रानी द्रौपदी तथा अपने भाइयों के साथ वे युद्धभूमि में शरशय्या पर पड़े प्राण त्याग के लिए सूर्यदेव के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करते परम धर्मज्ञ भीष्म पितामह के समीप आए थे। युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म पितामह उन्हें वर्ण, आश्रम तथा राजा-प्रजा आदि के विभिन्न धर्मों का उपदेश दे रहे थे। यह धर्मोपदेश चल ही रहा था कि रानी द्रौपदी को हंसी आ गई।

पितामह ने उपदेश बीच में ही रोककर पूछा - बेटी, तू हंसी क्यों?

द्रौपदी ने संकुचित होकर कहा, मुझसे भूल हुई। पितामह मुझे क्षमा करें। पितामह को इससे संतोष होना नहीं था। वे बोले, बेटी। कोई भी शीलवती कुलवधू गुरुजनों के सन्मुख अकारण नहीं हंसती। तू गुणवती है, सुशीला है। तेरी हंसी अकारण हो नहीं सकती। संकोच छोड़कर तू अपने हंसने का कारण बता। हाथ जोड़कर द्रौपदी बोलीं, दादाजी। यह बहुत ही अभद्रता की बात है, किंतु आप आज्ञा देते हैं तो कहनी पड़ेगी। आपकी आज्ञा मैं टाल नहीं सकती। आप धर्मोपदेश कर रहे थे तो मेरे मन में यह बात आई कि आज तो आप धर्म की ऐसी उत्तम व्याख्या कर रहे हैं, किंतु कौरवों की सभा में जब दु:शासन मुझे नंगा करने लगा था, तब आपका यह धर्मज्ञान कहां चला गया था। मुझे लगा कि यह धर्म का ज्ञान आपने पीछे सीखा है। मन में यह बात आते ही मुझे हंसी आ गई, आप मुझे क्षमा करें। पितामह ने शांतिपूर्वक समझाया, बेटी। इसमें क्षमा करने की कोई बात नहीं है। मुझे धर्मज्ञान तो उस समय भी था, परंतु दुर्योधन का अन्यायपूर्वक अन्न खाने से मेरी बुद्धि मलिन हो गई थी। इसी से उस द्यूतसभा में धर्म का ठीक निर्णय करने में मैं असमर्थ हो गया था। परंतु अब अर्जुन के बाणों के लगने से मेरे शरीर का सारा दूषित रक्त निकल गया है। दूषित अन्न से बने रक्त के शरीर से बाहर निकल जाने के कारण अब मेरी बुद्धि शुद्ध हो गई है, इससे इस समय मैं धर्म का तत्व ठीक समझता हूं और उसका विवेचन कर रहा हूं।

३२१) राजा का आदर्श- किसी छोटी सी बात पर नाराज होकर महाराज प्रसिचेत ने अपनी पत्नी को घर से निकाल दिया। उनके इस अहंकारपूर्ण कृत्य से दुखी होकर राज पुरोहित ने उनका साथ छोड़ दिया। धीरे-धीरे यह बात पूरे राज्य में फैल गई। यह बात प्रजा के कानों तक पहुंची। लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। कहने लगे, जो राजा अपने सौम्य, सरल, स्वजन संबंधी की रक्षा नहीं कर सकता, वह प्रजा की रक्षा क्या करेगा? लोग राजा की आज्ञाओं का उल्लंघन करने लगे। इस स्थिति का लाभ उठाकर पड़ोसी राजा ने आक्रमण कर दिया। प्रसिचेत सेना लेकर शत्रु का मुकाबला करने के लिए चल पड़े। मार्ग में महर्षि अंगिरा का आश्रम पड़ता था। वह महर्षि से मिलने के लिए रुके। पहले तो महर्षि ने शासकोचित स्वागत की तैयारी की, पर तभी उन्हें पता चला कि महाराज ने रानी का परित्याग कर दिया है, तो उन्होंने

स्वागत की सारी तैयारियां स्थगित कर दीं और उनकी आवभगत एक साधारण नागरिक की तरह की। राजा ने साधारण स्वागत का कारण पूछा, तो महर्षि ने कहा, राजन्। पत्नी का परित्याग करना अधर्म है और यह अधर्म करने से पति की मर्यादा वैसे ही नष्ट हो जाती है जैसे आप की। एक राजा के नाते आपको गृहस्थ और पारिवारिक जीवन में भी उच्च आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए। लेकिन आपने ऐसा नहीं किया। इसलिए आप प्रजा की नजर में भी गिर गए। वैसे देर अब भी नहीं हुई है। आप इसे सुधार सकते हैं। महर्षि की बात सुनकर राजा को अपने किए पर पछतावा हुआ। उसने रानी को वापस बुलाया और अपने व्यवहार के लिए उससे क्षमा मांगी।

३२२) चहेता शासक- लिच्छवी गणराज्य में प्रत्येक शासक को पांच वर्ष के लिए चुना जाता था। ये चुनाव प्रजा तथा उच्च अधिकारियों की सहमति से होते थे। चुनाव में योग्य व्यक्ति को ही शासक बनाया जाता था। निधिवत्स नामक एक शासक पांच वर्ष तक शासक रहने के बाद पदच्युत होने पर अपने कटु अनुभव आगामी प्रत्याशी आदित्य को सुनाते हुए बोला, तुम चुन भी लिए गए तो तुम्हें क्या मिलेगा? मात्र पांच वर्ष का शासन। पांच वर्ष तक सुख-सुविधा भोगने के बाद का समय बेहद दुखद होता है। निधिवत्स की बात सुनकर आदित्य मुस्कराते हुए बोला, नहीं निधिवत्स, मेरे साथ ऐसा नहीं होगा। शासक बनने में तुम्हारा लक्ष्य केवल सुख भोगना था, जो कि गलत था। यदि वह न होता तो तुम्हें आज इतनी पीड़ा न होती। शासक का धर्म तो सेवा और परोपकार करना हैं, सुख भोगना नहीं। आदित्य की बात निधिवत्स को बिल्कुल अच्छी नहीं लगी। वह मुंह बनाकर बोला, देखते हैं कि तुम चुनाव में जीतने पर सुख से कैसे दूर होते हो? चुनाव में आदित्य विजयी हुआ। सत्ता हाथ में आते ही उसने ऐसी व्यवस्था की कि राज्य में कोई भी नंगा, भूखा व निर्धन नहीं रहा। उसने सभी के लिए मकान और जीविका के साधन उपलब्ध कराए। योग्य तथा सम्मानीय व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार पद उपलब्ध कराए। अशांति उत्पन्न करनेवालों को दंडित किया। सभी को आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान की। पांच वर्ष पूरे होने पर जब आदित्य के पद त्यागने की बारी आई तो प्रतिनिधियों व प्रजा ने उसे ऐसा करने ही नहीं दिया और सर्वसम्मति से उसे अगले पांच वर्षों के लिए फिर से शासक बना दिया। यह देखकर निधिवत्स उसके पास आया और उससे क्षमा मांगते हुए बोला, आदित्य तुम्हारा कहना ठीक था। सेवा और परोपकार का भाव ही व्यक्ति की स्थिति को सुदृढ़ बनाता है। इस प्रकार आदित्य अपनी सेवा और परोपकार की भावना से लिच्छवी की प्रजा का चहेता शासक बन गया।

३२३) दोष-सुधार - एक कुशल चित्रकार ने एक चित्र प्रदर्शनी में रखा और उसके नीचे लिख दिया- कृपया जहां गलती हो, वहां निशान लगा दीजिए। चित्रकार को अपनी कला पर पूर्ण विश्वास था। उसने यह नोट इस उद्देश्य से लिखा था कि लोग चित्र को देखकर झूम उठेंगे और उसकी प्रशंसा में जरूर टिप्पणी लिखेंगे। जब अगले दिन चित्रकार प्रसन्न मन से चित्र को लेने पहुंचा तो वह यह देखकर हैरान रह गया कि उसका चित्र निशानों से भरा पड़ा था। चित्र वाकई बेहद खूबसूरत था। उसने यह सपने में भी नहीं सोचा था कि उसका चित्र लोगों के निकाले दोषों से इतना ढक जाएगा कि उसका मूल चित्र ही कहीं खो जाएगा। वह घर आकर दु:खी मन से बैठ गया। चित्रकार की पत्नी भी बेहद गुणी व समझदार थी। वह चित्रकार को परेशान देखकर बोली, क्या बात है? चित्रकार ने दु:खी मन से पत्नी को अपना चित्र दिखा दिया। चित्र देखकर वह मुस्कराकर बोली, तो आप इसलिए परेशान हैं। अरे इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि आप कुशल

चित्रकार नहीं हैं। लोगों की तो आदत होती है अच्छे से अच्छे कार्य में भी दोष ढूंढ निकालना। जिन्होंने आपके चित्र को निशानों से भर दिया है वे केवल दोष ढूंढना जानते हैं, उन्हें सुधारना नहीं। अब आप दूसरे चित्र में यह लिख दीजिए कि कृपया इस चित्र के दोष दूर कर दीजिए। चित्रकार ने पत्नी की बात मानकर ऐसा ही किया। अगले दिन जब वह चित्र देखने पहुंचा तो यह देखकर दंग रह गया कि सचमुच चित्र में एक भी निशान नहीं था। न ही किसी ने दोष ढूंढकर उसे दूर करने की कोशिश की थी जबकि इस बार चित्रकार ने सचमुच चित्र में जानकर गलती की थी इसके बावजूद कोई उसे नहीं पकड़ पाया था। यह देखकर वह प्रसन्न मन से घर आया और पत्नी से बोला, तुम बिल्कुल ठीक कह रही थीं। लोग दोष ढूंढना तो जानते हैं किंतु उसमें सुधार करना नहीं। उसकी पत्नी बोली, बिल्कुल सही कहा आपने। आपका यह चित्र पहलेवाले चित्र के मुकाबले कुछ भी नहीं है। दुनिया दोष निकालना तो जानती है लेकिन सुधार करना नहीं। बुराई पर चर्चा सब करते हैं, पर बुराई को दूर करना कोई नहीं चाहता। तभी तो दुनिया में इतनी बुराई है। चित्रकार पत्नी की बात से सहमत हो गया।

३२४) उन्नति में बाधक- प्रसिद्ध समाज सेवक बाबा आम्टे बचपन में बात-बात पर रूठ जाया करते थे। एक बार उनके एक घनिष्ठ मित्र ने उनसे ऐसी बात कह दी जिसका उन्हें बहुत बुरा लगा। नाराज होकर उन्होंने उससे बोलना ही छोड़ दिया। वह मित्र बाबा आम्टे के प्रति बेहद स्नेह रखता था। उसने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन जब वह उसके समझाने पर भी नहीं माने तो उसने उनकी मां से यह बात बता दीं। रूठनेवाली बात सुनकर बाबा आम्टे की मां ने मित्र को आश्वासन दिया कि उनका बेटा ज्यादा दिन तक उससे रूठा नहीं रहेगा और कुछ दिन बाद स्वयं आकर उससे बात करेगा। कुछ ही दिनों बाद बाबा आम्टे की मां उन्हें बगीचे में लेकर गई। उस उस समय पतझड़ का मौसम चल रहा था और पेड़ के गले-सड़े व पीले पत्ते झड़-झड़कर गिर रहे थे। मां ने उन पत्तों को बाबा आम्टे को दिखाते हुए कहा, बेटा देखो ये पुराने पत्ते किस प्रकार अनायास झड़ रहे हैं। हमारे पुराने मनमुटाव, घृणा, जलन आदि को भी इसी तरह झड़ जाना चाहिए। हमें अपने मन के इन पीले, सड़े-गले पत्तों को भी झटककर फेंक देना चाहिए क्योंकि ये तनाव व दुख का कारण तो बनते ही हैं साथ ही हमारी उन्नति में भी बाधक होते हैं। ममतामयी मां के इन प्रेरक शब्दों ने बाबा आम्टे पर गहरा असर किया। वह उसी समय अपने उस मित्र के घर जा पहुंचे जिससे वह रूठ गए थे। उन्होंने उससे बातचीत शुरू कर दी। इसके साथ ही उन्होंने जरा-जरा सी बातों पर रूठने की आदत छोड़ दी।

३२५) व्यक्ति का भय- एक ऋषि अपने आश्रम के बाहर टहल रहा था। सहसा उसने देखा कि एक काली सी भयाकृति वहां चली आ रही है। उन्होंने उसे रोका और पूछा कौन हो तुम? वह बोली, मुनिवर मैं मौत हूं। यह सुनकर ऋषि हैरानी से बोले, तुम्हें अचानक इस गांव में आने की क्या जरूरत पड़ गई? मौत बोली, मुनिवर मैं कभी भी बिना बुलाए नहीं आती। इस गांव में पचास लोगों का अंत समय निकट आ गया है और मैं उन्हें लेने आई हूं। यह सुनकर ऋषि चिंतित हो गए और हाथ जोड़कर उससे बोले, तुम यहां से वापिस चली जाओ। भला इतने लोगों को मारकर तुम्हें क्या मिलेगा। मौत बोली, मुनिवर मुझे रोकने का प्रयास न करें। मैं तो शाश्वत सत्य हूं। जिनका अंत समय निकट है, उन्हें मैं कैसे छोड़ दूं। यह कहकर वह वहां से आगे बढ़ चली और चलते-चलते बोली, मुनिवर, वापसी में मैं भी आपसे मिलते हुए जाऊंगी।

कुछ समय बाद वह ऋषि के पास लौटी तो चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। ऋषि ने उसे तुरंत पहचान लिया और उसके समीप आकर गुस्से से बोले, मुझे नहीं पता था कि तुम झूठ भी बोलती हो। अरे तुमने तो कहा था कि तुम्हें पचास लोगों के प्राण लेने हैं लेकिन तुमने तो पांच सौ लोगों के प्राण हर लिए। तुमने ऐसा अन्याय क्यों किया? मौत मुस्कुराते हुए बोली मुनिवर, न ही मैंने झूठ बोला और न ही कोई अधर्म किया है। मैं तो वास्तव में पचास लोगों की जान ले गई थी। साढ़े चार सौ लोग तो व्यर्थ ही अपने समय से पहले भयभीत होकर मेरे पास चले आए। मैंने तो उन्हें छुआ भी नहीं था। भयभीत प्राणी किसी भी क्षेत्र में नहीं जीत सकता। हां निडर, धैर्य व दृढ़ इच्छाशक्तिवाला व्यक्ति अवश्य मुझे पराजित कर सकता है। आपके ही गांव के एक किसान ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से मुझे हरा दिया है। मैं उसके प्राण नहीं ले सकी। आप ही बताइए भला मेरा कहां दोष है? दोष तो व्यक्ति के अंदर छिपे उस भय का है जिसके कारण वह अनायास ही मौत का शिकार बना है।

३२६) लेखक का कमरा- एक युवा महिला पत्रकार को प्रख्यात लेखक एच. जी. वेल्स का इंटरव्यू लेने के लिए कहा गया। उसने कुछ ही दिनों पहले अपने करियर की शुरुआत की थी। उसने बड़ी मेहनत से प्रश्न तैयार किए और उनके घर पहुंच गई। इतने बड़े लेखक के सामने जाने में उसे घबराहट हो रही थी। जब वह वेल्स के घर पहुंची तो वह अपना नया मकान अपने एक दोस्त को दिखा रहे थे। उन्होंने उस पत्रकार को भी वहीं बुला लिया। तीसरी मंजिल पर एक छोटे से कमरे को दिखाते हुए उन्होंने कहा, यह मेरा बेडरूम है। इस पर उनके मित्र ने पूछा, पर आप निचली मंजिल में बने इतने शानदार कमरों का उपयोग अपने शयन-कक्ष के रूप में क्यों नहीं करते? वेल्स बोले, वे मेरी नौकरानी और रसोइये के लिए हैं, जो पिछले बीस वर्षों से मेरे साथ हैं। यह सुनकर मित्र को थोड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा, आमतौर पर तो लोग छोटे कमरे अपने नौकरों के लिए रखते हैं। यह सुनकर वेल्स मुस्कराए, फिर बोले, लेकिन मेरे मकान और मेरे दिल में ऐसी व्यवस्था नहीं है, क्योंकि मैं बिल्कुल नहीं भूला कि मेरी मां भी किसी समय लंदन के एक घर में नौकरानी का काम करती थी। यह कहते हुए वेल्स की आंखें नम हो गई थीं। महिला पत्रकार यह सब चुपचाप सुन रही थी। एक प्रतिष्ठित लेखक के मन में समाज के निम्न वर्ग के प्रति सम्मान के इस भाव को देख वह अभिभूत हो गई। वेल्स के लिए उसके मन में इज्जत पहले से भी ज्यादा बढ़ गई। उसके भीतर का रहा-सहा डर भी खत्म हो गया। उसने वेल्स से खुलकर सवाल पूछे और एक बेहतरीन साक्षात्कार (इंटरव्यू) तैयार हुआ।

३२७) वैज्ञानिक के उपकरण- बात उन दिनों की है जब विश्वविख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंसटाइन जर्मनी छोड़ चुके थे। विभिन्न देशों के नामी विश्वविद्यालयों से उनको निमंत्रण मिला। मगर अपने बौद्धिक स्वभाव एवं शांत वातावरण के कारण उन्होंने चुना प्रिस्टन विश्वविद्यालय को। जब आइंस्टाइन पहली बार प्रिस्टन पहुंचे तो वहां के प्रशासनिक अधिकारी ने उनसे पूछा, आप अपने साथ में अपने पुराने उपकरण लाए होंगे, वे कहां हैं? कृपया बता दें, तो मैं उन्हें व्यवस्थित करके रख, दूं। आइंसटाइन ने उस अधिकारी की तरफ देखा फिर अपनी खोपड़ी थपथपाई और मुस्कराते हुए कहा, मेरे सारे उपकरण इसी में हैं। अधिकारी हैरान-परेशान हो गया। असमंजस की स्थिति में उसने फिर पूछा, और आपकी प्रयोगशाला कहां बनानी है? यह सुनते ही आइंसटाइन ने उसे अपना फाउंटेन पेन दिखाया और कहा, ये है मेरी

प्रयोगशाला। मुझे अलग प्रयोगशाला की जरूरत नहीं है। मेरी प्रयोगशाला हमेशा मेरी जेब में रहती है। अधिकारी ने फिर प्रश्न किया, आपको किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता है? आइंस्टाइन ने सहजता से कहा, मुझे ज्यादा कुछ नहीं चाहिए, बस केवल एक ब्लैकबोर्ड, कुछ चॉक, कुछ पेपर और कुछ पेंसिलें चाहिए। अधिकारी उनके उपकरणों की सूची सुनकर आश्चर्य में पड़ गया। वह कुछ कहता तभी आइंस्टाइन ने फरमाइश की, इन चीजों के अलावा एक बड़ी सी टोकरी जरूर चाहिए। क्योंकि अपनी गणनाओं में मैं जगह-जगह गलतियां करूंगा और यदि टोकरी छोटी हुई तो वह जल्दी भर जाएगी। प्रशासनिक अधिकारी हतप्रभ रह गया।

३२८) सबके लिए करुणा- एक बार गोरक्षा से संबंधित संस्था के एक प्रचारक आर्थिक अनुदान के लिए स्वामी विवेकानंद के पास आए। स्वामीजी ने प्रचारक से पूछा- आप लोगों की सभा का उद्देश्य क्या है? प्रचारक महोदय बोले- हम देश की गोमाताओं को कसाइयों से बचाते है। हमने अनेक स्थानों पर गोशालाएं स्थापित की हैं, जहां दुर्बल, रोगग्रस्त गायों का पालन-पोषण किया जाता है। स्वामी जी ने पूछा- सभा की आय का स्रोत क्या है? प्रचारक ने कहा- मारवाड़ी वैश्य समुदाय इस कार्य के लिए प्रचुर धन देता है। फिर आप जैसे धर्मात्मा भी हमें सहयोग देते है। स्वामी जी ने प्रश्न किया- मध्य भारत में इस वर्ष अकाल से लाखों लोग मर गए। क्या आपकी संस्था ने इसमें सहायता की? प्रचारक बोले- हम अकाल आदि में कोई सहायता नहीं करते, क्योंकि हमारा मानना है कि मनुष्य के कर्मफल अर्थात पापों के कारण यह अकाल पड़ा। उन्होंने कर्मानुसार फल भोग लिया। प्रचारक की बात स्वामीजी को अच्छी नहीं लगी। वे बोले- जो संस्था मनुष्य में रुचि नहीं रखती हो, अपने भाइयों को बिना अन्न मरते देखकर भी उनकी मदद करने के लिए तैयार न हो, उससे मैं भी सहानुभूति नहीं रखता। यदि अपने कर्मफल से मनुष्य अकाल का शिकार हुए तो यह भी कहा जा सकता है कि गोमाताएं भी अपने कर्मफल से कसाइयो के पास पहुंचती हैं। अगर हमारे हृदय में सच्ची करुणा होगी, तो वह सबके लिए होगी, न कि केवल गायों तक सीमित रहेगी। मेरे पास धन है नहीं। यदि कभी होगा भी तो पहले उसे मानव सेवा के लिए लगाऊंगा फिर आपकी संस्था को दूंगा। यह सुनकर प्रचारक महोदय लौट गए।

३२९) तीन तारों की धुन- नार्वे में पैदा हुए ओल बर्नेमन बुल विश्वविख्यात वायलिन वादक थे। अनेक विश्व प्रसिद्ध कंपनियां उन्हें अपने कार्यक्रम में बुलाने को आतुर रहती थीं। एक दिन पैरिस की एक कंपनी ने कोई बड़ा कार्यक्रम करने की योजना बनाई। वह कुछ समय से घाटे में चल रही थी। कार्यक्रम का मकसद पैसा जुटाना था। लेकिन आयोजक इस बात से चिंतित थे कि यदि कार्यक्रम असफल हो गया तो कंपनी बिल्कुल ही डूब जाएगी। वह कार्यक्रम को सफल बनाने के तरीके ढूंढने लगे। सब अपनी-अपनी राय देने लगे। किसी ने प्रसिद्ध अभिनेता और अभिनेत्री को नृत्य के लिए आमंत्रित करने की सलाह दी, किसी ने जादूगर बुलाने के लिए कहा तो कोई कुछ और। सहसा एक युवा आयोजक बोला, अगर बुल को वायलिन बजाने के लिए बुलाया जाए तो कार्यक्रम की सफलता में संदेह नहीं रह जाएगा। बुल ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। वह कंपनी के घाटे से परिचित थे। उन्होंने सोचा कि यदि उनकी वजह से किसी संस्था अथवा व्यक्ति को लाभ पहुंचता है तो उन्हें अवश्य साथ देना चाहिए। कार्यक्रम के दिन हॉल खचाखच भरा था। लोग बुल की एक झलक पाने के लिए बेताब थे। बुल ने वायलिन पर धुन बजानी शुरू की। पर अभी धुन निकली ही थी कि अचानक

वायलिन का एक तार टूट गया। उन्होंने बिना घबराये तीन तारों पर अपनी नई धुन बनाई और उसे मन से बजाते रहे। जब कार्यक्रम समाप्त हुआ तो उन्होंने देखा कि श्रोता अपने स्थान पर खड़े होकर उनके सम्मान में तालियां बजा रहे थे। इससे न सिर्फ कंपनी की साख बन गई बल्कि बुल को भी एक शानदार धुन मिल गई।

३३०) छात्र का साहस- स्कूल में इतिहास की कक्षा चल रही थी। अध्यापक बच्चों को कोई पाठ पढ़ा रहे थे, पर बच्चों का ध्यान लिखने पर कम था। बाहर के शोरगुल में उनकी रुचि ज्यादा थी। अध्यापक ने कक्षा के विद्यार्थियों पर नजर डाली तो उन्हें ऐसा लगा जैसे एक छात्र कुछ भी नहीं लिख रहा। गौर से देखने पर पता चला कि वाकई उसने तो कॉपी ही नहीं निकाली थी। उसे चुपचाप बैठा देखकर अध्यापक को क्रोध आ गया। उन्होंने उससे पूछा, तुम क्यों नहीं लिख रहे हो? छात्र ने जवाब दिया, आपने जो पढ़ाया है वह मुझे पूरी तरह याद है, फिर मैं क्यों लिखूं। गुरुजी का आदेश हुआ, अच्छा तो सुनाओ। अगर ठीक-ठीक याद न हुआ तो बेंत से चमड़ी उधेड़ दूंगा। विद्यार्थी ने सारा पाठ सही-सही सुना दिया। गुरुजी मजबूर थे। वह उसे दंडित न कर सके और मन मसोस कर रह गए। अगले दिन उसी अध्यापक ने पढ़ाते-पढ़ाते फर्श पर नजर डाली तो देखा कि मूंगफली के छिलके बिखरे पड़े हैं। फिर क्या था, उन्होंने न किसी छात्र से पूछा, न ही किसी से जानकारी ली कि किसने यह सब किया है। छड़ी उठा ली और लगे एक सिरे से सारे छात्रों को पीटने। जब शिक्षक़ महोदय उस छात्र के पास पहुंचे, तो उसने कहा, इस तरह सबको मत मारिए, जिसने गलती की है सिर्फ उसे दंड दीजिए। छात्र की बात में दम था। छिलका गिरने के लिए सभी छात्र जिम्मेदार नहीं थे। उस छात्र की दृढ़ता और साहस देखकर शिक्षक महोदय दंग रह गए। वह छात्र कोई नहीं, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक थे, जिन्होंने आगे चलकर देश के स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

३३१) बिच्छू का डंक - उन दिनों गांधी जी जेल में थे। उनसे मिलने ढेरों लोग रोज जेल पहुंच जाते थे, जिससे जेलर परेशान रहता था। आखिरकार उसने एक अफ्रीकी कैदी को गांधी जी की निगरानी का काम दे दिया। वह कैदी गांधी जी पर कड़ी नजर रखने लगा ताकि उनसे कोई मिल न पाए। वह जेलर की आज्ञा का सख्ती और ईमानदारी से पालन कर रहा था। वह कोई भी भारतीय भाषा नहीं समझता था। जब कभी वह गांधीजी के पास से गुजरता गांधीजी उसे देखकर हल्के से मुस्करा देते। वह कभी मुस्कराता और कभी गांधी जी को घूरते हुए गुजर जाता। लेकिन बापू हमेशा उसे देखकर मुस्कराते थे। एक दिन वह कैदी बैरक की सफाई कर रहा था। बैरक में चारों ओर गंदगी फैली थी। अचानक एक बिच्छू ने उसे डंक मार दिया। कैदी दर्द से तड़प उठा। डंक के कारण उसका शरीर धीरे-धीरे नीला और ठंडा पड़ने लगा। उसकी आंखें भी बंद होने लगीं। यह देखकर गांधीजी तेजी से दौड़े और उस कैदी के पास गए। उन्होंने पलक झपते ही उसका हाथ अपने हाथ में लिया और जहां बिच्छू ने डंक मारा था, उसे रगड़ने लगे। फिर उन्होंने मुंह लगाकर उसका जहर निकालने की कोशिश की। यह देखकर कैदियों में अफरातफरी मच गई। जल्दी से डॉक्टर बुलाया गया। तुरंत उसका उपचार किया गया। जब उस अफ्रीकी कैदी ने आंखें खोलीं तो गांधीजी को अपने पास आया। गांधीजी उसी चिरपरिचित मुस्कराहट के साथ कैदी को देख रहे थे। कैदी की आंखों से आंसू बह निकले। उसने गांधीजी के चरण स्पर्श कर लिए। उसके बाद वह जीवन भर गांधीजी को अपना आदर्श मानता रहा।

३३२) मालवीय जी के मेहमान - पंडित मदन मोहन मालवीय ने काफी मेहनत से दान की राशि इकट्ठा करके काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। इसलिए स्वाभाविक रूप से उन्हें विश्वविद्यालय से बड़ा लगाव था। एक बार हॉलैंड से कुछ शिक्षा प्रेमी विश्वविद्यालय देखने आए हुए थे। स्वयं मालवीय जी उन्हें कैंपस घुमाने ले गए। जब वे एक हॉस्टल पहुंचे तो देखा कि एक छात्र दीवार के एक कोने में पेंसिल से कुछ लिख रहा है। मालवीय जी ने उस छात्र को बुलाकर समझाया, मेरे दिल में तुम्हारे प्रति जितनी ममता और लगाव है, उतना ही स्नेह विश्वविद्यालय की प्रत्येक ईंट से है। मैं आशा करता हूं कि भविष्य में आप ऐसी गलती नहीं करोगे। उन्होंने जेब से रूमाल निकाल कर दीवार साफ की। यह देखकर छात्र लज्जित हो गया। इस बीच एक जरूरी मीटिंग का समय हो गया जिसमें मालवीय जी को जाना था। उन्होंने अपने साथ चल रहे प्रो. शेषाद्रि से विदेशी मेहमानों को इंजीनियरिंग कॉलेज दिखा लाने का अनुरोध किया। प्रोफेसर ने शंका प्रकट की, कॉलेज शायद बंद हो गया होगा। मालवीय जी बोले, कोई बात नहीं वहां कोई चपरासी तो होगा। प्रो. शेषाद्री ने कहा, कोई चपरासी भी शायद ही इस वक्त मौजूद हो। इस पर विदेशी मेहमानों में से एक ने कहा कि वे उसे देखे बगैर ही लौट जाएंगे। इस पर मालवीय जी बोले, नहीं, मैं चाहता हूं कि आप लोग उसे अवश्य देखें। आप कॉलेज के बंद दरवाजों में लगे कांचों से ही झांककर देख आएं। इस पर एक मेहमान बोल पड़ा, अब समझ गया। आपके अलावा शायद ही कोई इतना बड़ा काम कर सकता था।

३३३) वैज्ञानिक का विश्वास- यह उन दिनों की बात है जब प्रख्यात वैज्ञानिक थॉमस एडिसन फोनोग्राफ बनाने में व्यस्त थे। इस काम से जुड़े कुछ हिस्से उन्होंने एक सहायक को सौंप दिए थे ताकि वह मुख्य लक्ष्य पर खुद को केंद्रित कर सकें। दो साल तक काम करने के बाद एडिसन का सहायक उनके पास आया और बोला, मिस्टर एडिसन। मैंने आपके हजारों डॉलर और अपने जीवन के दो साल इस काम में खपा दिए हैं। पर परिणाम कुछ भी नहीं निकला और लगता भी नहीं कि मुझसे कुछ हो पाएगा। आपकी जगह अगर कोई और होता तो मुझे कब का निकाल लेता। पर अब मुझे अहसास होने लगा है कि मैं आपके साथ अन्याय कर रहा हूं। अब मैं इस्तीफा देना चाहता हूं। यह कहते हुए उसने अपना इस्तीफा पत्र एडिसन की मेज पर रख दिया और विनम्रतापूर्वक बोला, सर, कृपया मेरा इस्तीफा स्वीकार कीजिए। एडिसन ने झटके में इस्तीफा पत्र उठाया और फाड़ दिया। फिर अपने चिर-परिचित अंदाज में बोले, मैं तुम्हारा इस्तीफा नामंजूर करता हूं। क्षण भर रुककर कुछ सोचने के बाद एडिसन ने अपने सहायक से कहा, दोस्त, मेरा विश्वास है कि अगर समस्या है तो उसका कोई न कोई हल भी होगा। दरअसल हल हमारे पास ही होता है, पर हम उसे देख नहीं पाते। इसलिए तुम जिस काम में जुटे हो उसमें लगे रहो। किसी न किसी दिन समाधान मिलेगा। वापस जाकर अपने काम में लग जाओ। एडिसन के प्रेरणा भरे शब्दों ने उनके सहायक का विश्वास मजबूत कर दिया। वह दोगुने उत्साह से काम में लग गया। एडिसन ने कुछ दिनों बाद फोनोग्राफ बना लिया।

३३४) दो नावों की सवारी- दमन नामक एक छात्र अपने गुरु से धनुर्विद्या सीख रहा था। उसके गुरु अत्यंत प्रसिद्ध थे। वे सभी छात्रों को बड़े मनोयोग से सिखाते थे। दमन सभी छात्रों से प्रतिस्पर्धा करता था और उनसे हर हाल में आगे निकलना चाहता था। वह अपने गुरु द्वारा सिखाई गई विद्या को पूरे मन से सीखता था, लेकिन उसे लगता था कि यदि उसे

अन्य छात्रों से आगे निकलना है तो धनुर्विद्या को एक और गुरु से भी सीखना चाहिए। जब वह दो-दो गुरुओं से विद्या सीखेगा तो निश्चय ही अन्य छात्रों से आगे निकल जाएगा। वह अपने गुरु का बहुत सम्मान करता था। इसलिए उसने सोचा कि इस संदर्भ में उनसे भी पूछा जाए। दमन बोला, गुरुजी, मुझे धनुर्विद्या बहुत पसंद है। मैं चाहता हूं कि इसी में मैं अपना भविष्य बनाऊं। गुरु बोले, बेटा, यह तो बहुत अच्छी बात है। यदि तुम मेहनत करोगे तो अवश्य इस कला में सफल हो जाओगे। दमन बोला, पर गुरुजी अभी तो मेरे सीखने का समय है। मैं चाहता हूं कि आपके साथ-साथ एक और गुरु से मैं धनुर्विद्या की शिक्षा लूं। आपका इस बारे में क्या विचार है? उसकी बात सुनकर गुरुजी बोले, बेटा, दो नावों की सवारी करनेवाला व्यक्ति कभी भी लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाता। यदि तुम्हें इस विद्या में सफलता प्राप्त करनी है तो पहले एक तरफ पूरा ध्यान लगाओ। यदि तुम इस विद्या में पारंगत होना चाहते हो तो दूसरे गुरु की बजाय स्वयं इस प्रतिभा को निखारो और अकेले में अभ्यास करो। एक नाव पर ही सवारी करके लक्ष्य तक पहुंचो। दमन गुरु का आशय समझ गया। वह अकेले में धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा।

३३५) महानता के लक्षण- यूनान के थ्रेस प्रांत में एक निर्धन बालक दिन भर जंगल में लकड़ियां काटता और शाम को उनका गट्ठर बनाकर बाजार में बेच देता। इसी से उसके परिवार का पालन-पोषण होता था। एक दिन एक सज्जन उस बाजार से गुजर रहे थे, जहां वह लड़का लकड़ी बेचने आया था। सज्जन ने देखा कि उस लड़के का गट्ठर बहुत ही कलात्मक रूप से बंधा हुआ है, जबकि और लोगों के गट्ठर जैसे-तैसे बेतरतीब ढंग से बंधे थे। फिर उस लड़के के खड़े होने से लेकर उसकी बातचीत के अंदाज में भी कुछ असाधारणता झलक रही थी। सज्जन ने लड़के से पूछा, क्या यह गट्ठर तुमने खुद बांधा है? लड़के ने आत्मविश्वास के साथ जवाब दिया, जी हां। मैं दिन भर लकड़ी काटता हूं, स्वयं गट्ठर बांधता हूं और फिर यहां बेचता हूं। सज्जन ने फिर कहा, क्या तुम इसे खोलकर इसी तरह फिर बांध सकते हो? लड़के ने हां कहते हुए गट्ठर खोला और अत्यंत सुंदर तरीके से फिर बांध दिया। यह कार्य उसने बड़े ध्यान से फुर्ती के साथ किया। वह सज्जन उस लड़के की लगन व प्रतिभा से बेहद प्रभावित हुए। उन्होंने महसूस किया कि बालक में छोटे-से-छोटे काम को भी एक निश्चित रूप देने का गुण है। उन्हें लगा कि अगर इसे शिक्षा और प्रशिक्षण मिले तो यह जीवन में कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है। उन्होंने लड़के से पूछा, क्या तुम मेरे साथ चलोगे? मैं तुम्हें शिक्षा दिलाऊंगा। लड़के ने हामी भर दी। वह सज्जन थे यूनान के विख्यात तत्वज्ञानी डेमोक्रिट्ज और वह बालक था पाइथागोरस। वैज्ञानिक की मदद से पाइथागोरस ने उच्च शिक्षा हासिल की और महान दार्शनिक बने।

३३६) जब महात्मा ने जिज्ञासु को अमल की महिमा बताई- एक जिज्ञासु था। उसके मन में कई तरह के प्रश्न उठते थे। जिनके समाधान के लिए वह इस संत के पास तो कभी उस महात्मा के पास जाया करता था। हालांकि वह स्वयं अत्यंत ज्ञानी था किंतु अपने प्रश्नों का उत्तर दूसरों से प्राप्त करना उसकी प्रवृत्ति थी। इसके बिना उसे चैन नहीं मिलता था। एक दिन उसके शहर में एक महात्मा आए।

उस जिज्ञासु ने लोगों से उनके विषय में जानकारी प्राप्त की तो उसे ज्ञात हुआ कि वे बहुत ज्ञानी हैं। बस यह जानकार वह जिज्ञासु उन महात्मा के पास पहुंच गया और कुछ उपदेश सुनाने की प्रार्थना की। महात्मा ने उसे गौर से देखा और कहा-

मेरा उपदेश यह है कि आज के बाद किसी से उपदेश मत मांगना। यह सुनकर वह व्यक्ति असमंजस में पड़ गया और सोचने लगा। तब महात्मा ने प्रश्न किया- अच्छा बताओ, सच बोलना अच्छा है या बुरा? जिज्ञासु ने उत्तर दिया- अच्छा। महात्मा ने फिर पूछा- चोरी करना ठीक है या गलत? जिज्ञासु बोला- गलत। महात्मा ने पुन: प्रश्न किया- समय का सदुपयोग करना चाहिए अथवा नहीं? उत्तर मिला- करना चाहिए।

इस प्रकार के कई प्रश्न महात्मा ने जिज्ञासु से किए और सभी के उत्तर उसने सही दिए। तब महात्मा बोले- तुम सब कुछ जानते हो। अब और क्या उपदेश सुनना चाहते हो? तुम्हें गुणों का ज्ञान है, किंतु मात्र ज्ञान से काम नहीं चलता। गुणों को जीवन में उतारो। उन पर अमल करो। इसी में तुम्हारी भलाई है, उपदेश सुनने में नहीं।

३३७) कुबेर का अहंकार- यह एक पौराणिक कथा है। कुबेर तीनों लोकों में सबसे धनी थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि हमारे पास इतनी संपत्ति है, लेकिन कम ही लोगों को इसकी जानकारी है। इसलिए उन्होंने अपनी संपत्ति का प्रदर्शन करने के लिए एक भव्य भोज का आयोजन करने की बात सोची। उसमें तीनों लोकों के सभी देवताओं को आमंत्रित किया गया। भगवान शिव उनके इष्ट देवता थे, इसलिए उनका आशीर्वाद लेने वह कैलाश पहुंचे और कहा, प्रभो। आज मैं तीनों लोकों में सबसे धनवान हूं, यह सब आपकी कृपा का फल है। अपने निवास पर एक भोज का आयोजन करने जा रहा हूं, कृपया आप परिवार सहित भोज में पधारने की कृपा करें। भगवान शिव कुबेर के मन का अहंकार ताड़ गए, बोले, वत्स। मैं बूढ़ा हो चला हूँ, कहीं बाहर नहीं जाता।

कुबेर गिड़गिड़ाने लगे, भगवन। आपके बगैर तो मेरा सारा आयोजन बेकार चला जाएगा। तब शिवजी ने कहा, एक उपाय है। मैं अपने छोटे बेटे गणपति को तुम्हारे भोज में जाने को कह दूंगा। कुबेर संतुष्ट होकर लौट आए। नियत समय पर कुबेर ने भव्य भोज का आयोजन किया।

तीनों लोकों के देवता पहुंच चुके थे। अंत में गणपति आए और आते ही कहा, मुझको बहुत तेज भूख लगी है। भोजन कहां है। कुबेर उन्हें ले गए भोजन से सजे कमरे में। सोने की थाली में भोजन परोसा गया। क्षणभर में ही परोसा गया सारा भोजन खत्म हो गया। दोबारा खाना परोसा गया, उसे भी खा गए। बार-बार खाना परोसा जाता और क्षणभर में गणेश जी उसे चट कर जाते। थोड़ी ही देर में हजारों लोगों के लिए बना भोजन खत्म हो गया, लेकिन गणपति का पेट नहीं भरा। वे रसोईघर में पहुंचे और वहां रखा सारा कच्चा सामान भी खा गए, तब भी भूख नहीं मिटी। जब सब कुछ खत्म हो गया तो गणपति ने कुबेर से कहा, जब तुम्हारे पास मुझे खिलाने के लिए कुछ था ही नहीं तो तुमने मुझे न्योता क्यों दिया था? कुबेर का अहंकार चूर-चूर हो गया।

३३८) अहंकार और क्रोध है असली अशुद्धि- मनुष्य की दो बुराइयां उसके कर्मों को दूषित कर देती हैं। यदि कुछ सीखनेकी चाहत हो तो पहले इन्हें दूर करना चाहिए। एक युवक किसी संत के मठ में आध्यात्मिक साधना के लिए पहुंचा। युवक की प्रार्थना सुनकर उन्होंने कहा- जाओ पहले शुद्ध होकर आओ, इसके बाद आगे की बात होगी। इधर संत ने एक सफाई करनेवाली महिला को बुलाकर उसे कुछ निर्देश देकर भेज दिया। युवक उत्साह से स्नान करके तेजी से संत के निवास की ओर बढ़ने लगा। मार्ग में झाड़ू लगा रही उस महिला ने सारी धूल युवक पर उड़ा दी। युवक को बहुत गुस्सा

आया, वह उसे मारने दौड़ा। महिला ने तेजी से वहां से भागकर खुद को बचाया। युवक संत के पास पहुंचा तो उन्होंने उसे फिर से शुद्ध होकर आने के लिए कहा। युवक दूसरी बार स्नान करने गया। वह जब वापस आने लगा तो रास्ते में उस महिला ने उसे झाड़ते हुए गंदे हाथों से छू लिया। युवक को फिर गुस्सा आया लेकिन इस बार वह महिला को गालियां देकर चुप हो गया और संत के पास पहुंचा। उसे पुन: शुद्ध होकर आने के लिए कहा गया। इस बार युवक जैसे ही स्नान कर लौटा उस महिला ने कचरे से भरी टोकरी उस पर उड़ेल दी। इस बार युवक शांत बना रहा। उसने महिला को प्रणाम किया और कहा- आप धन्य हैं, आपकी कृपा से मैं स्वयं के गुस्से को पहचान सका और उस पर काबू कर सका। संत ने कहा- अब तुम पूर्ण शुद्ध हो गए हो, स्नान कर आओ, अब मेरे साथ रह सकते हो। घटना के माध्यम से युवक को प्रथम संदेश मिल गया था कि बाहरी अशुद्धि गौण है। जो अशुद्धि मायने रखती है और ज्यादा नुकसानदेह है वह मनुष्य के अहंकार और क्रोध की है। इनके रहते मनुष्य जीवन का कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं कर सकता। गंदगी की तरह ये हर कर्म को दूषित कर देते हैं। जीवन में यदि कुछ सीखने की चाहत हो तो सबसे पहले इन दो अशुद्धियों को दूर करना जरूरी है।

३३९) विश्वास में इतनी गहराई - एक बार नारदजी एक पर्वत से गुजर रहे थे। अचानक उन्होंने देखा कि एक विशाल वटवृक्ष के नीचे एक तपस्वी तप कर रहा है। उनके दिव्य प्रभाव से वह जाग गया और उसने उन्हें प्रणाम करके पूछा कि उसे प्रभु के दर्शन कब होंगे। नारदजी ने पहले तो कुछ कहने से इनकार किया फिर बार-बार आग्रह करने पर बताया कि इस वटवृक्ष पर जितनी छोटी-बड़ी टहनियां हैं उतने ही वर्ष उसे और लगेंगे। नारदजी की बात सुनकर तपस्वी बेहद निराश हुआ। उसने सोचा कि इतने वर्ष उसने घर-गृहस्थी में रहकर भक्ति की होती और पुण्य कमाए होते तो उसे ज्यादा फल मलते। वह बोला, मैं बेकार ही तप करने आ गया। नारदजी उसे हैरान-परेशान देखकर वहां से चले गए। आगे जाकर संयोग से वह ऐसे जंगल में पहुंचे, जहां एक और तपस्वी तप कर रहा था। वह एक प्राचीन और अनंत पत्तों से भरे हुए पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। नारदजी को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और उसने भी प्रभु दर्शन में लगनेवाले समय के बारे में पूछा। नारदजी ने उसे भी टालना चाहा, मगर उसने बार-बार अनुरोध किया। इस पर नारदजी ने कहा कि इस वृक्ष पर जितने पत्ते हैं उतने ही वर्ष अभी और लगेंगे। हाथ जोड़कर खड़े उस तपस्वी ने जैसे ही यह सुना, वह खुशी से झूम उठा और बार-बार यह कहकर नृत्य करने लगा कि प्रभु उसे दर्शन देंगे। उसके रोम-रोम से हर्ष की तरंगे उठ रही थीं।

नारदजी मन ही मन सोच रहे थे कि इन दोनों तपस्वियों में कितना अंतर है। एक को अपने तप पर ही संदेह है। वह मोह से अभी तक उबर नहीं सका और दूसरे को ईश्वर पर इतना विश्वास है कि वह वर्षों प्रतीक्षा के लिए तैयार है। तभी वहां अचानक अलौकिक प्रकाश फैल गया और प्रभु प्रकट होकर बोले, वत्स। नारद ने जो कुछ बताया वह सही था पर तुम्हारी श्रद्धा और विश्वास में इतनी गहराई है कि मुझे अभी और यहीं प्रकट होना पड़ा।

३४०) दासता के विरुद्ध- विश्वविख्यात लेखिका हैरियट एलिजाबेथ स्टो ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास अंकल टॉम्स केबिन (टॉम काका की कुटिया) किन परिस्थितियों के बीच लिखी, यह बहुत कम लोग जानते है। आम जानकार तो इतनी ही है कि इस महान रचना ने अमेरिका से दासता की अमानवीय प्रथा खत्म करने में अहम भूमिका निभाई थी। स्टो

ने अपनी भाभी के एक पत्र का उत्तर देते हुए बताया था कि किन विपरीत परिस्थितियों में उन्होंने इसकी रचना की। उन्होंने लिखा, चूल्हा-चौका, कपड़े धोना, सिलाई, जूते गांठना जैसे कामों की व्यस्तता बनी ही रहती है। बच्चों के लिए तैयारी करनी होती है। दिन भर सिपाही की तरह ड्यूटी देनी पड़ती है। छोटा बच्चा मेरे पास ही सोता है। वह जब तक सो नहीं जाता, कुछ भी लिख नहीं सकती। गरीबी और काम का दबाव बहुत है। फिर भी भाभी, सच मानना, मेरे मन में गुलामी के खिलाफ आग धधक रही है, सो जिंदा रही तो कुछ ऐसा जरूर लिखूंगी, जो अमेरिका के सिर से दासता को लादे रहने का कलंक छुड़ा सके। गरीबी और कठिनाइयों के बीच भी मनुष्य भीतर की प्रेरणा से समय को बदलने में भूमिका निभा सकता है। हैरियट स्टो की यह बात बिल्कुल सही निकली। उनकी यह किताब अपने समय की सबसे अच्छी बिकनेवाली साबित हुई। इसने अश्वेतों के जीवन को लेकर श्वेतों के बीच फैले कई तरह के भ्रम दूर किए। जब गुलामी के सवाल पर अमेरिका में गृह युद्ध शुरू हुआ तो अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन स्टो से मिले। उन्हें देखते ही लिंकन के मुंह से निकला, तो यही है वह छोटी महिला, जिसने यह महान युद्ध लड़ने की प्रेरणा दी।

३४१) चिंता की मार- दो वैज्ञानिक बातचीत कर रहे थे। उनमें एक वृद्ध और एक युवा था। वृद्ध वैज्ञानिक ने कहा, चाहे विज्ञान कितनी भी प्रगति क्यों न कर ले, लेकिन वह अभी तक ऐसा कोई उपकरण नहीं ढूंढ पाया, जिससे चिंता पर लगाम कसी जा सके। युवा वैज्ञानिक मुस्कराते हुए बोला, आप भी कैसी बातें करते हैं। अरे चिंता तो मामूली सी बात है। भला उसके लिए उपकरण ढूंढने में समय क्यों नष्ट किया जाए? वृद्ध वैज्ञानिक ने कहा, चिंता बहुत भयानक होती है। यह व्यक्ति का सर्वनाश कर देती है। लेकिन युवा वैज्ञानिक उनसे सहमत नहीं हुआ। वृद्ध वैज्ञानिक उसे अपने साथ घने जंगलों की ओर ले गए। एक विशालकाय वृक्ष के आगे वे खड़े हो गए। युवा वैज्ञानिक बोला, आप मुझे यहां क्यों लाए हैं? वृद्ध वैज्ञानिक ने कहा, जानते हो, इस वृक्ष की उम्र चार सौ वर्ष बताई गई है। युवा वैज्ञानिक बोला, अवश्य होगी। वृद्ध वैज्ञानिक ने समझाते हुए कहा, इस वृक्ष पर चौदह बार बिजलियां गिरी। चार सौ वर्षों से अनेक तूफानों का इसने सामना किया। अब युवा वैज्ञानिक ने झुंझलाकर कहा, आप साबित क्या करना चाहते हैं? वृद्ध वैज्ञानिक बोले, धैर्य रखो। यहां आओ और देखो कि इसकी जड़ में दीमक लग गया है। दीमक ने इसकी छाल को कुतर-कुतर कर तबाह कर दिया है। युवा वैज्ञानिक ने पूछा, अब निष्कर्ष तो बताइए। वृद्ध वैज्ञानिक बोले, जिस तरह यह विशाल वृक्ष बिजली से नष्ट नहीं हुआ, तूफान से धराशायी नहीं हुआ लेकिन मामूली दीमक उसे चट कर गया, उसी तरह चिंता का दीमक भी सुखी-समृद्ध और ताकतवर व्यक्ति को चट कर जाता है।

३४२) वैज्ञानिक की जिद - थॉमस अल्वा एडीसन को काम करने का नशा था। वे एक बार अपनी प्रयोगशाला में घुस जाते, तो बाहर ही नहीं निकलते थे। उनकी इस आदत से उनकी पत्नी बहुत चिढ़ी-चिढ़ी सी रहती थीं। एक बार तो एडीसन कई दिनों तक अपनी प्रयोगशाला से बाहर निकलने का नाम ही नहीं ले रहे थे। आखिरकार बहुत दिनों के बाद जब वे बाहर निकले तो उनकी पत्नी ने उनसे कहा, तुम दिन-रात काम में लगे रहते हो, कभी तो छुट्टी कर लिया करो। एडीसन ने कहा, लेकिन छुट्टी लेकर मैं जाऊंगा कहां? पत्नी बोलीं, जहां तुम्हारा मन चाहे, जो जगह तुम्हें प्रिय हो, वहां चले जाना। अच्छा तो फिर मैं वही जाता हूं। यह कहकर एडीसन फिर अपनी प्रयोगशाला में घुस गए। तभी एडीसन को खबर मिली

कि उनके कारखाने में भयानक आग लग गई। जीवन भर की उनकी कमाई नष्ट हो गई। दुर्घटना के बारे में सुनकर उनका बेटा चार्ल्स दौड़ा हुआ वहां पहुंचा। उसने देखा कि उसके पिता एक कोने में खड़े हैं, जाड़े की ठंडी हवा से उनके बाल लहरा रहे हैं। अपने पिता के लिए बेटे का दिल बिलख रहा था। चार्ल्स को देखते ही एडीसन ने जोर से कहा, तुम्हारी मां कहां है। उन्हें बुलाकर लाओ, ये चीजें उसे जीते-जी कभी भी देखने को नहीं मिलनेवाली हैं। अगले दिन अपनी अनेक उम्मीदों और सपनों को राख के बीच देखते हुए एडीसन ने कहा, तबाही की भी बड़ी कीमत होती है। हमारी सारी गलतियां जल जाती हैं। अब हम नए सिरे से जिंदगी शुरू कर सकते हैं। इस दुखद घटना के केवल तीन महीने बाद ही उन्होंने टेलिफोन का आविष्कार किया।

३४३) जैसी सोच वैसा जवाब- एक गांव के नजदीक एक साधु ने झोपड़ी बना रखी थी। धूप और थकान से व्याकुल राहगीर जब दो क्षण के लिए वहां आराम करने के लिए रुकते तो वह उनको पानी पिलाते, छाया में बैठाते और उनका हालचाल पूछते। बातों-बातों में चर्चा छिड़ती कि आगे के गांव के लोग कैसे हैं, उनका स्वभाव कैसा है, तो साधु उनके सवाल के जवाब में उनसे ही पूछते कि वे जिस गांव से आ रहे हैं, वहां के लोग अच्छे हैं या बुरे? कुछ लोग कहते कि वे जिस गांव से आ रहे हैं वहां के लोग बहुत भले हैं। यह सुनकर साधु उनसे कहते कि आगेवाले गांव के लोग भी उतने ही अच्छे हैं। वे उनका आदर सत्कार करेंगे। लेकिन कुछ लोग पिछले गांव के बारे में कहते कि वहां के लोग बहुत दुष्ट हैं और वे कभी लौटकर नहीं जाएंगे। ऐसे लोगों को साधु कहते कि आगेवाले गांव में भी बहुत दुष्ट लोग रहते हैं, वे वहां न जाएं। एक दिन पास के गांव का आदमी किसी काम से दो दिन उस झोपड़ी में रहा। जब उसने साधु के दो तरह के जवाबों को सुना तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने उनसे पूछा- बाबा। गांव के बारे में आप दो तरह के जवाब क्यों दे रहे हैं। आप तो उन्हें अच्छा-बुरा दोनों बता रहे हैं। साधु ने कहा- मैं जवाब देता नहीं हूं, जवाब लेता हूं। राहगीर असल में अपने पिछले गांव के लोगों की प्रकृति के बारे में न बताकर स्वयं अपनी प्रकृति को ही बता रहे होते हैं। लोगों की सोच जैसी होती है, उन्हें दूसरे लोग भी वैसे ही दिखते हैं। और वे वही राय बना लेते हैं। असल में अच्छा-बुरा कुछ होता नहीं है। हम अपने स्वभाव के हिसाब से ही अनेक तरह के निष्कर्ष निकालते रहते हैं।

३४४) लेखक की जिंदगी- लंदन में एक निर्धन बालक रहता था। उसे पेट भरने के लिए कई तरह के काम करने पड़ते थे। इसलिए वह नियमित स्कूल नहीं जा पाता था। उसकी स्कूली शिक्षा टुकड़ों में होती रही। लेकिन समय मिलने पर वह किताबों लेकर बैठ जाता और उन्हें पढ़ने की कोशिश करता। कुछ न समझ आने पर भी वह पढ़ता रहता। वह अपने जैसे दो लड़कों के साथ एक दड़बेनुमा कमरे में रहता था, जहां वे दोनों बालक काम से फुर्सत पाकर मनोरंजन में लग जाते, वही वह किताबों में लगा रहता। कई बार वे उसे छेड़ते हुए कहते, अरे काम से थक हार कर व्यक्ति का मन करता है कि वह घूमे-फिरे, अच्छा खाना खाए लेकिन तुम तो किताब उठाकर बैठ जाते हो। एक दिन उनमें से एक लड़का व्यंग्य करते हुए बोला, लगता है यह इन किताबों के माध्यम से ही इतिहास रचेगा। दोनों की बातें सुनकर वह बालक मुस्कराकर चुप हो जाता और फिर पढ़ने में लग जाता। धीरे-धीरे उसने लिखना भी शुरू कर दिया। उसे अपने लिखने पर बिल्कुल भरोसा न था। वह इन्हीं दोनों लड़कों को अपनी रचनाएं दिखाता। वे लड़के कभी उसकी रचना की तारीफ करते तो कभी मजाक

उड़ाते। उसने अपनी कहानियों को छपने के लिए भेजना शुरू किया। उसकी कहानियां अस्वीकृत होती रहीं, लेकिन उसने हिम्मत न हारी। तभी उसकी एक कहानी अखबार में छप गई। इससे उसका आत्मविश्वास मजबूत हुआ। फिर उसकी कहानियां छपती रहीं और उसे संपादकों और पाठकों से प्रशंसा व सम्मान मिलता रहा। आज उसी बालक को दुनिया चार्ल्स डिकेंस के नाम से जानती है।

३४५) रोटी और चीटियां- यह सुभाषचंद्र बोस के बचपन की घटना है। एक दिन उनकी मां प्रभावती देवी उनके अध्ययन कक्ष में आई। सुभाष कमरे में नहीं थे। प्रभावती देवी ने देखा कि चीटियों की लंबी कतार सुभाष की मेज से होती हुई किताबों की अलमारी की ओर जा रही है। उन्होंने फर्श और अलमारी के चारों तरफ ध्यान से देखा। वहां पर चीटियों का आना जाना आश्चर्यजनक था। प्रभावती देवी ने सोचा कि हो सकता है कि अलमारी में कोई कीड़ा-मकोड़ा मर गया हो। इस अनुमान से उन्होंने अलमारी खोली और किताबें उलट-पलट कर देखने लगीं। तभी पुस्तकों के पीछे दो मीठी सूखी रोटियां पड़ी दिखीं। चीटियां रोटियों के कण तोड़-तोड़कर ले जा रही थीं। मां को समझते देर न लगी कि अवश्य ही रोटियां उनके बेटे ने किसी खास कारण से रखी होंगी। तभी सुभाष आ गए। मां ने कहा, लगता है तेरा दिमाग खराब हो गया है। तूने उस अलमारी में रोटियां क्यों डाल रखी थीं? सुभाष ने भरे गले से कहा, तुमने वे रोटियां फेंक दी न मां? ठीक ही किया। अनायास ही उनकी आंखें छलछला आईं। फिर उन्होंने कहा, बात यह है कि मैं रोज अपने खाने से दो रोटियां बचाकर एक बूढ़ी भिखारिन को दिया करता था। वह मेरे स्कूल के रास्ते में खड़ी होती थी। कल जब मैं रोटियां देने गया, तो वह अपनी जगह पर नहीं थी। इसीलिए उसके हिस्से की रोटियां मैंने यहां रख दीं कि फिर किसी समय जाकर दे आऊंगा। मैं अभी वहां गया, तो पता चला कि उस बेचारी का स्वर्गवास हो गया है। प्रभावती देवी एकटक सुभाष को देखने लगीं। सुभाष का यह दया भाव जीवन भर बना रहा।

३४६) राष्ट्रपति की डायरी- यह उस समय की बात है कि जब डॉ. राजेन्द्र प्रसाद देश के राष्ट्रपति बन चुके थे। राजेन्द्र बाबू को डायरी लिखने की आदत थी। एक बार अपने जन्मदिन पर सवेरे उठते ही जब वे अपनी डायरी में कुछ लिखने बैठे तो उन्होंने देखा कि उसके कुछ पन्ने फटे हुए हैं। उन्हें समझते देर न लगी कि यह उनके घर के बच्चों का काम है। उन्होंने सोचा कि क्यों न ऐसा कुछ किया जाए कि बच्चे स्वयं ही अपनी गलती मानें और खुद ही बताएं कि सच क्या है।

वे बच्चों पर अपनी तरफ से कोई आरोप नहीं लगाना चाहते थे। उनका मानना था कि ऐसा करने से बच्चों में अपराध की प्रवृत्ति पनप सकती है। वे सोचने लगे कि आखिर बच्चों से इस बारे में किस तरीके से बात की जाए। कुछ देर सोचने के बाद उन्हें एक उपाय सूझ ही गया। उन्होंने बच्चों को अपने पास बुलाकर कहा, जिस बच्चे ने इसके पन्ने फाड़े हैं, उसे उतने ही पैसे इनाम में दिए जाएंगे। पैसों की बात सुनकर सभी बच्चे बहुत खुश हुए और निर्भय होकर सभी ने पन्ने फाड़ने की बात बता दी। राजेन्द्र प्रसाद ने सब बच्चों को सुंदर इनाम भी दिए और यह भी समझाया कि डायरी या किताब के पन्ने फाड़ना अच्छी बात नहीं है। उसमें लिखी हुई अनेक अमूल्य बातों से हम वंचित हो जाते हैं और जब समय पर हमें जरूरी चीज नहीं मिलती तो हमें अपने किए पर बहुत पछताना पड़ता है। अब सारी बात बच्चों की समझ में आ चुकी थी। उन्होंने खुश होकर राजेन्द्र बाबू से वादा किया कि वे फिर ऐसी गलती कभी नहीं करेंगे। राजेंद्र बाबू इसी तरह दूसरों को

सुधारने की कोशिश करते थे। अपना आपा खोते उन्हें शायद ही किसी ने देखा होगा।

३४७) हाथ कर्म करने के लिए हैं- एक साधु था। वह नदी के किनारे कुटिया बनाकर रहता था। सांसारिक बंधनों को तिलांजलि देकर वह एकाग्र भाव से ईश्वराधना में डूबा रहता था। एक दिन अकस्मात उसके मन में विचार आया कि जब भगवान सबका नियंता (पालनकर्ता) है तो आदमी को कर्म क्यों करना चाहिए। वैसे भी आदमी के काम करने पर उसके अंदर कर्त्तापन का अहंकार पैदा होता है और अहंकार कैसा भी हो, व्यक्ति को नीचे गिराता है। यह सोचकर उसने अपने दोनों हाथों की मुट्ठियां बंद कर लीं और अपने को पूर्णतया प्रभु की मर्जी पर छोड़ दिया। वह नदी के किनारे चट्टान पर जा बैठा और प्रभु के ध्यान में लीन हो गया। कुछ दिन बीत गए। आसपास के लोगों ने देखा कि साधु ने इतने दिनों से न कुछ खाया है न पीया है तो वे उसके लिए खाना ले आए। पर वह खाता कैसे? उसकी मुट्ठियां जो बंधी थी। लोगों ने इस कठिनाई को समझकर उसे स्वयं खाना खिला दिया। साधु को प्यास लगी। वह नदी की धारा के निकट गया और ज्यों ही चौपाए की भांति झुककर पानी पीने को हुआ तो उसके पैर उखड़ गए और वह पानी में बहने लगा। पर मुट्ठियां उसने तब भी नहीं खोली।

पानी में वह बेहाल हो गया और चट्टानों से टकराने के कारण उसका बदन लहू-लूहान हो गया। उसकी चेतना जाती रही। होश आया तो उसने पाया कि वह नदी के किनारे पड़ा है। शरीर इतना अशक्त (कमजोर) हो गया था कि उसके लिए आंखें खोलना भी कठिन हो गया। तभी कहीं से आवाज आई- अरे मूर्ख, तू बड़ा अज्ञानी है। तूने कर्म से मुंह मोड़ लिया, लेकिन यह नहीं सोचा कि अगर ईश्वर की यही इच्छा थी कि आदमी कुछ भी काम न करे तो उसने उसे हाथ क्यों दिए? हाथ कर्म करने के लिए हैं, और जो इनका इस्तेमाल नहीं करता वह चोरी करता है, साधु ने अपनी भूल अनुभव की। उसने मुट्ठियां खोल दीं और उस दिन से पहले की तरह कर्ममय जीवन व्यतीत करने लगा।

३४८) निन्यानवे के फेर में पड़कर मोहन ने गंवाया सुख-चैन- सेठ धनीराम हमेशा पैसे कमाने में लगे रहते और परिवार पर पर्याप्त धन नहीं दे पाते थे। उनकी पत्नी अपनी हवेली के सामने रहनेवाले मजदूर मोहन के परिवार की खुशी देखकर उन्हें उलाहना देती- तुम हमेशा काम में लगे रहते हो, तुम्हें न अपनी फिक्र है न परिवारवालों की। मोहन के परिवार को देखो, कितना खुशहाल है। यह सुनकर सेठजी कहते- मोहन कभी निन्यानवे के फेर में नहीं पड़ा, वरना इसकी सारी हंसी और मस्ती चली जाती। सेठानी ने निन्यानवे के फेर का आशय पूछा, तो सेठजी ने रूपयों की एक पोटली मोहन के आंगन में चुपचाप फेंक दी। सुबह मोहन की निगाह उस पर पड़ी। खोलने पर उसमें रुपए देख परिवार बहुत खुश हुआ। पोटली में निन्यानवे रुपए थे। सभी विचार करने लगे कि इसमें जो एक रुपया कम है, उसे भी कमाकर सौ रुपए पूरे कर लिए जांए। सबने निश्चय किया कि अधिक मेहनत करेंगे और पैसे बचाएंगे। यही किया गया। सौ रुपए तो पूरे हो गए, लेकिन इच्छाएं और बलवती हुई। अब मोहन, उसकी पत्नी और बच्चे रुपए बचाने के फेर में व्यस्त रहने लगे। रात को सभी देर से आते और थके-मांदे सो जाते। सुबह फिर कमाने के लिए निकल पड़ते। अब न वे परस्पर बातचीत करते और न हंसी-खुशी रह पाते। इस परिवार का यह परिवर्तन दिखाकर सेठजी ने सेठानी से कहा- इसे ही कहते हैं निन्यानवे का फेर। वस्तुत: अधिक पाने की चाह व्यक्ति का सुख चैन हर लेती है। इसलिए जितना है, उसी में संतुष्ट रहना चाहिए।

३४९) अमीर की गरीबी सिद्ध की इब्राहीम- इब्राहीम आदम बलख के बादशाह थे। वे प्रजा के हितों का बहुत ध्यान रखते थे। स्वयं संपूर्ण राज्य में घूमते और पता लगाते कि कहीं किसी को कोई कष्ट तो नहीं है। प्रजा भी अपने इस नेकदिल बादशाह का बहुत सम्मान करती थी। कुछ सालों के राजपाट के बाद इब्राहीम का मन विरक्त हो गया। उन्होंने सब कुछ त्याग कर फकीरों का मार्ग अपना लिया और एक सामान्य कुटिया में रहने लगे। चूंकि प्रजा के मन में उनके प्रति अत्यधिक आदर था। इसलिए लोग उनसे मिलने आते रहते थे। एक बार एक संपन्न व्यक्ति उनसे मिलने आया और हजार अशर्फियों की थैली उन्हें भेंट की। इब्राहीम ने उसकी ओर देखा और बोला- मुझे यह नहीं चाहिए। मैं गरीब की एक कौड़ी भी नहीं चाहता। धनी बोला- मैं गरीब नहीं हूं, बहुत अमीर हूं। इब्राहीम ने कहा- माना कि तुम्हारे पास बहुत पैसा है, किंतु यह बताओ कि पैसे पाने की तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई या अभी भी बनी हुई है? धनी कुछ अचरज जताते हुए बोला- यह बड़ा विचित्र प्रश्न है। आप तो जानते हैं कि पैसे कमाने की इच्छा किसी की कभी पूरी नहीं होती। मेरे मन में भी यह इच्छा बनी हुई है और मैं निरंतर पैसे कमा भी रहा हूं। तब इब्राहीम ने उसे समझाया- अमीर होते हुए भी और पैसा पाने की इच्छा जिसकी बनी रहे, उसे मैं गरीब मानता हूं, क्योंकि वह सदा पैसे का अभाव ही महसूस करता है। इसलिए अपनी अशर्फियां ले जाओ। मुझे इनकी कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी बात सुनकर धनी को अपनी सोच पर ग्लानि हुई और वह उनसे क्षमा मांगकर वहां से चला गया। अधिक से अधिक पाने की लालसा व्यक्ति को अमीर तो बना देती है, किंतु सुखी नहीं, क्योंकि सुख धन से नहीं, संतोष से आता है।

३५०) कालीदास की कला- एक पंडित ने राजा भोज से मिलने के लिए प्रस्थान किया। वह बहुत दरिद्र था। राजा को भेंट करने के लिए कपड़े में गन्ने के कुछ खण्ड (टुकड़े) बांधकर ले लिए। कुछ देर विश्राम के लिए वह जंगल में से गया। उधर से आ रहे एक ठग ने उसे देखा। उसने सोचा- राजा के पास यह पुरस्कार के लिए गन्ने के टुकड़े लेकर जा रहे हैं। उसने कपड़े से गन्ने के टुकड़े निकाल लिए और उसकी जगह लकड़ियां बांध दी। पंडित सोकर उठा। वह कपड़े में बंधी लकड़ियों को लेकर राजा के महल की ओर चल पड़ा। दरबार में पहुंचकर भेंट करने की इच्छा से जब कपड़े को खोला तो उसमें लकड़ियां देखकर स्तब्ध रह गया। वह बहुत चिंतित हो गया। महाकवि कालीदास समझ गए- इस व्यक्ति के साथ किसी ने छल किया है। महाकवि ने तुरंत स्थिति को संभालते हुए कहा- महाराज, आज जैसा उपहार आया है, वैसा कभी किसी ने भेंट नहीं किया। बड़ा अद्‌भुत उपहार है। राजा ने पूछा- कैसे? कालीदास ने कहा- दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना रम्यदुमैर्भूषितं, दग्धा वायुसुतेन हेमनगरी लंका पुन: स्वर्णभू:। दग्धो लोकसुखो हरेण मदन: किं तेन युक्त कृतं दारिद्र्यं तापकारकमिदं केनापि दग्धं न हि।। खाण्डव वन को अर्जुन ने जला दिया, सोने की लंका को हनुमान ने जला दिया और कामदेव को शंकर ने जला दिया, लेकिन इस दरिद्रता को, जो सबको जलाती है, कोई जला नहीं सका। यह विप्र इस दरिद्रता को जलाने के लिए ईंधन भेंट कर रहा है। इसे जलाने में आप ही समर्थ हैं।

३५१) भारतीय संस्कृति का अधिष्ठान- गंगा और यमुना, दोनों हिमालय से निकली। लेकिन गंगा ठहरी कुछ गोरी और यमुना का रंग काला। गंगा को अपनी शुभ्रता का अभिमान हुआ। वह ऊपर-ऊपर चली। बेचारी यमुना अपने श्यामल वर्ण के कारण उससे कुछ दूर-दूर चली। लेकिन गर्वीली गंगा ने आगे चलकर देखा कि बिना यमुना के वह

शतमुख से सागर में नहीं मिल सकेगी। इसलिए नम्रभाव से गंगा रुकी। उधर से यमुना आई। गंगा ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत करते हुए कहा, यमुना बहन, तू मेरे पास आ। मैंने तेरा रंग देखकर तुझे हेय माना। पर तेरे किनारे पर कृष्ण भगवान ने भक्ति की वर्षा की, छोटे-बड़ों को एक किया, अपनी वंशी से एकता का गान किया, मिल-बांटकर खाने की प्रेरणा दी। अरे, तेरी महिमा के क्या कहने। यमुना ने गद्‌गद् स्वर में गंगा से यह सुनकर कहा, क्यों बहन, तुम मेरी बड़ाई करती हो, किन्तु तुम्हारी महिमा तो अपरम्पार है। मेरे किनारे पर भक्ति का विकास अवश्य हुआ, पर तुम्हारे किनारे से ज्ञान का प्रकाश फैला। भगवान पशुपतिनाथ तुम्हारे किनारे पर साधना-लीन हुए। असंख्य ऋषि-मुनि तुम्हारे ही तट पर तपस्या करते हैं। राजा-महाराजा अपना राजपाट त्यागकर ब्रह्मचिंतन करते हैं। बहन, तुम पूर्ण ज्ञान हो। तभी गुप्त रहनेवाली सरस्वती बोली, भक्ति और ज्ञान आवश्यक हैं, पर बिना कर्म के वे अधूरे हैं। इसलिए भक्ति का ज्ञान से और भक्ति-ज्ञान का कर्म से मिलन अनिवार्य है। फिर क्या था। ज्ञानमयी गंगा, भक्तिमयी यमुना और कर्ममयी सरस्वती बाहें फैलाकर एक-दूसरें के आलिंगन में बंध गई। तीनों नदियों का संगम ज्ञान, भक्ति और कर्म की धाराओं का संगम है। भारतीय संस्कृति का यही अधिष्ठान हैं।

३५२) मन का पाप- एक साधु थे। जंगल में रहते थे। एक दिन घूमते हुए वह नदी के किनारे गये। बड़ा रमणीक स्थान था। चारों ओर प्रकृति का साम्राज्य फैला था। सघन वृक्षों पर पक्षी चहचहा रहे थे। संत ने देखा कि एकान्त स्थान पर एक पेड़ के नीचे एक युवक और युवती बैठे हैं। दोनों बड़े आनंदित थे। दोनों के हाथ में एक-एक गिलास था। संत ने सोचा कि इस निर्जन स्थान पर बैठकर ये लोग निश्चय ही मदिरापान कर रहे होंगे और गंदी बातें कर रहे होंगे। शराब पीकर आदमी का दिमाग फिर जाता है। वह बुरी बातें ही सोचता है, बुरे काम ही करता है। आदमी का कितना पतन हो गया है। वह यह सब सोच ही रहे थे कि सामने से एक नाव आती दिखाई दी। नदी की धारा बड़ी तीव्र थी। जोर की लहरें उठ रही थीं। अचानक नाव को लहरों का थपेड़ा लगा और वह उलट गई। संत के मुंह से जोर की चीख निकली। उनकी आंखें बंद हो गई। जैसे ही आंखें खुली कि देखते क्या हैं कि जिस युवक को उन्होंने पापी समझ रखा था, वही युवक छलांग लगाकर पानी में कूदा और पांच आदमियों को निकालकर बाहर ले आया। संत खड़े-खड़े देख रहे थे। युवक पास आकर बोला, महाराज, भगवान की कृपा से पांच आदमियों की तो जान बच गई। अब एक रह गया है। उसके प्राण आप बचा लीजिये। संत को तैरना नहीं आता था। वह कूदने की हिम्मत कैसे कर सकते थे? यह देखकर युवक ने कहा, स्वामीजी, इंसान के लिए इंसान से बढ़कर और कुछ नहीं है। इतना कहकर उसने एक छलांग फिर लगाई और अंतिम व्यक्ति को भी बचाकर बाहर ले आया। साधु का लज्जा से सिर झुक गया। जिसे वह पापी समझ रहे थे, उससे बढ़कर पुण्यात्मा उन्होने अपने जीवन में नहीं देखा था।

३५३) सहनशीलता- एक दरोगा संत दादू की ईश्वर भक्ति और सिद्धि से बहुत प्रभावित था। उन्हें गुरु मानने की इच्छा से वह उनकी खोज में निकल पड़ा। लगभग आधा जंगल पार करने के बाद दरोगा को केवल धोती पहने एक साधारण-सा व्यक्ति दिखाई दियां वह उसके पास जाकर बोला, क्यों बे तुझे मालूम है कि संत दादू का आश्रम कहाँ है? वह व्यक्ति दरोगा की बात अनसुनी कर के अपना काम करता रहा। भला दरोगा को यह सब कैसे सहन होता? लोग तो उसके नाम से ही थर-थर काँपते थे उसने आव देखा न ताव लगा गरीब की धुनाई करने। इस पर भी जब वह व्यक्ति मौन धारण किए

अपना काम करता ही रहा तो दरोगा ने आग बबूला होते हुए एक ठोकर मारी और आगे बढ़ गया। थोड़ा आगे जाने पर दरोगा को एक और आदमी मिला। दरोगा ने उसे भी रोक कर पूछा, क्या तुम्हें मालूम है संत दादू कहाँ रहते है? उन्हें भला कौन नहीं जानता, वे तो उधर ही रहते हैं जिधर से आप आ रहे हैं। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर उनका आश्रम है। मैं भी उनके दर्शन के लिए ही जा रहा था। आप मेरे साथ ही चलिए। वह व्यक्ति बोला। दरोगा मन ही मन प्रसन्न होते हुए साथ चल दिया। राहगीर जिस व्यक्ति के पास दरोगा को ले गया उसे देखकर वह लज्जित हो उठा क्यों संत दादू वही व्यक्ति थे जिसको दरोगा ने मामूली आदमी समझकर अपमानित किया था। वह दादू के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। बोला, महात्मन मुझे क्षमा कर दीजिए, मुझसे अनजाने में अपराध हो गया। दरोगा की बात सुनकर संत दादू हँसते हुए बोले, भाई, इसमें बुरा मानने की क्या बात? कोई मिट्टी का एक घड़ा भी खरीदता है तो ठोक बजाकर देख लेता है। फिर तुम तो मुझे गुरु बनाने आए थे। संत दादू की सहिष्णुता के आगे दरोगा नतमस्तक हो गया।

३५४) राजा रघु ने ऐसे किया वचन का पालन कि देवता भी प्रसन्न हो गए - त्रेता युग में सम्राट रघु की बड़ी प्रतिष्ठा थी। दान उनकी दिनचर्या का अहम हिस्सा था। उनकी यह ख्याति त्रिलोक में फैल गई थी। एक दिन राजा रघु दरबार में बैठे थे कि दरबार ने किसी ऋषिकुमार के आने की सूचना दी। राजा रघु ने उन्हें दरबार में सादर ले आने का आदेश दिया। ऋषिकुमार जब दरबार में आए, तो राजा रघु ने उनका यथोचित सत्कार कर आसन दिया और आने का कारण पूछा। ऋषिकुमार ने अपना परिचय देते हुए कहा- मेरा नाम कौत्स है राजन्।

मैंने आपके दान की बहुत ख्याति सुनी है। मैं आपसे कुछ दान चाहता था, किंतु बाहर मैंने सुना कि आपने यज्ञ में अपना समग्र वैभव दान कर दिया है। अब मैं आपसे क्या अपेक्षा कर सकता हूं? रघु बोले- नहीं, विप्रवर। अपना प्रयोजन बताइए, मैं उसे किसी भी तरह पूर्ण करूंगा। कौत्स ने कहा- मेरे गुरु मुझसे दक्षिणा नहीं ले रहे थे। मेरे बार-बार आग्रह करने पर क्रोध में आकर उन्होंने मुझसे चौदह लाख स्वर्ण मुद्राएं मांग लीं, जो कि मेरे लिए असंभव है। मैं यह रकम आपसे पाने की आशा में आया था, क्योंकि गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहता हूं।

उसकी बात सुनकर रघु बोले- कोई ब्राह्मण मेरे यहां से खाली हाथ जाए, यह मेरे जीवन को धिक्कार है। उन्होंने तत्काल कुबेर लोक पर आक्रमण की योजना बनाई और सेना तैयार कर ली। तभी उनके कोषाध्यक्ष ने आकर सूचना दी कि रात्रि में देवलोक से स्वर्ण-वृष्टि हुई, क्योंकि देवतागण रघु की दानशीलता से परम प्रसन्न थे। इस स्वर्ण वृष्टि से पूरा राजकोष फिर से भर गया है। तब राजा रघु ने ऋषिकुमार कौत्स को उनका वांछित दान दिया। वस्तुत: अपनी बात पर अडिग रहनेवाला व्यक्ति समाज में स्वयं के प्रति अखंड विश्वास अर्जित करता है।

३५५) शंकर आगे चलकर बन गया आदि शंकराचार्य - बालक शंकर अपने माता-पिता की इकलौती संतान था। शंकर था भी बड़ा आज्ञाकारी व गुणी। उसे देव-दर्शन का बड़ा चाव था। जब मां मंदिर जातीं, तो शंकर का मन खिल उठता। एक दिन शंकर ने मां के समक्ष संन्यासी बनने की इच्छा व्यक्त की। मां बिल्कुल राजी नहीं हुई। उन्होंने कहा- तू मेरा एक ही पुत्र है। मेरे बुढ़ापे का सहारा है।

तुझे मैं कहीं नहीं जाने दूंगी। शंकर ने मां को समझाने की बहुत कोशिश की, किंतु वे नहीं मानीं। एक दिन मां और

शंकर नदी पर नहाने गए। शंकर जैसे ही पानी के भीतर पहुंचा, एक मगर ने उसका पैर पकड़ लिया। शंकर की चीख सुनकर मां पहुंची, किंतु मगर से मुकाबला कैसे करे? मां ने घबराकर मदद के लिए लोगों को बुलाया। लोग आते, इसके पहले ही शंकर ने मां से कहा- मां। मैं मर रहा हूं। कम से कम मुझे मरते वक्त तो सन्यासी बन जाने दो। मैं संन्यासी होकर मरना चाहता हूं। मां भीतर तक सिहर गईं। एक ओर पुत्र की अंतिम इच्छा और दूसरी ओर उसकी ममता। वह क्या करे?

आखिर मन कड़ा कर मां ने संन्यासी होने की अनुमति दे दी। उसी समय संयोग से शंकर का पैर मगर के मुंह से छूट गया और वह पानी से बाहर निकल आया। मां उसे सकुशल देखकर खुशी के मारे रो दी, किंतु पुत्र की खुशी का कारण दूसरा था। उसे संन्यासी बनने की अनुमति जो मिल गई थी। यही शंकर आगे चलकर आदिशंकराचार्य बने, जिन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष में धर्म और ज्ञान की ऐसी गंगा बहाई, जो आज तक प्रवाहित हो रही है और जीवन के महत्वपूर्ण अवसरों पर हमारा उचित मार्गदर्शन करती है। महान संकल्प दृढ़ इच्छाशक्ति से पूर्ण होते हैं। मन की मजबूती हर अवरोध को पार कर लक्ष्य प्राप्ति कराती है।

३५६) आखिर पापक ने नाम नहीं बदला क्योंकि इससे कोई अर्थ सिद्धि नहीं होती- तक्षशिला में एक विद्वान आचार्य का गुरुकुल था। उनके हजारों शिष्यों में से एक था- पापक। उसे अपना नाम पसंद नहीं था। हालांकि वह नाम के विपरीत बहुल भला और बुद्धिमान था। एक दिन उसने आचार्य के समक्ष अपने मन की बात रखी- आचार्य। मेरा नाम अशुभ है। कृपा कर मुझे दूसरा नाम दीजिए।

आचार्य बोले- वत्स। नाम तो बुलाने भर को है। उससे कोई अर्थ-सिद्धि तो होती नहीं। इसलिए नाम परिवर्तन औचित्यहीन होगा। आचार्य के समझाने के बावजूद पापक नाम बदलने के प्रति आग्रही बना रहा। तब आचार्य बोले- तुम पूरे राज्य में घूमकर कोई शुभ नाम खोजकर लाओ। मैं तुम्हारा नाम वही रख दूंगा। पापक घूमते हुए एक गांव में पहुंचा। वहां जीवक नाम के किसी व्यक्ति की शवयात्रा निकल रही थी। उसने कहा- क्या जीवक भी मर सकता है? यह सुनकर किसी ने उसे समझाया- जीवक भी मरता है और अजीव भी। नाम तो पुकारने भर का होता है। थोड़ा आगे जाने पर उसे धनपाली नामक दासी को उसका मालिक मारते हुए दिखा। धनपाली नाम होने के बावजूद उसकी निर्धनता देखकर पापक सोच में पड़ गया। कुछ देर बाद उसने पंथक नाम के व्यक्ति को राह भटक जाने के कारण परेशान देखा। उसे लगा कि पंथक होकर यह रास्ता भूल गया, धनपाली लक्ष्मी का प्रतीक होकर भी निर्धन ही रही और जीवक अमर न होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ- ये सब बातें संकेत करती हैं कि नाम से कुछ नहीं होता। अत: मुझे अपना नाम बदलने की कोई जरूरत नहीं।

३५७) राजा की बुरी नीयत से धरती का रस सूख जाता है- एक राजा था। सैर से लौटते समय दोपहर हो गयी, तो वह किसान के खेत में विश्राम करने के लिए ठहर गया। किसान की बूढ़ी मां खेत में मौजूद थी। राजा को प्यास लगी, तो उसने बुढ़िया से कहा, बुढ़ियामाई, प्यास लगी है। बुढ़िया ने अपने खेत से एक गन्ना तोड़ा और उसे निचोड़कर एक गिलास रस निकाल कर राजा को दे दिया। राजा गन्ने का वह मीठा रस पीकर तृप्त हो गया। उसने बुढ़िया से पूछा, माई। राजा तुमसे इस खेत का लगान क्या लेता है? बुढ़िया बोली, राजा बड़ा दयालु है। बहुत थोड़ा, साल में एक रुपया लगान लेता है। राजा ने सोचा इतने मधुर रस की उपज वाले खेत का लगान मात्र एक रुपया ही क्यों हो। उसने मन

में तय किया कि गन्ने के खेतों का लगान बढ़ाना चाहिए। यह विचार करते-करते उसकी आंख लग गयी। जब वह उठा तो उसने फिर गन्ने का रस मांगा। बुढ़िया ने फिर एक गन्ना तोड़ा और उसे निचोड़ा, लेकिन इस बार बहुत कम रस निकला। बुढ़िया ने दूसरा गन्ना तोड़ा। इस तरह चार-पांच गन्नों को निचोड़ा, तब जाकर गिलास भरा। राजा ने पूछा, बुढ़ियामाई, पहली बार तो एक गन्ने से ही पूरा गिलास भर गया था, इस बार वही गिलास भरने के लिए चार-पांच गन्ने क्यों तोड़ने पड़े? बुढ़िया ने कहा, धरती का रस तब सूखता है, जब राजा की नीयत में फर्क आ जाये। बुढ़िया का इतना कहना था कि राजा का चेतन और विवेक जागृत हो गया। राजधर्म तो प्रजा का पोषण करना है, शोषण करना नहीं। तत्काल लगान न बढ़ाने का निर्णय कर लिया।

३५८) मां की सेवा करनेवाले को जन्नत में मिली जगह- एक समय हजरत मूसा को अहंकार हो गया था। एक दिन उन्होंने खुदा से पूछा- परवरदिगार। जन्नत में मेरे पास कौन महापुरुष होगा? खुदा ने कहा- मूसा। तेरे पड़ोस में एक बढ़ई रहता है। वही जन्नत में भी तेरा पड़ोसी होगा। मूसा हैरान रह गए। टूटी-फूटी झोपड़ी में रहनेवाले इस बढ़ई को खुदा को याद करते हुए कभी नहीं देखा। वह तो पेड़ के नीचे बैठकर दिनभर काम करता रहता है। वह मेरी बराबरी में कैसे बैठेगा? मूसा परेशान हो गए। फिर उन्होंने बढ़ई से मिलने की ठानी। मूसा जब बढ़ई से मिलने पहुंचे तो वह घर जाने की तैयारी में था। मूसा को देखते ही वह बोला- पैगंबर साहब। मैं आपकी सेवा में थोड़ी देर में हाजिर होता हूं। इसके लिए मुझे माफ कीजिएगा। यह कहते हुए वह अपनी झोपड़ी में चला गया और काफी देर तक वापस नहीं लौटा। बढ़ई को ज्यादा देर लगते देख मूसा ने उसकी झोपड़ी के दरवाजे में से देखा कि वह क्या कर रहा है? वे देखकर हैरान रह गए। बढ़ई अपनी बूढ़ी मां को रूई के फाहे से दूध पिला रहा था। हड्डियों का ढांचा रह गई मां लेटी हुई थी और अपने पुत्र को वात्सल्य भाव से देख रही थी। दूध पिलाने के बाद वह मां को अच्छी तरह चादर ओढ़ाकर उसके पैर दबाने लगा। तब मां ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा- बेटा। मेरी दुआ है कि खुदा तुझे खूब सुख दे और जन्नत में तुझे हजरत मूसा जैसा स्थान मिले। वृद्धा की बात सुनकर हजरत मूसा को खुदा के वचन याद आ गए। वे झोपड़ी में गए। बढ़ई ने उनसे देरी के लिए माफी मांगी, तो वे उसे गले लगाकर बोले- भाई। तेरी बंदगी महान है। खुदा जिससे खुश हो, उस राह का पता तुझे मालूम है।

३५९) मैरी दीदी ने दिखाया बड़प्पन- पत्थर मारनेवालों को भी क्षमा कर दिया- ब्रिटिश राज में भारत में किसी स्थान पर मैरी नाम की एक मृदुभाषी और सेवाभावी नर्स थी। किंतु कुछ अतिवादी लोग मैरी केरोमन के कैथोलिक होने के कारण उससे घृणा करते थे। वे उसे राह पर चलते हुए परेशान करते। कोई पत्थर मारता, तो कोई फब्ती कसता, किंतु मैरी इस ओर कभी ध्यान नहीं देती और अपने सेवा-कार्य में लगी रहती।

एक दिन मैरी अस्पताल जा रही थी, तभी एक युवक ने उसे अपशब्द कहते हुए एक बड़ा-सा पत्थर उसके ऊपर फेंका। पत्थर मैरी के सिर पर लगा। सिर फट गया और रक्त से मैरी के कपड़े भीग गए। किंतु मैरी चुपचाप अस्पताल चली गई। कुछ ही दिनों बाद उस नगर में स्थित कोयले की खान में विस्फोट हो गया।

विस्फोट में घायल मजदूरों को जब अस्पताल लाया गया, तो मैरी ने उनकी बहुत सेवा की। इनमें से कई वे थे, जो मैरी का अपमान करते थे। अब वे मैरी का सेवाभाव देखकर नतमस्तक थे। इन्हीं में वह युवक भी था, जिसने मैरी को पत्थर

मारा था। आखिर एक दिन युवक मैरी के सामने रो दिया। जब मैरी ने कारण पूछा, तो वह बोला- शायद आप मुझे नहीं जानतीं, दीदी? मैं वही हूं, जिसने आप पर पत्थर फेंका था।

मैरी ने स्नेह भरे शब्दों में कहा- मेरे भाई। जब तुम्हें यहां लाया गया था, उसी समय मैंने तुम्हें पहचान लिया था। युवक ने आश्चर्य से पूछा- फिर आपने मैरी इतनी सेवा क्यों की? मैरी उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली- क्योंकि मैं तुममें अपना भाई देखती हूं। युवक मैरी का जवाब सुनकर उसके पैरों में झुक गया और सदा के लिए उसका भाई बन गया। वस्तुत: क्षमा से मनुष्य के भीतर का राक्षस समाप्त हो जाता है और फिर जो मनुष्य सामने आता है, वह एकदम खरा होता है।

३६०) अपने ही विद्यालय में लोकमान्य तिलक ने लिया मामूली वेतन- लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक सदैव ऐसे कार्य करते थे, जो लोकहित से प्रेरित हों। इसके लिए वह कभी अपना भला-बुरा नहीं सोचते थे। यदि उनके हितैषी किसी कार्य से उन्हें होनेवाले नुकसान के विषय में आगाह करते, तो वे हंसकर टाल जाते और वही काम करते, जो ज्यादातर लोगों के हितों को साधनेवाला हो। तिलक शिक्षादान के बहुत बड़े पक्षधर थे। इसके लिए उन्होंने अपनी युवावस्था में ही पुणे शहर में एक विद्यालय आरंभ किया। इस कार्य में बहुतों ने उन्हें हतोत्साहित किया, कई प्रकार की आर्थिक व नियम गत अड़चनें उनके मार्ग में डाली गईं, किंतु तिलक घबराए नहीं और अपने दम पर विद्यालय को चलाते रहे। वे स्वयं भी पूर्ण उत्साह से वहां पढ़ाने का कार्य करते थे। इसके लिए वे मात्र तीस रुपये मासिक लेते थे। उनके एक मित्र को जब इस विषय में ज्ञान हुआ, तो उन्होंने कहा- इतनी छोटी धनराशि से तो आप देहावसान के बाद अपने शरीर के दाह संस्कार के लिए भी कुछ नहीं बचा सकेंगे। यह बात सुनकर तिलक बोले- भाई, इसकी चिंता मुझे नहीं करनी चाहिए। यदि समाज को ठीक लगेगा, तो लोग मेरी देह का अग्नि-संस्कार कर देंगे। यदि लोगों के मन में मेरे प्रति सम्मान नहीं होगा, तो भी दुर्गंध से बचने के लिए उन्हें अंत में मेरे शव की कोई उचित व्यवस्था करनी ही होगी। अत: मैं अपने लिए देश के हित से समझौता नहीं करूंगा। महत्वपूर्ण लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए क्षुद्र स्वार्थों की बलि देनी पड़ती है। ऐसा करनेवाले सच्चे अर्थों में महान होते हैं।

३६१) बापू ने दी मितव्ययिता की सलाह- क्यों की गई मेरे स्वागत में इतनी सजावट- नोआखाली में गांधीजी की पदयात्रा चल रही थी। जब गांधीजी पदयात्रा करते हुए देवीपुर ग्राम पहुंचे, तो वहां उनका भव्य स्वागत किया गया। पूरे गांव में ध्वजा, तोरण व पताकाओं से सजावट की गई थी। यह देखकर गांधीजी को बहुत पीड़ा हुई, क्योंकि गुलाम भारत की दयनीय दशा के चलते उन्हें यह अपव्यय लगा। उस समय मौन में होने के कारण वे कुछ नहीं बोले। जब शाम को उनका मौन समाप्त हुआ, तो उन्होंने वहां के मुख्य कार्यकर्ता से प्रश्न किया- आप ये सारी वस्तुएं कैसे लाए? कार्यकर्ता बोला- बापू। आप यहां कब आते, जो हमें आपके सत्कार का सौभाग्य मिलता? इसलिए हम सभी ने आठ-आठ आने देकर तीन सौ रुपए एकत्रित किए और उनसे ये सारी वस्तुएं लाए। गांधीजी ने दुखी होकर कहा- मेरे भाई। ये फूल और उनकी सज्जा थोड़ी देर में मुरझा जाएगी। अपना देश गुलामी की ज्वाला में जल रहा है। लोग भूखे मर रहे हैं, उनके पास कपड़ा और मकान नहीं हैं।

यदि फूल-मालाओं के स्थान पर सूत के हार सजाते, तो मुझे कष्ट नहीं होता, क्योंकि सूत बाद में कपड़ा बन जाता।

आपने विलायती मिल का रेशमी कपड़ा व रिबन सजावट में उपयोग किया, जो देश के साथ छल है। यदि आप मेरे प्रति सच्चा स्नेह व आदर रखते हैं, तो यह सब न करें। मेरा सत्कार जरूरी नहीं है, जरूरी है देश की आजादी। गांव वालों ने अपनी भूल स्वीकारी और गांधीजी के दिखाए मार्ग पर चलने का संकल्प लिया। गांधीजी की कही हुई बात आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि वर्तमान में भी नेताओं व अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के सत्कार पर काफी अनावश्यक व्यय होता है। यदि इस धन को देश के विकास पर लगाएं, तो दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति संभव है।

३६२) गिद्ध ने पाया प्रत्युपकार का ज्ञान- सदियों पहले मगध राज्य की राजधानी में भीषण आंधी-तूफान आया। उसी दौरान कहीं से एक गिद्ध उड़ता हुआ आया और पानी से बचने के लिए एक दीवार के पास बने चबूतरे पर बैठ गया। उसके साथ उसके चार साथी भी वहीं आ गए। गिद्ध सर्दी से कांप रहे। उनकी यह दशा देखकर नगर सेठ ने उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचाया। गिद्धों ने पर्वत पर लौटकर विचार किया- मगध सेठ ने हम पर उपकार किया है। हमें उनके उपकार का बदला चुकाना चाहिए। लेकिन प्रत्युपकार कैसे करें- इसके लिए पहले गिद्ध ने रास्ता सुझाया- अब हमें जो भी कीमती वस्तु कहीं से मिले, हम उसे सेठजी के आंगन में गिरा दें। वे छतों पर सूखते वस्त्र उठा लेते। कहीं किसी स्त्री का आभूषण उठा लेते और नगर सेठ के आंगन में डाल देते। जब सेठ को यह बात पता चली तो उन्होंने उन सभी वस्तुओं को एक अलग कक्ष में रखवा दिया। राजा को पता चला कि गिद्ध चोरी कर रहे हैं, तो उन्होंने उनमें से एक गिद्ध को सैनिकों द्वारा पकड़वाया। राजा ने पूछा- तुम लोगों के वस्त्र-आभुषण चुराकर ले जाते हो? गिद्ध ने बताया- नगर सेठ ने हमारी प्राण-रक्षा की थी। हम उस उपकार का बदला चुका रहे हैं। राजा ने नगर सेठ से इस बाबत पूछताछ की, तो उन्होंने चोरी गए सामानों का अपने पास होना बताया और यह भी कहा कि उन्हें अलग इसलिए रखा गया है कि जो जिसका है, वह उसे ले जाए।

फिर नगर सेठ ने गिद्ध को समझाया कि उपकार चुकाना अच्छा है, किंतु उसका तरीका भी सही होना चाहिए। वस्तुत: उपकार के बदले प्रत्युपकार की भावना प्रशंसनीय है, किंतु वह जनहित का विचार कर उचित रूप से करनी चाहिए।

३६३) अपने आपको जानना ही जीवन का प्रमुख उद्देश्य है? - एक दिन एक खरगोश जंगल में जा रहा था। वह अपनी नाक ऊपर कर कुछ सूंघने लगा कि कहीं खतरा तो नहीं है। ठीक उसी समय एक बड़ा शेर आ गया। शेर को भूख लगी थी। खरगोश ने सोचा कि अब तो गये। अगर बचना है तो जल्दी-जल्दी सोचो, जिससे बच सके। अचानक खरगोश ने शेर की तरफ देखा और पूछा, क्या चाहिए तुमको? शेर को झटका लगा कि जरा सा खरगोश उससे पूछ रहा है कि क्या चाहिए। शेर ने दहाड़ते हुए कहा, मुझे बहुत जोर से भूख लगी है। तो खरगोश बोला, तुम मुझे नहीं खा सकते। क्यों नहीं खा सकता? शेर ने पूछा। खरगोश बोला, मुझे इस जंगल के देवता ने भेजा है। मैं कोई ऐसा-वैसा खरगोश नहीं हूं। मुझे तो यहां राज करने के लिये भेजा गया है। तू मुझे कैसे खायेगा? यह सुनकर शेर को बड़ा धक्का लगा। लेकिन उसने कहा, प्रमाणिक करना पड़ेगा कि तू यहां का राजा है।

खरगोश ने कहा, कोई चिंता की बात नहीं। तुम पीछे-पीछे आओ, मैं आगे-आगे चलूंगा। खुद देख लेना कि जंगल के जानवर मेरा कितना आदर करते हैं। आगे-आगे खरगोश, पीछे पीछे शेर। जानवर पहले खरगोश को देखते, लेकिन जैसे

ही उनकी नजर शेर पर पड़ती वे भाग जाते। शेर ने यह देखा तो बोला, क्षमा करना, मुझे मालूम नहीं था यहां तुम्हारा इतना रौब है। उस दिन खरगोश की जान बच गई। शेर नहीं जानता था कि वह कौन है? जो भी उसको खरगोश ने सिखाया, उसी को मान लिया। उसने यह नहीं सोचा कि ये जानवर खरगोश को देखकर नहीं, उसे ही देखकर डर रहे हैं।

३६४) ऐसे थे बादशाह खान- आजादी की लड़ाई के दौरान खान अब्दुल गफ्फार खान को सन १९२१ में गिरफ्तार किया गया। अंग्रेज अफसरों ने जब इस पख्तून नेता से जमानत मांगी तो उन्होंने देने से इंकार कर दिया, जिससे नाराज होकर उन अफसरों ने उन्हें तीन वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुना दी।

इस दौरान उन्हें पेशावर, डेरा इस्माल खां और डेरा गाजी खां जेलों में रखा गया, जहां उन्हें कठिन यातनाएं दी गयीं। पांवों में बेड़ियां और गले में लकड़ी की तख्ती, जिस पर कैद की धारा और सजा की अवधि लिखी होती थी। रात में प्रति दिन घंटे बाद पहरेदार आते और जगाकर हाजिरी लेते। प्रतिदिन उन्हें बीस सेर गेहूं पीसने के लिए दिया जाता। वे इसे मुश्किल से पीस पाते थे लेकिन कभी भी उन्होंने इससे इन्कार नहीं किया। एक बार एक जेलर एकांत में उनके समीप आया और हमदर्दीवश बोला, मैं तुम्हें पिसा-पिसाया आटा दे जाया करूंगा। तुम केवल अफसरों के सामने ही गेहूं पीस लिया करना। गफ्फार खान ने कहा कि अगर अफसरों ने पूछा तो मैं तुरंत कह दूंगा कि मुझे पिसा-पिसाया आटा दिया जाता था।

जिस आजादी की लड़ाई के लिए अब्दुल गफ्फार खान ने अपनी जवानी के कई सुनहरे वर्ष कुर्बान कर दिये, उसमें पाकिस्तान के लिए कोई जगह नहीं थी, लेकिन अपने जीवन के आखिरी दिन उन्हें पाकिस्तान में ही गुजारने पड़े।

३६५) बापू की हंसी- एक बार अंग्रेज पत्रकार लुईस फिशर गांधीजी से मिलने को आया। फिशर महाशय की गांधीजी से बातचीत हुई। बात करते-करते अचानक हंसी का माहौल बन गया। हंसी के वातावरण में गांधीजी ठहाके लगाकर हंसने लगे। गांधीजी को हंसते देख लुईस फिशर को बहुत आश्चर्य हुआ। लुईस फिशर ने गांधीजी से कहा, बापू मैं तो आपको बहुत गंभीर किस्म का व्यक्ति समझता था, पर आप तो बड़े ही विनोदी स्वभाव के निकले। बापू ने प्यार से लुईस की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, हंसी और विनोद तो भगवान का दिया हुआ उपहार है, और भगवान के दिए हुए उपहार को मैं कैसे ठुकरा सकता हूं। अगर मैं रोज एक दो बार कस कर न हंसूं तो शायद मैं पागल हो जाऊंगा। मेरे लिए तो हंसना उतना ही जरूरी है, जितना भगवान को स्मरण करना। लुईस फिशर महात्मा गांधी के कथन को सुनकर आश्चर्य चकित रह गया। वह सपने में भी नहीं सोचा था कि बापू इतने विनोदी हो सकते हैं।

३६६) अकबर-बीरबल- एक बार अकबर ने भरे दरबार में अपने दरबारियों से पूछा- बताओ किस नदी का पानी सबसे अच्छा है? सभी दरबारियों ने एकमत से उत्तर दिया गंगा का पानी सबसे अच्छा होता है। लेकिन बादशाह के प्रश्न का उत्तर बीरबल ने नहीं दिया उसे मौन देखकर बादशाह बोले- बीरबल तुम चुप क्यो हो?

बीरबल बोले- बादशाह हुजूर पानी सबसे अच्छा यमुना नदी का होता है। बीरबल का यह उत्तर सुनकर बादशाह को बड़ी हैरानी हुई और बोले तुमने ऐसा किस आधार पर कहा है, जबकि तुम्हारे धर्मग्रंथों में गंगा नदी के पानी को सबसे शुद्ध व पवित्र बताया गया है और तुम कह रहे हो कि यमुना नदी का पानी सबसे अच्छा होता है।

बीरबल ने कहा- हुजूर मैं भला पानी की तुलना अमृत के साथ कैसे कर सकता हूं। गंगा में बहनेवाला पानी केवल पानी नहीं बल्कि अमृत है इसीलिए मैंने कहा था कि पानी यमुना का सबसे अच्छा है। बादशाह और सभी दरबारी निरुत्तर हो गए और उन्हें मानना पड़ा कि बीरबल सही कह रहे है और इसका सबूत अब भी है किसी ने देखा ही होगा इतना प्रदूषण होने पर भी गंगाजल को लाकर रख लो पर कभी खराब नहीं होता।

३६७) शासन और स्वाद- एक धर्मनिष्ठ और कल्याणकारी राजा थे। प्रजा में अत्यंत लोकप्रिय। एक दिन इच्छा हुई, अपना दोष जानें। सेवकों से लेकर नागरिकों तक से पूछा पर सब ने यही कहा कि आप में कोई दोष नहीं। वे एक संत के पास पहुंचे। संत से पूछा कि वे अपना दोष कैसे जानें? संत ने बताया कि शासन का प्रभाव तो हर चीज पर होता है। राजा अत्याचारी हो तो राज्य के मीठे फल भी कड़वे हो जाते हैं। राजा ने उनकी बात सुन ली, पर उनसे सहमत नहीं हुए। वे चले आ रहे थे। तभी उन्होंने एक व्यक्ति को फल तोड़कर खाते देखा। राजा ने उसका स्वाद पूछा तो उसने बताया कि फल बड़े मीठे हैं। लौटकर राजा ने अपनी नीतियां बदल दीं। संत के कथन की परीक्षा के लिए प्रजा पर अत्याचार शुरू कर दिए। धर्म की जगह अधर्म को बढ़ावा दिया। प्रजा अत्याचारों से कराह उठी। फिर राजा घूमने निकले। एक व्यक्ति को बुलाया और फल चखने को कहा। उसने फल खाकर अजीब मुंह बनाया। राजा ने भी फल चखा, उन्हें भी कड़वा लगा। दूसरा फल चखा, वह भी वैसा ही निकला। वे परशोन हो उठे। उन्होंने अपने गुरु से संत का वह कथन और फलवाली बात बताई। गुरु ने समझाया, संत ने मन का गूढ़ रहस्य समझाया है। शांतिपूर्ण और सुखद वातावरण में हमारा मन शांत रहता है, तब हमें स्वादहीन चीजें भी मीठी और स्वादिष्ट मालूम पड़ने लगती हैं। लेकिन जब चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हो, अनाचार का बोलबाला हो, तब मन अशांत रहता है और स्वादिष्ट चीजों का स्वाद भी पता नहीं चलता। राजा ने बात समझ ली और फिर से प्रजा के कल्याण में जुट गए।

३६८) अनुशासन का पाठ- बात उस समय की है, जब पूर्व राष्ट्रपति और शिक्षाविद् डॉ. जाकिर हुसैन जामिया मिलिया इस्लामिया के कुलपति थे। जाकिर साहब बेहद अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे। वे चाहते थे कि जामिया मिलिया इस्लामिया के छात्र न सिर्फ पढ़ाई-लिखाई में अव्वल रहें बल्कि वेशभूषा से लेकर व्यवहार तक में दूसरों के लिए एक मिसाल बनें। उन्होंने यह निर्देश दे रखा था कि विद्यार्थी साफ-सुथरे कपड़े पहनें और जूते हमेशा चमका कर रखें। इस संबंध में उन्होंने एक लिखित आदेश भी निकाला, मगर छात्रों ने उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। छात्र अपनी मनमर्जी से ही चलते थे, जिसके कारण विश्वविद्यालय का अनुशासन बिगड़ने लगा। जिसकी जो मर्जी होती, वह वही करता। यह देखकर डॉ. हुसैन ने छात्रों को एक अलग ही तरीके से सुधारने का निर्णय किया। एक दिन वे कैंपस के गेट पर ब्रश और पॉलिश लेकर बैठ गए और हर आने-जानेवाले छात्र के जूते साफ करने लगे। यह देखकर सभी छात्र बहुत लज्जित हुए। उन्होंने अपनी भूल मानते हुए डॉ. हुसैन से क्षमा मांगी और अगले दिन से साफ-सुथरे कपड़ों में और जूतों पर पॉलिश करके आने लगे। इस तरह विश्वविद्यालय में अनुशासन कायम हो गया। बाद में इस घटना को लेकर जब लोगों ने डॉ. जाकिर हुसैन से सवाल किया तो उन्होंने कहा कि किसी भी संस्था में अनुशासन लाने के लिए उसके मुखिया को स्वयं उदाहरण पेश करना पड़ता है। लोगों को जिस कार्य के लिए प्रेरित किया जाना है, उस पर पहले स्वयं अमल

करना होगा। जब हम स्वयं अनुशासित होंगे, तभी दूसरों को भी प्रेरित कर पाएंगे।

३६९) वैज्ञानिक का संघर्ष- बेंजामिन फ्रैंकलिन का शुरुआती जीवन बेहद संघर्षपूर्ण था। उन्हें हमेशा अपने भाई के ताने सुनने को मिलते थे। एक दिन अपने भाई के व्यवहार से तंग आकर उन्होंने अपना घर छोड़ दिया। वह बोस्टन से न्यूयार्क पहुंचे। काफी कोशिशों के बावजूद उन्हें कोई काम न मिला। आखिरकार कई जगह भटकने के बाद वह कीमर नामक छापखाने में पहुंचे। वहां के कर्मचारियों ने उन्हें बताया कि यहां कोई काम नहीं मिल सकता। वहां से जब वह निराश लौट रहे थे, तभी प्रेस के मालिक कीमर ने उन्हें आवाज दी और कहा, मेरी एक मशीन खराब पड़ी है, क्या तुम उसे ठीक कर सकते हो? मशीन को देखकर फ्रैंकलिन ने कहा, मैं इसे ठीक तो कर सकता हूं, पर इसमें दिन भर लग सकता है। कीमर ने उन्हें दिनभर की मजदूरी देने का वादा किया। लेकिन बेंजामिन ने मशीन को दोपहर के पहले ही ठीक कर दिया। प्रेस मालिक ने उन्हें पूरे दिन की मजदूरी देकर विदा करना चाहा पर फ्रैंकलिन ने यह कहकर आधे पैसे वापस कर दिए कि मैं आधे पैसों का ही हकदार हूं क्योंकि मैंने आधे दिन की मजदूरी की है। उनकी इस बात का प्रेस मालिक पर गहरा असर पड़ा। उसने बेंजामिन को एक और बिगड़ी मशीन को ठीक करने को कहा और मशीन ठीक करने के साथ ही बेंजामिन ने प्रेस मालिक का दिल भी जीत लिया। प्रेस मालिक ने कहा, तुम्हारे अंदर परिश्रम और ईमानदारी ऐसे गुण हैं जो तुम्हें भविष्य में बहुत आगे ले जाएंगे। तुम दुनिया के लिए बहुत कुछ करोगे। उसकी यह बात सही निकली। अपने इन्हीं गुणों के सहारे फ्रैंकलिन ने अभूतपूर्व उपलब्धियां अर्जित की।

३७०) सुधार का रास्ता- अयोध्या में सरयू के किनारे एक बड़े मंदिर में एक संत और उनके कुछ शिष्य रहते थे। मंदिर के पास कई बीघा जमीन थी। संत और उनके शिष्य उसमें खेती करते थे। नवंबर का महीना था। सर्दी पड़ रही थी। धान की फसल तैयार हो गई थी। संत ने अपने शिष्यों से कहा कि कल सुबह फसल काटी जाएगी। लेकिन उसी रात एक घटना घट गई। कुछ लोग आए और फसल काटकर उसकी गड्डियां बना कर जाने लगे। लेकिन कोहरे के कारण उन्हें रास्ता दिखाई नहीं दिया। लगता था वे अंधे हो गए है। अंतत: वे खेत में ही भटककर रह गए। सुबह होने पर संत ने अपने एक शिष्य से कहा, रात में धान कट गए है। काटनेवाले रात से भूखे हैं। तुम उन्हें कुछ खाने को दे आओ। शिष्य खेत पर पहुंचा तो उसने फसल काटनेवालों की खूब प्रशंसा की क्योंकि रात के अंधेरे में भी धान की कटाई ठीक से हुई थी। शिष्य ने उन्हें खाने को दिया। कुछ देर बाद संत अपने शिष्यों के साथ आए और बोले, कटाई करनेवालों को मजदूरी दे दो। शिष्य ने एक-एक बंडल धान काटनेवालों को दे दिया। तब मजदूरी फसल के रूप में ही दी जाती थी। धान काटनेवालों ने संत के पैर पकड़कर कहा, बाबा हमें मजदूरी नहीं चाहिए। आपने हमें जो रास्ता दिखाया है वह जिंदगी भर की कमाई से भी ज्यादा है। और वे लोग बिना मजदूरी लिए चले गए। एक शिष्य बोला, बाबा मजदूरों ने मजदूरी क्यों नहीं ली। बाबा ने बताया धान काटनेवाले कोई मजदूर नहीं थे वे सभी चोर थे। मैंने उन्हें रात में ही धान काटते देख लिया था। तब एक शिष्य बोला- बाबा आपने उन चोरों को जाने क्यों दिया। उन्हें सजा मिलनी चाहिए थी। बाबा बोले, वत्स कोई जन्म से चोरी सीख कर नहीं आता। तुमने देखा कि क्षमा करने से उनमें अपनी गलती का अहसास हुआ है और अपनी गलती का अहसास ही किसी व्यक्ति के सुधरने का रास्ता है।

३७१) पेड़ लगा देना- वह एक महान पुरुष थे। आदर्शवादी थे। उनके अनुयायियों ने एक दिन कहा, बाबा आपके चले जाने के बाद, हम आपकी बड़ी सी प्रतिमा बनवाकर शहर के गोल चौराहे पर लगा देंगे। उस महान हस्ती ने कहा, नहीं... क्यों बाबा... उनके अनुयायियों ने आतुर व व्याकुल होकर पूछा, तो बाबा ने मृदु भाषा में कहा, बेटा प्रतिमा लगा देने से क्या होगा? वह तो छाया भी न देगा किसी को। इसलिए यदि आप लोगों को मुझसे सच्ची श्रद्धा व भक्ति है तो वहां मेरे नाम से एक पेड़ लगा देना, ताकि लोग कम से कम उसकी छाया तले आराम तो पाएं मेरी प्रतिमा से क्या पाएंगे? बाबा के मंतव्य से सभी भक्त वशीभूत हो गए और सादर हाथ जोड़ नतमस्तक हो गए।

३७२) सच्चे संत- मिस्र के संत हिलेरिया एक धनाढ्य परिवार में जन्मे थे। वह १५ वर्ष के थे कि पिता की मृत्यु हो गई। बालपन से उनमें सांसारिक सुविधाओं के प्रति मोह नहीं था। उन्होंने पिता की तमाम संपत्ति अनाथालय, अस्पताल आदि को दान कर दी। कुछ धन अपने गरीब रिश्तेदारों को दे दिया। स्वयं बियावान जंगल में २ कमरे के एक छोटे से मकान में रहने लगे। वह जड़ी-बूटियों से दवा बनाकर मरीजों में वितरित करते और शेष समय भगवान की याद में बिताते थे। कुछ अपराधी किस्म के लोगों को शक हुआ कि संत हिलेरिया ने निश्चित रूप से स्वर्ण मुद्राएं आदि जमीन में दबाकर रखी हैं। एक रात ३-४ बदमाश उनके पास पहुंचे। उनमें से एक ने पूछा, आप बहुत बड़े सेठ के लड़के हैं, सुख-सुविधाएं त्यागकर यहां जंगल में क्यों रहते हैं। कुछ धन तो आपने अपने लिए रखा होगा। उन्होंने उत्तर दिया, मेरे पास पहनने के कपड़ों और पानी पीने के बरतन के अलावा कुछ नहीं है। मैं बस्ती के लोगों की सेवा करता हूं। वो मुझे खाने को रोटी दे देते हैं। मैं धन रखकर क्या करता? उसने पूछा कि यदि कोई तुम्हारे कपड़े और बरतन ले जाए तो क्या करोगे? संत ने उत्तर दिया, खुशी-खुशी दे दूंगा। उसने पूछा कि यदि डाकू तुम्हारी हत्या करने आ जाए, तो क्या करोगे? उन्होंने कहा, मरना तो एक दिन है ही। मार जाए, तो मार जाए, जब तक भगवान शरीर से काम लेगा, करता रहूंगा। बदमाश उनकी निर्भीकता देखकर दंग रह गए। उन्होंने संकल्प लिया कि अब अपराध नहीं करेंगे।

३७३) नकल बिन अकल- एक कौआ था। वह रोज नदी किनारे जाता और बगुले को नमस्कार करता। धीरे-धीरे दोनों में दोस्ती हो गई। बगुला मछलियाँ पकड़ता और कौए को खिलाता। बगुला अपने अनोखे ढंग से रोज नई-नई मछलियाँ पकड़ता। कौए को हर दिन नया भोजन मिलता। बगुला आसमान में उड़ता, लेकिन निगाह उसकी बराबर नीचे रहती। मछली दिखाई देते ही वह सरसराता हुआ नीचे आता, अपनी लंबी चोंच पानी में डालता और पैर ऊँचे रख झठ से मछली पकड़कर किनारे पर आ बैठता। कौआ यह सब देखता। उसका मन होता कि वह भी ऐसे ही मछलियां पकड़े। वह मन-ही-मन सोचा करता, इसमें कौन सी बड़ी बात है? ऊपर उड़ना, निगाह नीचे की ओर रखना, मछली दिखते ही फौरन नीचे आना, चोंच खोलकर पानी में डालना, औंधा सिर करके पाँव ऊपर की तरह उठाना। मछली चोंच में नहीं आएगी, तो आखिर जाएगी कहाँ? सबकुछ सोच-विचारकर एक रोज कौआ आसमान में उड़ा। बहुत ऊँचा उड़ा। आखिर उसे पानी में एक मछली दिखाई पड़ी। कौआ सरसराता हुआ नीचे आया। पाँव ऊँचे रख, चोंच नीची कर फुरती के साथ मछली पर टूटा; लेकिन मछली वहाँ से खिसक गई। कौए की चोंच काई और जालों में उलझ गई। कौआ छटपटाने लगा। ऊपर आने की उसने बहुत कोशिश की, पर सिर तो पानी में डूबता चला गया। तभी बगुला वहाँ आ पहुँचा। उसको दया

आ गई। उसने बड़ी मुश्किल से कौए को पानी से बाहर खींच निकाला। फिर कौए से कहा- करते हो सो कीजिए नकल न कीजे काग। चोंच फँसेगी जालों में पाँव रहेंगे काठ। उस दिन से कौआ समझ गया और किसीकी भी नकल करना छोड़ दिया। इसीलिए कहते हैं कि कभी किसीकी नकल नहीं करनी चाहिए।

३७४) अंतिम उपदेश- एक संत थे। उनके कई शिष्य थे। जब उन्हें महसूस हुआ कि उनका अंतिम समय आ गया है तो उन्होंने अपने सभी शिष्यों को बुलाया। जब सभी शिष्य आ गए तो उन्होंने कहा, जरा मेरे मुंह के अंदर ध्यान से देख कर बताओ कि अब कितने दांत शेष रह गए है। बारी-बारी से सभी शिष्यों ने संत का मुंह देखा और एक साथ बोले, गुरुजी, आपके सभी दांत टूट गए हैं। एक भी बचा नहीं है। संत ने कहा, जरा ध्यान से देखो कि जीभ है या नहीं। यह सुनकर शिष्यों को हंसी आ गई। वे सोचने लगे कि आज गुरुजी मजाक क्यों कर रहे हैं। एक शिष्य बोला, गुरुजी जीभ तो जन्म से मृत्यु तक साथ रहती है। वह कहां जाएगी। संत हंसकर बोले, यह तो अजीब बात है कि जीभ जन्म से मृत्यु तक साथ रहती है और दांत बाद में आते हैं मगर पहले ही साथ छोड़ देते हैं। जबकि बाद में आनेवालों को बाद में जाना चाहिए। क्या तुम लोगों में कोई बता सकता है कि ऐसा क्यों होता है कि दांत बाद में आते हैं और पहले चले जाते हैं। एक शिष्य बोला, गुरुजी, यह प्रकृति का नियम है कि दांत टूट जाते हैं और जीभ नहीं टूटती। संत बोले, यही बात समझाने के लिए मैंने तुम लोगों को यहां बुलाया है। यह प्रकृति का नियम नहीं है। जीभ इसलिए नहीं टूटती कि उसमें लोच है, वह नरम है। उसमें सहन करने की शक्ति है। उसमें कठोरता बिल्कुल नहीं होती। जबकि दांत बहुत कठोर होते हैं। उन्हें अपनी कठोरता पर अभिमान होता है। लेकिन उनकी कठोरता ही उनकी समाप्ति का कारण बनती है। जीभ और दांत की कोई तुलना नहीं हो सकती, लेकिन यदि तुम्हें समाज के कठोर नियमों का सामना करना है तो तुम लोग जीभ बनो, दांत नहीं। अपने को हमेशा लचीला बनाए रखो। समाज में नम्रता का व्यवहार करो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो दांतों की तरह तुम भी जल्दी टूट जाओगे और समाज तुम्हें तिरस्कृत कर देगा।

३७५) लोककथा- एक राजा के पाटवी राजकुमार की दोस्ती एक गरीब आदमी के बेटे से थी। दोनों के बीच इतनी गाढ़ी दोस्ती थी कि वे हर वक्त साथ रहते थे। राजा को यह पसन्द नहीं था कि गरीब आदमी के बेटे से राजकुमार की दोस्ती कायम रहे। राजा ने राजकुमार को बहुत समझाया कि दोस्ती समान स्तर के बीच होती है। राजकुमार का मानना था दोस्ती के लिए अमीर और गरीब का भेद नहीं होना चाहिए। एक दिन राजा ने मंत्री को बुलवाकर कहा- मंत्रीवर, राजकुमार की दोस्ती गरीब आदमी के बेटे से नहीं टूटी तो एक सप्ताह में आपका मंत्री पद लिया जाएगा। मंत्री का हाल बेहाल हो गया। उसकी रात की नींद और दिन का चैन छिन गया। दोस्ती नहीं टूटने से मंत्री का चेहरा चिंता से पीला पड़ गया। एक शाम को मंत्री की पत्नी ने मंत्री से पूछा- प्रियवर, आप चिंता के चक्रव्यूह में घिरे दिखाई देते हैं। अगर ऐतराज नहीं हो तो मुझे अपनी चिंता का कारण समझाएं। मंत्री ने सारी हकीकत पत्नी के सामने बयान की। पत्नी ने कहा- पतिदेव, इस छोटी सी समस्या के लिए आप नाहक क्यों परेशान हो रहे हैं। एक दिन गरीब के बेटे के साथ राजकुमार को अपने घर में भोजन का न्योता दो। मैं आपकी समस्या का हल कर दूंगी। दूसरे दिन मंत्री ने राजकुमार को भोजन के लिए अपने घर आमंत्रित किया। गरीब का बेटा भी राजकुमार के साथ भोजन के लिए आया। मंत्री की पत्नी ने दोनों को खूब आदर-

सत्कार के साथ भोजन कराया। भोजन सम्पन्न होते ही राजकुमार अपने दोस्त के साथ रवाना होने को तैयार हुआ। दोनों घर के दरवाजे तक लौटने को हुए। इतने में आवाज देकर मंत्री पत्नी ने राजकुमार के गरीब दोस्त को अपने पास बुलाया और कहा- मैं एक बात आपसे कहना चाहती हूं।

राजकुमार के मित्र ने कहा- हां, अपनी बात कहो। मंत्री पत्नी ने गरीब के बेटे के कान के पास अपना मुंह किया और कहा यह बात राजकुमार को मत बताना। राजकुमार के दोस्त ने कहा- तुम बात तो बताओ। मंत्री पत्नी ने कहा- बस बात यही है कि राजकुमार को यह बात मत बताना। गरीब का बेटा बार-बार मंत्री पत्नी से आरजू करता रहा कि मुझे वह बात तो बताओ कि क्या बात राजकुमार को नहीं बताऊँ। मंत्री पत्नी ने फिर वही राग दोहराया कि राजकुमार को यह बात मत बताना। गरीब का बेटा राजकुमार के पास पहुंचा। राजकुमार ने पूछा- मंत्री पत्नी ने तुम्हारे कान में क्या बात की मुझे बताओ। गरीब के बेटे ने जवाब दिया- मुझे मंत्री की पत्नी ने कहा- यह बात राजकुमार को मत बताना। राजकुमार बार-बार अपने दोस्त से पूछता रहा कि बताओ वह बात क्या है। राजकुमार के दोस्त ने बार-बार वही बात दोहराई कि यह बात राजकुमार को मत बताना। यह बात सुनकर राजकुमार को गुस्सा आ गया कि तुम मंत्री पत्नी की कही बात मुझे नहीं बताओगे तो आज से अपनी दोस्ती खत्म। राजकुमार का गरीब दोस्त बार-बार अपनी बात दोहराता रहा कि मंत्री पत्नी ने बस यही कहा था कि राजकुमार को यह बात मत बताना। राजकुमार मंत्री पत्नी के छल को नहीं समझ पाया। दोनों के बीच की दोस्ती हमेशा के लिए टूट गई। मंत्री ने अपनी पत्नी से कहा- जो काम बुद्धि बल से नहीं होता वह काम छल के बल से हो जाता है।

३७६) महानता की परिभाषा- एक राजा बहुत दयालु और दूरदर्शी था। एक दिन वह किसी विषय को लेकर अपने आप में गहन सोच में डूबा हुआ था। तभी उसका एक मंत्री पास आया और बोला- महाराज आप आज सुबह से ही किस सोच में खोए हुए हैं? राजा ने कहा, राज्य में बेईमानी बढ़ती जा रही है। सभी ओर छल-कपट व धोखेबाजी अपने चरम पर जा पहुंची है। क्या इस राज्य में ऐसा कोई एक आदमी होगा जो अपने गुणों में देवतुल्य हो? मंत्री ने फौरन जवाब दिया, क्यों नहीं, एक तो आप स्वयं हैं। सत्य की जिज्ञासा रखनेवाले व्यक्ति को ही महान समझा जाता है। राजा ने कहा, तुम्हारी दृष्टि में भले ही मैं महान होऊं, मगर मैं तो महानता की कसौटी पर खरे उतरे अन्य किसी व्यक्ति को देखना चाहता हूं। मंत्री ने जवाब दिया, तब तो महाराज, वह व्यति मैं खुद हूं। राजा बोला, मैं आपसे भी ज्यादा महान व्यक्ति को देखना चाहता हूं। इस पर मंत्री ने कहा, सैकड़ों महान आदमी हमें अपने आसपास ही नजर आ जाएंगे। राजा ने पूछा, सो कैसे? मंत्री बोला, महाराज, आप जरा ठीक सामने देखकर बताएं कि वह अस्सी साल की बुढ़िया क्या कर रही है? राजा ने उत्तर दिया, कुदाल से कुआं खोद रही है। इसे इस उम्र में कुआं खोदने की भला क्या जरूरत है? मंत्री ने कहा, आपने ठीक कहा। मगर जरूरत ही तो सब कुछ नहीं होती। जो दूसरों के लिए अपना जीवन समर्पण करते हैं, वास्तव में वही महान हैं। ऐसे लोग ही जीवन और मरण की सीमाएं लांघकर अमर हो जाते हैं। यह सुनकर राजा को एहसास हो गया कि बुढ़िया महानता की परिभाषा से परिचित करा रही है।

३७७) नहीं सांच को आंच- शेख अब्दुल कादिर जिलानी ने बचपन में बगदाद जाने के लिए अपनी मां से आज्ञा मांगी। मां ने स्नेह से उससे कहा, बेटा अब्दुल, मेरे पास महज ८० दीनार हैं। लेकिन तुम जानते हो, तुम्हारा एक भाई और

है। इसलिए ४० दीनार तुम अपने साथ ले जाओ, किंतु कभी झूठ मत बोलना। शेख ने मां के आगे सिर झुकाया और साथियों को लेकर यात्रा के लिए चल पड़े। यात्रा में डाकुओं ने उनके दल को घेरकर लूटना शुरू कर दिया। इसी बीच एक डाकू ने शेख से पूछा, तुम्हारे पास क्या है? शेख ने बताया, मेरे पास ४० दीनार हैं। डाकू ने समझा लड़का हंसी कर रहा है। दूसरे डाकू ने शेख से फिर पूछा, सच बता तेरे पास क्या है? शेख ने कहा, बताया न, मेरे पास ४० दीनार हैं। डाकू उसे अपने सरदार के पास ले गए। सरदार ने भी वही पूछा और शेख ने वह उत्तर दिया तो सरदार बोला- बता, दीनार कहां रखे हैं? शेख ने अपनी सदरी के नीचे एक सिली जेब उधाड़कर ४० दीनार निकाल दिए। सरदार ने हैरानी से पूछा, इतना छिपाकर रखे थे, तो फिर बता क्यों दिया? मां को सच बोलने का वचन जो दिया था। यह सुनते ही सरदार की आंखें भर आईं। उसने कहा, इस उम्र में तुम अपनी मां को दिया वचन निभा रहे हो और मैं दाढ़ी सफेद हो जाने पर भी अपने परम पिता परमेश्वर के हुक्म का पालन नहीं कर पाता। आज से मैं यह काम सदा के लिए छोड़ता हूं। सरदार को पश्चाताप करते देख सभी ने अपने कुकर्म का त्याग कर लूट का सारा माल वापस करते हुए सच्चा जीवन बिताने की प्रतिज्ञा कर ली।

३७८) अपना कर्त्तव्य - अवध प्रदेश के राजा करण और उनके पड़ोसी प्रदेश के राजा ध्रुव दोनों बहुत घनिष्ठ मित्र थे। राजा ध्रुव एक दिन अपने मित्र करण के महल में बिना अपने आने की खबर दिए ही पहुंच गए। उन्हें अचानक आया देखकर राजा करण बहुत खुश हुए। उन्होंने उनके स्वागत में बाकायदा एक खास दरबार लगवाया। जब सभी दरबारी आकर बैठ गए तो राजा करण ने अपने सेवक से हुक्का लेकर आने को कहा। लेकिन जैसे ही हुक्का लेकर सेवक दरबार में पहुंचा, वह सोच में पड़ गया। असल में वह समझ ही नहीं पा रहा था कि पहले वह हुक्का किस राजा के सामने रखे। राजा करण उसके अन्नदाता हैं और राजा ध्रुव उनके मेहमान। काफी सोच-विचार के बाद सेवक ने हुक्के को अपने ही राजा के सामने रख दिया। राजा करण ने सेवक को चुपके से इशारा किया कि वह हुक्का पहले मेहमान राजा को दे। पर सेवक ने राजा के इशारे को जानबूझ कर अनदेखा कर दिया। वह चुपचाप एक जगह खड़ा हो गया। सेवक की इस हरकत से राजा बहुत नाराज हो गए और तुरंत उससे बोले- तुम्हें जरा भी अक्ल नहीं है। हमेशा पहले कोई भी चीज मेहमान को दी जाती है। इस पर सेवक ने कहा- महाराज यह धर्म आपको निभाना है। मैं तो आपका सेवक हूं। मेरा पहला कर्त्तव्य आपकी सेवा करना और आपके हुक्म को मानना है। राज्य के मेहमान की सेवा करना तो आपका कर्त्तव्य है। राजा ध्रुव यह सुनकर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने तुरंत कहा- इंसान को सबसे पहले अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए। यह सुनते ही सभी लोगोंने सेवक की बात से सीख लेकर उसे अपने में उतारने की कसम खाई।

३७९) मानव धर्म की रक्षा - एक बार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सुबह के समय मंदिर से अपने घर वापस जा रहे थे। कुछ दूर पर ही उन्हें बचाओ-बचाओ, मेरी जान बचाओ की चीख सुनाई दी। एक अछूत स्त्री को सांप ने काट लिया था। कोई उस स्त्री की सहायता नहीं कर रहा था। आचार्य द्विवेदी जैसे ही वहां पहुंचे, लोग कहने लगे- आचार्य जी इसे हाथ मत लगाना। यह अछूत है। द्विवेदी जी ने किसी की परवाह किए बिना स्त्री को अपनी गोद में बैठाया और कुछ और न पाकर अपना जनेऊ तोड़कर स्त्री के पैर में सांप द्वारा काटे गए स्थान से थोड़ा ऊपर कसकर बांध दिया। फिर चाकू से उस स्थान पर चीरा लगा, दूषित खून बाहर निकाल दिया। उस स्त्री की जान बच गई। इतनी देर में वहां गांव के कुछ और

लोग भी इकट्ठा हो गए। गांव के लोग आपस में कुछ इस तरह की बातें करने लगे कि आज से धर्म की नाव तो समझो डूब ही गई। देखो तो इस महावीर को, ब्राह्मण होकर जनेऊ जैसी पवित्र वस्तु को इस स्त्री के पैर से छुआ दिया। अब कौन हम ब्राह्मणों का सम्मान करेगा। उनकी ऐसी बातें सुन द्विवेदी जोर से बोले- इस जनेऊ के कारण ही एक स्त्री की जान बची है। मैं खुश हूं कि आज मेरा ब्राह्मण होना किसी के काम आ सका। आज से पहले इस जनेऊ की कीमत ही क्या थी। आज इसने इसकी जान बचाकर अपनी असल उपयोगिता साबित कर दी है। अब मैं शायद ही कभी इस जनेऊ को उतारने का ख्याल करूंगा। द्विवेदी जी की बातों का किसी के पास कोई जवाब नहीं था। सभी ने द्विवेदी जी से माफी मांगी और भविष्य में मानव धर्म की रक्षा की कसम खाई।

३८०) बिना विचारे जो करे जो पाछे पछताय- एक दानशील व गरीबों के मददगार व्यापारी को व्यापार में घाटा हुआ। उसका मकान व दुकान बिक गए। मित्रों व परिजनों ने साथ छोड़ दिया। निराश होकर जिस दिन उसने नगर छोड़ने का फैसला किया, उसी रात उसने स्वप्न में एक भिक्षु को देखा, जो कह रहा था, मैं तेरा भाग्य हूं। तू नगर छोड़कर मत जा। कल मैं तेरे घर आऊंगा। मुझे देखते ही मेरे सिर पर डंडा मारना, तेरा भाग्य चमक जाएगा। सुबह जब व्यापारी घर पर ही नाई से बाल बनवाने बैठा था कि द्वार पर दस्तक हुई।

व्यापारी ने द्वार खोला तो सामने वही भिक्षु था। व्यापारी ने डंडा उठाकर उसके सिर पर मार दिया। ऐसा करते ही भिक्षु सोने की अशर्फियों के ढेर में बदल गया। नाई यह देख हैरान तो हुआ पर व्यापारी से कुछ पूछ न सका। उसके मन में लोभ जाग्रत हो गया। वह बौद्ध भिक्षुओं के मठ में जाकर भिक्षुओं को भोजन का निमंत्रण दे आया। नाई कई भिक्षुओं को डंडा मारकर अधिकाधिक अशर्फियां पाना चाहता था। उसके जाने के बाद भिक्षुओं के गुरु ने कहा, इस नाई ने कभी हमें भिक्षा देना तो दूर, एक लोटा पानी तक नहीं पिलाया। फिर यह हमें भोज क्यों दे रहा है, अवश्य कुछ गड़बड़ है। हम लोग इसके घर नहीं जाएंगे। अधिकांश शिष्य मान गए, किंतु तीन भिक्षु अच्छे व्यंजनों के लोभ में नाई के घर पहुंचे। घर में प्रवेश करते ही नाई उनके सिर पर डंडे बरसाने लगा। तीनों लहूलुहान होकर जमीन पर गिरे, किंतु वे अशर्फियों में न बदले। यह देख नाई ने भिक्षु के सिर पर और डंडे मारी। ऐसा करने पर तीनों की मृत्यु हो गई और नाई को राजा ने मृत्युदंड दिया। किसी अद्भुत या असामान्य बात के भेद को पूर्णतया जाने बगैर उस पर काम करना आत्मघातक सिद्ध हो सकता है। इसलिए पहले भली-भांति पड़ताल कर तत्पश्चात उचित निर्णय लेना चाहिए।

३८१) शरीर और आत्मा- एक बार संत कबीर से किसी ने पूछा, आप दिन भर कपड़ा बुनते रहते हैं तो भगवान का स्मरण कब करते हैं? कबीर उस व्यक्ति को लेकर अपनी झोपड़ी से बाहर आ गए। बोले, यहां खड़े रहो। तुम्हारे सवाल का जवाब सीधे न देकर, मैं उसे दिखा सकता हूं। कबीर ने दिखाया कि एक औरत पानी की गागर सिर पर रखकर लौट रही थी। उसके चेहरे पर प्रसन्नता और चाल में रफ्तार थी। उमंग से भरी हुई वह नाचती हुई-सी चली जा रही थी। गागर को उसने पकड़ नहीं रखा था, फिर भी वह पूरी तरह संभली हुई थी। कबीर ने कहा, उस औरत को देखो। वह जरूर कोई गीत गुनगुना रही है। शायद कोई प्रियजन घर आया होगा। वह प्यासा होगा, उसके लिए वह पानी लेकर जा रही है। मैं तुमसे जानना चाहता हूं कि उसे गागर की याद होगी या नहीं। कबीर की बात सुनकर उस व्यक्ति ने जवाब दिया, उसे गागर की

याद नहीं होती तो अब तक तो गागर नीचे ही गिर चुकी होती। कबीर बोले, यह साधारण सी औरत सिर पर गागर रखकर रास्ता पार करती है। मजे से गीत गाती है, फिर भी गागर का ख्याल उसके मन में बराबर बना हुआ है और तुम मुझे इससे भी गया गुजरा समझते हो कि मैं कपड़ा बुनता हूं और परमात्मा का स्मरण करने के लिए मुझे अलग से वक्त की जरूरत है। मेरी आत्मा हमेशा उसी में लगी रहती है। कपड़ा बुनने के काम में शरीर लगा रहता है और आत्मा उधर प्रभु के चरणों में लीन रहती है। आत्मा हर समय प्रभु के चिंतन में डूबी रहत है। इसलिए ये हाथ भी आनंदमय होकर कपड़ा बुनते रहते हैं।

३८२) छोटी सी बात - वाशिंगटन में एक बड़ी इमारत थी जिसकी तीसवीं मंजिल पर हार्नवे नामक एक कंपनी का ऑफिस था। उसमें अनेक कर्मचारी काम करते थे। एक दिन इमारत की लिफ्ट खराब हो गई। उसे ठीक करने में काफी समय लगना था। कर्मचारियों ने तब सीढ़ियों से दफ्तर पहुंचने का फैसला किया। कर्मचारियों को यह सोच-सोच कर ही पसीना चढ़ा आ रहा था कि इतनी सीढ़ियां आखिर वे कैसे चढ़ेंगे? तभी एक कर्मचारी बोला, अगर हम सोचते-सोचते सीढ़ियां चढ़ेंगे तो थक जाएंगे। क्यों न हम मनोरंजक चुटकुले सुनाते और आपस में बातें करते हुए आगे बढ़ें। सब सहमत हो गए। सभी एक से बढ़कर एक चुटकुले सुनाते हुए सीढ़ियां चढ़ने लगे। इन कर्मचारियों के बीच में कंपनी का चपरासी भी था। वह कुछ बोलना चाहता था, लेकिन जैसे ही वह बोलने को होता, सब उसे चुप करा देते और कहते, तुम बाद में बोलना। सत्ताइसवीं मंजिल की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते सभी कर्मचारियों के चुटकुलों का स्टॉक खत्म हो चुका था। ऐसे में, उनमें से एक सीनियर कर्मचारी ने चपरासी से कहा, चल भाई, अब तू भी सुना ही दे। बड़ी देर से तू कुछ सुनाना चाह रहा था। चपरासी बड़ी सहजता से बोला, साहब, मैं तो बस ये कहना चाहता था कि आप दफ्तर की चाबी लाना भूल गए हैं। यह सुनकर सभी कर्मचारियों ने अपना सिर पकड़ लिया। यह देखकर एक कर्मचारी ने कहा, <u>कभी किसी को कमतर नहीं आंकना चाहिए</u>। हम सभी इसकी उपेक्षा कर रहे थे, पर यह तो एक जरूरी बात बताना चाह रहा था। इसके बाद सभी ने तय किया कि वे कभी किसी को छोटा नहीं समझेंगे।

३८३) बनार्ड शॉ और राजा- इंग्लैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय को कविता लिखने का शौक था। उनमें काव्य-प्रतिभा तो औसत ही थी, लेकिन वह स्वयं को बहुत महान कवि समझने लगे थे। अत्यंत साधारण कविताएं लिखकर वह अक्सर अपने दरबारियों को सुनाते और खुद ही अपनी प्रशंसा करते रहते। बेचारे दरबारी मजबूरी में उनकी हां में हां मिलाते हुए, उनकी कविताओं की खूब सराहना करते। दरअसल, वे राजा का गुस्सा कतई मोल लेना नहीं चाहते थे। लेकिन मुसीबत यह थी कि जब भी चार्ल्स का राजकाज का काम पूरा हो जाता, वह कविताएं सुनाना शुरू कर देते और सारी अनिच्छा व ऊब के बावजूद दरबारी उनकी कविताएं सुनने को मजबूर हो जाते। एक बार राजा ने अपने समय के सुविख्यात साहित्यकार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ को अपने दरबार में आमंत्रित किया। बर्नार्ड शॉ जब दरबार में पहुंचे तो राजा ने उनका खूब सत्कार किया और अपनी कुछ कविताएं उन्हें देते हुए उनसे राय मांगी। बर्नार्ड शॉ थे तो बहुत स्पष्टवादी, लेकिन वह यह भी जानते थे कि राजा की कविताओं को बुरा कहने से उन्हें अच्छा नहीं लगेगा। इसलिए वह बहुत देर तक उनकी कविताओं को पढ़ते रहे और फिर प्रशंसा के शब्दों में उन्होंने सत्य को कुछ इस तरह राजा के सामने रखा- मैं तो कहूंगा कि आपके लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है। आप एक खराब-सी कविता लिखना चाहते हैं, तो उसमें भी सफल हो जाते

हैं। उनकी यह बात राजा की समझ में भी आ गई और उन्हें खराब भी नहीं लगी। जीवन में कभी-कभी प्रतिकूल अवसर आ जाने पर अपनी रक्षा और सत्य कहने के लिए चतुराई का सहारा लेना ही पड़ता है।

३८४) आवाज में पहचान - एक संन्यासी को दिखाई देना बंद हो गया था। एक दिन वह कहीं जा रहा था। उसे पता लगा कि राजा की सवारी आनेवाली है। थोड़ी देर में ही रास्ते के दोनों ओर लोग फूल मालाएं आदि लेकर खड़े होने लगे। संन्यासी की इच्छा भी इस दृश्य का अनुभव करने की हुई। वह देख भले ही नहीं सकता था, लेकिन सबसे आगे निकलकर खड़ा हो गया। राजा के रथ के आगे सिपाही, मंत्री और दरबारी चल रहे थे। सबसे आगे बाजा बजाते हुए एक दल था। जब शाही सवारी एकदम करीब आ पहुंची तो एक सिपाही ने डपट कर सभी से कहा- दूर हटो। जवाब में निडर संन्यासी ने कहा- समझ गया। जब मंत्रिमंडल के सदस्यों का समूह सामने आया तो उनमें से एक ने आगे आकर कहा- संन्यासी जी, जरा संभल कर। कहीं भीड़ में आप गिर न जाएं? संन्यासी ने जोर से कहा, समझ गया। तभी राजा की शाही सवारी आ पहुंची। राजा ने देखा कि एक तेजस्वी संन्यासी राह में खड़ा है। उन्होंने रथ रुकवाया और उतरकर संन्यासी के चरण स्पर्श कर विनम्रता से कहा, महाराज। आपको इस भीड़ में आने की क्या आवश्यकता थी। आदेश दे दिया होता मैं ही आपके दर्शन के लिए चला आता। संन्यासी ने इस बार भी जोर से कहा- समझ गया, समझ गया। राजा यह सुनकर हैरान रह गया। उसने पूछ ही लिया, आप क्या समझ गए महाराज? संन्यासी बोला, हर व्यक्ति की आवाज में उसके व्यक्तित्व व गरिमा की झलक होती है। मैं देख नहीं सकता, लेकिन तीनों बार आवाज से ही समझ गया था कि पहला व्यक्ति आपका सिपाही था, दूसरा आपका मंत्री और तीसरी बार आप स्वयं।

३८५) काम का माहौल - एक अमेरिकी उद्योगपति अपने मजदूरों के साथ बड़ी बर्बरता से पेश आता था। विरोध में उसके मजदूरों ने लंबी हड़ताल कर दी। इससे उद्योगपति बहुत परेशान हो गया। उसने समझाने की काफी कोशिश की, लेकिन मजदूर हड़ताल वापस लेने को तैयार न हुए। उन दिनों फोर्ड मोटर की कामयाबी बुलंदियां छू रही थी। यह देखकर उस उद्योगपति ने फोर्ड से सलाह लेने की सोची। एक दिन वह सीधा फोर्ड के दफ्तर जा पहुंचा। फोर्ड वहां मौजूद नहीं थे। जब उसने किसी कर्मचारी से पूछा तो उसने बताया, सर अभी मजदूरों के साथ काम पर हैं। मैं उन्हें आपके आने की सूचना देता हूं, आप बैठिए। कुछ ही देर में फोर्ड अपने कमरे में आ गए। उद्योगपति उनका अभिवादन करने के बाद बोला, सर, आप इतने बड़े कारोबार के मालिक होकर भी मजदूरों के साथ मिलकर काम कर रहे थे। ऐसे में यहां का अनुशासन और सम्मान कैसे बना रह पाएगा? उद्योगपति की बात सुनकर फोर्ड मुस्कराते हुए बोले, मेरे यहां मालिक-मजदूर संघर्ष की कोई संभावना नहीं रहती। दरअसल, न मैं खुद को मालिक मानता हूं और न किसी को मजदूर। हम मिलजुल कर उत्साह भरे माहौल में काम करते हैं। इस कारण अनुशासन की समस्या ही पैदा नहीं होती। इसके बाद फोर्ड ने पूछा, आपका यहां कैसे आना हुआ? उद्योगपति बोला, मैं जब यहां आया तब बहुत परेशान था। आपसे अपनी समस्या का समाधान चाहता था, पर आपसे मिलने के बाद मुझे समाधान मिल गया है। अब मैं भी अपने मजदूरों के साथ आप जैसा ही बर्ताव करूंगा। फोर्ड उसका जवाब सुनकर मुस्कराने लगे।

३८६) निकोलस की सूझबूझ - द्वितीय विश्व युद्ध के समय मित्र-राष्ट्र संगठित रूप से जर्मनी से टक्कर ले रहे थे। ब्रिटेन के सार्जेंट निकोलस ने बर्लिन पर बमबारी करने के लिए उड़ान भरी। बमबारी के बाद जब वह वापस लौट रहा था,

तभी शत्रु सेना की विमानभेदी तोपों ने उसके जहाज पर आग उगलनी शुरू कर दी। धीरे-धीरे आग पूरे विमान में फैलने लगीं निकोलस ने तुरंत वायरलैस से अपने कप्तान से सहयोग की मांग की। लेकिन कप्तान उसकी बात सुनकर बोला, इस समय तो हम लोग खुद मुसीबत में हैं और सहायता नहीं कर पा रहे, लेकिन तुम इस मुसीबत में साहस का परिचय देकर अपनी मदद खुद ही करने की कोशिश करो। बस, इसके साथ ही संपर्क टूट गया। निकोलस बिना समय गंवाए पैराशूट निकालने के लिए केबिन की ओर बढ़ा, किंतु पैराशूट तो जलकर राख हो चुका था। यह देखकर निकोलस ईश्वर को याद करते हुए फौरन विमान से कूद पड़ा। लेकिन जमीन पर आते ही वह बेहोश हो गया। चेतना लौटी तो उसने खुद को बर्फ से ढका हुआ पाया। पैर की हड्डियों में चोट के कारण वह उठ भी नहीं पा रहा था। उस समय रात के दो बज रहे थे। उसे अनुमान तो था कि यह शत्रु का क्षेत्र होगा, लेकिन बचने के लिए उसने अपनी कमर में बंधी सीटी बजा दी। सीटी सुनते ही शत्रु सैनिकों ने उसे बंदी बना लिया। निकोलस ने शत्रु सेना के अधिकारियों को सारा किस्सा बताया। विमान के अवशेष देखने के बाद शत्रु-पक्ष के लोग भी निकोलस की हिम्मत और समझदारी पर दंग रह गए। युद्ध समाप्त होने पर सभी युद्धबंदियों को रिहा कर दिया गया। इस प्रकार निकोलस सकुशल इंग्लैंड पहुंच गया।

३८७) मन के भाव - एक दिन बीरबल ने अकबर से कहा- मनुष्य एक दूसरे के मन की बात बिना कहे भी जान लेते हैं। इसकी पुष्टि करने के लिए दोनों भेष बदल कर चल दिए। उनकी नजर एक लकड़हारे पर पड़ी जो एक हरा भरा पेड़ काट रहा था। बीरबल ने पूछा, हुजूर, इसके बारे में आपका क्या विचार है? अकबर- यह दुष्ट तो हरे पेड़ को काट रहा है। सोचता हूं, इसे कोड़े लगाऊं। दोनों उसके पास पहुंच गए तो बीरबल ने पूछा, भाई, यह क्या कर रहे हो? वह गुस्से में बोला- देखते नहीं पेड़ काट रहा हूं। यही मेरा रोजगार है। बीरबल- क्या तुम जानते हो कि बादशाह की मौत हो गई है? लकड़हारा, चलो अच्छा हुआ। बेकसूरों को सताता था। अकबर हैरान था कि वह ऐसा क्यों सोचता है? थोड़ा और आगे बढ़ने पर बीरबल ने पहाड़ी पर बकरियां चराती एक बुढ़िया की ओर इशारा कर अकबर से पूछा- आपका इसके बारे में क्या ख्याल है शहंशाह? अकबर ने कहा, इस पर श्रद्धा होती है। इस उम्र में भी बकरी चराकर परिवार का पालन कर रही है। बुढ़िया के पास पहुंचकर बीरबल ने पूछा, तुम बकरियां क्यों चराती हो? बुढ़िया ने दोनों की ओर देखा और बताया- परिवार पालने और बच्चों के दूध के लिए। अकबर ने कहा- बड़ा अच्छा भाव है। बीरबल बुढ़िया से बोला, क्या तुम्हें मालूम है कि बादशाह नहीं रहे? यह सुनकर बुढ़िया रोने लगी- ओ मेरे बादशाह, हमें अकेला किस पर छोड़ गए। बीरबल ने कहा, देखा हुजूर, उनके प्रति आपके मन में जैसे भाव थे, वह आपके चेहरे से होते हुए उन दोनों के मन में बिना कहे पहुंच गए। उनका जवाब भी उनके हिसाब से ही मिला।

३८८) चमत्कारी पौधा - एक थका-हारा भिखारी एक गांव में आया। उसने दो दिन से कुछ नहीं खाया था। पेट में बैठी भूख ने उसको एक सुझाव दिया। भिखारी को जो भी आदमी मिलता उसके कान में कहता- मैं एक ऐसे चमत्कारी पौधे के बारे में जानता हूं जो ऐसे आदमी में भी जान डाल सकता है तो कब्र में जाने ही वाला हो। मैं उसका रहस्य आपको बता सकता हूं। एक अमीर आदमी से जब उसने यह बात कही तो उसने उसे अपने घर पर बुलाया। उसको बढ़िया खाना खिलाया। जब खाना पूरा हो गया तो अमीर आदमी ने उसको वायदे की याद दिलाई। मेहमान बने भिखारी ने कहा, आइए

मेरे साथ। वह पौधा आपके इस गांव में ही है। वे दोनों साथ-साथ निकले। जब गांव के कुछ ही बाहर निकले तो भिखारी ने उस आदमी को धान के खेत की ओर इशारा किया- यह रहा वह चमत्कारी पौधा। अमीर आदमी ने पूछा- क्या? धान? तुम मजाक कर रहे हो क्या? नहीं, बिल्कुल नहीं। अगर आपके घर मैंने अभी धान नहीं खाया होता तो मैं अब तक मर गया होता। भिखारी ने अपनी बात समझाई। अमीर आदमी उसकी चालाकी पर गुस्साया तो वह धूर्त भाग खड़ा हुआ।

३८९) घोड़ा और बारहसिंगा- बहुत पहले, घोड़ा सारे चरागाह का अकेला मालिक था, तभी एक बारहसिंगे ने आकर उसके चारागाह में चरना शुरू कर दिया। घोड़ा यह बरदाश्त नहीं कर सका। वह दौड़ा-दौड़ा आदमी के पास गया और बारहसिंगे से बदला लेने में उसकी सहायता करने की प्रार्थना की। ठीक है। आदमी ने जवाब दिया, पर जरा यह लगाम मुझे तुम अपने मुंह में लगाने दो। फिर देखो, हम बारहसिंगे का सफाया कैसे करते हैं। घोड़ा राजी हो गया। आदमी ने फौरन घोड़े के मुंह में नकेल डाली और उछलकर उसकी पीठ पर सवार हो गया। कुछ देर बाद बारहसिंगे को खोजकर आदमी ने उसे मौत के घाट उतार दिया, पर वह स्वयं घोड़े पर से नहीं उतरा। तब से घोड़ा आदमी का गुलाम है। मुझे मेरे मित्रों से बचाओ, शत्रुओं से बचने का प्रबंध मैं स्वयं कर लूँगा।

३९०) मेरे लिए लंगोटी ही काफी है - महात्मा गांधी उड़ीसा की यात्रा कर रहे थे। यात्रा में उन्होंने एक ऐसी गरीब स्त्री को देखा जो फटा हुआ मैला कपड़ा पहने थी। बापू ने उससे कहा, बहन। तुम अपने कपड़े क्यों नहीं धोतीं? इतना आलस्य तो तुम्हें नहीं करना चाहिए। स्त्री ने सिर नवाकर कहा, बापू। मेरे पास पहनने के लिए इसके अलावा कोई दूसरा कपड़ा ही नहीं है। फिर धोऊँ कैसे? यह सुनकर बापू की आँखें डबडबा आईं, हाय। आज मेरी भारत माता के पास पहनने को चिथड़ा भी नहीं है। महात्मा गांधी ने उसी समय प्रतिज्ञा की, जब तक देश स्वतंत्र नहीं होता और गरीब-से-गरीब को भी तन ढकने के लिए कपड़ा नहीं मिलता तब तक मैं कपड़े नहीं पहनूँगा। लाज ढकने के लिए मेरे लिए लँगोटी ही काफी है। महापुरुष दूसरों का दु:ख-दर्द अपनाकर चलते हैं।

३९१) शहद की बरनी - मारग्रेट की माँ बड़ी व्यस्त थी। तभी उसे नींबू की जरूरत पड़ी। उसने मारग्रेट को बुलाकर सब्जी की टोकरी से नींबू निकाल लाने के लिए कहा। रसोईघर में पहुँचकर मारग्रेट ने इधर-उधर देखा कि शायद उसे कुछ खाने के लिए हाथ लग जाए, तभी उसकी निगाह अलमारी के ऊपर रखी शहद की बरनी पर गई। वह अपने पंजों के सहारे उचकी और भरनी के अंदर ऊँगलियाँ दबोच ली हैं। चीखकर उसने अपना हाथ बाहर खींचा तो पाया कि एक केकड़ा था, जिसने उसकी अँगुली काट ली थी। बात यह थी कि कुछ दिनों पूर्व मारग्रेट की माँ ने बरनी का पूरा शहद बेच दिया था तथा दो केकड़े खरीदकर बरनी में पानी भरकर रख दिए थे। जैसे ही माँ ने मारग्रेट की चीख सुन, दौड़ी-दौड़ी रसोईघर में पहुँची। देखा, तो पाया कि मारग्रेट की एक अंगुली खून से लथपथ हो रही है। माँ ने शांत स्वर में मारग्रेट से कहा, यह सजा तुम्हारे लिए सबक है। जरा से लालच की वजह से तुमने बिना जाने-समझे बरनी में हाथ डाल दिया। आगे से तुम इस बात का खयाल रखना। लालच का नतीजा खतरनाक भी हो सकता है।

३९२) न मिटनेवाले दाग- पुत्र किसी के घर में डाका डालकर आता तो मां कमरे में एक कील गाड़ देती थी। किसी का खून करता तो एक और कील गाड़ देती। यह सिलसिला काफी दिनों से पुत्र देख रहा था। एक दिन पुत्र ने पूछा, मां,

तुमने सारा कमरा कीलों से भर दिया है। यह सब क्या है? पुत्र, यह सब तुम्हारे बुरे काम हैं। अब तो पूरा कमरा कीलों से भर गया है। पुत्र का हृदय पछतावे से भर गया। उसने निश्चय किया कि अब से वह बुरे काम छोड़ अच्छे काम करेगा और उसने अच्छे काम करने शुरू कर दिए। अब मां को वह अपने अच्छे काम बताता। मां उन कीलों में से एक कील उखाड़ देती। कई वर्षों तक इसी प्रकार चलता रहा। एक दिन सब कीलें उखड़ गईं। तब पुत्र ने मां से पूछा, मां, अब तो कोई पाप नहीं रहा? मां ने उत्तर दिया, बेटा। कीलें तो सभी निकल गई हैं, पर कीलों के न मिटनेवाले दाग दीवार पर रह गए हैं, जो तुम्हारे बुरे कामों की हमेशा याद दिलाते रहेंगे।

३९३) किस्सा अकल के दुश्मन का - एक अकल का दुश्मन था। जंगल में रहता था, इसलिए उसने कभी कोई दीया नहीं देखा था। एक रोज वह दूर के एक गाँव में पहुँचा और एक ग्वाले के घर ठहरा। रात होने पर घर में दीया जलाया गया। दीया देखकर अकल का दुश्मन सोच में पड़ गया। उसने सोचा, यह क्या जगमगाता है? ऐसी कोई चीज मैंने पहले कभी नहीं देखी। यह तो कोई अजूबा मालूम होता है। यह इतना बढ़िया है कि माँगने पर कोई नहीं देगा। ठीक है, जब आधी रात को सब सो जाएँगे, तब मैं इसे घास की उस ढेरी में छिपा दूँगा और सुबह जाते समय इसे चुपके से लेकर चलता बनूँगा। सब सो गए। अकल का दुश्मन धीमे से उठा और आले के पास पहुँचा। बड़ी सावधानी से उसने जलता हुआ दीया उठाया और हौले से घास की ढेरी में रख दिया। फिर वह अपनी खटिया पर आकर ऐसे लेट गया कि किसी को भनक तक नहीं लगी। लेकिन थोड़ी ही देर में वहाँ धू-धू करती आग जल उठी। अकल का दुश्मन तुरंत दौड़ा और कुछ खोजने लगा। लोगों ने पूछा, वहाँ क्या खोज रहे हो? दूर हटो, वरना जल मरोगे। वह बोला, वहीं तो मेरा जगमगिया है। उसे मैंने वहाँ छिपाया है। लोगों ने पूछा, यह जगमगिया क्या होता है? उसने कहा, वही, जो रात को उस आले पर रखा था। जगमग-जगमग हो रहा था। सब बोले, अकल के दुश्मन। तो यह आग तुमने ही लगाई है। हम तो सोच रहे थे कि यह आग यहाँ कौन लगा गया होगा?

३९४) मेंढक और हाथी- एक हाथी तालाब के किनारे पानी पीने आया। मेंढ़क के कई बच्चे उसके पैर के नीचे कुचलकर मर गए। भाग्यवश एक नन्हा मेंढ़क बाल-बाल बच गया। फुदकता हुआ वह अपनी मां के पास पहुंचा और यह दु:खद हादसा सुनाया। फिर बोला, माँ, माँ। जानवर इतना बड़ा था कि तुम सोच भी नहीं सकती। कितना बड़ा था? मां ने अपना सीना फुलाते हुए पूछा, इतना? नहीं मां, नन्हें मेंढक ने इन्कार में सिर हिलाया, और भी बड़ा था। मां ने और गहरी सांस भरी। सीना और फुलाया, इतना? इससे भी बड़ा। नन्हा मेंढ़क आंखें पटपटाकर बोला। मां गुस्से से फनफना उठी। उसने ताव खाकर अधिक गहरी सांस भरी और उसका शरीर गुब्बारा बन गया। जिस तरह अधिक हवा भरने से गुब्बारा तनकर फूट जाता है, ठीक वैसे ही उसका शरीर फट्ट से गुब्बारे-सा फट गया।

कभी-कभी छोटे लोग बड़े बनने की कोशिश में अपना ही अहित कर बैठते हैं।

३९५) सुन्दर फूल - रोमी और कैरोलिन एक दिन अपने बगीचे में घूम रही थीं। घूमते-घूमते वे गुलाब के एक पौधे के सामने आकर ठहर गईं। रोमी ने कहा, सारे फूलों में मुझे गुलाब सबसे सुन्दर और प्रिय लगता है। सुनकर कैरोलिन ने कहा, उस क्यारी में जो मोगरे लगे हैं, वे सबसे सुन्दर और महकदार हैं। मुझे तो इनसे बढ़कर सुन्दर कोई फूल नहीं लगता। रोमी

ने तुनक कर कहा, इनसे अच्छे तो ये गेंदे हैं। पिछली सर्दियों में देखा नहीं था। कैसे खिले थे कि देखकर जी खुश हो गया था। उनकी माँ, जो पास ही बैठी उन दोनों की बातें ध्यान से सुन रही थी, बोली, हर फूल की अपनी-अपनी खासियत हैं। अत: कोई एक-दूसरे से कम नहीं है। गुलाब-शांति और सौम्यता का प्रतीक है, मोगरा-भोलेपन का और गेंदा-तेजस्विता व वीरता का। हर चीज में खुशबू है, यदि मनुष्य महसूस कर सके।

३९६) गधा, लोमड़ी और शेर - लोमड़ी और गधे ने मिलकर तय किया कि वे शिकार खेलने साथ-साथ जाएंगे। दोनों चल पड़े। कुछ दूर जाने पर लोमड़ी आगे निकल गई। तभी अचानक उसकी मुठभेड़ शेर से हो गई। चालाक लोमड़ी ताड़ गई कि अब जान की खैर नहीं। फौरन उसे गधे का खयाल आ गया। बोली, जंगल के राजा, अगर आप मुझे छोड़ दें तो मैं आपके भोजन के लिए एक गधा भेंट दे सकती हूं। आप मेरे साथ चलिए। शेर राजी हो गया और लोमड़ी के साथ चल दिया। थोड़ी दूर जाने पर एक पेड़ की छाँव में गधा बैठा नजर आया। शेर उस पर टूट पड़ा। पूरा गधा खाने पर भी उसकी भूख नहीं मिटी। उसने लोमड़ी की ओर देखा और पलक झपकते उसे भी धर दबोचा। जो लोग धोखेबाजी से सौदा करते हैं, वे खुद भी कभी उसका निशाना बन सकते हैं।

३९७) पहाड़ की पीड़ा - एक बार एक पहाड़ के पेट में दर्द होने लगा। पीड़ा से वह चीखने-बिलखने लगा। उसकी हिचकियाँ सुनकर लोग उसे दूर-दूर से देखने आए। किसी ने कहा- पहाड़ के पेट से किसी का जन्म होगा। दूसरे ने टिप्पणी की- पहाड़ की पीड़ा इतनी दर्द भरी है कि उसके पेट से एक समंदर जन्म ले सकता है। तीसरे ने मत व्यक्त किया- नहीं जी। मुझे तो लगता है कि आसार किसी राक्षस के जन्म लेने के हैं। सब अपनी-अपनी हाँक रहे थे, तभी चीखों-चिल्लाहटों के बीच पहाड़ ने एक चूहे को जन्म दिया। बड़ी बड़ी उम्मीदें देनेवाले कभी हमारी उम्मीदों पर पानी भी फेर देते हैं।

३९८) परोपकार का फल - एक वृद्ध बैठा हुआ कुछ वृक्षों के पौधे रोप रहा था, तभी राजा की सवारी गुजरी। राजा ने वृद्ध से पूछा, यह क्या कर रहे हो, बाबा? आम के पौधे लगा रहा हूँ। वृद्ध ने जवाब दिया। ये आम के पौधे कब बड़े होंगे और कब इनमें फल लगेंगे, यह बता सकते हों? राजा ने पूछा। इसमें कई बरस लग जाएंगे। माफ करना, बाबा। क्या तुम इतने बरसों तक इन पेड़ों के फल चखने के लिए जिन्दा रहोगे? वृद्ध हँसा और बोला, मैं न चख सका तो क्या, कोई और तो चख सकता है। उस वृद्ध की बात सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ। खुश होकर तुरंत उसने उस वृद्ध को पचास स्वर्ण मुद्राओं का पुरस्कार दिया। वृद्ध ने हँसकर कहा, देखो, राजन्। इनके फलों के लिए मुझे इतने वर्षों तक इंतजार भी नहीं करना पड़ा। इन स्वर्ण मुद्राओं के रूप में मीठे फल अभी ही प्राप्त हो गए।

३९९) दादा का पोता - श्याम अकसर अपने दादाजी से तमाम सवाल पूछा करता था। एक दिन उसने पूछा, दादाजी, जब पृथ्वी गोल-गोल घूमती है तो हम औंधे मुंह नीचे क्यों नहीं गिर जाते? दादा ने जवाब दिया, बेटे। यह गुरुत्वाकर्षण का नियम है। श्याम कुछ देर सोचता रहा। फिर अपनी बाल सुलभ उत्सुकता से बोला, दादाजी, यह तो ठीक है, किन्तु इस नियम के बनाने से पहले तो जरूर लोग नीचे गिरते रहे होंगे न। पूछने से ज्ञान बढ़ता है।

४००) हजार हाथ वाला - विवियन एक शहरी लड़का था। एक दिन वह पास के जंगल में रसभरियाँ चुनने गया। वह

रसभरियाँ चुन ही रहा था कि सहसा आसमान में बिजली चमकने लगी। बादलों की गड़गड़ाहट के साथ तेज हवा ने आँधी का रूप धारण कर लिया। विवियन डर से काँपने लगा। बिजली से बचने के लिए उसने एक ऊँचे पेड़ की डाल पर शरण ली। उस बेचारे को यह पता ही नहीं था कि बिजली अकसर ऊँचे पेड़ों पर पहले गिरती है। अचानक उसे एक आवाज सुनाई पड़ी, जो उसे उसका नाम लेकर बुला रही थी, विवियन। इधर आ जाओ। वह उस आवाज की ओर बढ़ने के लिए पेड़ से कूदकर भागा। पर जैसे ही वह कुछ कदम आगे बढ़ा, पूरी गर्जना के साथ उसी पेड़ पर बिजली गिरी। विवियन मरने से बाल-बाल बच गया। फौरन उसके होंठ प्रार्थना में बुदबुदा उठे, ईश्वर तुमने ही शायद मेरी प्राणरक्षा के लिए मुझे मेरे नाम से पुकारा था। मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूं। पर तभी उसे वही पुकार दुबारा सुनाई दी- विवियन, विवियन। इधर चले आओ। मैं यहाँ हूं। विवियन तेजी से दौड़ता हुआ पुकारनेवाली उस औरत के पास पहुँचा और बोला, लो, मैं आ गया। पर यह तो बताओ कि तुम्हें मुझसे क्या काम है? यह सुन औरत बोली, मैं तुम्हें नहीं बुला रही। मैं तो अपने छोटे बेटे विवियन को पुकार रही हूं, जिसे मैंने कुछ देर पहले पास के ही झरने पर बकरियों को पानी पिलाने भेजा था। जरूर वह यहीं कहीं डर के मारे छिपा बैठा होगा। विवियन ने उस औरत को अपना सारा किस्सा बताया तो उस औरत के हाथ ईश्वर को धन्यवाद देने के लिए जुड़ गए। वह विवियन से बोली, बेटा। सब उसी की माया है।

४०१) कछुआ और चील - छोटे से तालाब में रहते हुए कछुआ अपनी स्थिति से बड़ा असंतुष्ट था। विशेषकर जब वह अपने साथी पक्षियों को खुले आसमान में पंख पसारे उड़ता देखता उसे लगा, वह भी उड़ना सीख सकता है। उसने चील से प्रार्थना की कि वह उसे अपने साथ ऊँचे आसमान में ले चले, ताकि वह भी उड़ना सीख सके। चील ने उसे समझाया, बेवकूफ मत बनो। यह तुम्हारे बस का नहीं है। पर कछुए ने एक न सुनी। वह अपनी बात पर अड़ा रहा। आखिर चील ने उसकी प्रार्थना सुन ली और अपने साथ उसे आसमान में ले उड़ी। काफी ऊँचे पहुँच जाने पर चील ने कछुए से पूछा, इतने ऊँचे ठीक है? कछुआ इतनी ऊँचाई से भयभीत तो हो उठा था, पर झूठा रोब जमाने के चक्कर में बोला, मैं और ऊपर जाना चाहता हूं। तभी उसके हाथों पर चील के पंजों की पकड़ ढीली पड़ गई। वह धड़ाम से धरती पर आ गिरा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। <u>बुद्धिमान वह है जो व्यर्थ के काम न करे</u>।

४०२) हवा और सूरज - एक बार हवा और सूरज में अपनी-अपनी शक्ति को लेकर बहस छिड़ गई। दोनों ही अपने बड़प्पन की जिद पर अड़े रहे, तभी उनकी दृष्टि घास पर चलते हुए एक यात्री पर गई। दोनों ने अपनी ताकत की आजमाइश उस पर करने का फैसला किया। पहली बारी हवा की थी। वह तूफान बन गई। अपने भीतर ठंडी की मात्रा वह बढ़ती गई। यात्री ने अपने को कोट से कस लिया। हार-थककर हवा को अपनी कोशिश छोड़ देनी पड़ी। अब सूरज की बारी थी। वह धीरे-धीरे गरम होने लगा। गरमी की तेजी से धरती तपने लगी। यात्री ने पहले अपना कोट उतार फेंका, फिर धीरे-धीरे सारे कपड़े। सूरज की यह विजय थी।

४०३) दूसरे का बुरा- दो मित्र थे। उनमें एक कुम्हार था। वह मिट्टी के तैयार बरतन गाँव-गाँव बेचने जाता। दूसरा था माली। वह भी बाग में उगी सब्जी टोकरी में भरकर गाँव-गाँव बेचता फिरता। दोनों ने सोचा- क्यों न हम एक ऊँट खरीद लें। ऊँट पर एक ओर बरतन तथा दूसरी ओर सब्जी लादकर बाहर जाया करेंगे। सोचने भर की देर थी कि दोनों ने मिलकर

एक ऊँट खरीद लिया। अब वे ऊँट पर अपना-अपना सामान लादकर बाहर जाने लगे। देखते-देखते दोनों की आमदनी बढ़ गई। एक दिन जब वे ऊँट पर अपना अपना सामान लादकर मंडी में बेचने जा रहे थे कि हरी-हरी ताजा सब्जी को देखकर ऊँट का मन ललचा आया। उसने अपनी लंबी गरदन तिरछी की और सब्जी से मुंह भर लिया। कुम्हार ऊँट की हरकत देख रहा था। पर उसने सोचा, कौन सा मेरा नुकसान हो रहा है- और आगे जाकर घास-दाना तो खिलाना ही पड़ेगा। दाम और खर्च होंगे, सो चरने दो। ऊँट मजे से गरदन घुमा-घुमाकर सब्जी चरता रहा। सब्जी खा लेने से एक तरफ का बोझा कम हो गया, जिससे दूसरी तरफ रखे बरतन धीरे-धीरे नीचे खिसकने लगे और कुछ देर बाद जमीन पर गिरकर चूर-चूर हो गए। अब तो कुम्हार मन-ही-मन बहुत पछताया। उसने सोचा, कहाँ तो मैं माली का नुकसान चाहता था, मेरा तो उससे अधिक नुकसान हो गया। अब मैं कभी ऐसी गलती नहीं करूंगा। जो दूसरों के लिए गड्ढा खोदता है, स्वयं ही उसमें गिरता है।

४०४) यह सच्ची घटना सिखाती है कि दर्द नहीं सबको खुशियां बांटो - एक बार तैलंगस्वामी को तंग करने के इरादे से एक व्यक्ति ने दूध के बदले चूना घोलकर एक पात्र में रख दिया। स्वामीजी ने पात्र की ओर देखा और घोल को चुपचाप पी लिया। वह व्यक्ति सोचने लगा कि शीघ्र ही चूना असर करेगा।

मगर यह देख वह हैरान हो गया कि उन पर तो कोई असर ही नहीं हुआ, बल्कि उसका ही जी घबराने लगा और वह दर्द से तड़पने लगा। वह समझ गया कि यह स्वामीजी को तंग करने का ही परिणाम है। वह उनके चरणों में गिरकर माफी मांगने लगा।

स्वामीजी ने पास ही रखी स्लेट पर चूने की खड़िया से लिखा, चूने का पानी मैंने पिया और इसका परिणाम तुझे भोगना पड़ा। इसका एक ही कारण है वह यह कि हम दोनों के शरीर में आत्मा का वास है। यदि दूसरे की आत्मा को कष्ट दिया जाए तो वह कष्ट स्वयं को भी भोगना पड़ता है। इसलिए दूसरों को कष्ट देने की कोशिश भी नहीं करनी चाहिए।

इस तरह स्वामीजी ने उस व्यक्ति के सर पर हाथ रखा और उसका दर्द चला गया। उस व्यक्ति ने स्वामीजी से माफी मांगी और कहा कि अब वह किस को भी तंग नहीं करेगा। हमें बेवजह किसी भी व्यक्ति को तंग नहीं करना चाहिए, क्योंकि जितना आप किसी को परेशान करते हैं उससे दुगना दर्द प्रकृति आपको देती है। इसलिए जिंदगी में खुशियां बांटनी चाहिए दर्द नहीं।

४०५) बहुत पुरानी बात है कि शाहजहां की बेटी जहांआरा अगर उस दिन रसोई में नहीं जाती, तो शायद हिन्दुस्तान की तस्वीर कुछ अलग ही होती। एक बादशाह की बेटी को वैसे तो रसोई में जाने की कभी जरूरत ही नहीं पड़ती। लेकिन जैसा कि जहांआरा के नसीब में लिखा था, वो उस दिन रसोई में चली गई और अचानक गरम पानी उसके शरीर पर गिर पड़ा। फूल सी नाजुक जहांआरा का शरीर बुरी तरह झुलस गया। बादशाह ने बड़े से बड़े वैद्य को बुलाकर हर संभव इलाज कराया, लेकिन बेटी के शरीर पर पड़ा जले का निशान जा ही नहीं रहा था। बादशाह शाहजहां ने कई जगहों पर पता लगाया कि कहीं तो कोई हो, जो बेटी जहांआरा की जिंदगी पहले की तरह रोशन कर दे। बड़ी कोशिश के बाद पता चला कि सूरत के पास कोई अंग्रेज डॉक्टर आया है, जो जले शरीर का इलाज कर सकता है। तुरन्त बादशाह ने सारे घोड़े सूरत की दिशा में दौड़ा दिये। डॉक्टर हाजिर हो गया और उसने इलाज शुरू कर दिया। जहांआरा पूरी तरह ठीक हो गई। बादशाह खुश हो

गया। उसने डॉक्टर को कहा, जो चाहे मांग लो। डॉक्टर सोच में पड़ गया। बहुत सोच-विचार के बाद डॉक्टर ने बादशाह को कहा, मुझे कुछ नहीं चाहिये, फिर भी आप देना ही चाहते हैं, तो जो अंग्रेज भारत में व्यापार का इरादा लेकर आये हैं, उन्हें सूरत में फ्री ट्रेड यानी मुक्त व्यापार की छूट दिला दें। बादशाह के लिये तो यह बहुत छोटी सी बात थी। उसने कहा, समझो तुम जो चाहते हो, वो हो गया। आज से अंग्रेजों के लिये सूरत में फ्री-ट्रेड की पूरी इजाजत है और उसी दिन से भारत का भविष्य अंग्रेजों का गुलाम हो गया। हमने इतिहास में शाहजहां को पढ़ा है जहांआरा को पढ़ा है, उस अंग्रेज को भी पढ़ा है जिसने मांगा तो कुछ नहीं, लेकिन दूसरे मायने में देश के करोड़ों लोगों की किस्मत मांग ली। कहते हैं, बिना परिणाम सोचे-समझे दिया गया वरदान भस्मासुर का जनक होता है। शाहजहां ने अंग्रेज डॉक्टर को वरदान देने में उस वक्त एक मिनट भी नहीं लगाया होगा, लेकिन उसका परिणाम ये हुआ कि हम लगभग २०० साल के लिये अंग्रेजों के गुलाम बन गये।

४०६) शांति और साधना- एक सेठ के पास अपार धन-संपत्ति थी, किंतु उसके मन को शांति न थी। एक दिन उसे एक साधु के बारे में पता चला जो लोगों को ऐसी सिद्धि देता है, जिससे मनचाही वस्तु प्राप्त हो जाती है। सेठ उस साधु के पास जाकर बोला, महाराज, मेरे पास बहुत पैसा है, लेकिन मन की शांति नहीं है। साधु ने कहा, जैसा मैं करूं उसे चुपचाप देखते रहना। इससे तुम्हें शांति की युक्ति मिल जाएगी। अगने दिन साधु ने सेठ को कड़ी धूप में बिठाए रखा और खुद कुटिया में चले गए। सेठ गर्मी से बेहाल हो गया, मगर चुप रहा। दूसरे दिन साधु ने उसे कुछ भी खाने पीने को नहीं दिया और स्वयं तरह-तरह के पकवान खाता रहा, सेठ इस दिन भी चुप रहा। तीसरे दिन सेठ गुस्से में वहां से जाने लगा तो साधु बोला, क्यों, क्या हुआ? इस बात पर सेठ बोला, महाराज, मैं यहां बड़ी आशा लेकर आया था, किंतु मुझे यहां निराशा ही मिली। इस बात के उत्तर पर साधु ने कहा, मैंने तो तुम्हें शांति की युक्ति बता दी, पहले दिन जब तुम्हें धूप में बैठने के लिए कहा और मैं स्वयं कुटिया में बैठा तो, तुम्हें बताया कि मेरी छाया तुम्हारे काम नहीं आएगी। यह तुम्हें समझ नहीं आने पर तुम्हें भूखा रखा और खुद भरपेट खाया। उससे तुम्हें समझाया कि मेरी साधना से तुम्हें सिद्धि नहीं मिलेगी। उसी तरह शांति भी तुम्हें अपनी मेहनत और पुरुषार्थ से ही मिलेगी। मैं तुम्हारे मन को शांत नहीं कर सकता। उसके लिए तुम्हें खुद ही मन की शांति प्रदान करनेवाले काम करने होंगे। यह सुनकर सेठ की आंखें खुल गईं और वह साधु से आशीर्वाद लेकर अपने घर चला गया।

४०७) ज्ञान का पहला पाठ - एक युवा ब्रह्मचारी देश-विदेश का भ्रमण कर और वहां के ग्रंथों का अध्ययन कर अपने देश लौटा। वहां आकर वह सबके सामने शेखी बघारने लगा कि उसके समान ज्ञानी और कोई नहीं। उसके पास जो भी व्यक्ति जाता, वह उससे प्रश्न करता कि क्या उसने उससे बढ़कर कोई विद्वान देखा है? यह बात गौतम बुद्ध के कानों तक भी जा पहुंची। फिर एक दिन वह ब्राह्मण वेश में उसके पास गए। ब्रह्मचारी ने उनसे पूछा- कौन हो तुम ब्राह्मण? बुद्ध बोले, अपनी देह और मन पर जिसका पूर्ण अधिकार है मैं ऐसा एक तुच्छ मनुष्य हूं। इस पर ब्रह्मचारी बोला, भलीभांति स्पष्ट करो मुझे कुछ समझ नहीं आया। बुद्ध ने कहा- जिस तरह कुम्हार घड़े बनाता है, नाविक नौका चलाता है, धनुर्धार बाण चलाता है, गायक गीत गाता है, वादक वाद्य बजाता है और विद्वान वाद-विवाद में भाग लेता है, उसी तरह ज्ञानी पुरुष स्वयं

पर ही शासन करता है। ब्रह्मचारी ने पुन: प्रश्न किया, ज्ञानी पुरुष भला स्वयं पर शासन कैसे करता है? बुद्ध ने समझाया- लोगों द्वारा स्तुति-सुमनों की वर्षा किए जाने पर अथवा निंदा के अंगार बरसाने पर भी ज्ञानी पुरुष का मन शांत ही रहता है। उसका मन सदाचार, दया और विश्व-प्रेम पर ही केंद्रित रहता है इसलिए प्रशंसा या निंदा का उस पर कोई भी असर नहीं पड़ता। इसलिए उसके चित्त में शांति की धारा बहती रहती है। यह सुनकर ब्रह्मचारी को आत्मग्लानि हुई और वह बुद्ध के कदमों पर गिरकर बोला, स्वामी। अब तक मैं स्वयं को ही ज्ञानी समझता था पर आज मैंने जाना कि मुझे आपसे बहुत कुछ सीखना है। बुद्ध उसे अपने साथ ले गए। वह उनका शिष्य बन गया।

४०८) मन की अतृप्ति गलत रास्ते पर ढकेलती है - एक धनुर्धर था, बहुत कुशल। राजा ने उसे मान्यता दी। एक दिन राजा ने कहा, तुम मेरे राज्य के सबसे बड़े धनुर्धर हो। अब तुम्हें यह घोषणा कर देनी चाहिए कि मैं इस राज्य का सबसे बड़ा धनुर्धर हूं। उसने कहा, बहुत अच्छी बात है आपकी कृपा हो तो। राजा की और उसकी बात हो रही थी। जो प्रहरी पास में खड़ा था, वह हंस पड़ा। धनुर्धर ने देख लिया। उसने कहा, भाई। तू क्यों हंसा? क्या बताऊं, धनुष विद्या का तुमने क, ख, तो सीखा नहीं और सारे राज्य के सबसे बड़े धनुर्धारी बन गये, यह कैसे?

उसके अहं का सारा पारा नीचे उतर गया। प्रहरी ने पूछा, क्या मैं धनुर्धर नहीं हूं? कैसे कहा तुमने? उसने कहा, दुनिया बहुत बड़ी है। आपको पता ही न हो तो क्या?

मुझसे बड़ा कोई धनुर्धर है? हां, निश्चित है। कौन?

अमुक गांव में एक लकड़हारा है। वह सबसे बड़ा धनुर्धर है। वह गया और लकड़हारे से बोला, मैं आपकी धनुर्विद्या देखना चाहता हूं। उसने अपनी विद्या बताई। वह देखकर अवाक् रह गया। मन में सोचा, मुझे इस राज्य का सबसे बड़ा धनुर्धर बनना है और जब तक यह व्यक्ति रहेगा, तब तक तो बन नहीं सकता। इसे समाप्त कर देना चाहिए। वह उसे मारने की योजना बनाने लगा।

यह कोई बात नहीं, आश्चर्य की बात नहीं। जिसके मन में अतृप्ति हो जाती है, वह अपने सामने व अपने रास्ते में आनेवाले हर रोड़े को मिटाने की बात सोचता है।

४०९) अहम् न पालें और प्रमाणिकता से काम करें- एक बार देशभक्त वीर शिवाजी सज्जनगढ़ का किला बनवा रहे थे। हजारों मजदूर वहां काम करते थे। एक दिन शिवाजी किले को देखने गए। यंत्र की तरह उनको काम करते देखकर शिवाजी के मन में अहं आ गया। वे सोचने लगे- इन सबकी आजीविका मेरे द्वारा चलती है। इतने में उनके गुरु समर्थ रामदास स्वामी वहां पहुंच गए। विशिष्ट ज्ञान के द्वारा उन्होंने शिवाजी के मन की बात जान ली और निश्चय किया कि इसका प्रतिबोध देना जरूरी हो गया है। <u>वास्तव में गुरु वे ही होते हैं, जो समय पर अनुयायियों को गिरने से बचा लें</u>।

स्वामी रामदास ने वहां काम करनेवालों को आदेश दिया कि एक बड़ी चट्टान को तोड़ो। उनकी आज्ञा से चट्टान तोड़ी गई। भीतर पानी और मेढक निकले। रामदास ने पूछा- शिवाजी। इनका लालन-पालन कौन करता है।

शिवाजी- इनका पोषण प्रकृति से होता है, करता कोई नहीं।

रामदासजी- और इन मजदूरों का जीवन किससे चलता है?

शिवाजी ने गुरु के पैर पकड़ लिए और बोले- गुरुदेव। आपने मुझे बचा लिया। आपने मेरे अभिमान को चूर-चूर कर सही रास्ता दिखा दिया। ये सब अपने पुरुषार्थ से जीते हैं। मेरा अहं झूठा था, मैं किसका पालन कर सकता हूं? कहने का अर्थ यह है कि मनुष्य प्रामाणिकता और चरित्र-निष्ठा से काम करे, पर मिथ्या अभिमान न करे। कुछ लोग सोचते हैं- हम ही सब कुछ करनेवाले हैं। हम जमीन-आसमान एक कर देंगे। यही अहं भाव व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देता।

४१०) भगवान ने नहीं कहा कि तपस्या से ही सिद्धि मिलती है- राजा श्रेणिक के बाग में बारहमासी आम का पेड़ था। उस बगीचे पर कड़ा पहरा रहता था। हरिजन की पत्नी को आम खाने की इच्छा हुई। बिना ऋतु आम कहां से आएं? आखिर हरिजन ने आकर्षणी विद्या के द्वारा आम को पा लिया। राजा को जब यह पता चला तो उन्हें आश्चर्य हुआ। संगीन पहरे के बावजूद चोर कैसे आ गया? मंत्री अभय कुमार की प्रतिभा से चोर का पता लग गया। राजा ने आदेश दे दिया कि इसे मृत्युदंड दे दो। मंत्री बोला- राजन्। जल्दी न करें। इसने जिस विद्या से आम चुराया है, उस विद्या को तो सीख लेना चाहिए। राजा को यह बात पसंद आ गई। राजा ने कहा- यदि जीवित रहना चाहते हो तो यह विद्या मुझे सिखा दो। चोर राजा को आकर्षणी विद्या सीखाने के लिए तैयार हो गया।

बहुत प्रयत्न के बाद भी राजा उस विद्या के मंत्र को सिद्ध नहीं कर सके। श्रेणिक झुंझला गए। उन्होंने मंत्री से पूछा- मंत्र सिद्ध नहीं हो रहा है। उसने सच्चा मंत्र बताया नहीं या कोई दूसरा रहस्य है? मंत्री बोला- राजन्। हम अविश्वास क्यों करें? मुझे तो लगता है कि मंत्र सही है, पर ग्रहण करने का तरीका सही नहीं। यह व्यक्ति चोर है, पर मंत्र सिखाते समय तो आपका गुरु है। यदि आप इससे विद्या लेना चाहते हैं तो अपने आसन पर इसे बिठाएं और आप नीचे बैठें। राजा ने वैसा करना मंजूर कर लिया। चोर को गुरु का सम्मान देते ही विद्या सिद्ध हो गई। इस घटना का फलित यह निकलता है कि यदि किसी को किसी से कुछ सीखना है तो उसका बनकर रहना होगा। दूसरी बात- भगवान ने कभी नहीं कहा कि तपस्या से ही सिद्धि मिलती है।

४११) एक दिन में आदमी के कितने रूप बन जाते हैं पहचाने नहीं जा सकते - चार चोर एक रात चोरी करने निकले। राजा भोज भेष बदलकर नगर की परिक्रमा कर रहे थे। राजपथ पर चोर और राजा की आमने-सामने भेंट हो गई चोरों ने पूछा- तुम कौन हो? राजा ने कहा- मैं चोर हूं। चोर बोले- अच्छा हुआ। हम चार से पांच हो गये। आज पांचों मिलकर चोरी करेंगे। चारों चोरों के साथ भोज भी चलने लगे। राजा ने पूछा- तुम लोग चोरी करते हो, पर तुम्हारी विशेषता क्या है? चोरों का सरदार बोला- हमें पता चल जाता है- धन कहां है, किसके पास है और जैसे ही हाथ घुमाते हैं, ताले टूट जाते हैं। ये तीन हमारी विशेषताएं हैं। चोर ने राजा से कहा- तुम अपनी विशेषता बतलाओ? किसी को फांसी लग रही हो और मैं थोड़ा इशारा कर दूं, तो फांसी की सजा टल जाती है। सरदार बोला, यह बहुत अच्छी बात है। कम से कम मौत के डर से तो बचे। चोरों ने चोरी के लिए राजा के खजाने को चुना। चारों अंदर घुस गये, राजा बाहर खड़ा रहा। वे रत्न-पेटिका फेंकने लगे। राजा ने अवसर देखकर दरवाजा बंद कर दिया। चारों चोर कैद हो गये। प्रात: काल चोरों को गिरफ्तार कर लिया गया। राजा ने फांसी की सजा सुना दी। इतने में एक चोर ने राजा को पहचान लिया, सब बोले- महाशय। हमने तो अपनी कला दिखा दी। आप भी अपनी कला दिखाओ। राजा ने तत्काल फांसी न देने का निर्देश दे दिया। फांसी टल

गई। कहने का अर्थ यह है कि मनुष्य के कितने पर्याय होते हैं। कभी चोर का पर्याय, कभी राजा का पर्याय। एक दिन में आदमी के कितने रूप बन जाते हैं, पहचाने नहीं जा सकते।

४१२) आम आदमी अपनी ममत्व बुद्धि का त्याग नहीं कर पाता है - एक परिवार के मुखिया की मृत्यु हो गई। शोक संतप्त लोग सन्यासी के पास संबल पाने के लिए आये। सन्यासी ने संबोधन किया- देखो। इस संसार का यहां नियम है। जो आता है, वह चला जाता है। तुम इस नियम को जानो। रोना-धोना अच्छा नहीं है। शोक के इन क्षणों में प्रभु का स्मरण करो। लोगों को प्रवचन अच्छा लगा। उन्हें सांत्वना मिली, मन हल्का हो गया। संयोग ऐसा हुआ- कुछ दिनों बाद संन्यासी की बकरी मर गई। संन्यासी का मन व्यथित हो गया। वह रोने लगा। लोगों ने देखा- संन्यासी रो रहे हैं। पूछा- महाराज। क्या हो गया? क्यों रो रहे हैं?

भाई, मेरी बकरी मर गई। बकरी ही तो मरी है।

हां महाराज। इसमें रोने की क्या बात है? भाई। जब इच्छा होती, बकरी का दूध दुह लेता। अब बकरी का दूध कहां से मिलेगा? महाराज। इसके लिए इतना शोक क्यों? हमारे परिवार का मुखिया मरा, तब आपने कहा था- जो आता है, उसे जाना ही होता है। उसके लिए रोना-धोना क्यों? और आज आप एक बकरी के लिए रोने लग गये? भाई। तुम समझे नहीं, वह मेरा नहीं था, किंतु बकरी मेरी थी।

समस्या यह है- यह तुम्हारा और मेरा का भेद समाप्त नहीं होता। शरीर मेरा है, मकान मेरा है, यह अवधारणा बनी रहती है। व्यक्ति धार्मिक बन जाता है, पर इस मूर्च्छा को तोड़ नहीं पाता। व्यक्ति धर्म की इस बात को सुनता है- पदार्थ मेरा नहीं है, शरीर मेरा नहीं है, पर वह ममत्व बुद्धि को त्याग नहीं पाता। व्यक्ति इस सच्चाई को भी सुनता है- सब आत्माएं समान हैं।

४१३) पशु-पक्षियों को प्रेम का अर्थ समझाया बैरागी ने- एक छोटी व शांत पहाड़ी पर एक बैरागी रहते थे। उनकी आत्मा शुद्ध और हृदय निर्मल था। उस हरे-भरे एकांत में वे अकेले प्रभुभक्ति में रमे रहते। वे न कहीं आते-जाते और न ही उनकी विशेष आवश्यकताएं थीं। अपनी सीमित जरूरतों को वे वहीं पूर्ण कर लेते थे। वन के पशु और आकाश के पक्षी सभी उनके पास आते और वे उनसे खूब बातें करते।

जो कुछ ज्ञान उनके पास था, वे उसमें से चुन-चुनकर सारपूर्ण बातें उन्हें बताते। पशु-पक्षियों को भी उनकी बातों में खूब रस आता। वे उन्हें घेरकर बैठ जाते और रात तक हिलने का नाम नहीं लेते, तब वे स्वयं ही उन्हें जाने की आज्ञा देकर अपने मंगल आशीषों के साथ वायु और जंगल के भरोसे सौंप देते। एक दिन जब वे प्रेम के संबंध में उपदेश दे रहे थे तो एक तेंदुए ने पूछा- आप हमसे प्रेम की चर्चा कर रहे हैं तो यह बताइए कि आपकी प्रेयसी कहां है?

बैरागी ने उत्तर दिया- मेरी कोई प्रेयसी नहीं है। यह सुनकर सभी पशु-पक्षी आश्चर्यचकित होकर बोले- भला वह हमें प्रेम के बारे में क्या सिखा सकता है, जो स्वयं इस विषय में कोरा है। तब बैरागी मुस्कराकर बोले- प्रेम को प्रेमी-प्रेयसी के संकुचित दायरे में मत बांधो। प्रेम उदात्त भाव है और व्यापक अर्थों को अपनी विशाल परिधि में समेटे है। उसे सृष्टि के कण-कण में महसूस करो, तभी तुम प्रेम के दिव्य आनंद को प्राप्त करोगे। वस्तुत: प्रेम की विशालता और गहनता अनिर्वचनीय है, जिसे शब्द बांध नहीं सकते और रिश्तों की संकुचितता से वह परे है। वास्तव में प्रेम वृहद अनुभूति का

विषय है और अलौकिक आनंद का माध्यम है।

४१४) सत्य की राह- एक ढोंगी बाबा लोगों को चमत्कार दिखाने का लालच देकर ठग रहा था। वह सबसे कहता था- पूर्णिमा की रात को मैं अपने चमत्कार से सोने के गहनों की बारिश करूंगा। जिसको जितना सोना चाहिए, ले लेना। लेकिन पूर्णिमा की रात आने में अभी एक सप्ताह बाकी है, तब तक हर व्यक्ति रोज मुझे कुछ न कुछ धन देता रहेगा। सोने की उम्मीद में लोग चढ़ावा चढ़ाने लगे। आखिरकार पूर्णिमा की रात भी आ गई। सभी उस रात सोने की बारिश का इंतजार कर रहे, पर बारिश नहीं हुई। सुबह होते ही लोग बाबा के पास जा पहुंचे और बोले- बाबा सोने की बारिश तो हुई नहीं। बाबा ने कहा- लगता है, मेरी साधना में कुछ अड़चन आ गई। अगली पूर्णिमा के दिन जरूर बारिश करा दूंगा। अब लोगों को बाबा पर शक होने लगा। उन्होंने राज्य की महारानी के पास जाकर बाबा की सारी बातें बता दीं। सारा किस्सा सुनने के बाद महारानी ने बाबा से मिलना तय किया। लेकिन बाबा को इसकी भनक लग गई। महारानी के पहुंचते ही उसने अपने चेहरे पर मोर पंख रख लिए। यह देखकर महारानी ने बाबा के शिष्य से पूछा, बाबा मुख पर पंख क्यों रखे हुए हैं?

शिष्य ने कहा, बाबा स्त्री-मुख के दर्शन नहीं करते। उत्तर सुनते ही महारानी ने उसे कहा- इतने दुर्बल व्यक्ति को हम चमत्कारी बाबा कैसे मानें। आत्मा न तो स्त्री है, न पुरुष। शरीर तो केवल मिट्टी का पुतला है। बाबा महारानी की बातें सुन रहा था। उसने चेहरे से मोर पंख हटा लिए और उनके पैरों पर गिरकर बोला- आपकी बातों ने मुझे सत्य की राह दिखा दी। अब आज से मैं लोगों को ठगना छोड़ दूंगा।

४१५) पाप की जड़- राजा सत्यप्रिय एक धर्मपरायण शासक थे। एक दिन वह सोचने लगे कि आखिर मनुष्य पाप करने को विवश क्यों होता है? यह जिज्ञासा उन्होंने अपने गुरु के सामने रखी। गुरु मुस्कराते हुए बोले, राजन्, इसका जवाब विद्यामती ही दे सकती है। बस, राजा विद्यामती के पास जा पहुंचे। विद्यामती अति रूपवान और गुणवान थी। राजा ने उसे अपनी जिज्ञासा बताई तो उसने कहा, इसका जवाब पाने के लिए आपको कुछ दिन मेरे यहां अतिथि बनकर रहना होगा। राजा बोले, मगर, मैं यहां कैसे ठहर सकता हूं। मेरी प्रजा दिन-रात मुझे अपनी समस्याएं बताती रहती है। राजा की बातचीत बीच में ही काटकर विद्यामती बोली, पर प्रश्न का उत्तर तो आपको तभी मिल पाएगा। यह सुनकर राजा वहीं रुक गए और अपने राज्य में सूचना भिजवा दी कि वह एक आवश्यक कार्य से बाहर है। विद्यामती राजा की दिन-रात सेवा करती, उन्हें स्वादिष्ट भोजन खिलाती और उनसे ज्ञान-विज्ञान व वेदों आदि के बारे में बातें करती। राजा विद्यामती पर मोहित हो गए और एक दिन उन्होंने प्रणय निवेदन कर डाला। इस पर विद्यामती बोली, बस महाराज, आज आपको जवाब मिल गया। अब आप जा सकते हैं। राजा ने हैरानी से कहा यह मेरा उत्तर नहीं। विद्यामती बोली, पाप की जड़ लोभ है, जिसकी चपेट में आज आप भी आ गए। कहां तो आप यहां रुकने तक को राजी नहीं थे और कहां आज मुझे अपनी रानी बनाने को भी तैयार हैं। लोभ ही मनुष्य को गलत मार्ग की तरफ खींच ले जाता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर देता है। जवाब सुनकर राजा लज्जित हो गए और उसे प्रणाम कर राजमहल लौट गए।

४१६) भलाई का पुरस्कार- दक्षिण भारत के सुदूर छोर की ओर पंडितों का एक छोटा सा काफिला बढ़ता जा रहा था। वे भगवान रामेश्वरम् का गंगा के पावन जल से अभिषेक कर जन्म-जन्मान्तरों के पापों से मुक्ति पाने के लिए जा रहे थे।

गरमी के दिन थे। सूरज आग बरसा रहा था। तालाब और बावड़ियाँ सूख गई थीं। उनमें सबसे छोटा व्यक्ति एकनाथ सबसे अलग सा प्रतीत हो रहा था। उसकी आँखों में करुणा की छाया तैर रही थी। रास्ते में एक गधा प्यास से छटपटा रहा था। उसे देखकर लगता था, एक-दो क्षण में उसके प्राण-पखेरु उड़ने ही वाले हैं। गधे के निकट से गुजरते हुए एक-एक कर सारे पंडित आगे बढ़ गए। एकनाथ ठिठक गया। रुका और कलश उतारकर गधे को पानी पिलाने लगा। कलश खाली हो गया। गधा फिर भी प्यास से हाँफ रहा था। अपने दूसरे कलश का पानी भी उसने गधे को पिला दिया। उसके इस कर्म के कारण उसके पंडित साथियों ने उसे तिरस्कार एवं घृणा से देखा और सोचा कि यह कितना मूर्ख है। आखिर वह दिन आया जब सबको जल चढ़ाना था। प्रधान पुजारी ने कहा, एकनाथ का जल भगवान रामेश्वरम् ने रास्ते में ही ग्रहण किया।

४१७) सबसे बड़ा मनहूस- एक दिन अकबर बादशाह ने सवेरे-सवेरे एक आदमी का मुंह देखा और सुबह से ही वे राज्य के कारोबार में ऐसे व्यस्त हुए कि शाम तक उन्हें खाना तक नसीब नहीं हुआ। ऐसा उनके साथ पहली बार हुआ था। कारण सोचने लगे कि तभी उन्हें उसे आदमी का खयाल आया, उसकी सूरत ही मनहूस है। उसे फाँसी पर चढ़ा देना चाहिए। तुरंत उन्होंने उस आदमी की गिरफ्तारी का हुक्म दिया। फाँसी का फरमान सुन आदमी की हालत खस्ता हो गई। वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगा। इस बात का पता जब बीरबल को चला तो उन्होंने उस आदमी को बचने की एक युक्ति सुझाई। आदमी खुश हो गया। फाँसी के दिन अकबर बादशाह स्वयं हाजिर हुए। उस आदमी ने उन्हें सामने पाया तो हाथ जोड़कर बोला, जहाँपनाह, सवेरे-सवेरे आपने मेरी सूरत देखी तो आपको सिर्फ खाना ही नसीब न हुआ, पर मेरी हालत पर गौर कीजिए। मैंने आपकी सूरत देखी और हुजूर, माफ करें मुझे सजाए मौत नसीब हो रही है। अब हुजूर ही फैसला करें कि किसकी सूरत अधिक मनहूस है। बादशाह सलामत भाँप गए। यह चाल सिवाय बीरबल के किसकी हो सकती है। उन्होंने बाइज्जत उस आदमी को रिहा कर दिया।

४१८) बूट पॉलिश करनेवाला बच्चा बना अमेरिका का राष्ट्रपति - सड़क के किनारे किस गरीब बच्चे को बूट पॉलिश करते देख आपके मन में भाव आता है। हो सकता है आपके मन में उसके प्रति सहानुभूति या दया का भाव पैदा हो जाए और आप उसे कुछ पैसे देकर आगे बढ़ जाओ। बड़े लोग भी ऐसे बच्चों से पॉलिश कराकर उन्हें मेहनताना देकर आगे बढ़ जाते हैं। कुल मिलाकर ऐसे बच्चों के प्रति गंभीरता से सोचने या उनके भविष्य के प्रति चिंता कम ही लोगों की होती है। बूट पॉलिश करके अपने व अपने परिवार का पेट पालनेवाला कोई बच्चा कभी किसी देश का राष्ट्रपति भी बन सकता है, वह भी अमेरिका जैसी महाशक्ति का। अमेरिका के राष्ट्रपति लिंडन जॉनसन, जिनका बचपन घोर अभावों के बीच गुजरा पर वे अपनी मेहनत और कार्य कुशलता के बल पर अमेरिका के सर्वोच्च पद तक जा पहुंचे।

सात-आठ वर्ष की आयु आमतौर खेलने-खाने और प्राथमिक शिक्षा अर्जित करने की मानी जाती है पर इस आयु में लिडन जॉनसन अपने जन्म स्थान टैक्सास में जूतों की पॉलिश कर आजीविका के लिए धनोपार्जन किया करते थे। उनके मन में यह बात गहराई से समाई हुई थी कोई भी कार्य छोटा नहीं है। बूट पॉलिश करके उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी और इसी के बूते १४ वर्ष की आयु में हाइस्कूल की परीक्षा पास की।

एक ओर बूट पॉलिश का कार्य और दूसरी ओर पढ़ाई दोनों निरंतर चलते रहे। जॉनसन का जीवन लक्ष्य ऊंचा था,

इसलिए रोजगार के चक्कर में उन्होंने अपना अध्ययन बंद नहीं किया। धनाभाव के कारण उन्हें अपनी १४-१५ साल की किशोरावस्था में एलिवेटर संचालन, कार की धुलाई व सड़क निर्माण के कार्यों को करना पड़ा। बचपन से ही उनकी खासियत थी कि वे प्रत्येक कार्य को पूरी तन्मयता से करते थे। मनुष्य की प्रगति में उसकी आर्थिक मजबूती का अहम योगदान रहता है। हाईस्कूल के बाद आगे की शिक्षा के लिए वे सैन मार्कोस नगर में चले आये। वहां उन्होंने साउथ वेस्ट टीचर्स कॉलेज में दाखिला ले लिया। खर्च की समस्या से वे कतई विचलित नहीं हुए क्योंकि स्वावलंबन का पाठ तो उन्होंने बचपन में ही पढ़ लिया था। वे दिन में कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करते और रात में कॉलेज में चौकीदारी करते। इस तरह उन्होंने कॉलेज की पढ़ाई पूरी की और उसी विद्यालय में महज २२ वर्ष की आयु में हाईस्कूल के अध्यापक हो गये। पर उनकी ज्ञान पिपासा अभी शांत नहीं हुई। इसलिए अध्ययन कार्य छोड़कर वॉशिंगटन आ गये और जार्ज टाउन विश्वविद्यालय से कानून की शिक्षा ग्रहण करने लगे।

पीछे मुड़कर नहीं देखा और उत्तरोत्तर प्रगति की सीढ़िया चढ़ते हुए ९ नवंबर १९६० को अमेरिका जैसे महाशक्तिशाली राष्ट्र के राष्ट्रपति बन गये। उन्होंने अपने संपूर्ण जवीन को टैक्सास क्वार्टली नामक पुस्तक में बहुत कम शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखा है- मैं क्रम से एक स्वतंत्र मानव, एक अमेरिकी नागरिक, एक अमेरिकी सीनेटर और एक डेमोक्रेट हूं। लिंडन जॉनसन का संपूर्ण जीवन उन साधनहीन छात्रों के लिए प्रकाश स्तंभ है, जो गरीबी और अभावग्रस्तता का रोना रोकर पढ़ाई बंद कर जीवन की प्रगति पर विराम लगा देते हैं।

कितने ही बच्चे उच्च शिक्षा से इसलिए वंचित हो जाते हैं, क्योंकि उनके घर क आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती। कई कार्य उनकी निगाह में छोटे होने के कारण वे उन्हें करने से कतराते हैं। ऐसे बच्चों के लिए जॉनसन का जीवन प्रेरणा से भरा है।

४१९) परवाह- मुनि दुर्वासा स्नान के लिए जा रहे थे। तभी राह में इंद्र की सवारी चली आ रही थी। इंद्र थे राजाओं के राजा। साधु-संतों की क्या परवाह। उन्होंने न दुर्वासा मुनि को प्रणाम किया, न ठहरकर आदर ही दिया। दुर्वासा मुनि को यह अनादर सहन न हुआ। गुस्से से बोले, ऊंचे सिंहासन पर बैठा है, पर मन कितना छोटा है। संत-मुनियों को देखकर भी वंदना नहीं करता। जा, आज से तू निर्धन बन जाएगा। दुर्वासा मुनि का शाप। जो नाथों का नाथ था, वही इंद्र अनाथ हो रास्ते का भिखारी बन गया। न जाने कब तक वे इसी दशा में भटकते रहे। अगर कोई व्यक्ति अपने को कीड़ा बना ले तो रौंदे जाने पर उसे शिकायत नहीं करनी चाहिए।

४२०) भेड़िया और बकरा- एक भेड़िए ने एक बकरे का पीछा किया। बकरा कूदकर एक ऊँची चट्टान पर जा छिपा। भेड़िया चालाक था। उसी चट्टान के नीचे दुबका हुआ वह बकरे के नीचे उतरने की प्रतीक्षा करता रहा। लगातार तीन दिन, तीन रात प्रतीक्षा करने के बाद भेड़िया ऊँची आवाज में बोला, मुझे भूख लगी है। चलूँ, चलकर कुछ दाना-पानी का जुगाड़ करूँ। बकरे ने जैसे ही भेड़िए की बात सुनी और उसे जंगल की तरफ जाता हुआ देखा, फौरन चट्टान से कूदकर नीचे आ गया। प्यास से उसका गला सूख रहा था। अत: सबसे पहले वह एक झरने पर जा पहुँचा। पानी पीते हुए सहसा उसका ध्यान अपनी परछाई पर गया वह बोला, वाह। क्या खूबसूरत टाँगें हैं मेरी। दाढ़ी कितनी प्यारी है। और ये सींग? दूज के चाँद जैसे खूबसूरत। ऊँह, आने दो उस भेड़िए को, मैं साबित कर दूँगा कि हम दोनों में कौन ज्यादा सुंदर है। तभी

झाड़ियों के पीछे छिपा बैठा भेड़िया ठहाका मारता हुआ, अचानक बकरे पर झपटा और एक ही झपाटे में उसने बकरे का काम तमाम कर दिया। शरीर की सुंदरता से अच्छी दिमाग की स्वस्थता होती है।

४२१) एक से बढ़कर एक - एक बार एक हाथी और बंदर में लड़ाई हो गई। दोनों में जब कुछ तय न हुआ तो दोनों उल्लू के पास पहुँचे। बंदर ने कहा, श्रीमान, हमारा फैसला कीजिए। हम दोनों में झगड़ा हो गया है। हाथी कहता है, वह बड़ा बलवान है, मैं कहता हूं कि मैं बड़ा फुर्तीला हूँ। आप यह तय कर दीजिए कि बलवान होना अच्छा होता है या फुर्तीला होना। उल्लू ने कहा, मैं जैसा हूं वैसा कीजिए। नदी के पार वह आम का पेड़ देख रहे हो न। बस, जो भी उस पेड़ से आम तोड़ लाए, वही बड़ा। बंदर और हाथी दोनों नदी के किनारे पहुँचे। पानी की धार तेज थी। बंदर देखते ही डर गया। यह देखकर हाथी गर्व से फूला न समाया। व्यंग्य से बोला, कहो, कैसे मिजाज हैं? नदी पार करो तो जानूँ। अच्छा, चलो, मेरी पीठ पर बैठ जाओ। मैं बड़ा हूँ, बहादुर हूँ। मुझे नदी पार करते डर नहीं लगता। बंदर चट हाथी की पीठ पर बैठ गया और देखते ही देखते दोनों नदी पार जा पहुँचे, पर जैसे ही दोनों आम के पेड़ के नीचे पहुँचे, पेड़ की ऊँचाई देख हाथी के छक्के छूट गए। पर बंदर छलाँग लगाकर पेड़ पर जा चढ़ा और आम तोड़ लिया। फिर मुस्कराकर हाथी से बोला, कहो हाथी राम, कहाँ गई तुम्हारी बहादुरी? बताओ। अगर मैं न होता तो क्या तुम आम तोड़ सकते थे? हाथी खामोश हो गया। दोनों वापस उल्लू के पास आए। उल्लू ने सब बातें सुनीं, फिर बोला, यदि हाथी नदी न पार करवाता तो बंदर आम तोड़कर नहीं ला सकता था। हाथी राम। तुम अगर भारी-भरकर और बहादुर हो तो बंदर बहुत फुर्तीला है। कोई किसी से कम नहीं है।

४२२) जिद्दी विवियन - विवियन बहुत जिद्दी था। किसी बात पर गुस्सा आता तो जो भी चीज सामने पड़ती, उसी को पटक देता। बड़े होकर तो उसका यह स्वभाव बड़ा दु:खदायी होगा। पिता ने सोचा। तभी उनके पड़ोसी ने उन्हें सुझाव दिया, विवियन को आप उसके हमउम्र बच्चों के साथ बेफिक्र होकर छोड़ दीजिए। जरा खेलेगा-कूदेगा, लड़ेगा-झगड़ेगा, मारपीट करेगा तो खुद ही अपनी आदत से बाज आएगा। सिर फुड़ाकर भी आए तो आप बिलकुल चिंता न करिएगा। ज्यादा ध्यान रखने का ही यह नतीजा है। माँ-बाप ने यह सुझाव मान लिया। वे तो उसे बच्चों के बीच इसी भय से नहीं छोड़ते थे कि कहीं गुस्सा आ जाने पर दूसरों को मार न दे। कुछ दिनों बाद उन्होंने पाया कि कभी विवियन ने किसी बच्चे को जख्मी कर दिया तो कभी खुद पिटकर रोता हुआ आया। माँ उसके रोने पर ध्यान ही न देती। कहती, तुम्हारी तुम जानो। एकाएक विवियन के स्वभाव में परिवर्तन हुआ। उसने जिद करनी छोड़ दी।

४२३) सच्ची शोभा- ईश्वरचंद्र विद्यासागर की आर्थिक स्थिति कुछ दिनों बड़ी खराब रही थी, लेकिन इन तंग दिनों में भी उनकी माँ कभी अपने द्वार से किसी को भूखा नहीं जाने देती थीं। कुछ समय बाद एकाएक भाग्य ने पलटा खाया और विद्यासागर की तनख्वात पाँच सौ रुपये हो गई। ऐसे ही समय उनका एक मित्र उनके घर आया। उसने जब विद्यासागर की माँ के हाथों में मामूली चूड़ियाँ देखीं तो उससे रहा नहीं गया। उसने कहा, माँ जी, इतने बड़े अधिकारी की माता होने के नाते ये मामूली सी हाथीदाँत की चूड़ियाँ आपके हाथों में शोभा नहीं देतीं। आप तो अब सोने के गहने पहनिए। उसकी यह बात सुनकर विद्यासागर की माँ हँस पड़ीं और बोली, बेटा, विद्यासागर की माँ के हाथ की शोभा न तो ये चूड़ियाँ हैं, न सोने-चाँदी के गहने। इन हाथों की शोभा तो सदा गरीबों की सेवा करते रहना है।

४२४) हकदार- उड़ीसा में भयंकर बाढ़ आई थी। जगह-जगह हाहाकार और तबाही मची थी। महात्मा गांधी ने डॉ. विश्वेश्वरैया को पत्र लिखा, आप फौरन जाकर उड़ीसा में बाढ़ रोकने की योजना बनाएं। वे उड़ीसा गए। एक महत्वपूर्ण योजना बनाई और उसे सफल बनाने के लिए सरकार को सौंपकर लौट आए। कुछ दिन बाद सरकार ने उन्हें पारिश्रमिक स्वरूप एक मोटी रकम का चेक भेजा। उन्होंने उड़ीसा सरकार को चेक वापस करते हुए लिखा- मैं बापू की आज्ञा से वहाँ गया था। सरकार से पारिश्रमिक का हकदार नहीं हूँ। अत: चेक वापस कर रहा हूँ। हृदय की विशालता ही उन्नति की नींव है।

४२५) संकल्प की ताकत- एक बालक परीक्षा में फेल हो गया। उसके साथियों ने इस पर उसका खूब मजाक उड़ाया। इससे उस लड़के को गहरा सदमा पहुंचा। उसके बाद से वह अत्यंत तनावग्रस्त रहने लगा। उसने पढ़ना-लिखना और यहां तक कि ढंग से खाना-पीना भी छोड़ दिया। वह हर समय एक कोने में गुसमुस बैठा रहता। बालक के माता-पिता ने उसे प्यार से समझाया, बेटा, एक बार फेल होना इतनी बड़ी असफलता नहीं है जिससे तुम इस तरह परेशान हो जाओ। आखिर ऐसा कब तक चलेगा। जो हुआ उसे भूल जाओ और आगे की सोचो। किंतु बालक को माता-पिता की बातों से संतुष्टि नहीं मिली। मानसिक अशांति और निराशा में उसे कुछ नहीं सूझा और वह एक रात आत्महत्या करने के लिए चल पड़ा। रास्ते में एक बौद्ध मठ मिला जहां से कुछ आवाजें आ रही थीं। बालक उत्सुकतावश उन आवाजों को सुनने के लिए मठ के अंदर चला गया। वहां उसने देखा कि एक भिक्षुक कह रहा था, पानी मैला क्यों नहीं होता, क्योंकि वह बहता रहता है। पानी के मार्ग में बाधाएं क्यों नहीं आतीं? क्योंकि वह बहता रहता है। पानी का एक बिंदु झरने से नदी, नदी से महानदी और महानदी से समुद्र क्यों बन जाता है? क्योंकि वह बहता रहता है। इसलिए मेरे जीवन, तुम रुको मत, बहते रहो। जीवन में कुछ असफलताएं आती हैं लेकिन तुम उनसे घबराओ मत। उन्हें लांघकर दोगुनी मेहनत करते चलो। बहना और चलना ही जीवन है। एक असफलता से भी घबारा कर रुक गए तो उसी तरह सड़ जाओगे जिस तरह ठहरा हुआ पानी सड़ जाता है। बालक को ये बातें अच्छी लगीं। वह ठहरकर इस पर विचार करने लगा। उसका खोया हुआ आत्मविश्वास लौटा। उसने ठान लिया कि वह निराश नहीं होगा और जीवन में आगे बढ़ेगा। यह सोचकर वह वापस घर की ओर मुड़ गया। फिर उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। यही बालक बड़ा होकर अपने देश वियतनाम का राष्ट्रनायक बना। उसका नाम था हो ची मिन्ह।

४२६) जलपरी - यह कहानी तब शुरू हुई जब एक मछुआरा नदी किनारे बैठा मछली पकड़ रहा था। जब उसने काँटा बाहर खींचा तो देखा कि मछली की जगह एक अत्यंत सुंदर जलपरी फँसी हुई है। उसने मछुआरे से कहा, तुम चाहो तो मुझसे शादी कर सकते हो; लेकिन एक शर्त पर कि तुम मेरे विषय में कभी किसी से कुछ भी नहीं कहोगे। यह सुनकर मछुआरा बहुत खुश हुआ। वह उसे अपने साथ ले आया। उसने एक कुटिया बना ली और वह सुंदरी उसके साथ एक साधारण स्त्री की तरह रहने लगी। कई लोगों ने यह बात जानने की कोशिश की कि उस जैसे गरीब मछुआरे को इतनी खूबसूरत बीवी कैसे मिल गई? लेकिन उसने राज को सबसे छिपाए रखा। कुछ साल बाद उसके चार संतानें हुईं- दो पुत्र और दो पुत्रियाँ। वह मछुआरा अपने गाँव का सबसे सुखी व्यक्ति था। लेकिन एक दिन, जब वह पीकर धुत्त था तो दूसरे मछुआरों ने उसे घेरकर उससे यह राज उगलवाना चाहा कि उसकी बीवी कहाँ से आई है। डींगें हाँकते हुए उसने अपनी

शादी का राज बता दिया। जैसे ही उसकी पत्नी ने यह बात सुनी, वह अपने पति को छोड़ फिर उस नदी में समा गई। उसकी बेटियाँ भी उसके साथ चली गई- और जलपरी बन गईं। बेटे पिता के साथ ही रहने लगे; लेकिन उन्होंने अपनी उस रहस्यमयी माँ को फिर कभी भी नहीं देखा। राज की बात राज ही रहे तो अच्छा है।

४२७) संगत का प्रभाव- संत शेख सादी एक दिन अपने शिष्यों के साथ जा रहे थे। रास्ते में वे संत सत्संग की महिमा भी उनको समझाते जा रहे थे। लेकिन शिष्यों के मन में यह बात पूरी तरह से बैठ नहीं रही थी। तभी महात्माशेख सादी ने रास्ते के एक किनारे गुलाब के फूलों को देखा। उन्होंने गुलाब के पौधों के नीचे पड़ा मिट्टी का एक ढेला उठाकर एक शिष्य को उसे सूँघने के लिए कहा। शिष्य ने सूँघकर कहा, महात्मन्। मिट्टी के इस ढेले में तो गुलाब की सुगंध आ रही है। तब महात्मा शेख सादी ने पूछा, लेकिन मिट्टी की तो अपनी बू होती है, तब यह सुगंध कहाँ से आई? शिष्य ने कहा, इस ढेले पर गुलाब के फूल टूट-टूटकर गिरते रहते हैं, इसी से इसमें यह सुगंध आ गई है। महात्मा शेख सादी ने गंभीर स्वर में कहा, सत्संग की महिमा भी यही है। जो व्यक्ति जैसी संगति में रहता है वैसे ही गुण-दोष उसमें आ जाते हैं।

४२८) इंसानियत का कारखाना- एक बार एक सज्जन महान वैज्ञानिक आइंस्टीन के पास आए। उन्होंने कुछ देर तक उनसे इधर-उधर की चर्चा की फिर बोले, आज विज्ञान ने एक से बढ़कर एक सुख-सुविधाओं के साधन बनाने में सफलता पा ली है। अब पलक झपकते ही दूरियाँ तय हो जाती हैं, कुछ ही क्षणों में सुविधाओं की सारी चीजें हमारे पास आ जाती हैं, मगर फिर भी जाने क्या बात है कि समाज में अशांति, असंतोष कलह व बुराई पहले की अपेक्षा ज्यादा पनप रही है। आखिर इसका क्या कारण है? सुविधाएं अधिक होने पर तो इंसान को प्रसन्न होना चाहिए। उसके मन को शांति व संतोष भी मिलना चाहिए। उस सज्जन की बातें सुनकर आइंस्टीन बोले, मित्र, हमने शरीर को सुख पहुंचानेवाले तरह-तरह के साधनों को खोजने में अवश्य सफलता प्राप्त कर ली है किंतु जीवन में असली सुख-शांति मन-मस्तिष्क को आंतरिक आनंद प्राप्त होने से मिलती है। क्या हमने इंसानियत का ऐसा कोई कारखाना लगाया है, जिससे लोगों के अंदर मर रही संवेदनाओं को जीवित किया जा सके, उनके अंदर त्याग, ममता, करुणा, प्रेम आदि को उत्पन्न किया जा सके? क्या हमने ऐसा कोई कारखाना बनाया है जहां पर मन-मस्तिष्क को आनंद देनेवाले साधनों का निर्माण किया जाता हो? आइंस्टीन की बात सुनकर वह सज्जन चकराए। उन्हें लगा शायद आइंस्टीन ऐसा कोई कारखाना लगाने के बारे में सोच रहे हों, तभी ऐसी बात कर रहे हैं। लेकिन उन्हें लगा कि यह तो मुमकिन नहीं है। इसलिए कुछ देर सोचने के बाद उन्होंने अपनी जिज्ञासा रखी, भला इंसानियत के कारखाने का निर्माण कैसे संभव है? इंसानी भावनाएं तो इंसान के अंदर पनपती हैं मशीन के अंदर नहीं। उनकी बात सुनकर आइंस्टीन ने मुस्कराते हुए कहा, जनाब, बिल्कुल ठीक कहा आपने। अशांति-असंतोष दूर करने के लिए हमें लोगों में इंसानियत की भावना पैदा करने की ओर ध्यान देना होगा। भौतिक साधनों से सुख-शांति कदापि नहीं मिल सकती। वह सज्जन आइंस्टीन की बात से सहमत हो गए।

४२९) शिष्यों की परीक्षा- एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों गुरु के पास रहकर शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करते थे। एक दिन गुरु ने उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। उन्होंने एक शिष्य को बुलाकर पूछा, बताओ, यह जगत कैसा है? शिष्य ने कहा, गुरुदेव, यह तो बहुत बुरा है। चारों तरफ अंधकार ही अंधकार है। आप देखें, दिन एक होता है और रातें दो।

पहले रात थी। अंधेरा ही अंधेरा छाया था। फिर दिन आया और उजाला हुआ। लेकिन पुन: रात आ गई अंधेरा छा गया। एक बार उजाला, दो बार अंधेरा। अंधेरा अधिक, प्रकाश कम। यह है जगत। गुरु ने उस शिष्य की बात सुनने के बाद दूसरे शिष्य से भी यही प्रश्न पूछा। दूसरा शिष्य बोला, गुरुदेव, यह जगत बहुत ही अच्छा है। यहां चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है। रात बीती उजाला हुआ। सर्वत्र प्रकाश फैल गया। रोशनी आती है तो अंधकार दूर हो जाता है। वह सबकी मुंदी हुई आंखों को खोल देता है, यथार्थ को प्रकट कर देता है। कितना सुंदर और लुभावना है यह जगत कि जिसमें इतना प्रकाश है। देखता हूं, दिन आया, बीता। रात आई, बीती। फिर दिन आ गया। इस प्रकार दो दिनों के बीच एक रात। प्रकाश अधिक, अंधकार कम। गुरु ने फिर दोनों शिष्यों को बुलाकर कहा, यह जगत अपने आप में कुछ नहीं है। यह वैसा ही दिखता है जैसा हम इसे देखते हैं। उन्होंने पहले शिष्य को दूसरे शिष्य की बात बताई और कहा, अगर हम इसे सकारात्मक दृष्टि से देखेंगे तो यह हमें बहुत सुखद लगेगा। इसलिए तुम अपना दृष्टिकोण सकारात्मक बनाओ।

४३०) काम और आराम- पं. विष्णु शर्मा संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। एक दिन वे बच्चों के संग खेल रहे थे। इसी बीच उनके कुछ मित्र वहाँ आ पहुँचे। एक मित्र ने पूछा, आप इतने बड़े विद्वान होकर बच्चों के साथ खेल रहे हैं। इससे आपका मूल्यवान समय नष्ट नहीं होता? पंडित ने मित्र की बात का कोई उत्तर न देकर एक बच्चे को संकेत किया कि वह धनुष ले आए। जब धनुष आ गया तो उन्होंने उस धनुष की डोरी ढीली करके रख दी। सभी मित्र असमंजस में पड़ गए कि आखिर पंडित कहना क्या चाहते हैं। तब उन्होंने अपनी बात स्पष्ट की, भाई, हमारा मन धनुष की तरह है। अगर धनुष पर डोरी हमेशा चढ़ी रहे तो उसकी मजबूती कुछ समय में ही जाती रहेगी और यह जल्दी टूट जाएगा; किन्तु अगर काम पड़ने पर ही इस पर डोरी चढ़ाई जाए तो वह अधिक समय तक टिकेगा और काम भी अच्छा होगा। इसी प्रकार हमारा मन है। काम के बाद यदि उसे आराम मिलता रहे तो वह स्वस्थ रहेगा और अच्छा काम करेगा।

४३१) ज्ञान का महत्व - एक जौहरी के निधन के बाद उसका परिवार संकट में पड़ गया। खाने के भी लाले पड़ गए। एक दिन उसकी पत्नी ने अपने बेटे को नीलम का एक हार देकर कहा- बेटा, इसे अपने चाचा की दुकान पर ले जाओ। कहना इसे बेचकर कुछ रुपये दे दो। बेटा वह हार लेकर चाचा जी के पास गया।

चाचा ने हार को अच्छी तरह से देख परखकर कहा- बेटा माँ से कहना कि अभी बाजार बहुत मंदा है। थोड़ा रुककर बेचना, अच्छे दाम मिलेंगे। उसे थोड़े से रुपये देकर कहा कि तुम कल से दुकान पर आकर बैठना। अगले दिन से वह लड़का रोज दुकान पर जाने लगा और वहां हीरों की परख का काम सीखने लगा। एक दिन वह बड़ा पारखी बन गया। लोग दूर-दूर से अपने हीरे की परख कराने आने लगे। एक दिन उसके चाचा ने कहा, बेटा अपनी मां से वह हार लेकर आना और कहना कि अब बाजार बहुत तेज है, उसके अच्छे दाम मिल जाएंगे।

मां से हार लेकर उसने खुद उसे परखा तो पाया कि वह तो नकली है। वह उसे घर पर ही छोड़कर मायूस मन से दुकान पर लौट आया। चाचा ने पूछा, हार क्यों नहीं लाए? उसने कहा, वह तो नकली था। तब चाचा ने कहा, जब तुम पहली बार हार लेकर दुकान में आए थे, तब मैं उसे नकली बता देता तो तुम जरूर सोचते कि आज हम पर बुरा वक्त आया तो चाचा हमारी चीज को भी नकली बताने लगे। आज जब तुम्हें खुद ज्ञान हो गया तो पता चल गया कि हार सचमुच नकली

है। सच यह है कि ज्ञान के बिना इस संसार में हम जो भी सोचते, देखते और जानते हैं, वह सब गलत है।

४३२) जानने की बात- बाबा फरीद को एक दिन रास्ते में एक व्यक्ति मिला। उसने पूछा- बाबा, काम और क्रोध जैसे विकारों को कैसे जीता जाए? बाबा फरीद ने उत्तर दिया- बेटा, समस्या काम और क्रोध को जीतने की नहीं, उन्हें जानने की है। हमारा अज्ञान ही हमें बार-बार हराता रहता है। इन्हें जान लो तो तुम्हारी जीत पक्की है। बाबा फरीद कुछ देर चुप रहे, फिर बोले- तुमने गौर किया होगा कि जब हमारे अंदर क्रोध प्रबल होता है, काम जोर मारता है, तब वास्तव में हम, हम नहीं होते। हमें अपना ही होश नहीं रहता। इस बेहोशी में हमसे जो कुछ होता है, वह बस एक यांत्रिक प्रतिक्रिया होती है। बाद में जब होश आता है, तब केवल पछतावा बचता है। पर यह सब बेकार जाता है, क्योंकि जो पछता रहा है वह फिर से काम का तूफान और क्रोध की आंधी उठने पर दोबारा सो जाएगा। यह सुनकर युवक ने पूछा- बाबा, हम इस स्थिति से कैसे उबर सकते हैं? बाबा ने कहा- इसके लिए हमें अपनी चैतन्यता को बरकरार रखना होगा। ऐसा होने पर ही हमें पता चलेगा कि न तो क्रोध शेष है और न काम। यांत्रिकता टूट जाने पर जीत-हार का खेल ही खत्म हो जाता है। युवक बोला- बाबा, मैं इस बात का आशय पूरी तरह समझ नहीं पाया। बाबा फरीद मुस्कराए और बोले- बेटा, अंधेरे में पड़ी रस्सी सांप जैसी नजर आती है। इसे देखकर कुछ लोग भागने लगते हैं और कुछ उससे लड़ने की ठान लेते हैं। लेकिन गलती वे दोनों ही करते हैं। ठीक से देखने पर पता चलता है कि वहां सांप तो है ही नहीं। बस ठीक से जान लेने की बात है।

४३३) बुरी आदतों की- एक विद्वान अपनी समझ-बूझ के लिए बड़े प्रसिद्ध थे। वह आगंतुकों की समस्याएं चुटकियों में हल कर देते। एक बार एक धनी व्यक्ति अपने पुत्र को लेकर उनके पास आया और बोला- मेरे बेटे की बुरी आदतें छुड़वा दीजिए। उसने उसकी बुरी आदतों का बखान करते हुए यह भी बताया कि कैसे कुछ सालों से वह उसकी आदतें छुड़ाने का प्रयास करता रहा, लेकिन असफल रहा। विद्वान उस बालक को एक बगीचे में घुमाने ले गए। वहां एक जगह रुके और एक नन्हे पौधे की ओर संकेत करते हुए बोले, बेटा उसे उखाड़ दो। पौधा बहुत छोटा था, सो उसे ज्यादा ताकत नहीं लगानी पड़ी। फिर विद्वान ने उसे जरा बड़ा पौधा उखाड़ने के लिए कहा। किशोर ने जरा जोर लगाया और उसे भी जड़ के साथ उखाड़ लिया। विद्वान ने एक झाड़ी की ओर संकेत किया, अब इसे उखाड़ो। बालक ने अपनी सारी ताकत लगाकर उसे भी उखाड़ दिया। अंत में विद्वान ने उसे एक अमरूद का पेड़ उखाड़ने के लिए कहा। किशोर ने पेड़ के तने को पकड़कर अपनी पूरी शक्ति लगा दी पर पेड़ टस से मस नहीं हुआ। उसकी सांस फूल गई, उसने हार मान ली और कहा- श्रीमान, इस पेड़ को उखाड़ना असंभव है। विद्वान ने उस बालक को समझाया- बेटा, बुरी आदतों की यही दशा होती है। शुरू में उनको उखाड़ फेंकना सरल होता है, परंतु जब उनकी जड़ें फैल जाती हैं, जम जाती है तब उन्हें पूरी ताकत से कोशिश करने पर भी नहीं उखाड़ा जा सकता। इसलिए तुम अपनी बुरी आदतों को अभी से छोड़ दो। बालक के मन में विद्वान की बात पैठ गई और उस दिन से धीरे-धरे उसकी बुर आदतें जाती रहीं।

४३४) सबसे बड़ा पुण्य- बात उन दिनों की है, जब हमारा देश परतंत्र था। बारिश का मौसम था और गंगा में जबर्दस्त बाढ़ आई हुई थी। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। अनेक लोग बाढ़ में फंस गए थे और रोटी-कपड़े के लिए तरस रहे थे। ब्रिटिश सरकार की सहायता अपर्याप्त थी। वैसे भी भारतीय जनता की उसे चिंता क्यों होती? अंतत: स्वतंत्रता

सेनानियों ने बाढ़ पीड़ितों की सेवा करने का निश्चय किया। सभी ने मिलकर रुपये इकट्ठे किए। राजेंद्र प्रसाद और अब्दुल बार को ये रुपये बाढ़ पड़ितों को देने के लिए भेजा गया। साथ में खाने-पीने का सामान भी था। जब ये दोनों आरा के निकट कोइलवर पुल पर पहुंचे, तो वहां व्यक्तियों के गुजरने के लिए स्थान ही नहीं बचा था, रेल की पटरियां ही थोड़ी-बहुत नजर आ रही थीं। राहत सामग्री कमर और कंधों पर बांधे राजेंद्र प्रसाद सोच रहे थे कि पुल कैसे पार करें क्योंकि नीचे नदी की तेज धारा थी। तैरकर जाना संभव नहीं था। अब्दुल बारी भी कोई निर्णय नहीं कर पा रहे थे। राजेंद्र बाबू ने पूछा- अभी कितने बजे हैं? बारी साहब ने बताया- दस बजे हैं। राजेंद्र बाबू बोले- अभी किसी ट्रेन के आने का समय नहीं है। हम दोनों पटरी पर रेंगते हुए नदी पार कर लेते है। दोनों पीठ पर गट्ठर बांधे रेल की पटरी पर चलते हुए पुल पार कर गए और बाढ़ पीड़ितों तक राहत सामग्री पहुंचा दी। बाद में जिसने भी सुना, उसे यकीन नहीं हुआ। सबने राजेंद्र बाबू और अब्दुल बारी की प्रशंसा की। जब लोगों ने राजेंद्र बाबू से इसकी चर्चा की तो उन्होंने कहा, पीड़ित मानवता की यथाशक्ति सहायता करना ही सबसे बड़ा पुण्य है।

४३५) बुरी संगत- पवन के पिताजी बड़े परेशान थे। कुछ दिनों से पवन बुरी संगत में पड़ गया था। अंत में उन्हें एक युक्ति सुझी। वे बाजार से कुछ आम खरीद कर लाए। सब आम तो पके हुए और बढ़िया थे, पर एक आम काफी सड़ा हुआ था। उन्होंने अच्छे आमों को एक बड़ी प्लेट में चारों ओर रखकर सड़ा हुआ आम उनके बीच में रख दिया। अगले दिन जब पवन ने आम खाने के लिए खुशी-खुशी अलमारी में से प्लेट निकाली तो यह देखकर उसक हैरानी का ठिकाना न रहा कि सभी आम सड़ गए हैं और उनमें से बदबू उठ रही है। पवन के पिताजी तो इसी मौके की तलाश में थे। उसे दु:खी देखकर बोले, बेटा। इसी तरह एक दिन तुम भी अपने बुरे मित्रों के बीच रहकर भ्रष्ट हो जाओगे। तब तुम्हारी छाया से भी लोग दूर भागेंगे। पवन पर इस घटना का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने उसी समय से अपने बुरे मित्रों का साथ छोड़ दिया। <u>बुरी संगत आदमी को बुरा बना देती है</u>।

४३६) सच्चाई - एक माँ ने मरते समय अपने एकमात्र पुत्र को शिक्षा दी कि तुम सदैव सच बोलना। लड़के ने उसकी बात गाँठ बाँध ली। एक दिन वह जंगल से होकर शहर की ओर जा रहा था कि डाकुओं ने उसे घेर लिया। डाकुओं ने उससे पूछा, तुम्हारे पास क्या है? लड़के ने कहा, मेरे पास बीस रुपये हैं। डाकुओं ने उसकी तलाशी ली, लेकिन उन्हें कुछ भी नहीं मिला। एक डाकू ने कहा, छोड़ो इसे, यह यूँ ही झूठ बोलकर हम लोगों का समय बरबाद कर रहा है। लड़का बोला, नहीं, मैं कभी झूठ नहीं कहता। बीस रुपये मेरे कोट के अस्तर में हैं। उसने कोट से पैसे निकालकर उन्हें दिखाए। डाकुओं का सरदार उसकी यह सच्चाई देखकर बहुत खुश हुआ। उसने लड़के की पीठ थपथपाई तथा उसे पच्चीस रुपये इनाम के रूप में दिए और स्वयं भी बुरा काम छोड़ सच बोलने लगा।

४३७) स्वाभिमान की रस्साकशी- कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में वही विद्यार्थी एम.ए. की परीक्षा में बैठ सकते थे जो पूर्व परीक्षा में सफल हो चुके हों। सन १९०६ की घटना है। कॉलेज का प्रधानाचार्य सख्त स्वभाव का अंग्रेज था। पूर्व परीक्षा का परिणाम उसी ने सुनाया। एक सीधा-सादा विद्यार्थी भी कक्षा में बैठा था। उत्तीर्ण छात्रों में कहीं उसका नाम नहीं था। उसने खड़े होकर गंभीरता से कहा, आपने मेरा नाम नहीं सुनाया। प्रधानाचार्य ने बताया, सूची में तुम्हारा नाम नहीं है।

यानि कि तुम उत्तीर्ण नहीं हुए हो। विद्यार्थी ने कहा, ऐसा कभी नहीं हो सकता कि मैं उत्तीर्ण न होऊं। यह सुनकर प्रधानाचार्य चिढ़ गए। उन्होंने उस विद्यार्थी की अशिष्टता के लिए पाँच रुपया जुर्माना सुना दिया, लेकिन विद्यार्थी अपनी बात पर अड़ा रहा। जैसे-जैसे उसकी जिद बढ़ती गई वैसे-वैसे जुर्माना भी बढ़ता गया। अंत में प्रधानाचार्य ने जुर्माना पचास रुपये कर दिया। जब दोनों में स्वाभिमान की यह रस्साकशी चल रही थी, तभी कॉलेज के बड़े बाबू दौड़े हुए आए। उन्होंने सूचना दी कि यह विद्यार्थी तो परीक्षा में सर्वप्रथम आया है। भूलवश उसका नाम सूची में जाने से रह गया। प्रधानाचार्य का चेहरा लज्जा और ग्लानि से झुक गया; लेकिन छात्र का सिर स्वाभिमान से ऊँचा हो गया। यह स्वाभिमानी विद्यार्थी और कोई नहीं, हमारे देश के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेंद्र प्रसाद थे।

४३८) शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा पर हम नहीं जाएंगे : इसे रटे नहीं, समझे - एक बार एक साधु ने अपनी कुटिया में कुछ तोते पाल रखे थे। सभी तोते अपनी सुरक्षा के लिए एक गीत गाते थे। गीत कुछ इस तरह था कि शिकारी आएगा जाल बिछाएगा पर हम नहीं जाएंगे एक दिन साधु भिक्षा मांगने के लिए पास के एक गांव में गए।

इसी बीच एक बहेलिया ने देखा एक पेड़ पर तोते बैठे हैं उसे उन पक्षियों को देख लालच हुआ वह उसने उन सभी तोते को पकड़ने की योजना बनाने लगा। तभी तोते एक साथ गाने लगे शिकारी आएगा जाल बिछाएगा पर हम नहीं जायेंगे। बहेलिया ने जब यह सुना तो आश्चर्यचकित रह गया। उसने इतने समझदार तोते कहीं देखें ही नहीं थे उसने सोचा इन्हें पकड़ना असंभव हैं ये तो प्रशिक्षित तोते लगते हैं। बहेलिया को नींद आ रही थी उसने उसी पेड़ के नीचे अपनी जाल में कुछ अमरूद के टुकड़े डाल कर सो गया, सोचा कि संभवत: कोई लालची और बुद्धू तोता फंस जाएं।

कुछ समय बाद जब वह सोकर उठा तो देखा कि सारे तोते एक साथ गा रहे थे शिकारी आएगा जाल बिछाएगा पर हम नहीं जाएंगे। पर वह यह गीत जाल के अंदर गा रहे थे। शिकारी उन सब बुद्धू तोते की हाल देख हंस पड़ा और सबको पकड़कर ले गया। <u>हमें किसी भी ज्ञान को रटने की वजाय उसे समझने पर बल देना चाहिए। क्योंकि रटा हुआ ज्ञान विपत्ति पढ़ने पर काम नहीं आता</u>।

४३९) गांधीजी और पहलवान- एक दिन सेवाग्राम में कुछ घुमक्कड़ पहलवान आ पहुंचे और गांधीजी से अपने दो-चार खेल देख लेने का आग्रह करने लगे। गांधीजी ने कहा, एक तो मेरे पास समय नहीं हैं, दूसरे जो चीज देश के काम नहीं आती, उसे देखने में मेरा मन नहीं लगता। फिर तुम्हें इनाम चाहिए होगा, वह मैं कहा से दूंगा? मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ नहीं है। लेकिन पहलवानों ने गांधीजी की बात नहीं मानी और अपने करतब दिखाने लगे। उनमें से एक ने एक मुक्के में पत्थर को तोड़ कर दिखा दिया। गांधीजी बोले, वाह भाई, तुम्हारे शरीर में तो इतना अधिक बल है कि एक मुक्का मारकर पत्थर तोड़ सकते हो। अगर मैं ऐसा करना चाहूं तो मेरा तो हाथ ही टूट जाए। गांधीजी की बात सुनकर वह पहलवान बोला, पर आपके पास एक दूसरा ही उच्च प्रकार का बल है। गांधीजी बोले, वह बल तो तुम्हारे अंदर भी है। पहलवान बोले, जी नहीं। हमारे अंदर वह बल होता तो हम आज गांव-गांव भीख मांगते न फिरते। उनकी बातें सुनकर गांधीजी ने कहा, वह बल जितना मेरे पास है, उतना ही तुम्हारे पास भी है। अंतर केवल इतना है कि वह आत्मबल तुम्हारे अंदर सो रहा है और मेरे अंदर जागृत है। मैंने उसको विकसित किया है। हर व्यक्ति उसको विकसित कर सकता है। तुम

अपने शरीर के बल को सेवा के लिए प्रयोग कर अपने आत्मबल को जागृत कर सकते हो। इसके माध्यम से धीरे-धीरे तुम अपनी आजीविका भी चला सकने में समर्थ हो सकते हो। गांधीजी की बातें सुनकर पहलवान बोले, बापू, आपने आज हमें सही राह दिखाकर हमारा जीवन सफल बना दिया है।

४४०) मार्क ट्वेन का जवाब - अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन अपने देश में काफी लोकप्रिय थे। लोग उनसे मिलने, उनसे संवाद करने के लिए बेहद उत्सुक रहते थे। उनके अजीब-अजीब प्रशंसक थे। कोई उनसे सवाल पूछता तो कोई उनसे अपने निजी जीवन के बारे में सलाह लेता। मार्क ट्वेन चर्च की रविवारीय प्रार्थना में नियमित रूप से शामिल होते थे और पादरी का उपदेश ध्यान से सुनते थे। एक दिन वह पादरी से मिले और बोले, डॉक्टर जॉन। आपका उपदेश बड़ा ज्ञानवर्धक होता है। आपको सुनते हुए लगता है- जैसे अपने किसी पुराने मित्र से मिल रहा हूं। मैंने एक किताब तैयार की है, जिसमें आपके उपदेशों के एक-एक शब्द को रखा है। पादरी को इस पर यकीन नहीं हुआ। उसने कहा, मैं नहीं मानता कि आप ऐसा करेंगे। मार्क ट्वेन ने वादा किया कि अगले रविवार को वह उस किताब की पांडुलिपि लेकर आएंगे। जब अगले रविवार को मार्क ट्वेन पांडुलिपि लेकर पहुंचे तो पादरी ने कहा, आपको भी मैं एक ऐसी चीज दूंगा जिसे देखकर आप चौंक जाएंगे। पादरी ने उन्हें उनके नाम आया एक पत्र सौंपा। दरअसल उनके एक प्रशंसक ने उनके जन्मदिन पर उन्हें यह पत्र लिखा था। पर उसे उनका पता मालूम न था, इसलिए उसने पत्र को लिफाफे में डाला, टिकट चिपका दिया और पते के स्थान पर लिखा, श्रीयुत मार्क ट्वेन, पता नहीं मालूम। ईश्वर करे, यह पत्र उन्हें मिल जाए। पता नहीं कैसे यह पत्र चर्च के पास आ गया। पादरी का अनुमान था कि जरूर डाकिया यह जानता होगा कि मार्क ट्वेन इस चर्च में आते रहते हैं। जवाब में मार्क ट्वेन ने लिखा, ईश्वर ने कृपा की। नीचे उनके हस्ताक्षर थे।

४४१) मोहनदास का प्रणाम - एक दिन यरवदा जेल में गांधीजी ने रणछोड़ दास पटवारी जी के लिए एक लंबा पत्र लिखवाया। उन्होंने गांधीजी से अट्ठासी सवाल किए थे। गांधीजी ने धैर्यपूर्वक उन सभी के जवाब लिखवाए। उन्हें इतने सारे सवालों के जवाब लिखवाते देख उनके सहयोगी से न रहा गया। वह बोले, आप इतने सारे सवालों के जवाब देते-देते थक गए होंगे। जरूरी तो नहीं था कि सभी सवालों का जवाब दिया ही जाए। गांधीजी बोले, उनके सवालों के जवाब देना जरूरी था। वह कभी आड़े वक्त में मेरे काम आए थे। गांधीजी की बात सुनकर उनके सहयोगी बोले, यह आड़ा वक्त आप कब तक गिनाते रहेंगे? गांधीजी बोले, मैं तो अपने अंतिम समय तक रणछोड़ दास का उपकार गिनाता रहूंगा और मरते दम तक नहीं भूलूंगा। पत्र के जवाब के बाद अंत में उन्होंने मोहनदास का प्रणाम लिखवाया तो उनके सहयोगी बोले, क्या यह आपसे उम्र में बड़े हैं? गांधीजी बोले, हां वह मुझसे उम्र में बड़े हैं। लगभग सात-आठ वर्ष तो बड़े होंगे ही। मैंने उन्हें सदा बड़ा भाई ही माना है। उन्होंने मुझे उस समय पांच हजार रुपये नहीं दिए होते तो न मैं बंबई जा पाता और न ही विलायत जाकर पढ़ाई कर पाता। यही नहीं जब मैं मैट्रिकुलेशन की परीक्षा देने गया था, तब इन्हीं के भाई ने मुझे ठहराया था और हरसंभव मदद देने को कहा था। यह कहते-कहते गांधीजी भावुक हो उठे। उन्हें भावुक होते देख सहयोगी बोले, बस रहने दीजिए। मैं समझ गया कि आप उनका उपकार क्यों नहीं भूल सकते? इस पर गांधीजी बोले, आज मैं जो कुछ हूं वह रणछोड़ दास जी का आशीर्वाद है।

४४२) मुक्ति का रास्ता- यह उस समय की कथा है, जब स्वामी रामकृष्ण परमहंस की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी थी। लोगों में खासकर युवा पीढ़ी में उनका शिष्य बनने की होड़ सी लग गई थी। एक दिन इसी उद्देश्य से एक उत्साही युवक रामकृष्ण परमहंस के पास पहुंचा। परमहंस के चरणों में झुककर उसने कहा, महात्मन, मुझे अपना शिष्य बना लीजिए और गुरुमंत्र दीजिए ताकि मैं भी एक संत बन सकूं। युवक की बात सुनकर परमहंस मुस्कराए। फिर उन्होंने उससे पूछा, नवयुवक। तुम्हारे परिवार में तुम्हारे अलावा और कौन-कौन है? युवक ने उत्तर दिया, मेरे घर में मेरे अलावा सिर्फ मेरी बूढ़ी मां है। परमहंस कुछ देर मौन रहे फिर पूछा, तुम गुरुमंत्र लेकर साधु क्यों बनना चाहते हो? इस पर वह युवक बोला, मैं इस मोहमाया और ऊंच-नीच से भरे संसार को छोड़कर मुक्ति पाना चाहता हूं। इस पर परमहंस ने समझाया, तुम मुक्ति नहीं चाहते, बल्कि अपनी जवाबदेही से भाग रहे हो। मुक्ति वगैरह तो एक बहाना है। तुम्हें लगता है कि साधु बनकर तुम बिना किसी दायित्व के जीवनयापन करोगे। तुम्हारा काम तो चल ही जाएगा, बाकी लोग चाहे जो करें। यह साधना नहीं पलायन है। आजकल बहुत से लोग ऐसा ही कर रहे हैं। यह अपनी शक्ति का दुरुपयोग है। समझ लो, अपनी बूढ़ी मां को असहाय छोड़कर तुम्हें मुक्ति कभी नहीं मिलेगी। तुम्हारी सच्ची मुक्ति तो इसी में है कि तुम पूरी शक्ति के साथ अपनी बूढ़ी और असहाय मां की सेवा करो। उनकी सेवा ही ईश्वर की भक्ति है। वैसे भी मां को ईश्वर के समान बताया गया है। युवक उनकी बात समझ गया।

४४३) गाडगे महाराज की शिक्षा- यह घटना सन १९०७ के आसपास की है। अमरावती के पास ऋषमोचन नामक गांव में एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। मेले में हजारों लोग आए हुए थे। इस वजह से वहां सफाई का नामोनिशान न था। सभी लोग यह सोच रहे थे कि मेले में इतने लोग हैं और सफाई कोई अकेले उन्हीं की जिम्मेदारी नहीं है। वे भोजन की जूठी पत्तलों, दोनों और मिट्टी के बर्तनों को जहां-तहां फेंके जा रहे थे। गंदगी बढ़ती जा रही थी और किसी का इस ओर ध्यान नहीं था। वहां एक युवा संत गाड़गे महाराज भी उपस्थित थे। वह चारों ओर गंदगी देखकर अकेले ही झाड़ू लेकर सार्वजनिक स्थल पर सफाई करने में जुट गए। यह देखकर दर्शनार्थियों के मन में कौतूहल के साथ-साथ उनके प्रति आदर भाव जागृत हुआ और वहां भीड़ लग गई। भीड़ को एकत्रित देखकर गाडगे महाराज बोले, आप मुझे इस तरह हैरत से क्यों देख रहे हैं? मैं कोई अजूबा नहीं हूं, न ही मैं कोई अनोखा काम कर रहा हूं। फर्क इतना है कि जिस सफाई को आप केवल अपने घरों तक सीमित रखना चाहते हैं, उसी सफाई को मैं पूरे देश में फैलाना चाहता हूं। गंदगी के कारण ही महामारी और असंख्य बीमारियां पनपती हैं। इसमें हम सभी का हाथ होता है और बीमारी की चपेट में आनेवाले भी हम ही होते हैं। लेकिन हम जागते तभी हैं जब इसकी चपेट में आते हैं। मुझमें और आपमें इतना अंतर जरूर है कि मैं पहले ही जागरूक हो गया हूं और यहां सफाई कर रहा हूं। गाडगे महाराज की बातें सुनकर वहां मौजूद दर्शनार्थियों की नजरें झुक गईं। इसके बाद सभी श्रद्धालु झाड़ू लिए सफाई में जुट गए।

४४४) मां की असली पूजा - उन दिनों बंगाल में भारी बाढ़ आई हुई थी। गांव के गांव डूब गए थे। समूचा जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। नेताजी सुभाषचंद्र बोस उस समय कॉलेज में पढ़ते थे। वे कुछ स्वयंसेवियों के साथ मिलकर बाढ़ पीड़ितों के लिए राहत सामग्री इकट्ठा करने में जुट गए। वह दिन-रात इसमें लगे रहते और कभी-कभार आराम करते।

एक दिन उनके पिता बोले, बेटा, क्या आज भी बाढ़ पीड़ितों की सेवा के लिए जा रहे हो? सुभाष बोले, जी पिताजी, मेरा जाना आवश्यक है। मुझसे लोगों का दर्द बर्दाश्त नहीं होता। इस बाढ़ ने जबर्दस्त विनाश किया है। तबाही का ऐसा मंजर है कि आंखों से आंसू नहीं सूखते। ऐसे में इंसान ही तो इंसान की मदद करेगा न। अभी कुछ और करने का कोई अर्थ नहीं है। पिताजी बोले, बेटा, मैं तुम्हारी बात से पूरी तरह सहमत हूं। तुम मानव सेवा अवश्य करो लेकिन थोड़ा घर पर भी ध्यान दिया करो। अपने गांव में दुर्गा की विशाल पूजा का आयोजन किया जा रहा है। वहां और लोगों के साथ तुम्हारा रहना भी जरूरी है। इसलिए तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। पिताजी की बात सुनकर सुभाष बोले, क्षमा कीजिए पिताजी, मैं आपके साथ नहीं चल सकता। आप सब गांव जाकर दुर्गा मां की पूजा करें। मैं दीन-दु:खियों की पूजा करूंगा। उनकी पूजा करके मुझे दुर्गा मां की पूजा का पुण्य मिल जाएगा। बेटे की बात सुनकर पिता का सिर गर्व से ऊंचा हो गया। वह सुभाष को गले लगाते हुए बोले, बेटा, सचमुच दुर्गा मां की वास्तविक पूजा तो तुम ही कर रहे हो। इसके बाद वह उन्हें आशीर्वाद देकर अपने गांव के लिए चल पड़े।

४४५) भूखों की सेवा- घटना उस समय की है जब बाजीराव पेशवा की सेना ने निजाम की फौज को चारों ओर से घेर लिया था। इससे उनके रसद और हथियार मिलने के जो रास्ते थे, वे सब बंद हो गए थे और सेना में भोजन की कमी हो गई थी। संयोगवश उसी समय निजाम के सैनिकों का त्योहार आ गया। घेरे में पड़े निजाम के शिबिरों में भूखों मरने की नौबत आ गई। कहीं से रसद-पानी न मिलते देख निजाम ने पेशवा को पत्र लिखा- क्या हमारे सिपाहियों को त्योहार के दिनों में भी भूखों मरना पड़ेगा? यहां तो सभी धर्मों को बराबर महत्व दिया जाता है। हमने तो सुना था कि पेशवा बहादुर होने के साथ-साथ रहमदिल भी हैं। वे भूखे लोगों को खाना खिलाते हैं और अपने भूखे दुश्मनों पर वार नहीं करते। पेशवा ने इस पत्र को कई बार पढ़ा। काफी सोचने के बाद उन्होंने पत्र को अष्टप्रधानों के सामने रखा। अष्टप्रधानों ने पत्र को पढ़ा। इसके बाद आपस में विचार-विमर्श किया और बोले, निजाम पर दया करना ठीक नहीं है। चाहे वह भूखे-प्यासे हों, उनका त्योहार हो, लेकिन हैं तो वे हमारे दुश्मन ही और उसे कभी भी कमजोर नहीं समझना चाहिए। न ही उस पर दया करनी चाहिए। अष्टप्रधानों की बात सुनकर पेशवा बोले, मराठे वीर हैं, पर इसके साथ ही मनुष्य भी हैं। वीरता कहती है कि शत्रु को पराजित करना चाहिए, लेकिन मानवता का तकाजा ये है कि भूखे शत्रु को भोजन दिया जाए। यदि भोजन व पानी न मिलने से वह पहले ही कमजोर हो जाए तो उसे पराजित करना कोई बड़ी बात नहीं है। पेशवा की आज्ञा से निजाम के पास रसद और पानी की गाड़ियां भेज दी गईं।

४४६) समर्पण का फल- मुस्लिम संतों में एक बहुत बड़ी संत हुई हैं राबिया। उनमें ईश्वर-भक्ति कूट-कूटकर भरी थी, वे हर घड़ी प्रभु के चरणों में लौ लगाए रहती थीं। सबको उसी का बंदा मानकर उन्हें प्यार करती थीं और जी-जान से उनकी सेवा करती थीं।

एक रात को जब वे सो रही थी, उनके घर में एक चोर घुस आया। सामने एक चादर रखी थी। चोर ने उसी को उठा लिया, लेकिन जैसे ही वह चलने को हुआ कि उसका सिर चकराने लगा, बदन कांपने लगा और आंखों के सामने अंधेरा छा गया। रास्ता दिखना बंद हो गया। उसने आंखें मलीं, पर कोई नतीजा नहीं निकला। वह वहीं बैठ गया और चादर को

एक ओर रखकर जैसे ही अपना सिर थपथपाने को हुआ कि उसके चक्कर एकदम दूर हो गए, आंखें ठीक हो गईं और सामने दरवाजा दिखाई देने लगा।

चोर उठा पर ज्योंही उसने चादर हाथ में ली कि उसकी हालत फिर पहले की तरह हो गई। मारे घबराहट उसकी हालत फिर पहले की तरह हो गई। मारे घबराहट के उसने चादर पटक दी। चादर पटकते ही एक क्षण में वह स्वस्थ हो गया। उसने कई बार चादर उठाई और हर बार उसके साथ ऐसा ही हुआ। अब वह असमंजस में खड़ा था और उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, तभी कहीं से आवाज आई- तू अपने को क्यों परेशानी में डाल रहा है मुद्दत हुई, राबिया ने अपने को मेरे सुपुर्द कर दिया है जब एक दोस्त सोता है, तब दूसरा जागता है यह कैसे मुमकिन हो सकता है कि उसकी चीज को कोई चुराकर ले जाए? चोर ने सोती राबिया के आगे सिर झुकाया और चादर वहीं छोड़कर घर से बाहर निकल गया। वह खाली हाथ आया था, पर अब उसके हाथ में बहुत संपदा थी।

४४७) पीड़ितों का वकील - यह उन दिनों की कथा है, जब देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद पटना हाईकोर्ट में वकालत करते थे। वे अपनी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के लिए विख्यात थे। वह हमेशा पीड़ितों, वंचितों के पक्ष में खड़े होते थे और उन्हें न्याय दिलाने का भरपूर प्रयास करते थे। अपने इस सिद्धांत के चलते वे लाखों रुपये फीस के प्रस्ताव भी आसानी से ठुकरा देते थे। एक बार विख्यात समाज सुधारक भवानीलाल संन्यासी का सिफारिशी पत्र लेकर एक व्यक्ति उनके पास आया। उसका अपनी किसी निकट संबंधी विधवा महिला से संपत्ति को लेकर विवाद चल रहा था। वह राजेंद्र बाबू को अपना वकील बनाना चाहता था। राजेंद्र बाबू ने उसके कागजात देखे तथा गंभीर होकर बोले, कागज देखकर मैं समझ गया हूं कि इस संपत्ति के असली मालिक तुम नहीं, वह विधवा महिला है। लेकिन तुमने इतनी चालाकी से कागज तैयार किए हैं कि कानूनी दृष्टि से तुम इसके हकदार बन सकते हो। पर एक विधवा महिला की आह तुम्हारे लिए बहुत घातक सिद्ध हो सकती है। मैं एक विधवा महिला का हक छीनने में तुम्हारी मदद बिल्कुल नहीं कर सकता। इसीलिए मेरा सुझाव यह है कि तुम उस बेचारी की संपत्ति हजम करने के पाप से बचो। किसी की धन संपत्ति हथियाने से व्यक्ति कभी भी सुख-शांति नहीं पा सकता। राजेंद्र बाबू की बात सुनकर उसका हृदय बदल गया तथा उसने उनके सामने ही वे कागज फाड़कर फेंक दिए। इस तरह से राजेंद्र बाबू लोगों का विचार बदल देते थे और कई बार मामला न्यायिक प्रक्रिया में जाने से पहले ही सुलझ जाता था।

४४८) साधारण से असाधारण- एक सैनिक युद्ध से संबंधित विशेष समाचार लेकर नेपोलियन के पास आया। उसका घोड़ा इतना थक चुका था कि उसने वहीं दम तोड़ दिया। नेपोलियन ने समाचार पढ़ा और उसका जवाब पत्र में देते हुए सैनिक से कहा, तुम्हारा घोड़ा वीरगति पा चुका है। जवाब पहुंचाना जरूरी है, इसलिए तुम मेरे घोड़े पर सवार होकर सेनापति तक मेरा पत्र पहुंचा दो। सैनिक को यकीन नहीं हुआ। भला नेपोलियन जैसा शासक उसे अपने सर्वश्रेष्ठ घोड़े पर बैठने को कैसे कह सकता है? वह बोला, मुझ जैसे सामान्य सैनिक का आपके घोड़े पर बैठना ठीक नहीं है। कहां आप और कहां मुझ जैसा सामान्य इंसान। मैं दौड़कर ही जल्दी से जल्दी समाचार पहुंचाने का प्रयास करूंगा। नेपोलियन बोले, नहीं, तुम पैदल क्यों जाओगे? दुनिया में ऐसी कोई भी बेहतरीन स्थिति या चीज नहीं, जिस पर तुम्हारा अधिकार न

हो। एक सैनिक कुछ भी हासिल कर सकता है। मैं भी निचले स्तर से ऊपर तक पहुंचा हूं। तुम तुरंत इस घोड़े पर सवार होकर यह पत्र सेनानायक तक पहुंचा दो। नेपोलियन की बात सुनकर सैनिक आश्चर्य में डूबा नेपोलियन के घोड़े को निहारने लगा। उसे हिम्मत न हुई कि वह उस पर सवार हो। उसके मुंह से निकला, ऐसे सर्वोत्तम घोड़े पर बैठना आपको ही शोभा देता है। मुझ मामूली सैनिक के भाग्य में यह नहीं लिखा है। सैनिक की बात सुन नेपोलियन बोले, धरती पर कोई भी ऐसी असाधारण वस्तु नहीं, जिसे कोई साधारण व्यक्ति अपने पौरुष से सब कुछ पा सकता है। नेपोलियन की बात सुनकर सैनिक उसके घोड़े पर सवार होकर चल दिया।

४४९) मानवता में सम्मान- सिकंदर स्वयं जितना योग्य था, उसका सेनापति भी अपनी योग्यता और ईमानदारी के लिए उतना ही प्रसिद्ध था। सेनापति से सिकंदर बहुत प्रसन्न थे। एक बार सेनापति की एक मामूली सी गलती से नाराज होकर सिकंदर ने उसे पद से हटाकर सूबेदार बना दिया। छोटा ओहदा पाकर भी सेनापति ने नाराजगी नहीं दिखाई। सिकंदर के निर्णय को सहर्ष स्वागत कर लिया। सूबेदार के पद पर भी उसने हमेशा की तरह अपनी निष्ठा और राज्य के प्रति समर्पण में कमी नहीं आने दी। कुछ समय बाद सूबेदार सिकंदर के सामने पेश हुआ तो सिकंदर ने पूछा, तुम सेनापति से सूबेदार बनाए गए, लेकिन तुम हमेशा की तरह संतुष्ट और उत्साहित हो, यह कैसे? सूबेदार ने कहा, राजन्। जब मैं सेनापति था, तब सब छोटे अधिकारी मुझसे डरा करते थे, पर अब वे सब मुझसे प्यार करते हैं और मुझसे सलाह लेते हैं। मेरा मानना है कि सही अर्थों में उनकी सेवा का अवसर मुझे अब मिला है। जब तुम सेनापति के पद से हटाए गए तो अपमान महसूस नहीं हुआ? सिकंदर ने प्रश्न किया। सूबेदार मुस्कराकर बोला, मेरे विचार में सम्मान पद में नहीं है, मानवता में है। ऊंचा पद पाकर कोई अहंकारी हो जाए और दूसरों को सताए, वह तो निंदा योग्य है। दूसरों की सेवा करने, ईमानदार होने, विनम्र और कर्त्तव्यनिष्ठ रहने में ही सम्मान है। ऐसा होने पर ही वह सुखी और संतुष्ट रह सकता है। चाहे वह सेनापति हो या सूबेदार या सैनिक। सिकंदर को सूबेदार के इस जवाब ने बहुत प्रभावित किया। उसने उसे अपने कक्ष में बुलाकर क्षमा मांगी और फिर से सेनापति बना दिया।

४५०) संकल्प की शक्ति- लंदन की एक बस्ती में एक अनाथ लड़का रहता था। वह अखबार बेचकर अपना गुजारा करता था। इसके बाद उसे एक जिल्दसाज की दुकान पर जिल्द चढ़ाने का काम मिल गया। उसे पढ़ने का बहुत शौक था। वह पुस्तकों पर जिल्द चढ़ाते समय उनकी महत्वपूर्ण जानकारियों को ध्यान से पढ़ता था। एक दिन उसकी नजर विद्युत संबंधी एक लेख पर पड़ी। वह लेख उसे बहुत मनोरंजक लगा। वह उससे बहुत प्रभावित हुआ। उसने दुकान के मालिक से पुस्तक मांग ली और रात भर में उस लेख के साथ ही पूरी पुस्तक पढ़ डाली। इससे विद्युत संबंधी प्रयोग में उसकी जिज्ञासा बढ़ती गई और धीरे-धीरे वह प्रयोग और परीक्षण के लिए विद्युत संबंधी छोटी-मोटी चीजें जुटाने भी लगा। एक ग्राहक तो उससे बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने तय कर लिया कि वह उसे आगे बढ़ने में हरसंभव मदद करेगा। वह एक दिन उसे अपने साथ भौतिकशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान डेवी का भाषण सुनवाने ले गया। लड़के ने डेवी की बातें ध्यान से सुनीं और उन्हें नोट भी किया। उसने उनके भाषण की समीक्षा करते हुए अपने परामर्श लिखकर डेवी के पास भेज दिए। डेवी को लड़के के सुझाव बहुत पसंद आए। उन्होंने उसे यंत्रों को व्यवस्थित करने के लिए अपने पास रख लिया। लड़का

उनके सहयोगी और नौकर, दोनों की भूमिका निभाता रहा। वह दिन भर अपने कामों में लगा रहता, रात को अध्ययन करता। वह भौतिकी के क्षेत्र में कुछ असाधारण करने का संकल्प ले चुका था। वह दिन-रात शोध में लगा रहता था। आगे चलकर वह माइकल फैराडे के नाम से मशहूर हुआ।

४५१) मैडम क्यूरी की सीख- नोबेल पुरस्कार मिलते ही मैडम क्यूरी की ख्याति दुनिया भर में फैल गई। हर देश के लोग उनसे मिलने और उनके बारे में जानने को उत्सुक रहते थे। लेकिन मैडम को इन सब में कोई खास दिलचस्पी न थी। वह अपनी उपलब्धि और प्रसिद्धि से बेखबर रहती थी। उनके रहन-सहन और स्वभाव में कोई तब्दीली नहीं आई। उन्हें बस अपने काम से मतलब रहता था। वह दिन-रात अध्ययन और शोध में लगी रहती थी। एक बार एक नामी अखबार का संवाददाता उनका साक्षात्कार लेने उनके घर पहुंचा। बाहर बैठीं मैडम को उसने नौकरानी समझा और पूछा- क्या आप इस घर की नौकरानी है? मैडम क्यूरी ने कहा- जी हां, कहिए क्या बात है? इस पर संवाददाता ने पूछा- क्या घर की मालकिन घर में है? मैडम क्यूरी ने कहा- नहीं, वह बाहर गई हैं। संवाददाता ने फिर पूछा- क्या वह जल्दी ही लौट आएंगी? मैडम क्यूरी ने कहा- वह जल्दी नहीं लौटेंगी। यह सुनकर संवाददाता सोच में पड़ गया। फिर वह जाने लगा। तभी अचानक उसके दिमाग में एक बात आई। उसने रुककर पूछा- क्या वह आपको कुछ कहकर गई हैं? मैडम क्यूरी ने कुछ सोचते हुए कहा- हां, उन्होंने कहा है कि अगर कोई आए तो बता देना कि लोगों को उनकी वेशभूषा से नहीं, उनके विचारों और काम से पहचानना चाहिए। यह बात सुनकर संवाददाता का माथा ठनका। उसे सब समझ में आ गया। वह बहुत शर्मिंदा हुआ। उसने मैडम क्यूरी से क्षमा मांगी। उन्होंने उसे माफ भी कर दिया। इसके बाद वह संवाददाता जिससे भी मिलता मैडम क्यूरी की सरलता व उदारता की तारीफ जरूर करता।

४५२) दानी का संदेश- एक नगर में एक विशाल मंदिर का निर्माण होना था। जोर-शोर से चंदा एकत्र किया जाने लगा। सबसे ज्यादा दान देनेवाले का नाम दानपट्टिका में सबसे ऊपर मोटे अक्षरों में लिखा जाना था। शहर के प्रतिष्ठित लोग लाला भगवान राय के पास पहुंचे और उन्हें अधिकाधिक चंदा देने के लिए उकसाने लगे। शहर में ऐसा और कोई नहीं था जो उनसे ज्यादा चंदा देने की सामर्थ्य रखता हो। अब तक की सबसे ज्यादा दान राशि की रसीद जमाकर्ताओं ने लाला जी के सामने रख दी। लाला जी ने पूछा- भाई, तुम मुझसे क्या चाहते हो। आगंतुकों में से एक ने कहा कि एक सज्जन ने ग्यारह लाख रुपए दिए हैं, आप कम से कम बारह लाख रुपए अवश्य दें जिससे दानपट्टिका में आपका नाम सबसे ऊपर मोटे अक्षरों में लिखा जा सके।

लाला जी ने कहा- पैसे तो मैं दे दूंगा, पर शर्त यही है कि दानपट्टिका में सबसे ऊपर मोटे अक्षरों में नाम उन्हीं सज्जन का लिखा जाए जिन्होंने अब तक सबसे ज्यादा रकम दी है।

इसके बाद लाला जी ने बीस लाख रुपए देते हुए कहा कि दो रसीदें काट दीजिए। एक दस लाख की मेरे नाम से और दूसरी दस लाख की मेरी पत्नी के नाम से। पट्टिका पर सबसे ऊपर मोटे अक्षरों में नाम लिखवाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर दिया गया दान वास्तव में यश की कामना से दिया गया दान है, जो सकाम कर्म की श्रेणी में आता है। लेकिन दान सदैव यश की कामना से ऊपर उठकर देना ही श्रेयस्कर है। निष्काम भाव से दिया गया दान मन को जो सात्विक सुख और

आनंद देता है, उसका आकलन संभव नहीं।

४५३) बदला हुआ आदमी- स्कॉटलैंड के एक राजा को शत्रुओं ने पराजित कर दिया। उसे धन-जन की बड़ी हानि हुई और संगी-साथी भी छूट गए। अब बस उसका जीवन बचा था, पर शत्रु उसकी टोह में थे। प्राण बचाने के लिए वह भागा-भागा फिर रहा था। स्थिति यह थी कि अब मरा कि तब मरा। राजा एक खोह में छिपा अपनी मौत की प्रतीक्षा करते हुए सोच रहा था- शत्रु की तलवार पलभर में मेरा काम तमाम कर देगी। तभी उसने देखा- एक मकड़ी खोह के दरवाजे पर जाला बनाने में व्यस्त थी। वह कई बार कोशिश करती, नाकाम रहती, लेकिन फिर से उठकर जाला बनाने लगती। राजा ने सोचा- यह व्यर्थ प्रयत्न कर रही है। बिना आधा के जाला भला कैसे बना पाएगी। किंतु आश्चर्य, मकड़ी का एक झीना-सा सूत्र खोह के मुंह पर अटक ही गया। बस फिर एक के बाद एक सूत्र अटकते चले गए और देखते-देखते जाला तेजी से बुना जाने लगा। थोड़ी देर में पूरी खोह के मुंह पर जाला तैयार था। तभी शत्रु के सिपाही वहां आ पहुंचे। लेकिन खोह के मुंह पर मकड़ी का जाला बना देख वापस लौट गए। करीब आई हुई मौत तो वापस चली गई पर राजा को एक गहरे विचार में छोड़ गई। उसने सोचा-मकड़ी बार-बार गिरकर भी निराश और परास्त नहीं हुई तो मैं इंसान होकर भी क्यों डर रहा हूं? मैं भी अवश्य अपने शत्रुओं को परास्त करूंगा। इस मकड़ी ने मेरा संकल्प मजबूत कर दिया है। यह सोचते ही वह खोह से बाहर निकल गया। अब वह एक बदला हुआ आदमी था। उसने अपने साथियों को एकत्र किया और अंत में शत्रु पर विजय हासिल की।

४५४) गुरु की सीख- एक महात्मा ने एक दिन अपने शिष्यों को समझाया की सभी जीवों में ईश्वर का वास है। यह समझकर सभी को नमस्कार करो। एक दिन गुरु की आज्ञा से एक शिष्य हवन के लिए लकड़ी लेने गया। तभी शोर मचा- भागो, पागल हाथी जा रहा है। यह सुन सभी लोग जान बचाकर भागे। लेकिन शिष्य नहीं भागा। उसे विश्वास था कि हाथी भी नारायण है, इसलिए भागने का क्या काम? वह खड़ा ही रहा। जैसे ही हाथी पास आया उसने उसे नमस्कार किया। यह देख महावत-चिल्लाया भागो भागो। लेकिन वह फिर भी खड़ा रहा। पास पहुंचते ही हाथी ने उसे सूंड से लपेटकर एक ओर फेंक दिया और आगे बढ़ गया। शिष्य घायल हो गया और बेहोश पड़ा रहा।

खबर मिलते ही महात्मा अपने अन्य शिष्यों को साथ लेकर वहां गए और उसे आश्रम में उठा लाए। वहां उसकी देखभाल की। कुछ देर बाद वह होश में आया तो उससे पूछा- हाथी को आते जानकर भी तुम वहां से हटे क्यों नहीं? शिष्य बोला- गुरुजी, आपने ही तो कहा था कि सभी जीव-जंतुओं में परमात्मा का वास है। इसी से हाथी नारायण को आते देख मैं नहीं भागा। इस पर गुरुजी ने कहा- बेटा, हाथी नारायण आ रहे थे, ठीक है पर महावत नारायण ने तो तुम्हें मना किया था। यदि सभी नारायण हैं तो महावत की बात पर विश्वास क्यों न किया? उसकी बात मान लेते तो आज तुम्हारी यह गत नहीं बनती। जल भी नारायण है, लेकिन किसी जल से देवता की सेवा होती है और किसी से लोग नहाते-धोते हैं। देश, काल और परिस्थिति हमेशा ध्यान में रखो। शिष्य गुरु का संकेत समझ गया।

४५५) शेक्सपियर की सफलता- पिता की मृत्यु के समय महान साहित्यकार शेक्सपियर की उम्र बहुत कम थी। इसके बाद अचानक उनके नाजुक कंधों पर पूरे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी आ गई। यह काम कैसे हो सकेगा,

यह सोचकर वह बहुत उदास रहने लगे। एक दिन बाइबिल पढ़ते समय उनकी नजर एक पंक्ति पर ठहर गई- कोई काम छोटा-बड़ा नहीं होता। जो दायित्व मिले उसे पूरी निष्ठा व मनोयोग से करो, सफलता तुम्हारे कदम चूमेगी। इस वाक्य से उन्हें बहुत संबल मिला। उन्होंने काम पाने के लिए खूब भागदौड़ शुरू कर दी। काफी कोशिशों के बाद उन्हें एक नाटक कंपनी में घोड़ों की देखभाल का काम मिला। काम के साथ-साथ शेक्सपियर समय मिलने पर पुस्तकें भी पढ़ते रहते थे। एक नाटककार ने जब उन्हें मनोयोग से पढ़ते हुए देखा तो वह समझ गए कि यह व्यक्ति कुछ अलग तरह का है। शेक्सपियर को नाटक देखना भी बहुत अच्छा लगता था। यह देखकर नाटक कंपनी के मालिक ने एक दिन शेक्सपियर को नाटकों के अंशों को साफ-साफ लिखने का काम सौंप दिया। दूसरों के नाटकों के अंश लिखते-लिखते शेक्सपियर ने धीरे-धीरे खुद भी लिखने का प्रयास शुरू कर दिया। एक दिन उन्होंने अपनी डायरी नाटक कंपनी के मालिक को दिखाई तो उन्होंने शेक्सपियर की पीठ थपथपाते हुए कहा, तुम तो बहुत अच्छा लिखते हो, जरा इसे पूरा करके दिखाओ। अच्छा लगा तो हमारी कंपनी इसे प्रस्तुत करेगी। उनका नाटक काफी पसंद किया गया। उसकी प्रशंसा होने लगी। शेक्सपियर लगन और प्रतिभा के बल पर अंग्रेजी के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों में गिने जाने लगे।

४५६) जीवन का आदर्श- राजा भोज स्वयं तो विद्वान थे ही, वे अन्य विद्वानों का भी खूब सम्मान करते थे। एक बार उनकी राजसभा में बाहर के विद्वान भी आमंत्रित थे। भोज ने उन सभी से आग्रह किया- आप सभी विद्वान अपने जीवन में घटित कोई आदर्श घटना एक-एक कर सुनाएं। सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी आपबीती कह सुनाई। अंत में एक दीन-हीन सा दिखनेवाला विद्वान अपने आसन से उठा और बोला, मैं क्या बताऊं महाराज, वास्तव में तो मैं आपकी इस विद्वत सभा में आने का अधिकारी ही नहीं था, किंतु मेरी पत्नी का बड़ा आग्रह था, इसलिए चला आया। यात्रा का ध्यान करते हुए मेरी पत्नी ने एक पोटली में मेरे लिए चार रोटियां बांध दीं। मार्ग में भूख लगने पर जब मैं एक जगह खाना खाने लगा तभी एक कुतिया मेरे पास आकर बैठ गई। साफ लग रहा था कि वह भूखी थी। मुझे उस पर दया आ गई और मैंने उसके सामने एक रोटी रख दी। उसे वह तुरंत खा गई। इसके बाद मैंने जैसे ही खाने के लिए रोटियों को छुआ, वह फिर रोटी मिलने की इच्छा से दुम हिलाने लगी। मुझे लगा जैसे वह कह रही हो कि बाकी रोटियां भी मुझे ही दे दो। मैंने सभी रोटियां भी उसके आगे डाल दीं। बस महाराज, यही है मेरे जीवन में हाल में घटित सत्य और आदर्श घटना। स्वयं भूखा रहकर एक भूखे जीव को मैंने तृप्त किया और ऐसा करने से जो सुखद अहसास मुझे हुआ, वह मैं जीवन भर नहीं भूलूंगा। राजा इस वृत्तांत से भाव-विभोर हो गए। उस विद्वान को उन्होंने मूल्यवान वस्तुएं भेंट कीं और कहा- यही है जीवन का आदर्श।

४५७) शिवाजी का अभिमान- छत्रपति शिवाजी ने पराक्रम से अनेक युद्धों में विजय पाई। इससे उनके मन में थोड़ा अभिमान आ गया। उन्हें लगता था कि उनके जैसा वीर धरती पर और कोई नहीं है। कई बार तो उनका यह घमंड औरों के सामने भी झलक पड़ता। एक दिन शिवाजी के महल में उनके गुरु समर्थ रामदास पधारे। शिवाजी वैसे तो अपने गुरु का बहुत आदर करते थे, लेकिन उनके सामने भी उनका अभिमान व्यक्त हो ही गया। उन्होंनें कहा, गुरुजी अब मैं लाखों लोगों का रक्षक और पालक हूं। मुझे उनके सुख-दुख और भोजन-वस्त्र आदि की हर समय चिंता करनी पड़ती है। रामदास समझ गए कि उनके शिष्य के मन में राजा होने का अहंकार हो गया है। इसे तोड़ने के लिए उन्होंने एक तरकीब सोची।

शाम को शिवाजी के साथ भ्रमण करते हुए रामदास ने अचानक उन्हें एक बड़ा पत्थर दिखाते हुए कहा, शिवा, जरा इस पत्थर को तोड़कर तो देखो। शिवाजी ने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए तत्काल वह पत्थर तोड़ डाला। किंतु यह क्या, पत्थर के बीच से एक जीवित चींटी एक दाना मुंह में दबाए बैठी दिखी। यह देखकर शिवाजी चकित रह गए। फिर समर्थ रामदास ने पूछा, पत्थर के बीच बैठी इस चींटी को कौन हवा-पानी दे रहा है? इसका पालक कौन है? कहीं इसके पालन की जिम्मेदारी भी तुम्हारे कंधों पर तो नहीं आ पड़ी है शिवा? शिवाजी गुरु की बात का मर्म समझकर लज्जित हो गए। गुरु ने उन्हें समझाया, पालक तो सबका परम पिता परमेश्वर है। हम-तुम तो माध्यम भर हैं। उस पर विश्वास रखो। सफलता अवश्य मिलेगी। शिवाजी गुरु का संकेत तुरंत समझ गए।

४५८) जीवन का आधार- नील माधव बंधोपाध्याय बंगाल के एक मशहूर जज थे। वे अपनी सत्यनिष्ठा के लिए जाने जाते थे। कभी किसी भी प्रलोभन से उनका मन नहीं डिगा, लेकिन बड़े से बड़े आदमी से भी कोई न कोई चूक हो ही जाती है। एक बार बीमा एजेंट के आग्रह करने पर उन्होंने अपने आपको स्वस्थ बताकर पांच हजार रुपए का जीवन बीमा करवा लिया जबकि वह एक रोग से पीड़ित थे। उसी के चलते वह धीरे-धीरे और अस्वस्थ होते गए। इससे जीवन के अंतिम दिनों में वे अति क्षुब्ध और अशांत हो गए। उन्हें देखकर उनके परिचित और संबंधी सभी उदास थे, लेकिन कोई कुछ बोल नहीं रहा था। अंत में संबंधियों ने उनसे अशांत और दुखी रहने का कारण पूछ ही लिया। बंधोपाध्याय जी बोले, पांच वर्ष पहले बीमा कराते समय मैंने डॉक्टर को अपने मधुमेह के बारे में नहीं बताया। मैंने सच्चाई छुपाकर गलती की है। यही असत्य आचरण मुझे दिन-रात अशांत रखता है। आत्मग्लानि होती है और मैं प्रायश्चित करना चाहता हूं। बीमा एजेंट को तुरंत बुला दें ताकि मैं बीमा रद्द करा दूं। मैं नहीं चाहता कि ऐसा पैसा मेरे बाद मेरे वारिसों को मिले। लोगों ने बीमा एजेंट को बुलवा लिया। बीमा एजेंट ने आकर उनकी सारी बात सुनी। सारी बातें सुनने के बाद एजेंट ने कहा, आप बेकार परेशान हैं। ऐसा तो होता रहता है। आपने इस झूठ से कंपनी का कोई अहित तो किया नहीं। लेकिन माधव बाबू उसकी बात से सहमत नहीं हुए और बीमा रद्द करवा दिया। फिर बोले, अब मेरा मन शांत है। आखिर मैं अपने आपसे न्याय कर सका। इसके बाद उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए।

४५९) झूठ बोलने का गुनाह- ईमानदारी और सच्चाई गोपाल राव में कूट-कूटकर भरी थी। अपनी इस विशेषता के कारण सभी अध्यापकों का प्यार पाते थे। गोपाल राव शुरू से ही गणित में दिलचस्पी रखते थे। एक दिन गोपाल के अध्यापक ने उन्हें गणित के कुछ सवाल हल करने को दिए। अगले दिन जब अध्यापक ने पूरी कक्षा के सवाल जांचे, तो पता लगा कि गोपाल के अलावा कोई भी छात्र सवाल सही नहीं कर पाया था। अध्यापक बहुत प्रसन्न हुए और गोपाल से बोले- कल से तुम सबसे आगे बैठा करो। तुम इस कक्षा के सबसे होनहार विद्यार्थी हो। तुमने अपनी मेहनत से सारे सवाल हल किए हैं, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। गोपाल ने जब यह बात सुनी, तो वह रो पड़े। अध्यापक को आश्चर्य हुआ। वे उनके पास पहुंचे और कहने लगे- बेटा गोपाल राव। हमने तो सोचा था कि हमारी बात से तुम्हें खुशी होगी, परंतु तुम तो रो रहे हो। ठीक है, यदि तुम सबसे आगे नहीं बैठना चाहते हो, मत बैठो, पर ये रोना तो बंद करो। गोपाल संकोच से बोले- मैं आगे बैठने की बात पर नहीं हो रहा हूं। रो रहा हूं क्योंकि मैंने गुनाह किया है, झूठ बोलने का गुनाह। झूठ

बोलने का गुनाह, वह कैसे? अध्यापक ने पास पहुंचकर गोपाल के सिर पर हाथ रखते हुए पूछा। मैंने आपसे झूठ कह दिया कि सवाल मैंने हल किये हैं। गोपाल राव ने सिसकते हुए कहा- सच तो यह है कि ये सवाल मैंने अपने बड़े भाई से पूछकर हल किए हैं। मुझे आप सजा दीजिए। कहकर गोपाल सिसक पड़े। अध्यापक उनके सच से बड़े प्रभावित हुए और उनसे भविष्य में सच के मार्ग पर चलने को कहा।

४६०) मिट्टी की पूजा- एक बार एक विदेशी मेहमान देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद से मिलने पहुंचा। डॉ. प्रसाद के सेवक ने आगंतुक को बताया कि राजेंद्र बाबू अभी पूजा कर रहे हैं, इसलिए वह कृपया प्रतीक्षा करे। विदेशी मेहमान कुछ देर बैठा रहा, फिर उसके भीतर उत्सुकता जागी। वह देखना चाहता था कि आखिर राजेंद्र बाबू किस तरह पूजा कर रहे हैं, हालांकि वह अंदर जाने से कतरा रहा था। लेकिन उससे नहीं रहा गया। आखिरकार वह वहां पहुंच ही गया। वहां जाकर वह राजेंद्र बाबू को पूजा करते हुए देखने लगा। राजेंद्र बाबू ने मिट्टी की एक डली के सामने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़े और सिर झुकाया। यह देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। राजेंद्र बाबू पूजा से उठे तो सामने विदेशी आगंतुक को पाकर प्रसन्न हो गए और उसे बैठक में ले गए। वह आगंतुक के चेहरे के भाव को देखकर ही समझ गए कि उसके भीतर उनकी पूजा को लेकर कोई न कोई सवाल उठ रहा है। बैठक में पहुंचते ही सबसे पहले आगंतुक ने उनसे मिट्टी की डली को पूजने का कारण पूछा और इसके पीछे के दर्शन को स्पष्ट करने को कहा। राजेंद्र बाबू उसकी जिज्ञासा मिटाते हुए बोले, मिट्टी की यह डली भारत की पवित्र माटी की प्रतीक है। हमारे यहां मिट्टी को ईश्वर की नियामत माना गया है। इस पवित्र मिट्टी व नदियों के जल के माध्यम से ही हम असंख्य उपयोगी द्रव्य प्राप्त करते हैं, इसलिए हम भारतीय प्रकृति के कण-कण में ईश्वर के दर्शन करते हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव, पशु-पक्षी, कंकड़-पत्थर सबमें ईश्वर विराजमान है। यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

४६१) कछुआ वाले बाबा- एक साधु गंगा किनारे झोपड़ी बनाकर रहते थे। सोने के लिए बिस्तर, पानी पीने के लिए मिट्टी का घड़ा और दो कपड़े- बस, यही उनकी जमा पूंजी थी। उन्होंने एक कछुआ पाल रखा था। सुबह स्नान कर वे पास की बस्ती में जाते और वहां कोई न कोई गृहस्थ उन्हें रोटी दे देता। कछुए के लिए वे थोड़े चने भी मांग लेते थे। वे रोटी खाते और कछुआ भीगे चने खाता। उनकी पहचान उस कछुए से हो गई थी। बहुत से लोग उन्हें कछुआ वाला बाबा भी कहते थे। पर एक दिन एक व्यक्ति ने उनसे पूछा- आपने यह गंदा जीव क्यों पाल रखा है? इसे गंगा में डाल दीजिए। उस व्यक्ति की बात सुनकर साधु बोले- कृपया ऐसा न कहें। इस कछुए को मैं अपना गुरु मानता हूं। साधु की बात सुनकर व्यक्ति हंसते हुए बोला- भला कछुआ भी किसी का गुरु बन सकता है? साधु बोले- देखो, किसी तरह की आहट पाकर या किसी के स्पर्श से यह अपने सभी अंग भीतर खींचकर गुड़ी-मुड़ी हो जाता है। चाहे जितना हिलाओ, यह अपना एक अंग तक नहीं हिलाता। मनुष्य को भी इस प्रकार लोभ, क्रोध, हिंसा आदि दुर्गुणों से स्वयं को बचाकर रखना चाहिए। ये चीजें उसे कितना भी आमंत्रण दें, किंतु इनसे अप्रभावित रहना चाहिए। इस कछुए को जब-जब देखता हूं, मुझे यह बात याद आ जाती है। यह कछुआ मुझे सदैव ही प्रेरणा देता है। ईश्वर ने संपूर्ण प्रकृति की रचना सोद्देश्य की है। मानव जीवन को सुख व शांति से परिपूर्ण करनेवाले सभी प्रेरक तत्व प्रकृति में मौजूद हैं। आवश्यकता इन्हें पहचानने की है। वह व्यक्ति

लज्जित हो गया। उसने साधु से अपनी बात के लिए क्षमा मांगी।

४६२) रक्षा मंत्री का पत्र- एक बार अमेरिकी सेना के एक प्रमुख अधिकारी ने रक्षा मंत्री के आदेश को ठीक से समझ न पाने के कारण कोई भूल कर दी। जब रक्षा मंत्री को यह बात मालूम हुई तो वह राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के पास पहुंचे और गुस्से से कांपते हुए बोले, श्रीमान, बहुत बड़ी गड़बड़ हो गई है। पता नहीं अब क्या होगा। लिंकन के पूछने पर रक्षा मंत्री ने उन्हें विस्तार से पूरी कहानी बताई। वह फिर क्रोध में कहने लगे, मैं उस जनरल के बच्चे को छोड़ूंगा नहीं। अब आप देखना, मैं कैसे उसकी खिंचाई करता हूं। मैं अभी उसे पत्र लिखता हूं। इस पर लिंकन बोले, बिल्कुल ठीक। आप उसे जरूर पत्र लिखिए और जितने कठोर से कठोर शब्द हो सकते हैं, उनका प्रयोग कीजिए। अपने नेता की स्वीकृति मिलते ही रक्षा मंत्री ने अपने मन की भड़ास निकालते हुए गालियों से भरा पत्र लिखा। पत्र पूरा हो जाने पर वह राष्ट्रपति महोदय की मेज के पास पहुंचे और विनम्रतापूर्वक बोले, श्रीमान। एक बार आप भी पत्र देख लें। बिना रक्षा मंत्री की ओर देखे ही राष्ट्रपति लिंकन ने कहा, ठीक है। इस पत्र को फाड़कर फेंक दीजिए, ऐसे पत्र मन में बसी कड़वाहट और भड़ास निकालने के लिए ही लिखे जाते हैं। मैं भी इस तरह की समस्या आने पर ऐसा ही करता हूं और जहां तक मैं समझता हूं अब आपने अपने मन की कड़वाहट और क्रोध पर काबू पा लिया होगा। लिंकन की यह बात सुनकर रक्षा मंत्री सोचने पर मजबूर हो गए। उन्हें इस बात का अहसास हो गया कि क्रोध में आकर कोई फैसला करना ठीक नहीं है। उन्होंने पत्र फाड़ डाला और चुपचाप चले गए।

४६३) दार्शनिक का स्वाभिमान- विख्यात दार्शनिक एरिक हॉफर बचपन से ही काफी मेहनती थे। वह कठिन से कठिन काम करने से भी नहीं घबराते थे। काम करते समय उन्हें परवाह भी नहीं होती थी कि उन्होंने खाना खाया है या नहीं। एक बार उनका काम छूट गया और उनकी आर्थिक स्थिति बेहद खराब हो गई। अनेक प्रयासों के बाद भी उन्हें कहीं रोजगार नहीं मिला। लेकिन पेट तो भरना ही था। तीन-चार दिन उन्हें भूखे रहते हुए हो गए। भूख से व्याकुल हॉफर कुछ काम पाने की आस में घूम रहे थे। वह एक होटल पहुंचे। होटल वाला उन्हें पहचान गया। वह उनके लेखन से परिचित था। उसने उनके अनेक लेख पढ़े थे और उनका प्रशंसक भी था। उसने उनसे बड़े प्रेम से पूछा कि वह भोजन में क्या लेंगे? एरिक हॉफर ने कहा, मैं भूखा तो हूं और भोजन भी करना चाहता हूं लेकिन उसके लिए मेरी एक शर्त है। यह सुनकर होटल मालिक बोला, बताइए, मैं आपकी शर्त मानने के लिए तैयार हूं। हॉफर बोले, भोजन के बदले आप मुझसे कुछ काम अवश्य करवाएंगे। मैं नि:शुल्क भोजन नहीं करूंगा और इस समय मेरे पास पैसे नहीं है। इसलिए पैसे के बदले आप मेरी सेवा ले सकते हैं। होटल मालिक यह सुनकर हैरत में पड़ गया पर वह क्या करता। उसने उन्हें भरपेट खाना खिलाया। उसके बाद हॉफर ने होटल में अन्य वेटरों की तरह कुछ देर तक मन लगाकर काम किया। फिर वह होटल मालिक के प्रति आभार व्यक्त करके वहां से निकले। होटल मालिक एरिक हॉफर के स्वाभिमान का कायल हो गया। हॉफर ने अपने स्वाभिमान और मेहनत के बल पर अपनी अलग पहचान बनाई।

४६४) खोटे सिक्के - एक दिन एक महात्मा किसी राजा के दरबार में बैठे हुए थे। ठीक उसी समय महात्मा जी का एक शिष्य वहां आया और रुआंसा होकर कहने लगा, यहां के दुकानदार तो बहुत ही खराब हैं। जब मैं एक सिक्का लेकर

सामान खरीदने गया तो उन्होंने कहा कि तुम्हारा सिक्का खोटा है, इसलिए तुम्हें यहां सामान नहीं मिल सकता। तुम महात्मा जी के शिष्य हो, इसलिए छोड़े देते हैं अन्यथा तुम्हें हम दंड दिलाकर ही रहते। राजा भी उसकी यह बात सुन रहा था। उसने पूछा यह सिक्का तुम्हें किसने दिया है? क्या तुम्हें मेरे कानून का पता नहीं है। यह तो सचमुच खोटा है और खोटा सिक्का चलानेवाले को मैं सख्त दंड देता हूं। मैं जानता हूं कि तुमने यह नहीं बनाया होगा, पर बताओ यह सिक्का किसने दिया? इस पर महात्मा ने राजा की बात को रोकते हुए कहा, यह सिक्का खोटा है तो क्या हुआ, इस पर राजा की छाप तो बनी ही है। राजा ने कहा, मैं और कुछ नहीं जानता। बस, मेरा सिक्का सच्चा होना चाहिए। मेरी छाप होने पर भी खोटा सिक्का बनाना और चलाना मेरे राज्य में बहुत बड़ा अपराध है। इस पर महात्मा बोले, राजन्, आपका शासन अन्याय से पूरी तरह मुक्त नहीं है। आप निरपराध को सजा देते हैं। युद्ध के नाम पर रक्तपात करते हैं। ऐसा करना क्या खोटा सिक्का चलाने के समान अपराध नहीं है? राजा महात्मा की बात को समझ गया। उसने पूछा, तब फिर मुझे अब क्या करना चाहिए। महात्मा बोले, तुम्हें शासन ठीक ढंग से करना चाहिए। जब ऐसा हो जाएगा तभी तुम्हारे शासन में खोटा सिक्का खत्म हो सकेगा।

४६५) सबसे अच्छी चीज दें- एक बार राम मनोहर लोहिया फर्रुखाबाद से शिकोहाबाद रेल पकड़ने जा रहे थे। रास्ते में एक जगह कव्वाली का आयोजन हो रहा था। आवाज सुनते ही उन्होंने गाड़ी रुकवाई और कव्वाली सुनने चले गए। वहां उन्हें एक व्यक्ति ने पहचान लिया और बोला अरे लोहिया जी आप यहां? फिर धीरे-धीरे सभी ने उन्हें पहचान लिया और काफी लोग वहां उनसे दुआ सलाम करने लगे। जिस व्यक्ति ने लोहिया जी को सबसे पहले पहचाना था वह बहुत ही गरीब था। उसने जोरदार सर्दी में भी केवल लुंगी और कमीज पहनी हुई थी। डॉक्टर साहब ने उस व्यक्ति से पूछा- तुमने ऊनी कपड़े क्यों नहीं पहने? वह बोला- साहब मैं गरीब आदमी हूं। ऊनी कपड़े नहीं हैं। यह सुनते ही डॉक्टर साहब ने जनेश्वर मिश्र जी से कहा- मेरे बक्स में दो स्वेटर रखे हैं, एक स्वेटर लेकर आओ। जनेश्वर जी ने बक्स खोला तो उसमें एक आधी बाजू की और एक पूरी बाजू की स्वेटर थी। उन्होंने आधी बाजू की स्वेटर देखते ही लोहिया जी ने कहा- आप फिर जाइए और दूसरी वाली लेकर आइए। इस बार वह पूरी बाजू की स्वेटर लेकर आए और डॉक्टर साहब को दे दी। डॉक्टर साहब ने आधी बाजू की स्वेटर के बजाय उस व्यक्ति को पूरी बाजू की स्वेटर भेंट कर दी। वह बहुत खुश हो गया और डॉक्टर साहब को दुआएं देने लगा। वहां से निकल आने पर डॉक्टर साहब ने जनेश्वर मिश्र से पूछा- तुमने अपनी गलती महसूस की? देखो, <u>किसी को कभी कुछ देना हो तो अपने पास जो सबसे अच्छी चीज है, वही उसे देनी चाहिए</u>।

४६६) उम्मीदवारों का चयन- एक समय चुनावी माहौल बना हुआ था। लोगों में टिकट लेने के लिए होड़ मची हुई थी। नेताओं के रिश्तेदारों को लग रहा था कि अब बस उनकी चांदी है। उनके रिश्तेदार उन्हें आसानी से टिकट दे देंगे जिसके बल पर वे चुनाव लड़ेंगे और जीतकर अपने वारे-न्यारे करेंगे। उत्तर प्रदेश के उम्मीदवारों का चयन लाल बहादुर शास्त्री के हाथों में था। वहां भी उम्मीदवारों की लंबी लाइन लगी हुई थी। सभी उम्मीदवारों ने अपने नामांकन भरकर जमा करा दिए। जिस दिन चयन-सूची लगनी थी, उस दिन भारी भीड़ लाल बहादुर शास्त्री के आस-पास जमा थी। चयन-सूची बोर्ड पर लगा दी गई। सभी उम्मीदवार वहां अपना नाम तलाशने में लगे थे। जब उम्मीदवारों की भीड़ वहां से छंट गई तो

एक व्यक्ति शास्त्रीजी के पास आया और बोला, भैया कैसे हैं? लाल बहादुर शास्त्री जी उसकी ओर देखकर मुस्कराए और बोले, आप बताइए। मैं तो अच्छा हूं। यह सुनकर वह व्यक्ति बुरा सा मुंह बनाते हुए बोला, अरे, आप हमारे संबंधियों में से हैं। ऐसे में आपने हमारा नाम चुने गए उम्मीदवारों में क्यों नहीं शामिल किया। उसकी बात सुनकर शास्त्रीजी बोले, चुनाव कोई पारिवारिक कार्य या विवाह का आयोजन नहीं है जिसमें संबंधियों का होना जरूरी हो। देशहित के लिए किए जा रहे चुनावों में योग्य व शिक्षित उम्मीदवारों का होना अनिवार्य है न कि अशिक्षित और अयोग्य संबंधियों का। देश प्रतिभाशाली और ईमानदार लोगों के चुनकर आने से चलता है। संबंधियों के चुने जाने से नहीं। शास्त्रीजी की बात सुनकर वह व्यक्ति लज्जित हो गया और वहां से चला गया।

४६७) मानवता का धर्म- बात उन दिनों की है जब जापान में बौद्ध धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं थे। तभी वहां के एक प्रसिद्ध धार्मिक विद्वान तेत्सुजेन ने जापानी भाषा में उन्हें प्रकाशित कराने का निर्णय लिया। लेकिन इस काम के लिए उनके पास पैसा नहीं था। तेत्सुजेन ने इसके लिए आम लोगों से चंदा मांगना शुरू कर दिया। दस सालों तक उन्होंने चंदा मांगकर इतना धन एकत्र कर लिया जिससे ग्रंथ आसानी से प्रकाशित किया जा सकता था। लेकिन तभी उनके इलाके में बाढ़ आ गई। लोग बेघर हो गए। तेज्सुजेन ने उदारता दिखाते हुए चंदे में मिला वह सारा धन बाढ़ पीड़ितों की सहायता में खर्च कर दिया। इसके बाद उन्होंने फिर से प्रकाशन के लिए चंदा मांगना प्रारंभ कर दिया। लगभग दस सालों में उन्होंने फिर उतना ही धन जुटा लिया जितनी उन्हें ग्रंथ के लिए आवश्यकता थी। लेकिन तभी देश में महामारी फैल गई और उन्होंने फिर सारा धन रोगियों की सेवा में लगा दिया। जब तीसरी बार उन्होंने ग्रंथ प्रकाशन के लिए लोगों से चंदा मांगना शुरू किया तो लोग नाराज हो गए। उन्होंने तेत्सुजेन को उलाहना देना शुरू कर दिया- आप पैसा तो ग्रंथ छापने के नाम पर ले जाते हैं, लेकिन खर्च किसी और ही काम में कर देते हैं। इस पर तेत्सुजेन ने जवाब दिया- ग्रंथ प्रकाशन से कहीं ज्यादा श्रेयस्कर मरते हुए लोगों को बचाना होता है। तेत्सुजेन ने लोगों से हाथ जोड़कर कहा कि मनुष्य को सबसे पहले देश के लोगों के विषय में चिंता करनी चाहिए, धर्म की बाद में। क्योंकि जनमानस और आवाम बचेगा तभी तो धर्म का अस्तित्व रहेगा। तेत्सुजेन की बातें सुनकर लोगों को उनकी उदारता का एहसास हो गया।

४६८) जेल में उपन्यास- पश्चिम जर्मनी के एक नगर में जाइगर नाम युवक नौकरी की तलाश में था। उसे एक मोटर कंपनी में सफाई का काम मिल गया। वह उसे इतनी निष्ठा और मुस्तैदी के साथ करने लगा कि मालिक के चहेतों में शामिल हो गया। उसके प्रति मालिक का यह भरोसा देख बाकी कर्मचारी उससे जलने लगे। उन्होंने चालबाजी से उसे झूठे इलजाम में फंसा दिया। पकड़े जाने पर उसे जेल की सजा काटनी पड़ी। जेल में उसका एक गिरोह तैयार हो गया। यह गिरोह जेल से बाहर निकलने के बाद डकैती डालने लगा। जल्द ही जाइगर दोबारा पकड़ लिया गया। उसे फिर जेल की सजा हो गई। दूसरी बार जब वह जेल पहुंचा तो उसे आत्मग्लानि और पश्चाताप होने लगा। ऐसे ही किन्हीं क्षणों में उसने साबुन के रैपर पर अपनी व्यथा एक कविता के रूप में लिख डाली। उसकी कविता एक दिन जेल के पादरी के हाथ लग गई। उसे लगा कि इस व्यक्ति का सुधार रचनात्मक रास्ते से किया जा सकता है। उसने जेल के अधिकारियों से आग्रह करके जाइगर के लिए लिखने का साजोसामान जुटवा दिया। यह देखकर जाइगर का मन रम गया। उसने जेल में

एक उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। जेल से बाहर आया तो उसने मजदूरी शुरू कर दी। लेकिन वह समय मिलने पर उपन्यास लिखता रहा। उसका उपन्यास दि फोर्टेस के नाम से प्रकाशित हुआ। इस रचना ने उसे पूरे जर्मनी में मशहूर कर दिया। एक सजायाफ्ता से एक प्रसिद्ध लेखक बनना मनुष्य की असीम संभावनाओं की कहानी है। हममें से प्रत्येक में ये संभावनाएं हैं। जरूरत है, बस कोशिश करके उन्हें साकार करने की।

४६९) एक अमीर व्यापारी था। उसके चार बेटे थे। वह अपने चौथे बेटे से सबसे ज्यादा प्यार करता था, क्योंकि वह दिखने में आकर्षक था। वह उसका बहुत ख्याल रखता। वह तीसरे बेटे से भी प्यार करता। उस पर गर्व करता। उसे अपने दोस्तों से मिलाता। वह दूसरे बेटे से भी प्यार करता, क्योंकि वह विचारशील था और विश्वासपात्र भी। जब भी व्यापारी किसी समस्या से घिर जाता, उसका दूसरा बेटा उसे समस्या से बाहर निकाल लाता। व्यापारी का पहला बेटा बहुत ईमानदार था। व्यापारी की संपत्ति और उसके व्यापार को संभालने में उसका खासा योगदान था। हालांकि व्यापारी उससे प्यार नहीं करता था , लेकिन वह उन्हें बहुत प्यार करता था। एक दिन व्यापारी बीमार पड़ गया। उसे समझ आ गया कि अब वह मरनेवाला हे। उसने चौथे बेटे से कहा, आज तक तुमने मुझसे जो मांगा, मैंने तुम्हें दिया। अब जबकि मैं मर रहा हूं, क्या तुम भी मौत में मेरा साथ दोगे? बेटा बोला- कभी नहीं। व्यापारी को धक्का लगा। वह टूट गया। उसने तीसरे बेटे से भी यही पूछा। उसने कहा, मैं तो जीना चाहता हूं मै। अपना नया बिजनेस शुरू करूंगा। व्यापारी निढाल हो गया। वह रोने लगा। उसने दूसरे बेटे से पूछा- तुमने हमेशा मुझे मुसीबतों से निकाला है, क्या तुम मरोगे मेरे साथ? दूसरा बेटा बोला- सॉरी, मैं अंतिम संस्कार तक आपके साथ रहूंगा। बसव्यापारी ने पछताते हुए कहा- काश, मैंने तुम्हें सबसे ज्यादा प्यार किया होता, तुम्हारी देखभाल की होती है। हम सभी की जिंदगी में चार बेटे हैं। चौथा बेटा हमारा शरीर है। हम उसकी कितनी भी देखभाल करें, एक दिन हमें छोड़कर जाएगा हीं तीसरा बेटा है हमारी संपत्ति। जब हम मर जाते हैं, तो वह दूसरे के पास चला जाता है। दूसरा बेटा हमारा परिवार व दोस्त है। जब हम जिंदा होते हैं, तब भले ही वे कितने करीब क्यों न हों, मरने के बाद सिर्फ अंतिम संस्कार तक साथ रह सकते हैं। पहला बेटा है हमारी आत्मा, जिसकी हम रुपए, पैसे, शोहरत, खूबसूरती की चकाचौंध में हमेशा उपेक्षा करते हैं। दरअसल वही एकमात्र चीज हैं, जो हमेशा हमारा साथ देती है। बेहतर होगा कि हम उसे मजबूत बनाएं, उसका ख्याल रखें।

४७०) एक बूढ़ा व्यक्ति था वह लोगों को पेड़ पर चढ़ने व उतरने की कला सिखाता था। जो उनको मुसीबत के समय और जंगली जानवरों से रक्षा के काम भी आती थी। एक दिन एक लड़का उस बूढ़े व्यक्ति के पास आया और विनम्रता पूर्वक निवेदन करते हुए बोला कि उसे इस कला में जल्द से जल्द निपुण होना है। बूढ़े व्यक्ति ने उसे यह कला सिखाते हुए बताया कि किसी भी काम को करने के लिए धैर्य और संयम की बड़ी आवश्यकता होती है। लड़के ने बूढ़े की बात को अनसुना कर दिया। एक दिन बूढ़े व्यक्ति के कहने पर वह एक ऊंचे पेड़ पर चढ़ गया। बूढ़ा व्यक्ति उसे देखता रहा और उसका हौसला बढ़ाता रहा पेड़ से उतरते उतरते जब वह लड़का आखिरी डाल पर पहुंचा तब बूढ़े व्यक्ति ने कहा कि बेटा जल्दी मत करना सम्भलकर उतरो। लड़के ने सुना और धीरे-धीरे उतरने लगा।

नीचे आकर लड़के ने हैरानी के साथ अपने गुरु से पूछा कि जब मैं पेड़ की चोटी पर था तब आप चुपचाप बैठे रहे और जब मैं आधी दूर तक उतर आया तब आपने मुझे सावधान रहने को कहा ऐसा क्यों। तब बूढ़े व्यक्ति ने उस लड़के को

समझाते हुए कहा कि जब तुम पेड़ के सबसे ऊपर भाग पर थे तब तुम खुद सावधान थे जैसे ही तुम अपने लक्ष्य के नजदीक पहुंचे तो जल्दबाजी करने लगे और जल्दी में तुम पेड़ से गिर जाते और तुम्हें चोट लग जाती।

कथा बताती है कि अपने निर्धारित लक्ष्य को पाने के लिए कभी भी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए क्योंकि कई बार की गई जल्दबाजी ही लक्ष्य को पाने में परेशानी बन जाती है।

४७१) महात्मा गांधी के पौत्र डॉ. अरुण गांधी ने बताया कि जब वह १६ साल के थे अपने माता-पिता के साथ दादा द्वारा डरबन में स्थापित एक संस्थान में रहता था, हमारा निवास डरबन शहर से १८ मील दूर गन्ने के खेतों के बीचो-बीच था। हमारे घर के आसपास कोई पड़ोसी नहीं था, इसलिए मैं और मेरी बहनें हमेशा शहर जाने, फिल्म देखने की फिराक में रहते। एक दिन मेरे पिताजी ने मुझसे कार चलाकर शहर चलने को कहा। वहां उन्हें एक सम्मेलन में भाग लेना था। चूंकि मैं शहर जा रहा था, इसलिए मां ने मुझे रोजमर्रा के सामानों की एक लंबी सूची पकड़ा दी। पिताजी ने भी मुझे कार की सर्विस कराने को कहा। सुबह मैंने अपने पिताजी को सही समय पर सम्मेलन स्थल पर छोड़ दिया। वे बोले, शाम को ठीक पांच बजे मिलेंगे और साथ-साथ घर चलेंगे।

मैंने जल्दी-जल्दी सारे काम निपटाये और नजदीक ही स्थित एक सिनेमा घर पहुंच गया। जॉन बायने की डबलरोलवाली उस फिल्म को देखने में मैं इतना मग्न हो गया कि शाम के ५.३० बज गये। मैं भागता हुआ कार गैरेज पहुंचा और कार लेकर पिताजी के पास पहुंचा। तब तक शाम के छह बज चुके थे। पिताजी ने चिंतित स्वर में पूछा, तुम्हें इतनी देर कैसे हो गयी?

मुझे यह बताने में शर्म आयी कि मैं फिल्म में मग्न हो गया और समय का ध्यान नहीं रहा। मैंने झूठ बोला- कार की सर्विस समय पर नहीं हो पायी थी, इसलिए मुझे इंतजार करना पड़ा। मुझे यह नहीं पता था कि पिताजी पहले ही गैरेज में जाकर पूछताछ कर चुके हैं। मेरा झूठ पकड़ने के बाद उन्होंने मुझसे कहा- मुझसे तुम्हारे लालन-पालन में जरूर ऐसी कोई गलती हो गयी होगी कि तुम्हें मुझसे सत्य बोलने का साहस नहीं है। यह पता लगाने के लिए कि मुझसे कहां गलती हो गयी, मैं घर तक १८ मील पैदल चलकर ही जाऊंगा। सूट और जूते पहने हुए पिताजी अंधेरे रास्ते में पैदल ही चल दिये।

४७२) बहुत समय पहले की बात है, किसी गांव में एक किसान रहता था। वह रोज सुबह उठकर दूर झरनों से स्वच्छ पानी लेने जाया करता था। इस काम के लिए वह अपने साथ दो बड़े घड़े ले जाता था, उनमें से एक घड़ा कहीं से फूटा हुआ था और दूसरा एकदम ठीक था। इस वजह से रोज घर पहुंचते-पहुंचते किसान के पास डेढ़ घड़ा पानी ही बच पाता था। ऐसा दो सालों से चल रहा था। ठीक घड़े को इस बात का घमंड था कि वो पूरा का पूरा पानी घर पहुंचाता है और उसके अंदर कोई कमी नहीं है, वहीं दूसरी तरफ फूटा घड़ा इस बात से शर्मिंदा रहता था कि वो आधा पानी ही घर तक पहुंचा पता है और किसान की मेहनत बेकार चली जाती है। फूटा घड़ा इस बात से बहुत परेशान रहने लगा और एक दिन उससे रहा नहीं गया, उसे किसान से कहा, मैं खुद पर शर्मिंदा हूं और आपसे क्षमा मांगना चाहता हूं? क्यों? किसान ने पूछा, तुम किस बात से शर्मिंदा हो? फूटे घड़े ने दुखी होते हुए कहा- शायद आप नहीं जानते कि मैं एक जगह से फूटा हुआ हूं और पिछले दो सालों से मुझे जितना पानी घर पहुंचाना चाहिए था, उसका आधा ही पहुंचा पाया हूं, इस वजह से आपकी मेहनत बर्बाद हो रही है। किसान बोला, कोई बात नहीं, मैं चाहता हूं कि आज लौटते वक्त तुम रास्ते में पड़नेवाले

सुंदर फूलों को देखो। घड़े ने वैसा ही किया, वह रास्ते भर सुंदर फूलों को देखता आया, ऐसा करने से उसकी उदासी कुछ दूर हो गई। पर घर पहुंचते-पहुंचते फिर वह मायूस हो गया। किसान बोला- शायद तुमने ध्यान नहीं दिया। रास्ते में जितने भी फूल थे वो सिर्फ तुम्हारी तरफ ही थे। ऐसा इसलिए क्योंकि मैं पहले से तुम्हारी कमी को जानता था और मैंने उसका लाभ उठाया। मैंनें तुम्हारी तरफ के रास्ते पर फूलों के बीज बो दिये थे। तुम रोज थोड़ा-थोड़ा उन्हें सींचते रहे और पूरे रास्ते को इतना खूबसूरत बना दिया। आज तुम्हारी वजह से ही मैं इन फूलों को भगवान को अर्पित कर पाता हूं और अपना घर सुंदर बना पाता हूं। अगर तुम जैसे हो, वैसे न होते तो क्या मैं ये सब कर पाता?

४७३) स्वामीजी और अंग्रेज- स्वामी दयानंद सरस्वती को आर्य समाज के संस्थापक और समाज सुधारक के रूप में ही जाना जाता है। आजादी के लिए किए गए प्रयत्नों में उनकी भूमिका की जानकारी बहुत कम लोगों को है। वे अपने प्रवचनों में अक्सर श्रोताओं को राष्ट्रीयता का उपदेश देते और देश के लिए मर मिटने की भावना भरते थे। १८५५ में हरिद्वार में जब कुंभ का मेला लगा तो उसमें शामिल होने के लिए स्वामीजी ने आबू पर्वत से हरिद्वार तक पैदल यात्रा की थी। रास्ते में उन्होंने जगह-जगह प्रवचन दिए और देशवासियों की नब्ज टटोली। उन्होंने महसूस किया कि लोग अंग्रेजों के अत्याचारों से तंग आ चुके हैं और आजादी के लिये संघर्ष करने को आतुर हैं। एक बार अंग्रेज अधिकारी ने स्वामीजी से कहा- अपने व्याख्यान के प्रारंभ में आप जो ईश्वर की प्रार्थना करते है, क्या अंग्रेजी सरकार के कल्याण के लिए भी कर सकेंगे। स्वामी जी ने उन्हें निर्भीकता से उत्तर दिया- परमात्मा के समक्ष प्रतिदिन मैं यही प्रार्थना करता हूं कि मेरे देशवासी विदेशी सत्ता के बंधनों से जल्दी से जल्दी मुक्त हों। जनरल को स्वामी जी से ऐसे तीखे उत्तर की आशा नहीं थी। मुलाकात समाप्त कर दी गई और स्वामी जी लौट आए। इसके बाद सरकार के गुप्तचर विभाग की स्वामीजी और आर्य समाज पर गहरी नजर बनी रही। उनकी हर गतिविधि और शब्द का रिकॉर्ड रखा जाने लगा। आम जनता पर उनके असर से सरकार को एहसास होने लगा कि यह बागी फकीर और आर्य समाज किसी भी दिन सरकार के लिए खतरा बन सकते हैं। इसलिए स्वामीजी को समाप्त करने के लिए तरह-तरह के षडयंत्र रचे जाने लगे।

४७४) द्रोबीवे को भलाई का फल भी अच्छा मिला- द्रोबीवे नामक एक परोपकारी युवक था। दो बार उसके पिता ने उसे धन कमाने के लिए जहाज में सामान लादकर व्यापार के लिए भेजा, लेकिन हर बार उसने अपना धन संकटग्रस्त लोगों को कैद से छुड़ाने में लगा दिया अंतत: उसे भलाई का सुफल मिला।

तुर्की की लोककथा है। द्रोबीवे के पिता ने उसे काम करने का आदेश दिया। वह अपना जहाज लेकर चल दिया। जब उसका जहाज बीच समुद्र में पहुंचा तो उसे एक अन्य जहाज में से लोगों के चिल्लाने की आवाज सुनाई दी। उसने कप्तान से पूछा, तो वह बोला- ये कैदी हैं। हम उन्हें बेचने के लिए ले जा रहे हैं। द्रोबीवे ने अपने व्यापारिक सामानों से लदी जहाज के बदले में कप्तान से उन गुलामों को खरीद लिया और एक लड़की व उसकी आया को छोड़कर सभी को उनके देश पहुंचा दिया। लड़की रूस के जार की बेटी थी। द्रोबीवे के विवाह प्रस्ताव को भी उसने स्वीकार कर लिया। द्रोबीवे अपने पिता से जाकर बोला- मैंने आपके धन से इतने लोगों को कैद से छुड़ाया। किंतु पिता खुश नहीं हुए। कुछ दिनों बाद उन्होंने द्रोबीवे को दूसरा व्यापारिक जहाज दिया लेकिन इस बार उसने राज्य की ओर से लगाए गए कर को अदा न कर

पाने के कारण कैद में रह रहे लोगों को अपने जहाज का सामान बेचकर छुड़वा लिया। पिता फिर नाराज हुए। उन्होंने अंतिम मौका द्रोबीवे को दिया। इस बार उसकी भेंट रूस के जार के मंत्री से हुई। द्रोबीवे अपनी पत्नी व माता-पिता को लेकर रूस के लिए रवाना हुआ। मंत्री ने उसे समुद्र में धक्का देकर मारना चाहा। लेकिन एक मछुआरे ने उसे बचाकर रूस पहुंचाया। जार ने प्रसन्न हो अपना संपूर्ण राज्य उसे दे दिया।

परोपकार का फल सदैव मीठा होता है। जो लोग दूसरों का भला चाहते हैं और करते हैं, ईश्वर उनका भला ही करता है।

४७५) प्यास- सिकंदर भारत आया। एक फकीर से मिला। फकीर नग्न था। सिकंदर ने कहा- तुम्हारे पास कुछ भी नहीं। फकीर ने कहा- यह सारा जगत मेरा है। मैंने इसे बिना जीते जीत लिया है। सिकंदर ने पूछा- बिना जीते कोई कैसे जगत को जीत सकता है।

उस फकीर ने कहा- मैंने इस जगत के मालिक को जीत लिया है और जब मालिक अपने हाथ में है तो कौन फिक्र करे छोटी-मोटी चीजों को जीतने की। जब मालिक अपना है तो उसकी मालकियत अपनी है और जीतने का ढंग यहां और है- तलवार उठाना नहीं- सिर झुकाना। हम झुक गये मालिक के चरणों में, झुककर हम मालिक के अंग हो गये। यह सारी मालकियत अपनी है। सिकंदर खुश हुआ था, ये बातें प्यारी थीं। सिकंदर ने कहा- लेकिन मैंने भी जगत जीता है, अपने ढंग से जीता है। फकीर ने कहा कि ऐसा समझो कि रेगिस्तान में तुम खो जाओ और गहन प्यास लगे और मैं एक लोटे में जल लेकर उपस्थित हो जाऊं। तो एक लोटा जल के लिए तुम अपना कितना राज्य मुझे देने को राजी हो जाओगे, अगर तुम मर रहे हो, तड़प रहे हो?

सिकंदर ने कहा- अगर ऐसी स्थिति हो तो मैं आधा राज्य दे दूंगा, मगर लोटा जल ले लूंगा, क्योंकि प्राण थोड़े ही गवाऊंगा। फकीर ने कहा- लेकिन मैं बेचूं तब न। आधे राज्य में मैं बेचूंगा, कीमत और बढ़ाओ। ज्यादा से ज्यादा कितने दे सकते हो? सिकंदर ने कहा- अगर ऐसी ही जिद तुम्हारी हो और मुझे प्यास लगी हो और मैं मर रहा होऊं, तड़प रहा होऊं, तो पूरा राज्य दे दूंगा। तो फकीर ने कहा- कितना तुम्हारे राज्य का मूल्य है- एक लोटा भर पानी। इसमें तुमने जीवन गंवाया। प्यास इतनी अनिवार्य है कि पूरा राज्य भी कोई दे सकता है। जैसे प्यास शरीर के लिए अनिवार्य। शरीर में तो कम से कम बीस प्रतिशत और कुछ भी है, लेकिन आत्मा में तो सौ प्रतिशत है।

४७६) मालकिन अपने नौकर और नौकरानी को सुबह तब उठाती थी जब तोता शोर करने लगता कि सुबह हो गई, सुबह हो गई। एक रोज नौकरानी तोते पर नाराज हो उठी कि यही मुआ शोर करके मालकिन को जगा देता है और वह फिर हमें जगा देती है। अगर यह तोता नहीं होगा तो मजे हो जाएंगे। हम थोड़ी देर और सो सकेंगे, यह देख नौकर और नौकरानी ने मिलकर तोते की गरदन मरोड़ दी। मालकिन काफी बूढ़ी और बीमार थी। तोते की मौत के बाद उसे वक्त का सही अंदाजा नहीं रहता था। जब भी उसकी नींद खुलती, उसे लगता कि सवेरा हो गया। वह नौकरों को जबरन जगाकर बैठा देती। कभी-कभी तो आधी रात को ही जगा देती। तोता तो अब था नहीं, जो उसे सही समय बताता। जैसी करनी वैसी भरनी।

४७७) जो भी सीखें आत्मसात करें; जरा भी चूक न करें - एक पौराणिक कथा है कि एक ऋषि के दो शिष्य थे, वे हमेशा दोनों को समान शिक्षा देते थे और उनसे कहते थे कि ईश्वर हर जगह है। वे कभी दोनों से भेद-भाव नहीं करते थे।

कई वर्ष गुजर गए और उन्होंनो दोनों को हर तरह का ज्ञान दिया ताकि वे जीवन में कभी मात न खा सकें।

दोनों ही शिष्य बड़े ही निपुण थे फिर भी गुरुजी उनकी कुशलता का परीक्षण करना चाहते थे। गुरुजी काफी वृद्ध हो चुके थे और उनसे अब शिक्षण कार्य नहीं हो पाता था, अब वे काफी अस्वस्थ भी रहने लगे थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि क्यों न इन दोनों में से ही किसी को मेरा उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाए ताकि मेरे मरने के बाद कोई तो मेरे ज्ञान को दूसरों में बांट सके।

इस कारण उन्होंने दोनों शिष्यों को बुलाया और उन्हें एक-एक फल देते हुए कहा कि इसे ऐसी जगह खाना जहां तुम्हें कोई देख न रहा हो, इसके बाद तुम दोनों मेरे पास आओ जो ऐसी जगह फल खाकर आएगा वह मेरी गद्दी पर बैठेगा। दोनों शिष्यों ने फल लिया और अलग-अलग दिशाओं में चल दिए, ऐसी जगह पर जहां उन्हें कोई देख न सके और वे फल भी खा सकें। उनमें से दूसरा शिष्य एक कक्ष में गया और उसने सभी दरवाजे खिड़कियां लगा लिए और सोचने लगा अब मुझे कोई देख नहीं रहा और उसने वह फल खा लिया और गुरुजी के पास लौटा।

दूसरा शिष्य पूरे दिन भटकता रहा और वह फल खाए बगैर ही गुरुजी के पास लौट आया। दूसरे शिष्य ने गुरुजी से कहा मैंने एक एकांत कक्ष में फल खा लिया सच वहां मुझे कोई नहीं देख रहा था। पहिला शिष्य गुरुजी मुझे क्षमा करें, मैं ऐसी कोई जगह नहीं देख पाया जहां मुझे कोई देख रहा हो। आपने हमेशा हमें सिखाया था कि ईश्वर हर जगह है। मैं जहां भी फल खाता तो मुझे भगवान के दर्शन होते थे। गुरुजी उस शिष्य की बात को सुनकर तुरंत बोले तुम ही मेरे सही उत्तराधिकारी हो। पहले शिष्य ने गुरुजी से इस अजीब से निर्णय का कारण पूछा, तो गुरुजी ने बताया। बच्चों तुम दोनों मेरे लिए समान हो, लेकिन इस शिष्य ने मेरी दी हुई शिक्षा को पूर्ण रूप में आत्मसात किया है, जिसके कारण इसे हर जगह ईश्वर दिखाई दिए, इसलिए मैंने इसे अपना उत्तराधिकारी बनाया है।

४७८) मनुष्य को अपना दुख दुनिया में सबसे बड़ा लगता है- अपने दुख को कम करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि आप दूसरे व्यक्तियों के दुख को भी देखें। एक दुखी व्यक्ति को ऐसा लग रहा था कि उसका दुख संसार में सबसे अधिक है। एक बार एक संत से उसकी मुलाकात हो गई। उसने उनसे अपने दुख के बारे में बात की। संत ने उसे सुझाव दिया कि अपने दुख की गठरी को गांव के बाहर वे पीपल के पेड़ पर लटका आओ। वहां और लोग भी अपने-अपने दुखों की गठरी लेकर आनेवाले हैं, वहीं शायद तुम्हारे दुखों का निवारण हो सके। अगले दिन वह व्यक्ति पीपल के पेड़ के पास अपने दुखों की गठरी लेकर पहुंचा। उसने देखा कि वहां असंख्य गठरियां लटक रही हैं संत वहीं बैठे थे। उन्होंने उस व्यक्ति से कहा- तुम्हारी समस्या यह है कि तुम्हें अपने दुख दुसरों से ज्यादा लगते हैं। तुम ऐसा कर सकते हो कि जहां जो दूसरी गठरियां लटक रही हैं उनमें से कोई छोटे दुख की गठरी छांट लो और अपनी गठरी वहां लटका आओ।

वह व्यक्ति पेड़ के पास पहुंचा, लेकिन किसी भी दूसरी गठरीसे अपनी गठरी नहीं बदल सका। उसने सोचा अपना दुख तो जाना-पहचाना है। उसके साथ जीने का अभ्यास हो गया है। दूसरे का दुख भले ही छोटा हो, लेकिन पता नहीं कैसा हो? यह भी हो सकता है कि वह मेरे लिए बड़ा साबित हो। काफी देर तक अनिर्णय की स्थिति में रहकर जब वह अपनी गठरी उठाकर वापस जाने लगा, तो संत उसके पास आए और उसके कंधे पर हाथ रखकर बोले कि अपना दुख परिचित

होने के कारण ज्यादा सहनीय होता है। इसे दोस्त बनाओ, यह परेशान नहीं करेगा।

४७९) अवसर- शहर में चित्रों की एक प्रदर्शनी लगी थी। उसे देखने के लिए नगर के सैकड़ों धनी-मानी व्यक्ति पहुंचे। वहां एक लड़की भी उस प्रदर्शनी को देखने आई। उसने देखा, चित्रों की एक कतार के अंत में एक विचित्र मनुष्य का भी चित्र टँगा है। उसके चेहरे का अधिकांश हिस्सा उसके बालों से ढँका हुआ है, इसलिए उसका चेहरा दिखाई नहीं दे रहा। उसके पैरों में पंख लगे हैं। चित्र कुछ भद्दा सा था, इसलिए ज्यादातर लोग उस पर उपेक्षित सी दृष्टि डालते और आगे बढ़ जाते। अचानक लड़की का ध्यान उस चित्र की ओर गया। उसने सोचा, कलाकार ने जब इसे प्रदर्शनी में लगाया है, तो जरूर कोई खास बात होगी। उसने करीब से जाकर उसे गौर से देखा, फिर भी उसे कुछ समझ में नहीं आया, तब वह चित्र को बनानेवाले कलाकार के पास पहुंची और पूछा- श्रीमान, यह चित्र किसका है? अवसर का कलाकार ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया। लेकिन आपने इसका मुंह क्यों ढँक दिया है? लड़की ने दूसरा प्रश्न किया।

कलाकार ने कहा- क्योंकि अवसर का चेहरा सदा ही ढँका रहता है। अवसर हर मनुष्य के जीवन में आता जरूर है और उसे खुद को देखने का मौका भी देता है। किन्तु साधारण मनुष्य उसे देखते तक नहीं, इसलिए वे जहां थे, वहीं पड़े रह जाते हैं। पर जो अवसर को पहचान लेता है, वह जीवन में कुछ काम कर जाता है। लड़की ने उत्सुकता से पूछा -इसके पैरों में पंखों का क्या रहस्य है? । कलाकार बोला- यह जो अवसर आज चला गया वह फिर कल कभी लौटकर नहीं आता। वह समय की तरह उड़कर ओझल हो जाता है। लड़की चित्र के मर्म को समझ गई और अवसर की प्रकृति को भी। सबक- समय को ढील न दो, वह पंख लगे पंछी की तरह उड़ जाता है।

४८०) खजाना कहां हैं?- एक गरीब किसान था, जो अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ एक गांव में रहता था। उसके पास खेती के लिए खूब जमीन थी, लेकिन वह आलसी था।

उसके आलस के कारण उसके खेत में भरपूर अन्न पैदा नहीं होता था। पूरा परिवार दुखी रहा करता था। गांव के पास एक महात्मा रहते थे। एक दिन वह किसान उस महात्मा के पास गया। उस समय महात्मा अपने खेत में काम कर रहे थे। किसान उन्हें देखता रहा। जब महात्मा ने किसान को देखा, तो वह किसान के पास आए और उससे उसकी समस्या पूछी, किसान ने कहा, महाराज, मैं एक गरीब किसान हूं। वैसे तो खेती बाड़ी सब है, फिर भी अन्न का हमेशा अभाव रहता है। आज मेरे पास खाने को अन्न तक नहीं है। आप मुझे धनवान बना दें।

महात्मा बोले, बेटा, तुम्हारे पास खेती बाड़ी है। मतलब तुम्हारे पास तो खजाना छिपा है। फिर भी तुम दुखी हो। किसान ने कहा, मेरे पास खजाना कहां हैं? मेरे घर पर चलकर बता दीजिए। मैं आपका जीवन भर एहसान मानूंगा और उस खजाने में से आपको भी कुछ अर्पित करूंगा। यह सुनकर महात्मा ने कहा, बेटा वह खजाना तुम्हारे पास ही है। जैसे वह दूसरों को दिखता है, वैसे ही मैं भी उसे देख रहा हूं। यह सुनकर किसान बेचैन हो उठा। वह सोचने लगा कि ऐसा कौन सा खजाना है, जो सभी को दिख रहा है, लेकिन मुझे नहीं। इसके बाद महात्मा ने कहा, क्या तुम उस खजाने को बेचना चाहोगे? किसान तैयार हो गया। महात्मा ने कहा, मुझे तुम्हारी दाहिनी आंख चाहिए। इसके २०००० रुपये दूंगा। किसान घबरा गया और बोला, नहीं महाराज, मैं काना हो जाऊंगा। महात्मा ने कहा, आँख न दो, तो एक हाथ दे दो। इसके ३० हजार

दूंगा और हाथ न दो, तो एक पैर ही काट कर दे दो। इसके मैं ५० हजार दूंगा। किसान बोला, नहीं महाराज, हाथ या पैर काटने से मैं लूला-लंगड़ा हो जाउंगा। मैं गरीबी में ही जी लूंगा। महात्मा बोले, बेटा, तुम्हारे पास दो आंखें हैं। दो हाथ, दो पैर हैं। मन बुद्धि सब है। अपने अंगों की शक्ति को पहचानो। इस शरीर से अपनी शक्ति के अनुरूप काम करो। खजाना तुम्हारे भीतर नहीं खेत में छिपा है। जिसे निकालने के लिए तुम्हें मेहनत करनी होगी। अब किसान को बात समझ में आ गई और वह महात्मा के पैरों में गिर गया। उसने कहा, महाराज आपने मुझे छिपा खजाना दिखा दिया।

४८१) नि:स्वार्थ भाव से मदद - स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में दो लड़के पढ़ते थे। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई। पढ़ाई जारी रखने के लिए उन्होंने महान पियानोवादक इगनैसी पैडरेस्की को बुलाने की सोची। पैडरेस्की के मैनेजर ने २००० डॉलर की गारंटी मांगी। उन्होंने गारंटी के लिए १६०० डॉलर जमा कर लिए और ४०० डॉलर चुकाने का करारनामा दे दिया। लेकिन वे शेष राशि इकट्ठा नहीं कर पाए। पैडरेस्की को यह पता चला तो उन्होंने करारनामा फाड़ा और १६०० डॉलर लौटाते हुए कहा- मुझे पढ़ाई के प्रति लगनशील बच्चों से कुछ नहीं चाहिए। इसमें से अपने खर्चे के लायक डॉलर निकाल लो और बची रकम में से १० प्रतिशत अपने मेहनताने के तौर पर रख लो। बाकी मैं रख लूंगा। दोनों पैडरेस्की की महानता के आगे नतमस्तक हो गए। समय गुजरता गया। पैडरेस्की अब पोलैंड के प्रधानमंत्री थे और अपने देश के हजारों भूख से तड़पते लोगों के लिए भोजन जुटाने का संघर्ष कर रहे थे। उनकी मदद केवल यू.एस.फूड एंड रिलीफ ब्यूरो का अधिकारी हर्बर्ट हूवर कर सकता था। हूवर ने बिना देर किए हजारों टन अनाज वहां भिजवा दिया। पैडरेस्की हर्बर्ट हूवर को धन्यवाद देने के लिए पेरिस पहुंचे। उन्हें देखकर हूवर बोला, सर, धन्यवाद की कोई जरूरत नहीं है। कॉलेज में आपने मेरी पढ़ाई जारी रखने में मदद की थी। यदि उस समय मेरी मदद न होती तो आज मैं इस पद पर नहीं होता। यह सुनकर पैडरेस्की की आंखें नम हो गईं। उन्हें दो विद्यार्थियों की पुरानी बात याद आ गई और वह बोले, किसी ने सच ही कहा है कि नि:स्वार्थ भाव से की गई मदद का मूल्य कई गुना होकर लौटता है।

४८२) परिवार का प्रेम- एक नगर सेठ को एक रात स्वप्न में देवी लक्ष्मी ने दर्शन दिए और कहा, सेठ, तुम्हारा पुण्य शीघ्र समाप्त होनेवाला है। उसके बाद मैं यहां से चली जाऊंगी। इसलिए यदि तुम्हें कुछ मांगना हो तो अभी मुझसे मांग लो। सेठ ने लक्ष्मी जी से हाथ जोड़कर कहा कि वह अपने परिवार के सदस्यों से सलाह करके जो मांगना होगा अगली रात मांग लेगा। अगले दिन सेठ ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को एकत्र किया और उनसे स्वप्न के बारे में चर्चा की। बड़े पुत्र ने हीरे-मोती और महल आदि मांगने को कहा। बीचवाले पुत्र ने स्वर्ण मुद्राएं और अपार राशि मांग लेने को कहा। छोटे पुत्र ने सुझाव दिया कि हमें लक्ष्मी जी से अन्न का भंडार मांगना चाहिए। इसी प्रकार बड़ी सेठानी और उसकी पुत्रवधुओं ने भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ न कुछ अलग ही मांगने को कहा। अंत में सबसे छोटी पुत्रवधू की बारी आई तो उसने आदर पूर्वक अपने ससुर से कहा, पिताजी, जब लक्ष्मी ही चली जाएंगी तो ये वस्तुएं किस प्रकार हमारे पास रहेंगी? इसलिए यदि आपको मांगना है तो आप यह मांगिए कि हमारे परिवार में सदैव प्रेम बना रहे। परिवार के सभी सदस्यों को छोटी बहू की यह बात बड़ी अच्छी लगी। जब रात के समय लक्ष्मी ने फिर स्वप्न में दर्शन दिए तो सेठ ने हाथ जोड़कर उनसे कहा, हे देवी। मुझे केवल एक ही वरदान दीजिए कि हमारे परिवार में सब एक-दूसरे का आदर करें, हममें परस्पर

विश्वास बना रहे और हम प्रेम की डोर मे बंधे रहें। लक्ष्मी जी मुस्कराईं और बोलीं, फिर तो मैं भी यही रहूंगी।

४८३) सबसे उत्तम जल- एक समय महात्मा बुद्ध राजगृह में थे। जनसमूह को नित्य प्रवचन देने के उपरांत वह सायंकाल अपने शिष्यों के साथ बैठकर विभिन्न विषयों पर वार्तालाप किया करते थे। ऐसा करने से शिष्यों का तो ज्ञानवर्धन होता ही था, बुद्ध को भी उन सभी का तुलनात्मक बौद्धिक स्तर ज्ञात हो जाता था। एक दिन इसी तरह महात्मा बुद्ध अपने शिष्यों के साथ बैठे किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। अचानक उन्होंने अपने शिष्यों से एक प्रश्न पूछा- क्या तुममें से कोई यह बता सकता है कि सबसे उत्तम जल कौन सा है? एक शिष्य ने तत्काल उत्तर दिया- गंगाजल। बुद्ध ने नकारात्मक मुद्रा में सिर हिलाया। दूसरे शिष्य ने कहा- जमीन पर गिरने से पहले का वर्षा का जल सबसे उत्तम होता है। बुद्ध उसके उत्तर से भी सहमत नहीं थे। तीसरे शिष्य का विचार था- उषाकाल की किरणों में चमकता ओस जल सबसे उत्तम होगा। बुद्ध इस बार भी संतुष्ट नहीं हो पाए। चौथे शिष्य की दृष्टि में बिछुड़े बेटे से मिलने पर मां की आंखों में आया अश्रुजल सबसे उत्तम जल था तो पांचवें शिष्य के अनुसार फरेब से इकट्ठा किए धन को देखकर मरणासन्न धनी की आंखों से पश्चाताप स्वरूप निकलनेवाले आंसू से बेहतर कोई जल न था। बुद्ध फिर बोले- नहीं, इससे कहीं अधिक वंदनीय व पवित्र जल भी है। काफी देर से मौन बैठे शिष्य आनंद ने कहा- सर्दी, गर्मी और वर्षा में रात-दिन कठोर परिश्रम कर हमारे लिए अन्न पैदा करनेवाले किसान का श्रम जल सबसे उत्तम है। यह उत्तर सुनकर बुद्ध के चेहरे पर संतुष्टि की आभा फैल गई। उन्होंने प्रसन्न होकर आनंद को अपना विशेष आशीष दिया।

४८४) संत को सीख- एक संत तीर्थयात्रा करते हुए वृंदावन धाम की ओर रवाना हुए। लेकिन वृंदावन से कुछ मील पहले ही रात हो गई। उन्होंने सोचा क्यों न रात पास के गांव में बिताई जाए, सबेरे उठकर वृंदावन की ओर चल देंगे। उनका कड़ा नियम था कि वे जल भी उसी घर का ग्रहण करते थे जिसका खान-पान और आचार-विचार पवित्र हो। किसी ने उन्हें बताया कि ब्रज सीमा के इस गांव में सभी वैष्णव रहते हैं। सभी कृष्ण के परम भक्त हैं। उन्होंने गांव के एक घर के आगे खड़े होकर एक व्यक्ति से कहा, भाई, मुझे रात बितानी है परंतु मेरा यह नियम है कि मैं केवल शुद्ध आचार विचारवाले व्यक्ति के घर की भिक्षा और जल ग्रहण करता हूं। क्या मैं आपके घर रात भर के लिए ठहर सकता हूं? उस व्यक्ति ने हाथ जोड़कर कहा, महाराज, मैं तो नराधम हूं। मेरे सिवा अन्य सभी लोग परम वैष्णव है, फिर भी यदि आप मेरे घर को अपने चरणों से पवित्र करेंगे तो मैं खुद को भाग्यशाली मानूंगा। संत आगे बढ़ गए और दूसरे घर का दरवाजा खटखटाया। उस घर से बाहर आए व्यक्ति ने भी कहा, महाराज, मैं वैष्णव नहीं, निरा अधम हूं। मेरे अलावा गांव के अन्य सभी लोग परमभक्त और वैष्णव जन हैं। जब गांव के प्रत्येक व्यक्ति ने अपने को अधम और दूसरों को वैष्णव बताया तब संत जी को यह समझते देर नहीं लगी कि अपने को औरों से दीन-हीन व छोटा समझनेवाले इस गांव के सभी लोग असल में बड़े विनम्र और सच्चे वैष्णव हैं। वह एक सदगृहस्थ से बोले, भाई, अधम तुम नहीं मैं ही हूं। आज तुम्हारे घर का अन्न जल ग्रहण कर मैं स्वयं पवित्र हो जाऊंगा।

४८५) बकरी और झाड़ी - एक बकरी के पूरे शरीर पर नर्म-मुलायम लंबे बाल थे। वह खुद को बहुत होशियार समझती थी। एक दिन वह घास चर रही थी, तभी शिकारी वहां आ पहुंचे। जैसे ही उनकी नजर बकरी पर पड़ी, वे उसे पाने

के लिए लालायित हो उठे। उनका इरादा भांप बकरी जान बचाने के लिए भागने लगी। भागते-भागते वह एक ऐसी जगह पहुंची जहां नर्म पत्तोंवाली कुछ घनी झाड़ियां लगी हुई थीं। बकरी उनके पीछे जाकर छिप गई। थोड़ी देर में शिकारी भी पीछा करते हुए वहीं आ पहुंचे। पर वे बकरी को देख नहीं पा रहे थे। इधर-उधर खोजने के बाद वे आगे बढ़ गए। यह देख बकरी अपनी चतुराई पर बड़ी खुश हुई। कुछ देर पहले तक डर की वजह से उसका ध्यान झाड़ियों की बेलों के नर्म पत्तों की ओर गया ही नहीं था। उसने तेजी से उन्हें खाना शुरू कर दिया। कुछ ही देर में उसने काफी सारी झाड़ी चट कर डाली। तभी शिकारी उसे खोजते हुए वापस उसी जगह आ पहुंचे। उन्होंने घेरकर बकरी को पकड़ लिया। वे उसे अपने साथ ले जाते हुए बात कर रहे थे कि यदि बकरी ने झाड़ियां साफ न कर दी होतीं तो शायद वह उनकी पकड़ में ही नहीं आती। यह सुनकर बकरी को अपनी भूल समझ में आ गई। उसने खुद अपने हाथों से अपना आश्रय मिटा दिया। सफलता के नशे में कई बार प्राणी अपने आश्रयदाता को छोटा समझकर उसकी उपेक्षा करने या उसे नुकसान पहुंचाने से भी गुरेज नहीं करते। जो जीवन में ऐसी चतुराई साथ लेकर चलते हैं, वे कभी कभी बड़ा धोखा खा जाते हैं। समझदारी वही कारगर है जिसमें फौरन लाभ की आशा नहीं, बल्कि दीर्घकाल की सोच रहती है।

४८६) मेहनत का मजा - चांग हो महान दार्शनिक कन्फ्यूशियस के विद्वान शिष्यों में गिने जाते थे। एक बार वे विश्व भ्रमण पर निकले। जब वे पड़ोसी देश ताइवान पहुंचे तो वहां गांव में उन्होंने एक विशाल हरे-भरे बगीचे में किसान को कुएं से पानी भरकर पेड़ों को सींचते देखा। उसके माथे से पसीना चू रहा था और सांस भी धौंकनी की तरह चल रही थी। उसके चेहरे से साफ था कि वह प्रसन्न है लेकिन चांग हो को उस पर दया आ गई। उन्होंने पास ही मौजूद एक वृक्ष का मोटा सा तना तोड़ा और उससे लकड़ी की घिर्री बनाकर किसान को दी। फिर उन्होंने पानी पेड़ों तक पहुंचाने के लिए मोटे बांसों को काटकर उनकी नालियां बना दीं। इसके बाद वे किसान को बेहतर जीवन जीने का संदेश देकर वहां से निकल पड़े। चार साल बाद भ्रमण करते वे दोबारा वहां पहुंचे तो पाया कि पेड़ सूखे हैं और कुएं के पास भी कोई मौजूद नहीं है। वे किसान का पता पूछते हुए पास ही मौजूद झोपड़ी में गए तो देखा किसान वहीं मौजूद है। उसके चेहरे से श्रम का सौंदर्य गायब था। वह बीमारी दिख रहा था और खाट पर पड़ा था। चांग हो ने अचरज से पूछा- मैंने तो तुम्हें समय और मेहनत की बचत करने की राह सुझाई थी, पर तुम्हारी क्या हालत हो गई है। किसान की पत्नी ने तब कहा- महाशय, आपकी सुझाई राह से ही तो यह हालत हुई है, क्योंकि मेहनत कम होते ही यह आलस्य से घिर गए। अब ये बैठे-बैठे बेकार की बातें सोचते रहते हैं और बीमार रहते हैं। यह सुनकर चांग को अपनी गलती का अहसास हुआ। उन्होंने जीवन की एक बड़ी सीख हासिल की। वह यह कि तंदुरुस्ती और प्रसन्नता के लिए शारीरिक श्रम जरूरी है और श्रम से मिलनेवाले आनंद का कोई और विकल्प नहीं है। इसके बाद उन्होंने किसी भी काम को सरलता से करने का संदेश देना छोड़ दिया।

४८७) उस बूढ़े का घड़ा - चीन के दार्शनिक कन्फ्यूशियस की कीर्ति चारों ओर फैली थी। लोग उनसे मिलने दूर-दूर से आते थे। उनसे मिलने की उत्कंठा में एक दिन एक राजा उनके पास पहुंचे। राजा ने कन्फ्यूशियस से वह सवाल पूछा जो उन्हें बहुत दिनों से परेशान कर रहा था। सवाल था- क्या कोई ऐसा व्यक्ति भी है, जो महान हो, लेकिन उसे कोई जानता न हो? सवाल सुनकर कन्फ्यूशियस मुस्कुराए और बोले- हम बहुत से महान लोगों को नहीं जानते। दुनिया में

वास्तव में कई ऐसे असाधारण लोग हैं, जो महान मनुष्यों से भी महान हैं। यह सुनकर राजा आश्चर्य से बोले- ऐसा कैसे हो सकता है ? कन्फ्यूशियस ने मुस्कुराते हुए कहा- चलिए आपको ऐसे ही एक व्यक्ति से मिलवाते हैं। कन्फ्यूशियस राजा को लेकर एक गांव की ओर चल पड़े। काफी दूर चलने के बाद एक बूढ़ा नजर आया, जो एक पेड़ के नीचे घड़े में पानी भरकर बैठा था। गर्मी में लगातार चलने से थक चुके इन दोनों लोगों ने बूढ़े से पानी मांगकर पिया। गर्मी से राहत मिली तो दोनों की जान में जान आई। राजा ने बूढ़े को देने के लिए पैसे निकाले तो उसने पैसे लेने से इंकार कर दिया। बोला- हे राजा। मैं कोई दुकानदार नहीं हूं। मैं तो लोगों की प्यास बुझाने की एक छोटी सी कोशिश कर रहा हूं, जो मैं इस उम्र में कर सकता हूं। मेरा पुत्र चने का व्यवसाय करता है। घर में अकेले बैठकर भी क्या करना, इसलिए यहां घड़े में पानी और चने लेकर बैठा हूं ताकि आने जानेवालों को गर्मी, प्यास और थकान से राहत पहुंचा सकूं। इसमें मुझे असीम शांति मिलती है। यह सुनकर कन्फ्यूशियस राजा से बोले- आप समझ ही गए होंगे कि मैं क्या कहना चाहता हूं। राजा ने भी संतुष्ट होकर सिर हिलाया। कन्फ्यूशियस बोले- व्यक्ति की सोच उसे महान बनाती है। केवल बड़ी बड़ी बातों से कोई महान नहीं बनता।

४८८) सांसारिक संबंध - एक बार इटली के संत फ्रांसिस के पास एक सत्संगी युवक आया। उन्होंने उससे हाल-चाल पूछा, तो वह बोला, मुझसा सुखी कोई दूसरा न होगा। मेरे परिवार के सभी लोग मुझ पर जान छिड़कते हैं। संत बोले, इस दुनिया में अपना कोई नहीं होता। जहां तक मां-बाप की सेवा और पत्नी बच्चों के पालन-पोषण का संबंध है, उसे तो कर्त्तव्य समझकर ही करना चाहिए। उनके प्रति मोह या आसक्ति रखना उचित नहीं। युवक को बात जंची नहीं, बोला, आपको अंदाजा नहीं कि मेरे परिवार के लोग मुझसे कितना स्नेह करते हैं। यदि एक दिन घर न जाऊं, तो उनकी भूख-प्यास उड़ जाती है। पत्नी तो मेरे बिना जीवित ही नहीं रह सकती। संत बोले, तुम्हें प्राणायाम तो आता ही है। कल सुबह उठने के बाद प्राणवायु मस्तक में खींचकर निश्चेष्ट पड़े रहना। मैं आकर सब संभाल लूंगा। दूसरे दिन युवक ने वैसा ही किया। उसे निर्जीव जान घर के सब लोग विलाप करने लगे। इतने में फ्रांसिस वहां पहुंचे। सब लोग उनके चरणों पर गिर पड़े। वे उनसे बोले, आप लोग शोक न करें। मैं मंत्र के बल पर इसे जिलाने का प्रयत्न करूंगा, मगर इसके लिए कटोरी भर पानी किसी को पीना पड़ेगा। उस पानी में ऐसी शक्ति होगी कि पीनेवाला तो मर जाएगा, मगर उसके बदले वह युवक जी उठेगा। यह सुनते ही सब एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। पानी पीने के लिए किसी को आगे न आते देख संत बोले, तब मैं ही पीता हूं। इस पर सब बोल उठे, महाराज आप धन्य हैं। आपके लिए जीवन मृत्यु एक समान हैं। यदि आप जिला सकें, तो बड़ी कृपा होगी। युवक को संत के कथन का मर्म समझ चुका था। प्राणायाम समाप्त कर वह उठ बैठा और बोला, महाराज, आप पानी पीने का कष्ट न करें। सांसारिक संबंध क्षणिक और मिथ्या होते हैं, यह मैं जान गया हूं।

४८९) ज्ञान का सुख - देवताओं के राजा इंद्र और दैत्यों के राजा विरोचन थे तो आपस में भाई, लेकिन दोनों में बिलकुल मेल नहीं था। एक बार दोनों में आत्मा-परमात्मा को लेकर बात होने लगी। जब वे खुद किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके तो अपने बाबा ब्रह्मा के पास गए। उनसे बोले, हमें आत्मा और परमात्मा का आपसी संबंध बताइए। इस पर ब्रह्माजी ने कहा, एक साल तक ब्रह्मचर्य व्रत करो, फिर बताउंगा। साल भर के व्रत के बाद जब दोनों लौटकर आए तो इस

बार ब्रह्माजी ने उन्हें पानी से भरा कटोरा दिया और कहा कि इसमें देखकर बताओ कि तुम्हें क्या दिखता है? दोनों ने उसमें देखा तो उन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित अपना शरीर दिखा। ब्रह्माजी ने उनके सारे कपड़े और आभूषण वगैरह उतरवा दिए और फिर से कटोरे में देखने को कहा। इस बार भी दोनों को अपने ही शरीर की छाया दिखाई दी। यह बात उन्होंने ब्रह्माजी को बताई तो वह बोले, यह शरीर ही ब्रह्म है। दोनों की समझ में यह बात नहीं आई, लेकिन फिर भी वे वापस लौट आए। ब्रह्मा के शब्दों को अंतिम मान विरोचन शारीरिक सुख-सुविधाओं में डूब गया। उसने उन शब्दों के गूढ़ अर्थ को पाने की कोई कोशिश नहीं की। इसके उलट इंद्र ब्रह्मा के शब्दों पर विचार करता रहा। उसे भी कुछ खास समझ में तो नहीं आया, पर उसे इतना अंदाजा जरूर हो गया कि इसमें कोई गूढ़ अर्थ छिपा है। वह फिर ब्रह्मा के पास पहुंचा। इस बार फिर उसे एक साल के ब्रह्मचर्य व्रत पर जाना पड़ा। लौटकर आया तो ब्रह्मा ने उसे बताया, आत्मा हमसे अलग नहीं, लेकिन पवित्र जीवन बिताने से मनुष्य को ज्ञान मिलता है जिससे वह सुखी होता है। अब इंद्र को ज्ञान मिल गया और वह सुखी जीवन बिताने लगा। विरोचन को ज्ञान नहीं मिला। सो सुख की उसकी तलाश पूरी नहीं हो सकी।

४९०) खंभे पर टंगी लालटेन - बहुत पुरानी बात है। फिलाडेल्फिया में फ्रैंकलीन नामक एक व्यक्ति रहता था। वह सभी लोगों की मदद करता था। उन दिनों रात में रोशनी का प्रबंध नहीं था। रात को अमूमन लोग घरों के अंदर ही रहते थै। लेकिन कभी किसी वजह से किसी को निकलना पड़े तो भारी असुविधा होती थी। फ्रेंकलीन इस असुविधा को दूर करना चाहता था, लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इसका क्या उपाय हो सकता है। वह दिन रात यही सोचता रहता। एक दिन उसे एक उपाय सूझा। उसने अपने घर के दरवाजे के सामने एक खंभा गाड़ा और उस खंभे पर लालटेन लटका दी। यह देखकर आसपास के लोग हंसने लगे कि वह कैसा पागलपन कर रहा है। घर के बाहर इतनी ऊंचाई पर लालटेन टांगने का भला क्या तुक। उसके घरवालों ने भी कहा, व्यर्थ में पैसे मत खर्च करो। लेकिन फ्रेंकलीन ने किसी की न सुनी। उसने कहा, यह बेकार का खर्च नहीं है। रास्ते में रात भर अंधेरा रहता है। लोग ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, दुर्घटनाग्रस्त्त हो जाते हैं और कई तो हिंसक जानवरों का शिकार बन जाते हैं। ऐसे में सड़क पर लालटेन लगी रहने से रात में घर से निकलने वालों को कुछ रोशनी मिलेगी। उनके लिए राह चलना आसान हो जाएगा। उस लालटने को वहां टंगे कई दिन हो गए। रात में गुजरनेवाले खंभे पर लगे लालटेन को हैरानी से देखते और फ्रेंकलीन का धन्यवाद करते। कुछ दिनों बाद फ्रेंकलीन की देखा देखी अन्य लोग भी अपने घर के आगे लालटेन लटकाने लगे। धीरे-धीरे यह प्रचलन फैलने लगा। कुछ वर्षों में फिलाडेल्फिया की नगरपालिका ने तय किया कि पूरे शहर में लैंप पोस्ट लगा देने चाहिए। धीरे-धीरे फिलाडेल्फिया के लैंप पोस्ट पूरी दुनिया में फैल गए। इस तरह एक व्यक्ति की नि:स्वार्थ सेवा भावना ने पूरी दुनिया की सड़कों को जगमग कर दिया।

४९१) पत्नी की प्रेरणा - अंग्रेजी के महान लेखक नाथानिएल हौथोर्न एक दिन परेशान से अपने घर लौटे और पत्नी से बोले आज मुझे कस्टम हाउस की नौकरी से निकाल दिया गया है। उनकी पत्नी सोफिया यह सुनकर कुछ परेशान हुईं और फिर मुस्कुरा कर बोलीं, जीवन का काम नाकामयाबी में धैर्य से काम करते रहना है। इतने हताश और उदास मत होओ। मुझे पता है कि आप बहुत ही मेहनती, प्रतिभाशाली और विलक्षण इंसान हैं। अगर आपका यह रास्ता बंद हुआ है

तो इसके साथ ही एक ऐसा रास्ता खुला है जो आपको भविष्य में सबके सामने प्रसिद्ध कर देगा। पत्नी की यह बात सुन नाथानिएल हैरानी से बोले, तुम भी कैसी बातें कर रही हो? भला मेरी नौकरी छूटने से क्या अच्छा होगा? मेरा यह दरवाजा बंद होने से कौन सा ऐसा दरवाजा खुल गया है जो मुझे प्रसिद्ध कर देगा? इस पर सोफिया बोलीं, आप बहुत अच्छा लिखते हैं। आपके लेखन की शैली और भाषा गजब की है। नौकरी के कारण आप लेखन को पूरा समय नहीं दे पा रहे थे। अब समय ही समय है। आप लिखिए, सफलता अवश्य मिलेगी। पत्नी की बात सुनकर नाथानिएल बोले, लेकिन तब तक घर का खर्च कैसे चलेगा? सोफिया बोलीं, आप लिखिए, तब तक घर खर्च मैं चलाऊंगी। इसके बाद नाथानिएल लेखन में जुट गए और सोफिया ने घर संभाल लिया। वह अपने प्रति पत्नी का इतना गहरा आत्मविश्वास और समर्पण देखकर मुस्तैदी से लेखन में जुट गए। एक साल खत्म होने से पहले उन्होंने विक्टोरिया युग का महान उपन्यास द सकेलेंट लैटर लिखा। आज भी इस महान लेखक को इस उपन्यास से पहचाना जाता है। वह अपने लेखन की सफलता का श्रेय अपनी पत्नी को देते थे जिसने मुश्किल वक्त में न सिर्फ उनक साथ दिया, अपितु उन्हें उनकी विलक्षण लेखन प्रतिभा से भी परिचित कराया।

४९२) आलसी वाल्टर - बात १८४० के आसपास की है। महा आलसी वाल्टर बिस्तर पर पड़े थे। उनकी पत्नी को एक पार्टी में जाना था। पार्टी के लिए विशेष पोशाक पहनते समय अचानक एक बटन टूट गया। बटन टूटने से पोशाक को बंद करने में दिक्कत हो रही थी। जब काफी देर तक कुछ समझ नहीं आया तो पत्नी ने वाल्टर से कहा कि वह तुरंत बाजार जाकर बटन ले आएं ताकि उस बटन को टांककर पोशाक को बंद किया जा सके। वाल्टर का बिस्तर से उठकर बाजार जाने का बिल्कुल मन नहीं था। पत्नी बार-बार बोलती रहीं और वाल्टर करवटें बदलते रहे। आखिर पत्नी गुस्से से बोलीं, तुम बाजार से बटन लाते हो या नहीं? यह सुनकर वाल्टर किसी तरह बिस्तर से उठे और आसपास नजर फेरी कि क्या कोई उपाय हो सकता है जिससे बाजार न जाना पड़े। पलंग के पास ही एक तार पड़ा हुआ था। उन्होंने उस तार को उठाया और उसे मोड़-तोड़कर पोशाक के अंदर घुसा दिया। इस तरह बटनवाली जगह पर उस नुकीले तार को घुसाने से वह बटन की तरह बंद हो गई। पत्नी ने जब यह देखा कि बटनवाली जगह पर नुकीले तार से काम चल रहा है तो वह पोशाक पहनकर पार्टी में चली गई। वाल्टर ने चैन की सांस ली और दोबारा बिस्तर पर लेट गए। लेटे-लेटे ही उन्हें ध्यान आया कि जिस नुकीले तार को तोड़-मोड़कर उसने अपनी पत्नी की पोशाक पर फिट किया है, वह तार हर पोशाक के कटने-फटने या बटन टूट जाने पर प्रयोग किया जा सकता है। यह ध्यान आते ही वह बिस्तर से उछल पड़े। अनजाने में ही एक महान आविष्कार हो चुका था। वाल्टर ने इसे पेटेंट करा लिया। इसके कुछ समय बाद ही वह नुकीला तार हर बाजार में नजर आने लगा। वह आज भी धड़ल्ले से इस्तेमाल होता है। वाल्टर हंट के इस आविष्कार को हम सेफ्टीपिन के नाम से जानते हैं।

४९३) अंग्रेजी में फेल - सन १९६५ में अमेरिका ने भारत को गेहूं का आयात बंद कर दिया तो तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने दिल्ली के रामलीला मैदान में आयोजित एक विशाल रैली की। रैली में वह बोले, मेरे प्रिय भारतवासियों, एक तरफ पड़ोसी देश से सीमा पर युद्ध चल रहा है। दूसरी ओर अमेरिका ने दबाव बनाने के लिए हमें गेहूं भेजना बंद कर दिया है। हमने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए इस चुनौती को स्वीकार किया है। मैं देश के प्रत्येक नागरिक से निवेदन करता हूं कि वह फिजूलखर्ची बंद कर दे और देश की अर्थव्यवस्था को सुचारू बनाए रखने के लिए

सप्ताह में एक दिन उपवास रखें। फिर क्या था, लोगों ने सप्ताह में एक दिन उपवास रखना आरंभ कर दिया। शास्त्रीजी भी हर सोमवान व्रत रखते थे। शास्त्रीजी की पत्नी ललिता देवी प्राय: बीमार रहती थीं, इसलिए उनके घरेलू कार्य, कामवाली बाई करती थी। शास्त्रीजी ने देशहित की खातिर बाई को सेवामुक्त कर दिया और घर का काम खुद करने लगे। शास्त्रीजी अपने कपड़े स्वयं धोते थे। उनके पास केवल दो जोड़ी धोती-कुर्ता ही थे। एक दिन शास्त्रीजी की धोती कपड़े धोते समय फट गई। पत्नी बोलीं, आप नई धोती खरीद लाइए। शास्त्रीजी ने कहा, मैं नई धोती खरीदकर लाने की कल्पना भी नहीं कर सकता, बेहतर होगा कि आप सुई धागा लेकर इसे सिल दो। उनके घर पर बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने एक ट्यूटर भी आया करता था। शास्त्रीजी ने जब उससे भी ट्यूशन हटाने के लिए कहा तो वह कहने लगा, बच्चे तो अंग्रेजी में फेल हो जाएंगे। शास्त्रीजी ने उसे समझाया, देश के हजारों बच्चे अंग्रेजी में फेल होते हैं, अगर मेरे बच्चे भी फेल हो जाएंगे तो क्या। अंग्रेजी में फेल होना स्वाभाविक है क्योंकि यह हमारी मातृभाषा भी नहीं है। आज शास्त्रीजी हमारे बीच नहीं हैं, किंतु उनके मूल्य व आदर्श सदैव साथ रहेंगे।

४९४) जीवन का आनंद - सिकंदर उस जल की तलाश में था, जिसे पीने से अमर हो जाते हैं। दुनिया भर को जीतने के जो उसने आयोजन किए, वह अमृत की तलाश के लिए ही थे। काफी दिनों तक देश दुनिया में भटकने के पश्चात आखिरकार सिकंदर ने वह जगह पा ही ली, जहां उसे अमृत की प्राप्ति होती। वह उस गुफा में प्रवेश कर गया, जहां अमृत का झरना था। वह आनंदित हो गया। जन्म-जन्म की आकांक्षा पूरी होने का क्षण आ गया। उसके सामने ही अमृत जल कल-कल करके बह रहा था। वह अंजलि में अमृत को लेकर पीनेके लिए झुका ही था कि तभी एक कौआ जो उस गुफा के भीतर बैठा था, जोर से बोला, ठहर, रुक जा, यह भूल मत करना। सिकंदर ने कौवे की तरफ देखा। बड़ी दुर्गति की अवस्था में था वह कौआ। पंख झड़ गए थे, पंजे गिर गए थे, अंधा भी हो गया था, बस कंकाल मात्र था। सिकंदर ने कहा, तू रोकनेवाला कौन? कौवे ने जवाब दिया, मेरी कहानी सुन ले। मैं अमृत की तलाश में था और यह गुफा मुझे भी मिल गई थी। मैंने यह अमृत पी लिया। अब मैं मर नहीं सकता, पर मैं अब मरना चाहता हूं। देख मेरी हालत। अंधा हो गया हूं, पंख झड़ गए हैं, उड़ नहीं सकता। पैर गल गए हैं। एक बार मेरी ओर देख ले फिर मर्जी हो तो अमृत पी ले। देख अब मैं चिल्ला रहा हूं, चीख रहा हूं कि कोई मुझे मार डाले, लेकिन मुझे मारा भी नहीं जा सकता। अब प्रार्थना कर रहा हूं परमात्मा से कि प्रभु मुझे मार डालो। एक ही आकांक्षा है कि किसी तरह मर जाऊं। इसलिए सोच ले एक दफा, फिर जो मर्जी हो सो करना। कहते हैं कि सिकंदर सोचता रहा। फिर चुपचाप गुफा से बाहर वापस लौट आया, बगैर अमृत पिए। सिकंदर समझ चुका था कि जीवन का आनंद उस समय तक ही रहता है, जब तक हम उस आनंद को भोगने की स्थिति में होते हैं।

४९५) वीरों के वीर - आनंदपुर के किले में गुरु गोविंद सिंह जी और उनके सैनिकों को शत्रु सेना ने बुरी तरह घेर रखा था। किले में जमा भोजन सामग्री भी लगभग समाप्त हो चली थी। सिख सेना के सरदारों ने गुरुजी पर दबाव डालना शुरु किया कि वह बच्चों के साथ चुपचाप वहां से निकल जाएं। साथियों के बहुत हठ करने पर एक दिन आधी रात को गुरुजी अपनी माता, पत्नी और चार पुत्रों के साथ चुपचाप किले से निकल पड़े। लेकिन कुछ ही दूर गए कि दुश्मन की सेना को इसका पता लग गया औरा वह तलाश में निकले। यह देख गुरु गोविंद सिंह जी, उनकी पत्नी, दो पुत्र अजीत सिंह और

जुझार सिंह एक ओर हो गए और गुरुजी की माता और दो छोटे पुत्र जोरावर सिंह और फतह सिंह दूसरी ओर हो गए। उधर उन्हें सुरक्षित निकालने को किले में मौजूद सिख सेना ने शत्रु सेना पर आक्रमण कर दिया। शत्रु सेना बड़ी थी तो कुछ ही देर में लगभग सभी सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए। यह देख गुरुजी के बड़े पुत्र अजीत सिंह से रहा नहीं गया और वह अपने पिता से बोले, पिताजी, हमारे लोग हम लोगों के लिए प्राण दे रहे हैं, आप मुझे युद्ध करने की आज्ञा दें। पुत्र की बात पर गुरुजी ने उसे गले से लगा लिया और बोले, अपने कर्त्तव्य का पालन करो। अब अजीत सिंह आठ दस सैनिकों के साथ शत्रुदल पर टूट पड़े। जब वह वीरगति को प्राप्त हुए तो जुझार सिंह ने भी पिता से युद्ध की आज्ञा मांगी। गुरुजी ने जुझार सिंह को भी अमरत्व का आशीर्वाद देते हुए कर्त्तव्य पालन करने को कहा। जुझार सिंह बचे हुए साथियों को लेकर शत्रुसेना पर टूट पड़े। थे तो वह बालक ही, लेकिन जब उन्होंने वीरगति प्राप्त की, तब तक शत्रुसेना का सारा साहस जाता रहा। इस तरह से दो बालकों ने अपने अदम्य साहस के सामने विशाल सेना को भी पीछे हटने को मजबूर कर दिया।

४९६) विश्वामित्र की तपस्या - विश्वामित्र ने ऋषि, महर्षि और उसके बाद राजर्षि तक की उपाधि पा ली थी, मगर कोई उन्हें ब्रह्मर्षि का दर्जा नहीं दे रहा था। जब भी कहीं ऐसी कोई चर्चा चलती, उन्हें यही सुनने को मिलता कि ब्रह्मर्षि तो वशिष्ठ हैं। उन्होंने और कठिन तपस्या शुरू की। कहते हैं उनके तप के प्रभाव से दिग-दिगंत कांप उठे। पर लंबी तपस्या का भी वैसा कोई फल नहीं मिला जैसा विश्वामित्र चाहते थे। आखिर उनका धैर्य जवाब दे गया। उन्होंने तपस्या छोड़ी और चल पड़े वशिष्ठ के आश्रम की ओर कि आज नहीं छोड़ूंगा उसे। उन्हें लग रहा था कि जरूर वशिष्ठ की इसमें कोई चाल है। वरना ऐसा क्या कि उनके अलावा दूसरा कोई ब्रह्मर्षि न बन सके। यही सब सोचते हुए विश्वामित्र वशिष्ठ के आश्रम तक पहुंच गए। उन्होंने देखा कि चांदनी रात में वशिष्ठ बैठे अपने शिष्यों के साथ बातचीत कर रहे हैं। वहीं पास की झाड़ी में छिपकर वह गुरु और शिष्यों के बीच की बातचीत सुनने लगे। एक शिष्य ने वशिष्ठ से पूछा, गुरुवर स्वच्छ आकाश में प्रकाश फैला रहे इस शीतल चांद को देखकर आपके मन में कौन से भाव आ रहे हैं। वशिष्ठ बोले, चांद की चांदनी वैसे ही पूरे संसार को प्रकाशित कर रही है जैसे ऋषि विश्वामित्र का यश। विश्वामित्र चकित रह गए। कहां तो मैं इन्हें मारने चला था और कहां ये मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। वह सामने आए और सीधे वशिष्ठ के चरणों पर गिर पड़े, क्षमा ऋषिप्रवर, क्षमा। वशिष्ठ ने उन्हें उठाते हुए कहा, उठो ब्रह्मर्षि। इस बार विश्वामित्र समेत समस्त शिष्यमंडली चौंक पड़ी, पर वशिष्ठ मुस्कुराते खड़े थे। उन्होंने कहा, विश्वामित्र हर तरह से योग्य थे, बस उनका अहं और इस पद की लालसा उनके मार्ग की बाधा थी। जैसे ही वह पश्चात्ताप के आंसुओं के साथ झुके, दोनों बाधाएं तत्क्षण दूर हो गईं और वह पद उन्हें मिल गया जिसके वे अधिकारी थे।

४९७) सुनने की मशीन - अलेक्जेंडर ग्राहम बेल का विवाह १८७७ में माबेल गारडीनर के साथ हुआ। दुर्भाग्यवश वह बहरी थीं। ग्राहम बेल और उन्हें आपसी संवाद करने में बहुत दिक्कत होती थी। कुछ समय बाद ग्राहम बेल और माबेल एक दूसरे के साथ संकेतों से बात करने लगे। एक दिन वह माबेल के साथ संकेतों से बात कर रहे थे, तभी उनका ध्यान माबेल के कानों की तरफ गया। वह उनके कानों को ध्यान से देखते रहे। यह देखकर माबेल संकेत से कान की ओर इशारा करके बोली, कान में क्या देख रहे हो? ग्राहम बेल संकेत से बोले, सोच रहा हूं कि क्या सुननेवाली कोई मशीन बन

सकती है? यदि सुननेवाली मशीन बन गई तो फिर मैं और तुम आराम से बातें कर पाएंगे। यह सुनकर माबेल मुस्कराने लगी। ग्राहम बेल अपने आविष्कार में लग गए। अब उनके सिर पर एक ही धुन सवार थी कि किसी तरह सुनने की मशीन का आविष्कार करना है। वह दिन-रात प्रयोग करते रहते। कई बार तो खाना भी खाना भूल जाते। यहां तक कि उन्हें यह भी ध्यान न रहता कि तिथि व दिन क्या है? आखिर कई दिनों की कड़ी मेहनत के बाद उन्होंने एक आविष्कार कर ही लिया। जब वह आविष्कार लोगों के सामने आया तो वह सुनने की मशीन बनाने में कामयाब नहीं हो पाए लेकिन उन्होंने टेलीफोन बनाने का सिद्धांत अवश्य ढूंढ निकाला है। यह जानकर वह ग्राहम बेल को सांत्वना देते हुए संकेतों से बोलीं, जिस तरह आपने टेलीफोन का आविष्कार कर दिया है, उसी तरह एक दिन सुनने की मशीन का आविष्कार भी अवश्य हो जाएगा। माबेल की बात सत्य सिद्ध हुई। आज सुनने की मशीन का आविष्कार हो चुका है और अनेक बहरे व्यक्ति उसका लाभ भी उठा रहे है।

४९८) बांस और आम - एक जंगल में बांस के पेड़ के साथ-साथ आम का पेड़ भी था। बांस का पेड़ कद में लंबा था और आम का पेड़ छोटा था। यह देखकर बांस का पेड़ अक्सर आम का मजाक उड़ाता और कहता, अरे आम मैं कितना बडा हो चला, कितनी तेजी से बढ़ा और एक तुम हो, जो इतनी आयु होने पर भी छोटे ही बने हुए हो। आम बोला, यह तो हर किसी की अपनी-अपनी प्रकृति है। कद ऊंचा हो जाने से या शरीर विशाल होने से कुछ नहीं होता। छोटा होने का यह अर्थ नहीं कि वह महान और बड़े काम नहीं कर सकता। इसी तरह लंबे या बड़े होने का यह अर्थ नहीं कि वह छोटे काम को घृणा की नजर से देखे। किंतु बांस को उसकी बातें समझ में नहीं आई। कद के घमंड में चूर वह बोला, तुम मेरे बड़े कद से जलते हो, इसलिए मुझे ऐसी बातें सुना रहे हो। भला मैं छोटे काम क्यों करूं? कुछ वक्त बाद आम के वृक्ष पर मंजरियां लगीं और कुछ दिनों बाद वह फलों से लद गया। फलों से लदा होने की वजह से वह झुक गया और बांस दिनोंदिन लंबा होकर सूखता चला गया। किंतु उसका अभिमान अभी भी कम नहीं हुआ था। एक दिन वह आम को देखकर बोला, मुझे देखो मैं दूर से ही नजर आ जाता हूं और एक तुम हो जो अभी उनकी बातें खत्म ही हुई थीं कि कहीं से यात्रियों का एक झुंड वहां पर आया। उन्होंने आम के वृक्ष को फलों से लदा हुआ देखा तो वहीं डेरा डाला और विश्राम करने लगे। रात होने पर ठंड से बचाव के लिए उन्होंने आग जलाने की सोची और पास ही खड़े बांस के वृक्ष को काटकर लकड़ियों का ढेर लगा दिया। कुछ ही देर में बांस का पेड़ राख हो गया। आम का वृक्ष अभी भी शांत था और राहगीरों को अपनी छांव तले विश्राम दे रहा था जबकि अभिमानी बांस का अंत हो चला था।

४९९) अहंकार शर्मिंदा करता है - एक बार राजा भोज व माघ पंडित सैर करने निकले, लेकिन रास्ता भूल गए। उन्हें एक बुढ़िया दिखाई दी। दोनों ने उसे प्रणाम करके पूछा यह रास्ता कहां जाएगा? बुढ़िया ने उत्तर दिया यह रास्ता तो यहीं रहेगा। इसके ऊपर चलनेवाले जाएंगे। पर, तुम कौन हो? दोनों बोले हम तो पथिक हैं। बुढ़िया ने चट से उत्तर दिया पथिक तो दो ही हैं एक सूरज दूसरा चंद्रमा, तुम कौन से पथिक हो? हम तो पाहुने हैं। माघ बोले। पाहुने दो ही हैं। एक धन दूसरा यौवन? तुम कौन हो? बुढ़िया ने पूछा।

भोज बोले हम तो राजा हैं। बुढ़िया बोली राजा तो बस दो हैं, एक इंद्र दूसरा यमराज। तुम कौन हो? दोनों बोले हम तो क्षमतावान हैं। भाई क्षमतावान तो दो ही हैं, पृथ्वी और स्त्री। तुम तो इनमें से नहीं दिखते, फिर तुम कौन हो? भोज बोले-

हम साधु हैं। बुढ़िया बोली साधु तो बस दो ही हैं, एक तो शील व दूसरा संतोष। सच-सच कहो तुम कौन हो? माघ बोले हम परदेसी हैं। जीव व पेड़ का पत्ता, परदेसी ये दो ही हैं। तुम कौन हो?

चकित माघ पंडित बोले, अब क्या कहें, हम तो हारे हुए है। बुढ़िया बोली देखो भाई, हारे हुए तो बस दो ही हैं, एक ऋण लेनेवाला और दूसरा बेटी का बाप। तुम कौन हो? अंत में वे हारकर उस बुद्धिमान बुढ़िया से बोले अब क्या बताएं, हम तो कुछ नहीं जानते। सच यह है कि सब कुछ जाननेवाली तू ही है। तब कुछ गंभीर होकर वह बुढ़िया बोली तुम दोनों को अपनी विद्वता और ऐश्वर्य का बड़ा घमंड हो गया था। मुझे पता था कि तू तो है राजा भोज और यह माघ पंडित। रास्ता इस तरफ है, पर भविष्य में कभी अहंकार मत करना। अहंकार टूटते ही दोनों ने बुढ़िया से क्षमा मांगकर अपनी गलती स्वीकार की और आगे से खुद को सामान्य मनुष्य ही मानने का प्रण किया।

५००) संयम का संदेश - महात्मा गांधी उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ जंग लड़ रहे थे। उसी दौरान उनकी मुलाकात कालेनबाक नामक एक गोरे से हुई। गांधीजी से बेहद प्रभावित केलन बैक हमेशा के लिए उनके अनुयायी बन गए। वह धनाढ्य व्यक्ति थे और अकेले ही रहते थे। पहली बार जब गांधीजी जेल गए तो उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने गांधीजी के आंदोलन को संभाला और उनकी रिहाई के लिए अभियान भी छेड़ दिया। हफ्ते भर बाद गांधीजी की रिहाई का आदेश हो गया। यह सुनकर कालेनबाक ने खुशी व्यक्त करने के लिए सबसे महंगी कार खरीदी। रिहाई के दिन वह रॉल्स रॉयस लेकर जेल पहुंचे। गांधीजी जेल के बाहर निकले तो खूबसूरत नई गाड़ी के साथ कालेनबाक को देखकर अचंभे में पड़ गए। उनको बुरा भी लगा। उन्होंने पूछा, यह गाड़ी किसके लिए है? कालेनबाक ने कहा, यह आपके लिए लेकर आया हूं। इसमें बैठाकर आपको घर ले जाऊंगा। गांधीजी ने कहा, तुम गाड़ी से चलो। मैं पीछे-पीछे आता हूं। इतना कहकर वह आगे बढ़ गए। कालेनबाक गांधीजी की नाराजगी समझ गए। उन्होंने पंद्रह हजार रुपये के नुकसान पर गाड़ी बेच दी। इस बीच गांधीजी जेल के दरवाजे के बाहर उनकी प्रतीक्षा करते रहे। गाड़ी बेचकर पैदल लौटने पर कालेनबाक ने कहा, अब तो ठीक है न गांधीजी। गांधीजी ने मुस्करा कर कहा, हां, अब बिल्कुल ठीक है। यह मत भूलो कि हम गरीब देश के गरीब मनुष्य हैं। हमारी लड़ाई गरीबों के लिए हैं। उनके लिए ही हमें जेल जाना पड़ा। यहां हमें कुली बैरिस्टर कहा जाता है। हमें यह शोभा नहीं देता कि हम इतनी महंगी गाड़ी में सवारी करें। इस तरह गांधी ने अपने प्रिय मित्र को संयम का संदेश दिया।

५०१)आंख का तेज - कुछ ऐसी घटनाएं इतिहास में दर्ज हो जाती हैं जो अपने-आप में असाधारण होती हैं। ऐसी ही एक घटना खूंखार डाकू फैंक्विल के जबरन जज जैक्सन के कक्ष में घुस आने के संबंध में है। एक दिन फैंक्विल अचानक कचहरी पहुंचा और जज के कमरे में जबरन घुस गया। डाकू को देखकर किसी पुलिसवाले की हिम्मत नहीं हुई कि उसे अंदर जाने से रोके। लोगों पर उसका कुछ इस कदर आतंक था कि लोग उसके नाम से थर-थर कांपते थे। आसपास के लोग उसे देख रास्ता छोड़ छुप जाते थे। उस दिन कचहरी में महज डाकू फैंक्विल के घुसने की चर्चा हो ही रही थी कि सड़क पर चारों तरफ सन्नाटा छा गया। आसपास की दुकानें बंद हो गईं। लोग अपने अपने घरों में घुसकर छुप गए। जज जैक्सन ने अपने कक्ष में उसे जबरन घुसा देखा तो कड़क कर गार्ड से बोले, पकड़ो इसे, कहीं भाग न जाए। इसे तुरंत

गिरफ्तार करो। लेकिन किसी की हिम्मत न हुई उसे पकड़ने की। यह देखकर जज खुद कुर्सी से उतरे और डाकू के पास जा पहुंचे। जज को देखकर डाकू ठिठक गया। जज जैक्सन ने डाकू फैंक्विल को गिद्ध की तरह घूरते हुए देखा। जज का देखना था कि डाकू की नजरें नीचे झुक गईं। वह अंदर से सहम गया। पहली दफा उसने किसी की आंखों में ऐसा भयंकर तेज देखा था, जिसकी तरफ देखना मुश्किल हो। उसने चुपचाप अपने शस्त्र जमीन पर रख दिए। जब डाकू से पूछा गया, तुमने न तो जज पर वार किया और न ही उनकी आंखों की तरफ देखा ही, ऐसा क्यों? डाकू बोला, जज की नजरों में ऐसा भयंकर तेज था कि मेरी हिम्मत ही नहीं हुई कि मैं उनकी तरफ देख पाता। ऐसा लगा जैसे मेरे पैरों और हाथों में दम ही नहीं रह गया है। जब इस अद्भुत घटना की खबर फैली तो लोग जज के साहस की तारीफ करने लगे। उन्होंने ऐसी घटना पहले कभी नहीं सुनी थी।

५०२) महान सेनापति - जनरल रॉबर्ट एडवर्ड ली अमेरिका के एक महान सेनापति थे। एक बार राष्ट्रपति जेफरसन ने जनरल ली से उनके एक अधीनस्थ अधिकारी के बारे में राय मांगी। ली तुरंत बोले, सर, निस्संदेह वह अधिकारी बेहद कुशल व जिम्मेदार व्यक्ति है और अपने कार्यों को पूर्ण समर्पण एवं निष्ठा के साथ करता है। उसे जो भी कार्य दिया जाए वह उसे समय से पहले ही पूरा कर लेता है। यह सुनकर राष्ट्रपति जेफरसन डेविड बेहद खुश हुए। उन्होंने उस अधिकारी को एक योग्य पद के लिए चुनने का मन बन लिया।

राष्ट्रपति के जाने के बाद वहीं खड़े एक अधिकारी रॉबर्ट ली के पास आए और बोले, सर, मुझे एक बात समझ नहीं आई कि आपने उस अधिकारी की इतनी अधिक तारीफ क्यों की? रॉबर्ट ली बोले, मैंने सही तो कहा है। वह अधिकारी सचमुच निष्ठावान और योग्य है। जो जैसा है उसके बारे में वैसा ही तो कहा जाएगा। यह सुनकर अधिकारी और अधिक हैरान हो गया। वह बोला, सर आप भलीभांति जानते हैं कि वह अधिकारी आपके प्रति शत्रुता के भाव रखता है और हमेशा आपके प्रति नकारात्मक विचार रखता है। इस पर रॉबर्ट ली बोले, तो क्या हुआ? राष्ट्रपति ने उस अधिकारी के बारे में मेरे विचार पूछे थे, मेरे बारे में उसके विचार नहीं पूछे थे। शत्रु अधिकारी को जब यह पता चला कि राष्ट्रपति के सामने उसके कार्य की बेहद प्रशंसा की गई है और यह प्रशंसा उसके शत्रु रॉबर्ट ली ने की है, तो वह बेहद लज्जित हुआ। इस घटना के बाद तो उस अधिकारी ने रॉबर्ट ली के प्रति शत्रुता के भावों को निकाल दिया और मन से भी अच्छा बन गया। इस तरह रॉबर्ट ली के सच्चे विचारों और बातों ने एक प्रतिभाशाली व्यक्ति के अंदर से नकारात्मक विचारों व शत्रुता के भाव को हमेशा के लिए निकाल दिया।

५०३) सच्चे भारतवासी - गुलजारी लाल नंदा बेहद सादगी से रहते थे। वह दो बार आपातकालीन परिस्थितियों में देश के प्रधानमंत्री बने। एक बार उनके किसी मित्र ने कहा, आप सच्चे भारतवासी हैं। मित्र की बात सुनकर गुलजारी लाल नंदा बोले, हर भारतवासी को देश की प्रगति के बारे में ही सोचना चाहिए। एक अच्छा और सच्चा इंसान वही होता है जो अपने देश को आगे बढ़ाने के बारे में सोचता है। हमारे देश में आजादी के बाद बहुत गरीबी है, लोग अशिक्षित हैं, अपने कर्त्तव्यों व अधिकारों से अनजान हैं। ऐसे में मैं तो यह सोचता हूं कि जो भी व्यक्ति गुणवान व शिक्षित हैं, उन्हें हर जरूरतमंद व असहाय की सहायता करनी चाहिए। लोग नेक भावना के साथ असहाय व्यक्तियों की मदद के लिए आगे

आएंगे तो हमारा देश स्वयं संपन्न हो जाएगा। मेरे पास जो भी ज्ञान और योग्यता है, मैं उसका पूरा-पूरा सदुपयोग करना चाहता हूं। यह सुनकर मित्र बोला, अब तो आपको आराम से जीवन गुजारना करना चाहिए। इस पर गुलजारी लाल नंदा मुस्कराते हुए बोले, मित्र, मेरी नजरों में तो आराम से जीवन गुजारना वह है कि व्यक्ति स्वस्थ रहकर देश की सेवा करे। सच कहूं तो मेरी इच्छा है कि मरने के बाद भी लोग मेरे कार्यों को याद रखें। यदि लोग मुझे मृत्यु के बाद भी याद रखेंगे तो मैं अपने देश की जड़ों और मिट्टी से जुड़ा रहूंगा। गुलजारी लाल नंदा की यह बातें सुनकर मित्र द्रवित हो गए और बोले, धन्य हैं आप जो मातृभूमि और देश से इतना प्रेम करते हैं। मेरा हृदय कहता है कि आपको पृथ्वी पर सदियों तक याद किया जाता रहेगा। गुलजारी लाल नंदा के सक्रिय योगदान और कार्यों के कारण उन्हें पद्मविभूषण एवं देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न से विभूषित किया गया। उन्हें आज पूरा देश व विश्व बेहद श्रद्धा और सम्मान के साथ याद रखे हुए हैं।

५०४) महात्मा की बात का मर्म - एक महात्माजी ने नगर में एक भव्य मंदिर निर्माण करवाने का संकल्प लिया। उन्होंने दस वर्ष तक अथक परिश्रम करके करोड़ों रुपए इकट्ठे कर लिए, लेकिन जब मंदिर निर्माण का समय आया तो नगर में महामारी फैल गई। लोग मरने लगे। महात्माजी ने एकत्र सारा धन लगाकर एक अस्पताल बनवा दिया ताकि लोगों को अकाल मौत के मुंह में जाने से बचाया जा सके। महात्माजी ने मंदिर निर्माण के लिए फिर धन संग्रह करना प्रारंभ कर दिया और दस वर्ष तक अपने प्रयासों से पुन: करोड़ों रुपए एकत्र कर लिए। इस बार भी जब मंदिर निर्माण प्रारंभ होना था तो भयंकर भूकंप आ गया। असंख्य लोग बेघर हो गए। महात्माजी ने इस बार का सारा पैसा भूकंप पीड़ितों के पुनर्वास व अनाथ हुए बच्चों के लिए अनाथालय और विद्यालय बनवाने में खर्च कर दिया। इसके बाद भी महात्माजी ने अगले दस वर्षों तक कठोर परिश्रम करके पैसे इकट्ठे किए और मंदिर का निर्माण प्रारंभ करवा दिया। मंदिर पूरा होने पर महात्माजी ने उस पर लिखवाया- मंदिर संख्या तीन। लोगों ने हैरान होकर पूछा- मंदिर संख्या एक और दो कहीं दिखाई नहीं पड़ते। महात्माजी ने कहा- मंदिर संख्या एक तो हमारा अस्पताल है जो बीस साल पहले महामारी के दौरान बना था और मंदिर संख्या दो वह अनाथालय तथा विद्यालय है जो दस साल पहले भूकंप के समय बने थे। महात्माजी ने कहा कि यद्यपि इस मंदिर का भी महत्व है, लेकिन इसके बिना काम चल सकता है। मंदिर संख्या एक और दो तो जरूरी हैं। इसीलिए अस्पताल, अनाथालय व विद्यालय को भी मंदिर ही कहना उचित प्रतीत होता है।

५०५) अवसर की पहचान - एक भिखारी हर रोज की तरह सुबह-सुबह भीख मांगने निकला। चलते समय उसने अपनी झोली में जौ के मुट्ठी भर दाने डाल दिए। यह पूर्णिमा का दिन था। भिखारी मन ही मन सोच रहा था कि आज तो मेरी झोली शाम से पहले ही भर जाएगी। कुछ दूर ही चला था कि अचानक सामने से राजा की सवारी आती दिखाई दी। भिखारी खुश हो गया। इसके बाद उसने सोचा, अब राजा के दर्शन और मिलने वाले दान से गरीबी दूर हो जाएगी। जैसे ही राजा भिखारी के निकट आया, उसने अपना रथ रुकवा लिया। लेकिन यह क्या, राजा ने उसे कुछ देने के बजाय, अपनी बहुमूल्य चादर उसके सामने फैला दी और उलटे उसी से भीख मांगने लगे। भिखारी को समझ ही नहीं आ रहा था कि वह करे तो क्या करे। खैर उसने अपनी झोली में हाथ डाला और जैसे-तैसे मन मसोस कर उसने जौ के दो दाने निकाले और राजा की चादर पर डाल दिए। राजा चला गया तो भिखारी भी दुखी मन से आगे चल दिया। उस दिन उसे और दिनों के

मुकाबले कुछ ज्यादा ही भीख मिली, पर उसे खुशी नहीं हो रही थी। दरअसल, उसे राजा को दो दाने भीख देने का बड़ा मलाल था। बहरहाल, शाम को घर आकर जब उसने झोली पलटी, तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसकी झोली में दो दाने सोने के हो गए थे। वह समझ गया कि यह सब दान की महिमा के कारण हुआ। उसे इस बात पर बेहद पछतावा हुआ कि काश, राजा को कुछ और दाने दान कर देता। वह समझ गया कि अवसर ऐसे ही लुके-छिपे ढंग से सामने आते हैं। समय रहते व्यक्ति उन्हें पहचान नहीं पाता।

५०६) वास्तविक पुरस्कार - एक राजा को सुंदर-सुंदर इमारतें बनवाने का शौक था। उसने दूर-दूर से कुशल शिल्पियों को अपने राज्य में बुलाया ताकि वे सुंदर और विशाल भवनों का निर्माण करें। राजा शिल्पियों का आदर करता था और उन्हें उचित पारिश्रमिक के अलावा पुरस्कार भी देता था। एक अनुभवी शिल्पी जब वृद्ध हो गया तो उसने एक दिन राजा से कहा, महाराज, मैंने जीवन भर राज्य की सेवा की है, लेकिन अब मैं वृद्ध हो गया हूं। मुझे इस सेवा से मुक्त करने की कृपा करें। राजा ने शिल्पी से कहा, महान शिल्पी तुम्हारी सेवाओं के लिए मैं ही नहीं, पूरा राज्य तुम्हारा कृतज्ञ है। तुम्हें सेवानिवृत्त होने का पूरा अधिकार है, लेकिन मेरी इच्छा है कि सेवानिवृत्ति से पहले मेरे लिए एक भवन और बनाओ जो आज तक बने सभी भवनों से श्रेष्ठ व उत्कृष्ट हो। शिल्पी राजा की इच्छा कैसे टाल सकता था? वह भवन बनाने के काम में जुट तो गया, लेकिन बेमन से। उसने उस श्रेष्ठता व उत्कृष्टता का परिचय नहीं दिया जिसकी उससे अपेक्षा थी। बस किसी तरह भवन पूरा कर दिया और राजा से पुन: सेवामुक्ति की प्रार्थना की। राजा ने कहा, मैं आपकी कला से अत्यंत प्रभावित हूं और इसीलिए मैंने आपसे इस उत्कृष्ट भवन का निर्माण करवाया है ताकि आपको पुरस्कार स्वरूप ये भवन भेंट कर सकूं। शिल्पी प्रसन्न तो हुआ, लेकिन उसे इस बात का बेहद अफसोस हुआ कि उसने भवन का निर्माण पूरे मन से नहीं किया और उसमें अनेक कमियां रह गईं। वह समझ गया कि अनमने होकर कार्य करते हुए भी असम्मान किया। इस तरह वह अपना वास्तविक पुरस्कार खो बैठा।

५०७) विचित्र आशीर्वाद - गुरु नानक जी एक बार एक गांव में गए। उस गांव के लोग नास्तिक विचारधारा के थे। वे साधुओं को ढोंगी कहते और उनका अपमान करके उन्हें गांव से निकाल देते थे। ऐसा ही व्यवहार उन्होंने नानक जी के साथ किया। उन्हें अत्यधिक कटु वचन कहे और उनका तिरस्कार भी किया। फिर भी नानकदेव शांत ही रहे। दूसरे दिन जब नानक देव जी वहां से रवाना होने लगे तो उस गांव के कुछ लोग उनके पास आए और उन्होंने उनसे कहा, जाने से पहले आशीर्वाद तो देते जाएं। नानक देव मुस्कुरा दिये और बोले, आबाद रहो। फिर वे पास के एक गांव की ओर रवाना हो गए। जब वे दूसरे गांव में पहुंचे तो वहां के लोगों ने उचित आदर-सत्कार किया तथा रहने-खाने का भी अच्छा प्रबंध किया। नानकजी से उन्होंने प्रेमपूर्वक प्रवचन कहने का आग्रह भी किया। नानकजी ने उनके समक्ष प्रवचन किया। प्रवचन के बाद लोगों ने उनसे आशीर्वाद देने का आग्रह किया, तो नानकदेव बोले, उजड़ जाओ। यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर उनके एक शिष्य से न रहा गया। वह पूछ ही बैठा, देव, आपने आदर न करनेवालों को आबाद रहने का। मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया। नानकदेव हंसते हुए बोले, सज्जन उजड़ेंगे तो जहां भी जाएंगे, अपनी सज्जनता के कारण उत्तम वातावरण बना लेंगे। किंतु दुर्जन यदि अपना स्थान छोड़े तो वे जहां जाएंगे वहीं का वातावरण दूषित बनाएंगे,

इसलिए उन्हें आबाद रहने का आशीर्वाद दिया। शिष्य को अब सज्जन व दुर्जन का अंतर समझ में आ चुका था।

५०८) किसान की सीख - एक गाड़ीवान रोज गांव से गाड़ी में माल भर कर शहर से ले जाता था। उससे जो आय होती उससे परिवार का गुजारा चलता था। वह रोज सुबह मंदिर जाकर हनुमानजी की आराधना करता। एक दिन गाड़ीवान शहर से वापस गांव लौट रहा था। बारिश का मौसम था और रास्ते में एक जगह दलदल था। जैसे ही उसकी गाड़ी उस रास्ते से गुजरी, उसके पहिए धंस गए। बैलों ने खूब जोर लगाया, लेकिन वे किसी भी तरह गाड़ी को बाहर नहीं खींच पाए। यह देखकर गाड़ीवान चिंतित हो गया। वह खुद कीचड़ में नहीं उतरना चाहता था, लिहाजा गाड़ी में बैठे-बैठे जोर-जोर से हनुमानजी को याद करते हुए इस मुसीबत से उबारने की गुहार लगाने लगा। उसे हनुमानजी को पुकारते बहुत देर हो गई, परंतु कोई मदद नहीं आई। इससे वह झल्ला उठा और कहने लगा, मैं इतनी देर से गुहार लगा रहा हूं, लेकिन फिर भी हनुमानजी की कृपा मुझ पर नहीं बरसी। वहीं पास के खेत में एक किसान हल जोत रहा था। उसने यह तमाशा देखा तो वह गाड़ीवान के पास आया और बोला, हनुमानजी को क्यों दोष देता है। उनका भक्त बनता है तो कीचड़ में उतरकर पहियों को जोर क्यों नहीं लगाता? हनुमानजी को क्यों पुकारता है? अरे, हनुमानजी तो समुद्र में कूद पड़े थे और तुझसे कीचड़ में भी नहीं उतरा जाता। यह सुनकर गाड़ीवान को अपनी गलती का भान हुआ। वह उतरा और पहियों पर जोल लगाने लगा। धीरे-धीरे गाड़ी आगे बढ़ी और कीचड़ से पार हो गई। वह समझ गया कि जो काम अपने पुरुषार्थ से हो सकता है, उसके लिए देवता को पुकारना ठीक नहीं।

५०९) फलदायक विश्वास - किसी शहर के किसी फरीसी ने एक बार ईसा मसीह से निवेदन किया- प्रभु, आप कृपा करके एक दिन मेरे घर पर आकर मेरे साथ भोजन ग्रहण करें। बस फिर क्या था, ईसा मसीह एक दिन उसके घर पहुंचकर भोजन करने को बैठ गए। तभी उस शहर की एक पापिन स्त्री को यह खबर मिल गई। वह फौरन संगमरमर के एक पात्र में इत्र लेकर वहां आ पहुंची। ईसा के पांवों के पीछे खड़ी हो रो-रोकर वह उनके पांवों को अपने आंसुओं से भिगोने लगी। थोड़ी थोड़ी देर में वह अपने सिर के बालों से उनके पांव भी पोंछने लगी। इस बीच उसने कई बार ईसा मसीह के पैर चूमे और उन पर इत्र मला। फरीसी सोचने लगा कि यदि यह ईसा भूत- भविष्य जानता होता तो समझ जाता कि जो स्त्री उसे छू रही है, वह तो पापिन है। तभी प्रभु ईसा ने उससे कहा- हे शमीन, किसी महाजन के दो देनदार थे। एक से उसे पांच सौ दीनार लेने थे और दूसरे से पचास। लेकिन जब उनके पास कुछ रहा ही नहीं तो महाजन ने दोनों को माफ कर दिया। तो उनमें से कौन उसे अधिक प्रेम करेगा? फरीसी बोला- वह, जिसका अधिक पैसा उसने छोड़ दिया। प्रभु ईसा ने कहा, तू ठीक कहता है। इस स्त्री को देख। मैं तेरे घर में आया, लेकिन तूने मुझे पैर धोने को पानी भी नही दिया। इस स्त्री ने अपने आंसुओं से मेरे पैर धोए, अपने बालों से उन्हें पोंछा। तूने तो मुझे चुमा तक नहीं, लेकिन जबसे यह आई है, तबसे मेरे पैरों को चूम रही है। इसने मेरे पांव पर इत्र भी डाला और बहुत प्रेम किया। इस वजह से इसके सारे पाप क्षमा हो गए। इसके विश्वास ने मुझे बचा लिया।

५१०) सच्चा भक्त - कुरुक्षेत्र का युद्ध जीत लेने के बाद अर्जुन को अहंकार हो गया कि बस वही श्रीकृष्ण के सच्चे भक्त हैं। एक दिन अर्जुन घूमने के लिए निकले। रास्ते में उन्हें एक व्यक्ति दिखाई दिया। उसकी कमर में एक तलवार

लटकी हुई थी। वह सूखी घास तोड़कर खाए जा रहा था। यह नजारा देख अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उस व्यक्ति से प्रश्न किया- आप तो शुद्ध सात्विक मनुष्य हैं। आपने स्वाद पर भी विजय हासिल कर ली है। पर मेरी समझ में यह नहीं आया कि आप यह तलवार क्यों धारण किए हुए हैं? वह बोला- यह तलवार मैंने चार व्यक्तियों को दंड देने के लिए धारण की है। अर्जुन ने आश्चर्य से पूछा- वे चार व्यक्ति कौन हैं? व्यक्ति ने उत्तर दिया- उनमें एक हैं नादरजी, जो मेरे भगवान का कोई ख्याल नहीं रखते। भजन-कीर्तन से उन्हें जगाए रखते हैं। दूसरी है द्रौपदी, जिसने मेरे प्रभु को तब पुकारा जब वे भोजन का ग्रास ले रहे थे। उन्हें भोजन बीच में छोड़कर उसे चीर-हरण से बचाने जाना पड़ा। तीसरे हैं प्रह्लाद जिन्होंने मेरे प्रभु को गरम तेल की कड़ाही में डुबाया। हाथी के पैरों तले कुचलवाया। उन्हें खंभे में से प्रकट होने के लिए विवश भी किया। अर्जुन ने पूछा, और चौथा कौन है? चौथा है- पांडु पुत्र अर्जुन। उसकी धृष्टता तो देखो- स्वयं प्रभु को उसने अपने सेवक के रूप में सारथी बना लिया। प्रभु के प्रति पंडितजी की ऐसी भक्ति और प्रेम देखकर अर्जुन का अहंकार दूर हो गया। वह बोला- सच्चा भक्त वही है जो अपनी पीड़ा का रोना ईश्वर के सामने नहीं रोता। वह तो संकट को संघर्ष के रास्ते समाप्त करने की कोशिश करता है।

५११) अपनी चीज - राजा राममोहन राय के बगीचे में बड़े सुंदर फूलों के पेड़ लगे हुए थे। एक व्यक्ति हर रोज वहां आता और बगैर किसी की अनुमति लिए, पूजा के लिए फूल तोड़कर अपने घर ले जाता। यह सिलसिला लगातार कई दिनों तक चलता रहा। एक दिन रोज की तरह ही उसने अपनी चादर पेड़ पर टांग दी और फूल तोड़ने लगा। तभी राममोहन राय के निर्देशानुसार एक आदमी चुपचाप बगीचे में गया और उसकी चादर उठा कर ले आया। चादर लाकर उसने उन्हें सौंप दी। कुछ देर बाद जब व्यक्ति ने फूल तोड़ लिए और लौटने से पहले अपनी चादर लेने पेड़ के पास गया तो दंग रह गया। चादर वहां थी ही नहीं। अपनी चादर वहां न पाकर वह आग बबूला हो गया। तभी राममोहन राय वहां आए और उससे नाराज होने का कारण पूछने लगे। उसने कारण बताया तो राममोहन राय ने उसकी चादर लौटा दी और पूछा- अब तो आप गुस्से में नहीं हैं न? आखिरकार, आपको अपनी चादर मिल ही गई। उसने क्रोध में ही जवाब दिया- इसमें खुश होने की भला कौन सी बात है, मैंने अपनी चीज ही तो वापस पाई है। यह जवाब सुनकर राज राममोहन राय ने फिर उस व्यक्ति से प्रश्न किया- अच्छा, यह बताइए कि आप जो रोज-रोज फूल तोड़कर ले जाते हैं, वे किसके हैं? उसने जवाब दिया- ये फूल ईश्वर के हैं और ईश्वर को समर्पित करने के लिए ही मैं इन्हें लेकर जाता हूं। इस पर राममोहन राय ने उससे कहा- जब आप अपनी चीज पाकर खुश नहीं, तो क्या ईश्वर अपने ही फूल पाकर खुश हो सकते हैं? यह सुनकर वह सिर झुकाकर चला गया और फिर कभी फूल तोड़ने नहीं आया।

५१२) कर्म की ताकत - उस समय नेपोलियन एक साधारण सैनिक ही थे। एक दिन राह में एक ज्योतिषी कुछ लोगों का हाथ देख रहे थे। नेपोलियन भी वहां ठहर गए और उन्होंने अपना हाथ ज्योतिषी के आगे कर दिया। वह काफी देर तक हाथ देखता रहा और अचानक उसका चेहरा उदास हो गया। नेपोलियन उसके मनोभाव समझ गए और बोले, क्या हुआ महाराज? क्या कोई अनहोनी बात लिखी है, जिससे आप चिंतित हो उठे हैं। ज्योतिषी ने अपनी गर्दन उठाई और बोला, तुम्हारे हाथ में भाग्य रेखा ही नहीं है। मैं यही देखकर चिंतित था। जिसके हाथ में भाग्य रेखा ही न हो, उसका भाग्य प्रबल

कैसे हो सकता है? ज्योतिषी की बात सुनकर नेपोलियन दंग रह गए। वह बहुत ही महत्वाकांक्षी थे। उन्हें ज्योतिषी की बात से बहुत आघात पहुंचा। वह ज्योतिषी से बोले, महाराज, मैं अपने कर्म से अपना भाग्य ही बदल दूंगा। जीवन हाथ की रेखाओं पर नहीं, कर्म की रेखा पर निर्भर करता है। हमारे सदकर्मों की रेखा जितनी बड़ी होगी, सफलता भी उसी हिसाब से मिलेगी। ज्योतिषी बोले, बेटा, काश तुम्हारी बात सच साबित हो। नेपोलियन को अपने अदम्य साहस और आत्मबल पर पूरा विश्वास था। इसलिए उन्होंने तय कर लिया कि जो सफलता उनके भाग्य में नहीं है, उसे वे कर्म के बल पर मेहनत से पाकर दिखाएंगे और सचमुच अनेक बाधाओं का सामना करते हुए नेपोलियन एक साधारण सैनिक से फ्रांस के सम्राट बने। उन्होंने अपने कर्म से भाग्य रेखा को कर्म रेखा में बदला और दुनिया को एक नई दिशा प्रदान करते हुए दिखा दिया कि कर्म की ताकत से बड़ी कोई ताकत नहीं होती।

५१३) फनकार की पसंद - एक बार उस्ताद आलिया और फत्तू का गायन निजाम, हैदराबाद के दरबार में होना तय हुआ। वे दोनों एक माह तक पैदल चलने के बाद निजाम हैदराबाद के दरबार पहुंचे। तय समय पर उस्ताद का गायन शुरू हुआ। धीरे धीरे रसिकजन संगीत रस के सागर में डूबने-उतराने लगे। गायन की समाप्ति पर निजाम ने उस्ताद को एक लाख रुपए भेंट किए, लेकिन कहा- उस्ताद, आज महफिल पूरे उभार पर नहीं आई। उस्ताद तो उस्ताद ठहरे, उन्होंने फौरन पुरस्कार लौटाते हुए कहा, हुजूर, बांधे बनियां बाजार नहीं लगता। गाना हमारी तबीयत से सुनिए, तभी आपको मजा आएगा। इस बात पर निजाम ने उस्ताद को शाही मेहमानखाने में ठहरा दिया। एक माह अंतराल के बाद एक दिन उस्ताद अपने साथी सहित तानपुरा पर राग छेड़ रहे थे। तानपुरा बजाते हुए दीन-दुनिया से बेखबर उस्ताद अपनी पूरी मस्ती के साथ गाते हुए चल दिए निजाम की तरफ। सिपाहियों ने उन्हें देखा तो हैरत में निजाम को इत्तला दी- हुजूर, लगता है मेहमानखाने में ठहरे गवैये पागल हो गए हैं। निजाम समझ गए और उन्होंने आलिया फत्तू के लिए दरबार सजवा दिया। उस्ताद की सुर लहरी में पूरा दरबार डूब गया। गायन समाप्ति पर निजाम ने माफी मांगते हुए कहा- उस्ताद ने निगाहें उठाईं और बोले- कितना खूबसूरत है कबूतरों का यह जोड़ा, यही दे दें। जोड़ा उन्हें दे दिया गया। महीनों बाद दोनों फनकार घर पहुंचे। बीवियों ने पूछा- इतने बड़े निजाम से तुम्हें यही मांगते बना? उस्ताद आलिया बोले- खफा क्यों होती हो बेगम? निकाल लाया, कैद में थे बेचारे।

५१४) ग्राहक की संतुष्टि - एक किसान का एक ही बेटा था। वह नौ-दस साल का हुआ तो किसान कभी-कभार उसे भी अपने साथ खेत में ले जाने लगा। एक बार वह अपने बेटे को खेत पर लेकर गया तो भुट्टे पक चुके थे। किसान उन्हें तोड़कर बाजार ले जाने की तैयार करने में जुट गया। तभी उसके बेटे ने पिता से कहा- पिताजी, क्या मैं भी आपकी कुछ मदद कर सकता हूं? इस पर किसान ने कहा- हां-हां। ऐसा करते हैं, मैं खेत से भुट्टे तोड़-तोड़कर निकालता जाऊंगा और तुम एक-एक दर्जन भुट्टों की अलग-अलगे ढेरियां बनाते जाना। इसके बाद वे दोनों काम पर जुट गए। दोपहर का खाना खाने के बाद किसान ने बेटे द्वारा बनाई ढेरियों पर नजर दौड़ाई और कुछ और भुट्टे तोड़ लाया। उसने हर ढेरी में एक-एक भुट्टा और बढ़ा दिया। यह देख किसान का बेटा बोला- पिताजी, मुझे गिनती आती है। मैंने यह ढेरी में गिनकर बारह भुट्टे ही रखे हैं। अब तो ये तेरह हो गए। किसान ने मुस्कराते हुए कहा- बेटा, तुम ठीक कहते हो, लेकिन जब हम भुट्टे बेचने

निकलते हैं तो एक दर्जन में तेरह भुट्टे होते हैं। बेटे ने पूछा- ऐसा क्यों पिताजी? किसान ने समझाया- देखो, भुट्टे के ऊपर छिलका होता है। हमारे ढेर में एक भुट्टा खराब भी निकल सकता है। इसलिए हम ग्राहकों को दर्जन पर एक भुट्टा अतिरिक्त देते हैं ताकि हमारे ग्राहक ये न समझें कि हमने उन्हें धोखा दिया। हम चाहते हैं कि हमारा ग्राहक संतुष्ट होकर दूसरों को भी बताए कि भुट्टे कितने अच्छे हैं। इस तरह हमारे भुट्टे और ज्यादा बिकेंगे। पिता की इन बातों से बेटे को कारोबार का एक अहम सबक मिल गया- ग्राहक की संतुष्टि सर्वोपरि है।

५१५) सहनशीलता का पाठ - एक आलिम थे जो दीनी तालीम दिया करते थे। वह लोगों की समस्याएं सुनकर उनका समाधान भी बताया करते थे। वह बड़े नेक और सच्चे थे, इसलिए उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। वह किसी से कभी नाराज नहीं होते थे। लेकिन जिसका सम्मान जितना अधिक होता है, उसके विरोधियों को वह उतना ही खलने लगता है। विरोधी खेमे में भी यह चर्चा आम थी। विरोधी गुट के आचार्य ने सोचा- देखता हूं, उसे कैसे गुस्सा नहीं आता। मैं आज यह भ्रम तोड़कर रहूंगा। यह कहकर वह अपने घर आए और भेष बदलकर आलिम की कुटिया में जा पहुंचे। वहां बहुत लोग पहले से ही बैठे थे। उन्होंने पास जाकर अभिवादन किया और बैठ गए। कुछ देर बाद उन्होंने कहा, मुझे कुछ जानना है। आपकी इजाजत हो तो पूछूं। आलिम ने कहा, क्या जानना चाहते हो। अगर रब ने चाहा तो तुम्हें जवाब जरूर मिलेगा। आचार्य ने पूछा- मल का स्वाद कैसा होता है? यह अटपटा सवाल सुनकर सभी हैरान रह गए। आलिम बोले, मल का स्वाद शायद कुछ-कुछ मीठा होता है। उसने पूछा, आपको कैसे पता, मीठा होता है या कड़वा। क्या आपने चखकर देखा है? आचार्य का सवाल सुनकर वहां बैठे लोग आगबबूला हो गए कि इसकी हिम्मत कैसे हुई यह कहने की। लेकिन आलिम ने सभी को शांत किया और बोले- मैंने मीठा इसलिए कहा कि अक्सर देखा जाता है कि उस पर मक्खियां भिनभिनाती रहती हैं और वे आमतौर पर मीठे पर ही बैठती हैं। सुनकर आचार्य नतमस्तक हो गए और अपना परिचय देते हुए बोले, आपकी सहनशीलता वंदनीय है।

५१६) शराब से तौबा - प्रसिद्ध संत तिरुवल्लुवर एक बार अपने शिष्यों के साथ कहीं चले जा रहे थे। रास्ते में आने-जानेवाले लोग उनका अभिवादन कर रहे थे। तभी अचानक, एक शराबी झूमता हुआ उनके सामने आया और खड़ा हो गया। उसने संत तिरुवल्लुवर से पूछा- आप लोगों से यह क्यों कहते फिरते हैं कि शराब बहुत खराब चीज हैं, मत पिया करो। क्या अंगूर खराब होते हैं, क्या चावल बुरी चीज है? अगर ये दोनों चीजें अच्छी हैं तो इनसे बननेवाली शराब कैसे बुरी हो गई? लोग हैरत से देखने लगे कि संत तिरुवल्लुवर इस पर क्या जवाब देते हैं। संत मुस्कराकर बोले- भाई, अगर तुम पर मुट्ठी भरकर कोई मिट्टी फेंके या कटोरा भर कर पानी डाल दे तो क्या इससे तुम्हें चोट लगेगी? शराबी ने ना में सिर हिलाया तो संत ने फिर कहा-लेकिन इस मिट्टी में पानी मिलाकर उसकी ईंट बनाकर तुम पर फेंकी जाए तब? शराबी ने कहा- जाहिर सी बात है, उससे तो मैं घायल ही हो जाऊंगा। संत तिरुवल्लुवर ने शराबी को फिर समझाते हुए कहा- देखो भाई, जब मिट्टी में पानी मिलाकर उसकी ईंट बनाकर तुम पर फेंकी जाए तब तुम उससे घायल हो जाओगे, इसी प्रकार अंगूर और चावल भी अपने आप में बुरे नहीं हैं, लेकिन यदि इन्हें मिलाकर शराब बनाकर सेवन किया जाए तो यह मनुष्य के लिए नुकसानदेह है। यह स्वास्थ्य को खराब करती है। इससे व्यक्ति की सोचने की क्षमता पर भी बहुत बुरा

असर पड़ता है। इसके कारण कई बार अनेक परिवार नष्ट हो जाते हैं। संत की इस बात का उस शराबी पर गहरा असर पड़ा। उसने उसी दिन से शराब से तौबा कर ली।

५१७) वैशाली का नगर नायक - बहुत पहले की बात है। वैशाली महानगर पूरे उत्साह से राज्य महोत्सव मनाने में व्यस्त था। अचानक उसी समय पहले से घात लगाए हुए शत्रुओं ने महानगर पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में सेना को हार का मुंह देखना पड़ रहा था और शत्रु सेना प्रजाजनों पर जुल्म कर रही थी। नगरनायक महायापन विवश थे। वह यह दृश्य देखकर बहुत दुखी हो गए। कुछ सोचकर वह शत्रुपक्ष के सेनाध्यक्ष से मिलने चल दिए। उनके पास पहुंचते ही उन्होंने प्रजा पर हो रहे इस अत्याचार को रोकने का अनुरोध किया। शत्रु सेनानायक ने उनके सामने यह शर्त रखी कि तुम जितनी देर सामने बह रही नदी में डूबे रहोगे, हमारी सेना लूट-पाट और हिंसा बंद रखेगी। यह शर्त सुनते ही नगरनायक उसे स्वीकार करने को तैयार हो गए। देखते देखते वह नदी में कूद भी पड़े। शत्रु सेनानायक भी अपने वचन के पक्के थे। जब तक नगरनायक का सिर पानी के बाहर न दिखाई दिया, लूटपाट और संहार का सिलसिला बंद रहा। काफी समय बीत गया, लेकिन महायापन बाहर नहीं आए। उधर विशाल शत्रु सेना प्रतीक्षा करते करते थक गई थी। सेनानायक चकित थे। उन्होंने हारकर गोताखोरों को नगरनायक का पता लागने को कहा। काफी खोजबीन के बाद नगरनायक का मृत शरीर एक चट्टान से लिपटा पाया गया। नगरनायक ने दोनों हाथों से चट्टान को मजबूती से पकड़ रखा था। मरने के बाद भी चट्टान से उनके हाथ नहीं छूटे। इस अनुपम त्याग और बलिदान से शत्रु सेनानायक का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने लूटपाट का इरादा त्याग दिया और सेना लेकर अपने राज्य को लौट गए।

५१८) फल का स्वाद - बहुत पहले की बात है। एक बार संत इब्राहीम घूमते-घूमते अचानक किसी धनवान के बगीचे में जा पहुंचे। धनवान ने देखा तो उन्हें वह कोई साधारण मजदूर समझ बैठा। उसने उनसे कहा, तुझे यदि कुछ काम चाहिए तो बगीचे में देखभाल और रखवाली का काम कर ले। इन दिनों मुझे एक ऐसे आदमी की आवश्यकता भी है। इब्राहीम को एकांतमय बगीचा ईश्वर भजन के लिए बड़ा ठीक लगा। उन्होंने खुशी खुशी धनवान की बात स्वीकार कर ली। धीरे-धीरे बगीचे का काम करते हुए उन्हें काफी समय गुजर गया। एक दिन बगीचे का मालिक अपने कुछ मित्रों के साथ घूमता-घामता अपने बगीचे में आ गया। उसने इब्राहिम से कुछ आम तोड़कर लाने को कहा। संत इब्राहीम फौरन कुछ पके हुए आम तोड़कर ले आए। लेकिन दुर्भाग्य से वे सारे के सारे आम एकदम खट्टे निकल गए। इस पर बगीचे के मालिक ने नाराज होकर कहा, तुझे इतने दिन हो गए यहां रहते हुए। लेकिन तू अभी तक यह भी नहीं जान पाया कि किस पेड़ के आम खट्टे है और किस पेड़ के मीठे? संत इब्राहीम हंस दिए। उन्हें हंसता देख बगीचे के मालिक ने पूछा, तुम हंस क्यों रहे हो? इब्राहीम ने जवाब दिया, आपने मुझे बगीचे की रखवाली करने के लिए नियुक्त किया है। फल खाने का अधिकार तो दिया नहीं। आप ही बताइए, आपकी आज्ञा के बिना मैं आपके बगीचे का फल कैसे खा सकता था। बगैर फल खाए, फल खट्टा है या मीठा, यह कैसे जान पाता। यह सुनकर बगीचे का मालिक बहुत शर्मिंदा हुआ। उसने अपने व्यवहार के लिए फौरन उनसे क्षमा मांगी।

५१९) सुविधा का मोह - यह बात उस समय की है जब देश को आजाद हुए कुछ ही समय हुआ था। लालबहादुर शास्त्री तब उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री थे। शास्त्रीजी अपनी सादगी के लिए विख्यात थे। इतना बड़ा पद मिलने के बाद भी

उन्होंने अपनी सादगी को बनाए रखा था। वह कम से कम साधनों में ही अपना और अपने परिवार का काम चलाते थे। किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा पर धन का अपव्यय करना वह बिलकुल पसंद नहीं करते थे। गृहमंत्री बनने के बाद दोपहर के समय एक दिन वह अपने कार्यालय में थे। तभी उनके घर पीडब्लयूडी विभाग के कर्मचारी आए। शास्त्रीजी की पत्नी ललिता जी को उन लोगों ने बताया कि वे कूलर लगाने आए हैं। यह सुनकर शास्त्रीजी के बच्चे बड़े प्रसन्न हो गए। उन्होंने सोचा कि इस बार गर्मी का मौसम बहुत मजे में कटेगा। लेकिन शाम के समय जब शास्त्रीजी घर लौटे, तो उन्हें कूलरवाली बात मालूम हुई। उन्होंने उसी वक्त पीडब्ल्यूडी विभाग में फोन लगाकर कूलर लेने से इन्कार कर दिया। शास्त्रीजी की पत्नी को यह पता चला तो उन्होंने कहा- यदि बिना मांगे कोई सुविधा मिल रही है, तो हम क्यों मना करें? इस पर शास्त्रीजी ने जवाब दिया- यह तो जरूरी नहीं कि मैं हमेशा मंत्री पद पर ही बना रहूंगा। इस समय तुम्हारी बात मान लूं तो फिर हम सबको सुविधाओं में जीने की बुरी आदत पड़ जाएगी। अभी तो साधन मिल रहे हैं, लेकिन जब न मिलेंगे तब परेशानी होगी। हमारी बेटियों को शादी के बाद ये सुविधाएं नहीं मिलीं, तो उन्हें कष्ट होगा। इसलिए सादगी से जीने में ही हम सबकी भलाई है। सुविधा के मोह से बचनेवाला मनुष्य हर हाल में सुखी रहता है।

५२०) सीखने की उम्र - स्वामी रामतीर्थ पहली बार विदेश यात्रा पर निकले थे। जिस जहाज से वे यात्रा कर रहे थे, उसी में एक ९० वषीय जर्मन से उनकी मुलाकात हुई। वह बुजुर्ग चीनी भाषा सीख रहे थे। इस उम्र में उन्हें एक नई भाषा सीखते देख स्वामी रामतीर्थ को बेहद आश्चर्य हुआ। चीनी एक कठिन भाषा मानी जाती थी। उसमें पांडित्य हासिल करने के लिए कम से कम १०-१५ साल का अभ्यास जरूरी था। स्वामी रामतीर्थ कई दिनों तक उस बुजुर्ग को गौर से देखते रहे। वह नई भाषा सीखने में इस कदम मशगूल रहते थे कि घंटों नजर उठाकर नहीं देखते थे। एक दिन रामतीर्थ ने जिज्ञासावश उनसे पूछ ही लिया- महाशय, आप इस पकी उम्र में एक नई भाषा सीखने में क्यों अपना कीमती समय बर्बाद कर रहे हैं। पता नहीं आप कब इसे सीखेंगे और कब इसका उपयोग कर पाएंगे। उनका यह सवाल सुनकर जर्मन बुजुर्ग ने जवाब दिया- किस उम्र की बात करते हैं आप? मैं काम में इतना व्यस्त रहा हूं कि कभी अपनी उम्र का हिसाब ही नहीं रख पाया। चूंकि अभी सीख ही रहा हूं, इसलिए अब तक बच्चा हूं। जहां तक मेरी मौत का सवाल है, तो वह तो पैदा होने के बाद से ही मेरे सामने खड़ी थी। अगर उसका ही लिहाज रखता रहता तो आज तक मैं कुछ भी नहीं सीख पाता। बुजुर्ग की सीखने की गहरी लगन से स्वामी रामतीर्थ बहुत प्रभावित हुए। भारत लौटने पर न्होंने अपने सभी शिष्यों को अपने इस अनूठे अनुभव के बारे में बताया और कहा कि हर मनुष्य को जीवन भर कुछ न कुछ सीखते रहना चाहिए। सीखने का उम्र से कोई रिश्ता नहीं है।

५२१) जीवन से सीख - स्नान के बाद अर्घ्य देते हुए पंडितजी बुदबुदा रहे थे- प्रीति बड़ी माता की और भाई का बल। ज्योति बड़ी किरणों की और गंगा का जल। यह सुन गुजर रही बुजुर्ग महिला हंस पड़ी। पंडितजी को उसका हंसना अपमानजनक लगा। उन्होंने सरपंच से शिकायत कर दी। अगले दिन पंचायत बुलाई गई। सरपंच ने महिला से कहा- तुमने पंडितजी का अपमान किया है। महिला बोली- मैं पंडितजी का अपमान क्यों करूंगी। पंडितजी बोले- कल तुम हंसी थीं, क्या वह मेरा अपमान नहीं था? महिला ने जवाब दिया- आप पर नहीं, आपकी बात सुनकर हंसी थी। पंडितजी बोले- मैंने कहा था- प्रीति बड़ी माता की और भाई का बल। ज्योति बड़ी किरणों की और गंगा का जल। सरपंच ने कहा-

इसमें हंसने की बात क्या है? महिला बोली- पंडितजी की बात सत्य प्रतीत होती है, पर है नहीं। सरपंच ने पूछा- तो फिर सत्य क्या है? महिला ने कहा- प्रीति बड़ी त्रिया की और बांहों का बल। ज्योति बड़ी नयनों की और मेघों का जल। बात अगर पिता और पुत्र में फंसे तो मां पुत्र का साथ नहीं देगी, लेकिन पत्नी हर हाल में साथ होगी। जब बैरी अकेले में घेर लेगा तो भाई का नहीं, अपनी बांहों का बल काम आएगा। ज्योति नयनों की इसलिए बड़ी है कि जब आंखें ही न हों तो सूरज की किरणों की रोशनी या अमावस का अंधेरा सब बराबर है। गंगाजी पवित्र है, लेकिन वे मेघों के समान न तो जन-जन की प्यास बुझा सकती है न सिंचाई कर सकती है। सरपंच ने पंडितजी से कहा- अब क्या कहेंगे? पंडितजी बोले- मैं समझ गया, किताबी ज्ञान काफी नहीं। जीवन से भी सीखना होगा।

५२२) गुरु दक्षिणा का रूप - एक ऋषि के पास एक युवक ज्ञान लेने पहुंचा। ज्ञानार्जन के बाद उसने गुरु को दक्षिणा देनी चाही। गुरु ने कहा, मुझे दक्षिणा के रूप में ऐसी चीज लाकर दो जो बिल्कुल व्यर्थ हो। शिष्य गुरु के लिए व्यर्थ की चीज की खोज में निकल पड़ा। उसने मिट्टी की तरफ हाथ बढ़ाया तो मिट्टी बोल पड़ी, क्या तुम्हें पता नहीं है कि इस दुनिया का सारा वैभव मेरे ही गर्भ से प्रकट होता है? ये विविध वनस्पतियां, ये रूप, ये रस और गंध सब कहां से आते हैं? यह सुन शिष्य आगे बढ़ गया। थोड़ी दूर जाकर उसे एक पत्थर मिला। शिष्य ने सोचा- क्यों न इस बेकार से पत्थर को ही ले चलूं। लेकिन उसे उठाने के लिए उसने जैसे ही हाथ आगे बढ़ाया पत्थर से आवाज आई, तुम इतने ज्ञानी होकर भी मुझे बेकार मान रहे हो। बताओ तो, अपने भवन और अट्टालिकाएं किससे बनाते हो? तुम्हारे मंदिरों में किसे गढ़कर देव प्रतिमाएं स्थापित की जाती हैं? मेरे इतने उपयोग के बाद भी तुम मुझे व्यर्थ मान रहे हो। यह सुनकर शिष्य ने फिर अपना हाथ खींच लिया।

अब वह सोचने लगा- जब मिट्टी और पत्थर तक इतने उपयोगी हैं तो फिर व्यर्थ क्या हो सकता है? तभी उसके मन से एक आवाज आई। उसने गौर से सुना। आवाज कह रही थी- सृष्टि का हर पदार्थ अपने आप में उपयोगी है? वास्तव में व्यर्थ और तुच्छ तो वह है जो दूसरों को व्यर्थ और तुच्छ समझता है। व्यक्ति का अहंकार ही एकमात्र ऐसा तत्व है, जिसका कहीं कोई उपयोग नहीं होता। यह सुनकर शिष्य गुरु के पास आकर बोला, गुरुवर, आपको अपना अहंकार गुरु दक्षिणा में देता हूं। यह सुनकर गुरु बहुत खुश हुए।

५२३) संगति का असर - हकीम लुकमान सिर्फ हकीम नहीं अनेक विषयों के जानकार और विचारक भी थे। जब वे मृत्युशय्या पर अंतिम सांसें ले रहे थे तो उन्होंने इशारे से अपने बेटे को पास बुलाकर कहा- बेटा, मैंने तुझे यूं तो समय-समय पर अनेक शिक्षाएं दी हैं, पर जाते-जाते एक अंतिम शिक्षा देना चाहता हूं। इतना कहकर लुकमान ने बेटे को पूजा के कक्ष से धूपदान लाने को कहा। जब वह लुकमान ने उसमें से चुटकी भर चंदन लेकर उसके हाथ में कोयला उठाकर लाए। जब बेटा कोयला ले आया तो उन्होंने दूसरी हथेली में कोयला रखने का आदेश दिया। कुछ देर बाद फिर लुकमान ने कहा- अब इन्हें अपने-अपने स्थान पर वापस रख आओ। बेटे ने वैसा ही किया। उसकी जिस हथेली में चंदन था, वह अब भी महक रही थी और जिस हाथ में कोयला था, वह कोयला छोड़ देने पर भी एकदम काली नजर आ रही थी। लुकमान ने अपने बेटे को समझाते हुए कहा- बेटे, एक बात हमेशा याद रखना। अच्छे लोगों का संग चंदन जैसा होता है।

जब तक उनका संग रहेगा तब तक तो खुशबू मिलेगी ही, साथ छूटने के बाद भी अच्छे विचारों की सुगंध से जिंदगी तरोताजा बनी रहेगी। इसी तरह दुर्जनों का संग कोयले जैसा है। जब तक हाथ में कोयला है तब तक तो हाथ काला रहता है हीं, छोड़ देने के बाद भी उस पर कालिमा बनी रहती है। इसलिए बेटा, जीवन में सदैव चंदन जैसे संस्कारी लोगों का ही संग करना और कोयले जैसे कुसंग से दूर रहना। लुकमान का बेटा पिता की इस शिक्षा को जीवन भर नहीं भूला।

५२४) भीतर बैठा डर - एक दिन एक होटल में कुछ लोग खाना खा रहे थे। अचानक एक बड़ा सा कॉक्रोज आकर एक महिला के कपड़े पर बैठ गया। वह भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगी। यह देख कुछ लोग अपना भोजन बीच में ही छोड़कर उठने लगे। वेटर कॉक्रोच को पकड़ने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन वह एक जगह से उड़ता तो दूसरी जगह जा बैठता। घबराकर कई महिलाएं एक-साथ चीखने लगीं। यह दृश्य वहां उपस्थित एक व्यक्ति बड़े ध्यान से बिना विचलित हुए देख रहा था। सहसा वह बोला, भाइयो और बहनो शांत हो जाइए, डरिए नहीं। अभी सब ठीक हो जाएगा। फिर वह बड़े आत्मविश्वास से आगे बढ़ा, उसने कॉक्रोच को अपनी उंगलियों से पकड़ा और खिड़की के बाहर फेंक दिया। सभी उसे हैरानी से देख रहे थे। उन्हें सहज होने में काफी वक्त लगा। महिलाओं ने उस व्यक्ति को घेर लिया और प्रश्नों की झड़ी लगा दी, भाई साहब, यह आपने कैसे किया। उसे पकड़ते हुए आपको डर नहीं लगा? हमारी तो जान निकली जा रही थी। उस व्यक्ति ने सहजता से उत्तर दिया, बहनजी, यह बहुत सामान्य बात है। कॉक्रोच से डरने का कोई कारण नहीं हैं, डर तो आपके अपने मन में था। वह आपको कोई नुकसान नहीं पहुंचा रहा था। ऐसा होता तो पकड़े जाने पर वह मुझे भी अवश्य हानि पहुंचाता। असल में हमारे भीतर बैठा डर हमें अधिक विचलित करता है। आपने कॉक्रोच से डरकर प्रतिक्रिया व्यक्त की और मैंने उसका समाधान खोजा। सभी सोचने लगे- किसी समस्या से भयभीत होने के बजाय ठंडे दिमाग से उसका हल खोजना चाहिए।

५२५) सच्चा पुरुषार्थ - यह बात उन दिनों की है जब स्वामी विवेकानंद की चर्चा दुनियाभर में फैल चुकी थी। उनके विचारों को लेकर हर जगह विचार-विमर्श चल रहा था। उन्हें एक आदर्श के रूप में स्थापित होता देख एक विदेशी महिला बहुत प्रभावित हुई। उसने स्वामी विवेकानंद से विवाह करने का मन बना लिया। बस, इसके बाद वह हरदम उन्हीं के बारे में सोचती रहती। संयोग से एक दिन स्वामी विवेकानंद एक सम्मेलन में भाग लेने पहुंचे तो उसने उनसे मिलने की ठान ली। वह किसी तरह उसी स्थान पर जा पहुंची जहां सम्मेलन हो रहा था। वह स्वामी जी के समीप जाकर निर्भीकता से बोली, स्वामी जी, मैं आपसे विवाह करना चाहती हूं। स्वामी विवेकानंद ने उससे पूछा, क्यों, विवाह तुम आखिर मुझसे ही क्यों करना चाहती हो? क्या तुम यह नहीं जानती कि मैं तो एक संन्यासी हूं? महिला ने पूरी विनम्रता से कहा, देखिए, बात ये है कि मैं आपके जैसा ही गौरवशाली, सुशील और तेजमय पुत्र चाहती हूं। और वह तो तभी संभव होगा जब आप मुझसे विवाह करेंगे। यह सुनकर स्वामी विवेकानंद ने उत्तर दिया, देखो, हमारी शादी तो संभव नहीं है, परंतु एक उपाय अवश्य है। महिला बोली, कैसा उपाय? विवेकानंद बोले, आज से मैं आपका पुत्र बन जाता हूं और आप मेरी मां बन जाएं। आपको मेरे जैसा पुत्र मिल ही जाएगा। यह बात सुनकर महिला उनके चरणों पर गिर पड़ी और बोली, स्वामीजी, आप साक्षात ईश्वर के रूप हैं। इसे कहते हैं पुरुष और ये होता है पुरुषार्थ। सच्चा पुरुषार्थ तभी होता है जब पुरुष नारी के प्रति अपने मन में पुत्र जैसा भाव ला सके और उसमें मातृत्व की भावना उत्पन्न कर सके।

५२६) समाज की धरोहर - एक युवा भारतीय अमीर अपने मित्रों सहित मौजमस्ती के लिए जर्मनी गया। उनकी नजर में जर्मनी एक विकसित देश था, इसलिए वहां के लोग विलासिता का जीवन जीते थे। डिनर के लिए वे एक रेस्त्रां में पहुंचे। वहां एक मेज पर एक युवा जोड़े को मात्र दो बीयर और दो डिश के साथ भोजन करते देख उन्हें बड़ा अचंभा हुआ। सोचा, यह भी कोई विलास है? एक अन्य टेबल पर कुछ बुजुर्ग महिलाएं भी बैठी थीं। बैरा टेबल पर आकर हर प्लेट में जरूरत के अनुसार चीजें डाल जाता। कस्टमर अपनी प्लेट में कोई जूठन नहीं छोड़ रहे थे। भारतीय युवकों ने भी आर्डर दिया, परंतु खाने के बाद आदतन ढेरों जूठन छोड़ दी। बिल देकर चलने लगे तो बुजुर्ग महिलाओं ने युवकों से शालीनता से कहा, आपने काफी खाना बरबाद किया है, ये अच्छी बात नहीं है। आपको जरूरत भर ही ऑर्डर करना चाहिए था। युवकों ने गुस्से में कहा, आपको इससे क्या कि कितना खाया और कितनी झूठन छोड़ी? हमने पूरे बिल का भुगतान किया है। नोकझोंक के बीच एक महिला ने कहीं फोन किया और कुछ देर में ही सोशल सिक्योरिटी के दो अफसर आ पहुंचे। सारी बात जानने के बाद युवाओं को पचास यूरो की पर्ची काटकर जुर्माना भरने को कहते हुए अफसर बोला, आप उतना ही खाना ऑर्डर करें, जितना खा सकें। माना कि पैसा आपका है परंतु देश के संसाधनों पर हक तो पूरे समाज का है और कोई भी इन्हें बरबाद नहीं कर सकता, क्योंकि देश में कितने ही लोग ऐसे हैं जो भूखे रह जाते हैं। यह सुनकर युवकों ने फिर कभी ऐसी गलती न करने का फैसला कर लिया।

५२७) सभासदों का षड्यंत्र - राजा यशकीर्ति नित्य छद्म वेश में रात्रिभ्रमण को निकलते। एक बार एक गांव में भ्रमण करते हुए उन्होंने देखा कि कुछ युवक एक खेल खेल रहे हैं। एक युवक राजा बना बैठा था। शेष सभासद के रूप में थे। युवक बोला, सभासदों, जिस राज्य के कर्मचारी सदैव वैभव-विलास में डूबे रहते हों, उसका राजा कितना ही नेक और प्रजावत्सल क्यों न हो, प्रजा सुखी नहीं रह सकती। यशकीर्ति के राज्याधिकारी जो भूल कर रहे हैं, वह तुम सब मत करना। राजा उस युवक के विचारों से इतना प्रभावित हुए कि उसे अपने साथ ले आए और महामंत्री बना लिया। सुकेश नाम का वह युवक एक लकड़हारा था। वह अपने साथ एक कुल्हाड़ी, बिछौना और अंगोछा भी लाया था। राज्य के इस नए महामंत्री ने समस्त मंत्रियों, सामंतों और कर्मचारियों के लिए एक सख्त आचार-संहिता बनाई। अब सभी को १० घंटे काम नित्य करना पड़ता था। राजकोष का धन प्रजा की भलाई में लगने लगा। कुछ सभासद सुकेश के पीछे लग गए। उन्होंने पता लगाया कि उसे जो आवास मिला है, वहां एक कक्ष है जहां और कोई नहीं जा सकता। राजा से शिकायत की कि उसने बहुत सारा धन वहां छिपा रखा है। राजा ने महामंत्री के आवास का दौरा किया। सुकेश ने स्वयं उस कक्ष को खोला और राजा को प्रवेश के लिए आमंत्रित किया। वहां कुल्हाड़ी, बिछौना और अंगोछा रखे हुए थे। सुकेश ने ये सारी चीजें उठाईं और चल दिया- बस, अब मेरा यहां कोई काम नहीं। राजा सभासदों के षड्यंत्र के चलते हाथ मलते रह गए। जो राजा दूसरों के कहे पर आंख मूंद कर यकीन करता है, वह योग्य महामंत्री से हाथ धो बैठता है।

५२८) योग्यता की परीक्षा - एक दिन एक राजा ने मंत्री से कहा, बहुत दिनों से सोच रहा हूं कि क्यों न राज्य के कुछ योग्य प्रजाजनों को सम्मानित करके उन्हें बड़े उपहार दूं। आप मुझे सुझाइए कि ऐसे व्यक्ति कैसे ढूंढे जाएं? मंत्री ने तनिक सोचकर कहा- महाराज सत्पात्रों की तो आपके राज्य में कोई कमी नहीं है, वे परस्पर सहयोग करने की अपेक्षा एक दूसरे

की टांग खिंचाई में लगे रहते हैं। दूसरों की प्रगति में रोड़ा अटकाते हैं। ऐसी दशा में मुझे तो लगता नहीं कि आपको कोई सही व्यक्ति मिलेगा। राजा को मंत्री की बात अटपटी-सी लगी। वे बोले- तुम्हारी यह बात सही हो सकती है, पर इसे बिना प्रमाण के मैं कैसे मान लूं। इस विषय में यदि तुम्हारे पास कोई ठोस प्रमाण हो तो बताओ। महामंत्री ने राजा को कथन को प्रत्यक्ष कर दिखाने की एक योजना बनाई। राजा की स्वीकृति मिलते ही एक आठ फुट गहरा गड्ढा इतनी चौड़ाई के साथ खुदवाया कि उसमें एक साथ कम से कम २० व्यक्ति खड़े हो सके। ऐसे बीस पात्रों को चुनकर जो सम्मान योग्य समझे गए, उन्हें गड्ढे में छोड़ दिया गया। साथ ही घोषणा भी कर दी कि जो इस गड्ढे से बाहर आ जाएगा उसे महाराज अपने राज्य का एक चौथाई हिस्सा पुरस्कार में देंगे। सभी जी-जान से ऊपर चढ़ने की कोशिश करने लगे। जो भी सफल होने को होता दूसरा पुरस्कार खोने के डर से उसे गड्ढे में खींच लेता। प्रतियोगिता बिना परिणाम के समाप्त हो गई। राजा को यह देखकर घोर आश्चर्य हुआ। यह देखकर मंत्री ने कहा, महाराज, यदि इनमें एकता होती तो सहारा देकर एक-दूसरे को ऊपर चढ़ा सकते थे। परंतु वे ईर्ष्या और लालचवश ऐसा न कर सके।

५२९) जहां कोई भय नहीं - बहुत पुरानी बात है। एक समय जंगल से एक यात्री अपनी मंजिल की ओर जा रहा था। अचानक एक जगह उसे तीन डाकुओं ने घेर लिया और उसका सारा धन लूट लिया। उसे लूट लेने के बाद एक डाकू अपने साथियों से बोला, अब इस आदमी को जिंदा छोड़ देने से क्या लाभ? यह कहकर उसने म्यान से तलवार खींच ली। यह देखकर दूसरे डाकू ने उसे रोका और कहा, जब हम इसका सारा धन ले ही चुके हैं तो इसे मारने से क्या लाभ? इसे रस्सी से बांधकर यहीं छोड़ जाते हैं। अगर भाग्य ने साथ दिया तो यह बच जाएगा, नहीं तो यहीं किसी जंगली जानवर का भोजन बन जाएगा। तय रणनीति के तहत डाकुओं ने ऐसा ही किया। कुछ देर बाद तीसरा डाकू लौटकर आया, उसने उस यात्री की रस्सी खोल उसे मुक्त कर दिया और बोला, भाई, मैं तुम्हें सही रास्ते तक छोड़ देता हूं। तीसरे डाकू की कृतज्ञता देख यात्री ने कहा, आप मेरे यहां आतिथ्य ग्रहण करो। डाकू ने कहा मैं किसी और दिन तुम्हें दूसरे वेश में मिलूंगा। डाकू की बात पर विचार करता हुआ यात्री अपने घर पहुंचा तो उसके चेहरे पर गम की जगह मुस्कान आ गई। क्योंकि उसका लुटा हुआ सामान पहले से यहां मौजूद था। साथ में एक पत्र रखा हुआ था उसमें लिखा था- दुनिया एक जंगल है। उसमें तीन डाकू रहते हैं। वे हैं सत, रज और तम। तम मनुष्य को समाप्त करने का प्रयत्न करता है। रज उसे संसार में बांधता है। परंतु सत उसे तम और रज के चंगुल से छुड़ाकर उस मार्ग पर छोड़ता है, जहां कोई भय नहीं। यह मार्ग हर किसी को ईश्वर के चरणों में पहुंचा देता है।

५३०) अपने अपने भगवान - एक व्यक्ति दूरबीन लेकर लोगों को तमाशा दिखाया करता था। एक दिन उसे पता चला कि शहर के एक हिस्से में सांप्रदायिक दंगे भड़क रहे हैं। वह फौरन अपनी दूरबीन लेकर वहां पहुंच गया। वहां दो व्यक्ति आपस में लड़ रहे थे। उसने उन्हें रोका और तमाशा देखने को कहा। पहले तो वे दोनों नहीं माने, पर अधिक आग्रह करने पर मान गए। दूरबीन वाले ने एक से पूछा- बोलिए, आप क्या देखना चाहते हैं? उसने कहा- स्वर्गलोग। दूसरे ने कहा- पृथ्वी। उसने पहले व्यक्ति की आंखों के सामने दूरबीन रखी और पूछा- कुछ दिख रहा है? जवाब मिला- हां, स्वर्गलोग दिख रहा है। भगवान बेहद व्यस्त हैं और वे अपनी आकृति के अनुसार मनुष्यों का निर्माण कर रहे हैं। अब उसने

दूसरे से दूरबीन से पृथ्वी की ओर देखने को कहा और पूछा- कुछ नजर आ रहा है? उसने कहा- मुझे तो पृथ्वी के सभी मंदिर, मस्जिद, चर्च और गुरुद्वारे दिखाई दे रहे हैं। उनमें कई मनुष्य बैठे हैं। दूरबीनवाले ने पहले से पूछा- स्वर्गलोग में कितने भगवान दिखे? उसने बताया- भगवान तो एक ही था, पर मनुष्य की आकृतियां अनेक थीं। दूसरे व्यक्ति से पूछा- तुम्हें पूजा स्थलों में क्या दिखा? उसने उत्तर दिया- वहां तरह-तरह के मनुष्य हैं और सब अपने जैसे तरह-तरह के भगवान बना रहे हैं। दूरबीन वाला बोला- बस यही झगड़े की जड़ है। मनुष्य अपने अपने भगवान बना लेता है। लेकिन वह यह नहीं समझ पाता कि उसे बनानेवाला वह परमात्मा एक ही है। दूरबीन वाले की यह सरल व्याख्या सुननेवालों के हृदय में उतर गई और उन्होंने आपस में लड़ना बंद कर दिया।

५३१) सबसे बड़ा मूर्ख - एक साधु रोज नगरवासियों के बीच जाकर भिक्षा मांगता और जो कुछ मिलता उसी से गुजारा चलाता। एक रोज उसके मन में तीर्थयात्रा का विचार आया। लेकिन मार्ग व्यय के लिए धन का इंतजाम कैसे हो? उसी नगर में एक कंजूस सेठ रहता था। साधु ने उसके पास जाकर कुछ सहयोग की विनती की। सेठ बोला, साधु महाराज, अभी धंधे मे मंदी चल रही है और फिर मुझे कारोबार में कुछ दिन पूर्व घाटा भी हुआ है। अभी तो आप मुझे माफ करें। साधु समझ गया कि सेठ झूठी कहानी गढ़ रहा है। वह वहां से लौटने लगा। तभी सेठ बोला, रुकिए, आप मेरे यहां आए हैं तो मैं आपको एक चीज देता हूं। उसने एक दर्पण निकाला और साधु से कहा, आपको अपने प्रवास के दौरान जो सबसे बड़ा मूर्ख मिले, उसे यह दर्पण दे दीजिए। साधु सेठ को आशीष देते हुए वहां से निकल गया। कई दिनों के बाद जब साधु तीर्थयात्रा से लौटकर आया तो उसे पता चला कि सेठ बेहद बीमार और मरणासन्न अवस्था में है। साधु उससे मिलने पहुंचा। अपनी कंजूस वृत्ति के कारण सेठ न तो अपना इलाज ढंग से करा पाया था और न धन को किसी सत्कर्म में लगा पाया। अब सेठ मरणासन्न स्थिति में था और उसके कुटुंबीजन उसका पैसा और सामान ले जा रहे थे। साधु ने यह देखकर अपने झोले में से दर्पण निकाला और सेठ को लौटाते हुए कहा, मुझे आपसे बड़ा मूर्ख और कोई नहीं मिला जिसने कमाया तो बहुत, लेकिन जिसे धन का सदुपयोग करने का विचार तक नहीं आया। यदि अपने धन का सदुपयोग किया होता तो आपको अंतिम समय में इस तरह कष्ट नहीं भोगना पड़ता।

५३२) अपना कुछ नहीं - पारसी धर्मगुरु रवि मेहर के तीन पुत्र थे। दुर्भाग्य से एक समय ऐसा आया कि वे तीनों एक दिन महामारी की चपेट में आ गए। अच्छी देखरेख व दवा के अभाव में वे जीवित न रह सके। मेहर उस समय किसी काम से बाहर गए हुए थे। शाम के समय जब वे घर लौटकर आए तो उन्हें बच्चे दिखाई नहीं दिए। उन्होंने सोचा, शायद सो गए होंगे। भोजन करते समय उन्होंने पत्नी से पूछा, क्या बात है, आज बच्चे जल्दी क्यों सो गए? पत्नी ने उनकी इस बात का उत्तर दिए बिना उनसे कहा, स्वामी। कल हमने पड़ोसी से जो बर्तन लिए थे, उन्हें मांगने के लिए पड़ोसी आ गए थे। मेहर ने कहा, बर्तन उनके थे, इसीलिए वे लेने को आए थे। पराई वस्तु का मोह हम क्यों करें? पत्नी ने कहा, आप बिलकुल ठीक कहते हैं। मैंने उन्हें वे बर्तन लौटा दिए। भोजन के बाद संत को फिर अपने बच्चों की याद आ गई। उन्होंने पत्नी से उनके बारे में पूछताछ शुरू कर दी। तब पत्नी उन्हें भीतर के कमरे में लेकर गई। वहां उसने चारपाई के नीचे रखे तीनों बच्चों के शव दिखा दिए। यह देखते ही संत फूट-फूटकर रोने लगे। तब पत्नी उनसे बोली, स्वामी। आप अभी-अभी तो

मुझसे कह रहे थे कि यदि कोई अपनी वस्तु वापस लेना चाहे, तो हमें वह वस्तु लौटा देनी चाहिए और उसके लिए दु:ख भी नहीं करना चाहिए। लेकिन अब आप स्वयं ही यह भूले जा रहे हैं। बच्चे भगवान के यहां से आए थे, सो उन्होंने ले लिए। फिर हम उनके लिए क्यों बेवजह शोक करें? इन शब्दों से संत का चित्त कुछ हलका हो गया और वे भगवद्-भजन में लीन हो गए।

५३३) संत और सम्राट - एक समय एक रोमन सम्राट के अत्याचारों से वहां की जनता में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। विरोध करने का साहस किसी ने किया तो उसे मौत की सजा सुना दी जाती थी। लेकिन वहां के एक समाज सुधारक संत थे बाजिल। वह एक कुटिया में रहते थे और सादा जीवन जीते थे। वही थे जो सम्राट के अत्याचारों का खुलकर विरोध करते थे, लेकिन सम्राट उनके खिलाफ कोई कड़ा कदम उठाने का साहस नहीं कर पाता था। एक दिन सम्राट ने अपना दूत बाजिल के पास भेजकर कहलवाया कि वह हमारा विरोध करना बंद कर दें। इसके बदले उन्हें राज्य की तरफ से इतनी संपत्ति दी जाएगी कि वे जिंदगी भर आराम से गुजर बसर कर सकते हैं। दूत ने उन्हें सम्राट का संदेश सुनाकर कहा- महाराज, समझदारी इसी में है कि आप सम्राट का विरोध करना छोड़ दें। आपने विरोध करना नहीं छोड़ा तो सम्राट क्रोध में आपको राज्य से बाहर कर देंगे। संत ने कहा- भाई तुम ठीक कहते हो। मैं मालामाल हो जाऊंगा और मेरे अकेले विरोध से सम्राट सुधरेंगे भी नहीं। लेकिन मैंने सम्राट के अत्याचार का विरोध करना छोड़ दिया तो मेरी आत्मा मर जाएगी। एक सन्यासी और देश का एक नागरिक होने के कारण मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सम्राट को सही रास्ते पर लाने का प्रायस तब तक करता रहूं जब तक मेरी सांसें चल रही है। मुझे उम्मीद है कि एक दिन सम्राट अवश्य सुधरेंगे। मैं उनका प्रस्ताव मानने को तैयार नहीं हूं। जो राजा संतों और विद्वानों की चेतावनी अनसुना करता है, उसका सर्वनाश निश्चित है। इस संदेश का सम्राट पर ऐसा असर हुआ कि उसने खुद जाकर बाजिल से माफी मांगी।

५३४) कागज के टुकड़े - एक स्वामी जी सत्संग के लिए पधारे। लोगों ने उनसे प्रवचन देने का आग्रह किया तो स्वामीजी ने कहा कि मैं क्या बोलूं, आप सब जानते हैं। जो अच्छा है उसे करो और जो बुरा है उसे मत करो, उसे त्याग दो। यह सुनकर उपस्थित लोगों में से एक स्वर उभरा, स्वामीजी हम सब बहुत अच्छे बनना चाहते हैं और इसके लिए यथासंभव प्रयास भी करते हैं लेकिन फिर भी हम सबसे अच्छे तो दूर अच्छे भी क्यों नहीं बन पाते? इस पर स्वामीजी ने कहा कि हम अपने ऊपर जैसे मोहर लगाते हैं वैसा ही तो बनेंगे। लोगों ने प्रार्थना की कि स्वामीजी इसे स्पष्ट करें। उन्होंने जेब से तीन नोट निकाले और पूछा कि ये कितने-कितने के नोट हैं? एक नोट दस रुपये का था, दूसरा सौ रुपये का और तीसरा हजार का। इसके बाद स्वामीजी ने सबसे पूछा कि इनमें क्या अंतर है? लोग चुप रहे। स्वामीजी ने समझाया, ये तीनों नोट एक जैसे कागज पर छपे हैं। कागज के पहले टुकड़े से दस रुपये की चीज खरीदी जा सकती है तो दूसरे से सौ रुपये की और तीसरे से हजार की। ये कागज पर लगी मोहर या छाप द्वारा निर्धारित हुआ है। इसी प्रकार हमारा जीवन भी एक कोरे कागज की तरह ही है। हम चाहें तो उस पर दस रुपये के बराबर छोटी-मोटी विशेषता या गुण की मोहर लगा सकते हैं और चाहें तो हजार रुपये या उससे भी अधिक की कीमत के गुणों की मोहर लगा सकते हैं। जैसी छाप या सोच होगी, वैसा जीवन होगा। इस संसार रुपी छापे खाने में मन रूपी कागज पर केवल सात्विक व जीवनोपयोगी उच्च विचारों की मोहर लगाकर ही जीवन को हर प्रकार की उत्कृष्टता प्रदान की जा सकती है।

५३५) शहीद का सवाल - शहीद करतार सिंह सराभा ने अंग्रेजी शासन के खिलाफ अपनी मुहिम अमेरिका में शुरु की थी। वे वहां भारतीयों को एकजुट करते थे। इससे अमेरिका की पुलिस इनके पीछे हाथ धोकर पड़ गई। सराभा वहां से कोलंबो जा पहुंचे। फिर वहां से किसी तरह बचते-बचाते स्वदेश लौट आए और एक सैनिक छावनी में पहुंचे। छावनी में वे भारतीय सैनिकों को विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की प्रेरणा देने लगे। एक दिन उन्हें पकड़ लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। अंग्रेज जज ने राजद्रोह के आरोप में उन्हें फांसी की सजा सुना दी। एक दिन उनके दादा उनसे जेल की कोठरी में मिलने आए और समझाते हुए बोले, बेटा, अभी तेरी उम्र बहुत कम है। घर में सबका बुरा हाल है। मैंने सुना है कि यदि तुम वायसराय के नाम माफीनामा लिख दोगे तो शायद फांसी से बच जाओगे। दादा की बात सुनकर सराभा ने सवाल किया, दादाजी, हमारे गांव में रज्जू नाम का एक व्यक्ति था। वह आजकल कहां है? दादा बोले, बेटा, वह पिछले दिनों प्लेग से मर गया। इसके बाद सराभा ने अपने एक रिश्तेदार के बारे में पूछा तो दादाजी बोले, वह हैजे से मर गया। इस पर सराभा ने कहा, दादाजी, आप क्या चाहते हैं कि आपका पौत्र अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए न मरकर किसी बीमारी से बिस्तर पर पड़ा-पड़ा मर जाए? दादा अपने पौत्र की राष्ट्रभक्ति की भावना से भरे शब्द सुनकर चुप रह गए और उसके प्रति नतमस्तक हो गए। नवंबर १९१६ में राष्ट्रभक्त सराभा को फांसी दे दी गई। महज १९ वर्ष की उम्र में सराभा ने मातृभूमि के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिए।

५३६) गलती का अहसास - स्वामी दयानंद सरस्वती गंगा तट पर ठहरे हुए थे। पास ही एक गुस्सैल साधु भी रुका हुआ था। एक दिन वह स्वामी जी से नाराज हो गया। वह प्रतिदिन उनकी कुटिया के पास जाता और उन्हें गालियां देता। लेकिन स्वामीजी बुरा मानने की बजाय सुनकर मुस्करा भर देते। यह व्यवहार देखकर उनके भक्तों को बहुत आश्चर्य होता था। कई बार भक्त आवेश में आकर साधु का अनिष्ट करने की सोचते तो स्वामीजी कहते कि एक न एक दिन उसे अपनी गलती का अहसास खुद हो जाएगा। एक बार स्वामीजी के पास किसी ने फलों से भरा एक टोकरा भेजा। स्वामीजी ने अच्छे अच्छे फल निकाल कर उन्हें एक कपड़े में बांधा और एक भक्त से कहा- ये फल पास की झोपड़ी में रहनेवाले साधु को दे आओ। भक्त बेमन से साधु के पास पहुंचा और बोला- ये फल स्वामी दयानंदजी ने आपके लिए भेजे हैं। यह सुनते ही साधु क्रोध में आ गया, यह सुबह-सुबह किस निर्लज्ज का नाम ले लिया तूने। पता नहीं, आज भोजन भी मिलेगा या नहीं। जा, चला जा यहां से। ये फल मेरे लिए नहीं, किसी और के लिए होंगे। मैं तो उसे रोज गालियां सुनाता हूं। भक्त ने लौटकर सारा हाल बता दिया। उसकी बात सुनकर स्वामी जी बोले- तुम अभी उनके पास जाओ और कहो कि आप गालियां नहीं देते, अमृतवर्षा करते हैं। स्वामीजी चाहते हैं कि उनके कारण आपका जो ऊर्जा क्षय होता है, उसकी भरपाई फल खाकर करें। भक्त ने साधु के पास जाकर वही बात दोहरा दी। स्वामीजी की बातें सुनकर साधु पर तो जैसे घड़ों पानी गिर गया। वह स्वामी जी के पास पहुंचा और उनके पैरों पर गिर पड़ा।

५३७) गुरु का संकेत - जंगल में एक पेड़ के नीचे एक वृद्ध गुरु अपने युवा शिष्य के साथ बैठा था। चारों ओर घास का मैदान था। इसमें सैकड़ों सफेद गुलाब के फूल खिले थे। युवक कुंवारा था और अक्सर गुरु के पास सत्संग के लिए आता रहता था। अध्यात्म और धर्म चर्चा के बीच अचानक युवक ने विषय बदल दिया और गुरु से पूछा- महाराज, मेरा

अध्ययन पूरा हो चुका है। मैंने अपने पिता का व्यवसाय संभाल लिया है और इन दिनों मेरे विवाह की बात भी चल रही है। लेकिन कई युवतियों को देखकर भी मैं अपने लिए कोई योग्य जीवन साथी नहीं तलाश सका। आप बताएं कि मैं क्या करूं? गुरुजी बोले- बेटा, तुम एक काम करो। मैदान में अंतिम छोर तक एक चक्कर लगाओ। जो गुलाब का फूल तुम्हें सबसे खूबसूरत लगे वह मेरे लिए तोड़कर ले आओ। बस एक शर्त है कि आगे बढ़ा कदम पीछे नहीं मुड़ना चाहिए। युवक गया और थोड़ी देर बाद, खाली हाथ लौट आया। गुरु ने पूछा- तुम कोई फूल नहीं लाए? शिष्य ने जवाब दिया- गुरुजी, मैं एक के बाद एक फूल देखता आगे बढ़ा। जब कोई सुंदर फूल देख उसे तोड़ने के लिए झपटता तो मेरे मन में यह ख्याल आता कि हो सकता है आगे इससे भी बेहतर फूल मिल जाए। मैदान के अंत में मुझे कुछ सुंदर फूल दिखे भी, लेकिन पास जाकर देखा तो वे मुरझाए हुए थे। उन्हें लाने की मेरी इच्छा ही न हुई। इसलिए मैंखाली हाथ लौट आया। गुरु ने कहा- बेटा, जिंदगी भी ऐसी ही है। यदि सबसे योग्य ढूंढने में लगे रहोगे तो अंत में तुम्हारे हाथ मुरझाए फूल ही आएंगे। युवक गुरु का संकेत समझ गया।

५३८) जंगल का फूल - एक बार की बात है। पूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू एक मंत्री के साथ घने जंगलों से गुजर रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक पेड़ पर असंख्य खूबसूरत फूल लगे हुए हैं। यह देखकर उन्होंने उन मंत्री महोदय से मजाक करते हुए कहा, आप समझदार तो हैं, लेकिन जंगल के फूल की तरह हैं। मंत्री बुद्धिमान थे। बोले, पंडित जी, जंगल का फूल बगीचे के फूल से हमेशा अच्छा होता है। वह जंगल की खुली हवा खाता है, उसे खुली धूप मिलती है, उसे कोई तोड़ता भी नहीं है, जबकि बगीचे के फूल पर सैकड़ों हाथ झपटते हैं। मंत्री की बात सुनकर नेहरू जी बोले, मगर, आप यह क्यों भूलते हैं कि पूजा हमेशा बगीचे के फूल से ही होती है। देवता के चरणों में वही पुष्प चढ़ता है, जंगल का फूल कभी भी देवालय में या देवता को अर्पित नहीं किया जाता। मंत्री बोले, पंडित जी, एक बात बताइए। क्या देवता के चरणों में चढ़ने से ही पुष्प का भाग्य सराहा जाए। क्या फूल का उद्देश्य केवल देवता के चरणों में अर्पित होना ही है। वातावरण सुगंधित रखना क्या कम बड़ी बात है? भले ही सुगंध बिखेरते-बिखेरते वह मिट जाए, पर मुझे तो ऐसे फूल की ही सार्थकता दिखाई देती है। कोई फूल आखिर देवता के लिए ही क्यों खिले? मंत्री की बात सुनकर पंडित जी बोले, आप ठीक कह रहे हैं। जंगल का फूल बगीचे के फूल से अधिक पूजनीय है। नेहरू जी को जंगल के फूल का महत्व समझानेवाले यह मंत्री कोई और नहीं लाल बहादुर शास्त्री थे, जो बाद में अपने गुणों की सुगंध चारों ओर फैलाते हुए देश के प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुए।

५३९) वैज्ञानिक का जवाब - प्रख्यात वैज्ञानिक बेंजामिन फ्रैंकलिन का भाई उनके साथ बहुत खराब ढंग से पेश आता था। वह उन्हें खरी-खोटी सुनाता रहता और व्यंग्य भी करता था। अपने भाई के व्यवहार से तंग आकर बेंजामिन ने मात्र सत्रह वर्ष की उम्र में अपना शहर छोड़ दिया। वह बोस्टन से न्यूयार्क चले गए, फिर फिलाडेल्फिया। वहां पर उन्हें एक प्रेस में नौकरी मिल गई। वहां काम करने के साथ-साथ अध्ययन भी करते। वह वहां प्रसन्नतापूर्वक अपने भावी जीवन की नींव रख रहे थे। इधर उनके मां-बाप चिंतित थे कि उनका बेटा न जाने किस हाल में है। पता नहीं कहां रहता है, क्या करता है। अंतत: उनके बहनोई होम्स ने उनका पता-ठिकाना किसी तरह निकाल ही लिया और एक आग्रह भरा

पत्र लिखा कि वह घर लौट आएं। बेंजामिन पत्र पढ़कर थोड़ी देर के लिए दुविधा में पड़े। उनके सामने मां-बाप का चेहरा घूम गया। बचपन की स्मृतियां घूम गईं। लेकिन तभी याद आया अपना लक्ष्य। उन्होंने सोचा कि घर लौटकर तो वे बस अपने परिवार को संतुष्ट करेंगे पर विज्ञान के क्षेत्र में अपने काम से वे पूरी दुनिया को खुशी देंगे। यह सोचकर बेंजामिन ने जवाब लिखा, मैं स्वतंत्र रूप से जीवनयापन कर रहा हूं और प्रसन्न हूं। यदि परिश्रम, मितव्ययिता, मादक द्रव्यों से परहेज, ईमानदारी और अध्यवसाय से सफलता मिलती है मैं जरूर सफल होऊंगा। आप चिंतित और निराश न हों। मैं जहां भी हूं ठीक से हूं और इस तरह फ्रैंकलिन नहीं लौटे। वे अपना लक्ष्य हासिल करने में पूरे मन से जुटे रहे और आखिरकार उन्होंने जो उपलब्धियां अर्जित कीं, उन पर उनके परिवार को ही नहीं पूरी दुनिया को गर्व हुआ।

५४०) वैज्ञानिक की गुरु दक्षिणा - प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. सत्येन्द्र नाथ बोस अल्बर्ट आइंस्टाइन को अपना गुरु मानते थे। बोस के एक महत्वपूर्ण शोध पत्र का आइंस्टाइन ने जर्मन में अनुवाद किया था। वह शोधपत्र प्रकाशित होकर काफी चर्चित भी हुआ था। आइंस्टाइन जिंदगी भर प्रयोगों और शोधों में लगे रहे। अंतिम समय में वे एकीकृत क्षेत्र सिद्धांत (यूनिफाइड फील्ड थ्योरी) पर काम कर रहे थे। प्रो. बोस ने एक शोध पत्र तैयार किया जिसमें आइंस्टाइन के उस सिद्धांत की विवेचना के साथ उसकी अनेक भ्रांतियों का खुलासा भी किया गया था। बोस अपने इन सभी लेखों को आइंस्टाइन को दिखानेवाले थे ताकि उनसे विचार-विमर्श कर उन लेखों को विश्व के सामने लाया जा सके। वह आइंस्टाइन के पास जाने की तेयारी कर ही रहे थे कि अचानक खबर आई कि आइंस्टाइन की मृत्यु हो गई है। यह सुनकर बोस सुध-बुध खो बैठे। जब उन्हें होश आया तो उन्होंने खुद को संभाला और उस शोध पत्र को कहीं भेजने के बजाय नष्ट कर डाला। उनके मुताबिक चूंकि शोध पत्र उनके गुरु आइंस्टाइन के सिद्धांत पर था, इसलिए उनकी सहमति के बिना उसे प्रकाशित करना गुरु का अपमान था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण और अनुसंधान की दृष्टि से बोस का यह कदम उचित नहीं था लेकिन उन्हें इसका कोई अफसोस नहीं हुआ। आइंस्टाइन के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा थी। यदि वह शोध पत्र आइंस्टाइन की सहमति के बाद प्रकाशित हो जाता तो निश्चित रूप से सत्येन्द्र नाथ बोस की आज एक अलग ही छवि होती। मगर उन्होंने अपना शोध पत्र फाड़कर अपने गुरु को अनुपम गुरु दक्षिणा दी।

५४१) संग्राम में हाथी - कुरु जनपद की रानी बुद्ध को पसंद नहीं करती थी। जब उसे पता चला कि बुद्ध उसके इलाके में आ रहे हैं, तो उसने नौकर-चाकरों को आज्ञा दी कि वे उनका विभिन्न प्रकार से अनादर करें। बुद्ध के प्रवेश करते ही लोगों ने उन्हें उल्टा सीधा कहना शुरू किया। कोई उन्हें देखकर हंसने लगा तो कोई गालियां बकने लगा। पर बुद्ध शांत रहे। लेकिन उनके शिष्य घबराए। उनके लिए यह सब बड़ा ही विचित्र अनुभव था। आज तक उन्हें हर जगह स्नेह और सत्कार ही मिला था। ऐसा व्यवहार किसी ने न किया था। वे इसका रहस्य नहीं समझ पा रहे थे। बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद से रहा न गया। उसने कहा-भंते, हमें यहां से चले जाना चाहिए। बुद्ध ने पूछा- कहां जाना चाहते हो आनंद ने उत्तर दिया- किसी दूसरे क्षेत्र में, जहां कोई हमें अपशब्द न कहे। इस पर बुद्ध बोले- वहां भी यदि कोई दुर्व्यवहार करे, तो? इस पर आनंद ने जवाब दिया- किसी और स्थान को चले जाएंगे। बुद्ध ने कहा- तो हम कब तक भागते रहेंगे? जहां गलत व्यवहार हो रहा हो, उस स्थान को तब तक नहीं छोड़ना चाहिए, जब तक वहां सामान्य स्थिति न आ जाए। क्या तुमने यह नहीं

देखा कि मेरा व्यवहार संग्राम में बढ़ते हुए हाथी की तरह होता है? जिस प्रकार हाथी चारों ओर के तीरों को सहता रहता है, उसी तरह हमें दुष्ट पुरुषों के अपशब्दों को सहन करते रहना चाहिए। देखना एक दिन वे थक जाएंगे। स्वयं उन्हें लगेगा कि वे गलत कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य उन्हें सही रास्ते पर लाना है, उनसे भागते फिरना नहीं। अगर हम भागे तो उनमें कभी सुधार नहीं होगा। बुद्ध की बातें सुन सारे शिष्य रुकने के लिए तैयार हो गए।

५४२) मनोविज्ञान का नियम - प्रख्यात मनोविज्ञानिक सिगमंड फ्रायड छुट्टी के दिन अपने परिवार के साथ एक पार्क में घूमने गए। काफी देर टहलते रहे। लौटते समय देखा तो उनका बच्चा गायब था। पति-पत्नी बातों में इतने मशगूल थे कि बच्चे का ध्यान ही नहीं रहा। बच्चे को न पाकर उनकी पत्नी काफी घबरा गई, मगर फ्रायड को जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह एकदम निश्चिंत चले जा रहे थे। फ्रायड को इस तरह निश्चिंत देख उनकी पत्नी गुस्से में बोली, आप इस तरह खामोश क्यों हैं? देखिए न, वह कहां गया? क्या आपको उसकी चिंता नहीं है? फ्रायड ने उन्हें ढांढस बंधाते हुए कहा, इतना घबराओ मत, वह मिल जाएगा। पत्नी ने खीजकर कहा, बिना खोजे कैसे मिल जाएगा? फ्रायड ने पूछा, क्या तुमने उसे कही जाने से मना किया था? पत्नी को थोड़ी देर सोचने के बाद याद आया कि उन्होंने बच्चे को फव्वारे के पास जाने से मना किया था। फ्रायड बोले, वह निश्चित रूप से फव्वारे के पास ही होगा। पत्नी ने कहा, तुम्हें यकीन है? फ्रायड ने कहा, ९५ फीसदी। बच्चा वाकई फव्वारे के पास बैठा पानी की उठती धार को मुग्ध होकर देख रहा था। पत्नी के भीतर जिज्ञासा जागी कि आखिर फ्रायड ने यह कैसे पता लगाया कि बच्चा फव्वारे के पास ही होगा? फ्रायड ने इसे स्पष्ट करते हुए बताया, बच्चा वहीं जाएगा, जहां उसे जाने के लिए मना किया जाएगा। इसी तरह उसे जिस काम को करने से रोका जाएगा वह उसे जानबूझकर करेगा। फ्रायड ने इस रहस्योद्घाटन के बाद बताया कि मनोविज्ञान का यह सीधा सा नियम बच्चों पर ही नहीं, समान रूप से बड़ों पर भी लागू होता है।

५४३) गुरुदेव को सीख - यह गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है, जिसने उनके रचनाकर्म को प्रभावित किया। वे तब पद्मा नदी के किनारे सिलदौहा में रहा करते थे। यह इलाका उनकी जमींदारी में पड़ता था। वहां रहकर वह लेखन और चिंतन किया करते थे। वहीं एक स्त्री रहा करती थी जो वैष्णव भक्ति से जुड़ी थी। वह हर समय पूजा-पाठ में लगी रहती थी। लोग उसे पागल समझने लगे थे। वह रोज ही टैगोर के मकान के आगे आकर खड़ी हो जाती और थोड़ी देर बाद बगैर कुछ कहे वापस चली जाती। एक दिन वह जैसे ही आई, गुरुदेव अपनी खिड़की के पास आकर खड़े हुए। उन्हें देखकर उस स्त्री ने कहा, ठाकुर, अपने दुमंजिले से तुम नीचे कब उतरोगे? यह सुनते ही गुरुदेव नीचे उतर आए और उस स्त्री को प्रणाम करके बड़े आदर और प्रेम से उसके चरणों के समीप ही बैठ गये। स्त्री कुछ समय तक उन्हें देखती रही फिर चली गई। उस दिन के बाद उस स्त्री की जब कभी इच्छा होती या जब कभी भी उसका मन करता वह गुरुदेव से मिलने उनके उस दोमंजिले मकान में बिना किसी रोकटोक के चली जाती। दोनों में कोई विशेष संवाद न होता पर उसकी उपस्थिति ने गुरुदेव पर गहरा असर डाला। खुद टैगोर ने यह बात स्वीकार की है। उनका कहना था कि उनके जीवन पर ही नहीं उनकी कविताओं और उने गीतों पर भी उसकी असर हुआ या यूं कहा जाए कि उसके आने के पहले तक गुरुदेव पर्वत की ऊंची चोटी पर अकेले रहा करते थे। अब वे समतल पर उतर आए थे

यानी यथार्थ जीवन के करीब आ गए थे। यह बहुत कुछ उस स्त्री की देन थी।

५४४) कॉलेज में पहला दिन - सीधे-सादे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जब पहले दिन अपनी क्लास में पहुंचे तो वहां का दृश्य देखकर दंग रह गए। लगा जैसे अंग्रेजों के किसी जलसे में आए हुए हों। अधिकतर लड़कों ने कोट व पतलून पहन रखी थी। कुछ मुसलमान छात्र जरूर उनसे अलग दिख रहे थे, जो पायजामा-टोपी पहनकर आए थे। राजेंद्र प्रसाद की वेशभूषा मुसलमान छात्रों से मेल खाती थी। ये सभी एफए करने के लिए प्रेसिडेंसी कॉलेज में पढ़ते थे और मदरसे के छात्र कहलाते थे। इनकी उपस्थिति का रजिस्टर अलग रखा जाता था। जब अध्यापक ने हाजिरी के लिए नाम पुकारा, तो राजेंद्र प्रसाद अपना नाम पुकारे जाने की प्रतीक्षा करते रहे। जब उनका नाम नहीं पुकारा गया और अध्यापक ने रजिस्टर बंद कर दिया, तो वह अपने स्थान पर खड़े हो गए। उन्हें देख सभी लड़के हंसने लगे। राजेंद्र प्रसाद बोले- सर। आपने मेरा नाम नहीं पुकारा, मुझे अपना रोल नंबर मालूम नहीं है। अध्यापक ने कहा- रुको, मैंने अभी मदरसे के छात्रों की उपस्थिति नहीं लगाई है। राजेंद्र प्रसाद बोले- मैं मदरसे का छात्र नहीं हूं। मैं तो बिहार से अभी-अभी आया हूं। अध्यापक ने पूछा- तुम्हारा नाम क्या है? राजेंद्र बाबू ने अपना नाम बताया। अध्यापक ने आश्चर्य से कहा- तो तुम राजेंद्र प्रसाद हो, जिसने कलकत्ता विश्वविद्यालय एंट्रेस टेस्ट में टॉप किया है। राजेंद्र प्रसाद ने सिर झुका लिया। उन्होंने देखा कि सभी छात्र उन्हें टकटकी लगाए देख रहे हैं। थोड़ी ही देर पहले उन पर हंसनेवालों की नजरों में अब उनके प्रति सम्मान जाग उठा था। अध्यापक ने प्रसन्नतापूर्वक उनका नाम रजिस्टर में चढ़ाकर उनकी उपस्थिति लगा दी।

५४५) बचपन के संस्कार - बालिका गौंझा बड़ी चंचल थी। वह अक्सर दूसरे लोगों की नकल उतारकर अपनी सहेलियों को हंसाया करती थी। एक दिन गौंझा अपने भाई-बहनों के साथ बैठी थी। सब आपस में हंसी-मजाक कर रहे थे। गौंझा ने बात-बात पर डांटनेवाली अपनी एक अध्यापिका की नकल उतारकर दिखाई तो सबका हंसते-हंसते बुरा हाल हो गया। हंसी के फव्वारे छूट ही रहे थे कि अचानक बच्चों के कमरे की लाइट बुझ गई। बच्चों ने देखा कि सड़क पर और पूरे पड़ोस में रोशनी थी, केवल उन्हीं के कमरे में लाइट नहीं थी। वे वहां से भागकर अपनी मां के कमरे में गए तो देखा कि वहां पर भी लाइट जल रही थी। बच्चों ने पूछा, मां, हमारे कमरे की लाइट कैसे चली गई? सब जगह तो लाइट आ रही है। यह सुनकर मां बोली, तुम्हारे कमरे की लाइट मैंने बंद की है। इस पर बच्चे हैरानी से मां से बोले, मां, तुमने हमारे कमरे की लाइट क्यों बंद की? मां बोली, दूसरों की आलोचना और नकल उतारने के लिए बिजली का खर्चा मुझसे सहन नहीं होगा। ऐसी बेकार की बातों के लिए बिजली जलाना उसका दुरुपयोग करना है। यह सुनकर बच्चों ने अपना मुंह नीचे झुका लिया। बच्चों को अपनी गलती का अहसास होते देखकर मां उनसे बोली, किसी के व्यक्तिगत जीवन के बारे में बातें करना और आलोचना करना सभ्य लोगों का काम नहीं है। बच्चों ने मां की यह बात गांठ बांध ली। बालिका गौंझा पर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि उसने अपना संपूर्ण जीवन ही मानव सेवा के नाम कर दिया। बालिका गौंझा को ही आज पूरा विश्व मदर टेरेसा के नाम से जानता है।

५४६) भारतीयों के दीनबंधु - वर्ष १९०४ में चार्ली फ्रियर एंड्रूज इंग्लैंड से कैंब्रिज विश्वविद्यालय मिशन की ओर से भारत भेजे गए थे। यहां उन्होंने भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन किया। इसके बाद उनका संपर्क रवींद्रनाथ टैगोर से

हुआ। वह शांति निकेतन पहुंचे तथा हिंदी भाषा, शिक्षा और भारतीय संस्कृति की सेवा के लिए समर्पित हो गए। कुछ समय बाद उन्हें पता चला कि फिजी में कुलियों के रूप में ले जाए गए भारतीयों का उत्पीड़न शोषण करके करुणामूर्ति ईसा मसीह को कलंकित कर रहे हैं। यह उत्पीड़न तुरंत बंद करना होगा। इस पर एक अंग्रेज बोला, यदि हम श्रमिकों का उत्पीड़न करते रहे तो आप क्या करेंगे? एंड्रूज बोले, मैं धरना दूंगा और श्रमिकों के उत्पीड़न के खिलाफ पूरे विश्व में आवाज उठाऊंगा। दूसरा अंग्रेज बोला, यदि इतना होने पर भी श्रमिकों का उत्पीड़न नहीं रुक पाया तो आप क्या करेंगे? एंड्रूज ने कहा, मैं तब तक इसके खिलाफ आवाज उठाता रहूंगा जब तक उनका उत्पीड़न पूरी तरह बंद नहीं हो जाता या मेरी मृत्यु नहीं हो जाती। अंग्रेज एंड्रूज की चुनौती देखकर घबरा गए। एंड्रूज ने शोषित भारतीय श्रमिकों की मुक्ति के लिए संघर्ष किया और अंतत: उन्हें सफलता मिली। फिजी में ही उन्हें सबसे पहले दीनबंधु की उपाधि से अलंकृत किया गया था। वहां से भारत लौटकर दीनबंधु एंड्रूज ने अपना संपूर्ण जीवन श्रमिकों के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया।

५४७) मेहनत का भविष्य - एक बार उच्च न्यायालय में एक बहुत बड़ा मुकदमा चल रहा था। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उस मुकदमे में वकील थे। दूसरे पक्षवालों की तरफ से भी बड़े-बड़े नामी वकील इस मुकदमे में पैरवी कर रहे थे। एक ज्योतिषी भाई ने घोषणा की थी कि इस मुकदमें में लोकमान्य तिलक की विजय नहीं हो पाएगी। उस ज्योतिषी की अनेक भविष्यवाणियां सच सिद्ध हुई थीं। स्वयं वह ज्योतिषी लोकमान्य तिलक के पास गया और बताया कि आपकी इस मुकदमें में विजय संदिग्ध है। आप यह मुकदमा छोड़ दें।

उस ज्योतिषी से बड़े सहज तरीके से लोकमान्य तिलक ने कहा, भले हार जाऊंगा, तो हार जाऊंगा। आखिर मुकदमों में एक की विजय और दूसरे की हार होती ही है। दूसरे लोगों को भी चिंता होने लगी। सब कहने लगे कि इस बार तिलक जरूर हार जाएंगे। और यह सब सुनकर तिलक ने मुकदमा लड़ने की दस गुनी तैयारी शुरू कर दी। रात-दिन कानून की किताबों में डूबे रहने लगे। नई-नई बातें नोट करते रहते। उनके एक मित्र ने उनसे कहा, तिलक भाई, आप व्यर्थ इतनी मेहनत कर रहे हैं। इस ज्योतिषी की बात झूठी हो ही नहीं सकती। तिलक ने कहा, इसीलिए तो मैं दिन रात मेहनत कर रहा हूं। मित्र ने पूछा, आपको ज्योतिष में विश्वास नहीं? तिलक बोले, ऐसी बात नहीं है। ज्योतिष अपने आप में एक पूर्ण विषय है। वह कहता है कि मैं इस मुकदमें में हार जाऊंगा। यह सच हो सकता है। फिर भी मैं दिन रात मेहनत कर रहा हूं। इसके पीछे भी एक कारण है। आप जानते हैं कि पानी बरसने पर हम भीग जाते हैं, लेकिन छतरी लगा लें तो भीगने से बच भी सकते हैं। उसी तरह मेहनत से भविष्य भी बदल सकते हैं। पढ़नेवाला छात्र परीक्षा में पास होता ही है, भविष्य के सहारे बैठे रहनेवाला सफल नहीं होता। संभव है मेरी मेहनत मुझे हारने से बचा ले।

५४८) वास्तविक उपलब्धि - एक युवा ब्रह्मचारी ने कई देशों में जाकर अनेक कलाएं सीखीं। एक देश में उसने धनुष-बाण बनाने व चलाने का प्रशिक्षण लिया। कुछ दिनों के बाद वह दूसरे देश की यात्रा पर निकल गया। वहां जहाज बनाए जाते थे, इसलिए उसने जहाज बनाने की कला सीख ली। इसके बाद वह किसी तीसरे देश में पहुंच गया। वहां वह कई ऐसे लोगों के संपर्क में आया जो घर बनाने का काम करते थे। इस प्रकार वह सोलह देशों में गया और कई कलाएं सीख कर अपने घर लौट आया। वापस आने के बाद वह अहंकार में भरकर लोगों से पूछता- इस संपूर्ण पृथ्वी पर मुझ

जैसा कोई गुणी व्यक्ति नजर आता है? लोग हैरत से उसे देखते। धीरे-धीरे यह बात भगवान बुद्ध तक भी पहुंची। बुद्ध उसके बारे में सब जानते थे। वह उसकी प्रतिभा से भी परिचित थे। लेकिन वे इस बात से चिंतित हो गए कि कहीं उसका अभिमान उसका नाश ही न कर दे। एक दिन वे एक भिखारी का रूप धरकर, भिक्षा पात्र लिए उसके सामने चले गए। ब्रह्मचारी ने बड़े अभिमान से पूछा- कौन हो तुम? बुद्ध बोले- मैं आत्मविजय का पथिक हूं। ब्रह्मचारी ने उनके कहे शब्दों का अर्थ जानना चाहा तो वे बोले- एक मामूली हथियार निर्माता भी बाण बना लेता है, जहाज का चालक उस पर नियंत्रण रख लेता है, गृह निर्माता भी घर बना लेता है। केवल ज्ञान से कुछ नहीं होनेवाला। मनुष्य की वास्तविक उपलब्धि तो है उसका निर्मल मन। अगर मन पवित्र नहीं हुआ तो सारा ज्ञान व्यर्थ है। अहंकार से मुक्त व्यक्ति ही ईश्वर को पा सकता है। ब्रह्मचारी ने बुद्ध के ये वचन सुने तो उसे अपनी भूल का अहसास हो गया।

५४९) सच्चा साधु - एक संत अपने एक शिष्य के साथ कहीं जा रहे थे। चलते-चलते रात घिर आई। संत और उनका शिष्य कच्ची सड़क पर चुपचाप चले जा रहे थे। अचानक संत ने प्रश्न किया- वत्स, क्या तुम बता सकते हो कि वास्तव में सच्चा साधु कौन होता है? संत की बात सुनकर शिष्य को तुरंत कोई जवाब नहीं सूझा। उसे मौन देखकर संत ने कहा, सच्चा साधु वह नहीं होता जो अपनी सिद्धियों के प्रभाव से किसी रोगी को ठीक कर दे या पशु-पक्षियों की भाषा समझ ले। सच्चा साधु वह भी नहीं होता, जो अपने घर परिवार से नाता तोड़ पूरी तरह बैरागी बन गया हो या जिसने मानवता के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया हो। शिष्य हैरान रह गया। उसने संत से पूछा, गुरुदेव, तो फिर सच्चा साधु किसे कहा जा सकता है? संत ने उत्तर दिया, वत्स, कल्पना करो कि इस अंधेरी तूफानी रात में हम जब नगर में पहुंचे और कोई द्वार खटखटाएं। इस पर चौकीदार हमसे पूछे- कौन है? और हम कहें- दो साधु। इस पर वह कहे, मुफ्तखोरो। भागो यहां से। न जाने कहां- कहां से चले आते हैं। शिष्य की हैरानी और बढ़ रही थी। संत ने कहा, सोचो, इसी तरह का व्यवहार और जगहों पर भी हो। हमें हर कोई उसी तरह दुत्कारे। इस पर भी जरा-सी कटुता हमारे मन में उनके प्रति न आए और हम उनमें भी प्रभु के ही दर्शन करते रहें, तो यही सच्ची साधुता है। साधु होने का मापदंड है हर परिस्थिति में समानता और सहजता का व्यवहार। शिष्य ने पूछा- ऐसा भाव तो एक गृहस्थ में भी हो सकता है। तो क्या वह भी साधु है? संत ने कहा- बिलकुल है। साधु वही है, जो साधु के गुण धारण करे।

५५०) श्रम की गरिमा - भाग्य और कर्म धरती की सैर कर रहे थे। घूमते-घूमते उनकी नजर एक भिखारी पर पड़ी। भाग्य के मन में दया उपजी और उसने अपनी ऊंगली से उतारकर सोने की अंगूठी उसे दे दी। अंगूठी बेचकर भिखारी ने कुछ दिन सुख से बिताए। अगली बार जब कर्म और भाग्य दोबारा उधर से गुजरे तो भिखारी को फिर भीख मांगते देखा। इस बार भाग्य ने अपने गले से उतारकर सोने का हार उसे दे दिया। भिखारी के थोड़े दिन और सुख से बीत गए। कर्म और भाग्य तीसरी बार आए तो उन्होंने भिखारी को फिर भीख मांगते देखा। भाग्य को बड़ा क्रोध आया। बोला, कितना भी भला कर लो, यह दरिद्र का दरिद्र ही रहेगा। लेकिन इस बार कर्म के मन में दया आ गई। वह भिखारी से बोला- हट्टे-कट्टे हो, तुम कोई काम क्यों नहीं करते? भीख मांगकर कब तक गुजारा चलेगा? भिखारी बोला- काम-धंधे के लिए पास में कुछ पैसे भी तो हों। कर्म ने कहा- देखो, मैं तुम्हें एक ठेली फल देता हूं। तुम इन्हें बेचकर धंधा करो। भिखारी खुश हो गया। बहुत

दिनों के बाद जब कर्म और भाग्य घूमते-घूमते फिर उस नगर में आए तो उन्होंने खूब ढूंढा, पर उस भिखारी के दर्शन नहीं हुए। अंत में जब वे मुख्य बाजार से गुजरे तो देखा भिखारी तो अब फलों का बड़ा व्यापारी बन चुका था। भाग्य उसे देखता रह गया। कर्म ने मुस्कराते हुए कहा, देखो, तुमने इसे भीख में सोना दिया और मैंने इसे श्रम की गरिमा से परिचित कराया। सोना पाकर तो यह निठल्ला बना रहा, लेकिन श्रम का महत्व समझते ही काम में मन लगाकर फलों का इतना बड़ा व्यापारी बन गया। भाग्य उसकी बात का मर्म समझ गया।

५५१) त्याग में है सुख - भगवान बुद्ध के पास सम्राट श्रेणिक आए और पूछा कि हमारे राजकुमार, जिन्हें हर तरह की सुविधाएं हैं, जो बड़े आवास में रहते हैं, जिनके साथ नौकर-चाकरों की पूरी फौज है, वे प्रसन्न नहीं रहते और आपके ये भिक्षु जो पदयात्रा करते हैं, खाने को जैसा मिल जाता है, खा लेते हैं, रहने को जो कुटिया मिल जाए वहां रह लेते हैं, इनके चेहरे पर हमेशा इतनी प्रसन्नता रहती है इसका कारण क्या है? भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, प्रसन्नता खोजनी हो तो अकिंचन (जिसके पास कुछ भी न हो) में खोजो। जिसने संकल्प करके सब कुछ छोड़ दिया, वही प्रसन्न रह सकता है। भिखारी कभी प्रसन्न नहीं होगा, क्योंकि उसने छोड़ा नहीं है। वह तो अभाव में ही जीवन जी रहा है। अभाव का जीवन जीनेवाला कभी प्रसन्न नहीं रह सकता। चिंताएं हर क्षण घेरे रहती हैं। जिसने जानबूझ कर छोड़ा है, वह प्रसन्न रह सकता है। ये दो बातें हैं- एक छोड़ना और एक छूटना। जिसे पदार्थ प्राप्त नहीं है, वह त्याग नही है। त्यागी वह होता है, जो अपने स्वतंत्र मन से त्याग कर दे। वही प्रसन्न रह सकता। साधन, सुविधा संपन्न व्यक्ति भी प्रसन्न नहीं रह सकता। उसे पैसे की सुरक्षा की चिंता सताती है। वह हमेशा भयभीत रहता है। अभय वही हो सकता है, जिसने स्वेच्छा से त्याग किया है। श्रेणिक को अपने प्रश्न का समाधान मिल गया। महात्मा बुद्ध जीवन में मध्यम मार्ग के पक्षधर थे, किंतु उनका भी यही मानना था कि बिना त्याग के व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता। यदि अभाव है तो भी चिंता है और यदि जरूरत से बहुत ज्यादा है तो भी उसकी सुरक्षा की चिंता है।

५५२) प्रेरक जीवन - एक किशोर ने १४ साल की उम्र में ही अपने माता-पिता को पत्र लिखा और बताया कि वह भविष्य में इंजीनियर बनना चाहता है। जर्मनी में पढ़ाई पूरी करने के बाद उसका अधिकांश समय अविष्कारों के लिए शोध और नए-नए प्रयोगों के बीच ही निकलने लगा। काम के प्रति उसका समर्पण देखकर हर कोई चकित था। एक दिन जब वह अपनी वर्कशॉप में प्रयोग कर रहा था, अचानक उसके इंजन में बहुत जोरदार विस्फोट हुआ। इस विस्फोट से उसका वर्कशॉप बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया। कई महत्वपूर्ण चीजें जलकर खाक हो गईं। वह खुद भी बुरी तरह घायल हुआ था। उसे लंबे समय तक उपचार के लिए अस्पताल में रुकना पड़ा। इतने बड़े हादसे के बावजूद वह डरा नहीं। न तो उसने हिम्मत छोड़ी और न ही मायूसी और निराशा को अपने करीब फटकने दिया। स्वस्थ होने के बाद वह फिर अपने वर्कशॉप जा पहुंचा। इतने बड़े हादसे के बावजूद उसके चेहरे पर किसी प्रकार का अफसोस या शिकन नहीं थी। वह पूरे उत्साह के साथ नए सिरे से अपने काम में जुट गया। लोग उसके इस जुझारु और प्रेरणादायक जज्बे को देखकर हैरान थे। इसके बाद उसने कई सफल आविष्कार किए और कई भाप इंजनों का डिजाइन तैयार किया। उसके आविष्कारों में डीजल इंजन प्रमुख रहा। यह महान इंजीनियर था रुडोल्फ डीजल। आज का डीजल इंजन रुडोल्फ डीजल के मौलिक सिद्धांत का

परिष्कृत और उन्नत संस्करण है। अनेक अविष्कारों के प्रति इस समर्पित भाव और कभी हार न मानने की प्रवृत्ति के कारण रुडोल्फ डीजल आज भी नई पीढ़ी के लिए एक प्रेरणा बने हुए है।

५५३) कलाकार का अभिमान - एक प्रसिद्ध चित्रकार ने अपने पुत्र को भी चित्रकला सिखाई। उसका पुत्र इस कला में जल्द ही पारंगत हो गया, क्योंकि वह भी अपने पिता के समान ही परिश्रमी और कल्पनाशील था। जल्दी ही वह सुंदर चित्र बनाने लगा। फिर भी चित्रकार पिता अपने पुत्र द्वारा बनाए गए चित्रों में कोई न कोई त्रुटि जरूर निकाला करता था। वह कभी खुले हृदय से अपने पुत्र की प्रशंसा नहीं करता बल्कि कई बार तो डांट भी देता था। लेकिन दूसरे लोग चित्रकार के बेटे के चित्रों की खूब सराहना करते थे। उसके बनाए हुए चित्रों की मांग बढ़ने लगी। फिर भी पिता के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया। एक दिन पुत्र ने एक आकर्षक चित्र बनाया और अपने एक मित्र द्वारा उसे अपने पिता के पास भिजवाया। पिता ने सोचा कि यह चित्र उसी मित्र का बनाया हुआ है। उसने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तभी वहां एक कोने में छिपकर बैठा पुत्र निकल आया और बोला, पिताजी, वास्तव में यह चित्र मैंने बनाया है। अंतत: मैंने वैसा चित्र बना ही दिया जिसमें आप कोई कमी नहीं निकाल सके। चित्रकार पिता ने कहा, बेटा, एक बात गांठ बांध लो। अभिमान उन्नति के सभी मार्ग बंद कर देता है। आज तक मैंने तुम्हारी प्रशंसा नहीं की, सदा तुम्हारे चित्रों में कमियां निकालता रहा। इसीलिए तुम आज तक अच्छे चित्र बनाते रहे। अगर मैं कह देता कि तुमने बहुत अच्छा चित्र बनाया है, तो शायद तुम चित्र बनाने में उतने जागरूक नहीं रहते। तुम्हें लगता कि तुम पूर्णता को प्राप्त करचुके हो, जबकि कला के क्षेत्र में पूर्णता की कोई सीमा ही नहीं होती है। मैं तो इस उम्र में भी अपने को पूर्ण नहीं मानता। तुम्हारे आज के बर्ताव से तुम्हारी ही हानि होगी। इसलिए भविष्य में सावधान रहना। यह सुनकर पुत्र लज्जित हो गया। उसने पिता के चरणों में गिरकर क्षमा मांगी।

५५४) परमात्मा का सच्चा स्मरण - संत कबीर का जीवन बहुत सरल और सादगीमय था, लेकिन उनके ज्ञान और संतभाव की ख्याति गजब थी। इसे सुन काशी के एक बड़े विद्वान जयंत आचार्य उनके पास पहुंचे। उस समय कबीर कपड़ा बुन रहे थे। कबीर को उस हालत में बैठा देख उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोच रहे थे कि उनके तो बड़े ठाट बाट होंगे। उन्होंने देखा कि कबीर तो अत्यंत साधारण वेश में दिनभर दुनियादारी के कामों में व्यस्त रहते हैं। यह सब देखकर उनसे न रहा गया तो उन्होंने पूछा, आप दिन भर कपड़ा बुनते रहते हैं? कबीर जयंत आचार्य को लेकर झोपड़ी से बाहर आए। वह बोले, तुम्हारे सवाल का जवाब शब्दों में नहीं देता, उसका प्रायोगिक स्वरूप दिखाता हूं। कबीर ने उन्हें दिखाया कि एक औरत पानी का घड़ा सिर पर रखकर लौट रही थी। उसके चेहरे पर प्रसन्नता और चाल में रफ्तार थी। घड़े को उसने पकड़ नहीं रखा था, फिर भी वह पूरी तरह संभली हुई थी। कबीर ने जयंत आचार्य से कहा, उस औरत को देखो। वह जरूर कोई गीत गुनगुना रही है। शायद कोई प्रियजन घर आया होगा। वह प्यासा होगा, उसके लिए वह पानी लेकर जा रही है। अब बताओ कि उसे घड़े की याद होगी या नहीं? जयंत आचार्य ने जवाब दिया, उसे घड़े की याद नहीं होती, तो अब तक तो वह नीचे गिर चुकी होती। सुनते ही कबीर तपाक से बोले, यह साधारण-सी औरत सिर पर घड़ा रखकर रास्ता पार करती है, मजे से गाती है, फिर भी घड़े का ख्याल उसके मन में बराबर बना हुआ है। यह सब देखकर तुम्हें महसूस हो गया

होगा कि मुझे परमात्मा के स्मरण के लिए अलग से वक्त निकालने की क्यों जरूरत नहीं है? कपड़ा बुनने का काम शरीर करता है, आत्मा नहीं। परमात्मा का सच्चा स्मरण हृदय से होता है, शरीर तो निमित्त मात्र है।

५५५) हार और जीत - किसी शहर में बहुत दूर से एक विद्वान शास्त्रार्थ करने पहुंचा। उसने पूछताछ की तो कुछ लोग उसे शहर के प्रमुख विद्वानों के पास ले गए जिन्होंने कहा, हमारे यहां तो सनातन गोस्वामी और उनके भतीजे जीव गोस्वामी ही श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। अगर वे आपको विजेता के रूप में स्वीकार कर मान्यतापत्र पर हस्ताक्षर कर देंगे तो हम भी आपको विजेता मान लेंगे। दूर से आया वह विद्वान सनातन गोस्वामी के पास पहुंचा और बोला, स्वामी जी, या तो आप मुझसे शास्त्रार्थ कीजिए या मुझे मान्यतापत्र प्रदान कीजिए। इस पर सनातन गोस्वामी बोले, भाई। अभी हमने शास्त्रों का मर्म ही कहां समझा है। हम तो विद्वानों के सेवक हैं। यह कहते हुए उन्होंने मान्यतापत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। विद्वान मान्यतापत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक चला जा रहा था कि जीव गोस्वामी मिल गए। विद्वान ने उनसे भी कहा, आप इस मान्यतापात्र पर हस्ताक्षर करेंगे या मुझसे शास्त्रार्थ करेंगे? जीव गोस्वामी बोले, मैं शास्त्रार्थ के लिए तैयार हूं। दोनों में शास्त्रार्थ शुरू हो गया। लंबे शास्त्रार्थ में जीव गोस्वामी ने उस विद्वान को पराजित कर दिया। वह विद्वान दुखी होकर नगर से चला गया। जीव गोस्वामी ने सनातन गोस्वामी को अपनी विजय के बारे में बताया, पर सनातन गोस्वामी प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने कहा, एक विद्वान को अपमानित करके तुम्हें थोड़ा यश अवश्य मिल गया लेकिन क्या करोगे यश लेकर? यह केवल तुम्हारे अहंकार को बढ़ाएगा ओर तुम्हारे जैसा अहंकारी ज्ञान की साधना कैसे कर पाएगा? आखिर उस विद्वान को विजयी मान लेने में तुम्हारा क्या बिगड़ता था? हमारे लिए यश-अपयश, जीवन-मरण, सुख-दु:ख, मित्र-शत्रु सभी एक समान होते हैं। हमें हार और जीत के फेर में पड़ना ही नहीं चाहिए। जीव गोस्वामी को अपनी भूल का अहसास हो गया। उन्होंने अपने व्यवहार के लिए उनसे क्षमा मांगी।

५५६) नेता की जीत - रेल यात्रा कर रहे एक तिलकधारी सेठ ने जब अपना भोजन का डिब्बा खोलना चाहा तो पास ही बैठे खद्दरधारी नेता को देखकर उन्हें कुछ शंका हुई। कुछ देर तक तो उन्होंने खुद को रोके रखा, लेकिन बर्दाश्त न हुआ तो उन्होंने पूछा, अजी नेताजी, आप किस जाति के हैं? गुस्ताखी माफ करना, जरा खास काम है इसलिए पूछने की हिम्मत की। नेताजी ने कहा, जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञानवाली कहावत क्या सेठ जी आपने नहीं सुनी? साधु से नही पूछेंगे जाति नेता जी। पर आपने तो गेरुए कपड़े नहीं पहने हैं। खादी तो आजकल मेहतर से लेकर ब्राह्मण, बनिये, सभी नेतागीरी चमकाने के लिए पहन लेते हैं। आपको अपनी जाति बताने में हर्ज क्या है? नहीं सेठ जी, जाति बताने से या छिपाने से कुछ नहीं होता। यह कहकर नेताजी समाचारपत्र पढ़ने लगे। पर सेठजी ने एक बार फिर आग्रह किया तो नेताजी बोले, किसी एक जाति का हूं तो बताऊं। तो फिर क्या नेताजी, आप वर्णसंकर हैं? लगता है आपके पिताजी ने दूसरी जाति की लड़की से विवाह किया होगा। पिताके चरित्र पर चोट थी, किंतु नेताजी ने मार्मिक व्यंग्य की शैली में चुटकी लेते हुए कहा, सेठ जी, आप जाति की पूछ रहे हैं तो सुनिए- प्रात: काल जब गांधीवादी जीवन के अनुसार घर-आंगन-शौचालय आदि की सफाई का कार्य करता हूं तो पूरी तरह मेहतर हो जाता हूं। जब अपने जूते साफ करता हूं तो चमार हो जाता हूं। दाढ़ी बनाते समय नाई और कपड़े धोते समय धोबी हो जाता हूं। पानी भरते समय कहार, हिसाब करते समय बनिया और

कॉलेज में पढ़ते समय ब्राह्मण हो जाता हूं। अब आप ही तय करें कि मेरी जाति क्या है? तब तक स्टेशन आ गया। स्वागत में अपार भीड़ स्टेशन पर थी जिसने नेताजी को पुष्पहारों से लाद दिया। नेताजी प्रख्यात गांधीवादी आचार्य जेबी कृपलानी थे।

५५७) कवि हृदय की विशालता - सूर्यकांत त्रिपाठी निराला दारागंज लीडर प्रेस से अपनी रायल्टी के एक सौ चार रुपए लेकर, इक्के में सवार होकर, रक्षाबंधन पर अपनी मुंह बोली बहन महादेवी के घर की ओर चले आ रहे थे कि एक दुखी सी आवाज सुनाई दी, बेटा। इस अभागिन भूखी को भी कुछ मिल जाए। निराला ने इनका इक्का रुकवाया और बूढ़ी भिखारिन के पास जाकर बोले, मां। हमारे रहते तुम्हें भीख मांगनी पड़े, यह कैसे हो सकता है? और क्या करूं बेटा, बुढ़िया ने कहा, हाथ-पैर चलते नहीं। जब तक ठीक रहे तब तक मैंने भी स्वाभिमानवश किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया और पसीने की कमाई से अपना और अपने अपने परिवार का पेट पालती रही। पर अब तो मैं बेटों को फूटी आंख भी नहीं सुहाती। उन लोगों ने मुझे दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया है। पेट पालने के लिए कुछ तो करना ही था, सो इसे विवश होकर भिक्षा का रास्ता अपना लिया। भिक्षा मांगकर किसी प्रकार यह बूढ़ी अपना पेट भर लेती है। कवि हृदय तड़प उठा, मां यदि एक रुपया दे दूं, तो कब तक भीख नहीं मांगोगी? उत्तर मिला- कल तक। यदि पांच रुपये दे दूं तो? तो पांच दिन तक भीख नहीं मांगनी पड़ेगी- बुढ़िया ने जवाब दिया। कवि ने रॉयल्टी की पूरी राशि एक सौ चार रूपये दे देने की बात कही तो बुढ़िया ने फिर कभी भीख न मांगने और इससे कोई धंधा कर लेने का संकल्प लिया। महाकवि सारी राशि बुढ़िया को देकर स्वयं खाली जेब इक्के में बैठकर बहन महादेवी के घर की ओर चल पड़े, जहां किराया भी महादेवी ने ही चुकाया। ऐसा था निराला का विशाल कवि हृदय। बहन ने रक्षाबंधन के पर्व पर जब यह सुना तो कहने लगीं- सत्य है, मानवता हृदय की विशालता से आती है, भौतिक संपन्नता से नहीं। मुझे अपने भाई पर गर्व है।

५५८) कोच की नजर - ग्रीन बे पेकर्स के लिए एक अभ्यास सत्र के दौरान विंस लंबार्डी अपनी टीम को जोरदार अभ्यास करा रहे थे। लेकिन, उनकी टीम अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पा रही थी। लंबार्डी ने एक गार्ड को पुल आउट करने में असफल पाया। उन्होंने अपना सारा गुस्सा गार्ड पर निकालते हुए कहा, कि तुम एक निहायत घटिया फुटबॉल खिलाड़ी हो। गेंद को तुम रोक नहीं रहे हो, संभाल नहीं रहे हो। तुम्हारे लिए अब सब खत्म हो गया है। जाओ, जाकर कुछ और काम करो। लंबार्डी की बातें सुनकर गार्ड सिर झुकाए चला गया। लेकिन खुद पर काबू न कर पाया और एक कोने में जाकर सुबकने लगा। न जाने कैसे विंस लंबार्डी को यह अहसास हो गया कि गार्ड बहुत परेशान है। वे उसे ढूंढते हुए उसके पास पहुंचे और उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोले, बेटा, एक बात कहूं। मैंने यह सच ही कहा है कि तुम एक घटिया फुटबॉल खिलाड़ी हो क्योंकि तुम बॉल की गति मापने में और उसे पकड़ने में असफल रहे हो। लेकिन इसके साथ ही तुम्हें देखकर मुझे ऐसा भी अनुमान हो रहा है कि प्रयास करने से तुम एक महान फुटबॉल खिलाड़ी बन सकते हो। गार्ड यह सुनकर हैरानी से लंबार्डी की ओर देखने लगा। उसे अपनी ओर हैरानी से देखता पाकर लंबार्डी मुस्कुराते हुए बोले, चिंता मत करो, मैं तुम्हारा साथ तब तक नहीं छोड़ूंगा जब तक तुम्हारे अंदर के उस महान फुटबॉल खिलाड़ी को बाहर न निकाल लाऊं। यह बात सुनकर गार्ड का चेहरा खुशी से खिल उठा और उसने लंबार्डी के चरण छू लिए। इसके बाद से लंबार्डी दिन-रात गार्ड की क्षमता को निखारने में लग गए और आखिरकार उन्होंने उसे एक महान फुटबॉल खिलाड़ी के रूप में खड़ा कर दिया।

उस गार्ड को आज दुनिया फुटबॉल के एक सर्वकालीन महान खिलाड़ी जैरी क्रैमर के रूप में जानती है।

५५९) बीमारी की जड़ - जर्मनी के सम्राट जॉर्ज जोसेफ रात में वेश बदलकर घूमा करते थे और उन्हें जहां भी कोई तकलीफ में दिखाई देता, वे तत्काल उसका संकट दूर कर देते। एक दिन घूमते हुए एक फटेहाल युवक ने उनसे गिड़गिड़ाते हुए कहा, मेरी बूढ़ी मां कुछ समय से बीमार है। कोई भी डॉक्टर उसके रोग को पहचान नहीं सका। उसका शरीर जर्जर हो चुका है। यदि मुझे कुछ रुपये मिल जाएं तो अंतिम बार उसका इलाज करा सकूंगा। क्या आप मेरी कुछ मदद कर सकेंगे? सम्राट ने कुछ पैसे देते हुए कहा, तुम जाओ डॉक्टर को बुलाकर लाओ। मैं तुम्हारी कुछ और भी मदद करने का प्रयास करूंगा। तुम अपने घर का पता बताओ। जोसेफ उसके दिए पते पर जा पहुंचे। उन्होंने देखा कि जर्जर घर में एक वृद्धा चारपाई पर लेटी हुई है। एक बालक पास बैठा रो रहा है। उन्होंने अपने को डॉक्टर बताकर महिला से बीमारी के बारे में पूछा। महिला ने बताया, मेरे पति की मृत्यु के बाद कोई कमानेवाला नहीं रहा। मेरे मरने के बाद मेरे बच्चों का क्या होगा, यही चिंता मुझे बीमार बनाए हुए है। सम्राट ने एक कागज पर कुछ लिखा और उसे देते हुए कहा, मैंने दवा लिख दी है। मंगा लेना। कुछ देर बाद उस वृद्धा को दूसरा बेटा डॉक्टर को साथ लेकर आया। वृद्धा ने कहा, बेटा, अभी थोड़ी देर पहले एक डॉक्टर पर्चे पर कोई दवा लिखकर दे गया है। बेटे के साथ आए डॉक्टर ने पर्चा देखा तो कहा, माताजी उस डॉक्टर ने बीमारी की जड़ पकड़ ली। वह कोई साधारण डॉक्टर नहीं था, वह तो हमारे देश का राजा है। उसने लिख दिया है कि राजकोष से आपके परिवार को नियमित धन मिलता रहेगा। चारों ने राजा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की और श्रद्धा से भर उठे। कुछ दिनों बाद वृद्धा स्वस्थ हो गई।

५६०) कोशिश नहीं छोड़ी - कोलकाता की भीड़ भरी सड़क पर काफी चहल-पहल थी। इसी सड़क पर एक घोड़ागाड़ी तेजी से दौड़ी आ रही थी। इस घोड़ागाड़ी में एक महिला अपने नन्हे से बालक के साथ बैठी थी। दौड़ते-दौड़ते पता नहीं घोड़े को क्या हुआ कि वह बिगड़ उठा। कोचवान एक ही झटके में घोड़ागाड़ी से दूर जा गिरा। घोड़ा अपनी गाड़ी लिए सड़क पर बेतहाशा भागता जा रहा था। कोचवान के गिरते ही गाड़ी में बैठी महिला घबरा गई तथा सहायता के लिए चिल्लाने लगी- बचाओ, बचाओ, कोई बचाओ। महानगर की उस भीड़ भरी सड़क पर आ-जा रहे हजारों लोग यह दृश्य चुपचाप देखते रहे, लेकिन किसी की इतनी हिम्मत नहीं हुई कि वह बदहवास भाग रहे घोड़े को रोक कर गाड़ी में बैठै मां-बेटे की रक्षा करे। तभी अचानक एक पंद्रह-सोलह वर्ष का किशोर भीड़ को चीरता हुआ सड़क के बीच आ गया और उछल कर घोड़े की पीठ पर बैठने का प्रयत्न करने लगा। लेकिन घोड़े ने उसे गिरा दिया। किशोर तुरंत उठ खड़ा हुआ और दोबारा घोड़े पर चढ़ने की कोशिश की, लेकिन घोड़े ने इस बार भी उसे गिरा दिया और उसकी कोशिश इस बार भी विफल हो गई। उसने तीसरी बार फिर घोड़े पर चढ़ने की कोशिश की और इस बार भी उसे सफलता नहीं मिली। वह फिर गिर पड़ा। गिरा ही नहीं, घोड़े के पैरों तले आने से भी बाल बाल बचा। उस किशोर के हाथ पैर भी जगह-जगह से छिल गए और खून छलछला आया था, लेकिन उस दृढ़ संकल्प किशोर ने हिम्मत नहीं हारी। अंत में उसने जैसे-तैसे कर घोड़े को अपने काबू में कर ही लिया। घोड़ागाड़ी पर सवार वह महिला जब अपने नन्हे बेटे सहित सुरक्षित उतर गई, तब कहीं उसे चैन आया। वह युवक कोई और नहीं बल्कि नरेंद्रनाथ थे जो कि बाद में देश और दुनिया में विवेकानंद नाम से जाने गए।

५६१) हॉकी का जादूगर - घटना १९३३ की है। पंजाब रेजिमेंट तथा सैपर्स एंड माइनर्स की टीमों के बीच हॉकी का मैच चल रहा था। पंजाब रेजिमेंट की टीम में एक युवा खिलाड़ी अपने अद्भुत खेल से सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। दर्शक तालियां बजाकर व नारे लगाकर उसका उत्साह बढ़ा रहे थे। उस खिलाड़ी का बढ़िया प्रदर्शन विपक्षी टीम को नहीं भाया। विपक्षी टीम के एक खिलाड़ी के मन में उसके प्रति ईर्ष्या की भावना ने जन्म ले लिया। उसने मौका पाकर उस खिलाड़ी पर प्रहार कर दिया। खिलाड़ी घायल हो गया जिससे उसे मैदान से बाहर जाना पड़ा। कुछ ही समय बाद खिलाड़ी अपनी मरहम पट्टी कराकर वापस मैदान में आ गया। जब इस घायल खिलाड़ी का विपक्षी टीम के उस खिलाड़ी से सामना हुआ तो वह बोला, तुम देख लेना, मैं बदला लिए बिना नहीं रहूंगा। विपक्षी खिलाड़ी के मन में डर बैठ गया कि वह खिलाड़ी भी उस पर हॉकी स्टिक से चोट करेगा। अब वह इस युवा खिलाड़ी के खेल में और भी पैनापन आ चुका था। देखते-देखते उसने विपक्षी टीम पर एक के बाद एक छह गोल कर दिए। खेल समाप्त होने पर घायल खिलाड़ी दोबारा विपक्षी खिलाड़ी के पास गया और बोला, तुमने मुझ पर वार करके मुझे बदला लेने के लिए मजबूर कर दिया। इसी बदले की भावना से मैंने छह गोल किए। यदि तुमने मुझ पर प्रहार न किया होता तो शायद मैं दो गोल से ज्यादा न करता। किंतु तुम्हारी ईर्ष्या ने मुझे और अधिक अच्छा प्रदर्शन करने को प्रेरित किया और मैं उसमें कामयाब हो गया। यह सुनकर विपक्षी टीम के खिलाड़ी का सिर लज्जा व शर्म से झुक गया। वह घायल और हिम्मत न हारनेवाला खिलाड़ी ध्यानचंद आगे चलकर हॉकी का महान जादूगर कहलाया।

५६२) राजा का अभिमान - एक राजा को उसके कुलगुरु समय समय पर नीति और ज्ञान की बातें समझाते रहते थे। युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद एक बार राजा ने गौरव व अभिमान से भरकर कुलगुरू से कहा, गुरुदेव, आपकी अनुकंपा से मैं अब चक्रवर्ती सम्राट हो गया हूं। अब मैं हजारों-लाखों लोगों का रक्षक और प्रजापालक हूं। मेरे कंधों पर उन सब की जिम्मेदारी है। कुलगुरु ने अनुमान लगा लिया कि शायद मेरे यजमान को राजा होने का अभिमान हो गया है। यह अभिमान उसकी संप्रभुता को हानि पहुंचा सकता है। इस अभिमान को तोड़ने के लिए कुलगुरु ने एक युक्ति सोची। शाम को राजा के साथ भ्रमण करते हुए कुलगुरु ने अचानक राजा को एक बड़ा सा पत्थर दिखा कर कहा, वत्स। जरा इस पत्थर को तोड़कर तो देखो। आज्ञाकारी राजा ने अत्यंत नम्र भाव से अपने बल से वह पत्थर तोड़ डाला। लेकिन यह क्या। पत्थर के बीच में बैठे एक जीवित मेंढ़क को एक पतंगा मुंह में दबाए देखकर राजा दंग रह गया। कुलगुरु ने राजा से पूछा, पत्थर के बीच बैठे इस मेंढ़क को कौन हवा-पानी और खुराक दे रहा है? इसका पालक कौन है? कहीं इसके पालन-पोषण की जिम्मेदारी भी तुम्हारे ही कंधों पर तो नहीं आ पड़ी है? राजा को अपने कुलगुरु के प्रश्न का आशय समझ में आ गया। वह इस घटना से पानी पानी होकर कुलगुरु के आगे नतमस्तक हो गया। तब कुलगुरु ने कहा, चाहे वह तुम्हारे राज्य की प्रजा हो या दूसरे प्राणी, पालक तो सबका एक ही है- परमपिता परमेश्वर। हम तुम भी उसी की प्रजा हैं, उसी की कृपा से हमें अन्न और जल प्राप्त होता है। राजा के रूप में तुम उसी के कार्यों को अंजाम देते हो। हम तुम माध्यम है, निमित्त मात्र हैं, पालन कर्ता परमात्मा ही है। हमारे भीतर पालनकर्ता होने का अभिमान कभी नहीं आना चाहिए।

५६३) जिमनास्टिक की रानी - नादिया एलिना कोमानेची बचपन से ही चुस्त व जोश से भरपूर थीं। नादिया को उछल-कूद बहुत पसंद था। उनकी रुचि को देखते हुए छह साल की उम्र में ही उनका एडमिशन जिमनास्टिक में करा दिया गया। मात्र आठ साल की आयु में उन्होंने अपने जीवन की पहली प्रतियोगिता रोमानियन नेशनल चैंपियनशिप में भाग लिया और तेरहवें स्थान पर रहीं। सन १९७१ में मात्र दस वर्ष की आयु में उन्होंने पहली अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में भाग लिया और अपने जीवन का पहला ऑल राउंड खिताब जीतकर अपनीटीम को स्वर्ण पदक दिलाया। १३ वर्ष की आयु तक तो नादिया अनेक स्वर्ण पदक अपने नाम कर चुकी थीं। हर खिलाड़ी की तरह नादिया की भी चाहत ओलिंपिक में पदक जीतने की थी। वह बेसब्री से वर्ष १९७६ में मॉन्ट्रियल ओलिंपिक का इंतजार कर रही थीं। इस ओलिंपिक में नादिया का इंतजार ही खत्म नहीं हुआ बल्कि उन्होंने ऐसा इतिहास रच दिया जो आज तक अविस्मरणीय है। इन खेलों के दौरान उन्हें सात बार अधिकतम अंक यानि परफेक्ट टेन हासिल हुए। यहां नादिया ने ३ स्वर्ण, एक रजत और एक कांस्य पदक जीता। वे मॉन्ट्रियल ओलिंपिक की एक ऐसी नायिका बनकर सामने आई जिसका रिकॉर्ड टूटना भी एक अविस्मरणीय घटना होगी। जब वे जिमनास्ट करती थीं तो दर्शक दांतों तले उंगली दबा लेते थे। अधिकतर जिमनास्ट नादिया की जिमनास्टिक को चमत्कार मानते थे। नादिया का जिमनास्टिक में १९८० के मॉस्को ओलिंपिक लोग जब नादिया से उनकी सफलता के बारे में पूछते थे तो उनका जवाब होता था, आसान जीवन के लिए प्रार्थना मत करो, एक मजबूत व्यक्ति होने के लिए प्रार्थना करो। तुम पाओगे कि तुम वास्तव में मजबूत हो और असंभव को संभव कर सकते हो।

५६४) माता की सीख - स्वामी रामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी शारदामणि माता काली की अनन्य भक्त थीं और वे काली मां का श्रृंगार बड़े प्रेमपूर्वक करती थीं। इस कार्य में अन्य महिलाएं भी उनकी सहायता करतीं और प्रतिमा को अलंकृत करने में प्रसन्नता का अनुभव करतीं। काली मां की प्रतिमा को सजाने में जो महिलाएं मदद करती थीं उनमें एक महिला ऐसी भी थी जो कुल और शील की दृष्टि से नीची समझी जाती थी। माता शारदामणि यह सब जानती थीं, पर उन्होंने कभी उस महिला को रोका नहीं, वरन् अन्य संभ्रांत महिलाओं की तरह ही उसे आदर दिया और अलंकार विधि में प्रेमपूर्वक भाग लेने दिया। एक दिन एक कुलीन महिला ने माताजी से कहा- अमुक स्त्री उच्च कुल की नहीं है। वह नीच कुल की और गिरे चरित्र की है, उसे आप माता की प्रतिमा छूने न दिया करें, बल्कि उसे मंदिर से बाहर ही रखे, तो अच्छा रहेगा। शारदामणि ने उसे समझाते हुए कहा, देखो पुत्री। गंगा में सभी स्नान करते हैं। उसमें नहानेवालों में मैले और मलिन भी होते हैं, पर इससे गंगा मां की न तो पवित्रता नष्ट होती हैं और न ही उनकी महिमा घटती है। जीवन में यदि कोई गिरता है, अपने ही दोषों से गिरता है। स्पर्श किसी को कभी नहीं गिरा सकता। फिर पापनाशिनी कहलानेवाली काली माता की पुण्यप्रभा उस महिला के स्पर्श से कैसे मलिन हो जाएगी? उस महिला को अपनी भूल समझ आ गई। उन्हें अहसास हो गया कि माताजी कह रही हैं, हमें पाप से घृणा करनी चाहिए पापी से नहीं। उसने उसी क्षण अपने विचार बदल लिए और शारदामणि माता से क्षमा मांगी। मां शारदामणि न केवल उच्च कोटि की साधिका थीं बल्कि वे सभी आश्रमवासियों की प्रिय, आदरणीय होने के साथ साथ उनकी मां भी थीं। रामकृष्ण परमहंस भी उनको मां कहकर संबोधित करते थे।

५६५) धर्मराज की भूल - महाभारत युद्ध के बाद युधिष्ठिर हस्तिनापुर के राजा बने। चारों छोटे भाई सदा उनकी सेवा में लगे रहते थे। युधिष्ठिर का नियम था कि प्रतिदिन वह द्रौपदी के साथ राजमहल के मुख्य द्वार पर खड़े होते और आनेवाले याचकों को उनकी अपेक्षा के अनुरूप सामग्री भेंट करते। सुबह से लेकर दोपहर तक धर्मराज का यह दान चलता था। एक दिन धर्मराज सभी को दान देकर राजमहल लौट आए। वह आसन पर बैठने को ही थे कि भीम ने आकर सूचना दी, दो याचक और आए हैं। वे बड़ी दूर से पहुंचे हैं और दर्शन तथा अपेक्षानुरूप सामग्री की कामना से भरे हैं। युधिष्ठिर उस दिन कुछ थके थे। उन्होंने भीम से कहा, याचकों से कहो कि अब कल भेंट होगी। यह सुनकर भीम बाहर आए और राजमहल की सीढ़ियों पर खड़े होकर जोर-जोर से कहना शुरू किया, हमारे महाराज अब तक धर्मराज थे। अब यमराज भी हो गए हैं। भीम का शोर सुनकर युधिष्ठिर आखिरकार बाहर आए और उनकी बात का अर्थ पूछा। भीम ने विनम्रता से कहा, महाराज, आपने ही कहा था कि याचकों को कल बुलाऊं। आपकी बात और आनेवाले कल पर आपका इतना विश्वास देख मुझे लगा कि आप तो यमराज ही हो गए हैं जो इतने विश्वास से कह सकते हैं कि कल आना। आपको इतना विश्वास है कि कल आप जीवित रहेंगे। मैंने तो सुना था कि जीवन का भरोसा एक पल भी नहीं। तब आप कैसे कह सकते है कि कल आना? युधिष्ठिर को तत्क्षण अपनी भूल का भान हुआ और उन्होंने उसी समय विलंब से पहुंचे दोनों याचकों को दान देकर विदा किया। युधिष्ठिर ने स्वीकारा कि अपने कार्य को कल पर लंबित नहीं करना चाहिए। काल करे सो आज कर की प्रसिद्ध पंक्ति का यही आशय है कि अपने काम को कभी भी दूसरे दिन पर नहीं टालना चाहिए, उसे तुरंत करना चाहिए।

५६६) विवेक का प्रयोग - जापान के किसी गांव में एक बूढ़ा समुराई योद्धा रहता था। उसके पास कई लोग समुराई युद्धकला सीखने आते थे। एक बार एक विदेशी योद्धा उसे पराजित करने के लिए आया। वह विदेशी योद्धा साहसी था। उसके बारे में यहां तक कहा जाता था कि वह जहां भी जाता, विजयी होकर ही वापस अपने देश लौटता था। संसार भर में वह जहां भी और जिससे भी लड़ा, सबने उसके युद्धकौशल के सामने पराजय ही पाई। जब विदेशी समुराई ने युद्ध करने की इच्छा जताई तो बूढ़े समुराई के शिष्यों ने मुकाबला न करने की प्रार्थना की। लेकिन बूढ़े समुराई ने उनकी नहीं मानीं और नियत समय पर युद्ध शुरू हुआ। विदेशी समुराई तरह-तरह से उस बूढ़े समुराई को अपमानित करने लगा। उसने उन्हें गुस्सा दिलाने के सारे प्रयत्न किए, लेकिन घंटों बाद भी उन्हें गुस्सा नहीं आया। यह देखकर विदेशी समुराई ने पैरों से धूल उड़ाकर जमीन पर थूक दिया। इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी बूढ़े समुराई ने कुछ न कहा। वह पहले की ही तरह शांत और धीर गंभीर बने रहे। अब उस विदेशी योद्धा को अपनी पराजय का अहसास हुआ और वह अपनी हार मानते हुए चला गया। यह देखकर बूढ़े समुराई के शिष्य हैरान थे उन्होंने पूछा, आपका इतना अपमान हुआ फिर भी आप चुप रहे। तब उनके गुरु ने कहा, यदि कोई तुम्हें तोहफा दे और तुम उसे स्वीकार न करो तो वह किसका होगा? शिष्यों ने कहा, तोहफा देनेवालों का ही होगा। गुरु बोले, मैंने भी उसकी गालियों को स्वीकार नहीं किया। तो वह उसके पास ही गईं। अमूमन हम व्यवहार में कुछ अप्रिय प्रसंगों का सामना करते हैं। ऐसे में आवश्यक प्रतिक्रिया से बचकर हम अपनी ऊर्जा और समय को बचाकर किसी नेक कार्य में लगा सकते हैं। विवेक के प्रयोग से हम विरोधियों को भी सकारात्मक संदेश देकर उनका हृदय परिवर्तन कर सकते हैं।

५६७) रूप का फेर - शनक और अभिप्रतारी नाम के दो ऋषि वायु देवता के उपासक थे। एक दिन दोपहर को दोनों ने भोजन तैयार किया। भोजन बना ही था कि किसी ने दरवाजा खटखटाया। बाहर एक युवा ब्रह्मचारी भोजन मांग रहा था। नहीं भैया इस वक्त नहीं है। उत्तर मिला। युवक के लिए इनकार कोई नई बात नहीं थी, किंतु एक ऋषि के आश्रम से ऐसा उत्तर पाकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने ऋषि से पूछा, मान्यवर। क्या मैं जान सकता हूं कि आप किस देवता के उपासक हैं? एक ऋषि ने कहा, मेरा इष्टदेव वायु है, जिसे प्राण भी कहा जाता है। ब्रह्मचारी ने कहा, तब तो आप यह जरूर जानते होंगे कि यह संसार प्राण को ही धारण किए हुए हैं और अंत में यह प्राण ही में विलीन हो जाता है। यह प्राण प्रत्यक्ष और परोक्ष सभी में व्याप्त है। ऋषि ने कहा, यह बात तो सभी को पता है। निश्चय ही हम जानते हैं, तुम नई बात नहीं कह रहे। अगला प्रश्न था, क्या मैं जान सकता हूं कि यह भोजन आपने किसके लिए पकाया है? अपने इष्टदेव के लिए पकाया है, ऋषि ने झट उत्तर दिया। यदि प्राण ही इस संसार में व्याप्त है, तो वह मुझमें भी वैसे ही मौजूद है, क्योंकि मैं भी सृष्टि का एक भाग हूं। वही प्राण इस भूखे शरीर में भी निवास करता है, जो आपके सामने कुछ भोजन भी भिक्षा मांग रहा है। तो महामना ऋषियों। मुझे भोजन देने से इनकार करते हो, जिसके लिए तुमने इसे पकाया है? नौजवान ने दिल में चुभने वाली बात कह दी। ब्रह्मचारी की इस बात पर दोनों ऋषि बहुत लज्जित हुए और उन्होंने उस ब्रह्मचारी को सम्मानपूर्वक भीतर बुलाकर हाथ-मुंह धुलाकर संध्या-तर्पण को जल दिया। उसके बाद उसको अपने साथ बिठाकर भोजन कराया। उन्होंने अनुभव किया कि वह केवल रूप या प्रत्यक्ष के फेर में पड़े थे और तत्व या प्रकृति से अनभिज्ञ थे, जो वास्तव में समझने योग्य है।

५६८) एक हाथ से लो, दूसरे से दो - किसी नगर में एक लालची आदमी रहता था। ज्यों-ज्यों उसके पास पैसा आता गया त्यों-त्यों उसका लोभ बढ़ता गया। उसे सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं उपलब्ध थी। धन के बल पर वह प्रत्येक वस्तु प्राप्त कर सकता था। लेकिन उसके जीवन में एक चीज का अभाव था- उसका कोई पुत्र नहीं था। उसकी युवावस्था बीतने लगी, परंतु धन-संपत्ति के प्रति उसकी चाहत में कोई अंतर नहीं आया। एक रात बिस्तर पर लेटे-लेटे उसने देखा कि सामने कोई अस्पष्ट आकृति खड़ी है। उसने घबराकर पूछा, कौन? उत्तर मिला, मृत्यु। फिर वह आकृति गायब हो गई। उस दिन से जब भी वह एकांत में होता, आकृति उसके सामने आ जाती। उसका सारा सुख मिट्टी हो गया। कुछ ही दिनों में वह बीमार पड़ गया। वह वैद्य के पास गया, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। दवा की, पर रोग घटने के बजाय बढ़ता गया। लोगों ने उसकी दशा देखकर कहा, नगर के उत्तरी छोर पर एक महात्मा रहते हैं। वे सभी प्रकार की व्याधियों को दूर कर देते हैं। उस आदमी ने महात्मा के पास पहुंचकर रोते हुए प्रार्थना की, आप मेरा कष्ट दूर करें। मौत मेरा पीछा नहीं छोड़ रही है। महात्मा ने कहा, भले आदमी, मोह और मृत्यु परम मित्र हैं। जब तक तुम्हारे पास मोह है तब तक मृत्यु आती रहेगी। मृत्यु से तभी छुटकारा मिलेगा जब मोह रहित हो जाओगे। आदमी ने कहा- महाराज मैं क्या करूं, मोह छूटता ही नहीं। महात्मा बोले- कल से तुम एक हाथ से लो और दूसरे हाथ से दो। मुट्ठी मत बांधो, हाथ को खुला रखो। तुम्हारा रोग दूर हो जाएगा। महात्मा की बात मानकर उसने नए जीवन का आरंभ किया।

५६९) बुद्ध की शिक्षा - एक दिन महात्मा बुद्ध ने अपना अंतिम भोजन ग्रहण कर लिया। इस भोजन को उन्होंने कुंडा नामक एक लोहार से भेंट के रूप में प्राप्त किया था। लेकिन भोजन करने के बाद वे गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। बुद्ध ने

अपने शिष्य आनंद को निर्देश दिया कि वह कुंडा को समझाए कि उसने कोई गलती नहीं की है। उन्होंने कहा कि यह भोजन तो अतुल्य है। भगवान बुद्ध जब मृत्यु शैया पर अंतिम सांसें गिन रहे थे तभी पास से किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। गौतम बुद्ध ने अपने नजदीक बैठे शिष्य आनंद से पूछा, आनंद, यह कौन रो रहा है। आनंद ने कहा, भंते, भद्रक आपके अंतिम दर्शन के लिए आया है। बुद्ध ने कहा, तो उसको मेरे पास बुला लो। बुद्ध के पास आते ही भद्रक फूट फूट कर रोने लगा। उसने कहा, आप नहीं रहेंगे तो हमें ज्ञान का प्रकाश कौन दिखाएगा।

बुद्ध ने भद्रक से कहा, भद्रक, प्रकाश तुम्हारे भीतर है, उसे बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। जो अज्ञानी है, वह इसे देवालयों, तीर्थों, कंदराओं या गुफाओं में भटकते हुए खोजने का प्रयत्न करते हैं। वे सभी अंत में निराश होते हैं। इसके विपरीत मन, वाणी और कर्म से एकनिष्ठ होकर जो साधना में निरंतर लगे रहते हैं। उनका अंत:करण स्वयं दीप्त हो उठता है। इसलिए भद्रक आप स्वयं दीपक बनो यही मेरा जीवन दर्शन है। इसे मैं आजीवन प्रचारित करता रहा। भगवान बुद्ध का यह अंतिम उपदेश सुनकर भद्रक को समझ में आ गया कि अपना दीपक स्वयं बनने के लिए उसे क्या करना होगा। उसने उसी दिन से मन, वाणी, कर्म से एकनिष्ठ होकर साधना करने का मन बना लिया।

५७०) पानी की कीमत - एक बार की बात है। बापू गंगा तट पर कपड़े धो रहे थे। उनकी यह खासियत थी कि वह हर चीज का उतना ही उपयोग करते थे जितना करना चाहिए। बापू नदी से पानी लेकर कपड़ों में डाल रहे थे। वह कपड़ों को नदी से दूर धो रहे थे, ताकि उन कपड़ों की गंदगी नदी में न जाए। उनके पास ही अनेक ग्रामीण स्नान कर रहे थे और अपने-अपने कामों में लगे थे। बापू देख रहे थे कि वे लोग अपने काम के लिए जरूरत से ज्यादा पानी ले रहे हैं और उसे व्यर्थ ही बहा रहे हैं। वह लोगों को बिना कुछ बोले इस बारे में बताना चाहते थे। इसलिए चुपचाच अपने काम में लगे हुए थे। एक ग्रामीण बहुत देर से बापू को देख रहा था। उसने नोट किया कि बापू नदी से थोड़ा सा पानी लेते हैं और उसे कपड़ों पर डालते हैं। कुछ देर बाद वह बोला, बापूजी, एक बात हमारी समझ में नहीं आ रही है। नदी में तो पानी अपार है। फिर पानी लेने में भी आप कंजूसी क्यों बरत रहे हैं? गंगा मैया में पानी की कमी थोड़े ही है। इसका प्रयोग तो जी भर के करिए। उसे ऐसा बोलते देख वहां मौजूद दूसरे लोग भी उसकी हां में हां मिलाने लगे। उन्हें ऐसा बोलते देख बापू बोले, आप गलत कह रहे हैं। यदि सभी लोग ऐसे ही पानी बर्बाद करते रहे तो एक दिन गंगा नदी गायब ही हो जाएगी। फिर कहां से पानी व्यर्थ बहाओगे और कैसे गंगा मैया की पूजा करोगे? बापू की यह बात सुनकर वहां उपस्थित लोग खामोश रह गए। उन्हें समझ आ गया कि बापू क्यों पानी को भी तोल मोल कर प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने बापू से वादा किया कि आगे से वह पानी का सदुपयोग करेंगे और उसे व्यर्थ नहीं गंवाएंगे।

५७१) मदद की भावना - कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला को कलकत्ता के एक सेठ महादेव प्रसाद मतवाला बहुत मानते थे। वे उनकी हर सुख-सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। एक दिन उन्होंने निराला जी को बेहद कीमती व गरम दुलाई भेंट की। वे जाड़ों में उस दुलाई को लपेट कर रखते थे। एक दिन कड़ाके की सर्दी में वे दुलाई ओढ़ कर सेठ जी के दफ्तर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक भिखारी ठिठुरता हुआ दिखाई दिया। उसे इस हालत में देखकर निराला जी दुखी हो उठे। उन्होंने तुरंत वह दुलाई भिखारी को ओढ़ा दी। भिखारी को दुलाई ओढ़ते ही गर्माहट का एहसास हुआ और वह बेहद

खुश होकर निराला जी को अनेक आशीष देने लगा। यह सारा नजारा मतवाला प्रेस का एक कर्मचारी देख रहा था। उसने सारी बात अपने मालिक को बताई। सेठजी तुरंत बाहर आए और उन्होंने देखा कि निराला जी को भेंट की गई दुलाई एक भिखारी ओढ़े बैठा है। वह निराला जी से बोले, यह आपने क्या किया? इतनी महंगी दुलाई एक भिखारी को दान में दे दी? सेठ जी की बात सुनकर निराला जी बोले, आप जैसे महानुभाव के होते हुए दुलाई तो फिर आ जाएगी, लेकिन यदि सर्दी से ठिठुरते हुए इस भिखारी की जान चली गई तो वह कभी वापस नहीं आ पाएगी। उसका पाप मुझे भी लगेगा कि मैंने देखकर भी एक जरूरतमंद की मदद नहीं की। इसलिए मदद करने से पहले मदद की भावना का विकास होना बेहद जरूरी है। मैं तो खुद में यही भावना विकसित करने का प्रयास कर रहा था। निराला जी की बात पर सेठ जी निरुत्तर हो गए। उन्होंने दूसरे भिखारियों को भी गर्म कपड़े दान किए।

५७२) धर्म का मर्म - एक दिन तपोनिष्ठ कौशिक एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। वह वेद पाठ कर रहे थे। तभी उनके ऊपर एक पक्षी ने बीट कर दी। उन्होंने सिर उठाकर देखा तो वहां एक बगुला था। कौशिक को बगुले पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने क्रोध भरी आंखों से उसे देखा तो वह जलकर भस्म हो गया। जब क्रोध शांत हुआ तो उन्हें खुद पर बड़ा पछतावा हुआ। वे भिक्षा मांगने के लिए पास ही के एक गांव की ओर चल दिए। गांव में एक घर के आगे भिक्षा के लिए खड़े-खड़े उन्हें काफी देर हो गई तो उस घर की गृहिणी बाहर निकलकर आई। तपस्वी कौशिक क्रोध में नजर आए तो गृहिणी ने कहा- आपका क्रोध पति की सेवा में रत सती स्त्री का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। महात्मा जी, आप धर्म का मर्म नहीं जानते, इसलिए यही ठीक रहेगा कि आप मिथिला के धर्मव्याघ का उपदेश सुन लें। उस गृहिणी की बात सुनकर तपस्वी कौशिक मिथिला चल दिए। वहां पहुंचने पर जब उन्होंने धर्मव्याघ को देखा तो वह चौंक गए। धर्मव्याघ तो वास्तव में एक कसाई थे, जो दुकान पर बैठे मांस बेच रहे थे। तपस्वी कौशिक ने बताया कि एक स्त्री ने मुझे आपके पास भेजा है। धर्मव्याघ खुश हो गए और तपस्वी को अपने घर के भीतर ले गए। कमरे में पहुंचकर धर्मव्याघ, तपस्वी कौशिक से बोले-वस्तुत: धर्म की कोई एक परिभाषा नहीं की जा सकती। कई स्थानों पर परस्पर विरोधाभासी विचार देखकर बुद्धि भ्रमित हो जाती है कि कौन से कर्म करने योग्य हैं और कौन से कर्म छोड़नेवाले हैं। लेकिन यह सत्य है कि अपने परिजनों की सेवा सर्वोपरि है। यही धर्म का मर्म है।

५७३) दूसरे का बुरा क्यों सोचें - एक गांव में रहीम नाम का एक किसान रहता था। वह बड़ा सरल, मिलनसार और मेहनती था। गांव के सभी लोग उसे पसंद करते थे क्योंकि वह लोगों की मदद करने को हरदम तैयार रहता था। अपनी मेहनत से उगाई फसल बेचकर वह अच्छी-खासी कमाई कर लेता था। उसी गांव में दूसरा किसान रफीक भी रहता था। रफीक और रहीम के खेत पास-पास ही थे। यह बात रफीक को बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी कि सभी गांव वाले रहीम को अच्छा मानते थे। वह रहीम से नफरत करता था। रहीम तो हमेशा अपने खेतों पर काम करता रहता था, लेकिन रफीक इधर-उधर घूमने में ही समय निकाल देता। वह हमेशा ऐसे मौके की तलाश में रहता था जिससे वह रहीम को नुकसान पहुंचा सके। एक साल रहीम के खेत में बहुत अच्छी फसल पैदा हुई। यह देखकर रफीक को बड़ी जलन हुई। फसल कटने से कुछ दिन पहले एक दिन मौका पाकर उसने रहीम के खेत में आग लगा दी। आग फैलने लगी तो रफीक का खेत

भी जलने लगा। गांववालों को पता चला कि रहीम के खेत में आग लगी है तो वे जी-जान से आग बुझाने में जुट गए। रहीम की आधी फसल जलने से बच गई, लेकिन रफीक के खेत की ओर चलनेवाली तेज हवा और आग ने उसकी पूरी फसल ही चौपट कर डाली। लोग चाहकर भी रफीक की मदद नहीं कर पाए। यह उसकी लगाई हुई आग का परिणाम था जो उसे ही भुगतना पड़ा। वह अपना सर पकड़ कर बैठ गया। अब उसकी समझ में आ गया था कि दूसरों के लिए गड्ढा खोदने वाला पहले खुद उसमें गिरता है।

५७४) छोटे भाई की सीख - एक बार गोपाल राव अपने बड़े भाई गोविंद राव के साथ कबड्डी खेल रहे थे। गोविंद राव विरोधी टीम में थे। गोविंद राव कबड्डी खेलते हुए गोपाल राव के खेमे की तरफ आए और उन्होंने गोपाल राव को इशारा कर के कहा कि वे उन्हें न पकड़े और नंबर लेने दें, परंतु गोपाल राव को यह बात ठीक नहीं लगी। उन्होंने खेल को पूरी न्याय भावना के साथ खेलना उचित समझा और अपने बड़े भाई गोविंद राव को पकड़ने के लिए पूरी ताकत लगा दी। आखिरकार उन्होंने उसे पकड़ ही लिया। इस तरह गोविंद राव आउट हो गए।

यह बात गोविंद राव को अच्छी नहीं लगी और उन्होंने घर लौटने पर गोपाल राव से कहा, सुन भाई गोपाल, जब मैंने तुझे मना किया था कि मुझे मत पकड़ना, तब भी तूने मुझे पकड़ ही लिया। तू मेरा कैसा भाई है रे, जो अपने बड़े भाई की इतनी सी बात भी न मान सका। गोविंद राव की बात सुनकर गोपाल राव अपने भाई के आगे आकर बोले, भैया, आपके प्रति मेरे मन में पूरी श्रद्धा है। आप जो भी कहेंगे, वह मैं अवश्य करके दिखाऊंगा, चाहे इसके लिए मुझे अपनी जान की बाजी ही क्यों न लगानी पड़ जाए? किंतु मैं बेईमानी नहीं कर सकता। खेल भी हमें पूरी ईमानदारी व निष्ठा से खेलना चाहिए क्योंकि खेल-खेल में अपनायी गई भावना ही आगे हमारे विचारों व भावों को पुष्ट करती है। मैं नहीं चाहता कि बड़े होने पर मेरे अंदर झूठ बोलने या गलत कार्य करने की आदत पड़ जाए। अपने से पांच साल छोटे भाई की बात सुनकर गोविंद राव ने उसी समय अपने को सुधारने का प्रण कर लिया। वे भी नियमों का मन से पालन करने लगे।

५७५) न्याय की मिसाल - उन दिनों अब्राहम लिंकन अमेरिका के राष्ट्रपति थे। आजीवन कारावास की सजा भुगत रहे एक व्यक्ति ने जेल में दस साल शांति और प्रेम से बिताने के बाद शेष सजा माफ किए जाने का प्रार्थना-पत्र राष्ट्रपति लिंकन के पास भेजा। प्रार्थना पत्र के साथ उन दिनों किसी विशिष्ट व्यक्ति या कैदी के किसी जिम्मेदार संबंधी का संस्तुति पत्र नत्थी किया जाना आवश्यक होता था। ऐसा न करने पर कैदी की माफी की अपील पर विचार ही नहीं होता था। कैदी ने प्रार्थना-पत्र में अपनी योग्यता, प्रतिभा व कार्य का विवरण तो भेजा, लेकिन कोई संस्तुति पत्र वह नत्थी न कर पाया। उसे पढ़कर लिंकन बेहद प्रभावित हुए और उन्होंने कैदी की सजा माफ किए जाने पर गंभीरता से विचार किया। लेकिन उनके कानूनी सलाहकार ने कहा, सर, इस कैदी के प्रार्थना-पत्र के साथ किसी विशिष्ट व्यक्ति या संबंधी का संस्तुति पत्र तो संलग्न ही नहीं है। नियमों के अनुसार इसकी सजा माफ किए जाने पर विचार नहीं किया जा सकता। यह सुन लिंकन ने कैदी की सच्चाई के बारे में पता लगाया। मालूम हुआ कि वह कैदी वास्तव में सुधर गया था और जिम्मेदार नागरिक बनने की कोशिश में था। अधिकारियों के अलावा साथी कैदियों ने भी पुष्टि की। यह जानकर लिंकन ने कानूनी सलाहकार से कहा, भले ही कोई सिफारिशी नहीं है, लेकिन वह वाकई उस काबिल है कि शेष सजा माफ कर उसे सामान्य जीवन

बिताने का मौका मिले। मैं उसका संस्तुति पत्र लिखता हूं। उन्होंने उसका प्रार्थना पत्र स्वीकार कर लिया। कैदी को पता चला तो वह न्याय की इस मिसाल के प्रति श्रद्धा से भर उठा।

५७६) झगड़े की जड़ - मुंबई में दो भाई अपने पिता के साथ रहते थे। एक दिन पिता का निधन हो गया। भाइयों ने आपस में बंटवारा किया। करोड़ों की संपत्ति दोनों के हिस्से में आई। दोनों के अलग अलग मकान थे। एक भाई के हिस्से में सुपारी का पेड़ लगा था। दूसरे भाई के बंगले में उसकी शाखाएं झुकी हुई थीं। वह पेड़ झगड़े का कारण बन गया। दूसरे भाई ने कहा, उसके फल मेरे घर की सीमा में हैं, इसलिए मैं लूंगा। इस बात को लेकर तनातनी बढ़ गई। मामला कोर्ट में जा पहुंचा। जज अनुभवी था। उसने कहा, मैं स्वयं सारी स्थिति को देखूंगा, उसके बाद ही फैसला सुनाऊंगा। उसने वहां जाकर निरीक्षण किया और कुछ मजदूरों को बुलाकर सुपारी का पेड़ कटवाकर उसे समुद्र में फिंकवा दिया। इस पर दोनों भाई बोले, जज साहब, यह आपने क्या किया? जज बोला, मैंने झगड़े की जड़ को ही मिटा दिया है। जब हम इस घटना के बारे में सोचते हैं, तब लगता है कि इतनी-सी बात के लिए झगड़ा क्यों होता है। आकर्षण और राग का धागा इसका कारण बनता है। पेड़ अलग था, मालिक अलग था, पर पेड़ में अभिन्नता का इतना आरोपण कर दिया कि पेड़ को अलग मानना संभव नहीं रह गया। दोनों भाई समझ गए कि पेड़ को अपने आप में समाहित किया और संघर्ष हो गया। बात कोई छोटी या बड़ी नहीं होती। जिस बात को आदमी अपने में आरोपित कर लेता है, जिसके साथ तादात्म्य और अभेद स्थापित कर लेता है, उसके लिए संघर्ष का बीज बो देता है। यदि मनुष्य अपने में थोड़ी संत प्रवृत्ति ले और राग से खुद को बचाए तो उसका भला हो सकता है।

५७७) पिता की उलझन - एक बुजुर्ग पिता की दो बेटियां थीं। दोनों की शादी हो चुकी थी। उनमें से एक का विवाह एक कुम्हार से हुआ और दूसरी का एक किसान के साथ। कई दिनों से वह अपनी बेटियों से नहीं मिला था। सो, उसने मिलने का कार्यक्रम बनाया और पहुंच गया उनसे मिलने। पहली बेटी से हालचाल पूछा तो उसने कहा कि इस बार हमने बहुत परिश्रम किया है और बहुत सामान बनाया है। बस यदि वर्षा न आए तो हमारा कारोबार खूब चलेगा। बेटी ने पिता से आग्रह किया कि वो भी प्रार्थना करे कि बारिश न हो। फिर पिता दूसरी बेटी से मिला जिसका पति किसान था। उससे हालचाल पूछा तो उसने कहा कि इस बार बहुत परिश्रम किया है और बहुत फसल उगाई है, परंतु वर्षा नहीं हुई है। यदि अच्छी बरसात हो जाए तो खूब फसल होगी। उसने पिता से आग्रह किया कि वह प्रार्थना करे खूब बारिश होने की। एक बेटी का आग्रह था कि पिता वर्षा न होने की प्रार्थना करे और दूसरी का इसके विपरीत कि जम कर बारिश हो। पिता बड़ी उलझन में पड़ गया। समाधान क्या हो? पिता ने बहुत सोचा और दोबारा से अपनी दोनों पुत्रियों से मिला। उसने बड़ी बेटी को समझाया कि यदि इस बार वर्षा नहीं हुई तो तुम अपने लाभ का आधा हिस्सा अपनी छोटी बहन को देना। फिर छोटी बेटी के पास गए और उनको मिलकर समझाया कि यदि इस बार खूब वर्षा हुई तो तुम अपने लाभ का आधा हिस्सा अपनी बड़ी बहन को देना। दोनों बेटियों को अपनी समानता का एहसास हुआ। तभी दोनों पुत्रियों ने कहा- पिताजी, जो कुदरत करेगी, वही ठीक होगा।

५७८) जब ऋषि ने राजकुमार को कोड़े मारे - काफी समय पहले की बात है। एक राजा थे। नाम था प्रताप सिंह। बड़े ही दयावान, न्यायप्रिय और बुद्धिमान। उनके एक इकलौता पुत्र था। राजा चाहते थे कि उनके बाद उनका पुत्र राज्य

का उत्तराधिकारी बने। इसलिए वे राजकुमार को हर तरह से योग्य और होशियार बनाना चाहते थे। राजा ने बचपन में ही राजकुमार को एक ऋषि के आश्रम में पढ़ने भेज दिया। कुछ वर्षों बाद जब राजकुमार सभी विद्याओं में पारंगत हो गया तो उसे लेकर ऋषि राजा के पास पहुंचे। भरे दरबार में राजा ने ऋषि से पूछा- ऋषिवर, क्या राजकुमार सब शिक्षा में निपुण और होशियार हो गया? हां राजन। राजकुमार सब तरह से निपुण एवं योग्य हो गया, किन्तु कहते कहते ऋषि रुक गये।

आप क्यों रुक गये ऋषिवर। राजा ने आश्चर्य से पूछा। ऋषि ने कहा- राजकुमार हर तरह से योग्य है पर उसकी एक परीक्षा बाकी है जो राज दरबार में ही ली जायेगी। यदि वह उसमें सफल नहीं हुआ तो समझो वह राजा बनने के योग्य नहीं है।

परीक्षा, कैसी परीक्षा। मैं कुछ समझा नहीं ऋषिवर। साफ-साफ कहें। पहेलियां नहीं बुझाएं। राजा ने व्यग्रता से कहा।

हाँ राजन् राजकुमार की परीक्षा। यह इसकी अन्तिम परीक्षा होगी। किन्तु परीक्षा की शर्त यह है कि परीक्षा लेते वक्त आप व दरबार का कोई भी व्यक्ति किसी तरह का हस्तक्षेप न करे। यदि आपको यह शर्त मंजूर हो और आप आज्ञा दें तो राजकुमार की परीक्षा ली जाय। राजा से स्वीकृति लेने के बाद राजकुमार के कपड़े उतरवा कर ऋषि उस पर कोड़े बरसाने लगे। सटाक... सटाक... एक नहीं पूरे पन्द्रह कोड़े राजकुमार को लगाये।

राजकुमार ने न तो उफ किया और न ही कोड़े लगाने का विरोध। कोड़े लगाने के बाद राजा ने ऋषि से पूछा- ऋषिवर यह कैसी परीक्षा ली आपने? आपने तो राजकुमार को कड़ी सजा दे दी। राजकुमार ने कोई अपराध किया था?

ऋषिवर ने कहा- नहीं राजन। राजकुमार ने कोई अपराध नहीं किया। यह तो उसकी सहनशीलता की परीक्षा थी। राजा बनने के बाद वह कभी किसी पर क्रोध न करे और न ही किसी बेगुनाह निरपराध व्यक्ति पर कोड़े बरसाये। जब भी राजकुमार किसी को कोड़े लगाने की सजा देंगे, तब उस वक्त उन्हें इन्हीं कोड़ों की याद रहेगी। तब वे भूलकर भी किसी को कोड़ों की सजा न देंगे। मेरी परीक्षा का यही उद्देश्य था, जिसमें राजकुमार खरे उतरे। अब वे हर तरह से राजा बनने के योग्य है। यह कहकर ऋषि चुप हो गये। राजा ने संतुष्ट होकर ऋषि का खूब आदर-सत्कार किया और आश्रम के लिए विदा किया।

५७९) अहिंसा का पथ - भारत की स्वतंत्रता के लिए निर्णायक लड़ाई महात्मा गांधी के नेतृत्व में लड़ी गई। उनकी अगुआई में स्वतंत्रा सेनानियों ने अद्भुत साहस का परिचय देते हुए देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने का हरसंभव प्रयास किया। अंग्रेज भारतीयों को मानसिक व शारीरिक प्रताड़नाएं देकर तोड़ने में लगे हुए रहते थे, किंतु भारतीय एकजुट रहे। इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री चर्चिल हमेशा से भारत की स्वतंत्रता के खिलाफ थे। इसलिए मौका मिलने पर वह गांधी-नेहरू की बखिया उधेड़ने में कोई कसर नहीं रखते थे। किंतु १५ अगस्त सन् १९४७ को भारतीयों की मेहनत व कुर्बानी रंग लाई और देश स्वतंत्र हो गया। पंडित जवाहर लाल नेहरू स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री बने। उन्हें १९५० में इंग्लैंड जाना पड़ा। वहां उनकी मुलाकात प्रधानमंत्री चर्चिल से हुई। चर्चिल ने पंडित नेहरू से मिलने पर कहा, अंग्रेज सरकार ने सदैव आपकी आलोचना की। कई प्रकार के कष्ट दिए। फिर भी आप हमसे प्यार करते हैं, घृणा नहीं। क्यों? प्रश्न सुनकर पंडित नेहरू विनम्रतापूर्वक बोले, हमारे मार्गदर्शक महात्मा गांधी थे। बापू ही थे जिन्होंने हमें निडरता व अहिंसा का पाठ पढ़ाया। निडरता से अहिंसा के पथ पर चलकर मंजिल पाना कठिन नहीं है। हम आपसे घृणा नहीं करते क्योंकि हम अपने उद्देश्य पर चलते रहे और विजयरथ पर सवार हुए। आज हमारा देश स्वतंत्र है और एक स्वतंत्र देश के पहले

प्रधानमंत्री की हैसियत से मैं आपसे मिलने आया हूं। नेहरू जी का जवाब सुनकर चर्चिल खामोश ही रह गए।

५८०) गुरु की खोज - एक युवक के मन में योग-साधना के प्रति जिज्ञासा हुई। वह इसके लिए गुरु की खोज करने लगा। एक स्थान पर देखा कि एक फकीर पेड़ के नीचे बैठा ईश्वर-स्मरण कर रहा है। उसने पास पहुंचकर निवेदन किया, बाबा आप योग-साधना के जानकार हैं। मुझे कुछ सूत्र बताइए ताकि मैं भी अपनी छिपी हुई शक्तियों को जान सकूं। फकीर ने युवक की ओर देखा और कहा- योग साधना में दीक्षा देने का अधिकार केवल सद्गुरु को है। वही तुम्हारी कामनाओं को तृप्त कर सकते हैं। मैं तो बस तुम्हें उनकी पहचान बता सकता हूं। युवक बोला- आप पहचान ही बता दें। फकीर ने कहा- तुम्हारे सदगुरु प्रकाश पुरुष हैं। बस तुम उन्हें ढूंढते रहो। एक दिन तुम उन्हें ऐसे ही किसी पेड़ के नीचे बैठा हुआ पाओगे। उनकी देह से प्रकाश निकल रहा होगा। उनकी आंखों में तुम्हारे लिए अपार वात्सल्य होगा। बस तुम उन्हें ढूंढो। युवक सदगुरु की तलाश में चल पड़ा। दिन-मास-वर्ष बीत गए। आखिर वह इसी खोज में भटकते हुए एक पेड़ के पास पहुंचा। वहां दिव्य प्रकाश फैला था। एक वृद्ध फकीर प्रकाश-पुरुष के रूप में उसके सम्मुख थे। युवक फकीर के चरणों में गिर पड़ा। फकीर ने उसे बड़े प्यार से अपनाया। युवक ने फकीर को गौर से देखा तो पाया यह वही फकीर थे, जिन्होंने सदगुरु से मिलने का मार्ग सुझाया था। युवक ने पूछा- बाबा, आपने मुझे इतना भटकाया क्यों? पहले ही क्यों नहीं अपना लिया? फकीर ने कहा- बेटा, मैं तो वही हूं। हां, तुम अब बदल गए हो। पहले तो तुममें मात्र कौतुक था। अब तुममें शिष्यत्व भी जाग उठा है। तभी तो तुम मुझे पहचानने में समर्थ हो गए।

५८१) निष्काम कर्म की सीख - गांधीजी उन दिनों सेवाग्राम आश्रम में रह रहे थे। दूर-दूर से लोग उनसे मिलने आते और अपने मन की बात उनके सामने रखकर उनसे उसका समाधान ले जाते। एक बार गांधी जी का एक परिचित धनी व्यक्ति उनसे मिलने पहुंचा। उसने दुखी मन से कहा, महात्मा जी, आज समय बेईमानों का ही रह गया है। आप तो जानते ही हैं कि मैंने अमुक नगर में कितने प्रयत्नों के बाद लाखों रुपये खर्च कर धर्मशाला का निर्माण कराया था। अब कुछ गुटबाजों ने मुझे प्रबंध समिति से ही हटा दिया है। आप देखिए, इन दिनों ऐसे लोग समिति में आ गए हैं जिनका धन की दृष्टि से तो योगदान नगण्य ही है। मुझे तो समझ ही नहीं आ रहा है कि मैं करूं तो क्या करूं? इस संबंध में क्या न्यायालय में मामला दर्ज कराना उचित नहीं होगा? उसकी बात सुनकर गांधी जी ने कहा, तुमने धर्मशाला धर्मार्थ बनवाई थी या उसे व्यक्तिगत संपत्ति बनाए रखने के लोभ में ऐसा किया था? देखो, असली धार्मिक कर्म तो वह होता है, जो बिना लोभ-लाभ की इच्छा के किया गया हो। लेकिन मुझे लगता है कि तुम अभी तक नाम और प्रसिद्धि का लालच नहीं त्याग पाए हो। इसलिए तुम धर्मशाला में प्रबंध समिति के पद से हटाए जाने से दुखी हो। मेरी बात मानो तो अब तुम धर्मशाला की प्रबंध समिति में पद और नाम की प्रसिद्धि के मोह को त्याग दो। इससे तुम्हारे मन को अपार शांति प्राप्त हो सकेगी। मनुष्य को जीवन में सदा निष्काम कर्म की ओर बढ़ना चाहिए। गांधीजी की बात सुनकर उस व्यक्ति ने संकल्प लिया कि वह भविष्य में किसी भी पद अथवा नाम के लालच में नहीं पड़ेगा।

५८२) लोहिया जी का जवाब - सन १९४७ की बात है। हर रोज की तरह गांधी जी एक शाम प्रार्थना करने के बाद घूमने जा रहे थे। इस दौरान उनके कई शिष्य भी साथ थे, लेकिन उन्होंने राममनोहर लोहिया के कंधे पर हाथ रखा और

बाकी लोगों से थोड़ा हटकर टहलने निकल गए। जल्द ही बातों का सिलसिला शुरू हो गया। गांधीजी एक के बाद एक सवाल लोहिया जी से करते चले गए। जैसे - तुम सिगरेट पीते हो? तुम बहुत चाय व कॉफी भी पीते हो? इस तरह गांधी जी ने इस बातचीत को फिर समाजवाद से जोड़ दिया और बोले, एक समाजवादी की हैसियत से तुम्हें एकरूप होना चाहिए। जो सिगरेट तुम्हें भारत में जनता से एकरूप और प्रतिनिधि नहीं बनने देगी, फिर तुम इसका समर्थन कैसे करोगे? गांधीजी प्रश्न किए जा रहे थे और लोहिया संकोचवश बस सुनते जा रहे थे। गांधीजी का हाथ लोहिया जी के कंधे पर था इसलिए इन सवालों से बच भी नहीं सकते थे। लोहिया गांधी जी की बातों को ध्यान से सुनते रहे। काफी समय तक लगातार बोलने के बाद जब लोहिया ने किसी सवाल का जवाब गांधीजी को नहीं दिया तो गांधी जी बोले, क्या तुम कुछ नहीं करोगे? लोहिया चुप रहे, कुछ नहीं बोले। इस गंभीरता से सुनते रहे। अपने किसी भी प्रश्न का जवाब न पाकर गांधीजी ने लोहिया से कहा, क्या तुम मुझे बोलने से रोकना चाहते हो? इस प्रश्न पर लोहिया जी ने अपना मौन तोड़ा और कहा, ऐसी बात नहीं है किंतु मैं आज आपको कोई जवाब नहीं दे सकता। लेकिन जल्दी ही दूंगा। लगभग दो महीने बाद लोहिया जी ने सिगरेट पीना छोड़ दिया। खबर गांधीजी तक पहुंची तो वे मुस्करा दिए।

५८३) धर्म ऋण की मान्यता - एक बार सरदार वल्लभ भाई पटेल कांग्रेस के लिए फंड एकत्रित करने रंगून गए। वहां उन्होंने अनेक व्यक्तियों से सहयोग मांगा। उन्होंने देखा कि जब भी वे चीनियों से चंदा मांगते थे तो वे सूची में अपना आंकड़ा नहीं चढ़ाते थे, बल्कि चुपके से अपने घरों के अंदर से श्रद्धानुसार चंदा लेकर जमा करा देते थे। अधिकतर चीनियों को ऐसा ही करते देख उन्होंने एक चीनी से कहा, भैया, आप लोग चंदा तो दे देते हो, किंतु उसे सूची में नहीं चढ़वाते। क्या आपके यहां ऐसा कोई रिवाज है? बिना सूची में चढ़ाए यह तो पता ही नहीं चलेगा कि आपने कितना चंदा दिया?

यह प्रश्न सुनकर वह चीनी मुस्कराकर बोला, नहीं, हमारे यहां ऐसा कोई रिवाज नहीं है, पर एक मान्यता अवश्य है। यह सुनकर सरदार पटेल ने उस मान्यता के बारे में सुनने की इच्छा जताई। वह बोला, हमारे यहां दान की रकम को धर्म ऋण कहते हैं। सूची में दान की रकम लिख दें और संयोगवश हमारे पास उतनी रकम न हो तो उसे चुकाने में जितने दिनों की देर होती है, उतने दिन का ऋण हम पर चढ़ जाता है। धर्म ऋण का पाप सबसे बुरा माना जाता है। दूसरे, हम यह समझते हैं कि अच्छे कार्य के लिए गुप्त दान से हमारे ऋण उतरते हैं। यदि हम सूची में चढ़ाकर या दूसरे को बताकर दान दें तो दान का महत्व घट जाता है, इसलिए चंदे या फंड के लिए जो रकम देनी हो उसे हम तुरंत देकर ऋणमुक्त होने की कोशिश करते हैं। धर्म ऋण का महत्व व उपयोगिता तभी श्रेष्ठ होती है जब वह पूरी गरिमा, श्रद्धा और सच्चे मन से दी जाए। यह सुनकर सरदार पटेल बेहद खुश हुए।

५८४) शक्ति का परिचय - आंधी को अपनी शक्ति पर बड़ा घमंड था। एक दिन चलते-चलते उसने अपनी छोटी बहन मंदवायु से कहा- तुम भी क्या धीरे-धीरे बहती रहती हो। तुम्हारे चलने से एक पत्ता तक नहीं हिलता, जबकि मेरे प्रचंड वेग के आगे बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी हो जाते हैं। जब मैं उठती हूं, तो दूर-दूर तक लोग मेरे आने की खबर चारों ओर फैला देते है। मुझे देखकर लोग खिड़की-दरवाजे बंद कर अपने घरों में दुबक जाते है। पशु-पक्षी अपनी जान बचाकर इधर-उधर भागते फिरते हैं। मेरे प्रभाव से बस्तियां धूल में मिल जाती है। क्या तुम नहीं चाहती कि तुम्हारे भीतर भी मेरे

समान शक्ति आ जाए? आंधी की ये बातें सुनकर मंदवायु हौले से मुस्कुराई, मगर उसने कोई जवाब नहीं दिया। वह अपनी यात्रा पर बढ़ चली। उसे आते देख नदियां, जंगल, खेत सभी मुस्कराने लगे। बगीचों में फूल खिल उठे। रंग-बिरंगे फूलों के गलीचे बिछ गए। वातावरण महक उठा। पक्षी कुंजों में आकर विहार करने लगे। ऐसा लग रहा था मानो पूरी प्रकृति अपनी बाहें पसारकर उस मंदवायु का स्वागत करने को आतुर हो। अपने प्रभाव द्वारा मंदवायु ने अपनी शक्ति का परिचय आंधी को आसानी से करा दिया। यह देख आंधी बोली- मैं ही गलत थी बहन। भले ही मेरा वेग और पराक्रम तुमसे अधिक हो पर सकारात्मक प्रभाव तो तुम्हारा ही अधिक है। तुम्हारी आमद से चारों ओर इतनी खुशियां फैल जाती हैं। सज्जन व्यक्तियों का जीवनक्रम भी मंदवायु के समान चारों ओर सुरभि सौंदर्य और प्रसन्नता फैलाने वाला होता है। वे पराक्रम में नहीं, अपने सौजन्य में महानता देखते है। यही कारण है कि वे हर जगह सम्मान पाते है।

५८५) पात्र की पहचान - संत ज्ञानेश्वर हर रोज मिलने आए लोगों को उपदेश देते और कोई न कोई काम की बात अवश्य बताते। संत ज्ञानेश्वर ने एक दिन कहा, ज्ञान, विवेक, शक्ति और भक्ति परमात्मा सत्पात्रों को ही देता है। यह सुनकर एक महिला से न रहा गया। वह बोली, तो इसमें भगवान की क्या विशेषता रही? उसे तो सबको समान अनुदान देना चाहिए। संत ज्ञानेश्वर उस समय शांत रह गए। उस दिन की वार्ता समाप्त हो गई। दूसरे दिन प्रात:काल संत ने इलाके के एक मूर्ख व्यक्ति को बुलाकर कहा कि उस स्त्री से जाकर उसके आभूषण मांग लाओ। वह व्यक्ति गया और उसने स्त्री से उसके आभूषण मांगे। स्त्री ने झिड़ककर उसे भगा दिया। इसके थोड़ी देर बाद संत ज्ञानेश्वर स्वयं उस स्त्री के पास जा पहुंचे। और बोले, आप एक दिन के लिए अपने आभूषण दे दीजिए। आवश्यक काम पूरा होते ही आपके आभूषण लौटा देंगे। स्त्री ने उनसे बगैर कोई पूछताछ किए अपना संदूक खोला और सहर्ष अपने सारे के सारे आभूषण ज्ञानेश्वर को सौंप दिए। आभूषण हाथ में लेने के बाद संत ज्ञानेश्वर ने पूछा, इससे पहले जो एक व्यक्ति आया था, आपने उसके मांगने पर आभूषण क्यों नहीं दिए? स्त्री ने उत्तर दिया, उस मूर्ख को भला मैं कैसे अपने मूल्यवान आभूषण दे देती? स्त्री की बात सुनकर संत ज्ञानेश्वर मुस्कराए, बहन, जब आप अपने सामान्य से आभूषण बिना सोचे-विचारे किसी कुपात्र को नहीं सौंप सकतीं, तो फिर सोचिए परमात्मा अपने दिव्य अनुदान कुपात्रों को कैसे सौंप सकता है? वह भी परीक्षा करता है कि जिसे अनुदान दिया जा रहा है उसमें पात्रता है भी अथवा नहीं।

५८६) महत्वाकांक्षा की तलवार - एक महात्मा थे। उनकी तपस्या का यह प्रभाव हुआ कि हिंसक हिंसा को भूल गए। शेर और बकरी, सर्प और मेंढ़क अपने जन्मजात वैर को भूल गए। उनकी तपस्या से इंद्र का आसन डोलने लगा। इंद्र को लगने लगा कि अब उसका पद बना नहीं रह सकेगा। वह एक बटोही के रूप में महात्मा के आश्रम में आए। वहां के वातावरण को देखकर वह और अधिक चिंतित हो उठे। महात्मा की तपस्या की यही स्थिति रही तो निश्चय ही उनका आसान अधिक दिन टिक नहीं सकेगा। अंतत: उन्होंने एक चाल चली। महात्मा के पास आकर वह बोले, महाराज, मैं जरा शहर तक जा रहा हूं। अपनी तलवार आपके पास छोड़े जा रहा हूं। यदि आप इसका ध्यान रख सकें तो बड़ी कृपा होगी। महात्मा ने सजह रूप से इसे स्वीकार कर लिया। इंद्र चले गए। महात्माजी ने घंटे दो घंटे तलवार का ध्यान रखा, पर इंद्र नहीं लौटे। फिर तो दिन पर दिन और महीनों पर महीने बीतते चले गए। महात्मा जी जहां भी जाते, तलवार को साथ

ले जाते। आश्रम में भी आते तो उसका बराबर ध्यान रखते। उनकी साधना का क्रम भंग हो गया। जो मन भगवान में लीन रहता था, वह तलवार में लीन रहने लगा। इंद्र का आसन डोलना बंद हो गया। उधर आश्रम हाल-बेहाल हो गया। तपस्या के प्रभाव से जो हिंसक जीव हिंसा और जन्मजात वैर को भूल बैठे थे, वे फिर एक-दूसरे को अपना दुश्मन मानने लगे। इंद्र की कूटनीति काम कर गई। महात्वाकांक्षा की तलवार व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य से विमुख कर महत्व प्राप्ति के लिए उचित-अनुचित हर कार्य में प्रवृत्त कर देती है।

५८७) कृतज्ञता का भाव - उन दिनों भारत विभाजन की चर्चा जोरों पर थी। क्वेटा के एक होटल का मालिक मुसलमान था। इसी होटल में चोइथराम नाम का एक सिंधी वर्षों से नौकरी करता था। एक दिन दंगाइयों ने होटल मालिक और उसकी पत्नी को चेतावनी दी, कल तक चोइथराम की हत्या कर दी जानी चाहिए। चोइथराम होटल मालिक के परिवार के लिए अपनी जान भी न्यौछावर करने को तैयार रहता था। होटल मालिक के बच्चे भी चोइथराम को चाचा जान कहते नहीं थकते थे। होटल मालिक ने जब यह बात पत्नी को बताई वह चिंतित हो उठी कि कुछ देर बाद चोइथराम की हत्या कर दी जाएगी। कुछ सोचकर उसने कहा, चोइथराम ने वर्षों हमारी सेवा की है, हमारे बच्चों को अपने बच्चों की तरह प्यार किया है। क्या उसकी हत्या से परवरदिगार नाराज नहीं होंगे। होटल मालिक असमंजस में पड़ गया और बोला, यदि मैंने इसकी हत्या कर कसम पूरी नहीं की तो उन्मादी हमें भी मार डालेंगे। इससे बचें कैसे? पत्नी बोली, तुम बेहोशी का स्वांग कर लेट जाओ। मैं चोइथराम को गांव से बाहर कर आऊंगी। फिर हम शोर मचा देंगे कि चोइथराम चाय में बेहोशी की दवा पिला चकमा देकर भाग गया। होटल के मालिक को यह सही लगा। ऐसा ही किया गया। चोइथराम को वहां से सुरक्षित निकाल दिया गया। दंगाइयों से योजना के मुताबिक यही कहा गया कि वह उन्हें बेहोश कर चकमा देकर भाग निकला। चोइथराम सकुशल अमृतसर जा पहुंचा। वहां वह होटल मालिक व मालकिन के प्रति कृतज्ञता का भाव मन में लिए धर्म व जाति-पांति के भेदभाव बिना नि:स्वार्थ सेवा में लगा रहा।

५८८) कागज पर सिक्का - एक नदी के किनारे एक महात्मा रहते थे। उनके पास दूर-दूर से लोग अपनी समस्याओं का समाधान पाने आते थे। एक बार एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला, महाराज, मैं लंबे समय से ईश्वर की भक्ति कर रहा हूं, फिर भी मुझे ईश्वर के दर्शन नहीं होते। कृपया मुझे उनके दर्शन कराइए। महात्मा बोले, तुम्हें इस संसार में कौन सी चीजें सबसे अधिक प्रिय है? व्यक्ति बोला, मेरे पास एक सोने का सिक्का ही प्रिय वस्तु है। महात्मा ने एक कागज पर कुछ लिखकर दिया और उससे पढ़ने को कहा। कागज देखकर व्यक्ति बोला, महाराज, इस पर तो ईश्वर लिखा है। महात्मा ने कहा, अब अपना सोने का सिक्का इस कागज के ऊपर लिखे ईश्वर पर रख दो। व्यक्ति ने ऐसा ही किया। फिर महात्मा बोले, अब तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है? वह बोला, इस समय तो मुझे इस कागज पर केवल सोने का सिक्का रखा दिखाई दे रहा है। महात्मा ने कहा, ईश्वर का भी यही हाल है। वह हमारे अंदर ही है, लेकिन मोह-माया के कारण हम उसके दर्शन नहीं कर पाते। जब हम उसे देखने की कोशिश करते हैं तो मोहमाया आगे आ जाती है। धन-संपत्ति, घर-परिवार के सामने ईश्वर को देखने का समय ही नहीं होता। यदि समय होता भी है तो तो उस समय जब विपदा होती है। ऐसे में ईश्वर के दर्शन कैसे होंगे? महात्मा की बातें सुनकर व्यक्ति समझ गया कि उसे मोह-माया से निकलना है।

५८९) गुरु की परख - संत दादू दयाल अपनी सादगी और सहनशीलता के लिए सर्वत्र विख्यात थे। एक बार एक थानेदार घोड़े पर सवार होकर उनके दर्शन को चल पड़ा। संत दादू फटे पुराने वस्त्र पहने एक पेड़ की छाया में बैठे थे। अहंकारी थानेदार के दिमाग में यह बात नहीं आई कि ऐसा साधारण आदमी संत दादू दयाल हो सकता है। उसने घोड़े पर बैठे-बैठे कड़कदार आवाज में पूछा, अरे ओ बुड्ढे। क्या तू जानता है कि संत दादू दयाल कहां रहते हैं? वह शांत भाव से बैठे रहे। थानेदार ने दोबारा पूछा, बहरा है क्या? मैं पूछ रहा हूं संत दादू दयाल कहां रहते हैं? इस बार भी संत दादू ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। वे मंद-मंद मुस्कुराते हुए अपना काम करते रहे। थानेदार को लगा कि वह जानबूझ कर उसकी बात अनसुनी कर रहे हैं। इसे अपना अपमान समझ वह उन्हें धमकियां देने लगा। जब इस पर भी संत दादू कुछ नहीं बोले, तो तंग आकर गालियां बकता हुआ थानेदार आगे बढ़ गया। आगे जाकर थानेदार ने एक आदमी से पूछा, क्या तुम जानते हो कि संत दादू दयाल कहां रहते है? उस आदमी ने उसे वापस पीछे चलने को कहा और उसे संत दादू के पास ले आया। थानेदार यह जानकर सन्न रह गया कि संत दादू दयाल वही हैं, जिन्हें उसने कुछ देर पहले गालियां दी थीं। वह पछताते हुए बोला, महात्मन। मुझे माफ कर दीजिए। मैं तो आपको अपना गुरु बनाने आया था, पर देखिए मैंने क्या किया। संत दादू दयाल मुस्कराते हुए बोले, कोई एक टके का घड़ा भी खरीदता है तो उसे ठोक-बजाकर देखता है। तुम तो गुरु को पाना चाहते थे। किसी को गुरु बनाने से पहले उसे अच्छी तरह परख लेना चाहिए कि वह कच्चा है या पक्का। तुमने भी वही किया, इसमें गलत क्या है? लज्जित थानेदार ने कसम खाई कि भविष्य में वह किसी से दुर्व्यवहार नहीं करेगा।

५९०) आफत में अवसर - नाथानिएल हौथोर्न अंग्रेजी के महान लेखक थे। पर वह शुरु से लेखक नहीं थे। पहले वह कस्टम हाउस में साधारण सी नौकरी करते थे। एक दिन अचानक उन्हें कस्टम हाउस नौकरी से निकाल दिया गया। जब वह घर पहुंचे तो पत्नी से बोले, आज मुझे नौकरी से निकाल दिया गया है। पत्नी सोफिया यह सुनकर कुछ परेशान हुई लेकिन फिर मुस्करा कर बोलीं, नाकामयाबी में धैर्य से काम करते रहना है। इतने हताश और उदास मत हो। मुझे पता है कि तुम बहुत मेहनती, प्रतिभाशाली और विलक्षण मनुष्य हो। अगर तुम्हारा एक रास्ता बंद हुआ है तो इसके साथ ही एक ऐसा रास्ता खुला है जो तुम्हें भविष्य में काफी प्रसिद्धि देगा। नाथानिएल हैरानी से बोले, नौकरी छूटना तो एक बड़ी आफत है। इसमें भला क्या अच्छा हो सकता है? तब पत्नी ने कहा, मैं जानती हूं कि तुम बहुत अच्छा लिखते हो। तुम्हारे लेखन की शैली और भाषा गजब की है। नौकरी के कारण तुम लेखन को पूरा समय नहीं दे पा रहे थे। तुम लिखो, सफलता अवश्य मिलेगी। पत्नी की बात सुनकर नाथानिएल थोड़ा सोचने लगे, फिर बोले, तुम्हारी बात तो ठीक है, लेकिन तब तक घर का खर्च कैसे चलेगा? सोफिया ने कहा, तुम इन बातों की चिंता छोड़ो और बस लिखने में जुट जाओ। तब तक घर खर्च मैं चलाऊंगी। इसके बाद नाथानिएल लेखन में जुट गए और सोफिया ने घर संभाल लिया। दिन बीतते गए और एक साल में नाथानिएल ने विक्टोरिया युग का महान उपन्यास द स्कारलेट लेटर लिखा जिसने नाथानिएल हौथोर्न को नई पहचान दी। उन्हें आज भी इसी उपन्यास से पहचाना जाता है। हुनर हम सभी में होता है। बस जरूरत है सही समय पर उस हुनर को पहचानने और तराशते हुए उससे एक सुंदर रचना करने की। यह हुनर किसी भी तरह का हो सकता है।

५९१) गरीबी में स्वाभिमान - नाव गंगा के इस पार खड़ी है। यात्रियों से लगभग भर चुकी है। रामनगर के लिए खुलने ही वाली है, बस एक-दो सवारी चाहिए। वहीं बगल में एक नवयुवक खड़ा है। नाविक उसे पहचानता है। बोलता है, आ

जाओ, खड़े क्यों हो, क्या रामनगर नहीं जाना? नवयुवक ने कहा, जाना है, लेकिन आज मैं तुम्हारी नाव से नहीं जा सकता। क्यों भैया, रोज तो इसी नाव से आते-जाते हो, आज क्या बात हो गई? आज मेरे पास उतराई देने के लिए पैसे नहीं है। तुम जाओ। अरे यह भी कोई बात हुई। आज नहीं, तो कल दे देना। नवयुवक ने सोचा, बड़ी मुश्किल से तो मां मेरी पढ़ाई का खर्च जुटाती है। कल भी यदि पैसे का प्रबंध नहीं हुआ, तो कहां से दूंगा? उसने नाविक से कहा, तुम ले जाओ नौका, मैं नहीं जाने वाला। वह अपनी किताब कॉपियां एक हाथ में ऊपर उठा लेता है और छपाक से नदी में कूद जाता है। नाविक देखता ही रह जाता है। उसके मुख से निकला, अजीब मनमौजी लड़का है। छप-छप करते नवयुवक गंगा नदी पार कर जाता है। रामनगर के तट पर अपनी किताबें रखकर कपड़े निचोड़ता है। घर पहुंचने पर मां रामदुलारी इस हालत में अपने बेटे को देख चिंतित हो उठीं। अरे, तुम्हारे कपड़े तो भीगे हैं। जल्दी उतारो। यह हुआ कैसे? नवयुवक ने सारी बात बतलाते हुए कहा, तुम्हीं बोलो मां, अपनी मजबूरी मल्लाह को क्यों बतलाता? फिर वह बेचारा तो खुद गरीब आदमी है। उसकी नाव पर बिना उतराई दिए बैठना कहां तक उचित था? यही सोचकर मैं नाव पर नहीं चढ़ा। गंगा पार करके आया हूं। मां ने पुत्र को सीने से लगाते हुए कहा, बेटा, तू जरूर एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। वह नवयुवक कोई और नहीं लाल बहादुर शास्त्री थे, जो देश के प्रधानमंत्री बने और १८ महीनों में ही राष्ट्र को प्रगति की राह दिखाई।

५९२) सादगी की जीत - करनाल के विशाल मैदान में मोहम्मद शाह की सेना नादिर शाह के हाथों बुरी तरह पराजित हो गई थी। विजयी नादिर शाह जीत का सेहरा बांध कर दिल्ली पहुंचा। वहां उसका भव्य स्वागत किया गया। इसी बीच नादिर शाह को प्यास लगी और उन्होंने पानी पीने की इच्छा जताई। मोहम्मद शाह ने पानी लाने का संकेत दिया। काफी देर हो गई, किंतु पानी नहीं आया। तभी नादिर शाह को नगाड़े और तुरही की आवाज सुनाई दी। उसे लगा कि शायद कहीं कोई उत्सव मनाया जा रहा है, जिसकी गूंज दूर तक सुनाई दे रही है। तभी उसकी नजर अनुचरों की भीड़ पर पड़ी। उसने देखा कि अनुचरों की भीड़ सोने-चांदी के थालों में सजाए, चंवर झुलाते हुए पानी की सुराही, गिलास, पानदान और पीकदान लिए चली आ रही है। नादिर शाह समझ गया कि यह सारा आडंबर केवल उसे पानी पिलाने के लिए किया जा रहा है। वह मोहम्मद शाह से बोला, अब मैं समझा कि इतनी विशाल सेना होने पर भी तुम हार क्यों गए? मोहम्मद शाह नादिरशाह की इस बात पर हैरानी से उसकी ओर देखने लगा। तभी नादिर शाह ने एक भिश्ती को अपने पास बुलाया। भिश्ती मशक में पानी ले आया। नादिर शाह ने तुरंत अपना टोप उतारा और मशक से उड़ेलकर पानी पी लिया। पानी पीने के बाद उसने मोहम्मद शाह से कहा, <u>विलासिता मनुष्य को ले डूबती है</u>। यह तुमने सिद्ध कर दिया। यदि हम भी विलासी प्रवृत्ति के होते तो कभी ईरान से हिंदुस्तान तक नहीं पहुंच सकते थे। <u>इंसान सादगी और हिम्मत के साथ अपने कार्यों को करता रहे तो वह बड़ी से बड़ी विजय प्राप्त कर सकता है</u>। नादिर शाह को एक लुटेरे शासक के तौर पर भी याद किया जाता है। अगर वह एक बड़े विजेता के रूप में नाम दर्ज करा सका तो इसके पीछे उसकी यह सादगी की अहम भूमिका थी।

५९३) देशभक्ति की परीक्षा - अमेरिका में वेदांत का प्रचार करके भारत लौटते हुए स्वामी रामतीर्थ जापान गए। वहां उनका भव्य स्वागत हुआ। उन्हें वहां एक विद्यालय में आमंत्रित किया गया। स्कूल में एक विद्यार्थी से स्वामी जी ने सप्रेम पूछा, बच्चे। तुम किस धर्म को मानते हो? बौद्ध धर्म को, उस छात्र ने सादर उत्तर दिया। स्वामी जी ने पुन: पूछा, बुद्ध के

विषय में तुम्हारे क्या विचार है? विद्यार्थी ने उत्तर दिया, बुद्ध तो भगवान हैं। इतना कहकर उसने ध्यान करके अपने देश की प्रथा के अनुसार भगवान बुद्ध को सम्मान के साथ प्रणाम किया। स्वामी जी ने उस विद्यार्थी से पुन: पूछा, अच्छा बताओ तुम कन्फ्यूशियस के बारे में क्या सोचते हो? विद्यार्थी ने बड़ी बुद्धिमानी से स्वामी जी के प्रश्न का उत्तर दिया, कन्फ्यूशियस एक महान संत हैं और उसने पूर्ववत् बुद्ध की तरह कन्फ्यूशियस का ध्यान करके उन्हें भी सादर प्रणाम किया। अंत में स्वामीजी ने सवाल किया, बच्चे सुनो। अगर किसी दूसरे देश से जापान को जीतने के लिए एक भारी सेना आए और उसके सेनापति बुद्ध या कन्फ्यूशियस हो तो उस समय तुम क्या करोगे? इतना सुनना था कि छात्र का चेहरा तमतमा उठा। स्वामी जी की बात पर वह सहसा खड़ा हो गया। उसकी भुजाएं फड़क उठीं। उसने अपनी आंखों से घूरते हुए जोश के साथ कहा, तब... तब मैं अपनी तलवार से बुद्ध का सिर काट दूंगा और कन्फ्यूशियस को पैरों से रौंद दूंगा। उस छात्र का जोशीला उत्तर सुनकर स्वामी जी गदगद हो गए। उन्होंने उस वीर विद्यार्थी को प्यार से अपनी भुजाओं में भर लिया। उनके मुंह से सहसा निकल पड़ा, शाबाश। जिस देश के बच्चे ऐसे देश भक्त हों, वह देश कभी किसी का गुलाम नहीं हो सकता और उसकी उन्नति को कोई नहीं रोक सकता। मैं तुम्हारी देशभक्ति की परीक्षा ले रहा था और तुम उस परीक्षा में अव्वल आए।

५९४) आखिर मैं ही क्यों - एक बार महान विंबलडन विजेता आर्थर एशे को दंत चिकित्सा के समय ऐसा रक्त चढ़ा दिया गया जो एड्स से संक्रमित था। इससे वह विषाणुग्रस्त हो गए। आर्थर विश्व के नंबर वन टेनिस खिलाड़ी थे। उनके खेल से लोग बेहद प्रभावित होते थे। उनके फैन दुनिया भर में थे। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि आर्थर एड्स से पीड़ित हो गए हैं तो उन्होंने प्रार्थना सभाएं आयोजित करनी शुरू कर दीं। चिकित्सक ने परामर्श देने आरंभ कर दिए। उनके कई फैन तो दिन-रात उनके लंबे जीवन की कामना ही करते रहते थे। प्रतिदिन उनके पास अपने प्रशंसकों की अनगिनत चिट्ठियां आती थीं। आर्थर सभी चिट्ठियों को बड़े प्रेम से पढ़ते थे और उनके जवाब भी देते थे। एक दिन उन्होंने एक पत्र खोला। उस पत्र में उनके एक बहुत बड़े फैन ने उनसे पूछा था, ईश्वर ने इस भयंकर बीमारी के लिए आपको ही क्यों चुना?

पत्र पढ़कर आर्थर मंद-मंद मुस्कराए। उन्होंने उस पत्र का जवाब लिखना शुरू किया। उस पत्र का जो जवाब आर्थर ने दिया, उसने हर व्यक्ति को हिला कर रख दिया। इसके साथ ही लोगों में एक सकारात्मक संदेश भी गया। एशे ने लिखा था पूरे विश्व में पांच करोड़ बच्चे टेनिस खेलना शुरू करते हैं, ५० लाख खेलना सीख पाते हैं, पांच लाख पेशेवर टेनिस खिलाड़ी बनते हैं। ५० हजार लोग प्रतियोगिताओं तक पहुंच पाते हैं, पांच हजार ग्रैंडस्लैम में, ५० विंबलडन में, चार सेमीफाइनल में और केवल दो फाइनल में पहुंचते हैं। इसके बाद इतने लोगों में विजेता कोई एक होता है। जब विंबलडन कप की ट्रॉफी जीतने के बाद मैंने कभी ईश्वर से नहीं पूछा, मैं ही क्यों? तो आज पीड़ा के समय भी मुझे नहीं पूछना चाहिए कि मैं ही क्यों? उनके सकारात्मक दृष्टिकोण ने उन्हें बीमारी से लड़ने का संबल प्रदान किया और इंसानियत के रूप में बहुत ऊपर उठा दिया।

५९५) संत की साड़ी - उत्तर भारत में जो स्थान संत कबीर का है दक्षिण में वही स्थान संत तिरुवल्लुवर का है। वे भी कबीर की तरह ही कपड़ा बुनते और कर्मकांड व पाखंडों का विरोध करते थे। एक बार उन्होंने एक साड़ी बुनी और उसे

बेचने के लिए बाजार में जा बैठे। एक व्यक्ति आया और तिरुवल्लुवर से साड़ी का दाम पूछा। संत ने साड़ी का दाम दो रुपए बताया। साड़ी खरीदने आए उस व्यक्ति ने साड़ी के दो टुकड़े कर दिए और पूछा कि अब ये टुकड़े कितने के हैं। संत तिरुवल्लुवर ने बिना अधीर होते हुए कहा कि आठ-आठ आने के। इसके बाद उस व्यक्ति ने उन चारों टुकड़ों के दो-दो टुकड़े कर दिए और फिर वही प्रश्न पूछा। संत तिरुवल्लुवर ने कहा कि चार-चार आने के। इस तरह से वह व्यक्ति तिरुवल्लुवर की बुनी साड़ी के टुकड़े पर टुकड़े करता गया और दाम पूछता गया। संत तिरुवल्लुवर बिना नाराज हुए दाम बताते रहे। जब साड़ी तार-तार हो गई तो उस व्यक्ति ने कहा कि अब तो इसकी कोई कीमत ही नहीं रह गई, फिर भी मैं तुम्हें दो रुपये दे देता हूं। संत तिरुवल्लुवर ने कहा कि जब तुमने साड़ी ली ही नहीं तो कीमत किस बात की? संत तिरुवल्लुवर का असीम धैर्य देखकर वह अत्यंत लज्जित हुआ और क्षमा मांगने लगा। संत शांत भाव से बोले, तुम मेरे अपराधी नहीं हो, इसलिए क्षमा करने का अधिकार भी मेरा नहीं है। इस साड़ी में कइयों की मेहनत थी जिसे तुमने तार-तार कर बेकार कर दिया। वे यहां हैं नहीं और तुम उन सबके पास तक पहुंच नहीं सकते माफी मांगने। इसलिए प्रायश्चित करना चाहते हो तो अपने मन से कोई ऐसा काम करो जिसमें बहुत सारे अनजान लोगों का हित हो।

५९६) राह के कांटे - वनवास मिलने के बाद राम, लक्ष्मण और माता सीता चित्रकूट पर्वत की ओर जा रहे थे। राह बहुत पथरीली और कंटीली थी। अचानक राम के पैर में कांटा चुभ गया। राम क्रोधित नहीं हुए, हाथ जोड़कर धरती माता से अनुरोध करने लगे। बोले- मां, मेरी एक विनम्र प्रार्थना है आपसे, क्या आप स्वीकार करेंगी? धरती माता बोलीं- प्रभु प्रार्थना नहीं, आज्ञा दीजिए। राम बोले, मां, मेरी बस यही विनती है कि जब भरत मेरी खोज में इस पथ से गुजरें, तो आप नरम हो जाना। कुछ पल के लिए अपने आंचल में ये पत्थर और कांटे छुपा लेना। मुझे कांटा चुभा सो चुभा, पर मेरे प्यारे भाई भरत के पांव में आघात मत करना। धरती माता ने पूछा- भगवन्, धृष्टता क्षमा हो, पर क्या आपके भ्राता भरत आपसे अधिक सुकुमार हैं? जब आप इतनी सहजता से कांटे की चुभन सहन कर गए, तो क्या कुमार भरत सहन नहीं कर पाएंगे? फिर उनको लेकर आपके चित्त में ऐसी व्याकुलता क्यों? राम बोले, नहीं माते, आप मेरे कहने का अभिप्राय नहीं समझीं। भरत को यदि कांटा चुभा, तो वह उसके पांव को नहीं बल्कि उसके हृदय को विदीर्ण कर देगा। मां, वह अपनी पीड़ा से नहीं बल्कि यह सोचकर तड़प उठेंगे कि इसी कंटीली राह से मेरे भैया राम गुजरे होंगे और ये शूल उनके पगों में भी चुभे होंगे। मैया, मेरा भरत कल्पना में भी मेरी पीड़ा सहन नहीं कर सकता, इसलिए उसकी उपस्थिति में आप कमल पंखुड़ियों सी कोमल बन जाना। सच है, रिश्ते अंदरूनी एहसास, आत्मीय अनुभूति के दम पर ही टिकते हैं। जहां गहरी आत्मीयता नहीं, वो रिश्ता नहीं, रिश्ते का दिखावा हो सकता है। इसीलिए कहा गया है कि रिश्ते खून से नहीं, परिवार से नहीं, मित्रता से नहीं, व्यवहार से नहीं सिर्फ और सिर्फ आत्मीय एहसास से बनते हैं।

५९७) पिकनिक का इंतजाम - एक दिन स्कूल के कुछ छात्रों ने पिकनिक पर जाने की योजना बनाई। तय हुआ कि सभी अपने अपने घर से कुछ न कुछ खाने का सामान लेकर जाएंगे। इनमें से एक विद्यार्थी अपने घर आया और मां को सारी बात बताई। बच्चे की बात सुनकर मां चिंता में पड़ गई क्योंकि घर में कुछ भी नहीं था। न पिकनिक पर ले जाने के लिए पकवान बनाने का सामान और न फल, बिस्कुट आदि खरीदने के पैसे। घर में कुछ खजूर जरूर पड़े थे, लेकिन मां

ने कहा कि पिकनिक पर खजूर ले जाना अच्छा नहीं रहेगा। कुछ देर बाद पिता घर आए तो मां ने बच्चे की पिकनिक के बारे में उन्हें बताया। संयोग से पिता की जेब भी खाली थी। लेकिन पिता बालक का दिल नहीं तोड़ना चाहते थे। उन्होंने तय किया कि वह पड़ोसियों से उधार मांगकर अपने बच्चे की पिकनिक पर कुछ खाने का सामान ले जाने की इच्छा जरूर पूरी करेंगे। यह सोचकर जब पिता पड़ोसी के घर जाने लगे तो उस बच्चे को परिस्थिति समझते देर न लगी। वह तुरंत भागकर अपने पिता के पास गया और पूछा, पिताजी। आप कहां जा रहे हैं? पिता ने झिझकते हुए कहा, बेटा, पड़ोसी के यहां कुछ पैसे लेने जा रहा हूं, ताकि तुम्हारी पिकनिक के लिए कुछ खाने के सामान का इंतजाम किया जा सके। बच्चा पिताजी से बोला, पिताजी। उधार के लिए मत जाइए, मैं वैसे भी पिकनिक पर नहीं जाना चाहता था। यदि जाना भी होगा तो घर में खजूर पड़े ही हैं, वही ले जाऊंगा। कर्ज लेकर शान दिखाना ठीक नहीं। बच्चे के मुख से इतनी समझदारी वाली बात सुनकर पिता की आंखें भर आईं और उसे गले लगाते हुए बोले- देखना एक दिन तुझे यह सारी दुनिया जानेगी। अगले दिन वह बच्चा खजूर लेकर ही पिकनिक पर गया। उस बच्चे को हम सभी लाला लाजपत राय के नाम से जानते हैं।

५९८) सफलता का रास्ता - एक बार एक व्यक्ति स्वेट मार्डेन के पास आया और उनसे बोला, सर, मैं काम करने की इच्छा रखता हूं, लक्ष्य मैंने निर्धारित कर लिया है और आवश्यक साधन भी मेरे पास हैं। इन सबके बावजूद न जाने क्यों मुझे मेरे कार्य में शत-प्रतिशत सफलता नहीं मिलती। यदि मैं काम न करूं तो असफल होने की बात मेरी समझ में आती है, किंतु काम करते रहने पर भी असफल होते रहने की बात मेरी समझ से परे हैं। स्वेट मार्डेन बोले, तुम्हारे इस प्रश्न का जवाब बेहद सरल है। फिर भी मैं तुम्हें इसका जवाब एक उदाहरण के जरिए समझाता हूं। तुम आसानी से समझ जाओगे। बहुत से लोग इस दुनिया में ऐसे हैं जो अपने जीवन की गाड़ी को गुनगुने पानी से चलाने की कोशिश करते हैं, लेकिन वे यह नहीं जानते कि पानी को जब तक २१२ डिग्री तक गरम न किया जाए उसमें भाप नहीं बनती और जब तक पानी में भाप न बने तब तक इंजन गाड़ी को नहीं खींच सकता है। उदाहरण सुनकर वह व्यक्ति बोला, इंजन का मेरे काम से क्या संबंध है? स्वेट मार्डेन बोले, भाई, बहुत गहरा संबंध है। बस यह समझ लो कि तुम्हारे काम में मंद उत्साह ठीक वैसा ही असर करता है जैसा असर गुनगुने पानी का इंजन के बॉयलर पर होता है। जब तक पानी २१२ डिग्री तक गरम नहीं हो जाता तब तक उसमें इंजन को खींचने की शक्ति नहीं आती। इसी तरह जब तक तुम अपने काम में संपूर्ण आत्मशक्ति और एकाग्रता को नहीं झोंक देते तब तक सफलता तुमसे दूर रहेगी। सारे साधन उपलब्ध होने पर भी मंद गति से काम करने पर मंजिल को नहीं पाया जा सकता। स्वेट मार्डेन की बात से वह युवक अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने उसी क्षण निश्चय किया कि अब वह अपने उत्साह को गुनगुने पानी की तरह मंद नहीं रहने देगा और वह सफलता पाकर रहेगा।

५९९) सच्ची मदद - बेंगलुरु जा रही एक ट्रेन में टिकट चेकर की नजर एक सीट के नीचे दुबकी हुई ग्यारह-बारह साल की एक लड़की पर पड़ी और उसने उसे टिकिट दिखलाने के लिए कहा। लड़की रोते हुए बाहर निकली और कहा कि उसके पास टिकट नहीं है। टिकट चेकर ने उसे डांटते हुए गाड़ी से नीचे उतरने को कहा। तभी वहीं मौजूद एक महिला ने दखल दिया, इस लड़की को बेंगलुरु तक का टिकट बना दो इसके पैसे मैं दे देती हूं। टिकट चेकर ने कहा, मैडम, टिकट बनवाने के बजाय इसे दो-चार रुपये दे दो तो ये ज्यादा खुश होगी। लेकिन महिला ने लड़की का टिकट ले लिया। महिला

ने लड़की से पूछा कि वह कहां जा रही है तो उसने कहा कि पता नहीं मेम साब। लड़की ने अपना नाम चित्रा बतलाया। महिला उसे बेंगलुरु ले गईं और जान-पहचान की एक स्वयंसेवी संस्था को सौंप दिया। चित्रा वहां रहकर पढ़ाई करने लगी। महिला उसका हालचाल पता करतीं और उसकी मदद भी करती रहतीं। करीब बीस साल बाद महिला को अमेरिका के सेन फ्रांसिस्को में एक कार्यक्रम में बुलाया गया। कार्यक्रम के बाद वह जब अपना बिल देने के लिए रिसेप्शन पर आई तो पता चला कि उनके बिल का भुगतान सामने बैठे एक दंपती ने कर दिया है। महिला उस दंपती की तरफ मुड़ीं और उनसे पूछा, आप लोगों ने मेरा बिल क्यों भर दिया? युवती ने कहा, मैम, गुलबर्गा से बेंगलुरु तक के टिकट के सामने यह कुछ भी नहीं है। महिला ने ध्यानपूर्वक देखा और कहा, अरे चित्रा, तुम? यह महिला कोई और नहीं, इन्फोसिस फाउंडेशन की चेयरपर्सन सुधा मूर्ति थीं। ऐसी मदद को ही वास्तविक मदद कहा जा सकता है जो किसी के जीवन को बदल डाले। जो लोग दूसरों की मदद करने का ऐसा जज्बा रखते हैं, वे स्वयं जीवन में कहां से कहां पहुंच जाते हैं, इसकी भी सीमा नहीं।

६००) हार की जीत - रैकेट बॉल की विश्व चैंपियनशिप का फाइनल मैच चल रहा था। रुबेन गॉनजेलिस फाइनल मैच खेल रहे थे। उनके प्रतिद्वंद्वी और उनमें कड़ी टक्कर थी। दर्शक सांस रोके मेच देख रहे थै। अचानक मैच पॉइंट पर गॉनजेलिस ने एक बहुत अच्छा शॉट खेला। रेफरी और लाइंसमैन, दोनों ने उनके शॉट को सही बताया और उन्हें विजेता घोषित कर दिया गया। इस घोषणा के साथ ही चारों ओर तालियां गूंज उठीं। लोगों ने रुबेन गॉनजेलिस के नारे लगाने शुरू कर दिए। रुबेन हतप्रभ थे। उन्हें कुछ समझ ही नहीं आ रहा था कि अचानक यह क्या हो गया। उन्होंने अपने आपको संभाला और वह प्रतिद्वंद्वी से हाथ मिलाते हुए बोले, शॉट गलत था। उनके यह कहते ही सब सन्नाटे में आ गए। परिणामस्वरूप वह सर्विस हार गए और मैच भी। पल में इतना बड़ा निर्णय पलट गया। वहां उपस्थित हर व्यक्ति निर्णय के उलट-फेर से दंग रह गया। प्रत्येक व्यक्ति रुबेन गॉनजेलिस के सच से हैरान था। यह कोई सोच भी नहीं सकता था कि एक खिलाड़ी, जिसके हक में सारी बातें हों, वह हार को सच बोलकर इस तरह से गले लगा लेगा। काफी देर तक इसी के बारे में चर्चा होती रही। माहौल जब थमा तो मीड़िया ने पूछा कि जब सब चीजें उनके पक्ष में थीं तो उन्होंने विश्व चैंपियनशिप की इतनी बड़ी जीत को स्वीकार क्यों नहीं किया? इस पर रुबेन गॉनजेलिस ने सहजता से कहा, अपने जमीर को बनाए रखने के लिए मेरे पास यही एक रास्ताथा। यदि मैं आज ऐसा नहीं करता तो यह जीत मुझे जिंदगी भर तड़पाती रहती। इसलिए मैंने मैच गंवाकर सच्चाई को जीतने का फैसला किया। मैच तो आगे भी जीते जा सकते हैं, किंतु सच से एक बार हार गए तो फिर जीवन भर नहीं उबर सकते। आज भी उनकी यह घटना हृदय को झकझोर देती है।

६०१) कुबेर का अहंकार - देवराज इंद्र के कोषाध्यक्ष कुबेर अपने को देवकोष का मालिक समझ धन का निजी स्वार्थ में उपयोग करने लगे। एक दिन वह भगवान शिव के पास पहुंचे और उन्होंने कहा, महादेव मैं एक भव्य भोज का आयोजन कर रहा हूं। मेरी इच्छा है कि उसमें समस्त देवगण, यक्ष, गंधर्व आदि भाग लें और सभी वहां से तृप्त होकर लौटें। कृपया आप भी सपरिवार पधारें। शंकर जी समझ गए कि कुबेर अहंकारग्रस्त हो चुके हैं। उन्होंने कहा, मैं तो नहीं आ पाऊंगा, न पार्वती ही आ पाएंगी, किंतु गणेश जी को अवश्य भेज दूंगा। गणेश भोज में जा पहुंचे। उन्होंने जाते ही कुबेर से कहा, मुझे भूख लगी है। सबसे पहले मुझे भोजन कराएं। गणेश के क्रोध से कुबेर पहले ही परिचित थे। उन्होंने उनकी थाली सबसे

पहले परोस दी। गणेश ने शुरू किया, तो खाते ही चले गए। देखते-देखते तमाम व्यंजन समाप्त होने लगे। कुबेर यह देखकर घबरा गए। अब अन्य अतिथि क्या भोजन करेंगे, यह बात सोचते हुए उन्होंने भोजन परोसना रुकवा दिया। गणेशजी क्रोधित होकर बोले, आप तो दावा कर रहे थे कि कोई भी अतृप्त नहीं लौटेगा, लेकिन आप तो मुझ अकेले का ही पेट नहीं भर पाए। कुबेर को काटो तो खून नहीं। हैरान-परेशान कुबेर कैलाश की तरफ भागे। शिवजी के समक्ष हाथ जोड़कर बैठ गए और भोज यज्ञ की रक्षा करने की प्रार्थना करने लगे, तभी गणेशजी वहां पहुंचे और अपने पिता से कहने लगे, मुझे किस दरिद्र के भोजन में भेज दिया? अपने लिए दरिद्र शब्द सुनकर कुबेर का सारा अहंकार जाता रहा। उन्हें समझते देर न लगी कि यह सब शंकर जी ने उनके अहंकार को तोड़ने के लिए किया है। शंकरजी ने कहा, कुबेर, अहंकार के कारण तुम्हें लज्जित होना पड़ा है। अहंकार की राह सदैव पतन की ओर ले जाती है। कुबेर शंकर जी के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगे।

६०२) लोकहित का संकल्प - कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले महाराष्ट्र के एक अत्यंत रूढ़िग्रस्त ब्राह्मण परिवार में एक कन्या का विवाह मात्र नौ वर्ष की उम्र में कर दिया गया। मात्र चौदह वर्ष की आयु में उसने एक पुत्र को जन्म दिया, लेकिन जन्म के दस दिन बाद ही शिशु की मृत्यु हो गई। कारण मां की अपरिपक्व उम्र के कारण शिशु को पर्याप्त पोषण व समय पर चिकित्सा सुविधा न मिल पाना। मां जो स्वयं एक किशोरी थी यह आघात सहन नहीं कर पा रही थी। इस घटना के बाद वह जब भी अपने आसपास ऐसी कोई घटना देखती तो इस बात पर गहरा अफसोस करती कि वह कुछ नहीं कर पा रही। आखिर एक दिन उसने दृढ़ निश्चय किया कि वह स्वयं डॉक्टर बनेगी और नन्हे शिशुओं व दूसरे रोगियों को अकाल मौतों से बचाने का प्रयास करेगी। उसने इस फैसले के बारे में पति को बतलाया। पत्नी की इच्छा को सम्मान देते हुए उन्होंने इस कार्य में पूरा सहयोग देने का फैसला किया। पति के सहयोग और अपनी उत्कट इच्छा के बल पर वह सारी बाधाएं पार करती गईं और आखिरकार मेडिसिन की पढ़ाई करने अमरीका चली गईं। वहां प्रतिकूल मौसम के कारण पहले से ही अस्वस्थ चल रही इस युवती को क्षयरोग हो गया। लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी और मेडिसिन की पढ़ाई पूरी करने के बाद ही स्वदेश लौटी। वापस लौटने पर देश में उनका भव्य स्वागत किया गया। आते ही उसने चिकित्सक के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर दिया। हालांकि वह ज्यादा दिन जीवित नहीं रहीं। स्वदेश वापसी के एक वर्ष बाद ही उनकी जीवनलीला समाप्त हो गई। ये युवती और कोई नहीं देश की पहली महिला डॉक्टर आनंदीबाई जोशी थीं। लोकहित में लिखा गया उनका दृढ़ संकल्प व अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में उसे पूरा करने का साहस आज भी सबके लिए प्रेरणा का स्रोत है।

६०३) अन्न का असर - महाभारत समाप्त हो चुका था। धर्मराज युधिष्ठिर एकछत्र सम्राट हो गए थे। श्रीकृष्ण की सम्मति से वह रानी द्रौपदी और अपने भाइयों के साथ युद्धभूमि में धर्मज्ञ भीष्म पितामह के समीप आए। युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म पितामह उन्हें वर्ण, आश्रम तथा राजा-प्रजा आदि के विभिन्न धर्मों का उपदेश दे रहे थे। धर्मोपदेश चल ही रहा था कि रानी द्रौपदी को हंसी आ गई। सबकी नजरें अपनी ओर देख द्रौपदी ने संकुचित होकर कहा, मुझसे भूल हुई। पितामह मुझे क्षमा करें। पितामह को इससे संतोष होना नहीं था। वह बोले, बेटी। कोई भी शीलवती कुलवधू गुरुजनों के सम्मुख अकारण नहीं हंसती। तू गुणवती है। तेरी हंसी अकारण हो नहीं सकती। संकोच छोड़कर तू अपने हंसने का कारण बता। हाथ जोड़कर द्रौपदी बोली, आपकी आज्ञा मैं टाल नहीं सकती। आप धर्मोपदेश कर रहे थे तो मेरे मन में यह बात

आई कि आज तो आप धर्म की ऐसी उत्तम व्याख्या कर रहे हैं, किंतु कौरवों की सभा में जब दु:शासन मेरा चीर हरण कर रहा था, तब आपका यह धर्मज्ञान कहां चला गया था? मुझे लगा कि धर्म का यह ज्ञान आपने बाद में सीखा है। मन में यह बात आते ही मुझे हंसी आ गई, आप मुझे क्षमा करें। पितामह ने शांतिपूर्वक समझाया, बेटी। मुझे धर्मज्ञान तो उस समय भी था, परंतु अन्याय करनेवाले दुर्योधन का अन्न खाने से मेरी बुद्धि मलिन हो गई थी। इसीसे उस द्यूत सभा में धर्म का ठीक निर्णय करने में मैं असमर्थ हो गया था। परंतु अब अर्जुन के बाणों के लगने से मेरे शरीर का सारा दूषित रक्त निकल गया है। दूषित अन्न से बने रक्त के शरीर से बाहर निकल जाने के कारण अब मेरी बुद्धि शुद्ध हो गई है। इससे इस समय मैं धर्म का तत्व ठीक समझता हूं और उसका विवेचन कर रहा हूं। आप जैसा अन्न खाते हैं, आपका मन वैसा होता है।

६०४) अनुभव की परख - अमेरिका से प्रकाशित द वर्ल्डस वर्क पत्रिका के पहले संपादक थे वाल्टर हाइन्स पेज। पत्रिका के लिए उनके पास आर्टिकल्स आते रहते थे। वह हर दिन कई आर्टिकल को रिजेक्ट करते थे, कई लेख प्रकाशित करने के लिए रख लेते थे। कई बार कुछ टिप्पणी के साथ लेखक को वापस भेज देते थे। यह उनकी दिनचर्या में शामिल था। एक बार एक लेखिका ने उन्हें लिखा, पिछले हफ्ते आपने मेरी कहानियां सखेद लौटा दीं। मेरा यह दावा है कि आपने मेरी कहानी को पढ़ा ही नहीं। मेरा पूर्वानुमान था कि आप जैसे संपादक अपने काम में ईमानदारी नहीं बरतते, इसी की जांच के लिए मैंने अपनी कहानी के बीच के पृष्ठों को चिपका दिया था और जब कहानी वापस आई तो वे पृष्ठ वैसे ही चिपके हुए मिले। यह आपकी अयोग्यता नहीं तो और क्या है? इस बात पर मिस्टर पेज ने जवाब दिया, हांडी के चावल पके हैं या नहीं यह जानने के लिए सिर्फ एक चावल को टटोला जाता है, पूरी हांडी को उलटकर चावलों को टटोलने की जरूरत नहीं पड़ती। जिसके पास अनुभव है, उसे परखने में देर नहीं लगती। वह अपने अनुभव से परख लेता है। अनुभवी लोगों को देखकर या उसकी लिखी किसी भी वाक्य रचना को पढ़कर पहचान लेता है। उन्होंने लेखिका को इसके साथ ही एक सीख दी, अपना मूल्यांकन पहले स्वयं करना चाहिए। लेखिका को पेज की बातें अच्छी लगी और उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। आमतौर पर देखा जाता है कि लोग दूसरों के बारे में कई तरह के अनुमान लगा लेते हैं, कई धारणाएं पाल लेते हैं, जबकि वास्तविकता हटकर होती है। अगर आप पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं, तो आपकी परख कभी पक्की नहीं हो सकती। ऐसे में सबसे पहले यह परखने की जरूरत होती है कि हमारी सोच का आधार क्या है, कहीं हम एकतरफा तो नहीं सोच रहे।

६०५) गुलाम की कीमत - दुनिया के कट्टर और खूंखार बादशाहों में तैमूरलंग का नाम भी आता है। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा, अहंकार और जवाहरात की तृष्णा से पीड़ित तैमूर ने एक बार विशाल भू-भाग को रौंदकर रख दिया। उसकी क्रूरता का पता इस बात से चलता है, जब बगदाद में उसने एक लाख मरे हुए व्यक्तियों की खोपड़ियों का पहाड़ खड़ा कराया था। एक बार बहुत से गुलाम पकड़कर तैमूरलंग के सामने लाए गए। तुर्किस्तान का विख्यात कवि अहमदी भी दुर्भाग्य से उन गुलामों के साथ पकड़ा गया। जब कवि अहमदी तैमूर के सामने उपस्थित हुआ तो खतरनाक हंसी हंसते हुए उसने दो गुलामों की ओर इशारा करते हुए अहमदी से पूछा, सुना है कि कवि बड़े पारखी होते हैं। क्या तुम बता सकते हो इन गुलामों की कीमत क्या होगी? अहमदी ने सरल और स्पष्ट उत्तर दिया, इनमें से कोई भी ५ हजार अशर्फियों से कम कीमत का नहीं। अच्छा तो बताओ मेरी कीमत क्या होगी? तैमूर ने बड़े अभिमान से पूछा। यही कोई २५ अशर्फी।

निश्चित भाव से अहमदी ने उत्तर दिया। इतना सुनते ही तैमूर क्रोध से आग बबूला हो गया और चिल्लाकर बोला, बदमाश। इतने में तो मेरी सदरी भी नहीं बन सकती, तू यह कैसे कह सकता है कि मेरी कुल मूल्य २५ अशर्फी है। अहमदी ने बिना किसी डर, आवेश या उत्तेजना के उत्तर दिया, जी। बस, यह कीमत भी उसी सदरी की है, आपकी तो कुछ नहीं, क्योंकि जो मनुष्य पीड़ितों की सेवा नहीं कर सकता, बड़ा होकर छोटों की रक्षा नहीं कर सकता, असहायों, अनाथों की जो सहायता नहीं कर सकता, अपना मनुष्य होने से बढ़कर जिसे अहमियत प्यारी हो, उस मनुष्य का मूल्य तो चार कौड़ी भी नहीं। उससे अच्छे तो ये गुलाम ही हैं, जो किसी के काम तो आते हैं। अहमदी की यह बात सुनते ही तैमूर का अहंकार चूर-चूर हो गया।

६०६) सेवा का धर्म - मारग्रेट एलिजाबेथ ने आयरलैंड में एक पादरी के परिवार में जन्म लिया था। वह बचपन से ही स्वामी विवेकानंद के विचारों से प्रभावित थीं। उनसे मिलने की उत्कंठा उन्हें भारत खींच आई। भारत में आकर मारग्रेट ने स्वामीजी से दीक्षा ग्रहण की। स्वामीजी ने भी स्नेह के साथ उनका नामकरण किया और उनका नाम रखा भगिनी निवेदिता। स्वामीजी ने निवेदिता को गीता, महाभारत, रामचरितमानस आदि मुख्य ग्रंथों का अध्ययन कराया और उन्हें भारत के गौरवपूर्ण इतिहास, धर्म व संस्कृति से अवगत कराया। वह भारतीय संस्कृति से इतनी प्रभावित हुई कि उन्होने अपना संपूर्ण जीवन भारत में रहकर यहां की संस्कृति के प्रचार-प्रसार में लगाने का निश्चय किया। निवेदिता जब पहली बार गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर से मिलने उनके घर पहुंची तो परिचय प्राप्त करने के बाद रवींद्र बाबू ने अपनी पुत्री को उनसे मिलवाया और कहा, मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम मेरी बेटी को अंग्रेजी भाषा, साहित्य और संस्कृति का अध्ययन कराओ। निवेदिता ने बहुत विनम्रता से कहा, गुरुदेव, अब मैं स्वयं अंग्रेजीयत का त्याग कर भारती बन गई हूं। ऐसी स्थिति में आप मुझसे यह अपेक्षा न रखें कि मैं भारत जैसे महान देश में किसी विदेशी भाषा या संस्कृति की शिक्षा दूंगी। रवींद्र बाबू इस विदेशी युवती की भारत भक्ति को देख हैरान रह गए। उन्होंने प्रसन्न होकर निवेदिता को आशीर्वाद दिया कि वह भारत तथा भारतीयता की सेवा के अपने संकल्प को अवश्य पूरा करें। बंगाल में जब भीषण बाढ़ आई तो निवेदिता को बाढ़ पीड़ितों की सेवा करते देख रवींद्र बाबू ने कहा, बेटी, तुमने वास्तव में अपने गुरु के सूत्र, सेवा ही धर्म है को साकार किया है। सदैव प्रसन्न रहो। सचमुच निवेदिता ने जीवनपर्यंत भारत में ही रहते हुए नि:स्वार्थ सेवा को अपनाया और वह उसी पर चलीं।

६०७) रचनाकार की गरिमा - यह उस समय की बात है, जब विख्यात बांग्ला लेखक एवं महान् कहानीकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने लेखन की शुरुआत ही की थी। अक्सर उनकी रचनाएं लौटा दी जाती थीं। छपने पर भी पारिश्रमिक अन्य लेखकों से कम मिलता था। एक बार उन्होंने अपनी स्वामी शीर्षक रचना उस समय की चर्चित पत्रिका नारायणा में प्रकाशनार्थ भेजी। पत्रिका के संपादकों को यह रचना इतनी पसंद आई कि अगले ही अंक में वह पत्रिका की कवर स्टोरी के रूप में छाप दी गई। उस समय नारायणा में प्रकाशित एक कहानी या लेख का पारिश्रमिक कम से कम पचास रुपये हुआ करता था। लेकिन कई बार इससे ज्यादा पारिश्रमिक भी दिया जाता था। इसका निर्णय रचना का स्तर और लेखक की प्रतिष्ठा को देखकर संपादकगण करते थे। लेकिन शरतचंद्र की इस रचना के बारे में संपादक मंडल कोई निर्णय नहीं ले सका। उनकी दृष्टि में यह रचना अमूल्य थी। तय हुआ कि इसका फैसला शरतचंद्रजी स्वयं करें। दो दिनों के बाद उनके

पास पत्रिका के कार्यालय से एक कर्मचारी आया और उन्हें प्रधान संपादक की एक चिट्ठी सौंपी। चिट्ठी में लिखा था कि पत्र के साथ एक हस्ताक्षरित ब्लैंक चेक आप को भेज रहा हूं। एक महान लेखक की इस महान रचना के लिए मुझे बड़ी से बड़ी रकम लिखने में भी संकोच हो रहा है। कृपा करके खाली चेक में स्वयं ही अपना पारिश्रमिक डाल लें। मैं आपका आभारी रहूंगा। शरतचंद्र ने राशि की जगह केवल ७५ रुपये भर कर प्रधान संपादक को पत्र लिखा, मान्यवर, आपने मुझे जो सम्मान दिया है उसका कोई मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। आपका यह पत्र मेरे लिए बेशकीमती है। यही मेरा सम्मान है। उनका पत्र पढ़कर संपादकगण बेहद प्रभावित हुए। महान लेखक की गरिमा ने उन्हें नतमस्तक कर दिया था।

६०८) बलि और बुद्ध - किसी राज्य में यज्ञ हेतु राजा एक बकरे की बलि चढ़ाने जा रहा था। उसी समय उधर से भगवान बुद्ध गुजर रहे थे। राजा को ऐसा करते देख वह राजा से बोले, ठहरो, राजन्। यह क्या कर रहे हो? इस बेजान बकरे की भेंट क्यों चढ़ा रहे हौ? आखिर किसलिए? राजा ने कहा, इसकी बलि चढ़ाने से मुझे बहुत पुण्य प्राप्त होगा और यह हमारी प्रथा भी है। राजा की इस बात पर बुद्ध ने कहा, यदि ऐसी बात है तो मुझे भेंट चढ़ा दो। तुम्हें और ज्यादा पुण्य मिलेगा। बकरे के मुकाबले एक मनुष्य की बलि से तुम्हारे भगवान और खुश होंगे। यह सुनकर राजा थोड़ा डरा। क्योंकि बकरे की बलि चढ़ाने में कोई हर्जा नहीं था। बकरे की तरफ से बोलनेवाला कोई होगा, ऐसा राजा सोच नहीं सकता था। मगर, बुद्ध की बलि चढ़ाने की बात मन में आते ही राजा कांप गया। उसने कहा, अरे, नहीं महाराज। आप ऐसी बात न करें। इस बारे में तो मैं सोच भी नहीं सकता। बकरे की बात अलग है। ऐसा तो सदियों से होता आया है। और फिर इसमें किसी का नुकसान भी तो नहीं। बकरे का भी फायदा ही है। वह सीधा स्वर्ग चला जाएगा। बुद्ध बोले, यह तो बहुत ही अच्छा है, मैं स्वर्ग की तलाश कर रहा हूं, तुम मुझे बलि चढ़ा दो और मुझे स्वर्ग भेज दो। या फिर ऐसा क्यों नहीं करते कि तुम अपने माता-पिता को ही स्वर्ग भेज दो। और खुद को ही क्यों रोके हुए हो? जब स्वर्ग जाने की ऐसी सरल व सुगम तरकीब मिल गई है तो काट लो गर्दन। इस बेचारे बेजान बकरे को क्यों स्वर्ग में भेज रहे हो? यह शायद स्वर्ग में जाना भी न चाहता हो। बकरे को खुद ही चुनने दो कि उसे कहां जाना है। राजा के सामने अपने तर्कों की पोल खुल चुकी थी। वह महात्मा बुद्ध के चरणों पर झुक कर बोला, महाराजा अपने मेरी आंखों पर पड़े अज्ञान के परदे को हटाकर मेरा जो उपकार किया है वह मैं भूल नहीं सकता।

६०९) विवेकानंद की छड़ी - एक बार बंगाल में जबरदस्त अकाल पड़ा। क्या इंसान, क्या जानवर सब त्रस्त थे। यह हाल देख स्वामी विवेकानंद अपने अनुयायियों समेत समाज सेवा में लग गए। लोगों की तकलीफ देख विवेकानंद अंदर ही अंदर बहुत तड़पते। एक रोज उनसे ब्राह्मणों का एक दल मिलने आया। वह दल अध्यात्म में खुद को बहुत ऊंचा समझता था। विवेकानंद उन्हें अकाल में तड़पते लोगों के बारे में बताते जाते और सिसक-सिसक कर रोते जाते। उनके आंसू आंखों से गर्दन तक आ रहे थे। यह देख उस दल में शामिल सभी ब्राह्मण चुपके-चुपके हंसने लगे। विवेकानंद ने उनसे पूछा कि आप हंस क्यों रहे हैं? इस पर ब्राह्मण दल का एक सदस्य बोला, एक संत को कष्ट में रोना नहीं चाहिए। वह दुख पर विजय पा चुका होता है। आंसू आध्यात्मिक पुरुष के विरुद्ध हैं। आप इतने बड़े संत हैं और यूं रो रहे हैं? यह ठीक नहीं है। यह सब सुनकर विवेकानंद चुपचाप उठे और एक पौधे की तरफ गए। ब्राह्मणों को लगा कि आज अध्यात्म से

उन्होंने स्वामी जी को परास्त कर दिया। तभी स्वामी जी वहां से हरी छड़ी लेकर आए और उस दल के सदस्यों की पीठ पर बरसाने लगे। वे सब चीखने-चिल्लाने लगे। तब विवेकानंद ने कहा कि यह मक्कारी नही चलेगी। तुम सब तो दर्द पर विजय पा चुके हो तो चीख क्यों रहे हो? आंसू क्यों निकल रहे हैं? अपने आप को और दूसरों को धोखा देना बंद करो। मनुष्य की मौत पर जो न रोए वह संत हो ही नहीं सकता। जो मनुष्य की तकलीफ के लिए न तड़पे, वह संत हो ही नहीं सकता। इतना समझ लो कि कोई भी मनुष्य मरेगा, मैं मरूंगा। कोई तड़पेगा, मैं तड़पूंगा। कोई रोएगा, मैं रोऊंगा, क्योंकि हम पहले मनुष्य हैं। जिसमें यह प्रकृति खत्म हो जाएगी वह मनुष्य ही नहीं रह जाएगा, संत तो बहुत दूर की चीज है।

६१०) संघर्ष की सीमा - बर्ड बहुत छोटे थे। एक दिन उन्होंने एक पुस्तक पढ़ी। उसमें उन्होंने जाना कि एडमिरल पियरी उत्तरी ध्रुव तक पहुंचने के लिए साहसिक संघर्ष कर रहे हैं किंतु विपरीत परिस्थितियां उनके संघर्ष पर भारी पड़ रही हैं। यह जानकर नन्हें बर्ड ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि मेरे संघर्ष की कोई सीमा नहीं होगी और मैं हर हाल में उत्तरी ध्रुव पर पहुंचनेवाला पहला व्यक्ति बनूंगा। नन्हें बर्ड ने उसी दिन से कठोर प्रशिक्षण लेना आरंभ कर दिया। इस रोमांचक अभियान के लिए वह दिन-रात कड़ा परिश्रम करते रहे। बर्ड को ठंडा मौसम बहुत बुरा लगता था लेकिन उन्होंने इस चुनौती को स्वीकार किया और अपने शरीर को कठोर बनाया ताकि वे उत्तरी ध्रुव की ठंड का सामना कर सकें। पर सफलता इतनी सहजता से मिल जाए तो वह भला असली सफलता कहां हुई? उन दिनों अपनी जीविका के लिए बर्ड अमेरिकी नौसेना में नौकरी कर रहे थे। वे वहां पर भी कठिनाइयों से बिल्कुल नहीं घबराते थे। एक दिन दुर्घटना में उनके पैर की हड्डी टूट गई। केवल अट्ठाइस साल की उम्र में इस शारीरिक अक्षमता के कारण उन्हें रिटायर कर दिया गया। बर्ड इन कठिनाइयों से परेशान अवश्य हुए लेकिन टूटे नहीं। वे स्वयं से बोले, क्या हुआ अगर मैं उत्तरी ध्रुव तक पैदल नहीं जा सकता, हवाई जहाज से तो मैं अवश्य वहां पहुंच सकता हूं और मैं पहुंचकर दिखाऊंगा। इसके बाद उन्होंने हवाई जहाज से उत्तरी ध्रुव तक पहुंचने के प्रयास करने आरंभ किए। आखिर उनकी मेहनत रंग लाई और इस तरह एडमिरल रिचर्ड बर्ड उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के ऊपर हवाई उड़ान भरनेवाले पहले व्यक्ति बने। बर्ड का कहना था कि, विषम परिस्थितियों और बाधाओं के बावजूद सफलता पाई जा सकती है, बशर्ते हमारे लक्ष्य स्पष्ट हों और हममें संघर्ष करने का माद्दा हो।

६११) एक विचित्र चित्र - चित्र प्रदर्शनी में तरह-तरह के चित्र लगे थे। एक से एक चित्रकारों के चित्र। भारी संख्या में लोग दूर-दूर से आए थे। एक चित्र में आकृति का चेहरा घने बालों से ढका हुआ था, उसके पैरों में पंख लगे थे। देखनेवाले उस चित्र को विस्मय से देखते। आखिरकार एक दिन दर्शकों ने चित्रकार से पूछ ही लिया, आपने यह किसका चित्र बनाया है? चेहरे को बालों से ढक दिया है। उसके पैरों में पंख क्यों लगाए हैं? उस कलाकार ने समझाया, इस चित्र के जरिए मैं एक संदेश देना चाहता हूं। यह चित्र अवसर का है। लोगों ने पूछा, हम कैसे मान लें कि यह तस्वीर अवसर की है? कलाकार ने कहा, मैं बताता हूं। इसका चेहरा इसलिए ढक रखा है कि जब कभी अवसर हम लोगों के पास आता है तो हम अक्सर इसे पहचान नहीं पाते। इसके पैरों में पंख इसलिए लगा दिए हैं कि अवसर अधिक देर तक रुकता भी नहीं है। बड़ी तेजी से आता है और चला जाता है। एक बार उड़ कर गया तो फिर कोई उसे पकड़ नहीं पाता। यों तो हमे यह अवसर हर जगह उपलब्ध होता है। फिर भी अक्सर हम यह रोना रोते हैं कि हमें कुछ करने का मौका ही नहीं मिला।

लेकिन अगर हम अगर बारीकी से देखें तो एक अच्छा अवसर आया और हम उसको पहचान नहीं पाए, उसका उपयोग नहीं कर पाए। अवसर का सदुपयोग करने के लिए दिमाग और आंखें खुली रखने की आवश्यकता है। अवसर की तलाश में सिर्फ लोगों को सुनना, देखना ही नहीं बल्कि यह भी देखना है कि वह क्या नहीं बोल रहे हैं, क्या नहीं देख रहे हैं। असफल आदमी को हर अवसर में बाधा ही दिखाई देती है जबकि सफल व्यक्ति हर बाधा में भी अपने लिए अवसर देखता है। जरूरत है सजग रहकर अवसर को पहचानने और उसका फायदा उठाने की। ऐसा करके ही हम अपना कोई लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे।

६१२) वृक्ष की छाल - नामदेव नाम का एक बालक घर के बाहर खेल रहा था कि उसकी मां ने उसे बुलाया और कहा, बेटा, अमुक वृक्ष की छाल उतार लाओ, एक आवश्यक दवा बनानी है। मां का आदेश मिलते ही बालक जंगल चला गया। जंगल में उसने चाकू से पेड़ की छाल खुरची और उसे लेकर वापस आने लगा, मगर उसमें से रस टपकता जा रहा था। बालक का स्वभाव बचपन से ही सत्संगी था। जंगल से लौटते हुए रास्ते में जाते हुए उसे एक महात्मा मिले। नामदेव ने उन्हें झुककर प्रणाम किया। संत ने पूछा, हाथ में यह क्या है नामदेव? नामदेव ने जवाब दिया, दवा बनाने के लिए पेड़ की छाल ले जा रहा हूं। संत बोले, क्या तुमको पता नहीं है कि हरे पेड़ को क्षति पहुंचाना अधर्म है? वृक्षों में भी जीवन होता है। इन्हें देवता मानकर पूजा जाता है। वैद्य जब इसकी पत्तियां तोड़ते हैं, तो पहले हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि दूसरों के प्राण बचाने के उद्देश्य से आपको कष्ट दे रहा हूं। यह हमारी संस्कृति का विधान है। संत के वचनों ने नामदेव पर गहरा असर डाला। गहरी सोच में डूबा नामदेव घर पहुंचा। उसने छाल मां को दे दी और कमरे के कोने में बैठकर चाकू से अपने पैर की खाल छीलने लगा। जब पैर से खून बहते देखा तो मां घबराते हुए बोली, क्या बावला हो गया है? यह क्या कर रहा है? बालक बोला, संतजी ने कहा था कि पेड़ों में जीवन होता है। मैं पैर की खाल उतार कर यह समझने की कोशिश कर रहा हूं कि जब मैं पेड़ छाल उतार रहा था तब पेड़ को कितना दर्द हुआ होगा। मां ने बेटे को छाती से लगा लिया। वह समझ गई कि सत्संगी विचारों में आकर यह संत बन गया है। आगे चलकर यही बालक संत नामदेव नाम से प्रसिद्ध हुए और इन्होंने कण-कण में भगवान के दर्शन किए। पेड़ तो पेड़ चींटी को भी कोई क्षति न पहुंचे, वे इसका हमेशा ध्यान रखते थे।

६१३) मां का विश्वास - थॉमस अल्वा एडिसन प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे। एक दिन स्कूल में टीचर ने एडिसन को एक मुड़ा हुआ कागज दिया और कहा कि यह ले जाकर अपनी मां को दे देना। एडिसन घर आए और अपनी मां को वह कागज देते हुए कहा, टीचर ने यह आपको देने को कहा है। मां ने वह कागज हाथ में लिया और पढ़ने लगी। पढ़ते-पढ़ते उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। एडिसन ने मां से पूछा, इसमें क्या लिखा है मां? यह पढ़कर तुम रो क्यों रही हो? आंसू पोंछते हुए मां ने कहा, इसमें लिखा है कि आपका बेटा बहुत होशियार है और हमारा स्कूल नीचे स्तर का है। यहां अध्यापक भी बहुत शिक्षित नहीं है। इसलिए हम इसे नहीं पढ़ा सकते। इसे अब आप स्वयं शिक्षा दें। उस दिन के बाद से मां खुद उन्हें पढ़ाने लगीं और मां के ही मार्गदर्शन में एडिसन पढ़ते रहे, सीखते रहे। कई वर्षों बाद मां गुजर गई। मगर तब तक एडिसन प्रसिद्ध वैज्ञानिक बन चुके थे और उन्होंने फोनोग्राफ और इलेक्ट्रिक बल्ब जैसे कई महान अविष्कार कर लिए थे। एक दिन फुरसत के क्षणों में वह अपने पुरानी यादगार वस्तुओं को देख रहे थे। तभी उन्होंने आलमारी के एक कोने में एक पुराना खत देखा और उत्सुकतावश उसे खोलकर पढ़ने लगे। यह वही खत था जो बचपन में एडिसन के शिक्षक ने

उन्हें दिया था। उन्हें याद था कि कैसे स्कूल में ही उन्हें अत्यधिक होशियार घोषित कर दिया गया था। मगर पत्र पढ़कर एडिसन अचंभे में पड़ गए। उस पत्र में लिखा था, आपका बच्चा बौद्धिक तौर पर काफी कमजोर है। इसलिए उसे अब स्कूल ना भेजें। अचानक एडिसन की आंखों से आंसू झरने लगे। वह घंटों रोते रहे और फिर अपनी डायरी में लिखा, एक महान मां ने बौद्धिक तौर पर काफी कमजोर बच्चे को सदी का महान वैज्ञानिक बना दिया।

६१४) तरुण फकीर का संदेश - महाराष्ट्र में औरंगाबाद जिले के एक गांव में चांदभाई रहते थे जिन्हें सब पाटिल कहते थे। एक दिन उनका घोड़ा खो गया। वे उसे ढूंढ़ते रहे। इतने में देखा कि फकीर की वेशभूषा में सोलह साल का एक तरुण खड़ा है। चांदभाई को देखते ही उसने पुकारा, क्यों चांद पाटिल। आपका घोड़ा गुम हो गया है न? हां, उसे ही तो ढूंढ़ रहा हूं, चांदभाई ने कहा। लेकिन वे हतप्रभ थे कि यह लड़का उनका नाम कैसे जानता है? इसने कैसे जाना कि मेरा घोड़ा खो गया है? उस तरुण फकीर ने उनसे कहा, उस पहाड़ी के पीछे एक बाड़ा है। वहीं आपका घोड़ा घास चर रहा है। चांद पाटिल वहां पहुंचे तो देखा घोड़ा सचमुच उसी बाड़े में चर रहा था। वह अपने घोड़े के साथ घर लौट गए, पर फकीर के व्यक्तित्व ने उन्हें गहरे प्रभावित किया था। तब से उस तरुण फकीर की चर्चा उस पूरे इलाके में फैलने लगी। संयोग की बात चांदभाई के घर में ही किसी का विवाह था। बारात औरंगाबाद से शिरडी जानी थी। बारात के साथ वह सोलह वर्षीय तरुण फकीर भी चल दिया। शिरडी में खंडोबादेव का मंदिर आज भी है। उस मंदिर के पुजारी म्हालसापति थे। उन्होंने उस सोलह साल के फकीर को देखते ही उसका स्वागत किया, आओ साई। वह फकीर तब से वहीं रहने लगा। किसी को पता नहीं कि उस तरुण के माता-पिता कौन हैं, उसका जन्म कब और कहां हुआ, वह हिंदू है या मुसलमान। लेकिन वह मस्जिद में रहता था और मंदिर में भी। शिरडीवासी समझ चुके थे कि वह फकीर सही मायनों में हिन्दू-मुस्लिम एकता का पक्षधर है। कोई पूजा करे या नमाज पढ़े, उनकी नजरों में कोई फर्क नहीं पड़ता था। वह कहता- ईश्वर, अल्लाह अलग नहीं हैं। सबका मालिक एक है। यही चमत्कारी तरुण फकीर आगे चलकर शिरडी के साई बाबा कहलाए।

६१५) अहिंसा का पहला पाठ - गांधी उन दिनों हाईस्कूल में पढ़ रहे थे। वह गलत लड़कों की संगत में पड़ गए। इस संगत का असर उनकी जीवन शैली पर भी पड़ने लगा। वे उन लड़कों के साथ धूम्रपान करने लगे। मांसाहार भी उन्होंने शुरू कर दिया। इन व्यसनों को पूरा करने के लिए एक दो बार अपने ही घर में चोरी भी की। उसके बाद आत्मग्लानि में जीवन से उकताकर आत्महत्या का विचार करने लगे। वह बराबर यह महसूस कर रहे थे कि गलत राह पर है। उन्होंने तय किया और उस राह से बाहर आने का प्रयास शुरू किया। अब वे अपनी इन कमियों को त्यागना चाहते थे। अत: उन्होंने अपनी गलतियों को स्वीकारने का एक तरीका निकाला। उन्होंने अपनी सभी गलतियों को ईमानदारी से एक पत्र में विस्तारपूर्वक लिखा और उसे अपने पिताजी के हाथ में थमा दिया। वह उन दिनों बड़े अस्वस्थ चल रहे थे। पिताजी अपने पुत्र के लिखे उस पत्र को पढ़ते जा रहे थे और उनकी आंखें नम होती जा रही थीं। पूरा पत्र पढ़ने के बाद उन्होंने पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। गांधीजी भी अपने पिता के समक्ष खूब रोए। पिता के प्रेम से भरे उन आंसुओं ने गांधी को ऐसा भिगोया कि वे खुद भी रो रहे थे और ऐसा महसूस कर रहे थे जैसे पिता और उनके आंसू मिलकर उनकी आत्मग्लानि को धोते जा रहे है। वह खुद को शुद्ध महसूस करते जा रहे थे। लगा जैसे उन आंसुओं से उनके सभी

अपराध धुल गए। गांधी के लिए अपने जीवन में यह अहिंसा का यह पहला पाठ था जो उनके पिता ने उन्हें पढ़ाया।

६१६) पटेल की बैलगाड़ी यात्रा - एक बार सरदार पटेल खुली बैलगाड़ी में गांवों की यात्रा पर निकले। उनके साथ रावजीभाई मणिभाई पटेल भी थे। वे गांवों की हालत का निरीक्षण कर रहे थे। शुरू में सरदार पटेल अधिकतर पश्चिमी वेशभूषा में रहते थे। उस दिन भी उन्होंने हंगेरियन टोपी, काला कोट और धोती पहनी हुई थी। गाड़ीवान बड़ा बातूनी था। वह बीच-बीच में सरदार पटेल और मणिभाई पटेल से बातें भी कर लेता था। बैलगाड़ी अपनी रफ्तार से चल रही थी। अचानक गाड़ीवान का ध्यान अपनी बैलगाड़ी पर गया तो यह देखकर उसके होश उड़ गए कि उसमें रफ्तार रोकनेवाला लकड़ी का स्टैंड नहीं लगा था। जल्दबाजी में गाड़ीवान स्टैंड लगाना भूल गया था। उसने कई जगह पर अपने तरीके से बैलगाड़ी की रफ्तार धीमी करने की कोशिश की। लेकिन एक स्थान पर बैलगाड़ी की रफ्तार बहुत ज्यादा बढ़ गई। गाड़ीवान ने जब रफ्तार काबू करने की कोशिश की तो गाड़ी उलट गई और सरदार पटेल व मणिभाई पटेल गिर पड़े। यह देखकर गाड़ीवान बेहद घबरा गया। उसे लगा कि आज तो उसे कड़ी सजा मिलेगी। बहुत जोर लगाकर सरदार पटेल एवं मणिभाई पटेल लकड़ी के नीचे से निकल कर बाहर आए। गाड़ीवान ने उन दोनों से माफी मांगी। सरदार पटेल गाड़ीवान के कंधे पर हाथ रखकर बोले, अरे इसमें इतना उदास होने की क्या बात है। भूल व गलती हम सबसे हो ही जाती है। आगे से ध्यान रखना। चलो अभी तो मिलकर इस गाड़ी को उठाओ। इसके बाद तीनों ने मिलकर गाड़ी को उठाया। गाड़ीवान सरदार पटेल की उदारता के आगे नतमस्तक हो गया।

६१७) गुरु की सीख - ईरान के एक प्रमुख शिक्षा केंद्र में विभिन्न परिवेश से छात्र शिक्षा ग्रहण करने आते थे। उनमें उस समय के शासक का पुत्र खुसरो भी शामिल था। केंद्र के गुरु बच्चों को मोह, हर्ष, लोभ, न्याय, राग-द्वेष, अहंकार जैसे गूढ़ विषयों के साथ समस्त शास्त्र और विद्या में पारंगत करने के लिए प्रतिबद्ध थे। वह सभी शिष्यों के साथ समान व्यवहार करते थे। एक दिन खुसरो के गुरु ने अकारण ही उसे कठोर दंड दे दिया। इससे खुसरो को उस वक्त ही नहीं, लंबे समय तक बहुत दुख होता रहा। बरसों बाद खुसरो अपने पिता के बाद एक दिन राजगद्दी पर बैठा। राजगद्दी पर बैठते ही उसने सबसे पहले अपने गुरु को महल में आमंत्रित किया। गुरु का महल में यथोचित आदर-सत्कार किया और फिर पूछा, बरसों पहले किस अपराध के लिए मुझे कठोर दंड दिया गया था? गुरु ने कहा, अपराध तो कोई नहीं था तुम्हारा। खुसरो को यह सुनकर और बुरा लगा, तब फिर गुरुदेव आपने मुझे ही कठोर दंड क्यों दे दिया? आप तो अच्छी तरह जानते थे कि मैंने कोई गलती या अपराध नहीं किया था। गुरु ने उत्तर दिया, जब मैंने तुम्हारी बुद्धिमता देखी तभी मैं यह जान गया था कि एक न एक दिन तुम अपने पिता के साम्राज्य के उत्तराधिकारी अवश्य बनोगे। तब मैंने निश्चय किया कि तुम्हें इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि किसी व्यक्ति के साथ किया गया अन्याय उसके हृदय को आजीवन मथता रहता है। मैं आशा करता हूं कि तुम किसी भी व्यक्ति को बिना किसी कारण के कभी प्रताड़ित नहीं करोगे। गुरु के लक्ष्य और सीख को समझ कर खुसरो सिंहासन छोड़कर गुरु के चरणों में गिर गया।

६१८) एक हाथ से ताली - संन्यास लेने के बाद गौतम बुद्ध ने अनेक क्षेत्रों की यात्रा की। एक बार वह एक गांव में गए। वहां एक स्त्री उनके पास आई और बोली- आप तो बिलकुल किसी राजकुमार की तरह लगते हैं। क्या मैं जान

सकती हूं कि इस युवावस्था में आपके गेरुआ वस्त्र पहन लेने का क्या कारण है? बुद्ध ने उसे विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया- तीन प्रश्नों के हल ढूंढने के लिए मैंने सन्यास लिया है। यह शरीर जो युवा व आकर्षक है, पर जल्दी ही यह वृद्ध होग, फिर बीमार व अंत में मृत्यु के मुंह में चला जाएगा। मुझे वृद्धावस्था, बीमारी व मृत्यु के कारण का ज्ञान प्राप्त करना है। उनकी बातों से प्रभावित होकर उस स्त्री ने उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया। शीघ्र ही यह बात पूरे गांव में फैल गई। गांववासी बुद्ध के पास आए व आग्रह किया कि वे उस स्त्री के घर भोजन करने न जाएं क्योंकि वह चरित्रहीन है। बुद्ध ने गांव के मुखिया से पूछा- क्या आप भी मानते हैं कि वह स्त्री चरित्रहीन है? मुखिया ने कहा कि मैं शपथ लेकर कहता हूं कि वह बुरे चरित्रवाली स्त्री हैं। आप उसके घर कदापि न जाएं। बुद्ध ने मुखिया का दायां हाथ पकड़ा और उसे ताली बजाने को कहा। मुखिया ने कहा- मैं एक हाथ से ताली नहीं बजा सकता क्योंकि मेरा दूसरा हाथ आपने पकड़ा हुआ है। बुद्ध बोले- इसी प्रकार वह स्त्री स्वयं चरित्रहीन कैसे हो सकती है, जब तक इस गांव के पुरुष चरित्रहीन न हों। अगर गांव के सभी पुरुष अच्छे होते तो यह औरत ऐसी न होती। इसलिए इसके ऐसे चरित्र के लिए यहां के पुरुष भी जिम्मेदार हैं। यह सुनकर सभी लज्जित हो गए।

६१९) जीवन बनाने के लिए - एक मूर्तिकार ने एक विचित्र स्वप्न देखा। उसने देखा- वह किसी छायादार पेड़ के नीचे बैठा हुआ है। अचानक उसे सामने एक पत्थर का टुकड़ा पड़ा दिखाई दिया। उसने उसे उठा लिया फिर उसे सामने रखकर औजारों के थैले से छेनी-हथौड़ी निकालकर उसे तराशने के लिए जैसे ही पहली चोट की, पत्थर जोर से चिल्ला पड़ा- मुझे मत मारो। दूसरी बार वह रोने लगा। मूर्तिकार ने उसे छोड़ दिया। फिर उसने अपनी पसंद का एक अन्य टुकड़ा उठाया और उसे तराशने लगा। वह टुकड़ा चुपचाप वार सहता गया और देखते ही देखते उसमें से एक देवी की मूर्ति उभर आई। मूर्ति वहीं पेड़ के नीचे रख मूर्तिकार आगे चला गया। फिर कुछ समय बाद वह उसी रास्ते से गुजरा। उस स्थान पर पहुंचकर उसने देखा कि उसकी बनाई उस मूर्ति की पूजा अर्चना की जा रही है। उसके आस-पास भक्तों की भीड़ लगी है, भजन-आरती चल रही है। जब उसके मूर्ति-दर्शन का समय आया तो पास जाकर उसने देखा कि उसकी बनाई मूर्ति के सामने न जाने क्या-क्या रखा हुआ है। पत्थर का जो पहला टुकड़ा उसने, उसके रोने-चिल्लाने पर फेंक दिया था वह भी एक ओर पड़ा हुआ है। लोग उसी के सिर पर नारियल फोड़-फोड़ कर देवी की मूर्ति पर चढ़ाए जा रहे हैं। उसी वक्त मूर्तिकार की नींद टूट गई। वह अपने सपने के बारे में सोचने लगा। उसने निष्कर्ष निकाला कि जो लोग थोड़ा कष्ट झेल लेते हैं, उनका जीवन बन जाता है। विश्व उनका सत्कार करता है। पर जो छोटी बातों से ही डर जाते हैं और बचकर भागना चाहते हैं, वे बाद में जीवन भर कष्ट झेलते है। उनका सत्कार कोई नहीं करता।

६२०) विकास के द्वार - महर्षि वेदव्यास किसी नगर से गुजर रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक कीड़े को तेजी से भागते हुए देखा। उनके भीतर एक सवाल उठा- एक छोटा-सा कीड़ा इतनी तेजी से क्यों भागा जा रहा है? उन्होंने कीड़े से पूछा- ए क्षुद्र जंतु, तुम इतनी तेजी से कहां भागे जा रहे हो? कीड़ा बोला- हे महर्षि, आप तो इतने ज्ञानी हैं। यहां क्षुद्र कौन और महान कौन? क्या इस प्रकार कोई सही-सही परिभाषा संभव भी है? प्रश्न सुनकर महर्षि सकपका गए। लेकिन उन्होंने फिर सवाल किया- अच्छा यह बताओ कि तुम इतनी तेजी से कहां भागे जा रहे हो? इस पर कीड़े ने कहा- अरे, मैं तो अपनी

जान बचाने के लिए भाग रहा हूं। देख नहीं रहे कि पीछे कितनी तेजी से एक बैलगाड़ी चली आ रही है। कीड़े के उत्तर ने महर्षि को फिर चौकाया। वह बोले- पर तुम तो इस कीट योनि में पड़े हुए हो। यदि मर भी गए तो तुम्हें दूसरा और अच्छा शरीर मिल ही जाएगा। इस पर कीड़ा बोला- महर्षि, मैं तो कीड़े की योनि में रहकर कीड़े का आचरण कर रहा हूं, पर ऐसे प्राणी बहुत से हैं जिन्हें विधाता ने शरीर तो मनुष्य का दिया है, पर वे मुझ कीड़े से भी कहीं गया-गुजरा आचरण करते दिखाई दे रहे हैं। महर्षि उस नन्हे से जीव के कथन पर सोचते रहे, फिर उससे कहा- चलो, हम तुम्हारी सहायता कर देते हैं। कीड़े ने पूछा- किस तरह की सहायता? महर्षि बोले- तुम्हें उठाकर मैं आनेवाली बैलगाड़ी से दूर पहुंचा देता हूं। इस पर कीड़े ने कहा- धन्यवाद। श्रम रहित पराश्रित जीवन विकास के सारे द्वार बंद कर देता है। मुझे स्वयं ही संघर्ष करने दीजिए। महर्षि को फिर कीड़े की बात का कोई जवाब न सूझा।

६२१) मनुष्य भाग्य का दास नहीं - महाराज वीरभद्र के मन में एक दिन सवाल उठा- भाग्य पहले से निश्चित है तो मनुष्य के प्रयासों का क्या औचित्य है? उन्होंने प्रश्न सभासदों के समझ रखा। कोई भी संतोषजनक जवाब न दे पाया। तभी दरबार में बैठे चतुर सिंह ने महाराज से कहा कि इस सवाल का समुचित जवाब उसका मित्र विशाल ही दे सकता है। महाराज ने विशाल को दरबार में बुलाने के लिए कहा। विशाल उपस्थित हुआ तो महाराज ने अपना प्रश्न उसके सामने रखा। विश्वास बोला, महाराज, मेरे विचार में मनुष्य भाग्य का क्रीतदास नहीं है। सब कुछ पूर्व निश्चित हो तो मानव की समस्त गतिविधियां यांत्रिक हो जाएंगी। वह एक निरीह प्राणी से अधिक कुछ नहीं रह जाएगा। महाराज व सभी दरबारी विशाल की बात ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। विशाल ने आगे कहा, व्यक्ति के जीवन में जब कभी मानसिक संघर्ष की घड़ी आती है तो उस समय वह अपनी इच्छा और विवेक के अनुसार मार्ग चुनने को स्वतंत्र होता है। वह कुमार्ग चुनता है तो उसे दुष्परिणाम भुगतने ही होंगे। बुराई का अपना आकर्षण होता है, लेकिन विवेकी व्यक्ति उसके जाल में कभी नहीं फंसता। वह सही निर्णय लेकर उन्नति के पथ का राही बन जाता है। गलत रास्ता चुननेवाला पतन के गर्त में पहुंचता है और अपनी गलती छिपाने के लिए कहता है कि उसके भाग्य में बर्बाद होना ही लिखा था। श्रम, पुरुषार्थ, लगन व विवेक से किया गया कार्य अच्छा परिणाम देता है। यह सुनकर महाराज बहुत खुश हुए। उन्होंने बहुमूल्य उपहार देकर विशाल को सम्मानित किया और दरबार का सदस्य बना लिया।

६२२) कठघरे में किसान - एक बार सरदार वल्लभ भाई पटेल के पास एक दिलचस्प मामला आया। एक किसान पर रेल लाइन उखाड़ने का आरोप लगाया गया था। उसके घर की तलाशी के दौरान कुछ पाना अर्थात स्पैनर कब्जे में कर लिए गए। किसान के पास अपने कुएं के लिए इंजन पंप था, इसलिए वह ऐसे पाने घर में रखता था। किसान ने पुलिस अधिकारियों से इस बात का स्पष्ट उल्लेख भी किया कि ये पाने उसने अपने कुएं के इंजन पंप के लिए रखे हुए हैं। उनकी जरूरत कभी भी पड़ जाती है, लेकिन उन्होंने उसकी एक न सुनी। किसान पर मुकदमा ठोक दिया गया। मुकदमे की सुनवाई के बाद सरदार, जज और सरकारी वकील अपराध- स्थान पर गए। सरदार ने अनुरोध किया कि वहां जाते समय सभी पाने साथ रख लिए जाएं। जज ने घटना स्थल का निरीक्षण कर लिया तो सरदार पटेल ने अनुरोध किया कि उन पानों से रेल लाइनें उखाड़ने की कोशिश की जानी चाहिए जो साक्ष्य के तौर पर किसान के घर से जब्त किए गए थे। उनके

अनुरोध पर जज ने ऐसा ही करने का आदेश दे दिया। जब उन पानों से रेल लाइन उखाड़ने की कोशिश की गई तो एक भी पाना रेल लाइनों के नटों में नहीं लग सका। वह माजरा देखकर पुलिसवाले बेहद शर्मिंदा हो गए। यह देखते हुए सरदार पटेल जज से बोले, इन जैसे अनेक मुकदमों में ऐसी ही अनियमितताएं बरती जाती हैं और निर्दोष व्यक्ति को गिरफ्तार करके उस पर मुकदमा चला दिया जाता है। सरदार पटेल की बात का असर हुआ और जज ने उस किसान को निर्दोष करार देते हुए बरी करने का आदेश दे दिया।

६२३) अनमोल गुरु दक्षिणा - दयानंद सरस्वती वेद और शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। वह निर्धन अवश्य थे, लेकिन तीक्ष्ण बुद्धि के थे और अपने गुरु के प्रिय शिष्य भी। उनकी शिक्षा पूर्ण होनेवाली थी। एक दिन गुरु ने अपने सभी शिष्यों से कहा- आप सभी ने यहां रहकर वेदों और शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की है। मैं चाहता हूं कि आप मुझे गुरु दक्षिणा दें। गुरु की बात सुनकर संपन्न शिष्यों ने उन्हें धन आदि दिया, लेकिन गुरु इससे संतुष्ट नहीं हुए। उधर साथियों को कीमती वस्तुएं गुरु दक्षिणा में देते देखकर स्वामी दयानंद उदास हो गए। उन्हें उदास देखकर उनका मित्र बोला, तुम उदास क्यों हो? दयानंद बोले, मेरे पास तो गुरुजी को दक्षिणा में देने के लिए कुछ भी नही है। मित्र बोला, तुम्हें जो ठीक लगे, वही दे दो। अगले दिन स्वामी दयानंद अपने गुरु के पास दो लौंग ले जाकर बोले, गुरुजी, मेरी तरफ से गुरु दक्षिणा स्वीकार करें। दो लौंग देखकर गुरु बोले, मुझे तुमसे यह साधारण गुरु दक्षिणा नहीं चाहिए। मैं तुमसे अनमोल दक्षिणा की आकांक्षा कर रहा हूं। दयानंद बोले, गुरुजी, मैं आपको अनमोल दक्षिणा कैसे दूं? गुरुजी मुस्कराते हुए बोले, तुम ही मुझे वह दक्षिणा दे सकते हो। दयानंद चिंतित होकर बोले, पर गुरुजी, कैसे? गुरुजी बोले, तुम्हारे पास विद्या, प्रतिभा, योग्यता और सदगुणों का अनमोल धन है। इस धन के आगे रुपये और बहुमूल्य धातुओं का कोई मोल नहीं है। मैं तुमसे गुरु दक्षिणा में तुम्हारा ज्ञान और विद्या मांगता हूं। तुम अपनी विद्या का उपयोग कुरीतियां दूर करने में करोगे और देश में नई चेतना लाओगे। स्वामी दयानंद सरस्वती ने ऐसा ही किया।

६२४) बुरी आदतों से मुक्ति - एक राजा बेहद दुखी रहता था। उसका इकलौता शैतान राजकुमार कई बुरी आदतों से घिर गया था। राजा ने उसे बहुत समझाया, पर परिणाम कुछ नहीं निकलता। परेशान राजा अपने गुरुजी के पास गए और उन्हें अपनी तकलीफ सुनाई। गुरु ने कुछ सोचने के बाद कहा, उसे मेरे पास भेज दो। राजा ने लड़के को गुरुजी के पास भेज दिया। गुरुजी ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया और फिर उसे साथ लेकर एक बाग में गए। वहां उन्होंने उसको विभिन्न प्रकार के पौधे दिखाए। उनमें एक पौधा एक फुट का था, दूसरा तीन फुट का, तीसरा छह फुट का और चौथा बारह फुट का था। गुरुजी ने कहा, पहले पौधे को उखाड़कर दिखाओ। लड़के ने पौधे को पकड़कर सहज ही उखाड़ लिया। गुरुजी बोले, अब तुम दूसरे पौधे को उखाड़कर दिखाओ। लड़के ने उस पौधे को भी जोर लगाकर उखाड़ दिया। गुरुजी ने फिर कहा- वाह, अब तीसरे को भी उखाड़ दो। लड़के को तीसरे पौधे को उखाड़ने में दोनों हाथों से भी काफी खींच-तान करनी पड़ी। गुरुजी ने उसकी पीठ थपथपाकर कहा, शाबाश, अब चौथे पौधे को भी उखाड़ लाओ। लड़के ने पौधे को दोनों हाथों से पकड़ा काफी जोर लगाया, पर वह नहीं उखड़ा। लड़का बोला- यह मुझसे नहीं उखड़ेगा। तब गुरुजी ने समझाकर कहा, बेटे, जब हम किसी बुरी आदत में पड़ते हैं, तो शुरू में तो उसे दूर करना आसान होता है,

लेकिन जब हम उस आदत को नहीं छोड़ते तो उसकी जड़ें बहुत गहरी हो जाती हैं। फिर उन्हें उखाड़ना मुश्किल हो जाता है। लड़का समझ गया। उसी दिन से उसने बुरी आदतें छोड़ दीं।

६२५) जीवन की सार्थकता - एक दिन राजा विक्रमादित्य अपने गुरु के दर्शन करने उनके आश्रम पहुंचे। वहां उन्होंने गुरु से कहा, गुरुजी, मुझे कोई ऐसा प्रेरक वाक्य बताइए जो महामंत्र बनकर न केवल मेरा बल्कि मेरे उत्तराधिकारियों का भी मार्गदर्शन करता रहे। गुरुजी ने उन्हें एक श्लोक लिखकर दिया जिसका आशय यह था- मनुष्य को दिन व्यतीत हो जाने के बाद कुछ समय निकालकर यह चिंतन अवश्य करना चाहिए कि आज का मेरा पूरा दिन पशुवत गुजरा या सत्कर्म करते हुए बीता। क्योंकि बिना कार्य, समाजसेवा, परोपकार आदि के तो पशु भी अपना गुजारा प्रतिदिन करते हैं, जबकि मनुष्य का कर्त्तव्य तो अपने जीवन को सार्थक करना है। इस श्लोक का राजा विक्रमादित्य पर इतना असर पड़ा कि उन्होंने इसे अपने सिंहासन पर अंकित करवा दिया। अब वह रोज रात को यह विचार करते कि उनका दिन अच्छे काम में बीता या नहीं। एक दिन अति व्यस्तता के कारण वह किसी की मदद अथवा परोपकार का कार्य नहीं कर पाए। रात को सोते समय दिन के कामों का स्मरण करने पर उन्हें याद आया कि आज उनके हाथ से कोई सद्कार्य नहीं हो पाया। वह बेचैन हो उठे। उन्होंने सोने की कोशिश की पर उन्हें नींद नहीं आई। वह उठकर बाहर निकल गए। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक गरीब आदमी ठंड में सिकुड़ता हुआ पड़ा है। उन्होंने उसे अपना दुशाला ओढ़ाया और फिर राजमहल में लौट आए। अब उन्हें इस बात का अहसास हुआ कि आज का दिन अच्छा बीता। उन्होंने सोचा कि यदि प्रत्येक व्यक्ति नेक कार्य व परोपकार को अपनी दिनचर्या में शामिल कर ले तो उसका जीवन सार्थक हो जाएगा।

६२६) राममोहन राय के प्रश्न - एक बार राममोहन राय के एक करीबी मित्र के पास एक व्यक्ति आया और उसने उन्हें एक विचित्र शंख दिखाया। उसने बताया कि यह शंख बहुत चमत्कारी है। यह जिसके पास रहेगा वह व्यक्ति अतुल्य संपत्ति का मालिक हो जाएगा। इसलिए वह कोई अच्छा ग्राहक खोज रहा है ताकि इस शंख को बेचा जा सके। उस व्यक्ति ने शंख के विषय में और भी कई उत्साहित करनेवाली बातें बताईं। यह बातें सुनकर राममोहन राय के मित्र उस शंख को खरीदने के लिए व्याकुल हो गए। शंख की कीमत पांच सौ रुपए थी। शंख खरीदने से पहले यूं ही उनके मन में विचार आया कि क्यों न इस चमत्कारी शंख के विषय में वह अपने मित्र राममोहन राय से भी विचार विमर्श कर लें। जब उन्होंने राममोहन राय को शंख के विषय में बताया तो वे चुपचाप शंख का महिमा गान सुनते रहे और फिर बोले, उस व्यक्ति को बुलाओ। मैं उससे मिलना चाहता हूं और शंख देखना चाहता हूं। मित्र ने शंख बेचनेवाले को बुलाया तो वह फिर से शंख की विशेषता बताने लगा। राममोहन राय ने उससे प्रश्न किया, यदि आपके पास इतना चमत्कारी शंख है तो इसे आप अपने पास क्यों नहीं रखते? इतने समय से यह शंख आपके पास है, आप तो संपन्न नजर नहीं आते। मात्र पांच सौ रुपए में आप इस शंख को बेचने के लिए इतने व्याकुल क्यों हैं? राममोहन राय के प्रश्न सुनकर वह व्यक्ति घबरा गया। उससे कोई उत्तर देते नहीं बन रहा था। वह वहां से चुपचाच खिसक गया। इस प्रकार राममोहन राय ने अपने मित्र को एक धोखेबाज के चंगुल में फंसने से तो बचाया ही उसके पांच सौ रुपए भी बेकार न जाने दिए।

६२७) चित्र की सुंदरता - उन दिनों प्रख्यात कलाकार माइकल एंजलो की पूरे यूरोप में चर्चा थी। उसकी लोकप्रियता देखकर एक चित्रकार उससे बड़ी ईर्ष्या करता था। सोचता था, लोग मेरी प्रशंसा क्यों नहीं करते? क्यों न मैं एक ऐसा चित्र

बनाऊं, जिसे देखकर लोग माइकल एंजलो को भूल जाएं। उसने एक स्त्री का चित्र बनाना शुरू किया। जब चित्र पूरा हो गया तो उसकी सुंदरता का परीक्षण करने के लिए वह उसे दूर से देखने लगा। उसमें उसे कुछ कमी लगी। लेकिन कमी क्या थी, यह समझ में नहीं आया। संयोग से उसी समय माइकल एंजलो उस तरफ से जा रहा था। उसकी नजर चित्र पर पड़ी। उसे चित्र बहुत सुंदर लगा। पर उसे उसकी कमी भी समझ आ गई। उसने चित्रकार से कहा, तुम्हारा चित्र तो बहुत सुंदर है। पर इसमें जो कमी रह गई है, वो कुछ खटक रही है। चित्रकार ने माइकल एंजलो को कभी देखा नहीं था। उसने सोचा, यह कोई कला प्रेमी होगा। उसने कहा, कमी तो मुझे भी लग रही है। एंजलो ने कहा, क्या आप अपनी कूची देंगे? मैं कोशिश करता हूं। कूची मिलते ही एंजलो ने चित्र में बनी दोनों आंखों में काली बिंदियां बना दी। इसके बाद चित्र सजीव हो उठा। चित्रकार ने एंजलो से कहा, तुमने सोने में सुगंध का काम कर दिया। मेरे चित्र की सुंदरता बढ़ानेवाले तुम हो कौन? एंजलो ने कहा, मेरा नाम माइकल एंजलो है। चित्रकार बोला, क्षमा करें। आपकी उन्नति देखकर मैं जलता था। आपको हराने के लिए ही मैंने यह चित्र बनाया था। लेकिन आपकी कला-प्रवीणता और सज्जनता देखकर मैं शर्मिंदा हूं। माइकल एंजलोने उसे गले लगा दिया।

६२८) परिश्रम का फल - एक साधारण परिवार का लड़का दसवीं पास करने के बाद अपने भरण-पोषण के लिए लंदन की सड़कों पर अखबार बेचने लगा। अपने बचे समय में वह पढ़ाई भी करता। इसी बीच उसने एक पब्लिशिंग हाउस में अपरेंटिस की नौकरी कर ली। वहां उसे विभिन्न विषयों की पुस्तकें मुफ्त में पढ़ने का अवसर मिला। युवक की प्रतिभा, लगन व ईमानदारी से फर्म का मालिक बड़ा प्रभावित हुआ। एक दिन उसकी सिफारिश पर उसे दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने का मौका मिल गया। धीरे-धीरे उसकी रुचि विज्ञान में विकसित हुई। एक दिन उसने हम्फ्रे डेवी का विज्ञान एवं अनुसंधान विषय पर भाषण सुना। उसने भाषणों को अच्छी तरह समझ लिया। इसके बाद उसने चार भाषणों की विषयवस्तु पर आधारित लेख लिखकर रॉयल सोसायटी को भेज दिया। वहां से उसे कोई उत्तर नहीं मिला। लेकिन उसने हिम्मत बनाए रखी। एक दिन कुछ सोचकर उसने उन्हीं भाषणों पर नया लेख लिखकर हम्फ्रे डेवी को भेज दिया। एक दिन जब वह सोने की तैयारी में था, स्वयं हम्फ्रे डेवी उससे मिलने चले आए। उन्होंने उसके लेखों और विज्ञान में गहन रुचि देखकर उसे रॉयल सोसायटी में लैबोरेट्री असिस्टेंट की नौकरी दिलवा दी। अब वह हम्फ्रे डेवी का सहयोगी बन गया। बाद में उसे दुनिया ने माइकल फैराडे के नाम से जाना। उसने विद्युत धारा का आविष्कार किया और उसे डेवी से भी अधिक प्रसिद्धि मिली। डेवी ने स्वयं कहा है- मेरी खोजों में माइकल फैराडे सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। किस व्यक्ति में कौन सी प्रतिभा छिपी है, यह कोई नहीं जानता, लेकिन उसे पल्लवित होने में लगन व परिश्रम की बड़ी जरूरत होती है।

६२९) हिंदुस्तान की रक्षा - यह उन दिनों की बात है जब अशफाक उल्ला शाहजहांपुर के आर्यसमाज मंदिर में पंडित रामप्रसाद बिस्मिल के साथ ठहरे हुए थे। अचानक कुछ दंगाइयों ने मंदिर को घेर लिया। दंगाई उत्तेजक नारे लगा रहे थे और मंदिरों को नष्ट करना चाहते थे। यह देखकर क्रांतिकारी अशफाक उल्ला ने अपनी पिस्तौल निकाली ओर मंदिर के दरवाजे के पास आकर बोले, किसी ने भी मंदिर की एक ईंट को हाथ लगाया तो उसे गोली से भून दूंगा। कुछ दंगाइयों ने उन्हें पहचान लिया। उनमें से एक बोला, तू तो मुसलमान है, तेरा इस मंदिर से क्या लेना-देना? दंगाई की बात सुनकर

अशफाक ने जवाब दिया, मंदिर और मस्जिद मालिक की इबादत करने के पवित्र स्थल है। मैं दोनों के प्रति समान श्रद्धा रखता हूं। इसलिए मंदिर की हिफाजत करना मेरा कर्त्तव्य है। मैं एक हिंदुस्तानी क्रांतिकारी हूं। देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने पर मैं गौरवान्वित होता हूं। हिंदुस्तान को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त कराना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। यह सुनकर दूसरा दंगाई बोला, हमे तुम्हारी बातें समझ में नहीं आतीं। तुम्हें मालूम हैं कि क्रांतिकारियों का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजों को भगाकर हिंदुस्तानियों की सल्तनत कायम करना है। ऐसे में जब हिंदुस्तानी इस देश पर राज करेंगे तो तुम्हें भी यहां से खदेड़ दिया जाएगा। अशफाक दंगाइयों की बात पर बोले, हिंदुस्तान ऐसा देश हैं जहां जाति-धर्म से परे मानवीयता को महत्व दिया जाता है। हिंदुस्तान की सभ्यता और संस्कृति प्रारंभ से सभी को समान समझती है। अशफाक की बात सुनकर दंगाई चुपचाप वहां से खिसक गए।

६३०) दूरबीन और खिलौना - कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलजी ने आइंस्टाइन को भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। साथ में श्रीमती आइंस्टाइन भी थीं। आइंस्टाइन दंपती माउंट विल्सन स्थित वेधशाला भी देखने गए। उस समय संसार की सबसे बड़ी कही जानेवाली दूरबीन वहां स्थापित थी। विशालकाय दूरबीन को देखकर श्रीमती आइंस्टाइन ने वेधशाला के अध्यक्ष से पूछा, इतनी बड़ी दूरबीन भला किस काम आती है? अध्यक्ष ने जवाब दिया, ब्रह्मांड की रचना समझने के लिए। यह सुनकर श्रीमती आइंस्टाइन ने हैरत के साथ कहा, इस काम के लिए इतनी बड़ी दूरबीन की क्या जरूरत है। मेरे पति तो आमतौर पर यह सब एक पुराने कागज के लिफाफे पर करते हैं। बात बिल्कुल सच थी। आइंस्टाइन के अध्ययन कक्ष में उनकी मेज पर न्यूटन का एक चित्र था और उसके समीप ही छोटी-सी दूरबीन रखी हुई थी। उनसे मिलनेवाले अक्सर उनसे पूछते थे कि क्या वह इस दूरबीन का प्रयोग करते हैं, तो आइंस्टाइन का उत्तर होता था, नहीं भाई, मैं आकाश में तारे नहीं देखता। इस मकान में मुझसे पहले जो किरायेदार रहता था, वह यह दूरबीन छोड़ गया है। मैंने एक खिलौने के तौर पर इसे यहां रखा हैं। कुछ लोग जब आइंस्टाइन से पूछते कि उन्होंने अपने उपकरण कहां, किस प्रयोगशाला में रखे हैं तो वह अपना सिर थपथपाते हुए कहते, ईश्वर की दी हुई इस प्रयोगशाला में। और यदि उनसे कोई वैज्ञानिक प्रयोगों में इस्तेमाल आनेवाली चीजों की बात करता, तो वे उसे अपना फाउंटेन पेन दिखा देते। वास्तव में यही उनका उपकरण था और उनका दिमाग ही उनकी प्रयोगशाला था।

६३१) वैज्ञानिक का जवाब - प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैडम क्यूरी को भौतिकी में संयुक्त रूप से नोबेल पुरस्कार मिला था। पुरस्कार मिलने के बाद उनकी ख्याति दुनिया भर में फैल गई। हर तरह के लोग उनसे मिलने और उनके बारे में जानने को उत्सुक रहते थे। लेकिन मैडम को इन सब में कोई खास दिलचस्पी न थी। वह अपनी उपलब्धि और प्रसिद्धि से बेखबर रहती थीं। उनके रहन-सहन और स्वभाव में कोई तब्दीली नहीं आई। उन्हें बस अपने काम से मतलब रहता था। वह दिन-रात अध्ययन और शोध में लगी रहती थीं। न तो खाने की सुध रहती थी, न पहनने-ओढ़ने की। एक बार एक नामी अखबार का संवाददाता उनका साक्षात्कार लेने उनके घर पहुंचा। बाहर बैठी मैडम क्यूरी को उसने नौकरानी समझा और पूछा- क्या आप मैडम क्यूरी की नौकरानी है? मैडम क्यूरी ने कहा- जी हां, कहिए क्या बात है? इस पर संवाददाता ने पूछा- क्या घर की मालकिन घर में है? मैडम क्यूरी ने कहा- नहीं, वह बाहर गई है। संवाददाता ने पूछा- क्या वह जल्दी

लौटेंगी? मैडम क्यूरी ने कहा- नहीं, वह जल्दी नहीं लौटेंगी। यह सुनकर संवाददाता सोच में पड़ गया। फिर वह जाने लगा। तभी उसे कुछ ख्याल आया। उसने रुककर पूछा- क्या वह आपको कुछ कहकर गई है? मैडम क्यूरी ने कुछ सोचते हुए कहा-हां, उन्होंने कहा है कि अगर कोई आए तो बता देना कि लोगों को उनकी वेशभूषा से नहीं, उनके विचारों और काम से पहचानना चाहिए। यह सुनकर संवाददाता चौंक गया। उसे यह जवाब अटपटा लगा लेकिन जल्दी ही उसे सब कुछ समझ में आ गया। वह बहुत शर्मिंदा हुआ। उसने मैडम क्यूरी से क्षमा मांगी।

६३२) मनुष्य और परमात्मा - उस दिन टॉल्सटॉय सुबह पांच बजे ही चर्च पहुंच गए। उन्हें लगा कि वे वहां पहुंचनेवाले पहले व्यक्ति होंगे, मगर उन्हें यह देख आश्चर्य हुआ कि उनसे पहले भी एक व्यक्ति वहां पहुंच गया है। वह कह रहा था, हे परमात्मा। मैंने इतने अधिक पाप किए हैं कि मुझे कुछ कहते हुए भी लज्जा आ रही है। मुझ पापी को क्षमा करना। टॉल्सटॉय ने सुना तो सोचने लगे कि यह आदमी सचमुच ही कितना महान है कि सच्चे दिल से अपना अपराध स्वीकार कर रहा है। उसके करीब जाने पर वह उस सज्जन को पहचान गए। वह शहर का एक धनी-मानी सेठ था। ज्यों ही उसकी नजर टॉल्सटॉय पर गई, वह घबराकर बोला, आपने मेरे शब्दों को सुना तो नहीं? टॉल्सटॉय ने कहा, हां, सुने तो थे। मैं तुम्हारी स्वीकारोक्ति सुनकर धन्य हो गया। वह व्यक्ति बोला, लेकिन यह बात तुम किसी और से न कहना, क्योंकि ये बातें मेरे और परमेश्वर के बीच की थीं। मैं तुम्हें सुनाना नहीं चाहता था। फिर अचानक ही वह कुछ नाराजगी से बोला, अगर तुमने यह बात किसी और को बताई तो मुझसे बुरा कोई न होगा। टॉल्सटॉय यह सुनकर दंग रह गए और बोले, अभी-अभी तो तुम कह रहे थे कि...। उनकी बात काटते हुए वह व्यक्ति बीच में बोल उठा, हां, मगर मैंने जो कुछ कहा था, वह परमात्मा के लिए कहा था, दुनिया के लिए नहीं। दुनिया को नहीं पता चलना चाहिए कि मैं क्या हूं। टॉल्सटॉय हैरान होकर मनुष्य के पाखंड के बारे में सोचने लगे। फिर उन्होंने सेठ से कहा, जो आदमी लोगों के सामने अपनी सच्चाई प्रकट नहीं कर सकता, वह भला परमात्मा के समक्ष कैसे सच्चा हो सकता है?

६३३) धैर्य की परीक्षा - सदानंद नामक संत के अनेक शिष्य थे। शिक्षा देने का उनका अलग ही ढंग था। वे सैद्धांतिक बातें बताने के साथ व्यावहारिक उपायों से भी कई विषय समझाते थे। एक दिन उन्होंने अपने सभी शिष्यों को बुलाया और उनके हाथ में बांस की एक टोकरी दी। इसके बाद वह बोले, आज तुम सभी को इन टोकरियों में जल भरकर लाना है और उसी से आश्रम की सफाई करनी है। याद रखना जल केवल वही होना चाहिए जो इस टोकरी में भरकर लाया गया हो। गुरु की आज्ञा मानकर सभी नदी की ओर चल पड़े। एक शिष्य बोला, बांस की टोकरियों में पानी कैसे भर पाएगा? वह तो छेदों से बाहर निकल जाएगा। दूसरे शिष्य ने कहा, पता नहीं, गुरुजी इसके माध्यम से हमें कौन सा व्यवहारिक गुण सिखाना चाहते हैं। सभी शिष्य टोकरी में जल भरने लगे। लेकिन जैसे ही वह जल भरते वैसे ही वह उसके छेद से बाहर निकल जाता। शिष्यों ने तीन-चार बार कोशिश की लेकिन फिर अपनी टोकरियां फेंक कर वापस आश्रम में चले गए। केवल सदाव्रत ने हिम्मत नहीं हारी। वह बार बार टोकरी में पानी भरता रहा लेकिन पानी बाहर निकल जाता। पर वह बार-बार बांस की टोकरी में पानी भरता रहा। आखिर बार बार पानी भरने से बांस की कमानियां फूल गईं और उनके बीच की जगहें कहीं-कहीं से भरने लगीं। थोड़ी देर में टोकरी से जल रिसना बंद हो गया और पानी उसमें ठहर गया।

सदाव्रत ने उससे आश्रम की सफाई कर दी। सदानंद ने शिष्यों से कहा, आज मैं तुम सबके धैर्य की परीक्षा लेना चाहता था और उसमें केवल सदानंद उत्तीर्ण हुआ।

६३४) सफलता का रहस्य - एक बार अमेरिका के नामी वकील और समाजसेवी क्लैरंस डैरो से एक पत्रकार ने कहा कि वह अपनी पत्रिका के लिए उनका इंटरव्यू लेना चाहती है। उसने बताया कि वह दरअसल पत्रिका में इंटरव्यू की एक सीरीज चला रही है जिसमें वह समाज के विशिष्ट व्यक्तियों से उनकी सफलता का रहस्य पूछती है। उसने डैरो से अनुरोध किया कि वे उसे अपना मूल्यवान समय देकर अपनी सफलता का रहस्य बताएं। इस पर डैरो ने जानना चाहता कि क्या अब तक के साक्षात्कारों में कोई ऐसी समान बात नजर आई, जिसे सफल व्यक्तियों ने अपनी कामयाबी का आधार बताया हो। पत्रकार ने कहा कि अधिकतर व्यक्तियों ने अपनी सफलता का श्रेय परिश्रम को दिया। सभी ने इस विषय में विस्तार से जानकारी देते हुए कुछ यही कहा कि जब उनकी जैसी प्रतिभावाले अन्य लोग निद्रा की गोद में विश्राम कर रहे होते थे, वे सारी-सारी रात जागकर अपने काम में लगे होते थे। क्लैरंस डैरो को उस पत्रकार की यह बात बड़ी घिसी-पिटी सी लगी। वह बोले, तो मेरे बारे में लिखिए। मैं एक टाल पर काम करता था। एक दिन जब बहुत गर्मी थी, मैं सूखी घास के गट्ठर बना रहा था और उन्हें बांट रहा था। टाल वाला बार-बार मेरे ऊपर और गट्ठर लाद देता था। दोपहर तक मैं थक कर चूर हो चुका था। फिर मैं उस फर्म से निकल आया और वहां कभी वापस नहीं लौटा। उस दिन से मैंने कभी मेहनत का कोई काम नहीं किया। इस तरह डैरो ने साफ कर दिया कि सफलता का कोई एक निश्चित फार्मूला नहीं होता। हर व्यक्ति इसे अपने-अपने तरीके से हासिल करता है।

६३५) संस्कृति के रक्षक - महाराणा प्रताप के बेटे अमर सिंह ने युद्ध में मुगल सेनापति अब्दुल रहीम खां को परास्त कर दिया। फिर उन्होंने मुगल सरदारों के साथ ही मुगलों के हरम को भी कब्जे में ले लिया। महाराणा प्रताप को जब यह समाचार मिला तो वह रुग्णावस्था में ही युद्ध क्षेत्र में जाकर अमर सिंह पर गरज पड़े, ऐसा नीच काम करने से पहले तू मर क्यों नहीं गया। हमारी भारतीय संस्कृति को कलंकित करते तुझे लाज न आई? अमर सिंह पिता के सामने लज्जित खड़े रहे। महाराणा प्रताप ने तत्काल मुगल हरम में पहुंचकर बड़ी बेगम को प्रणाम करते हुए कहा, बड़ी बी साहिबा, जो सिर शहंशाह अकबर के सामने नहीं झुका, वह आपके सामने झुकाता हूं। मेरे बेटे से जो अपराध हुआ, उसे क्षमा करें। आप लोगों को बंदी बनाकर उसने हमारी संस्कृति का अपमान किया है। उधर शहंशाह अकबर ने जब मुगल हरम की चिंता करते हुए सेनापति अब्दुल रहीम खां को फटकारा, तो उसने बादशाह को आश्वस्त करते हुए कहा, बेगम वहां उसी तरह महफूज हैं, जिस तरह शाही महल में रहती हैं। इस पर अकबर ने कहा, पर महाराणा प्रताप से हमारी जंग चल रही है। इस पर सेनापति बोले, बादशाह सलामत, महाराणा प्रताप हिंदुस्तानी संस्कृति के रक्षक हैं वह बेगम को कुछ न होने देंगे। शहंशाह अकबर शांत तो हुए मगर उनकी फिक्र कम न हुई। जब दूसरे दिन राजकीय सम्मान के साथ शाही बेगमों की पालकी आगरा के किले में पहुंची तो बादशाह अकबर ने कहा, महाराणा प्रताप जैसा राजा इतिहास में कम ही पैदा होता है। वे हिंदुस्तानी तहजीब के भी सच्चे रखवाले हैं।

६३६) विद्वान की सूझबूझ - एक राजा को शास्त्रार्थ करवाने का बहुत शौक था। वह उच्च कोटि के विद्वानों को अपने दरबार में आमंत्रित करता और उनके बीच शास्त्रार्थ करवाता। जो विद्वान उसमें विजय हासिल करता उसे राजा भारी-

भरकम उपहार देता। उसकी इस रुचि को जानकर देश-विदेश से उसके दरबार में विद्वानों का तांता लगा रहता और इस प्रकार राजा की बौद्धिक भूख शांत होती। एक बार किसी आध्यात्मिक विषय को लेकर राजा के दरबार में शास्त्रार्थ हुआ। विषय जटिल था किंतु विद्वान और पंडित भी कब हार मानने वाले थे। जोरदार बहस हुई और घंटों चली। अंतत: एक युवा विद्वान ने बाजी मार ली। राजा ने प्रसन्न होकर उसे सोने के सिक्कों से भरे दो थैले इनाम में दिए। युवा विद्वान अपना इनाम लेकर जब जंगल के रास्ते अपने घर जा रहा था तो एक सिक्का एक थैले से गिर गया। वह उसे खोजने लगा। तभी संयोग से राजा वहां से गुजरा। युवा विद्वान को एक सिक्के के लिए परेशान देखकर राजा ने उसे लोभी समझा और नाराज होकर उससे स्वर्ण के सिक्कों से भरे थैले वापस करने को कहा। चतुर विद्वान अब क्या बताता कि उसके लिए एक सिक्का भी कितना महत्वपूर्ण है। तभी उसे अपने गुरु की वह बात याद आई कि संकट के समय धैर्य खोये बगैर अपनी विवेकबुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। उसने राजा से कहा, महाराज, प्रश्न एक या दो सिक्के का नहीं है। शास्त्रों में कहा गया है कि राजा का उपहार पवित्र होता है। उसका सम्मान करना चाहिए। इसलिए मैं वह सिक्का खोज रहा हूं। सुनते ही राजा का क्रोध शांत हो गया। उसने प्रसन्न होकर उसे स्वर्ण मुद्राओं की एक और थैली दे दी।

६३७) गुरु और शिष्य - नवदीक्षित शिष्य ने अपने गुरु से कहा, गुरुदेव, उपासना में बिल्कुल ही मन नहीं लग रहा। बहुत कोशिश करके भी भगवान की ओर चित्त स्थिर नहीं होता। गुरु कुछ देर तक शिष्य को देखते रहे। लगा जैसे कुछ समझने की कोशिश में हो। बोले, सच ही कहते हो वत्स, यहां ध्यान लगेगा भी नहीं। कहीं और चलकर साधना करेंगे। हो सकता है वहां ध्यान लग जाए। आज शाम में ही वहां चल देंगे। शाम में शिष्य कुछ चिंतित स्वर में प्रश्न कर बैठा, जिसका गुरु ने कोई उत्तर न दिया। सूर्यास्त होते ही वे दोनों एक ओर चल पड़े। गुरु के हाथ में एक कमंडल था, शिष्य के हाथ में थी एक झोली, जिसे वह बड़ी मुश्किल से संभाले हुए चल रहा था। रास्ते में एक कुआं आया। शिष्य ने शौच जाने की इच्छा व्यक्त की। दोनों रुक गए। बहुत सावधानी से शिष्य ने झोला गुरु के पास रखा और शौच के लिए चल दिया। जाते-जाते उसने कई बार झोले पर नजर डाली। गड़ाम एक तीव्र प्रतिध्वनि सुनाई दी और झोले में पड़ी कोई वस्तु कुएं में जा समाई। शिष्य दौड़ा हुआ आया और चिंतित स्वर में बोला, भगवन्, झोले में सोने की ईंटें थीं, वो कहां गई? गुरु बोले, वो कुएं में चली गई। अब तुम्हारा ध्यान लग जाएगा। क्योंकि उसे भटकाने वाली चीज अब नहीं रही। अब कहो तो आगे बढ़ें या फिर वहीं लौट चलें, जहां से आए हैं। अब ध्यान न लगने की चिंता नहीं रहेगी। शिष्य की मायूसी भी जाती रही। उसने कहा, चलिए, गुरुदेव लौट ही चलें। अब मन से बोझ उतर गया है। अब मुझे विश्वास है कि ईश्वर में मन लग जाएगा। गुरु उसकी इस बात से प्रसन्न हुए।

६३८) सिद्धि का मोल - रामकृष्ण परमहंस की निरंतर फैलती जा रही ख्याति से एक कथित योगी बहुत ईर्ष्या रखता था। एक दिन उसने परमहंस को नीचा दिखाने की ठानी। वह उनके पास पहुंचा और बोला- तुम्हारे पास कोई चमत्कार है भी या तुम यूं ही परमहंस कहलाने लगे हो? रामकृष्ण ने जवाब दिया- नहीं भाई। मैं तो बड़ा साधारण इंसान हूं। मेरे पास चमत्कार की शक्ति कहां। योगी ने फिर ताना दिया- तुम परमहंस हो न, तो फिर पानी पर चलकर दिखाओ। ईसा मसीह भी पानी पर चले थे। हनुमान जी ने एक ही छलांग में समुद्र पार कर लिया था। सामने ही गंगा नदी बह रही है। इसके जल

पर चलकर दिखाओ तो मानूं कि तुम सच्चे अर्थों में परमहंस हो। रामकृष्ण ने सरलता से कहा- नहीं, मैं पानी में नहीं चल सकता। क्योंकि परमेश्वर की ऐसी इच्छा ही नहीं है। मैं उसकी इच्छा के विपरीत कैसे जा सकता हूं। योगी ने गरजते स्वरों में कहा- अठारह साल, पूरे अठारह साल मैंने हिमालय पर घोर तपस्या की है। तब कहीं जाकर यह शक्ति मैंने प्राप्त की है। आज मैं इस गंगा नदी पर इस पार से उस पार तक चल सकता हूं। उसकी गर्वोक्ति सुनकर परमहंस अत्यंत शांत व विनम्र भाव से बोले- मेरे भाई, तुमने अठारह साल बेकार कर दिए। मुझे तो गंगा के उस पार जाना होता है तो मांझी को आवाज देता हूं। वह नाव से मात्र दो पैसे में नदी पार करा देता है। जरा सोचो, अठारह साल में यदि तुमने नदी के पानी पर चलकर उसे पार करने की कथित सिद्धि प्राप्त की है, तो वह कमाई क्या दो पैसे से अधिक की है? रामकृष्ण की बात सुनकर योगी निरुत्तर हो गया।

६३९) शास्त्रीजी की सादगी - बात उन दिनों की है जब लाल बहादुर शास्त्री पहली बार राज्य सभा के सदस्य बने थे। उसी वर्ष प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें रेलमंत्री बना दिया था। रेलमंत्री बनने के बाद शास्त्री जी को अनेक दौरों पर जाना होता था। दौरे सरकारी होने के बावजूद शास्त्रीजी सरकारी सुविधाओं का अनुचित प्रयोग कभी नहीं करते थे। अपनी सादगी भरी जीवन शैली के कारण वे अपने लिए सैलून की व्यवस्था लेने तक से मना कर दिया करते थे। ऐसे ही एक बार सन १९५६ में किसी सरकारी काम से शास्त्री जी को मदुराई जाना पड़ा। स्टेशन के पास ही उनके ठहरने का खास इंतजाम किया गया था। लेकिन शास्त्री जी को उससे क्या, वह कमरे के बाहर आकर बैठ गए। उसी समय वहां डीएम का एक आभार संदेश लेकर एक अफसर आ पहुंचा। उसने देखा- रेस्ट हाउस के बाहर एक दुबला-पतला व्यक्ति गांधी टोपी पहने बैठा है। अफसर ने संदेश उसी के हाथों में देते हुए कहा- यह संदेश रेलमंत्री जी को दे देना। अफसर को कुर्सी पर बैठकर वह व्यक्ति कमरे के अंदर चला गया। उस समय वहां एक पत्रकार भी बैठा हुआ था। अफसर ने उससे पूछा- क्या आप बता सकते हैं कि हमारे रेलवे मंत्री जी कहां ठहरे हुए हैं? आपने जिनके हाथ में संदेश थमाया है, वहीं तो हैं हमारे रेलमंत्री। यह सुनकर वह अफसर अवाक रह गया। तभी शास्त्री जी बाहर निकल आए। अफसर ने फौरन उनसे क्षमा मांगते हुए कहा- मैं आपको व आपकी सादगी को नमन करता हूं। आपके सरल व्यवहार से तो हम सभी को प्रेरणा लेनी चाहिए।

६४०) महान कथाकार - एक युवक ने समाज के दु:ख दर्द की कथा सीधी- सरल भाषा में नई तकनीक के साथ लिखी। वह उसे अपने देश के प्रमुख पत्र पेरी हेराल्ड में प्रकाशित कराने के लिए संपादक के पास ले गया। संपादक युवक को देखकर व्यंग्य से बोला, तुम नए कहानीकार हो। अनुभव और सृजन कला में अपरिपक्व। मैं नहीं समझता कि पेरी हेराल्ड जैसे पत्र के स्तर की कहानी तुम्हारे पास है। यह सुनकर भी युवक सहजता से बोला, सर, मैं अपनी इस कहानी को इस उम्मीद के साथ आपके पास छोड़कर जा रहा हूं कि समय मिलने पर आप इसे एक नजर अवश्य देखेंगे और कमी पाए जाने पर मुझे बताएंगे। ताकि मैं उसे सुधार सकूं। कुछ दिनों बाद वही संपादक उस युवक के दरवाजे पर खड़ा दस्तक दे रहा था। जब युवक ने दरवाजा खोलने पर पेरी हेराल्ड के संपादक को सामने पाया तो वह दंग रह गया। वह बोला, सर, यदि आप सूचित करते तो मैं स्वयं आपके पास आ जाता। संपादक बोले, आना तो मुझे ही था फ्रांस के महान कहानीकार से मिलने। यह सुनकर युवक हैरान रह गया। उसे अपने कानों पर यकीन ही नहीं हुआ। संपादक कह रहे

थे, आपकी कहानी पढ़ने पर उसे उच्च कोटि का पाया गया। आपको महान कहानीकार की पदवी से विभूषित किया गया है। मैं आपको बधाई देने के लिए खुद आया हूं। इसके बाद संपादक ने एक हजार फ्रैंक के नोट युवक के हाथों में पुरस्कारस्वरूप रख दिए और कहा, मैं आशा करता हूं कि भविष्य में भी आप पेरी हेराल्ड के लिए अपनी रचनाएं भेजते रहेंगे। यही युवक बाद में महान कथाकार मोपासां बना।

६४१) देश की सेवा के लिए - यह घटना उस समय की है जब जाकिर हुसैन देश के राष्ट्रपति थे। एक दिन उन्हें एक संबंधी का पत्र मिला जिसमें उसने अपना एक काम करवाने का अनुरोध किया था। जब उसका काम नहीं हो सका तो वह उनसे मिलने चला आया। जाकिर हुसैन अत्यंत विनम्रता के साथ उससे मिले और उसे अपने पास बैठाया। कुछ देर बाद वह संबंधी उनसे अपने काम के बारे में बात करने लगा। जब जाकिर साहब ने उसके काम के बारे में कोई प्रतिक्रिया नहीं दी तो वह अपने मुसलमान होने की दुहाई भी देने लगा- मुसलमान भाई होने के नाते तो आपका फर्ज बनता है कि आप अपने एक योग्य बिरादर का काम कराने में सहयोग दें। अब तो आप देश के सर्वेसर्वा भी हैं। हम आपसे इतनी उम्मीद तो रख ही सकते हैं। संबंधी की बात सुनकर जाकिर हुसैन बोले, देखिए आप बार-बार मुसलमान होने की दुहाई मत दीजिए। देश के लिए हम सबका धर्म एक है और वह है भारतीयता। हम सभी पहले भारतीय हैं। उनके इस जवाब के बाद भी वह संबंधी बहुत देर तक ऐसे ही बोलता रहा। आखिरकार जाकिर साहब ने अपने निजी सचिव को बुलाया और बोले, आप मेरे संबंधी से कह दीजिए कि अब मैं केवल भारतीय हूं। इन्हें मेरी बात समझ ही नहीं आ रही है। इस पद पर मैं देश-सेवा के लिए नियुक्त हुआ हूं। अपने संबंधियों की सेवा के लिए नहीं। यदि यह सज्जन, जो मेरे संबंधी भी हैं, सचमुच योग्यता का दम भरते हैं तो इन्हें मेरी सहायता की क्या जरूरत है? जाकिर हुसैन साहब की ये बातें सुनकर संबंधी का सिर झुक गया और वह चुपचाप वहां से बाहर चला आया।

६४२) बेवजह क्षमा कैसी - हरिवंश राय बच्चन के नाना मुंशी ईश्वरी प्रसाद इलाहाबाद कोर्ट में काम करते थे। एक बार वह कोर्ट के काम से बाहर गए, तो अपने विश्वसनीय सेवक माता भीख को भी साथ ले गए। एक दिन माता ने लौकी की सब्जी और पूरी बनाई। रात में ईश्वरी प्रसाद जब खाने पर बैठे तो माता भीख ने सब्जी-पूरी परोस दी। मुंशी जी ने आंख बंद करके पहले तो भगवान का भोग लगाया, फिर प्रेम से खाने लगे। धीरे-धीरे वे कटोरी की पूरी सब्जी और पूरी खा गए। उनके बाद माता भीख खाना खाने बैठा। पहला ही कौर मुंह में डाला कि उसे मितली आने लगी। लौकी कड़वी थी। वह घबराया कि आज बाबूजी की डांट जरूर पड़ेगी। मगर दूसरे ही क्षण उसके मन में यह बात आई कि बाबूजी इतनी कड़वी सब्जी खाकर भी खामोश कैसे रहे। जरूर कोई न कोई बात उनके मन में जमी होगी। वह अपना खाना बीच में ही छोड़कर डरता-डरता मुंशी जी के कमरे में जा पहुंचा। उसे देखते ही मुंशी बोले- माता खाना खा लिया? वह बोला- आपने वह सब्जी कैसे खाई, वह तो बहुत कड़वी थी। कसूर मेरा ही था कि मैंने बिना चखे आपके सामने सब्जी परोस दी। मुंशी जी बोले- माता, तुमने कोई गलती की ही नहीं तो क्षमा करने का प्रश्न ही कहां है। लौकी अंदर से कड़वी थी, यह तुम्हें कैसे पता चलता। रही बात मेरे खाने की तो तुम मुझे अक्सर स्वादिष्ट व्यंजन बनाकर खिलाते हो। अगर एक दिन कड़वी सब्जी बन ही गई तो इसमें कौन सा पहाड़ टूट पड़ा। एक

बार जिस खाने को भगवान का भोग लगा दिया, तो वह हमारे लिए प्रसाद हो गया।

६४३) ज्ञान की पवित्रता - याज और उपयाज सगे भाई थे। गुरु विश्वासु के आश्रम में अध्ययन के बाद दोनों भाई यज्ञ के लिए लकड़ी लाने जंगल चले जाते थे। एक दिन दोनों भाई लकड़ी लेकर लौट रहे थे। उपयाज ने देखा कि याज बहुत पीछे है और लकड़ी का बंडल नीचे रखकर वह किसी के बाग से आम तोड़कर खा रहा था। उपयाज उसके पास जाकर बोला, बगैर मालिक की आज्ञा लिए फल तोड़कर खाना चोरी है। याज ने कहा, मुझे भूख लगी थी। भूख मिटाने के लिए फल तोड़कर खाना चोरी नहीं है। कुछ समय के बाद आश्रम में उपयाज कुछ गरीब बालकों को खीर खिला रहा था। उसी समय याज वहां आया और बालकों के सामने से खीर उठाकर खाने लगा। उपयाज ने कहा, बालकों के सामने से खीर उठाकर खाना उचित नहीं था। याज ने कहा, अन्न खाने के लिए होता है। उपयाज चुप हो गया। बाद में दोनों भाई महर्षि हो गए। एक दिन पांचाल नरेश द्रुपद ने महर्षि उपयाज से कहा, आपके यज्ञ से ही मेरी इच्छा पूरी होगी। वचन दीजिए कि मेरी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेंगे। महर्षि बोले, राजन वह सब करूंगा जो धर्म सम्मत होगा। द्रुपद ने कहा, मुझे ऐसा पुत्र चाहिए जो द्रोण का वध कर सके। महर्षि उपयाज ने कहा, यह धर्म के विरुद्ध है। ऐसा यज्ञ मुझसे नहीं हो सकता। द्रुपद ने कहा, इस काम के बदले आपके आश्रम को दस हजार स्वर्ण मुद्राएं दान दूंगा। महर्षि बोले, मैं विद्या को विनिमय का साधन नहीं बनाता। द्रुपद ने कहा, और कौन है जो ऐसा यज्ञ करा सकता है। उपयाज ने कहा, मेरे भाई याज के पास चले जाइए। उसके लिए ज्ञान की पवित्रता का कोई महत्व नहीं है।

६४४) ज्ञान प्राप्ति का अर्थ - गौतम बुद्ध आम लोगों का विवेक जगाने के लिए उनका निमंत्रण नि:संकोच स्वीकार कर लेते थे। एक बार एक किसान ने उन्हें अपने गांव आने का निमंत्रण दिया। बुद्ध ने हामी भर दी। वह ठीक समय किसान के गांव पहुंचे। वहां लोगों को मालूम था कि गौतम बुद्ध आनेवाले हैं, इसलिए उन्होंने उनके प्रवचन का आयोजन कर रखा था। बुद्ध प्रवचन देने लगे। लेकिन तभी किसान का बैल बीमार हो गया। उसे बैल की सेवा में लगना पड़ा। वह उसके लिए जड़ी-बूटी की व्यवस्था करने लगा। साथ ही उसे बुद्ध के प्रवचन में न पहुंचने की चिंता भी थी। उलझन के बावजूद वह अपने बैल की देखभाल में लगा रहा। इसका अच्छा असर हुआ और बैल के प्राण बच गए। बैल के इलाज के बाद वह प्रवचन सभा में पहुंचा। तब तक प्रवचन समाप्त हो चुका था। किसान को अंत में पहुंचता देख लोग बुद्ध से किसान की शिकायत करते हुए बोले, देखिए, यह कितना स्वार्थी है कि आपके प्रवचन का आयोजन कर स्वयं ही गायब रहा। इस पर किसान ने हाथ जोड़ते हुए अपनी विपदा बुद्ध को कह सुनाई। सारी बात सुनने के बाद बुद्ध बोले, इसने प्रवचन सुनने की जगह अपने दायित्व को महत्व देकर यह सिद्ध कर दिया कि वह मेरे विचार के मूल तत्व को समझता है। यदि बैल मर जाता तो किसान का प्रवचन सुनना बेकार हो जाता। तब मेरे प्रवचन का भी कोई मूल्य नहीं रह जाता। ज्ञान प्राप्ति का अर्थ जीवन के दायित्वों से भागना नहीं है बल्कि उसे ढंग से समझना और निभाना है। हर समय व्यक्ति को अपने विवेक से ही कार्य करना चाहिए। सभी लोग उनके प्रवचन का सही अर्थ समझ गए।

६४५) सच्चा शासक - एक बार सम्राट अशोक ने सर्वश्रेष्ठ शासक का पुरस्कार देने का निर्णय किया। सभी शासक नियत समय पर राज दरबार में आ पहुंचे। अशोक ने उन्हें अपनी उपलब्धियों के बारे में बताने को कहा। एक राज्य के

शासक ने कहा कि उसके शासनकाल में राज्य की आय दोगुनी हो गई है। दूसरे शासक ने बताया कि उसके शासनकाल में स्वर्ण मुद्राओं के भंडार स्थापित हो गए है। किसी ने कहा कि उसने आधुनिक शस्त्रास्त्रों के निर्माण की व्यवस्था की है। सबने तरह-तरह से अपनी सफलताएं गिनाई। अंत में एक शासक ने सकुचाते हुए कहा, न तो मेरे राजकोष में स्वर्ण मुद्राओं के भंडार लगे हैं, न आय दोगुनी हुई है और न ही आधुनिक शास्त्र एकत्र हुए हैं। मेरे शासनकाल में तो राजकोष और कम हो गया है क्योंकि पिछले दिनों मैंने प्रजा को अधिक से अधिक सुविधा देने के आदेश दिए हैं। मैंने राजकोष का धन पाठशालाएं और अस्पताल खुलवाने में लगा दिया है। युवाओं को रोजगार दिलाने का प्रयास हुआ है। इससे प्रजा प्रसन्न है। इसके अलावा मेरी कोई उपलब्धि नहीं है। अशोक ने उसे विजेता घोषित करते हुए कहा, एक शासक का प्रमुख कर्त्तव्य अपनी प्रजा को सुखी बनाना और उसकी जीविका के साधन उपलब्ध कराना है। दूसरे शासकों ने वह सब हासिल करने की कोशिश की जिससे राज्य सत्ता ताकतवर बने। राज्यतंत्र शक्तिशाली हो और प्रजा कमजोर, यह मुझे स्वीकार नहीं है। तुमने मेरा आदर्श आत्मसात किया है, इसका मुझे संतोष है। दूसरे शासकों को भी इस पर ध्यान देना चाहिए। यह सुनकर अन्य शासकों के सिर शर्म से झुक गए।

६४६) ऊधमसिंह का जवाब - सन १९१९ में बैसाखी के दिन जलियांवाला बाग में एक आम सभा हो रही थी। इसी दौरान अंग्रेज सरकार के नुमाइंदे जनरल डायर ने वहां मौजूद निर्दोष लोगों पर गोलियां चलाने का हुक्म जारी कर दिया। देखते देखते सैकड़ों लोग मारे गए और हजारों घायल हो गए। इसके बाद संपूर्ण भारत में गुस्से की लहर आग की तरह फैल गई। देश के क्रांतिकारियों के बीच भी इस घटना को लेकर बड़ी तीखी प्रतिक्रिया हुई। क्रांतिकारी ऊधमसिंह ने डायर से बदला लेने का बीड़ा उठा लिया। उन्होंने बाकायदा दिन और समय तय करके जनरल डायर को गोली मार दी। लेकिन इसके बाद वह पकड़ लिए गए। गिरफ्तारी के बाद जब उन्हें कोर्ट में मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया तो वह निर्विकार भाव से खामोश, लेकिन गर्व से सिर ऊंचा करके खड़े रहे। कोर्ट की कार्रवाई शुरू होते ही मजिस्ट्रेट ने उनसे प्रश्न पूछने शुरू कर दिए। ठीक उसी समय एक अंग्रेज युवती भीड़ को चीरते हुए वहां आ पहुंचे। उसने मजिस्ट्रेट से ऊधमसिंह से कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति मांगी। अनुमति मिल जाने पर उसने ऊधमसिंह से पूछा- तुम्हारी रिवॉल्वर मे तीन गोलियां बाकी थी। फिर भी तुमने मुझ पर गोली क्यों नहीं चलाई? ऐसा करके तो तुम आसानी से भाग भी सकते थे। ऊधमसिंह इस युवती को फौरन पहचान गए। दरअसल उसी के कारण वह गिरफ्तार हुए थे। उन्होंने विनम्रता से कहा- बहन। हम भारतीय लोग हैं। नारी पर हाथ उठाना हमारी संस्कृति के विरुद्ध है। इसी कारण मैंने आप पर गोली नहीं चलाई। वह अंग्रेज युवती ऊधमसिंह का यह जवाब सुनकर श्रद्धा से अभिभूत हो गई।

६४७) दो वह, जो पाना चाहते हो - महादेव गोविंद रानाडे बचपन से ही अत्यंत दयालु थे। उनके मित्रों में उनकी नौकरानी का बेटा भी शामिल था। रानाडे नौकरानी के बेटे के साथ खेलते थे और अपनी हर चीज उनसे मिल-बांटकर खाते थे। एक दिन रानाडे की मां ने लड्डू बनाए। उन्होंने दो लड्डू रानाडे को देते हुए कहा, बेटा, इसमें से एक लड्डू तुम खा लेना और दूसरा अपने मित्र को दे देना। रानाडे अपने मित्र के पास गए और बड़ा लड्डू मित्र को दे दिया व छोटा लड्डू स्वयं खाने लगे। यह देखकर उनका मित्र बोला, तुमने मुझे बड़ा लड्डू क्यों दिया? रानाडे मुस्करा कर बोले, तुम मेरे सबसे प्रिय

दोस्त हो और दोस्त को हमेशा वह चीज देनी चाहिए जैसी हम अपने लिए कल्पना करते हैं। मेरा मन भी बड़ा लड्डू पाने का था, इसलिए मैंने वह तुम्हें दे दिया। मित्र रानाडे के गले लग गया और उसकी आंखों से आंसू निकल आए। वह बोला, रानाडे, मैं तुम्हें जीवन भर नहीं भूलूंगा और अपने जीवन में हमेशा अपने सच्चे दोस्तों को वही स्थान दूंगा जो तुमने मुझे दिया है। इसके बाद मित्र वहां से चला गया। रानाडे की मां यह देख रही थी। मित्र के जाने के बाद वह बोली, बेटा, तुम्हें यह विचार कैसे आया कि सच्चे दोस्त को उसी तरह कोई वस्तु देने का प्रयास करना चाहिए जैसी हम स्वयं पाना चाहते हैं। रानाडे बोले, मां, हम सभी को ज्यादा अच्छी वस्तु आकर्षित करती है। हमें दूसरों की भावना का सम्मान करते हुए उन्हें वह देने का प्रयास करना चाहिए जो वह पाना चाहते हैं लेकिन पा नहीं सकते। यह जवाब सुनकर रानाडे की मां ने उन्हें गले से लगा लिया।

६४८) बापू की उम्मीद - यह घटना सन १९३६ की है। उन दिनों बापू वर्धा से सेवाग्राम चले गए थे। वहां उन्होंने आसपास के ग्रामीणों से संपर्क करना प्रारंभ कर दिया। वे रोज उन लोगों को सफाई का महत्व बताते और नियमित रूप से उस क्षेत्र में सफाई भी करते। कभी गलियों में झाड़ू लगाते तो कभी मैले-कुचैले नन्हें बच्चों को स्नान कराते। यहां तक कि बापू उनके गंदे कपड़ों को धोने में भी संकोच नहीं करते थे। ऐसा करते हुए बापू को दो-तीन महीने हो गए। लेकिन वहां के लोगों में स्वच्छता व सफाई के प्रति कोई लगाव नजर नहीं आया। वे मैले-कुचैले ही घूमते रहते। बापू के साथ आए कार्यकर्ता ये सब देख रहे थे। एक दिन एक कार्यकर्ता बापू से बोला, बापू, आपको इन लोगों की सेवा करते हुए महीनों बीत गए, पर कोई परिणाम दिखाई नहीं देता। अपनी सफाई तो छोड़ो, ये तो बच्चों को भी साफ नहीं रखते। वे गंदा पहनते हैं, गंदा खाते हैं। यदि आपने खुद उन्हें साफ कपड़े पहना दिए या अच्छा भोजन करा दिया तो ठीक, वरना उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। कार्यकर्ता की बात सुनकर बापू बोले, बस इतने में ही धैर्य खो दिया। अरे भाई, जिन ग्रामीणों की हम सदियों से उपेक्षा करते आए हैं, उनकी कुछ वर्षों तक तो नि:स्वार्थ सेवा करनी ही होगी। आपको धैर्य के साथ काम लेना होगा। देश धीरे-धीरे ही प्रगति के पथ पर बढ़ता है। <u>नवनिर्माण में किसी चमत्कार की आशा नहीं करनी चाहिए</u>। आज भले ही स्वच्छता के प्रति इनके मन में उपेक्षा का भाव हो, पर एक दिन ऐसा जरूर आएगा जब सफाई इनके जीवन का एक अंग बन जाएगी। कार्यकर्ता गांधीजी की बात समझकर सहमत हो गए।

६४९) परमार्थ की सीख - एक जमींदार ने धान की रखवाली के लिए अनेक नौकर तैनात कर दिए। वे रात-दिन रखवाली करते, लेकिन फिर भी पक्षी आते और फसल खा जाते। परेशान होकर जमींदार ने रखवालों को जाल फैलाने का आदेश दिया, ताकि पक्षियों को पकड़ा जा सके। एक दिन उसमें एक सुंदर पक्षी फंस गया। नौकरों ने उसे पकड़ा और जमींदार के पास ले गए। उन्होंने कहा, मालिक, यह पक्षी रोज हमारे खेतों से भरपेट धान खाता है और खाने के बाद कुछ धान की बालियों को मुंह में दबाकर उड़ जाता है। जमींदार ने कहा अच्छा ठीक है। अब हम इसे सजा देंगे। तभी पक्षी बोल पड़ा, सजा देने से पहले आप मेरी भी सुन लें? जमींदार ने कहा, ठीक है कहो। पक्षी ने अपना पक्ष रखते हुए कहा, आपके इतने बड़े खेत से मेरे चोंच भर हिस्सा लेने से आपका कुछ विशेष नहीं घट जाएगा। मैं अपने खाने के बाद सिर्फ छह बालियां लेकर जाता हूं। जमींदार ने पूछा, किसलिए? पक्षी ने कहा, मैं दो बालियां अपने वृद्ध माता-पिता के लिए

लेकर जाता हूं। उन्हें अब दिखाई नहीं देता। जब तक वे युवा व स्वस्थ थे, उन्होंने पूरे मन से मेरा पालन-पोषण किया। लेकिन अब वे अस्वस्थ और बूढ़े हो गए हैं। मेरा यह कर्त्तव्य बनता है कि मैं भी उनका पालन-पोषण करूं और कभी उन्हें भूखा नहीं रखूं। दो बालियां मैं अपने बच्चों के लिए ले जाता हूं और दो बालियां अपने बीमार पड़ोसी पक्षियों के लिए। यह परमार्थ के लिए है। यदि इतना भी परमार्थ न कर सकूं तो यह जीवन कैसा जीवन? जमींदार ने उसकी यह सीख अपने जीवन में भी अपनाने का निश्चय कर लिया।

६५०) जनता के दिल में जगह - पं. मदनमोहन मालवीय समाज सुधार के कार्यों के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। सन १९०१ में वे प्रयाग में नगरपालिका के सदस्य थे। इसी दौरान नगर में भयंकर महामारी फैल गई। उससे बचने के लिए भारी संख्या में लोग अपने असमर्थ सगे-संबंधियों को छोड़कर कुछ समय के लिए दूसरे स्थानों पर रहनेवाले अपने परिचितों के पास चले गए। ऐसे में केवल बुजुर्ग और अशक्त लोग ही वहां बचे रह गए या फिर ऐसे लोग जो इस महामारी की चपेट में आ चुके थे। ऐसी विकट स्थिति में मालवीय जी ने अपनी जरा भी परवाह किए बगैर, खुद आगे बढ़कर लोगों की मदद करने का निश्चय किया। उन्होंने घर-घर जाकर सबका हालचाल लेना शुरू किया और पता लगाया कि लोग किस कदर महामारी के प्रकोप से परेशान हैं। इसके बाद वह यथासंभव मदद करने में जुट गए। सबसे पहले जो लोग स्वस्थ थे, उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया। फिर सभी घरों में कीटनाशक का छिड़काव कराया। सभी को दवाएं उपलब्ध कराई। जो लोग रोग की चपेट में आ चुके थे उनके उपचार की व्यवस्था कराई गई। भारी संख्या में लोगों को अस्पताल पहुंचाया गया। जो लोग बेसहारा हो चुके थे, उनके भोजन व रहने की व्यवस्था कराई गई। कुछ समय में ही धीरे-धीरे स्थिति नियंत्रण में आने लगी। पंडितजी के इस निष्काम सेवा-भाव ने उन्हें जनता के बीच ऐसा नेता बना दिया जो जनता के दिलों में बस गया। सन् १९०१ से १९१६ तक वे प्रयाग म्युनिसिपैलिटी के सदस्य और उपाध्यक्ष व अध्यक्ष पद पर भी रहे। उन्होंने प्रयाग का कायाकल्प कर दिखाया। इसीलिए आज भी लोग उन्हें याद करते हैं।

६५१) इच्छाशक्ति और लगन - एक नौजवान व्यापारी अपनी लगन और कठोर परिश्रम के चलते शहर का सबसे धनी और सम्मानित व्यक्ति बन गया। लेकिन धीरे धीरे वह घमंडी और लापरवाह हो गया। उसे व्यापार में घाटा हुआ और वह कर्जदार हो गया। एक दिन हताश और निराश एक पार्क में बैठा था। वहां एक बुजुर्ग ने उसकी चिंता का कारण पूछा। उसने अपनी पूरी स्थिति बयान कर दी। सुनकर बुजुर्ग बोले, मुझे तुम सच्चे और ईमानदार व्यक्ति लगते हो। यदि मैं तुम्हें दस लाख रुपये का ब्याज रहित कर्ज दे दूं तो क्या तुम्हारी समस्या हल हो जाएगी? युवक बोला, ऐसा हो जाए तो मैं आजीवन आपका कृतज्ञ रहूंगा। बुजुर्ग ने युवक को तुरंत १० लाख रुपये का एक चेक दिया और कहा कि ठीक एक साल बाद हम यहीं मिलेंगे। तुम मुझे मेरी रकम लौटा देना। युवक ने कृतज्ञ आंखों से उस दयालु व्यक्ति को जाते हुए देखा। उसने घर आकर सोचा कि उस भले व्यक्ति ने उस पर विश्वास करके चेक दिया है। लेकिन इसे यह भुनाएगा नहीं और अपने धन से ही काम चलाएगा। उसका विश्वास किसी भी हालत में टूटने नहीं देगा। वह पूरे आत्मविश्वास से अपने काम में जुट गया। उसकी दृढ़ इच्छा शक्ति और लगन के चलते उसका काम पहले से भी अच्छा लगने लगा। निश्चित दिन

युवक उसी पार्क में बुजुर्ग के दिए चेक के साथ पहुंच गया। जल्दी ही वह बुजुर्ग व्यक्ति भी वहां पहुंचा। परंतु इस बार उसके साथ एक नर्स और कुछ अन्य सेवक भी थे। एक नर्स के साथ आए सेवकों ने उसे बताया कि वह बुजुर्ग वास्तव में मानसिक रोगी है जो खुद को अमीर बताकर फर्जी चेक बांटता रहता है।

६५२) किसी को छोटा न समझो - एक बार विख्यात दार्शनिक और विद्वान प्लेटो से कुछ लोग मिलने आए। उनसे कई विषयों पर चर्चा हुई। प्लेटो उनके प्रश्नों के उत्तर देते, फिर उनसे भी कुछ पूछते। आगंतुक आए तो थे प्लेटो से कुछ सीखने, लेकिन उलटे प्लेटो ही उनसे सीखने लगे। यह देखकर उन्हें बड़ी हैरानी हुई। मन ही मन वे सोचने लगे- शायद प्लेटो के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है। वे उतने बड़े विद्वान हैं नहीं, जितना बताया जाता है। वह भी हम लोगों की तरह साधारण व्यक्ति हैं। उनके जाने के बाद प्लेटो का एक शिष्य बोला, आप दुनिया के जाने-माने विद्वान और दार्शनिक हैं, इसलिए आपके पास लोग आते हैं कुछ जानने-समझने के लिए। लेकिन आप उल्टे उन्हीं से कुछ न कुछ पूछते रहते हैं। ऐसा लगता है कि आपको कुछ आता ही नहीं। आप एक साधारण व्यक्ति जैसा व्यवहार करते हैं। आनेवाले लोग क्या सोचते होंगे। यही न कि प्लेटो एक साधारण व्यक्ति है। इससे तो आपके मान-सम्मान और मर्यादा का ऱ्हास होगा। प्लेटो ने कहा, लोग जो कुछ सोचते हैं, वे सही सोचते हैं। मैं तो इतना जानता हूं कि जो व्यक्ति अपने को महान विद्वान और वैज्ञानिक समझने लगता है, वह या तो सबसे बड़ा मूर्ख होता है या वह झूठ बोलता है। हर व्यक्ति में कुछ न कुछ सोचने-समझने की क्षमता मौजूद है, भले ही वह कह नहीं पाता या उसे अवसर नहीं मिलता। प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक शब्द का महत्व है। ज्ञान अथाह है। उसकी सीमा नहीं। मेरा ज्ञान समुद्र की एक बूंद के बराबर है। जिस तरह एक एक बूंद से समुद्र बनता है, उसी तरह एक-एक शब्द से ज्ञान बढ़ता है। इसलिए किसी को छोटा मत समझो।

६५३) मन की महिमा- एक बार भगवान बुद्ध के दो शिष्य उनसे मिलने जा रहे थे। पूरे दिन का सफर था। चलते-चलते रास्ते में एक नदी पड़ी। उन्होंने देखा कि उस नदी में एक स्त्री डूब रही है। बौद्ध भिक्षुओं के लिए स्त्री का स्पर्श वर्जित माना जाता है। ऐसी दशा में क्या हो? उन दोनों भिक्षुओं में से एक ने कहा- हमें धर्म की मर्यादा का पालन करना चाहिए। स्त्री डूब रही है तो डूबे। हमें क्या? लेकिन दूसरा भिक्षु अत्यंत दयावान था। उसने कहा- हमारे रहते कोई इस तरह मरे, यह तो मैं सहन नहीं कर सकता। इतना कहकर वह पानी में कूद पड़ा डूबती स्त्री को पकड़ लिया और कंधे का सहारा देकर किनारे पर ले आया। दूसरे भिक्षु ने उसकी बड़ी भर्त्सना की, रास्ते भर वह कहता रहा कि मैं जाकर तथागत से कहूंगा कि आज तुमने मर्यादा का उल्लंघन करके कितना बड़ा बाप किया है। दोनों बुद्ध के सामने पहुंचे तो दूसरे भिक्षु ने एक सांस में सारी बातें कह सुनाईं - भंते मैंने इसको बहुत रोका, पर यह माना ही नहीं। बड़ा भयंकर पाप किया है इसने। बुद्ध ने उसकी बात बड़े ध्यान से सुनी, फिर पूछा- इस भिक्षु को उस स्त्री को कंधे पर बाहर लाने में कितना समय लगा होगा? कम से कम पंद्रह मिनट तो लग ही गए होंगे। अच्छा। बुद्ध ने पूछा- इस घटना के बाद यहां आने में तुम लोगों को कितना समय लगा? भिक्षु ने हिसाब लगाकर उत्तर दिया- यही कोई छः घंटे। बुद्ध ने कहा- भले आदमी, इस बेचारे ने तो उस स्त्री को पंद्रह मिनट ही अपने कंधे पर रखा, लेकिन तू तो उसे छः घंटे से अपने मन में बिठाए हुए है। बोल दोनों में बड़ा पापी कौन है? बेचारा भिक्षु निरुत्तर हो गया। वह समझ गया कि मन की बड़ी महिमा है।

६५४) भीतर का दीपक -एक आदमी रोज सुबह के वक्त मंदिर जाता और एक दीपक जलाकर रख आता। यह सिलसिला काफी लंबे अर्से से चला आ रहा था। मंदिर के ठीक सामने अपने घर की बैठक में बैठे एक नौजवान ने एक दिन उसे देख लिया। जब वह दीपक जलाकर जाने लगा तो उसने उसे रोककर पूछा- भाई साहब, भगवान में आपकी बड़ी गहरी श्रद्धा मालूम होती है। न जाड़ा देखते हो, न गर्मी, न बरसात, नित्य नियम से यहां आकर दीया जला जाते हो। वह आदमी हंसा और बोला- सवाल श्रद्धा का नहीं, दूसरा है। एक बार की बात है, मैं एक मुकदमे में फंस गया। तब मैंने भगवान से प्रार्थना की कि मैं मुकदमा जीत जाने पर रोज मंदिर में आकर दीपक जलाया करूंगा। भगवान ने मेरी सुन ली। मेरी जीत हो गई। उसी दिन से मैं बराबर अपने वचन का पालन कर रहा हूं। नौजवान ने उत्सुकता से पूछा- क्यों भाई, वह मुकदमा क्या था? गंभीर होकर वह आदमी बोला- अरे क्या बताऊं, मैंने नीचे के लोगों को मिलाकर एक जमीन अपने नाम करा ली। पड़ोसी उस मामले को अदालत में ले गया। भगवान ने कृपा करके पड़ोसी को हरा दिया और बस, वह जमीन मेरी हो गई। नौजवान ने उस आदमी को कठोर दृष्टि से देखा और कहा- हमने तो सुना था कि भगवान सदा न्याय में साथ देते हैं, अन्याय में नहीं। आदमी ने बुरा मुंह बनाते हुए कहा- कैसी बेतुकी बातें करते हो। नौजवान ने उसे टोका, तुम बाहर भले ही दीपक जलाते हो, लेकिन तुम्हारे भीतर का दीपक तो तब से बुझा ही पड़ा है। नौजवान की बात समझते ही आदमी का सिर शर्म से झुक गया।

६५५) मुक्ति और जवाबदेही - उन दिनों चारों ओर रामकृष्ण परमहंस की चर्चा फैल रही थी। युवा पीढ़ी में उनका शिष्य बनने की होड़ सी लग गई थी। दूर-दूर से युवक आते और उनका शिष्य बनने की प्रार्थना करते। एक दिन इसी उद्देश्य से एक उत्साही युवक रामकृष्ण परमहंस के पास पहुंचा। परमहंस के चरणों में झुककर उसने कहा, हे गुरुदेव, मुझे अपना शिष्य बना लीजिए और गुरुमंत्र दीजिए ताकि मैं भी एक संत बन सकूं। युवक की बात सुनकर परमहंस मुस्कराए। कुछ देर बाद उन्होंने उससे पूछा, ये बताओ, तुम्हारे परिवार में तुम्हारे अलावा और कौन-कौन हैं? युवक ने उत्तर दिया, मेरे अलावा सिर्फ मेरी बूढ़ी मां है। परमहंस कुछ देर मौन रहे, फिर पूछा, तुम गुरुमंत्र लेकर साधु क्यों बनना चाहते हो? युवक बोला, मैं इस मोहमाया और ऊंच-नीच से भरे संसार को छोड़कर मुक्ति पाना चाहता हूं। इस पर परमहंस ने समझाया, तुम मुक्ति नहीं चाहते, बल्कि अपनी जवाबदेही से भाग रहे हो। मुक्ति तो एक बहाना है। तुम्हें लगता है कि साधु बनकर तुम बिना किसी दायित्व के जीवनयापन करोगे। तुम्हारा काम तो चल ही जाएगा, बाकी लोग चाहे जो करें। यह साधना नहीं पलायन है। आजकल बहुत से लोग ऐसा ही कर रहे हैं। यह अपनी शक्ति का दुरुपयोग है। समझ लो, अपनी बूढ़ी मां को असहाय छोड़कर तुम्हें मुक्ति कभी नहीं मिलेगी। तुम्हारी सच्ची मुक्ति तो इसी में है कि तुम पूरी शक्ति के साथ अपनी बूढ़ी और असहाय मां की सेवा करो। उनकी सेवा ही ईश्वर की भक्ति है। वैसे भी मां को ईश्वर के समान माना गया है। युवक ने साधु बनने की योजना छोड़ दी और घर लौटकर अपनी मां की सेवा में जुट गया।

६५६) गीता का प्रभाव - ब्रिटेन के वैज्ञानिक डॉ. जॉन बड्न सेंटरसन हाल्डेन ने १९२२ में क्रैंब्रिज विश्वविद्यालय में शरीर के अंदर होनेवाली रासायनिक क्रियाओं पर अनुसंधान कर पूरे संसार में ख्याति प्राप्ति की। इस अनुसंधान के बाद उनकी दिलचस्पी आध्यात्मिक विषयों की ओर बढ़ने लगी। उन्होंने सोचा कि अब धर्म और आध्यात्मिक रहस्यों का

अध्ययन कर लें। बस फिर क्या था, उन्होंने कुछ ही समय में लगकर अनेक हिंदू धर्म ग्रंथों का अध्ययन कर डाला। सबसे अंत में वह गीता पढ़ने लगे। जैसे-जैसे वह गीता का एकाग्रता से मनन करते गए, वैसे-वैसे उनका मोह भौतिक वस्तुओं से हटता गया। उन्हें यह अहसास होता गया कि भौतिकवादी साधनों से कभी भी मानव को सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो सकता। १९५१ में वह अपनी पत्नी के साथ भारत आए। यहां घूमते हुए वह भुवनेश्वर पहुंचे। वहां अनेक धर्म प्रचारक भी मौजूद थे। अचानक ब्रिटेन के एक धर्म प्रचारक ने उनसे पूछा, आप एक अंग्रेज होते हुए भी गीता को सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ क्यों मानते हैं? उस धर्म प्रचारक की बात सुनकर हाल्डेन शांत भाव से बोले, गीता निरंतर निष्काम कर्म करते रहने की प्रेरणा देकर आलसी लोगों को भी कर्म से जोड़ती है। वह किसी संप्रदाय या धर्म का नहीं, मानव मात्र के कल्याण का संदेश देती है। इसलिए मुझे गीता ने बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। मैं वैज्ञानिक होकर भी इसे अपने काम के लिए उपयोगी मानता हूं। दूसरे क्षेत्रों के लोगों के लिए भी यह उपयोगी है। ब्रिटेन के धर्म प्रचारक हाल्डेन की यह बात सुनकर बहुत प्रभावित हुए।

६५७) सबकी अपनी भूमिका - वीर योद्धा रुद्रसेन एक दिन एक संत से मिलने उनके आश्रम पहुंचा। संत प्रार्थना में लीन थे। प्रार्थना पूरी होने पर रुद्रसेन ने उनसे कहा- महात्मन्, मैं स्वयं को बहुत हीन अनुभव करता हूं। न जाने कितनी ही बार मैंने मृत्यु को अपने समक्ष देखा है और हमेशा निर्बलों की रक्षा की है। परंतु आज आपको ध्यानमग्न देखकर मुझे लग रहा है कि मेरे होने या ना होने का कोई महत्व नहीं है। संत मुस्कुराए, थोड़ी प्रतीक्षा करो। मैं आगंतुकों से मिलने के बाद तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा। एक-एक कर सभी आगंतुकों की शंका का निवारण कर उन्हें विदा करने के बाद संत उसे उद्यान में ले गए। आसमान में पूर्णिमा का चांद आलोकित था और संपूर्ण वातावरण में दिव्य शांति व्याप्त थी। संत ने रुद्रसेन से कहा, चंद्रमा बहुत सुंदर है न? रुद्रसेन-जी, इसमें कोई शक नहीं।

संत- यह तो तुम जानते हो कि रातभर पूरे नभमंडल को नापता हुआ वह अस्त हो जाएगा और कल सूर्योदय होगा। सूर्य की प्रचंड दीप्ति के सामने चंद्रमा का क्षीण प्रकाश कुछ नहीं है। पर मैंने चंद्रमा को यह शिकायत करते नहीं सुना कि मैं सूर्य की भांति क्यों नहीं चमकता? मैं इतना तुच्छ क्यों हूं? रुद्रसेन ने कहा, सूर्य और चंद्रमा का अपना-अपना सौंदर्य है। दोनों की तुलना नहीं की जा सकती। संत बोले, यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। हम दोनों अलग-अलग प्रकार के व्यक्ति हैं और अपनी आस्था तथा विश्वास के अनुरूप हम दोनों ही दुनिया को बेहतर बनाने के लिए कर्म कर रहे हैं। तुम्हें हीनता का बोध नहीं होना चाहिए। रुद्रसेन ने संत को प्रणाम किया और संतुष्ट होकर आश्रम से चला गया।

६५८) तीन जरूरी बातें - एक दिन पिता ने अपने तीनों बेटों को अपने पास बुलाया और कहा, हमारे यहां नाशपाती का कोई पेड़ नहीं है। मैं चाहता हूं, तुम सब चार-चार महीने के अंतराल पर उसके पेड़ की खोज में जाओ और पता लगाओ कि वह कैसा होता है? तीनों बेटे बारी-बारी से गए और लौट भी आए। पिता ने उन्हें अपने पास बुलाया और पेड़ के बारे में बताने को कहा। पहला बेटा बोला, पिताजी, वह तो बिलकुल उदास और सूखा हुआ पेड़ था। दूसरे बेटे ने पहले को बीच में ही रोकते हुए कहा, नहीं-नहीं, वो बिलकुल हरा-भरा पेड़ था, लेकिन उस पर फल एक भी नहीं लगा था। तीसरा बेटा बोला- भैया लगता है तुम कोई गलत पेड़ देख आए। मैंने सचमुच नाशपाती का पेड़ देखा, वो तो बहुत शानदार और फलों से लदा था। तीनों आपस में विवाद करने लगे। तभी पिताजी बोले, तुम्हें ऐसे झगड़ने की कोई जरूरत

नहीं है। तुम तीनों ही पेड़ का सही वर्णन कर रहे हो। मैंने जानकर तुम्हें अलग-अलग मौसम में भेजा था। जो तुमने देखा, वो उस मौसम के अनुसार था। अब मैं चाहता हूं कि तुम तीन बातें गांठ बांध लो- पहली, किसी चीज के बारे में सही और पूरी जानकारी चाहिए, तो उसे लंबे समय तक देखो- परखो। दूसरी, हर मौसम एक सा नहीं होता। जैसे वृक्ष मौसम के अनुसार सूखता, हरा-भरा या फलों से लदा रहता है, उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में भी उतार चढ़ाव आते रहते हैं। कभी बुरे दौर से गुजर रहे हो तो हिम्मत और धैर्य बनाए रखो। समय अवश्य बदलता है और तीसरी बात- अपनी बात को सही मानकर उसी पर अड़े मत रहो। दूसरों के विचारों को भी सुनो।

६५९) जोड़ना या तोड़ना - एक बार संत बाबा फकीर से मिलने के लिए एक राजा बहुत दूर से आया। राजा बड़ा ही अहंकारी था, लेकिन उसे किसी ने बताया था कि बाबा से मिलकर उसमें बड़ा अच्छा बदलाव आ सकता है। वह बाबा के लिए उपहार के रूप में एक नायाब तलवार लेकर आया था। उसने बाबा से बड़े सलीके से कहा, बाबा, यह भेंट मैं आपके लिए खास तौर पर लाया हूं। तलवार देखकर बाबा फकीर बोले, राजन्, मैं तुम्हारा बहुत शुक्रगुजार हूं कि तुम मेरे लिए ऐसी बेशकीमती तलवार लेकर आए। लेकिन मेरे लिए तो यह किसी काम की नहीं है। तुम मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो एक सुई उपहार में दे दो। वह मेरे लिए सौ तलवारों से भी कहीं अधकि कीमती होगी। बाबा की बात सुनकर राजा दंग रह गया और बोला, बाबा एक सुई सौ तलवारों का मुकाबला भला कैसे कर सकती है? बाबा बोले, तलवार लोगों को मारने-काटने का काम करती है। कोई बेशकीमती तलवार भी सिर्फ खून बहाने और काटने का काम ही कर सकती है, जबकि एक छोटी-सी सुई फटे कपड़ों को भी जोड़ती है। तोड़ना आसान है और जोड़ना कठिन। अब तुम्हीं बताओ, ऐसे में कौन ज्यादा कीमती है? तलवार का अहंकार या सुई की विनम्रता। राजा बाबा की बात का संकेत फौरन समझ गया और उनके चरणों में अपना सिर रखकर बोला, बाबा, आपने आज मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी है। अब से मैं जीवन भर जोड़ने के बारे में सोचूंगा और पूरी विनम्रता व समर्पण से अपने राज्य की प्रजा की सेवा किया करूंगा। इसके बाद उसने बाबा के सामने ही वह तलवार दूर फेंक दी और अपना अहंकार भी छोड़ दिया।

६६०) असाधारण सफलता - एक राजदूत अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट से मिलकर बड़ा प्रभावित हुआ। उसने उनसे कहा, मैं आपसे एक निजी सवाल पूछना चाहता हूं? रूजवेल्ट बोले, क्या पूछना चाहते हो, पूछो। राजदूत बोला, सर, क्या जीवन में सफलता हासिल करने के लिए असाधारण योग्यता का होना जरूरी है? क्या आप भी इसी कारण इस पद पर विराजमान हुए हैं। या फिर साधारण होने पर भी असाधारण योग्यता पाई जा सकती है? रूजवेल्ट राजदूत का यह सवाल सुनकर मुस्कराने लगे और बोले, मैं इसका जवाब तुम्हें अपने उदाहरण से देना चाहूंगा। सफलता पाने के पीछे दो बातें महत्वपूर्ण हैं। पहली- वह काम जिसे केवल असाधारण प्रतिभावाले ही कर सकते हैं और करते हैं। असाधारण प्रतिभावाले गूढ़ और दुष्कर कार्य को भी अपनी प्रतिभा और कौशल के बल पर हल कर एक महान व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं। दूसरी- जब मनुष्य उस काम को करने में तन-मन और एकाग्रता से जुट जाता है तो सहज होता है और प्रत्येक मनुष्य उसे कर भी सकता है किंतु अधिकतर लोग आलस और अन्य व्यस्तताओं के चलते ऐसा नहीं करते। इसलिए दूसरी तरह से सफलता भी उन्हीं लोगों को मिलती है जो तन्मयता और धैर्य से काम करते हुए अपना लक्ष्य पाने में लगे रहते हैं। मुझमें

भी असाधारण प्रतिभा नहीं है। हां, काम सफलता की हद तक करने का जुनून जरूर है। इसी ने मुझे आज यहां पहुंचाया है। साधारण योग्यता होने पर भी सभी लोग असाधारण सफलता हासिल कर सकते हैं। लेकिन इसके लिए सतत प्रयत्नशील होना जरूरी है। जवाब सुनकर राजदूत संतुष्ट हो गया।

६६१) भिखारी की सीख - एक व्यक्ति भीख मांगकर अपना गुजारा करता था। उसका वृद्ध शरीर इतना जर्जर हो चुका था कि उसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। उसकी आंखों की ज्योति लगभग जा चुकी थी और शरीर में कुष्ठ हो गया था। एक युवक रोज उस भिखारी को देखता। उसे देखकर युवक के मन में घृणा और दया के भाव एक साथ उमड़ते थे। वह सोचता, इसके जीने का क्या फायदा? जीवन से इसे इतना लगाव क्यों है? ईश्वर इसे मुक्ति क्यों नहीं दे देते? एक दिन जब उससे नहीं रहा गया, तो वह भिखारी के पास जाकर बोला, बाबा तुम्हारी इतनी बुरी हालत है, फिर भी तुम जीना चाहते हो और भीख मांगते हो। तुम ईश्वर से यह प्रार्थना क्यों नहीं करते कि वह तुम्हें इस नारकीय जीवन से मुक्त कर दे। इस पर भिखारी कुछ देर तक मौन रहा फिर बोला, बेटा, जो तुम कह रहे हो वही बात मेरे मन में भी उठती है। मैं ईश्वर से बार-बार यही प्रार्थना करता हूं। पर वह मेरी सुनता ही नहीं। शायद वह चाहता है कि मैं इसी धरती पर बना रहूं ताकि दुनियावाले मुझे देखें और समझें कि एक दिन मैं उन्हीं की तरह था, लेकिन कभी वह दिन भी आ सकता है जब किसी कारणवश वे भी मेरी ही तरह हो जाएं। इसलिए किसी को भी अपने ऊपर किसी भी तरह का अभिमान नहीं करना चाहिए। मनुष्य की जिंदगी में सब दिन हमेशा एक से नहीं रहते। युवक भिखारी के शब्दों में छिपी बातों का मर्म समझ गया। उसे लगा कि भिखारी ने उसकी आंखें खोल दीं हैं। इसके बाद जीवनभर उसने फिर किसी के जीवन को हेय समझने की गलती नहीं की।

६६२) लड़ाई की जड़ - एक बार एक बूढ़ा शहद से भरी मटकी लेकर जा रहा था। रास्ते में उसका पांव एक छोटे से पत्थर पर पड़ा तो वह लड़खड़ाया और थोड़ा शहद टपक गया। बूढ़ा तो आगे चल दिया, मगर शहद पर कई मक्खियां आकर बैठ गईं। मक्खियों को एक गिलहरी ने देखा तो वह फौरन उन पर झपटीं। मक्खियां उड़ गईं। तभी एक बिल्ली ने गिलहरी पर झपट्टा मारा। गिलहरी फौरन भाग गई। तभी एक कुत्ता गुर्राता हुआ बिल्ली की तरफ झपटा। बिल्ली तो भाग गई मगर अचानक एक और कुत्ता वहां आ पहुंचा। दोनों आपस में लड़ने लगे। इतने में कुत्तों के मालिक भी आ गए और उन्हें शांत करने लगे। लेकिन कुत्ते शांत नहीं हुए तो वे एक दूसरे के कुत्ते को ही पीटने लगे और फिर आपस में ही झगड़ पड़े। बात बढ़ी तो उनके घरवाले और दोस्त भी आ गए। कुछ देर बाद दोनों तरफ के मोहल्लेवाले भी लाठियां लेकर आ डटे। जमकर मारपीट होने लगी। कई लोग जख्मी हो गए। एक साधु ने एक बुढ़िया से पूछा, ये लड़ाई क्यों हो रही हैं? बुढ़िया खामोश रही तो साधु ने एक लड़के से पूछा। उसने भी कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन जब साधु को लड़ाई की असली वजह पता चली तो उसने भीड़ को शांत होने को कहा। बस, लड़ाई रुक गई। साधु ने पूछा, बिना बात समझे लड़नेवाले को आप क्या कहेंगे? सभी मौन थे। साधु फिर बोला, हमारे यहां लड़ाई की जड़ यही है कि लोग जानते नहीं कि वे किस बात पर झगड़ रहे हैं। लड़ाई की जड़ जान लेंगे, तो कभी झगड़ा फसाद नहीं होगा। साधु की बात सुनकर कुत्तों के मालिकों ने एक दूसरे से क्षमा मांगी।

६६३) संत की शिक्षा - एक मल्लाह यात्रियों को बिठाकर नदी पार कराने का काम करता था। मल्लाह बिना किराया तय किए ही लोगों को बैठा लेता और पार उतारने पर उनसे पैसे मांगता। इस पर कई बार झंझट हो जाता। एक दिन एक संत उसकी नाव में बैठे। मल्लाह को उन्होंने रास्ते में दो शिक्षाएं दीं। एक तो यह कि यात्रियों को नाव में चढ़ाने से पहले ही किराया ले लिया जाए या तय कर लिया जाए और दूसरी बात, वह बात-बात में आवेश में न आया करे। नाव से उतरने पर मल्लाह ने संगत से किराया मांगा। संत ने कहा- वत्स, हम तो संत हैं। हमारे पास रुपया पैसा नहीं जो हम तुम्हें दे सकें। हालांकि मैंने तुम्हें जो शिक्षाएं दी हैं, वे भी कम मूल्यवान नहीं। तुम उन पर अमल करो तो तुम्हारा जीवन बदल जाएगा।

मल्लाह बोला- मुझे शिक्षा नहीं, पैसा चाहिए। उसके बगैर मैं आपको यहां से नहीं जाने दूंगा। मल्लाह का गुस्सा बढ़ने लगा। इतने में वहां मल्लाह की पत्नी भोजन लेकर आई। संत को देखकर उसने उन्हें प्रणाम किया और पति को समझाते हुए बोली- ये बहुत ज्ञानी हैं। राजा इन्हें बहुत मान देते हैं। इनसे झगड़ना ठीक नहीं। यह सुनकर मल्लाह का क्रोध और भड़क गया और उसने थाली सहित भोजन उठाकर नदी में फेंक दिया। समाचार राजा तक पहुंचा तो उसने सैनिक भेजकर मल्लाह को कारागार में डलवा दिया। संत ने जाकर उसे छुड़ाया और उसे समझाते हुए कहा- मैंने तुम्हें जो दो सीखें दी हैं, तुम उन पर चलकर तो देखो। इससे तुम्हें आर्थिक लाभ होगा और तुम्हारा जीवन भी सुखी हो जाएगा। मल्लाह की समझ में अब वे शिक्षाएं आ गईं।

६६४) समय की कीमत - ग्रीस के विचारक डायोजनीस का फलसफा था- जिंदगी की तमाम जरूरतें और खुशियां कुर्बान करके ही इल्म हासिल किया जा सकता है। एक बार सिकंदर अपनी सेना के साथ उनके इलाके से गुजरा। वह कुछ दिन डायोजनीस के साथ ठहर गया। जब डायोजनीस ने सिकंदर से अपने साथ रहने का कारण पूछा तो उसे कहा- मैं अगले जन्म में डायोजनीस बनना चाहता हूं। डायोजनीस बोले- अगले जन्म में क्यों, अभी क्यों नहीं बन जाते? सिकंदर बोला- अभी तो मैं विश्वविजेता बनना चाहता हूं। डायोजनीस ने कहा- कल पर भरोसा मत करो। बनने की इच्छा वाकई है तो आज ही बन जाओ। कल वक्त मिले न मिले। सिकंदर वहां से जाने लगा तो उसने डायोजनीस से पूछा- वह उसके लिए क्या कर सकता है? डायोजनीस ने कहा- यदि तुम मुझे कुछ देना चाहते हो, तो यह वादा करो कभी रोशनी और आदमी के बीच नहीं आओगे। सिकंदर अनेक देशों को जीतता हुआ आगे बढ़ता रहा। वह बलूचिस्तान जा पहुंचा और वहां बीमार पड़ गया। अब उसे अपनी मां और दार्शनिक डायोजनीस याद आने लगे। लेकिन अफसोस, वहीं उसका अंत हो गया। उसकी इच्छा धरी रह गई। वह न तो वादा निभा पाया और न तो डायोजनीस ही बन पाया। मरते वक्त सिकंदर ने अपने वजीर से कहा- मुझे दफनाने के लिए ले जाओ, तो मेरे दोनों हाथ ताबूत से बाहर रखना, ताकि दुनिया को यह सबक मिल सके कि अंतिम समय में विश्व विजेता के दोनों हाथ खाली थे। इससे यह संदेश मिल जाएगा कि समय रहते ही जो बनना चाहते हो बन जाओ, नहीं तो खाली हाथ ही जाना पड़ेगा।

६६५) उपदेश पाने के लिए - स्वामी रामदास हर रोज कहीं न कहीं भिक्षा मांगने के लिए जाते थे। एक दिन वह भिक्षा मांगते हुए एक घर के सामने जा खड़े हुए और उन्होंने आवाज लगाई- रघुवीर समर्थ। घर की स्त्री बाहर निकल आई। उसने उनकी झोली में भिक्षा डाली और कहा, स्वामीजी, आप मुझे कोई उपदेश दीजिए। स्वामीजी बोले, आज नहीं, उपदेश तो

कल दूंगा। दूसरे दिन स्वामीजी ने फिर उसी धर के सामने जाकर आवाज लगाई- रघुवीर समर्थ। उस घर की स्त्री ने उस दिन बड़े मन से खीर बनाई थी। उसमें बादाम-पिस्ते और मेवा डाले थे। स्वामीजी को देने के लिए वह खीर का कटोरा लेकर घर के बाहर आ गई। स्वामीजी ने उसे देखकर अपना कमंडल आगे बढ़ा दिया। लेकिन यह क्या, वह जैसे ही उस कमंडल में खीर डालने लगी, उसने देखा कि कमंडल में पहले से ही गंदगी और कूड़ा-करकट भरा पड़ा है। खीर डालते-डालते उसके हाथ ठिठक गए। वह बोली, महाराज, यह कमंडल तो बहुत गंदा लग रहा है। जाने इसमें क्या-क्या पड़ा हुआ है। उसकी बात सुनकर स्वामीजी बोले, हां भई, गंदा भी है और इसमें गंदगी भी पड़ी है। किंतु तुम इस सबकी परवाह मत करो और खीर इसी में डाल दो। स्त्री बोली, नहीं महाराज, ये कैसे हो सकता है? ऐसा करूंगी तो खीर खराब हो जाएगी। जरा दीजिए यह कमंडल, मैं इसे शुद्ध कर लाती हूं। स्वामीजी बोले, तुम्हारा अर्थ यह है न कि जब यह कमंडल साफ हो जाएगा, तभी खीर इसमें डालोगी। स्त्री ने उत्तर दिया, जी हां। स्वामीजी बोले, मेरा भी यही उपदेश है। मन में जब तक चिंताओं का कूड़ा और बुरे संस्कारों की गंदगी भरी है, तब तक उपदेशामृत का कोई लाभ न होगा। उपदेशामृत का पान करना है, तो पहले अपना मन शुद्ध कर लेना चाहिए। तभी उपदेश से सच्चे सुख और आनंद की प्राप्ति होगी।

६६६) राजकवि का आशीर्वाद - राजा का दरबार लगा था। सबको राजकवि की प्रतीक्षा थी। उनके आए बगैर राजा कोई काम नहीं करते थे। राजा उनका बेहद सम्मान करते थे और समय-समय पर उनसे सलाह भी लिया करते थे। आखिरकार राजकवि आए। राजा ने रोज की तरह उठकर उन्हें प्रणाम किया। राजकवि ने राजा से कहा, आपके शत्रु चिरंजीव हो। यह सुनकर पूरी सभा दंग रह गई। यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा भी नाराज हो गए। पर उन्होंने क्रोध पर नियंत्रण कर लिया। इस बात को वहां उपस्थित सभी लोगों ने भांप लिया। कई दरबारी ऐसे भी थे जो राजकवि से जलते थे। वे मन ही मन प्रसन्न हो गए कि अब राजकवि राजा की नजरों में गिर जाएंगे और उनका महत्व कम हो जाएगा। हो सकता है वे दंडित भी किए जाएं। राजकवि ने भी इस बात को ताड़ लिया कि राजा उनसे नाराज हैं। उन्होंने तुरंत कहा, महाराज क्षमा करें। मैंने आपको कुछ दिया पर आपने लिया नहीं। राजा ने पूछा, कौन सी चीज? राजकवि बोले, मैंने आपको आशीर्वाद दिया पर लगता है आपने लिया नहीं। राजा ने कहा, आप मेरे शत्रुओं को मंगलकामना दे रहे हैं। इस पर राजकवि ने समझाया, राजन, मैंने यह आशीर्वाद देकर आपका हित ही चाहा है। जब आपके शत्रु जीवित रहेंगे तो आप में बल, बुद्धि, पराक्रम और सावधानी बनी रहेगी। राजा को सदा सावधान रहना चाहिए। सावधानी तभी रह सकती है जब शत्रु का भय हो। शत्रु के होने पर ही होशियारी आती है। उसके न रहने पर हम निश्चिंत और असावधान हो जाते हैं। इस प्रकार मैंने आपके शत्रुओं को नहीं, आपको मंगलकामना दी है। सुनकर राजा प्रसन्न हो गए।

६६७) पगड़ी और टोपी - एक दिन एक व्यक्ति गांधी जी से मिलने आया। उसने अपने सिर पर बहुत बड़ी पगड़ी बांध रखी थी। उसने पूछा, गांधीजी, मेरे मन में एक जिज्ञासा है, यदि आप आज्ञा दें तो पूछूं? गांधीजी बोले, बिल्कुल, आप जरूर पूछे। वह व्यक्ति बोला, आजकल हर जगह गांधी टोपी की बड़ी चर्चा है। हर दूसरा व्यक्ति गांधी टोपी लगाए इतरा कर कहता है कि मैंने गांधी टोपी पहनी है। पर मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि वह टोपी भला गांधी टोपी कैसे हो गई? आप तो टोपी पहनते ही नहीं, फिर उस टोपी को सभी गांधी टोपी क्यों कहते हैं? गांधीजी मुस्कराकर बोले, बात यह है कि

मैं हर चीज का किफायत से उपयोग करने की बात कहता हूं। साथ ही मेरा यह भी मानना है कि हर वस्तु का उपयोग तब तक करना चाहिए जब तक कि वह बिल्कुल ही खराब न हो जाए। यह टोपी बहुत ही किफायती है। साथ ही इसे घर में भी बनाया जा सकता है। इसे बनाने में किसी बहुमूल्य वस्तु का उपयोग नहीं होता। इसे सीधे-सादे तरीके से बनाकर प्रयोग किया जा सकता है। मैं ऐसी वस्तुओं का हिमायती हूं। इसलिए लोगों ने इसका नाम गांधी टोपी रख दिया है। इस पर वह व्यक्ति बोला, गांधीजी, फिर आप गांधी टोपी क्यों नहीं धारण करते? इस पर गांधी जी मुस्कराकर बोले, दरअसल भारत में तुम जैसे अनेक लोग पगड़ी में लगभग इक्कीस बाइस टोपी बनने लायक कपड़ा बांध लेते हो। अब उस संतुलन को भी तो पूरा करना है। इसलिए मैं गांधी टोपी का प्रयोग नहीं करता। गांधीजी का जवाब सुनकर वह व्यक्ति लज्जित हो गया।

६६८) स्वर्ग की सृष्टि - किसी शहर में धार्मिक प्रवृत्ति का एक व्यक्ति रहता था। धर्म-कर्म में उसकी आस्था तो थी, लेकिन उसके भीतर अहंकार भी कम नहीं था। उसकी इच्छा थी कि इस जन्म में चाहे जो करना पड़े, लेकिन मरने के बाद उसे स्वर्ग अवश्य मिले। वह अपनी कमाई का अधिकतर भाग परोपकार में ही लगा देता था, क्योंकि उसे उम्मीद थी कि ऐसा करने से स्वर्ग की प्राप्ति निश्चित है। लेकिन जैसे-जैसे उसकी परोपकार की भावना बढ़ रही थी। उसके अहंकार में भी वृद्धि हो रही थी। एक बार एक प्रसिद्ध संत उसके घर के पास आकर रुके। वह फौरन उनकी सेवा में उपस्थित हो गया। उसने उनसे भी स्वर्ग जाने का उपाय पूछा, साथ ही स्वर्ग जाने के उद्देश्य से किए जानेवाले प्रयासों की चर्चा की। संत ने उस व्यक्ति को ध्यानपूर्वक ऊपर से नीचे तक देखा और उपेक्षा से कहा, तुम स्वर्ग जाओगे? तुम तो देखकर ही नीच लग रहे हो। मैं नहीं मानता कि तुम कोई परोपकारी या दानी व्यक्ति हो। इतना सुनते ही वह व्यति क्रोध से भर उठा और उसने संत को मारने के लिए डंडा उठा लिया। उसके गुस्से का संत पर कोई असर नहीं पड़ा। वह उसी शांति से मुस्कराते हुए बोले, तुम में तो तनिक भी धैर्य नहीं। इतनी अधीरता और अहंकार के होते हुए तुम स्वर्ग कैसे जा पाओगे? व्यक्ति को संत की कही बातों का मर्म समझ में आया तो वह उनके चरणों में गिर पड़ा और अपनी गलती के लिए क्षमा मांगने लगा। संत ने समझाया, एक-एक कर सब अवगुणों से मुक्त हो जाओ। जिस दिन विकारों से मुक्त हो जाओगे उसी दिन यहीं पर स्वर्ग की सृष्टि हो जाएगी।

६६९) युधिष्ठिर का यज्ञ - कुरुक्षेत्र युद्ध में विजय पाने की खुशी में पांडवों ने राजसूय यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर चारों तरफ पांडवों की जय-जयकार हो रही थी। तभी एक नेवला आया। उसका आधा शरीर सुनहरा था और आधा भूरा। वह यज्ञ भूमि पर इधर-उधर लोटने लगा। उसने कहा, तुम लोग झूठ कहते हो कि इससे वैभवशाली यज्ञ कभी नहीं हुआ। लोगों ने कहा, क्या कहते हो, ऐसा महान यज्ञ तो आज तक संसार में हुआ ही नहीं। नेवले ने कहा, यज्ञ तो वह था जहां लोटने से मेरा आधा शरीर सुनहरा हो गया था। लोगों के पूछने पर उसने बताया, एक गांव में एक गरीब ब्राह्मण अपने परिवार के साथ रहता था। एक बार वहां अकाल पड़ गया। कई दिन तक परिवार में किसी को अन्न नहीं मिला। कुछ दिनों बाद उसके घर में कुछ आटा आया। ब्राह्मणी ने उसकी रोटी बनाई और पूरा परिवार भोजन करने बैठा। लेकिन तभी दरवाजे पर एक अतिथि आ गया। ब्राह्मण ने अपने हिस्से की रोटी अतिथि को दे दी, मगर उससे अतिथि की भूख नहीं मिटी। तब ब्राह्मणी ने अपने हिस्से की रोटी उसे दे दी। इससे भी उसका पेट नहीं भरा तो बेटे और पुत्रवधू ने भी अपने अपने हिस्से की रोटी दे दी। अतिथि सारी रोटी खाकर आशीष देता हुआ चला गया। उस रात भी वे चारों भूखे रह गए। उस अन्न के कुछ

कण जमीन पर गिरे पड़े थे। मैं उन कणों पर लोटने लगा तो जहां जहाँ मेरे शरीर से उन कणों का स्पर्श हुआ, मेरा शरीर सुनहरा हो गया। मगर वैसा दूसरा यज्ञ मैंने आज तक नहीं देखा जिससे मेरा बाकी शरीर भी सुनहरा हो सके। उसका आशय समझ युधिष्ठिर लज्जित हो गए।

६७०) जाओ और आओ - एक गांव में एक धनी किसान रहता था। किसान के दो लड़के थे। जब दोनों लड़के बड़े हो गए, तो किसान ने उन्हें आधी-आधी जमीन बांट दी। साथ ही उसने काम करनेवाले आदमी भी बराबर बांट दिए। बड़ा लड़का बहुत सुस्त और आलसी था। वह कभी अपने खेतों को देखने नहीं जाता था। धीरे-धीरे उसकी खेती बिगड़ने लगी, उपज लगातार कम होती गई और कुछ दिनों में वह खस्ताहाल हो गया। मगर, छोटा लड़का बहुत परिश्रमी था। वह सबेरा होते ही कंधे पर हल रखता और अपने आदमियों को साथ लेकर खेतों पर चला जाता। डटकर काम करता। उसे देखकर उसके आदमी भी खूब परिश्रम करते थे। उसकी उपज दिनों दिन बढ़ती गई। कुछ ही वर्षों में वह धनी हो गया। चतुर पिता दोनों बेटों में फर्क समझता था। एक दिन उसने दोनों बेटों को बुलाया। बड़े लड़के से पूछा- क्या हाल है? उसने कहा- मेरा हाल तो पूछिए मत। मैं गरीब हो गया हूं। मेरा भाग्य ही खराब है। फिर उसने छोटे लड़के से पूछा- तुम्हारा क्या हाल है? वह बोला- आपकी कृपा से दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति हो रही है। बूढ़े किसान ने कहा- देखो तुम दोनों को मैंने बराबर-बराबर भाग दिया। वह भाग ही तुम्हारा भाग्य था। तुम्हारे भाग्य में कोई अंतर नहीं। अंतर केवल है जाओ और आओ का। बड़े लड़के ने हैरान होकर पूछा-बापू। जाओ और आओ क्या है? पिता ने कहा- तुम सदा अपने आदमियों से कहते हो, जाओ काम करो, तुम्हारा छोटा भाई अपने आदमियों से कहता है, आओ काम करें। पिता की बात सुनकर बड़े लड़के की आंखें खुल गईं।

६७१) अन्याय की सजा - कोवलन एक ईमानदार धनी व्यापारी था। दुर्भाग्य से उसका व्यापार चौपट हो गया। कंगाली की हालत में भी पत्नी कण्णगी ने उसका साथ नहीं छोड़ा। एक दिन कोवलन को चिंतित देख कण्णगी बोली- मेरे पास आपकी दी हुई प्यार की निशानी के रूप में पाजेब बची है। उसे बेचकर फिर से कोई रोजगार करो। दोनों अपना शहर छोड़ एक नए राज्य में आ गए। वहां कुछ दिन पहले ही राजमहल से रानी का कीमती पाजेब चोरी हो गया था, जिसके कारण राजा परेशान था। इस बात से अनजान कोवलन अपना कीमती पाजेब बेचने शाही सुनार के पास गया। सुनार कोवलन को अपनी दुकान पर बैठा राजा के पास पहुंच गया और उसने कहा- यह पाजेब रानी का है। राजा ने कोवलन को राजमहल बुलाया। उसकी खराब हालत देखकर राजा को विश्वास हो गया कि सुनार की बात सच है। कोवलन को चोरी के जुर्म में मृत्युदंड दे दिया गया। कोवलन की मौत की खबर कण्णगी को मिली तो वह क्रोध में पागल राजमहल पहुंची और राजा से बोली- मेरा पति चोर नहीं था। वह इतना धनवान था कि इस तरह के दर्जनों पाजेब बनवा सकता था, लेकिन समय ने उसे गरीब बना दिया। आपने हमारे साथ अन्याय किया है। कण्णगी की बात सुनकर राजा बोले- देवी, मुझे यकीन हो गया है कि आप का पति निर्दोष था। लेकिन मैं आप के पति को वापस नहीं ला सकता। मैं अपराधी हूं और मुझे दंड मिलना चाहिए। कहते हैं कि इसके कुछ ही साल बाद अकाल की मार से पूरा राज्य नष्ट हो गया। राजा के अन्याय की सजा पूरे राज्य को झेलनी पड़ती है।

६७२) पतन का कारण - एक जिज्ञासु शिष्य ने गुरु से पूछा, सभी मनुष्यों की बनावट एक जैसी है, फिर उनमें से कुछ पतन के गर्त में गिरकर डूब क्यों जाते हैं? गुरु ने उसे दूसरे दिन एक तालाब के किनारे बुलाया। कहा, तुम्हारे सवाल का जवाब वहीं मिलेगा। ठीक समय पर दोनों तालाब के किनारे पहुंचे। गुरु के पास दो कमंडल थे। उनमें से एक साबुत था। दूसरे के तले में छेद था। गुरु ने दोनों कमंडल शिष्य को दिखाए। उसके बाद तले वाला कमंडल शिष्य के हाथों से लेकर तालाब में फेंक दिया। कमंडल तैरता रहा। कुछ ही देर बाद उन्होंने छेदवाला कमंडल भी पानी में फेंक दिया। तालाब में गिरते ही इस कमंडल में पानी भरने लगा और देखते-देखते वह डूब गया। इसके बाद गुरु ने शिष्य से पूछा कि दोनो कमंडल अलग-अलग गति को प्राप्त हुए, इसकी वजह क्या है? शिष्य ने सहज भाव से बताया कि जिस कमंडल के तले में छेद था वह डूब गया और जिसका तला मजबूत था वह तैरता रहा। गुरु ने उसी सहजता से समझाया, मनुष्यों की बनावट में भी ऐसे ही फर्क होते हैं। जिन मनुष्यों में असंयम का दोष होता है, बाहर की दुष्प्रवृत्तियां उनमें आसानी से प्रवेश कर जाती हैं और आखिरकार उनके डूबने का कारण बनती हैं। इसके विपरीत जिन मनुष्यों में चारित्रिक मजबूती होती है उनके अंदर बाहरी दुष्प्रवृत्तियां नहीं घुस पातीं। इसलिए वह आसानी से भवसागर पार कर जाता है। शिष्य समझ गया कि अपने व्यक्तिगत दुर्गुणों से ही मनुष्य संसार की दुष्प्रवृत्तियों की चपेट में आता है और डूब जाता है। जिनमें दोष या छिद्र नहीं हैं वे तैरते रहते हैं और पार उतरते हैं।

६७३) मृत्यु का अनुभव - एक बार नेपोलियन अपने सैनिकों से बिछुड़कर एक गांव में पहुंच गया। तभी उसे अपनी ओर आते रूसी सैनिक नजर आए। वह जान बचाने के लिए एक दर्जी की दुकान में घुस गया। दर्जी ने नेपोलियन को एक कालीन में लपेट दिया। रूसी सैनिक दुकान में घुसकर नेपोलियन को तलाश करने लगे। एक सैनिक ने तो अपनी तलवार ही कालीन में घुसेड़ दी। सैनिक चले गए तो दर्जी ने नेपोलियन को सही-सलामत पाने पर चैन की सांस ली। नेपोलियन दर्जी से बोला, मैं फ्रांस का सम्राट हूं और तुम्हारी मदद के प्रति कृतज्ञ हूं। तुम्हारी तीन इच्छाएं पूरी करूंगा। दर्जी बोला, महाराज, मेरी छत टपकती है, आप मरम्मत करा दें। नेपालियन बोला, दूसरी इच्छा। दर्जी बोला, पड़ोस में एक और दर्जी है, उसे आप कहीं और चले जाने के लिए सहमत कर दें।

नेपोलियन बोला, तुम मुझसे कुछ भी मांग सकते हो। फिर ये छोटी इच्छाएं पूरी करने को क्यों कह रहे हो? दर्जी साहस कर बोला, मैं जानना चाहता हूं कि जब रूसी सैनिक की तलवार कालीन में आपके सामने गुजरी तो आपको कैसा लगा? तभी नेपोलियन के सैनिक वहां आ पहुंचे। उन्हें देखते ही नेपोलियन बोला, इस दर्जी को मौत के घाट उतार दो और खुद वह घोड़े पर सवार होकर चला गया। सैनिक दर्जी पर गोली चलाने ही वाले थे कि नेपोलियन का सेनापति दौड़ते हुए आया और बोला, सम्राट ने इसे क्षमा कर दिया है। सेनापति ने उसे एक कागज के साथ मोहरों से भरी थैली देकर कहा, सम्राट ने तुम्हारे लिए भिजवाई है। कागज पर लिखा था, अब तुम्हें पता चला गया होगा कि मुझे तब कैसा लगा था।

६७४) विचित्र गुरु दक्षिणा - बात उन दिनों की है जब भारतीय संगीत में गुरु शिष्य परंपरा का महत्व अपने चरम पर था। हर शिष्य अपने गुरु से बढ़कर किसी को नहीं मानता था। इन्हीं दिनों ग्वालियर के प्रसिद्ध गायक हस्सू खां के यहां संगीत सीखने के लिए दक्षिण भारत से तीन हिंदू शिष्य आए। उस्ताद हस्सू खां ने बड़ी मेहनत से उन्हें अलाप, बोल,

बोलतान और गायकी के अंगों के साथ ही प्रकारों से भी परिचित कराना शुरू कर दिया। संगीत के क्षेत्र में शुद्ध अशुद्ध और अच्छा या बुरा क्या है, यह समझने की क्षमता आमतौर पर नए शिष्य में नजर नहीं आती। लेकिन अपनी तालीम में दक्षिण भारतीय शिष्यों में बाबा दीक्षित ने बहुत जल्द महारत हासिल कर ली। देखते देखते उसकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। सभी लोग उसे जानने लगे। लेकिन हस्सू खां के परिवार के लोगों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने सोचा कि इस तरह तो उनके यश के बढ़ने से अपने खानदान के सदस्यों का नाम आगे नहीं बढ़ सकता। उन्होंने हस्सू खां को बाबा दीक्षित से एक कठोर गुरु दक्षिणा लेने पर मजबूर किया। हस्सू खां ने जब बाबा दीक्षित को बुलाकर एक विचित्र गुरु दक्षिणा का प्रस्ताव उनके सामने रखा तो बिना किसी हिचकिचाहट के उसने उसे स्वीकार कर लिया। जानते हैं, यह विचित्र गुरु दक्षिणा क्या थी? उन्हें हाथ पर जल छोड़ते हुए यह प्रण लेना पड़ा कि मंदिर और घर को छोड़कर जिंदगी भर वह किसी महफिल में कभी नहीं गाएगा। गुरु दक्षिणा के रूप में उसने यह प्रण खुशी खुशी कर लिया। गुरु के खानदान के लिए बाबा दीक्षित ने जो त्याग किया, उसे लोग आज भी भूले नहीं।

६७५) विपत्ति में डरना मना है - स्वामी रामकृष्ण परमहंस के निधन के बाद उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद तीर्थयात्रा के लिए निकले। कई दिन तक दर्शन करते हुए वह काशी आए और विश्वनाथ के मंदिर में पहुंचे। दर्शन करके बाहर आए तो देखते हैं कि कुछ बंदर इधर से उधर चक्कर लगा रहे हैं। स्वामीजी जैसे ही आगे बढ़े कि बंदर उनके पीछे पड़ गए। उन दिनों स्वामीजी लंबा अंगरखा पहना करते थे और सिर पर साफा बांधते थे। विद्या प्रेमी होने के कारण उनकी जेबें किताबों और कागजों से भरी रहती थीं। बंदरों को भ्रम हुआ कि उनके जेबों में खाने की चीजें हैं। अपने पीछे बंदरों को आते देखकर स्वामीजी डर गए और तेज चलने लगे। बंदर भी तेजी से पीछा करने लगे। स्वामीजी ने दौड़ना शुरू किया। बंदर भी दौड़ने लगे। स्वामीजी अब क्या करें? बंदर उन्हें छोड़ने को तैयार ही नहीं थे। स्वामीजी का बदन थर-थर कांपने लगा। वे पसीने से नहा गए। लोग तमाशा देख रहे थे, पर कोई भी उनकी सहायता नहीं कर रहा था। तभी एक ओर से बड़े जोर की आवाज आई- भागो मत। ज्यों ही ये शब्द स्वामीजी के कानों में पड़े, उन्हें बोध हुआ कि विपत्ति से डरकर जब हम भागते हैं तो वह और तेजी से हमारा पीछा करती है। अगर हम हिम्मत से उसका सामना करें तो वह मुंह छिपाकर भाग जाती है। फिर क्या था, स्वामीजी निर्भीकता से खड़े हो गए, बंदर भी खड़े हो गए। थोड़ी देर खड़े रहकर वे लौट गए। उस दिन से स्वामीजी के जीवन में नया मोड़ आ गया। उन्होंने समाज में जहां कहीं बुराई देखी उससे कतराए नहीं, हौसले से उसका मुकाबला किया।

६७६) स्वर्ग जाने के लिए - एक बार एक धनवान ईसा मसीह के पास उनसे मिलने आया। उसे अपने सुखद जीवन में तो कोई कमी नहीं थी, लेकिन वह स्वर्ग पहुंचकर वहां का नजारा देखना चाहता था। उसने ईसा मसीह से निवेदन किया, आपने स्वर्ग का द्वार तो खोल ही दिया है। इसलिए अब कृपा कर मुझे भी वहां भिजवा दीजिए। मैं भी वहां जाना चाहता हूं। ईसा मसीह ने उसकी ओर देखा और पूछा- क्या तुम सचमुच स्वर्ग में जाना चाहते हो? क्या तुम्हारी वहां जाने की तैयारी पूरी हो चुकी है? तुमने स्वर्ग जाने की अपनी पात्रता ठीक से परख ली है? इस पर धनवान ने उत्तर दिया- जी हां, मैं सचमुच स्वर्ग में जाना चाहता हूं और इसके लिए मेरी तैयारी भी पूरी हो चुकी है। यह सुनकर ईसा ने फिर उससे कहा,

पहले तुम अच्छी तरह से सोच लो और फिर उत्तर दो। धनवान ने कहा- जी हां, मैंने बहुत सोच समझकर ही उत्तर दिया है। ईसा मसीह बोले- जब तुमने सोच ही लिया है और अब तुम्हारी तैयारी भी हो गई है, तो अपनी तिजोरियों की तमाम चाबियां मुझे सौंप दो। धनवान यह सुनकर अचकचा गया- मैं ऐसा कैसे कर सकता हूं भला। अपनी जिंदगी भर की कमाई किसी और को कैसे दे दूं। ईसा ने उससे कहा, तब फिर तुम स्वर्ग नहीं जा सकते। स्वर्ग जाने वाले मनुष्य में जो गुण होने चाहिए, वे तुममें नजर नहीं आते। तुम्हारी तो रग-रग में लालच समाया हुआ है। तुम जैसे लोगों के लिए स्वर्ग में कोई स्थान नहीं है। धनवान ने उनसे क्षमा मांगी और तय किया कि वह पहले खुद में स्वर्ग जाने की सलाहियत पैदा करेगा फिर ईसा मसीह से वहां भेजने का निवेदन करेगा।

६७७) कूलर हटा लिया जाए - देश के द्वितीय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की सादगी के कई किस्से हम सबने सुन रखे हैं। यह बात तब की है, जब लाल बहादुर शास्त्री उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री थे। इतने बड़े पद पर पहुंच कर भी वह निजी जिंदगी में बेहद सादगी के साथ रहते थे। किसी प्रकार के आधुनिक ऐशो आराम की उनमें तनिक भी ललक नहीं थी। गृहमंत्री बनने के बाद वह अपने परिवार के साथ सरकारी बंगले में आकर रहने लगे। एक दिन सार्वजनिक निर्माण विभागवालों ने उनके बंगले में कूलर लगा दिया। ऐसा करने से पहले उन्होंने न तो शास्त्रीजी से पूछा और न ही उन्हें इसकी जानकारी दी। शास्त्री जी के परिवारवाले घर में कूलर लगा देखकर बेहद खुश हो गए। क्योंकि उन दिनों गर्मी का मौसम था और सब लोग गर्मी से परेशान थे। ऐसे में कूलर लगने से सबको चिलचिलाती गर्मी से राहत मिली। दिनभर दफ्तर का काम निबटाने के बाद देर शाम को जब शास्त्रीजी घर पहुंचे, तो उन्हें घर पर सरकारी कूलर लगने की बात बताई गई। यह जानकर वह थोड़े गंभीर हो गए और घरवालों से बोले, जरूरत पड़ने पर हम सबको धूप और लू में निकलना ही पड़ेगा और आगे चलकर हमें अपने इलाहाबाद के कटघरे वाले पुश्तैनी मकान में ही रहना पड़ सकता है। ऐसे में कूलर से सबकी आदत बिगड़ जाएगी। घरवाले यह सुनकर चुप हो गए। शास्त्रीजी ने तुरंत सार्वजनिक निर्माण विभाग को फोन कर दिया कि मेरे घर पर लगाया गया कूलर तुरंत हटा लिया जाए। उनका आदेश था, इसलिए अगले ही दिन उनके घर से कूलर हट गया।

६७८) नेहरू जी की सादगी - एक सज्जन गाड़ी में बैठे थे। अचानक सड़क पर उनकी नजर एक रिक्शावाले पर पड़ी। वह कोने में खड़ा रो रहा था। यह देखकर सज्जन उसके पास गए और बोले, तुम्हारी आंखों में आंसू क्यों है? एक अनजान व्यक्ति से ऐसे सहानुभूति भरे शब्द सुनकर रिक्शावाला बोला, बाबूजी, मैं अकेला कमानेवाला हूं। किराए का रिक्शा है। आज मेरी जरा भी कमाई नहीं हुई। यदि आज रिक्शा का किराया नहीं दिया गया तो मालिक कल मुझे रिक्शा नहीं चलाने देगा। यह सुनकर सज्जन बोले, तुम बैंक से लोन लेकर अपना रिक्शा क्यों नहीं खरीद लेते? रिक्शावाला बोला, बाबूजी बैंकवाले मुझे लोन कैसे देंगे? न यहां मेरा कोई जानकार है और न ही जमानत देनेवाला। यह सुनकर सज्जन रिक्शावाले को अपने साथ लेकर बैंक गए। बैंक के सभी कर्मचारी सज्जन को देखकर उनके सम्मान में खड़े हो गए। सज्जन ने रिक्शावाले के लोन का फॉर्म भरवाया, स्वयं जमानतदार बने और उसे उसी समय लोन दिलवाया। रिक्शावाला सज्जन के प्रति कृतज्ञता से झुक गया। उसने सज्जन का नाम-पता लिखा और बोला- बाबूजी, मैं आजीवन आपका अहसानमंद रहूंगा। सज्जन रिक्शावाले की पीठ थपथपा कर वहां से चले गए। कुछ सालों बाद

रिक्शावाले के लड़के का विवाह हुआ तो वह उन सज्जन को निमंत्रण पत्र देने गया। सज्जन ने न सिर्फ निमंत्रण पत्र स्वीकार किया बल्कि विवाह में भी गए। उनकी उपस्थिति ने रिक्शावाले के विवाह की रौनक बढ़ा दी। अचानक वह सम्मान का पात्र बन गया। वह सज्जन थे पं. जवाहरलाल नेहरू।

६७९) राधाकृष्णन का जवाब - यह आजादी से पहले की घटना है। एक समारोह के मौके पर अंग्रेजों की तारीफ करते हुए एक अंग्रेज अधिकारी ने कहा, ईश्वर हम अंग्रेजों से बहुत प्यार करता है। उसने हमारा निर्माण बड़े यत्न और स्नेह से किया है। इसी कारण हम इतने गोरे और सुंदर हैं। यह सुनकर वहां उपस्थित सारे अंग्रेज मुस्कराने लगे। लेकिन कुछ भारतीयों के चेहरे पर तनाव आ गया। उस सभा में डॉ. राधाकृष्णन भी उपस्थित थे। उन्हें और भारतीयों की तरह यह बात अच्छी नहीं लगी। दूसरे भारतीय भी उनकी तरफ इस आशा में देख रहे थे कि वे इसका कोई जवाब दें। वे राधाकृष्णन की हाजिर जवाबी से परिचित थे। उन्हें पता था कि राधाकृष्णन के पास हर तरह की दलील का जवाब मौजूद रहता है। राधाकृष्णन समझ गए कि उन्हें अब क्या करना है। उन्होंने अंग्रेजों की तरफ देखकर कहा, सृष्टि को लेकर एक अलग ही सिद्धांत है जिसके बारे में कम लोगों को पता है। फिर उन्होंने एक मनगढ़ंत किस्सा सुनाया, एक बार ईश्वर का रोटी बनाने का मन हुआ। उन्होंने जो पहली रोटी बनाई, वो थोड़ी कम सिंकी। परिणामस्वरूप अंग्रेजों का जन्म हुआ। दूसरी रोटी कच्ची न रह जाए, इस कारण भगवान ने उसे ज्यादा देर तक सेंका तो वह जल गई। इससे नीग्रो पैदा हुए। पर दो अनुभवों के बाद भगवान ज्यादा सचेत हो गए। अब वह रोटी को ठीक से पकाने लगे। अब जो रोटी पकी वह न तो ज्यादा कच्ची थी और न ज्यादा पक्की। वह एकदम ठीकठाक सिंकी थी और इस तरह हम भारतीयों का जन्म हुआ। यह सुनकर वहां उपस्थित अंग्रेज झेंप गए और भारतीयों के चेहरे पर मुस्कान खिल गई।

६८०) कर्त्तव्य बोध - एक किसान को विरासत में खूब धन-संपत्ति मिली। वह दिनभर खाली बैठा हुक्का गुड़गुड़ाता और गप्प हांकता रहता। रिश्तेदार और काम करनेवाले नौकर-चाकर उसके आलस्य का लाभ उठाते और उसके माल पर हाथ साफ करने में लगे रहते। एक दिन उसका पुराना मित्र उससे मिलने आया। यह अव्यवस्था देखकर उसे कष्ट हुआ और उसने किसान को समझाने की कोशिश की, किंतु उस पर कोई असर नहीं हुआ। तब उसने किसान मित्र से कहा कि वह उसे एक महात्मा के पास ले जाएगा जो उसे अमीर होने के नुस्खे बताएंगे। यह सुनकर वह तुरंत अपने मित्र के साथ उन महात्मा के पास जा पहुंचा। महात्मा ने किसान से कहा, हर दिन सूर्योदय से पहले एक श्वेत नीलकंठ खलिहान, गोशाला, घुड़साल और घर में चक्कर लगाता है और बहुत जल्दी गायब हो जाता है। उस नीलकंठ के दर्शन तुम्हारे धन-संपत्ति को बढ़ाने की क्षमता रखते हैं। अगले दिन किसान खुशी-खुशी सूर्योदय से पहले उठा और नीलकंठ की खोज में पहले अपने खेत गया। वहां उसने देखा कि उसका एक रिश्तेदार अनाज से बोरा भरकर ले जा रहा है। शीघ्र ही वह गोशाला पहुंचा तो देखा कि उसका नौकर दूध की भरी बाल्टी चुराकर अपने घर ले जा रहा है। जब वह घुड़साल गया तो वहां बेहद गंदगी पाई और देखा नौकर सो रहा था। अगले दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ। किसान के रिश्तेदार और नौकर अब ईमानदारी और फुर्ती से काम करने लगे, लेकिन उसे श्वेत नीलकंठ के दर्शन नहीं हुए। उसने महात्मा से जब यह बात कही तब उन्होंने कहा, तुम्हें उसके दर्शन तो हो गए, लेकिन तुम उसे पहचान नहीं पाए। वह श्वेत नीलकंठ कर्त्तव्य है।

६८१) चिड़िया और किसान - एक चिड़िया ने एक खेत में खड़ी फसल के बीच घोंसला बना कर अंडे दिए। उनसे समय आने पर दो बच्चे निकले। चिड़िया दाना चुगने के लिए रोज जंगल जाती। इस बीच उसके बच्चे अकेले रहते थे। चिड़िया लौटती तो बच्चे बहुत खुश होते और उसका लाया चुग्गा खाते। एक दिन चिड़िया ने देखा बच्चे बहुत डरे हुए है। उन्होंने बताया- आज खेत का मालिक आया था। वह कह रहा था कि फसल पक चुकी है। कल बेटों से खेत की कटाई के लिए कहेगा। इस तरह तो हमारा घोंसला टूट जाएगा फिर हम कहां रहेंगे? चिड़िया बोली- फिक्र मत करो, अभी खेत नहीं कटेगा। अगले दिन सच में कुछ नहीं हुआ और बच्चे बेफिक्र हो गए। एक हफ्ते बाद चिड़िया को बच्चे फिर डरे हुए मिले। बोले- किसान आज भी आया था। कह रहा था कि कल नौकर को खेत काटने को कहेगा। इस बार भी चिड़िया ने बच्चों से कहा- कुछ नहीं होगा, डरो मत। अगले हफ्ते बच्चों ने बताया कि किसान आज फिर आया था और कह रहा था कि फसल की कटाई में बहुत देर हो गई है। कल वह खुद ही काटेगा। यह सुनकर चिड़िया बच्चों से बोली- कल खेत कट जाएगा। वह बच्चों को तुरंत एक सुरक्षित घोंसले में ले गई। हैरान बच्चों ने पूछा- मां तुमने कैसे जाना कि इस बार खेत सचमुच कटेगा? चिड़िया बोली- जब तक इंसान किसी काम के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है, उसके संपन्न होने में संदेह रहता है। लेकिन जब वह काम को खुद करने की ठान लेता है तो जरूर पूरा होता है। किसान ने जब खुद खेत काटने की सोची, तभी तय हुआ कि अब खेत जरूर कट जाएगा।

६८२) एकाग्रता का महत्व - वीरबहादुर एक सर्कस में काम करता था। उसकी खासियत यह थी कि वह खतरनाक शेर को भी कुछ ही समय में पालतू बना लेता था। एक दिन सर्कस में एक नौजवान आया। वह जानवरों के हाव-भाव और हरकतों पर शोध कर रहा था। उसने वीरबहादुर से कहा, आपका बहुत नाम सुना है। खतरनाक शेर को भी पालतू कैसे बना लेते हैं आप? वीरबहादुर ने मुस्कराते हुए कहा, देखो, यह कोई राज नहीं है। तुम बड़े सही मौके पर आए हो। आज ही मुझे एक खतरनाक शेर को पालतू बनाना है। वह कई लोगों को अपना शिकार बना चुका है। तुम मेरे साथ चलना और वहां खुद देखना कि मैं कैसे यह काम करता हूं। नौजवान ने देखा कि वीरबहादुर ने अपने साथ न कोई हथियार लिया और न ही बचाव के लिए कोई दूसरी चीज। उसने अपने साथ बस एक लकड़ी का स्टूल लिया है। वह हैरान था कि स्टूल से वीरबहादुर खतरनाक शेर को कैसे काबू कर लेगा। वहा पहुंचकर उसने देखा कि शेर जैसे ही वीरबहादुर की तरफ गरज कर लपकता, वह स्टूल के पायों को शेर की तरफ कर देता। शेर स्टूल के चारों पायों पर अपना ध्यान केंद्रित करने की कोशिश करता और असहाय हो जाता। ध्यान बंटने के कारण कुछ ही देर बाद शेर वीरबहादुर का पालतू बन गया। इसके बाद वीरबहादुर ने उस नौजवान से कहा, अक्सर ऐसा होता है कि एकाग्र व्यक्ति साधारण होने पर भी सफल हो जाता है, लेकिन असाधारण व्यक्ति भी ध्यान बंटने के कारण शेर की तरह पराजित हो जाता है। नौजवान ने तभी यह तय कर लिया कि वह जीवन में हर काम एकाग्र होकर करेगा।

६८३) सच्चा हज किसका - उन दिनों अब्दुल्ला बिन मुबारक ईराक में बहुत प्रसिद्ध थे। पेशे से वह व्यापारी थे, पर दीन दुनियों के प्रति उनके दिल में बहुत दया थी। एक बार वह हज करने जा रहे थे। अभी उन्होंने शहर पार ही किया था कि उनका ध्यान सड़क किनारे बेसुध पड़ी एक बीमार स्त्री की ओर चला गया। उन्होंने नजदीक पहुंचकर नब्ज टटोली, तो

पाया कि जान अभी बाकी थी। वह पास की बावड़ी से अपना तौलिया भिगो लाए। तब उन्होंने स्त्री के चेहरे पर पानी के छींटें डाले। कुछ ही क्षणों में उसने आंखें खोल दीं। मंद स्वर में उसने राहगीर को दुआएं दी और फिर कहने लगी- मैं एक विधवा हूं और चार दिनों की भूखी हूं। घर पर तीन बच्चे भी भूखे हैं। काम की तलाश में जा रही थी कि चक्कर आ गया। पेट पालने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। उस स्त्री की बातों से अब्दुल्ला का दिल भर आया। उन्होंने दीनारों की थैली उसके हाथ में थमा दी। खाने पीने को जो कुछ भी था, दे दिया। उन्होंने इस धन से कोई काम कर लेने को कहा और आगे बढ़ गए। हज यात्रियों का काफिला काफी आगे निकल चुका था। अब्दुल्ला उलटे पांव घर लौट आए। उन्होंने मन ही मन सोचा कि भला ऐसे हज से क्या लाभ, जिसमें मात्र नाम और यश की कामना हो। लगभग एक माह बाद हाजियों का दल वापस लौटा, तो सबसे पहले वे अब्दुल्ला बिन मुबारक के पास पहुंचे और कहने लगे- कमाल है? जाते वक्त आप रह तो पीछे गए थे, लेकिन मक्का में हमने हर समय आपको खुद से आगे ही पाया। अब्दुल्ला के पास आश्चर्य का कोई जवाब न था। उन्हें यकीन हो गया था कि सच्चा हज तो उन्होंने ही किया है।

६८४) अच्छा और बुरा आदमी - कौरवों और पांडवों को शस्त्र शिक्षा देते समय एक दिन आचार्य द्रोण के मन में उनकी परीक्षा लेने का विचार आया। उन्होंने सोचा, क्यों न सबकी वैचारिक प्रगति और व्यावहारिक बुद्धि की परीक्षा ली जाए। दूसरे दिन आचार्य द्रोण ने राजकुमार दुर्योधन को अपने पास बुलाकर कहा- वत्स, तुम समाज में अच्छे आदमी की परख करो और वैसा एक व्यक्ति खोजकर मेरे सामने उपस्थित करो। दुर्योधन ने कहा- जैसी आज्ञा। और वह अच्छे आदमी की खोज में निकल पड़ा। कुछ दिनों के बाद दुर्योधन आचार्य द्रोण के पास आकर बोला- गुरुजी, मैंने कई नगरों और गांवों का भ्रमण किया परंतु कहीं भी कोई अच्छा आदमी नहीं मिला। इस कारण किसी को आपके पास नहीं ला सका। इसके बाद आचार्य द्रोण ने राजकुमार युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया और कहा- बेटा, इस पूरी पृथ्वी से कोई बुरा आदमी खोज कर लाओ। युधिष्ठिर ने कहा- गुरुदेव, मैं कोशिश करता हूं। वह बुरे आदमी की खोज में निकल पड़ा। काफी दिनों बाद युधिष्ठिर आचार्य द्रोण के पास लौटा। आचार्य द्रोण ने युधिष्ठिर से पूछा- किसी बुरे आदमी को साथ लाए? युधिष्ठिर ने कहा- मैंने सब जगह बुरे आदमी की खोज की, पर मुझे कोई भी बुरा आदमी नहीं मिला। मैं खाली हाथ लौट आया। सभी शिष्यों ने पूछा- गुरुवर, ऐसा क्यों कि दुर्योधन को कोई अच्छा आदमी नहीं मिला और युधिष्ठिर किसी बुरे व्यक्ति को नहीं खोज सके? आचार्य बोले- जो व्यक्ति जैसा होता है, उसे सभी वैसे ही नजर आते हैं। इसलिए दुर्योधन को कोई अच्छा व्यक्ति नहीं मिल सका। युधिष्ठिर को कोई बुरा आदमी नहीं मिल सका।

६८५) भविष्य की चिंता - एक सेठ भविष्य को लेकर आशंकित रहता था। शाम को जब वह दुकान से घर लौटता तो भविष्य की संभावित कठिनाइयों को लेकर तिल का ताड़ बनाने लगता। घर के सभी लोगों, खासकर उसकी पत्नी को इससे बहुत परेशानी होती। धीरे-धीरे पत्नी समझ गई कि बेवजह नकारात्मक चिंतन में घुलते रहने की वहज से उसके पति की यह हालत हो रही है। पत्नी ने उसे सुधारने के लिए एक नाटक रचा। एक दिन वह चारपाई पर रोनी सूरत बनाकर पड़ गई। उसने घर का कोई काम भी नहीं किया। शाम को सेठ जब घर आया और पत्नी को चारपाई पर लेटे देखा तो उसकी चिंता बढ़ गई। उसने पत्नी से उदासी का कारण पूछा। इस पर पत्नी बोली, नगर में एक पहुंचे हुए ज्योतिषी पधारे

हैं। लोग कहते हैं कि वे त्रिकालदर्शी हैं और उनका कहा कभी झूठ नहीं होता। पड़ोसन की सलाह पर आज मैं भी उनसे मिलने गई थी। उन्होंने मेरा हाथ देखकर बताया कि मैं सत्तर बरस तक जियूंगी। मैं यह सोच-सोचकर परेशान हूं कि सत्तर बरस में मैं कितना अनाज खा जाऊंगी। यह सुनकर सेठ उसे समझाते हुए बोला- अरी बावरी, यह सब एक दिन में थोड़े ही होगा। समय के साथ आने और खर्च होने का काम चलता रहेगा। तू व्यर्थ ही चिंता करती है। यह सुनकर पत्नी ने तुरंत कहा- आप भी तो रोज भविष्य के बारे में सोच-सोचकर खुद भी परेशान होते हैं और हमें भी परेशान करते हैं। ऐसा क्यों नहीं सोचते कि समयानुसार यदि समस्याएं आएंगी, तो उनका हल भी निकालते रहेंगे। सेठ को अपनी भूल समझ में आ गई। उसने अपनी दुविधा दूर करने के लिए पत्नी को धन्यवाद दिया।

६८६) सफलता का रहस्य - कार्ली टैकास अक्सर ओलिंपिक में भाग लेने के स्वप्न देखता और दिन-रात निशानेबाजी का अभ्यास करता रहता था। एक समय ऐसा भी आया कि हंगरी में उसे सर्वश्रेष्ठ निशानेबाज घोषित किया गया। उसकी खुशी तब और बढ़ गई जब जापान में होनेवाले ओलिंपिक खेलों में सम्मिलित होने के लिए उसे चुन लिया गया। कार्ली को लगा कि बस अब उसका सपना पूरा होने को है। लेकिन उसकी यह खुशी अधिक दिन तक नहीं टिक पाई। अचानक द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया। उसे युद्ध के लिए जाना पड़ा। १९४५ में युद्ध समाप्त हुआ और १९४८ में होनेवाले ओलंपिक की तैयारियां शुरू हो गईं। ओलिंपिक में चयनित खिलाड़ी कड़ा परिश्रम कर रहे थे। दुर्भाग्यवश एक मोटर दुर्घटना में कार्ली अपना दाहिना हाथ खो बैठा और बेहोश हो गया। उसे लगने लगा कि जीवन का अब कोई अर्थ नहीं रह गया था। उसे अपनी सारी आशाएं धूमिल होती नजर आने लगीं, लेकिन उसने हिम्मत से काम लिया। वह दिन-रात बाएं हाथ से निशानेबाजी का अभ्यास करता रहता। उसके दिमाग में बस एक ही धुन थी कि ओलंपिक विजेता बनना है। सन १९४८ में वह लंदन में ओलिंपिक खेलों में शामिल हुआ। जब लोगों को यह पता चला कि निशानेबाजी में प्रथम आए खिलाड़ी का दायां हाथ नहीं है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। दर्शक इस ओलिंपिक विजेता अद्भुत खिलाड़ी को देखने के लिए उमड़ पड़े। बाएं हाथ से ओलिंपिक विजेता निशानेबाज बनकर कार्ली टैकास ने यह साबित कर दिया कि यदि सच्ची लगन हो तो कोई भी बाधा उसे सफलता हासिल करने से नहीं रोक सकती।

६८७) काम करने का तरीका - एक युवक अपने काम के लिए कहीं जा रहा था। रास्ते में उसने देखा कि एक मजदूर दीवार पर सफेदी कर रहा है। वह सड़क पार करने के लिए वहां कुछ देर रुका रहा और इस बीच मजदूर का काम करने का तरीका देखता रहा। कुछ देर में सड़क खाली हो गई तो उसने पाया कि मजदूर जिस ढंग से दीवार पर सफेदी कर रहा था, उससे सामान और समय दोनों की बर्बादी हो रही थी। कुछ सोचकर वह उस मजदूर के पास गया और उससे बोला, दोस्त, इससे बहुत कम समय में और कम सामान में अच्छी तरह से सफेदी हो सकती है। क्या तुम वह तरकीब मुझसे सीखना चाहोगे? मजदूर यह सुनकर हैरानी से युवक को देखते हुए बोला, तुम अगर ऐसा कर सकते हो तो बहुत अच्छी बात है। मैं उस तरकीब को अवश्य सीखना चाहूंगा। बस, इसके बाद वह युवक अपनी कमीज की बांहें ऊपर चढ़ाकर ब्रश और सफेदी लेकर काम में जुट गया। कुछ ही समय में उसने अपनी बात सही साबित करके दिखा दी। उसके सफेदी करने के तरीके से काफी समय व सामान बच गया और सफेदी भी बहुत बढ़िया हो गई। मजदूर खुश होकर युवक से बोला, अब मैं

भविष्य में ऐसे ही काम करूंगा जैसा आपने सिखाया है। उस जगह का मालिक चुपचाप वहां खड़ा यह सब देख रहा था। उसने उसके हाथ में इनाम थमाना चाहा। युवक बोला, सर, इनाम व मेहनताने पर मेरा नहीं, मजदूर का हक है। काम तो इसी ने किया है, मैंने तो बस इसे काम को सही ढंग से करने का तरीका समझाया है। आगे चलकर यही युवक महान दार्शनिक बना और कार्ल मार्क्स के नाम से मशहूर हुआ।

६८८) भगत सिंह का अंतिम दिन - २३ मार्च १९३१ को फांसी के किसी खौफ से बहुत दूर भगत सिंह अपनी जेल कोठरी में लेनिन की जीवनी पढ़ते रहे। दोपहर के वक्त जेल के अपने साथियों से भगतसिंह ने रसगुल्ले की फरमाइश भेजी। उन्होंने रसगुल्लों का इंतजाम किया। भगतसिंह ने बहुत प्रसन्नता से रसगुल्ले खाए। यही उनका अंतिम भोजन था। इसके बाद भगतसिंह ने फिर से खुद को लेनिन की जीवनी में लीन कर लिया। बुद्धिजीवी तो बड़े-बड़े हुए हैं पर क्या अध्ययनशीलता का ऐसा कोई उदाहरण मिलता है कि मौत सिर पर खड़ी हो और आप पुस्तक पढ़ने में तल्लीन हो? थोड़ी देर में जेल अधिकारियों ने कहा- सरदार जी, फांसी लगाने का हुक्म आ गया है। भगतसिंह ने जवाब दिया- जरा ठहरो, एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी से मिल रहा है। पुस्तक का जो प्रसंग वे पढ़ रहे थे, उसे समाप्त कर उन्होंने पुस्तक एक ओर रख दी और कहा- चलो। भगतसिंह के साथ, सुखदेव और राजगुरु भी अपनी कोठरियों से बाहर आ गए। इसके बाद तीनों साथी अंतिम बार गले मिले। एक दूसरे की बांहों को हाथ में लेते हुए उन्होंने गीत गाया- दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उल्फत, मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आएगी। अंग्रेज अधिकारी से भगतसिंह ने कहा- आप खुशकिस्मत हैं कि आज आप अपनी आंखों से यह देखने का अवसर पा रहे हैं कि भारत के क्रांतिकारी किस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक अपने सर्वोच्च आदर्श के लिए मृत्यु का आलिंगन कर सकते हैं। फिर तीनों वीरों ने नारा लगाया- इंकलाब जिंदाबाद, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद और इसके बाद शीघ्र ही वे फांसी के तख्ते पर झूल गए।

६८९) परमात्मा की मर्जी - रामदास ने कड़े परिश्रम से अपने खेत को एक खूबसूरत बाग में बदल दिया था। एक दिन जब वह बाग में पहुंचा तो देखा कि एक बाबा पेड़ पर चढ़कर फल खा रहा है। रामदास ने उससे कहा- बाबा, आप इस तरह फल तोड़कर क्यों खा रहे हैं? यदि आपको फल चाहिए ही थे तो मुझसे पूछकर लेते। यह सुनकर बाबा बोला- मुझे किसी से पूछने की जरूरत नहीं बच्चा। ये सारा संसार परमात्मा ने बनाया है। यह बगीचा और इसमें लगे पेड़-पौधे व फल भी उसी के हैं। मैं परमात्मा का सेवक हूं। इस नाते इन फलों पर मेरा भी हक है। रामदास ने कहा- परमात्मा का सेवक तो मैं भी हूं। पर इस तरह गलत काम नहीं करता। आप तो चोरी कर रहे हैं। आप मेरे फल चुराकर खा रहे हैं। यह सुनकर बाबा गुस्से में बोला- चुपकर अधर्मी। मुझे चोर कहता है। अरे पापी, क्यों मुझ पर यूं लांछन लगा रहा है? रामदास समझ गया कि वह बाबा के वेश में कोई ढोंगी है। उसने उसे सबक सिखाने की ठान ली। फल खाने के बाद जैसे ही बाबा पेड़ से नीचे उतरा, रामदास ने एक रस्सी लेकर उसे तने से बांध दिया और फिर एक डंडा उठाकर उसकी पिटाई शुरू कर दी। ढोंगी बाबा चीखने-चिल्लाने लगा- मुझे इतनी बेदर्दी से पीटते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? क्या तुझे परमात्मा का तनिक भी खौफ नहीं? रामदास बोला- मैं क्यों डरूं? यह बगीचा, यह लाठी और मेरे हाथ सब कुछ परमात्मा की ही तो मिल्कियत हैं। समझ लो कि मैं जो कर रहा हूं, वह परमात्मा की इच्छा है। यह सुनकर उसने रामदास से अपने बर्ताव के लिए क्षमा मांगी

और फिर कभी ऐसा न करने का प्रण लिया।

६९०) शैतान की गठरियां - एक बार ईसा कहीं जा रहे थे। थोड़ी दूर पहुंचने पर उन्हें एक सौदागर मिला। उसने अपने पांच गधों पर अलग-अलग गठरियां लाद रखी थीं। ईसा ने उसे रोका और पूछा, भाई, तुम इतना सारा वजन लादकर क्या ले जा रहे हो? सौदागर ने जवाब दिया, इन गधों पर लदी गठरियों में ऐसी चीजें हैं जो इंसान मात्र को मेरा गुलाम बना देती है। मेरे लिए ये बड़ी उपयोगी चीजे हैं। यह सुनकर ईसा बोले, अच्छा जरा बताओ तो, आखिर ऐसा क्या है तुम्हारी इन गठरियों में जो मनुष्य तुम्हारा गुलाम बन जाता है? इस पर सौदागर हौले से मुस्कराया और फिर बोला, आप जानना ही चाहते हैं तो सुने। पहले गधे पर अत्याचार लदा है। दूसरे गधे पर लदी गठरी में अहंकार है। तीसरे पर मैंने ईर्ष्या को लादा हुआ है। चौथी गठरी में बेईमानी है और पांचवीं में छल-कपट है। ईसा ने उससे पूछा, भाई, तुमने अपना कारोबार तो बता दिया, लेकिन यह बताओ कि तुम हो कौन? इस पर सौदागर ने इठला कर जवाब दिया, मैं शैतान हूं। देखते नहीं, आज सारी मानव जाति ईश्वर की नहीं, मेरी प्रतीक्षा में रहती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मेरे व्यापार में लाभ ही लाभ है। इतना कहकर वह सौदागर अपनी राह की ओर चला गया। उसके चले जाने के बाद ईसा प्रभु से प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा, हे ईश्वर, मानव जाति को विवेक प्रदान कर, ताकि वह शैतान के चंगुल से छुटकारा पा सके। इंसानों को भी यह अहसास तो हो कि वे क्या खरीदते रहते हैं और उन्हें वास्तव में चाहिए क्या। मानव जाति की भलाई इसी में है कि वह इन दुर्गुणों का ग्राहक न बने।

६९१) सैलून भी मंदिर है - एक दिन संत तुकड़ोजी महाराज दोपहर को विश्राम कर रहे थे कि रामचंद्र नाम का एक शिष्य उनके पास गुस्से में भरा आया। शिकायत भरे शब्दों में उसने कहा, गुरुदेव, लोग बड़े अहमक हो गए हैं। देखिए न, सामने किसी मूर्ख ने कटिंग-सैलून खोला है और उसका नाम रखा है- गुरुदेव सैलून। आप फौरन उसे बुलवाकर नाम बदलने को कहें, नहीं तो अभी उसकी दुकान को आग लगा दूंगा। तुकड़ोजी ने सुना तो उन्हें हंसी आ गई। बोले, अरे वाह, मुझे तो आज ही मालूम हुआ कि वह सैलून है। हनुमानजी ने तो लंका इसलिए जलाई थी कि पापी रावण ने सीताजी का अपहरण कर उन्हें लंका में छिपा रखा था। क्या इस सैलून वाले ने भी कुछ ऐसा ही कर रखा है? तू क्यों सैलून जलाने की सोच रहा है? मुझे तो ऐसा नहीं दिखाई देता। वह वहां बाल काटने का काम करता है और अपने परिवार के पालन-पोषण का सत्कर्म करता है। इस तरह वह सैलून तो मंदिर के समान पवित्र है। तब क्या तू इस मंदिर को जलाएगा? रामचंद्र को चुप देख वे बोले, अरे हां, तुझे तो सैलून के नाम पर आपत्ति है। मगर नामकरण तो पिता द्वारा किया जाता है। तेरा नाम रामचंद्र भी तो तेरे पिता ने कुछ सोचकर ही रखा होगा, मगर इससे प्रभु रामचंद्रजी को क्रोध आया होगा कि तेरे पिता ने उनका ही नाम क्यों चुना? भावुक शिष्य रामचंद्र के लिए इतना ही पर्याप्त था। वह बड़ा लज्जित हुआ और गुरुदेव के चरणों पर गिर कर उनसे क्षमा मांगी। तब वे उसे उठाते हुए वे बोले, जा उस सैलून वाले से कह कि आज रात को हम लोग उसके सैलून में ही भजन करेंगे।

६९२) गुरु की खुशी - एक बार एक अनुभवी हकीम गुरु गोविंद सिंह के दर्शन के लिए आनंदपुर आया। जब वह गुरु गोविंद सिंह से मिलकर वापस लौटने लगा तो उन्होंने उसे गुरु मंत्र देते हुए कहा, जाओ, तुम दीन-दुखियों की मन लगाकर

सेवा करो। हकीम अपने घर लौटकर समर्पण भाव से हकीमी करने लगा। जब भी कोई बीमार आदमी उसके पास आता, वह सेवा समझकर बड़े प्रेम से उसका उपचार करता। एक दिन सुबह के समय हकीम इबादत में लीन था, तभी गुरु गोविंद सिंह उसके घर आ पहुंचे। हकीम को इबादत में तल्लीन देख वे उसके पास बैठ गए। हकीम को गुरु गोविंद सिंह के आने का पता ही नहीं चला। तभी किसी ने बाहर से आवाज लगाई- हकीम जी, मेरे पड़ोसी की तबीयत बहुत खराब है। उसे बचा लीजिए। आवाज सुनकर जब हकीम ने आंखें खोलीं तो गुरु गोविंद सिंह को पास बैठा पाया। वह असमंजस में पड़ गया कि उसके साथ जाए या इतनी दूर से आए गुरुजी की सेवा करे। हकीम ने उस आदमी के साथ जाने का निश्चय किया और रोगी का समुचित इलाज करने के बाद वापस लौटा। लौटने पर उसने देखा कि गुरु गोविंद सिंह अभी तक उसके इंतजार में बैठे थे। गुरुजी को इतना इंतजार कराने के लिए उसे बड़ा अपराधबोध हुआ। वह उनके पैरों में गिर कर क्षमा मांगने लगा। गुरुजी ने हकीम को गले से लगा लिया और बोले- मैं तुम्हारे कर्त्तव्य पालन और सच्चे सेवा भाव से बहुत प्रसन्न हूं। मेरे यहां होने के बावजूद तुम मरीज की सेवा करने गए। सच बात यह है कि दुखियों की सेवा ही गुरु को सच्ची सेवा देती है। तुमने अपना कर्त्तव्य निभाकर मुझे ऐसी ही खुशी प्रदान की है।

६९३) शेख फरीद की शिक्षा - शेख फरीद एक गांव में पहुंचे तो लोगों ने उनसे अपनी-अपनी शंकाओं के समाधान पूछे। एक व्यक्ति ने पूछा- सुना है जब प्रभु ईसा को सूली पर चढ़ाया जा रहा था तो उनके चेहरे पर खुशी झलक रही थी। तनिक भी दुख नहीं था। ईसा ने यहूदियों को क्षमा करने का भी आग्रह किया था और हमने सुना है कि जब मंसूर के हाथ-पैर काटे गए, आंखें फोड़ी गईं तब उन्होंने चूं तक नहीं की। मुझे तो विश्वास नहीं होता। फरीद ने दोनों प्रश्न सुनकर एक कच्चा नारियल मंगाया और पूछने वाले को देते हुए फोड़ने को कहा। उसने सोचा, शेख प्रश्न का उत्तर दे नहीं पा रहे हैं, इसीलिए उसका ध्यान कहीं और मोड़ रहे हैं। वह बोला, महाराज, आपने मेरे प्रश्न का जवाब नहीं दिया। फरीद बोले, पहले इस नारियल को तो फोड़ो। लेकिन ध्यान रखना कि गरी अलग निकल आए। व्यक्ति बोला, यह कैसे हो सकता है महाराज। यह नारियल तो कच्चा है और इसकी गरी और खोल दोनों जुड़े हुए हैं। फरीद ने तब एक सूखा नारियल दिया और कहा, अब इसे फोड़कर इसकी गरी देना। उस व्यक्ति ने तुरंत नारियल फोड़कर गरी निकालकर सामने रख दी। फरीद ने अब उससे पूछा, इसकी गरी कैसे निकल आई? जवाब मिला, यह तो सूखी थी, इसलिए खोल से अलग थी, इसी कारण निकल आई। फरीद बोले, आम लोगों का शरीर खोल से जुड़ा होता है। उनके शरीर को चोट पहुंचती है तो उनकी अंतरात्मा को भी चोट पहुंचती है, लेकिन ईसा और मंसूर जैसे महात्मा अपने शरीर को खोल से अलग रखते हैं। इस कारण यातना देने पर भी उन्हें न पीड़ा हुई, न रंज।

६९४) कुसंगति का परिणाम - किसी जंगल में एक वृक्ष पर एक कौआ रहता था। संयोग से एक हंस भी वहां आकर रहने लगा और कौवे से उसकी गहरी मित्रता हो गई। हंस को अपने मित्र कौए पर बड़ा विश्वास था कि वह उसे कभी धोखा नहीं देगा। एक दिन शिकार खेलते हुए एक शिकारी उस जंगल में आया और दोपहर को उसी पेड़ के नीचे विश्राम करने लगा जिस पर हंस और कौआ रहते थे। थकान के कारण शिकारी को गहरी नींद आ गई। थोड़ी देर बाद कौए ने बीट कर दी जो शिकारी पर जा गिरी और उसके कपड़े खराब हो गए।

कौआ बहुत धूर्त और चालाक था। उसे पता था कि जब शिकारी उठेगा और बीट देखेगा तो गुस्से में वह मुझे मार डालेगा। लेकिन उसने यह बात अपने मित्र हंस को नहीं बताई और खुद उड़कर चुपचाप एक दूसरे पेड़ पर जा बैठा।

थोड़ी देर बाद जब शिकारी की नींद खुली तो उसने देखा कि किसी पक्षी ने उस पर बीट कर दी है। उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने ऊपर की ओर देखा तो वहां पर एक हंस बैठा था। शिकारी ने अनुमान लगाया कि इसी दुष्ट हंस ने मुझ पर बीट की होगी। उसने अपने मन में कहा कि इसे अभी मजा चखाता हूं और अपना धनुष-बाण उठा कर हंस पर तीर चला दिया। तीर लगते ही हंस बेचारा जमीन पर आ गिरा और तड़प-तड़प कर अपने प्राण दे दिये। हंस ने कोई अपराध नहीं किया था फिर भी उसकी जान क्यों चली गई? ऐसा उसकी बुरी संगति के कारण हुआ। उसने कौए जैसे धूर्त प्राणी से मित्रता की ओर उस पर विश्वास किया। <u>बुरे मित्रों की धूर्तता का परिणाम उनके नादान मित्रों को ही भुगतना पड़ता है</u>।

६९५) श्रेष्ठ मनुष्य की पहचान - एक दिन राजा मलिक ने सोचा कि उसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली है, प्रजा और राज दरबारी उसकी प्रशंसा करते हैं। क्या वह सचमुच श्रेष्ठ है, इसका पता लगाना चाहिए। इस संदर्भ में राजा ने विद्वानों, मंत्रियों और सेनापति से पूछा। उन्होंने कहा, महाराज, आपका चरित्र तो चंद्रमा के समान धवल है। राजा ने सोचा, जब तक मेरी प्रशंसा प्रजा नहीं करती, मैं प्रशंसनीय नहीं हो सकता। उन्होंने प्रजा से पूछा। कइयों ने कहा, आप में कोई त्रुटि नहीं है। राजा ने सोचा-शायद भय के कारण प्रजा ने प्रशंसा की हो। सच जानने हेतु मुझे बाहर निकलना चाहिए। राजा मलिक रथ पर बैठकर बाहर निकल गए। वह गांव-गांव जाकर पूछने लगे। सभी जगह से यही उत्तर मिला कि राजा में कोई अवगुण नहीं है। राजा का रथ आगे बढ़ रहा था, उधर दूसरी ओर से वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त का रथ आ रहा था। राजा मलिक ने ब्रह्मदत्त के सारथी से कहा, अपने रथ को सामने से हटा लो। सारथी ने उत्तर दिया- मेरे रथ पर सभी गुणों के भंडार काशी के राजा ब्रह्मदत्त बैठे हुए हैं। मेरे रथ को पहले निकल जाने दीजिए। राजा मलिक बोले, सभी गुणों का भंडार तो मैं हूं। तुम अपने रथ को बगल में कर लो। राजा ब्रह्मदत्त अभी तक मौन थे। राजा मलिक की बात सुनकर उन्होंने पूछा, क्या मैं जान सकता हूं कि आप अपने को श्रेष्ठ क्यों समझते हैं? राजा मलिक ने कहा, मैं बुराई करनेवालों के साथ बुराई और भलाई करनेवालों के साथ भलाई करता हूं। राजा ब्रह्मदत्त बोले, श्रेष्ठ वह है जो बुराई करनेवालों के साथ भी भलाई करे। यह सुनकर राजा मलिक के ज्ञानचक्षु खुल गए।

६९६) मोक्ष का अधिकारी - बहुत पहले की बात है, एक गांव में एक संत रहा करते थे। उनके बारे में सब लोग यही मानते थे कि वह अत्यंत विद्वान तथा त्यागी तपस्वी थे। वह सुबह उठते तो नहा-धोकर तपस्या करने बैठ जाते। शाम होती तो भगवान की उपासना होती। लगभग हमेशा ही वह साधना में लीन रहते। सो दुनियादारी उनसे यों ही दूर रहती। इसी तरह से भगवान का नाम लेते-लेते उनकी मृत्यु की बेला भी आ पहुंची। मृत्यु के पश्चात यमराज के दरबार में ले जाया गया। वे अपने त्याग-तपस्या तथा भक्ति के बल पर मोक्ष चाहते थे, जबकि चित्रगुप्त ने उनके कुलीन कुल में जन्म लेने की व्यवस्था की थी। संत को दोबारा जन्म लेना स्वीकार्य नहीं था। सो वह वहीं अड़ गए कि उन्हें जन्म नहीं बल्कि मोक्ष चाहिए। उनका कहना था कि वे इसके हकदार है। इस बात पर संत और चित्रगुप्त में कहासुनी भी हो गई। मामला गंभीर हुआ तो इसे धर्मराज के सामने ले जाया गया। धर्मराज ने चित्रगुप्त द्वारा उनके विषय में प्रस्तुत विवरण पर निगाह

डाली और बोले, महात्मन, यह बिल्कुल ठीक है कि आपने अपना व्यक्तिगत जीवन घोर तपस्या करते हुए, निष्कलंक व्यतीत किया। सांसारिक आसक्ति आपको छू भी नहीं पाई। किंतु मानव जीवन की सार्थकता केवल त्याग-तपस्या में नहीं बल्कि त्याग तपस्या के साथ-साथ परोपकार व सेवा के कार्यों में भी कुछ समय लगाने में है। आपने संसार के दुखी प्राणियों को सुखी बनाने के प्रयासों में अपना एक क्षण भी नहीं लगाया। उन्हें अच्छे और उचित कार्यों के लिए प्रेरित नहीं किया। नीतिशास्त्र में इस कर्त्तव्यहीनता और स्वार्थ कहा गया है। इस कर्त्तव्यहीनता के कारण आप मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं। संत समझ गए कि केवल अपने मोक्ष का प्रयास तो वास्तव में स्वार्थ ही कहा जाएगा। अगले जन्म में सेवा व परोपकार पर पूरा समय देने का उन्होंने संकल्प कर लिया।

६९७) सबसे बड़ा भक्त - एक बार अर्जुन को अहंकार हो गया कि वही भगवान के सबसे बड़े भक्त हैं। अर्जुन के अहंकार को कृष्ण समझ गए। एक दिन वह अर्जुन को अपने साथ घुमाने ले गए। रास्ते में उनकी मुलाकात एक गरीब ब्राह्मण से हुई। उसका व्यवहार थोड़ा विचित्र था। वह सूखी घास खा रहा था और उसकी कमर पर तलवार लटक रही थी। अर्जुन ने उससे पूछा, आप तो अहिंसा के पुजारी हैं। जीव हिंसा के भय से सूखी घास खाकर अपना गुजारा करते हैं। लेकिन फिर हिंसा का यह उपकरण तलवार क्यों आपके साथ है? ब्राह्मण ने जवाब दिया, मैं कुछ लोगों को दंडित करना चाहता हूं। आपके शत्रु कौन है? अर्जुन ने जिज्ञासा जाहिर की। ब्राह्मण ने कहा, मेरे चार शत्रु हैं। पहले तो नारद, जो मेरे प्रभु को आराम नहीं करने देते, सदा भजन-कीर्तन कर उन्हें जगाए रखते हैं। फिर द्रौपदी है, जिसने मेरे प्रभु को ठीक उसी समय पुकारा, जब वह भोजन करने बैठे थे। उन्हें तत्काल खाना छोड़ पांडवों को दुर्वासा ऋषि के शाप से बचाने जाना पड़ा। उसकी धृष्टता तो देखिए। उसने मेरे भगवान को जूठा खाना खिलाया। आपका तीसरा शत्रु कौन है? अर्जुन ने पूछा। वह है हृदयहीन प्रह्लाद। उस निर्दयी ने मेरे प्रभु को गरम तेल के कढ़ाही में प्रविष्ट कराया, हाथी के पैरों तले कुचलवाया और अंत में खंभे से प्रकट होने के लिए विवश किया और चौथा शत्रु है अर्जुन। उसकी दुष्टता देखिए। उसने मेरे भगवान को अपना सारथी बना डाला। उसे भगवान की असुविधा का तनिक भी ध्यान नहीं रहा। कितना कष्ट हुआ होगा मेरे प्रभु को। यह कहते ही ब्राह्मण की आंखों में आंसू आ गए। यह देख अर्जुन का घमंड चूर-चूर हो गया। उसने भगवान कृष्ण से क्षमा मांगते हुए कहा, मान गया प्रभु, इस संसार में न जाने आपके कितने तरह के भक्त हैं। मैं तो कुछ भी नहीं हूं।

६९८) मन का भ्रम - एक बार गौतम बुद्ध एक गांव में धर्म सभा को संबोधित कर रहे थे। लोग अपनी परेशानियों को लेकर उनके पास जाते और उनका हल लेकर खुशी-खुशी वहां से लौटते। उसी गांव में सड़क के किनारे एक गरीब व्यक्ति बैठा रहता और धर्म सभा में आने-जानेवाले लोगों को ध्यान से देखता। उसे बड़ा आश्चर्य होता कि लोग अंदर तो बड़ा दुखी चेहरा लेकर जाते हैं, लेकिन जब वापस आते हैं तो बड़े प्रसन्न दिखाई देते हैं। उस गरीब को लगा कि क्यों न वह भी अपनी समस्या को बुद्ध के सामने रखे? मन में यह विचार लिए वह भी महात्मा बुद्ध के पास पहुंचा। लोग पंक्तिबद्ध खड़े होकर उन्हें अपनी समस्याएं बता रहे थे और वह मुस्कुराते हुए सबकी समस्याएं हल कर रहे थे। जब उसकी बारी आई तो उसने सबसे पहले महात्मा को प्रणाम किया और कहा- भगवन, इस गांव में लगभग सभी लोग खुश और समृद्ध हैं। फिर मैं

ही क्यों गरीब हूं? इस पर बुद्ध मुस्कुराते हुए बोले- तुम गरीब निर्धन इसलिए हो, क्योंकि तुमने आज तक किसी को कुछ दिया ही नहीं। आश्चर्यचकित गरीब बोला- भगवन, मेरे पास भला दूसरों को देने के लिए क्या होगा? मेरा तो स्वयं का गुजारा बहुत मुश्किल से हो पाता है। लोगों से भीख मांगकर अपना पेट भरता हूं। भगवान बुद्ध कुछ देर शांत रहे, फिर बोले- तुम बड़े अज्ञानी हो। औरों के साथ बांटने के लिए ईश्वर ने तुम्हें बहुत कुछ दिया है। मुस्कुराहट दी है, जिससे तुम लोगों में आशा का संचार कर सकते हो। मुंह से दो मीठे शब्द बोल सकते हो। दोनों हाथ से लोगों की मदद कर सकते हो। ईश्वर ने जिसको ये तीन चीजें दी हैं वह कभी गरीब और निर्धन हो ही नहीं सकता। निर्धनता का विचार आदमी के मन में होता है। यह तो एक भ्रम है इसे निकाल दो। यह सुन ज्ञान से उस आदमी का चेहरा चमक उठा।

६९९) मौत से प्रेरणा - डॉक्टर सर जेम्स यंग सिंपसन को एक मरीज का ऑपरेशन करना था। मरीज चीर-फाड़ से डरकर बुरी तरह चीत्कार रहा था। तब तक ऐसा कोई तरीका नहीं मिला था जिसके जरिए ऑपरेशन के दौरान मरीज को दर्द के एहसास से बचाया जा सकता। उस मरीज की स्थिति देखते हुए उसके हाथ-पैर बांध दिए गए। चिकित्सक सिंपसन ने शल्यचिकित्सा शुरू तो किया, लेकिन दर्द के डर से ही मरीज की मृत्यु हो गई। यह देखकर सिंपसन बहुत दुखी हुए। उन्होंने इस पर सोचना शुरू किया कि ऐसा क्या तरीका हो सकता है जिससे मरीज शल्यचिकित्सा के कष्ट से बच जाए। पहले उन्हें सम्मोहन क्रिया का ध्यान आया। इसके बाद उन्होंने नए-नए प्रयोग करने शुरू किए। १८४६ में उन्हें पता चला कि अमेरिकी दंत चिकित्सक विलियम मॉर्टन ईथर का प्रयोग करते हैं। इससे मरीजों को दर्द का अहसास कम होता है। सिंपसन भी प्रसव के दौरान ईथर का प्रयोग करने लगे। लेकिन जल्दी ही उन्हें अहसास हुआ कि ईथर प्रसव के लिए उपयुक्त नहीं है। उन्होंने और अधिक प्रभावी एनेस्थीसिया की खोज करनी शुरू की। वे दिन में प्रयोगशाला में शोध करके एनेस्थीसिया तैयार करते थे। रात को अपने घर पर दो डॉक्टर मित्रों के साथ बैठकर उन द्रवों को सूंघते थे। ४ नवंबर १८४७ की रात को उन्हें उस खास छोटी सी बोतल का ध्यान आया जिसमें रखे द्रव से वे प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने उस द्रव को गिलासों में डाला और उसे अपने मित्रों के साथ सूंघा। अगले ही पल वे सब के सब बेहोश हो गए। लेकिन जब होश आया तो सिंपसन की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने बेहद शक्तिशाली एनेस्थीसिया की खोज कर ली थी। यह क्लोरोफॉर्म था। डॉक्टर सिंपसन के इस सफल प्रयोग ने दुनिया भर के चिकित्सकों के लिए यह संभव कर दिया कि मरीज को तकलीफ में डाले बिना शल्यचिकित्सा कर सकें।

७००) खलीफा का आदर्श - प्रथम खलीफा हजरत अबूबकर के जीवन के अंतिम दिनों की बात है। उन्होंने अपने प्रियजनों को पास बुलाया और उनसे पूछा, मुझे अब तक राजकोष से कितनी राशि वजीफे के रूप में दी गई है? राजकोष के खाते को देखकर उन्हें बताया गया कि उन्हें अब तक छह हजार दिरहम दिए गए हैं। हरजत ने आदेश दिया कि उनकी निजी जमीन बेचकर छह हजार दिरहम राजकोष में जमा करा दिए जाएं। उनके आदेश का तुरंत पालन किया गया और उनकी जमीन बेचकर राशि जमा कर दी गई। मृत्यु से एक दिन पूर्व हजरत अबूबकर ने अपनी बेटी आयशा से पूछा, मेरे खलीफा बनने के बाद मेरी निजी संपत्ति में क्या-क्या इजाफा हुआ है? एक नौकर है जो घर का काम करता है, एक ऊंटनी है जिस पर पानी तथा अन्य घरेलू समान लाद कर लाया जाता है और एक सफेद चादर है जो आप ओढ़ते हैं। आयशा ने

उन्हें बताया। उन्होंने अपनी आखिरी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा, इन तीनों को मेरी मृत्यु के बाद मेरे उत्तराधिकारी खलीफा के पास पहुंचा दिया जाना चाहिए। यह मेरी नहीं, खलीफा पद की दौलत है। मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व उन्होंने कहा कि हमारे मजहब की परंपरा है कि कफन में तीन कपड़े हों। इनमें से दो चादरें, जिनका मैं इस्तेमाल करता हूं, इन्हें कफन के काम में लिया जाए। केवल एक नई चादर खरीदी जाए जो हाड़-मांस के इस शरीर को ढकने के काम आए। बेटी आयशा ने आंखों में आंसू भरकर कहा, अब्बाजान, आप ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं? हमारी माली हालत इतनी खराब तो नहीं है कि हम कफन के लिए नए कपड़े न खरीद सकें। इस पर अबूबकर ने जवाब दिया, बेटी, मुर्दे को नए-पुराने कपड़े से कोई फर्क नहीं पड़ता है, लेकिन नए कपड़ों से किसी जिंदा आदमी का तन ढका जा सकता है।

७०१) नाम का धन - एक बहुत दरिद्र ब्राह्मण था जो अपनी पत्नी और बच्चों के लिए दो जून की रोटी बड़ी मुश्किल से जुटा पाता था। एक रात वह भगवान की मूर्ति के सामने अपनी गरीबी पर रोने लगा और रोते-रोते सो गया। उसी रात भगवान ने उसे सपने में कहा, तू वृंदावन जा, वहां महान भक्त जीव गोस्वामी के दर्शन करना। वे तुझे रत्न प्रदान करेंगे। उससे तेरी दरिद्रता दूर हो जाएगी। ब्राह्मण जीव गोस्वामी जी के पास पहुंचा और स्वप्न के बारे में बताया। जीव गोस्वमाी तपस्वी महापुरुष थे। सबेरे से शाम तक अपने इष्टदेव की उपासना में लगे रहते थे। बाकी का जो समय बचता उसमें वह श्रीमद्भागवत की टीका लिखते थे। उन्होंने ब्राह्मण से कहा, तुलसी के बिरवे के पास रखी ईंट के नीचे जमीन में रत्न दबा पड़ा है, जमीन खोदकर निकाल लो। ब्राह्मण ने जमीन खोदी और रत्न निकाल लिया। गोस्वामी जी को धन्यवाद देकर वह रत्न लेकर चल दिया। कुछ दूर ही गया था कि उसके मन में विचार आया, यह रत्न अगर इतना मूल्यवान होता और इससे इतनी शांति मिलती तो गोस्वामी इसे जमीन में क्यों गाड़ते? उन्होंने इसे निस्सार जानकर ही जमीन में दबाया होगा। अवश्य ही उनके पास इस रत्न से भी ज्यादा मूल्यवान कोई वस्तु होगी। ब्राह्मण उलटे पांव लौट आया। बोला- महाराज, यह बताइए क्या आपके पास इस रत्न से भी ज्यादा मूल्यवान कोई वस्तु है? गोस्वामी जी ने उससे कहा, इस रत्न को यमुनाजी में फेंक दो, तुम्हें स्वयं पता लग जाएगा कि इससे ज्यादा मूल्यवान वस्तु क्या है। ब्राह्मण ने जैसे ही रत्न को यमुनाजी में फेंका, उसकी आंखें खुल गईं। वह समझ गया कि जीव गोस्वामीजी के पास जो भगवान नाम रूपी धन है, उसके सामने यह रत्न तुच्छ है। ब्राह्मण ने उसी समय अपना जीवन भगवद्भक्ति और संतों की सेवा में लगाने का संकल्प ले लिया।

७०२) साधु की लंगोट- एक बार द्रौपदी तड़के स्नान करने यमुना घाट पर गई। जब वह घाट पर पहुंची तो पौ फटने को थी। उनका ध्यान सहज ही एक साधु की ओर गया। वह गंगा में स्नान कर रहे थे और उनके शरीर पर मात्र एक लंगोटी थी। साधु स्नान के पश्चात अपनी दूसरी लंगोटी लेने किनारे की ओर बढ़े। मगर तभी हवा का एक तेज झोंका आया जिससे किनारे पर रखी साधु की दूसरी लंगोट थोड़ी दूर उड़कर नदी में जा गिरी। साधु तेजी से उधर को झपटे, मगर पानी का बहाव उस लंगोट को अपने साथ बहा ले गया। संयोगवश साधु ने जो लंगोटी पहनी थी, वह भी फट गई। अब साधु सोच में पड़ गए कि वह अपनी लाज कैसे बचाएं। थोड़ी देर में सूर्योदय हो जाएगा और घाट पर भीड़ भी बढ़ जाएगी। कुछ और उपाय न देख साधु तेजी से पानी के बाहर आए और झाड़ी में छिप गए। यह सब कुछ द्रौपदी देख रही थीं। वह साधु के पास गईं और अपनी साड़ी आधी फाड़ कर उन्हें देते हुए बोलीं, मुनिवर, मैं आपकी परेशानी समझ गईं। इस वस्त्र से

अपनी लाज ढक लीजिए। साधु ने सकुचाते हुए साड़ी का टुकड़ा ले लिया औरा आशीष दिया, जिस तरह आज तुमने मेरी लाज बचाई उसी तरह एक दिन भगवान भी तुम्हारी लाज बचाएंगे और जब भरी सभा में चीरहरण के समय द्रौपदी की करुण पुकार नारद ने भगवान तक पहुंचाई तो भगवान ने कहा, कर्मों के बदले मेरी कृपा बरसती है, क्या कोई पुण्य है द्रौपदी के खाते में? जांच की गई तो उस दिन साधु को दिया वस्त्र दान हिसाब में मिला, जिसका ब्याज भी कई गुणा बढ़ गया था। उसको चुकता करने भगवान स्वयं द्रौपदी की मदद करने पहुंच गए। दु:शासन द्रौपदी की साड़ी खींचता गया और हजारों गज कपड़ा बढ़ता गया। सचमुच मनुष्य जैसा कर्म करता है उसका वैसा ही फल उसे सूद सहित मिलता है।

७०३) ईर्ष्या का विष - एक महिला कुबड़ी थी जिसकी वजह से वह झुककर चलती थी। सभी लोग उसका उपहास उड़ाते थे। बच्चे तो जब-तब उसे कुबड़ी-कुबड़ी कहकर परेशान करते रहते थे। एक दिन वह कहीं जा रही थी कि सहसा रास्ते में उसकी भेंट नारद जी से हो गई। नारद ने उस महिला पर तरस खाते हुए कहा, मैं अपने योगबल से तुम्हारा कुबड़ ठीक कर दूंगा। महिला बोली, भगवान। आप अंतर्यामी हैं। आप तो जानते ही है कि लोग मेरा कितना मजाक उड़ाते हैं। मुझे सदैव यह कहकर चिढ़ाते रहते हैं कि, देखो वह कुबड़ी जा रही है। यदि आप मुझ पर मेहरबानी कर ही रहे हैं तो मेरे कूबड़ की फिक्र मत कीजिए। आप इस इतना कर दीजिए कि जो लोग मेरा मजाक उड़ाते हैं, उन सबके भी कूबड़ निकल आए। नारद जी ने उस महिला का उत्तर सुना तो हक्के-बक्के रह गए। आश्चर्यचकित होकर बोले, बहन, दूसरों के कूबड़ निकल आने से तुम्हें क्या मिलेगा? बुढ़िया बोली, मैं उन्हें भी अपनी तरह चलते और दूसरों द्वारा उपहास होते देखूंगी तो मन को शांति मिलेगी। नारद जी सोचने लगे यह महिला चाहती तो मेरी कृपा से अपना कूबड़ ठीक करा सकती थी। लेकिन उसने हाथ आए अवसर को दूसरों के नुकसान के रूप में ही भुनाने की कामना की। ईर्ष्यालु व्यक्ति की प्रकृति यही होती है कि वह दूसरों को सुखी-संपन्न देखकर उनके जैसा उन्नत, संपन्न और सुखी होने की प्रेरणा ग्रहण नहीं करता, बल्कि सुखी लोगों को दुखी करने और नीचे गिराने का प्रयास करता है। बुढ़िया का मनोरथ पूरा करने का उनका कोई इरादा नहीं था। बोले, मैं तो तुम्हारा भला करने की सोच रहा था, दूसरों का बुरा कर पाप का भागी क्यों बनूं? और अंतर्ध्यान हो गए। अब बुढ़िया अपनी कूबड़ के साथ पहले जैसी ही चाल में चली जा रही थी।

७०४) पीर की जूती - अमीर खुसरो पहले मुल्तान के हाकिम के यहां नौकरी करते थे, किंतु किसी कारण उन्होंने नौकरी छोड़ दी और वे अपना सारा सामान ऊंटों पर लादकर अपने गुरु हजरत निजामुद्दीन से मिलने दिल्ली की ओर निकल पड़े। इधर हजरत निजामुद्दीन के पास एक गरीब आदमी आया और बोला, मालिक मेरी लड़की की शादी तय हो गई है। यदि आप कुछ मदद कर सकें, तो मैं आपका शुक्रगुजार हूंगा। हजरत बोले, आज तो मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है, तुम कल आना। वह आदमी जब दूसरे दिन गया, तो हजरत बोले, आज भी मुझे कुछ नहीं मिला। इस प्रकार तीन दिन बीत गए, लेकिन हजरत के पास भेंट चढ़ाने के लिए कोई नहीं आया। आखिर चौथे दिन जब वह गरीब वापस जाने लगा, तो उन्होंने उसे अपनी जूती ही दे दी। बेचारा मायूस तो हुआ, पर जूती लेकर ही चल पड़ा। रास्ते में खुसरो का काफिला आ रहा था। खुसरो को लगा कि कहीं से पीर की खुशबू आ रही है, किंतु पीर (हजरत निजामुद्दीन) कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे। जब वह आदमी इनके सामने से गुजरा, तो वे समझ गए कि खुशबू इसी आदमी के पास से आ

रही है। उन्होंने इसे रोककर पूछा, आप कहां से आ रहे हैं? उसने सारी बात बता दी। तब खुसरो बोले, क्या तुम इस जूती को बेचोगे? उस आदमी ने कहा, आप वैसे ही ले सकते हैं, लेकिन खुसरो ने पत्नी, दो बच्चों और खुद के लिए एक-एक ऊंट रखकर बाकी सारे ऊंट और उन पर लदा सामान उस आदमी को दे दिया। वह उन्हें दुआ देता हुआ चला गया। खुसरो जब दिल्ली पहुंचे, तो उन्होंने हजरत के चरणों पर वह जूती रख दी। तब उन्होंने पूछा, इसके बदले क्या दिया है तुमने? खुसरो ने सारी चीजें गिना दीं। खुसरो का अपने प्रति यह उत्कट प्रेम देख उनके मुख से निकला, इसकी कब्र मेरी कब्र के पास ही बनाना।

७०५) पिकासो की पेंटिंग - महान चित्रकार पाब्लो पिकासो का नाम किसने न सुना होगा। एक दिन रास्ते से गुजरते समय एक महिला की नजर पिकासो पर पड़ी और उसने उन्हें पहचान लिया। वह दौड़ी हुई उनके पास आई और बोली, सर, मैं आपकी बहुत बड़ी फैन हूं। आपकी पेंटिंग्स मुझे बहुत पसंद हैं। क्या आप मेरे लिए भी एक पेंटिंग बनाएंगे? पिकासो हंसते हुए बोले, मैं यहां खाली हाथ हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। फिर कभी मैं आपके लिए एक पेंटिंग बना दूंगा। लेकिन उस महिला ने जिद पकड़ ली तो पिकासो ने जेब से छोटा सा कागज निकाला और पेन से उस पर कुछ बनाने लगे। करीब दस सेकेंड में पिकासो ने पेंटिंग बनाई और कहा, यह लो, यह मिलियन डॉलर की पेंटिंग है। महिला को बड़ा अजीब लगा कि पिकासो ने बस दस सेकेंड में काम चलाऊ पेंटिंग बना दी है और बोल रहे हैं कि मिलियन डॉलर की पेंटिंग है। उसने वह पेंटिंग ली और बिना कुछ बोले अपने घर आ गई। उसे लगा पिकासो उसको मूर्ख बना रहे हैं। वह बाजार गई और उस पेंटिंग की कीमत पता की। वह पेंटिंग वास्तव में मिलियन डॉलर की थी। वह भागी-भागी फिर पिकासो के पास आई और बोली, सर आपने बिलकुल सही कहा था। आप मुझे अपनी स्टूडेंट बना लीजिए। जैसे आपने दस सेकेंड में मिलियन डॉलर की पेंटिंग बना दी, वैसे ही मैं दस मिनट में ही अच्छी पेंटिंग बना सकूं, मुझे ऐसा बना दीजिए। पिकासो ने हंसते हुए कहा, यह पेंटिंग, जो मैंने दस सेकेंड में बनाई है, इसे सीखने में मुझे तीस साल का वक्त लगा है। इतना वक्त तुम भी दो, सीख जाओगी। इसपर वह महिला हैरान होकर पिकासो को देखती रह गई। दरअसल दूसरों की सफलता देखने में तो आसान लगती है, लेकिन उसके पीछे कितना संघर्ष छुपा है, यह कोई नहीं देखता। सफलता का कोई शॉर्टकट नहीं होता।

७०६) पौरव का प्रेम - सम्राट सिकंदर ने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया। भारत की पवित्र भूमि पर प्रवेश करने के लिए उसे सर्वप्रथम अजेय योद्धा राजा पौरवराज से युद्ध करना आवश्यक था। भारत आने से पूर्व सिकंदर पौरवराज के बल-पराक्रम के विषय में काफी सुन चुका था। अत: वह अपने सैनिकों को सिंधु नदी के उस पार छोड़कर एक दूत के वेश में पौरवराज से मिलने गया। राजा पौरवराज देशभक्त और वीर योद्धा होने के साथ ही साथ मानव-पारखी भी थे। पौरवराज ने सिकंदर को छद्म वेश में देखा तो भी तुरंत पहचान लिया, किंतु प्रकट कुछ नहीं किया। सिकंदर ने राजदूत के वेश में राजा पौरवराज से अपने सम्राट का संदेश देते हुए कहा, सम्राट सिकंदर मनुष्यों के पैर पर तो क्या, सिर पर पैर रखकर भी चल सकने में समर्थ हैं। वे अनगिनत राजा-महाराजाओं के राजमुकुटों का मूल्य एक मामूली गेंद से ज्यादा नहीं समझते। उन्होंने कई मुकुटों को गेंद की तरह उछालकर फेंक दिया है। वही सम्राट आज आपसे मित्रता करना

चाहते हैं। आप उन्हें राह देकर भारत में अंदर की ओर जाने दें। आपके इस कार्य से आपको कोई क्षति नहीं होने दी जाएगी। संदेश सुन पौरवराज मुस्कुरा कर बोले, राजदूत। हम तो पहले अपने देशवासियों के सेवक हैं, बाद में किसी के मित्र। जिससे हमारे लोगों की स्वतंत्रता को हानि पहुंचे, ऐसा कोई भी कार्य हम नहीं कर सकते। आपके सम्राट अवश्य बलशाली होंगे, पर वे हमारे सिरों को कुचलकर ही हमारे लोगों को नुकसान पहुंचा सकते हैं। रही बात मित्रता की- तो ये जान लें कि हम सारे विश्व को अपना मित्र मानते हैं। हम देश के दुश्मनों से भी हाथ मिलाने को तैयार हैं, किंतु महलों में नहीं, रणक्षेत्र में। पौरवराज के मुख से वीरता और देशभक्ति से सने ये शब्द सुनकर राजदूत बना सिकंदर उन्हें देखता रह गया।

७०७) राजा का न्याय - अयोध्या के राजा सगर न्यायप्रिय शासक थे। प्रजा के दुख-सुख में वह हमेशा सहभागी रहते थे। एक दिन वह दरबार में बैठे थे। दरबार में आकर उन्हें बताया गया कि अयोध्या के कुछ प्रमुख लोग उनसे भेंट करना चाहते हैं। महाराजा सगर ने उन्हें दरबार में बुलवा लिया। उन्होंने महाराजा को सिर झुकाकर नमस्कार किया और बैठ गए। महाराजा ने कुशल-क्षेम पूछी तो उनमें से एक रो पड़ा। महाराजा को समझते देर न लगी कि ये सब किसी दुख से पीड़ित होकर आए हैं। महाराजा ने कहा, आप नि:संकोच बताइए कि आपको मेरे राज्य में क्या कष्ट है। महाराज, हमें लाचार होकर यहां आना पड़ा है। एक वृद्ध नागरिक ने कहा, महाराज, आप तो प्रजा को पुत्रों की तरह स्नेह और संरक्षण देते हैं। किंतु आपके पुत्र राजकुमार असमंजस ने राज्य में हमारा रहना दूभर कर दिया है। वह शाम को सरयू तट पर पहुंचते हैं और अबोध बालकों को नदी की उफनती धार में फेंक देते हैं। जब डूबते बालक रोते हैं तो राजकुमार जोर से अट्टहास कर अपना मनोरंजन करते हैं। सुनते ही महाराज का चेहरा गुस्से से लाल हो उठा। उन्होंने कहा, आप सभी निश्चिंत होकर अपने-अपने घर लौट जाइए। महाराजा दरबार से महल में पहुंचे। उन्होंने राजकुमार असमंजस को अपने पास बुलवाया। वे बोले, तुम राजकुमार हो या जल्लाद? तुम प्रजाजनों के निर्दोष बच्चों को सरयू में फेंककर मनोरंजन करते हो। मेरे राज्य में ऐसा क्रूर व्यक्ति एक क्षण भी नहीं रह सकता। राजकुमार भय से कांपने लगे। हाथ जोड़कर बोले, पिताजी, क्षमा करें भविष्य में ऐसा पाप नहीं करूंगा। सगर बोले, किंतु अनेक अबोध बच्चे तुम्हारे इस क्रूरतापूर्ण मनोरंजन के शिकार बन चुके हैं। मैं ऐसे क्रूर युवक को अपना पुत्र मानकर संरक्षण नहीं दे सकता। राजा ने असमंजस को तुरंत अयोध्या से निष्कासित कर दिया।

७०८) ईश्वर की राह - कलकत्ता की भीड़ भरी सड़क पर एक सज्जन से दिखने वाले व्यक्ति गुजर रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक बूढ़े व्यक्ति को चिंता में सिर झुकाए, परेशानी की हालत में देखा। सज्जन व्यक्ति से उस बूढ़े व्यक्ति की चिंताजनक हालत देखी न गई। इसलिए उन्होंने उससे पूछा, भाई, तुम्हें क्या दुख है? बूढ़े ने अनजान व्यक्ति को अपना दुखड़ा सुनाना उचित न समझकर टालने की कोशिश की। परंतु इस सज्जन ने और भी अधिक सहानुभूति जताते हुए कहा, आप अपनी मुश्किल तो बताइए शायद मैं आपकी कुछ मदद कर सकूं। सज्जन की प्रेमपूर्ण आग्रहभरी वाणी सुनकर बूढ़ा कुछ आश्वस्त हुआ। उसने कहा, मैं एक गरीब आदमी हूं। बेटी के विवाह के लिए किसी से कर्ज लिया था। लाख कोशिश करके भी नहीं चुका सका। अब उस व्यक्ति ने मुझ पर मुकदमा दायर कर दिया है। कर्ज का बोझ तो पहले से सिर पर था, अब यह कोर्ट-कचहरी का झंझट अलग से। सारी बातें सुनकर उस सज्जन व्यक्ति ने कहा, चिंता न करें। कुछ

न कुछ हल ईश्वर जरूर निकालेगा। उस गरीब आदमी से उन्होंने मुकदमे की अगली तारीख तथा अदालत का नाम आदि पूरा विवरण लिया और चले गए। मुकदमे की निश्चित तारीख पर वह आदमी अदालत पहुंचा और एक कोने में बैठकर अपने नाम की पुकार का इंतजार करने लगा। पैसों का इंतजाम करने लगा। पैसों का इंतजाम हो नहीं पाया था। इसलिए वह काफी घबराया हुआ था। जब पुकार नहीं हुई तो उसने अदालत के कर्मचारियों से पूछताछ की। पता चला कि किसी ने उसके कर्ज की पूरी रकम जमा करवा दी है और मुकदमा खारिज हो गया है। बाद में सबसे पूछने पर उसे पता चला कि उसका कर्ज उतारनेवाले धर्मात्मा पुरुष वही थे जो कुछ दिन पहले उसे सड़क पर मिले थे। वे सज्जन कोई और नहीं बल्कि महान समाज सुधारक तथा परोपकारी ईश्वरचंद विद्यासागर थे।

७०९) सुंदरी की मुक्ति - भिक्षु उपगुप्त अपने विहार में सो रहे थे कि अचानक उत्तर दिशा घुंघरू की झंकार से गूंज उठी। थोड़ी देर में एक सुंदरी विहार में आई। भिक्षु उपगुप्त उसे देखकर चौंक उठे क्योंकि उनके सामने घी का दीपक लिए उस नगर की प्रख्यात नर्तकी वासवदत्ता खड़ी थी। उपगुप्त ने उसके आने का कारण पूछा। वासवदत्ता ने बड़े विनय भाव से कहा, हे महान भिक्षु। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे भवन में पधारकर उसे पवित्र करें। मेरा भवन राजकुमारों के लिए भी दुर्लभ है। आप उस भवन में रहने के लिए ही बने हैं। मैंने आपके लिए पुष्प-शैया निर्मित की है। यह कहते-कहते वासवदत्ता ने प्रेमपूर्वक भिक्षु उपगुप्त का हाथ पकड़ लिया। भिक्षु उपगुप्त ने अपना हाथ खींचते हुए कोमल स्वर में कहा, हे देवी। आप अभी लौट जाएं। मेरे आने का अभी उचित समय नहीं है। ठीक समय पर मैं स्वयं आपके पास चला आऊंगा, यह मेरा वचन है। धीरे-धीरे काफी समय बीत गया। एक सूने पथ पर भिक्षु उपगुप्त चले जा रहे थे कि उन्होंने देखा, एक प्रौढ़ स्त्री बेसुध पड़ी है और उसके चेहरे पर चेचक के फफोले हैं। भिक्षु उपगुप्त ने उसके मुख पर शीतल जल छिड़का। उस नारी ने धीरे-धीरे आंखें खोलीं और कराहते हुए पूछा, हे करुणा सागर। आप कौन हैं? मुझे नगरवासियों ने छूत के भय से यहां फेंक दिया है। मुझे चेचक हो गई है। फिर भी आपने मुझ पर इतनी कृपा की? भिक्षु उपगुप्त के नेत्रों में करुणा उभर आई। वे बोले, हे वासवदत्ते। मैं भिक्षु उपगुप्त हूं। मैं अपने वचन के अनुसार आज आ गया हूं। यही मेरे आने का उपयुक्त अवसर है। भिक्षु की करुणा में निस्पृहता की ऐसी मधुर गंध थी कि वासवदत्ता का मोह-मुग्ध जीवन ज्ञान की अमर ज्योति से जगमगा उठा। वह देह ज्ञान से ऊपर उठकर आत्मज्ञान की ओर बढ़ चली। उसे मुक्ति का मार्ग मिल गया।

७१०) मां के तीन वचन - राजा गोपीचंद का मन गुरु गोरखनाथ के उपदेश सुनकर सांसारिकता से उदासीन हो गया। मां से अनुमति लेकर राजा गोपीचंद साधु बन गए। साधु बनने के बहुत दिन बाद एक बार वह अपने राज्य लौटे और भिक्षापात्र लेकर अपने महल में पहुंच आवाज लगाई, अलखनिरंजन। आवाज सुन उनकी मां भिक्षा देने के लिए महल से बाहर आईं। गोपीचंद ने अपना भिक्षापात्र मां के आगे कर दिया और कहा, मां, मुझे भिक्षा दो। मां ने भिक्षापात्र में चावल के तीन दाने डाल दिए। गोपीचंद ने जब इसका कारण पूछा तो मां बोली, तुम्हारी मां हूं। चावल के ये तीन दाने मेरे तीन वचन हैं। तुम्हें इसका पालन करना है। पहला वचन, तुम जहां भी रहो वैसे ही सुरक्षित रहो जैसे पहले मेरे घर पर रहते थे। दूसरा वचन, जब खाओ तो वैसा ही स्वादिष्ट भोजन खाओ जैसा राजमहल में खाते थे। तीसरा वचन, उसी प्रकार की निद्रा लो जैसी राजमहल में अपने आरामदेह पलंग पर लेते थे। गोपीचंद इन तीन वचनों के रहस्य को नहीं समझ सके और

कहने लगे, मां। मैं अब राजा नहीं रहा तो कैसे सुरक्षित रह सकता हूं? मां ने कहा, तुम्हें इसके लिए सैनिकों की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें क्रोध, लोभ, माया, घमंड, कपट जैसे शत्रु घेरेंगे, इन्हें पराजित करने के लिए सत्संगति, अच्छे विचार, अच्छा आचरण रखना होगा। गोपीचंद ने फिर पूछा, वन में मेरे लिए कौन अच्छा भोजन पकाएगा? मां ने कहा, जब ध्यान और योग में तुम्हारा पूरा दिन व्यतीत होगा, तुम्हें तेज भूख लगेगी तब उस स्थिति में जो भी भोजन उपलब्ध होगा, वह स्वाद वाला होगा और रही सोने की बात तो कड़ी मेहनत से थक कर चूर होने के बाद जहां भी तुम लेटोगे गहरी नींद तुम्हें घेर ही लेगी। मां के इन तीन वचनों ने गोपीचंद की आंखें खोल दीं जिसके बाद वह फिर से ज्ञान की तलाश में निकल गए।

७११) सेवा की साधना - तेज बारिश हो रही थी। ऐसे में एक कुष्ठ रोगी खुले में असहाय पड़ा कराह रहा था। कोई उसकी मदद करनेवाला नहीं था। तभी वहां से गुजरनेवाले एक व्यक्ति की इस रोगी पर नजर पड़ी। वह इसकी दयनीय दशा देखकर अंदर तक हिल गया। उसके मन में खयाल आया कि इस रोगी की जगह अगर वह स्वयं होता तो? इस घटना ने उसे इतना प्रभावित किया कि उसने उसी क्षण से कुष्ठ रोगियों की सेवा करने का व्रत ले लिया। उसने फौरन उस रोगी को उठाया और अपने घर की ओर चल पड़ा। वह नही जानता था कि कुष्ठ रोग कैसे होता है और इसका उपाय कैसे किया जाता है। उस दिन के बाद से वह कुष्ठ रोग और उसके उपचार के अध्ययन में जुट गया। उसने महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले के घने जंगलों में आनंदवन नामक एक आश्रम की स्थापना की ताकि इन रोगियों का उपचार ही नहीं उनका पुनर्वास भी किया जा सके। वह चाहता था कि कुष्ठ रोग का शीघ्र ही कोई अच्छा उपचार मिल जाए। इसके लिए वह लगातार प्रयोग करता रहा। एक बार तो उसने कुष्ठ रोग के बैक्टीरिया को चिकित्सकीय प्रयोग के लिए स्वयं अपने शरीर में ही प्रविष्ट करा लिया ताकि उचित शोध कर उपचार में सफलता हासिल कर सके। कुष्ठ रोगियों के इस महान सेवक का नाम था मुरलीधर देवीदास आमटे, जिन्हें लोग बाबा आमटे कहते थे। गांधीजी ने कुष्ठरोग के क्षेत्र में अथक प्रयासों के लिए बाबा आमटे को अभय साधक नाम दिया था। बाबा आमटे की महानता मात्र इस बात में नहीं है कि उन्होंने अपना सारा जीवन कुष्ठ रोगियों की सेवा और उनके पुनर्वास में लगा दिया, बल्कि इस बात में है कि इस रोग का आसान उपचार खोजने के लिए वह अपने प्राणों को संकट में डालने से भी नहीं हिचकिचाए। वह सचमुच एक महान योद्धा और अभय साधक थे।

७१२) ईमानदारी की कमाई - महात्मा अबुल अब्बास खुदा में आस्था रखने वाले व्यक्ति थे। यह टोपियां सिलकर जीवन-यापन करते थे। टोपियों की सिलाई से मिलनेवाली आय में से आधा हिस्सा वह किसी जरूरतमंद को दे देते थे और आधी से स्वयं स्वयं गुजर-बसर करते थे। एक दिन उनके एक धनी शिष्य ने उनसे पूछा, महात्मन। मैं कुछ पैसा दान करता चाहता हूं। यह दान मैं किसे दूं? महात्मा अब्बास ने कहा, जिसे सुपात्र समझो, उसी को दान कर दो। धनी शिष्य ने एक अंधे भिखारी को सोने की एक मोहर दान में दे दी। दूसरे दिन धनी शिष्य फिर उसी रास्ते से गुजरा। उसने देखा- अंधा भिखारी दूसरे भिखारी से कह रहा था, कल मुझे भीख में सोने की एक मोहर मिली थी। मैंने उससे खूब मौजमस्ती की और शराब पी। यह सुनकर धनी शिष्य को बुरा लगा। वह महात्मा अब्बास के पास पहुंचा और उन्हें पूरी बात कह सुनाई। महात्मा अब्बास ने उसे अपनी कमाई का एक सिक्का दिया और कहा, इसे किसी याचक को दे देना। धनी शिष्य ने वह सिक्का एक याचक को दिया और कौतूहलवश उसके पीछे पीछे चल दिया। कुछ दूर चलने के बाद

याचक एक निर्जन स्थान पर गया और अपने कपड़ों में छिपाए हुए एक पक्षी को निकालकर उड़ा दिया। धनी शिष्य ने याचक से पूछा, तुमने इस पक्षी को क्यों उड़ा दिया? याचक बोला, मैं तीन दिन से भूखा था। आज इस पक्षी का सेवन करता, मगर आपने एक सिक्का दे दिया। तो अब इस मासूम जीव की हत्या करने की कोई जरूरत नहीं रही। धनी शिष्य महात्मा अबुल अब्बास के पास गया और पूरा वृत्तांत सुनाया। तब उन्होंने कहा, तुम्हारा धन गलत विधि से कमाया गया था। इसीलिए उसका गलत उपयोग हुआ। मेरा पैसा श्रम से कमाया गया था, सो उसने एक व्यक्ति को गलत काम से बचा लिया।

७१३) मुक्ति की तलाश - जापान में नानहेन नामक एक परम ज्ञानी फकीर थे। एक दिन एक व्यक्ति उनके पास पहुंचा और बोला, मैं संन्यास लेना चाहता हूं। इसके लिए मैंने अपने घर-परिवार, रिश्ते-नाते सब को तिलांजलि दे दी है। फकीर ने पूछा, क्या तुम बिल्कुल अकेले हो? तुम्हारे साथ वास्तव में कोई भी नहीं है? व्यक्ति ने कहा, आप मेरे आगे-पीछे देख लीजिए, आपको कोई भी नहीं मिलेगा। यह सुनकर फकीर बोले, अच्छा अब जरा अपनी आंखें बंद करो। अपने अंदर झांककर देखो कि वहां कोई और तो नहीं है? जाओ, कुछ देर के लिए वटवृक्ष की छाया में बैठकर सोचो। फिर थोड़ी देर बाद मेरे पास आ जाना। वह व्यक्ति वट वृक्ष की छाया में बेठकर कुछ देर के लिए ध्यान करने लगा। ज्यों ही उसने अपनी आंखें बंद कीं तो उसे अपने वृद्ध माता-पिता, पत्नी और बच्चों की छवि नजर आने लगी। यह देखकर वह चिंतित हो गया। घबराकर जैसे ही उसने अपनी आंखें खोलीं तो फकीर को अपने ही पास खड़ा पाया। व्यक्ति ने फकीर से कहा, मैं तो अपना परिवार, नाते-रिश्ते सब पीछे छोड़ आया, लेकिन यहां आंखें बंद करते ही उनकी छवि सामने घूमने लगी है। इस पर फकीर ने उससे कहा, अब तुम जाओ और ध्यानमग्न होकर उन व्यक्तियों को अपने दिमाग से निकालने का प्रयत्न करो। फिर कुछ देर बाद मेरे पास आना। दो घंटे बाद युवक ने फकीर का दरवाजा खटखटाया तो फकीर बोले, कौन है? युवक बोला, मैं आया हूं। फकीर ने कहा, लेकिन अब भी तुम अकेले नहीं हो। तुम्हारा मैं तुम्हारे साथ में लगा है। अगर तुम इस मैं और भीड़ को छोड़ सको, तो फिर यहां आने की जरूरत ही नहीं रह जाएगी। तुम मैं से मुक्ति पा लो तो फिर संन्यास लेने का भी कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। व्यक्ति फकीर की बात की गहराई समझ गया।

७१४) गणित का सूत्र - एक बार राजा टॉलमी ने गणित सीखने का फैसला किया। उन्हें पता चला कि यूक्लिड महान गणितज्ञ हैं। उन्होंने उनसे ही गणित की शिक्षा लेने की सोची। यूक्लिड से तुरंत संपर्क किया गया। वह रोज आकर राजा को गणित के सूत्र सिखाने लगे। लेकिन टॉलमी को गणित सीखने में आनंद ही नहीं आता था। उनका ध्यान हरदम इधर-उधर भटकता रहता था। उन्होंने सोचा कि लोग तो कहते हैं कि यूक्लिड महान गणितज्ञ हैं और उनके जैसे विद्वान कम ही होते हैं, फिर वह मुझे सरलता से गणित क्यों नहीं सिखा पा रहे। मैं उनसे यह प्रश्न अवश्य पूछूंगा। अगले दिन जब यूक्लिड राजा को गणित के कुछ सूत्र समझा रहे थे तो राजा खीझकर बोले, आप तो बड़े भारी विद्वान कहे जाते हैं। मुझे ऐसे सरल सूत्र सिखाइए न, जो आसानी से समझ में आ जाएं। अभी तक मुझे तो गणित का एक सूत्र भी सही ढंग से समझ में नहीं आया है। ऐसे में मैं भला गणित का विद्वान कैसे बन सकता हूं। राजा की बात सुनकर यूक्लिड मुस्कराते हुए बोले, राजन, मैं तो आपको सहज और सरल सूत्र ही सिखा रहा हूं। कठिनाई मेरे सिखाने में नहीं बल्कि आपके सीखने में है। आपने गणित सीखने का फैसला तो कर लिया पर उसके लिए मन को तैयार नहीं कर पाए। गणित हो या फिर राजकाज, किसी

भी विषय में यदि आप रुचि नहीं लेंगे और एकाग्रता से काम नहीं करेंगे तो वह कठिन ही लगेगा। जिस सहजता से आप राजकाज संभालते है उसी सहजता से आप गणित सीखें, अवश्य सफल होंगे। यूक्लिड की बातें राजा टॉलमी को समझ में आ गईं। उन्होंने एकाग्र होकर गणित सीखना आरंभ कर दिया।

७१५) जॉनसन का जीवट - लिंडन जॉनसन नौ वर्ष की उम्र में जूते पॉलिश कर अपनी आजीविका चलाते थे। इसी के साथ-साथ वह पढ़ाई भी करते थे। उन्होंने १५ वर्ष की उम्र में ही हाई स्कूल की परीक्षा पास कर ली। फिर उन्होंने कई छोटे-मोटे काम हाथ में लिए। आगे की शिक्षा के लिए वे सैन मार्कोस नगर में आ गए। एक कॉलेज में प्रवेश लिया। खर्चे की समस्या आई तो गेटकीपर का काम करने लगे। २२ वर्ष में उन्होंने बीएससी की डिग्री हासिल की। फिर एक हाईस्कूल में अध्यापक हो गए। पर उनकी ज्ञान पाने की प्यास शांत नहीं हुई। अध्यापन छोड़कर वह वाशिंगटन आ गए। यहां राजनेता रिचर्ड कलेबर्ग के सचिव बने। दिन में सचिव का कार्य करते और रात को जार्ज टाउन विश्वविद्यालय में कानून की पढ़ाई करते। पर सचिव बनकर भी वह संतुष्ट न हुए। १९३५ में राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा वह टेक्सास नेशनल यूथ एडमिनिस्ट्रेशन के निदेशक पद पर नियुक्त हुए। यहां कार्य करते दो वर्ष ही बीते थे कि १९३७ में प्रतिनिधि सभा के निर्वाचन होने लगे। जॉनसन ने अपनी प्रतिभा के निखार के लिए निर्वाचन का समय उपयुक्त समझा। वह नौ प्रतिद्वंद्वियों को पराजित कर टेक्सास राज्य के प्रतिनिधि निर्वाचित हुए। राजनीति में यह उनका पहला कदम था, जहां उन्हें शानदार सफलता मिली। १९४८ और १९५४ में सीनेट के सदस्य निर्वाचित होकर उन्होंने जनता पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप डाली। १९५३ में उनकी कार्यक्षमता और नेतृत्व शक्ति ने ही उन्हें सीनेट में अल्पसंख्यांक दल का नेता बना दिया। उस समय उनकी आयु केवल ४४ वर्ष थी। १९५४ में वे बहुमत दल के नेता निर्वाचित हो गए और ९ नवंबर १९६० को वह अमेरिका के राष्ट्रपति बन गए। निरंतर संघर्ष से असाधारण लक्ष्य कैसे हासिल किया जाता है, यह उन्होंने दुनिया को दिखा दिया।

७१६) वस्तु से निकले मूल्य - बात उस समय की है जब देश में आजादी के लिए न केवल आम जनता में बल्कि राजा-महाराजाओं में भी क्रांति के स्वर सुनाई देते थे। ऐसे ही समय से एक अंग्रेज व्यापारी महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में हाजिर हुआ। व्यापारी ने महाराजा को अपने साथ लाया हुआ कांच का बहुत सा सामान दिखाया। उसे पूरी उम्मीद थी कि महाराजा काफी माल खरीदेंगे। महाराजा ने उनमें से सबसे कीमती फूलदान उठाया और उसे दरबार के बीच में फेंक दिया। कांच का होने से फूलदान चकनाचूर हो गया। महाराजा के इस कृत्य से व्यापारी को आश्चर्य के साथ-साथ दु:ख भी हुआ। वह कुछ बोलता इससे पहले महाराजा ने वे टुकड़े मंगाकर गंभीर स्वर में उस व्यापारी से पूछा, इस टूटे हुए फूलदान की क्या कीमत है? व्यापारी ने दुखी स्वर में, पर पूरी विनम्रता से जवाब दिया, अब इसका कोई मूल्य नहीं रहा महाराज। महाराजा ने अपने एक नौकर को पीतल की एक दवात लेकर आने को कहा और आज्ञा दी, इसे हथौड़ी से तोड़ो और बाद में टूटी हुई दवात को बाजार में बेच आओ। थोड़ी देर बाद नौकर ने दो पैसे लाकर महाराजा को दिए। महाराजा ने व्यापारी से कहा, देखो, मेरा देश गरीबों का देश है। हम तो उन देसी वस्तुओं का उपयोग करते हैं, जिनका भले ही वास्तविक मूल्य कम हो, पर टूटने के बाद भी उसका कुछ न कुछ मूल्य जरूर होता है। महाराजा ने व्यापारी को फूलदान की कीमत दे दी, साथ में उसे नसीहत भी दी कि मोल वस्तुओं का उतना नहीं होता जितना इस

बात का कि वे वस्तुएं समाज में किस तरह का मूल्य फैलाती है। जहां ज्यादातर लोग अभावों के बीच जीते हों वहां क्षणभंगुर चीजों की ज्यादा अहमियत नहीं हो सकती, भले वे दिखने में सुंदर हों। ऐसे समाज में उपयोगी और टिकाऊ चीजों को ही अहमियत मिलनी चाहिए।

७१७) दीवान का निर्णय - महात्मा गांधी के दादा उत्तम गांधी को लोग ओता गांधी के नाम से पुकारते थे। वे पोरबंदर के राजा खिमजी के दीवान थे। उनके दोनों बेटों का विवाह धूमधाम से संपन्न हुआ। तब सारे गांव को भोज दिया गया था। रिवाज के अनुसार जब पूरे गांव को न्योता दिया जाता था, तब गांव के प्रवेश द्वार पर अक्षत-कुमकुम लगा कर घोषणा की जाती थी। भोज में हर जाति के गरीब और अमीर आते थे। बारात की अगवानी स्वयं राजा साहब ने की। ओता गांधी राजा के दीवान होने के साथ ईमानदार, खुशमिजाज और परोपकारी थे। वे राज्य के सभी लोगों का बराबर ध्यान रखते थे। इसलिए बेटे की शादी में शामिल होनेवाले लोगों ने यथाशक्ति उपहार भी दिया था। विवाह संपन्न होने के बाद हिसाब-किताब हुआ तो पता चला कि खर्च से ज्यादा रकम उपहार में आई थी। ओता गांधी परेशान हो गए कि इन फालतू पैसों का करें तो क्या करें। उपहार में मिली रकम पर उनका हक था, लेकिन उन्होंने सोचा कि हम राज्य के दीवान हैं, इसीलिए लोगों ने अपनी सामर्थ्य से ज्यादा उपहार में दे दिया। उन्होंने सारी रकम राजा को समर्पित करते हुए कहा- आपकी प्रजा से ही यह सब प्राप्त हुआ है। यह आपकी संपत्ति है। राजा ने कहा, यह रकम आपको लोगों ने उपहार में दी है, इस पर आपका हक है, हमारा नहीं। इसका उपयोग भी आपको करना है। बहुत सोच-विचार कर ओता ने राजा से कहा- यह राज्य के गरीब किसानों के परिश्रम की कमाई है। इस पर हक उन्हीं का है। क्यों न इसे सूखाग्रस्त इलाके के किसानों को दे दिया जाए। दीवान के निर्णय से राजा बहुत खुश हुए।

७१८) हार और जीत - किसी शहर में बहुत दूर से एक विद्वान पहुंचा। वह स्थानीय विद्वानों से शास्त्रार्थ करना चाहता था। कुछ लोग उसे शहर के प्रमुख विद्वानों के पास ले गए जिन्होंने कहा, हमारे यहां तो सनातन गोस्वामी और उनके भतीजे जीव गोस्वामी ही श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। वे आपको मान्यता पत्र पर इस्ताक्षर कर दे देंगे तभी हम आपको विजेता मानेंगे। विद्वान सनातन गोस्वामी के पास पहुंचा, स्वामी जी, या तो आप शास्त्रार्थ कीजिए या मुझे मान्यता पत्र प्रदान कीजिए। सनातन गोस्वामी बोले, भाई। अभी हमने शास्त्रों का मर्म ही कहां समझा है। हम तो विद्वानों के सेवक है। उन्होंने मान्यता पत्र पर हस्ताक्षर कर दे दिया। विद्वान मान्यता पत्र लेकर चला जा रहा था कि जीव गोस्वामी मिल गए। उसने उनसे भी कहा, आप इस मान्यता पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे या मुझसे शास्त्रार्थ करेंगे? जीव बोले, मैं शास्त्रार्थ के लिए तैयार हूं। शास्त्रार्थ शुरू हो गया। शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक यह देख रहे थे। लंबे शास्त्रार्थ में जीव गोस्वामी ने उस विद्वान को पराजित कर दिया। वह दुखी होकर नगर से चला गया। जीव ने सनातन गोस्वामी को अपनी विजय के बारे में बताया पर वह प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने कहा, एक विद्वान को अपमानित करके तुम्हें थोड़ा यश अवश्य मिल गया, लेकिन उसका क्या करोगे? इससे तुम्हारा अहंकार बढ़ेगा। फिर ज्ञान की साधना कैसे करोगे। उस विद्वान को विजयी मान लेने में तुम्हारा क्या बिगड़ता था। हमारे लिए यश-अपयश, जीवन-मरण, सुख-दुख, मित्र-शत्रु सभी समान होते है। हमें हार और जीत के फेर में पड़ना ही नहीं चाहिए। जीव ने अपनी भूल के लिए तुरंत क्षमा मांग ली।

७१९) एक भारतीय की बुद्धिमानी - सुभाष चंद्र बोस इंग्लैंड में आईसीएस का इंटरव्यू देने गए। वहां उनका इंटरव्यू लेनेवाले सभी अधिकारी अंग्रेज थे। दरअसल, वे भारतीय को किसी उच्च पद पर नहीं देखना चाहते थे। इसलिए इंटरव्यू में अजीबो-गरीब प्रश्न पूछकर भारतीयों को नीचा दिखाने का प्रयास करते रहते थे। सुभाष इंटरव्यू के लिए अंग्रेज अधिकारियों के समक्ष बैठ गए। अधिकारी ने उन्हें देखकर व्यंग्य से मुस्कराते हुए पूछा, बताओ, उस छत के पंखे में कुल कितनी पंखुड़ियां हैं। प्रश्न सुनकर सुभाष की नजर पंखे पर चली गई। उन्हें पंखे की ओर देखता पाकर अंग्रेज मुस्कराते हुए एक-दूसरे की ओर देखने लगे। तभी दूसरा अंग्रेज बोला, यदि तुम पंखुड़ियों की सही संख्या नहीं बता पाए तो इस इंटरव्यू में फेल हो जाओगे। एक और सदस्य बोला, भारतीयों में बुद्धि होती ही कहां हैं? उनकी बातें सुनकर सुभाष निर्भीकता से बोले, अगर मैंने इसका सही जवाब दे दिया तो आप भी मुझसे दूसरा प्रश्न नहीं पूछ पाएंगे और साथ ही मेरे सामने यह भी स्वीकार करेंगे कि भारतीय न सिर्फ बुद्धिमान होते हैं बल्कि वे निर्भीकता और धैर्य से हर प्रश्न का हल खोज लेते हैं। इसके बाद सुभाष तेजी से अपने स्थान से उठे। उन्होंने चलता पंखा बंद कर दिया और पंखा रुकते ही पंखुड़ियों की संख्या गिन ली। सुभाष की विलक्षण बुद्धि, सामयिक सूझबूझ और साहस को देखकर इंटरव्यू बोर्ड के सदस्यों के सर शर्म से झुक गए। वे फिर उनसे आगे कोई प्रश्न नहीं पूछ पाए। उन्हें इस बात को भी स्वीकार करना पड़ा कि भारतीय साहस, बुद्धिमानी और आत्मविश्वास से हर मुसीबत का हल खोज लेते हैं।

७२०) वकील बने अध्यापक - एक बार बाल गंगाधर तिलक अपने कुछ मित्रों के साथ बात कर रहे थे। उन दिनों उन्होंने वकालत पास की थी। एक मित्र बोला, तिलक, वकालत तो तुमने पास कर ली है किंतु आगे के लिए क्या सोचा है? क्या अब सरकारी नौकरी करोगे या किसी कोर्ट कचहरी में वकालत? मित्र की बात सुनकर तिलक बोले, अब तुमने पूछ ही लिया है तो सुन लो। मुझे ऐसे पैसे की जरूरत नहीं जो मुझे सरकार का गुलाम बना कर रखे। मैं ऐसी वकालत नहीं करना चाहता जहां दिन में कई बार झूठ बोलना पड़े। बात आई-गई हो गई। सभी अपने अपने कामों में लग गए। एक दिन उनकी मित्र-मंडली को पता चला कि बाल गंगाधर ने एक स्कूल में पढ़ाना शुरू कर दिया है। तनख्वाह है तीस रुपए महीना। यह सुनकर उस मित्र को सबसे ज्यादा आश्चर्य हुआ जिसने कुछ समय पूर्व उनका मन जानना चाहा था। उससे रहा नहीं वह सीधे बाल गंगाधर तिलक के पास जा पहुंचा और बोला, यह तुमने क्या किया तिलक? वकालत की डिग्री लेकर अध्यापक क्यों बने? क्या तुम शिक्षकों की आर्थिक स्थिति के बारे में नहीं जानते? दोस्त। जब तुम अंतिम सांस लोगे, तब तुम्हारे दाह-संस्कार के लिए भी घर में कुछ नहीं होगा। अब भी वक्त है संभलने का। कोई दूसरा काम शुरू करो ढंग का। वकील नहीं तो सरकारी अधिकारी ही बन जाओ किसी विभाग में। मित्र की बात सुनकर तिलक मुस्कुराते हुए बोले, मैंने जो पेशा चुना है वह बहुत पवित्र है। ईमानदारी वाला है। रही अंतिम समय की बात तो मेरे दाह संस्कार का प्रबंध नगरपालिका कर देगी। मैं इसकी चिंता क्यों करूं? तिलक की बात सुनकर मित्र हैरान रह गया। उसने आज तक संतुष्टि के ऐसे भाव किसी व्यक्ति के चेहरे पर नहीं देखे थे। वह मन ही मन तिलक के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो गया।

७२१) सफलता का रास्ता - एक बार एक राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि अमुक दिन शाम को जो मुझसे मिलने आएगा, उसे मैं अपने राज्य का एक हिस्सा दूंगा। तब प्रधानमंत्री ने कहा, महाराज, आपसे मिलने तो बहुत लोग आएंगे

और यदि सभी को उनका भाग देंगे तो राज्य के टुकड़े टुकड़े हो जाएंगे। तब राजा ने कहा, प्रधानमंत्री जी, आप चिंता न करें, देखते रहें, क्या होता है निश्चित दिन जब सबको मिलना था, राजमहल के बगीचे में राजा ने एक विशाल मेले का आयोजन किया। मेले में नाच-गाने और शराब की महफिल जमी थी, खाने के लिए अनेक स्वादिष्ट पदार्थ थे। मेले में कई खेल भी हो रहे थे। राजा से मिलने आनेवाले कितने ही लोग नाच-गाने में अटक गए, कितने ही सुरा-सुंदरी में, कितने ही आश्चर्यजनक खेलों में मशगूल हो गए तथा कितने ही खाने-पीने, घूमने फिरने के आनंद में डूब गए। इस तरह समय बीतने लगा। पर इन सभी के बीच एक व्यक्ति ऐसा भी था जिसने किसी चीज की तरफ देखा भी नहीं, क्योंकि उसके मन में निश्चित ध्येय था कि उसे राजा से मिलना ही है। इसलिए वह बगीचा पार करके राजमहल के दरवाजे पर पहुंच गया। पर वहां खुली तलवार लेकर दो चौकीदार खड़े थे। उन्होंने उसे रोका। उनके रोकने को अनदेखा करके और चौकीदारों को धक्का मारकर वह दौड़कर राजमहल में चला गया, क्योंकि वह निश्चित समय पर राजा से मिलना चाहता था। जैसे ही वह अंदर पहुंचा, राजा उसे सामने ही मिल गए और उन्होंने कहा, मेरे राज्य में कोई व्यक्ति तो ऐसा मिला जो किसी प्रलोभन में फंसे बिना अपने ध्येय तक पहुंच सका। तुम्हें मैं आधा नहीं पूरा राजपाट दूंगा। तुम मेरे उत्तराधिकारी बनोगे। सफल वही होता है जो लक्ष्य का निर्धारण करता है और रास्ते में आनेवाली कठिनाइयों को नजरअंदाज कर देता है।

७२२) आत्मविश्वास की जड़ें- एक बार स्वयं विधाता के मन में अपनी सृष्टि देखने की इच्छा हुई। अभी वे धरती पर पहुँचे ही थे कि उन्होंने एक किसान को हाथ में कुदाली लिए एक विशाल पर्वत को खोदते देखा। उसके दुस्साहस पर विधाता को हँसी भी आई और अचरज भी हुआ। उन्होंने किसान से पूछा, भाई, तुम यह क्या कर रहे हो? किसान ने उत्तर दिया, मैं इस पहाड़ को यहाँ से हटा रहा हूँ। इसके कारण बादल इस पार आकर मेरे खेत में पानी ही नहीं बरसा पाते। इससे टकराकर वे उस पार ही खाली हो जाते हैं। लेकिन क्या तुम इसे हटा सकोगे? विधाता ने पूछा। क्यों नहीं। किसान ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया, मैं इसे हटाकर ही दम लूँगा। विधाता मुस्कराकर आगे बढ़ गए। अभी वे कुछ कदम ही आगे गए होंगे कि स्वयं पर्वतराज ने उनके आगे हाथ जोड़कर कहा, प्रभु, मेरी रक्षा करें। विधाता ने पूछा, क्या तुम सचमुच किसान से डर गए? मेरा डर सच्चा है प्रभु। पर्वतराज ने कहा किसान के भीतर जो आत्मविश्वास है, वह मुझे समाप्त करके ही छोड़ेगा। अगर अपने जीवनकाल में वह मुझे उखाड़ न सका तो उसके बेटे, पोते, पड़पोते मुझे खत्म कर देंगे।

७२३) शांत मन से दान - एक राजा अपने नगर के भ्रमण पर निकला। वह कुछ दूर ही चला था कि एक भिखारी उससे भिक्षा मांगने लगा। राजा ने उसे परेशान न करने और आगे जाने को कहा। भिखारी उलाहने वाली हंसी हंसा और बोला, अगर मेरे बोलने से आपके मन की शांति भंग हो रही है तो फिर वह पूर्ण शांति है ही नहीं। राजा को लगा कि वह कोई भिखारी नहीं बल्कि एक साधु है। उसने अपना सर उनके चरणों में झुकाया और कहा, हे महात्मा, मुझे अपनी कोई इच्छा हो तो बताइए। सारी संपदा आपके चरणों में डाल दूंगा। राजा की यह बात सुन साधु जोर से हंसा, उस बात का वादा मत करो जो तुम कर नहीं पाओगे। इस पर राजा को क्रोध आ गया। उसने नगर भ्रमण का खयाल छोड़ दिया और साधु को अपने महल ले आया। महल पहुंचकर साधु ने राजा के सामने अपना पात्र आगे कर दिया और बोले, बस इस पात्र को सोने के सिक्कों से भर दीजिए। राजा मुस्कुराया और उसने सोने के सिक्के लाने का आदेश दिया। सहायक एक थाली

भरकर सोने के सिक्के ले आया। जैसे ही राजा ने उसे साधु के पात्र में डाला सारे सिक्के छोटे से पात्र में समा गए। इसके बाद और सिक्के मंगाए गए, लेकिन वे भी पात्र में समा गए। लगातार बहुत सारे सिक्के डालने पर भी वह पात्र खाली ही रहा। राजा का पूरा कोष खाली हो गया। यह देखकर राजा ने हार स्वीकार की और साधु के चरणों में दंडवत हो गया। साधु बोले, राजन, यह भिक्षा पात्र हर किसी द्वारा नहीं भरा जा सकता। केवल तुम ही नहीं, बल्कि दुनिया का अमीर से अमीर आदमी भी इसे नहीं भर सकता यदि उसका मन पूरी तरह से शांत नहीं है।

७२४) मेहनत का स्वाद - हातिम अरब के एक कबीले का सरदार था। वह बहुत बड़ा दानी था। परोपकार की भावना उसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। एक शाम कुछ लोग हातिम के पास बैठे थे। उनमें से एक ने पूछा, हातिम साहब, क्या आपने कभी अपने से बड़े आदमी को देखा है? हालांकि हम जानते हैं कि आपसे बड़ा कोई मनुष्य इस दुनिया में तो हो नहीं सकता, फिर भी आपके मुंह से सुनना चाहते हैं। मगर हातिम के जवाब ने उन्हें चौका दिया, हां, मैंने अपने आप से बहुत बड़ा एक मनुष्य देखा है। जो बहुत ही साहसी, परिश्रमी और ईमानदार था। मेहरबानी करके हमें बताइए कि वह कौन था और कहां था? आप से वह किस तरह से बड़ा था? सभी ने उत्सुकतापूर्वक एक साथ जानना चाहा। हातिम ने बात आगे बढ़ाई, एक दिन अरब के कुछ मालदारों के लिए मैंने बड़ी दावत रखी। वैसे उस दावत में कोई भी शामिल हो सकता था। मैंने कभी किसी को मना किया ही नहीं। सारा इंतजाम करने के बाद मैं किसी काम से जंगल की ओर निकल गया। जंगल में मुझे सूखी लकड़ियों का गट्ठर सिर पर उठाए एक लकड़हारा आता हुआ मिला। मुझे उस पर बहुत तरस आया। उसका शरीर भी लकड़ियों की तरह सूखा हुआ था। मैंने अपना परिचय दिए बिना ही उससे कहा, भाई लकड़हारे, बेकार में ही लकड़ियों का बोझ अपने सिर पर उठाए, क्यों मारे-मारे फिर रहे हो? इससे अच्छा था कि हातिम के यहां चले जाते और उसके द्वारा दी जा रही दावत में माल उड़ाते। लकड़हारे ने बड़ी सहजता से उत्तर दिया- सुनिए साहब, जो स्वाद अपनी मेहनत की कमाई से सिकी रोटी में है, वह हातिम के अहसान की आंच से सिकी रोटी में नहीं। लकड़हारे की बात सुनकर मैं हतप्रभ रह गया। मुझे लगा कि यह बहुत बड़ा मनुष्य है और मैं उसके सामने बहुत ही बौना हूं।

७२५) अपने लिए कपड़ा - गांधीजी ने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे अपना एक आश्रम बनाया। उसका नाम उन्होंने रखा- सत्याग्रह। इस आश्रम में उनके साथ नरहरि पारीख, काका कालेलकर और महादेव भाई देसाई आदि के साथ बहुत से परिवार रहने लगे। एक दिन गांधीजी को पता चला कि बिहार में चंपारण के किसानों की अत्यंत दयनीय दशा चल रही है। नील उपजाने वाले गोरे उनपर तरह-तरह से अत्याचार करते हैं। लेकिन किसी किसान में इतनी हिम्मत नहीं कि वह उन गोरों के खिलाफ कुछ बोल भी सके। वहां किसानों के पास तन ढकने के लिए कपड़े तक नहीं हैं। यह सुनकर गांधीजी बहुत दुखी हो गए। वे तुरंत चंपारण जा पहुंचे। वहां उन्होंने किसानों को अपने हक के लिए लड़ने को प्रोत्साहित किया। कस्तूरबा अवंतिबाई के साथ किसानों की बस्तियों में घूमीं तो वहां की स्त्रियों की दशा और दरिद्रता ने उन्हें भी द्रवित कर दिया। उन्होंने देखा कि वहां किसान परिवारों में तीन-तीन, चार-चार स्त्रियों के बीच एक ही धोती होती है और वह भी आधी-अधूरी । इसलिए अधिकतर औरतें घर के अंदर ही रहती हैं। जब किसी स्त्री को बाहर आना होता तो वह उसी धोती को अपने शरीर पर लपेटकर आती है। कस्तूरबा ने यह बात बापू को बताई। बापू घर-घर गए और वहां लोगों से

बोले, आप लोग कभी किसी पर निर्भर मत रहो। अपने लिए कपड़ा अपने आप ही बुनो। विदेशी कपड़ों को अपने जीवन से निकाल कर फेंक दो। घर-घर में चरखे से स्वयं कपड़ा तैयार कर गोरों को कड़ा जवाब दो। बापू की यह बात सुनकर अनेक किसानों ने चरखे से खादी का कपड़ा तैयार करना शुरू कर दिया। कुछ ही समय बाद सभी ने खादी को अपना लिया और उनकी कपड़ों की किल्लत दूर हो गई। उसके बाद देशभर में खादी बुनने को एक अभियान का रूप दे दिया गया।

७२६) दादी की खिचड़ी - एक समय की बात है। चाणक्य अपमान भुला नहीं पा रहे थे। शिखा की खुली गांठ हर पल एहसास कराती कि धनानंद के राज्य को शीघ्रातिशिघ्र नष्ट करना है। चंद्रगुप्त के रूप में एक ऐसा होनहार शिष्य उन्हें मिला था जिसको उन्होंने बचपन से ही मनोयोगपूर्वक तैयार किया था। अगर चाणक्य प्रकांड विद्वान थे तो चंद्रगुप्त भी असाधारण और अद्भुत शिष्य था। चाणक्य बदले की आग से इतना भर चुके थे कि उनका विवेक भी कई बार ठीक से काम नहीं करता था। चंद्रगुप्त ने लगभग पांच हजार घोड़ों की छोटी-सी सेना बना ली थी। सेना लेकर उन्होंने एक दिन भोर के समय ही मगध की राजधानी पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दिया। चाणक्य, धनानंद की सेना और किलेबंदी का ठीक आकलन नहीं कर पाए और दोपहर से पहले ही धनानंद की सेना ने चंद्रगुप्त और उसके सहयोगियों को बुरी तरह मारा और खदेड दिया। चंद्रगुप्त बड़ी मुश्किल से जान बचाने में सफल हुए। चाणक्य भी एक घर में आकर छुप गए। वह रसोई के साथ ही कुछ मन अनाज रखने के लिए बने मिट्टी के निर्माण के पीछे छुपकर खड़े थे। पास ही चौके में एक दादी अपने पोते को खाना खिला रही थी।

दादी ने उस रोज खिचड़ी बनाई थी। खिचड़ी गरमा गरम थी। दादी ने खिचड़ी के बीच में छेद करके गरमा-गरम घी भी डाल दिया था और घड़े से पानी भरने गई थी। थोड़ी ही देर के बाद बच्चा जोर से चिल्ला रहा था और कह रहा था- जल गया, जल गया। दादी ने आकर देखा तो पाया कि बच्चे ने गरमा-गरम खिचड़ी के बीच में अंगुलियां डाल दी थीं। दादी बोली- तू चाणक्य की तरह मूर्ख है, अरे गरम खिचड़ी का स्वाद लेना हो तो उसे पहले कोनों से खाया जाता है और तूने मूर्खों की तरह बीच में ही हाथ डाल दिया और अब रो रहा है। चाणक्य बाहर निकल आए और बुढ़िया के पांव छुए और बोले- आप सही कहती हैं कि मैं मूर्ख ही था तभी राज्य की राजधानी पर आक्रमण कर दिया और आज हम सबको जान के लाले पड़े हुए हैं। चाणक्य ने उसके बाद मगध को चारों तरफ से धीरे-धीरे कमजोर करना शुरू किया और एक दिन चंद्रगुप्त मौर्य को मगध का शासक बनाने में सफल हुए।

७२७) बंटवारा - पूर्व समय में शाम के झुरमुटे में शिकार से वापसी के दौरान किसी राज्य के राजा जब अपनी सेना से आगे पीछे होने के कारण अकेले वापस आ रहे थे तब उन्होंने एक लकड़हारे को अपनी बांसुरी की धुन में मगन गांव की ओर जाते हुए देखा। सामान्य बातचीत में राजा ने जब उससे यह पूछा कि उसकी आमदनी क्या है और कैसे उसका गुजारा चलता है तो लकड़हारा बोला- महाराज मैं चार मुद्राएं रोज कमा लेता हूं और उनमें से एक मुद्रा कुएं में फेंक देता हूं, दूसरी मुद्रा मैं कर्ज में चुका देता हूं, तीसरी मुद्रा को मैं उधार दे देता हूं और चौथी जमीन में गाड़ देता हूं।

राजा को उस लकड़हारे के अपनी कमाई को उपयोग में लाने का यह तरीका समझ में नहीं आया लेकिन बात आगे बढ़ने के पूर्व ही उनका सेनापति अपने सैनिकों के साथ राजा को खोजते हुए उनके करीब आ गया और राजा अपने लश्कर के

साथ अपने राज्य में वापस आ गए। दूसरे दिन दरबार में राजा ने अपने सभी दरबारियों से लकड़हारे के अपनी आमदनी को खर्च करने के इस तरीके का मतलब समझाने को कहा तो सभी विद्वान दरबारी इसका कोई भी संतोषप्रद उत्तर नहीं दे पाये। तब राजा ने सैनिकों को भेजकर उस लकड़हारे को राज्य में बुंलवाया और सभी दरबारियों के समक्ष अपनी कमाई की उन चार मुद्राओं के उपयोग के तरीके को विस्तार से समझाने को कहा तब लकड़हारे ने अपनी आमदनी के उपयोग का तरीका बताते हुए कहा- महाराज पहली मुद्रा मैं कुएं में फेंक देता हूं याने अपने परिवार के भरण-पोषण के काम में लाता हूं, दूसरी मुद्रा से मैं कर्ज चुकाता हूं याने मेरे माता-पिता जिन्होंने मेरे जन्म से लगाकर मेरे जीवन में स्थापित होने तक मेरे लिए लगातार मेहनत की उनकी वृद्धावस्था में होनेवाली सभी समस्याओं को दूर करने में काम में लाता हूं, तीसरी मुद्रा मैं उधार दे देता हूं याने अपने बच्चों की उचित शिक्षा-दीक्षा के काम में लाता हूं और चौथी मुद्रा जिसे मैं जमीन में गाड़ देता हूं अर्थात धर्म व समाज से जुड़ी वो सभी जिम्मेदारियां जहां मेरे योगदान की आवश्यकता होती है उस जगह उसका उपयोग कर लेता हूं। राजा के साथ ही सभी दरबारी भी लकड़हारे द्वारा अपनी आमदनी के बंटवारे के इस सूझ-बूझ पूर्ण उत्तर से अत्यंत प्रभावित हुए और राजा ने भरपूर इनाम के साथ ससम्मान उस लकड़हारे को राज दरबार से विदा किया।

७२८) जोखिम लेने का जज्बा - फ्रेड स्मिथ की हड्डियां बचपन से ही खराब थी, जिस वजह से वह बैसाखियों के सहारे चलता था। फिर भी उसके इरादे बुलंद थे। वह एक ऐसी कंपनी बनाना चाहता था जिससे ओवरनाईट पैकेट डिलीवरी हो। यह काम शुरू करते समय उसने बड़ा जोखिम उठाया और सब कुछ दांव पर लगा दिया। शुरू के पांच साल तक उनकी कंपनी का हिसाब-किताब दिवालिएपन तक था। उसके पास कर्मचारियों की तनख्वाह देने तक के पैसे नहीं थे। फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। गाढ़े दिनों में अपने कर्मचारियों से वह बोला, अभी मेरे पास आपको तनख्वाह देने के लिए भी पैसे नहीं हैं, परंतु आप कंपनी छोड़कर न जाएं क्योंकि अवसर को मैने भांप लिया है, जो शायद कोई दूसरा नहीं देख पाया। व्यापार की इस दुनिया में तेज रफ्तार से पत्र और पार्सल पहुंचाने के क्षेत्र में सफल होने की संभावना बहुत अधिक है, क्योंकि लोगों को इसकी बहुत जरूरत है। अन्य कोई डाक विभाग इसे इसलिए नहीं देख पाया, क्योंकि उसके पास शायद इतनी दूरदृष्टि नहीं थी। आपके सहयोग से देखना, हमारे दिन जल्दी ही बदलेंगे। फ्रेड की बातों का असर हुआ। निष्ठावान कर्मचारियों ने कंपनी की मदद हेतु अपनी घड़ियां और गहने तक बेच डाले। उसके बाद उन्होंने फेडरल एक्सप्रेस कंपनी की स्थापना की, जिसने ओवरनाईट पैकेट डिलीवरी शुरू की। कुछ ही दिनों में कंपनी सफलता की ऊंचाइयां छूने लगी। एक जीवनी लेखक ने लिखा कि, फेडरल बीसवीं सदी की एक दिलचस्प उद्यमगाथा ही नहीं अपने आप में एक चमत्कार है। कभी दिवालिएपन की कगार पर खड़े फेडरल एक्सप्रेस का बिजनेस अब अरबों डॉलर में है। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि इसके संस्थापक फ्रेड स्मिथ में जोखिम लेने का साहस था। उन्होंने जोखिम उठाया और सफल होकर भी दिखाया।

७२९) गुरु का हाथ - जब मार्टिन लूथर ने ईसाई धर्म में प्रचलित रूढ़ियों के विरोध में आवाज उठाई तो एक खास समूह ने उन्हें व उनके सहयोगियों को तरह-तरह से परेशान करना शुरू कर दिया। इससे आक्रोशित उनके एक शिष्य ने गुरु मार्टिन लूथर से कहा, सहन करने की हद हो गई है। अब आप एक शाप देकर उन सब लोगों को जलाकर भस्म कर

दीजिए। मार्टिन लूथर बोले, ऐसा कैसे हो सकता है? शिष्य बोला, आपकी प्रार्थना तो भगवान सुनते हैं उन्हें कह दें कि इन सब पर बिजली गिरे। मार्टिन लूथर ने कहा, यदि मैं भी ऐसा विचार करने लगूं तो मुझमें और उन लोगों में क्या अंतर रह जाएगा? लेकिन आप तो गुरु हैं, शिष्य बोला। इस पर मार्टिन ने कहा, गुरु सभी के लिए कल्याण की कामना करता है, सभी को आगे बढ़ाता है। शिष्य अपवाद स्वरूप कुशिष्य हो सकता है। लेकिन गुरु का चिंतन अनूठा ही होता है। किसी के भी जीवन में मोहमाया की विकृतियां प्रवेश ना कर सके, शिष्य का संयम न टूटे, गुरु इस बात का ध्यान रखता है। शिष्य ने पूछा, यदि शिष्य में गुरु की शिक्षा को आत्मसात करने की शक्ति ना हो, विनय ना हो, केवल ऊपरी भक्ति हो, उपकारी के प्रति अपकार की भावना हो तो? मार्टिन लूथर बोले, ऐसे रास्ते से भटक कर दुखों के मार्ग पर बढ़ते शिष्य को गुरु सन्मार्ग दिखाता है। गुरु जैसा नरम हाथ और किसी का नहीं हो सकता जो कुंभकार की तरह घड़े के अंदर हाथ रखकर ऊपर से शिक्षाओं की थपकी देते हुए शिष्य को एक सुंदर आकृति दे उपयोगी बनाता है ताकि वरदान स्वरूप मिली जिंदगी का सदुपयोग कर शिष्य अखंड सुख की राह पकड़ ले। इतना सुनना था कि शिष्य की आंखें खुल गईं और उसने मार्टिन लूथर किंग को उसी वक्त वचन दिया कि वह अब कभी किसी को नुकसान पहुंचाने की सोचेगा भी नहीं।

७३०) अनूठा धैर्य - संत सुकरात की सादगी, सत्यनिष्ठता और धैर्य सबको आकर्षित करते थे। उनकी प्रसिद्धि फैलने का एक परिणाम यह हुआ कि उनके घर सत्संग के लिए आनेवालों की भीड़ बढ़ने लगी। सुकरात की पत्नी को यह बात अच्छी नहीं लगती। वे कहती कि घर पर निठल्ले लोगों को बैठाए रखने का कोई मतलब नहीं बनता। मगर सुकरात उनकी बात मुस्कुराकर टाल देते। पत्नी को समझाने के लिए वे सही मौके का इंतजार कर रहे थे। एक दिन सुकरात लोगों के साथ बैठे बातचीत कर रहे थे। उन्हें ध्यान नहीं रहा कि पत्नी ने उनके साथ कहीं जाने का कार्यक्रम बना रखा था। पहले तो वह लोगों के जाने का इंतजार करती रही, पर जब यह बैठक खत्म होती नहीं दिखी तो नाराज पत्नी ने छत पर से गंदा पानी उलीच दिया और सत्संग के लिए आए लोगों को बुरा-भला भी कहने लगी। वह गंदा पानी सत्संग में बैठे कई लोगों के ऊपर तो पड़ा ही, खुद सुकरात भी भीग गए। यह उन लोगों का ही नहीं, सुकरात का भी अपमान था। मगर इस घटना से अविचलित सुकरात ने मुस्कुराते हुए कहा, आप सभी ने सुना होगा कि जो गरजता है, वह बरसता नहीं। आज तो मेरी पत्नी ने गरजना-बरसना साथ-साथ कर उपरोक्त कहावत को ही झुठला दिया है। सुकरात के विनोद भरे इन शब्दों से सत्संग का माहौल बदल गया। थोड़ी देर में सत्संग खत्म कर सुकरात उठे और अंदर जाकर पत्नी से कहा, चलो, तुम्हारे कार्यक्रम में चलना है। अब नहीं चलेंगे तो देर हो जाएगी। सुकरात का धैर्य देख लज्जित पत्नी ने माफी मांगी, तो सुकरात ने कहा, मुझे इसी पल का इंतजार था। आज तुम यह समझ सकती हो कि ऐसा धैर्य उन्हीं विचारों का परिणाम है जो सत्संग के दौरान हमारे मन में उठते हैं और हम एक-दूसरे से साझा करते हैं। यानी सत्संग निठल्लों की महफिल नहीं एक जरूरी काम है।

७३१) डाकू का संकल्प - आर्य मुसाफिर पंडित लेखराम लाहौर के पास एक गांव में आर्य समाज के एक समारोह में प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने वैदिक धर्म और कर्म के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा, जो भी शुभ या अशुभ कर्म मनुष्य करता है, उसका फल उसे अवश्य मिलता है। चोरी, हत्या, हिंसा आदि पाप कर्म करनेवालों को किए का दंड अवश्य भोगना पड़ता है। कोई भी उसे बचा नहीं सकता। पंडित जी के प्रभावशाली प्रवचन को सुननेवालों में उस क्षेत्र का

कुख्यात अपराधी डाकू मुगला भी था। पंडित जी की इस चेतावनी ने उसका हृदय झकझोर डाला। मुगला ने प्रवचन के बाद उन्हें प्रणाम किया और बोला, मैं आपसे एकांत में कुछ बातें करना चाहता हूं। आप कहां ठहरे हुए हैं? पंडित जी ने बताया, आर्य समाज मंदिर में ठहरा हुआ हूं। वहां आकर मिल सकते हो। मुगला रात को पंडित जी के बताए हुए पते पर पहुंचा। वहां उपस्थित लोग उसे देखते ही कांपने लगे। वे एक-एक कर खिसकने लगे। पर इन सबसे अविचलित मुगला ने श्रद्धापूर्वक पंडित जी के चरण स्पर्श किए और कहा, महाराज, मैं वर्षों से डाके डालता रहा हूं। कई हत्याएं कर चुका हूं। आपने प्रवचन में कहा कि हर आदमी को अपने पाप कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। मुझे अपने पापों की माफी का रास्ता दिखाइए। पंडित जी ने समझाया, यदि अपराध करना आज से ही छोड़ दो, लोगों की सेवा, हर मौके पर उनकी सहायता करने और बाकी का जीवन भगवान की उपासना में लगाने का संकल्प ले लो, तो तुम अपने पापों से मुक्ति पा सकते हो। पंडित जी की बात मुगला को समझ में आ गई। उसने उसी समय पंडित लेखराम जी के बताए मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प ले लिया। कुछ ही दिनों में सत्संग ने उसे अपराधी की जगह भगत और भले आदमी के रूप में ख्याति दिला दी।

७३२) अंग्रेज की संस्कृत - आजादी के बहुत पहले की बात है। कलकत्ता उच्च न्यायालय में न्यायाधीश सर विलियम जोंस हुआ करते थे। इंग्लैंड से जब उनका भारत आना हुआ तो उन्होंने संस्कृत सीखने की सोची। दिक्कत यह थी कि संस्कृत का कोई भी पंडित बिरादरी में अपनी बदनामी के डर से उन्हें पढ़ाने के लिए तैयार ही नहीं हो रहा था। जो मिल रहे थे उनका संस्कृत ज्ञान संदिग्ध था। बहुत खोजने पर एक वैद्य जी पढ़ाने को तैयार तो हुए, लेकिन उन्होंने भी कई शर्तें लगा दी। उन्होंने कहा, मैं कक्षा में बैठकर ही पढ़ाऊंगा और कक्षा में एक मेज और दो कुर्सी के अलावा और कुछ भी नहीं होगा। सफाई केवल हिंदू कर्मचारी ही करेगा और सफाई करने के बाद मेज कुर्सियों पर गंगाजल अवश्य छिड़केगा। सर विलियम जोंस को मांस-मदिरा छोड़नी पड़ेगी। जोंस को पढ़ाने से पूर्व व पढ़ाने के पश्चात पंडित जी के कपड़े बदलने के लिए अलग कमरा होगा। मासिक दक्षिणा चांदी के सौ सिक्के रहेगी। उन्हें घर से लाने व वापस पहुंचाने के लिए पालकी की व्यवस्था करनी होगी। वैद्यजी ने सोचा था कि इतनी कड़ी शर्तें सुनकर यह अंग्रेज उनसे पढ़ने का विचार त्याग देगा और सिर से बला टलेगी। लेकिन विलियम जोंस संस्कृत सीखने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे। उन्होंने सारी शर्तें स्वीकार कर लीं। रामा: रामौ रामा: से संस्कृत के पाठ का श्रीगणेश हुआ। जोंस महोदय बड़े ही नम्र स्वभाव के सुशील छात्र थे। अपने व्यवहार, सेवा, परिश्रम व लगन से उन्होंने गुरु को प्रसन्न करके उनका दिल जीत ही लिया। वैद्यजी की पढ़ाई और अपने स्वाध्याय के बल पर धीरे-धीरे विलियम जोंस संस्कृत के प्रकांड विद्वान हो गए। उन्होंने संस्कृत में लिखे अभिज्ञान शाकुंतलम नाटक का अंग्रेजी में अनुवाद किया। उन्होंने मिसाल कायम की कि लगनशील व्यक्ति के लिए कुछ भी असंभव नहीं।

७३३) धर्म की निंदा सुनो - बहुत समय पहले आरिफ सुभानी नाम के दरवेश हुए थे। उन्हें दुनिया की किसी भी वस्तु से मोह-माया नहीं थी। पहनने के लिए कपड़ों के अलावा उनके पास दूसरी कोई और चीज न थी। शांतिप्रिय और सादगीपूर्ण जीवन जीनेवाले इस दरवेश का स्वभाव दूसरों से मेल भी नहीं खाता था। आरिफ सुभानी मंदिर, मस्जिद और चर्च में कोई भेद नहीं देखते थे। अल्लाह के बंदों को यही सीख देते थे कि मजहब के भेदभाव से ऊपर उठो। एक बार एक

व्यक्ति उनके पास आया। उसने कहा कि वह उनके पास रहकर अल्लाह की बंदगी करना चाहता है। उन्होंने पूछा, क्या तुम्हें और कोई नहीं मिला? उस व्यक्ति ने कहा, मैंने किसी और के बारे में सोचा ही नहीं। मैंने ठान लिया था कि आपसे ही सीखना है। आप ही बताएं कि मैं क्या करूं, किसके पास जाऊं। यह सुनकर दरवेश ने कहा, यदि तुम मुस्लिम हो तो ईसाइयों के पास जाओ। अगर शिया हो तो इखराजियों (एक मुस्लिम संप्रदाय) के पास जाओ और यदि सुन्नी हो तो शियाओं के बीच जाओ। आरिफ सुभानी की बात सुनकर वह व्यक्ति हैरान रह गया। उसे उनके मशविरे का मतलब समझ नहीं आया। दरवेश ने उसे अपनी बात समझाते हुए कहा, मेरे कहने का मतलब है कि तुम जिस धर्म को मानते हो, उस धर्म को न माननेवाले के पास जाओ। उनके पास जाने पर वे तुम्हारे धर्म की निंदा करेंगे। तुम सुनते रहना। जब तुममें इतनी सहिष्णुता आ जाए कि विरोधियों की बातों का बुरा न लगे तो तुम्हें सच्ची शांति मिलेगी और तुम खुदा के बंदों में अपना स्थान बना लोगे। दरवेश आरिफ सुभानी से उस व्यक्ति को यह सीख मिली कि कोई भी धर्म किसी दूसरे धर्म का बाधक नहीं होता है। खोट हमारे मन में होता है कि हम अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे धर्म को तुच्छ समझते हैं।

७३४) भूल का अहसास - मिस्र देश में इब्राहिम नाम का एक व्यक्ति था। निर्धन होने के बावजूद वह धर्मात्मा और उदार था। शहर में आनेवाले यात्रीगण उसके घर ठहरते और वह नि:शुल्क उनकी मेहमाननवाजी करता था। जब यात्री भोजन करने बैठते तो इब्राहिम खाने से पहले एक प्रार्थना करता। सभी उस प्रार्थना में शामिल होते। इब्राहिम को इस सबमें बड़ा आनंद आता। मगर धीरे-धीरे उसे इस बात का अभिमान भी होने लगा कि वह पुण्यात्मा है। उसे ऐसा लगने लगा कि उसका धर्म दुनिया में सबसे बड़ा है। एक दिन थका हारा एक वृद्ध उसके घर पर आया। इब्राहिम ने उसका स्वागत कर उसे बिठाया। वृद्ध ने कहा, बेटा, मैं बहुत दूर से आया हूं। काफी थक गया हूं और भूखा भी हूं। क्या मुझे भोजन मिलेगा? इब्राहिम खुशी-खुशी अंदर जाकर भोजन ले आया। खाने से पूर्व उसने प्रार्थना पढ़ी। मगर वृद्ध उस प्रार्थना में शामिल नहीं हुआ। उसने पूछा, बाबा तुमने मेरे साथ प्रार्थना क्यों नहीं पढ़ी? वृद्ध ने जवाब दिया, हम अग्नि की पूजा करते हैं। यह सुनकर इब्राहिम क्रोधित हो गया। उसने कहा, अगर तुम्हें मेरे ईश्वर में विश्वास नहीं है और तुम मेरी प्रार्थना नहीं पढ़ सकते तो इसी वक्त मेरे घर से निकल जाओ। ऐसा कहकर इब्राहिम ने बिना खाना खिलाए उस वृद्ध को घर से निकाल दिया। उसी समय इब्राहिम के गुरु का वहां आगमन हुआ। उन्होंने समझाया, बेटे, यह तुमने ठीक नहीं किया। ईश्वर उस गरीब वृद्ध का इतने वर्ष से भरण-पोषण करता रहा है, मगर तुम धर्मात्मा बनने पर भी उसे सिर्फ इसलिए खाना न खिला सके कि वह दूसरे धर्म को मानता है। दुनिया में कितने ही धर्म हों, लेकिन ईश्वर एक है और उसकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं। गुरु के वचनों ने इब्राहिम को उसकी भूल का अहसास कराया। वह तुरंत उस वृद्ध को बुला लाया और प्रेम से उसे भरपेट भोजन कराया।

७३५) पाप का उपहार - एक बार क्रिसमस की रात को संत जेरोम की यीशु से भेंट हो गई। इससे पहले कि आश्चर्यचकित संत जेरोम यीशु से कुछ बोलते, यीशु ने ही पूछ लिया, आज मेरे जन्मदिन पर तुम मुझे कोई उपहार नहीं दोगे? संत जेरोम कुछ देर तक तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ से खड़े रहे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या बोलें। आखिर वे क्या दे सकते हैं यीशु को। यीशु ने दोबारा टोका तो वह बोले, मेरे पास आपको देने के लिए अभी तो कुछ भी नहीं है। लेकिन

मैं अपना हृदय आपको उपहार के रूप में भेंट कर सकता हूं। जेरोम की इस बात पर यीशु मंद-मंद मुस्कुराने लगे। जेरोम ने कहा, प्रभु, ऐसे मेरी परीक्षा न लें, कुछ तो कहें। यीशु ने कहा, हृदय के अलावा और कोई वस्तु दो। सोचो कि क्या दे सकते हो मुझे। यीशु के ऐसा कहने पर संत जेरोम विचार में पड़ गए। काफी सोच-विचार करने के पश्चात उन्होंने उत्तर दिया, मेरा पूरा शरीर आपको समर्पित है। यदि आपको मेरे पास और कुछ दिखाई दे रहा हो, तो बताएं, मैं उसे भी आपको समर्पित कर प्रसन्नता का अनुभव करूंगा। जेरोम की यह बात सुनकर यीशु के होठों पर रहस्य भरी मुस्कान तैर गई। वह कुछ देर तक जेरोम को देखते रहे और फिर बोले, हृदय या शरीर की जरूरत नहीं है, आप बस अपना कोई पाप या अवगुण भेंट में दे दें मुझे। मेरे जन्मदिन पर इससे बड़ा उपहार और कुछ नहीं हो सकता। आप पाप मुक्त हो जाएंगे, तो मैं अपने जन्मदिन पर पूर्ण संतुष्टि की अनुभूति कर धन्य हो जाउंगा। संत जेरोम यीशु की करुणा देखकर उनके समझ नतमस्तक हो उठे। सत्य है, अपने अवगुण छोड़ने से बड़ा और अपने किए जानेवाले पापों से बेहतर त्याग हो भी नहीं सकता। ईश्वर को भी यही पसंद है कि लोग इन्हें त्यागकर मानव जाति के प्रति प्रेम और करुणा की भावना रखें।

७३६) आराम की तलब - कन्फ्यूशियस के शिष्य चांग हो चांग एक बार घूमने निकले। रास्ते में एक युवा माली कुएं में बाल्टी डालकर पानी निकाल रहा था। चांग वहां बैठे। माली ने उन्हें पानी पिलाया। बातचीत में उसने बताया कि पूरा बगीचा सींचने में उसे बहुत मेहनत पड़ती है। चांग ने लकड़ियों की एक घिर्री बनाई। माली को बताया कि उसमें रस्सी लपेटकर खड़े-खड़े पानी खींचा जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि कुएं से लेकर हरेक पेड़ तक नाली खोद दो तो परिश्रम बचेगा। माली उनके सुझाव पर बहुत खुश हुआ। मगर चांग ने उसकी खुशी की ओर ध्यान न देते हुए पूछा कि आखिर तुम मेहनत से क्यों बचना चाहते हो? माली ने कहा, महाराज, ऐसा कौन है जो आराम से नहीं रहना चाहता। चांग ने कहा, ऐसा ही है तो तुम आराम करके देख लो। सोचोगे तो कुछ और तरकीबें मिल जाएंगी आराम की। उसके बाद चांग आगे बढ़ गए। काफी दिनों बाद चांग एक दिन उधर से गुजरे तो उस माली से मिलने बगीचे में पहुंचे। बगीचे की हालत अच्छी नहीं थी। पता चला कि माली तो हरदम बीमार रहता है। चांग माली के घर गए। माली दुर्बल होकर बिस्तर पर पड़ा था। चांग ने माली से पूछा, तुम्हारी ऐसी हालत कैसे? क्या कोई और तरकीब निकालूं, जिससे तुम्हें आराम मिले? इतना सुनते ही पास खड़ी माली की पत्नी झल्लाकर बोली, तरकीबें लड़ाना बहुत हुआ। यदि आप ऐसी सीख दें कि ये पहले जैसे ही अपने हाथों से काम करने लगे, तो इसकी हालत में सुधार हो सकता है। चांग ने माली से कहा, तुम्हारी पत्नी बिल्कुल ठीक कहती है। मैंने तुम्हें अनावश्यक परिश्रम से बचाने की कोशिश की, लेकिन तुम्हें आराम की तलब लग गई। अब तुम खुद देख सकते हो कि मेहनत से जी चुराने से शरीर ही नहीं जीवन भी बेकार होने लगता है। माली को अपनी भूल का अहसास हो चुका था।

७३७) कोर्स से बाहर - अक्सर हम कह देते हैं कि जो पढ़ाया जा रहा है, उसे ही पढ़ो और उसी में भविष्य बनाओ। कुछ ऐसी ही सोच से प्रभावित होकर घरवालों ने जॉन लॉक को ऑक्सफर्ड भेजा था। घर वालों ने मास्टर्स डिग्री में ही उसका भविष्य देखा। मगर जॉन का मन उसमें ठौर पाने वाला नहीं था। मजबूरी और पारिवारिक दबाव में उन्होंने पढ़ाई करके वहीं पढ़ाने का फैसला तो किया, मगर उनका मिजाज इसे स्वीकार नहीं कर पा रहा था। कुछ वर्षों में ही उन्होंने

अपने डॉक्टरी के पुराने शौक को जिंदा करने का विचार किया और नौकरी छोड़ दी। यूनिवर्सिटी के दिनों में वह कोर्स बाहर अलग-अलग मशहूर डॉक्टरों के बारे में पढ़ते रहते थे। वह पढ़ना बाद में उनके काम आया। डॉक्टरी के अलावा उन्होंने उस समय के जाने-माने विद्वानों के साथ उठना-बैठना शुरू किया। उन्होंने लॉर्ड एश्ले को साथ ले लिया जो बाद में अर्ल ऑफ शेफ्टसबरी बने। लॉक ने एश्ले के साथ बैठने वाले बुद्धिजीवियों का साथ भी पकड़ा। लॉक जो मास्टर्स करके टीचर की नौकरी करते, वह अब इन बुद्धिजीवियों की संगत में राजनीति विज्ञान के सिद्धांत देने लगे। शासन पर दो लेख लिखकर जॉन लॉक ने लंबी लकीर खींच दी। लॉक ने अपने उदाहरण से हमें बताया कि सबसे कोई भी ख्वाब तब तक नहीं मरता जब तक वह हमारे अंदर पल रहा है। जॉन लॉक कहते थे कि यूनिवर्सिटी या कॉलेज में छात्रों को अपने विषय के अतिरिक्त समाज और राजनीति का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। उनका कहना था, राजनीति और समाज में फैलती विसंगति पर ध्यान दो और जब प्रयोग करने की ताकत आ जाए तो उसे सबके सामने रखो। जब सबके सामने लाओ तो पीछे मत हटना, क्योंकि तभी विचार विराट वृक्ष बनने को तैयार होगा। जॉन लॉक ने खुद अपने जीवन में यह करके दिखा दिया।

७३८) दान का महत्व - एक दिन सुबह के वक्त मालवा नरेश राजा भोज अपने रथ पर बैठकर एक जरूरी कार्य से राज्य में कहीं जा रहे थे। चार श्वेत अश्वोंवाला उनका रथ तेजी से राजपथ पर बढ़ा जा रहा था। सहसा महाराजा भोज ने सड़क पर जा रहे एक तेजस्वी ब्राह्मण को देखा और कोचवान से रथ रोकने को कहा। महाराज के आदेश पर कोचवान ने वायुवेग से चलते रथ को रोका तो तेज आवाज के साथ श्वेत अश्व खुर पटकते तुरंत वहीं खड़े हो गए। राजा भोज रथ से उतरे तथा उन्होंने ब्राह्मण मनीषी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उन्हें देखते ही ब्राह्मण ने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिए। उन्होंने राजा के अभिवादन के उत्तर में आशीर्वाद तक नहीं दिया। इस व्यवहार से आश्चर्यचकित महाराजा भोज ने ब्राह्मण से विनम्रता से कहा, आपने मेरे प्रणाम का न उत्तर दिया, न मुझसे आशीर्वाद के शब्द कहे। उल्टा आपने मुझे देखकर अपने दोनों नेत्र बंद कर लिए। इस अनूठे व्यवहार का क्या कारण है? ब्राह्मण बोला, महाराज, शास्त्रों में कहा गया है कि सुबह-सवेरे किसी कृपण के सामने आ जाने पर नेत्र बंद कर लेने चाहिए। उसका मुख नहीं देखना चाहिए। आप परम वैष्णव तथा प्रजावत्सल नरेश तो हैं, परंतु दान देने में कृपणता बरतते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आप इस संसार में सिर्फ लेने आए हैं, जो कुछ लिया, उसे चुकाने नहीं। यदि किसी को यश प्राप्त होता है तो उसका मूल्य भी इसी संसार में चुकाना होता है। इसलिए धर्म में दान को सबसे ज्यादा महत्व दिया गया है। इसी प्रकार शास्त्र वचन का पालन करते हुए मैंने सूर्योदय से पहले आपका मुख देखना पसंद नहीं किया। शास्त्रज्ञ ब्राह्मण ने निर्भीकता से उत्तर दिया। महाराजा भोज ने उनके समक्ष नतमस्तक होकर अपनी कमी स्वीकार की तथा उसी दिन से गरीबों को मुक्त हाथों से दान देना शुरू कर दिया।

७३९) पिकासो का सत्य - विश्व प्रसिद्ध चित्रकार पिकासो एक बार चित्र बना रहे थे तो एक मित्र उसके पास आए। उन्हें चित्रकारी करते देख मित्र ने उनकी एकाग्रता में व्यवधान नहीं डाला और वापस लौट गए। बाद में जब वह चित्र बाजार में बिकने आया तो उसी मित्र ने उसे खरीद लिया क्योंकि बाजार में पिकासो के नकली चित्र बिक रहे थे और वह चित्र उन्होंने पिकासो को बनाते हुए देखा था। उसने उस चित्र की भारी कीमत चुकाई और उसे घर लेकर

आ गए। एक बार वही मित्र उस चित्र को लेकर पिकासो के पास गए और पूछा, यह चित्र तो प्रामाणिक है? मैंने स्वयं तुम्हें इस चित्र को बनाते हुए देखा था। पिकासो ने कहा, बनाया तो मैंने ही है, लेकिन प्रामाणिक नहीं है। मित्र बड़ा हैरान हुआ। क्योंकि प्रामाणिक का तो अर्थ यही होता है कि चित्रकार ने उसे स्वयं बनाया है। किसी से नकल नहीं की है। पिकासो ने कहा, यह सही है कि मैंने यह चित्र बनाया है, पर इसे बनाते समय मैं रचनाकार नहीं था, बल्कि अपने ही चित्रों की नकल कर रहा था। मेरा खुद का यह मानना है कि इस चित्र को बनाते समय मैं सृष्टा नहीं था। मित्र बड़ा हैरान हुआ। इतनी बड़ी राशि व्यय करके उसने चित्र खरीदा था और चित्रकार स्वयं कह रहा है कि चित्र प्रामाणिक नहीं है। उसने झल्लाकर पूछा, सृष्टा से तुम्हारा अर्थ क्या है? पिकासो बोले, सृष्टा मैं तभी होता हूं जब अद्वितीय बनाता हूं। जब में अपनी ही कृतियों की नकल करता हूं, तब कैसा सृष्टा? इसलिए कवि, चित्रकार, मूर्तिकार जब कोई मौलिक कार्य करते हैं, तब परमात्मा के निकटतम होते हैं। उतने ही निकट जितने कि भक्त और संत होते हैं। जब हम किसी चीज का सृजन करते हैं और सृजन यदि मौलिक है, तो हम ईश्वर के समीप ही होते हैं। पिकासो का ईमानदार सत्य सुनकर मित्र का सिर उसके प्रति श्रद्धा से भर गया।

७४०) संत का हृदय - एक संत नौका में सवार होकर गंगा पार कर रहा था। जिस नौका में वह बैठा था उसका नाविक नशे में धुत था। वह ठीक ढंग से नौका चला भी नहीं पा रहा था। संत ने उसे समझाया, भइया नशा करके नौका नहीं चलानी चाहिए। नशा शरीर और बुद्धि दोनों का नाश कर देता है। किसी दिन नशे में तुम नौका को ही डुबो दोगे। नाविक दुष्ट व्यक्ति था। संत की बात सुनकर वह गुस्से से तिलमिला उठा। उसने संत की बांह पकड़ ली और बोला, बाबा उपदेश मत दो अन्यथा तुझे ही गंगा में फेंक दूंगा। उसने संत को खूब अपमानित किया। उसी समय आकाशवाणी हुई- संत का अपमान हुआ है। इसके दंडस्वरूप नौका गंगा में डूबनेवाली है। नैया डगमगाने लगी और उस पर से नाविक का नियंत्रण जाता रहा। संत ने एक पल गंवाए बिना भगवान से प्रार्थना की, भगवान, यह बेचारा नादान है। नशे की हालत में यह अपना बुद्धि-विवेक गंवा चुका है। यह नौका ही इसके परिवार के जीवनयापन का साधन है। इसके डूबने से इसके बाल-बच्चे भूखे मर जाएंगे। इसे क्षमा करें। पुन: आकाशवाणी हुई, तो आप ही बताएं कि आप जैसे संत का अपमान करने के अपराध में इस नाविक को क्या दंड दिया जाए? संत बोल उठे- प्रभु। आप तो पूर्ण सक्षम, दयावान तथा प्रत्येक जीव का कल्याण करनेवाले हैं। प्रभु, आप सब कुछ कर सकते हैं। क्यों न इसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश भर देते जिससे इसकी बुद्धि ठीक हो जाए। यह नशा व क्रोध का त्याग कर अच्छा मनुष्य बन जाए। अपमानित करने के बावजूद, उसका भला चाहनेवाले संत की वाणी सुनकर नाविक पानी-पानी हो गया। तब तक नौका गंगा के दूसरे तट पर पहुंच चुकी थी। नाविक ने गलती के लिए संत से क्षमा मांगी और फिर से ऐसा न करने का व्रत लिया।

७४१) सफलता का राज - जॉनसन एक मिल मजदूर के पुत्र थे। उनकी मां लोगों के कपड़े सिलने का काम करती थीं। जॉनसन की हार्दिक इच्छा थी कि वह अफ्रीकी-अमेरिकी समुदाय के लिए एक पत्रिका निकालें। उन्होंने इसके लिए कई लोगों से मदद मांगी लेकिन निराशा ही हाथ लगी। अंत में उनकी मां ने कहा, बेटा। मैंने लोगों के कपड़े सिलाई करके जो फर्नीचर बनवाया है, उसे गिरवी रख देते हैं और उससे जो पैसे मिले तुम उसका इस्तेमाल कर सकते हो। उसके बाद

मां ने पांच सौ डॉलर का कर्ज लेकर भी उन्हें दिया। पत्रिका का ग्राहक बनाने के लिए जॉनसन ने बीस हजार ग्राहक बनाए। नीग्रो डाइजेस्ट नाम की पत्रिका में अफ्रीकी-अमेरिकियों की रुचि की खबरें और लेख छपने के बाद जॉनसन ने अपने मित्रों के साथ विचार किया कि इसको कैसे बेचा जाए। बहुत सोचने के बाद उन्होंने मित्रों से कहा, तुम लोग हर दुकान पर जाओ और जहां पर नीग्रो डाइजेस्ट न दिखे, वहां इसकी मांग करो। बढ़ती मांग को देखते हुए वितरकों को यह पत्रिका रखनी ही पड़ेगी। सभी मित्रों को जॉनसन की यह योजना बहुत पसंद आई और उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। उनमें से एक मित्र ने कहा, इससे हमें क्या फायदा होगा? जॉनसन ने कहा, पत्रिका को कामयाब होने दो फिर हम सबका फायदा ही फायदा है। यह योजना काम कर गई और वितरक पत्रिका को बेचने में अपनी रुचि दिखाने लगे। एक साल बाद पत्रिका की पचास हजार प्रतियां हर महीने बिकने लगीं। फिर जॉनसन सफलता की ऊंचाइयों को छूते ही चले गए। जॉन जॉनसन का जीवन इस बात का गवाह है कि छोटी शुरुआत से भी इंसान बड़ी सफलता हासिल कर सकता है, बशर्ते उसमें बुद्धि हो, मेहनत करने की इच्छा और कभी हार न मानने का संकल्प हो।

७४२) विजय के स्वामी - लकड़ी के एक तंबूनुमा बंद कमरे में थिएटर कंपनी का मालिक बैठा कुछ सिक्के गिन रहा था। ठीक उसी वक्त एक कर्मचारी ने अंदर आकर उसे बताया कि एक लड़का उससे मिलने की बहुत देर से जिद कर रहा है। मालिक झुंझलाहट में बोला, मैं बहुत जल्दी में हूं, फिर भी उसे शीघ्र अंदर भेजो। अत्यधिक व्यस्तता के बावजूद थिएटर कंपनी के मालिक ने आगंतुक युवक से मिलना स्वीकार कर लिया। सामने आया एक बीस-इक्कीस वर्ष का ग्रामीण युवक, जिसने ढीले-ढाले कपड़े पहने थे, शरीर बेडौल और भौंडा चेहरा। यह सब देख मालिक अपनी हंसी रोक न सका। युवक ने प्रार्थना की, मैं आपके थिएटर में खेले जानेवाले नाटकों में कोई भी भूमिका निभाने की नौकरी चाहता हूं। तत्क्षण थिएटर के स्वामी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कह दिया, देखो भाई, मेरी दृष्टि से तुम नाटकों में किसी अच्छी भूमिका के लिए तो योग्य हो नहीं, यदि चाहो तो विदूषक का अभिनय कर सकते हो। ठीक है श्रीमान। मैं यही करूंगा। हां, वेतन कितना मिलेगा? अभी तुम परीक्षण पर रहोगे। निर्वाह के लिए जो भी न्यूनतम आवश्यकताएं हैं, पूरी कर दी जाएंगी। बाद में काम देखकर वेतन में वृद्धि की जाएगी। युवक ने थिएटर में विदूषक की भूमिकाएं निभाना प्रारंभ कर दिया। परिश्रम तथा प्रामाणिकता का संबल लेकर वह इतना प्रसिद्ध हुआ कि अपनी कंपनियों में उसे ले जाने के लिए थिएटरों के स्वामियों में प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो गई। कला तो जीवंत और व्यापक रूप देनेवाले उस अभिनेता का नाम था विलियम शेक्सपियर। इंग्लैंड के स्ट्रैटफोर्ड नामक ग्राम में जन्म लेकर अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करता हुआ वह सफलता के सोपानों पर आरूढ़ होता गया। सचमुच, जो परिस्थितियों के दास नहीं बनते, वे विजय के स्वामी हो जाते हैं।

७४३) पहाड़ में रास्ता - गांव की दूसरी औरतों की तरह ही उस व्यक्ति की पत्नी भी रोज पहाड़ पार कर दूसरे गांव से पानी लाती थी। प्राय: महिलाएं वहां फिसल कर गिर पड़तीं जिससे उनका पानी बिखर जाता और चोट भी लगती। उस व्यक्ति की पत्नी के साथ कई बार ऐसा हुआ। यह देखकर उसे बहुत दुख होता था। उसके मन में बार बार यही ख्याल आता कि काश ये पहाड़ यहां न होता और गांव के लोगों का जीवन कुछ आराम से गुजरता। यह सब सोचकर उसने अपने मन में एक फौलादी संकल्प ले लिया। उसने अपनी बकरी बेच डाली और छेनी हथौड़ा खरीद लाया।

अगले दिन सुबह-सुबह उसने पहाड़ काटकर रास्ता बनाना शुरू कर दिया। लोग इस व्यक्ति को अविश्वास से देखकर हंस रहे थे, उसका मजाक उड़ा रहे थे, लेकिन वह उनकी प्रतिक्रिया से बेखबर अपने काम में लगा था। समय गुजरता रहा, लेकिन इन सबसे बेखबर अपनी धुन का पक्का वह व्यक्ति अपने काम में लगा रहा। पहाड़ के सीने की कठोर चट्टानें उसकी छेनी के प्रहारों से कट-कटकर गिरती रहीं और रास्ता बनता रहा। इसी दौरान उसकी पत्नी बीमार पड़ी और अस्पताल ले जाते हुए रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। पत्नी की मृत्यु से उपजे दुख से उसका संकल्प और अधिक दृढ़ हो गया। बाईस साल की अथक मेहनत के बाद एक दिन पहाड़ के सीने को चीरता हुआ एक रास्ता दूसरे गांव तक निकल आया। इससे पास के कस्बे की दूरी जो पहले अस्सी किलोमीटर से भी अधिक थी, अब मात्र तेरह किलोमीटर हो गई थी। अकेले अपने दम पर यह करिश्मा कर दिखाया था बिहार के गया जिले के गहलौर नामक गांव में एक गरीब भूमिहीन मजदूर परिवार में जन्मे दशरथ मांझी ने। कहते हैं अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता लेकिन मन में फौलादी संकल्प हो तो अकेला व्यक्ति क्या नहीं कर सकता।

७४४) संत रैदास की सीख - भक्त रैदास का रहन-सहन गृहस्थ जीवन में रहने के बाद भी संतों जैसा ही था। पेशा था, जूते-चप्पल बनाना और उनकी मरम्मत करना। एक बार कार्तिक पूर्णिमा पर गंगा-स्नान पर्व के समय बड़ी संख्या में लोग गंगाघाट की ओर जा रहे थे। लेकिन रैदास की तो दुनिया ही अलग थी। वे अपने काम में रमे रहते और मधुर स्वर से भजन गाया करते थे। एक महिला रैदास के पास अपनी चप्पल ठीक कराने आई तो उसने पूछा, सब गंगा स्नान करने जा रहे हैं, भगतजी। मैं भी जा रही हूं। आप नहीं जाओगे क्या? रैदास ने जूतों के ढेर की ओर इंगित करते हुए कहा, यह देखो बहन, इतना सारा काम ले रखा है। समय पर सबको देना है। मैं तो यहीं अपना काम करता-करता गंगा मां के भाव दर्शन कर लूंगा। महिला वहां से गंगा स्नान करने के लिए चली गई। जब वही महिला गंगा स्नान करके लौटी तो रैदास भक्त से फिर मिलने आई। वह काफी निराश और उदास थी। उस समय रैदास भजन कर रहे थे। उन्होंने भजन पूरा कर महिला से निराशा का कारण पूछा तो वह बोली, गंगा की धारा में डुबकी लगा रही थी, न जाने कैसे सोने का कंगन पानी में ही छूट गया। महिला मन और भावों से बहुत साफ थी। उसे आभूषण खोने का गम सता रहा था। उसके दुख का असर चेहरे पर साफ दिख रहा था। रैदास ने अपना हाथ पास में रखी कठौती (चमड़ा भिगोने के लिए पानी से भरा पात्र) में डाला और सोने के दो कंगन निकाल कर बोले, देखो, कहीं यह तो नहीं? महिला की आंखें खुशी से चमक उठीं। वह बोली, हां भगतजी। यही हैं मेरे कंगन, लेकिन ये तो बहती गंगा में गिर गए थे, यहां आपकी कठौती में कैसे? रैदास ने कहा, मन चंगा तो कठौती में गंगा। मन को चंगा रखो तो जहां हो वहीं तीर्थस्नान का लाभ मिल जाएगा। तभी से यह कहावत चल पड़ी।

७४५) संघर्ष की जीत - फ्योदोर दोस्तोयवस्की का पारिवारिक जीवन बहुत दुखी था। वह मात्र तेरह साल के थे तो उनकी मां गुजर गईं। अठारह साल की आयु में नौकरों ने उनके पिता की हत्या कर दी। इसके बाद दोस्तोयवस्की को मिरगी के दौरे भी पड़ने लगे। एक दिन दौरा आया तो उनकी दाईं आंख भी दुर्घटना का शिकार हो गई। अब उनके सामने न तो परिवार था और न ही कोई प्रेरणा। कुछ समय बाद उन्हें मिलिट्री में इंजीनियर की नौकरी मिली। दोस्तोवयस्की

नौकरी तो करने लगे, लेकिन उन्हें बार बार लगता कि उनकी मंजिल कुछ और ही है। नौकरी के कारण उन्हें लेखन के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता था। उन्होंने नौकरी छोड़ दी और लिखने का मन पक्का किया। उनका पहला उपन्यास पुअर फोक बहुत लोकप्रिय हुआ, लेकिन कुछ समय बाद ही उन पर क्रांतिकारी षडयंत्र रचने का आरोप लगाकर उन्हें मौत की सजा सुनाई गई। मृत्युदंड देने से कुछ मिनट पहले उनकी सजा को बदल कर उन्हें साइबेरिया भेज दिया गया। दस साल बाद लेनिनग्राद लौटकर दोस्तोयवस्की ने फिर से लिखना शुरू किया। खराब स्वास्थ्य, गरीबी और कष्टों से भरे जीवन के बाद भी उन्होंने अमर ग्रंथ लिखे। जेल के अपने जीवन में उन्होंने कैदियों को बहुत करीब से देखा था, जिसका अमिट वर्णन उनके अमर ग्रंथ क्राइम एंड पनिशमेंट में मिलता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यावसों के जनक दोस्तोयवस्की अपने पाठकों के हृदय को छूने में सफल इसलिए रहे क्योंकि उन्होंने जिन कष्टों को अपने जीवन में भोगा था, उन्हीं को लेखन में उतारा था। उन्होंने अपने लेखन से पूरे विश्व के समक्ष इस बात को साबित कर दिया था कि यदि व्यक्ति चाहे तो कष्ट और संघर्ष से लड़कर न सिर्फ अपने लिए एक खास जगह बना सकता है बल्कि पूरे विश्व के लिए प्रेरणास्रोत भी बन सकता है।

७४६) सफलता का रहस्य - महान दार्शनिक सुकरात के पास एक बार एक लड़का आया। उस लड़के ने सुकरात से पूछा, कृपया बताएं, सफलता का रहस्य क्या है? वह लड़के की बात सुनकर थोड़ी देर चुप रहे फिर उन्होंने कहा, मैं तुम्हें इसका उत्तर कल दूंगा। कल तुम मुझे नदी के किनारे मिलो। लड़के ने सुकरात के बारे में काफी सुन रखा था। उसे पूरा भरोसा था कि मुझे मेरे सवाल का जवाब जरूर मिल जाएगा। वह काफी प्रसन्न था। दूसरे दिन वह लड़का नदी के किनारे पहुंच गया। सुकरात वहां पहले से मौजूद थे। वह उस लड़के को लेकर नदी में उतर गए और गहरे पानी में बढ़ने लगे। सुकरात लड़के को लेकर नदी में तब तक आगे बढ़ते रहे, जब तक कि नदी का पानी उनके गले तक न आ गया। वहां पहुंचकर अचानक सुकरात ने उस लड़के का सिर पकड़कर उसे पानी में डुबो दिया। थोड़ी ही देर में वह पानी में सांस लेने में अपने आपको अक्षम पा रहा था। वह पानी से बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रहा था। लेकिन सुकरात की मजबूत पकड़ के सामने उसका यह संघर्ष विफल रहा। सुकरात ने उस लड़के को तब तक पानी में डुबोए रखा, जब तक उसका शरीर नीला न पड़ने लगा। उसे नीला पड़ता देख सुकरात ने उसका सिर पानी से बाहर निकाला। पानी से बाहर निकलते ही वह लड़का हांफते हुए जोर-जोर से सांस लेने लगा। उसे ऐसा करते देख सुकरात ने पूछा, ये बताओ, जब तुम पानी के भीतर थे, तब सबसे ज्यादा क्या चाहते थे? उस लड़के ने उत्तर दिया, उस समय सिर्फ मैं सांस लेना चाहता था। सुकरात ने कहा, यही सफलता का रहस्य है। जब तुम सफलता को पाने के लिए सांस की तरह प्रयास करोगे तो समझ लेना, तुम्हें सफलता मिल जाएगी। इसके अतिरिक्त सफलता का कोई और रहस्य नहीं है।

७४७) खजांची और डाकू - वर्ष १९२५ की बात है। एक दिन न्यूयॉर्क के यहूदी अस्पताल का खजांची दानदाताओं और अन्य स्रोतों से जमा रकम लेकर बैंक जा रहा था। वह अस्पताल से थोड़ी दूर ही निकला तो रास्ते में उसे डाकुओं ने घेर लिया। डाकुओं का सरदार अपने साथियों से बोला- छीन लो इस बदमाश से धन से भरा थैला। ध्यान रहे कहीं यह बचकर न जाने पाए। खजांची अपने ऊपर हुए इस अचानक आक्रमण से घबराया नहीं और उसने धैर्यपूर्वक डाकुओं से कहा- यह पैसा मेरा नहीं है, अस्पताल का है, जिसे दानदाताओं और रोगियों के परिजनों की सहायता से अस्पताल चलाने

के लिए इकट्ठा किया गया है। यदि आप इस पैसे को छीन लेंगे तो अस्पताल के रोगियों की सेवा में कमी आएगी। रोगी और दीन-दुखियों को जब इस बात की खबर लगेगी तो वे आपको मन से कोसेंगे और बद्दुआ देंगे। कड़कती आवाज में डाकुओं का सरदार दहाड़ा, हमें बहाने पसंद नहीं हैं, लाओ इधर अपना थैला मुझे दे दो। मेरे भाई जो दान देकर अस्पताल चलाते हैं, वे भी आपके ही भाई हैं। अस्पताल के धन में से आपको कुछ हथियाना शोभा तो नहीं देता, फिर भी जैसी आपकी मर्जी। ऐसा कहकर खजांची ने नोटों से भरा थैला डाकुओं के सरदार की ओर बढ़ा यिा, किंतु खजांची की उस मार्मिक बात का असर डाकू पर ऐसा हुआ कि उसने न केवल उसका छीना हुआ थैला वापस कर दिया, बल्कि कुछ रकम अपने पास से भी अस्पताल की सहायता के लिए दान में दे दी। डाकू के अन्य साथी यह घटना देख रहे थे। उनकी समझ में आ गया कि संसार के बुरे से बुरे व्यक्ति में भी भलाई अवश्य ही निवास करती है। लेकिन भलाई की वह भावना सुषुप्त अवस्था में रहती है, उसे जगाने का प्रयास किया जाए तो बुरा करने पर आमादा व्यक्ति भी इसका त्याग सकता है।

७४८) शायद कोई रास्ता निकल आए - कुछ बच्चों ने तय किया कि मुल्ला नसरुद्दीन को परेशान करने के लिए जब मुल्ला कहीं चप्पल निकालें तो उसे छुपा दिया जाए, उन्होंने एक उपाय निकाला। जब मुल्ला पास से गुजर रहा था तो मुल्ला को सुनाने के लिए एक बच्चे ने दूसरे से जोर से कहा- सामने वाले पेड़ पर कोई भी नहीं चढ़ सकता और मुल्ला तो कभी भी नहीं। मुल्ला ठिठका, पेड़ केा देखा जो कि बहुत छोटा और शाखादार था। कोई भी चढ़ सकता है इस पर - तुम भी। देखो मैं तुम्हें दिखाता हूं कि कैसे, ऐसा कहकर उसने अपनी चप्पलें निकाली और उन्हें अपनी कमरबंद में खोंसा और पेड़ पर चढ़ने लगा। मुल्ला, बच्चे चिल्लाए क्योंकि उनका प्लान फेल हो रहा था- ऊपर पेड़ में तुम्हारे चप्पलों का क्या काम? आपातकाल के लिए हमेशा तैयार रहो, मुल्ला ने मुस्कुराते हुए बात पूरी की- क्या पता ऊपर कोई रास्ता मिल ही जाए।

७४९) अमृतत्व की किरण - एक राजा था। वह एक दिन अपने वजीर से नाराज हो गया और उसे एक बहुत बड़ी मीनार के ऊपर कैद कर दिया। जिस समय उसे पकड़कर मीनार पर ले जाया रहा था, लोगों ने देखा कि वह जरा भी चिंतित और दु:खी नहीं है, उलटे सदा की भांति आनंदित और प्रसन्न है। उसकी पत्नी ने रोते हुए उसे विदा दी और पूछा, तुम इतने प्रसन्न क्यों हो? उसने कहा, यदि रेशम का एक बहुत पतला सूत भी मेरे पास पहुंचाया जा सकता तो मैं स्वतंत्र हो जाऊंगा। क्या इतना सा काम भी तुम नहीं कर सकोगी? उसकी पत्नी ने बहुत सोचा, लेकिन इतनी ऊंची मीनार पर रेशम का पतला धागा पहुंचाने का कोई उपाय उसकी समझ में न आया। तब उसने एक फकीर से पूछा। फकीर ने कहा, भृंग नाम के कीड़े को पकड़ो। उसके पैर में रेशम के धागे को बांध दो और उसकी मूंछों के बालों पर शहद की एक बूंद रखकर उसका मुंह चोटी की ओर करके मीनार पर छोड़ दो। उसी रात को ऐसा किया गया। वह कीड़ा सामने मधु की गंध पाकर, उसके पाने के लोभ में, धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा और आखिर उससे अपनी यात्रा पूरी कर ली। रेशम के धागे का एक छोर कैदी के हाथ में पहुंच गया। रेशम का यह पतला धागा उसकी मुक्ति और जीवन बन गया। उससे फिर सूत का धागा बांधकर ऊपर पहुंचाया गया, फिर सूत के धागे से डोरी और डोरी से मोटा रस्सी। उस रस्सी के सहारे वह कैद से बाहर हो गया। सूर्य तक पहुंचने के लिए प्रकाश की एक किरण बहुत है। वह किरण किसी को पहुंचानी भी नहीं है। वह तो हर एक के पास मौजूद है।

७५०) ज्ञानी का घमंड - एक गांव में सप्ताह के एक दिन प्रवचन होता था। इसकी व्यवस्था गांव के कुछ प्रबुद्ध लोगों ने करवाई थी जिससे कि भोले-भाले ग्रामीणों को धर्म का कुछ ज्ञान हो सके। इसके लिए एक दिन एक ज्ञानी पुरुष को बुलाया गया। गांववाले समय से पहुंच गए। ज्ञानी पुरुष ने पूछा, क्या आपको मालूम है कि मैं क्या कहने जा रहा हूं।

गांववालों ने कहा, नहीं। ज्ञानी पुरुष गुस्से में भरकर बोले- जब आपको पता ही नहीं कि मैं क्या कहने जा रहा हूं तो फिर क्या कहूं। इतना कहकर वह नाराज होकर चले गए। गांव के सरपंच उनके पास दौड़ते हुए पहुंचे और क्षमा चायना करके कहा कि गांव के लोग तो अनपढ़ हैं। वे क्या जानें कि क्या बोलना है। किसी तरह उन्होंने ज्ञानी पुरुष को फिर आने के लिए मना लिया। अगले दिन आकर उन्होंने फिर वही सवाल किया- क्या आपको पता है कि मैं क्या कहने जा रहा हूं। इस बार गांववाले सतर्क थे। उन्होंने सुनते ही कहा- हां, हमें पता है कि आप क्या कहने जा रहे हैं। इतना सुनना था कि ज्ञानी पुरुष फिर भड़क गए। उन्होंने कहा- जब आपको पता ही है कि मैं क्या कहनेवाला हूं तो इसका अर्थ हुआ कि आप सब मुझसे ज्यादा ज्ञानी हैं। फिर मेरी क्या आवश्यकता है। यह कहकर फिर वह वहां से चल पड़े। गांववाले दुविधा में पड़ गए कि आखिर उस सज्जन से किस तरह पेश आएं। उन्हें फिर समझा-बुझाकर लाया गया। इस बार जब उन्होंने वही सवाल किया तो गांववाले उठकर जाने लगे। ज्ञानी पुरुष ने क्रोध में कहा- अरे, मैं कुछ कहने आया हूं तो आप लोग जा रहे हैं।

इस पर कुछ गांववालों ने हाथ जोड़कर कहा- देखिए, आप परम ज्ञानी हैं। हम गांववाले मूढ़ और अज्ञानी हैं। हमें आपकी बातें समझ में नहीं आतीं। कृपया अपने अनमोल वचन हम पर व्यर्थ न करें। ज्ञानी पुरुष अकेले खड़े रह गए। उनका घमंड चूर-चूर हो चुका था।

७५१) राजगुरु की तीन बातें - हरि सिंह एक न्यायप्रिय राजा था। वह प्रजा के सुख-दुख की चिंता अपने परिवार की तरह करता था। लेकिन कुछ दिनों से उसे अपने-कामकाज से संतुष्टि नहीं हो पा रही थी। उसने बहुत प्रयत्न किया कि वह अभिमान से दूर रहे, पर वह इस समस्या का हल नहीं निकाल पा रहा था। एक दिन राजा राजगुरु प्रखरबुद्धि के पास जा पहुंचा। राजा का चेहरा देखते ही राजगुरु उसकी परेशानी समझ गए। उन्होंने कहा, राजन, यदि तुम मेरी तीन बातें याद रखोगे तो जिंदगी में कभी असफल नहीं हो सकते। राजा बोला- आप बताइए गुरुदेव, मैं हमेशा याद रखूंगा। प्रखरबुद्धि ने कहा, पहली बात, रात को मजबूत किले में रहना। दूसरी बात, स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करना और तीसरी, सदा मुलायम बिस्तर पर सोना। गुरु की ये अजीब बातें सुनकर राजा बोला, गुरु जी आपकी इन बातों को अपनाया तो मेरे अंदर अभिमान और भी अधिक बढ़ जाएगा। इस पर प्रखरबुद्धि मुस्कराते हुए कहने लगे, तुम मेरी बातों का अर्थ नहीं समझे। पहली बात सदा अपने गुरु के साथ रहकर चरित्रवान बने रहना। कभी बुरी आदत के आदी मत होना। दूसरी बात, कभी पेट भरकर मत खाना। जो भी मिले उसे प्रेमपूर्वक़ खाना। खूब स्वादिष्ट लगेगा। तीसरी बात, कम से कम सोना। अधिक समय तक जागकर प्रजा की रक्षा करना। जब नींद आने लगे तो राजसी बिस्तर का ध्यान छोड़कर जहां भी जगह मिले, वहीं सो जाना। ऐसे में तुम्हें हर जगह लगेगा कि मुलायम बिस्तर पर हो। राजन्, यदि तुम शासक की जगह त्यागी बनकर अपनी प्रजा का ख्याल रखोगे तो कभी भी धन और राजपाट का मोह तुम्हें नहीं छू पाएगा।

७५२) पुस्तक का सम्मान - पं. जवाहर लाल नेहरू किताबों से गहरा लगाव रखते थे। वे पुस्तकें पढ़ते ही नहीं, उन्हें संभालकर बड़े प्यार से रखते थे। बेतरतीब ढंग से रखी पुस्तकें देखकर उनका मूड खराब हो जाता था। एक बार नेहरू जी अपने एक दोस्त के यहां ठहरे हुए थे। जब किसी कार्यवश कुछ घंटों के लिए उनके मित्र घर से बाहर गए, तो कुछ पढ़ने के लिए नेहरू जी ने पुस्तकों की अलमारी खोली। अलमारी में किताबें इधर-उधर फेंकी हुई सी पड़ी थीं। यह देखकर नेहरू जी को बड़ा दुख हुआ। एक सुंदर सी पुस्तक अलमारी के कोने में गर्द-गुबार से सनी पड़ी थी। नेहरू जी ने उस पुस्तक को उठाया, साफ किया और अपने पास रख लिया। इसके बाद उन्होंने एक तरफ से शुरू करके पूरी अलमारी साफ की तथा बेतरतीब ढंग से रखी पुस्तकों को झाड़-पोंछकर, साफ करके यथासंभव ठीक ढंग से रख दिया। जब मेजबान वापस आए, तो उन्होंने पंडित जी का चेहरा देखकर ही समझ लिया कि दाल में कुछ काला है। नेहरू जी ने उन्हें डांटते हुए कहा, तुम्हें सम्मान करना नहीं आता, तो मुझे अपने यहां बुलाते ही क्यों हो? तुमने मेरा अपमान किया है। अब मैं तुम्हारे यहां कभी नहीं आऊंगा। मेजबान गिड़गिड़ाए। जब पंडित जी का क्रोध शांत हुआ तो वे बोले, जानते हो, मैंने तुम्हारी अलमारी में पुस्तकों को दुर्दशा की स्थिति में पड़ा पाया। क्या तुम नहीं जानते कि पुस्तक में लेखक की आत्मा निवास करती है? पुस्तक का अपमान लेखक का अपमान है। उम्मीद है तुम मेरा मतलब समझ गए होंगे। मेजबान ने पंडित जी से क्षमा मांगी और भविष्य में पुस्तकों की कद्र करने का वादा किया।

७५३) एक नारे का जन्म - यह घटना उस समय की है जब देश में स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ रहा था। उधर अंग्रेज प्रथम विश्वयुद्ध में फंसे थे। मुंबई के गवर्नर लार्ड विलिंग्डन ने इस जंग में भारतीयों की सहायता के लिए युद्ध परिषद का आयोजन किया। उसमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को भी आमंत्रित किया गया। गवर्नर को आशा थी कि तिलक भी अन्य भारतीय नेताओं की तरह अंग्रेजों को विश्वयुद्ध में हरसंभव मदद देने का वचन देंगे। तिलक मंच पर आए। उन्होंने भाषण प्रारंभ किया, किसी भी बाहरी आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए हम भारतीय सदैव सहयोग के लिए तत्पर रहेंगे किंतु स्वराज तथा स्वदेश रक्षा के प्रश्न पर सरकार को भी स्पष्ट वचन देना चाहिए। स्वराज शब्द सुनते ही विलिंग्डन का चेहरा तमतमा उठा। वे अपने स्थान से उठे और बोले, यहां राजनीतिक चर्चा की अनुमति नहीं दी जा सकती। आप हमारी सहायता का आश्वासन दीजिए और बोलिए कि हमारे साथ हैं। इस पर तिलक ने कहा, गवर्नर महोदय, स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और यदि आप यह सुनने को तैयार नहीं है तो मुझ जैसा स्वाभिमानी भारतीय यहां एक क्षण भी उपस्थित नहीं रह सकता। तिलक की बेबाक बातें सुनकर विलिंग्डन दंग रह गए। उन्होंने पूछा, क्या आपके दिमाग में हर समय स्वराज ही गूंजता रहता है? तिलक बोले, बिल्कुल। और यह तब तक मेरे दिलो-दिमाग को पूर्ण स्वराज नहीं मिल जाता। कुछ समय बाद तिलक की यही बात स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है एक नारा बन गई, जिसने देश को एकजुट करने में अहम भूमिका निभाई।

७५४) सच्चा उत्तराधिकारी - संत एकनाथ को अपने उत्तराधिकारी की तलाश थी। वह किसी योग्य शिष्य को यह दायित्व सौंपना चाहते थे। उन्होंने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। एक दिन उन्होंने सभी शिष्यों को बुलाया और एक दीवार बनाने का निर्देश दिया। शिष्य इस काम में जुट गए। दीवार बनकर तैयार भी हो गई, लेकिन तभी एकनाथ ने उसे तोड़ने

का आदेश दे दिया। दीवार टूटते ही फिर से उसे बनाने को कहा। दीवार फिर बनी तो एकनाथ ने उसे फिर तुड़वा दिया। दीवार ज्यों ही तैयार होती, एकनाथ उसे तोड़ने को कहते। यह सिलसिला चलता रहा। धीरे-धीरे उनके अनेक शिष्य उकता गए और इस काम से किनारा करने लगे, मगर चित्रभानु पूरी लगन के साथ अपने काम में जुटा रहा। बार-बार तोड़े जाने के बावजूद दीवार बनाने के काम से वह नहीं हटा और न ही जरा भी झुंझलाया। एक दिन एकनाथ उसके पास गए और बोले, तुम्हारे सभी मित्र काम छोड़कर भाग गए, तुम अब तक डटे क्यों हो? चित्रभानु बोला, आज्ञा से पीछे कैसे हट सकता हूं। तब तक कार्य करता रहूंगा, जब तक आप मना न कर दें। एकनाथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने चित्रभानु को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर शिष्यों से कहा, अधिकतर लोग ऊंची आकांक्षाएं रखते हैं और सर्वोच्च पद पर पहुंचना भी चाहते हैं। मगर वह नहीं जानते कि इसके लिए पात्रता भी जरूरी है। वे पात्रता पाने का प्रयास नहीं करते या थोड़ा प्रयास करके पीछे हट जाते हैं। कोई भी लक्ष्य हासिल करने के लिए मात्र इच्छा और परिश्रम ही नहीं, दृढ़ता भी आवश्यक है। चित्रभानु में इच्छा, परिश्रम, दृढ़ता के साथ धैर्य भी है। ऐसा व्यक्ति जीवन में अपना लक्ष्य अवश्य पा लेता है।

७५५) समानता का संदेश - पैगंबर मोहम्मद साहब ने मक्का विजय के बाद एक नीग्रो गुलाम बिलाल को पवित्र काबा की छत पर चढ़कर नमाज के लिए अजान देने का हुक्म दिया। बिलाल ने कुछ ही समय पहले इस्लाम अपनाया था। जब वह पवित्र काबा की छत पर चढ़ा तो कुछ कुलीन अरब नागरिक चिल्लाकर बोले, ओह। बुरा हो उसका, वह काला हब्शी अजान के लिए पाक काबा की छत पर चढ़ गया। अश्वेतों के प्रति यह पूर्वाग्रह देख पैगंबर मोहम्मद साहब परेशान हो गए। उन्होंने कहा, ऐ लोगो। यह याद रखो कि सारी मानव जाति केवल दो श्रेणियों में बंटी है। पहली धर्मनिष्ठ, खुदा से डरनेवाली, जो खुदा की दृष्टि में सम्मानित है। दूसरी जो उल्लंघनकारी, अत्याचारी, अपराधी, निर्दयी और कठोर है, जो खुदा की नजर में गिरी हुई है। संसार के सभी लोग एक ही आदमी की औलाद है। अल्लाह ने आदम को मिट्टी से पैदा किया था। इसकी सत्यता का प्रमाण पवित्र कुरआन में इन शब्दों में दिया गया है। ऐ लोगों। हमने तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया और तुम्हारी विभिन्न जातियां और वंश बनाए, ताकि तुम एक दूसरे को पहचानो। असल में अल्लाह की निगाह में तुममें सबसे अधिक सम्मानित वह है, जो अल्लाह से सबसे ज्यादा डरनेवाला है। मोहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को हमेशा रूप-रंग, जाति-नस्ल, ऊंच-नीच या किसी भी किस्म के भेदभाव से दूर रहने को कहा। इन उपदेशों से अरब प्रभावित हुए और उन्होंने उनका पूरी तरह पालन किया। उन्होंने इस्लाम अपनानेवाले गुलाम नीग्रो लोगों से अपनी बेटियां ब्याह कर उनसे सम्मानजनक संबंध बनाए।

७५६) जीवन में खुशी - एक बार एक लड़का किसी जंगल में लकड़ी लेने गया। घूमते-घूमते वह चिल्लाया तो उसे लगा कि वहां कहीं कोई दूसरा लड़का भी है और वह भी चिल्ला रहा है। उसने उससे कहा, इधर तो आओ। उधर से भी आवाज आई- इधर तो आओ। लड़के ने फिर कहा, कौन हो तुम? आवाज ने कहा- कौन हो तुम? लड़के ने उसे डांटा, तुम बड़े खराब हो, मुझे डरा रहे हो। सामने से भी यही बात दोहराई गई। यह सुनकर लड़का घबरा गया और डरकर अपने घर लौट आया। उसने अपनी मां को पूरी घटना सुनाई और बताया, मां, जंगल में वह लड़का हू-ब-हू मेरी नकल करता है। मेरी तरह चिल्लाता है। जो मैं कहता हूं, वही कहने लगता है। मैं अब जंगल में नहीं जाउंगा। उसकी मां समझ गई कि

माजरा क्या है? उसने बेटे से कहा, आज तुम वहीं जाकर उससे नम्रतापूर्वक बोलो। तुम ऐसा करोगे तो वह भी तुम्हारे साथ नम्रतापूर्वक व्यवहार करेगा। मां के समझाने पर वह लड़का फिर उसी जंगल में गया। वहां जाकर उसने कहा, तुम बहुत अच्छे लड़के हो। उधर से भी आवाज आई- तुम बहुत अच्छे लड़के हो। लड़के ने कहा, मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूं। उधर से भी यही आवाज आई। उसे सुनकर वह लड़का प्रसन्न हो गया। वह लड़का प्रतिध्वनि के संबंध में कुछ नहीं जानता था। शायद हम भी कम ही जानते हैं। मनुष्य का जीवन भी एक प्रतिध्वनि की तरह है। आप चाहते हैं कि लोग आपसे प्रेम करें तो आप भी उनसे प्रेम करें। जिससे भी मिलें, मुस्कराकर प्रेम से मिलें। जवाब प्रेमभरी मुस्कुराहट से ही मिलेगा। इस तरह जीवन में हर ओर खुशी ही नजर आएगी।

७५७) पतन का आरंभ - एक युवा तीरंदाज खुद को सबसे बड़ा धनुर्धर मानने लगा। जहां भी जाता, लोगों को मुकाबले की चुनौती देता और हराकर उनका खूब मजाक उड़ाता। एक बार उसने एक जैन गुरु को चुनौती दी। उन्होंने पहले तो उसे समझाना चाहा, लेकिन जब वह अड़ा रहा तो उन्होंने चुनौती स्वीकार कर ली। युवक ने पहले प्रयास में ही दूर रखे लक्ष्य के बीचोंबीच निशाना लगाया और लक्ष्य पर लगे पहले तीर को ही भेद डाला। इसके बाद वह दंभपूर्ण स्वर में बोला- क्या आप इसे बेहतर कर सकते हैं? जैन गुरु तनिक मुस्कराए और बोले- मेरे पीछे आओ। वे दोनों एक खाई के पास पहुंचे। युवक ने देखा कि दो पहाड़ियों के बीच लकड़ी का एक कामचलाऊ पुल बना था और वह उससे उसी पर जाने के लिए कह रहे थे। जैन गुरु पुल के बीचोंबीच पहुंचे और उन्होंने अपने धनुष पर तीर चढ़ाते हुए दूर एक पेड़ के तने पर सटीक निशाना लगाया। इसके बाद उन्होंने युवक से कहा- अब तुम भी निशाना लगाकर अपनी दक्षता सिद्ध करो। युवक डरते हुए डगमगाते कदमों के साथ पुल मे बीच में पहुंचा और निशाना लगाया। लेकिन तीर लक्ष्य के आस-पास भी नहीं पहुंचा। युवक निराश हो गया और उसने हार स्वीकार कर ली। तब जैन गुरु ने उसे समझाया- वत्स, तुमने तीर-धनुष पर तो नियंत्रण पा लिया है, पर तुम्हारा उस मन पर अब भी नियंत्रण नहीं है जो किसी भी परिस्थिति में लक्ष्य भेदने के लिए जरूरी है। जब तक सीखने की जिज्ञासा है, तब तक ज्ञान में वृद्धि होती है। अहंकार आते ही पतन आरंभ हो जाता है। युवक ने क्षमा मांगी और सदा सीखने व अपनी क्षमता पर घमंड न करने की सौगंध ली।

७५८) राष्ट्रगान का सम्मान - घटना जापान की है। वहां एक चोर एक अमीर के घर चोरी करने घुसा। सेठ सोया हुआ था। यह देखकर चोर ने सारा कीमती सामान एक बैग में भरा। तभी सेठ की नींद टूट गई। वह डरते-डरते दूसरे कमरे की ओर बढ़ा। वहां चोर को कीमती सामान बैग में भरते देकर सेठ की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। उस सेठ को समझ नहीं आ रहा था कि चोर को काबू कैसे करें। फोन भी उसी कमरे में था, जहां चोर सामान बटोर रहा था। तभी सेठ की नजर पलंग के पास रखे ग्रामोफोन पर जा पहुंची। उसके दिमाग ने तेजी से काम किया और उसने ग्रामोफोन पर जापान के राष्ट्र गान का रिकॉर्ड लगा दिया। चोर ने जब अपने देश के राष्ट्र गान की धुन सुनी तो वह फौरन सावधान की मुद्रा में खड़ा हो गया। चोर को उस मुद्रा में देख कर सेठ ने चोर के हाथ-पांव बांध दिए और पुलिस को फोन कर दिया। पुलिस ने आकर चोर को गिरफ्तार कर लिया। गवाही के लिए उस अमीर व्यक्ति को अदालत में बुलाया गया। अदालत में सेठ ने बताया कि किस प्रकार उसने राष्ट्र गान की धुन बजाकर चोर को पकड़ा था। अदालत के साथ-साथ वहां उपस्थित

लोग भी चोर का राष्ट्र प्रेम सुनकर दंग रह गए। चोर ने चोरी की अपनी मजबूरी बताई तो अदालत ने उसे बाइज्जत बरी कर दिया, लेकिन अमीर को दो साल की सजा सुना दी। अमीर हैरानी से बोला, पर मैंने क्या अपराध किया है? जज ने कहा, तुमने राष्ट्र गान का अपमान किया है। राष्ट्र गान के समय तुम सावधान की मुद्रा में खड़े न होकर चोर को बांध रहे थे। यह सुनकर सेठ ने अदालत से माफी मांगी।

७५९) नेक का बदला नेकी - एक लड़का अपनी पढ़ाई का खर्च जुटाने के लिए फेरी लगाकर घरों में जरूरत का सामान बेचता था। एक दिन वह तेज भूख के कारण व्याकुल हो गया और किसी घर से भोजन मांगने जा पहुंचा। दरवाजा एक लड़की ने खोला, लेकिन लड़के ने संकोचवश केवल एक गिलास पानी मांगा। लड़की समझदार थी, वह लड़के को देखकर ही समझ गई कि वह बहुत भूखा है। उसने उसे एक गिलास दूध पीने को दे दिया। लड़के ने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए दूध पी लिया और पूछा कि उसके बदले उसे कितने पैसे देने होंगे। लड़की ने कहा- कुछ नहीं। यह तो मेरा मानवीय दायित्व है। मां ने कहा है किसी की मदद के बदले पैसा नहीं लेना चाहिए। लड़के ने उससे धन्यवाद कहा और उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि संसार में अभी मानवता बची है। बड़ी होने पर उस लड़की को ऐसी गंभीर बीमारी हो गई जिसका इलाज स्थानीय अस्पताल में नहीं था। विशेषज्ञ चिकित्सक को बुलाना पड़ा। चिकित्सक को मरीज का विवरण मिला। उसे पढ़कर चिकित्सक को कुछ याद आ गया। वह तुरंत लड़की के इलाज के लिए पहुंच गया। उसने देखा कि सचमुच यह वही लड़की थी जिसने उसे कभी गिलास भर दूध पिलाया था। उसने मन लगाकर लड़की का इलाज शुरू कर दिया। बढ़िया इलाज और देखभाल से वह शीघ्र स्वस्थ हो गई। इलाज का बिल काफी ज्यादा था, लेकिन चिकित्सक ने उसके नीचे कृतज्ञता सहित लिखा- इस बिल का भुगतान काफी पहले एक गिलास दूध से किया जा चुका है। नीचे उसके हस्ताक्षर थे। यह देखकर उस लड़की के मुंह से निकला- नेकी कभी बेकार नहीं जाती।

७६०) उपदेश का समय - स्वामी विवेकानंद से मिलने दूर दूर से लोग आया करते थे। एक बार अपने समय के मशहूर लेखक और पत्रकार सखाराम गदेड़स्कर अपने दो मित्रों के साथ स्वामी जी से मिलने गए। उन दिनों पंजाब में जबर्दस्त अकाल पड़ा हुआ था। बातचीत के दौरान जैसे ही स्वामी जी को पता चला कि उनमें से एक पंजाब के निवासी हैं, उन्होंने बातचीत की दिशा ही बदल दी। उन्होंने अकाल-पीड़ितों के बारे में पूरी संजीदगी से चिंता प्रकट करते हुए, वहां के लिए किए जा रहे राहत कार्यों के बारे में उनसे देर तक हालचाल जाने। यह देखकर सखाराम को बड़ी हैरानी हुई। उन्होंने विनयपूर्वक स्वामी विवेकानंद से कहा- हम तो आपके पास इस उम्मीद से आए थे कि धर्म के विषय में आपसे उत्कृष्ट उपदेश सुनने को मिलेगा। लेकिन देखा कि आप तो हमारे साथ सामान्य विषयों की ही चर्चा में लगे रहे। हम लोग तो ज्ञान पाने की उम्मीद में यहां आए थे। यह सुनकर स्वामी जी क्षण-भर तो चुपचाप रहे, फिर बड़े गंभीर स्वर में बोले- देखो भाई, जब तक मेरे देश में एक भी छोटा बच्चा कहीं भूखा है, तब तक उसे खिलाना ही हमारा सच्चा धर्म है। इसके अलावा जो कुछ भी है, वह झूठा धर्म और ज्ञान है। कहीं देशवासी का पेट खाली हो, तो वह उपदेश का समय कैसे हो सकता है? उस समय तो वह निरा दंभ है। उस समय सबसे पहले उन्हें भोजन देने की कोशिश करनी चाहिए। यह सुनकर सखाराम को अपना धार्मिक होने का दंभ दिखावा-सा लगने लगा। उन्होंने कहा, आप ठीक कह रहे हैं। आपने उपदेश की

भाषा में भले ही नहीं कहा, लेकिन आपकी बातों से हमारी आंखें खुल गईं।

७६१) ऊपर उठने के लिए - एक बार अमेरिका के एक छोटे शहर में मेला लगा। वहां बहुत सारे दुकानदार अपना सामान बेचने के लिए आए हुए थे। उनमें रंग-बिरंगे गुब्बारे बेचनेवाला भी था। गुब्बारों में गैस भरी होने की वजह से वे आसमान में उड़े जा रहे थे। उनका एक सिरा दुकान के पास लगे एक खंभे से बंधा था। जैसे ही उसके गुब्बारों की बिक्री कम होने लगती, वह एक गुब्बारा खोलकर फौरन हवा में छोड़ देता। देखते-देखते गुब्बारा ऊपर उठता चला जाता। गुब्बारा ऊपर उड़ता देख मेले में आए बच्चे खूब उत्साह में आ जाते। कुछ ही देर में उसके पास गुब्बारे खरीदने के लिए बच्चों की भीड़ लग जाती। एक अश्वेत किशोर काफी देर से यह दृश्य बड़े ध्यान से देख रहा था। बड़ी हिम्मत जुटाकर वह गुब्बारेवाले के पास पहुंचा और बोला- सर, अगर आप इजाजत दें तो मैं आपसे एक सवाल पूछना चाहता हूं। गुब्बारेवाले ने दूसरे ही पल उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा, हां-हां, क्यों नहीं। बेधड़क होकर पूछो न। तुम क्या जानना चाहते हो? किशोर ने मासूमियत से पूछा, कुछ खास नहीं, बस यही जानना चाहता हूं कि क्या काले रंग का गुब्बारा भी आसमान में ऐसे ही उड़ेगा? उसका यह अनोखा सवाल सुनकर गुब्बारेवाला हैरान रह गया। उसकी आंखें नम हो उठीं। उसने बड़े प्रेम से किशोर को अपने पास की कुर्सी पर बैठाया और समझाते हुए कहा- देखो बेटा, गुब्बारा हो चाहे मनुष्य, उसके ऊपर उठने से उसके रंग का कोई संबंध कभी नहीं होता। ऊपर उठने के लिए तो उसके भीतर भरी चीज ही काम आती है। गुब्बारा गैस से उठता है और मनुष्य अपने हौसले से।

७६२) बुद्ध की अंतिम शिक्षा - भगवान बुद्ध जब मृत्यु शैया पर अंतिम सांसें गिन रहे थे, उन्होंने अपने शिष्य आनंद को बुलाया। उस दिन बुद्ध ने अपना अंतिम भोजन ग्रहण कर लिया था। इस भोजन को उन्होंने कुंडा नामक एक लोहार से भेंट के रूप में प्राप्त किया था। भोजन करने के बाद उनकी स्थिति गंभीर होती गई। बुद्ध ने अपने शिष्य आनंद को निर्देश दिया कि वह कुंडा को समझाए कि उसने कोई गलती नहीं की है। उन्होंने कहा कि यह भोजन तो अतुल्य है। तभी पास से किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। गौतम बुद्ध ने अपने नजदीक बैठे शिष्य आनंद से पूछा, आनंद, यह कौन रो रहा है। आनंद ने कहां, भंते, भद्रक आपके अंतिम दर्शन के लिए आया है। बुद्ध ने कहा, तो उसको मेरे पास बुला लो। बुद्ध के पास आते ही भद्रक फूट-फूट कर रोने लगा। उसने कहा, आप नहीं रहेंगे तो हमें ज्ञान का प्रकाश कौन दिखाएगा। बुद्ध ने भद्रक से कहा, प्रकाश तुम्हारे भीतर है, उसे बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं। अज्ञानी इसे देवालयों, तीर्थों, कंदराओं या गुफाओं में खोजने का प्रयत्न करते हैं। वे सभी अंत में निराश होते हैं। इसके विपरीत मन, वाणी और कर्म से एकनिष्ठ होकर जो साधना में निरंतर लगे रहते हैं उनका अंत:करण स्वयं दीप्त हो उठता है। इसलिए भद्रक अप्प दीपो भव- आप स्वयं दीपक बनो यही मेरा जीवन-दर्शन है। इसे मैं आजीवन प्रचारित करता रहा। भगवान बुद्ध का यह अंतिम उपदेश सुनकर भद्रक को समझ में आ गया कि अपना दीपक स्वयं बनने के लिए उसे क्या करना होगा। उसने उसी दिन से मन, वाणी, कर्म से एकनिष्ठ होकर साधना करने का मन बना लिया।

७६३) कर्त्तव्यपरायण सरदार पटेल - बहुत पहले गुजरात में एक प्रसिद्ध वकील थे। एक बार वे किसी व्यक्ति का एक मुकदमा लड़ रहे थे। इसी बीच गांव में उनकी पत्नी बहुत बीमार हो गई। उनके पास खबर भिजवाई गई तो वे तुरंत

अपने गांव चल दिए। वे पत्नी की सेवा करने गांव पहुंचे ही थे कि उन्हीं दिनों उनके मुकदमे की तारीख पड़ गई। एक तरफ उनकी पत्नी का खराब स्वास्थ्य था तो दूसरी ओर उनका मुकदमा। उन्हें असमंजस में पड़ा देख पत्नी ने कहा, मेरी चिंता आप बिलकुल न करें, आप मुकदमा लड़ने के लिए शहर जरूर चले जाएं। आपके वहां न रहने पर कहीं किसी बेकसुर को सजा न हो जाए। वकील साहब दुखी मन से शहर पहुंचे। कोर्ट में वह अपने मुवक्किल के पक्ष में जिरह करने खड़े हुए ही थे कि किसी ने उनको एक टेलीग्राम लाकर दिया। उन्होंने टेलीग्राम पढ़कर अपनी जेब में रख लिया और फिर अपनी बहस जारी रखी। अपने सबूतों के आधार पर उन्होंने अपने मुवक्किल को निर्दोष साबित कर दिया, जो कि वह था भी। सभी लोग वकील साहब को बधाई देने पहुंचे और उनसे पूछने लगे कि टेलीग्राम में क्या लिखा था? वकील साहब ने जब टेलीग्राम सबको दिखाया तो लोग अवाक रह गए। उसमें उनकी पत्नी की मृत्यु का दुखद समाचार था। लोगों ने कहा, आप अपनी बीमार पत्नी को छोड़कर मुकदमा लड़ने कैसे आ गए? वकील साहब बोले, आया उसी के आदेश से था, वह जानती थी कि बेकसूर को बचाना सबसे बड़ा धर्म होता है। वे वकील साहब और कोई नहीं सरदार वल्लभ भाई पटेल थे, जो अपनी इसी कर्त्तव्यपरायणता के कारण लौहपुरुष कहलाए।

७६४) क्रोध पर विजय - महात्मा आत्मानंद अपने शिष्यों को क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या से दूर कर देते थे। राजा मीरसिंह का एकमात्र पुत्र धीरज बेहद गुस्सेवाला था। वह उसे आत्मानंद के पास आश्रम में छोड़ आए। महात्मा ने राजा मीरसिंह से छह महीने बाद आने के लिए कहा। छह महीने बीत जाने के बाद राजा मीरसिंह महात्मा के पास आए। महात्मा बोले, आप युवराज को ले जा सकते हैं। इसने क्रोध पर काबू पाना सीख लिया है। राजा बहुत हैरान हुआ और वह युवराज को अपने साथ ले आया। युवराज को देखकर सभी हैरान थे क्योंकि उसने न सिर्फ क्रोध पर काबू पा लिया था अपितु लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि पर भी विजय पा ली थी। कुछ ही समय बाद युवराज धीरज के सद्गुणों की जय-जयकार पूरे राज्य में होने लगी। युवराज में ऐसा आकस्मिक परिवर्तन देखकर राजा एक दिन आश्रम पहुंचा और आत्मानंद से क्रोध व अन्य आवेगों पर युवराज द्वारा काबू पाने का रहस्य पूछा। राजा की बात सुनकर आत्मानंद बोले, महाराज, मैं अपने शिष्यों को क्रोध पर काबू पाने के लिए एक खेल खिलाता था। खेल में मैं उन्हें दूसरे पर क्रोध करने को कहता था और साथ ही यह भी कहता कि उन्हें अपना क्रोध किसी दूसरे को छुए बिना ही प्रदर्शित करना होगा। किसी ने क्रोधवश दूसरे को छू लिया तो वह हारा हुआ माना जाएगा और खेल से बाहर कर दिया जाएगा। इस खेल में सबको आनंद आने लगा और धीरे-धीरे उनमें असली क्रोध होने पर भी स्वत: काबू होने लगा। उन सभी के साथ नकली क्रोध को काबू करते-करते युवराज वास्तविक क्रोध पर भी काबू पाना सीख गए।

७६५) स्वाभिमान की रक्षा - एक बार मेवाड़ के राजा का एक चारण अकबर के दरबार में पहुंचा। बादशाह का अभिवादन करने से पहले उसने अपनी पगड़ी उतार दी। पगड़ी उतारकर अभिवादन करने से अकबर को क्रोध आ गया। लेकिन खुद को नियंत्रित करते हुए उन्होंने कहा, राजपूत राजा का चारण होने के कारण तुम्हें राजदरबार के नियम-कायदे की समझ तो होगी ही। तुम्हें पता होगा कि एक चारण को नंगे सिर बादशाह का अभिवादन नहीं करना चाहिए। फिर तुमने ऐसा क्यों किया? चारण बोला, जहांपनाह, गुस्ताखी माफ हो। मुझे दरबार के इस नियम का ज्ञान है कि एक चारण को

राजदरबार में अभिवादन करते समय पगड़ी नहीं उतारनी चाहिए। लेकिन मेरे सिर पर जो पगड़ी है, वह कोई कपड़े की मामूली पगड़ी नहीं है। अकबर ने पूछा, क्या इसमें हीरे-जवाहरात जड़े हैं कि सर झुकाते ही वे छिटक कर गुम हो जाएंगे। चारण ने कहा, हुजूर, यह सचमुच बहुमूल्य है। एक बार महाराणा प्रताप ने घास की रोटी खाने पर मजबूर होते हुए भी मुझे यह पगड़ी भेंट की थी। कहा था- इसकी लाज रखना। जंगलों की खाक छानने और घास की रोटियां खाने के बावजूद महाराणा को आपके सामने झुकाने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। मैं ऐसा करता तो उनके स्वाभिमान को चोट पहुंचती। एक चारण अपनी जान दे सकता है, लेकिन ऐसा नहीं कर सकता जिससे स्वामी का स्वाभिमान आहत हो। चारण की बात सुनकर अकबर ने कहा, मैं तुम्हारे स्वाभिमान को देखकर बहुत खूश हूं। उन्होंने उसे ढेर सारा इनाम देकर विदा किया।

७६६) आज पर ध्यान दें - एक बार की बात है। फ्रांस में विद्वानों ने नागरिकों से लेख आमंत्रित किए। सर्वश्रेष्ठ लेख के लिए पुरस्कार की घोषणा की गई थी। एक लेख नेपोलियन ने भी भेजा था। नेपोलियन के लेख को ही सर्वश्रेष्ठ लेख घोषित किया गया। कुछ समय बाद जब नेपोलियन सम्राट बन गए, तब वे इस बात को लगभग भूल चुके थे। नेपोलियन का एक मंत्री था टेलीरांत। उसे इस बात की जानकारी कहीं से मिल गई कि सम्राट नेपोलियन ने एक लेख लिखा था, जो पुरस्कृत हुआ था। तब उसने अपने एक विशेष व्यक्ति को भेजकर उस लेख की मूलप्रति मंगवा ली। एक दिन उसने उस मूलप्रति को सम्राट के सामने रखकर हंसते हुए पूछा, सम्राट इस लेख के लेखक को आप जानते हैं? नेपोलियन उस लेख को देखकर कुछ सोचने लगे। उनकी मुद्रा देख टेलीरांत ने सोचा कि सम्राट खुश होंगे और उसे पुरस्कार देंगे। कुछ देर सोचने के उपरांत सम्राट नेपोलियन ने उस प्रति को अपने हाथ में लिया और उसे लेकर कमरे में जल रही अंगीठी के पास गए। वह कुछ देर उसे देखते रहे और फिर अंगीठी में उस लेख को डाल दिया, जो जल गया। यह सब टेलीरांत की समझ में नहीं आया। उसने नेपोलियन से पूछा, सम्राट इस लेख को आपने क्यों जला दिया? नेपोलियन का जवाब था, यह लेख मेरे एक समय की उपलब्धि थी, लेकिन आज के लिए इसका कोई महत्व नहीं है। इसलिए मैंने इस लेख को जला दिया। टेलीरांत समझ गया कि देशकाल की परिस्थिति में चिंतन को नया रूप देते रहना चाहिए। ऐसा न हो कि हम पुरानी प्रशंसाओं में ही डूबे रहें।

७६७) कला की पहचान - घटना उस समय की है जब संगीतकार मार्तंड पंडित ओंकारनाथ ठाकुर की प्रसिद्धि चारों ओर फैल रही थी। कोई भी व्यक्ति उनके संपर्क में आने के बाद उनके संगीत की सराहना किए बिना नहीं रह पाता था। ठाकुर जी भी अपनी इस कला का पूरा सम्मान करते थे और दिन-रात कड़ी मेहनत करते थे। एक बार सन १९९३ में वे इंग्लैंड गए। वहां जब उन्होंने अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया तो उनके संगीत की धूम मच गई। लोग उनकी कला के कायल होने लगे। ऐसे में ही उनके एक अंग्रेज प्रशंसक ने उनसे कहा, आपका संगीत श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देता है। क्यों न आप अपनी इस कला को विश्व के चारों ओर बिखेर दें। प्रसिद्धि पाने के लिए यदि आप इस बार कार्यक्रम में जॉर्ज पंचम को पत्र लिखकर उनसे संगीत कार्यक्रम में उपस्थित होने की प्रार्थना करें तो वे अवश्य आएंगे। इससे आपका कार्यक्रम सफल हो जाएगा और साथ ही जॉर्ज पंचम आपके संगीत से प्रसन्न होकर आपको रायबहादुर की उपाधि से अलंकृत भी कर देंगे। उस अंग्रेज की यह बात सुनकर ओंकारनाथ ठाकुर बोले, क्या आप मुझे चाटुकार समझते हैं कि मैं

प्रशंसा और पदवी पाने के लिए जॉर्ज पंचम के दरबार में अर्जी लगाऊंगा। मैं संगीत की साधना सरस्वती की उपासना के रूप में करता हूं। विदेशी शासन की पदवी या पुरस्कार की मन में कभी चाह नहीं रही। असल कलाकार वही है जो पुरस्कार या प्रसिद्धि की चाह नहीं रखता। कला तो अंतर्मन से उपजती है। अंग्रेज ओंकारनाथ ठाकुर के कला के प्रति समर्पण भाव को देखकर नतमस्तक हो गया। उसे सच्चे कलाकार की पहचान हो गई थी।

७६८) प्रेमचंद की गाय - उन दिनों हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार मुंशी प्रेमचंद गोरखपुर में अध्यापक थे। उन्होंने अपने यहां एक गाय पाल रखी थी। एक दिन चरते-चरते उनकी गाय इलाके के अंग्रेज मैजिस्ट्रेट के आवास के बाहर वाले बगीचे में घुस गई। अभी वह वहां जाकर खड़ी ही हुई थी कि मैजिस्ट्रेट गुस्से में बंदूक लेकर बाहर निकल आया। उसने आग बबूला होकर बंदूक में गोली भी भर ली। उसी समय अपनी गाय को खोजते प्रेमचंद भी वहां पहुंच गए। उन्हें देखते ही मैजिस्ट्रेट ने गुस्से में कहा, तुम्हारी इतनी हिम्मत की तुमने अपने जानवर को मेरे बगीचे में घुसा दिया। मैं अभी इसे गोली मार देता हूं। तभी जाकर तुम काले लोगों को यह बात समझ में आएगी कि हम लोग यहां हुकूमत करने आए हैं। देखते-देखते उसने भरी बंदूक गाय की ओर तान भी दी। प्रेमचंद ने मैजिस्ट्रेट को भरसक नरमी से समझाने की कोशिश की, महोदय, इस बार गाय पर मेहरबानी कर दीजिए। इसके बाद फिर कभी यह उधर नहीं आएगी। फिलहाल साहब, इसे मुझे यहां से ले जाने दें। दरअसल, यह गलती से यहां आ गई है। फिर भी मैजिस्ट्रेट झल्लाकर यही कहता रहा, तुम काला आदमी एकदम ईडियट हो। हम इस गाय को गोली मार देगा। उसने बंदूक से गाय को फिर निशाना बनाना चाहा। इस पर प्रेमचंद झट से गाय और मैजिस्ट्रेट के बीच में आकर खड़े हो गए और गुस्से में तमतमाकर बोले, तो फिर चला गोली। देखूं तुझमें कितनी हिम्मत है। ले, पहले मुझे गोली मार। यह सुनकर अंग्रेज की सारी हेकड़ी हिरन हो गई। वह बंदूक की नली नीची कर बड़बड़ करता हुआ अपने बंगले के भीतर चला गया।

७६९) संकल्प की शक्ति - खेल की कक्षा शुरू हुई तो एह दुबली पतली लड़की किसी तरह अपनी जगह से उठी। वह शिक्षक से ओलिंपिक रेकॉर्डस के बारे में सवाल पूछने लगी। इस पर सभी छात्र हंस पड़े। शिक्षक़ ने व्यंग्य किया- तुम खेलों के बारे में जानकर क्या करोगी। अपने ऊपर कभी नजर डाली है। तुम तो ठीक से खड़ी भी नहीं हो सकती, फिर ओलिंपिक से तुम्हें क्या मतलब? तुम्हें कौन सा खेलों में भाग लेना है जो यह सब जानना चाहती हो। रुआंसी लड़की कुछ भी कह न सकी। सारी क्लास उस पर देर तक हंसती रही। अगले दिन जब खेल पीरियड में उसे बाकी बच्चों से अलग बिठाया गया तो उसने कुछ सोचकर बैसाखियां संभालीं और दृढ़ निश्चय के साथ बोली- सर याद रखिएगा। अगर लगन सच्ची और इरादे बुलंद हो तो सब कुछ संभव है। आप देख लेना, एक दिन यही लड़की सारी दुनिया को हवा से बातें करके दिखाएगी। उसकी इस बात पर भी समवेत ठहाका गूंज उठा। उस वक्त सबने इसे मजाक के रूप में लिया। लेकिन वह लड़की तेज चलने के अभ्यास में जुट गई। वह अच्छी और पौष्टिक खुराक लेने लगी, फिर वह कुछ दिनों में दौड़ने भी लगी। कुछ दिनों के बाद उसने छोटी-मोटी दौड़ में भाग लेना भी शुरू कर दिया। उसे दौड़ते देख लोग दांतों तले उंगली दबा लेते थे। तभी कई लोग उसकी मदद के लिए आगे आए। सबने उसका उत्साह बढ़ाया। उसके हौसले बुलंद होने लगे। फिर उसने १९६० के ओलिंपिक में हिस्सा लिया और तीन स्वर्ण पदक जीतकर सबको हतप्रभ कर दिया।

ओलिंपिक में इतिहास रचनेवाली वह थी अमेरिकी धाविका विल्मा रुडोल्फ।

७७०) ऐसा होता है सबसे अच्छा समय - एक पिता ने अपने बेटों को बुलाया और पूछा कि बताओ कौन सा मौसम सबसे अच्छा है। सबसे बड़ा बेटा बोला कि पिताजी मेरी नजर में तो सर्दी का मौसम सबसे अच्छा है, न पसीना आता है, न लू चलती है, धूल भरी आंधियां। दूसरे बेटे ने कहा कि नहीं मेरी नजर में गर्मी का मौसम सबसे अच्छा होता है, सर्दी में ढेर सारे कपड़े पहनने पड़ते हैं, इतने में तीसरा बेटा बोला कि मुझे तो बरसात का मौसम सबसे अच्छा लगता है न ज्यादा गर्मी और न ज्यादा सर्दी चारों ओर बादल और बारिश की नन्हीं फुहारे हर किसी का मन मोहती हैं। फिर उसने अपने सबसे छोटे बेटे से पूछा कि तुम बताओ कि सबसे अच्छा मौसम कौनसा है। उसने जवाब दिया जो सुकून से गुजर जाए वही मौसम सबसे अच्छा है।

७७१) खुदा का साथ - एक बार उमर खय्याम अपने एक शिष्य के साथ बीहड़ से गुजर रहे थे। नमाज पढ़ने का समय हुआ तो दोनों ने नमाज पढ़ने के लए ठीक-ठाक जगह देखनी शुरू कर दी। लेकिन तभी उन्हें कहीं दूर से आती शेर की आवाज सुनाई दी। उसे सुनकर शिष्य बेहद घबरा गया और तुरंत नजदीक के एक पेड़ पर चढ़ गया। लेकिन खय्याम तो अपने में डूबे थे। उन्होंने जैसे वह आवाज सुनी ही नहीं थी। वह एकाग्र होकर नमाज पढ़ने में लग गए। कुछ देर बाद शेर सचमुच वहां आ पहुंचा। लेकिन आश्चर्य, वह कुछ देर रुककर चुपचाप आगे निकल गया। उसके चले जाने के बाद शिष्य पेड़ से नीचे उतर आया। इस तरह नमाज खत्म होने के बाद दोनों आगे बढ़े। थोड़ी देर बाद जब उमर खय्याम को एक मच्छर ने काटा, तो उसे मारने के लिए उन्होंने अपने गाल पर जोर से चपत लगाई। यह देख वह शिष्य बोला, गुरुदेव अभी अभी जब शेर आपके करीब आया था, तब आप बिल्कुल नहीं घबराए, लेकिन एक मच्छर के काटे जाने पर आपको इतना गुस्सा आ गया। खय्याम ने उत्तर दिया, तुम कहते तो ठीक हो, लेकिन यह भूल रहे हो कि जब शेर आया था तब मैं खुदा के साथ था, जबकि मच्छर काटे जाने के समय मैं एक इंसान के साथ था। यही वजह है कि मुझे शेर से डर नहीं लगा और मैं एक मच्छर से घबरा गया। इंसान भगवान के साथ हो तो हमेशा सुरक्षित रहता है। जबकि मनुष्य के साथ उसे कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। शिष्य समझ गया कि खुदा के साथ का असल अर्थ क्या है। उससे इंसान की हिम्मत बढ़ जाती है।

७७२) निष्काम सेवा की सीख - एक स्वामीजी प्रतिदिन अपने आश्रम में वेदांत पर प्रवचन दिया करते थे। वहां प्रतिदिन एक खोमचेवाला भी आया करता था। एक दिन स्वामीजी ने कहा, परमात्मा हमसे कोई दूर थोड़े ही है। उसे तो हम तत्काल अनुभव कर सकते हैं। यह सुनकर खोमचेवाला स्वामीजी के पास पहुंचा और बोला, महाराज, मैं प्रतिदिन आपके प्रवचन सुनता हूं और सत्य पर आधारित जीवन बिताता हूं। फिर मुझे परमात्मा की अनुभूति क्यों नहीं होती? स्वामीजी ने उससे कहा, तुम अपने भीतर झांको। कोई बाधा होगी, जिसके हटते ही तुम्हें ईश्वर का अनुभव हो जाएगा। बात खोमचेवाले के मन में बैठ गई। अगले दिन वह ठेले के पास खड़ा था। तभी उसने देखा तेज धूप के चलते सड़क पर एक बूढ़ा अचानक चक्कर खाकर गिर पड़ा। खोमचेवाला दौड़कर उसके पास गया और उसे उठाकर पेड़ की छांव में लाया। होश में आने पर उसे ठंडा पानी पिलाया। वह बुजुर्ग व्यक्ति अब काफी राहत महसूस कर रहा था। वह समझ गया कि यह खोमचेवाले की सेवा का ही नतीजा है। वह कुछ कह तो नहीं सका, पर उसकी आंखों से आशीर्वाद रूपी जो अश्रु

बहे, उसे अनुभव कर खोमचेवाला कृतार्थ हो गया। इससे उसे अपार शांति मिली। जिस अनुभव की उसे तलाश थी, वह उसे प्राप्त हो चुका था। उसने स्वामीजी के पास जाकर सारा वृत्तांत सुनाया। स्वामीजी बोले, तुमने अहंकार त्यागकर निष्काम भाव से एक जीव की सेवा की, उससे तुम्हारी बाधा हट गई और तुम्हें परमात्मा का अनुभव हुआ। यदि हम सब कुछ त्यागकर निष्काम भाव से सेवा कर सकें, तो हमें अलौकिक आनंद की अनुभूति हो सकती है।

७७३) राजा भोज का सपना - एक दिन राजा भोज को स्वप्न में एक अत्यंत तेजस्वी व्यक्ति के दर्शन हुए। भोज ने उन्हें प्रणाम किया और पूछा- महात्मन, आप कौन हैं? उस व्यक्ति ने कहा- राजन्, मैं सत्य हूं और तुम्हें तुम्हारे कार्यों का वास्तविक रूप दिखाने आया हूं। मेरे पीछे आओ और अपने कार्यों की वास्तविकता देखो। राजा भोज उसके पीछे चल दिए। वह बहुत दान, पुण्य, यज्ञ, व्रत इत्यादि करते थे। उन्होंने अनेक कुए, तालाब, बावड़ियां, मंदिर, बाग-बगीचे आदि भी बनवाए थे। इन कार्यों के कारण राजा के मन में अभिमान आ गया था। सत्य राजा भोज को अपने साथ उनकी कृतियों के पास ले गया। वहां पहुंचकर जैसे ही सत्य ने पेड़ों को छुआ, वे सब एक-एक कर सूख गए। बगीचे बंजर भूमि में बदल गए। यह देखकर राजा भोज चकित रह गए। इसके बाद वे दोनों मंदिर पहुंचे। सत्य ने जैसे ही मंदिर को छुआ, वह खंडहर में बदल गया। इसी तरह सत्य ने राजा द्वारा बनाए गए स्थानों और चीजों को ज्यों ही छुआ, वे सब राख हो गए। राजा यह देखकर हैरान हो गए और पूछा- महात्मन, क्या मेरे द्वारा किए गए कृत्यों की कोई महत्ता, कोई मोल नहीं? उत्तर मिला- राजन्, यश की इच्छा से जो कार्य किए जाते हैं, उनसे केवल अहंकार की पुष्टि होती है, धर्म का निर्वहन नहीं। नि:स्वार्थ होकर कर्त्तव्य भाव से जो कार्य किए जाते हैं, उन्हीं का फल पुण्य के रूप मिलता है। इतना कहकर सत्य अदृश्य हो गया। निद्रा टूटने पर राजा भोज सोच में पड़ गए। उसी दिन से उन्होंने सच्ची भावना से कर्म करना प्रारंभ किया। उसके बल पर वे न सिर्फ यश-कीर्ति के अधिकारी बने, उन्होंने बहुत पुण्य भी कमाया।

७७४) बुढ़िया की सीख - उन दिनों छत्रपति शिवाजी मुगलों के विरुद्ध छापामार युद्ध लड़ रहे थे। एक रात वह थके-मांदे एक बुढ़िया की झोंपड़ी में जा पहुंचे। वहां पहुंचते ही उन्होंने बुढ़िया से कुछ खाने के लिए मांगा। बुढ़िया के घर में उस समय थोड़ा चावल बचा हुआ था। उसने फौरन शिवाजी के लिए प्रेमपूर्वक भात पकाया और परोस दिया। शिवाजी को बहुत तेज भूख लगी हुई थी। झट से भात खाने की आतुरता में उनकी उंगलियां जल गईं। हाथ की जलन शांत करने के लिए वह फूंक मारने लगे। उन्हें ऐसा करता देख बुढ़िया ने उनके चेहरे की ओर गौर से देखा और बोली, सिपाही, तेरी सूरत शिवाजी जैसी लगती है, साथ ही लगता है कि तू उसी की तरह मूर्ख भी है। बुढ़िया की यह बात सुनकर शिवाजी स्तब्ध रह गए। उन्होंने बुढ़िया से पूछा- आप जरा शिवाजी की मूर्खता के साथ ही मेरी भी कोई मूर्खता तो बताएं। बुढ़िया ने उत्तर दिया, तूने किनारे-किनारे से थोड़ा-थोड़ा ठंडा भात खाने की बजाय बीच के गरम भात में हाथ डाला और अपनी उंगलियां जला लीं। ठीक यही मूर्खता शिवाजी करता है। वह दूर किनारों पर बसे छोटे-मोटे किलों को आसानी से जीतते हुए शक्ति बढ़ाने की बजाय बड़े किलों पर धावा बोल देता है और फिर हार जाता है। शिवाजी को अपनी रणनीति की विफलता का कारण समझ में आ गया। उन्होंने बुढ़िया की सीख मान ली और पहले छोटे-छोटे लक्ष्य बनाए। उन्हें पूरा करने की रणनीति अपनाई। वह सफल रहे और उनकी शक्ति बढ़ती गई। अंतत: वह बड़ी विजय पाने में भी समर्थ हुए। उस बुढ़िया की बात सही साबित हुई।

७७५) मन की शांति - किसी नगर में एक विद्वान साधु रहता था। लोग उसके पास अपनी समस्याएं लेकर आते और वहां से प्रसन्न होकर लौटते। एक दिन एक सेठ साधु के पास आया और बोला, महाराज, मेरे पास सब कुछ है, फिर भी मन शांत नहीं रहता। मैं क्या करूं? साधु कुछ न बोला और उठकर चल दिया। सेठ भी पीछे-पीछे चल पड़ा। आश्रम के एक खाली कोने में जाकर साधु ने वहां आग जलाई और धीरे-धीरे कर उस आग में एक-एक लकड़ी डालता रहा। हर लकड़ी के साथ आग की लौ तेज होती रही। कुछ देर बाद वह वहां से उठकर वापस अपनी जगह आकर चुपचाप बैठ गया। सेठ भी साधु के पास आकर बैठ गया। किंतु जब साधु ने उससे कुछ भी न कहा तो सेठ हैरान होकर बोला, महाराज, आपने मेरी समस्या का समाधान तो किया नहीं। सेठ की बात सुनकर साधु मुस्कराते हुए बोला, मैं इतनी देर से तुम्हारी समस्या का समाधान ही बता रहा था। शायद तुम समझे नहीं। देखो, हर व्यक्ति के अंदर आग होती है। उसमें प्यार की आहुति डालें तो वह मन को शांति और आनंद देती है। यदि उसमें दिन रात काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद की लकड़ियां डाली जाती रहें तो वह मन में अशांति उत्पन्न करती हैं, आग को और भड़काती हैं। जब तक तुम अशांति फैलानेवाले इन तत्वों को आग में डालना बंद नहीं करोगे, तब तक तुम्हारा मन शांत नहीं होगा। यह सुनकर सेठ की आंखें खुल गईं। वह प्रसन्न मन से साधु को नमस्कार कर अपने घर लौट आया। उसने भविष्य में अपने अंदर की आग में प्यार, करुणा और परोपकार की आहुति डालने का संकल्प कर लिया।

७७६) आसान रास्ता - एक बार एक डाकू गुरु नानक के पास गया और उनके चरणों में गिरकर बोला- मैं अपने जीवन से परेशान हो गया हूं। जाने कितनों को मैंने लूटकर दुखी किया है। मुझे कोई रास्ता बताइए ताकि मैं इस बुराई से बच सकूं। गुरु नानक ने बड़े प्रेम से कहा, यदि तुम बुराई करना छोड़ दो तो बुराई से बच जाओगे। गुरु नानक की बात सुनकर डाकू बोला- अच्छी बात है, मैं कोशिश करूंगा। यह कहकर वह वापस चला गया। कुछ दिन बीतने के बाद वह फिर उनके पास लौट आया और बोला- मैंने बुराई छोड़ने की बहुत कोशिश की, लेकिन छोड़ नहीं पाया। अपनी आदत से मैं लाचार हूं। मुझे कोई अन्य उपाय बताइए। गुरुजी बोले- अच्छा, ऐसा करो कि तुम्हारे मन में जो भी बात उठे, उसे कर डालो, लेकिन रोज-रोज दूसरे लोगों से कह दो। डाकू को बड़ी खुशी हुई कि इतने बड़े संत ने जो मन में आए, सो कर डालने की आज्ञा दे दी। अब मैं बेधड़क डाका डालूंगा और दूसरों से कह दूंगा। यह तो बहुत आसान है। वह खुशी-खुशी उनके चरण छूकर घर लौट गया। कुछ दिनों बाद डाकू फिर उनके पास जा पहुंचा। गुरु नानक ने पूछा- अब तुम्हारा क्या हाल है? डाकू बोला- गुरुजी, आपने मुझे जो उपाय बताया था, मैंने उसे बहुत आसान समझा था, लेकिन वह तो निकला बड़ा मुश्किल। बुरा काम करना जितना मुश्किल है तो उससें कहीं अधिक मुश्किल है- दूसरों के सामने उसे कह पाना। इस काम में बहुत ज्यादा कष्ट होता है। इतना कहकर डाकू चुप हो गया और फिर बोला- गुरुजी इसलिए अब दोनों में से मैंने आसान रास्ता चुन लिया है। मैंने डाका डालना ही छोड़ दिया है। नानक मुस्करा दिए।

७७७) एकाग्रता का रहस्य - विवेकानंद और जर्मनी के संस्कृत विद्वान पाल डायसन चर्चा कर रहे थे। तभी डायसन को किसी काम से बाहर जाना पड़ा। विवेकानंद पास रखा कविताओं का संकलन पढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद डायसन लौट आए। विवेकानंद पढ़ने में इस कदर खोए थे कि डायसन के लौटने का उन्हें पता ही न चला। लेकिन डायसन को लगा कि

विवेकानंद जान-बूझकर नजरअंदाज कर रहे हैं। पूरी किताब पढ़ने के बाद जब विवेकानंद ने गर्दन उठाई तो डायसन को इंतजार करता पाया। वे बोले, क्षमा कीजिएगा, मैं पढ़ रहा था। इसलिए आप कब आए, पता ही नहीं चला। विवेकानंद द्वारा माफी मांगने के बावजूद डायसन का मलाल खत्म नहीं हुआ। विवेकानंद भी उनके मन का भाव जान गए। उन्हें इससे अत्यंत दुख हुआ। डायसन को यकीन दिलाने के लिए वे किताब की कुछ कविताएं सुनाने लगे। लेकिन इसका उल्टा ही असर हुआ। कविता की पंक्तियां सुनने के बाद डायसन ने कहा, लगता है आपने यह किताब पहले भी पढ़ी है। डायसन सोच रहे थे कि पूरे २०० पन्नों की किताब कोई व्यक्ति इतने कम समय में कैसे पढ़ सकता है। वे बोले, किताब की सारी कविताएं आधे घंटे में याद हो जाना तो मुमकिन नहीं है। इस पर विवेकानंद ने गंभीरतापूर्वक कहा, मिस्टर डायसन, आपको एक बात बताऊं, जीवन में सबसे महत्वपूर्ण है- एकाग्रता। हमारे काम करने में एकाग्रता जितनी अधिक होगी, हमारा समय उतना ही कम लगेगा और काम का परिणाम उतना ज्यादा होगा। विवेकानंद की बात सुनकर डायसन समझ गए कि जो वह सोच रहे थे, वह ठीक नहीं था।

७७८) त्याग में ही है सुख - एक दिन महात्मा बुद्धके पास सम्राट श्रोणिक आए और उनसे पूछने लगे- हमारे राजकुमार को हर तरह की सुविधाएं मिली हैं। बड़े आवास में रहते हैं। सेवकों की पूरी फौज है। फिर भी, वे प्रसन्न नहीं रहते। दूसरी तरफ आपके ये भिक्षु हैं। ये पदयात्रा करते हैं। जैसा मिल जाता है, खा लेते हैं। फिर भी, इनके चेहरे पर हमेशा प्रसन्नता बनी रहती है। इसका कारण क्या है? बुद्ध ने उत्तर दिया, प्रसन्नता खोजनी हो तो जिसके पास कुछ भी न हो, उसमें खोजो। जिसने संकल्प करके सब कुछ छोड़ दिया, वही प्रसन्न रह सकता है। भिक्षुक कभी प्रसन्न नहीं होगा, क्योंकि उसने छोड़ा नहीं है। वह तो अभाव में ही जीवन जी रहा है। अभाव का जीवन जीनेवाला कभी प्रसन्न नहीं रह सकता। चिंताएं हर क्षण घेरे रहती हैं। जिसने जान-बूझकर छोड़ा है, वह प्रसन्न रह सकता है। दो बातें हैं- एक छोड़ना और एक छूटना। जिसे प्राप्त नहीं है, वह त्यागी नहीं। त्यागी वह है जो स्वतंत्र मन से त्याग कर दे। साधन संपन्न व्यक्ति भी प्रसन्न नहीं रह सकता। उसे संपत्ति की सुरक्षा की चिंता सताती है। वह हमेशा भयभीत रहता है। अभय वही हो सकता है जिसने स्वेच्छा से त्याग किया है। श्रोणिक को अपनी जिज्ञासा का समाधान मिल गया। ऐसा था महात्मा बुद्ध का ज्ञान और आमजन को उनका त्याग का संदेश। हालांकि वह जीवन में मध्यम मार्ग के पक्षधर थे, किंतु वह मानते थे कि बिना त्याग के व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता। यदि अभाव है तब भी चिंता है और यदि जरूरत से बहुत ज्यादा है तो भी उसकी सुरक्षा की चिंता है।

७७९) सर्वश्रेष्ठ राजा - एक बार महाराज जनक के राज्य में किसी नागरिक से कोई अपराध हो गया। जनक ने उसे राज्य से निष्कासित होने का दंड दे दिया। नागरिक ने पूछा, महाराज, आप यह बता दें कि आपका राज्य कहां तक है, ताकि मैं उससे बाहर निकल सकूं। यह सुनकर राजा जनक सोच में पड़ गए कि आखिर उनके राज्य की सीमा है कहां। पहले तो उन्हें संपूर्ण पृथ्वी पर अपना अधिकार प्रतीत हुआ और फिर केवल मिथिलानगरी पर। आत्मज्ञान के झोंके में वह अधिकार घटकर प्रजा तक और फिर उनके शरीर तक सीमित हो गया। अंत में उन्हें अपने शरीर पर भी अधिकार का भान नहीं हुआ। वे बोले, आप जहां चाहें रहें, मेरा अधिकार कहीं नहीं है। नागरिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, इतनी

बड़ी पृथ्वी के अधिकारी होते हुए भी आप सभी वस्तुओं के प्रति कैसे तटस्थ हो गए? राजा जनक बोले, संसार के सभी पदार्थ नश्वर हैं। शास्त्रों के अनुसार न तो कोई अधिकारी सिद्ध होता है और न कोई अधिकार योग्य वस्तु ही है। अत: मैं किसे अपने अधिकार में समझूं? जहां तक पृथ्वी का अधिकारी समझने की बात है, मैं स्वयं के लिए कुछ नहीं करता। जो भी करता हूं, वह देवता, अपने पितर और अतिथि सेवा के लिए करता हूं। इसलिए पृथ्वी, जल, वायु और प्रकाश पर मेरा अधिकार कैसे हुआ? राजा जनक के मुख से यह बात सुनते ही नागरिक ने अपना चोला बदल लिया और उनसे बोला, महाराज, मैं धर्म हूं। आपकी परीक्षा लेने के लिए ही सामान्य नागरिक के वेश में आपके राज्य में वास कर रहा था। आपके विचार सुनकर अब मैं तय कर चुका हूं कि इस धरती पर आप ही सर्वश्रेष्ठ राजा हैं।

७८०) जीवन की सही दिशा - पांच छह साल का एक लड़का एक दिन अपने साथियों के साथ आम के बगीचे में चला गया। वहां सभी बच्चे आम तोड़ने लगे। लेकिन वह लड़का चुपचाप एक कोने में खड़ा रहा। साथियों के बहुत उकसाने पर भी उसने आम तो नहीं तोड़े, लेकिन इसी बीच गुलाब के पौधे पर खिले एक सुंदर फूल पर उसकी दृष्टि पड़ी। गुलाब का वह बड़ा फूल देखकर उसका मन ललचा उठा। उसने चुपचाप वह फूल तोड़ लिया। ठीक उसी समय बगीचे का माली वहीं आ धमका। उसे देखते ही सब लड़के उड़न छू हो गए। लेकिन वह घबराहट में वहीं खड़ा रह गया। माली ने उसे देखते ही पकड़ लिया और पूछा, बता, कहां है तेरा घर। चल जरा मैं तेरे बाबू जी से तेरी यह करतूत बताकर आता हूं। यह सुनकर लड़का मायूस हो गया और सहमते हुए धीमे स्वर में कहा, मेरे पिताजी नहीं हैं। लड़के का भोला-भाला चेहरा और सरल आंखें देखकर माली बड़ा प्रभावित हुआ। उसने उसे प्यार से समझाया, फिर तो तुम्हें ऐसे काम बिल्कुल नहीं करने चाहिए। क्योंकि तुम्हें तो पिटाई से बचानेवाला भी कोई नहीं है। कभी कोई चीज अच्छी लगे तो उसके मालिक से मांग लेनी चाहिए। इस तरह लेना तो चोरी कहलाता है। लड़के को लगा जैसे माली के रूप में उसके जीवन को सही दिशा बतानेवाला कोई गुरु मिल गया हो। उसने तभी अच्छा मनुष्य बनने का संकल्प कर लिया। माली की बात को उसने ऐसे गांठ बांध लिया कि उसका जीवन एक मिसाल बन गया। यह लड़का लाल बहादुर शास्त्री था, जो आगे चलकर अपनी सच्चाई, ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठता के बल पर देश का प्रधानममंत्री बना।

७८१) कलाकार की प्रशंसा - एक प्रसिद्ध चित्रकार ने अपने पुत्र को चित्रकला सिखाई। उसका पुत्र इस कला में जल्द ही पारंगत हो गया। शीघ्र ही वह सुंदर चित्र बनाने लगा। लेकिन चित्रकार पिता, अपने पुत्र द्वारा बनाए गए चित्रों में कोई न कोई त्रुटि जरूर निकाल देता। वह कभी खुले हृदय से अपने पुत्र की प्रशंसा न करता। लेकिन, दूसरे लोग चित्रकार के बेटे के चित्रों की खूब सराहना करते थे। उसके बनाए हुए चित्रों की मांग बढ़ने लगी। फिर भी उसके पिता के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया। एक दिन उसके पुत्र को एक युक्ति सूझी। उसने एक आकर्षक चित्र बनाया और अपने एक मित्र द्वारा उसे अपने पिता के पास भिजवाया। उसके पिता ने सोचा कि यह चित्र उसी मित्र का बनाया हुआ है। उसने उसकी खूब प्रशंसा की। तभी एक कोने में छिपा उसका पुत्र निकल आया और बोला, पिताजी, यह चित्र मैंने बनाया है। अंतत: मैंने वह चित्र बना ही दिया जिसमें आप कोई कमी न निकाल सकें। पिता ने कहा, बेटा, एक बात गांठ बांध लो। अभिमान उन्नति के सभी मार्ग बंद कर देता है। आज तक मैंने तुम्हारी प्रशंसा नहीं की। सदा तुम्हारे चित्रों में कमियां

निकालता रहा, इसीलिए तुम आज तक अच्छे चित्र बनाते रहे। अगर मैं तुम्हें एक बार भी कह देता कि तुमने बहुत अच्छा चित्र बनाया है, तो शायद तुम चित्र बनाने से पहले जागरूक नहीं रहते। तुम्हें लगता कि तुम पूर्णता प्राप्त कर चुके हो, जबकि कला के क्षेत्र में पूर्णता की कोई सीमा ही नहीं होती। मैं तो इस उम्र में भी अपने को पूर्ण नहीं मानता। इसलिए भविष्य में सावधान रहना। यह सुनकर पुत्र लज्जित हो गया।

७८२) मेहनत कभी बेकार नहीं जाती - महान वैज्ञानिक थोमस एडिसन एक बहुत ही जुझारू और मेहनती प्रवृत्ति के इन्सान थे। बचपन में वो पढ़ने गए तो उन्हें यह कहकर निकाल दिया के यह बालक मंद बुद्धि का है। उन्हें बचपन से ही सुनने में तकलीफ होती थी, परन्तु उसी थॉमस एडिसन ने कई ऐसे महत्वपूर्ण आविष्कार किए जिनमें से बिजली का बल्ब उनका प्रमुख आविष्कार था। थोमस एडिसन ने बिजली का बल्ब बनाने के लिए हजारों की संख्या में प्रयोग किए थे तब जाकर उन्हें बल्ब बनाने में सफलता हासिल हुई थी। एक बार जब थोमस बल्ब बनाने के लिए बार-बार बल्ब पर प्रयोग किए जा रहे थे, तभी एक आदमी ने थोमस से पूछा- आप इस बल्ब पर करीब १००० बार प्रयोग कर चुके हैं और सभी प्रयोगों में आप लगभग असफल रहे हैं। आपकी सारी मेहनत बेकार चली गई। क्या आपको इसका अफसोस नहीं हुआ? एडिसन का जवाब था- मैं नहीं मानता के मेरे एक हजार प्रयोग असफल रहे हैं। मेरी मेहनत बेकार नहीं गई है क्योंकि मैंने इतने सारे प्रयोग कर यह पता लगाया है कि एक हजार तरीकों से बल्ब नहीं बनाया जा सकता। मेरा हर प्रयोग बल्ब बनाने की प्रक्रिया में आता है और मैं अपने हर एक प्रयास के साथ एक कदम आगे बढ़ाता हूं। यदि कोई और व्यक्ति होता तो वो जल्द ही हार मान लेता परन्तु थॉमस एडिसन अपने काम में लगातार लगे रहे, उन्होंने हार नहीं मानी। अंत में एडिसन की मेहनत रंग लायी और उन्होंने बल्ब की खोज कर पूरे संसार को रोशन कर दिया। एडिसन का मानना था कि हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है हार मान लेना। सफलता हासिल करने का सबसे अच्छा तरीका है। हमेशा एक और बार प्रयास करना। क्योंकि जब आप असफल होते हो और उस काम को वहीं छोड़ देते हो तो उस समय आप सफलता के बहुत नजदीक होते हो। इस तरह जीवन भर सकारात्मक दृष्टि से थॉमस ने कठोर मेहनत की। कोई काम करना चाहिए या नहीं, यह सवाल उन्हें कभी सोचना पड़ता ही नहीं था। वो तो सिर्फ यह सोचते थे कि उस काम को कैसे किया जाए? थॉमस एडिसन का मानना था प्रतिभा १ प्रतिशत होती है और ९९ प्रतिशत पसीना है।

७८३) चिड़िया बनाने खुद ही अंडे पर बैठ गए - बल्ब बनानेवाले वैज्ञानिक थॉमस एडिसन बचपन में हमेशा कुछ न कुछ नया करने के तरीके सोचते रहते थे। वह पक्षियों को उड़ते हुए देखकर सोचा करते थे कि आखिर ऐसा क्यों है कि ये उड़ सकते हैं और इन्सान नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि कीड़े खाने से उनके अंदर उड़ने की शक्ति आ जाती है? इस रहस्य का पता लगाने के लिए एडिसन ने अपने घर की एक नौकरानी को कीड़े तक खिला दिए थे। हालांकि इसका असर बुरा हुआ, क्योंकि नौकरानी बीमार पड़ गई और उसे हॉस्पिटल में एडमिट कराने की नौबत तक आ गई। तब जाकर एडिसन को पता चला कि पक्षी कीड़े खाने से नहीं उड़ते हैं और एक्सपेरिमेंट करने के चक्कर में किसी का नुकसान नहीं होना चाहिए। एक बार तो हद ही हो गई। एडिसन ने जब देखा कि पक्षी अपने अंडों पर बैठकर उन्हें सेते हैं, जिससे उनसे चूजे निकलते हैं तो वह खुद ही अंडों पर बैठ गए।

जब उनकी मां को इस बात का पता चला तो उन्होंने एडिसन की जमकर धुलाई की। स्कूल टीचर से वह अक्सर गंभीर और अजीबोगरीब सवाल करते थे, जिन्हें सुनकर उनके टीचर्स को चक्कर ही आने लगते थे। हां, एडिसन की मां जरूर उनके हर सवाल का समझदारी से जवाब देती थीं।

७८४) मजबूत किला - एक साधु से उसके मित्रों ने पूछा, यदि दुष्ट लोग आप पर हमला कर दें तो आप क्या करेंगे? वह बोला- मैं अपने मजबूत किले में जाकर बैठा रहूंगा। यह बात उस साधु के शत्रुओं के कान तक पहुंच गई। उन्होंने एक दिन एकांत में साधु को घेर लिया और कहा, यह बताइये कि आपका मजबूत किला कहां है?

साधु खूब हंसने लगा। फिर अपने हृदय पर हाथ रखकर बोला, यह है मेरा किला। इसके ऊपर कभी कोई हमला नहीं कर सकता। शरीर तो नष्ट किया जा सकता है, पर जो उसके भीतर है, उसके रास्ते को जानना ही मेरी सुरक्षा है। जो व्यक्ति इस मजबूत किले को नहीं जानता, उसका पूरा जीवन असुरक्षित है। प्रतिक्षण शत्रुओं से घिरा है।

७८५) सबसे बड़ा है प्रेम - बात बहुत पुरानी है। एक महान संत के पास एक युवक आया और बोला, मुझे आपका शिष्य बनना है महाराज। संत बोले, तुझे शिष्य क्यों बनना है। युवक ने कहा, मुझे परमात्मा से प्रेम करना है। संत ने कहा, पहले मुझे बताओ कि क्या तुम्हें अपने घर के किसी व्यक्ति से प्रेम है?

युवक बोला, नहीं, मुझे किसी से भी प्रेम नहीं है। संत ने पूछा- तुझे तेरे माता-पिता या भाई-बहन किस पर ज्यादा स्नेह आता है? युवक ने नकारते हुए कहा, मुझे किसी से भी तनिक मात्र स्नेह नहीं है। पूरी दुनिया स्वार्थ परायण है, ये सब मिथ्या मायाजाल है। इसीलिए तो मैं आपकी शरण में आया हूं। तब संत ने कहा, बेटा, मेरा और तेरा कोई मेल नहीं, तुझे जो चाहिए वह मैं नहीं दे सकता।

युवक यह सुन स्तब्ध रह गया। संत बोले, यदि तुझे तेरे परिवार से प्रेम होता, जिन्दगी में तूने तेरे निकट के लोगों में से किसी से भी स्नेह किया होता तो मैं उसे विशाल स्वरूप दे सकता था। थोड़ा भी प्रेमभाव होता, तो मैं उसे ही विशाल बना के परमात्मा के चरणों तक पहुंचा सकता था। छोटे से बीज में से वटवृक्ष बनता है, परन्तु जो पत्थर जैसा कठोर हो उसमें से प्रेम का झरना कैसे बहा सकता हूं। परमात्मा को पाने की पहली शर्त ही कोमल हृदयी और प्रेमी होना है।

७८६) भगवान के इशारों को समझो - एक दिन रामचरितमानस रामायण लिखनेवाले गोस्वामी तुलसीदास अपने गांव की ओर जा रहे थे कि किसी बच्चे ने आवाज देकर कहा कि महात्मा उधर से मत जाओ। उस तरफ एक बैल बहुत गुस्से में है और आपने लाल कपड़ा पहन रखा है। बालक की बात को अनसुनी करते हुए तुलसीदास ने विचार किया कि बालक उन्हें उपदेश दे रहा है। इसके अलावा उन्हें अपनी ही लिखी चौपाई याद आई कि सभी में राम बसे हैं। सियाराम भय सब जग जानी। करहु प्रणाम जोरि जुग पानी। अर्थात सबमें राम है और हमें सबको हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिए।

उन्होंने सोचा कि उस बैल को प्रणाम करूंगा और निकल जाऊंगा। यह सोचते-सोचते वे आगे बढ़ गए और बैल के नजदीक पहुंच गए। इसी बीच बैल ने उन्हें मारा और वे गिर पड़े। किसी तरह बचते-बचते वह वापस आए। इसके बाद वे वहां पहुंचे जहां श्रीरामचरितमानस लिख रहे थे। सीधा चौपाई पकड़ी और उसे फाड़ने जा रहे थे कि हनुमानजी प्रकट हो गए। उन्होंने कहा, तुलसीदास, ये क्या कर रहे हो?

तुलसीदास ने क्रोध से कहा- यह चौपाई गलत है और उन्होंने सारा किस्सा कह सुनाया। हनुमानजी ने मुस्करा कर कहा- महात्मा, चौपाई तो एकदम सही है आपने बैल में तो भगवान को देखा लेकिन बच्चे में भगवान को नहीं देख पाए। आखिर उसमें भी तो भगवान राम थे। वे तो आपको रोक रहे थे, पर आप ही नहीं माने। ऐसे ही छोटी-छोटी घटनाएं हमें बड़ी घटनाओं के होने से पहले संकेत देती हैं, लेकिन कई बार हम उन्हें दुर्लक्ष कर देते हैं। हम अगर भगवान के उन इशारों को समझें और उन पर विचार करके आगे बढ़ें तो बड़ी घटनाओं से बचा जा सकता है।

७८७) मूर्खों को सताता है मौत का डर - राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत पुराण सुनाते हुए जब शुकदेव जी महाराज को छह दिन बीत गए और तक्षक (सर्प) के काटने से मृत्यु होने का एक दिन शेष रह गया। तब भी राजा परीक्षित का शोक और मृत्यु का भय दूर नहीं हुआ। अपने मरने की घड़ी निकट आती देखकर राजा का मन क्षुब्ध हो रहा था। तब शुकदेव जी महाराज ने परीक्षित को एक कथा सुनानी आरंभ की।

राजन, बहुत समय पहले की बात है, एक राजा किसी जंगल में शिकार खेलने गया। संयोगवश वह रास्ता भूलकर बड़े घने जंगल में जा पहुंचा। उसे रास्ता ढूंढते-ढूंढते रात हो गई और भारी वर्षा भी होने लगी। जंगल में शेर, व्याघ्र आदि जंगली जानवर बोलने लगे।

राजा ने सोचा कि किसी प्रकार उस भयानक जंगल में रात बिताने के लिए विश्राम का स्थान मिल जाए तो अच्छा रहेगा। इसी दौरान राजा को एक दीपक दिखाई दिया, वहां पहुंचकर उसने एक बहेलिये की झोंपड़ी देखी। वह बहेलिया ज्यादा चल-फिर नहीं सकता था, इसलिए झोंपड़ी में ही एक ओर उसने मल-मूत्र त्यागने का स्थान बना रखा था। साथ ही अपने खाने के लिए जानवरों का मांस उसने झोंपड़ी की छत पर लटका रखा था। बड़ी गंदी, छोटी, अंधेरी और दुर्गंधयुक्त वह झोंपड़ी थी। उस झोंपड़ी को देखकर पहले तो राजा ठिठका, लेकिन पीछे जंगली जानवर और खराब मौसम के कारण राजा ने झोपड़ी में ही विश्राम करने का निर्णय लिया। राजा ने बहेलिये से रातभर ठहरने का अनुरोध किया। बहेलिये ने कहा कि आश्रय के लोभी राहगीर कभी कभी यहां आ भटकते हैं। मैं उन्हें ठहरा तो लेता हूं, लेकिन दूसरे दिन जाते समय वे बहुत झंझट करते हैं।

इस झोंपड़ी की गंध उन्हें ऐसी भा जाती है कि फिर वे उसे छोड़ना ही नहीं चाहते और इसी में ही रहने की कोशिश करते हैं एवं अपना कब्जा जमाते हैं। ऐसे झंझट में मैं कई बार पड़ चुका हूं। इसलिए मैं अब किसी को भी यहां नहीं ठहरने देता। मैं आपको भी इसमें नहीं ठहरने दूंगा। राजा ने प्रतिज्ञा की कि वह सुबह होते ही इस झोंपड़ी को अवश्य खाली कर देगा। उसका काम तो बहुत बड़ा है, यहां तो वह संयोगवश भटकते हुए आया है, सिर्फ एक रात्रि ही काटनी है। बहेलिये ने राजा को ठहरने की अनुमति दे दी, पर सुबह होते ही बिना कोई झंझट किए झोंपड़ी खाली कर देने की शर्त को फिर दोहरा दिया। राजा रात भर एक कोने में पड़ा सोता रहा।

सोने में झोंपड़ी की दुर्गंध उसके मस्तिष्क में ऐसी बस गई कि सुबह को भूलकर वहीं निवास करने की बात सोचने लगा। वह बहेलिये से और ठहरने की प्रार्थना करने लगा। इस पर बहेलिया भड़क गया और राजा को भला-बुरा कहने लगा। राजा को अब वह जगह छोड़ना झंझट लगने लगा और दोनों के बीच उस स्थान को लेकर बड़ा विवाद खड़ा हो गया।

कथा सुनाकर शुकदेव महाराज ने परीक्षित से पूछा, परीक्षित। बताओ, उस राजा का क्या उस स्थान पर सदा के लिए रहने के लिए झंझट करना उचित था? परीक्षित ने उत्तर दिया, भगवन। वह कौन राजा था, उसका नाम तो बताइए। वह तो बड़ा भारी मूर्ख जान पड़ता है, जो ऐसी गंदी झोंपड़ी में, अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर एवं अपना वास्तविक उद्देश्य भूलकर, नियत अवधि से भी अधिक रहना चाहता है। उसकी मूर्खता पर तो मुझे आश्चर्य होता है। श्री शुकदेव महाराज ने कहा, हे राजा परीक्षित। वह बड़े भारी मूर्ख तो स्वयं आप ही हैं। इस मल-मूत्र की गठरी देह (शरीर) में जितने समय आपकी आत्मा को रहना आवश्यक था, वह अवधि तो कल समाप्त हो रही है। अब आपको उस लोक जाना है, जहाँ से आप आएं हैं। फिर भी आप झंझट फैला रहे हैं और मरना नहीं चाहते। क्या यह आपकी मूर्खता नहीं है? राजा परीक्षित का ज्ञान जाग पड़ा और वे बंधन मुक्ति के लिए सहर्ष तैयार हो गए।

७८८) जीना कैसे चाहिए? - एक दिन नसरूद्दीन अपने गाँव में टहल रहा था। तभी उसके कुछ पड़ोसी पास आकर बोले- नसरूद्दीन। तुम बहुत बुद्धिमान और नेक इंसान हो। हम लोगों को अपना चेला बना लो। तुम हमें यह समझाओ कि हम किस तरह अपना जीवन जिएं और जीवन में सुख और शांति के लिए हमें क्या करना चाहिए।

नसरुद्दीन ने कहा- ठीक है। मैं तुम्हें पहला शिक्षा अभी दिए देता हूं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि तुम अपने पैरों और चप्पलों का विशेष ध्यान रखो। उन्हें हर समय साफ और स्वच्छ रखो। पड़ोसी उसकी बात को ध्यान से सुन रहे थे, तभी उनका ध्यान नसरूद्दीन के पैरों की ओर गया जो बहुत मैले-कुचैले थे तथा उसकी चप्पलें भी टूटी-फूटी थीं। एक पड़ोसी तपाक से बोला- लेकिन नसरुद्दीन, तुम्हारे पैर तो बहुत ही गंदे हैं और चप्पलों का तो कहना ही क्या। जिन बातों का तुम खुद ही पालन नहीं कर रहे हो, उनका पालन हम कैसे कर सकते हैं? नसरुद्दीन- तो मैं भी यह जानने के लिए इधर-उधर नहीं भटकता कि मुझे अपना जीवन कैसे जीना चाहिए?

७८९) मिट्टी का या सोने का? - कालिदास से एक बार राजा ने पूछा- कालिदास, ईश्वर ने आपको बुद्धि तो भरपूर दी है, मगर रूप-रंग देने में भी यदि ऐसी ही उदारता वे बरतते तो बात ही कुछ और होती। कालिदास ने राजा के व्यंग्य लहजे को पहचान लिया।

कालिदास ने कुछ नहीं कहा, परंतु सेवक को पानी से भरे एक जैसे दो पात्र लाने को कहा- एक सोने का एक मिट्टी का। दोनों पात्र लाए गए। गर्मियों के दिन थे। कालिदास ने राजा से पूछा- राजन्, क्या आप बता सकते हैं कि इनमें से किस पात्र का पानी पीने के लिए अच्छा है? राजा ने छूटते ही उत्तर दिया- यह तो सीधे सी बात है, मिट्टी का, और फिर तुरंत उन्हें एहसास हुआ कि कालिदास क्या कहना चाहते है। बाहरी रूप रंग सरसरी तौर पर लुभावना लग सकता है, मगर असली सुंदरता तो भीतर की होती है। मिट्टी का घड़ा आपकी (वास्तविक) प्यास बुझा सकता है, सोन का घड़ा नहीं।

७९०) तोते ने भेजा तोते को संदेश - एक गांव में एक आदमी अपने प्रिय तोते के साथ रहता था। एक बार जब वह आदमी किसी काम से दूसरे गांव जा रहा था, तो उसके तोते ने उससे कहा- मालिक, जहां आप जा रहे हैं वहां मेरा गुरु तोता रहता है। उसके लिए मेरा एक संदेश ले जाएंगे? क्यों नहीं। उस आदमी ने जवाब दिया। मेरा संदेश है, तोते ने कहा- आजाद हवाओं में सांस लेनेवालों के नाम एक बंदी तोते का सलाम। वह आदमी दूसरे गांव पहुंचा और वहां उस गुरु

तोते को अपने प्रिय तोते का संदेश बताया। संदेश सुनकर गुरु तोता तड़पा, फड़फड़ाया और मर गया।

जब वह आदमी अपना काम समाप्त कर वापस घर आया तो उस तोते ने पूछा कि क्या उसका संदेश गुरु तोते तक पहुंच गया था। आदमी ने तोते को पूरी कहानी बताई कि कैसे उसका संदेश सुनकर उसका गुरु तोता तत्काल मर गया था। यह बात सुनकर वह तोता भी तड़पा, फड़फड़ाया और मर गया। उस आदमी ने बुझे मन से तोते को पिंजरे से बाहर निकाला और उसका दाह-संस्कार करने के लिए ले जाने लगा। जैसे ही उस आदमी का ध्यान थोड़ा भंग हुआ, वह तोता तुरंत उड़ गया और जाते जाते उसने अपने मालिक को बताया- मेरे गुरु- तोते ने मुझे संदेश भेजा था कि अगर आजादी चाहते हो तो पहले मरना सीखो।

७९१) खुश रहना कैसे? - एक समय की बात है, एक गांव में एक ऋषि रहते थे। लोग उनके पास अपनी कठिनाइयां लेकर आते थे और ऋषि उनका मार्गदर्शन करते थे।

एक दिन एक व्यक्ति ऋषि के पास आया और ऋषि से एक प्रश्न पूछा कि गुरुदेव मैं यह जानना चाहता हू कि हमेशा खुश रहने का रहस्य क्या है? ऋषि ने उससे कहा कि तुम मेरे साथ जंगल में चलो, मैं तुम्हें खुश रहने का रहस्य बताता हूं। ऐसा कहकर ऋषि और वह व्यक्ति जंगल की तरफ चलने लगे। रास्ते में ऋषि ने एक बड़ा सा पत्थर उठाया और उस व्यक्ति को कह दिया कि इसे पकड़ो और चलो। उस व्यक्ति ने पत्थर को उठाया और वह ऋषि के साथ साथ जंगल की तरफ चलने लगा। कुछ समय बाद उस व्यक्ति के हाथ में दर्द होने लगा लेकिन वह चुप रहा और चलता रहा। लेकिन जब चलते हुए बहुत समय बीत गया और उस व्यक्ति से दर्द सहा नहीं गया तो उसने ऋषि से कहा कि उसे दर्द हो रहा है। तो ऋषि ने कहा कि इस पत्थर को नीचे रख दो। पत्थर को नीचे रखने पर उस व्यक्ति को बड़ी राहत महसूस हुई। तभी ऋषि ने कहा- यही है खुश रहने का रहस्य। उस व्यक्ति ने कहा- गुरुवर मैं समझा नहीं। तो ऋषि ने कहा- जिस तरह इस पत्थर को एक मिनट तक हाथ में रखने पर थोड़ा सा दर्द होता है और अगर इसे एक घंटे तक हाथ में रखें तो थोड़ा ज्यादा दर्द होता है और अगर इसे और ज्यादा समय तक उठाए रखेंगे तो दर्द बढ़ता जाएगा, उसी तरह दुखों के बोझ को जितने ज्यादा समय तक उठाए रखेंगे उतने ही ज्यादा हम दुखी और निराश रहेंगे। यह हम पर निर्भर करता है कि हम दुखों के बोझ को एक मिनट तक उठाए रखते है या उसे जिन्दगी भर ढोते रहते हैं। अगर तुम खुश रहना चाहते हो तो दुख रूपी पत्थर को जल्दी से जल्दी नीचे रखना सीख लो और हो सके तो उसे उठाओ ही नहीं।

७९२) १० सेकेंड या ३० साल - एक दिन की बात है। रास्ते से गुजरते समय एक महिला की नजर पिकासो पर पड़ी। वह दौड़ी हुई उनके पास आई और बोली, सर, मैं आपकी बहुत बड़ी फैन हूं। क्या आप मेरे लिए भी एक पेंटिंग बनाएंगे? पिकासो ने जेब से एक छोटा सा कागज निकाला और अपने पेन से उस पर कुछ बनाने लगे। करीब १० सेकेंड के अंदर पिकासो ने पेंटिंग बनाई और कहा, यह लो, यह मिलियन डॉलर की पेंटिंग है। वह बाजार गई तथा उस पेंटिंग की कीमत पता की, फिर भागी-भागी एक बार फिर पिकासो के पास आई और बोली, आप मुझे अपनी स्टूडेंट बना लीजिए। जैसे आपने १० सेकेंड में मिलियन डॉलर की पेंटिंग बना दी, वैसे ही मैं भी १० सेकेंड में न सही, १० मिनट में ही अच्छी पेंटिंग बना सकूं। पिकासो ने हंसते हुए कहा, यह पेंटिंग, जो मैंने १० सेकेंड में बनाया है, इसे सीखने में मुझे ३० साल का समय लगा है। मैंने अपने जीवन के ३० साल सीखने में दिए हैं। तुम भी दो, सीख जाओगी।

७९३) मेहनत का मूल्य - एक समय की बात है एक मजदूर था। वह हर रोज कड़ी मेहनत करके पास में ही स्थित पहाड़ी से पत्थर तोड़ता और बाजार में जाकर उसे बेच देता जिससे उसका रोज का घर खर्च मुश्किल से निकल जाता।

एक दिन वह पत्थर बेचने एक कारीगर की दुकान पर गया तो उसने देखा कि कारीगर बहुत सुन्दर पत्थर व्यापारी को हजारों रुपये में बेच रहा था। उसने कारीगर को पूछा कि यह इतने कीमती पत्थर कहाँ मिलते हैं। कारीगर ने कहा कि यह वही पत्थर है जो तुमने मुझे बेचा था, मैंने तुम्हारे पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े करके इनको अपनी कारीगरी से सुन्दर बनाया है। कारीगर की बात सुनकर मजदूर बड़ा दुखी हुआ। उसने कहा, दुनिया में मेहनत की कोई कीमत ही नहीं। मैं रोज १२ घंटे कड़ी धूप में मेहनत करके पत्थर तोड़कर लाता हूं लेकिन मुझे १००-२०० रुपये मुश्किल से मिलते हैं और तुम छह-सात घंटे आराम से बैठकर काम करते हो, फिर भी तुम्हारी आमदनी मुझसे सौ गुना अधिक है।

कारीगर ने कहा- किसी चीज का मूल्य इस बात से तय नहीं होता कि वह कितनी मेहनत करके बनाई गई है, उसका मूल्य इस बात से तय होता है कि उसकी उपयोगिता क्या है या वह कितनी उपयोगी है?

७९४) आज तो मुझे भी बहुत काम है - फ्रांस के विश्वविद्यालय लेखक विक्टर ह्यूगो की आदत थी कि उन्हें जहां भी कोई लिखने लायक बात दिमाग में आती वह लिखने बैठ जाते थे। एक बार वह नाई के यहां बाल कटवाने गये। वह एक ग्राहक के निपटने के इंतजार में बैठे थे कि नाई ने ग्राहक को निपटाकर उन्हें बाल काटने कुर्सी पर आमंत्रित किया तो ह्यूगो ने कहा, बस, दो मिनट रुको।

मगर ह्यूगो लगातार लिखते रहे। उन्हें लिखते-लिखते आधा घंटा हो गया। इस बीच में नाई ने उन्हें कई बार टोका पर हर बार एक मिनट रुको दो मिनट तसल्ली रखो। कहकर चुप करा देते। तंग आकर नाई बोला, जल्दी करिये साहब, आज मुझे काम है। अच्छा, आज तो मुझे भी बहुत काम है, कहकर ह्यूगो दुकान से उठकर चले गये। ग्राहकों की उधारीवाला कागज, जिस पर वह लिख रहे थे, अपने साथ ले गये। इससे नाई के १८ ग्राहकों के पैसे मारे गये।

उस कागज पर ह्यूगो ने बड़ी सुंदर कविताएं लिखी थी जो फ्रांसीसी साहित्य की अमूल्य निधि मानी गयीं।

७९५) जब बीरबल की अकबर से पहली मुलाकात हुई - अकबर को शिकार का बहुत शौक था। वे किसी भी शिकार के लिए समय निकाल ही लेते थे। बाद में वे अपने समय के बहुत ही अच्छे घुड़सवार और शिकारी भी कहलाए।

एक बार राजा अकबर शिकार के लिए निकले, घोड़े पर सरपट दौड़ते हुए उन्हें पता ही नहीं चला और केवल कुछ सिपाहियों को छोड़कर बाकी सेना पीछे रह गई। शाम घिर आई थी, सभी भूखे और प्यासे थे और समझ गए थे कि वो रास्ता भटक गए हैं। राजा को समझ नहीं आ रहा था कि वह किस तरह जाएं और क्या करें।

कुछ दूर जाने पर उन्हें एक तिराहा नजर आया। राजा बहुत खुश हुए चलो अब तो किसी तरह वे अपनी राजधानी पहुंच ही जाएंगे। लेकिन जाएं तो जाएं किस तरफ। राजा उलझन में थे। वे सभी सोच में थे किंतु कोई युक्ति नहीं सूझ रही थी। तभी उन्होंने देखा कि एक लड़का हाथ में डंडा लिए उन्हें सड़क के किनारे खड़े होकर घूर रहा है।

सैनिकों ने यह देखा तो उसे पकड़कर राजा के सामने पेश किया। राजा ने कड़कती आवाज में पूछा, ऐ लड़के, आगरा के लिए कौन सी सड़क जाती है? लड़का मुस्कुराया और कहा, जनाब ये सड़क चल नहीं सकती तो ये आगरा कैसे

जाएगी। महाराज जाना तो आपको ही पड़ेगा और यह कहकर वह खिलखिलाकर हंस पड़ा।

सभी सैनिक मौन खड़े थे, वे राजा के गुस्से के वाकिफ थे। लड़का फिर बोला, जनाब, लोग चलते हैं, रास्ते नहीं।

यह सुनकर इस बार राजा मुस्कुराया और कहा, नहीं, तुम ठीक कह रहे हो। तुम्हारा नाम क्या है? अकबर ने पूछा।

मेरा नाम महेश दास है महाराज लड़के ने उत्तर दिया और आप कौन है?

अकबर ने अपनी अंगूठी निकालकर महेश दास को देते हुए कहा, तुम महाराजा अकबर हिंदुस्तान के सम्राट से बात कर रहे हो, मुझे निडर लोग पसंद हैं।

तुम मेरे दरबार में आना और मुझे ये अंगूठी दिखाना। ये अंगूठी देख कर मैं तुम्हें पहचान लूगा। अब तुम मुझे बताओ कि मैं किस रास्ते पर चलूं ताकि मैं आगरा पहुंच जाऊं। महेश दास ने सिर झुका कर बादशाह को आगरा का रास्ता बताया और जाते हुए हिंदुस्तान के सम्राट को देखता रहा। वह महेश दास ही आगे चलकर बादशाह का मंत्री बीरबल बना। इस तरह अकबर की भविष्य के बीरबल से पहली मुलाकात हुई।

७९६) चमत्कारी मजार - मुल्ला नसरुद्दीन इबादत की नई विधियों की तलाश में निकला। अपने गधे पर जीन कसकर वह भारत, चीन, मंगोलिया गया और बहुत से ज्ञानियों और गुरुओं से मिला पर उसे कुछ भी नहीं जंचा। उसे किसी ने नेपाल में रहनेवाले एक संत के बारे में बताया। वह नेपाल की ओर चल पड़ा।

पहाड़ी रास्तों पर नसरुद्दीन का गधा थकान से मर गया। नसरुद्दीन ने उसे वहीं दफन कर दिया और उसके दु:ख में रोने लगा। कोई व्यक्ति उसके पास आया और उससे बोला- मुझे लगता है कि आप यहाँ किसी संत की खोज में आए थे। शायद यही उनकी कब्र है और आप उनकी मृत्यु का शोक मना रहे हैं। नहीं, यहाँ तो मैंने अपने गधे को दफन किया है जो थकान के कारण मर गया मुल्ला ने कहा। मैं नहीं मानता। मरे हुए गधे के लिए कोई नहीं रोता। इस स्थान में जरूर कोई चमत्कार है जिसे तुम अपने तक ही रखना चाहते हो।

नसरुद्दीन ने उसे बार-बार समझाने की कोशिश की लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। वह आदमी पास ही गाँव तक गया और लोगों को दिवंगत संत की कब्र के बारे में बताया कि वहां लोगों के रोग ठीक हो जाते हैं। देखते-ही-देखते वहां मजमा लग गया। संत की चमत्कारी कब्र की खबर पूरे नेपाल में फैल गई और दूर-दूर से लोग वहां आने लगे। एक धनिक को लगा कि वहां आकर उसकी मनोकामना पूर्ण हो गई है, इसलिए उसने वहां एक शानदार मजार बनवा दी जहाँ नसरुद्दीन ने अपने गधे को दफन किया था। यह सब होता देखकर नसरुद्दीन ने वहां से चल देने में ही अपनी भलाई समझी। इस सबसे वह एक बात तो बखूबी समझ गया कि जब लोग किसी झूठ पर यकीन करना चाहते हैं तब दुनिया की कोई ताकत उनका भ्रम नहीं तोड़ सकती।

७९७) सदगुणों में संतुलन - एक दिन एक धनी व्यापारी ने चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक लाओत्से से पूछा- आपका शिष्य येन कैसा व्यक्ति है। लाओत्से ने उत्तर दिया- उदारता में वह मुझसे श्रेष्ठ है।

आपका शिष्य कुंग कैसा व्यक्ति है? व्यापारी ने फिर पूछा। लाओत्से ने कहा- मेरी वाणी में उतना सौंदर्य नहीं है जितना उसकी वाणी में है।

व्यापारी ने फिर पूछा- और आपका शिष्य चांग कैसा व्यक्ति है? लाओत्से ने उत्तर दिया- मैं उसके समान साहसी नहीं हूं। व्यापारी लाओत्से के जवाब सुनकर चकित रह गया, फिर बोला- यदि आपके शिष्य किन्हीं गुणों में आपसे श्रेष्ठ हैं तो वे आपके शिष्य क्यों हैं? ऐसे में तो फिर उनको आपका गुरु होना चाहिए और आपको उनका शिष्य।

उसकी बात सुनकर कुछ देर तक तो लाओत्से मुस्कराते रहे, फिर उन्होंने उससे कहा- देखो, ये सभी मेरे शिष्य इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने मुझे गुरु के रूप में स्वीकार किया है और उन्होंने ऐसा दरअसल इसलिए किया है क्योंकि वे यह जानते हैं कि किसी सद्गुण विशेष में श्रेष्ठ होने का अर्थ ज्ञानी हो जाना नहीं है।

लाओत्से की बातों से व्यापारी की हैरानी बढ़ती ही जा रही थी, लेकिन उसने तय कर लिया था कि वह यह जानकर रहेगा कि असली ज्ञानी है कौन? अंत में व्यापारी ने प्रश्न किया- तो फिर ये बताएं कि असली ज्ञानी कौन है?

लाओत्से ने उत्तर दिया- वह जिसने सभी सद्गुणों में पूर्ण संतुलन स्थापित कर लिया हो।

७९८) खुशी की तलाश - अंजन मुनि अपने आश्रम में अनेक शिष्यों को शिक्षा देते थे। एक दिन वह अपने शिष्यों से बोले, आज मैं तुम्हें बताऊंगा कि खुशी आसानी से किस तरह मिल सकती है? सभी शिष्य बोले, गुरुजी, जल्दी बताइए। मुनि शिष्यों को एक कमरे में ले गए। वहां ढेर सारी एक जैसी पतंगें रखी हुई थीं। मुनि शिष्यों से बोले, इन पतंगों में से एक-एक उठाकर सभी अपना नाम लिखकर वापस वहीं रख दो। सभी शिष्यों ने एक-एक पतंग पर अपना नाम लिखा और वापस रख दिया। मुनि बोले, अब सभी अपने नाम की पतंग लेकर मेरे पास आओ। यह सुनकर शिष्यों में भगदड़ मच गई। अपने नाम की पतंग लेने के चक्कर में सारी पतंगें फट गईं। फिर मुनि उन्हें दूसरे कमरे में ले गए। उन्होंने सब शिष्यों को एक-एक पतंग पर अपना नाम लिखने को कहा। फिर वह बोले, तुम सभी इनमें से कोई भी पतंग उठा लो। सभी शिष्यों ने बिना कोई जल्दबाजी किए आराम से एक-एक पतंग उठा ली। गुरुजी बोले, अब तुम एक-दूसरे से अपने नाम वाली पतंग प्राप्त कर लो। सभी शिष्यों ने बगैर खींचतान किए और बगैर पतंगें फाड़े अपने-अपने नाम की पतंग प्राप्त कर ली। गुरुजी बोले, हम खुशी की तलाश इधर-उधर करते हैं, जबकि हमारी खुशी दूसरों की खुशी में छिपी है। जब तुमने केवल अपने नाम की पतंग तलाशनी चाही तो आपाधापी में सारी पतंगें फट गईं। दूसरी बार तुमने आराम से पतंग उठाकर दूसरे के नाम की पतंग उसे सौंप दी। इस तरह उसे भी खुशी मिल गई और तुम्हें भी अपने नाम की पतंग मिल गई। असल खुशी दूसरों की मदद कर उन्हें खुशी देने में है।

७९९) असफलता से सबक - नोबेल पुरस्कार विजेता कथाकार अर्नेस्ट हेमिंग्वे बचपन में बड़े हंसोड़ और नटखट थे। पढ़ने-लिखने में भी तेज थे और ईश्वर ने उन्हें गजब की कल्पना शक्ति भी दी थी। एक बार उनके शिक्षक ने बच्चों से कहानी लिखने को कहा। कहानी लिखने के लिए एक महीने का समय दिया। हेमिंग्वे ने सोचा, कहानी लिखने के लिए एक महीने की क्या जरूरत है। यह तो एकाध घंटे में ही लिखी जा सकती है। दिन गुजरते जा रहे थे, पर वह खेलकूद में मस्त रहे। उनकी बहन ने कई बार कहानी लिखने की याद दिलाई, लेकिन हर बार वह यही कहकर टालते रहे कि कहानी तो एक घंटे में लिख देंगे। कहानी जमा करने के दिन से ठीक पहले की रात को भी हेमिंग्वे की बहन ने उन्हें कहानी की याद दिलाई, पर उन्हें नींद आ रही थी। कहानी सुबह लिख लूंगा, सोचकर वह सो गए। सुबह उठकर उन्होंने हड़बड़ाहट में

लिखना शुरू किया। कहानी तो पूरी कर ली, मगर वह उससे संतुष्ट नहीं हुए। उन्हें लग रहा था कि कहानी में भाषा और कथा सूत्रों में सुधार की जरूरत है। समय की कमी के कारण वह चाहकर भी सुधार नहीं कर सकते थे। अंतत: उन्होंने बिना सुधारे ही अधूरे मन से कहानी शिक्षक को सौंप दी। बहरहाल, पुरस्कार किसी और छात्र को मिला। हेमिंग्वे निराश होकर घर लौटे तो उनकी बहन ने कहा, हर काम अंतिम क्षणों में निपटाने की आदत के कारण ही तुम्हें पुरस्कार नहीं मिला। इस असफलता से सबक लो और हर काम नियम से समय पर करने की आदत डालो। हेमिंग्वे ने अपनी आदत बदल ली। आज दुनिया उन्हें श्रेष्ठ रचनाकार के रूप में याद करती है।

८००) बदला हुआ मन - एक बार एक सैनिक अधिकारी की नियुक्ति रेगिस्तानी इलाके में हो गई। उसकी पत्नी को भी वहीं रहने जाना पड़ा। लेकिन, उसे धूल बिल्कुल पसंद नहीं थी। उसका पति तो रोज ट्रेनिंग के लिए चला जाता और उसे छोटे-से घर में अकेले ही रहना पड़ता। वहां तापमान ज्यादा रहता और गर्म हवाएं चलतीं। शहरी माहौल में पली-पढ़ी इस महिला को वहां के स्थानीय निवासियों का साथ भी पसंद नहीं था। वह उन्हें बहुत पिछड़ा और गंवार समझती। एक दिन दुखी होकर उसने अपने माता-पिता को खत लिखा कि वह अब और बर्दाश्त नहीं कर सकती। सब कुछ छोड़कर मायके आना चाहती है। यहां रहने से तो जेल में रहना अच्छा है। जवाब में उसके जेलर पिता ने उसे दो पंक्तियां लिख भेजीं- दो कैदियों ने एक साथ जेल के बाहर देखा। पर, एक ने आसमान में तारे देखे, जबकि दूसरे ने जमीन में कीचड़। यह पढ़कर महिला सोच में पड़ गई। उसे लगा पिता ने ठीक लिखा है। ये दुनिया इतनी बुरी भी नहीं है। उसने स्थानीय लोगों से मेल-जोल बढ़ाना शुरू कर दिया। वे लोग उसे अपनी कला के उत्कृष्ट व प्रिय नमूने भेंट में देने लगे। अब वह रेगिस्तान में उगते और डूबते सूरज का बड़े मनोयोग से नजारा लेती। वही रेगिस्तान था और वहां रहनेवाले लोग भी वही थे। कुछ भी नहीं बदला था। दरअसल, उसका मन बदल गया था। उसने स्वनिर्मित जेल से बाहर झांककर तारों को निहारा और अपनी दुनिया रोशन कर ली। जो चीजें पहले उसे कष्टकारी लगा करती थीं, उन्हें उसने अत्यंत रोचक और रोमांचकारी अनुभवों में बदल लिया और सुख से रहने लगा।

८०१) रंगदास का बचपन - एक बार की बात है। रामानुजम ने अपने पुत्र को कुछ रुपए देकर बाजार से फल खरीदने भेजा। उन्होंने उसे समझाया कि फल बढ़िया और किसी अच्छी दुकान से ही खरीद कर लाए। बाजार में फलों की एक से एक अच्छी दुकान थी। ऐसे में उनका पुत्र यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि कहां से फल खरीदे? कुछ देर बाद जब वह घर लौटा तो उसके पिता यह देखकर हैरान रह गए कि वह खाली हाथ ही घर वापस आ गया है। रामानुजम ने पुत्र से पूछा, बेटे, मैंने तुम्हें फल खरीदने भेजा था लेकिन तुम तो फल लिए बिना ही वापस आ गए। ऐसा क्यों? इस पर पुत्र ने जवाब दिया, पिताजी मैं खाली नहीं आया। मैं तो अपने साथ एक अमर फल लेकर आया हूं। पुत्र की बात सुनकर रामानुजम हैरान हुए और बोले, तुम्हें क्या हो गया है? ऐसी बातें क्यों कर रहे हो? भला अमर फल भी कहीं होता है? पुत्र बोला, पिताजी मैं फल खरीदने के लिए बाजार में गयां वहां अच्छी से अच्छी दुकानें सजी हुई थीं। तभी मैंने एक बुजुर्ग को भूख से छटपटाते देखा। मुझसे नहीं देखा गया। मैंने उसे उन पैसों से भोजन करा दिया। भोजन करने के बाद उस बुजुर्ग ने मुझे आशीर्वाद दिया। इससे मुझे बड़ी संतुष्टि हुई। आप ही बताइए कि उस बुजुर्ग का दिल से दिया गया आशीर्वाद क्या

किसी अमरफल से कम है? जवाब सुनकर पिता हैरान रह गए और उन्होंने उसे गले लगाते हुए कहा, बेटा तेरी इस बात ने मुझे बड़ा प्रभावित किया है। एक दिन तू जरूर महान बनेगा। पिता की बात सच साबित हुई। यह लड़का आगे चलकर दक्षिण भारत का महान संत रंगदास बना।

८०२) ग्रहण करने का गुण - एक घड़ा पानी से भरा हुआ रखा रहता था। उसके ऊपर एक कटोरी ढकी रहती थी। घड़ा अपने स्वभाव से परोपकारी था। बर्तन उस घड़े के पास आते, उससे जल पान कर अपना मुख नवाते। घड़ा प्रसन्नता से झुक जाता और उन्हें शीतल जल से भर देता। प्रसन्न होकर बर्तन शीतल जल लेकर चले जाते। कटोरी बहुत दिन से यह सब देख रही थी। एक दिन उससे रहा न गया, तो उसने शिकायत करते हुए अपने दिल की टीस घड़े से व्यक्त की, बुरा न मानो तो एक बात पूछूं? पूछो। घड़े ने शांत स्वर में उत्तर दिया। कटोरी ने अपने मन की बात कही, मैं देखती हूं कि जो भी बर्तन तुम्हारे पास आता है, तुम उसे अपने जल से भरकर संतुष्ट कर देते हो। मैं सदा तुम्हारे साथ रहती हूं, फिर भी तुम मुझे कभी नहीं भरते। यह मेरे साथ पक्षपात है। अपने शीतल जल की तरह शांत व मधुर वाणी में घड़े ने उत्तर दिया, कटोरी बहन, तुम गलत समझ रही हो। मेरे काम में पक्षपात जैसा कुछ नहीं। तुम देखती हो कि जब बर्तन मेरे पास आते हैं, तो जल ग्रहण करने के लिए विनीत भाव से झुकते हैं। तब मैं स्वयं उनके प्रति विनम्र होते हुए उन्हें अपने शीतल जल से भर देता हूं। किंतु तुम तो गर्व से भरी हमेशा मेरे सिर पर सवार रहती हो। जरा विनीत भाव से कभी मेरे सामने झुको, तब फिर देखो कैसे तुम भी शीतल जल से भर जाती हो। नम्रता से झुकना सीखोगी तो कभी खाली नहीं रहोगी। मुझे उम्मीद है कि तुम मेरी बात समझ गई होगी। कटोरी ने मुस्कराकर कहा, आज मैंने ग्रहण करने का गुण सीख लिया।

८०३) सच्चे साधु की पहचान - महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को दीक्षा देने के बाद कहा, तुम जहां भी जाओगे, वहां तुम्हें अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के लोग मिलेंगे। अच्छे लोग तुम्हारी बातें सुनेंगे और सहायता करेंगे। बुरे लोग तुम्हारी निंदा करेंगे और गालियां देंगे। तब तुम्हें कैसा लगेगा? एक गुणी शिष्य ने कहा, मैं किसी को बुरा नहीं समझता। कोई मेरी निंदा करेगा या मुझे गालियां देगा तो मैं समझूंगा कि वह भला व्यक्ति है क्योंकि उसने मुझे सिर्फ गालियां ही दीं, मुझ पर धूल तो नहीं फेंकी। बुद्ध ने पूछा, और यदि कोई तुम पर धूल फेंक दे तो? मैं उसे भला ही कहूंगा क्योंकि उसने धूल ही तो फेंकी, थप्पड़ तो नहीं मारा। और यदि कोई थप्पड़ मार दे तो क्या करोगे? मैं उन्हें बुरा नहीं कहूंगा क्योंकि उन्होंने मुझे थप्पड़ ही मारा, डंडा तो नहीं मारा। और कोई डंडा मार दे तो? मैं उसे धन्यवाद दूंगा क्योंकि उसने मुझे केवल डंडे से ही मारा, हथियार से नहीं। लेकिन मार्ग में तुम्हें डाकू भी मिल सकते हैं जो तुम पर घातक हथियार से प्रहार कर सकते हैं। तो क्या? मैं तो उन्हें दयालु ही समझूंगा, क्योंकि वे मारते ही हैं, मार नहीं डालते। और यदि वे तुम्हें मार ही डालें तो? शिष्य बोला, इस जीवन और संसार में केवल दुख ही है। जितना अधिक जीवित रहूंगा उतना दुख देखना पड़ेगा। जीवन से मुक्ति के लिए आत्महत्या करना तो महापाप है। शिष्य के वचन सुनकर बुद्ध बोले- तुम सच्चे साधु हो। सच्चा साधु किसी भी दशा में दूसरे को बुरा नहीं समझता। जो दूसरों में बुराई नहीं देखता, वही सच्चा परिव्राजक होने के योग्य है। मुझे विश्वास है तुम सदैव धर्म के मार्ग पर चलोगे।

८०४) नई पारी की शुरुआत - अमेरिका के प्रसिद्ध न्यायाधीश होम्स सेवानिवृत्त हुए तो उस अवसर पर एक पार्टी का आयोजन किया गया। इस पार्टी में विभिन्न अधिकारी, उनके मित्र, पत्रकार और विदेशी संवाददाता सम्मिलित हुए। सेवानिवृत्त होने के बावजूद होम्स के चेहरे पर बुढ़ापा नहीं झलक रहा था। बल्कि वह अब भी युवा ही लग रहे थे। पार्टी के दौरान ही एक संवाददादा ने उनसे पूछा, अब इस बुढ़ापे में तो आप आराम ही करेंगे या कुछ और करने का मन है? भावी जीवन का क्या आपने कोई कार्यक्रम बनाया है? बुढ़ापा। बड़े आश्चर्य से होम्स ने कहा, क्या मैं वृद्ध दिखाई दे रहा हूं? मेरी पारी तो अब शुरू होनी है, क्योंकि लंबे समय से जिन कार्यों को मैं टालता रहा था, उन्हें अब प्रारंभ करने का समय आ गया है। कौन से काम टालते आ रहे थे आप जिन्हें अब पूरा करेंगे? संवाददाता ने पूछा। पहला काम तो यह कि बहुत समय से मैं बढ़ई का काम सीखना चाह रहा था, लेकिन अब तक इसके लिए कभी फुर्सत ही नहीं मिल पाई। अब बढ़ई का काम सीखने के साथ-साथ मैं विज्ञान का अध्ययन करूंगा। होम्स बोले। उनकी बात सुन संवाददाता के चेहरे पर आश्चर्य के भाव तैरने लगे। होम्स ने तब मुस्कराकर कहा, मैं बूढ़ा हो भी जाऊं तो क्या, काम करना मैं मरते दम तक नहीं छोड़ूंगा। विज्ञान का अध्ययन मेरा शौक रहा है, जबकि बढ़ई का काम अब मेरा नया पेशा होगा। दो-चार महीने की बात है, आपको यदि अपने घर के लिए कोई फर्नीचर बनाना पड़े तो कृपया मुझे ही ऑर्डर दीजिएगा। अपने काम की गुणवत्ता से आपको निराश नहीं करूंगा। अब संवाददाता हैरानी से उनका मुंह ताक रहा था।

८०५) परमात्मा की संतान - एक दिन गेरुआ वस्त्र धारण किए एक संत जूता बनानेवाले के घर के सामने जा खड़े हुए। वह आंगन में ही अपने काम में तल्लीन था। अचानक किसी को आया देख उसकी एकाग्रता भंग हुई। तभी संत उससे बोले-भाई, बड़ी प्यास लगी है। क्या थोड़ा पानी मिलेगा? यह सुनकर पहले तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा, लेकिन अगले ही क्षण वह यह सोचकर मायूस हो गया कि वह तो एक अछूत है। कोई संत उसके हाथों से पानी कैसे पी सकता है। संत को उसके चेहरे पर आ रहे भाव समझने में देर नहीं लगी। संत बोले- क्या बात है भाई, किस सोच में पड़ गए, यहां तो प्यास के मारे गला सूखा जा रहा है। वह सकपका कर बोला- नहीं-नहीं, बात यह है कि आप जैसे संत को हम पानी कैसे पिला सकते हैं? उसकी बात सुनकर संत हंसते हुए बोले- तो आप पाप-पुण्य का इतना हिसाब रखते हैं? संत की बात सुनकर वह और संकोच में पड़ गया। तभी संत ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया- यह लो, तुमने मुझे नहीं मैंने तुम्हें छुआ है। अब अगर पाप किसी ने किया है, तो मैंने किया है। क्या अब मुझे पानी पिलाओगे? संत के मुख से ऐसी बातें सुनकर वह उनके सम्मुख नतमस्तक हो गया और झटपट भीतर जाकर पानी ले आया। पानी पीकर संत बोले- देखो, हम सब एक ही परमात्मा की संतान हैं। हम सभी उसे बराबर प्यारे हैं। जो ईश्वर की संतान को छोटा-बड़ा समझता है, वह दुनिया का सबसे बड़ा अज्ञानी है। रात घिरनेवाली है, क्या संभव है कि आज मुझे आप भोजन भी करवाएं? उस रात संत ने उसी घर पर भोजन किया। वह संत थे स्वामी विवेकानंद।

८०६) खुद को योग्य बनाएं - अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक जार्ज बनार्ड शॉ का आरंभिक जीवन बेहद संघर्षपूर्ण था। लेकिन तमाम विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने हार नहीं मानी और धीरे-धीरे सफलता की बुलंदियां छूते गए। एक दिन उन्हें एक कॉलेज के कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया। बर्नार्ड शॉ ने सहजता से आमंत्रण

स्वीकार कर लिया और कार्यक्रम के दिन कॉलेज पहुंच गए। उन्हें देखकर कॉलेज के विद्यार्थियों के उत्साह का कोई ठिकाना न रहा। सभी उनकी एक झलक पाने को लालायित हो उठे। कार्यक्रम समाप्त हुआ तो उनके ऑटोग्राफ लेनेवालों की एक अच्छी खासी भीड़ वहां जमा थी। एक नौजवान ने अपनी ऑटोग्राफ बुक उन्हें देते हुए कहा, सर, मुझे साहित्य से बहुत लगाव है और मैंने आपकी कई पुस्तकें पढ़ी हैं। मैं अब तक अपनी कोई पहचान नहीं बना पाया हूं, लेकिन बनाना अवश्य चाहता हूं। इसके लिए आप कोई संदेश देकर अपने हस्ताक्षर कर दें तो बहुत मेहरबानी होगी। बर्नार्ड शॉ नौजवान की इस बात पर धीमे से मुस्कराए फिर उसके हाथ से ऑटोग्राफ बुक लेकर एक संदेश लिखा और अपने हस्ताक्षर भी कर दिए। नौजवान ने ऑटोग्राफ बुक खोलकर देखी तो संदेश पर उसकी नजर गई। लिखा था- अपना समय दूसरों के ऑटोग्राफ इकट्ठा करने में नष्ट न करें। खुद को इस योग्य बनाएं कि दूसरे आपके ऑटोग्राफ पाने के लालायित रहें। संदेश पढ़कर नौजवान ने उनका अभिवादन किया और बोला, सर, मैं आपका यह संदेश जीवन भर याद रखूंगा और अपनी अलग पहचान बनाकर दिखाऊंगा। बर्नार्ड शॉ ने नवयुवक की पीठ थपथपाई और आगे चल पड़े।

८०७) स्वराज का अधिकार - यह घटना उस समय की है जब देश को स्वतंत्र कराने के लिए आंदोलन जोर पकड़ रहा था। अनेक युवा अपना सर्वस्व समर्पण करने को तैयार थे। उधर अंग्रेज प्रथम विश्व युद्ध में फंसे हुए थे। मुंबई के गवर्नर लार्ड विलिंग्डन ने इस जंग में भारतीयों की सहायता लेने के लिए युद्ध परिषद का आयोजन किया। उसमें अनेक भारतीय नेताओं के साथ बाल गंगाधर तिलक को भी आमंत्रित किया गया। कई भारतीय नेताओं ने अंग्रेजों को आश्वासन दिया कि वे विश्वयुद्ध में अंग्रेजों को हर संभव सहयोग देंगे। अनेक नेताओं की बात सुनकर उन्हें पूरी आशा थी कि तिलक भी यही कहेंगे। उन्होंने उन्हें मंच पर आमंत्रित किया। जैसे ही तिलक मंच पर आए वे बोले, किसी भी बाहरी आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए हम भारतीय सदैव सहयोग के लिए तत्पर रहेंगे किंतु स्वराज और स्वदेश रक्षा के प्रश्न पर सरकार को स्पष्ट वचन देना होगा। स्वराज शब्द सुनते ही विलिंग्डन का चेहरा तमतमा उठा। वह अपने स्थान से उठे और बोले, यहां राजनीतिक चर्चा की अनुमति नहीं दी जा सकती। आप हमारी सहायता का आश्वासन दीजिए और बोलिए कि आप हमारे साथ हैं। यह सुनकर तिलक बोले, गवर्नर साहब, स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि आप यह शब्द सुनने को तैयार नहीं, तो मुझ जैसा भारतीय यहां एक क्षण भी नहीं रुक सकता। दंग विलिंग्डन बोले, हर समय तुम्हारे दिमाग में स्वराज गूंजता रहता है? तिलक बोले, यह तब तक गूंजता रहेगा जब तक पूर्ण स्वराज नहीं मिल जाता। उनकी बात स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है फिर एक प्रसिद्ध नारा ही बन गई।

८०८) अधूरा पाठ - एक गुरु अपने शिष्यों को कुछ समझा रहे थे। तभी एक चोर उधर से निकला। उसने सोचा- जरा देखें, गुरुजी अपने शिष्यों को क्या ज्ञान दे रहे हैं। लेकिन कुछ संकोच और कुछ डर से वह वहां रुक नहीं सका। उसके कान में यही शब्द पड़े- पैसा पैसे को खींचता है। चोर जल्दी में आगे बढ़ गया और आगे गुरुजी ने और क्या कहा उसने नहीं सुना। लेकिन उसने जो बात सुनी थी, उसी को आजमाने की सोची। वह राजा के खजाने में चोरी के लिए जा रहा था। सेंध लगाकर आधी रात को जब उसने खजाने में प्रवेश किया तो सामने सोने के सिक्कों का ढेर लगा देखा। बस, वह अपनी जेब से एक सिक्का निकाल कर खड़ा हो गया कि देखें कैसे पैसा पैसे को अपनी तरफ खींचता है। लेकिन

उसके हाथ के पैसे की ओर कोई पैसा खुद खिंचकर नहीं आया। चोर का मन यह मानने को तैयार नहीं था कि गुरुजी अपने शिष्यों को झूठी शिक्षा दे रहे होंगे। उन पर भरोसा रख वह वहीं खड़ा रहा। आखिरकार उसके हाथ का सिक्का ही ढेर में जाकर गिर गया। वह बेहद दुखी हुआ। उधर सिक्के के गिरने से हुई आवाज से पहरेदार आ गए और चोर पकड़ा गया। अगले दिन जब राजा के दरबार में चोर को पेश किया गया तो उसने गुरुजी की शिक्षा और अपने प्रयोग की बात बताई। जब यह सारी बात गुरुजी तक पहुंची तो वह बहुत हंसे और उन्होंने राजा से कहा- चोर ने मेरे शब्दों के भाव को नहीं समझा, वह शब्दार्थ में ही उलझ गया। उसने अधूरा पाठ सुना था इसलिए ऐसा हुआ। मैंने आगे कहा था- ज्यादा पैसा कम पैसे को खींच लेता है।

८०९) गरीबों की सेवा - गौतम बुद्ध ने उपदेश देते हुए कहा, देश में अकाल पड़ा है। लोग अन्न एवं वस्त्र के लिए तरस रहे हैं। उनकी सहायता करना हर मनुष्य का धर्म है। आप लोगों के शरीर पर जो वस्त्र है, उन्हें दान में दे दें। यह सुनकर कुछ लोग उठकर चले गए। कुछ कहने लगे, यदि वस्त्र इन्हें दे दें तो हम क्या पहनेंगे? उपदेश समाप्त हुआ। सभी श्रोता चले गए, पर निरंजन बैठा रहा। वह सोचने लगा- मेरे शरीर पर एक वस्त्र है। अगर मैं अपने वस्त्र दे दूंगा तो मुझे नग्न होना पड़ेगा। फिर उसने सोचा- मनुष्य बिना वस्त्र के पैदा होता है और बिना वस्त्र के ही चला जाता है। साधु-संन्यासी भी बिना वस्त्र के रहते हैं। उसने अपनी धोती दे दी। बुद्ध ने उसे आशीर्वाद दिया। निरंजर अपने घर की ओर चल पड़ा। वह खुशी से चिल्लाकर कह रहा था, मैंने अपने आधे मन को जीत लिया। तभी निरंजर ने देखा कि दूसरी ओर से महाराज प्रसेनजित चले आ रहे हैं। निरंजन की बात सुनकर उन्होंने उससे पूछा, तुम्हारी बात का क्या अर्थ है? निरंजन ने उत्तर दिया, महाराज। महात्मा गौतम बुद्ध दुखियों के लिए दान में वस्त्र मांग रहे थे। यह सुनकर मेरे एक मन ने कहा कि शरीर पर पड़ी एकमात्र धोती दान में दे दो, परंतु दूसरे मन ने कहा, यह भी दे दोगे तो पहनोगे क्या? दान देनेवाले मन की विजय हुई। मैंने धोती दान में दे दी। यह सुनकर प्रसेनजित ने अपना परिधान उतारकर निरंजन को दे दिया। निरंजन ने उसे भी महात्मा बुद्ध के चरणों में डाल दिया। बुद्ध ने निरंजन को हृदय से लगाते हुए कहा, जो अपना सब कुछ दान कर देता है, उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

८१०) सेवा और संबंध - एक दिन गुरुदेव रवींद्रनाथ शांति निकेतन में अपने छात्रों की जिज्ञासा शांत कर रहे थे। एक छात्र ने पूछा, गुरुदेव, कृपया यह बताएं कि संबंध और सेवा में क्या अंतर है? इन दोनों में कौन अधिक उपादेय है और किसका चयन करना चाहिए? गुरुदेव ने कहा, संबंध और सेवा आपस में जुड़े हैं। भावनाओं के कारण ही संबंध बनते हैं और उन्हीं के उफान से व्यक्ति सेवा-कार्य करने लगता है। संबंध की अंतिम परिणति कई बार अधिक सुखद नहीं होती। संबंध में यदि अपेक्षाओं का बोझ डाल दिया जाए तो यह अति बोझिल व असह्य हो जाता है। सेवा के साथ भी अपेक्षा और परिणाम पाने की इच्छा बलवती हो जाए, तो यह अपना उद्देश्य खो बैठती है। अपेक्षा की अधिकता में संबंध खत्म हो जाते हैं, वहीं अपेक्षाओं की न्यूनता में ये विकसित होते हैं।

एक छात्र ने पूछा, गुरुदेव, हम क्यों किसी की सेवा करते-करते उसके साथ एक अदृश्य संबंध बना बैठते है? गुरुदेव ने कहा, सेवा का उद्देश्य यदि निष्काम न हो तो हम जिसकी सेवा करते हैं, उसके बदले में कुछ न कुछ पाना चाहते हैं।

हम उससे सद्भाव की अपेक्षा रखने लगते हैं और जब वह सेवा से प्रसन्न होकर हमारी प्रशंसा करता है तो हम उसकी ओर आकर्षित होने लगते हैं। इसकी परिणति एक नए संबंध के रूप में सामने आती है। संबंध तभी ठीक है जब अपेक्षाओं का बोझ कम हो और सेवा उत्कृष्ट हो। यदि इसे निष्काम भाव से करके आगे बढ़ जाना हो तो दोनों ही श्रेष्ठ हैं। निष्काम सेवा ही अच्छी है क्योंकि इससे व्यक्ति आगे निकल जाता है। परंतु संबंध हमें आगे बढ़ने से रोकते हैं। शिष्य गुरुदेव की बात समझ गया।

८११) एक दूसरे की जरूरत - एक समय की बात है। एक राज्य के नागरिक पक्षियों से बहुत परेशान थे। वे पक्षी उनके खेत-खलिहान बर्बाद कर देते थे। एक दिन सभी नागरिक अपना दुखड़ा लेकर राजा के पास पहुंचे। राजा भी क्रोधित हुआ और उसने ऐलान कर दिया कि राज्य के सारे पक्षियों को मार दिया जाए ताकि खेत नष्ट होने से बच जाएं। आदेश का पालन हुआ और धीरे-धीरे राज्य के सारे पक्षी समाप्त हो गए। अगले वर्ष जब लोगों ने अपने अपने खेतों में अनाज बोया तो आश्चर्य कि एक दाना भी न उगा। उसका कारण यह था कि मिट्टी में जो कीड़े थे उन्होंने बीजों को खा लिया। पहले तो पक्षी ऐसे कीड़ों को खा जाया करते थे और फसल की रक्षा स्वयं ही हो जाती थी, लेकिन इस बार राज्य में कोई पक्षी बचा ही नहीं था जो इन कीड़ों को नष्ट करता और फसल की रक्षा होती। फसल पैदा न होने से राज्य में त्राहि-त्राहि मच गई। हर जगह भुखमरी के हालात पैदा हो गए। पहले तो लोगों को समझ में नहीं आया कि आखिर ऐसा हुआ क्यों? लेकिन जब उन्हें वस्तुस्थिति का पता चला तो वे अपनी करनी पर पछताने लगे और फिर राजा के पास जा पहुंचे। नागरिकों की बात सुनकर राजा को भी अफसोस हुआ कि जो हुआ, वह ठीक नहीं हुआ। सर्वसम्मति से यह तय किया गया कि दूसरे राज्य से पक्षी मंगवाए जाएं। बड़ी संख्या में पक्षियों के आ जाने से स्थिति में सुधार होना शुरू हुआ। खेत-खलिहान लहलहाने लगे। अब लोग समझ गए कि सभी जीव इस सृष्टि में एक दूसरे पर निर्भर हैं। कोई छोटा या बड़ा नहीं है। सभी को एक दूसरे की जरूरत है।

८१२) विवेकानंद का लोटा - विवेकानंद रोज की तरह अपने पीतल के लोटे को मांज रहे थे। काफी देर तक लोटा मांजने के बाद जब वह उठे तो उनके एक शिष्य ने सवाल किया कि रोज-रोज इतनी देर तक इस लोटे को मांजने की क्या जरूरत है? सप्ताह में एक बार मांज लें या ज्यादा से ज्यादा तीन बार। बाकी दिनों में तो इसे पानी से सिर्फ खंगाल कर काम चलाया जा सकता हैं। इससे इसकी चमक बहुत फीकी तो नहीं होगी। विवेकानंद ने कहा, बात तो सही ही कहते हो। रोज-रोज पांच-दस मिनट इसमें बर्बाद ही होते हैं। उसके बाद उन्होंने उसे नहीं मांजा। कुछ ही दिनों में उस लोटे की चमक फीकी पड़ने लगी। सप्ताह भर बाद विवेकानंद ने उस शिष्य को बुलाया और कहां कि मैंने इसे रोज मांजना छोड़ दिया, अब आज फुरसत में हो तो इस लोटे को साफ कर दो। शिष्य ने हामी भरी और कुएं पर ले जाकर मूंज से लोटे को मांजना शुरू कर दिया। बहुत देर मांजने के बाद भी वह पहलेवाली चमक नहीं ला सका। फिर और मांजा, तब जाकर लोटा कुछ चमका। विवेकानंद मुस्कुराए और बोले, इस लोटे से सीखो। जब तक इसे रोज मांजा जाता रहा, यह रोज चमकता रहा। तुमको इसकी रोज की चमक एक सी लगती होगी, जबकि मुझे यह रोज थोड़ा सा और ज्यादा चमकदार दिखता था। इसे जितना मांजता, यह उतना ज्यादा चमकता। एक दिन तुमने कहा तो मैंने इसे मांजना छोड़ दिया, फलस्वरूप इसकी चमक जाती रही। ठीक ऐसे ही विद्यार्थी होता है। अगर रोज अभ्यास करे तो ऐसे ही रोज चमकेगा।

तुम एक दिन अभ्यास छोड़ोगे तो तुम्हारी चमक फीकी पड़ जाएगी। पहले जैसी चमक पाने के लिए तुम्हें फिर और वक्त बर्बाद करना पड़ेगा। इसलिए अगर समाज को मजबूत स्तंभ देना चाहते हो तो नियमित अभ्यास करो। तभी इस लोटे की तरह चमक कर समाज में रोशनी बिखेरोगे।

८१३) परिस्थिति का समाधान - वह गरीब परिवार में जन्मा ऐसा बालक था, जिसके माता-पिता मजदूरी करके पेट पालते थे। जब माता-पिता काम पर जाते तो वह उन्हीं निर्माणाधीन इमारतों के आसपास खेलता रहता था। उसके पास उसी के जैसे अन्य बच्चे भी शामिल हो जाते थे। एक बार की बात है। काफी दिन से एक बड़ी इमारत का काम चल रहा था। वहां रोज मजदूरों के छोटे-छोटे बच्चे एक दूसरे की शर्ट पकड़कर रेल-रेल का खेल खेलते थे। रोज कोई बच्चा इंजिन बनता और बाकी बच्चे डिब्बे बनते थे। इंजिन और डिब्बेवाले बच्चे रोज बदल जाते पर केवल चड्डी पहना एक छोटा बच्चा हाथ में रखा कपड़ा घुमाते हुए रोज गार्ड बनता था। एक दिन एक व्यक्ति ने गार्ड बननेवाले बच्चे को पास बुलाकर पूछा, तुम रोज गार्ड बनते हो। तुम्हें कभी इंजिन, कभी डिब्बा बनने की इच्छा नहीं होती? इस पर वो बच्चा बोला- बाबूजी, मेरे पास पहनने के लिए कोई शर्ट नहीं है तो मेरे पीछे वाले बच्चे मुझे कैसे पकड़ेंगे और मेरे पीछे कौन खड़ा रहेगा? इसीलिए मैं रोज गार्ड बनकर ही खेल में हिस्सा लेता हूं।

८१४) समझ का फेर - एक आदमी तालाब के किनारे घूमने जाया करता था। यह उसका रोज का काम था। पानी में उसकी परछाई पड़ती। तालाब में मछलियां थीं। एक मछली ने पानी में पड़ी आदमी की परछाई को देखा। उसे दिखाई दिया कि सिर नीचे है, पैर ऊपर हैं। एक दिन देखा, दो दिन देखा, दस दिन देखा। उसकी धारणा दृढ़ हो गई। उसने जान लिया कि आदमी वह होता है, जिसका सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं। एक दिन वह आदमी तालाब के किनारे-किनारे घूम रहा था। मछली पानी की सतह पर आई। उसने आदमी को देखा। उसका सिर ऊपर है, पैर नीचे। उसने सोचा शायद आदमी शीर्षासन कर रहा है, नहीं तो आदमी ऐसा नहीं हो सकता। आदमी वह होता है, जिसका सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं। आज मैं देख रही हूं कि इसका सिर ऊपर है और पैर नीचे। अवश्य ही यह कोई उल्टी क्रिया कर रहा है। शीर्षासन कर रहा है। उसकी धारणा मजबूत हो गई।

८१५) कड़वा मीठा फल - कृष्ण और सुदामा का प्रेम बहुत गहरा था। प्रेम भी इतना कि कृष्ण, सुदामा को रात दिन अपने साथ ही रखते थे। कोई भी काम होता, दोनों साथ साथ ही करते। एक दिन दोनों वन संचार के लिए गए और रास्ता भटक गए। भूखे-प्यासे एक पेड़ के नीचे पहुंचे। पेड़ पर एक ही फल लगा था। कृष्ण ने घोड़े पर चढ़कर फल को अपने हाथ से तोड़ा। कृष्ण ने फल के छह टुकड़े सुदामा को दिये। सुदामा ने टुकड़ा खाया और बोला, बहुत स्वादिष्ट है। ऐसे फल कभी नहीं खाया। एक टुकड़ा और दे दें। दूसरा टुकड़ा भी सुदामा को मिल गया। सुदामा ने एक टुकड़ा और कृष्ण से मांग लिया। इसी तरह सुदामा ने पांच टुकड़े मांग कर खा लिए। जब सुदामा ने आखिरी टुकड़ा मांगा, तो कृष्ण ने कहा, यह सीमा से बाहर है। आखिर मैं भी तो भूखा हूं। मेरा तुम पर प्रेम है, पर तुम मुझसे प्रेम नहीं करते। और कृष्ण ने फल का टुकड़ा मुंह में रख लिया। मुंह में रखते ही कृष्ण ने उसे थूक दिया, क्योंकि वह कड़वा था। कृष्ण बोले, तुम पागल तो नहीं, इतना कड़वा फल कैसे खा गए? सुदामा का उत्तर था, जिन हाथों से बहुत मीठे फल खाने को मिले, एक कड़वे फल की शिकायत कैसे करूं? सब टुकड़े इसलिए लेता गया ताकि तुम्हें पता न चले।

८१६) अच्छे व्यवहार का कारण- एक बार की बात है संत तुकाराम अपने आश्रम में बैठे हुए थे, तभी उनका एक शिष्य, जो स्वभाव से थोड़ा क्रोधी था, उनके सामने आया और बोला- गुरुजी, आप कैसे अपना व्यवहार इतना मधुर बनाए रहते हैं, ना आप किसी पे क्रोध करते हैं और ना ही किसी को कुछ भला-बुरा कहते हैं ? कृपया अपने इस अच्छे व्यवहार का कारण बताइए। संत बोले- मुझे अपने रहस्य के बारे में तो नहीं पता, पर मैं तुम्हारा रहस्य जानता हूं। मेरा रहस्य। वह क्या है गुरुजी? शिष्य ने आश्चर्य से पूछा। तुम अगले एक हफ्ते में मरनेवाले हो। संत तुकाराम दुखी होते हुए बोले। कोई और कहता तो शिष्य ये बात मजाक में टाल सकता था, पर स्वयं संत तुकाराम के मुंह से निकली बात को कोई कैसे काट सकता था? शिष्य उदास हो गया और गुरु का आशीर्वाद ले वहां से चला गया। उस समय से शिष्य का स्वभाव बिलकुल बदल गया। वह हर किसी से प्रेम से मिलता और कभी किसी पर क्रोध नहीं करता, अपना ज्यादातर समय ध्यान और पूजा में लगाता। वह उनके पास भी जाता जिससे उसने कभी गलत व्यवहार किया हो और उनसे माफी मांगता। देखते देखते संत की भविष्यवाणी को एक हफ्ते पूरे होने को आए। शिष्य ने सोचा कि चलो एक आखिरी बार गुरु के दर्शन कर आशीर्वाद ले लेते हैं। वह उनके सामने पहुंचा और बोला, गुरुजी, मेरा समय पूरा होने वाला है, कृपया मुझे आशीर्वाद दीजिए।

मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ है पुत्र। अच्छा, ये बताओ कि पिछले सात दिन कैसे बीते? क्या तुम पहले की तरह ही लोगों से नाराज हुए, उन्हें अपशब्द कहे? संत तुकाराम ने प्रश्न किया। नहीं-नहीं बिल्कुल नहीं। मेरे पास जीने के लिए सिर्फ सात दिन थे, मैं इसे बेकार की बातों में कैसे गँवा सकता था? मैं तो सबसे प्रेम से मिला, और जिन लोगों का कभी दिल दुखाया था उनसे क्षमा भी मांगी। शिष्य तत्परता से बोला। संत तुकाराम मुस्कुराए और बोले- बस यही तो मेरे अच्छे व्यवहार का रहस्य है। मैं जानता हूं कि मैं कभी भी मर सकता हूं, इसलिए मैं हर किसी से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूं और यही मेरे अच्छे व्यवहार का रहस्य है। शिष्य समझ गया कि संत तुकाराम ने उसे जीवन का यह पाठ पढ़ाने के लिए ही मृत्यु का भय दिखाया था, उसने मन ही मन इस पाठ को याद रखने का प्रण किया और गुरु के दिखाए मार्ग पर आगे बढ़ गया। हमारा जीवन भी इसी प्रकार है। हमें नहीं पता, कब हम इस शरीर का त्याग कर देंगे। इसलिए हमें हर एक के साथ प्रेमभाव बनाकर रखना चाहिए। हमेशा अपने स्वभाव में नम्रता और चित्त में शांति का वास रखना चाहिए।

८१७) खुशी मिलेगी कैसे?- एक शहर में विजय नाम का एक अमीर व्यापारी रहता था। उस व्यक्ति के पास बहुत अधिक धन था। एक दिन उसने अपनी पत्नी अंजू को करोड़ो रुपये का एक नेकलेस गिफ्ट किया जिस कारण उसकी पत्नी अंजू को उस नेकलेस से काफी लगाव था।

एक बार वे दोनों एक धर्मयात्रा पर निकले। धर्मयात्रा में चलते-चलते वे एक धर्मस्थल में पहुंचे जहाँ अचानक एक नटखट बन्दर अंजू के नेकलेस को झपटकर ले गया और उस बन्दर ने उसे एक ऊँचे पेड़ की टहनी में टांग दिया। अंजू ने उस नेकलेस को निकालने की कोशिश की पर वह नाकाम हुई और उसे देखकर वहां और लोग भी उस नेकलेस को निकालने में जुट गये। लेकिन वे लोग भी उस नेकलेस को निकालने में असमर्थ रहें।

अचानक लोगों को लगा की बन्दर ने उस नेकलेस को नीचे बहते गंदे नाले में गिरा दिया। कुछ लोगों ने उस नेकलेस को निकालने के लिए नाले में छलांग लगा दी। तभी उधर से गुजर रहे एक गुरुजी को यह सब देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

उन्होंने गौर से देखा तो पाया कि जिस नेकलेस को पाने के लिए लोग नाले में कूदे हैं, वह नेकलेस तो अभी भी पेड़ में लटक रहा है। उन्होंने उन लोगों से कहा कि आप जिस चीज को एक नाले में पाने की कोशिश कर रहे हो, वह तो सिर्फ उसकी परछाई है। असली चीज तो अभी भी पेड़ से लटक रही है। यह सब देखकर वे लोग हताश हो गये।

नेकलेस रूपी जिस खुशी की तलाश में हम बाहर भटकते रहते हैं, वह बाहर की बजाय हमारे अन्दर ही मिलती है। भाविक साधन तो मात्र परछाई के समान छलावा है। हम बाहर की चीजों में खुशियाँ ढूंढते रहते हैं और उन चीजों से खुद को खुश रखना चाहते हैं लेकिन असली खुशी हमें तब ही मिलती है जब हमारा अंतरमन खुश हो। इसलिए खुशियाँ पाने के लिए बाहरी चीजों के बजाय खुद के अन्दर झांककर देखे।

८१८) ताऊ - एक बहुत विशाल पेड़ था। उस पर कई हंस रहते थे। उनमें एक बहुत सयाना हंस था। बुद्धिमान और बहुत दूरदर्शी। सब उसको आदर से ताऊ कह कर बुलाते थे। एक दिन उसने एक नन्ही-सी बेल को पेड़ के तने पर बहुत नीचे लिपटते पाया। ताऊ ने दूसरे हंसों को बुलाकर कहा, देखो, उस बेल को नष्ट कर दो। एक दिन यह बेल हम सबको मौत के मुंह में ले जाएगी। किसी हंस ने ताऊ की बात को गंभीरता से नहीं लिया। समय बीतता रहा। बेल लिपटते-लिपटते ऊपरी शाखाओं तक पहुंच गई। बेल का तना मोटा होना शुरू हुआ और सचमुच ही पेड़ के तने पर सीढ़ी बन गई। एक दिन जब सब हंस दाना चुगने बाहर गए हुए थे तब एक बहेलिया उधर आ निकला। पेड़ पर बनी सीढ़ी को देखते ही उसने पेड़ पर चढ़कर जाल बिछाया और चला गया। सांझ को सारे हंस लौट आए और पेड़ पर उतरे तो बहेलिए के जाल में बुरी तरह फंस गए। सब ताऊ की बात न मानने के लिए लज्जित थे और अपने आपको कोस रहे थे। एक हंस ने हिम्मत करके कहा, ताऊ, हम मूर्ख हैं लेकिन अब हमसे मुंह मत फेरो।

दूसरा हंस बोला, इस संकट से निकलने की तरकीब तुम ही हमें बता सकते हो। आगे हम तुम्हारी बात नहीं टालेंगे। सभी हंसों ने हामी भरी, तब ताऊ ने उन्हें बताया, मेरी बात ध्यान से सुनो। सुबह जब बहेलिया आएगा, सब मुर्दा होने का नाटक करना। बहेलिया तुम्हें मुर्दा समझकर जाल से निकालकर जमीन पर रखता जाएगा। वहां भी मरे समान पड़े रहना। जैसे ही वह अंतिम हंस को नीचे रखेगा, मैं सीटी बजाऊंगा। मेरी सीटी सुनते ही सब एक साथ उड़ जाना। सुबह बहेलिया आया। हंसों ने वैसा ही किया, जैसा ताऊ ने समझाया था। सचमुच बहेलिया हंसों को मुर्दा समझकर जमीन पट पटकता गया। सीटी की आवाज के साथ ही सारे हंस उड़ गए। बहेलिया अवाक होकर देखता रह गया।

८१९) जैसी होगी नजर, वैसी दिखेगी दुनिया - पांडवों और कौरवों को शस्त्र शिक्षा देते हुए आचार्य द्रोण के मन में उनकी परीक्षा लेने की बात उभर आई। परीक्षा कैसे और किन विषयों में ली जाए, इस पर विचार करते हुए उन्हें एक बार सूझी कि क्यों न इनकी वैचारिक प्रगति और व्यावहारिकता की परीक्षा ली जाए?

दूसरे दिन प्रात: आचार्य ने राजकुमार दुर्योधन को अपने पास बुलाया और कहा, वत्स। तुम समाज में से एक अच्छे आदमी की परख करके उसे मेरे सामने उपस्थित करो।

दुर्योधन- जैसी आपकी इच्छा कहकर अच्छे आदमी की खोज में निकल पड़ा।

कुछ दिनों बाद दुर्योधन वापस आचार्य के पास आया और कहने लगा- मैंने कई नगरों, गांवों का भ्रमण किया परंतु कहीं

कोई अच्छा आदमी नहीं मिला। फिर उन्होंने राजकुमार युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया और कहा- बेटा, इस पृथ्वी पर से कोई बुरा आदमी ढूंढ कर ला दो।

युधिष्ठिर ने कहा- ठीक है गुरुजी। मैं कोशिश करता हूं। इतना कहने के बाद वह बुरे आदमी की खोज में चल दिए। काफी दिनों के बाद युधिष्ठिर आचार्य के पास आए तो आचार्य ने पूछा- क्यों? किसी बुरे आदमी को साथ लाए?

युधिष्ठिर ने कहा- गुरुजी, मैंने हर जगह बुरे आदमी की खोज की परंतु मुझे कोई बुरा आदमी मिला ही नहीं। इस कारण मैं खाली हाथ लौट आया हूं। सभी शिष्यों ने आचार्य से पूछा- गुरुवर। ऐसा क्यों हुआ कि दुर्योधन को कोई अच्छा आदमी नहीं मिला और युधिष्ठिर को कोई बुरा आदमी नहीं? आचार्य बोले- बेटा, जो व्यक्ति जैसा होता है उसे सारे लोग अपने जैसे ही दिखाई पड़ते हैं इसीलिए दुर्योधन को कोई अच्छा व्यक्ति नहीं मिला और युधिष्ठिर को कोई बुरा आदमी न मिल सका।

८२०) दोस्त और विश्वास - दो बचपन के दोस्त थे अजय और विजय, उन्होंने स्कूल और कॉलेज साथ में पढ़ा और यहाँ तक कि फौज में भी एक साथ ही भर्ती हो गए। दोनों सेना के एक ही ग्रुप में थे। एक रात युद्ध के दौरान उन पर हमला हुआ, चारों ओर गोलियाँ बरस रही थीं। अजय और विजय भी युद्ध में शामिल थे। अचानक अंधेरे में से एक आवाज आई- अजय, इधर आओ, मेरी मदद करो। अजय ने अपने दोस्त विजय की आवाज को पहचान लिया और अजय ने अपने कैप्टेन से पूछा- क्या मैं वहाँ जा सकता हूं? कैप्टन ने जवाब दिया- नहीं, मैं तुम्हें जाने की इजाजत नहीं दे सकता क्योंकि मेरे पास पहले से ही आदमी कम हैं, मैं अपना एक और आदमी को नहीं खोना चाहता। तभी फिर विजय की वही आवाज आई- अजय, इधर आओ मेरी मदद करो। अजय चुप बैठा रहा क्योंकि कैप्टन ने उसे जाने की इजाजत नहीं दी थी।

फिर वही आवाज बार बार आने लगी तो अजय खुद को और ज्यादा रोक नहीं पाया। उसने कैप्टन से कहा- कैप्टन, वह मेरे बचपन का दोस्त है। मुझे उसकी मदद के लिए जाना ही होगा। कैप्टन ने बेमन से उसे जाने की इजाजत दे दी। अजय अंधेरे में रेंगता हुआ आगे बढ़ा और विजय को खींचकर अपने खड्डे में ले आया। उन लोगों ने देखा कि विजय तो मर चुका था। अब कैप्टन नाराज हो गया ओर अजय पर चिल्लाया- मैंने कहा था न कि वह नहीं बचेगा, वह मर गया है और तुम भी मारे जाते, मैं अपना एक और आदमी खो बैठता, तुमने वहाँ जाकर गलती की थी। अजय ने जवाब दिया- सर, मैंने जो किया वह ठीक था। जब मैं विजय के पास पहुंचा तो वह जिन्दा था और उसके आखिरी शब्द थे कि अजय, मुझे यकीन था कि तुम जरूर आओगे। इस कहानी को पढ़कर आपको जरूर लगेगा कि अच्छे रिश्ते बड़ी मुश्किल से बनते हैं और जब ऐसे रिश्ते एक बार बन जाएं तो उन्हें हर हालत में निभाना चाहिए। ऐसे ही गहरे रिश्ते माता-पिता और बच्चों के बीच होते हैं, भाई-बहन और सच्चे दोस्तों के बीच होते हैं। इसलिए अपने रिश्तों की डोर को हमेशा बचाए रखें, उसे टूटने मत दीजिए और जो आप पर विश्वास करते हैं उनके उस विश्वास को बनाए रखिये, उस विश्वास को टूटने मत दीजिए।

८२१) भगवान का अस्तित्व - एक बार एक व्यक्ति नाई की दुकान पर अपने बाल कटवाने गया। नाई और उस व्यक्ति के बीच में ऐसे ही बातें शुरू हो गई और वे लोग बातें करते-करते भगवान के विषय पर बातें करने लगे। तभी नाई ने कहा- मैं भगवान के अस्तित्व को नहीं मानता और इसीलिए तुम मुझे नास्तिक भी कह सकते हो। तुम ऐसा क्यों कह

रहे हो, व्यक्ति ने पूछा।

नाई ने कहा- बाहर जब तुम सड़क पर जाओगे तो तुम समझ जाओगे कि भगवान का अस्तित्व नहीं है। अगर भगवान होते, तो क्या इतने सारे लोग भूखे मरते? क्या इतने सारे लोग बीमार होते? क्या दुनिया में इतनी हिंसा होती? क्या कष्ट या पीड़ा होती? मैं ऐसे निर्दयी ईश्वर की कल्पना नहीं कर सकता जो इन सबकी अनुमति दे। व्यक्ति ने थोड़ा सोचा लेकिन वह वाद-विवाद नहीं करना चाहता था इसलिए चुप रहा और नाई की बातें सुनता रहा। नाई ने अपना काम खत्म किया और वह व्यक्ति नाई को पैसे देकर दुकान से बाहर आ गया। वह जैसे ही नाई की दुकान से निकला, उसने सड़क पर एक लम्बे-घने बालोंवाले एक व्यक्ति को देखा जिसकी दाढ़ी भी बढ़ी हुई थी और ऐसा लगता था शायद उसने कई महीनों तक अपने बाल नहीं कटवाए थे।

वह व्यक्ति वापस मुड़कर नाई की दुकान में दुबारा घुसा और उसने नाई से कहा कि क्या तुम्हें पता है? नाइयों का अस्तित्व नहीं होता। नाई ने कहा- तुम कैसी बेकार बातें कर रहे हो? क्या तुम्हें मैं दिखाई नहीं दे रहा? मैं यहां हूं और मैं एक नाई हूं और मैंने अभी अभी तुम्हारे बाल काटे है। व्यक्ति ने कहा- नहीं। नाई नहीं होते हैं। अगर होते तो क्या बाहर उस व्यक्ति के जैसे कोई भी लम्बे बाल व बढ़ी हुई दाढ़ीवाला होता?

नाई ने कहा- अगर वह व्यक्ति किसी नाई के पास बाल कटवाने जाएगा ही नहीं तो नाई कैसे उसके बाल काटेगा? व्यक्ति ने कहा कि तुम बिल्कुल सही कह रहे हो, यही बात है। भगवान भी होते है लेकिन कुछ लोग भगवान पर विश्वास ही नहीं करते तो भगवान उनकी मदद कैसे करेंगे।

विश्वास ही सत्य है। अगर भगवान पर विश्वास करते हैं तो हमें हर पल उनकी अनुभूति होती है और अगर हम विश्वास नहीं करते तो हमारे लिए उनका कोई अस्तित्व नहीं।

८२२) तेनालीराम ने सूझबूझ से बेटे को बताया - तेनालीराम की पत्नी को गुलाब के फूलों का बहुत शौक था। वह तेनाली राम से छुपाकर अपने बेटे को राजा के बाग में भेजा करती। वह वहां से एक गुलाब का फूल तोड़ लाता, जिसे वह अपने बालों में लगा लिया करती। दरबार में तेनाली राम के कई शत्रु थे। उन्हें किसी तरह यह बात पता चल गई, लेकिन राजा से कहने का साहस उनमें नहीं था। वह जानते थे कि तेनाली राम अपनी सूझबूझ के बल पर अपने बेटे को बचा लेगा और उन्हें बेवकूफ बनना पड़ेगा।

उन्होंने सोचा कि तेनाली राम के बेटे को रंगेहाथों पकड़ना चाहिए। एक दिन उन्हें अपने जासूसों से पता चला कि तेनाली राम का बेटा फूल तोड़ने के लिए बगीचे में आया हुआ है। फिर क्या था, उन्होंने राजा से शिकायत की और कहा, महाराज, हम अभी उस चोर को आपके सामने उपस्थित करेंगे।

वे लोग बगीचे के मुख्य द्वार पर जाकर खड़े हो गए। बाग में दूसरे सभी द्वारों पर भी आदमी खड़े कर दिए गए। उन्हें तेनाली राम के बेटे के पकड़े जाने का इतना यकीन था कि वे तेनाली राम को भी अपने साथ ले गए थे। उन्होंने बड़ा रस ले लेकर तेनाली राम को बताया कि अभी उसका बेटा रंगेहाथों पकड़ा जाएगा और उसे राजा के सामने पेश किया जाएगा। उनमें से एक बोला, कहो तेनाली राम अब तुम्हें क्या कहना है?

मुझे क्या कहना है? तेनाली राम ने चिल्लाते हुए कहा, मेरे बेटे के पास अपनी बात कहने के लिए जबान है। वह स्वयं ही जो कहना होगा कह लेगा। मेरा विचार तो यह है कि वह अवश्य मेरी पत्नी की दवा के लिए जड़ें लेने गया होगा, गुलाब का फूल लेने नहीं।

तेनाली राम के बेटे ने बगीचे के अंदर ये शब्द सुन लिए, जिन्हें तेनालीराम ने उसे सुनाने के लिए ही ऊंची आवाज में कहा था। वह अपने पिता की बात का मतलब समझ गया। उसने झट से गुलाब का फूल मुंह में डाल लिया और उसे खा गया। उसने बाग में से कुछ जड़ें इकट्ठी की और उन्हें झोली में डालकर बाग के द्वार तक पहुंचा। तेनाली राम के शत्रु दरबारी उसे पकड़कर राजा के पास ले गए। महाराज, इसने अपनी झोली में आपके बाग से चुराए गए गुलाब के फूल छिपा रखे हैं। दरबारियों ने कहा, गुलाब के फूल कैसे गुलाब के फूल? तेनालीराम के बेटे ने कहा, ये तो मेरी मां की दवा के लिए जड़ें हैं। उसने झोली खोलकर जड़ें दिखा दीं। दरबारियों के सिर शर्म से झुक गए। राजा ने तेनाली राम से क्षमा मांगी और उसके बेटे को बहुत-सी भेंट देकर विदा किया।

८२३) चतुर बीरबल ने ऐसे तोड़ दी उनकी मित्रता - शहजादे और एक सौदागर के पुत्र ही में बड़ी मित्रता थी। यहां तक कि दोनों ही साथ-साथ रहते थे। दोनों इधर-उधर की गपशप में अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ में निकाल देते थे। इससे उनके माँ-बाप बड़े दु:खी और परेशान रहा करते थे।

सौदागर और बादशाह ने उनकी मित्रता खत्म कराने के लिए बीरबल से कहा। एक दिन शहजादा और सौदागर का पुत्र बाग में बैठे थे। बीरबल ने शहजादे को संकेत से बुलाया। पास आने पर उसके कान में कहा- जाओ। यह कहकर वे चले आये। सौदागर पुत्र ने शहजादे से पूछा कि बीरबल ने तुमसे क्या कहा था। शहजादे ने उत्तर दिया कि उन्होंने तो कुछ भी नहीं कहा, यूं ही बुलाया था। यह सुनकर सौदागर पुत्र ने सोचा अवश्य ही शहजादा हमसे कुछ छिपा रहा है वरना बीरबल ने जो कुछ भी कहा उसे बता देता। दो दिन बाद बीरबल ने फिर वही किया। सौदागर पुत्र के पूछने पर शहजादे ने उत्तर दिया कि आज भी उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा। सौदागर पुत्र को संदेह हो गया और वह शहजादे से काफी खिंचाव रखने लगा। शहजादा भी उसके इस बर्ताव से अप्रसन्न हुआ।

आखिर उन दोनों की मित्रता एकदम टूट गयी और अपना-अपना काम करने लगे। सौदागर और बादशाह को इससे बहुत राहत मिली। उन्होंने बीरबल को शुक्रिया कहा।

८२४) शिकायत - एक बार कुछ खरगोश गर्मी के दिनों में झरबेरी की एक सूखी झाड़ी में इकट्ठे हुए। खेतों में उन दिनों अनाज न होने से वे सब बहुत दिनों से भुखे थे। सुबह और शाम गांव से बाहर घूमनेवालों के साथ आनेवाले कुत्ते भी उन्हें बहुत तंग करते थे। मैदान की झाड़ियां सूख गई थी। कुत्तों के दौड़ने से खरगोशों को भी परेशानी का सामना करना पड़ रहा था। उन्हें छिपने के लिए जगह नहीं मिल रहे थे। इन सब दुखों से वे बेचैन हो गए थे।

झरबेरी की सूखी झाड़ियों में एक खरगोश ने कहा विधाता ने हमारी जाति के साथ बड़ा अन्याय किया है। हमको इतना छोटा और दुर्बल बनाया। हमें उन्होंने न तो हिरन-जैसे सींग दिए न बिल्ली जैसे तेज पंजे। अपने शत्रुओं से बचने का हमारे पास कोई उपाय नहीं है। सबके सामने से हमें भागना पड़ता है। सब ओर से सारी विपत्ति हम लोगों के सिर पर ही विधाता

ने डाल दी है।

दूसरे खरगोश ने कहा- मैं तो अब इस दु:ख और आशंका भरे जीवन से घबरा गया हूं। मैंने तालाब में डूब मरने का निश्चय किया है।

इतना कहने के बाद तीसरा खरगोश भी बोला- मैं भी मर जाना चाहता हूं। अब और कष्ट मुझसे नहीं सहा जाता। मैं अभी तालाब में कूदने जाता हूं।

खरगोशों का दल एक साथ हो गया। सभी खरगोश एक स्वर में बोलने लगे कि हम सब तुम्हारे साथ चलते हैं। हमेशा से हम सब साथ जीए हैं तो साथ ही मरेंगे। सब खरगोश बोल उठे। इसके बाद सभी खरगोश एक साथ तलाब की ओर चल पड़े। जब सारे खरगोश तालाब पर पहुंचे तो देखा कि तालाब के पानी से निकलकर बहुत से मेंढ़क किनारे पर बैठे थे। जब खरगोश के आने की आहट इन मेढ़कों को हुई तो वे छपाछप पानी में कूद पड़े। मेंढ़कों को डरकर पानी में कूदते देख खरगोश रूक गए। इसके बाद एक बड़े खरगोश का दिमाग खुल गया। उसने सभी खरगोशों से कहा भाइयो। प्राण देने की आवश्यकता नहीं है आओ लौट चलें। जब विधाता की सृष्टि में हमसे भी छोटे और हमसे डरनेवाले जीव बड़े मजे से जीते हैं तब हम जीवन से क्यों निराश हों?

उसकी बात सुनकर सभी खरगोशों ने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया और अपने घर लौट आए। घर लौटने के कुछ दिन बाद खूब बारिश हुई। चारों ओर हरियाली छा गई। सभी चरनेवाले जानवर खुश हो गए। खरगोशों के लिए भी यह खुशी की बात थी।

८२५) न्याय के आधार पर अधिकार की सही परिषाभा - प्राचीन काल की बात है। शंख और लिखित दो सगे भाई थे। दोनों भाई अलग-अलग आश्रमों में रहते थे। एक बार लिखित शंख के आश्रम पर आए। शंख आश्रम में नहीं थे। लिखित को भूख लगी तो वह आश्रम में लगे वृक्षों से फल तोड़कर खाने लगे। थोड़ी देर में शंख वापस आश्रम में आए। उन्होंने लिखित से पूछा, भैया, तुम्हें ये फल कहां से मिले?

लिखित ने कहा, ये इसी पेड़ से तोड़े हैं। यह जानकर शंख को बुरा लगा और वह बोले, तब तो तुमने चोरी की। अब तुम राजा के पास जाकर कहो कि तुम्हें वह दंड दें, जो एक चोर को दिया जाता है।

लिखित ने राजा के पास जाकर वैसा ही कहा। राजा बोले, यदि मुझे दंड देने का अधिकार है तो क्षमा करने का भी अधिकार है। मैं आपको क्षमा करता हूं। किंतु लिखित ने दंड देने का अपना आग्रह जारी रखा। अंत में राजा ने न चाहते हुए भी नियमानुसार उनके दोनों हाथ कटवा दिए।

दंड पाकर लिखित शंख के पास गए और उनसे फिर क्षमा मांगी। शंख ने लिखित को नदी पर जाकर देवता और पितरों का विधिवत तर्पण करने को कहा। लिखित द्वारा कार्य संपन्न होते ही उनके कटे हाथ जुड़ गए। उन्होंने शंख को जाकर यह बात बताई तो शंख बोले, मैंने अपने तप के प्रभाव से ये हाथ उत्पन्न किए हैं।

लिखित ने पूछा, यदि आपके तप का ऐसा प्रभाव है तो आपने ही मेरे हाथ क्यों नहीं काट दिए?

शंख ने जवाब दिया, तुम्हें दंड देने का अधिकार मुझे नहीं, राजा को ही था। इससे राजा के अधिकार का पालन हुआ

और तुम भी दोषमुक्त हो गए। अधिकारों का संबंधित व्यक्ति द्वारा उपयोग करना ही उचित न्याय है। दंड भोगने पर ही उसका सही पश्चाताप होता है। शंख की बात सुनकर लिखित उनके समक्ष नतमस्तक हो गए। अब लिखित अधिकार की सही परिभाषा समझ गए थे।

८२६) न्याय हो तो ऐसा- मनुष्यता का गुण - एक बार महाराजा रणजीत सिंह घोड़े पर सवार होकर सैनिकों के साथ जा रहे थे। अचानक एक पत्थर उनके सिर पर आकर लगा। उनका लष्कर रूक गया और पत्थर मारनेवाले की तलाश शुरू हो गयी। थोड़ी देर में सैनिक एक बुढ़ियां को पकड़ लायें जो भय से थर-थर कांप रही थी। सैनिकों ने कहा- महाराज इस बुढ़ियां ने आपको पत्थर मारा है। महाराज ने बुढ़िया को पास बुलाकर कारण पूछा तो वह बोली महाराज मेरे बच्चे दो दिन से भूखे हैं, अनाज का एक दाना भी घर में नहीं है। जब कोई उपाय न सुझा तो भोजन की तलाश में घर से निकल पड़ी, सामने पेड़ पर फल देखकर मैं पत्थर मारकर इन्हें तोड़ने की कोशिश कर रही थी ताकि बच्चों के पेट की ज्वाला शांत कर सकूं, दुर्भाग्य ने यहां भी मेरा साथ नहीं छोड़ा और पत्थर आपको लग गया मैं माफी चाहती हूं। बुढ़ियां की यह बात सुनकर महाराज ने सेनापति को आदेश दिया कि इसे कुछ अशर्फियां देकर छोड़ दो, सेनापति ने आश्चर्य से पूछा महाराज यह कैसा इनाम यह तो सजा की हकदार है। रणजीत सिंह ने हंसकर उत्तर दिया- जब पत्थर मारने पर निर्जीव पेड़ भी मीठा फल देता हैं तो मनुष्य हो कर मैं बुढ़ियां को निराश क्यों करूं। बुढ़ियां महाराज के सामने नतमस्तक हो गयी। महाराज की न्यायप्रियता इतिहास में अमर है। राजा कभी प्रजा को नुकसान नहीं देता और फिर मनुष्य होने के नाते हमारा इतना कर्त्तव्य तो बनता ही है की हम हमारे पास जो भी अतिरिक्त वस्तु है उसे अन्य लोगों में बांटे। यह एक सच्चे धार्मिक मनुष्य होने का लक्षण है, मंदिरों-मस्जिदों में पैसे चढ़ाना कोई धर्म नहीं होता। हमने कभी यह सोचा भी नहीं हम परमात्मा को पैसें भेंट करते हैं। कितनी शर्म की बात हैं, या तो हम बेवकूफ हैं या जिस परमात्मा पर हम पैसें चढ़ाते हैं वह झूठा हैं। यह तो सभी अपने-अपने धर्म की पुस्तकों में पढ़ ही लेते हैं कि कण-कण में ईश्वर हैं, अगर आप यह मानते हैं और अगर यह सच भी है तो हमें कर्म को पूजना चाहिए कण-कण को पूजना चाहिए, सभी जीव-जन्तुओं से नम्र भाव से रहना चाहिए क्योंकि यही सच्ची धार्मिकता होगी। मंदिर जाना छोड़िये और गरीबों के मोहल्ले में जाना शुरू कीजिये। क्योंकि आजके राजा-महाराजा रणजीत सिंह जैसे नहीं जो की गरीबों की पीड़ा कर आभास कर सके और उनकी परेशानियों का हल करने में दिलचस्पी लें।

८२७) मां की हड्डी से बने शकुनि के पांसे - एक साधु के कहे अनुसार गांधारी का विवाह पहले एक बकरे के साथ किया गया था। बाद में उस बकरे की बलि दे दी गई थी। यह बात गांधारी के विवाह के समय छिपाई गई थी। जब धृतराष्ट्र को इस बात का पता चला तो उसने गांधार नरेश सुबल और उसके १०० पुत्रों को कारागार में डाल दिया और काफी यातनाएं दीं। खाने के लिए उन्हें सिर्फ एक मुट्ठी चावल दिए जाते थे। एक-एक करके सुबल के पुत्र मरने लगे। सुबल ने अपने सबसे छोटे बेटे शकुनि को प्रतिशोध के लिए तैयार किया। रणनीति के तहत सब लोग अपने हिस्से के चावल शकुनि को दे देते थे ताकि वह जीवित रह सके। मृत्यु से पूर्व सुबल ने धृतराष्ट्र से शकुनि को छोड़ने की विनती की जो धृतराष्ट्र ने मान ली। सुबल ने शकुनि को अपनी रीढ़ की हड्डी के पासे बनाने के लिए कहा। वही पासे कौरव वंश के नाश

का कारण बने। शकुनि ने हस्तिनापुर में सबका विश्वास जीता और १०० कौरवों का संरक्षक बना। उसने न केवल दुर्योधन को युधिष्ठिर के खिलाफ भड़काया बल्कि महाभारत के युद्ध का आधार भी बनाया।

८२८) ज्ञान का चश्मा - एक गांव में गुडू नाम का एक आदमी रहता था। वह पढ़ा-लिखा नहीं था और बहुत ही सीधा-साधा था। वह अक्सर लोगों को चश्मा लगातार पढ़ते देखा करता था। वह मन ही मन सोचता रहता कि अगर मेरे पास भी ऐसा चश्मा होता तो मैं भी इन लोगों की तरह पढ़ सकता। यह सोचकर वह बहुत दुखी हो जाता और उसके मन में भी पढ़ने की इच्छा होती। एक दिन उसने सोचा कि मुझे ऐसा चष्मा खरीदने के लिए शहर जाना होगा और जिससे मैं भी आराम से पढ़ सकूंगा। गुडू चष्मा लेने के लिए शहर चला गया। शहर में पहुंचते ही गुडू एक चष्मेवाली दुकान में चला गया और उसने दुकानदार से कहा- मुझे पढ़ने के लिए एक चष्मा चाहिए। दुकानदार ने उसे बहुत सारे चष्मे दिखाए और उसे पढ़ने के लिए एक किताब दी। गुडू ने एक-एक कर सभी चष्मे लगाए, पर वो किताब में से कुछ भी नहीं पढ़ पा रहा था। गुडू ने कहा- मुझे इसमें से कोई भी चश्मा पसंद नहीं है। कोई और अच्छा सा चष्मा दिखाएं। दुकानदार गुडू की तरफ हैरानी से देख रहा था, अचानक उसकी नजर किताब पर पड़ी। उसने देखा कि उस आदमी ने तो किताब को ही उल्टा पकड़ा हुआ था। दुकानदार बोला- क्या तुम पढ़े-लिखे नहीं हो? गुडू ने कहा- मुझे पढ़ना नहीं आता इसीलिए तो मैं चश्मा खरीद रहा हूं ताकि मैं भी दूसरे लोगों की तरह पढ़ सकूं। परन्तु इन सभी चश्मों में किसी भी ही चश्मे के साथ नहीं पढ़ पा रहा हूं। दुकानदार को अपने भोले-भाले ग्राहक की नादानी पर हंसी भी आ रही थी और तरस भी। उसने गुडू से कहा- मेरे मित्र तुम बहुत भोले हो, केवल चष्मा लगा लेने से पढ़ना लिखना नहीं आता। चश्मा लगाने से हमें सिर्फ साफ दिखाई देता है न कि पढ़ना-लिखना। सबसे पहले तुम शिक्षा ग्रहण करो, फिर तुम्हें पढ़ना और लिखना भी आ जाएगा और वो भी बिना चश्मों के, समझे। थोड़ा ज्ञान होने के बाद हमें लगता है कि हमें तो सब कुछ मालूम है और हमें सीखने की आवश्यकता नहीं है और हम सीखना छोड़ देते हैं। जब कि उस वक्त हमें अपने ज्ञान को और सुधार करने की जरूरत होती है। शिक्षा अन्धविश्वास को खत्म करती है। बिना शिक्षा के अज्ञान बढ़ता है।

८२९) बड़ा काम - एक बार एक पेंटर को एक नाव पर रंग करने के लिए काम मिला। वो नाव पर गया और अच्छे तरीके से पेंट कर दिया। अचानक उसे पता चला कि नाव की एक तरफ एक छोटा सा छेद है। पेंटर ने उस छेद को ठीक कर दिया। अगले ही दिन जब बोट का मालिक उसे बुलाता है और खुशी खुशी उसे १००० रुपये दे देता है तो पेंटर अचानक चौंक जाता है कि इतने से काम के इतने सारे पैसे? उसने नाव के मालिक से कहा- मेरी तो आपसे केवल २०० रुपये में बात हुई थी, परन्तु आप मुझे इतने सारे पैसे क्यों दे रहे हो?

नाव के मालिक ने जवाब दिया- तुझे नहीं पता, तुमने मेरे लिए कितना बड़ा काम कर दिया है। मुझे पहले से ही मालूम था कि उस बोट में एक छेद है, परन्तु मेरा परिवार इसे नहीं जानता था और अचानक मेरा परिवार उस बोट को लेकर समुद्र में घूमने के लिए चला गया। तुम नहीं जानते, उसके बाद मेरी हालत क्या रही होगी? मेरी उनके साथ कोई बात भी नहीं हो रही थी। मुझे लगने लगा था कि मेरा परिवार अब वापस नहीं लौटेगा, क्योंकि उन्हें बोट के छेद के बारे में नहीं पता था।

कुछ देर बार मैंने देखा के बोट तो वापस आ रही है। मैंने देखा, मेरे परिवार के सभी सदस्य सुरक्षित थे। वो खुशी-

खुशी वापस लौट चुके थे। उस समय मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। पल भर के लिए मैं हैरान भी था कि आखिर यह चमत्कार हुआ कैसे? जब मैंने बोट के छेद को चेक किया तो वो दुरुस्त कर दिया गया था। मैं तुझे क्या दूं मुझे नहीं पता, परन्तु जो काम तूने किया है उसकी कीमत में जिन्दगी भर नहीं चुका सकता और तेरे काम के प्रति रूचि को देखते हुए मैं तुझे यह इनाम दे रहा हूं।

कहानी की शिक्षा- यदि आप अपने काम से बढ़कर कोई अच्छा कार्य करते हो उसका फल आपके अलावा दूसरों को भी मिलता है। कई बार हम कुछ ऐसा कार्य कर जाते हैं कि उस कार्य का महत्व हमें खुद भी पता नहीं चलता जो कि दूसरों के लिए वरदान साबित हो जाता है। जैसा कि आपने इस कहानी में पढ़ा इसीलिए अपने कार्य से बढ़कर थोड़ा अधिक करते रहें, एक दिन आपको उसका फल जरूर मिलेगा और आपको खुशी मिलेगी।

८३०) एक सौ रुपये का नोट - एक अंधा व्यक्ति रोज शाम को सड़क के किनारे खड़े होकर भीख मांगा करता था। जो थोड़े-बहुत पैसे मिल जाते, उन्हीं से अपनी गुजर-बसर किया करता था। एक शाम वहां से एक बहुत बड़े रईस गुजर रहे थे। उन्होंने उस अंधे को देखा, उन्हें अंधे की फटेहाल होनें पर बहुत दया आई और उन्होंने सौ रुपये का नोट उसके हाथ में रखते हुए आगे की राह ली। उस अंधे आदमी ने नोट को टटोलकर देखा तो थोड़ा अजीब महसूस किया है। उसे लगा कि किसी आदमी ने उसके साथ ठिठोली की है, क्योंकि उसे हद से हद पांच रुपये तक का ही नोट भीख में मिलता था जबकि यह नोट पांच के नोट से काफी बड़ा था। उसे लगा कि किसी ने सिर्फ कागज का टुकड़ा उसके हाथ में थमा दिया और उसने नौट को खिन्न मन से कागज समझकर जमीन पर फेंक दिया। एक सज्जन पुरुष जो वहीं खड़े ये दृश्य देख रहे थे, उन्होंने नोट को उठाया और अंधे व्यक्ति को देते हुए कहा- यह सौ रुपये का नोट है। तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने अपनी आवश्यकताएं पूरी कीं।

शिक्षा- ज्ञान के अभाव में हम सब भी भगवान के अपार दान को देखकर यह समझ नहीं पाते और हमेशा यही कहते रहते हैं कि हमारे पास कुछ नहीं है, हमें कुछ नहीं मिला, हम साधनहीन हैं। जो नहीं मिला उसकी शिकायत करना छोड़कर, जो मिला है उसके महत्व को समझें तो हमें मालूम पड़ेगा कि जो हम सबको मिला है वो कम नहीं है।

८३१) साधु का जीवन - एक सन्यासी कुटीर बनाकर रहता था। एक दिन एक लड़का बाबा की कुटिया में पहुंचा। बाबा ने स्नेह से उससे बात की। मीठा गुड़ दिया, ठंडा पानी पिलाया और कहा, दुनिया बड़ी स्वार्थी है। क्या रखा है घर-गृहस्थी में? छोड़ो सब जंजाल और मेरे पास आ जाओ। मैं तुम्हें अपना चेला बना लूंगा। बाबा की बात लड़के को अच्छी लगी, लेकिन चेला का मतलब वह नहीं जानता था। पूछा, बाबा। यह चेला क्या होता है? बाबा ने कहा, यह भी तुम नहीं जानते, भोले हो। एक होता है गुरु जो आदेश देता है और एक होता है चेला, जो गुरु के आदेश को शिरोधार्य कर हुक्म बजाता है। लड़के ने कहा, बाबा। मुझे सोचने का अवसर दें। बाबा ने समझा काम बन गया। लड़का चेला बनना मंजूर कर लेगा। लड़के ने दो क्षण पता नहीं क्या सोचा, फिर बोला, बाबा, मैंने अच्छी तरह से विचार कर लिया। गुरु बनाना चाहो तो मैं तैयार हूं। चेला तो मैं नहीं बनूंगा। घाटे का धंधा कौन करना चाहेगा? लेकिन साधु जीवन में पद-प्रतिष्ठा की दृष्टि से हानि-लाभ का आकलन नहीं किया जाता। साधु ही सबसे बड़ा पद है। साधु का पद मिला तो और क्या चाहिए।

८३२) किसान और गेहूँ के दाने - तब ईश्वर मनुष्यों के साथ धरती पर निवास करते थे। एक दिन एक वृद्ध किसान ने ईश्वर से कहा- आप ईश्वर हैं, ब्रह्मांड को आपने बनाया है, मगर आप किसान नहीं हैं और आपको खेती किसानी नहीं आती, इसलिए दुनिया में समस्याएं हैं। ईश्वर ने पूछा- तो मुझे क्या करना चाहिए? किसान ने कहा- मुझे एक वर्ष के लिए अपनी शक्तियां मुझे दे दो। मैं जो चाहूंगा वो हो। तब आप देखेंगे कि दुनिया से समस्याएं, गरीबी भुखमरी सब समाप्त हो जाएंगी। ईश्वर ने किसान को अपनी शक्ति दे दी। किसान ने चारों ओर सर्वोत्तम कर दिया। मौसम पूरे समय खुशगवार रहने लगा। न आँधी न तूफान। किसान जब चाहता बारिश हो तब बारिश होती, जब वो चाहता कि धूप निकले तब धूप निकलती। सब कुछ एकदम परिपूर्ण हो गया था। चारों ओर फसलें भी लहलहा रही थीं।

जब फसलों को काटने की बारी आई तब किसान ने देखा कि फसलों में दाने ही नहीं हैं। किसान चकराया और दौड़ा दौड़ा भगवान के पास गया। उसने तो सब कुछ सर्वोत्तम ही किया था और यह क्या हो गया था। उसने भगवान को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

भगवान ने स्पष्ट किया- चूंकि सब कुछ सही था, कोई संघर्ष नहीं था, कोई जिजीविषा नहीं थी। तुमने सब कुछ सर्वोत्तम कर दिया था तो फसलें नपुंसक हो गई। उनकी उर्वरा शक्ति खत्म हो गई। जीवन जीने के लिए संघर्ष अनिवार्य है। ये आत्मा को झकझोरते हैं और उन्हें जीवंत, पुंसत्व से भरपूर बनाते हैं।

यह कहानी अमूल्य है। जब आप सदा सर्वदा खुश रहेंगे, प्रसन्न बने रहेंगे तो प्रसन्नता, खुशी अपना अर्थ गंवा देगी। यह तो ऐसा ही होगा जैसे कोई सफेद कागज पर सफेद स्याही से लिख रहा हो। कोई इसे कभी देख-पढ़ नहीं पाएगा। खुशी को महसूस करने के लिए जीवन में दु:ख भी जरूरी है। बहुत जरूरी।

८३३) बेचारा बाज - बहुत समय पहले की बात है। आसमान की सैर पर निकले अबाबील की मुलाकात एक ऊंचे पहाड़ की चोटी पर बैठे बाज से हो गई।

सुबह का नमस्कार महोदय अबाबली ने बाज से आदरपूर्वक कहा।

बाज ने गरदन झुकाकर उसे देखा और रूखेपन से बोला, नमस्ते। इस पर अबाबली बोला उम्मीद करता हूं कि सब ठीक -ठाक है श्रीमान।

बाज बोला, हमारे साथ तो सब ठीक-ठाक ही रहता है। पक्षियों के राजा हैं हम। क्या तुम ये बात नहीं जानते? आगे से, जब तक खुद हम तुम से न बोलें, हम से कुछ पूछने की हिम्मत न करना। वरना तुम्हारी खैर नहीं, वैसे भी हम छोटे लोगों के मुंह नही लगते।

अबाबील ने झिझकते हुए कहा- मेरा मानना है कि हम एक ही कुल के हैं।

बाज ने तिरस्कार भरी नजरों से उसे देखा और बोला, कौन ऐसा मूर्ख है जो कहता हैं कि तू और हम एक ही कुल के हैं? आपको बता दूं कि मैं आपकी तरह ऊंचा उड़ सकता हूं अबाबील बोला, इसके अलावा गा भी सकता हूं। धरती के प्राणियों को अपने गाने से सुख और उल्लास प्रदान कर सकता हूं। जबकी आप उन्हें यह नहीं दे सकते। इतना सुनते ही बाज को गुस्सा आ गया। वह चिल्लाते हुए बोला, सुख और उल्लास। अहंकारी जीव में अपनी बड़ी और नोकदार चोंच

की एक टक्कर से तुझे मार डालूंगा, समझा मेरे एक पंजे से बड़ा नहीं है तू। अबाबील इतना सुनते ही उड़कर बाज की पीठ पर जा बैठा। वह उसके पंख नोचने लगा। बाज भुनभुना उठा। वह तीर की तरह उपर को उड़ा ताकि उस छोटे पंछी को अपनी पीठ से गिरा दे। लेकिन ऐसा न कर सका। आखिरकार वापस पहाड़ की उसी चोटी पर आ बैठा। पीठ पर सवार पिद्दी-से परिंदे पर और उससे मुंह लगाने के अपने बुरे वक्त पर वह हद से ज्यादा चिढ़ा हुआ था। उसी समय एक नन्ही फाख्ता चिड़िया भी वहां आ बैठी और यह नजारा देखकर इतनी जोर से हंसी कि उसकी गरदन ही पीछे को झुक गई। बाज ने उसे देखा और बोला, दुनियाभर में सबसे धीमा उड़नेवाले कीड़े, क्या देखकर तू इतनी जोर से हंस रहा है? यही देखकर कि बित्ते-भर की एक चिड़िया तुम पर सवारी गांठ रही है। फाख्ता खुशी से चिल्लाते हुए बोली तू अपना रास्ता नाप। बाज सकुचाते हुए बोला यह मेरे और मेरे अबाबील भाई के बीच घर का मामला है।

८३४) साधु का कटोरा, बांटे नहीं बंटा - बहुत समय पहले की बात है एक जंगल में सुनसान पहाड़ पर दो साधु रहते थे। उन्हें दीन-दुनिया से कोई मतलब नहीं था। वे ईश्वर का भजन-ध्यान करते और एक दूसरे के साथ बड़े ही प्रेमभाव से रहते थे। उनके पास खोने और पाने के लिए कुछ नहीं था। सिर्फ उनके पास एक कटोरा था और वही उन दोनों की पूंजी थी।

एक दिन की बात है शैतान ने उनकी मित्रता को तोड़ने का विचार बनाया और उनमें से बड़ी उम्रवाले साधु के दिल में घुसा। वह कम उम्रवाले सन्यासी के पास आया और बोला, हम काफी समय से साथ-साथ रह रहे हैं। इतने लंबे समय तक मैं किसी के साथ नहीं रहा हूं। अब अलग होने का वक्त आ गया है, इसलिए हमें इस कटोरे को बांट लेना चाहिए। कम उम्रवाला सन्यासी यह सुनकर झटका खा गया। वह बोला, यह सुनकर मुझे बड़ा दुख हुआ है, लेकिन तुम जाना चाहते हो, तो जाओ मुझे आपत्ति नहीं है। इतना कहकर वह कटोरे को उठा लाया और उसे देते हुए बोला, इसे बांटा तो नहीं जा सकता। इसलिए इसे तुम ही ले जाओ। इस पर बड़ी उम्रवाले ने कहा, मैं भीख नहीं लेता। मैं सिर्फ अपना हिस्सा लूंगा।

इसलिए इसके दो टुकड़े करो, अभी। युवा सन्यासी ने कहा, टूट जाने पर कटोरा न तुम्हारे मतलब का रहेगा न मेरे। अगर आपकी मर्जी हो तो हम पेड़ की पत्ती से चित और पट कर लेते हैं। बुजुर्ग सन्यासी ने कहा, ठीक है, लेकिन मैं अगर जीता तो अपना हिस्सा ही लूंगा और मैं हारा तो भी अपना हिस्सा जरूर लूंगा। कटोरा तो अब टूटेगा ही। युवा संन्यासी ने बहस नहीं की। अगर आपकी ऐसी इच्छा है, अपना हिस्सा लेना चाहते हैं तो ठीक है, कटोरे को तोड़ देते हैं। इतना सुनना था कि बुजुर्ग संन्यासी का चेहरा क्रोध से काला पड़ गया। उसके अंदर घुसा शैतान बाहर निकल आया। शैतान बोला तुम दोनों की मित्रता से मैं प्रसन्न हूं। तुम जितनी मिट्टी इस कटोरे में भरोगे वह सोने की हो जाएगी।

८३५) नकल के लिए भी चाहिए अकल - एक पहाड़ की ऊंची चोटी पर एक बाज रहता था। पहाड़ की तराई में बरगद के पेड़ पर एक कौआ अपना घोंसला बनाकर रहता था। वह बड़ा चालाक और धूर्त था। उसकी कोशिश सदा यही रहती थी कि बिना मेहनत किए खाने को मिल जाए। पेड़ के आसपास खोह में खरगोश रहते थे। जब भी खरगोश बाहर आते, तो बाज ऊंची उड़ान भरते और किसी खरगोश को उठाकर ले जाते। एक दिन कौए ने सोचा, वैसे तो ये चालाक खरगोश मेरे हाथ आएंगे नहीं। अगर इनका नर्म मांस खाना है, तो मुझे भी बाज की तरह करना होगा। यकायक झपट्टा

मारकर पकड़ लूंगा।

दूसरे दिन कौए ने भी एक खरगोश को दबोचने की बात सोचकर ऊंची उड़ान भरी। फिर उसने खरगोश को पकड़ने के लिए बाज की तरह जोर से झपट्टा मारा। अब भला कौआ बाज का क्या मुकाबला करता। खरगोश ने उसे देख लिया और झट वहां से भाग कर चट्टान के पीछे छिप गया। कौआ अपनी ही झोंक में उस चट्टान से जा टकराया। नतीजा, उसकी चोंच तथा गरदन टूट गई और उसने वहीं तड़प कर दम तोड़ दिया।

८३६) एक नया विचार - एक बार की बात है एक राजा था। उसका एक बड़ा-सा राज्य था। एक दिन उसे देश घूमने का विचार आया और उसने देश भ्रमण की योजना बनाई और घूमने निकल पड़ा। जब वह यात्रा से लौटकर अपने महल आया। उसने अपने मंत्रियों से पैरों में दर्द होने की शिकायत की। राजा का कहना था कि मार्ग में जो कंकड़ पत्थर थे वे मेरे पैरों में चुभ गए और इसके लिए कुछ इंतजाम करना चाहिए। कुछ देर विचार करने के बाद उसने अपने सैनिकों व मंत्रियों को आदेश दिया कि देश की संपूर्ण सड़कें चमड़े से ढंक दी जाएं। राजा का ऐसा आदेश सुनकर सब सकते में आ गए।

लेकिन किसी ने भी मना करने की हिम्मत नहीं दिखाई। यह तो निश्चित ही था कि इस काम के लिए बहुत सारे रुपए की जरूरत थी। फिर भी किसी ने कुछ नहीं कहा। कुछ देर बाद राजा के एक बुद्धिमान मंत्री ने एक युक्ति निकाली। उसने राजा के पास जाकर डरते हुए कहा कि मैं आपको एक सुझाव देना चाहता हूं। अगर आप इतने रुपयों को अनावश्यक रूप से बर्बाद न करना चाहें तो एक अच्छी तरकीब मेरे पास है। जिससे आपका काम भी हो जाएगा और अनावश्यक रुपयों की बर्बादी भी बच जाएगी। राजा आश्चर्यचकित था। क्योंकि पहली बार किसी ने उसकी आज्ञा न मानने की बात कही थी।

उसने कहा बताओ क्या सुझाव है। मंत्री ने कहा कि पूरे देश की सड़कों को चमड़े से ढंकने के बजाय आप चमड़े के एक टुकड़े का उपयोग कर अपने पैरों को ही क्यों नहीं ढंक लेते। राजा ने अचरज की दृष्टि से मंत्री को देखा और उसके सुझाव को मानते हुए अपने लिए जूता बनवाने का आदेश दे दिया।

हमेशा ऐसे हल के बारे में सोचना चाहिए जो ज्यादा उपयोगी हो। जल्दबाजी में हल सोचना बुद्धिमानी नहीं है। दूसरों के साथ बातचीत से भी अच्छे हल निकाले जा सकते हैं।

८३७) आगे चलते रहो - बात तब की है जब एक बार उद्योगपति धीरूभाई अम्बानी को जरूरी मीटिंग के लिए कहीं जाना था। वो अपनी कार में बैठे और ड्राइवर ने कार चलानी शुरू की। कार अभी कुछ ही दूर पहुंची थी कि अचानक तेज हवा चलनी शुरू हो गई। हवा का रुख तेज होता जा रहा था। जब ड्राइवर को लगा कि हवा एक तूफान में बदल सकती है तो उसने कहा, सर मुझे लगता है बहुत बड़ा तूफान आनेवाला है। इससे पहले इसमें फंस जाएं हमें वापस मुड़ जाना चाहिए। इस बात को सुन धीरू भाई अम्बानी ने कहा, नहीं, हमें पीछे नहीं जाना। तुम आगे गाड़ी चलाते रहो।

अभी वो लोग कुछ दूर और गए होंगे की एक भयंकर तूफान आने लगा। पेड़-पौधों को देख ऐसा लग रहा था जैसे अभी उखड़ जाएंगे। यह सब देख ड्राइवर ने एक बार फिर हिम्मत कर के धीरूभाई अम्बानी से कहा, सर, आंधी बहुत तेज हो गई

है। आप कहें तो गाड़ी रोक ले? नहीं तुम बस गाड़ी चलाते रहो। ड्राइवर को कुछ समझ नहीं आ रहा था। मालिक के सामने वह और कोई सवाल भी नहीं कर सकता था। इसी कशमकश में वह गाड़ी चलाये जा रहा था। थोड़ा ही रास्ता तय करने पर बादल जोर-जोर से गरजने लगे। उन्होंने देखा कि बहुत से लोग सुरक्षित जगह देखा कर अपनी गाड़ियां लेकर खड़े हो गए हैं। एक बार फिर मौका देखते हुए ड्राइवर बोला, सर, मौसम बहुत खराब हो रहा है। सब लोग रूक गए हैं, हमें भी रुक जाना चाहिए और कोई होता तो शायद ड्राइवर को बुरा भला कहता लेकिन धीरूभाई अम्बानी ने बस इतना ही कहा, नहीं, रूकना नहीं है। आगे बढ़ते चलो। थोड़ी ही देर में बरसात शुरू हो गई। बरसात इतनी तेज थी कि सामने कुछ भी साफ-साफ नजर नहीं आ रहा था। तब एक बार फिर ड्राइवर ने कहा, सर, कुछ साफ नजर नहीं आ रहा। हमें रूक जाना चाहिए। पर इस बार भी जवाब वो नहीं आया जिसकी ड्राइवर अपेक्षा कर रहा था। नहीं, तुम ध्यान से गाड़ी चलाओ। हमें रूकना नहीं है। ड्राइवर धीरे-धीरे गाड़ी आगे बढ़ता रहा। कुछ किलोमीटर जाने के बाद मौसम में कुछ बदलाव आया। बारिश रूक गई और बादल छँट गए। आसमान में सूरज चमकने लगा। ऐसा लग रहा था मानो कुछ हुआ ही न हो। तभी अचानक धीरूभाई अम्बानी बोले, अब तुम गाड़ी रोक सकते हो। ड्राइवर इस बात को सुन हैरान हो गया। किसलिए सर? अब जब तुम गाड़ी से बाहर निकलोगे तो देखोगे कि कुछ देर पहले जो लोग हमसे आगे थे वो पीछे रह गए हैं। वो उसी तूफान में अभी भी फंसे होंगे और इसी कारण वो हमसे पीछे रह गए हैं। तूफान के डर से उसमें फंसे होने के कारण वो हमें नजर नहीं आ रहे हैं। अब बात ड्राइवर की समझ में आ गई थी। उसने कोई सवाल नहीं किया और गाड़ी चलाता हुआ आगे बढ़ गया। इसी तरह हमारे जीवन में भी दु:ख, परेशानियां, मुसीबतें आदि आती रहती हैं। हमें इनके जाने का इन्तजार करने की बजाय इनका सामना कर इनसे आगे निकलने की कोशिश करनी चाहिए। नहीं तो हम इन्हीं सब में फँसकर अपने अनमोल जीवन को बेकार में ही गँवा देंगे। अगर हम इन सबका सामना करके आगे बढ़ जाते हैं तो निश्चित ही हम अपने जीवन में कुछ बड़ा प्राप्त कर लेंगे।

८३८) सिकंदर का घोड़ा - सिकंदर महान एक ऐसा राजा जो अपनी बहादुरी के लिए प्रसिद्ध था। उसने जीवन में कभी हार नहीं मानी और जो प्राप्त करना चाहा उसे प्राप्त किया। सिकंदर ने बहादुरी की एक ऐसी मिसाल पेश की जो शायद आज तक कोई नहीं कर सका। उसने अपने जीवन में ऐसे-ऐसे कार्य किए जिसकी कोई उम्मीद भी नहीं कर सकता था। उसमें एक असीम शक्ति थी जिसके कारण उसने अपना एक विशाल साम्राज्य तो स्थापित किया ही, साथ ही कई लोगों के दिलों में एक खास जगह भी बनाई।

सिकंदर का एक प्रिय घोड़ा था बुसिफेलस। सिकंदर की जिन्दगी में यह घोड़ा हर महत्वपूर्ण क्षणों में सिकंदर के साथ रहा। लेकिन सिकंदर का यह प्रिय घोड़ा ऐसे ही नहीं बन गया था। एक बार कुछ घोड़े के व्यापारी अपने घोड़े बेचने फिलिप के पास आए। फिलिप को यह घोड़ा बहुत पसंद आया परन्तु कोई भी घुड़सवार इस घोड़े को काबू न कर पाया। काफी प्रयास के बाद अब सब असफल रहे तो घोड़े के व्यापारी घोड़ों को लेकर वापस जाने लगे। तभी सिकंदर बोला, बड़े शर्म की बात है कि इतने शानदार घोड़े को काबू में न पाने के कारण हमें खोना पड़ रहा है, सिकंदर की इस बात पर राजा फिलिप ने कोई ध्यान न दिया। सिकंदर बार-बार इसी बात पर जोर देने लगा तो उसके पिता फिलिप बोले- जब इतने कुशल लोगों

में से कोई इस घोड़े पर नियंत्रण नहीं पा सका तो तुम ये दिखाने का प्रयास कर रहे हो कि तुम ही श्रेष्ठ हो और तुम्हारे जैसा कोई नहीं? यकीनन, मैं इस घोड़े को काबू में कर सकता हूं और इस पर सवारी भी कर सकता हूं। यह सुनकर सब हँस पड़े। घोड़े की कीमत की शर्त लगाकर सिकंदर ने अपनी ताकत और कुशाग्रता आजमाने का मौका पा लिया। सिकंदर ने ध्यान दिया तो पाया की बुसिफेलस अपनी ही परछाई से डर रहा था। सिकंदर ने उसको उठाकर उसका मुंह उस तरफ कर दिया जहाँ से उसे अपनी परछाई न दिखाई दे। धीरे-धीरे उसके साथ चलने लगा। जब भी घोड़ा बेचैन होता या डरता तो सिकंदर प्यार से उसे थपथपा देता। ऐसा करते-करते अचानक से सिकंदर उस घोड़े की पीठ पर बैठ गया और मजबूती से उसकी लगाम पकड़ ली। वह उसपर तब तक सवारी करता रहा जब तक घोड़े ने सिकंदर को अपना स्वामी स्वीकार न कर लिया। सिकंदर के घोड़े पर बैठकर दूर चले जाने के कारण सब घबरा रहे थे लेकिन जैसे ही सभी ने सिकंदर को घोड़े पर वापस आते देखा सब हैरान रह गए और सिकंदर के पिता की आंखों में खुशी के आंसू आ गए।

बचपन से ही इतना दृढ़ निश्चयी होने के कारण ही सिकंदर एक महान राजा बनने की ओर अग्रसर हो सका। सिकंदर कभी भी किसी भी परिस्थिति में घबराता नहीं था और कोशिश करता था की वह खुद दूसरों के लिए मिसाल पेश करे। किसी को खतरे में डालने से पहले उसे अपना उदाहरण दे सके। ऐसी ही एक घटना है जब एक दिन सिकंदर अपने पुराने अध्यापक लाइसीमाकस की वजह से अपनी बाकी फौज से पीछे छूट गया। फौज से अलग हो जाने के बाद सिकंदर का सामना सर्दी से हुआ और उसके पास खुद को बचाने के लिए कोई आग भी नहीं थी। तभी उसकी नजर दूर जलती आग पर गई। पर बाद में उसे पता चला कि वो आग दुश्मनों ने जला रखी थी। सिकंदर को उस आग तक पहुंचना था। सिकंदर ने अपने साथवाले आदमी को वहीं खड़ा किया और खुद चला गया आग लेने। सिकंदर हवा की तरह वहां पहुंचा और दो दुश्मनों को मार गिराया। उनको मारने के बाद सिकंदर ने एक जलती हुई लकड़ी उठाई और अपने आदमी के पास वापस आ गया। सिकंदर हमेशा अपने सैनिकों और दूसरे लोगों को अपनी उदाहरण देकर ही प्रोत्साहित करता था। प्रतिनिधि होना भी ऐसा ही चाहिए जो अपने लोगों से काम न करवा के उनके साथ काम करे। आगे बढ़कर नहीं उनके साथ कंधे से कन्धा मिलाकर चले।

८३९) बनाना का पूछा सवाल शून्य का मिला उत्तर - महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुज के बचपन की एक दिलचस्प घटना है। उनके अध्यापक गणित पढ़ा रहे थे। उन्होंने ब्लैक-बोर्ड पर तीन केले (बनाना) बनाए और पूछा- यदि हमारे पास तीन केले हों और तीन ही विद्यार्थी हों, तो प्रत्येक विद्यार्थी को कितने केले मिलेंगे?

एक विद्यार्थी ने तुरंत उत्तर दिया- सभी को एक-एक केला मिल जाएगा। अध्यापक ने कहा- तुम सही कह रहे हो।

अभी वे भाग देने की प्रक्रिया को आगे समझाने जा ही रहे थे कि एक बालक ने पूछा- यदि किसी भी बालक को कोई भी केला न दिया जाए, तो क्या तब भी प्रत्येक बालक को एक-एक केला मिल सकेगा?

यह सुनकर सारे विद्यार्थी हंसने लगे। तब अध्यापक ने उन्हें शांत कराने के बाद कहा- इसमें हंसने की बात नहीं है, यह बालक जानना चाहता है कि शून्य को विभाजित किया जाए, तो क्या परिणाम निकलता है। यह गणित का बहुत ही जटिल प्रश्न है, जिसका उत्तर खोजने में सैकड़ों वर्ष लगे। कुछ लोगों का विचार था कि शून्य को शून्य से विभाजित करने पर

शून्य ही होगा, जबकि अन्य लोगों का कि एक होगा। आखिर में भारतीय वैज्ञानिक भास्कर ने सिद्ध किया कि शून्य ही होगा, न कि एक।

अध्यापक ने बालक श्रीनिवास रामानुजन को आशीर्वाद देते हुए बैठने की अनुमति दी। यही बालक आगे चलकर महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन के नाम से जाना गया।

८४०) काला कौवा - एक बार की बात है, एक ऋषि ने एक सफेद कौवे को अमृत की तलाश में भेजा लेकिन कौवे को ये चेतावनी भी दी, तुम्हें केवल अमृत के बारे में पता करना है, उसे पीना नहीं है। अगर तुमने उसे पी लिया तो तुम इसका कुफल भोगोगे।

कौवे ने ऋषि की बात सुनकर हामी भर दी और उसके बाद अमृत की तलाश करने के लिए सफेद कौवे ने ऋषि से विदा ली। कौवे ने अमृत को बहुत ढूंढ़ा और एक साल के कठोर परिश्रम के बाद कौवे को आखिर अमृत के बारे में पता चल गया। अमृत देख कर उसे ऋषि के वचन याद आए कि उन्होंने अमृत पीने से मना किया था परंतु वह इसे पीने की लालसा रोक नहीं पाया और इसे पी लिया। ऋषि के उसे कठोरता से उसे नहीं पीने के लिए पाबंद किए जाने के बावजूद उसने ऐसा कर ऋषि को दिया अपना वचन तोड़ दिया। अमृत पीने के बाद उसे पछतावा हुआ कि उसने ऋषि के वचन को न मानकर गलती की है। अपनी गलती सुधारने के लिए उसने वापस आकर ऋषि को पूरी बात बताई।

ऋषि ये सुनते ही आवेश में आ गए और उसी आवेश में उन्होंने कौवे को शाप दे दिया और कहा कि क्योंकि तुमने अपनी अपवित्र चोंच से अमृत की पवित्रता को नष्ट कर बहुत ही घृणित कार्य किया है, इसलिए आज के बाद पूरी मानव जाति तुमसे घृणा करेगी और सारे पंछियों में केवल तुम होंगे जो सबसे नफरत भरी नजरों से देखे जाएंगे। किसी अशुभ पक्षी की तरह पूरी मानव जाति हमेशा तुम्हारी निंदा करेगी और चूंकि तुमने अमृत पिया है इसलिए तुम्हारी कभी भी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होगी न ही कोई बीमारी भी होगी और तुम्हें वृद्धावस्था भी नहीं आएगी। भाद्रपद के महीने के सोलह दिन तुम्हें पितरों का प्रतीक मानकर आदर दिया जाएगा। तुम्हारी मृत्यु आकस्मिक रूप से ही होगी। इतना कहकर ऋषि ने कौवे को अपने कमंडल के काले पानी में डुबो दिया। सफेद कौवा काले रंग का बनकर उड़ गया तभी से कौवे काले रंग के हो गए। हालांकि ये काले कौऐ की कहानी लोककथाओं के रूप में आज भी बहुत प्रचलित है लेकिन फिर भी यह ध्यान रखने की बात है कि किसी एक के किए कर्मों की सजा उसकी पूरी जाति को भुगतनी पड़ी हो, ऐसा देखा है। लेकिन एक बात तो पक्की है कि जो जैसा कर्म करता है उसे उसका फल भुगतना पड़ता है। इसलिए हमें वही काम करना चाहिए जिससे सबका भला हो और हमें कोई कष्ट न उठाना पड़े।

८४१) नहीं चाहिए अमरत्व - सिकंदर ने अपने बल पर दुनियाभर में धाक जमा ली थी। इसके बाद वह अमर होना चाहता था। उसने पता लगाया कि कहीं ऐसा जल है जिसे पीने से व्यक्ति अमर हो सकता है। सिकंदर उस जल की तलाश में निकल पड़ा। काफी दिनों तक देश दुनिया में भटकने के बाद आखिरकार सिकंदर ने वह जगह पा ही ली, जहां उसे अमृत की प्राप्ति होती। वह उस गुफा में प्रवेश कर गया, जहां अमृत का झरना था। उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने जल पीने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि एक कौवे की आवाज आई। वह कौवा गुफा के अंदर ही बैठा था। कौवा

जोर से बोला, ठहर, रुक जा, यह भूल मत करना। सिकंदर ने कौवे की तरफ देखा। वह बड़ी दुर्गति की अवस्था में था, बस कंकाल मात्र ही शेष रह गया था। सिकंदर ने कहा, तू रोकनेवाला कौन? कौवे ने उत्तर दिया, मेरी कहानी सुन लो, मैं अमृत की तलाश में था और यह गुफा मुझे भी मिल गई थी। मैंने अमृत पी लिया। अब मैं मर नहीं सकता, पर मैं अब मरना चाहता हूं। देख लो मेरी हालत। अब प्रार्थना कर रहा हूं परमात्मा चुपचाप गुफा से बाहर वापस लौट आया। वह समझ चुका था कि जीवन का आनन्द उस समय तक ही रहता है, जब तक हम उस आनन्द को भोगने की स्थिति में होते हैं।

८४२) एक बार एक गांव में सूखा पड़ा तो एक किसान का बच्चा जो बडा ही संवेदनशील था वो गाँव के कुएं से पानी पीठ पर लादकर कुछ पौधों की जड़ों में डालकर दोनों हाथ फैलाकर खुश होता और पौधों का जीवन बच गया। लेकिन बहुत सारे पौधें मक्का बाजरे के नन्हें पौधे जो बच नहीं पाये उन्हें देखकर बहुत दुखी हुआ तो गांव के बाहर मंदिर पर पंडित जी के पास दौड़ लगाकर पहुंच गया और रोकर बोला पंडित जी कुछ ऐसा करो कि सारे पौधों का जीवन बच जाये तो पंडित जी बोले इसके लिए तो वर्षा मेघ हवन करना होगा आप गांववालों से हवन सामग्री और हमारी दक्षिणा का इंतजाम कर बताओ कल सुबह हवन होगा फिर उस बच्चे ने अपने दादा जी को हवन सामग्री और कुछ लोगों को इस शुभ कार्य के लिए तैयार कर लिया हवन की तैयारियां शुरू हो गई सभी गांववाले मंदिर पहुंचे लेकिन वो बच्चा सुबह उठा तैयार हुआ सूट पहना और हाथ में छतरी लेकर मंदिर पहुंचा तो वहां उपस्थित गांववाले उसे देख हंसने लगे अरे पागल तू छतरी क्यों लाया है बच्चे का उत्तर था जब हवन के बाद बारिश आयेगी तुम सभी भीग जाओगे लेकिन मैं नहीं। इसलिए पूर्ण विश्वास व सकारात्मक सोच से किया कार्य हमेशा रंग लाता है।

८४३) बड़े बुजुर्ग जो भी कहते हैं, उसमें ही हमारी भलाई - किसी गांव में एक ब्राह्मण रहता था। एक बार किसी कार्यवश ब्राह्मण को किसी दूसरे गांव जाना था। उसकी मां ने उससे कहा कि किसी को साथ ले ले क्योंकि रास्ता जंगल का था। ब्राह्मण ने कहा, मां तुम डरो मत, मैं अकेला ही चला जाऊंगा क्योंकि कोई साथी मिला नहीं है। पर मैं अकेला ही अपने लिए काफी हूं और मैं अपना ध्यान रखूंगा।

मां ने उसका यह निश्चय जानकर कि वह अकेले ही जा रहा है पास की नदी से एक केंकड़ा पकड़ कर ले आई और बेटे को देते हुए बोली कि बेटा अगर तुम्हारा वहां जाना आवश्यक है तो इस केंकड़े को ही साथ के लिए ले लो। एक से भले दो यह तुम्हारा सहायक सिद्ध होगा।

पहले तो ब्राह्मण को केंकड़ा साथ ले जाना अच्छा नहीं लगा, वह सोचने लगा कि केंकड़ा मेरी क्या सहायता कर सकता है। फिर मां की बात को आज्ञा रूप मानकर उसने पास पड़ी एक डिब्बी कपूर की थी। उसे अपने झोले में डाल लिया और अपनी यात्रा के लिए चल पड़ा।

कुछ दूर जाने के बाद धूप काफी तेज हो गई। गर्मी और धूप से परेशान होकर वह एक पेड़ के नीचे आराम करने लगा। पेड़ की ठंडी छाया में उसे जल्दी ही नींद भी आ गई। उस पेड़ के कोटर में एक सांप भी रहता था। ब्राह्मण को सोता देखकर वह उसे डसने के लिए कोटर से बाहर निकला। जब वह ब्राह्मण के करीब आया तो उसे कपूर की सुगंध आने लगी। वह ब्राह्मण के बजाय झोले में रखे केकड़ेवाली डिब्बी की तरफ हो लिया। उसने जब डब्बी को खाने के लिए झपटा मारा तो

डब्बी टूट गई जिससे केंकड़ा बाहर आ गया और डिब्बी सांप के दांतों में अटक गई। केंकड़े ने मौका पाकर सांप को गर्दन से पकड़ कर अपने तेज जबड़ों से कस लिया। सांप वहीं पर ढेर हो गया।

उधर नींद खुलने पर ब्राह्मण ने देखा की पास में ही एक सांप मरा पड़ा है। उसके दांतों में डिबिया देख कर वह समझ गया कि इसे केंकड़े ने ही मारा है। वह सोचने लगा है कि मां की आज्ञा मान लेने के कारण आज मेरे प्राणों की रक्षा हो गई, नहीं तो यह सांप मुझे जिंदा नहीं छोड़ता। उसने केंकड़े को उठाया और अपने सीने से लगा लिया और रोने लगा।

इसलिए हमें अपने बड़े, माता-पिता और गुरुजनों की आज्ञा का पालन जरूर करना चाहिए। हमारे बड़े जो भी हमसे कहते हैं हमेशा हमारा भला सोचकर ही कहते हैं।

८४४) सीक्रेट होमवर्क - अक्सर एक जगह टिककर न बैठनेवाला, दिनभर ऊधम मचानेवाला मेरा ८ वर्षीय बेटा प्रणव आज चुपचाप एक कोने में बैठकर कुछ लिख रहा था। मुझे जिज्ञासा हुई और मैं उसके पास जा पहुंची उसने अपनी कॉपी छुपा ली। मैं थोड़ा चौकी पर फिर संभल कर उससे पूछा, प्रणव आप क्या कर रहे हो, मुझै दिखाओ तो जरा? उसने बात टालने के अंदाज में कहा, कुछ भी तो नहीं, होमवर्क कर रहा हूं। फिर छुपाया क्यों? मैंने पूछा।

कहां छुपाया, वह तो एक्चुली मैम ने सीक्रेट होमवर्क दिया है, अपने आप ही करना है बिना किसी की मदद के। उसने सफाई दी। मैं मुस्कुरा कर वहां से हट गई पर मन जानने को आतुर हो रहा था कि ऐसा क्या सीक्रेट होमवर्क है? मैं दूर बैठी देखती रही और सोचती रही कि क्या हो सकता है सीक्रेट होमवर्क। जितने दिमाग के घोड़े दौड़ा रही थी, उतनी उलझती जा रही थी। मन इसलिए भी जिज्ञासु हो रहा था क्योंकि प्रणव कभी भी होमवर्क अपने आप नहीं करता उसके पीछे लगना पड़ता है। दो लाइन लिखता है और फिर किसी ने किसी बहाने से भाग खड़ा होता है। तीन-चार बार झांकने की कोशिश की पर सफलता नहीं मिली। फिर मेरी उत्सुकता पराकाष्ठा पर पहुंच गई। उसे थोड़ा लालच दिया, नाराज हुई, किसी को नहीं बताने का वादा भी किया, पर वह टस से मस नहीं हुआ। अब मैं क्या करूं?

साम दाम दंड भेद सब अपना लिए, पर वह किसी भी तरह से वश में नहीं आ रहा था और मेरा मन कहीं न कहीं, वहीं अटक गया.. किसी और काम में लगने को तैयार ही नहीं। बड़े अनमने भाव से खाना बनाया, सबको खिलाया, काम खत्म किया और आकर पलंग पर लेट गई। पतिदेव ने उदास होने का कारण पूछा तो सिरदर्द का बहाना बना दिया। धीरे-धीरे घर के सभी सदस्य नींद के आगोश में समा गए पर मेरी आंखों में नींद कहां? क्या करूं क्या करूं जो मुझे सीक्रेट होमवर्क के बारे में पता चल जाए और फिर मैंने अपनी फितरत के खिलाफ वह किया जो पहले कभी नहीं किया था। चोरी से दबे पांव प्रणव के स्टडी टेबल के पास गई और उसकी बैग खोली, कॉपी निकाली और पढ़ने लगी। सीक्रेट होमवर्क था- आपका प्रिय व्यक्ति कौन है, और क्यों? जवाब में प्रणव ने जो लिखा था वह पढ़कर मैं जड़वत हो गई, आंखों में आंसू भर चलें। प्रणव पर जितना प्यार आ रहा था, उतनी ही अपने आप से खीज हो रही थी। मन धिक्कार रहा था अपने आपको। क्यो मैं उस मासूम की मनोदशा नहीं समझ पाई? क्यों मां होकर भी मैंने उसे इतनी मानसिक पीड़ा दी? प्रणव ने लिखा था, मेरी प्रिय व्यक्ति मेरी बुआ की बेटी नेहा दीदी हैं। वह कहने के लिए मुझसे बहुत बड़ी है पर वह मेरी सच्ची दोस्त हैं। नेहा दीदी मेरी सब बात मानती हैं और मेरा मजाक भी नहीं उड़ाती हैं सब की तरह। मैं कुछ कहता

हूं तो वह मेरी बात गम्भीरता से सुनती हैं। मैं घर में सबसे छोटा हूं शायद इसीलिए कोई मुझे गम्भीरता से नहीं लेता, सब मेरा मजाक उड़ाते हैं, मेरी मम्मी भी।

बारम्बार पढ़ रही थी प्रणव का लिखा और सोच रही थी कि मां-बाबा ने बहुत बार समझाया था मुझे कि इसका इतना मजाक नहीं उड़ाया करो, उसके कोमल मन पर असर पड़ता है, उसका मनोबल टूटता है, कहीं वह मेरे खिलाफ अपने मन में कोई ग्रंथि ना पाल ले। पर मैंने कभी भी उनकी बातों पर गंभीरता से विचार नहीं किया। मेरा मानना था कि प्रणव अभी बहुत छोटा है, उसको कहां इतनी समझ कि वह कोई बात का बुरा माने और अपने मन में कोई भी ग्रंथि पाले। उसको चिढ़ाने पर हम सबके चेहरे पर मुस्कान आ जाती थी, घर में सब जगह हंसी गूंजती थी। और जब वह रोता तब सब घरवाले उसको हाथों-हाथ लेते, उसका खूब लाड़ करते, उसे चॉकलेट लाकर देते और अपने आपको दिलासा देते कि प्रणव को रूलाने की, चिढ़ाने की भरपाई हो गई है। मुझे यकीन है कि प्रणव की ऐसी भावदशा हो रही है किसी ने इसकी कल्पना भी न की होगी। बात जो बिगड़नी थी वह तो बिगड़ गई पर अब मैं क्या करूं बिगड़ी बात संवारने के लिए? अचानक मेरी आंखों में चमक आ गई और मैंने अपने आप से वादा किया अपने बेटे की सबसे अच्छी मित्र बनने का, उसे फिर से अपना बनाने का, उसका खोया विश्वास फिर से वापस लाने का। ऐसी सूझ-बूझ उत्पन्न होने पर मेरा मन हल्का हो चला था और चेहरे पर मुस्कान वापस लौट आई थी। उसी लौटी हुई मुस्कान के साथ मैं सोने चली गई ताकि कल एक नई सुबह का स्वागत कर सकूं। पहला ममतापूर्ण कदम बढ़ा सकूं अपने बेटे की तरफ।

८४५) जरूरी काम - प्रसिद्ध दार्शनिक और चिकित्सक अल्बर्ट श्वाइत्जर मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत थे। उन्होंने अपना लगभग सारा जीवन मध्य अफ्रीका के बेहद अभावग्रस्त क्षेत्रों में मानवता की सेवा के लिए समर्पित कर दिया था और उन्हें इसके लिए वर्ष १९५२ के नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उनके हृदय में मनुष्यों के लिए ही नहीं बल्कि प्राणी मात्र के लिए दया भावना थी। वे छोटे-से-छोटे प्राणी की पीड़ा भी नहीं देख सकते थे और उसे तकलीफ से बाहर निकालने के लिए यत्न करने लगते।

एक बार उन्हें अपने एक मित्र के साथ जरूरी काम से ट्रेन द्वारा कहीं जाना था। स्टेशन बहुत दूर था और पहले ही काफी देर हो चुकी थी। उन्होंने अपना आवश्यक सामान एक डंडे पर बांधा और उसे अपने कंधे पर लादकर चल दिए। समय बहुत कम था और दोनों मित्र तेज चाल से चले जा रहे थे। श्वाइत्जर अपने मित्र के आगे चल रहे थे। अचानक श्वाइत्जर उछलकर रास्ते के एक ओर खड़े हो गए। उनका मित्र झटका खाकर गिरते-गिरते बचा। मित्र ने पूछा क्या हुआ? श्वाइत्जर ने कहा देखो, यह एक छोटा सा जीव रास्ते में पड़ा हुआ है। अभी यह हमारे पैरों के नीचे आकर कुचला जाता। इसे यहां से हटा देना चाहिए। श्वाइत्जर के मित्र ने देखा कि एक कुत्ते का पिल्ला रास्ते में बेहाल पड़ा है। उसने समझाया कि समय बहुत कम है और इस चक्कर में पड़े तो ट्रेन छूट जाएगी। लेकिन श्वाइत्जर ने उसकी नहीं सुनी और अपने डंडे की सहायता से उसे रास्ते से दूर हटा दिया ताकि उनके बाद में रास्ते से गुजरनेवाले के पैरों के नीचे वह प्राणी न आ जाए। उसके बाद उन्होंने स्टेशन के लिए दौड़ लगा दी। वहां पहुंचने तक गाड़ी ने सीटी दे दी थी और वे दोनों बड़ी कठिनाई से गाड़ी पकड़ सके। श्वाइत्जर ने अपने मित्र के मन में चल रहे भावों को भांपकर उससे पूछा किसी जीव की रक्षा करना ट्रेन

पकड़ने से ज्यादा जरूरी काम नहीं है क्या?

८४६) देखना है आखिर ऊंट किस करवट बैठता है? - एक गांव में सात दिन बाद हाट लगता था। जहाँ सब्जी, दाल, अनाज, कपड़े आदि घर-गृहस्थी का सभी सामान बिकने आता था। आसपास के गांवों के लोग भी सामान लेने आते थे। हाट में दुकानदार छोटा-मोटा सामान अपने सिर पर रखकर ही लाते थे। एक ही गांव में एक कुंजड़ा और कुम्हार भी अपना सामान हाट में ले जाते थे। कुंजड़ा फल-सब्जियां आदि ले जाता था और कुम्हार अपने मिट्टी के बर्तन। इनको सामान का इतना भाड़ा देना पड़ता था कि मुनाफा बहुत कम रह जाता था। उसी गांव में एक ऊंटवाला भी था, जो हाट में दुकानदारों का सामान लाता ले जाता था। कुंजड़ा और कुम्हार ने तय किया कि हम अपना सामान ऊंट से ले चलते हैं। जो किराया आएगा, आधा-आधा करके दे देंगे। बचत देखकर दोनों तैयार हो गए। उन्होंने अपने गांव का ही ऊंट तय कर लिया और हाट के दिन एक और कुम्हार ने बर्तन लादें और दूसरी ओर कुंजड़े ने अपनी सब्जियां लादीं। दोनों हाट को चल दिए। ऊंटवाला रस्सी पकड़े आगे-आगे जा रहा था और ये दोनों साथ-साथ चल रहे थे। ऊंट ने एक बार अपनी गर्दन पीछे की ओर घुमाई तो उसे सब्जी के पत्ते लटकते दिखाई दिए। ऊंट भूखा था। ऊंट की डोरी लंबी थी, इसलिए ऊंट ने पीछे गर्दन करके सब्जी के कुछ पत्ते मुंह में ले लिए और खा गया। यह देखकर कुंजड़ा मन ही मन दु:खी हुआ। जब ऊंट ने दोबारा सब्जियों के पत्तों में मुंह मारा तो ऊंटवाले से कुंजड़े ने कहा, ऊंटवाले भैया, डोरी जरा ,खींच कर रखो; ऊंट सब्जियों में मुंह मार रहा है। ऊंटवाला बोला, अच्छा भैया, ध्यान रखूंगा। लेकिन ऊंटवाले के ध्यान रखने के बाद भी ऊंट सब्जियों में से कुछ-न-कुछ खींच लेता था। कुम्हार कुंजड़े का नुकसान देखकर मजाक उड़ाने लगा। शुरू में तो दोनों ओर बराबर वजन के सामान थे। बल्कि थोड़ा सब्जियों का ही भार अधिक था। कुंजड़े को अब लगने लगा था कि हाट पहुंचते-पहुंचते सब्जियां कम हो जाएंगी। ऊंट ने एक बार फिर सब्जियों में मुंह मारा तो कुम्हार हंस दिया। कुम्हार के हंसने पर कुंजड़े ने कहा, देखते हैं, ऊंट किस करवट बैठता है?

कुंजड़े की बात सुनकर कुम्हार हंस दिया और कुंजड़े की ही बात को दोहरा दिया। देखते हैं, ऊंट किस करवट बैठता है? ऊंट के सब्जियों में बार-बार मुंह मारते रहने के कारण इस ओर वजन कम होता जा रहा था। धीरे-धीरे बर्तनों का झुकाव नीचे की ओर बढ़ने लगा। यह देखकर कुम्हार का मजाक करना बंद हो गया। अब कुम्हार मन-ही-मन चिंतित होने लगा और सोचने लगा कि ऊंट किस करवट बैठता है।

जब ऊंट हाट में पहुंचा तो उन्होंने सामान लगाने की जगह पर ऊंट को बैठाया। चूंकि बर्तनों का वजन भारी था, इसलिए ऊंट उसी करवट बैठा। कुम्हार के तमाम बर्तन टूट गए। कुंजड़ा व्यंग्य भरी नजरों से कुम्हार को देखकर बोला- देखते हैं, ऊंट किस करवट बैठता है।

८४७) बिन विचारे जो करे सो पाछे पछताय - किसी जंगल में एक हाथी रहता था। हाथी बहुत बड़ा और ताकतवर था। कोई भी जंगली जानवर उस हाथी के नजदीक नहीं फटकता था। सब जानवर उससे डरते थे। वैसे हाथी किसी जानवर को कुछ भी नहीं कहता था। अकेला ही जंगल में घूमता रहता था। अपनी लंबी सूंड से ऊंचे-ऊंचे पेड़ों की टहनियों को तोड़कर खाया करता था और जंगल के बीचवाले तालाब से पानी पीकर वहीं पड़ा रहता था। इसी

जंगल में एक लोमड़ियों का झुंड भी रहता था। लोमड़ियों का झुंड भी हाथी को देखकर परेशान रहता था। खुलकर शिकार नहीं कर सकता था।

एक बार लोमड़ियों ने एक सभा बुलाई जिसमें उन्होंने हाथी को ठिकाने लगाने की सोची। उन्होंने सोचा कि अगर हाथी को मार गिराया तो काफी दिनों के लिए खाना भी हो जाएगा और हाथी से छुटकारा भी मिल जाएगा। पर किसी में भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि हाथी का मुकाबला कर सके।

आखिर में एक लोमड़ी ने कहा हाथी को तो मैं मार सकती हूं। अगर सभी मेरा साथ दें तो। सभी ने हामी भर दी। लोमड़ी ने कहा तुम देखते जाओं मैं हाथी से कैसे निपटती हूं।

अगले दिन लोमड़ी सुबह-सुबह हाथी के घर चली गई और हाथी को प्रणाम किया। हाथी ने लोमड़ी से पूछा तुम कौन हो कहां से आई हो, तुम्हें पहले कभी देखा नहीं हैं। लोमड़ी ने कहा हमारे जंगल में कोई भी राजा नहीं है। आप बहुत बड़े भी हैं और ताकतवर भी हैं। इसलिए सभी जंगल के जानवरों ने फैसला किया है कि आपको ही जंगल का राजा बनाया जाएं। राजा बनाने की बात सुनकर हाथी बहुत खुश हो गया। हाथी को खुश हुआ देखकर लोमड़ी ने कहा राजा बनाने का मुहूर्त कल सुबह का ही निकला है इसलिए हमें आज ही वहां जाना होगा। ताकि सुबह समय पर राज्याभिषेक किया जा सकें। इतना सुनते ही हाथी चलने को तैयार हो गया। आगे आगे लोमड़ी चलने लगी और पीछे-पीछे हाथी चलने लगा। लोमड़ी हाथी को एक ऐसे रास्ते से ले गई जहां दलदल से होकर जाना पड़ता था। लोमड़ी हलकी होने से दलदल के ऊपर से आराम से निकल गई लेकिन हाथी ज्यों ही दलदल के ऊपर से जाने लगा उसके पैर दलदल में धंस गए। हाथी ने लोमड़ी को आवाज देकर रुकने को कहा लोमड़ी ने मुड़कर देखा तो हाथी दलदल में फंसा हुआ था और जितनी कोशिश बाहर निकलने की करता था उतना ही दलदल में फंसता जा रहा था। लोमड़ी ने देखा कि उसकी चाल काम कर गई है। लोमड़ी खुशी-खुशी अपने साथियों को बुलाने को चली गई वापस आने पर देखा कि हाथी दलदल में दब चुका है यह देखकर लोमड़ी का दल बहुत खुश हुआ और हाथी को खाने के लिए टूट पड़ा।

इस तरह हाथी ने बहकावे में आकर अपनी जान गंवा दी। इसलिए कहते हैं कि बिना सोचे समझे किसी के बहकावे में नहीं आना चाहिए।

८४८) बिना विचारे किसी की नकल न करें - गांव के एक छोटे से व्यापारी ने अपने कार्य के लिए दो जानवर पाल रखे थे, उनमें एक था घोड़ा और एक था गधा। एक दिन शहर जाकर उसने नमक और रूई गांव में बिक्री के उद्देश्य से खरीद कर नमक घोड़े की पीठ पर लाद दिया और रूई की गांठ गधे पर रख दी। काम समाप्त होने पर दोनों जीवों को लेकर चल पड़ा गांव की ओर। मार्ग में एक छोटी नदी पार करने के उद्देश्य से व्यापारी के साथ दोनों ने नदी में प्रवेश किया। नदी के मध्य में पहुंचकर घोड़े ने नदी के जल में डुबकी लगाई, नमक पानी में घुल गया। गधे ने घोड़े से पूछा, यह तुम क्या कर रहे हो। घोड़े ने कहा, वजन हल्का कर रहा हूं। यह सुनकर गधे ने भी जल में डुबकी लगाई। जल सोखकर रूई का वजन इतना बढ़ गया कि गधा बोझ के कारण उठ न सका और जल में डूबने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। किसी ने सत्य ही कहा है बिना विचारे जो करे सो पीछे पछिताय।

८४९) जब राजा ने की सबसे साहसी व्यक्ति की खोज - एक राजा था। उसने अपने जादूगर को एक साहसी व्यक्ति की खोज करने को कहा। उसे एक जोखिम भरे कार्य के लिए किसी हिम्मती व्यक्ति की तलाश थी। बहुत खोज करने के बाद जादूगर ने चार आदमियों को चुना। राजा ने उसमें से सर्वश्रेष्ठ को चुनने के लिए परीक्षा आयोजित करने का आदेश दिया। राजा, जादूगर और चार व्यक्ति एक बड़े से मैदान में पहुंचे मैदान के दूसरे सिरे पर एक अनाजघर था। हर व्यक्ति को एक-एक करके उस अनाजघर तक पहुंचना था और वहां रखे सामान को राजा और जादूगर के पास वापस लाना था।

पहला व्यक्ति अनाजघर की ओर बढ़ने लगा। तभी तेज आंधी चलने लगी। बिजली कड़कने लगी। आदमी कुछ घबराया। तूफान और बढ़ा। अब चीखें भी सुनायी देने लगी। आदमी डर गया और वहीं बेहोश होकर गिर गया। अब दूसरे की बारी थी। तूफान बढ़ गया था। दूसरा व्यक्ति, पहलेवाले से कुछ आगे तो बढ़ा, पर थोड़ी ही देर बाद उसका साहस भी जवाब दे गया। तीसरे व्यक्ति ने शुरूआत उत्साह से की। वह दोनों से आगे भी निकल गया, पर तभी एक जोरदार आवाज आयी, जमीन हिलने-डुलने लगी। यह देखकर तीसरा व्यक्ति भी जमीन पर गिर गया।

चौथे ने धीरे-धीरे अपनी शुरुआत की उसके चेहरे पर डर देखा जा सकता था। उसे यह बात ज्यादा डरा रही थी कि उसे भी डरा हुआ मान लिया जाएगा। धीरे-धीरे उसने पहले व्यति को पार किया। खुद से कहा, मैं अभी तक सलामत हूं। कदम-कदम बढ़ाते वह दूसरे से भी आगे निकल गया। उसने तब भी खुद से कहा, मैं अभी तक ठीक हूं। तूफान बदतर होता रहा। अब तीसरा व्यक्ति भी पीछे रह गया। अभी मुझे कुछ नहीं हुआ है। यही सोचकर जब उसने दरवाजा छुआ तो धरती का हिलना बंद हो गया। सूरज चमकने लगा। उसे लगा कि यह शायद चाल थी। तभी दरवाजे के पीछे से आवाज आने लगी। मैं अभी तक सलामत हूं। यह सोचकर वह फिर अंदर चला गया। वहां एक सफेद घोड़ा चने खा रहा था। शस्त्रों के साथ एक पोशाक रखी थी। आदमी ने उसे पहना और घोड़े पर बैठकर राजा के पास आकर कहा- राजन्, मैं तैयार हूं। तुम्हें कैसा लग रहा है? राजा ने पूछा। आदमी ने कहा- मैं अभी तक सलामत हूं।

८५०) सभी हैं चोर - पुराने जमाने की बात है। एक आदमी को अपराध में पकड़ा गया। उसे राजा के सामने पेश किया गया। उन दिनों चोरों को फांसी की सजा दी जाती थी। अपराध सिद्ध हो जाने पर इस आदमी को भी फांसी की सजा मिली। राजा ने कहा, फांसी पर चढ़ने से पहले तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ। आदमी ने कहा- राजन। मैं मोती तैयार करना जानता हूं। मेरी इच्छा है कि मरने से पहले कुछ मोती तैयार कर जाऊं। राजा ने उसकी बात मान ली और उसे कुछ दिन के लिए छोड़ दिया। आदमी ने महल के पास एक खेत की जमीन को अच्छी तरह खोदा और समतल किया। राजा और उसके अधिकारी वहां मौजूद थे। खेत ठीक होने पर उसने राजा से कहा, महाराज, मोती बनाने के लिए जमीन तैयार है, लेकिन इसमें बीज वही डाल सकेंगा, जिसने तन से या मन से कभी चोरी न की हो। मैं तो चोर हूं, इसलिए बीज डाल नहीं सकता। राजा ने अपने अधिकारियों की ओर देखा। कोई भी उठकर नहीं आया। तब राजा ने कहा, मैं तुम्हारी सजा माफ करता हूं। हम सब चोर हैं, चोर, चोर को क्या दंड देगा।

८५१) बुरी संगत से हमें सदैव दूर रहना चाहिए, अवश्य लाभ होगा- किसी गांव में एक किसान रहता था। किसान बहुत मेहनती था। उसके खेतों में बहुत अच्छी फसल हुआ करती थीं। किसान के खेत के पास ही एक जलाशय

भी था। जिसके किनारे बहुत सारे बगुले भी रहा करते थे। बगुले किसान की फसल को काफी नुकसान पहुंचाया करते थे।

एक दिन किसान ने बगुलों को पकड़ने के लिए अपने खेत में जाल बिछा दिया। कुछ समय बाद आकर देखा तो बहुत सारे बगुले जाल में फंसे हुए थे।

इस जाल में एक सारस भी फंसा हुआ था। सारस ने किसान से कहा। किसान भाई मैं बगुला नहीं हूं। मैंने तुम्हारी फसल बर्बाद नहीं की है। मुझे छोड़ दो। तुम विचार करके देखो कि मेरी कोई गलती नहीं है। जितने भी पक्षी हैं, मैं उन सब की अपेक्षा अधिक धर्म परायण हूं। मैं कभी किसी का नुकसान नहीं करता। मैं अपने वृद्ध माता-पिता का अति सम्मान करता हूं और विभिन्न स्थानों में जाकर प्राण-पण से उनका पालन पोषण करता हूं। इस पर किसान बोला- सुनो सारस, तुमने जो बातें कहीं, वे सब ठीक हैं, उनपर मुझे जरा भी संदेश नहीं हैं, परंतु तुम फसल बर्बाद करनेवालों के साथ पकड़े गए हो, इसलिए तुम्हें भी उन्हीं लोगों के साथ सजा भोगनी होगी। इसीलिए कहते हैं कि कुसंगत का फल बुरा होता है। इसलिए हमेशा हमें बुरी संगत से दूर रहना चाहिए।

८५२) दयावान शेर और भोली गाय - बहुत समय पहले की बात है किसी जंगल में एक गाय रहती थी। वह जंगल में घास चरकर अपना पेट भरती थी। उसी जंगल में एक शेर भी रहता था जो जानवरों का शिकार किया करता था। कुछ समय बाद गाय ने एक बछड़े को जन्म दिया। बछड़े को जंगली जानवरों से बचाने के लिए गाय ने एक सुरक्षित जगह ढूंढ ली।

गाय सुबह अपने बछड़े को दूध पिला कर उस सुरक्षित जगह पर बैठा जाती और खुद जंगल में घास चरने चली जाया करती थी। बछड़ा सारा दिन वहीं बैठा रहता और खेलता रहता था। शाम को गाय आकर उसे दूध पिलाती और बहुत सारा प्यार देती। मजे से गाय और बछड़े के दिन बीत रहे थे। एक दिन जब गाय शाम को जंगल से वापस आ रही थी। तो उसे एक पेड़ के नीचे शेर बैठा हुआ दिखाई दिया। गाय कुछ सोचती इससे पहले शेर ने गाय को देख लिया और अपने पास बुला लिया। गाय डरती हुई शेर के पास गई तो शेर ने कहा मैं भूखा हूं तुम्हें खाना चाहता हूं गाय ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

मुझे कोई एतराज नहीं है आप मुझे खा सकते हैं। लेकिन मेरी एक विनती है, मेरा बछड़ा सुबह से भूखा है पहले मैं उसे दूध पिला आऊं फिर आप मुझे मार कर खा लेना। शेर ने कहा तुम भाग जाओगी दोबारा यहां नहीं आओगी। इसलिए अभी खाता हूं। गाय ने कहा मैं वादा करती हूं कि बछड़े को दूध पिलाकर मैं जरूर वापस आ जाऊंगी। शेर ने कहा ठीक है जाओ और जल्दी वापस आ जाना। गाय अपने बछड़े के पास गई, उसको दूध पिलाया और बहुत सारा प्यार किया। गाय की आंखें भर आई। गाय आंसू पोंछते हुए शेर के पास लौट आई। शेर से कहा अब आप मुझे खा सकते हैं। गाय के इस भोलेपन को देखकर शेर को दया आ गई। शेर ने गाय से कहा मैंने तुम्हें जीवन दान दिया जाओ जाकर अपने बछड़े को दूध पिलाओ और बहुत सारा प्यार दो। गाय खुशी-खुशी अपने बछड़े के पास आ गई और दोनों आराम से रहने लगे।

८५३) धीरज का फल - आस्ट्रेलिया की घटना है। उसके पश्चिमी किनारे ६ मील की दूरी पर एक जहाज चट्टान से टकरा गया। जहाज के सारे कर्मचारी बड़ी तत्परता से सुरक्षा का काम करने लगे। जहाज में साढ़े चार सौ मुसाफिर थे। वे सब शान्ति से अपनी अपनी जगह पर रहे।

इतने में जहाज के अधिकारी ने हुक्म दिया, डोंगियों पर चढ़ो। सारे मुसाफिरों ने सुरक्षा की पेटियां पहन लीं। उनमें एक आदमी नेत्रहीन था। वह अपने नौकर का हाथ थामे डेक पर आया। एक आदमी बीमार था। वह भी किसी का सहारा लेकर आया। सब लोगों ने एक ओर हटकर उनके लिए रास्ता कर दिया। अपनी अपनी बारी से वे सब नावों में उतर गए। जहाज खाली हो गया। फिर उनके देखते-देखते वह समुद्र के पेट में समा गया।

डोंगी पर बैठी एक स्त्री गाने लगी। प्यारे नाविक, बढ़ो किनारा पास है, कर्म करो जब तक इस तन में सांस है। यह जीवन साहस का दूजा नाम है। प्यारे नाविक, बढ़ो किनारा पास है।

मल्लाहों का हौसला बढ़ गया और सारे यात्री सकुशल किनारे पहुंच गए। यदि मुसाफिर घबरा गए होते और उन्होंने धीरज न रखा होता तो उनमें से बहुतों की जान चली गई होती।

८५४) जब बीरबल ने कहा, चोर की दाढ़ी में तिनका, तब... - बादशाह अकबर बीरबल से अक्सर अजीब सवाल पूछते थे ऐसा इसलिए कि वह उसे सवाल-जवाब में हराना चाहते थे, लेकिन बीरबल सभी सवालों के जवाब भी बड़ी आसानी से देता था। एक दिन उन्होंने बीरबल को छकाने की एक शानदार तरकीब खोज निकाली। बादशाह ने दरबार जाने से पहले ही अपने बेशकीमती अंगूठी उतारकर चुपके से एक सरदार को दे दी और उससे बात छुपाकर रखने के लिए कहा। अगले दिन बादशाह दरबार में पहुंचे और कार्यवाही शुरू की गई, लेकिन बनावटी उदासी लिए बैठै बादशाह को उदास देखकर जब बीरबल उनके पास आए तो बादशाह ने कहा, आज हमारी अंगूठी पता नहीं कहां खो गई है।

सुबह तो वह हमारे पास ही थी। शौच जाते वक्त मैंने वहीं उतार कर रख दी और जब वापस लौटा तो देखा कि अंगूठी गायब है। बीरबल बादशाह की सारी बात चुपचाप सुनते रहे। बादशाह ने आगे कहा, मुझे यकीन है कि यह काम महल के ही किसी व्यक्ति ने किया है। बाहरी आदमी ऐसा करने की जुर्रत भी नहीं कर सकता है। बीरबल तुम तो ज्योतिषशास्त्र बखूबी जानते हो इसलिए चोर का पता लगाने का कार्य मैं तुम्हें सौंपता हूं। बीरबल ने बादशाह से उस जगह का पता पूछा जहां उन्होंने शौच जाने से पहले अंगूठी रखी थी। बादशाह अकबर ने एक अलमारी की ओर इशारा किया। बीरबल ने उस अलमारी के पास जाकर उससे कान लगाकर कुछ देर बाद हटा लेने का नाटक किया। देखने से यह लगता था जैसे वह कोई बात सुनने की कोशिश कर रहा है। कुछ देर बाद बीरबल ने बादशाह की तरफ देखकर कहा, अलमारी साफ बताती है कि जिसके पास अंगूठी है, उसकी दाढ़ी में तिनका है। बीरबल की बात को जब पास ही बैठै सरदार ने सुना, जिसको बादशाह ने अंगूठी दी थी, तो यह घबराकर अपना मुंह और दाढ़ी टटोलने लगा। बीरबल तो पहले से ही चौकन्ने थे। सरदार की हरकत उनसे छिपी नहीं रह सकी। फौरन ही बीरबल ने उस सरदार को पकड़ लिया और थोड़ी ही देर में बादशाह के सामने पेश करते हुए बीरबल बोला जहांपनाह, आपकी अंगूठी का चोर यही है। यह बात बादशाह पहले से ही जानते थे। वह बीरबल की इस चतुराई से बेहद खुश हुए। बादशाह मंत्री बीरबल की चतुराई से एक बार फिर हार गए। उन्होंने बीरबल को अशर्फियां देकर उनका मान बढ़ाया।

८५५) मनुष्य की आयु - बहुत पुराने समय की बात है। एक दिन भगवान का दरबार लगा था। भगवान सभी प्राणियों की आयु निश्चित करने बैठे थे। इसी बीच मनुष्य, गधा, कुत्ता और उल्लू चारों एक साथ भगवान के सामने हाजिर हुए।

भगवान ने चारों को ४० साल की आयु दे दी। मनुष्य को भगवान का यह निर्णय पसन्द नहीं आया। उसे बुरा लगा। उसने सोचा, मैं सब प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता हूं, फिर भी मेरी उमर गधे, कुत्ते और उल्लू जैसे तुच्छ प्राणियों के बराबर ही क्यों? सचमुच भगवान के घर भी अन्धेर-ही-अन्धेर है। लेकिन उस समय वह कुछ बोला नहीं।

कुछ दिनों के बाद मनुष्य भगवान के पास पहुंचा और कहने लगा, भगवान, मुझे आपके सामने अपनी एक शिकायत रखनी है। उस दिन आपने मेरी, गधे की ओर उल्लू की आयु एक-सी निश्चित करके मनुष्य प्राणी के साथ भारी अन्याय किया है। क्या हमारे और इन तुच्छ प्राणियों के बीच कोई अन्तर ही नहीं है? अतएव मेरी आपसे नम्र विती है कि आप इस विषय में शान्तिपूर्वक विचार करें। भगवान ने कहा, अच्छी बात है। इस पर भगवान ने गधे, कुत्ते और उल्लू से पूछ कर उनके जीवन में से बीस-बीस वर्ष कम करके मनुष्य की आयु में ६० वर्ष बढ़ा दिए और उसकी आयु सौ वर्ष की कर दी। लेकिन नतीजा क्या हुआ? मनुष्य अपनी जिन्दगी शुरू के चालीस साल आदमी की तरह पूरे जोश और उत्साह के साथ बिताता है। उसके बाद २० साल उसे गधे की आयु के मिलते हैं। इन बीस वर्षों के बीच उसे लड़के-लड़की, बहू, नाती-पोते आदि के रूप में सारी गृहस्थी का भार गधे की तरह ढोना पड़ता है।

फिर कुत्ते की आयु में से प्राप्त २० साल मिलते हैं। इन बीस वर्षों में घर के दरवाजे के पास ही उसकी खटिया रहती है। वह उस पर बैठा-बैठा घर वालों को और बाहर वालों को आते-जाते देखता है और कुत्ते की तरह उन्हें घूरता रहता है। अस्सी साल पूरे होने पर मनुष्य के नसीब में उल्लू की आयु के २० बरस लिखे रहते हैं। इसलिए वह दिन में उल्लू की तरह खुली आंख लिए अंधा-सा बैठा रहता है और रात को उल्लू की भांति बिना सोए ही जागता पड़ा रहता है। मनुष्य में इन तीनों प्राणियों के ये गुण आ जाने के बाद उसे इन तीनों दीन प्राणियों के प्रति घृणा-सी पैदा हो गई है। गधे पर उसकी ताकत से ज्यादा बोझ लादकर और उसे डंडे से पीट-पीटकर मनुष्य गधे की अपनी जिन्दगी के बैर का बदला लेता है। कुत्ते को दुत्कार-दुत्कार कर वह कुत्ते की अपनी जिन्दगी के बैर का बदला लेता है और उल्लू का तो मुंह देखना भी उसे नहीं सुहाता।

८५६) सबसे बड़ा धर्म - सुबह गंगा में स्नान करने के बाद गुरुदेव और सभी शिष्य पूजा करने बैठ गए। सभी ध्यान कर रहे थे, तभी एक बच्चे की आवाज सुनाई पड़ी। वह मदद के लिए पुकार रहा था। तभी एक शिष्य अपनी जान की परवाह किए बगैर नदी की ओर दौड़ पड़ा। वह किसी भी तरह से उस बच्चे को बचाकर किनारे तक लाया। तब तक सभी शिष्य ध्यान में मग्न थे। लेकिन गुरुजी यह सब कुछ घटनाक्रम अपनी आंखों से देख रहे थे। तब गुरुजी ने कहा, एक रोते हुए बच्चे की पुकार सुन तुम्हारा एक मित्र बच्चे को बचाने के लिए नदी में कूद पड़ा। शिष्यों ने कहा, उसने पूजा छोड़कर अधर्म किया है। इस पर गुरुदेव ने कहा, अधर्म उसने नहीं, तुम लोगों ने किया है। तुमने डूबते हुए बच्चे की पुकार अनसुनी कर दी, पूजा-पाठ, धर्म-कर्म का एक ही उद्देश्य होता है प्राणियों की रक्षा करना। तुम आश्रम में धर्मशास्त्रों, व्याकरणों, धर्म-कर्म आदि में पारंगत तो हुए लेकिन धर्म का सार नहीं समझ सके। परोपकार और संकट में फंसे दूसरे की सहायता करने से बड़ा कोई धर्म नहीं।

८५७) डर से मुक्ति - एक व्यक्ति कहीं जा रहा था। उसे हृदय पक्षाघात आ गया लेकिन वो बच गया। इस घटना के बाद उसे हर बात से डर लगने लगा। वह मनोवैज्ञानिक के पास गया और बोला, अज्ञात भय के कारण मेरे जीवन

में आनंद नहीं रह गया है। हर समय डर में जी रहा हूं। यह सुनकर मनोवैज्ञानिक बोले, मैं अपने जीवन का एक प्रसंग सुनाता हूं। मुझे पढ़ने का बहुत शौक है और मेरे पास में ऐसी बहुत सी किताबें हैं, जिनसे मुझे बहुत प्यार है। लेकिन एक दिन घर में एक चूहा आ गया, जो मेरी किताबें चोरी से कुतर देता। मैंने बहुत उपाय किए, लेकिन चूहे को नहीं भगा पाया। मेरी रातों की नींद गायब हो गई। थोड़ा रुककर वह बोले, वह छोटा सा चूहा मेरे मन में दानव का आकार ले लेता, इसके पहले ही मैंने जरूरी किताबें मजबूत अलमारी में बंद कर दीं और फालतू चूहे के लिए छोड़ दीं। इस तरह मैं अपने डर से मुक्त हो गया। वरना मेरा डर अभी तक राक्षस बन गया होता। समस्या जब छोटी हो, उसी समय उसे धैर्य और समझदारी से सुलझा लेना चाहिए।

८५८) परम भक्त तुलाधार - परम भक्त तुलाधार बड़े ही सत्यवादी और निर्लोभी थे। उनके धोती और गमछा दोनों ही बिल्कुल फट गए थे। तुलाधार नित्य नदी में नहाने जाते थे। इसलिए एक दिन भगवान ने नदी के तट पर २ बढ़िया वस्त्र ऐसी जगह पर रख दिए, जहां पर तुलाधार की नजर पड़ जाए। तुलाधार नित्य की तरह नहाने गए। उनकी नजर नए वस्त्रों पर पड़ी। वहां उनका कोई मालिक नहीं था, परंतु उनके मन में जरा भी लोभ पैदा नहीं हुआ। उन्होंने उसे दूसरे की वस्तु समझकर उधर से सहज ही नजर फेर ली और स्नान-ध्यान कर चलते बने। दूर छिपकर खड़े हुए प्रभु भक्त का संयम देखकर मुस्करा दिए। दूसरे दिन भगवान ने गूलतर के फल जैसी सोने की डली उस जगह रख दी। तुलाधार आए, उनकी नजर आज भी सोने की डली पर गई। क्षणभर के लिए अपनी दीनता का ध्यान आया, परंतु उन्होंने सोचा, यदि मैं इसे ग्रहण कर लूंगा, तो मेरा निर्लोभ व्रत नष्ट हो जाएगा। फिर इससे अहंकार पैदा होगा। लाभ से लोभ, फिर लोभ से लाभ, फिर लाभ से लोभ इस तरह तो मैं लाभ-लोभ के चक्कर में फंस जाऊंगा। लोभी मनुष्य को कभी शांति नहीं मिलती। बड़े बड़े पापों का जन्म इस लोभ से ही होता है। मैं इस सोने की डली को किसी भी प्रकार नहीं लूंगा। इस प्रकार विचार करके तुलाधार उसे वहीं पड़ी छोड़कर घर की ओर चल पड़े। स्वर्गस्थ देवताओं ने साधुवाद दिया और फूल बरसाए।

८५९) मां की पीड़ा और कौन जाने? - महाभारत का युद्ध जिस दिन समाप्त हुआ, उस दिन कृष्ण पांडवों को लेकर शिबिर में नहीं लौटे। वह सात्यकि तथा पांडवों को लेकर वहां चले गए। जहां युद्धकाल में द्रौपदी तथा अन्य रानियां रहती थीं। उसी रात अश्वत्थामा ने पांडवों के शिबिर में आग लगा दी और पांडव पक्ष के बचे हुए वीरों के साथ ही द्रौपदी के पांचों पुत्रों को भी सोई हुई अवस्था में मार डाला। सुबह कृष्ण और पांडव लौटे। महारानी द्रौपदी की व्यथा का पार नहीं था। उनके पांचों पुत्रों के मस्तकहीन शरीर उनके सामने पड़े थे। मैं हत्यारे अश्वत्थामा को इसका दंड दूंगा। अर्जुन ने द्रौपदी को आश्वासन दिया। कृष्ण के साथ गांडीवधारी अर्जुन एक रथ में बैठकर चले। अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके भी बच नहीं सका। अर्जुन ने उसे पकड़ लिया, किंतु गुरुपुत्र का वध करना उन्हें उचित नहीं जान पड़ा। रस्सियों से भली प्रकार बांधकर रथ में डालकर वह उसे ले आए और द्रौपदी के सम्मुख खड़ा कर दिया। हत्यारा सामने खड़ा था किंतु द्रौपदी की दशा भिन्न थी। पशु समान बंधे, लज्जा से मुख नीचा किए अश्वत्थामा को देखकर वह पांडवों से बोली, यह क्या किया आपने? जिनकी कृपा से आप सबने अस्त्रज्ञान पाया है, वे गुरु द्रोणाचार्य ही यहां पुत्र रूप में खड़े हैं; झटपट

छोड़ दीजिए। पुत्र-शोक कैसा होता है, यह मैं अनुभव कर रही हूं। इनकी पूजनीया माता कृपादेवी को यह शोक न हो। द्रौपदी की दया विजयी हुई। अश्वत्थामा के मस्तक की मणि लेकर उसे छोड़ दिया गया।

८६०) भाग्यशाली कौन - हरिया और ज्वाला एक दिन जंगल की ओर गए। उन्हें किसी पक्षी का स्वर सुनाई दिया। यह एक पक्षी की आवाज है जो किसी मंगल की सूचना देती है। अंधविश्वासी हरिया ने कहा, मैंने इसकी आवाज सुबह सुबह सुनी है। मुझे विश्वास है कि आज का दिन बड़ा भाग्यशाली होगा। अवश्य ही मुझे रूपयों से भरा थैला मिलेगा। नहीं। ज्वाला ने हरिया की बात का प्रतिवाद किया, जो उससे भी अधिक वहमी था, तुम मुझसे अधिक भाग्यशाली नहीं हो। मुझे विश्वास है कि यह आवाज मेरे लिए अधिक भाग्यशाली साबित होगी। तुम देखना, जरूर मुझे अच्छी खासी रकम प्राप्त होगी। दोनों इसी बात पर लड़ने लगे। तू-तू मैं मैं के बाद हाथापायी पर उतारू हो गए। कुछ ही समय में वे बुरी तरह जख्मी हो गए। दोनों वैद्य के पास पहुंचे। वैद्य ने उनसे पूछा कि वे आखिर इस स्थिति में पहुंचे कैसे? सारी घटना बयान करने के बाद उन दोनों ने वैद्य से पूछा, आप बताएं कि कोयल ने किसके भाग्यशाली होने की सूचना दी थी? वैद्य ने हंसते हुए कहा, पक्षी ने मेरे भाग्यशाली होने की सूचना दी थी।

८६१) जागे राजा का न्याय - एक राजा अपने दरबार में स्वयं मुकदमे सुनकर न्याय करते थे। एक दिन राज्य के दो नागरिकों का मुकदमा उनके सामने पेश किया गया। दोनों अपना अपना पक्ष प्रस्तुत कर रहे थे। एक व्यक्ति जब अपनी बात कह रहा था, तो राजा को नींद की झपकी आ गई। जब उनकी आंखें खुलीं, तो दूसरे पक्ष के व्यक्ति का बयान शुरू हो चुका था। राजा ने उसके बयान को सच मानकर फैसला सुना दिया। जिस व्यक्ति को सजा दी गई, उसने निर्णय सुनते ही कहा, राजन्, आपका फैसला न्यायपूर्ण नहीं है। मैं इसके विरुद्ध अपील करना चाहता हूं, उसके इतना कहते ही दरबार में सन्नाटा छा गया। पहली बार किसी ने राजा के निर्णय को चुनौती दी थी। राजा ने कहा, मेरा निर्णय अंतिम होता है, तुम किसके यहां अपील करोगे? नागरिक ने कहा, महाराज, मैं सोए हुए राजा के निर्णय के विरुद्ध जागे हुए राजा के दरबार में अपील करूंगा। मैं उन्हें बताऊंगा कि जब मेरा बयान हो रहा था, तब आप सोए हुए थे। अब चूंकि आप जाग गए हैं, इसलिए पहले मेरी बात सुन लें, फिर अपने विवेक के अनुसार फैसला सुनाएं।

८६२) बीरबल को मूर्ख बनाना आसान काम नहीं - एक दिन बादशाह अकबर घोड़े पर बैठकर शाही बाग में घूमने गये। साथ में बीरबल भी था। चारों ओर हरे-भरे वृक्ष और हरी-हरी घास देखकर अकबर को बहुत आनन्द आया। उन्हें लगा की बगीचे में सैर करने के लिए तो घोड़ा भी हरे रंग का ही होना चाहियें। उन्होंने बीरबल से कहा, बीरबल मुझे हरे रंग का घोड़ा चाहिये, तुम मुझे सात दिन में हरे रंग का घोड़ा ला दो। यदि तुम हरे रंग का घोड़ा न ला सके तो हमें अपनी शक्ल मत दिखाना हरे रंग का घोड़ा तो होता ही नहीं है। अकबर और बीरबल दोनों को यह मालूम था, लेकिन अकबर को तो बीरबल की परीक्षा लेनी थी। दरअसल इस प्रकार के अटपटे सवाल करके वह चाहते थे कि बीरबल अपनी हार स्वीकार कर लें और कहें की जहांपनाह मैं हार गया, मगर बीरबल भी अपने जैसे एक ही थे। बीरबल हर सवाल का सटीक उत्तर देते थे कि बादशाह अकबर को मुंह की खानी पड़ती थी।

बीरबल हरे रंग के घोड़े की खोज के बहाने सात दिन तक इधर-उधर घूमते रहे। आठवें दिन दरबार में हाजिर हुए

और बादशाह से बोले, जहांपनाह। मुझे हरे रंग का घोड़ा मिल गया है। बादशाह को आश्चर्य हुआ, उन्होंने कहा, जल्दी बताओ, कहां है हरा घोड़ा? बीरबल ने कहा, जहांपनाह। घोड़ा तो आपको मिल जायेगा, मैंने बड़ी मुश्किल से उसे खोजा है, मगर उसके मालिक ने दो शर्त रखी है, बादशाह ने कहा, क्या शर्ते हैं? पहली शर्त तो यह है कि घोड़ा लेने के लिए आपको स्वयं जाना होगा। यह तो बड़ी आसान शर्त है। दूसरी शर्त क्या है? घोड़ा खास रंग का है, इसलिए लाने का दिन भी खास ही होगा। उसका मालिक कहता है कि सप्ताह के सात दिनों के अलावा किसी भी दिन आकर उसे ले जाओ। अकबर बीरबल का मुंह देखते रह गये। बीरबल ने हंसते हुए कहा, जहांपनाह। हरे रंग का घोड़ा लाना हो, तो उसकी शर्तें भी मानी ही पड़ेंगी, अकबर खिलखिलाकर हंस पड़े। बीरबल की चतुराई से वह खुश हुए। वह समझ गये कि बीरबल को मूर्ख बनाना सरल नहीं है।

८६३) और तब दुकानदार सिर पर हाथ रखकर बैठ गए - गोपाल का एक बहुत घनिष्ठ दोस्त था। उसने गोपाल को बार-बार अपनी दुकान पर आने के लिए कहा परंतु गोपाल अधिक कार्य की वजह से उस मित्र के यहां न जा सका। इसके बाद बहुत दिन तक मित्र के यहां न जा सका। इसके बाद बहुत दिन तक मित्र की चिट्ठी - पत्री न मिलने से गोपाल बहुत चिंतित हुआ। उसका मित्र अकेला था। कभी-कभी गोपाल के यहां जाकर वह रहा करता था। दोस्त का गांव गोपाल के गांव से दो चार मील दूर था। इस गांव से उस गांव सभी पैदल आते जाते थे। किसी प्रकार की गाड़ी न थी। एक दिन गोपाल अपने मित्र के यहां जाने के लिए प्रात: रवाना हुआ। जब वह उस गांव पहुंचा, तब दोपहर हो चुकी थी। गोपाल ने दोस्त के दरवाजे पर जाकर देखा कि ताला लटका हुआ है। मोहल्ले के लोगों से ताला बंद होने का कारण पूछने पर पता चला कि उसका मित्र १०-१२ दिन हुए तीर्थयात्रा पर गया है।

गोपाल वहां एक पल भी न रुका और उल्टे पांव घर की ओर चल दिया। भूख और प्यास से उसका गला सूख रहा था। करीब एक मील पैदल चलने के बाद गोपाल को एक हलवाई की दुकान दिखाई पड़ी। वह सीधे उस हलवाई की दुकान पर पहुंचा। गोपाल उस हलवाई की दुकान पर तरह-तरह की मिठाई देखकर ललचा गया। उस दुकान पर ६-७ वर्ष का एक छोटा बालक बैठा हुआ था। गोपाल ने उससे पूछा- क्यों मुन्ना, तुम्हारे पिताजी कहां गये हैं। लड़के ने जवाब दिया- पिताजी रोटी खा रहे हैं। यह सुनकर गोपाल ने रसगुल्ले खाने शुरू कर दिए। लड़के ने कहा- वाह बाबू, पैसे देकर नहीं खा रहे हो?

गोपाल ने कहा- मैं रोज इसी तरह खाता हूं। मैं मक्खी हूं। तुम मुझे नहीं पहचानते हो, लेकिन तुम्हारे पिताजी मुझे अच्छी तरह से जानते हैं। यह कहकर रसगुल्ले खाने में पूरी से जुट गया। लड़के को कुछ समझ में नहीं आया। वह चिल्ला-चिल्लाकर पिताजी से कहने लगा- पिताजी, जल्दी खाकर चले आओ, मक्खी सब रसगुल्ले खा रहा है।

अंदर लड़के के बाप ने सोचा कि शायद बहुत सारी मक्खी आकर रसगुल्लों पर बैठ गई हैं। इसलिए लड़का चिल्ला रहा है। यह सोचकर उसने कहा- तुम चुपचाप बैठे रहो, मक्खी को खाने दो।

गोपाल मौका देखकर सभी रसगुल्ले चटकर के घर की ओर चल पड़ा। थोड़ी देर बाद जब दुकानदार खाना खाकर लौटा और दुकान से रसगुल्ले गायब देखे तो सब कुछ उसकी समझ में आ गया और सिर पर हाथ रखकर बैठ गया।

८६४) ज्यादा धन संग्रह करनेवाला चोर से बड़ा दोषी होता है - एक बार चीन में लाओ-त्जु अपनी बुद्धिमत्ता के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया। चीन के राजा ने लाओ-त्जु से अपने न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश बनने का अनुरोध किया और कहा कि विश्व में उन जैसा बुद्धिमान और न्यायप्रिय कोई नहीं है। आप न्यायाधीश बन जाएंगे तो मेरा राज्य आदर्श राज्य बन जाएगा।

लाओ-त्जु ने राजा को समझाने का बहुत प्रयास किया कि वे उस पद के लिए उपयुक्त नहीं हैं, लेकिन राजा नहीं माना। लाओ-त्जु ने कहा, आप मेरी बात नहीं मान रहे हैं लेकिन मुझे न्यायालय में एक दिन कार्य करते देखकर आपको अपना विचार बदलना पड़ेगा। आप मान जाएंगे कि मैं इस पद के लिए उपयुक्त नहीं हूं। वास्तव में सम्पूर्ण व्यवस्था में ही दोष है। आपके प्रति आदरभाव रखते हुए ही मैंने आपसे सत्य नहीं कहा है। अब या तो मैं न्यायाधीश बना रहूंगा या आपके राज्य की कानून-व्यवस्था बनी रहेगी। देखते हैं, अब क्या होता है।

लाओ-त्जु के पद पर आसीन होते ही पहले ही दिन न्यायालय में एक चोर को लाया गया जिसने राज्य के सबसे धनी व्यक्ति का लगभग आधा धन चुरा लिया था। लाओ ने मामले को अच्छे से सुना और अपना निर्णय सुनाया कि चोर और धनी व्यक्ति, दोनों को छह महीने का कारावास दिया जाए।

धनी व्यक्ति बोला- आप यह क्या कर रहे हैं? चोरी मेरे घर में हुई है। मेरा धन चुरा लिया गया है। फिर भी आप मुझे जेल भेजने का निर्णय कर रहे हैं? यह कैसा न्याय है?

लाओ-त्जु ने कहा, मुझे तो लगता है कि मैंने चोर के प्रति न्याय नहीं किया है। तुम्हें वास्तव में अधिक लंबा कारावास देने की आवश्यकता है क्योंकि तुमने आवश्यकता से अधिक धन जमा करके बहुत से लोगों को धन से वंचित कर दिया है। सैकड़ों-हजारों लोग भूखे मर रहे हैं लेकिन तुम्हारी धन संग्रह करने की लालसा कम नहीं होती। तुम्हारे लालच के कारण ही ऐसे चोर पैदा हो रहे हैं। अपने घर में होनेवाली चोरी के लिए तुम ही जिम्मेदार हो इसलिए तुम अधिक बड़े अपराधी हो। हमें ज्यादा से ज्यादा धन संग्रह करने की लालसा अपने मन के भीतर से मिटा देनी चाहिए।

८६५) राजा ने प्राण देकर भी राजधर्म निभाया - एक बार की बात है कि चंद्रशेखर नगर में रत्नदत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसकी एक लड़की थी, उसका नाम था उन्मादिनी। जो कि बेहद खूबसूरत थी। जब वह बड़ी हुई तो रत्नदत्त ने राजा के पास जाकर कहा कि आप चाहें तो मेरी बेटी से ब्याह कर लीजिए। राजा ने रत्नदत्त की बात सुनकर अपनी तीन दासियों को लड़की को देखने के लिए भेजा।

राजा की दासियों ने उन्मादिनी को देखा तो उसके रूप पर मुग्ध हो गई, लेकिन उन्होंने सोचा कि अगर राजा का विवाह उन्मादिनी से हो जाता है तो वह उन्मादिनी के वश में हो जाएगा। यह सोचकर दासियों ने राजा के पास आकर कह दिया कि वह तो कुलक्षिणी है और दासियों की बात सुनकर राजा ने सेठ से इंकार कर दिया। इसके बाद सेठ ने राजा के सेनापति बलभद्र से अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। विवाह के बाद उन्मादिनी व सेनापति अच्छी तरह से रहने लगे।

एक दिन राजा की सवारी उस रास्ते से निकली। जहां उन्मादिनी की कोठी थी। उस समय उन्मादिनी अपनी छत की मुंडेर पर खड़ी हुई थी। राजा की निगाह उन्मादिनी पर पड़ी तो वह उस पर मोहित हो गया। उसने पता लगाया कि ये कौन

स्त्री है, तो राजा को मालूम हुआ कि वह सेठ की लड़की है।

राजा ने सोचा कि हो-न-हो, जिन दासियों को मैंने उन्मादिनी को देखने भेजा था, उन्होंने छल किया है। राजा ने उन्हें बुलाया तो उन्होंने आकर सारी बात सच-सच कह दी। इतने में सेनापति वहां आ गया। उसे राजा की बेचैनी मालूम हुई।

उसने कहा, स्वामी उन्मादिनी को आप ले लीजिए। राजा ने गुस्सा होकर कहा, क्या मैं अधर्मी हूं, जो पराई स्त्री को ले लूं? राजा को इतनी व्याकुलता हुई और उसे दुख हुआ कि उसने स्वयं न जाकर देखा और दासियों की बात मान ली। इस दुख की वजह से राजा कुछ दिन में ही मर गया। सेनापति ने अपने गुरु को सब हाल सुनाकर पूछा कि अब मैं क्या करूं? गुरु ने कहा, सेवक का धर्म है कि स्वामी के लिए जान दे दे। राजा की चिता तैयार हुई। सेनापति वहां गया और उसमें कूद पड़ा। जब उन्मादिनी को यह बात मालूम हुई तो वह पति के साथ जल जाना धर्म समझकर चिता के पास पहुंची और उसमें जाकर भस्म हो गई।

इतना कहकर वेताल ने पूछा, राजन बताओ, सेनापति और राजा में कौन अधिक साहसी था?

राजा ने कहा, राजा अधिक साहसी था। क्योंकि उसने राजधर्म पर दृढ़ रहने के लिए उन्मादिनी को उसके पति के कहने पर भी स्वीकार नहीं किया और अपने प्राणों को त्याग दिया। सेनापति कुलीन सेवक था। अपने स्वामी की भलाई में उसका प्राण देना अचरज की बात नहीं और उन्मादिनी का कर्त्तव्य था कि वह अपने पति के लिए अपने प्राणों की बलि दे। असली काम तो राजा ने किया कि जिसने प्राण छोड़कर भी राजधर्म नहीं छोड़ा।

राजा का यह उत्तर सुनकर वेताल फिर पेड़ पर जाकर लटक गया।

८६६) तेनाली राम ने ऐसे सिखाया पड़ोसी को सबक - चूहों ने तेनाली राम के घर में बड़ा उत्पाद मचा रखा था। एक दिन चूहों ने तेनालीराम की पत्नी की एक सुंदर साड़ी को काट दिया। तेनाली राम और उनकी पत्नी को बहुत क्रोध आया। उन्होंने सोचा- इन्हें पकड़कर मारना ही पड़ेगा। बहुत कोशिश करने पर भी चूहे उनके हाथ नहीं लग रहे थे। तेनाली राम बड़ा परेशान था। तब एक मित्र ने उसे सलाह दी, कि चूहों से छुटकारा पाने के लिए बिल्ली पाल लो। तेनाली राम ने बिल्ली पाल ली और सचमुच उसके यहां चूहों का उत्पात कम होने लगा। एक दिन बिल्ली ने पड़ोसी के तोते को मार डाला। घर की मालकिन ने पति से कहा, कि इस दुष्ट बिल्ली को मार डालो। उसने बिल्ली को पकड़ लिया। वह उसे मारने ही वाला था कि तेनाली राम वहां आ गया। तेनाली ने कहा- भाई, मैंने यह बिल्ली चूहों से छुटकारा पाने के लिए पाली है। हमें क्षमा कर दीजिए और बिल्ली वापस दीजिए।

पड़ोसी नहीं माना, बोला- चूहे पकड़ने के लिए बिल्ली की क्या आवश्यकता? मैं तो बिना बिल्ली के भी चूहे पकड़ सकता हूं। उसने बिल्ली को मार दिया। कुछ दिनों बाद पड़ोसी को किसी ने एक सुंदर संदूक उपहार में भेजा। उसने शयनकक्ष में जाकर संदूक खोला। संदूक खोलते ही उसमें से चूहे उछलकर बाहर निकल आये। चूहे कमरे में चारों ओर दौड़ने लगे। वह उन्हें पकड़ने के लिए कभी बाएं, तो कभी दाएं उछलता, पर असफल रहा। कई घंटों की उछलकूद के बाद कहीं जाकर उन्हें चूहों से छुटकारा मिला। पर, इस दौरान उनको काफी नुकसान उठाना पड़ा। घर अस्त-व्यस्त हो गया। ठोकर खाकर एक कीमती फूलदान भी टूट गया। थके-हारे पड़ोसी ने संदूक में एक पर्ची पायी। उस पर लिखा था-

आपने कहा था कि आप बिना बिल्ली के ही चूहों पर काबू पा जायेंगे। मैं परीक्षा के लिए कुछ चूहों को आपके यहां भेज रहा हूं, आपका तेनाली राम। उसका नाम पढ़ते ही पड़ोसी को सारी बात समझ में आ गयी। उसने फौरन अपनी भूल के लिए तेनाली राम से माफी मांग ली।

८६७) जानकारी - रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानंद के प्रति बहुत अनुराग रखते थे। जब कई दिन तक नरेंद्र नहीं आते, तो स्वामी जी स्वयं उन्हें बुलवा लेते थे। नरेंद्र नहीं चाहते थे कि स्वामी जी उनके साथ इतना ज्यादा जुड़ जाएं कि फिर उन्हें ईश्वर की साधना में बाधा आए और उनके हृदय को कष्ट हो। वे उन्हें समझाने की तरकीब सोचने लगे। इसीलिए एक बार नरेंद्र ने स्वामी जी से नाराजगी दिखाते हुए कहा, आप मेरे लिए इतने अधीर क्यों हो जाते हैं? आप जैसे महान पुरूष के लिए यह ठीक नहीं है। स्वामी रामकृष्ण नरेंद्र की बात सुनते रहे। नरेंद्र ने कहा, आपको राजा भरत का दृष्टांत याद ही होगा। राजा भरत दिन-रात अपने द्वारा पाले गए हिरन के बारे में ही सोचते रहते थे। परिणति यह हुई कि वह भी मृत्यु के पश्चात हिरन की गति को ही प्राप्त हुए। इसलिए आपको भी मेरे बारे में इतना नहीं सोचना चाहिए।

नरेंद्र की बात सुनकर स्वामी जी दुखी हो गए और मंदिर के भीतर चले गए कुछ क्षणों के बाद ही वे हंसते हुए लौट आए और नरेंद्र से बोले मैं तेरी कोई बात नहीं मानूंगा। मैंने भीतर जाकर देवी मां को तेरी बात बताई, तो मां ने कहा तू नरेंद्र में नारायण को देखता है, इसीलिए तो उससे इतना स्नेह करता है। तू नरेंद्र को नहीं उसके भीतर के नारायण को प्यार करता है। नरेंद्र अपने प्रति गुरु के प्रेम को देखकर भाव-विभोर हो गए। एक पारखी गुरु ही अपने शिष्य को पहचान सकता है। सच्चा प्रेम नारायण के समान होता है, उसमें स्वार्थ नहीं होता।

८६८) सोच समझकर विश्वास करें - राजा अकबर को शक्तिशाली, फुर्तीले और सुंदर घोड़े बहुत ही पसंद थे। एक बार अरब देश से एक व्यापारी अपने घोड़े उनके पास बेचने आया। उसने कुछ प्रभावशाली घोड़े राजा को नमूने के तौर पर दिखाए भी। अकबर को घोड़े बहुत पसंद आ गए और उसने उसी तरह के १००० के आसपास घोड़े उस व्यापारी से मंगा लिए और अग्रिम के तौर पर उसे दो लाख सोने की मुद्राएं दे दीं। वो व्यक्ति धोखेबाज था। वो पैसा लेकर गायब हो गया और कभी वापस नहीं आया। समय बीतता गया और राजा ये बात भूल गया। एक दिन बैठे-बैठे एक बड़ी ही विचित्र सी सनक अकबर के दिमाग में आई। उसने बीरबल से मूर्ख व्यक्तियों की सूची बनाने को कहा।

बीरबल ने हामी भरी और राजा से कुछ समय मांगा। एक सप्ताह के बाद बीरबल राजा के सामने मूर्ख व्यक्तियों की सूची लेकर उपस्थित हुआ। अकबर बहुत खुश हुआ कि बीरबल ने दिया हुआ काम समय से पहले ही पूरा कर लिया। अकबर ने सूची को पढ़ना शुरू किया। लेकिन सूची में अपना नाम भी देखकर उसे गुस्सा आ गया और उसने बीरबल से पूछा कि उसका नाम सूची में क्यों है और उसकी इतनी हिम्मत कैसे हो गई कि वो राजा का नाम मूर्खों की सूची में डाल दे। बीरबल ने कहा- मुझे माफ कीजिए हुजूर लेकिन आप भी सिर्फ मनुष्य मात्र हैं और गलतियां तो मनुष्य से ही होती हैं। कृपया याद करें कि आपने उस अनजान व्यापारी को दो लाख सोने के सिक्के दिए थे। तो हुजूर आप खुद ही बताइए कि क्या आपको इस सूची में रखना उचित नहीं है? राजा के अहम को ठेस पहुंची उसने बीरबल से पूछा कि अगर वो व्यक्ति घोड़े लेकर आ जाता है तब तुम क्या कहोगे। बीरबल ने उत्तर दिया- मैं तुरंत आपका नाम काटकर उसका नाम आपकी जगह लिख दूंगा

और तो मैं अपना खुद का नाम भी इस सूची में लिख दूंगा।

बीरबल की वाक्पटुता, सूझ-बूझ और बुद्धि देखकर अकबर बहुत खुश हुए, लेकिन कुछ झेंप सा भी गया। मित्रों, बिना सोचे समझे किसी अपरिचित व्यक्ति पर विश्वास नहीं करना चाहिए। नहीं तो हम भी मूर्खों की श्रेणी में आ सकते हैं।

८६९) भला स्वभाव - फारस देश में एक स्त्री थी, जो शहद बेचने का व्यवसाय करती थी। उसकी बोलचाल का ढंग इतना आकर्षक था कि उसकी दूकान के चारों ओर ग्राहकों की भीड़ लगी रहती थी। यदि वह शहद की जगह विष भी बेचती तो भी लोग उसे शहद समझकर ही उससे खरीद लेते।

एक ओछी प्रकृतिवाले मनुष्य ने जब देखा कि वह स्त्री इस व्यवसाय से बहुत लाभ उठा रही है तो उसने भी इसी धंधे को अपनाने का निश्चय किया। दूकान तो उसने खोल ली, पर शहद के सजे-सजाये बर्तनों के पीछे उसकी अपनी आकृति कठोर ही बनी रही। ग्राहकों का स्वागत वह सदा अपनी कुटिल भृकुटि से करता था। इसलिए सब उसकी चीज छोड़ आगे बढ़ जाते थे। एक मक्खी भी उसके शहद के पास फटकने का साहस नहीं करती थी। शाम हो जाती पर उसके हाथ खाली-के-खाली ही रहते।

एक दिन एक स्त्री उसे देखकर अपने पति से बोली, कड़ुआ मुख शहद को भी कड़ुआ बना देता हैं क्या वह शहद बेचनेवाली स्त्री केवल ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए मुस्कराती थी? हम तो यही सोचते हैं कि उसका उल्लास उसके भले स्वभाव का एक अंग था। संसार में हमारा कार्य केवल बेचना और खरीदना ही नहीं है, हमें यहां एक दूसरे का मित्र बनकर रहना है। उस भली स्त्री के ग्राहक यह जानते थे कि वह एक दूकानदारिन के अतिरिक्त और कुछ भी थी- वह संसार की एक प्रसन्नमुख नागरिक थी।

८७०) सेवक ने किया राजा पर उपकार- बेताल फिर पेड़ पर जा लटका - मिथिलावती नाम की एक नगरी थी। उसमें गुणधिप नाम का राजा राज करता था। उसकी सेवा करने के लिए दूर देश से एक राजकुमार आया। वह बराबर कोशिश करता रहा लेकिन राजा से उनकी भेंट न हुई। जो कुछ वह अपने साथ लाया था, वह सब बराबर हो गया।

एक दिन राजा शिकार खेलने चला। राजकुमार भी साथ हो लिया। चलते-चलते राजा एक वन में पहुंचा। वहां उसके नौकर-चाकर बिछुड़ गए। राजा के साथ अकेला वह राजकुमार रह गया। उसने राजा को रोका। राजा ने उसकी ओर देखा तो पूछा, तू इतना कमजोर क्यों हो रहा है। उसने कहा, इसमें मेरे कर्म का दोष है। मैं जिस राजा के पास रहता हूं, वह हजारों को पालता है, पर उसकी निगाह मेरी ओर नहीं जाती। राजन छह बातें आदमी को हलका करती हैं- खोटे नर की प्रीति, बिना कारण हंसी, स्त्री से विवाद, असज्जन स्वामी की सेवा, गधे की सवारी और बिना संस्कृत की भाषा। और हे राजा, ये पांच चीजें आदमी के पैदा होते ही विधाता उसके भाग्य में लिख देता है- आयु, कर्म, धन, विद्या और यश। राजन, जब तक आदमी का पुण्य उदय रहता है, तब तक उसके बहुत से दास रहते हैं। जब पुण्य घट जाता है तो भाई भी बैरी हो जाते हैं। पर एक बात है, स्वामी की सेवा अकारथ नहीं जाती। कभी न कभी फल मिल जाता है। यह सुन राजा के मन पर उसका बड़ा असर हुआ। कुछ समय घूमने-घामने के बाद वे नगर में लौट आए। राजा ने उसे अपनी नौकरी में रख लिया। उसे बढ़िया-बढ़िया कपड़े और गहने दिए। एक दिन राजकुमार किसी काम से कहीं गया। रास्ते में उसे देवी का

मंदिर मिला। उसने अंदर जाकर देवी की पूजा की। जब वह बाहर निकला तो देखता क्या है, उसके पीछे एक सुंदर स्त्री चली आ रही है। राजकुमार उसे देखते ही उसकी ओर आकर्षित हो गया। स्त्री ने कहा, पहले तुम कुंड में स्नान कर आओ। फिर जो कहोगे, सो करूंगी।

इतना सुनकर राजकुमार कपड़े उतारकर जैसे ही कुंड में घुसा और गोता लगाया कि अपने नगर में पहुंच गया। उसने जाकर राजा को सारा हाल कह सुनाया। राजा ने कहा, यह अचरज मुझे भी दिखाओ। दोनों घोड़ों पर सवार होकर देवी के मंदिर पर आए। अंदर जाकर दर्शन किए और जैसे ही बाहर निकले कि वह स्त्री प्रकट हो गई। राजा को देखते ही बोली, महाराज, मैं आपके रूप पर मुग्ध हूं। आप जो करेंगे, वही करूंगी।

राजा ने कहा, ऐसी बात है तो तू मेरे इस सेवक से विवाह कर ले। स्त्री बोली, यह नहीं होने का। मैं तो तुम्हें चाहती हूं। राजा ने कहा, सज्जन लोग जो कहते हैं, उसे निभाते हैं। तुम अपने वचन का पालन करो। इसके बाद राजा ने उसका विवाह अपने सेवक से करा दिया।

इतना कहकर बेताल बोला, हे राजन्। यह बताओ कि राजा और सेवक, दोनों में से किसका काम बड़ा हुआ? राजा ने कहा, नौकर का। बेताल ने पूछा, सो कैसे?

राजा बोला, उपकार करना राजा का तो धर्म ही था। इसलिए उसके उपकार करने में कोई खास बात नहीं हुई। लेकिन जिसका धर्म नहीं था, उसने उपकार किया तो उसका काम बढ़कर हुआ? इतना सुनकर बेताल फिर पेड़ पर जा लटका।

८७१) भरोसा मुझ पर या गधे पर? - एक बार एक किसान मुल्ला नसरुद्दीन के पास आया और उसका गधा दोपहर के लिए उधार मांगा ताकि वो अपने खेत पर कुछ सामान ढो सके। मुल्ला ने जवाब दिया- मेरे मित्र, मैं हमेशा तुम्हें खेतों में काम करते देखता हूं और खुश होता हूं। तुम फसलें पैदा करते हो और हम सब उसका उपयोग करते हैं, यह वास्तविक समाज सेवा है। मेरा दिल भी तुम्हारी सहायता करने को सदैव तत्पर रहता है। मैं हमेशा ख्वाब देखा करता था कि मेरा गधा तुम्हारे खेतों में उगाई गई फसलों को प्रेमपूर्वक ढो रहा है। आज तुम मुझसे उधार मांग रहे हो यह मेरे लिए बहुत खुशी की बात है। मगर क्या करूं, मेरा गधा आज मेरे पास नहीं है। मैंने आज अपना गधा किसी और को उधार दे रखा है।

ओ मुल्ला, कोई बात नहीं। मैं कोई अन्य व्यवस्था कर लूंगा और मुझे तुम्हारे इन दयालु शब्दों और मेरे प्रति आपकी भावना से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। आपको बहुत बहुत धन्यवाद। किसान ने कहा और वापस जाने लगा। इस बीच घर के पिछवाड़े से मुल्ला के गधे के रेंकने की आवाज आई। किसान रुक गया। उसने मुल्ला की ओर प्रश्नवाचक नजरों से देखा और कहा- मुल्ला तुम तो कहते थे कि तुमने गधा किसी और को दे दिया है, पर वो तो है? मुल्ला ने किसान से कहा- तुम्हें मेरी बात पर यकीन होना चाहिए कि गधे के रेंकने पर?

८७२) गधा और नमक - एक व्यापारी अपने गधे पर नमक का थैला लादकर शहर जा रहा था। रास्ते में नदी आई। पानी ज्यादा गहरा न था। कुछ डग भरने के बाद ही गधे का पांव फिसल गया, पर गधा इस घटना से तनिक भी दु:खी न हुआ। पानी में फिसल जाने के कारण भीगकर बहुत सा नमक घुल गया और उसकी पीठ पर का बोझ हल्का हो गया। सहसा गधे के दिमाग में यह घटना बढ़िया तरकीब बनकर बैठ गई। दूसरे दिन जब मालिक उसकी पीठ पर नमक का थैला

लादकर शहर ले जा रहा था, वह नदी में बैठ गया। दो चार दिन इसी तरह हुआ, पर मालिक भी कम नहीं था। गधे की शरारत ताड़ गया। समझ गया कि बोझ हल्का करने के लिए यह गधा ऐसी हरकत करता है। फिर क्या था, अगली बार शहर से आते समय व्यापारी नमक की बजाय रूई लेता आया। वापसी में नदी के बीच पहुंचने पर गधे ने जैसे ही अपनी पुरानी आदत दोहराई, वह हैरान रह गया। उसका बोझ हल्का होने की बजाय और भारी हो गया, क्योंकि पानी में भीगने से रूई भारी हो गई थी। व्यापारी की तरकीब काम कर गई थी। मूर्ख एक ही युक्ति का बार-बार उपयोग करते हैं।

८७३) ज्ञान की कोई सीमा नहीं - स्वामी शंकराचार्य समुद्र के किनारे अपने शिष्यों से वार्तालाप कर रहे थे। एक शिष्य ने चापलूसी भरे शब्दों में कहा, गुरुदेव, आपने इतना अधिक ज्ञान कैसे पाया, यह सोचकर मुझे आश्चर्य होता है। मेरे विचार से दुनिया में आपसे बढ़कर ज्ञानी दूसरा नहीं हे। शंकराचार्य मृदु हंसी हंसे। फिर बोले, गलत सोचते हो तुम। मुझे तो अभी अपने ज्ञान में दिन-प्रतिदिन वृद्धि करनी है। उन्होंने अपने हाथ का दंड पानी में डुबोकर बाहर निकाला और उसके भीगे हुए छोर को शिष्य को दिखाते हुए आगे कहा, इस दंड को जल में डुबोने पर इसने मात्र इस बूंद को ही ग्रहण किया। यही बात ज्ञान को लेकर भी है। ज्ञान पूरा-का-पूरा किसी के भी हिस्से में कभी नहीं आता। शिष्य उनका उत्तर सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। चापलूसी करने और करानेवाले दोनों को भ्रष्ट करती है।

८७४) छोटी सी बात - एक बार बाप-बेटा गली से गुजर रहे थे। बाप ने बेटे से कहा, वह देखो, धूल में घोड़े की नाल पड़ी है। उठा लो और अपनी जेब में रख लो। बाप रे। बेटे ने जवाब दिया, कौन झुके और कौन इसे मिट्टी में से उठाए। बाप ने कुछ न कहा। उसने चुपचाप नाल उठाई और जेब में डाल ली। जब वे करीब के एक गांव में पहुंचे तो बाप ने एक लुहार को नाल बेच दी। बदले में जो पैसे मिले उससे उसने रसभरी खरीद लीं। बाप-बेटे आगे बढ़े। सूरज सिर पर चमक रहा था। वे एक सुनसान रास्ते से गुजर रहे थे। दूर दूर तक कोई घर नजर नहीं आता था। बेटे को बुरी तरह प्यास लगी थी। वह बेचैन हो रहा था। बाप ने बेटे की स्थिति भांप ली। उसने एक रसभरी रास्ते पर फेंकी। बेटे ने चट से उसे उठाया, धूल पोंछी और मुंह में डाल ली। यह सिलसिला तब तक चला जब तक सारी रसभरी खत्म न हो गईं। तब पिता ने कहा, यह जान लो कि ये रसभरियां उसी नाल की बदौलत थीं। जिसे धूल में से उठाना तुम्हें बुरा लगा था। अगर मैं नाल को न उठाता तो आज तुम्हारी प्यास बुझाने का कोई उपाय हमारे पास न होता। वक्त आने पर छोटी सी चीज भी काम आती है।

८७५) किस्सा एक महामूर्ख का - एक महामूर्ख था। एक बार वह अपनी बहन के घर गया। बहन ने बड़ी उमंग से भाई को चूरमा के लड्डू खिलाए। भाई को लड्डू बहुत पसंद आए। उसने बहन से पूछा, क्या नाम है इनका? बहन ने कहा, चूरमा। भाई ने सोचा कि घर पहुंचकर चूरमा बनवाऊँगा और पेट भरकर खाऊँगा। वह मन-ही-मन चूरमा की रट लगाता हुआ अपने घर की ओर लौट पड़ा। वह जानता था, रटेगा नहीं तो सब भूल जाएगा। रास्ते में एक छोटा सा नाला पड़ा। उसे पार किए बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता था। उसने पार करने की तरकीब सोची और पार भी कर लिया। लेकिन इस जद्दोजहद में वह चूरमा शब्द भूल गया और उसके बदले वाह क्या पार किया जबान पर चढ़ गया। थोड़ी देर बार घर पहुंचकर उसने पत्नी से कहा, सुनो, जल्दी करो। मेरे लिए वाह-क्या पार किया बना दो। मुझे तो वही खाना है। मेरी बहन ने बहुत मीठे वाह, क्या पार किया बनाए थे। पत्नी सोच में पड़ गई- अरे, यह वाह, क्या पार किया किस चिड़िया का नाम

है? बात उसकी समझ में नहीं आई। देर होती देखकर महामूर्ख का गुस्सा बढ़ने लगा। बोला, निठल्ली बनाती क्यों नहीं? कद्दू की तरह बैठी क्यों हो? पत्नी ने कहा, वाह, क्या पार किया कैसे बनता है, मैं तो नहीं जानती। आपकी बहन जानती है तो वापस उसके घर जाओ और उससे कहो कि बना दे। यह सुनकर उसका पारा चढ़ गया। पास ही में एक डंडा पड़ा था। उसे उठाकर वह अपनी घरवाली को दनादन पीटने लगा। बेचारी को इतना पीटा कि उसके सारे बदन पर चकत्ते उठ आए। पास-पड़ोस के लोग दौड़कर इकट्ठे हो गए। पति को डाँटते हुए बोले, अरे बीवी को कोई ऐसे पीटता है। मार-मारकर बेचारी का चूरमा बना डाला। वह बोला, हाँ-हाँ, यही। मुझे तो चूरमा के लड्डू खाने हैं। मैं तो इसका नाम ही भूल गया था। सबने कहा, महामूर्ख कहीं का। अज्ञान से बड़ा दूसरा कोई दुश्मन नहीं होता।

८७६) अशोक वाटिका में सीता - रावण की अशोक वाटिका में सीता भगवान राम को याद कर छटपटा रही थीं। उनके आसपास राक्षसियां बैठी पहरा दे रही थीं। त्रिजटा ने करीब जाकर पूछा, तुम तो राम का ध्यान इतना करती हो कि एक दिन खुद ही राम बन जाओगी, जैसे कि प्राण शिव हो जाते हैं। नहीं। ध्यानस्था सीता चौंकी- मैं उनमें लीन होकर भी सीता बनी रहना चाहती हूं, क्योंकि अगर मैं उनमें लीन हो मिट जाऊं तो फिर उनकी सेवा कैसे कर पाऊंगी।

भक्त बनना भगवान बनने से भी कठिन है।

८७७) पीड़ा का कारण - कुरुक्षेत्र का मैदान। भीष्म पितामह बाणों की शय्या पर लेटे हैं। मगर उनके प्राण नहीं निकल रहे हैं। अर्जुन ने तीर मारकर पाताल फोड़ डाला। पाताल के झरने का पवित्र पानी भीष्म पितामह पर छिड़का, फिर भी उनकी आत्मा को शांति नहीं मिली। आसपास पांडव खड़े हैं। भीष्म कातर दृष्टि से कृष्ण को निहार रहे हैं। श्रीकृष्ण ने कहा, आपने पाप देखा है, पितामह इसीलिए यह यातना भोग रहे हैं। भीष्म तो गंगाजल से पवित्र हैं फिर भी?

श्रीकृष्ण ने आगे कहा, कौरवों की भरी सभा में जब दु:शासन द्रौपदी का चीर खींच रहा था, उस वक्त आप भी वहां उपस्थित थे, दूसरों की तरह मूकदर्शक थे। न आप दु:शासन का हाथ पकड़ सके, न दुर्योधन को ललकार सके।

पाप देखना भी पाप में भागीदार बनने से कम नहीं है।

८७८) दूध का गिलास - कल्लू धनी परिवार का लड़का था। एक बार वह शहर से घूमने गांव की तरफ आया। कड़ी दोपहरी थी। उसे भूख लगी। एक किसान से उसने दूध व रोटी खरीदी और एक पेड़ की छाया में आराम से बैठकर खाने लगा। बल्लू एक गरीब घर का बच्चा था। कल्लू को जब उसने पेड़ की छाया में बैठकर दूध और रोटी खाते देखा तो उसकी भी इच्छा हुई कि उससे थोड़ा सा अपने लिए मांग ले; पर वह कह न सका। कल्लू ने बल्लू को देख लिया था और उसका इरादा भी भांप लिया था। अत: उसने गिलास में थोड़ा सा दूध बल्लू के लिए छोड़ने का निश्चय किया। किन्तु अपनी भूख की वजह से वह पूरा दूध पी गया। जैसे ही उसने अपना दूध खत्म किया, गिलास की तली में उसने कुछ लिखा हुआ पढ़ा। मारे शर्म के उसका चेहरा झुक गया। वह फौरन किसान के पास गया। दूध का एक और बड़ा गिलास और रोटी खरीदी और बल्लू को पास बुलाकर उससे खाने का आग्रह किया।

पंक्तियां जो उसने गिलास की तली में पढ़ी थीं, वे इस तरह थीं- जो गरीबों का खयाल नहीं रखते, वे स्वयं भी भोजन के अधिकारी नहीं हैं।

८७९) कद्दू और बेल - एक किसान बेल के पेड़ के नीचे खड़ा हुआ अपने पड़ोसी की फुलवारी को देख रहा था, तभी उसकी निगाह कद्दू को देख उसकी बेल पर गई। एक बड़ा सा कद्दू बेल में लगा हुआ था। किसान यह देखकर स्वयं से ही बोला, बेल का यह पेड़ कितना मजबूत है और इसमें लगनेवाला फल कितना छोटा, हल्का, गेंद सा होता है और कहां यह कद्दू की दुबली-पतली बेल और इतना वजनी कद्दू। अगर मैंने इस संसार का निर्माण किया होता तो शर्तिया बेल को कद्दू की हल्की-फुल्की लता में गूंथ देता और एक-एक टन वजनी कद्दू को इस मजबूत बेल के पेड़ में लटका देता, तो सचमुच देखने लायक होता। किसान का इतना कहना भर था कि तभी बेल के पेड़ से एक बेल टूटकर उसकी नाक पर गिरा। नाक से खून बहने लगा। किसान दु:खी हो बड़बड़ाया, मैं भी कितना गलत-सलत सोचता हूं। जो जहां है वहीं भला है। अगर बेल के पेड़ पर एक टन का कद्दू लगा होता तो। ईश्वर ने सभी को सोच-विचार कर जगह दी है।

८८०) परवाह - मुनि दुर्वासा स्नान के लिए जा रहे थे। तभी राह में इंद्र की सवारी चली आ रही थी। इंद्र थे राजाओं के राजा। साधु-संतों की क्या परवाह। उन्होंने न दुर्वासा मुनि को प्रणाम किया, न ठहरकर आदर ही दिया। दुर्वासा मुनि को यह अनादर सहन न हुआ। गुस्से से बोले, ऊँचे सिंहासन पर बैठा है, पर मन कितना छोटा है। संत-मुनियों को देखकर भी वंदना नहीं करता। जा, आज से तू निर्धन बन जाएगा। दुर्वासा मुनि का शाप। जो नाथों का नाथ था, वहीं इंद्र अनाथ हो रास्ते का भिखारी बन गया। न जाने कब तक वे इसी दशा में भटकते रहे।

अगर कोई व्यक्ति अपने को कीड़ा बना ले तो रौंदे जाने पर उसे शिकायत नहीं करनी चाहिए।

८८१) बोझ का सम्मान - प्रसिद्ध उद्योगपति जमशेदजी अपने सेवकों के साथ सड़क से जा रहे थे कि उनकी बगल से भारी बोरा उठाए एक मजदूर गुजरा। बोरे का धक्का लगने से जमशेदजी गिर पड़े और उनकी पगड़ी उछलकर नाले में जा पड़ी। एक सेवक ने फुर्ती से उन्हें उठाया। वह मजदूर सहम गया और हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा। सेवकों ने सोचा, अब तो इस मजदूर की खैर नहीं, पर वे चकित रह गए, जब जमशेदजी ने उसे बिना डांटे-डपटे क्षमा कर दिया और बोले, इस बेचारे का इसमें क्या कसूर। यह तो बोझ से दबा हुआ था। यह भला कैसे देख सकता था। कसूर तो मेरा है, मुझे देखकर चलना चाहिए था। यह कहकर उन्होंने ५ रूपये का नोट उस मजदूर को दिया और अपने सेवक से बोझ उठवा देने के लिए कहा। बुद्धिमान पुरुष अपने किए का दोष दूसरों के सिर नहीं मढ़ते।

८८२) धन्यवाद दोस्त - विभोर और वैभव पक्के दोस्त थे। दोनों एक ही कक्षा में पढ़ते थे। विभोर पढ़ाकू था जबकि वैभव की दिलचस्पी खेलकूद में ज्यादा थी। पढ़ाकू होने की वजह से विभोर सबकी आंखों का तारा था। शिक्षक और विद्यार्थी सभी उसे चाहते और प्यार करते थे। कक्षा में पूछे जानेवाले हर सवाल का जवाब सबसे पहले वही देता था। कक्षा में मैडम जब भी कोई सवाल पूछतीं, विभोर जवाब देने के लिए सबसे पहले हाथ खड़ा कर देता। विभोर की पढ़ाई में इस कदर दिलचस्पी से सभी अध्यापक खुश रहती। अकसर उसकी तारीफ भी करती। शुरू-शुरू में तो विभोर की इस तारीफ से वैभव खुश होता था। लेकिन जब एक दिन होमवर्क न करके लाने की वजह से मैडम ने उसे खूब डांटा और उसे विभोर से सीख लेने के लिए कहा, तो वह परेशान हो उठा। परेशान वैभव धीरे-धीरे विभोर से दूरी बनाने लगा। पहले उसने इंटरवल में उसके साथ लंच करना बंद कर दिया, फिर खेलना। धीरे-धीरे उसने विभोर के साथ साइकिल चलाना और

साथ-साथ घूमना-फिरना भी कम कर दिया।

इस तरह दिन-पर-दिन वैभव दूरियां बढ़ाता जा रहा था। यहां तक कि विभोर के बहुत बुलाने पर भी वह उसकी बर्थडे पार्टी में नहीं गया। अगले दिन जब विभोर ने उससे पार्टी में न आने का कारण पूछा तो वह टाल गया। विभोर समझ गया कि वैभव किसी बात को लेकर उससे नाराज है लेकिन अपनी नाराजगी की वजह बता नहीं रहा। हजार कोशिशों के बाद जब वैभव ने कुछ नहीं बताया तो विभोर ने वैभव से कुछ भी न पूछने की ठानी और ऐसा दिखावा करने लगा जैसे उसे इन बातों से कोई फर्क ही नहीं पड़ता। हर रोज वह स्कूल में अन्य साथियों की तरह वैभव से हेलो तो जरूर करता लेकिन कुछ खास दिलचस्पी नहीं दिखाता। इस तरह काफी दिन निकल गए। लेकिन वैभव की तरफ से कोई खास पहल नहीं हुई। तभी एक दिन पता चला कि इस सप्ताह स्कूल में साइकिल प्रतिस्पर्धा होनेवाली है। कॉम्पिटीशन दो राउंड में शुक्रवार और शनिवार को होगा। पहले दिन सबसे तेज साइकिल चलाने का कॉम्पिटीशन होगा तो दूसरे दिन सबसे साफ और सुंदर साइकिल रखने का दौर होगा। जो दोनों राउंड में आगे रहेगा, उसे इनाम दिया जाएगा। वैभव बढ़िया साइकिल चलाता था। वह खुशी से फूला नहीं समा रहा था। उसे लगा कि साइकिल कॉम्पिटीशन में विभोर को हरा कर वह खुद को साबित कर देगा और सबकी आंख का तारा बन जाएगा।

शुक्रवार को सभी बच्चे अपनी-अपनी साइकिल के साथ सुबह ९ बजे ग्राउंड में पहुंचे। स्पोर्टस् टीचर के व्हिसिल बजाने के साथ ही कॉम्पिटीशन शुरू हो गया। सभी बच्चे उत्साहित थे और बेहतरीन साइकिल चला रहे थे। लेकिन रेस में आगे वैभव, विभोर, शानू और स्वीटी ही थे। थोड़ी दूर और पहुंचने पर शानू पीछे रह गया। स्वीटी भी ज्यादा देर साइकिल नहीं चला पाई। अब कॉम्पिटीशन वैभव और विभोर में था। अंतिम मिनट में वैभव ने बहुत तेज साइकिल चलाई और रेस जीत ली। सबने उसे खूब सराहा। यहां तक कि विभोर ने भी उसकी खूब तारीफ की। पहला राउंड कम्प्लीट होने के बाद सब अपने अपने घर चले गए। घर पहुंचते ही वैभव को पता चला कि उसकी दादी की तबियत अचानक काफी खराब हो गई है और पापा उन्हें हॉस्पिटल ले गए हैं। वह मम्मी के साथ हॉस्पिटल जाने की तैयारी करने लगा। शाम को जब विभोर ने वैभव को बधाई देने के लिए उसके घर फोन किया तो उसे पता चला कि वैभव की दादी की तबियत काफी खराब है। वह उन्हें देखने हॉस्पिटल गया है और शायद कल स्कूल न जा पाए। विभोर ने सोचा, अगर वैभव की साइकिल कल कॉम्पिटीशन में नहीं पहुंची तो वह कॉम्पिटीशन से बाहर हो जाएगा। इसलिए वह उसकी साइकिल घर ले आया और अपनी साइकिल से भी ज्यादा सुंदर उसकी साइकिल सजाई। साइकिल इतनी सुंदर सजी थी कि अगले दिन दूसरे राउंड में भी वैभव बाजी मार गया। दोनों राउंड में अव्वल रहने पर उसे विजेता घोषित किया गया। वैभव को जब इस बात का पता चला तो उसे अपनी सोच पर बड़ा पछतावा हुआ। उसने तुरंत विभोर को फोन किया और दोस्ती निभाने के लिए थैंक्यू कहा। शाम को विभोर, दादी के हालचाल पूछने वैभव के घर पहुंचा। विभोर को देखते ही वैभव उसके गले लग गया और रोते हुए उसे सॉरी कहा। विभोर ने पूछा, सॉरी किसलिए? तो वैभव ने उसे पूरी बात बताई। इस पर विभोर मुस्कुरा दिया। फिर दोनों जोर से हंसने लगे। तभी वैभव के चाचाजी वहां आ गए। उन्होंने हंसी की वजह पूछी तो वैभव ने उन्हें सारी बात बता दी। बात सुनते ही पहले उन्होंने विभोर की समझदारी की सराहना की। फिर बोले,

देखो। हर कोई हर काम में अव्वल नहीं हो सकता। इसलिए अपना हुनर पहचान कर ही आगे बढ़ना चाहिए। विभोर पढ़ाई में अच्छा है तो वैभव स्पोर्ट्स में। इसलिए वैभव को स्पोर्ट्स में कुछ कर दिखाने का जज्बा रखना चाहिए। वैभव को चाचाजी की बात समझने में देर नहीं लगी। अब वह स्कूल एक्टिविटीज में बढ़चढ़ कर हिस्सा लेने लगा। देखते ही देखते वह खेलों में अच्छा प्रदर्शन करने लगा और सभी उसकी तारीफ करने लगे। स्कूल में टीचर्स और स्टूडेंट्स का वह भी चहेता बन गया।

८८३) यज्ञ की सफलता - महाराज युधिष्ठिर ने पूरे विधि-विधान से राजसूय यज्ञ किया। दिल खोलकर ऋषि-मुनियों का सम्मान किया गया। यज्ञ में घी, दूध और पकवानों की आहुतियां दी गईं। लेकिन फिर भी आकाश में घंटियां नहीं बजीं जो यज्ञ की सफलता का सूचक थीं। इस पर महाराज युधिष्ठिर सहित पांडव चिंतामग्न हो गए। इसकी चर्चा पंडितों से की गई, पर सभी का कहना था कि यज्ञ पूरे विधि-विधान से संपन्न हुआ है। अंत में युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण के पास पहुंचे और बोले, देवकीनंदन, इतने विधि-विधान से हमने राजसूय यज्ञ कराया, किंतु वह सफल नहीं हो सका। इसका क्या कारण हो सकता है? श्रीकृष्ण मुस्कराए तथा बोले, धर्मराज, यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को अपनी विद्वता का अहंकार हो गया था। वे अपने पांडित्य तथा जाति के अहं से दग्ध थे। ऐसे में यज्ञ सफल कैसे होता। तो भगवान, अब हमें यज्ञ की सफलता के लिए क्या करना होगा? युधिष्ठिर ने पूछा। आप किसी भी सच्चे व निश्छल हृदय भक्त को बुलाकर उसे भोजन कराएं। उसकी तृप्ति व आशीर्वाद से ही यज्ञ सफल हो सकता है। कृष्ण ने रास्ता बताया। पता लगाते लगाते युधिष्ठिर आखिरकार उस सच्चे भक्त के पासजा पहुंचे और उससे अपने यहां आकर भोजन करने की प्रार्थना की। भक्त का हृदय द्रवित हो गया और वह भोजन करने यज्ञस्थल पर पधारे। महारानी द्रौपदी ने अपने हाथों से सुस्वादु भोजन तैयार किया। भक्त को आदर के साथ आसन पर बिठाकर भोजन कराया गया। पास ही महाराजा युधिष्ठिर हाथ जोड़े खड़े रहे। यज्ञ मंडप में अंतिम पूजा- पाठ करनेवाले ब्राह्मणों ने यह दृश्य देखा तो उनका जाति अभिमान चूर-चूर हो गया। उधर भक्त ने भोजन के बाद तृप्त होकर जैसे ही डकार ली, आकाश में घंटियां बज उठीं। सच्चे भक्त की तृप्ति से यज्ञ देवता प्रसन्न हो उठे थे।

८८४) दर्पण झूठ न बोले - एक गुरु ने अपने शिष्य को आशीर्वाद के रूप में एक ऐसा दर्पण दिया, जिसमें व्यक्ति के मन के छिपे हुए भाव दिखाई देते थे। शिष्य उस दर्पण को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। शिष्य ने परीक्षा लेने के लिए दर्पण का मुंह सबसे पहले गुरु की ओर ही कर दिया। शिष्य ने दर्पण में देखा कि उसके गुरु के मन में मोह, अहंकार, क्रोध आदि बुरी बातें हैं। यह देखकर शिष्य को दुख हुआ। उसने अपने मित्रों और परिचितों के सामने दर्पण रखकर परीक्षा ली। शिष्य को सभी के मन में कोई न कोई बुराई दिखाई दी। उसने अपने माता-पिता की भी दर्पण से परीक्षा ली। माता-पिता के मन में भी उसे कुछ बुराइयां दिखाई दीं। यह देखकर शिष्य को बहुत दुख हुआ और इसके बाद वह एक बार फिर गुरुकुल पहुंचा। तब गुरु ने दर्पण का रुख शिष्य की ओर कर दिया। शिष्य ने दर्पण में देखा कि उसके मन में भी अहंकार, क्रोध जैसी बुराइयां हैं। गुरु ने शिष्य को समझाते हुए कहा कि यह दर्पण मैंने तुम्हें अपनी बुराइयां देखकर खुद में सुधार करने के लिए दिया था, दूसरों की बुराइयां देखने के लिए नहीं। जितना समय दूसरों की बुराइयां देखने में लगाया, उतना समय खुद

को सुधारने में लगाया होता तो अब तक तुम्हारा व्यक्तित्व बदल चुका होता। हमें दूसरों की बुराइयों को नहीं, बल्कि खुद की बुराइयों को खोजकर सुधारना चाहिए। तभी जीवन सुखी हो सकता है।

८८५) परेशानी में फंसना और निकलना - एक शहर में एक धनी व्यक्ति रहता था। उसके पास बहुत पैसा था और उसे इस बात पर बहुत घमंड भी था। एक बार किसी कारण से उसकी आंखों में संक्रमण हो गया। आंखों में बुरी तरह जलन होती थी। वह चिकित्सक के पास गया लेकिन डॉक्टर उसकी इस बीमारी का इलाज नहीं कर पाया। धनी के पास बहुत पैसा था। उसने देश-विदेश से बहुत सारे नीम-हकीम और डॉक्टर बुलाए। एक बड़े डॉक्टर ने बताया कि आपकी आंखों में एलर्जी है। आपको कुछ दिन तक सिर्फ हरा रंग ही देखना होगा और कोई और रंग देखेंगे तो आपकी आँखों को परेशानी होगी। अब क्या था, धनी ने बड़े बड़े पेंटरों को बुलाया और पूरे महल को हरे रंग से रंगने के लिए कहा। वह बोला- मुझे हरे रंग के अलावा कोई और रंग दिखाई नहीं देना चाहिए, मैं जहां से भी जाऊं हर जगह हरा रंग कर दो। इस काम में बहुत पैसा खर्च हो रहा था लेकिन फिर भी धनी की नजर किसी अलग रंग पर पड़ ही जाती थी।

वहीं शहर से एक सज्जन पुरुष गुजर रहा था। उसने चारों तरफ हरा रंग देखकर लोगों से कारण पूछा। सारी बात सुनकर वह धनी के पास गया और बोला- सेठ जी, आपको इतना पैसा खर्च करने की जरूरत नहीं है। मेरे पास आपकी परेशानी का एक छोटा-सा इलाज है। आप हरा चष्मा क्यों नहीं खरीद लेते, फिर सब कुछ हरा हो जाएगा। धनी की आँख खुली की खुली रह गई। उसके दिमाग में यह शानदार विचार आया ही नहीं, वह बेकार में इतना पैसा खर्च किए जा रहा था। जीवन में हमारी सोच और देखने के नजरिये पर भी बहुत सारी चीजें निर्भर करती हैं। कई बार परेशानी का हल बहुत आसान होता है लेकिन हम परेशानी में फंसे रहते हैं।

८८६) एक बोली अनमोल - पंजाब के छज्जूमल ईश्वरभक्त व्यापारी थे। वह प्रतिदिन सबेरे उठकर स्नान करने के बाद भगवान का भजन करते थे। ठीक समय पर दुकान खोलकर सामान बेचते और सभी से अच्छा व्यवहार करते थे। पूरे नगर में उनकी ईमानदारी की चर्चा थी। उनके बच्चे जब जवान हो गए तो उन्होंने पिता का काम संभाल लिया। छज्जूराम अक्सर सोचते रहते थे कि अब मेरी उम्र ६० की हो गई है। क्यों न दुकान का झंझट छोड़कर पूरा समय भगवान के भजन और जनसेवा में लगाया जाए। लेकिन घर-गृहस्थी की चिंता में वह फिर उलझ जाते थे। उन्हें लगता कि उनके ऊपर अभी ढेर सारी जिम्मेदारियां हैं। वह मन ही मन सोचते, अभी तो पोतों को प्रशिक्षित करना है, उनके विवाह करने हैं। उनसे निपटने के बाद ही दुकान की जिम्मेदारी छोड़नी चाहिए और ऐसा सोचकर वह हर बार अपना निर्णय बदल लेते। एक सुबह की बात है। वह इस उधेड़बुन में चले जा रहे थे कि घर-गृहस्थ की जिम्मेदारियां भी हैं, भगवत भजन और जनसेवा से भी जुड़ना है, कैसे क्या करें। वह जिस सड़क पर गुजर रहे थे, सफाई वाली वहां झाड़ू लगा रही थी। सफाई वाली ने उन्हें बीच सड़क पर चलते देखकर कहा, सेठजी, एक तरफ हो जाओ। बीच मे रहोगे तो धूल पड़ जाएगी। इधर या उधर ही ठीक रहोगे। सड़क साफ करनेवाली महिला के इन शब्दों ने सेठ जी की आंखें खोल दीं। अब सेठजी की उलझन दूर हो चुकी थी। वह सीधे अपनी दुकान पर पहुंचे। उन्होंने दुकान की चाबियां बेटे को सौंपते हुए कहा, दो नावों में सवार होनेवाले का कभी कल्याण नहीं होता। मैंने ६० वर्ष कमाने में बिता दिए। अब शेष जीवन कमाए धन से लोगों की सेवा

करूंगा और भगवान का भजन करूंगा। कुछ ही समय में सेठ छज्जूराम भगत छज्जूराम के नाम से विख्यात हो गए।

८८७) धीरज से काम लेंगे तो सफल होंगे - बहुत समय पहले की बात है। एक वृद्ध वन में एक वृक्ष तले विश्राम करने रुके। उन्हें प्यास लगी थी। उनका सहयोगी आनंद पास की पहाड़ी पर झरने से पानी लेने गया। उसने देखा कि झरने से अभी अभी कई गाड़ियां निकली थीं और उसका पानी गंदा हो गया था। तब आनंद उसका पानी बिना लिए लौट आया। उसने वृद्ध से कहा, झरने का पानी साफ नहीं है, मैं पीछे लौट कर नदी से पानी ले आता हूं। नदी बहुत दूर थी। तब वृद्ध ने उसे झरने का पानी ही लाने को वापस लौटा दिया। आनंद थोड़ी देर में फिर खाली लौट आया। पानी उसे लाने जैसा नहीं लगा, पर वृद्ध ने उसे इस बार भी वापस लौटा दिया। तीसरी बार आनंद जब झरने पर पहुंचा, तो देखकर चकित हो गया। झरना अब बिलकुल निर्मल और शांत हो गया था। सारा कचरा बैठ गया था। यही स्थिति हमारे साथ भी होती है। कई बार जीवन में ऐसी परिस्थिति आती है जब दिमाग में उथल-पुथल हो जाती है। कुछ भी काम सही नहीं होता, लेकिन शांति और धीरज से काम करें तो आपको जरूर सफलता मिलेगी।

८८८) हीरा क्यों टूटा? - एक राजमहल में कामवाली और उसका बेटा काम करते थे। एक दिन राजमहल में कामवाली के बेटे को एक हीरा मिलता है। वह माँ को बताता है। कामवाली होशियारी से वह हीरा बाहर फेंककर कहती है कि ये कांच है हीरा नहीं। कामवाली घर जाते वक्त चुपके से वह हीरा उठाकर ले जाती है। वह सुनार के पास जाती है। सुनार समझ जाता है कि इसको हीरा कहीं मिला होग, ये असली या नकली पता नहीं इसलिए पूछने आ गई। सुनार भी होशियारी से वो हीरा बाहर फेंक कर कहता है, ये कांच है हीरा नहीं। काम वाली लौट जाती है। सुनार वह हीरा चुपके से उठाकर जौहरी के पास ले जाता है, जौहरी हीरा पहचान लेता है। अनमोल हीरा देखकर उसकी नीयत बदल जाती है। वह भी हीरा बाहर फेंक कर कहता है कि ये कांच है हीरा नहीं। लेकिन ये क्या, जैसे ही जौहरी हीरा बाहर फेंकता है, उसके टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं।

यह सब एक राहगीर निहार रहा था, वह हीरे के पास जाकर पूछता है- कामवाली और सुनार ने दो बार तुम्हें फेंका, तब तो तुम नहीं टूटे, फिर अब कैसे टूटे?

हीरा बोला- कामवाली और सुनार ने दो बार मुझे फेंका क्योंकि वो मेरी असलियत से अनजान थे। लेकिन, जौहरी तो मेरी असलियत जानता था, तब भी उसने मुझे बाहर फेंक दिया, यह दु:ख मैं सहन नहीं कर सका, इसलिए मैं टूट गया। ऐसा ही हम मनुष्यों के साथ भी होता है। जो लोग आपको जानते हैं, इसके बावजूद आपका दिल दुखाते हैं, तब यह बात आप सहन नहीं कर पाते। इसलिए कभी भी अपने स्वार्थ के लिए करीबियों का दिल ना तोड़े। हमारे आसपास भी बहुत से लोग हीरे जैसे होते हैं। उनकी दिल और भावनाओं को कभी भी मत दुखाएं और ना ही उनके अच्छे गुणों के टुकड़े करिए।

८८९) मूर्ख भेड़िया और समझदार पिल्ला - एक बार की बात है कि एक कुत्ते का पिल्ला अपने मालिक के घर के बाहर धूप में सोया पड़ा था। मालिक का घर जंगल के किनारे पर था। अत: वहां भेड़िया, गीदड़ और लकड़बग्घे जैसे चालाक जानवर आते रहते थे। यह बात उस नन्हे पिल्ले को मालूम नहीं थी। उसका मालिक कुछ दिन पहले ही उसे वहां लाया था। अभी उसकी उम्र भी सिर्फ दो महीने थी। अचानक एक लोमड़ वहां आ निकला, उसने आराम से सोते पिल्ले

को दबोच लिया। पिल्ला इस अकस्मात आक्रमण से भयभीत हो उठा, मगर वह बड़ी ही समझदार नस्ल का था। उसका पिता मिलिटरी में था और मां पुलिस में जासूसी करती थी।

संकट सिर पर आया देखकर भी वह घबराया नहीं और धैर्य से बोला लोमड़ भाई, अब तुमने मुझे पकड़ ही लिया है तो खा लो, मगर मेरी एक राय है अगर मानो तो। इसमें तुम्हारा ही लाभ है। अपने लाभ की बात सुनकर लोमड़ ने पूछा कैसा लाभ?

देखो भाई, मैं यहां नया नया आया हूं, इसलिए अभी दुबला तथा निर्बल हूं। कुछ दिन खा-पीकर मुझे मोटा ताजा हो जाने दीजिए। फिर आकर मुझे खा लेना। वैसे भी अभी मैं बच्चा हूं। मुझे खाकर भी शायद आज आपकी भूख न मिटे।

लोमड़ पिल्ले की बातों में आ गया उसे छोड़कर चला गया। पिल्ले ने अपने भाग्य को धन्यवाद दिया तथा असुरक्षित स्थान पर सोने की गलती फिर कभी न करने की कसम खाई। कुछ महीनों के बाद लोमड़ फिर उस घर के पास आकर उस पिल्ले को खोजने लगा। लेकिन अब वह पिल्ला कहां रहा था, अब तो वह बड़ा हो गया था और पहले से अधिक समझदार भी। उस समय वह मकान की छत पर सो रहा था। लोमड़ ने उससे कहा, अपने वादे के अनुसार नीचे आकर मेरा आहार बन जाओ। अरे जा रे मूर्ख, मरने का भी वादा दिया है कभी किसी ने? जा अपनी मूर्खता पर उम्र भर पछताता रह। अब मैं तेरे हाथ आनेवाला नहीं है। कुत्ते ने उत्तर दिया।

लोमड़ अपनासा मुंह लेकर चला गया। समझदारी व सूझबूझ से मौत को भी टाला जा सकता है।

८९०) जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि - एक बार राजा भोज की सभा में एक व्यापारी ने प्रवेश किया। राजा भोज की दृष्टि उस पर पड़ी तो उसे देखते ही अचानक उनके मन में विचार अया कि कुछ ऐसा किया जाए ताकि इस व्यापारी की सारी संपत्ति छीनकर राजकोष में जमा कर दी जाए। व्यापारी जब तक वहां रहा भोज का मन रह रहकर उसकी संपत्ति को हड़प लेने का करता। कुछ देर बाद व्यापारी चला गया। उसके जाने के बाद राजा को अपने राज्य के ही एक निवासी के लिए आए ऐसे विचारों के लिए बड़ा खेद होने लगा। राजा भोज ने सोचा कि मैं तो प्रजा के साथ न्यायप्रिय रहता हूं। आज मेरे मन में ऐसा कलुषित विचार क्यों आया? उन्होंने अपने मंत्री से सारी बात बताकर समाधान पूछा। मन्त्री ने कहा- इसका उत्तर देने के लिए आप मुझे कुछ समय दें। राजा मान गए। मंत्री विलक्षण बुद्धि का था। वह इधर-उधर के सोच-विचार में समय न खोकर सीधा व्यापारी से मैत्री गाँठने पहुंचा। व्यापारी से मित्रता करने के बाद उसने पूछा- मित्र तुम चिंतित क्यों हो? भारी मुनाफेवाले चन्दन का व्यापार करते हो, फिर चिंता कैसी? व्यापारी बोला, मेरे पास उत्तम कोटि के चंदन का बड़ा भंडार जमा हो गया है। चंदन से भरी गाड़ियां लेकर अनेक शहरों के चक्कर लगाए, पर नहीं बिक रहा है। बहुत धन इसमें फंसा पड़ा है। अब नुकसान से बचने का कोई उपाय नहीं है। व्यापारी की बातें सुनकर मंत्री ने पूछा- क्या हानि से बचने का कोई उपाय नहीं? व्यापारी हँसकर कहने लगा- अगर राजा भोज की मृत्यु हो जाए तो उनके दाह-संस्कार के लिए सारा चन्दन बिक सकता है। अब तो यही अंतिम मार्ग दिखता है। व्यापारी की इस बात से मंत्री को राजा के उस प्रश्न का उत्तर मिल चुका था जो उन्होंने व्यापारी के संदर्भ में पूछा था। मंत्री ने कहा- तुम आज से प्रतिदिन राजा का भोजन पकाने के लिए चालीस किलो चन्दन राजरसोई भेज दिया करो। पैसे उसी समय मिल जाएंगे। व्यापारी यह सुनकर

बड़ा खुश हुआ। प्रतिदिन और नकद चंदन बिक्री से तो उसकी समस्या ही दूर हो जानेवाली थी। वह मन ही मन राजा के दीर्घायु होने की कामना करने लगा ताकि राजा की रसोई के लिए चंदन लंबे समय तक बेचता रहे। एक दिन राजा अपनी सभा में बैठे थे। वह व्यापारी दोबारा राजा के दर्शनों को वहां आया। उसे देखकर राजा के मन में विचार आया कि यह कितना आकर्षक व्यक्ति है। इसे कुछ पुरस्कार स्वरूप अवश्य दिया जाना चाहिए। राजा ने मंत्री से कहा- यह व्यापारी पहली बार आया था तो उस दिन मेरे मन में कुछ बुरे भाव आए थे और मैंने तुमसे प्रश्न किया था। आज इसे देखकर मेरे मन के भाव बदल गए। इसे दूसरी बार देखकर मेरे मन में इतना परिवर्तन कैसे हो गया? मन्त्री ने उत्तर देते हुए कहा- महाराज। मैं आपके दोनों ही प्रश्नों का उत्तर आज दे रहा हूं। यह जब पहली बार आया था तब यह आपकी मृत्यु की कामना रखता था। अब यह आपके लंबे जीवन की कामना करता रहता है। इसलिए आपके मन में इसके प्रति दो तरह की भावनाओं ने जन्म लिया है। जैसी भावना अपनी होती है, वैसा ही प्रतिबिम्ब दूसरे के मन पर पड़ने लगता है।

८९१) शरारती बंदर - राजू बंदर की शरारतों से सभी जानवर परेशान थे। एक बार स्कूल में टीचर ने राजू को जोरदार डांट लगाई, लेकिन उसने उनका भी मजाक उड़ाया। राजू ने दूसरे दिन उनकी कुर्सी पर खुजली की पत्ती रख दी, जिससे पूरे शरीर में उनको खुजली होने लगी। राजू सिर्फ स्कूलों में ही नहीं, बल्कि घर के पड़ोसियों को भी परेशान करता था। वह पड़ोसी की भैंसों को भी तंग करता। एक दिन तो उसने भैंस की पूंछ के सारे बाल कुतर डाले। एक बार स्कूल से घर जाते समय उसे लंबा जिराफ मिला। जिराफ लंगड़ाकर चलता था। राजू उसे लंगडू-लंगडू कहकर चिढ़ाता था। जिराफ समझाने के लिए उसके पास जा रहा था, लेकिन राजू ने सोचा शायद जिराफ उसकी पिटाई के लिए आ रहा है। उसने झट से सड़क की ओर छलांग लगा दी। सड़क पर छलांग लगाते समय राजू कार की चपेट में आ गया। जंगल के सभी जानवर वहां पर आ गए। राजू को देखने के लिए जिराफ भी वहां पर पहुंच गया। राजू की हालत देखकर जिराफ को दुख हुआ। उसने सड़क से जा रहे चालक से निवेदन किया कि वह राजू को अस्पताल तक पहुंचा दे।

राजू के साथ ही जिराफ भी अस्पताल गया। वहां डॉक्टरों ने बताया कि राजू की हड्डी टूट गई है और वह काफी गंभीर है। डॉक्टरों ने बोला कि राजू का ऑपरेशन करना पड़ेगा। दयालु जिराफ ने ऑपरेशन के लिए अपना खून दिया और भगवान से प्रार्थना की कि राजू जल्द से ठीक हो जाए। जिराफ ने राजू के घर पर भी खबर दी। थोड़ी ही देर में राजू के माता-पिता भी वहां पहुंच गए। राजू को रात तक होश आया। सबके साथ जिराफ को देखकर वह डर गया। इतने में डॉक्टरों ने उसके पिता को बताया कि आज जिराफ नहीं होता तो राजू का बचना मुश्किल था। डॉक्टरों की बात सुन शरारती राजू की आंखों में आंसू आ गए। राजू ने जिराफ से माफी मांगी और निश्चय किया कि अब आगे से वह किसी को परेशान नहीं करेगा।

८९२) तीन मछलियां - एक बड़ा जलाशय था। जलाशय में पानी गहरा होता है इसलिए उसमें काई तथा मछलियों का प्रिय भोजन जलीय सूक्ष्म पौधे उगते हैं। ऐसे स्थान मछलियों को बहुत रास आते हैं। उस जलाशय में भी बहुत-सी मछलियां आकर रहती थीं। अंडे देने के लिए तो सभी मछलियां उस जलाशय में आती थीं। वह जलाशय आसानी से नजर नहीं आता था।

उसी में ३ मछलियों का झुंड रहता था। उनके स्वभाव भिन्न थे। पिया नामक मछली संकट आने के लक्षण मिलते ही

संकट टालने का उपाय करने में विश्वास रखती थी। रिया कहती थी कि संकट आने पर ही उससे बचने का यत्न करो। चिया का सोचना था कि संकट को टालने या उससे बचने की बात बेकार है। करने कराने से कुछ नहीं होता, जो किस्मत में लिखा है, वह होकर रहेगा।

एक दिन शाम को मछुआरे नदी से मछलियां पकड़कर घर जा रहे थे। बहुत कम मछलियां उनके जालों में फंसी थीं। अत: उनके चेहरे उदास थे। तभी उन्हें झाड़ियों के ऊपर मछलीखोर पक्षियों का झुंड जाता दिखाई दिया। सबकी चोंच में मछलियां दबी थी। वे चौंके। एक ने अनुमान लगाया, दोस्तों। लगता है झाड़ियों के पीछे नदी से जुड़ा जलायश है, जहां इतनी सारी मछलियां पल रही हैं। मछुआरे पुलकित होकर झाड़ियों में से होकर जलाशय के तट पर आ निकले और ललचाई नजर से मछलियों को देखने लगे।

एक मछुआरा बोला, अहा। इस जलाशय में तो मछलियां भरी पड़ी हैं। आज तक हमें इसका पता ही नहीं लगा। यहां हमें ढेर सारी मछलियां मिलेंगी। दूसरा बोला। तीसरे ने कहा, आज तो शाम घिरनेवाली है, कल सुबह ही आकर यहां जाल डालेंगे। इस प्रकार मछुआरे दूसरे दिन का कार्यक्रम तय करके चले गए। तीनों मछलियों ने मछुआरे की बात सुन ली थी।

पिया मछली ने कहा, साथियों। तुमने मछुआरे की बात सुन ली। अब हमारा यहां रहना खतरे से खाली नहीं हैं। खतरे की सूचना हमें मिल गई है। समय रहते अपनी जान बचाने का उपाय करना चाहिए। मैं तो अभी भी इस जलाशय को छोड़कर नहर के रास्ते नदी में जा रही हूं। उसके बाद मछुआरे सुबह आएं, जाल फेंके, मेरी बला से। तब तक मैं तो बहुत दूर अठखेलियां कर रही होऊंगी। रिया मछली बोली, तुम्हें जाना है तो जाओ, मैं तो नहीं आ रही। अभी खतरा आया कहां है, जो इतना घबराने की जरूरत है। हो सकता है संकट आए ही न। उन मछुआरों का यहां आने का कार्यक्रम रद्द हो सकता है, हो सकता है रात को उनके जाल चूहे कुतर जाएं। हो सकता है, उनकी बस्ती में आग लग जाए। भूचाल आकर उनके गांव को नष्ट कर सकता है या रात को मूसलधार वर्षा आ सकती है और बाढ़ में उनका गांव बह सकता है इसलिए उनका आना निश्चित नहीं है। जब वे आएंगे, तब की तब सोचेंगे। हो सकता है मैं उनके जाल में ही न फसूं।

चिया ने भाग्यवादी बात कही, भागने से कुछ नहीं होने का। मछुआरों को आना है तो वे आएंगे। हमें जाल में फंसना हैं तो हम फंसेंगे। किस्मत में मरना ही लिखा है तो क्या किया जा सकता है?

इस प्रकार पिया तो उसी समय वहां से चली गई। रिया और चिया जलाशय में ही रही। भोर हुई तो मछुआरे अपने जाल को लेकर आए और लगे जलायश में जाल फेंकने और मछलियां पकड़ने। रिया ने संकट को आए देखा तो लगी जान बचाने के उपाय सोचने। उसका दिमाग तेजी से काम करने लगा। आसपास छिपने के लिए कोई खोखली जगह भी नहीं थी। तभी उसे याद आया कि उस जलायश में काफी दिनों से एक मरे हुए ऊदबिलाव की लाश तैरती रही है। वह उसके बचाव के काम आ सकती है।

जल्दी ही उसे वह लाश मिल गई। लाश सड़ने लगी थी। रिया लाश के पेट में घुस गई और सड़ती लाश की सड़ांध अपने ऊपर लपेटकर बाहर निकली। कुछ ही देर में मछुआरे ने अपना जाल खींचा और मछलियों को किनारे पर जाल से उलट दिया। बाकी मछलियां तो तड़पने लगीं, परंतु रिया दम साधकर मरी हुई मछली की तरह पड़ी रही।

मछुआरे को सड़ांध का भभका लगा तो मछलियों को देखने लगा। उसने निर्जीव पड़ी रिया को उठाया और सूंघा, आक। यह तो कई दिनों की मरी मछली हैं। सड़ चुकी है। ऐसा बड़बड़ाकर बुरा-सा मुंह बनाकर उस मछुआरे ने रिया को जलाशय में फेंक दिया।

रिया अपनी बुद्धि का प्रयोग कर संकट से बच निकलने में सफल हो गई थी। पानी में गिरते ही उसने गोता लगाया और सुरक्षित गहराई में पहुंचकर जान की खैर मनाई। चिया भी दूसरे मछुआरे के जाल में फंस गई थी और एक टोकरे में डाल दी गई थी। भाग्य के भरोसे बैठी रहनेवाली चिया ने उसी टोकरी में अन्य मछलियों की तरह तड़प-तड़पकर प्राण त्याग दिए।

सीख- भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ धरकर बैठै रहने वाले का विनाश निश्चित है। पिया की तरह संकट का संकेत मिलते ही उपाय सोचना सबसे उत्तम है, रिया की तरह संकट आने पर दिमाग लगाना भी उचित हो सकता है लेकिन चिया की तरह भाग्य के भरोसे रहना सबसे खतरनाक है।

८९३) काम की लगन - संयुक्त राज्य अमेरिका के एक नौजवान ने परिश्रमपूर्वक इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद उसने एक अच्छी नौकरी की तलाश आरंभ की। उसकी नजर में कई कंपनियां थीं, लेकिन उसने केवल ऐसी जगह आवेदन किया, जहां से काम सीखने और नई चीजें जानने का अच्छा मौका मिलने की उम्मीद थी। जब वह उस संस्थान के कार्यालय में गया तो उसे बताया गया कि वहां तो मात्र एक टाइपिस्ट की जगह खाली है। नौजवान के पास थी तो इंजीनियरिंग की उपाधि, किंतु उसने भविष्य में बेहतर अवसरों की आशा में टाइपिस्ट की नौकरी करने के लिए तत्काल हां कर दी। उसे उसी दिन से काम करने को कहा गया, मगर वह चार दिन बाद आने का वादा कर चला गया। चार दिन बाद जब उसने काम संभाला तो कंपनी के मैनेजर ने पूछा, आप पहले तो तत्काल काम करने को आतुर थे, फिर चार दिन बाद क्यों आए? नौजवान ने उत्तर दिया, मुझे टाइप करना अच्छी तरह नहीं आता था। इसलिए इन चार दिनों में मैंने टाइपिंग का अच्छा अभ्यास किया और मुझे विश्वास है कि अब मैं यह काम करने में पूरी तरह सक्षम हूं। अपने काम को पूरी तन्मयता व दक्षता से करनी की इस आदत ने ही उस नौजवान को अंतत: संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर पहुंचाया। उसका नाम था- हर्बर्ट क्लार्क हूवर। हूवर का कहना था, सौंपे गए किसी भी कार्य को मन की संपूर्ण लगन से करने पर उसके बेहतर परिणाम सामने आते हैं। इसलिए जो भी काम हाथ में लें, उसे पूरी दक्षता के साथ करें।

८९४) यूं हुआ समस्या का समाधान - किसाी नगर में एक सेठ रहता था। उसके इकलौते लड़के की शादी का प्रसंग था। वातावरण में उत्साह की कमी न थी। भोजन चल रहा था। पंगत में दो ब्राह्मण भी थे। उनमें से एक काफी बातूनी था। वह बातें कर रहा था। अपना एक हाथ हिलाकर पंखा भी झल रहा था। उसका ध्यान पत्तल की ओर न था। भोजन में आम भी दिए जा रहे थे। जैसे ही पत्तल में आम आया कि पहले ब्राह्मण ने उसे खाना शुरू कर दिया। हुआ यह कि खाते-खाते उसके आम की गुठली छिटक कर दूसरे ब्राह्मण की पत्तल पर जा गिरी। यह देख पहला ब्राह्मण सकपकाया। सोचने लगा, पता नहीं यह दूसरा ब्राह्मण स्वभाव से कैसा हो। कही शोर मचा कर बेइज्जती न कर दे। ऐसी स्थिति में अब क्या करना चाहिए। उसे कुछ सूझ न पड़ा। लेकिन वह दूसरा ब्राह्मण तो अपने पड़ोसी से घुल-मिल कर

बातें करने में लगा हुआ था। इसका मतलब यह हुआ कि उसका ध्यान अपनी पत्तल की ओर था ही नहीं, लेकिन कुछ देर बाद जब उसने देखा कि उसकी पत्तल में दो गुठलियां रखी हुई हैं तो वह अचरज के साथ पहले ब्राह्मण से बोला- देखो तो महाराज, कितने अचरज की बात है कि मेरे आम में दो गुठलियां थीं। ऐसा न कभी पहले सुना न देखा।

पहले ब्राह्मण को यह जानकर चैन मिला कि ईश्वर ने ही उसे मुसीबत में से बचा लिया है। उसने उस ब्राह्मण को जवाब दिया- अब देखिए न पंडित जी। उससे भी एक बड़ा अचरज यह कि मेरे आम में तो गुठली ही नहीं है। भगवान की लीला तो अपरंपार होती है। उसके लिए कोई भी काम मुश्किल नहीं होता। खैर, यह समस्या तो सुलझ गई लेकिन जिन्होंने वास्तविकता देखी थी, वे लोग हंसते-हंसते लोट पोट हो रहे थे।

८९५) गुरुमंत्र से बने महान - दुनिया के सबसे महान वैज्ञानिकों में से एक थे अलबर्ट आइंस्टीन। उनका दिमाग दुनिया में सबसे तेज था। आइंस्टीन ने ही सापेक्षता का सिद्धांत दिया था, जिसमें उन्होंने ब्रह्माण्ड के नियमों को समझाया था। आइंस्टीन के इस सिद्धांत ने विज्ञान की दशा और दिशा दोनों को बदलकर रख दिया था। आइंस्टीन जितने बड़े वैज्ञानिक थे उतने बड़े ही दार्शनिक भी थे। सिर्फ विज्ञान ही नहीं, बल्कि आम आदमी की जिंदगी में भी उनके विचार एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं। हालांकि आइंस्टीन जितने महान वैज्ञानिक थे, स्कूल के दिनों में पढ़ाई में उतने ही कमजोर भी थे। आइंस्टीन स्कूल के समय पढ़ाई में इतने कमजोर थे कि उनके साथी उनका मजाक उड़ाया करते थे। इसी बात से तंग आकर आइंस्टीन ने एक दिन अपने शिक्षक से गंभीरतापूर्वक पूछा, क्या मैं कभी किसी तरह का विद्वान बन भी सकता हूं या नहीं? तब उनके अध्यापक ने कहा- दिलचस्पी, लगन, एकाग्रता और निरंतर अभ्यास द्वारा कोई भी व्यक्ति महान बन सकता है। अपने अध्यापक के इन उपदेशों को आइंस्टीन ने गुरुमंत्र की तरह लिया। इस गुरुमंत्र को अपने मन में बैठाकर और दृढ़संकल्प के साथ अध्ययन में जुट गए। आइंस्टीन का गुरुमंत्र जिसने सब कुछ बदलकर रख दिया। विश्व जानता है उन्होंने विज्ञान का नक्शा ही बदलकर रख दिया। आज उसी कमजोर विद्यार्थी को अणु विज्ञान और सापेक्षता के सिद्धांत के जनक के रूप में ख्याति प्राप्त है।

आइंस्टीन की एक कमजोर विद्यार्थी से महान वैज्ञानिक बनने तक की कहानी वाकई में किसी चमत्कार से कम नहीं है। ये था आइंस्टीन का गुरुमंत्र- आइंस्टीन आज उन लाखों-करोड़ों कमजोर विद्यार्थी के किए किसी प्रेरणा से कम नहीं है जो अपनी कक्षा में मजाक बनते हैं। आज कोई भी व्यक्ति आइंस्टीन का गुरुमंत्र दिलचस्पी, लगन, एकाग्रता और निरंतर अभ्यास को अपनाकर महान बन सकता है।

८९६) माता पिता के प्रति कर्त्तव्य - एक बच्चे को आम का पेड़ बहुत पसंद था। जब भी फुर्सत मिलती वो आम के पेड़ के पास पहुंच जाता। पेड़ के ऊपर चढ़ता, आम खाता, खेलता और थक जाने पर उसी की छाया में सो जाता। उस बच्चे और आम के पेड़ के बीच एक अनोखा रिश्ता बन गया। बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता गया, वैसे-वैसे उसने पेड़ के पास आना कम कर दिया। कुछ समय बाद तो बिल्कुल ही बंद हो गया। आम का पेड़ उस बालक को याद करके अकेला रोता।

एक दिन अचानक पेड़ ने उस बच्चे को अपनी तरफ आते देखा और पास आने पर कहा, तू कहाँ चला गया था? मैं रोज

तुम्हें याद किया करता था। चलो आज फिर से दोनों खेलते हैं? बच्चे ने आम के पेड़ से कहा, अब मेरी खेलने की उम्र नहीं है, मुझे पढ़ना है, लेकिन मेरे पास फीस भरने के पैसे नहीं है। पेड़ ने कहा, तू मेरे आम लेकर बाजार में बेच दे, इससे जो पैसे मिले अपनी फीस भर देना। उस बच्चे ने आम के पेड़ से सारे आम तोड़ लिए और उन सब आमों को लेकर वहां से चला गया। उसके बाद फिर कभी दिखाई नहीं दिया। आम का पेड़ उसकी राह देखता रहता। एक दिन वह फिर आया और कहने लगा, अब मुझे नौकरी मिल गई है, मेरी शादी हो चुकी है, मुझे मेरा अपना घर बनाना है, इसके लिए मेरे पास अब पैसे नहीं है। आम के पेड़ ने कहा, तू मेरी सभी डालियों को काट कर ले जा, उससे अपना घर बना ले। उस जवान ने पेड़ की सभी डाली काट ली और लेकर चला गया। आम के पेड़ के पास अब कुछ नहीं था, वह अब बिल्कुल ठूंठ हो गया था। कोई उसे देखता भी नहीं था।

पेड़ ने भी अब वह बालक/जवान उसके पास फिर आएगा, यह उम्मीद छोड़ दी थी। फिर एक दिन अचानक वहां एक बूढ़ा आदमी आया। उसने आम के पेड़ से कहा, शायद आपने मुझे नहीं पहचाना, मैं वही बालक हूं जो बार-बार आपके पास आता और आप हमेशा अपने टुकड़े काटकर भी मेरी मदद करते थे। आम के पेड़ ने दु:ख के साथ कहा, पर बेटा मेरे पास अब ऐसा कुछ भी नहीं जो मैं तुम्हें दे सकूं। वृद्ध ने आँखों में आँसू लिए कहा। आज मैं आपसे कुछ लेने नहीं आया हूं बल्कि आज तो मुझे आपके साथ जी भरके खेलना है, आपकी गोद में सर रखकर सो जाना है। इतना कहकर वह आम के पेड़ से लिपट गया और आम के पेड़ की सूखी हुई डाली फिर से अंकुरित हो उठी।

वह आम का पेड़ हमारे माता-पिता हैं। जब छोटे थे उनके साथ खेलना अच्छा लगता था। जैसे-जैसे बड़े होते चले गए उनसे दूर होते गए। पास भी तब आए जब कोई जरूरत पड़ी, कोई समस्या खड़ी हुई। आज कई माँ-बाप उस बंजर पेड़ की तरह अपने बच्चों की राह देख रहे हैं। जाकर उनसे लिपटे, उनके गले लग जाएं, फिर देखना वृद्धावस्था में उनका जीवन फिर से अंकुरित हो उठेगा।

८९७) सोच अच्छी तो बढ़ेगा प्रेम - दो भाई थे। आपस में बहुत प्यार था। खेत अलग अलग थे आजू बाजू, बड़ा भाई शादीशुदा था। छोटा अकेला, एक बार खेती बहुत अच्छी हुई। अनाज बहुत हुआ। खेत में काम करते करते बड़ा भाई बगल के खेत में छोटे भाई को खेत देखने का कहकर खाना खाने चला गया।

बड़े भाई के जाते ही छोटा भाई सोचने लगा- खेती तो अच्छी हुई इस बार अनाज भी बहुत हुआ। मैं तो अकेला हूं, बड़े भाई की तो गृहस्थी है। मेरे लिए तो ये अनाज जरूरत से ज्यादा है। भैया के साथ तो भाभी बच्चे हैं। उन्हें जरूरत ज्यादा है। ऐसा विचार कर वह १० बोरे अनाज बड़े भाई के अनाज में डाल देता है। बड़ा भाई भोजन करके आता है। उसके आते ही छोटा भाई भोजन के लिए चला जाता है। भाई के जाते ही वह विचारता है- मेरा गृहस्थ जीवन तो अच्छे से चल रहा है। भाई को तो अभी गृहस्थी जमाना है। उसे अभी जिम्मेदारियां संभालना है। मैं इतने अनाज का क्या करूंगा? ऐसा विचार कर उसने १० बोरे अनाज छोटे भाई के खेत में डाल दिये। दोनों भाइयों के मन में हर्ष था। अनाज उतना का उतना ही था और हर्ष स्नेह वात्सल्य बढ़ा हुआ था। सोच अच्छी रखेंगे तो प्रेम अपने आप बढ़ेगा। अगर ऐसा प्रेम भाई भाई में हुआ तो दुनिया की कोई भी ताकत आपके परिवार को तोड़ नहीं सकती।

८९८) अच्छाइयों को देखें, बुराइयों को नहीं - एक बार की बात है। दो दोस्त रेगिस्तान से होकर गुजर रहे थे। सफर के दौरान दोनों के बीच में किसी बात को लेकर कहासुनी हो गई। उनमें से एक दोस्त ने दूसरे के गाल पर थप्पड़ मार दिया। जिसने थप्पड़ खाया था, उसे बहुत आघात पहुंचा लेकिन वो चुप रहा और उसने बिना कुछ बोले रेत पर लिखा- आज मेरे सबसे अच्छे मित्र ने मुझे थप्पड़ मारा।

उसके बाद उन दोनों ने दुबारा चलना शुरू किया। चलते चलते उन्हें एक नदी मिली। दोनों दोस्त उस नदी में स्नान के लिए उतरे। जिस दोस्त ने थप्पड़ खाया था, उसका पैर फिसला और वो पानी में डूबने लगा, उसे तैरना नहीं आता था। दूसरे मित्र ने जब उसकी चीख सुनी तो वो उसे बचाने की कोशिश करने लगा और उसे निकाल कर बाहर ले आया। अब डूबनेवाले दोस्त ने पत्थर के ऊपर लिखा- आज मेरे सबसे अच्छे मित्र ने मेरी जान बचाई। वो दोस्त जिसने थप्पड़ मारा और जान बचाई, उसने दूसरे से पूछा- जब मैंने तुम्हें थप्पड़ मारा तब तुमने रेत पर लिखा और जब मैंने तुम्हारी जान बचाई तब तुमने पत्थर पर लिखा, ऐसा क्यों?

दोस्त ने जवाब दिया- रेत पर इसलिए लिखा ताकि वो जल्दी मिट जाए और पत्थर पर इसलिए लिखा ताकि वो कभी न मिटे। जब आपको कोई दु:ख पहुंचाता है तब उसका प्रभाव आपके दिलो दिमाग पर रेत पर लिखे शब्दों की तरह होना चाहिए, जिसे क्षमा की हवाएं आसानी से मिटा सकें। लेकिन जब कोई आपके हित में कुछ करता है तब उसे पत्थर पर लिखे शब्दों की तरह याद रखें ताकि वो हमेशा अमिट रहे। इसलिए किसी भी व्यक्ति की अच्छाई पर ध्यान दें, न कि उसकी बुराई पर।

८९९) भगवान के दरबार में सब बराबर - यूनान की बात है। वहां एक बार बड़ी प्रदर्शनी लगी थी। उस प्रदर्शनी में अपोलो की बहुत ही सुन्दर मूर्ति थी। अपोलो को यूनानी अपना भगवान मानते हैं। वहां राजा और रानी प्रदर्शनी देखने आए। उन्हें वह मूर्ति बड़ी अच्छी लगी। राजा ने पूछा, यह किसने बनाई है? सब चुप। किसी को यह पता नहीं था कि उसका बनानेवाला कौन है।

थोड़ी देर में ही सिपाही एक लड़की को पकड़ लाए। उन्होंने राजा से कहा, इसे पता है कि यह मूर्ति किसने बनाई है, पर यह बताती नहीं। राजा ने उससे बार बार पूछा, लेकिन उसने बताया नहीं। तब राजा ने गुस्से में भरकर कहा, इसे जेल में डाल दो। यह सुनते ही एक नौजवान सामने आया।

राजा के पैरों में गिरकर बोला, आप मेरी बहन को छोड़ दीजिए। कसूर इसका नहीं, मेरा है। मुझे दंड दीजिए। यह मूर्ति मैंने बनाई है। राजा ने पूछा, तुम कौन हो? उसने कहा, मैं गुलाम हूं। उसके इतना कहते ही लोग उत्तेजित हो उठे। एक गुलाम की इतनी हिमाकत कि भगवान की मूर्ति बनाए। वे उसे मारने दौड़े।

राजा बड़ा कलाप्रेमी था। उसने लोगों को रोका और बोला, तुम लोग शान्त हो जाओ। देखते नहीं, मूर्ति क्या कह रही है? वह कहती है कि भगवान के दरबार में सब बराबर है। राजा ने बड़े आदर से कलाकार को इनाम देकर विदा किया।

९००) सेर को सवा सेर - राजू पंसारी और मंगू फलवाले की दुकानें पास-पास थीं। एक दिन राजू को अलग से एक तराजू और बांट की जरूरत पड़ी उसने मंगू से कहा- मुझे कुछ देर के लिए तुम्हारा तराजू और बांट चाहिए। काम होते ही

मैं तुम्हें लौटा दूंगा। मंगू ने उसे अपना तराजू और बांट दे दिया। कुछ देर बाद जब मंगू ने अपना तराजू और बांट मांगा। तो राजू ने कहा- भैया, माफ करना मैं तुम्हें तुम्हारा सामान नहीं लौटा पाऊंगा। उसे तो चूहे खा गए। राजू की बात सुनकर मंगू को बहुत गुस्सा आया। लेकिन उसने गुस्सा दबाते हुए कहा- कोई बात नहीं अब चूहे खा गए हैं, तो इसमें तुम्हारा क्या दोष? यह कहकर वह अपनी दुकान चला गया। अगले दिन मंगू ने राजू से कहा- मैं तराजू और बांट खरीद ने शहर जा रहा हूं कुछ और जरूरी सामान भी लाना है। क्या तुम अपने बेटे को मेरे साथ भेज सकते हो? राजू ने अपने बेटे को मंगू के साथ भेज दिया। शाम को मंगू को अकेला लौटा देख राजू ने उससे पूछा- मेरा बेटा कहां है? मंगू ने कहा- क्या बताऊं भैया, उसे सारस उठा कर ले गया। उसकी बात सुनकर राजू को गुस्सा आ गया। वह गुस्से से भुनभूताने हुए बोला- इतने बड़े लड़के को भला सारस कैसे उठाकर ले जा सकता है? मंगू ने कहा- ठीक उसी तरह जिस तरह इतने बड़े तराजू और बांट को चूहे खा सकते हैं। उसकी बात सुनकर राजू को अपनी गलती का एहसास हो गया। उसने मंगू को उसका सामान लौटा दिया और कहा- अब तो बता दो मेरा बेटा कहां है? मंगू उसे अपने घर ले गया। वहां उसका बेटा आराम से भोजन कर रहा था। उसे सकुशल देखकर राजू ने मंगू को धन्यवाद किया और अपनी गलती के लिए माफी मांगी।

९०१) शेर फल क्यों नहीं खाता है? - मबावा नाम का एक सियार था। एक दिन उसने फलों से लदे पेड़ को खोज निकाला। उसने पेड़ से गिरे पके रसीले फल इकट्ठे किये और बस उनका स्वाद लेकर खाने बैठा ही था कि उसे दूर से आती शेर की दहाड़ सुनाई दी। उस चतुर सियार ने सोचा कि- लगता है शेर भूखा है, ऐसा न हो कि वह इधर ही चला आए और ये मीठे फल मुझसे छीन कर खा जाए। वह चिंतित हो गया कि सभी जानते हैं कि शेर तो जंगल का राजा है और राजा होने के नाते उसकी भूख बहुत ज्यादा है और वह सबके खाने को छीनकर खाने को अपना अधिकार समझता है। उसे ना करने की किसी की हिम्मत तक नहीं होती।

शेर की दहाड़ अब पास से आती सुनाई दी, लेकिन अब तक चतुर सियार ने शेर से रसभरे मीठे फलों को बचाने की तरकीब खोज निकाली थी। जैसे-जैसे शेर पास आ रहा था मवाबा ने जल्दी जल्दी फलों के ढेर को खाना शुरू कर दिया। उसे पता चल गया कि शेर उसे लालचियों की तरह जल्दी जल्दी खाते हुए देख रहा है, तब अचानक वह जमीन पर गिर पड़ा और छटपटाने लगा और कराहने लगा फिर छटपटा कर मृत जानवर की तरह शांत और स्थिर हो गया, आंखे भी उसने एक जगह टीका दीं।

शेर ने सोचा कि जरूर ये फल जहरीले होंगे तभी ये बेवकूफ सियार इन्हें खाकर मर गया है। शेर अपने रास्ते लौट गया। उसके नजरों से खूब दूर चले जाने के बाद मबावा उठा, उसने बचे हुए रसीले फल खाये और उसे याद आया कि पास ही नाले के पास एक दूसरे सियार का कंकाल पड़ा है। वह उसे उठा लाया और फलों के छिलकों के पास उसे पटक दिया। ठीक वहां जहां उसने अपने मरे हुए होने का नाटक किया था। अपनी तरकीब पर खुश होता हुआ सियार अपनी गुफा में लौट गया।

जब कुछ सप्ताह बाद शेर फल के पेड़ के पास से गुजरा तो पेड़ उसी तरह लाल रसीले फलों से लदा था। उसकी भूख

जग आई वह कुछ कदम बढ़ा पर वह ठिठक गया। वहां बेचारे लालची सियार का कंकाल पड़ा था। उसे गिद्ध नोच रहे थे। उसे याद आ गया कि ओह यह तो मबावा का कंकाल है वही यहां लालची की तरह इन फलों को हबड़ हबड़ खा रहा था। फिर छटपटा कर गिर गया था। उसने कसम खाई कि वह अब कभी किसी पेड़ के फल नहीं खाएगा। तब का दिन और आज का दिन शेर ने किसी पेड़ के फल खाने से तौबा कर ली। इससे सियार और अन्य झाड़ियों में रहनेवाले छोटे-छोटे जानवरों को बड़ी खुशी हुई कि राजा होने के नाते शेर कम से कम उनके खाने पर अब हाथ नहीं साफ कर पाएगा। अब उन्हें अपने फल शेर के साथ नहीं बांटने अब वे जितना जी चाहें फल खा सकते हैं। तो अफ्रीकन कहानी के अनुसार ऐसे शेर ने फल खाना छोड़ा।

९०२) अहंकार छोड़िये और सीखना शुरू कीजिए - रूस के ऑस्पेंस्की नाम के महान विचारक एक बार संत गुरजियफ से मिलने उनके घर गए। दोनों में विभिन्न विषयों पर चर्चा होने लगी। ऑस्पेंस्की ने संत गुरजियफ से कहा, यूं तो मैंने गहन अध्ययन और अनुभव के द्वारा काफी ज्ञान अर्जित किया है, किन्तु मैं कुछ और भी जानना चाहता हूं, आप मेरी कुछ मदद कर सकते हैं? गुरजियफ को मालूम था कि ऑस्पेंस्की अपने विषय के प्रकांड विद्वान हैं, जिसका उन्हें थोड़ा घमंड भी है, अत: सीधी बात करने से कोई काम नहीं बनेगा। इसलिए उन्होंने कुछ देर सोचने के बाद एक कोरा कागज उठाया और उसे ऑस्पेंस्की की ओर बढ़ाते हुए बोले- यह अच्छी बात है कि तुम कुछ सीखना चाहते हो। लेकिन मैं कैसे समझूं कि तुमने अब तक क्या क्या सीख लिया है और क्या क्या नहीं सीखा है। अत: तुम ऐसा करो कि जो कुछ भी जानते हो और नहीं जानते हो, उन दोनों के बारे में इस कागज पर लिख दो। जो तुम पहले से ही जानते हो उसके बारे में तो चर्चा करना व्यर्थ है और जो तुम नहीं जानते, उस पर ही चर्चा करना ठीक रहेगा।

बात एकदम सरल थी, लेकिन ऑस्पेंस्की के लिए कुछ मुश्किल। उनका ज्ञानी होने का अभिमान धूल-धूसरित हो गया। ऑस्पेंस्की आत्मा और परमात्मा जैसे विषय के बारे में तो बहुत जानते थे, लेकिन तत्व स्वरूप और भेद अभेद के बारे में उन्होंने सोचा तक नहीं था।

गुरजियफ की बात सुनकर वे सोच में पड़ गए। काफी देर सोचने के बाद भी जब उन्हें कुछ समझ में नहीं आया तो उन्होंने वह कोरा कागज ज्यों का त्यों गुरजियफ को थमा दिया और बोले- श्रीमान मैं तो कुछ भी नहीं जानता। आज आपने मेरी आंखें खोल दी। ऑस्पेंस्की के विनम्रतापूर्वक कहे गए इन शब्दों से गुरजियफ बेहद प्रभावित हुए और बोले- ठीक है, अब तुमने जानने योग्य पहली बात जान ली है कि तुम कुछ नहीं जानते।

यही ज्ञान की प्रथम सीढ़ी है। अब तुम्हें कुछ सिखाया और बताया जा सकता है। अर्थात खाली बर्तन को भरा जा सकता है, किन्तु अहंकार से भरे बर्तन में बूंदभर ज्ञान भरना संभव नहीं। अगर हम खुद को ज्ञान को ग्रहण करने के लिए तैयार रखें तो ज्ञानार्जन के लिए सुपात्र बन सकेंगे। ज्ञानी बनने के लिए जरूरी है कि मनुष्य ज्ञान को पा लेने का संकल्प ले और वह केवल एक गुरु से ही स्वयं को न बांधे बल्कि उसे जहां कहीं भी अच्छी बात पता चले, उसे ग्रहण करें।

९०३) कमियां हमें अनोखा बनाती हैं - बहुत समय पहले की बात है। किसी गांव में एक किसान रहता था। वह रोज भोर में उठकर दूर झरनों से स्वच्छ पानी लेने जाया करता था। इस काम के लिए वह अपने साथ दो बड़े घड़े ले जाता

था, जिन्हें वो डंडे में बांधकर अपने कंधे पर दोनें और लटका लेता था। उनमें से एक घड़ा कहीं से फूटा हुआ था और दूसरा एकदम सही था। इस वजह से रोज घर पहुंचते-पहुंचते किसान के पास डेढ़ घड़ा पानी ही बच पाता था। ऐसा तकरीबन दो सालों से चल रहा था। सही घड़े को इस बात का घमंड था कि वो पूरा का पूरा पानी घर पहुंचाता है और उसके अंदर कोई कमी नहीं है, वहीं दूसरी तरफ फूटा घड़ा इस बात से शर्मिंदा रहता था कि वो आधा पानी ही घर तक पहुंचा पाता है और किसान की मेहनत बेकार चली आती है। फूटा घड़ा ये सब सोचकर बहुत परेशान रहने लगा और एक दिन उससे रहा नहीं गया, उसने किसान से कहा, मैं खुद पर शर्मिंदा हूं और आपसे क्षमा मांगना चाहता हूं?

क्यों? किसान ने पूछा, तुम किस बात से शर्मिंदा हो?

शायद आप नहीं जानते पर मैं एक जगह से फूटा हुआ हूं और पिछले दो सालों से मुझे जितना पानी घर पहुंचाना चाहिए था बस उसका आधा ही पहुंचा पाया हूं, मेरे अंदर ये बहुत बड़ी कमी है और इस वजह से आपकी मेहनत बर्बाद होती रही है। फूटे घड़े ने दु:खी होते हुए कहा। किसान को घड़े की बात सुनकर थोड़ा दु:ख हुआ और वह बोला, कोई बात नहीं, मैं चाहता हूं कि आज लौटते वक्त तुम रास्ते में पड़नेवाले सुंदर फूलों को देखो। घड़े ने वैसा ही किया, वह रास्ते भर सुंदर फूलों को देखता आया, ऐसा करने से उसकी उदासी कुछ दूर हुई पर घर पहुंचते-पहुंचते फिर उसके अंदर से आधा पानी गिर चुका था, वो मायूस हो गया और किसान से क्षमा मांगने लगा।

किसान बोला, शायद तुमने ध्यान नहीं दिया पूरे रास्ते में जितने भी फूल थे वो बस तुम्हारी तरफ ही थे, सही घड़े की तरफ एक भी फूल नहीं था। ऐसा इसलिए क्योंकि मैं हमेशा से तुम्हारे अंदर की कमी को जानता था और मैंने उसका लाभ उठाया। मैंने तुम्हारे तरफ वाले रास्ते पर रंग-बिरंगे फूलों के बीज बो दिए थे, तुम रोज थोड़ा-थोड़ा करके उन्हें सींचते रहे और पूरे रास्ते को इतना खूबसूरत बना दिया आज तुम्हारी वजह से ही मैं इन फूलों को भगवान को अर्पित कर पाता हूं और अपना घर सुंदर बना पाता हूं। तुम्हीं सोचो अगर तुम जैसे हो वैसे नहीं होते तो भला क्या मैं ये सब कुछ कर पाता? दोस्तों। हम सभी के अंदर कोई ना कोई कमी होती है, पर यही कमियां हमें अनोखा बनाती हैं। उस किसान की तरह हमें भी हर किसी को वो जैसा है वैसे ही स्वीकारना चाहिए और उसकी अच्छाई की तरफ ध्यान देना चाहिए और जब हम ऐसा करेंगे तब फूटा घड़ा भी अच्छे घड़े से मूल्यवान हो जाएगा।

९०४) मौत से उजागर हुआ निष्पाप जीवन का राज - एक नगर में एक संत का आगमन हुआ। संत का नाम एकनाथ था। नगर में उनका प्रवास कई दिनों तक रहा। उनसे मिलने दूर-दूर से लोग आते। इन्हीं में एक घनश्याम नामक व्यक्ति था। एक दिन घनश्याम ने संत से पूछा, महाराज, आपका जीवन कितना सीधा-सादा और निष्पाप है।

हमारा जीवन ऐसा क्यों नहीं? आप कभी किसी पर गुस्सा नहीं होते। किसी से लड़ाई झगड़ा नहीं। एकनाथ ने कहा, अभी मेरी बात छोड़ो। तुम्हारे संबंध में मुझे एक बात मालूम है। आज से सात दिन के भीतर तुम्हारी मौत्त आ जायेगी। संत की कही बात को झूठ कौन मानता। सात दिन में मृत्यु। सिर्फ १६८ घंटे बाकी रहे। हे भगवान, यह क्या अनर्थ? वह मनुष्य जल्दी-जल्दी घर दौड़ गया। कुछ सूझ नहीं पड़ता था। आखिरी समय की, सब कुछ समेट लेने की, बातें कर रहा था। वह बीमार हो गया। बिस्तर पर पड़ गया। छ: दिन बीत गये। सातवें दिन संत उससे मिलने आए। पूछा,

क्या हाल है? उसने कहा, बस अब चला। संत ने पूछा, इन दिनों में कितना पाप किया? पाप के कितने विचार मन में आए? मरणासन्न व्यक्ति बोला, महाराज, पाप का विचार करने की तो फुरसत ही नहीं मिली। मौत एक-सी आंखों के सामने खड़ी थी। संत ने कहा, निष्पाप जीवन का रहस्य पता चल गया ना, मरणरुपी शेर सदैव सामने खड़ा रहे, तो पाप करने की बात तो दूर, पाप सूझेगा भी किसे। घनश्याम को बात समझ में आ गई थी कि संत ने उसे चेताने के लिए ही यह बात कही थी। फिर मन में कोई भ्रम ना रहा।

९०५) चिड़ा और मुर्गा - एक घने जंगल में एक चिड़े का पेड़ पर एक सुंदर सा घोंसला था। वह मजे से अपने घोंसले में रहता था। एक दिन वह चिड़ा भोजन की तलाश में इधर-उधर उड़ रहा था, अचानक उसकी नजर अनाज के खेतों पर पड़ी। उन खेतों में उसको खाने की कोई कमी नहीं थी। खाना भरपूर मात्रा में मिलने के कारण वो अपना सुंदर घोंसला भी भूल गया था। वह वहीं रहने लगा। उधर चिड़े के घोंसले के पास एक मुर्गा खाने की तलाश कर रहा था। अचानक उसकी नजर चिड़े के घोंसले पर पड़ी। घोंसला बहुत बड़ा और सुंदर था। उसका घोंसले में जाने को मन ललचा रहा था। वह मुर्गा धीरे-धीरे घोंसले की तरफ जाने लगा। घोंसला बिल्कुल खाली पड़ा था। यह देखते ही मुर्गा घोंसले के अंदर चला गया और उसे यह घोंसला बहुत पसंद आया। उसने वहीं रहने का मन बना लिया। कुछ दिनों के बाद चिड़ा अनाज खा-खा कर मोटा ताजा हो चुका था। अब वह अपने घोंसले में वापस लौटना चाहता था। इसके साथ ही उसने अपने घोंसले की तरफ लंबी उड़ान लगाई और अपने घोंसले के स्थान पर पहुंच गया। घोंसले में पहुंचते ही उसने देखा के मुर्गा बड़े आराम से सो रहा था। यह देखते ही चिड़े को बड़ा गुस्सा आया उसने कहा- तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मेरे घोंसले में घुसने की? चलो मेरे घोंसले से निकलो। लेकिन मुर्गा अब उसे अपना घोंसला कह रहा था।

वह वहाँ से जाने को नहीं मान रहा था। चिड़े और मुर्गे को झगड़ा बढ़ता ही जा रहा था। कोई भी एक दूसरे की बात मानने को तैयार नहीं था। आखिरकार मुर्गे ने कहा- देखो भाई, इससे तो फैसला नहीं होगा। किसी तीसरे से फैसला कराते हैं। चिड़ा भी इस बात को मान गया और वह किसी तीसरे को ढूंढने के लिए जंगल में चल पड़ते हैं।

काफी दूर जाने पर उन्हें एक बिल्ली मिली। उन्हें यह बिल्ली काफी समझदार लगी। उन्होंने बिल्ली से न्याय लेना ही उचित समझा। यह जानने के बावजूद कि बिल्ली उनकी बहुत बड़ी दुश्मन है। सावधानी रखते हुए उन्होंने बिल्ली को सारी बात बताई। उन्होंने अपनी समस्या का हल बताने के लिए बिल्ली से विनती की और कहा- हम आपसे ही इसका फैसला सुनना चाहते हैं, जो सही होगा उसे घोंसला मिल जाएगा और दूसरे को तुम खा जाना।

बिल्ली ने उन दोनों को न्याय दिलाने का भरोसा दिया। यह सुनते ही दोनों खुश हो गए और फैसला सुनने के लिए बिल्ली के बिल्कुल पास चले गए। फिर ऐसा हुआ जो नहीं होना चाहिए था। बिल्ली ने मुर्गे को अपने पंजे में झपट लिया और अपने मुंह से चिड़े को झपट लिया और दोनों को खा गई। अपने शत्रु को पहचानने के बाद भी उस पर यकीन करना जान देने के बराबर ही होता है।

९०६) नशे का तमाशा - एक आदमी बड़ा शराबी था। शाम होते ही वह शराबघर में पहुंच जाता और खूब शराब पीता। एक दिन उसने इतनी चढ़ाई कि चलते समय उसे पूरा होश न रहा। वह साथ में लालटेन लाया था। उठाकर घर की

ओर चल दिया। रास्ते में गहरा अंधेरा था। उसने लालटेन को इधर घुमाया, उधर घुमाया और जब उससे रोशनी न मिलती तो उसने जी भरकर उसे गालियां दीं। घर आकर उसने लालटेन को बाहर पटक दिया और घर के अन्दर जाकर सो गया। सवेरे जैसे ही उठा तो देखता क्या है कि शराबघर का आदमी उसकी लालटेन लिए चला आ रहा है। उसे बड़ा अचरज हुआ कि वह लालटेन उसके हाथ में कैसे है।

पास आकर वह बोला, महाशयजी, रात को आपने अच्छा तमाशा किया। अपनी लालटेन छोड़ आए और हमारा पिंजड़ा उठा लाए। लीजिए, अपनी यह लालटेन और हमारा पिंजड़ा हमें दीजिए।

यह सुनकर उस आदमी को अपनी भूल मालुम हुई। नशे में रात को सचमुच वह लालटेन नहीं, पिंजड़ा उठा लाया था।

९०७) छोटे सुख के पीछे मत भागो, परमात्मा की प्राप्ति करो - एक आदमी ऊंट पर चढ़कर अपने गांव जा रहा था। रात्रि के समय वह एक गांव में पहुंचा। वहां एक जगह ब्याह हो रहा था, ढोल-बाजे बज रहे थे। वह आदमी ब्राह्मण था। उसने वहां जाकर देखा तो पता लगा कि भूर बंटनेवाली है। भूर को संस्कृत में भूयासी (विशेष) दक्षिणा कहते हैं, जो ब्याह के समय ब्राह्मणों को दी जाती है। वह ब्राह्मण ऊंट को बाहर खड़ा करके भूर लेने के लिए भीतर चला गया। चोरों ने ऊंट को बाहर देखा तो वे उसको भगाकर ले गए। इधर भूर बंटी तो सब ब्राह्मणों को चार-चार आने मिले। चार आने लेकर वह ब्राह्मण बाहर आया तो देखा कि ऊंट नहीं है। इधर चार आने मिले और उधर चार-पांच सौ रुपयों का ऊंट गया। इस तरह संसार में तो तुच्छ सुख मिला, थोड़ा धन मिल गया, थोड़ा मान मिल गया, थोड़ा आदर मिल गया, थोड़ा भोजन बढ़िया मिल गया, पर उधर ऊंट चला गया- परमात्मा की प्राप्ति चली गई। यह दशा है- तुच्छ सुख में महासुख जा रहा है। थोड़े से आदर-सत्कार में राजी हो जाते हैं। एक संत को किसी ने कहा कि हम आपका आदर करते हैं, तो वे बोले- धूल आदर करते हो तुम। हमारा आदर भगवान करते हैं तुम क्या कर सकते हो? सब मिलकर भी क्या आदर कर लोगे? क्या ताकत है तुम्हारे में जो आदर करोगे? वास्तव में संतों का सम्मान भगवान करते हैं। दूसरा बेचारा क्या जाने कि सम्मान क्या होता है?

आप जो सर्वोपरि लाभ चाहते हैं, यही वास्तव में परमात्मा तत्व की इच्छा है। इस इच्छा को चाहे तो कह दो, ज्ञान की इच्छा कह दो, प्रेम की इच्छा कह दो, सुख की इच्छा कह दो, भगवद्दर्शन की इच्छा कह दो, भगवत्प्राप्ति की इच्छा कह दो, एक ही बात है। यही हमारा लक्ष्य है। इस लक्ष्य पर डटे रहें। अधूरें में राजी न हों। अधूरे में नहीं अटकोगे तो पूरा मिल जाएगा। अधूरे को ले लोगे तो वहीं अटक जाओगे। यह मनुष्य शरीर उत्तम से उत्तम है, अंत इसका लक्ष्य भी जिससे बढ़कर और कोई लक्ष्य न हो। इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही मानव जीवन मिला है। तभी एक चरवाहा आया और ब्राह्मण से बोला, संसार का सुख छोड़ने से सर्वोपरि तत्व मिल ही जाएगा, इसका क्या पता? इधर का तो छोड़ दें और उधर का मिले ही नहीं, तो फिर रोते रह जाएंगे न?

ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि अर्जुन ने भी यही प्रश्न किया था कि अगर साधक को योग की प्राप्ति न हो और वह बीच में ही मर जाए तो उस बेचारे की क्या गति होती है? क्या वह अभयभ्रष्ट हो जाता है? संसार को तो छोड़ दिया और परमात्मा मिले नहीं, तो क्या बीच में ही लटकता रहेगा? भगवान बोले, नहीं पार्थ। उसका न तो इस लोक में और न परलोक में ही पतन

होता है क्योंकि जो थोड़ा भी कल्याणकारी काम करता है, उसकी दुर्गति नहीं होती।

९०८) प्यास कबूतर की - एक कबूतर प्यासा था। पानी की तलाश में वह मारा-मारा भटक रहा था, तभी उसकी नजर सराय की दीवार पर पड़ी। दीवार पर किसी ने पानी से भरे मटके का चित्र बनाया हुआ था। कबूतर प्यास से अंधा हो रहा था। वह सीधा उस चित्र पर लपका और दीवार से टकराकर वहीं ढेर हो गया। सराय के मालिक ने उसे देखा और उठा लिया। उसके घावों पर उसने मरहम-पट्टी की। कुछ ही दिनों के भीतर कबूतर फिर से तंदुरुस्त हो गया, पर अब वह आजाद नहीं था। सराय के मालिक ने उसे पिंजरे में बंद कर दिया था। भूख और प्यास की स्थिति में भी आदमी को अपना विवेक बनाए रखना चाहिए।

९०९) कुसंगति का असर - किसी नगर में एक तोता बेचनेवाला आया। उसके पास दो पिंजरे थे। दोनों में एक-एक तोता था। तोते वाले ने एक तोते का मूल्य रखा था पचास रुपया तथा दूसरे का पांच रुपया। संयोग की बात कि उस नगर के राजा की सवारी उधर से निकली। राजा ने तोते देखे तो दोनों तोते खरीद लिए। रात को जब राजा सोने लगा तो उसने अपने नौकर को आदेश दिया कि पचास रुपये वाले तोते का पिंजरा उसके पलंग के पास टांग दिया जाए। फौरन आदेश का पालन हुआ। राजा सो गया। जैसे ही भोर हुई, तोते ने भजन गाना शुरू किया। फिर सुंदर-सुंदर श्लोक पढ़े। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। अगले दिन राजा ने दूसरे पिंजरे को पास रखवाया। जैसे ही सवेरा हुआ, उस तोते ने गालियां बकनी शुरू कर दीं। राजा की त्योरियां चढ़ गईं। उसने नौकर को आदेश दिया कि इस दुष्ट को तुरंत मार डालो। पहले तोते का पिंजरा भी पास ही रखा था। उसने राजा से प्रार्थना की, इसे मारिए मत। यह मेरा सगा भाई है। हम दोनों एक ही साथ जाल में फंसे थे। मुझे एक संत ने खरीद लिया। उनके यहां मैंने भजन सीखे। इसे एक डाकू ने खरीदा, जहां इसने गालियां सीख लीं। इसका कोई दोष नहीं। यह तो संगत का असर है। संसार में ऐसे अपराध कम ही हैं, जिन्हें हम चाहें और क्षमा न कर सकें।

९१०) तितली का संघर्ष - एक बगीचे में एक बच्चा घूम रहा था। थोड़ी देर बाद आराम करने के लिए वह एक पेड़ की छांव में बैठ गया। तभी उसकी नजर पेड़ में एक छेद पर पड़ी और उसने देखा कि उस छेद के अंदर एक तितली थी, जो उस छोटे से छेद से बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रही थी और उस छेद को और बड़ा करने की कोशिश कर रही थी। थोड़ी देर तक यह देखने के बाद उस बच्चे को उस तितली पर दया आ गई और उसने उस छेद को और बड़ा कर दिया। छेद बड़ा होते ही तितली बाहर निकल गई और थोड़ी ही देर के बाद वह तितली गिर कर मर गई। बच्चे को यह सब देख कर बहुत आश्चर्य हुआ और उसने अपनी मां के पास पहुंच कर उसे सारी बात बतायी। माँ ने कहा- बेटा, तुमको उस तितली को आजाद करने के लिए उस पेड़ के छेद को बड़ा नहीं करना चाहिए था। बच्चे ने उत्सुकतावश पूछा- क्यों मां, मैं तो केवल उस तितली को आजाद होने में उसकी मदद कर रहा था। माँ ने आगे कहा, जब तितली उस छेद से बाहर आने के लिए संघर्ष करती है, तो इससे उसके पंखों सहित पूरे शरीर को मजबूती मिलती है और फिर वह आगे अपने जीवन की कई समस्याओं का सामना स्वयं करने में सक्षम हो जाती है। लेकिन तुमने छेद को बड़ा कर उस तितली को संघर्ष करने का अवसर ही नहीं दिया, जिससे बाहर निकल कर तितली किसी छोटी कठिनाई का भी सामना नहीं कर सकी

और उसने दम तोड़ दिया। माँ ने फिर आगे कहा, संघर्ष को हमेशा जीवन का हिस्सा समझो और उससे भागने का प्रयास कभी मत करो, क्योंकि संघर्षशील व्यक्ति को अपनी मंजिल हासिल करने में दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती, क्योंकि उसके पास जुनून होता है, जो उससे कोई नहीं छीन सकता। माँ की यह बात सुनकर बच्चे की आँखों में चमक आ गई, मानो उसे जीवन और भविष्य को नये रूप में पहचानने का अवसर मिल गया हो। किसी विचारक ने क्या खूब कहा- समस्याएं वॉशिंग मशीन की तरह होती हैं, वे हमें कपड़े की तरह घुमाती हैं, खंगालती हैं और फिर बाद में सुखा देती हैं।

९११) रट्टू तोता - एक आदमी ने तोते को केवल एक शब्द बेशक बोलना सिखा दिया। एक रात उस आदमी ने गांव में अलग अलग स्थानों पर कुछ धन गाड़ दिया। अगली सुबह वह अपने तोते को लेकर गांव में घूमने निकला और लोगों से बोला- मेरा तोता बुद्धिमान है। वह मुझे बताता है कि जमीन में कहां-कहां धन गड़ा हुआ है। इसके बाद वह उन्हीं स्थानों पर गया जहां उसने पिछली रात धन गाड़ दिया था और तोते से बोला- मेरे ज्ञानी तोते, यदि मैं यहां पर खोदूं तो क्या मुझे कुछ धन मिलेगा? तोता ज्ञान प्रदर्शित करते हुए बोला- बेशक। उस आदमी ने उपस्थित लोगों के सामने गड्ढा खोदा और लोगों को धन निकालकर दिखाया। भीड़ में एक युवक था जो तोते के इस कारनामे को देखकर प्रभावित हो गया और सोचने लगा- यदि मुझे यह तोता मिल जाए तो मैं जल्द ही संपन्न हो जाऊंगा। युवक ने तोते के मालिक से पूछा- तुम यह तोता कितने में बेचोगे? एक हजार सोने के सिक्कों के बदले मैं यह तोता बेचूंगा। तोते के मालिक ने कहा। यह तो बहुत बड़ी रकम है, युवक बोला। आदमी ने कहा- लेकिन मेरा तोता तुम्हें उससे भी कई गुना धन कमाकर देगा। तोता यह सुनकर बोला- बेशक। युवक को तोते का यह बोलना भा गया और उसने तोते के मालिक को एक हजार सोने के सिक्के दे दिए और तोते को लेकर चल दिया। एक स्थान पर रुककर उसने तोते से कई बार पूछा- तोते, यदि मैं यहां पर खोदूं तो क्या मुझे कुछ धन मिलेगा? हर बार तोते ने एक ही उत्तर दिया-बेशक। युवक ने कई स्थानों पर खोदकर देखा पर उसे कहीं एक धेला भी नहीं मिला। युवक समझ गया कि तोते के मालिक ने उसे ठग लिया है। उसने तोते से पूछा- ओ ज्ञानी तोते, मुझे लगता है कि मैंने एक हजार सोने के सिक्कों के बदले में तुम्हें खरीदकर बहुत बड़ी मूर्खता कर दी है। तोते ने ज्ञानियों की भांति उत्तर दिया- बेशक। यह सुनकर युवक को बहुत जोरों से हंसी आ गई और वह खुद को ठगाया जाना भूल गया। वह युवक तोते से बोला- तोते, तुमने पहली बार सच कहा। अब मैं इन सब चक्करों में पड़कर अपना समय और धन नष्ट नहीं करूंगा। परिश्रम और लगन के बूते ही कोई व्यक्ति धनी बन सकता है। बेशक। तोते ने हामी भरी। उसने दूसरी बार सच बोला था।

९१२) अनमोल धन - एक विचारक थे वे नास्तिक थे। न ईश्वर को मानते थे और न आत्मा को, सिर्फ वर्तमान क्षण में विश्वास रखते थे। अपने शिष्यों के साथ वे नगर से बाहर एक बगिया में रहते थे। एक दिन सम्राट की इच्छा हुई कि इस विचारक से मिला जाए, वह उनकी बगिया में पहुंचा। उसने देखा कि वातावरण बेहद शांत है। सब अपने-अपने काम में मगन हैं। खुश और आनंदित। लेकिन भौतिक सुविधाओं का अभाव है न बैठने की जगह, न सर ढंकने के हालात। फिर भी संत आनंदित थे। सम्राट हैरान हुआ और प्रभावित भी। उसने विचार से कहा, मैं आपको कुछ भेंट भेजना चाहता हूं। बताइए क्या मंगा दूं। जिस चीज की भी आपको जरूरत हो। यह सुनते ही विचारक के माथे पर बल पड़ गए। उसने मानो

दुखी होकर कहा, आपने तो हमें चिंता में डाल दिया, क्योंकि हम भविष्य का तो कोई विचार ही नहीं करते। अभी पास जो है, उसी का आनंद लेते हैं। जो नहीं है, वह आ जाए तो भला हो जाए, उस तरह सोचते ही नहीं। अब आपने दुविधा में डाल दिया है। विचार करना पड़ेगा, सोचना होगा कि आपसे क्या मांगे। फिर बोले, हां एक रास्ता है। आज ही हमारी इस बगिया में एक नया शिष्य आया है। वह अभी तक यहां के वातावरण में घुल-मिल नहीं पाया है। उससे पूछ लेते हैं, शायद उसे किसी चीज की जरूरत हो। शिष्य से पूछा गया। वह थोड़ी देर सोचता रहा, फिर बोला, कुछ भेंट ही करना चाहते हैं तो थोड़ा मक्खन भेंट कर दें। यहां रोटियां बिना मक्खन के बनती हैं। सम्राट स्वयं मक्खन लेकर आया। उसने देखा कि उसका वहां ऐसा स्वागत हुआ, मानो स्वर्ग उतर आया हो। मक्खन खाकर सभी नाचे और आनंदित हुए। सम्राट को तब यह अहसास हुआ कि मेरे पास इतना सब कुछ है, फिर भी मैं आनंद नहीं मनाता। शायद मैंने संतुष्ट होना ही नहीं सीखा।

९१३) पागल बाबा - वृंदावन में एक कथा प्रचलित है कि एक गरीब ब्राह्मण बांके बिहारी का परम भक्त था। एक बार उसने एक महाजन से कुछ रुपये उधार लिए। हर महीने उसे थोड़ा-थोड़ा करके वह चुकता करता था। तब अंतिम किस्त रह गई तब महाजन ने उसे अदालती नोटिस भिजवा दिया कि अभी तक उसने उधार चुकता नहीं किया है, इसलिए पूरी रकम मय व्याज वापस करे। ब्राह्मण परेशान हो गया। महाजन के पास जाकर उसने बहुत सफाई दी, अनुनय-विनय किया, लेकिन महाजन अपने दावे से टस से मस नहीं हुआ। मामला कोर्ट में पहुंचा। कोर्ट में भी ब्राह्मण ने जज से वही बात कही, मैंने सारा पैसा चुका दिया है। महाजन झूठ बोल रहा है। जज ने पूछा, कोई गवाह है जिसके सामने तुम महाजन को पैसा देते थे। कुछ सोचकर उसने कहा, हां, मेरी तरफ से गवाही बांके बिहारी देंगे। अदालत ने गवाह का पता पूछा तो ब्राह्मण ने बताया, बांके बिहारी, वल्द वासुदेव, बांके बिहारी मंदिर, वृंदावन। उक्त पते पर सम्मन जारी कर दिया गया। पुजारी ने सम्मन को मूर्ति के सामने रख कर कहा, भगवन, आपको गवाही देने कचहरी जाना है। गवाही के दिन सचमुच एक बूढ़ा आदमी जज के सामने खड़ा होकर बता गया कि पैसे देते समय मैं साथ होता था और फलां-फलां तारीख को रकम वापस की गई थी। जज ने सेठ का बही-खाता देखा तो गवाही सच निकली। रकम दर्ज थी, नाम फर्जी डाला गया था। जज ने ब्राह्मण को निर्दोष करार दिया। लेकिन उसके मन में यह उथल पुथल मची रही कि आखिर वह गवाह था कौन। उसने ब्राह्मण से पूछा। ब्राह्मण ने बताया कि वह तो सर्वत्र रहता है, गरीबों की मदद के लिए अपने आप आता है। इस घटना ने जज को इतना उद्वेलित किया कि वह इस्तीफा देकर, घर परिवार छोड़कर फकीर बन गया। बहुत साल बाद वह वृंदावन लौटकर आया पागल बाबा के नाम से। आज भी वहां पागल बाबा का बनवाया हुआ बिहारी जी का एक मंदिर है।

९१४) जिम्मेदारी - तीन वर्ष की शुचि को स्कूल भेजना एक युद्ध के समान था। उसके माता-पिता नौकरी पर निकल जाते थे। घर में रह जाते थे दादा और दादी। दादा डॉक्टर थे तो सुबह से ही मरीजों में व्यस्त हो जाते थे। बेचारी दादी किसी तरह शुचि को तैयार करके स्कूल भेजती। समय बीतता गया। शुचि बड़ी होने लगी। दादी बूढ़ी होने लगी। धीरे-धीरे शुचि ठीक-ठाक स्कूल जाने लगी। फिर नौकरी करने लगी। फिर शादी हो गई। शादी उसी शहर में हुई थी। अब समय ठीक उल्टा हो गया था। दादी बहुत बूढ़ी हो गई थीं। उन्हें सम्भालना एक कठिन काम होता जा रहा था। शुचि रोज

सुबह आती, उन्हें तैयार कर काम पर निकल जाती। फिर अपने घर जाकर वहां सब सम्हालती। फिर वापस आकर दादी को सम्हालकर अपने घर चली जाती। शुचि के पति ने एक दिन पूछा, तुम रोज अपने मायके क्यों जाती हो? वहां एक नौकरानी रख दो। वह सब सम्हाल लेगी। शुचि ने सिर तानकर कहा, जिस दादी ने मेरा बचपन सम्हाला था, उनका बुढ़ापा सम्हालना आज मेरी नैतिक जिम्मेदारी है।

९१५) दिखावा नहीं कर्त्तव्यबोध पर ध्यान - एक व्यक्ति एक वर्ष तक घूमकर चारों धाम की यात्रा करके आया और उसने पूरे गांव में अपनी एक वर्ष की उपलब्धि का बखान करने के लिये प्रीति भोज का आयोजन किया।

उस व्यक्ति की एक वर्ष की उपलब्धि यह थी कि वह अपने अंदर के क्रोध-अहंकार को चारों धाम में ही त्याग कर आया है। उस व्यक्ति के यहां काम कर रहे युवक ने भरे समाज में उससे पूछा, मालिक, आप क्या-क्या छोड़ कर आये है? उस व्यक्ति ने बड़े उत्साह से कहा, क्रोध-अहंकार त्याग कर आया हूं। फिर कुछ देर बाद नौकर ने वही प्रश्न किया और मालिक का उत्तर वही था। नौकर ने एक बार फिर वही प्रश्न किया लेकिन तीसरी बार मालिक आपे से बाहर हो गया और नौकर से बोला, दो टके का नौकर, मेरा दिया खाता है, और मेरा ही मजाक कर रहा है। बस इतनी ही देर थी कि उस व्यक्ति के क्रोध अहंकार त्याग की पोल खुल गई।

९१६) अपना अपना मूल्य - रामकृष्ण परमहंस के पास एक बार एक व्यक्ति आया। वो स्वभाव से अहंकारी और लोभी था। अपने अहंकार की पुष्टि के लिए उसने एक कीमती दुशाला रामकृष्ण को भेंट किया। स्वामी ने उस दुशाला को स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों बाद जब व्यक्ति फिर आया तो देखा दुशाला तो नीचे बिछा हुआ है। वह मन ही मन बहुत चिंतित हुआ। उसे बहुत बुरा लगा। आखिर उससे रहा नहीं गया। वह पास जाकर स्वामी से बोला, गुरुदेव मैंने आपको बहुत कीमती दुशाला भेंट की थी। यह बहुत कीमती दुशाला है। यह ओढ़ने के लिए है, यह दुशाला बैठने के लिए नहीं। इसको आप संभाल कर रखें। रामकृष्ण ने कहा, तुम्हारे लिए इसका मूल्य हो सकता है। मेरे लिए इसका मूल्य नहीं है।

हर व्यक्ति अपने ढंग से ही चीजों का मूल्य निर्धारित करता है जो जहां तक पहुंच पाता है, वहां से मूल्य निर्धारित करता है। रामकृष्ण वह सीढ़ी पार कर चुके थे, जहां से आदमी अच्छे वस्त्रों या दुशाले का मूल्य आंकता है।

९१७) अनुभव सबसे बड़ा - दि वर्ल्ड वर्क अखबार के संपादक थे वाल्टर हाइन्स येज। वह हर दिन कई आर्टिकल को रिजेक्ट करते या प्रकाशित करते थे। एक बार एक लेखिका ने उन्हें लिखा, पिछले सप्ताह आपने मेरी कहानियां सखेद लौटा दीं। मेरा यह दावा है कि आपने मेरी कहानी को पढ़ा ही नहीं। मेरा यह पूर्वानुमान था कि आप जैसे संपादक अपने काम में ईमानदारी नहीं बरतते, इसी की जांच के लिए मैंने अपनी कहानी के बीच के पृष्ठों को एक साथ चिपका दिया था और जब कहानी वापस आई तो वे पृष्ठ वैसे ही चिपके हुए थे। यह आपकी अयोग्यता नहीं तो और क्या है? इस बात पर मिस्टर येज ने जवाब दिया, आपका ज्ञान अभी कच्चा है मैडम। हांडी के चावल पके हैं या नहीं, यह जानने के लिए सिर्फ चावल को टटोला जाता है, पूरी हांडी को उलटकर चावलों को टटोलने की जरूरत नहीं पड़ती। अनुभव जिसके पास है, वह अपने अनुभव से किसी को भी देखकर या उसके लिखे किसी भी वाक्य रचना को पढ़कर पहचान लेता है। इसलिए अपना मूल्यांकन पहले स्वयं करना चाहिए।

९१८) डिप्लोमेसी - अजय वैसे तो मां को काफी फरमाबरदार बेटा लगता लेकिन बीवी के सामने आते ही वह रंग बदल लेता। अकारण वहीं वह मां से झगड़ा कर उसके काम में नुक्स निकालता, बदतमीजी से बोलते हुए बीवी के चेहरे पर आयी खुशी की लाली में संतुष्टि खोजता। बीवी की अनुपस्थिति में जब मां आंखों में आंसू लिये शिकवा करती तो वो लाड़ में मां की गोद में सर रखकर कहता, मां प्लीज, मेरी खुशी के लिए इतना-सा सहन कर लिया करें। मेरे आपसे इस टोन में बात करने से रैना जरा खुश हो जाती है बस। आपको तो पता ही है वह कैसी बिगड़ैल घोड़ी है। जरा उसे साध लूं, फिर आपको शिकायत का मौका नहीं मिलेगा। बेटा बीवी से ज्यादा मुझे अपना समझता है मां के झिलमिलाते आंसुओं के पीछे इंद्रधनुष लहरा उठता।

९१९) आइंस्टीन - सारी दुनिया के जाने-माने साइंटिस्ट के सापेक्षता-सिद्धांत से जुड़ी एक दिलचस्प कहानी है। बात उन दिनों की है, जब अपने सापेक्षता-सिद्धांत और नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद आइंस्टीन काफी चर्चा में थे। एक दिन सुबह वे पार्क में टहल रहे थे, तो उन्हें एक बच्चा मिला। उस बच्चे ने कहा कि मुझे आपका सापेक्षता का सिद्धांत समझना है। सापेक्षता के सिद्धांत की गिनती आज भी भौतिक विज्ञान के सबसे जटिल सिद्धांतों में से एक है। उन दिनों तो पोस्ट ग्रेजुएशन कर रहे विद्यार्थी भी इसे आसानी से नहीं समझ पाते थे। लेकिन उस महान वैज्ञानिक आइंस्टीन ने उस बच्चे को वह सिद्धांत समझाने का तरीका भी निकाल लिया। आइंस्टीन ने कहा कि मान लो, मैं तुम्हारे साथ खेलता हूं, तो दो घंटे बाद भी मुझे यही लगेगा कि जैसे अभी १५ मिनट ही बीते हैं। अब मान लो मैं यहाँ बैठकर तुम्हारे दादा से बात करूं, तो मुझे १५ मिनट बाद ही ऐसा लगेगा कि जैसे दो घंटे बीत गए। हमें पता नहीं कि इस बात से उस बच्चे को सापेक्षता का सिद्धांत कितना समझ आया। लेकिन एक बच्चे को समझाने की कोशिश में आइंस्टीन ने हमारे शारीरिक मनोविज्ञान का एक बड़ा सच जरूर सामने रख दिया। जिन चीजों में हमें बहुत मजा आता है, जिनमें हम सब भूलकर पूरी तरह खो जाते हैं, ऐसी चीजों में अक्सर हमें पता ही नहीं लगता कि समय कैसे बीत गया? लेकिन जो चीजें नीरस और ऊबाऊ होती हैं, उनमें हमें एक-एक पल, एक-एक युग की तरह लंबा लगता है। यह बात बच्चों और बड़े सब लोगों के साथ होती है। खेलते समय बच्चों को ध्यान ही नहीं रहता कि उन्हें घर भी जाना है और कुछ लोग महफिल की रंगीनियों में इस तरह खो जाते हैं कि सुबह होने पर ही उन्हें सुध आती है।

९२०) नेहरू जी को बच्चों से बड़ा प्यार था। बच्चे भी उन्हें प्यार से चाचा नेहरू कहते थे। - नेहरू जी बहुत बड़े देशभक्त, त्यागी, सत्यवादी और किसानों के चहेते तो थे ही, साथ ही उनमें एक कुशल प्रशासक के गुण भी थे। वह नियमों के बड़े पक्के थे। आदमी छोटा हो या बड़ा देश के कानून और नियम सब पर समान रूप से लागू होने चाहिए। ऐसा वह मानते थे।

यह उन दिनों की बात है जब पं. जवाहर लाल इलाहाबाद महानगरपालिका के अध्यक्ष थे। एक दिन नेहरूजी अपने कार्यालय में बैठे कुछ आवश्यक फाइलों का निरीक्षण कर रहे थे। बगल में फाइल दबाए उसी समय जलकर के टैक्स अधिकारी उनके कमरे में आए। फाइल नेहरू जी की ओर बढ़ाते हुए वे बोले, श्रीमान, इस फाइल में उन सभी लोगों के नामों की सूची है जिन्होंने लम्बे समय से पानी का टैक्स जमा नहीं किया हैं। इन्हें टैक्स अदा करने का नोटिस भी भेजा गया

था लेकिन इस पर भी इन लोगों ने टैक्स नहीं भरा। नियमानुसार इन सारे लोगों के पानी के कनेक्शन काट दिए जाने चाहिए। इस विषय में आपकी अनुमति और सहमति प्राप्त करने के लिए आया हूं।

नेहरू जी ने टैक्स अधिकारी की ओर देखते हुए कहा, आप नियम के अनुसार अपना कर्त्तव्य पालन करें। इसमें मेरी अनुमति और सहमति की कोई आवश्यकता नहीं है। नियम तो सबके लिए बराबर है।

जलकर अधिकारी ने हिचकिचाते हुए अपनी परेशानी जाहिर की और कहा, महोदय, दरअसल बात यह है कि इसमें जिन लोगों के नाम हैं, वे सब शहर के बड़े और इज्जतदार आदमी हैं।

नेहरूजी ने तनिक हंसते हुए पूछा, नियम के समक्ष तो छोटे-बड़े सब एक हैं। फिर आपको आवश्यक कारवाई करने में क्या हिचक है?

टैक्स अधिकारी नेहरू जी को धन्यवाद करके फाइल लेकर वापस आ गए। अगले दिन सवेरे उन सभी महानुभवों के घरों में पानी की आपूर्ति बंद हो गई। इस कारवाई से सारे नगर में हलचल मच गई। सब लोग क्रोधित हो उठे। जिन घरों का पानी बंद किया गया था, उसमें हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस, बड़े अधिकारी और व्यापारी थे। पंडित जवाहर लाल के घर के पानी का कनेक्शन उनके पिता पं. मोतीलाल नेहरू के नाम पर था, इसलिए वह भी इस नियम के शिकार हुए थे।

पं. मोतीलाल इस कारवाई से बहुत नाराज हुए। उन्होंने पुत्र जवाहर लाल नेहरू से कहा, अचानक इस तरह पानी बंद कर देना उचित नहीं है। पहले महापालिका को नोटिस जारी करना चाहिए था।

पिता की बात सुनकर जवाहर लाल नेहरू ने बड़ी विनम्रता से उनकी बात का प्रतिवाद करते हुए कहां, इतना तो शहर के माननीय नागरिकों का भी कर्त्तव्य बनता है कि समय से अपना टैक्स जमा करें। विभाग को भी तो पैसे की आवश्यकता होती है क्योंकि सभी को नोटिस काफी समय पहले भेजा जा चुका था। इसलिए कारवाई करने के लिए मैं विवश था।

पं. मोतीलाल नेहरू अपने पुत्र की नियम की पाबंदी को देखकर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने इसकी सराहना की और अपना सारा जल कर उसी दिन जमा करवा दिया।

९२१) सच्चा सामाजिक कार्यकर्ता - एक बार इंग्लैंड की एक विदुषी मार्गरिट नोबल को स्वामी विवेकानंद का भाषण सुनने का अवसर मिला। वह विवेकानंद के विचारों से बहुत प्रभावित हुईं। उन्होंने उनकी बताई हुई राह पर चलने का संकल्प ले लिया और उनके आह्वान पर भारत की सेवा में समर्पित हो गईं। स्वामी जी ने उनको नया नाम दिया- भगिनी निवेदिता और बंगाल में स्त्री-शिक्षा का कार्य उन्हें सौंप दिया। निवेदिता ने अनाथ बालिकाओं के लिए अनाथाश्रम शुरू किया। ब्रिटिश सरकार से सहायता न लेने का संकल्प भी किया। देशवासियों से ही धन की सहायता लेकर उन्होंने आश्रम चलाया। एक बार सहायता के लिए वे एक संपन्न व्यक्ति के पास पहुंचीं और उससे अनाथ बालिकाओं के भरण-पोषण के लिए सहायता मांगी। उसने सहायता देने से इनकार कर दिया और उन्हें चले जाने को कहा मगर निवेदिता ने एक बार फिर गरीब बालिकाओं की मदद के लिए आग्रह किया। पुन: मदद करने का आग्रह सुनकर वह महाशय क्रोध में आ गए और विवेकशून्य होकर उन्होंने भगिनी निवेदिता को एक थप्पड़ मार दिया। भगिनी कुछ देर तक मौन रहीं। उन्होंने फिर से उनसे निवेदन किया- महोदय, क्रोध में आकर आपने मुझे थप्पड़ दिया, बड़े आनंद की बात है। लेकिन इन अनाथ

बालिकाओं के लिए अब तो कुछ दीजिए। निवेदिता के मुंह से यह सुनकर वह व्यक्ति पानी-पानी हो गया और उसकी समझ में आ गया कि एक सच्चा सामाजिक कार्यकर्ता अपने मान-अपमान की चिंता छोड़कर अपने सेवा कार्य को ही अपना एकमात्र लक्ष्य बना लेता है। आज भी देश के अनेक क्षेत्रों में भगिनी निवेदिता के नाम पर कॉलेज और दूसरी संस्थाएं चल रही हैं। इन संस्थाओं में आसपास के गांवों की बेसहारा युवतियां शिक्षा ग्रहण करते हुए भगिनी निवेदिता की राह पर चलने का संकल्प लेती हैं।

९२२) घायल सैनिकों की सेवा में - एक युवक पहाड़ी की चोटी पर बैठा दूरबीन से सारे युद्ध का दृश्य देख रहा था। युद्ध में कुछ सैनिक मर रहे थे और कुछ अपने जीवन की अंतिम घड़ियां गिन रहे थे। युद्ध में घायल कराहते हुए सैनिकों को मोर्चे के पीछे के सहायता-शिबिरों में छोड़ा जा रहा था। सैनिकों की ऐसी दयनीय दशा देखकर वह युवक अत्यंत द्रवित हो गया। असल में वह युवक नेपोलियन से मिलने पेरिस गया था। किंतु जैसे ही उसे यह पता चला कि वह मोर्चे पर चले गए हैं, तो वह उनसे मिलने मोर्चे की ओर ही निकल पड़ा। मोर्चे का भयंकर दृश्य देखकर वह उनसे मिलने की बात बिल्कुल भुला ही बैठा। अब बस उसके मन में एक ही बात आ रही थी कि कैसे घायल व मरणासन्न सैनिकों की सहायता की जाए। बस, इसके बाद वह वहीं सैनिकों की सेवा में लग गया। इसी बीच युद्ध समाप्त हो गया। इसके बाद युवक ने एक ऐसा दल बनाने का विचार किया जो मौके पर जाकर घायलों की सेवा कर उन्हें बचाने का काम करता रहे। इसके बाद उसने अपने अथक प्रयासों से इस दल को एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में मान्यता भी दिलवा दी। अभी जब कहीं भी युद्ध छिड़ता है तो इस संस्था के सदस्य तुरंत घायल सैनिकों की सेवा में जुट जाते हैं। इस काम में युद्धरत देशों के लोग भी उनका साथ देते हैं। संस्था के सदस्य एक विशेष पोशाक पहनते हैं जिस पर उनका चिह्न रेड क्रॉस बना रहता है। युद्ध क्षेत्र में उन पर हमला नहीं किया जाता। घायल सैनिकों की सहायक इस संस्था का नाम रेडक्रॉस है। इस संस्था का संस्थापक वही युवक ज्यां हेनरी ड्यूनेन्ट था। वह जेनेवा के एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मा था। प्रत्येक वर्ष विश्व भर में ज्यां हेनरी के जन्मदिवस ८ मई को रेडक्रॉस दिवस के रूप में मनाया जाता है।

९२३) बीरबल की बुद्धिमानी - महान मुगल सम्राट अकबर के दरबार में बीरबल उनके नौ रत्नों में से एक थे। वह अपनी हाजिर जवाबी के लिए प्रसिद्ध थे। बातों-बातों में वह अपनी तीव्र बुद्धि और सूझबूझ से समस्या का समाधान कर देते थे। बादशाह को बीरबल की बुद्धिमत्ता पर गर्व था। अकबर बादशाह हास्य-विनोद के द्वारा समय-समय पर बीरबल की बुद्धि परीक्षा लेते रहते थे।

एक बार अकबर ने बीरबल को दरबार में बुलाया और कहा- बीरबल, मैं तुम्हें एक काम सौंप रहा हूं? हुक्म कीजिए महाराज। बीरबल ने विनम्र स्वर में कहा- जितनी जल्दी हो सके, तुम्हें गिनती करके यह बताना है कि दिल्ली में कुल कितने कौवे बसते हैं? अकबर ने कहा। बीरबल ने कहा- बादशाह सलामत मुझे दस दिन का समय दीजिए, मैं पूरी और सही जानकारी लेकर आपके सम्मुख उपस्थित हो जाऊंगा।

बादशाह अकबर ने बीरबल को दस दिन का समय दे दिया। ठीक दस दिन के पश्चात बीरबल दरबार में उपस्थित हुआ और बादशाह से कहा- हुजूर, आपके हुक्म के मुताबिक मैंने दिल्ली के कौवों की गिनती कर ली है। दिल्ली में कुल आठ

हजार चार सौ पचपन कौवे हैं। अकबर ने मुस्करा कर कहा- अगर गिनती करने पर उससे कम या ज्यादा निकले तो? बीरबल ने झट से कहा- हुजूर अगर गिनती करने से ज्यादा निकले तो समझ लीजिए कि उतने कौवे बाहर से दिल्ली में अपने रिश्तेदारों के यहां बतौर मेहमान आए हुए हैं और अगर कौवे गिनती में कम निकले तो समझ लीजिए कि उतने ही कौवे दिल्ली से बाहर अपने मित्र या रिश्तेदारों के यहां गए हुए हैं। बीरबल का उत्तर सुनकर अकबर बादशाह खुश हुए। इसके विपरीत कोई दूसरा तर्क था भी नहीं।

९२४) डूबेंगे नहीं तो लाभ कैसे होगा? - एक बार गुरु गोविंद सिंह के कुछ शिष्य उनके पास आए और उनसे उलाहना के स्वर में बोले, गुरुजी, आपके कहने पर हम हर रोज जप करते हैं, लेकिन इससे हमें कोई लाभ नहीं होता है। इसका क्या कारण है? गुरु ने युवा शिष्यों की बात सुनकर कुछ कहा नहीं, सिर्फ मुस्कुराए। कुछ देर बाद उन्होंने मदिरा से भरा एक घड़ा मंगाया और उन शिष्यों को बुलाकर कहा, इससे कुल्ला करके घड़े को खाली कर दो। शिष्यों ने वैसा ही किया। तब गोविंद सिंह ने पूछा, क्या घड़े की सारी मदिरा समाप्त हो गई है और क्या तुम लोगों को नशा चढ़ा। सभी शिष्य बोले, जब मदिरा पेट में गई ही नहीं तो नशा कैसे चढ़ेगा। गुरु मुस्कुराए और बोले, जिस तरह गले के नीचे न उतरने से मदिरा का असर नहीं पड़ा। ठीक उसी तरह जब तक जप हृदय से नहीं करोगे, उसमें डूब नहीं जाओगे। उसका कोई लाभ नहीं मिलेगा।

९२५) चैन छीन लेता है पद - एक समय की बात है। एक चीनी दार्शनिक नदी किनारे मछली पकड़ रहे थे। उसी दौरान राजा के एक दूत ने आकर कहा, सम्राट ने आपको अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया है। दार्शनिक ने राजा के उस दूत से प्रश्न किया, सुना है कि सम्राट के संग्रहालय में किसी दिव्य कछुए की ढाल सुरक्षित है। बताओ, अगर वह कछुआ जीवित होता, तो क्या पसंद करता- सम्राट के संग्रहालय की शोभा बढ़ाना या जहां वह पैदा हुआ था, वहां की दलदल में लौटना? राजा के दूत ने कहा, दलदल में लौटना। दार्शनिक बोले, और मैं भी यही पसंद करता हूं। पद पाकर आदमी शांति खो बैठता है और कभी-कभी अपना जीवन भी। सम्राट से जाकर कह देना, मुझे दलदल में लौटना ज्यादा पसंद है। पद जब बढ़ता है तो जिम्मेदारी बढ़ती है। कभी कभी जिम्मेदारियां इतनी अधिक बढ़ जाती हैं कि व्यक्ति खुद के लिए समय नहीं निकल पाता। ऐसे में दार्शनिक और विद्वान लोग पद के लालच से दूर रहते हैं। पद सम्मान तो देता है लेकिन सुख-चैन-शांति छीन लेता है।

९२६) गुलाम की सेवाभक्ति - बलख के बादशाह ने एक बार एक गुलाम खरीदा। अपनी स्वाभाविक उदारता से उन्होंने प्रश्न किया, तेरा नाम क्या है? गुलाम ने उत्तर दिया, जिस नाम से बुलाएं, वही मेरा नाम होगा मालिक। बादशाह ने पूछा, तुम क्या खाओगे? गुलाम ने कहा, जो आप खिलाएं। बादशाह ने पूछा, तुम्हें किस तरह के कपड़े पसंद हैं? गुलाम ने कहा, जिन्हें आप पहनने को दें। बादशाह ने इस बार पूछा, तुम कौन सा कार्य करता चाहोगे? जो आप कहें। इस बार बादशाह ने फिर पूछा, तुम्हारी इच्छा क्या है? गुलाम ने कहा, भला गुलाम की भी कोई इच्छा होती है? बादशाह उस गुलाम की हाजिरजवाबी से इतना प्रसन्न हुआ कि तख्त से उठकर उसने कहा, सचमुच तुम मेरे उस्ताद हो, क्योंकि तुमने मुझे सिखा दिया कि प्रभु के सेवक को कैसा होना चाहिए।

९२७) विनाश का रूप - एक गुरु यमुना नदी में स्नान करके आराधना कर रहे थे। एक मगर (घड़ियाल) उन्हें काफी देर से देख रहा था। लेकिन गुरु ऊंची शिला पर बैठे हुए थे, जहां तक मगर का जाना संभव नहीं था। तब मगर ने यमुना की तलहटी से सोने-चांदी व रत्नों को लाकर यमुना किनारे पर बिखेर दिया। गुरु जब लौटे तो उन्होंने वह रत्न देखे। वह सभी रत्न एकत्रित करने लगे, तब वह मगर गुरु के नजदीक आया और बोला, आप जैसे महान विचारशील पुरुष के दर्शन करके मैं धन्य हो गया। आपसे यह गुजारिश है कि यदि आपके पास समय हो तो मुझे त्रिवेणी तक का रास्ता बता सकते हैं। मैं यहां नया हूं और रास्ता भूल गया हूं। लोभ में वशीभूत गुरु उस मगर के साथ चल दिए। रास्ते में जाते समय मगर जोर से हंसा और गुरु से बोला, आप जीवनभर लोगों को उपदेश देते रहे कि विनाश सांसारिक आकर्षण के रूप में आता है, क्षणिक तुष्टि देकर नष्ट कर देता है। लेकिन इसके बावजूद आप इस तथ्य को न समझ सके और आज एक लालच ने आपको सर्वनाश के कगार पर पहुंचा दिया।

९२८) वेश बदलने से विचार नहीं बदलते - बात द्वापर युग की है। अज्ञातवास में पांडव रूप बदलकर ब्राह्मणों के वेश में रह रहे थे। एक दिन उन्हें कुछ ब्राह्मण मिले। वे राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में जा रहे थे। पांडव भी उनके साथ चल दिए। स्वयंवर में पानी में देखकर ऊपर घूम रही मछली पर निशाना लगाना था। वहां मौजूद सभी ने प्रयास किया, लेकिन निशाना सिर्फ अर्जुन ही लगा पाए। शर्त के अनुसार द्रौपदी का स्वयंवर और इसके बाद शादी अर्जुन के साथ हुई। इसके बाद पांडव द्रौपदी को लेकर अपनी कुटिया में आए। एक ब्राह्मण द्वारा स्वयंवर में विजयी होने पर राजा द्रुपद को बड़ी हैरानी हुई। वह अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन जैसे वीर युवक के साथ करना चाहते थे। अत: राजा द्रुपद ने ब्राह्मणों की वास्तविकता का पता लगाने के लिए राजमहल में भोज का कार्यक्रम रखा और उन ब्राह्मणों को भी बुलाया। राजमहल को कई वस्तुओं से सजाया गया। एक कक्ष में फल फूल तो दूसरे कक्ष को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित किया गया। भोजन करने के बाद सभी अपनी मनपसंद चीजें देखने लगे, लेकिन ब्राह्मण वेशधारी पांडव अस्त्र-शस्त्र वाले कमरे में पहुंचे। यह सब कुछ राजा द्रुपद देख रहे थे। वे समझ गए यह ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय हैं। मौका मिलते ही उन्होंने ब्राह्मण वेशधारी युधिष्ठिर से पूछा, सच बताइए आप ब्राह्मण हैं या क्षत्रिय। युधिष्ठिर हमेशा सच बोलते थे। उन्होंने स्वीकार कर लिया कि वे सचमुच क्षत्रिय हैं और स्वयंवर जीतनेवाले अर्जुन हैं। यह जानकर राजा द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए। व्यक्ति अपने वेश भले ही बदल ले, लेकिन उसके विचार आसानी से नहीं बदलते हैं।

९२९) विश्वास की बारिश - किसी गांव में एक साधु रहा करता था, जो जब भी नाचता तो बारिश होती थी। अत: गांव के लोगों को जब भी बारिश की जरूरत होती थी, तो वे लोग साधु के पास जाते और उनसे अनुरोध करते कि वे नाचे, और जब वो नाचने लगता तो बारिश जरूर होती। कुछ दिनों बाद ४ लड़के शहर से गांव में घूमने आये, जब उन्हें यह बात मालूम हुई कि किसी साधु के नाचने से बारिश होती है तो उन्हें यकीन नहीं हुआ। शहरी पढ़ाई लिखाई के घमंड में उन्होंने गांव वालों को चुनौती दे दी कि हम भी नाचेंगे तो बारिश होगी और अगर हमारे नाचने से नहीं हुई तो उस साधु के नाचने से भी नहीं होगी। अगले दिन गांववाले उन लड़कों को लेकर साधु की कुटिया पर पहुंचे। साधु को सारी बात बताई गयी, फिर लड़कों ने नाचना शुरू किया, आधा घंटा बीता और पहला लड़का थक कर बैठ गया पर बादल नहीं दिखे, कुछ देर

में दूसरे ने भी यही किया और एक घंटा बीतते-बीतते बाकी दोनों लड़के भी थक कर बैठ गए, पर बारिश नहीं हुई। अब साधु की बारी थी, उसने नाचना शुरू किया, साधु नाचता रहा, दो घंटा बीता बारिश नहीं हुई। पर साधु तो रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। धीरे धीरे शाम ढलने लगी कि तभी बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई दी और जोरों की बारिश होने लगी। लड़के दंग रह गए और तुरंत साधु से क्षमा मांगी और पूछा कि भला ऐसा क्यों हुआ कि हमारे नाचने से बारिश नहीं हुई और आपके नाचने से हो गयी? साधु ने उत्तर दिया जब मैं नाचता हूं तो दो बातों का ध्यान रखता हूं, पहली बात मैं ये सोचता हूं कि अगर मैं नाचूंगा तो बारिश को होना ही पड़ेगा और दूसरी ये कि मैं तब तक नाचूंगा जब तक कि बारिश न हो जाये।

९३०) जीवन अमूल्य है - मंच पर एक बुद्धिमान व्यक्ति ने १००० रूपये का नोट हाथ में लेकर पूछा, यह नोट किसे चाहिए? हाथ ऊपर उठने लगे। वह बोला, मैं आपमें से किसी एक को यह नोट दूंगा, लेकिन पहले मैं यह कर लूं। कह कर उसने नोट को अच्छी तरह से मरोड़ दिया। फिर उसने पूछा, अब यह नोट किसे चाहिए? लोगों के हाथ अभी भी हवा में थे। ठीक, अब मैं नोट के साथ यह करनेवाला हूं। कहकर उसने नोट को जमीन पर गिरा दिया और फर्श पर पैर से मसल दिया। अब उसने नोट उठाया, नोट मुड़ा-तुड़ा और गन्दा था। क्या आप अभी भी इसे चाहते हैं? उसने पूछा। अब भी बहुत से हाथ ऊपर हवा में थे। आप जिन्दगी का एक बहुत कीमती सबक सीखे चुके हैं। भले ही इस नोट के साथ कुछ भी हुआ हो, लेकिन इसने अपनी कीमत नहीं खोयी। इसकी कीमत अभी भी १००० रुपये ही है। जिन्दगी में अक्सर हम कभी अपने गलत फैसलों की वजह से तो कभी हालात की वजह से अपने आप को गिरा हुआ, कुचला हुआ या इस समाज में अवांछित समझते हैं। हम अपने आपको किसी लायक नहीं समझते। लेकिन हमारे साथ ऐसा कुछ भी हो चुका हो या आनेवाले समय में हो सकता है कि ऐसा कुछ हो, बावजूद इसके, हमारी कीमत में कोई गिरावट नहीं आती और एक बात और, हममें से हर-एक कुछ खास है- यह बात हमें भूलनी नहीं चाहिए।

९३१) उंगली के परे दृष्टि - भिक्षुणी ने जैन गुरु हुइनेंग से पूछा, मैं कई वर्षों से महापरिनिर्वाण सूत्र का पाठ कर रही हूं। उसे समझने के लिए जरूरी ध्यान प्रयोगों का अभ्यास करते हुए भी बारह वर्ष बीत गए। लेकिन इनमें कही अनेक बातों को समझ नहीं पा रही हूं। कृपया मुझे ज्ञान दें। आचार्य ने कहा, मुझे पढ़ना नहीं आता। यदि तुम मुझे वे अंश पढ़कर सुना दो, तो शायद मैं तुम्हें उनका अर्थ बता पाऊं। भिक्षुणी ने कहा, आपको पढ़ना नहीं आता, फिर भी आप इन गूढ़ शास्त्रों का ज्ञान कैसे आत्मसात कर लेते हैं? मैं तो शास्त्र का पारायण करती हूं। ध्यान के लिए बताए नियमों का पालन भी करती हूं। फिर भी समझ नहीं पाई। आप किस तरह समझा पाएंगे? आचार्य ने कहा, तुम पढ़कर बताओ तो सही। भिक्षुणी ने आचार्य की बात का खंडन किया। जैन गुरु कुछ नहीं बोले। उन्होंने आकाश की ओर नजरें उठाईं और कहा, तुम ऊपर आकाश में दूधिया रोशनी बिखेर रहे चांद को देखती हो। भिक्षुणी ने कहा, हां। इस पर हुइनेंग ने कहा, देख रही हो तो बताओ कि कहां है? भिक्षुणी ने आकाश में खिले चांद की ओर उंगली से इशारा किया और कहा, वह रहा। हुइनेंग ने भिक्षुणी की उंगली पकड़ ली और कहा, यह तो तुम्हारी उंगली है। चांद कहां है? भिक्षुणी ने ठहाका लगाया, गुरु यह उंगली चांद नहीं है। मैं इससे जिधर इशारा कर रही हूं, चांद वहां है। जैन गुरु ने कहा, ठीक है। मैं भी तो यही समझाना चाहता हूं। महापरिनिर्वाण सूत्र के शब्दों में सत्य नहीं है। सूत्र तो आकाश में चमक रहे चंद्रमा की भांति है। सूत्र में आए शब्द हमारी उंगलियां हैं।

उंगली से इशारा करके चंद्रमा की स्थिति को दर्शाया जा सकता है, पर उंगली चंद्रमा नहीं है। चंद्रमा को देखने के लिए दृष्टि को उंगली के परे ले जाना पड़ता है।

९३२) प्रेम कैसे टिकेगा? - भगवान गौतम बुद्ध यात्रा पर थे। रास्ते में उनसे लोग मिलते। कुछ उनके दर्शन करके संतुष्ट हो जाते तो कुछ अपनी समस्याएं रखते थे। बुद्ध सबकी परेशानियों का समाधान करते थे। एक दिन एक व्यक्ति ने बुद्ध से कहा, मैं एक विचित्र तरह के द्वंद्व से गुजर रहा हूं। मैं लोगों को प्यार तो करता हूं पर मुझे बदले में कुछ नहीं मिलता। जब मैं किसी के प्रति स्नेह रखता हूं तो यह अपेक्षा तो करूगा ही कि बदले में मुझे भी स्नेह या संतुष्टि मिले। लेकिन मुझे ऐसा कुछ नहीं मिलता। मेरा जीवन स्नेह से वंचित है। मैं स्वयं को अकेला महसूस करता हूं। कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरे व्यवहार में ही कोई कमी है। कृपया बताएं कि मुझमें कहा गलती और कमी है। बुद्ध ने तुरंत कोई उत्तर नहीं दिया, वे चुप रहे। सब चलते रहे। चलते-चलते बुद्ध के एक शिष्य को प्यास लगी। कुआं पास ही था। रस्सी और बाल्टी भी पड़ी हुई थी। शिष्य ने बाल्टी कुएं में डाली और खींचने लगा। कुआ गहरा था। पानी खींचते-खींचते उसके हाथ थक गए, पर वह पानी नहीं भर पाया क्योंकि बाल्टी जब भी ऊपर आती, खाली ही रहती। सभी यह देखकर हंसने लगे। थोड़ी देर में सबको कारण समझ में आ गया। दरअसल बाल्टी में छेद था। बुद्ध ने उस व्यक्ति की तरफ देखा और कहा- हमारा मन भी इस बाल्टी की ही तरह है जिसमें कई छेद हैं। आखिर पानी इसमें टिकेगा भी तो कैसे? मन में यदि सुराख रहेगा तो उसमें प्रेम भरेगा कैसे? क्या वह रुक पाएगा? तुम्हें प्रेम मिलता भी है तो टिकता नहीं है।

९३३) सपने में कहा कि भोजन लेकर जाओ - स्वामी विवेकानंद एक बार एक रेलवे स्टेशन पर बैठे थे। उनका अयाचक (ऐसा व्रत जिसमें किसी से मांग कर भोजन नहीं किया जाता) व्रत था। वह व्रत में किसी से कुछ मांग भी नहीं सकते थे। एक व्यक्ति उन्हें चिढ़ाने के लहजे से उनके सामने खाना खा रहा था। स्वामी दो दिन से भूखे थे और वह व्यक्ति कई तरह के पकवान खा रहा था और बोलता जा रहा था कि बहुत बढ़िया मिठाई है।

विवेकानंद ध्यान की स्थिति में थे और अपने गुरुदेव को याद कर रहे थे। वह मन ही मन में बोल रहे थे कि गुरुदेव आपने जो सीख दी है उससे अभी भी मेरे मन में कोई दुख नहीं है। ऐसा कहते विवेकानंद शांत बैठे थे। दोपहर का समय था। उसी नगर में एक सेठ को भगवान राम ने दर्शन दिए और कहा कि रेलवे स्टेशन पर मेरा भक्त एक संत आया है उसे भोजन कराकर आओ, उसका अयाचक व्रत है जिसमें किसी से कुछ मांग कर खाना नहीं खाया जाता है तो आप जाओ और भोजन करा कर आओ। सेठ ने सोचा यह महज कल्पना है।

दोपहर का समय था, सेठ फिर से करवट बदलकर सो गए। भगवान ने दोबारा दर्शन दिए और सेठ से कहा कि तुम मेरा व्रत रखते और तुम मेरा इतना सा भी काम नहीं करोगे। जाओ और संत को भोजन करा कर आओ। तब सेठ सीधा विवेकानंद के पास पहुंच गए और वह उनसे बोले कि मैं आपके लिए भोजन लाया हूं।

सेठ बोले, मैं आपको प्रणाम करना चाहता हूं कि ईश्वर ने मुझे सपने में कभी दर्शन नहीं दिए लेकिन आपके कारण मुझे राम के दर्शन सपने में हो गए इसलिए मैं आपको प्रणाम कर रहा हूं। विवेकानंद की आंख में आंसू आ गए कि मैंने याद तो मेरे गुरुदेव को किया था। गुरुदेव और ईश्वर की कैसी महिमा है। स्वामी विवेकानंद की आंख के आंसू रुक नहीं रहे थे। तब

उन्हें लगा कि गुरु ही ईश्वर है।

९३४) गुस्से पर भारी बुद्धि - एक बार एक संत के शिष्य ने संत से पूछा गुरुदेव आप हमेशा कहते हैं कि हमें एक क्षण के लिए भी प्रभु की ओर से ध्यान नहीं हटाना चाहिए, किन्तु यह कैसे संभव है?

अधिकांश बंदी उस वन में भटकते हुए पत्थरों से माथा टकराकर मर जाते थे। उन्हीं में से एक ऐसा व्यक्ति भी था, जो सदैव ईश्वर के नाम का स्मरण करता रहता था। उसे विश्वास था कि जब ईश्वर ने ये सारी मायावी रचनाएं की है, तो उस माया से निकलने का कोई मार्ग भी बनाया होगा।

माया का इतना मोहक स्वरूप है जो सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और वैसे भी जिसे मोक्ष मिलना है, उसे किसी भी समय मिल सकता है। यह सुनकर संत बोले- बात बहुत पुरानी है। एक राज्य का राजा अत्यंत अत्याचारी था। वह हर बात पर ही गुस्सा होकर प्रजा को बंदी बनाकर एक ऐसे वन में छोड़ देता था, जिसके चारों ओर एक ऊंची व गोलाकार दीवार थी।

वह प्रतिदिन उस दीवार के सहारे गोल गोल घूमा करता था और दूसरों से भी ऐसा करने का आग्रह करता था, किंतु दूसरे बंदी या तो अपनी ही मस्ती में व्यस्त रहते या थककर बैठ जाते। वह व्यक्ति न थका और न उसने बातों में समय गंवाया। आखिर उसने भगवान का नाम जप करते हुए, स्थान-स्थान पर स्पर्श कर करके वह स्थान ढूंढ लिया, जहां से बाहर निकालने का मार्ग था। इस प्रकार उसने वन से मुक्ति पा ली। यह कहानी सुनाकर गुरु बोले- यह सृष्टि भी चौरासी लाख योनियों का वन है, जिसमें विधाता ने हमें रखा है। जो प्रभु नाम रूपी आश्रय को पकड़े रहते हैं, वे मोक्ष पा जाते हैं और जो इसमें चूके, वे भटकते रहकर कष्ट पाते हैं।

९३५) जब राजकुमारी के प्रण ने राज्य में बारिश कराई - एक नगर में एक राजा रहता था। उसकी बेटी अनिद्य सुंदरी थी, नाम था इंदुमति। इंदुमति के लिए लोग कहते थे कि वह इन्द्र की परी है। रोज रात को इंद्रसभा में नृत्य करने के लिए जाती है। राजा के बड़े भाग कि उसे पुत्री के रूप में पाया। एक दिन राजा ने इंदुमति से कहा, अब तुम सयानी हो गई हो, मुझे तुम्हारी विवाह की चिंता है। इंदुमति बोली, मैं उसी से विवाह करूंगी जो तबला बजाने में इतना प्रवीण हो कि उसके तबले की धमक से इंद्र देवता भी बरसात करने को विवश हो जाएं। पुत्री का कलाकार से ब्याह करने को पहले राजा राजी नहीं हुआ, अंतत: पुत्री के हठ के आगे हार माननी पड़ी।

राजा ने मुनादी करवा दी कि जो कोई भी कलाकार अपने तबले की धमक से बारिश करवा देगा, मैं उसीसे अपनी बेटी का ब्याह कर दूंगा। एक से बढ़कर गुणवंत और रूपवंत कलाकार आए लेकिन कोई भी इंदुमति का प्रण नहीं तोड़ पाया। एक दिन की बात। भरी सभा में एक व्यक्ति आया और उसने दावा किया कि वह ऐसा तबला बजाएगा कि इंद्र को बारिश करनी होगी। लोगों ने देखा, यह बड़े बोल बोलने वाला एक वृद्ध था, जिसका चेहरा झुर्रियों से भरा था और बुढ़ापे के कारण बदन दोहरा हो गया था। राजा के क्रोध की सीमा नहीं रही, बोला, ऐसी दुस्साहस भरी बात करनेवाले इस बूढ़े को तुरंत कारागार में डाल दिया जाए। सैनिक उसे कारागार में डालते, उससे पहले इंदुमति बोल उठी, प्रतियोगिता सबके लिए खुली है। अगर आप अपने तबले से शर्त पूरी करते हैं, तो मैं आपसे विवाह करने को तैयार हूं। आखिरकार उस वृद्ध ने

तबले पर हाथ थिरकने शुरू किए, देखते ही देखते, दिन का उजाला घनघोर, अंधकार में बदल गया, बिजलियां कड़कने लगीं और बादल गरजने लगे। लोगों ने देखा कि एकाएक घटाएं उमड़ गई हैं और बारिश की रसधार हो रही है। इंदुमति ने वरमाला हाथ में उठाई और बिना हिचके वृद्ध के गले में डाल दी। उसने कहा, पिताजी, मैं कला की उपासक हूं, देह की नहीं। इंदुमति की भावना के आगे समय ने हार मान ली और देखते ही देखते वृद्ध सजीले नौजवान में बदल गया। वह एक शाप्पित यक्ष था जिसे इंदुमति के प्रण ने मुक्ति दिलवा दी।

९३६) बुद्धिमान व्यापारी - एक व्यापारी था, बहुत ही धनवान, उसका करोड़ों का कारोबार था। उसके शहर में आए दिन कोई न कोई चोरी होती रहती थी। मगर चोर कभी भी पकड़ नहीं गया, क्योंकि वो हर बार चकमा देकर भाग जाता था। उस व्यापारी ने अपने बारे में ये अफवाह फैला रखी थी कि रात को उसे कुछ दिखाई नहीं देता क्योंकि उसे रतौंधी नामक बीमारी है। उधर जब चोरों को ये पता चला कि उसे रतोंधी नामक बीमारी है, तो उन चोरों ने व्यापारी के घर चोरी करने की योजना बनाई। अभी तक चोर उसके घर पर चोरी करने में सफल नहीं हो सके थे।

एक रात जब चोर उस व्यापारी के घर चोरी करने पहुंचा तो व्यापारी की आंख खुल गई और उसने चोर को देख लिया पर सोचा चोर के पास कोई हथियार भी हो सकता है। फिर उसने एक चाल सोची और वो अपने पास सो रही अपनी पत्नी से जोर से बोला सुनती हो अभी अभी मैंने एक सुंदर सपना देखा है, पत्नी ने पूछा क्या देखा है? सुबह होते ही कच्चे रेशम के दाम दोगुने होनेवाले हैं, अपने घर तो ढेर सारा रेशम का धागा है न? हां है तो मगर रात को क्या करना है, पत्नी ने पूछा। पत्नी को नहीं पता थाि क घर में चोर घुसा हुआ है। पति ने इशारे से बताया कि चोर खम्बे के पीछे छुपा है, अगर मुझे रतौंधी नहीं होती तो इसी वक्त सारा धागा नाप कर देखता कि आखिर कितना मुनाफा सूरज निकलते ही हो जाएगा। रहने भी दो पत्नी बोली सुबह ही नाप कर देख लेना। पति बोला क्या मुझे अपने ही घर में नहीं पता चलेगा कि कौन सी चीज कहां है। आओ उठ कर नापें कि रेशम कितना है बस खम्बे के चारों ओर लपेट लपेट कर अंदाजा लगा लूंगा कि धागा कितना है। ठीक है तो मैं सो रही हूं आप ही नाप लो, उसकी पत्नी ने कहा और सोने का नाटक करने लगी, इधर व्यापारी ने अन्धेपन का नाटक करते हुए रेशम को खम्बे के चारों ओर लपेटना शुरू कर दिया। इस तरह वो खम्बे के पास से कई बार गुजरा जहां चोर खम्बे से सटकर खड़ा था। व्यापारी बार-बार ये ही दिखा रहा था कि उसे कुछ नहीं दिख रहा। इस तरह उसने खम्बे के कई चक्कर लगाये और चोर के लिए अब हिलना भी मुश्किल हो गया। चोर ने ये सोचा था कि रेशम के धागों को तोड़कर वो एकदम से भाग निकलेगा, मगर उन कोमल धागों ने मिलकर इतना मजबूत रूप धारण कर लिया कि वो उनमें बंध कर ही रह गया। इसके बाद व्यापारी ने पुलिस को फोन कर दिया और चोर को उनके हवाले कर दिया। चोर ने ये जान लिया कि कच्चे धागे जुड़कर जब एक हो जाते हैं तो वो भी मजबूत हो जाते हैं, अर्थात एकता की ताकत सबसे मजबूत है।

९३७) असली त्यागी; महात्मा की बात ने सेठ का कायाकल्प कर दिया - एक सेठ के पास विशाल हवेली थी। धन से भरी तिजोरियां थीं। नौकर-चाकर थे। सेठ बहुत ही उदार व्यक्ति था। खूब दान पुण्य करता था, इसलिए चारों ओर उसका बड़ा नाम था।

एक दिन एक महात्मा से उसकी भेंट हो गई। महात्मा भी बड़े त्यागी थे। उनके पास तन ढकने के लिए गिने चुने कपड़ों के अलावा और कुछ नहीं था। सेठ ने उन्हें कुछ कपड़े देने चाहे, तो महात्मा ने मना कर दिया। सेठ ने काफी आग्रह किया, तो वह बोले, मैं केवल वही चीजें अपने पास रखता हूं, जिनके बिना मेरा काम नहीं चलता। अभी मेरे पास कपड़े हैं जब नहीं रहेंगे, तो ईश्वर अपने आप दे देगा।

सेठ बोला, ले लीजिए। खुद उपयोग नहीं करेंगे, तो किसी जरूरतमंद को दे दीजिएगा। आपके पास तो ऐसे लोग आते ही रहते होंगे। महात्मा ने कहा, यह तो कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है कि पहले आवश्यकता से अधिक चीजें इकट्ठा करो और फिर उसे दान करते फिरो। सेठ काफी समझदार था। वह बोला, महाराज, आप ठीक कहते है। ईश्वर सबको देता है। किसी संत ने ठीक ही कहा है- सबके दाता राम। यह कहते-कहते सेठ की आंखें छलछला उठीं। अवरुद्ध कंठ से उसने कहा, स्वामी जी, आप बहुत बड़े त्यागी हैं। आपका जीवन धन्य हैं। महात्मा ने तत्काल कहा, सेठ, मैंने तो दुनियादारी की चीजें त्यागी हैं, लेकिन तुमने तो नाशवान चीजों को पकड़ रखा है और सनातन, अविनाशी चीजों को छोड़ रखा है। महात्मा की बात ने सेठ का कायाकल्प कर दिया।

९३८) सिर्फ एक धोती वाले बापू- इसे पढ़कर जानियो-वो क्यों आजादी के महानायक थे - देश की आजादी के नायक महात्मा गांधी बच्चों के लिए प्यारे बापू थे। उन्हें बच्चों से बहुत प्यार था। बच्चों के खिले चेहरे और उनकी भोली बातों के बीच बापू को बहुत आनंद आता था। एक बार की बात है, एक बच्चे ने देखा कि बापू ठंड के मौसम में भी केवल एक धोती पहने हुए हैं। वह उनके पास गया और बोला बापू। आप कुर्ता क्यों नहीं पहनते? आपको ठंड लग जाएगी।

बापू ने भी उसी भोलेपन से जवाब दिया, बेटा। न तो मेरे पास कुर्ता है और न ही मैं नया सिलवा सकता हूं। बालक बोला, लगता है, आपके पास कुर्ता सिलवाने के लिए पैसे नहीं हैं, आप चिंता मत करिए। मेरी मां बहुत अच्छी हैं, वे आपके लिए कुर्ता सिल देंगी। उनके पास कपड़ा भी है।

बांपू मुस्कराते हुए बोले, बेटा। पर मेरा काम एक कुर्ते से नहीं चलेगा। मेरे बहुत से भाई-बंधु हैं, जब तक उन्हें कुर्ता नहीं मिल जाता, मैं कुर्ता नहीं पहन सकता।

बालक ने कहा, मेरी मां बहुत दयालु हैं। वह सबके लिये कुर्ते सिल देंगी। जितना आप कहेंगे, उतने कुर्ते सिल देंगी। बालक का यह भोलापन बापू के दिल को छू गया। वे बोले, बेटा तुम्हारा दिल बहुत बड़ा है, लेकिन मेरे गरीब भाइयों की गिनती बहुत ज्यादा है। क्या तुम्हारी मां मेरे चालीस करोड़ देशवासियों के लिए कुर्ते सिल सकेंगी? यह जवाब सुनकर नन्हा बालक दंग रह गया। पूरे देशवासियों के बारे में बापू की यह सोच जानकर वह सोच में पड़ गया।

९३९) इस तरह राजा ने तय किया कि राजगद्दी किस राजकुमार को मिलेगी - एक राजा के चार बेटे थे। एक राजा ने उनसे कहा, जाओ, किसी धर्मात्मा को खोज लाओ। जो सबसे बड़े धर्मात्मा को लाएगा, उसी को गद्दी पर बिठा दूंगा। चारों लड़के चले गए। कुछ दिनों बाद बड़ा लड़का लौटा। वह अपने साथ एक सेठ को लाया था। उसने कहा, सेठ जी ने मंदिर बनवाए हैं, तालाब खुदवाए हैं और साधु-संतों को भोजन कराते हैं।

राजा ने उनका सत्कार किया। वह चले गए। दूसरा लड़का एक दुबले-पतले ब्राह्मण को लाया और बोला, इन्होंने चारों धामों की पैदल यात्रा की है।

राजा ने उन्हें दक्षिणा देकर विदा किया। तीसरा लड़का एक साधु को लेकर आया। उनकी प्रशंसा में उसने कहा, यह बड़े तपस्वी हैं। ७ दिनों में एक बार खाते हैं और अपना अधिक समय ईश्वर भक्ति में ही बिताते हैं।

राजा ने उनका भी स्वागत किया। चौथा लड़का जब लौटा तो अपने साथ एक मैले-कुचैले कपड़े पहने एक देहाती को लाया और राजा से बोला, यह एक कुत्ते के घाव धो रहे थे। मैं इन्हें नहीं जानता। आप ही पूछ लीजिए कि यह धर्मात्मा हैं या नहीं। राजा ने देहाती से पूछा, क्या तुम धर्म-कर्म करते हो?

देहाती बोला, मैं तो अनपढ़ हूं धर्म-कर्म क्या होता है, नहीं जानता। कोई बीमार होता है तो सेवा कर देता हूं। कोई मांगता है तो अन्न दे देता हूं। यह सुनकर राजा बोला, यही सबसे बड़ा धर्मात्मा है। सबसे बड़ा धर्म बिना किसी स्वार्थ के असहायों की सेवा करना है। राजा ने अपने चौथे लड़के को गद्दी पर बिठा दिया।

९४०) लोक व्यवहार के प्रसिद्ध लेखक डेन कारनेगी को इन परिस्थितियों से मिली थी प्रेरणा - एक गरीब अमेरिकी परिवार के सदस्य डेल को रोज ही मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। वह भोजन जुटाने के लिए कभी स्ट्रॉबेरी चुनता तो कभी पशु चराता। डेल को पढ़ने का बहुत शौक था। जब उसके सारे काम खत्म हो जाते तो रात के समय वह चिमनी की रोशनी में तब तक पढ़ता जब तक नींद से आंखें बोझिल न होने लगें। एक दिन डेल ने सोचा आखिर ऐसे जिंदगी कब तक चलेगी। क्या मैं हमेशा रात को ही पढ़ूंगा और सुबह दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए यहां-वहां काम करता रहूंगा। कुछ ऐसा क्यों न करूं कि मेरी पढ़ाई लिखाई ही मेरे जीविकोपार्जन का साधन बन जाए।

उसने दिन रात खुद को शिक्षा के माध्यम से सफल बनाने की ठान ली। एक दिन उनके कुछ सहपाठियों ने उससे भाषण देने के लिए कहा। वह उस समय अधिक नहीं बोल पाया, परंतु उसने लोक व्यवहार पर कुछ ऐसी बातें कहीं जो लोगों को पसंद आईं। डेल ने उन पर लिखना शुरू कर दिया। लोक व्यवहार की कला निखारने के लिए उसने सार्वजनिक संभाषण का कोर्स शुरू किया जो सफल रहा। उस समय लोगों को यह लगता था कि भला लोक व्यवहार के लिए भी कोई कोर्स करने की आवश्यकता होती है।

लेकिन जब इस कोर्स में दाखिल लेने वाले सफलता पाने लगे तो बहुतों को लगने लगा कि कुछ तो लोक व्यवहार के कोर्स में ऐसा अवश्य है जो इंसान को सफल होने के गुर सिखाता है।

इस कोर्स में प्रशिक्षण पाने वालों की कतार बढ़ती गई। साथ ही डेल की लोकप्रियता में भी चार चांद लग गए। आज डेल को पूरा विश्व लोक व्यवहार के सुप्रसिद्ध लेखक डेल कारनेगी के नाम से जानता है। उनकी हाऊ टु विन फ्रेंडस् एंड इंफ्लुएंस पीपल तथा हाऊ टु स्टॉप वरीइंग एंड स्टार्ट लिविंग जैसी पुस्तकें आज बेहद लोकप्रिय हैं।

९४१) बुजुर्ग ने समझाया कि परिश्रम से अर्जित धन का महत्व क्या होता है? - एक बुजुर्ग लोगों को हरदम आदर्श जीवन की शिक्षा दिया करते थे। वह विशेष तौर पर स्वावलंबन की बात अधिक करते थे। एक दिन उनके एक मित्र की मृत्यु हो गई। वह अच्छी तरह से जानते थे कि मित्र का पुत्र थोड़ा गैरजिम्मेदार और आलसी है। इसलिए वह पिता

की संपत्ति का दुरुपयोग ही करेगा और उसे समाप्त कर देगा। यह चिंता लेकर एक दिन वह अपने मित्र के घर गए। मित्र का पुत्र उन्हें जानता था। उसने आदर सहित उनको बैठाया और कहा, कुछ दिनों बाद ही दीपावली आने को है। आप उस दिन हमारे घर भोजन करने अवश्य पधारें। बुजुर्ग ने कुछ सोचा और हां कर दी।

दीपावली के दिन बुजुर्ग अपने दिवंगत मित्र के घर भोजन पर गए। उसका पुत्र धन उड़ाने में लगा हुआ था। बैठते ही बुजुर्ग ने पहला कौर अपने मुंह में लिया, तत्काल उनके मुंह से निकला, अरे, ये तो बहुत बासी भोजन है। मित्र का पुत्र चौंक गया। उसने कहा, भोजन अभी तैयार किया गया है। बासी हो ही नहीं सकता। बुजुर्ग ने उत्तर दिया, मुझे तो इसमें वर्षों पूर्व की गंध आ रही है। मेजबान इशारे में कही बात का मर्म समझ गया।

उसके पिता के मित्र यह कहना चाह रहे थे कि यह भोजन जिस धन से निर्मित है, वह तुम्हारे पिता ने अर्जित किया था, तुमने नहीं। जिस दिन तुम्हारे अर्जित धन से भोजन निर्मित होगा, उसकी ताजगी अलग ही होगी। मेजबान ने उनसे विनम्रतापूर्वक कहा कि आपके द्वारा कहने का आशय मैं समझ गया हूं। सच बात है कि अपने परिश्रम से स्वयं धन अर्जित करना चाहिए। पूर्वजों की संपत्ति प्राप्त होना सौभाग्य है, लेकिन उसमें वृद्धि करना, उसका सदुपयोग करना ही पुरुषार्थ है। मैं अब ऐसा ही करूंगा। आपको निमंत्रण तभी दूंगा जब भोजन से ताजी सुगंध आएगी।

९४२) अधर्म के खिलाफ - समर्थ रामदास कथा कह रहे थे। उन्होंने कहा कि राम लंका पर विजय प्राप्त कर माता सीता को साथ लेकर लौट रहे थे। पुष्पक विमान से अयोध्या लौटने की घटना तो बहुत बाद की है। संतों और ज्ञानीजनों का कहना है कि इससे पहले राम युद्ध से संबद्ध जगहों पर भी माता सीता को ले गए। इस क्रम में वे रामसेतु पर भी गए। सेतु पर पहुंच कर राम एक ही दिशा में निहारने लगे। उन्हें निहारते देख सीता ने पूछा, आप एकाग्रता से क्या देख रहे हैं? राम ने तट की ओर इशारा करते हुए कहा, मैं उस स्थान की रेत को देख रहा हूं, जहां बलिदान न दिया गया होता, तो रावण को परास्त करना कठिन था। सीता अवाक-सी राम का मुंह देखती रहीं। राम ने कहा, वहां एक गिलहरी अंतिम क्षण तक लंका विजय अभियान में अपना योगदान देती रही। सीता की आंखों के सामने वह दृश्य साकार हो उठा। उन्होंने देखा कि एक गिलहरी बार बार समुद्र के किनारे जाती है और रेत पर लोटपोट कर उसके कण अपने शरीर पर चिपका लेती है। जब रेत उसके शरीर पर चिपक जाता है, तो वह सेतु पर जाकर अपना सारे कण झाड़ आती है। देर तक वह यही सब करती रही। इसी तरह उद्यम करते हुए गिलहरी ने अपने प्राण दे दिए। सीता ने पूछा, गिलहरी के इस तरह प्राण देने में नया क्या है? सीता ने देखा कि राम उस गिलहरी के पास गए हैं। उससे पूछ रहे हैं, तुमने यह व्यर्थ श्रम क्यों किया? प्राण त्यागती हुई उस गिलहरी ने कहा, भगवन, बस इस पुण्य कार्य में थोड़ा-बहुत योगदान दे रही हूं। मैं तो सिर्फ यह चाहती हूं कि धर्म की अधर्म पर जीत के इस कार्य में मैं निरपेक्ष न रहूं। कहते हुए गिलहरी ने प्राण त्याग दिए। सीता की आंखों के आगे ये सारे दृश्य तैर गए और उन्होंने अनुभव किया कि वह भी गिलहरी के शरीर पर प्यार से हाथ फेर रही हैं।

९४३) अर्थ समझो - एक गुरु प्रवचन दे रहे थे, ईश्वर में आस्था बनाए रखो। ईश्वर सबकी रक्षा करता है। एक शिष्य हैरान होते हुए एक-एक शब्द को हृदय में उतार रहा था। दूसरे दिन शिष्य जंगल से गुजर रहा था। तभी एक आदमी सामने से दौड़ता हुआ आया। वह चिल्ला रहा था, बचाओ, पागल हाथी इधर ही आ रहा है। शिष्य ने मन ही मन गुरु के शब्द

दोहराए, ईश्वर सबकी रक्षा करता है और शिष्य बिना डर के चल दिया। थोड़ी देर बाद सामने से पागल हाथी चिंघाड़ता हुआ आया और शिष्य को धक्का देता हुआ भाग गया। शिष्य बाल-बाल बच गया और चोट खाकर आश्रम में पहुंचा। गुरु के सामने शिष्य ने शंका प्रकट की, मैंने ईश्वर में आस्था बनाये रखी, लेकिन ईश्वर ने मेरी रक्षा नहीं की। गुरुजी ने कहा, ईश्वर में तुम्हारी आस्था का ध्यान रखकर ही एक रक्षक तुम्हें चेतावनी देने के लिए गया, लेकिन तुम नहीं चेते और बढ़ते चले गए। फिर भी पागल हाथी ने तुम्हें चोट पहुंचाकर ही छोड़ दिया। यानी वह तो तुम्हें कुचलता हुआ चला जाता। ईश्वर में आस्था रखो और उसके द्वारा दी गई चेतावनी को समझने का प्रयास करो। वह सबकी रक्षा करता है।

९४४) सही मार्ग पर आ जाओ - प्राचीन काल में राजा सर्वमित्र के शासन काल में महात्मा बुद्ध बोधिसत्व-शरीर में थे। उन्होंने विनम्रता, उदारता, क्षमाशीलता और दान तथा सदाचार के बल पर शक्र पद प्राप्त कर लिया था। राजा सर्वमित्र को मदिरा पीने का व्यसन था। एक समय राजा पान गृह में अधिकारियों के साथ बैठा हुआ था; मदिरापान का क्रम चलनेवाला ही था कि लोग चौंक उठे। एक साधु पुरुष राजा के सिंहासन के सामने खड़े होकर कहने लगा, इस पात्र में सुरा भरी हुई है। इसका मुख पुष्पों से ढँका है; इसे कौन खरीदेगा? उसके बाएं हाथ में सुरा-पात्र था। राजा ने उठकर कहा, आप कोई बहुत बड़े मुनि हैं, आपके नेत्रों से चंद्र ज्योत्स्ना की तरह दया उमड़ रही है। अद्भुत तेज है आपका। साधु ने कहा, तुम ठीक समझते हो, लेकिन तुम्हें रोग-शोक का भय न हो, तो इसे खरीद लो। सर्वमित्र ने कहा, महाराज, आप तो विचित्र ढंग का सौदा कर रहे हैं। सब अपनी वस्तु की प्रशंसा करते हैं, पर आप अपनी वस्तु के दोष प्रकट कर रहे हैं। साधु ने जवाब दिया, सर्वमित्र, इसमें विषमयी मदिरा है। जो पीता है, वह वश में नहीं रहता। यह नरक में ले जाती है। राजा ने कहा, भला, इसका पान ही कोई क्यों करेगा? आपने अपने सदुपदेश से मेरी आंखें खोल दीं। आपने मुझे उस तरह शिक्षा दी है, जिस तरह पिता पुत्र को, गुरु शिष्य को और मुनि जिज्ञासु को देते हैं। मैं अब कभी मदिरा पान नहीं करूंगा। आपके व्यक्तित्व को प्रणाम करते हुए मैं आपको पांच गांव, सौ दासियां और अश्वयुक्त दस रथ भेंट करता हूं। सर्वमित्र, मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मेरे पास तो स्वर्ग का वैभव है। साधुवेषधारी बोधिसत्व ने स्पष्ट किया।

९४५) ज्ञानी की पहचान - एक व्यक्ति दुनिया घूमकर आया और बड़ी बड़ी बातें करने लगा। जो भी उसके पास जाता तो वह उससे कई प्रश्न किया करता। जब यह बात गौतम बुद्ध को पता चली तो वह वेश बदलकर उस व्यक्ति के पास पहुंचे। उस व्यक्ति ने उनसे प्रश्न किया। कौन हो तुम? कहीं ब्राह्मण तो नहीं। बुद्ध ने उत्तर दिया, अपने शरीर और मन पर जिसका पूर्ण अधिकार है। मैं ऐसा ही एक मनुष्य हूं। जब उस व्यक्ति को कुछ समझ नहीं आया तो उसने कहा, आप अपना उत्तर फिर से दें। तब बुद्ध ने कहा, जिस तरह कुम्हार घड़े बनाता है, नाविक नौका चलाता है और विद्वान वाद-विवाद में भाग लेता है, उसी तरह ज्ञानी पुरुष स्वयं पर ही शासन करता है। युवक ने फिर से पूछा, ज्ञानी पुरुष भला स्वयं पर शासन कैसे करता होगा? बुद्ध ने कहा, प्रशंसा या निंदा का उस पर कोई असर नहीं पड़ता। युवक ने अपने बारे में सोचा तो उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। वह तुरंत बुद्ध के कदमों पर गिरकर बोला, अब तक मैं भूल में था। मैं स्वयं को ही ज्ञानी समझता था, पर आज मैंने जाना कि मुझे आपसे बहुत कुछ सीखना है।

९४६) धन, प्रेम और सफलता - एक महिला ने घर के सामने सफेद लम्बी दाढ़ी में तीन साधु-महात्माओं को बैठे देखा। वह धन, प्रेम और सफलता थे जिन्हें महिला पहचान नही पायी। उसने कहा, मैं आप लोगों को नहीं पहचानती,

बताइए क्या काम है? हमें भोजन करना है, साधुओं ने कहा। ठीक है, कृपया मेरे घर में पधारिए और भोजन ग्रहण कीजिए। क्या तुम्हारा पति घर में है? एक साधु ने प्रश्न किया। नहीं, वह कुछ देर के लिए बाहर गए हैं। औरत ने उत्तर दिया। तब हम अन्दर नहीं आ सकते। तीनों एक साथ बोले। थोड़ी देर में पति घर वापस आ गया, उसे साधुओं के बारे में पता चला तो उसने तुरंत अपनी पत्नी से उन्हें पुन: आमंत्रित करने के लिए कहा। औरत ने ऐसा ही किया, वह साधुओं के समक्ष गयी और बोली, जी, अब मेरे पति वापस आ गए हैं, कृपया आप लोग घर में प्रवेश करिए। हम किसी घर में एक साथ प्रवेश नहीं करते। साधुओं ने स्त्री को बताया। ऐसा क्यों है? औरत ने अचरज से पूछा। जवाब में मध्य में खड़े साधु ने कहा, पुत्री मेरी दायीं तरफ खड़े साधु का नाम धन और बायीं तरफ खड़े साधु का नाम सफलता है और मेरा नाम प्रेम है। अब जाओ और अपने पति से विचार विमर्श कर के बताओ की तुम हम तीनों में से किसे बुलाना चहती हो। औरत अन्दर गयी और अपने पति से सारी बात बता दी। पति बहुत खुश हो गया। वाह, आनंद आ गया, चलो जल्दी से धन को बुला लेते है, उसके आने से हमारा घर धन-दौलत से भर जाएगा और फिर कभी पैसों की कमी नहीं होगी। औरत बोली, क्यों न हम सफलता को बुला लें, उसके आने से हम जो करेंगे वो सही होगा, और हम देखते देखते धन दौलत के मालिक भी बन जाएंगे। तुम्हारी बात भी सही है, पर इसमें मेहनत करनी पड़ेगी, मुझे तो लगता ही धन को ही बुला लेते हैं। पति बोला। थोड़ी देर उनकी बहस चलती रही पर वो किसी निश्चय पर नहीं पहुंच पाए और अंतत: निश्चय किया कि वह साधुओं से यह कहेंगे कि धन और सफलता में जो आना चाहे आ जाए। औरत झट से बाहर गयी ओर उसने यह आग्रह साधुओं के सामने दोहरा दिया। उसकी बात सुनकर साधुओं ने एक दूसरे की तरफ देखा और बिना कुछ कहे घर से दूर जाने लगे। अरे आप लोग इस तरह वापस क्यों जा रहे हैं? औरत ने उन्हें रोकते हुए पूछा पुत्री दरअसल हम तीनो साधु इसी तरह द्वार-द्वार जाते हैं और हर घर में प्रवेश करने का प्रयास करते हैं, जो व्यक्ति लालच में आकर धन या सफलता को बुलाता है हम वहां से लौट जाते हैं और जो अपने घर में प्रेम का वास चाहता है उसके यहां बारी बारी से हम दोनों भी प्रवेश कर जाते हैं।

९४७) नेहरूजी और पुस्तकें - एक समय की बात है। नेहरूजी को पुस्तक से बहुत प्रेम था। वे पुस्तकों की इतनी देखभाल और साज-संभाल रखते थे कि वे वर्षों नई-सी बनी रहती थी। एक बार लखनऊ में वे अपने मित्र मोहनलाल सक्सेना के यहाँ ठहरे। स्वभाव के अनुसार उनकी नजर उनकी पुस्तकों की अलमारी पर गई। अलमारी में पुस्तकें बहुत अस्त-व्यस्त, उलटी सीधी पड़ी देखकर उन्हें बड़ी वेदना हुई। वे उनकी धूल झाड़-पोंडकर उन्हें व्यवस्थित करने लगे। जब मोहनलाल वापस आए, तो उनसे कहा- क्यों भाई मोहनलाल, तुम जब अपने घर की पूजा की मूर्तियां, तस्वीरों को साफ कर सकते हो तो पुस्तकों की क्यों नहीं करते? यदि मूर्तियां और तस्वीरें तुम्हें मार्गदर्शन दे सकती है, तो पुस्तकों को भी जीवंत प्रतिमा से कम नहीं समझा जाना चाहिए। मित्र से कही गई जवाहरलालजी की यह चुभती हुई उक्ति हम सबके लिए है, जो पुस्तकों की कद्र नहीं करते।

९४८) फेराडे जिनकी रुचि विज्ञान में थी - माइकल फेराडे एक अनाथ बालक था। वह लंदन घुड़साल में रहता था। कभी उसने पेट भरने के लिए अखबार बेचे, कभी तरह-तरह के दूसरें कामों में वक्त लगाया। जब वह अखबार बेचता

था उसी दौरान उसको पढ़ने का शौक लग गया। फिर १३ साल की उम्र में फेराडे एक जिल्दसाज के यहां नौकरी करने लगा। फेराडे में पढ़ने की बड़ी ललक थी। एक दिन एनसायक्लोपीडिया पर जिल्द चढ़ाते समय उसकी नजर बिजली के बारे में एक लेख पर पड़ी। उसने उस लेख को कई बार पढ़ा और छोटी-छोटी चीजें जुटाकर प्रयोग करने प्रारंभ कर दिए। एक दिन एक सज्जन ने इस बच्चे को इस तरह प्रयोग करता देखा तो वे उसे सर हम्फ्री डेवी का भाषण सुनाने ले गए। फेराडे ने डेवी के भाषणों के नोट्स लिए, फिर उन पर अपनी टिप्पणियां लिखीं। उसके बाद उसने उन्हें सर डेवी के पास भेज दिया। सर डेवी फेराडे की टिप्पणियों से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने फेराडे को बुलाकर अपने यंत्रों की देखभाल करने के लिए रख लिया। फेराडे सर डेवी के प्रयोग देखता और धीरे-धीरे विज्ञान में अपनी रुचि के चलते ही वह एक बड़ी अकादमी में अध्यापक नियुक्त किया गया। इन्हीं फेराडे महाशय ने आगे चलकर विज्ञान की दुनिया में कई चमत्कार किए।

९४९) अपनी गलती को मानो - महात्मा गांधी और खान अब्दुल गफ्फार खान एक ही जेल में कैद थे, यद्यपि देशी-विदेशी जेलर गांधी जी का बहुत सम्मान करते थे, किंतु गांधी जी भी जेल के नियमों और अनुशासन का सख्ती से पालन करते थे। जेलर के आने पर गाँधी जी उनके सम्मान में उठकर खड़े हो जाते थे।

खान अब्दुल गफ्फार खान, जिन्हें सीमान्त गांधी कहा जाता था, को गांधी जी का यह तौर-तरीका नापसंद था। उनका कहना था की जो सरकार इस देश पर गलत ढंग से हुकूमत कर रही है, हम भला उसे और उसके संस्थाओं को मान्यता क्यों दे।

गांधीजी का कहना था की हम जहाँ भी हो हमें वहां के अनुशासन का पालन करना चाहिए। एक दिन सीमान्त गांधी ने महात्मा गांधी पर सीधे आरोप लगाते हुए कहा की आप जेलर का सम्मान इसलिए करते है क्योंकि वह आपको नियम से अधिक सुविधाएँ देता है। उदाहरण के लिए हम लोगों को तो हिन्दी या अंग्रेजी का अखबार मिलता है, लेकिन आपको गुजराती पत्र-पत्रिकाएँ भी मिलती है। आप इसलिए जेलर के अहसानमंद हो गये है। दूसरे दिन से गाँधी जी ने केवल एक ही अखबार लिया और शेष साहित्य लेने से इंकार कर दिया।

एम महीना बीत गया। गांधीजी जेलर के प्रति वही सम्मान प्रदर्शित करते रहे जो वे पहले किया करते थे। यह तौर-तरीका भला सीमांत गांधी की नजर से कैसे चूक सकता था। उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ, वे गांधीजी के पास जाकर माफी मांगने लगे। गांधीजी ने हंसकर उन्हें गले लगा लिया। दूसरे दिन से सीमांत गांधी के तेवर भी बदल गये और वे भी जेलर के आगमन पर उसके सम्मान में उठकर खड़े होने लगे।

व्यक्ति को अपनी गलती स्वीकार करने में कभी भी नहीं हिचकिचाना चाहिए और हर किसी का सम्मान करना चाहिए। हमें महात्मा गांधी जी के जीवन से यह जरूर सीख लेनी चाहिए की हमें हर व्यक्ति का सम्मान करना चाहिए भले वह इंसान हमारा सम्बन्धी हो या नहीं।

९५०) सरस्वती चंद्र की तीर्थयात्रा - एक दिन सरस्वती चंद्र ने तीर्थयात्रा पर जाने का निश्चय किया। लंबे और कठिन सफर को देखते हुए उन्होंने साथ में बर्तन, भोजन और जरूरत का अन्य सामान रख लिया। चलते-चलते रास्ते में

एक गांव पड़ा। सरस्वती चंद्र ने उसे पार किया फिर अंत में एक मंदिर के पास पहुंचे। पहले तो उन्होंने सोचा कि मंदिर में कोई नहीं होगा, पर मंदिर के अंदर प्रवेश किया तो देखा एक बीमार बुजुर्ग लेटे हुए कराह रहे हैं। उनकी हालत देखकर लगता था कि उन्होंने काफी दिनों से कुछ खाया-पिया ही न हो। सरस्वती चंद्र को उन पर दया आ गई। उन्होंने कुछ समय वहीं रुककर उनकी सेवा करने का निश्चय किया। उन्होंने अपने कपड़े ठिठुरते हुए उस बुजुर्ग को पहना दिए। अपने सारे बर्तन मंदिर के उपयोग के लिए रख दिए। अपना भोजन भी उन्हें खिला दिया। फिर आसपास से फल और कुछ औषधियां लेकर आए। जब खाली समय मिलता, सरस्वती चंद्र मंदिर की सफाई में लग जाते। इस तरह देखते-देखते मंदिर का कायाकल्प हो गया। इधर बुजुर्ग धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे। कुछ दिनों के बाद सरस्वती चंद्र बिना तीर्थधाम गए ही अपने घर वापस आ गए। घरवालों ने इस तरह उनके लौट आने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि रास्ते में ही उन्हें ईश्वर के दर्शन हो गए। इसलिए आगे जाने की उन्होंने कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। ऐसे में उनका घर लौटना ही ठीक था। इधर मंदिर का पुनरुद्धार हो जाने से भक्त गण फिर से वहां आने-जाने लगे। इस तरह सूने पड़े मंदिर में पुरानी रौनक लौट आई। वहां वह बुजुर्ग हर भक्त को यह बताते थे कि एक दिन यहां ईश्वर स्वयं आए थे। उन्होंने ही इस मंदिर को तीर्थ बना दिया और मुझे नया जीवन दे दिया।

९५१) कोयला और चंदन - हकीम लुकमान का पूरा जीवन जरूरतमंदों की सहायता के लिए समर्पित हुआ था। जब उनका अंतिम समय नजदीक आया तो उन्होंने अपने बेटे को पास बुलाया। बेटा पास आ गया तो उन्होंने उससे कहा, देखो बेटा, मैंने अपना सारा जीवन दुनिया को शिक्षा देने में गुजार दिया। अब अपने अंतिम समय में मैं तुम्हें कुछ जरूरी बातें बताना चाहता हूं। लेकिन इससे पहले जरा तुम एक कोयला और चंदन का एक टुकड़ा उठाकर ले लाओ। बेटे को पहले तो यह बड़ा अटपटा लगा, लेकिन उसने सोचा कि अब पिता का हुक्म है तो यह सब लाना ही होगा।

उसने रसोई घर से कोयले का एक टुकड़ा उठाया। संयोग से घर में चंदन की एक छोटी लकड़ी भी मिल गई। वह दोनों को लेकर अपने पिता के पास पहुंच गया। उसे आया देख लुकमान बोले, बेटा, अब इन दोनों चीजों को नीचे फेंक दो। बेटे ने दोनों चीजें नीचे फेंक दीं और हाथ धोने जाने लगा तो लुकमान बोले, जरा ठहरो बेटा। मुझे अपने हाथ तो दिखाओ। बेटे ने हाथ दिखाए तो वह उसका कोयले वाला हाथ पकड़कर बोले, अभी-अभी देखा न तुमने। कोयला पकड़ते ही तुम्हारा यह हाथ काला हो गया। लेकिन उसे फेंक देने के बाद भी तुम्हारे हाथ में उसकी कालिख लगी ही रह गई। ठीक ऐसे ही गलत लोगों की संगति भी एक तरह से कालिख ही होती है। व्यक्ति को उनके साथ रहने पर भी दुख होता है औ उनके न रहने पर भी जीवन भर के लिए बदनामी साथ लग जाती है। दूसरी ओर सज्जनों का संग-साथ ठीक इस चंदन की लकड़ी की तरह है जो साथ रहते हैं तो दुनिया भर का ज्ञान मिलता है और उनका साथ छूटने पर भी उनके विचारों की महक जीवन भर बनी रहती है। इसलिए हमेशा अच्छे लोगों की संगति में ही रहना।

९५२) भोजन किसके लिए - महाराष्ट्र के संत एकनाथ जी के यहां श्राद्ध था। खीर-हलवा और अन्य कई पकवान बने थे। उनकी सुगंध पाकर एक अस्पृश्य परिवार वहां आ पहुंचा। परिवार में पति, पत्नी और एक बेटा था। बेटा अपनी मां से बोला, मां, यहां बढ़िया पकवान बने हैं और मुझे जोरों की भूख लगी है। मां ने कहा, पर बेटा, हमारे भाग्य में ये पकवान कहां

हैं? यह सुनते ही एकनाथ का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने सोचा, हरिजन प्रभु के भक्त होते हैं और सबका शरीर भगवान का मंदिर है। यदि इन्हें ही भोग लगायाजाए, तो क्या वह भगवान को भोग लगाना नहीं होगा? उन्होंने पत्नी से उस दंपती को भोजन परोसने के लिए कहा। पत्नी गिरिजाबाई पति के समान ही धर्मपरायण थीं। उसने उन्हें भरपेट भोजन परोसा और पान-सुपारी देकर विदा किया। एकनाथजी को अपने दूसरे मेहमानों का ख्याल आया। उन्होंने पत्नी से फिर से भोजन बनाने के लिए कहा। किंतु अस्पृश्य दंपती द्वारा भोजन करने की बात जब और लोगों को मालूम हुई तो उन्होंने भोजन करना अस्वीकार कर दिया। एकनाथजी ने उन्हें विनयपूर्वक बताया- वे लोग बहुत ही भूखे थे। इस कारण ही उन्हें भोजन कराया गया था। अब हमने आप लोगों के लिए अलग से भोजन की व्यवस्था कर दी है। काफी अनुनय-विनय करने पर भी मेहमान न माने। उन्होंने भोजन का बहिष्कार कर दिया। एकनाथजी बड़े दुखी हो गए। तब उनके एक संबंधी ने कहा, आपने यह भोजन तो पितरों के लिए बनाया था, केवल ब्राह्मणों के लिए नहीं। आप पितरों को ही सीधे क्यों आमंत्रित नहीं करते? बात एकनाथ जी को जंच गई। उन्होंने पत्नी से पत्तल लाने के लिए कहा। भोजन परोसे जाने पर उन्होंने पितरों से आगतम कहा। इसके बाद आमंत्रित ब्राह्मणों को अपने किए पर पश्चाताप हुआ। उन्होंने एकनाथ जी से क्षमा मांगी।

९५३) बापू की प्रतिज्ञा - एक बार कस्तूरबा स्त्रियों की सभा में सफाई पर बोलने गईं। एक गरीब स्त्री उनका हाथ पकड़ कर अपने घर ले गई और बोली- बा, मैं भी सफाई से रहना चाहती हूं। लेकिन कैसे रहूं? मेरे पास एक धोती है। जब नहाना होता है तो आधी धोती पहने रहती हूं और आधी को भिगोती हूं। घर के लोगों से दूसरी धोती इसलिए नहीं मांगती क्योंकि वह पहले से ही किसी कारण कर्जे में दबे हुए हैं। स्त्री की करूण कहानी सुनकर कस्तूरबा की आंखें भीग गईं। उन्होंने यह घटना बापू को सुनाई तो वे भी बड़े दुखी हुए। उसी दिन से उन्होंने पूरी धोती के बजाय आधी धोती बांधना शुरू कर दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि जब तक देश के सभी लोगों को तन ढकने के लिए उचित वस्त्र नहीं मिलते तब तक मैं आधी धोती ही बांधूंगा। अपनी इस प्रतिज्ञा को गांधी जी ने जीवन भर पूरी तरह से निभाया। जब गांधीजी विलायत जा रहे थे, काफी लोग उन्हें छोड़ने आए और सबने उन्हें भेंट स्वरूप कुछ-न-कुछ दिया। इसकी जानकारी गांधीजी को नहीं थी। बंबई से जहाज अदन पहुंचा तो अचानक बापू का ध्यान उन चीजों की ओर चला गया। उन्होंने महादेव भाई से पूछा- महादेव, हमारे पास इतना सारा सामान कैसे हो गया? विलायत में ठंड अधिक पड़ती है इसलिए कई शुभचिंतकों ने ऊनी वस्त्र, कंबल व कश्मीरी शॉल भेंट किए हैं। लेकिन मुझे इसकी जरूरत नहीं है। ठंड चाहे ज्यादा हो या कम, मेरे लिए तो मेरी यह धोती ही काफी है। गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में मना करते हुए कहा और महादेव भाई को सारा समान अदन में ही उतारना पड़ा। मित्रों को हिदायत भी दी कि वे सारे उपहार भारत वापस भेज दें। बापू अपनी साधारण-सी आधी धोती और साधारण से कंबल के साथ ही उस साम्राज्य की राजधानी ओर रवाना हुए जहां सूर्य कभी अस्त ही नहीं होता था।

९५४) गुरु का संकेत - एक शिक्षक कक्षा में पढ़ा रहे थे। एक छात्र ने पूछा- यदि हम कुछ नया, कुछ अच्छा करना चाहें, किंतु समाज उसका विरोध करे तो हमें क्या करना चाहिए? क्या समाज से लड़ना चाहिए या अपने कदम पीछे खींच लेने चाहिए। शिक्षक ने कुछ सोचा और बोले- इस प्रश्न का उत्तर मैं कल दूंगा। अगले दिन शिक्षक छात्रों को नदी तट पर ले गए। उनके हाथ में तीन डंडियां थीं। उन्होंने छात्रों से कहा- आज हम एक प्रयोग करेंगे। मछली पकड़नेवाली इन तीन

इंडियों को देखो। ये एक ही लकड़ी से बनी हैं। इसके बाद शिक्षक ने एक छात्र को बुलाया और कहा- ये लो, इस डंडी से मछली पकड़ो। छात्र ने डंडी से बंधे कांटे में आटा लगाया और पानी में डाल दिया। कुछ पल में ही एक बड़ी मछली कांटे में आ फंसी। यह देख शिक्षक बोले- जल्दी, पूरी ताकत से बाहर की ओर खींचो। छात्र ने ऐसा ही किया, उधर मछली ने भी पूरी ताकत से भागने की कोशिश की, जिससे डंडी टूट गई। यह देख शिक्षक बोले- कोई बात नहीं, ये दूसरी डंडी लो और पुन: प्रयास करो। छात्र ने फिर कांटा पानी में डाला। इस बार जैसे ही मछली फंसी, शिक्षक़ बोले- आराम से, एकदम हल्के हाथ से डंडी को खींचो। छात्र ने ऐसा ही किया, पर मछली ने इतनी जोर से झटका दिया कि डंडी हाथ से छूट गई। शिक्षक ने तीसरी डंडी छात्र के हाथ में थमाते हुए कहा- एक बार फिर से प्रयत्न करो। पर इस बार न अधिक जोर लगाना और न कम। जितनी शक्ति से मछली खुद को अंदर की ओर खींचे, उतनी ही ताकत से तुम डंडी को बाहर की ओर खींचना। कुछ ही देर में मछली थक जाएगी और तब तुम आसानी से उसे बाहर निकाल सकते हो। समाज के विरोध से इसी तरह निपटना चाहिए। छात्र ने वैसा ही किया और इस बार मछली पकड़ में आ गई। छात्र गुरु का संकेत समझ गया।

९५५) भगवान की महिमा - एक गरीब मजदूर काम की तलाश में शहर गया था। उसकी पत्नी को खाने के लाले पड़ गए। वह बैठी भगवान को याद करती रही। मजदूर के अमीर भाई की पत्नी को उसकी कोई परवाह नहीं थी। अचानक उस इलाके में एक बच्चा आया। उसके हाथ में एक चम्मच था, जिसमें चावल के दो दाने और जरा सा दूध था। वह सबसे कह रहा था कि मेरे लिए खीर बना दो। सभी उसकी हंसी उड़ा रहे थे। अमीर भाई की पत्नी ने भी उसे टाल दिया। वह गरीब मजदूर की पत्नी के पास पहुंचा, तो उसने बाखुशी उसकी बात मान ली। बच्चा बोला कि खीर बड़े बर्तन में बनाना। बड़े बर्तन में चम्मच के चावल और दूध डाले तो बर्तन भर गया। वह खीर बनाती रही। बच्चा खड़ा देखता रहा। बन गई, तो बोला कि पहले मैं खाऊंगा। कटोरा भर खीर उसे देकर वह अपनी जेठानी को भी देने चली गई। खीर देखी तो जेठानी हैरान रह गई कि घर में तो दाने नहीं हैं, खीर कहां से बना ली? देवरानी ने पूरे इलाके में खीर बांट दी, लेकिन खीर खत्म ही न हो। यह देख बच्चे के वेश में आए भगवान ने कहा कि जरा सी खीर आग में डालो और बर्तन उलट दो। ऐसा करते ही बर्तन खाली हो गया। दूसरे दिन भगवान को याद कर देवरानी ने फिर दो दाने चावल और जरा सा दूध डाला, तो ढेर सारी खीर बन गई। वह समझ गई कि यह ऊपर वाले की महिमा है। भगवान तो हमारे आसपास ही होते हैं, किंतु हम उन्हें देख नहीं पाते।

९५६) नारद मुनि और भगवान विष्णु जी - एक बार नारद मुनि जी ने भगवान विष्णु जी से पूछा, हे भगवन आपका इस समय सबसे प्रिय भक्त कौन है? अब विष्णु तो भगवान है, सो झट से समझ गये अपने भक्त नारद मुनि की बात और मुस्कुराकर बोले। मेरा सबसे प्रिय भक्त उस गांव का एक मामूली किसान है, यह सुनकर नारद मुनि जी थोड़ा निराश हुये और फिर से एक प्रश्न किया, हे भगवान आपका बड़ा भक्त तो मैं हूं, तो फिर सबसे प्रिय क्यों नहीं?

भगवान विष्णु जी ने नारद मुनि जी से कहा, इसका जवाब तो तुम खुद ही दोगे, जाओ एक दिन उसके घर रहो और फिर सारी बात मुझे बताना, नारद मुनि जी सुबह सवेरे मुंह अंधेर उस किसान के घर पहुंच गये, देखा अभी अभी किसान जागा है और उसने अब से पहले अपने जानवरों को चारा दिया, फिर मुंह हाथ धोए, दैनिक कार्यों से निवृत्त हुआ, जल्दी जल्दी

भगवान का नाम लिया, रूखी सूखी रोटी खाकर जल्दी जल्दी अपने खेतों पर चला गया, सारा दिन खेतों में काम किया और शाम को वापिस घर आया जानवरों को अपनी अपनी जगह बांधा, उन्हें चारा पानी डाला, हाथ-पांव धोये, कुल्ला किया, फिर थोड़ी देर भगवान का नाम लिया, फिर परिवार के संग बैठ कर खाना खाया और कुछ बातें की और फिर सो गया। अब सारा दिन यह सब देखकर नारद मुनि जी, भगवान विष्णु के पास वापस आये और बोले भगवन मैं आज सारा दिन उस किसान के संग रहा, लेकिन वो तो ढंग से आप का नाम भी नहीं ले सकता, उसने थोड़ी देर सुबह थोड़ी देर शाम को और वो भी जल्दी-जल्दी आपका ध्यान किया और मैं तो चौबीस घंटे सिर्फ आप का ही नाम जपता हूं, क्या अब भी आपका सबसे प्रिय भगत वो गरीब किसान ही है, भगवान विष्णु जी ने नारद की बात सुनकर कहा, अब इसका जवाब भी तुम मुझे खुद ही देना और भगवान विष्णु जी ने एक कलश अमृत से भरा नारद मुनि को थमाया और बोले इस कलश को लेकर तुम तीनों लोकों की परिक्रमा करके आओ, लेकिन अगर एक बूंद भी अमृत नीचे गिरा तो तुम्हारी सारी भक्ति और पुण्य नष्ट हो जाएंगे, नारद मुनि तीनों लोकों की परिक्रमा करके जब भगवान विष्णु के पास वापस आये तो, खुश होकर बोले भगवान मैंने एक बूंद भी अमृत नीचे नहीं गिरने दिया, विष्णु भगवान ने पूछा और इस दौरान तुमने मेरा नाम कितनी बार लिया? मेरा स्मरण कितनी बार किया? तो नारद बोले अरे भगवान जी मेरा तो सारा ध्यान इस अमृत पर था, फिर आपका ध्यान कैसे करता। भगवान विष्णु ने कहा, हे नारद देखो उस किसान को वो अपना कर्म करते हुये भी नियमित रूप से मेरा स्मरण करता है, क्यों कि जो अपना कर्म करते हुये भी मेरा जाप करे वो ही मेरा सबसे प्रिय भगत हुआ, तुम तो सारे दिन खाली बैठे ही जप करते हो और जब तुम्हें कर्म दिया तो मेरे लिये तुम्हारे पास समय ही नही था, तो नारद मुनि सब समझ गये और भगवान के चरण पकड़ कर बोले हे भगवन आप ने मेरा अहंकार तोड़ दिया, आप धन्य हैं।

९५७) भीष्म प्रतिज्ञा - एक बार हस्तिनापुर के महाराज प्रतीप गंगा के किनारे तपस्या कर रहे थे। उनके रूप सौन्दर्य से मोहित होकर देवी गंगा उनकी दाहिनी जांघ पर आकर बैठ गई। महाराज यह देखकर आश्चर्य में पड़ गये तब गंगा ने कहा, हे राजन। मैं जन्हु ऋषि की पुत्री गंगा हूं और आपसे विवाह करने की अभिलाषा लेकर आपके पास आई हूं। इस पर महाराज प्रतीप बोले, गंगे। तुम मेरी दाहिनी जांघ पर बैठी हो। पत्नी को तो वामांगी होना चाहिये, दाहिनी जांघ तो पुत्र का प्रतीक है अत: मैं तुम्हें अपने पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करता हूं। यह सुनकर गंगा वहां से चली गईं। अब महाराज प्रतीप ने पुत्र प्राप्ति के लिये घोर तप करना आरम्भ कर दिया। उनके तप के फलस्वरूप उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम उन्होंने शान्तनु रखा। शान्तनु के युवा होने पर उसे गंगा के साथ विवाह करने का आदेश दे महाराज प्रतीप स्वर्ग चले गये। पिता के आदेश का पालन करने के लिये शान्तनु ने गंगा के पास जाकर उनसे विवाह करने के लिये निवेदन किया। गंगा बोलीं, राजन। मैं आपके साथ विवाह तो कर सकती हूं किंतु आपको वचन देना होगा कि आप मेरे किसी भी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। शान्तनु ने गंगा के कहे अनुसार वचन देकर उनसे विवाह कर लिया। गंगा के गर्भ से महाराज शान्तनु के आठ पुत्र हुये जिनमें से सात को गंगा ने गंगा नदी में ले जाकर बहा दिया और अपने दिये हुये वचन में बंधे होने के कारण महाराज शान्तनु कुछ बोल न सके। जब गंगा का आठवां पुत्र हुआ और वह उसे भी नदी में बहाने के लिये ले जाने लगी तो राजा शान्तनु से रहा न गया और वे बोले, गंगे। तुमने मेरे सात पुत्रों को नदी में बहा दिया किन्तु अपनी प्रतिज्ञा के

अनुसार मैंने कुछ न कहा। अब तुम मेरे इस आठवें पुत्र को भी बहाने जा रही हो। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि कृपा करके इसे नदी में मत बहाओ। यह सुनकर गंगा ने कहा, राजन्। आपने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी है इसलिए अब मैं आपके पास नहीं रह सकती। इतना कहकर गंगा अपने पुत्र के साथ अन्तर्ध्यान हो गईं। तत्पश्चात महाराज शान्तनु ने छत्तीस वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके व्यतीत कर दिये। फिर एक दिन उन्होंने गंगा के किनारे जाकर गंगा से कहा, गंगे। आज मेरी इच्छा उस बालक को देखने की हो रही है जिसे तुम अपने साथ ले गई थीं। गंगा एक सुन्दर स्त्री के रूप में उस बालक के साथ प्रकट हो गईं और बोले, राजन्। यह आपका पुत्र है तथा इसका नाम देवव्रत है, इसे ग्रहण करो। यह पराक्रमी होने के साथ विद्वान भी होगा। अस्त्र विद्या में यह परशुराम के समान होगा। महाराज शान्तनु अपने पुत्र देवव्रत को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और उसे अपने साथ ही हस्तिनापुर लाकर युवराज घोषित कर दिया।

एक दिन महाराज शान्तनु यमुना के तट पर घूम रहे थे कि उन्हें नदी में नाव चलाते हुये एक सुन्दर कन्या दृष्टिगत हुई। उसके अंग अंग से सुगन्ध निकल रही थी। महाराज ने उस कन्या से पूछा, हे देवि। तुम कौन हो? कन्या ने बताया, महाराज मेरा नाम सत्यवती और मैं निषाद कन्या हूं। महाराज उसके रूप यौवन पर रीझकर तत्काल उसके पिता के पास पहुंचे और सत्यवती के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव किया। इस पर धींवर (निषाद) बोला, राजन। मुझे अपनी कन्या का आपके साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु आपको मेरी कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को ही अपने राज्य करा उत्तराधिकारी बनाना होगा। निषाद के इन वचनों को सुनकर महाराज शान्तनु चुपचाप हस्तिनापुर लौट आये। सत्यवती के वियोग में महाराज शान्तनु व्याकुल रहने लगे। उनका शरीर दुर्बल होने लगा। महाराज की इस दशा को देख कर देवव्रत को बड़ी चिंता हुई।

९५८) धन की नहीं, मन की जरूरत - गुरु गोविंद सिंह वन में बैठे एकांत चिंतन में लीन थे। उनके मन में देश, समाज और संस्कृति के उत्थान के लिए योजनाओं और कामों के विचार गूंज रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि यमुना को पार कर उनका कोई शिष्य उनकी ओर आ रहा है। जब वह पास आया, तो उन्होंने उसे पहचान लिया। उस शिष्य का नाम रघुनाथ था। वह काफी संपन्न और ऐश्वर्यशाली था। उसे अपनी धन-संपदा का भी अभिमान था। पास आकर उसने गुरु को प्रणाम किया और वहीं पास में बैठ गया। गुरु ने पूछा, आओ रघु, कैसे आए हो? वह बोला, सुना कि आप हम लोगों को छोड़कर एकांत वन में जा रहे हैं। इसलिए विचार आया कि आपकी कुशल-क्षेम पूछ आऊं। गुरु गोविंद सिंह ने कहा, मेरी कुशल क्या जानना है रघु। कुशल तो मेरे उन बंदों की पूछ, जो अपना सारा समय और सामर्थ्य लोगों को जगाने में लगाते हैं। यह कहकर वह भोजन के लिए उठे। उनका आहार देखकर रघु ने कहा, गुरुजी, आप इस रूखे-सूखे भोजन से निर्वाह कर रहे हैं। गोविंद सिंह ने तत्काल कहा, प्रेम का पकवान है यह, इन्हें एक भाई दे गया है। यह सुनते ही रघुनाथ ने कहा, तो मैं भी आपकी सेवा में एक तुच्छ भेंट अर्पित करता हूं। उसने अपने दोनों हाथों के हीरे जड़े कड़े उतारे और गुरुजी के सामने रख दिए। गुरु ने उसके चेहरे की ओर देखा और कड़ों को झाड़ी में फेंक दिया। रघु ने कहा, अभी मेरे पास बहुत संपत्ति है। जितनी कहें, उतनी मैं आपको दे सकता हूं। गुरु बोले, मुझे संपत्ति की नहीं, बंदों की जरूरत है, जो समाज के काम में जुट सके। यह सुनकर रघुनाथ को सच्चाई का बोध हुआ।

९५९) तर्पण अर्थात जिससे तृप्ति और संतुष्टि मिले - गुरुनानक भ्रमण करते हुए हरिद्वार पहुंचे। कोई धार्मिक पर्व था, शायद श्राद्धपर्व। गंगातट पर भारी भीड़ा थी। श्रद्धालु लोग आते और स्नान करते। प्रात:काल का समय था। गुरु ने सोचा, स्नान के लिए इतना उपयुक्त स्थान कहां मिलेगा। वह भी गंगातट की ओर चल पड़े। वहां जाकर देखा कि एक व्यक्ति पूर्व की ओर देखते हुए जल उलीच रहा है। दूसरे व्यक्ति को देखा, तो वह भी पूर्व दिशा की ओर मुंह कर जल चढ़ा रहा था। नानकदेव ने देखा कि और दूसरे लोग भी इसी तरह अर्घ्य दे रहे थे। तात्पर्य यह कि जो भी स्नान के लिए आता, वह तर्पण न भूलता। गुरु नानक ने यह देखकर एक व्यक्ति से पूछा, आप अभी क्या कर रहे थे? उस व्यक्ति ने कुछ रुखाई से कहा, पितरों का तर्पण कर रहे थे। गुरु ने पूछा, इस तरह पितरों को जल पहुंच जाता है क्या? जवाब मिला, जरूर पहुंच जाता है। नहीं पहुंचता, तो लोग व्यर्थ ही यह सब क्यों कर रहे हैं? गुरु नानक ने कुछ और नहीं पूछा। उन्होंने पहले स्नान किया और फिर पीछे आकाश की ओर देखते हुए गंगा में खड़े होकर धारा से बाहर पानी उलीचने लगे। पास ही खड़े लोगों को अटपटा-सा लगा। उन्होंने पूछा, आप यह क्या कर रहे हैं? तर्पण ऐसे नहीं किया जाता है। नानकदेव ने कहा, भाइयो, हमारे खेत पंजाब में हैं, उन्हें पानी दे रहा हूं। पास खड़े एक वृद्ध ने पूछा, गुरु जी, इतनी दूर यहां से पंजाब और वहां आपके खेत, भला पानी कैसे पहुंच जाएगा? गुरु ने कहा, पंजाब पितर लोग से अधिक दूर नहीं है। यदि आपका दिया पानी पितर लोक पहुंच कर पूर्वजों को संतोष दे सकता है, तो मेरा पानी पंजाब के खेतों में क्यों नहीं पहुंच सकता? नानक ने आगे कहा, हम पितरों के प्रति श्रद्धा रखें। पर जो जीवित पितर अपने आसपास हैं, उनके प्रति सेवाभाव रखना भी जरूरी है।

९६०) जीवन से भी मूल्यवान ममता - वर्ष २०११ में जापान में आए भूकंप और सुनानी के कारण २० लाख से ज्यादा परिवार प्रभावित हुए थे। एक बचाव दल पूरी तरह ध्वस्त हुए घर की जांच कर रहा था। उसे बारीक दरारों में से एक महिला का शरीर दिखा, लेकिन वह अजीब अवस्था में था। महिला घुटनों के बल ठीक वैसे बैठी थी, जैसे भगवान के सामने सिर झुकाया हो। उसके दोनों हाथ किसी चीज को पकड़े हुए थे। बचाव दल समझ गया कि महिला मर चुकी है, इसलिए वह उसे छोड़ दूसरे मकानों की ओर चल पड़ा। मगर थोड़ी देर बाद बचाव दल के प्रमुख ने कहा, पता नहीं क्यों, मुझे उस महिला का घर अपनी तरफ खींच रहा है। हमें उसे ऐसे छोड़कर नहीं आना चाहिए। उसके बाद दल एक बार फिर उस महिला के घर की ओर बढ़ चला। दल के प्रमुख ने मलबे को सावधानी से हटाकर अपना हाथ महिला की तरफ बढ़ाया। महिला के शरीर के नीचे देखने पर उसके मुंह से निकला, यहां एक बच्चा है।महिला के मृत शरीर के नीचे एक टोकरी में रेशमी कंबल में लिपटा हुआ तीन महीने का एक बच्चा था। दल को समझ में आ चुका था कि महिला ने अपने बच्चे को बचाने के लिए अपना जीवन त्याग दिया। हुआ यह था कि भूकंप के दौरान जब घर गिरनेवाला था, तब उस महिला ने अपने शरीर से सुरक्षा देकर अपने बच्चे की रक्षा की थी। दल ने सावधानीपूर्वक मलबा हटाया। बचाव दल ने जब बच्चे को निकाला, तो उसे वहां एक मोबाइल मिला, जिसमें संदेश लिखा था, मेरे बच्चे, अगर तुम बच गए, तो बस इतना याद रखना कि तुम्हारी मां तुम्हें बहुत प्यार करती है।

९६१) उपकार की भलाई का बदला - एक बार प्रात:काल ईश्वरचंद्र विद्यासागर घूमने जा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक आदमी रोता हुआ जा रहा है। वे उसके पास गये और प्रेम से उसके दु:ख का कारण पूछा। ईश्वरचंद्र को सादी वेश-

भूषा में देखकर वह बोला मैं बड़े बड़े धनवानों के पास गया, पर किसी ने मेरी सहायता न की, आप क्या कर सकेंगे? ईश्वरचंद्र के बहुत विनय करने पर वह बोला भाई, मेरे बाप- दादों की सम्पत्ति केवल एक घर ही है, वह आज नीलाम होगा, अब हम लोग कहाँ रहेंगे? ईश्वरचंद्र ने उसका पता पूछ लिया। अगले दिन वे कचहरी में गए और उसके नाम तेईस सौ रुपया जमा करा आए। उधर वह आदमी दिन-भर कचहरी वालों की राह देखता रहा। जब कोई न आया तो घबराकर वह कचहरी में गया। पता लगा कि कोई सज्जन तेईस सौ रुपया जमा कर गये हैं। वह सोचने लगा कि हो न हो, यह काम उन्हीं सज्जन का है, जो मुझे प्रात:काल मिले थे। वह ईश्वरचंद्र को ढूंढ़ने लगा। एक दिन प्रात:काल वायु-सेवन को जाते समय उसने ईश्वरचंद्र को पहचान लिया और दोनों हाथ जोड़कर बोला आपने मुझे बचा लिया है, बड़ा उपकार किया है। इस पर ईश्वरचंद्र ने उत्तर दिया तुम्हें उपकार की भलाई का बदला चुकाना चाहिए, इसलिए मैं तुमसे यह चाहता हूं कि इस बात को किसी से भी मत कहना।

९६२) सफलता का मंत्र हर किसी के पास - मगध के एक गांव में विशाखदत्त नाम का एक युवक रहता था। वह बहुत मेहनती था, पर हमेशा सशंकित रहता था कि वह अपने काम में सफल होगा या नहीं। एक दिन गांव में प्रसिद्ध संत शिवरामदास का आगमन हुआ। विशाखदत्त भी संत से मिला और उन्हें अपनी नाकामियों के बारे में बताया। संत ने कहा, तुम्हारी समस्या का हल इस ताबीज में है, इसमें कुछ मंत्र रखे हैं। इन्हें सिद्ध करने के लिए तुम्हे एक रात श्मशान में गुजारनी होगी। श्मशान का नाम सुनते ही विशाखदत्त का चेहरा पीला पड़ गया। वह कहने लगा, लेकिन मैं रातभर अकेले कैसे रहूंगा? संत ने समझाया, घबराओ मत, यह कोई मामूली ताबीज नहीं है। यह तुम्हें हर संकट से बचाएगा। युवक को बात समझ आई और उसने पूरी रात श्मशान में बिताई। सुबह होते ही वह संत जी के पास पहुंचा और धन्यवाद देने लगा। इस घटना के बाद विशाखदत्त बदल गया। अब वह जो भी करता सफल होता और सोचता कि ताबीज के कारण कामयाब हो रहा है। करीब साल भर बाद फिर संत उस गांव में आए। विशाखदत्त तुरंत उनके दर्शन के लिए गया और उनके दिए ताबीज का गुणगान करने लगा। तब संत बोले, बेटे, जरा अपनी ताबीज निकालकर देना। उन्होंने ताबीज हाथ में लिया और उसे खोला। उसे खोलते ही विशाखदत्त स्तब्ध रह गया। ताबीज के अंदर मंत्र-वंत्र नहीं लिखा था। वह तो एक पुर्जा मात्र था। विशाखदत्त ने कहा, यह तो एक मामूली ताबीज है, फिर इसने मुझे सफलता कैसे दिलाई?

९६३) अहंकार की बाधाएं - संपूर्ण जगत जब शांत सोया हुआ होता रहता तब रामकृष्ण परमहंस निर्जन घने वन में वृक्ष के नीचे ध्यान मग्न होकर कालीमाता की उपासना करते थे। रामकृष्ण के भतीजे हरि दा के मन में प्रश्न उभरता था, प्रति रात्रि रामकृष्ण कहां जाते हैं? क्या करते हैं? एक रात्रि हरि दा रामकृष्ण के पीछे-पीछे गए। रामकृष्ण घने वन में घुस गए। उनके हाथ में न तो दीया था, न तो मोमबत्ती। रामकृष्ण ने आंवले के पेड़ के नीचे पद्मासन लगाया एवं नेत्र मूंद लिए। इससे पूर्व उन्होंने गले में पहना हुआ जनेऊ भी केसरी वस्त्रों सहित उतार दिया। यह देख हरि दा को आश्चर्य हुआ। सूर्योदय तक रामकृष्ण अविचल बैठे रहे। कुछ समय उपरांत उन्होंने यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण किया। सूर्योपासना की। हरि दा यह सब देख रहे थे। रात्रि में अस्वस्थ करनेवाला प्रश्न उसने किया, आप उपासना के समय जनेऊ सहित सभी वस्त्र क्यों उतारते हैं? उसपर रामकृष्ण बोले, हरि दा, ईश्वर तक पहुंचने के मार्ग में अनेक बाधाएं आती हैं। मैं जब जगन्माता का

ध्यान करता हूं, तब द्वेष, मत्सर, भय, अहंकार, लोभ, मोह, जाति का अभिमान-जैसी अनेक बातों का त्याग करने का प्रयास करता हूं। नहीं तो ये सभी बातें मन में कोलाहल मचाती हैं। जनेऊ अर्थात जाति का अभिमान, ज्ञान का अहंकार, वह भी दूर करना आवश्यक है। अहंकार की बाधाएं दूर करते हुए मुझे वहां (साध्य तक) पहुंचना है।

९६४) औषधि की तरह उपदेश - महात्मा ईसा कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने मैथ्यू नामक अपने शिष्य को देखा। उसके पिता की मृत्यु हो गई थी और उसका रो-रोकर बुरा हाल था। मैथ्यू ने जैसे ही ईसा को देखा, वैसे ही दौड़कर वह उनके पास आया और उनकी आस्तीन चूमकर तुरंत ही अपने पिता के शव की ओर लौट पड़ा। ईसा ने समझा कि इसकी ममता नहीं मरी। अत: उन्होंने मैथ्यू को अपने पास बुलाया और उसे आज्ञा दी, जिसकी मृत्यु हो गई, वह भूतकाल का साथी हुआ। वह रहा नहीं, उसका शव बचा हुआ है। उसके शव से मोह करके वर्तमान से दूर क्यों होना चाहता है? मैथ्यू इस असमंजस में था कि क्या करे, तभी उसने ईसा की स्पष्ट आज्ञा सुनी, भूत को भूत देखता रहेगा, तू यहां मेरे साथ आ। संयोग की बात कि जब यह दोनों आगे बढ़े, तो ईसा का एक अन्य शिष्य भी उन्हें अपने पिता की लाश दफनाता मिला। परंतु जैसे ही उसने अपने गुरु को देखा, वैसे ही दौड़कर उनके पास आ पहुंचा और उनके साथ चल दिया। ईसा ने उसे समझाते हुए कहा, अरे, तू क्यों चला आ रहा है? शिष्य ने साथ चलने का हठ किया, तो ईसा बोले, ऐसी कोई जल्दी नहीं है। तुम लाश को दफनाकर वहीं आना। फिर मेरे साथ चलना। वह शिष्य तो चला गया, परंतु एक समान घटनाओं पर दो प्रकार की व्यवस्था सुनकर मैथ्यू को बड़ा आश्चर्य हुआ। जब उससे नहीं रहा गया, तो उसने आखिरकार अपने गुरु से इसका कारण पूछ लिया। उसने कहा, आपने मुझे अपने पिता की लाश दफनाने भी नहीं दी, और उसे अपने पिता को दफन करने की स्वयं आज्ञा दी। एक तरह की घटना में दो व्यवस्था क्यों? ईसा ने जवाब दिया, जो राग में फंसा है, उसे वैराग्य का उपदेश दो, मगर जो रागमुक्त है, उसे वैराग्य का उपदेश देने से कोई लाभ नहीं। मैथ्यू की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

९६५) जल की मिठास - गर्मियों के दिनों में एक शिष्य अपने गुरु से सप्ताह भर की छुट्टी लेकर अपने गांव जा रहा था। तब गांव पैदल ही जाना पड़ता था। जाते समय रास्ते में उसे एक कुआं दिखाई दिया। शिष्य प्यासा था, इसलिए उसने कुएं से पानी निकाला और अपना गला तर किया। शिष्य को अद्भुत तृप्ति मिली, क्योंकि कुएं का जल बेहद मीठा और ठंडा था। शिष्य ने सोचा क्यों ना यहां का जल गुरुजी के लिए भी ले चलूं। उसने अपनी मशक भरी और वापस आश्रम की ओर चल पड़ा। वह आश्रम पहुंचा और गुरुजी को सारी बात बताई। गुरुजी ने शिष्य से मशक लेकर जल पिया और संतुष्टि महसूस की। उन्होंने शिष्य से कहा वाकई यह जल तो गंगाजल के समान है। शिष्य को खुशी हुई। गुरुजी से इस तरह की प्रशंसा सुनकर शिष्य आज्ञा लेकर अपने गांव चला गया। कुछ ही देर में आश्रम में रहनेवाला एक दूसरा शिष्य गुरुजी के पास पहुंचा और उसने भी वह जल पीने की इच्छा जताई। गुरुजी ने मशक शिष्य को दी। शिष्य ने जैसे ही घूंट भरा, उसने पानी बाहर कुल्ला कर दिया। शिष्य बोला गुरुजी इस पानी में तो कड़वापन है और न ही यह जल शीतल है। आपने बेकार ही उस शिष्य की इतनी प्रशंसा की। गुरुजी बोले बेटा, मिठास और शीतलता इस जल में नहीं है तो क्या हुआ। इसे लानेवाले के मन में तो है। जब उस शिष्य ने जल पिया होगा तो उसके मन में मेरे लिए प्रेम उमड़ा, यही बात महत्वपूर्ण है।

मुझे भी इस मशक का जल तुम्हारी तरह ठीक नहीं लगा। पर मैं यह कहकर उसका मन दुखी करना नहीं चाहता था। हो सकता है जब जल मशक में भरा गया, तब वह शीतल हो और मशक के साफ न होने पर यहां तक आते-आते यह जल वैसा नहीं रहा, पर इससे लानेवाले के मन का प्रेम तो कम नहीं होता है ना। पुत्र, दूसरों के मन को दुखी करनेवाली बातों को टाला जा सकता है और हर बुराई में अच्छाई खोजी जा सकती है।

९६६) कैसे आया जूता - एक बार की बात है एक राजा था। उसका एक बड़ा-सा राज्य था। एक दिन उसे देश घूमने का विचार आया और उसने देश भ्रमण की योजना बनाई और घूमने निकल पड़ा। जब वह यात्रा से लौटकर अपने महल आया। उसने अपने मंत्रियों से पैरों में दर्द होने की शिकायत की। राजा का कहना था कि मार्ग में जो कंकड़-पत्थर थे वे मेरे पैरों में चुभ गए और इसके लिए कुछ इंतजाम करना चाहिए। कुछ देर विचार करने के बाद उसने अपने सैनिकों व मंत्रियों को आदेश दिया कि देश की संपूर्ण सड़कें चमड़े से ढंक दी जाएं। राजा का ऐसा आदेश सुनकर सब सकते में आ गए। लेकिन किसी ने भी मना करने की हिम्मत नहीं दिखाई। यह तो निश्चित ही था कि इस काम के लिए बहुत सारे रुपए की जरूरत थी। लेकिन फिर भी किसी ने कुछ नहीं कहा। कुछ देर बाद राजा के एक बुद्धिमान मंत्री ने एक युक्ति निकाली। उसने राजा के पास जाकर डरते हुए कहा कि मैं आपको एक सुझाव देना चाहता हूं। अगर आप इतने रुपयों को अनावश्यक रूप से बर्बाद न करना चाहें तो एक अच्छी तरकीब मेरे पास है। जिससे आपका काम भी हो जाएगा और अनावश्यक रुपयों की बर्बादी भी बच जाएगी। राजा आश्चर्यचकित था क्योंकि पहली बार किसी ने उसकी आज्ञा न मानने की बात कही थी। उसने कहा बताओ क्या सुझाव है। मंत्री ने कहा कि पूरे देश की सड़कों को चमड़े से ढंकने के बजाय आप चमड़े के एक टुकड़े का उपयोग कर अपने पैरों को ही क्यों नहीं ढंक लेते। राजा ने अचरज की दृष्टि से मंत्री को देखा और उसके सुझाव को मानते हुए अपने लिए जूता बनवाने का आदेश दे दिया। यह कहानी हमें एक महत्वपूर्ण पाठ सिखाती है कि हमेशा ऐसे हल के बारे में सोचना चाहिए जो ज्यादा उपयोगी हो। जल्दबाजी में अप्रायोगिक हल सोचना बुद्धिमानी नहीं है। दूसरों के साथ बातचीत से भी अच्छे हल निकाले जा सकते हैं।

९६७) कोसलपति की उदारता - कोसल के राजा का नाम चारों ओर फैला था। वह गरीबों के रक्षक और प्रजापालक थे। काशीपति ने जब उनकी कीर्ति सुनी, तब वह जल-भुन गए। झट उन्होंने एक बड़ी सेना ली और कोसल पर चढ़ आए। युद्ध में कोसलनरेश की हार हुई और वह वन भाग गए। कोसल नरेश की पराजय से वहां की प्रजा दिन रात रोने लगी- काशीराज ने सोचा कि प्रजा की मदद लेकर कोसल नरेश कहीं फिर विद्रोह न कर बैठें, इसलिए उन्होंने घोषणा करा दी कि जो कोसलपति को ढूंढ लाएगा, उसे सौ मोहरें दी जाएंगी। चूंकि प्रजा में कोसल नरेश का सम्मान था, इसलिए जिसने भी यह घोषणा सुनी, आंख-कान बंदकर जीभ दबा ली। इधर कोसल नरेश दीन-मलीन होकर जंगल में भटक रहे थे। एक दिन एक पथिक उनके सामने आया और पूछने लगा, वनवासी, इस वन का कहां जाकर अंत होता है और कोसलपुर जाने का मार्ग कौन-सा है? राजा ने पूछा, तुम्हारे वहां जाने का कारण क्या है? पथिक बोला, मैं व्यापारी हूं। मेरी नौका डूब गई है। अब द्वार-द्वार कहां भीख मांगता फिरूं। सुना था कि कोसल का राजा बड़ा उदार है। इसलिए उसी के दरवाजे जा रहा हूं। थोड़ी देर तक सोचने के बाद राजा ने कहा, चलो तुम्हें पहुंचा ही आऊं। काशीराज की सभा में एक जटाधारी व्यक्ति आया। काशीनरेश ने पूछा, कहिये, किसलिए पधारे?

९६८) लज्जा से झुक गए सिर - मेवाड़ के राणा प्रताप तथा उनके छोटे भाई शक्ति सिंह सैनिकों के साथ आखेट के लिए निकले। दोनों भाई साथ ही आखेट कर रहे थे। संयोगवश एक मृग दोनों की दृष्टि में एक साथ पड़ा। दोनों ने उस पर साथ ही बाण चलाया। मृग तो बाण के आघात से मर गया, मगर एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि मृग मरा किसके बाण से। राणा कह रहे थे, मेरे बाण से मरा। शक्ति सिंह कह रहे थे, मैंने इसे मारा है। यह छोटी-सी बात इतनी बढ़ गई कि दोनों भाइयों ने तलवार खींच ली। दोनों में युद्ध छिड़ गया। राजपुरोहित ने दूर से ही दोनों को पुकारकर रोका, ठहरो, युद्ध बंद करो और वह दौड़ते हुए वहां पहुंचे। दोनों को उन्होंने समझाया, देश इस समय संकट में है। विधर्मियों के आक्रमण आए दिन होते ही रहते हैं। ऐसे समय यह कैसी मूर्खता है कि मेवाड़ की आशा के दो आधार परस्पर ही लड़ मरने को उद्यत हैं। ब्राह्मण ने राणा को समझाया कि शक्ति सिंह को बालक समझकर उसी को विजयी मान लें। शक्ति सिंह को समझाया कि वह बड़े भाई का सम्मान करें, किंतु क्रोध में अच्छे विचारवान भी विवेकशून्य हो जाते हैं। दोनों में कोई झुकने को तैयार नहीं हुआ। जब कोई उपाय नहीं रहा, तो राजपुरोहित नंगी तलवार लिए दोनों भाइयों के बीच खड़े होकर बोले, यदि रक्तपान के बिना तुम्हारा क्रोधरूपी पिशाच शांत नहीं होता, तो वह ब्राह्मण का रक्त पिए। मैंने मेवाड़ का अन्न खाया है, मैं मेवाड़ को गृह-कलह से नष्ट होते नहीं देख सकता। और यह कहकर ब्राह्मण ने कटार अपनी छाती में घोंप ली। दोनों भाइयों के बीच में उनका शरीर भूमि पर गिर पड़ा। दोनों भाइयों के मस्तक लज्जा से झुक गए।

९६९) उसे सुन्दर बना दो - मशहूर जर्मन संगीतज्ञ मैंडेलसान के दादाजी मौसेज मैंडेलसान का हुलिया आकर्षक नहीं था। एक तो उनका कद छोटा था, दूसरे उनके शरीर पर एक अजीब-सा कूबड़ था। इस वजह से वह देखने में और असुंदर लगते थे। एक बार वह हैमबर्ग के किसी व्यापारी से मिलने गए। जाने का मकसद कारोबारी था, लेकिन व्यापारी से मुलाकात घर पर ही तय हुई। मौसेज ने वहां बेहद खूबसूरत लड़की फ्रमजी को देखा। वह उस व्यापारी की ही बेटी थी। मौसेज को पहली ही नजर में वह भा गई। फ्रमजी को भी मौसेज सुहाए। वह सोचने लगी कि मौसेज अगर सुंदर होते, उनका व्यक्तित्व थोड़ा भी मेल खाता, तो वह खुद उसके सामने शादी का प्रस्ताव रख देती। लेकिन अजीब से हुलिए के कारण फ्रमजी ने मौसेज को नजर अंदाज कर दिया। जब चलने का वक्त आया, तो मौसेज ने हिम्मत जुटाई। यह फ्रमजी से बात करने का आखिरी मौका था। वह उसके कमरे तक पहुंचे, पर वह मौसेज की तरफ देखना भी नहीं चाहती थी। यह देखकर मौसेज बहुत दुखी गए। उन्होंने बात करने की कोशिश की, लेकिन बात हो नहीं पाई। आखिर मौसेज ने पूछा, क्या आप मानती है कि शादियां स्वर्ग में तय होती हैं? हां उस लड़की ने फर्श की तरफ देखते हुए जवाब दिया। मैं भी यही मानता हूं मौसेज ने कहा। देखिए, हर लड़के के जन्म के समय ईश्वर उसे यही बताता है कि उसकी शादी किससे होगी। जब मैं पैदा हुआ, तो ईश्वर ने कहा, तुम्हारी पत्नी कूबड़ी होगी उसी वक्त मैंने प्रभु से कहा, अगर वह कुबड़ी हुई, तो कितनी बुरी बात होगी। मेहरबानी करके कूबड़ मुझे दे दो और उसे सुंदर बना दो। तब फ्रमजी ने उसकी आंखों में देखा और अपना हाथ मैंडेलसान के हाथ में दे दिया।

९७०) सफलता का रहस्य - एक बार एक नौजवान लड़के ने सुकरात से पूछा कि सफलता का रहस्य क्या है? सुकरात ने उस लड़के से कहा कि तुम कल मुझे नदी के किनारे मिलो। वो मिले। फिर सुकरात ने नौजवान से उनके साथ

नदी की तरफ बढ़ने को कहा और जब आगे बढ़ते बढ़ते पानी गले तक पहुंच गया, तभी अचानक सुकरात ने उस लड़के का सर पकड़ के पानी में डुबो दिया। लड़का बाहर निकलने के लिए संघर्ष करने लगा, लेकिन सुकरात ताकतवर थे और उसे तब तक डुबोये रखे जब तक की वो नीला नहीं पड़ने लगा। फिर सुकरात ने उसका सर पानी से बाहर निकाल दिया और बाहर निकलते ही जो चीज उस लड़के ने सबसे पहले की वो थी हाँफते-हाँफते तेजी से सांस लेना। सुकरात ने पूछा, जब तुम वहाँ थे तो तुम सबसे ज्यादा क्या चाहते थे? लड़के ने उत्तर दिया, सांस लेना। सुकरात ने कहा, यही सफलता का रहस्य है। जब तुम सफलता को उतनी ही बुरी तरह से चाहोगे जितना की तुम सांस लेना चाहते थे तो वो तुम्हें मिल जाएगी। इसके अलावा और कोई रहस्य नहीं है।

९७१) सम्मान का अधिकारी - देव मित्र एक राज्य में राज पुरोहित थे। उनका पूरे राज्य में बड़ा सम्मान था। राजा को भी राज पुरोहित के ज्ञान और योग्यता पर पूरा भरोसा था। इसीलिए राजा उनकी हर बात मान लेते थे। एक दिन राज पुरोहित के मन में सवाल उठा कि राजा और प्रजा के बीच मेरा जो इतना सम्मान होता है, उसका कारण क्या है? राज पुरोहित ने अपने इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए एक योजना बनाई। अगले दिन दरबार से लौटते समय उन्होंने राजा के कोषागार से एक स्वर्ण मुद्रा चुपचाप उठा ली। कोषागार के अधिकारी ने ऐसा होता देखकर भी अनदेखा कर दिया।

राज पुरोहित ने दूसरे दिन भी दरबार से लौटते समय दो स्वर्ण मुद्राएं उठा लीं। कोष अधिकारी ने यह देखकर सोचा कि शायद किसी खास वजह से वे ऐसा कर रहे हैं, बाद में अवश्य बता देंगे। लेकिन तीसरे दिन तो राज पुरोहित ने अपनी मुट्ठी में ही स्वर्ण मुद्राएं भर लीं। इस बार कोष अधिकारी ने उन्हें पकड़कर सैनिकों के हवाले कर दिया। उनका मामला राजा तक जा पहुंचा। न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठे राजा ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा- राज पुरोहित द्वारा तीन बार राजकोष का धन चुराया गया हे। इस अपराध के लिए उन्हें तीन माह की कैद दी जाए, ताकि वह फिर कभी ऐसा अपराध न कर सकें। राजा के निर्णय से राज पुरोहित को अपने सवाल का जवाब मिल चुका था। राज पुरोहित ने राजा से निवेदन किया, राजन मैं चोर नहीं हूं। मैं यह जानना चाहता था कि आपके द्वारा मुझे जो सम्मान दिया जाता है, उसका सही अधिकारी कौन है? मेरी योग्यता, ज्ञान या मेरा सदाचरण। आज सभी लोग समझ गए हैं कि सदाचरण यानी अच्छा आचरण छोड़ते ही मैं दंड का अधिकारी बन गया हूं। वास्तव में सदाचरण और नैतिकता ही मेरे सम्मान का मूल कारण थी।

९७२) उपाधि का भार - भारत के एक महान संत की ख्याति कम उम्र में ही पूरे विश्व में गूंज चुकी थी। उनकी प्रसिद्धि को देखते हुए अमेरिकावासियों ने उन्हें अपने यहां आमंत्रित किया। संत ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और नियत समय पर वहां पहुंच गए। उनका अमेरिका में भव्य स्वागत हुआ। उनके स्वागत में विभिन्न प्रवचनों का आयोजन किया गया। सभी प्रवचनों में अपार भीड़ जुटी कुछ ही समय में अमेरिका में उनके प्रवचनों की धूम मच गई। अमेरिका के निवासी संत की ओजस्वी वाणी के दीवाने हो गए। एक विद्यापीठ में भी उनका अभिनंदन किया गया। विद्यार्थी भी भारतीय संत के वचनों और व्यक्तित्व को देखकर बहुत प्रभावित हुए। कई विद्यापीठों ने आपस में विचार-विमर्श कर यह निर्णय किया कि इस भारतीय संत को सम्मिलित रूप से डॉक्टर ऑफ लॉ एंड लिटरेचर की उपाधि से विभूषित किया जाए। सभी इस विचार पर सहमत हो गए। उन्होंने संत को सम्मान के साथ अपने यहां बुलाया और उन्हें डॉक्टर ऑफ लॉ एंड लिटरेचर

की उपाधि से सम्मानित करना चाहा। जब उन्होंने उपाधि लेने के लिए संत को आमंत्रित किया तो वह बड़ी विनम्रता के साथ मंच पर गए। वह वहां उपस्थित लोगों से बोले, भाइयों और बहनों, आप लोगों की इस शुभ भावना के लिए मैं हृदय से आभारी हूं कि आपने मुझे इस योग्य समझा। यहां बुलाकर इतना सम्मान दिया। वैसे मेरे नाम के आगे मेरे देशवासियों ने स्वामी और भारतीय विश्वविद्यालय ने एम.ए. की उपाधि लगाकर आगे पीछे पहले ही दो उपाधि जोड़ दी हैं, जिन्हें चाहकर भी मैं नहीं हटा पा रहा हूं। अब और किसी उपाधि को अपने साथ जोड़कर मैं अपना भार बढ़ाने की इच्छा नहीं रखता। उनकी यह बात सुनकर वहां के लोग उनके प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो गए। ये भारतीय संत थे स्वामी रामतीर्थ।

९७३) बचाने वाला बड़ा है - राजकुमार सिद्धार्थ और मंत्रीपुत्र देवदत्त मित्र थे। वे एक दिन बाजार में घूमने जा रहे थे। सहसा सिद्धार्थ ने देखा- दो सुंदर राजहंस आकाश में जा रहे हैं। उन्हें देखकर वह प्रसन्न हो उठा, देवदत्त, देखो ये कितने सुंदर पक्षी जा रहे हैं। देवदत्त ने ऊपर की ओर देखा और अपना धनुष-बाण उठाया व एक पक्षी को मार गिराया। सिद्धार्थ की प्रसन्नता शोक और व्याकुलता में बदलने लगी। सिद्धार्थ दौड़ा आया और रक्त से सने राजहंस को गोदी में उठाया और सीने से लगा लिया। इस पर मेरा अधिकार है सिद्धार्थ। क्या तुमने देखा नहीं है, इसे मैंने अपने बाण से मारा है? देवदत्त ने कहा। सिद्धार्थ बिना कुछ कहे-सुने पक्षी को लेकर अपने भवन में चले गए। वहां उसकी सेवा-सुश्रुषा करने लगे। देवदत्त ने भी उस समय राजकुमार समझकर सिद्धार्थ से झगड़ा नहीं किया और चुपचाप वापस चला गया। परंतु देवदत्त ने न्याय प्राप्ति के लिए महाराज के पास जाकर शिकायत कर दी। महाराज ने दोनों को राजदरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी। एक ओर देवदत्त खड़े थे तो दूसरी ओर सिद्धार्थ अपनी गोद में पक्षी को लिए हुए खड़े थे। देवदत्त ने अपना तर्क प्रस्तुत किया, महाराज, मैंने पक्षी को बाण मारा, इसलिए इस पर मेरा अधिकार है। किंतु मैंने इसे बचाया है। मारनेवाला नहीं, बचानेवाला बड़ा होता है। इसलिए उस पर मेरा ही अधिकार होना चाहिए। सिद्धार्थ ने बिना पूछे ही पूरी बात कह डाली। महाराज ने पूरी बात सुनकर कहा, पक्षी को ही न्याय करने दो। यह कहकर उन्होंने उस पक्षी को दोनों के बीच में छुड़वा दिया। पक्षी ने दोनों की तरफ देखा और फिर स्वयं सिद्धार्थ के पास चला गया। मूक पक्षी ने अपने व्यवहार से निर्णय दे दिया कि मारनेवाले से बचानेवाले का अधिकार बड़ा होता है।

९७४) कथावाचक के बेटे - एक कथावाचक के चार बेटे थे। एक दिन कथावाचक को एक श्रद्धालु ने ढेर सारा धन व उपहार देकर विदा किया। यह देख उसके बेटों ने भी कथावाचक बनना चाहा। उसने पुत्रों को समझाया कि अध्ययन के बाद ही कथावाचन के योग्य बन सकोगे। लेकिन पुत्र नहीं माने और गांव के मुखिया के यहां कथावाचन करने चल पड़े। पंडित ने एक विश्वासपात्र को उनके साथ भेज दिया। मुखिया के घर पहुंचकर उन्होंने कथा प्रारंभ कर दी। पहला बोला- राजा पूछेंगे तो क्या बोलूंगा। दूसरा बोला- जो तेरी गति, सो मेरी गति। तीसरे ने कहा- ये चतुराई कितने दिन चले। चौथा बोला- जितने दिन चले, उतने दिन चले। मुखिया समेत गांववालों ने उनसे कहा- कृपया इन बातों का आशय भी बता दें? अब चारों भाई चुप। यही देखकर मुखिया नाराज हो गया। उसने अपने सेवकों से कहा- पंडित मूर्ख बना रहे हैं। इन्हें बाहर खदेड़ दो। तब उनके साथ गया विश्वासपात्र बोला- इन चारों ने गूढ़ ज्ञान की बातें कही हैं। पहले पंडित के कथन राजा पूछेंगे तो क्या बोलूंगा का अर्थ है कि सुमंत जब राम से अयोध्या वापस चलने का अनुरोध

करने लगे और राम ने वापस जाने से इनकार किया, तब सुमंत ने रामजी से पूछा कि यदि महाराज दशरथ पूछेंगे तो मैं क्या जवाब दूंगा? दूसरे कथन जो तेरी गति, सो मेरी गति का अर्थ है कि जब सुग्रीव विभीषण से मिले तो उनसे बोले कि तुम्हारी जैसी ही मेरी गति है। तीसरे और चौथे पंडित के कथन रावण-मंदोदरी के संवाद का हिस्सा हैं। ये चतुराई कितने दिन चले का तात्पर्य है, जब मंदोदरी ने रावण से पूछा कि सीता को आपने जो यहां बंदी बनाकर रखा है, ये कब तक चलेगा। तब रावण ने कहा- जब तक चलेगा, तब तक चलेगा। बात मुखिया और गांववालों को भा गई और उन्होंने चारों को धन देकर विदा किया।

९७५) सेवा की सच्ची भावना - एक संत ने एक विद्यालय आरंभ किया। इस विद्यालय का प्रमुख उद्देश्य था ऐसे संस्कारी युवक-युवतियों का निर्माण जो समाज के सर्वांगीण विकास में सहभागी बन सकें। एक दिन उन्होंने अपने विद्यालय में एक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया। इसका विषय था- प्राणिमात्र की सेवा। निर्धारित तिथि को तयशुदा वक्त पर विद्यालय के कॉन्फ्रेंस हॉल में प्रतियोगिता आरंभ हुई। किसी छात्र ने सेवा के लिए संसाधनों की महत्ता पर बल देते हुए कहा कि हम दूसरों की तभी सेवा कर सकते हैं जबकि हमारे पास उसके लिए पर्याप्त संसाधन हों। वहीं कुछ छात्रों की यह भी राय थी कि सेवा के लिए संसाधन नहीं, भावना का होना जरूरी है। इस तरह तमाम प्रतिभागियों ने सेवा के विषय में शानदार उद्‌बोधन दिए। जब पुरस्कार देने का समय आया तो संत ने एक ऐसे विद्यार्थी को चुना, जो मंच पर बोलने के लिए ही नहीं आया था। यह देखकर अन्य विद्यार्थियों और कुछ शैक्षिक सदस्यों में रोष के स्वर उठने लगे। संत सबको शांत करते हुए बोले, प्यारे मित्रों, आप सबको शिकायत हैं कि मैंने ऐसे विद्यार्थी को क्यों चुना, जो प्रतियोगिता में सम्मिलित ही नहीं हुआ था। दरअसल, मैं जानना चाहता था कि हमारे विद्यार्थियों में कौन सेवाभाव को सबसे बेहतर ढंग से समझता है। इसीलिए मैंने प्रतियोगिता स्थल के द्वार पर एक घायल बिल्ली को रख दिया था। आप सब उसी द्वार से अंदर आए, पर किसी ने उस बिल्ली की ओर आंख उठाकर नहीं देखा। यह अकेला ऐसा छात्र था, जिसने वहां रुककर उसका उपचार किया और उसे सुरक्षित स्थान पर छोड़ आया। सेवा-सहायता उद्‌बोधन का विषय नहीं, जीवन जीने की कला है। जो अपने आचरण से शिक्षा देने का साहस न रखता हो, उसके वक्तव्य कितने भी प्रभावी क्यों न हों, वह पुरस्कार पाने के योग्य नहीं है।

९७६) नोबेल पुरस्कार की शुरुआत - स्टॉकहोम में जन्मे अल्फ्रेड नोबेल बचपन से ही अत्यंत जिज्ञासु व प्रतिभाशाली थे। उन्होंने डाइनामाइट नामक विस्फोटक का आविष्कार किया। नोबेल ने इसे तैयार करने में बहुत मेहनत की थी। बाद में इस विस्फोटक के उत्पादन के लिए उन्होंने एक कारखाना लगाया। इस कारखाने में अनेक लोगों के साथ उनके भाई भी मेहनत से काम करते थे। अचानक एक दिन उस कारखाने में भयंकर विस्फोट हो गया और पूरा का पूरा कारखाना ही उड़ गया। इस दुर्घटना में नोबेल के भाई की भी मृत्यु हो गई। नोबेल को अपने भाई से बेहद लगाव था। वह उसके बिना अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर पाते थे।

भाई की मृत्यु ने उन्हें बुरी तरह झकझोर कर रख दिया। कई दिनों तक वह पागलों की सी स्थिति में बैठे रहते थे। धीरे-धीरे उन्होंने स्वयं को संभाला। एक दिन वह अपने एक मित्र से बोले, काश मैं विध्वंस के साधन की जगह किसी रोग या

महामारी से बचानेवाले जीवनरक्षक साधन के आविष्कार की पहल करता तो ज्यादा अच्छा रहता। ऐसे में मेरे भाई के साथ-साथ अनगिनत निर्दोष लोग भी असमय ही मौत का शिकार नहीं बनते। मित्र ने नोबेल को बहुत समझाया और जीवन में आगे बढ़ने को प्रेरित किया। किंतु वे कारखाने में हुई मौतों का जिम्मेदार स्वयं को ही समझने लगे थे। वे पश्चाताप की आग में जलते रहे। उन्होंने अपने जीवन में लगभग ९० लाख डॉलर की राशि अर्जित कर ली थी। मृत्यु से पहले उन्होंने इस सारी राशि को शांति के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय उपलब्धि के लिए किसी पुरस्कार की खातिर प्रदान करने की घोषणा की। तभी से उनकी स्मृति में शांति सहित अनेक विशिष्ट कार्यों के लिए नोबेल पुरस्कार की शुरुआत की गई। यह विश्व का सबसे बड़ा पुरस्कार माना जाता है।

९७७) गुरु गद्दी का अधिकारी - एक बार गुरु नानकदेव के पास उनके पुत्र और भाई लाहिणी बैठै हुए थे। सभी अपने-अपने विचार गुरुजी को बता रहे थे। बातों बातों में गुरुनानक ने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंद से पूछा, पुत्र, तुम्हें किस वस्तु की अभिलाषा है? श्रीचंद ने हाथ जोड़कर कहा, पिताजी, मुझे कोई भी संसारिक वस्तु नहीं चाहिए। मुझे तो आप आशीर्वाद दें कि मैं ईश्वर भक्ति में अपना जीवन अर्पित कर दूं। पुत्र की बात सुनकर गुरु नानक बोले, ईश्वर तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे। इसके बाद उन्होंने अपने दूसरे पुत्र लक्ष्मीचंद की तरफ देखा। लक्ष्मीचंद उन्हें देखकर बोले, पिताजी, मैं चाहता हूं कि जब इंसान का जन्म हुआ है तो वह उसके एक-एक पल को अच्छी तरह से जिए। इसलिए मैं अपना जीवन अच्छी तरह से व्यतीत करने के लिए धन-संपत्ति की इच्छा चाहता हूं। गुरुजी ने लक्ष्मीचंद की इच्छा का सम्मान करते हुए कहा, ठीक है, जैसा तुम चाहते हो वैसा ही होगा। तुम दोनों अपना अपना जीवन अपने कहे अनुसार व्यतीत कर पाओगे। उस समय गुरु नानक के समीप ही उनके अनन्य भक्त लाहिणी बैठे हुए थे। गुरु नानक लाहिणी से बोले, बेटा, तुम क्या चाहते हो? लाहिणी हाथ जोड़कर बोले, गुरुजी, मुझे न तो ईश्वर दर्शन की इच्छा है, न सांसारिक धन संपत्ति की। मैं चाहता हूं कि अपना जीवन आपके सेवकों की सेवा में बिता दूं। मुझे तो अपने जन्म का उद्देश्य मानव सेवा करने में ही सार्थक लगता है। मुझे इसी में आनंद प्राप्त होता है। भाई लाहिणी का जवाब सुनकर गुरुनानक खुश हो गए। उन्होंने कहा, बेटा, ईश्वर उसी से प्रसन्न होते हैं जो सेवा को सर्वोपरि महत्व देते हैं। तू इस तत्व को अच्छी तरह से समझ गया है। इसलिए तू ही गुरु गद्दी का सच्चा अधिकारी है। यही भाई लाहिणी आगे चलकर सिखों के द्वितीय गुरु अंगददेव के नाम से प्रसिद्ध हुए।

९७८) जीभ का रस - एक राहगीर थककर कहीं टिकने का स्थान खोजने लगा। एक महिला ने उसे अपने बाड़े में ठहरने का स्थान बता दिया। बूढ़ा वहीं चैन से सो गया। सुबह उठने पर उसने आगे चलने से पूर्व सोचा कि यह अच्छी जगह है, यहीं पर खिचड़ी पका ली जाए और फिर उसे खाकर आगे का सफर किया जाए। बूढ़े ने वहीं पड़ी सूखी लकड़ियां इकट्ठा कीं और ईंटों का चूल्हा बनाकर खिचड़ी पकाने लगा। बटलोई उसने उसी महिला से मांग ली। बूढ़े ने उसका ध्यान बंटाते हुए कहा, एक बात कहूं? बाड़े के दरवाजे की चौड़ाई थोड़ी है। अगर सामनेवाली मोटी भैंस मर जाए तो फिर उसे उठाकर बाहर कैसे ले जाया जाएगा? महिला को इस व्यर्थ की कड़वी बात का बुरा तो लगा, पर वह यह सोचकर चुप रह गई कि बुजुर्ग है और फिर कुछ देर बाद जाने ही वाला है, इसके मुंह क्यों लगा जाए। उधर चूल्हे पर चढ़ी खिचड़ी आधी ही

पक पाई थी कि वह महिला किसी काम से बाड़े से होकर गुजरी। इस बार बूढ़ा उससे बोला, तुम्हारे हाथों का चूड़ा बहुत कीमती लगता है। यदि तुम विधवा हो गईं तो इसे तोड़ना तो बड़ा महंगा पड़ेगा। बहुत नुकसान हो जाएगा तुम्हारा?

इस बार महिला से सहा न गया। वह भागती हुई आई और उसने बुढ्ढे के गमछे में अधपकी खिचड़ी उलट दी। चूल्हे की आग पर पानी डाल दिया। अपनी बटलोई छीन ली और बुढ्ढे को धक्के देकर निकाल दिया। तब बुढ्ढे को अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने माफी मांगी और आगे बढ़ गया। उसके गमछे से अधपकी खिचड़ी का पानी टपकता रहा और सारे कपड़े उससे खराब होते रहे। रास्ते में लोगों ने पूछा, यह सब क्या है? बूढ़े ने कहा, यह मेरी जीभ का रस टपका है, जिसने तिरस्कार कराया और अब हंसी उड़वा रहा है।

९७९) पथिकों का मसीहा - न्यूयॉर्क में कॉलेज का एक छात्र प्लेटफॉर्म पर उतरा। वह स्टेशन से बाहर निकल कुछ दूर ही चला था कि अचानक मूसलाधार बारिश होने लगी। बचाव का कोई साधन नजर नहीं आ रहा था। तभी एक वृद्ध छात्र के पास आया और छतरी उसके ऊपर करते हुए बोला, चलो बेटे, मैं तुम्हें तुम्हारी मंजिल तक पहुंचा आऊं। छात्र ऐसी तेज बारिश में एक वृद्ध को अचानक देखकर थोड़ा चौंका, फिर उसके साथ चल दिया। वृद्ध उसे हॉस्टल के कमरे तक सकुशल पहुंचा कर जाने लगा। जब वह वृद्ध कमरे से बाहर निकलने लगा तो छात्र बोला, बाबा, मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूं। मेरा और आपका पूर्व परिचय नहीं है। ऐसे में इतनी तेज बारिश में आपने अपनी उम्र का ध्यान भी नहीं रखा और मुझे छतरी के साथ मेरे हॉस्टल तक छोड़ने आए। इसके पीछे कुछ वजह तो अवश्य है। छात्र की बात सुनकर वृद्ध की आंखों में आंसू आ गए और वह बोला, बेटा, आज से तीस साल पहले मैं बहुत गरीब था। मेरे तीन बेटे थे। एक दिन वे तीनों बाहर गए हुए थे। अचानक तेज बारिश हो गई। उन दिनों मेरे पास एक भी छाता नहीं था। मेरे तीनों बेटे भीगते हुए घर आए और उन्हें निमोनिया हो गया। निमोनिया के कारण एक के बाद एक मेरे तीनों बेटे मौत की गोद में सो गए। मेरे बेटे तो मुझे वापिस नहीं मिल सकते लेकिन मैं ऐसे अनगिनत बेटों को छतरी का सहारा देकर बचा अवश्य सकता हूं जिनके पास बारिश से बचने का कोई सहारा नहीं होता। यह सुनकर छात्र की आंखों में आंसू आ गए। वह वृद्ध का हाथ पकड़कर उन्हें गले लगाता हुआ बोला, सर, आज से मैं आपका बेटा हूं। बारिश में लोगों की मदद करनेवाला यह वृद्ध व्यक्ति अमेरिका के न्यूयॉर्क का एक समाजसेवी सर जॉन फेब्रिक था। आज भी उन्हें पथिकों का मसीहा के रूप में जाना जाता है।

९८०) विद्वान की शोभा - कोलकाता के कॉलेज में संस्कृत-व्याकरण के लिए एक अध्यापक का स्थान खाली हुआ। कॉलेज के प्राचार्य को सबसे पहले ईश्वरचंद्र विद्यासागर का ध्यान आया और उन्होंने उनके पास पत्र भिजवाया। पत्र में आग्रह किया गया था कि वे संस्कृत अध्यापक का पद ग्रहण करें। इससे कॉलेज गौरवान्वित होने के साथ-साथ, उनका आभारी रहेगा। यह पद ग्रहण करने पर उन्हें अच्छा वेतन मिलता। सभी सोच रहे थे कि अब वे संस्कृत कॉलेज में पढ़ाने लगेंगे, परंतु उन्होंने एक क्षण विचार किया और अपनी असहमति लिखकर भेज दी। उन्होंने लिखा कि आपको व्याकरण पढ़ाने वाले अध्यापक की आवश्यकता है। मैं सोचता हूं कि व्याकरण में मैं इस नगर का योग्यतम व्यक्ति नहीं हूं। इस विषय में मुझसे अधिक विद्वान मेरे मित्र तारक वाचस्पति हैं। उनकी नियुक्ति हो जाये तो मुझे बड़ी खुशी होगी कि

आपने योग्यतम व्यक्ति का चुनाव किया है। कॉलेज के प्रबंधक के पास ईश्वरचंद्र का पत्र पहुंचा। पत्र पढ़कर उनका मस्तक श्रद्धा से झुक गया। वे सोचने लगे- यह व्यक्ति कितना महान है? इसमें अपने ज्ञान का तनिक भी अहंकार नहीं, न ही इसे झूठा सम्मान या धन पाने का प्रलोभन है। जो विद्वान किसी दूसरे व्यक्ति को अपने से बड़ा बताए, वह वास्तव में विशाल हृदय है। ईश्वरचंद्र के प्रस्ताव को कॉलेज की प्रबंध समिति ने खुशी से मान लिया। वाचस्पति महोदय को अपनी नियुक्ति का समाचार पाकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने तो इस पद के लिए आवेदन पत्र भी नहीं भेजा था। ईश्वरचंद ने उन्हें सारी घटना सुनाई। वाचस्पति ने बात सुनकर, मित्र को हृदय से लगा लिया और बोले, ईश्वरचंद तुम्हें देखकर मुझे गर्व है कि आज भी संसार में इतने विनम्र विद्वान और इतने परोपकारी व्यक्ति हैं। ज्ञानी होना ही महत्वपूर्ण नहीं, विद्वान की शोभा उनके आचरण से होती है।

९८१) मेरा अपना कुछ नहीं - पारसी धर्मगुरु रवि मेहर उन दिनों बड़े कष्ट में थे। उनके तीन बेटे थे, तीनों महामारी की चपेट में आ गए और अच्छी दवा के अभाव में जीवित न रह सके। मेहर उस समय बाहर गए हुए थे। शाम के समय जब घर आए, तो उन्हें बच्चे कहीं दिखाई न दिए। उन्होंने सोचा, शायद सो गए होंगे। भोजन करते समय उन्होंने पत्नी से पूछा, क्या आज बच्चे जल्दी सो गए? वह पहले ही उदास थी, यह सुनकर उसकी तो सांस ही रुकने को हो आई। उसने पति की बात का कोई उत्तर दिए बिना उनसे कहा, स्वामी, कल ही हमने अपने पड़ोसी से जो बर्तन लिए थे, उन्हें मांगने के लिए वे आज खुद ही चले आए थे। यह सुनकर मेहर ने पत्नी से कहा, बर्तन तो उनके ही थे, इसीलिए वे लेने आ गए होंगे। आखिर किसी पराई वस्तु का मोह हम क्यों करें? पत्नी ने यह सुनकर जवाब दिया, स्वामी, आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं। मैंने उन्हें वे बर्तन लौटा दिए। इसके बाद पत्नी ने संत को भोजन करा दिया। भोजन करने के बाद भी जब मेहर को बच्चे घर में नजर न आए तो उन्होंने पहले तो घर का कोना-कोना छान मारा और फिर पत्नी से उनके बारे में पूछताछ की। तब पत्नी उन्हें शयनकक्ष में ले गई और उसने चारपाई के नीचे रखे तीनों बच्चों के शव दिखा दिए। यह देखते ही मेहर को बहुत दुख हुआ। वह फूट-फूटकर रोने लगे। तब पत्नी ने उनसे कहा, स्वामी, आप अभी अभी तो यह कह रहे थे कि कोई व्यक्ति अपनी वस्तु लेना चाहे, तो हमें वह दे देनी चाहिए और उसके लिए दुख नहीं करना चाहिए, लेकिन आप स्वयं यह भूल रहे हैं। बच्चे भगवान ने ही हमें दिए थे, सो उन्होंने ले लिए, फिर हम उनके लिए क्यों व्यर्थ शोक करें? पत्नी की यह बात सुनकर मेहर का चित्त हल्का हो गया। इसके बाद वे पूजा उपासना में लीन रहने लगे।

९८२) योग्यता से सम्मान - यह घटना उस समय की है जब लालबहादुर शास्त्री के पुत्र अनिल ने बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद दिल्ली के सेंट स्टीफंस कॉलेज में प्रवेश के लिए आवेदन किया था। उन दिनों शास्त्रीजी देश के प्रधानमंत्री थे। अनिल ने आवेदन करते समय पिता का नाम एल.बी. शास्त्री और घर का पता १०, जनपथ लिखा था। सभी विद्यार्थियों के साथ उनका आवेदन फॉर्म भी इंटरव्यू के लिए समिति के पास भेज दिया गया। कुछ देर बाद ही मि. रॉबर्ट बाहर आए और अनिल से बोले, आप १० जनपथ में कैसे रहते हैं, वह तो प्रधानमंत्री जी का आवास है। यह सुनकर अनिल ने नम्रता से कहा, जी सर, मैं प्रधानमंत्री का पुत्र अनिल हूं। यह सुनकर मि. रॉबर्ट तुरंत अनिल को अपने साथ अंदर ले गए। वहां उनको विशेष सम्मान प्रदान किया गया। इंटरव्यू देने के बाद अनिल बड़े प्रसन्न मन से घर पहुंचे। शाम

को जब लालबहादुर शास्त्री घर लौटकर आए तो अनिल प्रसन्न होकर उनसे बोले, बाबूजी, आज कॉलेज में मेरे साथ दो बातें हुईं। पहले तो किसी को यह पता ही नहीं था कि मैं आपका पुत्र हूं। उस समय मेरे साथ सामान्य विद्यार्थियों की तरह ही व्यवहार किया गया। लेकिन घर का पता देखकर एक सदस्य को जब यह पता चला कि मैं प्रधानमंत्री का पुत्र हूं तो उन्होंने मुझे विशेष सम्मान दिया। यह सुनकर शास्त्रीजी बोले, तुमने बहुत अच्छा किया कि आवेदन फॉर्म सामान्य विद्यार्थियों की तरह ही लिखकर भेजा और अपनी बारी का इंतजार किया। लेकिन दूसरी बात से मैं सहमत नहीं हूं। यह सुनकर अनिल शास्त्री ने पूछा, ऐसा क्यों बाबूजी? शास्त्रीजी बोले, जब कॉलेज के स्टाफ को पता चला कि तुम प्रधानमंत्री के पुत्र हो तो तुम्हें विशेष सम्मान दिया गया। सम्मान व्यक्ति को किसी की पद-प्रतिष्ठा से नहीं, अपनी योग्यता से ही प्राप्त होना चाहिए।

९८३) ज्ञान की कोई सीमा नहीं - एक बहुत पहुंचे हुए विद्वान थे। उनका एक शिष्य बड़ा जिज्ञासु प्रवृत्ति का था। वह अधिक से अधिक ज्ञान पाने के लिए प्रयत्नशील रहता था। एक दिन उसने अपने गुरुजी से प्रश्न किया, क्या आपको समस्त दुनिया का ज्ञान है? गुरु बोले, नहीं वत्स, ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। वह तो अपार है। वैसे किसी एक व्यक्ति के लिए विश्व का समस्त ज्ञान प्राप्त करना संभव भी नहीं है। गुरुजी ने समझाया, लेकिन शिष्य हठ कर बैठा, गुरुजी चाहे जो भी हो, मैं तो दुनिया का समस्त ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं। आप मुझ पर अपनी कृपा कीजिए और मुझे विश्व का समस्त ज्ञान कोष दिखला दीजिए। यह सुनकर गुरुजी ने उसे कई तरह से समझाने की कोशिश की, किंतु शिष्य तो अपनी बात पर ही अड़ा रहा। इस पर गुरुदेव ने कुछ देर विचार किया, फिर उसे ले संसार के ज्ञान-ग्रंथों का विशाल भंडार दिखाने चल दिए। शिष्य गुरुजी की कृपा से कृतज्ञ हो गया। वह उन ज्ञान-ग्रंथों को पढ़ने में लग गया। बरसों बीत गए, किंतु लगातार पढ़ते रहने पर भी अनगिनत ग्रंथ शेष रह गए। उधर उसके गुरुदेव समय के साथ वृद्ध हो चले। लेकिन, शिष्य की ज्ञान-पिपासा शांत ही न होती थी। एक दिन गुरुदेव मृत्यु शैया पर जा पहुंचे। शिष्य ने उनका अंत निकट देख दुख भरे शब्दों में कहा, गुरुदेव, आप इस प्रकार चले जाएंगे तो मुझे शेष ज्ञान-ग्रंथों का परिचय कौन देगा? अब गुरुदेव ने ज्ञान भंडार का रहस्य बताते हुए कहा- वत्स, तुमने अब तक जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह तो कुछ विशेष नहीं है। ज्ञान-ग्रंथों से करोड़ों गुना ज्ञान तो इस संसार में यों ही बिखरा पड़ा है। लेकिन याद रखो, व्यावहारिक स्तर पर प्राप्त ज्ञान ही सर्वोपरि है। ज्ञान तो अपार है। उसे कितना भी प्राप्त करो, कम ही है। वस्तुत: ज्ञान की कोई सीमा नहीं है।

९८४) अनोखा सभापति - बात उन दिनों की है, जब बापू अफ्रीका में सत्याग्रह कर रहे थे। उस दौरान उन्हें जरूरी काम से लंदन जाना पड़ा। लंदन में भारत के बहुत से नवयुवक पढ़ते थे। उन युवकों ने एक सभा करने का विचार किया। सभा का कार्यक्रम बड़ा ही सादा था- पहले भोज, फिर भाषण। और तो सब ठीक हो गया था, पर सभा के लिए युवकों को कोई सभापति नहीं मिला। आखिर में गांधी जी तैयार हो गए, लेकिन इस शर्त के साथ कि भोजन में मांस नहीं होगा। युवकों ने बात मान ली। सब जरूरी सामान खरीदे गए। सब अपने-अपने निर्धारित कार्यों में व्यस्त हो गए। किसी ने बिछावना संभाला तो किसी ने हाल की सजावट का काम किया। एक ने बरतन बासन ठीक ठाक किए, तो दूसरे ने चूल्हा संभाला। कुछ रोशनी-बत्ती के प्रबंध में लगे थे, तो कुछ पानी जमा कर रहे थे। कोई तरकारी काटने लगा, तो कोई पकवान

बनाने में जुट गया। उन्हीं के बीच एक दुबला-पतला युवक भी था। अपने आप उसने थालियां मांजने और फर्श को साफ करने का काम संभाल लिया था। कई घंटे बीते, पर वह अपने काम में मस्त था। सुबह से दोपहर हुई और फिर दोपहर बाद शाम भी आ गई। आखिर उस सभा के उप प्रधान वहां आए। सहसा उनकी दृष्टि उस दुबले-पतले युवक पर पड़ी। वे तो जैसे आंखें फाड़कर उसे देखते रह गए। उन्होंने दांतों तले अंगुली दबा ली और धीरे से कहा, गांधीजी। गांधीजी शब्द उच्चारित हुआ कि जैसे वह हॉल हिल उठा। सारे युवक दंग रह गए। उनका दिल भर आया। उन्होंने हाथ जोड़कर गांधीजी को काम करने से रोका। लेकिन वे उसी तरह काम में लगे रहे। उन्होंने खाना परोसा, थालियां लगाई, सबके साथ भोजन किया, कराया और फिर सभापति बनकर भाषण भी दिया। सचमुच वे अनोखे सभापति थे। आजकल के सभापतियों से बिल्कुल भिन्न।

९८५) जीवन का मूल्य - जापान के टोकियो शहर में एक व्यक्ति धन के अभाव में इतना दुखी हो गया कि वह आत्महत्या के बारे में सोचने लगा। इससे पहले कि वह कुछ गलत करता, एक मनमौजी व्यक्ति ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, क्या तुम जीवन के मूल्य को नहीं जानते हो? यह मानव जीवन क्या धन के अभाव में दुखी होकर आत्महत्या करने के लिए ही मिला है? क्या इससे तुमको मुक्ति मिल जाएगी? इससे अच्छा है हंसो और जीवन के रास्ते में आड़े आनेवाली सभी बाधाओं को पीछे धकेल दो। उस व्यक्ति ने मुड़कर उस मनमौजी व्यक्ति को देखा और सिसकियां भरकर रोने लगा। उसने उस मनमौजी व्यक्ति को अपने आत्महत्या करने के कारणों की सारी कथा एक ही सांस में कह सुनाई कि कैसे पिछले तीन दिनों से उसका परिवार भूख से छटपटा रहा है। उसकी दर्द भरी व्यथा सुनकर उस मनमौजी व्यक्ति की आंखों में भी आंसू भर आए और उसने प्रण किया कि आज से ही वह अपनी कमाई का अधिक से अधिक अंश दान में दिया करेगा। यह संकल्प करने के बाद उसने गुप्तदान की पेटी सड़क के बीचों-बीच लगवाकर उस पर लिख दिया कि, जिस व्यक्ति को सचमुच पैसों की आवश्यकता हो, वह इसमें से निकलवाकर नि:संकोच भाव से अपना काम चला सकता है और जो कोई जरूरतमंद ऐसा करेगा, उससे मुझे अत्यंत प्रसन्नता होगी। इस पर बहुत से जरूरतमंद व्यक्ति सोचते कि उपदेशक गरीबी के दर्शन की पुरजोर वकालत कर सकते हैं, मोटे ग्रंथ भी लिख सकते हैं। मगर सच्चे संवेदनशील तो वे हैं जो अपनी भावनाओं को परिणत कर सचमुच अभावग्रस्तों के आंसू पोंछते हैं और उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए कुछ सक्रिय पहल करते हैं। यह मनमौजी फक्कड़ मिजाजी व्यक्ति कोई और नहीं बल्कि जापान के विश्वविख्यात कवि इगुचि थे।

९८६) दान का मान- दानवीरों की चर्चा में एक बार कृष्ण पांडवों से बोले कि उन्होंने कर्ण जैसा दानवीर नहीं देखा और न ही सुना। पांडवों को यह बात पसंद नहीं आई। भीम ने पूछ ही लिया, कैसे? कृष्ण ने कहा कि समय आने पर बतलाऊंगा। बात आई गई हो गई। कुछ ही दिनों में सावन शुरू हो गया और वर्षा की झड़ी लग गई। उस समय एक याचक युधिष्ठिर के पास आया और बोला, महाराज। मैं आपके राज्य में रहनेवाला ब्राह्मण हूं। बिना हवन किए कुछ भी नहीं खाता-पीता। मेरे पास यज्ञ के लिए चंदन की लकड़ी नहीं है। आपके पास हो तो मुझ पर कृपा करें। अन्यथा मैं भूखा-प्यासा मर जाऊंगा। युधिष्ठिर ने तुरंत कर्मचारी को बुलवाया और लकड़ी देने को कहा। कोषागार में सूखी लकड़ी

नहीं थी। तब महाराज ने भीम व अर्जुन को चंदन की लकड़ी का प्रबंध करने का आदेश दिया, मगर सूखी लकड़ी नहीं मिली। ब्राह्मण को हताश देख कृष्ण ने कहा, मेरे साथ आइए। भगवान ने अर्जुन व भीम को भी इशारा किया तो वेश बदलकर वे भी ब्राह्मण के संग हो लिए। कृष्ण सबको लेकर कर्ण के महल में गए। ब्राह्मण ने जाकर लकड़ी की अपनी वही मांग दोहराई। कर्ण ने भी अपने भंडार के मुखिया को बुलवा कर सूखी लकड़ी देने के लिए कहा, पर वहां भी वही उत्तर प्राप्त हुआ। ब्राह्मण निराश हो गया। तभी कर्ण ने कहा, आप निराश न हों उसने अपने महल के खिड़की-दरवाजों में लगी चंदन की लकड़ी काट-काट कर ढेर लगा दी, फिर ब्राह्मण से कहा, आपको जितनी लकड़ी चाहिए, कृपया ले जाइए। ब्राह्मण लकड़ी लेकर कर्ण को आशीर्वाद देता हुआ लौट गया। पांडव व श्रीकृष्ण भी लौट आए। वापस आकर भगवान ने कहा, साधारण अवस्था में दान देना कोई विशेषता नहीं है, असाधारण परिस्थिति में किसी के लिए अपने सर्वस्व को त्याग देने का ही नाम दान है।

९८७) इजाजत की अहमियत- औषधियों की खोजबीन में राजवैद्य चरक मुनि जंगलों में घूम रहे थे। उन्हें जिस औषधि की तलाशी थी, वह जंगल में कहीं भी नजर नहीं आ रही थी। तभी उनकी दृष्टि एक खेत में उगे सुंदर पुष्प पर पड़ी। उन्होंने सहस्त्रों पुष्पों के गुणदोषों की जांच की थी, परंतु यह तो कोई नए प्रकार का ही पुष्प था। उनका मन पुष्प लेने को उत्सुक था, किंतु पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। उनको सकुचाते देख पास खड़े एक शिष्य ने पूछा, गुरुदेव, क्या मैं फूल ले आऊं? वत्स। फूल तो मुझे चाहिए, लेकिन खेत का मालिक कहीं दिख नहीं रहा। उसकी इजाजत के बगैर फूल कैसे तोड़ा जाए? गुरुदेव। कोई वस्तु किसी के काम की हो तो उसकी बिना अनुमति के ले लेना चोरी हो सकती है, परंतु यह तो पुष्प है। आज यह खिला हुआ है एकाध दिन में मुरझा जाएगा। इसे तोड़ लेने में क्या हर्ज हो सकता है? और फिर। गुरु चरक ने बीच में ही पूछा, फिर क्या? शिष्य ने कहा, फिर गुरुवर, आपको तो राजाज्ञा प्राप्त है कि आप कहीं से कोई भी वन-संपत्ति इच्छानुसार बिना किसी की अनुमति के भी ले सकते हैं। गुरु चरक ने शिष्य की ओर देखते हुए कहा, राजाज्ञा और नैतिकता में अंतर है वत्स। यदि हम अपने आश्रितों की संपत्ति को स्वच्छंदता से व्यवहार में लाएंगे तो फिर लोगों में आदर्श कैसे जाग्रत कर पाएंगे? उन्हें नैतिक आचरण की प्रेरणा कैसे दे सकेंगे? इतना कह चरक चल पड़े खेत मालिक के घर की ओर। तीन कोस पैदल चल कर वह किसान के घर पहुंचे। उसे पुष्प के बारे में बताया तो उसने खुशी-खुशी इजाजत दे दी। इसके बाद चरक अपने शिष्यों के साथ दोबारा खेत पर आए और पुष्प तोड़कर अपने साथ ले गए। बाद में उसके गुण-दोषों की जांच कर उन्होंने जो औषधि बनाई वह बीमार जनों के कष्ट दूर करने में कारगर साबित हुई।

९८८) महान योद्धा अश्वपति - अश्वपति ने राज्य विस्तार तो नहीं किया पर समर्थ नागरिक तैयार करने के लिए जो भी उपाय संभव थे, उसने किए। उनके राज्य में सभी स्वस्थ, वीर और बहादुर नागरिक थे। यही कारण था कि उस छोटे से राज्य से भी कोई टक्कर लेने की हिम्मत नहीं कर पाता था। प्रतापी सम्राट पोरस से युद्ध करने के बाद सिकंदर की सेना ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सिकंदर ने अश्वपति की वीरता की गाथाएं सुन रखीं थी। उसके सिपाही भी हिम्मत हार चुके थे, इसीलिए उसने छल से रात में अश्वपति पर आक्रमण कर दिया। महाराज अश्वपति की वीरता की गाथाएं सुन रखीं थी। महाराज अश्वपति बंदी बना लिए गए। सिकंदर ने अश्वपति के शौर्य की परीक्षा लेने के इरादे से उसे बंधनमुक्त

कर दिया और संधि कर ली। इस खुशी में दोनों नरेशों का एक सम्मिलित दरबार आयोजित किया गया। अश्वपति अपने खूंखार लड़ाके कुत्तों के लिए विश्व-विख्यात थे। वह अपने पास हमेशा चार कुत्ते रखते थे। जब वह दरबार में पहुंचे तब कुत्ते भी उनके साथ थे। सिकंदर ने उनके पहुंचते ही व्यंग्य किया- महाराज ये भारतीय कुत्ते हैं? अश्वपति ने तुरंत उत्तर दिया- हां, ये छिपकर आक्रमण नहीं करते, शेरों से भी मैदान में लड़ते हैं। सिकंदर ने शेर और कुत्तों की लड़ाई के आयोजन का निर्देश दिया। शेर और दो कुत्तों की लड़ाई छिड़ गई। शेर ने कुत्तों को लहूलुहान कर दिया। शेष दो कुत्ते भी छोड़ दिए गए। कुत्तों ने ऐसे दांत चुभाये कि शेर वहीं गिर पड़ा। अश्वपति ने ललकार कर कहा- आपकी सेना में कोई वीर है, जो कुत्ते को शेर से अलग कर दे? कई योद्धा आए पर वे कुत्तों के दांत न छुड़ा सके। अश्वपति के अपने अंगरक्षक को संकेत दिया। उसके एक ही झटके में शेर की हड्डी और मांस सहित कुत्ता भी खिंच गया। अश्वपति कभी झुके नहीं। उन्होंने महान योद्धा सिकंदर तक को झुकने पर मजबूर कर दिया।

९८९) संत की दृष्टि - भावनगर में एक महान संत थे, बाबा मस्तराम। वह त्याग और तपस्या की साक्षात मूर्ति थे। बाबा भगवान की याद में सदा मस्त रहते थे, जिससे उनके भक्त उन्हें मस्तराम कहा करते थे। वह श्रद्धालुओं को दूसरों की सेवा करने और जरूरतमंदों की सहायता करने की प्रेरणा देते रहते थे। वह अपने शिष्यों को अक्सर बताते थे, परोपकार और सेवा से बड़ा कोई धर्म नहीं। एक दिन की बात है। सर्दी का मौसम था। भीषण ठंड पड़ रही थी। बाबा मस्तराम अपने आश्रम के बाहर एक खुली जगह पर सोए हुए थे। उनके शिष्य आसपास बैठे थे। भावनगर के राजा घोड़ागाड़ी में उधर से गुजर रहे थे। राजा की नजर उनकी ओर पड़ी। राजा ने देखा कि बाबा के बदन पर गरम कपड़े नहीं हैं। इस सर्दी में बाबा को कितनी तकलीफ हो रही होगी, यह सोच कर राजा ने अपनी कीमती शॉल उन्हें ओढ़ा दी और चुपचाप आगे बढ़ गए। कुछ देर बाद बाबा की आंखें खुलीं तो उन्होंने देखा कि उनके शरीर पर एक शॉल है। शिष्यों ने बताया कि राजा खुद उन्हें शॉल ओढ़ा गए हैं तो बोले, साधु को शॉल से क्या काम? मेरा शरीर तो ठंड को सहन करने की आदी हो चुका है। यह शॉल किसी को ठंड से बचाने में काम आना चाहिए। बाबा वहां से उठे और अपने भक्तों के साथ आगे चल दिए। वह अभी कुछ ही दूर चले थे कि उन्होंने एक कुत्ते को ठंड से ठिठुरता-कांपता देखा। वह कुत्ते के नजदीक गए और इतमीनान से वह शॉल उसके पीठ और पेट वाले हिस्से में लपेट दी। इसके बाद वह बेफिक्र भाव से आगे बढ़ गए। एक भक्त से नहीं रहा गया। उसने पूछा, बाबा। राजा की दी हुई यह कीमती शॉल आपने कुत्ते को ओढ़ा दी। इस पर बाबा हंसे और बोले, उसकी नजर में कोई अंतर नहीं है। सारे जीव उसी की संतान हैं। इसलिए दुख जिसका भी दूर कर सको, बेहिचक करो।

९९०) शरण का शास्त्र - महर्षि उतथ्य अपने आश्रम में वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए सामने स्थित हवनकुंड में घी की आहुति दे रहे थे कि एक हिरन भागता हुआ वहां आया और उनकी कुटिया में जा घुसा। थोड़ी ही देर में छुपे हुए हिरन को खोजते हुए एक शेर भी वहां आया और उसने महर्षि से पूछा, गुरुदेव, क्या आपने मेरे शिकार को यहां से जाते हुए देखा है? महर्षि उतथ्य बड़े ही असमंजस में पड़ गए। वे सत्यवादी थे तथा उन्होंने अपने जीवन में किसी से असत्य वचन कभी न कहे थे। लेकिन आज की घटना के पश्चात उनके सामने एक विकट समस्या उपस्थित हो गई। असत्य बोलना उनकी दृष्टि में महान अपराध था और सत्य बोलने से शरण में आए एक निर्दोष प्राणी को जानबूझकर उसके भक्षक को सौंपने से

उनके द्वारा महापातकी कर्म होनेवाला था। उनकी समझ में ही न आ रहा था कि उसे क्या जवाब दें। उस शेर ने पुन: प्रश्न किया, गुरुवर, वह हिरन किस दिशा की ओर गया है, आप मुझे यह दिखा दें तो मैं आपके प्रति कृतज्ञ रहूंगा। महर्षि ने कहा, हे वनराज, मैं तुझे कैसे और किस तरह दिखाऊं? क्योंकि देखने का कार्य आंखें करती हैं, जबकि बोलने का कार्य मुख द्वारा होता है। आंखें बोल नहीं सकतीं और मुख देख नहीं सकता। तू बोलनेवाली इंद्रिय से प्रश्न कर रहा है कि क्या उसने तेरा शिकार देखा है? जो देख नहीं सकता, वह इसका क्या जवाब दे सकता है? इसी तरह जिसने देखा है वह भला बोल कैसे सकता है? ऐसी परिस्थिति में मैं तेरे प्रश्न का जवाब देने में असमर्थ हूं। उस शेर को शिकार का सही-सही ठौर ठिकाना न मालूम होने से वह तो लौट गया, किंतु महर्षि के मुख से निकले शब्दों से एक नए शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका नाम है तर्क शास्त्र। आज भी मानवता की भलाई के लिए दुनिया भर में लोग इसी शास्त्र से आगे का रास्ता तलाश करते हैं।

९९१) कांतिभाई की धोती - एक बार गांधीजी के पौत्र कांतिभाई सेवाग्राम में आश्रमवासी होने आए। कांतिभाई ने गांधीजी से निवेदन किया, बापू, दो धोतियों से काम नहीं चलेगा, कम से कम एक धोती तो मुझे और दीं जाए। गांधीजी ने कहा, दो धोतियों में तो मेरा और सभी आश्रमवासियों का अच्छी तरह काम चल जाता है, तुम्हें तीसरी धोती की जरूरत क्यों? यहां हम सब काफी सादगी और मितव्ययता से रहते हैं। कांतिभाई ने गांधीजी को आश्वस्त करना चाहा कि प्रवास आदि के लिए एक धोती साथ में अतिरिक्त रखी जाए, तो ठीक रहेगा। परंतु गांधीजी को यह तर्क समझ में नहीं आया और उन्होंने कांति भाई से दो टूक कह दिया कि यह देश का काम है। जनता को पाई-पाई का हिसाब देना होता है। हम स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे हैं तो उसका अर्थ यह नहीं कि हम उस धन को चाहे जैसे खर्च करें। यह सोचना गलत होगा कि हमें कोई पूछने वाला नहीं। हमें जनता को जवाब देना चाहिए। और मैं तो कहता हूं कि सुविधा का ख्याल करनेवालों को सेवाग्राम से कोई संबंध रखना ही नहीं चाहिए। यहां रहना है तो संयम से ही रहना होगा। गांधीजी का यह व्यवहार देखकर वहां मौजूद एक पत्रकार ने गांधीजी से पूछा, बापू एक धोती की ही तो बात है। इस छोटी सी बात पर इतना जोर क्यों दे रहे हैं? गांधीजी ने तब उन सज्जन को कहा, इसे छोटी सी बात मत समझो। यह संस्कारों की बात है। संग्रह की भावना इसी से उपजती है और समाज में विषमता पैदा करती है। हम कहते हैं कि हमारा काम गरीबों की सेवा करना है तो उसका अर्थ है कि जनता से हम अपनी जरूरत के लिए अल्प से अल्प प्राप्त करें और बदले में अधिक से अधिक दें, तब तो हुई सेवा। इतना कहकर गांधीजी चुप हो गए। कांति भाई को सेवाग्राम में तीसरी धोती नहीं मिली, पर संदेश उन तक पहुंच चुका था।

९९२) ज्ञान सागर की बूंदें - एक बार आदि शंकराचार्य समुद्र के किनारे बैठे थे। उनके साथ उनका शिष्य समुदाय भी बैठा था। शंकराचार्य एक टक समुद्र के अनंत विस्तार को निहार रहे थे। शिष्य भी आती-जाती लहरों को देख आनंदित हो रहे थे। तभी चाटुकार शिष्य ने शंकराचार्य से कहा, गुरुदेव। आपके असीम ज्ञान-सागर को देखकर मैं मंत्रमुग्ध हूं, आप तो सर्वज्ञ हैं। इतनी छोटी उम्र में इतना अगाध ज्ञान आपने कैसे प्राप्त कर लिया, यह सोचकर ही मैं विस्मय में पड़ जाता हूं। शंकराचार्य अपने शिष्य की बात सुनकर चौंक पड़े। समुद्र की ओर से अपना ध्यान हटाकर

उन्होंने शिष्य पर नजरें केंद्रित कीं। अन्य शिष्यों की भी दिलचस्पी इस संवाद में जाग गई थी। सब शंकराचार्य को देख रहे थे। शंकराचार्य ने उस शिष्य से पूछा, तुम्हें किसने बताया कि मैं ज्ञान का सागर हूं या मेरे पास अथाह ज्ञान है? इस पर वह थोड़ा झेंपते हुए बोला, गुरुवर यह किसी को बताने की क्या जरूरत है, आपके सानिध्य में रहते हुए हमें इतना अंदाजा तो हो ही गया है। शंकराचार्य ने वहीं पड़ी एक पतली सी टहनी उठाई और उसे कुछ समय तक समुद्र में डुबोए रखा। फिर उसे बाहर निकाल कर पूछने लगे, प्रिय शिष्यों। बताओ इसने कितना पानी ग्रहण किया है? कुछ शिष्य कहने लगे- कुछ नहीं, कुछ ने कहा- मात्र कुछ बूंदें ग्रहण की हैं। शंकराचार्य ने कहा, इसी प्रकार मैं भी ज्ञान सागर में डुबकी लगाता हूं किंतु जब बाहर निकलता हूं तो लगता है कि मैं कितना कम जानता हूं। मेरा ज्ञान कितना अल्प है। मैं लगातार ज्ञानार्जन करने की कोशिश करता रहता हूं पर ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। अल्पज्ञ ही स्वयं को सर्वज्ञ समझने की गलती करता है। ज्ञान एक ऐसा सागर है जिसमें जितनी डुबकियां लगाओगे, चिंतन, मनन करेंगे, रत्न मिलते रहेंगे। इसलिए ज्ञान के मामले में किसी को सर्वज्ञ समझने की भूल कभी न करें।

९९३) सजा की सीख - चीन में एक विचारक की ख्याति सुनकर वहां के राजा ने उसे अपने राज्य का न्यायाधीश बना दिया। न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठकर विचारक ने सदा सही फैसले दिए। उस राज्य की राजधानी में एक सेठजी रहते थे। उनके पास अपार धन-संपत्ति थी, जो गरीबों को शोषण कर कमाई गई थी। अपनी अकूत संपदा की रक्षार्थ सेठजी ने एक चाक-चौबंद सेना भी रखी थी, मगर एक दिन उनके घर में चोरी हो गई। चारों ओर हड़कंप मच गया। अंतत: चोर पकड़ लिया गया। चोर को जब न्यायाधीश के समक्ष पेश किया गया तो उसने अपनी चोरी कबूल कर ली। यही नहीं, उसने पहले की गई चोरियां भी स्वीकार कर लीं। अंत में न्यायाधीश ने उसे एक साल की सजा सुनाई। चोर को सजा सुनाने के बाद न्यायाधीश ने सेठजी को बुलाया। न्यायाधीश जानते थे कि सेठजी की संपत्ति उनकी आय के ज्ञात स्रोत से अधिक थी और वह निर्धन व मजबूर लोगों का शोषण कर कमाई गई थी। मगर वह यह सब सेठजी के मुंह से सुनना चाहते थे। वह बार बार आय का स्रोत पूछ रहे थे, लेकिन सेठजी का हर बार एक ही जवाब रहता, यह आय मेरे उद्योग व्यापार से ही प्राप्त हुई है। सेठजी ने शोषण का आरोप अंत तक स्वीकार नहीं किया। तब न्यायाधीश ने उन्हें दो साल कैद की सजा सुनाई। सेठजी बोले यह कैसा न्याय है कि चोर को एक साल की और मुझे दो साल की सजा दी गई? न्यायाधीश ने जवाब दिया- चोर ने तो चोरी कबूल कर ली, इसलिए उसके हृदय परिवर्तन की संभावना है। मगर आपने तो अपनी गंभीर भूल से ही इंकार कर दिया है। आपने तो अपने सुधार के सभी मार्ग बंद कर लिए हैं। आप नहीं सुधरेंगे तो समाज की प्रगति भी रुक जाएगी। अब सेठजी समझ चुके थे वास्तव में समाज की प्रगति में हर व्यक्ति का अपना अहम योगदान होता है।

९९४) संगीतकार का प्रतिशोध - बैजनाथ के पिता जब मृत्यु शैय्या पर थे तो उन्होंने बड़ी पीड़ा भरे स्वर में पुत्र से कहा, बेटा, मैं अपनी संगीत कला के द्वारा जीते जी अपने दुश्मन को हरा न सका, इस बात की मेरे मन में बड़ी भारी पीड़ा है। बैजनाथ ने पिता के समक्ष भावुक स्वर में प्रण किया, मैं आपके दुश्मन से बदला लूंगा, पिताजी। इसके बाद बैजनाथ के पिता ने सदा के लिए आंखें मूंद लीं। उसके मन में विचार उठा कि पिता के शत्रु से बदला लेने का सबसे अच्छा तरीका

यह है कि संगीत के क्षेत्र में उनसे भी बढ़कर काम किया जाए। उसने मन ही मन संगीत की साधना करने की ठानी। कुछ ही समय में बैजनाथ संगीत में ऐसा खोया कि लोग उसे बावरा कहने लगे। उसकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई। एक दिन वहां के राजा उसकी ख्याति और संगीत कला का जादू देखने सुनने स्वयं अपने राज दरबार के मशहूर गायक तानसेन के साथ बैजनाथ के पास पधारे। बैजनाथ के संगीत को सुन राजा वाह-वाह कर उठे और उन्होंने बैजनाथ को राजमहल चलने को कहा। पर वह जाने को तैयार नहीं हुआ। उसने कहा, ईश्वर के मुकाबले किसी व्यक्ति विशेष के दरबार में गाना संगीत और कला के लिए मुझे अनुचित लगता है। राजा के साथ आया मशहूर संगीतकार और गायक भी नतमस्तक हो गया। बैजनाथ के समक्ष उसे अपना अस्तित्व एवं अपनी साधना अत्यधिक तुच्छ अनुभव हुई। बैजनाथ अपने पिता की इच्छा पूरी कर प्रतिशोध ले चुका था। राजा के साथ आया मशहूर संगीतज्ञ ही बैजनाथ के पिता का संगीत क्षेत्र का शत्रु था। वह गायक और राजा कोई और नहीं संगीत सम्राट तानसेन और बादशाह अकबर ही थे। यह बैजनाथ ही आगे चलकर बैजू बावरा के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका मानना था कि शत्रु को हथियार से नहीं, कर्मों की बड़ी रेखा खींचकर ही पराजित किया जाना चाहिए।

९९५) अध्ययन से उन्नति - घटना १९वीं सदी की है। स्कॉटलैंड के एक निर्धन परिवार में एक बालक ने जन्म लिया। उसका पिता एक छोटा सा खोमचा लेकर फेरी लगाया करता था और मां घर पर केक बना कर सड़क के नुक्कड़ पर बेचा करती थीं। होश संभालने पर बालक को अहसास हो गया कि इस गरीबी के वातावरण में यहां रहकर विकास नहीं हो सकता। कुछ दिनों में अपने माहौल से वह इतना ऊब गया कि घरवालों को कुछ बताए बिना अमेरिका चला गया। वहां उसे एक इस्पात कंपनी में चपरासी का पद मिल गया। काम ज्यादा नहीं था। जब घंटी बजती वह मैनेजिंग डाइरेक्टर के सामने हाजिर हो जाता और काम पूरा करके केबिन के बाहर रखे स्टूल पर बैठ जाता। उसे बेकार समय गुजारना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए मैनेजिंग डाइरेक्टर से उसने यह इजाजत ली कि खाली समय में वह उनकी अलमारी से किताबें निकाल कर पढ़ेगा और फिर उसे सुरक्षित अलमारी में रख देगा। अब वह खाली समय में पुस्तकें पढ़ा करता। एक दिन डायरेक्टर मीटिंग में डाइरेक्टरों में किसी बात पर विवाद होने लगा। वे किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पा रहे थे। वह चपरासी सभी चर्चा सुन रहा था। वह अपने स्थान से उठा और अलमारी से एक पुस्तक निकाल कर उस पृष्ठ को खोलकर उनकी मेज पर रख दिया जिसमें उस प्रश्न का उत्तर था। एक स्वर से सबने उसकी विद्वत्ता को सराहा। उस चपरासी ने उद्देश्यपूर्ण और योजनाबद्ध ढंग से स्वाध्याय करके दिखा दिया कि अध्ययन के बल पर व्यक्ति बड़ी से बड़ी योग्यता हासिल कर सकता है। प्रगति के मामले में वह यहीं तक नहीं रुका रहा। परिश्रम, लगन और निरंतर स्वाध्याय से उसने अच्छा खासा धन भी अर्जित किया। इतिहास में उसे चैरिटी के लिए मशहूर अमेरिकी करोड़पति एंड्रयू कार्नेगी के रूप में जाना जाता है।

९९६) तीर्थ से बड़ा पुण्य - सन १८४६-४७ में अवध के जिले गोंडा और बहराइच का पट्टा राजा दर्शन सिंह के पुत्र राजा रघुवर सिंह के पास था। रघुवर सिंह को अवध के इतिहास के क्रूरतम लोगों में गिना जा सकता है। उसकी फौज रोजाना किसानों या व्यापारियों को पकड़ लाती और मनपसंद नजराना मांगती। जो भी नजराने में आनाकानी करता, उसकी दाढ़ी में गीला गन पाउडर लगा दिया जाता। जब गन पाउडर सूख जाता तो दाढ़ी में आग लगा दी जाती। एक बार

रघुवर सिंह अपनी फौज लेकर बोंदी रियासत पहुंच गया। उसने रियासत का बाजार लूट लिया और बड़ी संख्या में व्यापारियों-दुकानदारों को बंदी बना लिया। इसके बाद उसने रियासत के तमाम कस्बों में लूटपाट की और पंद्रह सौ पुरुषों के साथ तकरीबन पांच सौ औरतें-बच्चे कैद कर लिए। सभी को बसंतपुर लााया गया, जहां तय किया गया कि इन्हें तब तक यातनाएं दी जाएं, जब तक यह उनका मनपसंद काम करने को तैयार न हो जाएं। इसी दौरान दूसरे जिले का एक सिपाही आत्माराम अपने परिवार के साथ तीर्थयात्रा पर निकला। उसने गया में चढ़ावे और पूजा के लिए काफी धन जोड़ रखा था। जब वह बसंतपुर से गुजरा तो उसे उन कैदियों के बारे में पता चला। उसने और उसके परिवार ने गया में पूजा के लिए जितनी रकम जोड़ी थी, सब आततताइयों को दे दी और एक निश्चित संख्या में औरतों और बच्चों को आजाद करा लिया। आत्माराम सबको लेकर वहीं से वापस लौट पड़ा। किसी ने पूछा कि तुम्हारी तीर्थयात्रा तो अधूरी रह गई। गया जाकर जिन पूर्वजों को पिंड देनेवाले थे, उनका क्या? आत्माराम ने निश्चित भाव से कहा, इतने बेकसूर लोगों को कैद की यातनाओं से मुक्त कराने का जो पुण्य मेरे नाम जुड़ा है, भगवान उसी से मेरी अधूरी तीर्थयात्रा का दोष माफ करेंगे और उसी से हमारे पूर्वजों का उद्धार भी करेंगे।

९९७) जब जागो तभी सबेरा - संत तिरुवल्लुवर से प्रवचन के बाद एक सेठ ने निराश होकर कहा, गुरुदेव मैंने बड़ी मेहनत से पाई-पाई जोड़कर धन इकट्ठा किया ताकि मेरी सात पुश्त बैठे-बैठे खा सकें। उस धन को मेरे इकलौते पुत्र ने बड़ी बेदर्दी से कुव्यसनों में बर्बाद करना शुरू कर दिया है। पता नहीं उसको भविष्य में कैसे दिन देखने पड़ेंगे, मैं इसी चिंता में घुला जा रहा हूं। संत ने मुस्कराकर सेठ से पूछा, तुम्हारे पिताजी ने तुम्हारे लिए कितना धन छोड़ा था? सेठ ने कहा, वह तो बहुत गरीब थे। उन्होंने मुझे अच्छे संस्कार दिए, लेकिन धन के नाम पर कुछ भी नहीं दिया। जब तक उनके साथ रहा वह मुझे सदाचार और सद्गुणों की सीख ही देते रहे। संत ने कहा, तुम्हारे पिता ने तुम्हें सिर्फ सद्गुण सिखाए, कोई धन नहीं दिया, फिर भी तुम धनवान बन गए। लेकिन तुम बेटे के लिए अकूत धन जोड़ने के बावजूद सोच रहे हो कि तुम्हारा बेटा तुम्हारे बाद जीवन कैसे बिताएगा? इसका मतलब ही यह है कि तुमने उसको अच्छे संस्कार, अच्छे गुण नहीं दिए। तुम यह समझ कर धन कमाने में लगे रहे कि पुत्र के लिए दौलत के भंडार भर देना ही मेरा दायित्व है। जबकि यह माता-पिता का संतान के प्रति पहला कर्त्तव्य होता है। बाकी तो संतान सब अपने बलबूते हासिल कर ही लेती है। संत की बात सुन सेठ को अहसास हुआ कि उसने अपने पुत्र को केवल धनवान ही बनाना चाहा। पुण्यवान, संस्कारवान बनाने की तरफ बिल्कुल ध्यान ही नहीं दिया। सेठ पश्चाताप के स्वर में बोला, गुरुदेव, आप सही कह रहे हैं। मुझसे बड़ी भूल हुई। क्या अब कुछ नहीं हो सकता? संत बोले, जिंदगी में अच्छी शुरुआत के लिए कभी देर नहीं होती। जब जागो तभी सबेरा। तुम अपने बच्चे के सद्गुणों पर ध्यान दो बाकी सब भगवान पर छोड़ दो। अच्छे इरादों से किया गया प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जाता।

९९८) दूसरों के लिए जीनेवाला मनुष्य ही महान होता है - एक गांव में एक वृद्ध रहता था। उसकी उम्र अस्सी पार कर चुकी थी और वह कृशकाय था। उसका गांव हरे-भरे खेतों से भरपूर था। वह प्रतिदिन गांव से पांच मील दूर उस उजाड़ वन में जाता, जो उसके गांव को पास वाले गांव से जोड़ता था और दोनों गांवों के लोग इस मार्ग से आते-

जाते थे। इस वन के अधिकांश पेड़-पौधे सूख चुके थे। वृद्ध वन में बने एक नाले से पानी ला-लाकर उन पेड़ा पौधों को रोज सींचता।

एक दिन जब नाले का पानी सूख गया, तो वह कुछ दूर स्थित एक किसान के खेत पर गया। किसान खेत पर बनी झोपड़ी में बैठा था। उसने वृद्ध से पूछा- क्या चाहिए बाबा? वृद्ध बोला- मुझे चार-पांच घड़े पानी चाहिए। वन के सूखे पेड़-पौधों को सींचना है। नाले का पानी सूख गया है, यदि तुम थोड़े दिन मुझे अपने कुओं से पानी दे दोगे, तो ये पेड़-पौधे पनप जाएंगे। किसान ने हैरानी से पूछा- बाबा। तुम गांव से पांच मील यहां आकर क्यों पेड़-पौधे सींच रहे हो? वृद्ध ने कहा- मेरा एक ही बेटा था, जो जवानी में किसी बीमारी से मर गया। मैं ठहरा गरीब। उसकी याद में धर्मशाला, तालाब, बावड़ी तो बना नहीं सकता, इसलिए पेड़-पौधों को इस आस में सींचता हूं कि जब ये हरे-भरे हो जाएंगे, तो इनकी छाया में मनुष्य, पशु-पक्षी विश्राम लेंगे और फल के रूप में उन्हें कुछ आहार मिलेगा। जब तक मेरे शरीर में ताकत है, तब तक तो यह काम करूंगा। उस कृशकाय वृद्ध की कल्याणकारी भावना देख किसान उसके प्रति नतमस्तक हो गया।

किसान ने भी उस दिन से उसके कार्य में हाथ बंटाना शुरू कर दिया। सार यह है कि अपने लिए तो सभी जीते हैं, दूसरों के लिए जीनेवाला मनुष्य सच्चे अर्थों में महान होता है।

९९९) स्वर्ग नरक - शास्त्रों में निपुण, प्रसिद्ध ज्ञानी एवं प्रख्यात संत देवाचार्य के शिष्य का नाम महेन्द्रनाथ था। एक शाम महेन्द्रनाथ अपने साथियों के साथ उद्यान में टहल रहे थे और आपस में वे किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। चर्चा का विषय था- स्वर्ग-नरक। किसी एक साथी ने महेन्द्रनाथ से पूछा- क्यों मित्र, क्या मैं स्वर्ग जाऊंगा।

महेन्द्रनाथ ने उत्तर देते हुए कहा- जब मैं जाएगा, तभी आप स्वर्ग जाओगे। उसके मित्र ने सोचा कि महेन्द्रनाथ को अभिमान हो गया है और सारे मित्रों ने मिलकर महेन्द्रनाथ की शिकायत अपने गुरु देवाचार्य से कर दी।

गुरुदेव को पता था कि उनका शिष्य महेन्द्रनाथ न केवल निरहंकारी है बल्कि अल्पशब्दों में गंभीर ज्ञान की बातें बोलनेवाला है। उन्होंने महेन्द्रनाथ को बुलाकर इस घटना के बारे में पूछा और उसने अपना सिर हिलाकर इस बात की पुष्टि की। अन्य शिष्यों में इस घटना को देखने के बाद कानाफूसी शुरू हो गई। देवाचार्य ने मुस्कराते हुए दोबारा वही प्रश्न पूछा- अच्छा ये बताओ महेन्द्रनाथ, क्या तुम स्वर्ग जाओगे? महेन्द्रनाथ ने कहा- गुरुदेव। जब मैं जाएगा, तभी तो मैं स्वर्ग जा पाऊंगा।

देवाचार्य शिष्यों को समझाते हुए बोले- शिष्यों, इनके कहने का मतलब है जब मैं जाएगा यानि जब अहंकार जाएगा, तभी तो हम स्वर्ग के अधिकारी बन पाएंगे। जब-जब आपके मन में ये बातें आएंगी कि मैंने ऐसा किया, मैंने इतने पुण्य किए, मैंने सब किया। उस स्थिति में स्वर्ग के बारे में सोचना भी गलत है।

१०००) विद्वान की सूझबूझ - एक राजा को शास्त्रार्थ करवाने का बहुत शौक था। वह उच्च कोटि के विद्वानों को अपने दरबार में आमंत्रित करता और उनके बीच शास्त्रार्थ करवाता। जो विद्वान उसमें विजय हासिल करता उसे राजा भारी-भरकम उपहार देता। उसकी इस रुचि को जानकर देश विदेश से उसके दरबार में विद्वानों का तांता लगा रहता और इस प्रकार राजा की बौद्धिक भूख शांत होती। एक बार किसी आध्यात्मिक विषय को लेकर राजा के दरबार में शास्त्रार्थ

हुआ। विषय जटिल था किंतु विद्वान और पंडित भी कब हार मानेवाले थे। जोरदार बहस हुई और घंटों चली।

अंतत: एक युवा विद्वान ने बाजी मार ली। राजा ने प्रसन्न होकर उसे सोने के सिक्कों से भरे दो थैले इनाम में दिए। युवा विद्वान अपना इनाम लेकर जब जंगल के रास्ते अपने घर जा रहा था तो एक सिक्का एक थेले से गिर गया। वह उसे खोजने लगा। तभी संयोग से राजा वहां से गुजरा। युवा विद्वान को एक सिक्के के लिए परेशान देखकर राजा ने उसे लोभी समझा और नाराज होकर उससे स्वर्ण के सिक्कों से भरे थैले वापस करने को कहा। चतुर विद्वान अब क्या बताता कि उसके लिए एक सिक्का भी कितना महत्वपूर्ण है। तभी उसे अपने गुरु की वह बात याद आई कि संकट के समय धैर्य खोए बगैर अपनी विवेकबुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। उसने राजा से कहा, महाराज, प्रश्न एक या दो सिक्के का नहीं है। शास्त्रों में कहा गया है कि राजा का उपहार पवित्र होता है। उसका सम्मान करना चाहिए। इसलिए मैं वह सिक्का खोज रहा हूं। सुनते ही राजा का क्रोध शांत हो गया। उसने प्रसन्न होकर उसे स्वर्ण मुद्राओं की एक और थैली दे दी।

१००१) घंटी की कीमत - रामदास एक ग्वाले का बेटा था। रोजा सुबह वह अपनी गायों को चराने जंगल में ले जाता। हर गाय के गले में एक एक घंटी बँधी थी। जो गाय सबसे अधिक सुंदर थी उसके गले में घंटी भी अधिक कीमती बँधी थी। एक दिन एक अजनबी जंगल से गुजर रहा था। वह उस गाय को देखकर रामदास के पास आया, यह घंटी बड़ी प्यारी है। क्या कीमत है इसकी? बीस रुपये - रामदास ने उत्तर दिया।

बस, सिर्फ बीस रुपये। मैं तुम्हें इस घंटी के चालीस रुपये दे सकता हूं।

सुनकर रामदास प्रसन्न हो उठा। झट से उसने घंटी उतारकर उस अजनबी के हाथ में थमा दी और पैसे अपनी जेब में रख लिए। अब गाय के गले में कोई घंटी नहीं थी। घंटी की टुनक से उसे अन्दाजा हो जाया करता था। अब इसका अन्दाजा लगाना रामदास के लिए मुश्किल हो गया कि गाय इस वक्त कहाँ चर रही है। जब चरते चरते गाय दूर निकल गई तो अजनबी को मौका मिल गया। वह गाय को अपने साथ लेकर चल पड़ा। रामदास ने देखा कि गाय तो कहीं नहीं दिख रही है। वह रोता हुआ घर पहुँचा और सारी घटना अपने पिता को सुनाई। उसने कहा- मुझे तनिक भी अनुमान नहीं था कि वह अजनबी मुझे घंटी के इतने अच्छे पैसे देकर ठग ले जाएगा।

पिता ने कहा- ठगी का सुख बड़ा खतरनाक होता है। पहले वह हमें प्रसन्नता देता है, फिर दु:ख। अत: हमें पहले ही से उसका सुख नहीं उठाना चाहिए। लालच से कभी सुख नहीं मिलता।

१००२) सज्जनता और शालीनता - एक राजा ने अपने राजकुमार को किसी दूरदर्शी मनीषी के आश्रम में सुयोग्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा। उसे भर्ती कर लिया गया और पढ़ाई चल पड़ी। एक दिन मनीषी ने राजकुमार से पूछा- तुम क्या बनना चाहते हो यह तो बताओ? तब तुम्हारी शिक्षा का क्रम ठीक से बनेगा।

राजकुमार ने उत्तर दिया- वीर योद्धा। मनीषी ने उसे समझाया- यह दोनों शब्द तो एक जैसे हैं, पर इनमें अन्तर बहुत है। योद्धा बनना है तो शस्त्र कला का अभ्यास करो और घुड़सवारी सीखो, किन्तु यदि वीर बनना हो तो नम्र बनो और सबसे मित्रत्व व्यवहार करने की आदत डालो। सबसे मित्रता करने की बात राजकुमार को जँची नहीं और वह असन्तुष्ट होकर अपने घर वापस चला गया। पिता ने लौटने का कारण पूछा, तो उसने मन की बात बता दी। भला सबके साथ मित्रता

बरतना भी कोई नीति है?

राजा चुप हो गया, पर जानता था कि उससे जो कहा गया है सो सच है। कुछ दिन बाद राजा अपने लड़के को साथ लेकर घने जंगलों में वन-विहार के लिए गया। चलते-चलते शाम हो गई। राजा को ठोकर लगी और वह गिर पड़ा। उठा तो देखा कि उसकी अँगूठी में जड़ा कीमती हीरा निकलकर पथरीली रेत में गिरकर गुम हो गया है। हीरा बहुत कीमती था, सो राजा को बहुत चिन्ता हुई, पर किया क्या जाता? अन्धेरी रात में कैसे ढूंढ़ते? राजकुमार को एक उपाय सूझा। उसने अपनी पगड़ी खोली और वहाँ की सारी पथरीली रेत समेटकर पोटली में बाँध लिया और उस भयानक जंगल को पार करने के लिए निकल पड़े। रास्ते में सन्नाटा तोड़ते हुए राजा ने पूछा- हीरा तो एक छोटा-सा टुकड़ा है, उसके लिए इतनी सारी रेत समेटने की क्या जरूरत थी? राजकुमार ने कहा- जब हीरा अलग से नहीं मिलता, तो यही उपाय रह जाता है कि उस जगह की सारी रेत समेटी जाय और फिर सुविधानुसार उसमें से काम की चीज ढूंढ ली जाय। राजा चुप हो गया, किन्तु कुछ दूर चलकर उसने राजकुमार से पुन: पूछा कि फिर मनीषी अध्यापक का यह कहना कैसे गलत हो गया कि सबसे मित्रता का अभ्यास करो। मित्रका का दायरा बड़ा होने से ही तो उसमें से हीरे ढूंढ़ सकना संभव होगा।

१००३) एक राजा था। वह सन्यासियों से सदैव पूछा करता था- संसार का त्याग कर जो संन्यास ग्रहण करता है, वह श्रेष्ठ है, या संसार में रहकर गृहस्थ के कर्त्तव्य निभाता है? नगर में एक तरुण संन्यासी आए। राजा ने उनसे भी यही प्रश्न किया। सन्यासी ने कहा, हे राजन अपने अपने स्थान पर दोनों ही श्रेष्ठ हैं, कोई भी कम नहीं है। राजा ने उसका प्रमाण मागा। संन्यासी ने उत्तर दिया, हां, मैं इसे सिद्ध कर दूंगा, परंतु आपको कुछ दिन मेरे साथ मेरी तरह जीवन व्यतीत करना होगा। राजा ने सन्यासी की बात मान ली।

वे एक बड़े राज्य में आ पहुंचे। राजधानी में उत्सव मनाया जा रहा था। घोषणा करनेवाले ने चिल्लाकर कहा, इस देश की राजकुमारी का स्वयंवर होनेवाला है। जिस राजकुमारी का स्वयंवर हो रहा था, वह संसार में अद्वितीय सुंदरी थी और उसका भावी पति ही उसके पिता के बाद उसके राज्य का उत्तराधिकारी होनेवाला था। इस राजकुमारी का विचार एक अत्यंत सुंदर पुरुष से विवाह करने का था, परंतु उसे योग्य व्यक्ति मिलता ही न था।

राजकुमारी रत्नजटित सिंहासन पर बैठकर आई। उसके वाहक उसे एक राजकुमार के सामने से दूसरे के सामने ले गए। इतने ही में वहां एक दूसरा तरुण सन्यासी आ पहुंचा। वह इतना सुंदर था कि मानो सूर्यदेव ही आकाश छोड़कर उतर आए हों। राजकुमारी का सिंहासन उसके समीप आया और ज्यों ही उसने सन्यासी को देखा, त्यों ही वह रुक गई और उसके गले में वरमाला डाल दी। तरुण संन्यासी ने एकदम माला को रोक लिया और कहा, मैं सन्यासी हूं मुझे विवाह से क्या प्रयोजन? राजा ने उससे कहा, देखो मेरी कन्या के साथ तुम्हें मेरा आधा राज्य अभी मिल जाएगा और संपूर्ण राज्य मेरी मृत्यु के बाद। लेकिन संन्यासी वह सभा छोड़कर चला गया। राजकुमारी इस युवा पर इतनी मोहित हो गई कि युवा संन्यासी के पीछे-पीछे चल पड़ी।

दूसरे राज्य के राजा को लेकर आए सन्यासी भी पीछे-पीछे चल दिए। जंगल में जाकर सन्यासी नजरों से ओझल हो गया। हताश होकर राजकुमारी वृक्ष के नीचे बैठ गई। इतने में राजा और सन्यासी उसके पास आ गए। रात हो गई थी। उस

पेड़ की एक डाली पर एक छोटी चिड़िया, उसकी स्त्री तथा उसके तीन बच्चे रहते थे। उस चिड़िया ने पेड़ के नीचे इन तीन लोगों को देखा और अपनी स्त्री से कहा, देखो हमारे यहा ये लोग अतिथि हैं, जाड़े का मौसम है। आग जलानी चाहिए। वह एक जलती हुई लकड़ी का टुकड़ा अपनी चोंच में दबाकर लाया और उसे अतिथियों के सामने गिरा दिया। उन्होंने उसमें लकड़ी लगा-लगाकर आग तैयार कर ली, परंतु चिड़िया को संतोष नहीं हुआ। उसने अपनी स्त्री से फिर कहा, ये लोग भूखे हैं। हमारा धर्म है कि अतिथि को भोजन कराएं। यह कहकर वह आग में कूद पड़ा और भुन गया। उस चिड़िया की स्त्री ने मन में कहा, ये तो तीन लोग हैं, उनके भोजन के लिए केवल एक ही चिड़िया पर्याप्त नहीं। पत्नी के रूप में मेरा कर्त्तव्य है कि अपने पति के परिश्रमों को मैं व्यर्थ न जाने दूं। वह भी आग में गिर गई और भुन गई। इसके बाद उन तीन छोटे बच्चों ने भी यही किया।

तब सन्यासी ने राजा से कहा, देखो राजन्, तुम्हें अब ज्ञात हो गया हैं कि अपने-अपने स्थान में सब बड़े हैं। यदि तुम संसार में रहना चाहते हो, तो इन चिड़ियों के समान रहो, दूसरों के लिए अपना जीवन दे देने को सदैव तत्पर रहो और यदि तुम संसार छोड़ना चाहते हो, तो उस युवा सन्यासी के समान हो, जिसके लिए वह परम सुंदरी स्त्री और एक राज्य भी तृणवत था। अपने अपने स्थान में सब श्रेष्ठ हैं, परंतु एक का कर्त्तव्य दूसरे का कर्त्तव्य नहीं हो सकता।

१००४) वन देवता की गवाही - दो मित्र धर्मबुद्धि और पापबुद्धि हिम्मत नगर में रहते थे। एक बार पापबुद्धि के मन में एक विचार आया कि क्यों न मैं मित्र धर्मबुद्धि के साथ दूसरे देश जाकर धनोपार्जन करूं। बाद में किसी न किसी युक्ति से उसका सारा धन ठग-हड़प कर सुख-चैन से पूरी जिन्दगी जीऊँगा। इसी नियति से पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि को अपने साथ बाहर जाने के लिए राजी कर लिया।

शुभ मुहूर्त देखकर दोनों मित्र एक अन्य शहर के लिए रवाना हुए। जाते समय अपने साथ बहुत सा माल लेकर गए तथा मुँह माँगे दामों पर बेचकर खूब धनोपार्जन किया। अंतत: प्रसन्न मन से गाँव की तरफ लौट गए।

गाँव के निकट पहुंचने पर पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि को कहा कि मेरे विचार से गाँव में एक साथ सारा धन ले जाना उचित नहीं है। कुछ लोगों को हमसे ईर्ष्या होने लगेगी, तो कुछ लोग कर्ज के रूप में पैसा माँगने लगेंगे। संभव है कि कोई चोर ही इसे चुरा ले। मेरे विचार से कुछ धन हमें जंगल में ही किसी सुरक्षित स्थान पर गाढ़ देना चाहिए। अन्यथा सारा धन देखकर संन्यासी व महात्माओं का मन भी डोल जाता है। सीधे-साधे धर्मबुद्धि ने पुन: पापबुद्धि के विचार में अपनी सहमति जताई। वहीं किसी सुरक्षित स्थान पर दोनों ने गड्ढे खोदकर अपना धन दबा दिया तथा घर की ओर प्रस्थान कर गए। बाद में मौका देखकर एक रात कुबुद्धि ने वहाँ गड़े सारे धन को चुपके से निकालकर हथिया लिया। कुछ दिनों के बाद धर्मबुद्धि ने पापबुद्धि से कहा- भाई मुझे कुछ धन की आवश्यकता है। अत: आप मेरे साथ चलिए। पापबुद्धि तैयार हो गया। जब उसने धन निकालने के लिए गड्ढे को खोदा, तो वहाँ कुछ भी नहीं मिला। पापबुद्धि ने तुरंत रोने चिल्लाने का अभिनय किया। उसने धर्मबुद्धि पर धन निकाल लेने का इल्जाम लगा दिया। दोनों लड़ते-झगड़ते न्यायाधीश के पास पहुंचे।

न्यायाधीश के सम्मुख दोनों ने अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत किया। न्यायाधीश ने सत्य का पता लगाने के लिए दिव्य-परीक्षा का आदेश दिया। दोनों को बारी बारी से अपने हाथ जलती हुई आग में डालने थे। पापबुद्धि ने इसका विरोध किया,

उसने कहा कि वन देवता गवाही देंगे। न्यायाधीश ने यह मान लिया। पापबुद्धि ने अपने बाप को एक सूखे हुए पेड़ के खोखले में बैठा दिया। न्यायाधीश ने पूछा तो आवाज आई कि चोरी धर्मबुद्धि ने की है।

तभी धर्मबुद्धि ने पेड़ के नीचे आग लगा दी। पेड़ जलने लगा और उसके साथ ही पापबुद्धि का बाप भी, वो बुरी तरह रोने-चिल्लाने लगा। थोड़ी देर में पापबुद्धि का पिता आग से झुलसा हुआ उस वृक्ष की जड़ में से निकला। उसने वनदेवता की साक्षी का सच्चा भेद प्रकट कर दिया। न्यायाधीश ने पापबुद्धि को मौत की सजा दी और धर्मबुद्धि को उसका पूरा धन दिलवाया और कहा कि मनुष्य का यह धर्म है कि वह उपाय की चिन्ता के साथ अपाय की भी चिन्ता करें।

१००५) बगुला भगत की मूर्खता - जंगल के एक बड़े वटवृक्ष की खोल में बहुत से बगुले रहते थे। उसी वृक्ष की जड़ में एक साँप भी रहता था। वह बगुलों के छोटे-छोटे बच्चों को खा जाता था।

एक बगुला साँप द्वार बार बार बच्चों के खाये जाने पर बहुत दु:खी और विरक्त सा होकर नदी के किनारे आ बैठा। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। उसे इस प्रकार दु:खमग्न देखकर एक केकड़े ने पानी से निकल कर उसे कहा- मामा, क्या बात है, आज रो क्यों रहे हो? बगुले ने कहा- भैया, बात यह है कि मेरे बच्चों को साँप बार बार खा जाता है। कुछ उपाय नहीं सूझता, किस प्रकार साँप का नाश किया जाय? तुम्हीं कोई उपाय बताओ।

केकड़े ने मन में सोचा- यह बगला मेरा जन्म का वैरी है, इसे ऐसा उपाय बताऊंगा, जिससे साँप के नाश के साथ-साथ इसका भी नाश हो जाय। यह सोचकर वह बोला- मामा, एक काम करो, मांस के कुछ टुकड़े लेकर नेवले के बिल के सामने डाल दो। इसके बाद बहुत से टुकड़े उस बिल से शुरू करके साँप के बिल तक बिखेर दो। नेवला उन टुकड़ों को खाता-खाता साँप के बिल तक आ जाएगा और वहाँ साँप को भी देखकर उसे मार डालेगा।

बगुले ने ऐसा ही किया। नेवले ने साँप को तो खा लिया किन्तु साँप के बाद उस वृक्ष पर रहनेवाले बगुलों को भी खा डाला। बगुले ने उपाय तो सोचा, किन्तु उसके अन्य दुष्परिणाम नहीं सोचे। अपनी मूर्खता का फल उसे मिल गया।

१००६) सबसे बड़ा गरीब - एक महात्मा भ्रमण करते हुए नगर में जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक रुपया मिला। महात्मा तो विरक्त और संतोषी व्यक्ति थे। वे भला उसका क्या करते? अत: उन्होंने किसी दरिद्र को यह रुपया देने का विचार किया। कई दिन तक वे तलाश करते रहे, लेकिन उन्हें कोई दरिद्र नहीं मिला।

एक दिन उन्होंने देखा कि एक राजा अपनी सेना सहित दूसरे राज्य पर चढ़ाई करने जा रहा है। साधु ने वह रुपया राजा के ऊपर फेंक दिया। इस पर राजा को नाराजगी भी हुई और आश्चर्य भी। क्योंकि, रुपया एक साधु ने फेंका था इसलिए उसने साधु से ऐसा करने का कारण पूछा। साधु ने धैर्य के साथ कहा- राजन्। मैंने एक रुपया पाया, उसे किसी दरिद्र को देने का निश्चय किया, लेकिन मुझे तुम्हारे बराबर कोई दरिद्र व्यक्ति नहीं मिला, क्योंकि जो इतने बड़े राज्य का अधिपति होकर भी दूसरे राज्य पर चढ़ाई करने जा रहा हो और इसके लिए युद्ध में अपार संहार करने को उतावला हो रहा हो, उससे ज्यादा दरिद्र कौन होगा? राजा का क्रोध शान्त हुआ और अपनी भूल पर पश्चात्ताप करते हुए उसने वापस अपने देश को प्रस्थान किया। हमें सदैव संतोषी वृत्ति रखनी चाहिए। संतोषी व्यक्ति को अपने पास जो साधन होते हैं, वे ही पर्याप्त लगते हैं। उसे और अधिक की भूख नहीं सताती।

१००७) संसार- एक शीशमहल- एक दिन एक शिष्य ने गुरु से पूछा, गुरुदेव आपकी नजर में यह संसार क्या है? इस पर गुरु ने एक कथा सुनाई। एक नगर में एक शीशमहल था। महल की हरेक दीवार पर सैकड़ों शीशे जड़े हुए थे। एक दिन एक गुस्सैल कुत्ता महल में घुस गया। महल के भीतर उसे सैकड़ों कुत्ते दिखे, जो नाराज और दुखी लग रहे थे। उन्हें देखकर वह उन पर भौंकने लगा। उसे सैकड़ों कुत्ते अपने ऊपर भौंकते दिखने लगे। वह डरकर वहां से भाग गया। कुछ दूर जाकर उसने मन ही मन सोचा कि इससे बुरी कोई जगह नहीं हो सकती। कुछ दिनों बाद अन्य कुत्ता शीशमहल पहुंचा। वह खुशमिजाज और जिन्दादिल था। महल में घुसते ही उसे वहां सैकड़ों कुत्ते दुम हिलाकर स्वागत करते दिखे। उसका आत्मविश्वास बढ़ा और उसने खुश होकर सामने देखा तो उसे सैकड़ों कुत्ते खुशी जताते हुए नजर आए। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। जब वह महल से बाहर आया तो उसने महल को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ स्थान और वहां के अनुभव को अपने जीवन का सबसे बढ़िया अनुभव माना। वहां फिर से आने के संकल्प के साथ वह वहां से रवाना हुआ। कथा समाप्त कर गुरु ने शिष्य से कहा- संसार भी ऐसा ही शीशमहल है जिसमें व्यक्ति अपने विचारों के अनुरूप ही प्रतिक्रिया पाता है। जो लोग संसार को आनंद का बाजार मानते हैं, वे यहां से हर प्रकार के सुख और आनंद के अनुभव लेकर जाते हैं। जो लोग इसे दुखों का कारागार समझते हैं उनकी झोली में दुख और कटुता के सिवाय कुछ नहीं बचता।

१००८) सुख का विस्तार- कर्नाटक के बेलगांव में प्रसिद्ध विद्वान पंडित चिदंबर दीक्षित रहा करते थे। ज्ञान, भक्ति और सेवा कार्यों में उनका कोई सानी न था। आसपास के लोग उनके पास विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए आते रहते थे। एक दिन एक महिला दीक्षित जी के घर पहुंची। वह पंडित जी से संतान प्राप्ति का आशीर्वाद लेने आई थी। उसने बताया कि वह सभी व्रत-उपवास करती है, लेकिन इसके बावजूद उसकी मनोकामना पूरी नहीं हो पा रही हैं। इसलिए उसका जीवन दुखत हो गया है। वह अपने को अकेली और असहाय समझती है। दीक्षित जी ने उसे पास पड़े चने में से दो मुट्ठी चने दिए और एक कोने में बैठकर इंतजार करने को कहा। वह महिला घर के बाहर एक कोने में बैठकर चने खाने लगी, तभी सड़क पर खेल रहे बच्चे उस महिला का मुंह ताकने लगे। कुछ ने चने पाने की आशा में अपने हाथ भी उस महिला के सामने फैला दिए। महिला ने दूसरी तरफ मुंह मोड़ लिया और चुपचाप चने खाती रही। बच्चे मायूस होकर उसे देख रहे थे और उसने देखते ही देखते चने खत्म कर दिए। पंडित जी भी दूर से सारा दृश्य देख रहे थे। उन्होंने महिला को बुलाकर कहा, तुम मुफ्त में मिले चने भी भगवान रूपी बच्चों के साथ मिल बांटकर नहीं खा सकती, तो तुम भगवान से कैसे आशा करती हो कि वे तुम्हें बच्चों का सुख प्रदान करेंगे। तुम संतान चाहती हो लेकिन तुम्हारे भीतर अपने बच्चे होंगे तभी तुम उन्हें प्यार करोगी। दूसरों के बच्चों से तुम्हें क्या मतलब। यह एक गलत सोच है। तुम अपने हृदय का विस्तार करो। सबको गले लगाओ। सबके ऊपर ममता लुटाओ। दूसरों के बच्चों को भी अपनी ही संतान समझो। तुम देखोगी कि तुम्हारा जीवन एकदम बदल गया है। तुम अपने को अकेली और असहाय समझना बंद कर दोगी। महिला ने वचन दिया कि वह अपनी सोच बदलेगी।

१००९) सबसे बड़ी कला- बहुत पुरानी कथा है। किसी गांव में एक बड़ा ही होशियार लड़का रहता था। वह नई-नई चीजें सीखने में लगा रहता था। उसने एक तीर बनानेवाले से तीर बनाना सीखा, नाव बनानेवाले से नाव बनाने की कला

सीखी। मूर्तिकार से मूर्तिकला की जानकारी हासिल की। इस तरह धीरे-धीरे वह एक के बाद एक बहुत सी कलाएं सीख गया। लेकिन उसे इस बात का अहंकार हो गया। वह हमेशा सबसे कहता फिरता, मेरे बराबर दुनिया में कोई गुणवान नहीं है। संयोग से उन्हीं दिनों गौतम बुद्ध घूमते हुए वहां आ पहुंचे। उन्हें जब उस लड़के के बारे में पता चला तो वह भिक्षापात्र लेकर उसके पास पहुंच गए। लड़के ने उन्हें देखकर पूछा, आप कौन हैं? बुद्ध ने उत्तर दिया, मैं अपने शरीर को काबू में रखनेवाला एक आदमी हूं। लड़का उनकी बात समझ नहीं पाया और बोला, मैं आपकी बात का मतलब नहीं समझा। कृपा करके विस्तारपूर्वक समझाएं। इस पर बुद्ध ने कहा, देखो, जो तीर चलाना जानता है, वह तीर चलाता है, जो नाव चलाना जानता है, वह नाव चलाता है और जो मूर्ति बनाना जानता है वह मूर्ति बनाता है। लेकिन जो ज्ञानी है, वह अपने ऊपर शासन करता है। लड़के ने पूछा वह कैसे? बुद्ध ने जवाब दिया, अगर कोई उसकी प्रशंसा करता है तो उसका मन चंचल नहीं होता। अगर कोई उसकी निंदा करता है तो भी वह शांत रहता है। ऐसा आदमी हमेशा सुखी रहता है। यह सबसे बड़ी कला है। लड़का उनका आशय समझ गया। उसने वचन दिया कि वह अपने भीतर से अपना अहंकार निकाल बाहर करेगा।

१०१०) संपूर्ण सुंदरता- एक बार कुदरत के सातो रंगों के बीच बहस छिड़ गई। प्रत्येक रंग यह साबित करने में लगा था कि वही सबसे श्रेष्ठ है। सबसे पहले हरे रंग ने कहा कि वह जीवन और हरियाली का प्रतीक है, इसलिए ईश्वर ने उसका चयन खास तौर पर पत्तों के रंग के लिए किया है। धरती का एक बड़ा भाग हरियाली से ढका हुआ है। नीले रंग ने उसकी बात काटते हुए कहा, आकाश व समुद्र का रंग नीला है। जल ही जीवन है। नीला जल नीले आकाश के बादलों से होकर नीले समुद्र में समा जाता है। बिना इस चक्र के विकास संभव नहीं, इसलिए मैं तुम सबसे श्रेष्ठ हूं। तब पीला रंग बोला, पीला खुशहाली का प्रतीक है। सूरज पीला है। पीली सूरजमुखी सारी दुनिया में हंसी व खुशी देती है। इसलिए मैं ही सर्वश्रेष्ठ स्थान का अधिकारी हूं। तभी नारंगी रंग ने कहा, मैं मिठास और स्वास्थ्य का प्रतीक हूं। सभी मीठे व लाभकारी फलों पपीता, गाजर, आम व संतरा की छटा नारंगी है। तभी जामुनी रंग ने कहा, श्रेष्ठ तो मैं हूं क्योंकि मैं पानी की गहराई व मन की शांति का प्रतीक हूं। वर्षा ऋतु रंगों की इस सारी बहस को ध्यान से सुन रही थी। वह पास आकर बोली, तुम सभी श्रेष्ठ हो। सभी को ईश्वर ने किसी न किसी खास कारण से बनाया है। लेकिन सर्वश्रेष्ठ है तुम सबका एक साथ होना। रंगों को यह उपदेश जैसी बात अच्छी नहीं लगी, वे तो सिर्फ अपनी तारीफ सुनना चाहते थे। तभी आकाश में जोर से बिजली कड़की। सभी रंगों ने डरकर एक दूसरे का हाथ पकड़ लिया और आकाश में बड़ा सा इंद्रधनुष दिखाई देने लगा। रंगों ने देखा, सभी उनकी छटा निहार रहे थे। वर्षा ऋतु ने हंसकर समझाया, तुम सबके अलग अलग प्रशंसक हैं, लेकिन तुम्हारा एक साथ होना संपूर्ण जगत के लिए सुंदरता और जीवन का संदेश है। इसके बाद रंगों ने कभी एक दूसरे से झगड़ा नहीं किया।

१०११) जनक की परीक्षा- महाराज जनक के राज्य में एक तपस्वी रहता था। एक बार किसी बात को लेकर जनक उससे नाराज हो गए। उन्होंने उसे अपने राज्य से बाहर चले जाने की आज्ञा दी। इस आज्ञा को सुनकर तपस्वी ने जनक से पूछा, महाराज, मुझे बता दीजिए कि आपका राज्य कहां तक है क्योंकि तब मुझे आपके राज्य से निकल जाने का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकेगा। महाराज जनक स्वभावत: विरक्त तथा ब्रह्मज्ञानी थे। तपस्वी के इस प्रश्न को सुनकर वह सोच

में पड़ गए। पहले तो संपूर्ण पृथ्वी पर ही उन्हें अपना राज्य तथा अधिकार दिखा। फिर मिथिला नगरी पर वह अधिकार दिखने लगा। आत्मज्ञान के झोंके में पुन: उनका अधिकार घटकर प्रजा पर, फिर अपने शरीर में आ गया और अंत में कहीं भी उन्हें अपने अधिकार का भान नहीं हुआ। उन्होंने तपस्वी को अपनी स्थिति समझाई और कहा, मेरा किसी वस्तु पर भी अधिकार नहीं है। आपकी जहां रहने की इच्छा हो, वहीं रहें और जो इच्छा हो, भोजन करें। इस बात पर तपस्वी को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, महाराज, आप इतने बड़े राज्य को अपने अधिकार में रखते हुए किस तरह सब वस्तुओं से तटस्थ हो गए हैं और क्या समझकर पहले पृथ्वी पर अधिकार की बात सोच रहे थे? जनक ने कहा, संसार के सब पदार्थ नश्वर हैं। शास्त्रानुसार न कोई अधिकार ही सिद्ध होता है और न कोई अधिकार योग्य वस्तु ही। अतएव मैं किसी वस्तु को अपना कैसे समझूं? अब जिस बुद्धि से सारे विश्व पर अपना अधिकार समझता हूं, उसे सुनिए। मैं अपने संतोष के लिए कुछ भी न कर देवता, पितर, भति और अतिथि-सेवा के लिए करता हूं। अतएव पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश और अपने मन पर भी मेरा अधिकार है। जनक के इन वचनों के साथ ही तपस्वी ने अपना चोला बदल दिया। वह बोला, महाराज, मैं धर्म हूं। आपकी परीक्षा के लिए तपस्वी वेश में आपके राज्य में रहता आया हूं। अब भलीभांति समझ गया कि आप सत्वगुणरूप नेमियुक्त ब्रह्माप्रतिरूप चक्र के संचालक हैं।

१०१२) यह भी बीत जाएगा- एक राजा ने अपनी सभी बुद्धिमान सलाहकारों की सभा बुलाई। उसने उन सभी से एक सवाल पूछा, मैं चाहता हूं कि मेरे अंतर में स्थिरता का भाव आ जाए। मैंने पाया है कि जीवन के उतार-चढ़ाव मुझे असंतुलित कर देते हैं। क्या आप लोग कोई ऐसा उपाय बता सकते हैं जिससे मैं दु:ख के क्षणों में खुशी महसूस कर सकूं और सुख के पलों में दु:ख को न भूलूं? सभी सलाहकारों ने मिल जुलकर एक समाधान निकाला। वो बोले, राजन, हमने आपके लिए एक उपाय ढूंढ निकाला है। उन्होंने राजा को एक डिब्बा दिया। जब राजा ने वो डिब्बा खोला, तो उसे उसके अंदर एक अंगूठी मिली। देखिए इस पर क्या लिखा है सलाहकार बोले। अंगूठी पर लिखा था यह भी बीत जाएगा। इन चार शब्दों ने राजा की सहायता की। वो वक्त का संतुलन बनाए रखने में सफल हो गए।

१०१३) सबसे बड़ी तपस्या - सत्यनगर का राजा सत्यप्रताप सिंह अत्यंत न्यायप्रिय शासक था। एक बार उसे पता चला कि सौम्यदेव नामक एक ऋषि अनेक सालों से लोहे का एक डंडा जमीन में गाड़कर तपस्या कर रहे हैं और उनके तप के प्रभाव से डंडे में कुछ अंकुर फूट कर फूल पत्ते निकल रहे हैं और जब वह अपनी तपस्या में पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेंगे तो उनका डंडा फूल पत्तों से भर जाएगा। सत्यप्रताप ने सोचा कि यदि उनके तप में इतना बल है कि लोहे के डंडे में अंकुर फूट कर फूल-पत्ते निकल सकते हैं तो फिर मैं भी क्यों न तप करके अपना जीवन सार्थक बनाऊं। यह सोचकर वह भी ऋषि के समीप लोहे का डंडा गाड़कर तपस्या करने लगा। संयोगवश उसी रात जोर का तूफान आया। मूसलाधार बारिश होने लगी। राजा और ऋषि दोनों ही मौसम की परवाह न कर तपस्या में मगन रहे। कुछ देर बाद एक व्यक्ति बुरी तरह भीगा हुआ ठंड से कांपता आया। उसने ऋषि से कहीं ठहरने की जगह के बारे में पूछा पर ऋषि ने आंख खोलकर भी नहीं देखा। निराश होकर वह राजा सत्यप्रताप के पास पहुंचा और गिर पड़ा। राजा ने उसकी इतनी बुरी हालत देखकर उसे गोद में उठाया। उसे नजदीक ही एक कुटिया नजर आई। उसने उस व्यक्ति को कुटिया में लिटाया और उसके समीप आग

जलाकर गर्माहट पैदा की। गर्माहट मिलने से व्यक्ति होश में आ गया। इसके बाद राजा ने उसे कुछ जड़ी-बूटी पीसकर पिलाई। कुछ ही देर बाद वह व्यक्ति बिल्कुल ठीक हो गया। सुबह होने पर राजा जब उस व्यक्ति के साथ कुटिया से बाहर आया तो यह देखकर हैरान रह गया कि जो लोहे का डंडा उसने गाड़ा था वह ताजे फूल पत्तों से भरकर झुक गया था। इसके बाद राजा ने ऋषि के डंडे की ओर देखा। ऋषि के थोड़े बहुत निकले फूल पत्ते भी मुरझा गए थे। राजा समझ गया कि मानव सेवा से बड़ी तपस्या कोई और नहीं है। वह अपने राज्य वापस आकर प्रजा की समुचित देखभाल करने लगा।

१०१४) सच्ची आध्यात्मिकता - एक व्यक्ति किसी फकीर के पास साधना सीखने गया। फकीर की चारों ओर बहुत ख्याति थी। उनके आशीर्वाद से बीमार स्वस्थ हो जाते थे और लोगों की परेशानियां दूर हो जाती थी। दूर दूर से पीड़ित लोग उनके यहां आते, दुआएं मांगते और प्रसन्न होकर जाते। जब वह आदमी संत के पास पहुंचा तो देखा कि फकीर एक टोकरी में से दाना निकालकर पक्षियों को चुगा रहे थे। उन्हें चुगते देखकर वे बच्चों की तरह खुश हो उठते थे। इस तरह लंबा समय बीत गया न फकीर ने उस व्यक्ति की ओर देखा और न दाना चुगाना ही बंद किया। आनेवाला परेशान हो गया। वह फकीर की ओर बढ़ा। उसे सामने देखते ही फकीर ने टोकरी उसके हाथों में थमा दी और कहा, अब तुम पक्षियों के साथ आनंद का अनुभव करो। वह व्यक्ति सोचने लगा, कहां तो मैं इनसे आध्यात्मिक साधना का रहस्य जानने आया हूं और ये हैं कि मुझे पक्षियों को दाना चुगाने को कह रहे हैं। फकीर ने उसके मन की बात पढ़ ली। वह बोले, स्वयं की परेशानियों को भूल कर दूसरों को आनंद पहुंचाने का प्रयत्न ही जीवन की हर सिद्धि और आनंद का राज है। यदि तुम स्वयं सुख और आनंद पाना चाहते हो, तो वही दूसरे को भी देना सीखो। तुम यदि यह साध सकोगे तो तुम्हारी सारी साधना हो जाएगी। जो लोग आध्यात्मिकता को किसी खास नियम और जीवन शैली में देखते हैं, वे उसके नैसर्गिक पक्ष से वंचित रह जाते हैं। खरा आध्यात्मिक जीवन दूसरों को सुख बांटने में होता है। उसमें आनंद और खुलेपन का अनुभव होता है।

१०१५) भिखारी की सीख - चंद्रगुप्त मौर्य दोपहर में वेश बदलकर नगर का निरीक्षण करने के लिए निकले। धूप व गर्मी से वह बेहाल थे। एक जगह घना वृक्ष देखकर वह उसके नीचे बैठ गए। उन्हीं के ठीक सामने पेड़ के नीचे एक भिखारी फटेहाल, चिथड़ों में बैठा प्रसन्न कुछ गुनगुना रहा था। तभी वहां एक और भिखारी आया और चंद्रगुप्त से बोला, भगवान के नाम पर कुछ दे दो। मैं दो दिन से भूखा हूं। चंद्रगुप्त बोले, भाग यहां से, हट्टा-कट्टा होने पर भी हाथ फैलाता है। भिखारी डांट खाकर सामने बैठे भिखारी के पास गया और उसके सामने गिड़गिड़ाने लगा। उस भिखारी ने अपनी पोटली खोली और उसमें से एक सिक्का निकालते हुए बोला, जा इस समय मेरे पास यही है। इसी से खरीद कर कुछ खा ले। दूसरा भिखारी पहले भिखारी को आशीष देता हुआ चला गया और पहला भिखारी फिर उसी तरह गुनगुनाने लगा। चंद्रगुप्त यह देखकर दंग रह गए कि उनके राज्य में भिखारी भी दाता है। फिर उन्हें संदेह हुआ कि कहीं यह कोई विदेशी गुप्तचर न हो। वह उसके पास जा पहुंचे और उसके बारे में पूछने लगे। भिखारी बोला, मैं भिखारी हूं और मेरा नाम कालीचरण है। चंद्रगुप्त बोले, पर तुम्हारे चेहरे पर भिखारियों जैसी दीनता नहीं बल्कि राजाओं जैसी चमक है। इस पर भिखारी मुस्कराते हुए बोला, असल में मैं अपने लिए कभी कुछ नहीं चाहता, सदा दूसरों के लिए कुछ करता रहता हूं। इससे मुझे सुख मिलता है और शायद यही मेरे चेहरे पर चमक का राज है। चंद्रगुप्त इस सीख को अपने जीवन में उतारने का संकल्प लिए चल पड़े।

१०१६) सेवा का संदेश - यह घटना उस समय की है जब स्वामी शिवानंद सरस्वती जी महाराज मलाया में रहकर चिकित्सा कार्य करते थे। उन दिनों अंग्रेजों के रबर के बगीचों में अनेक भारतीय भी काम करते थे। अधिकतर भारतीय निर्धन थे। स्वामी जी एक बगीचे के पास स्थित अपने क्लीनिक में रोगियों की चिकित्सा करते थे। एक दिन एक बहुत ही गरीब श्रमिक अपनी पत्नी को साथ लेकर उनके पास पहुंचा। उसकी पत्नी गंभीर रूप से बीमार थी और बुरी तरह कराह रही थी। यह देखकर स्वामी जी द्रवित हो उठे और तुरंत उसके इलाज में लग गए। जब श्रमिक ने देखा कि स्वामी जी बिना कुछ कहे उसकी पत्नी का इलाज कर रहे हैं तो वह रोता हुआ बोला, स्वामी जी, मेरे पास इस समय आपको देने के लिए एक रुपया तक नहीं है। मैंने तो यह भी नहीं पूछा कि आप मेरी पत्नी के इलाज की कितनी फीस लेंगे। इलाज करने के बाद यदि मैं आपकी फीस न चुका पाया तो क्या होगा? कृपया आप मुझे अपनी फीस बताइए ताकि मैं उसका इंतजाम कर सकूं। श्रमिक की बात सुनकर स्वामी जी बोले, परेशान होने की जरूरत नहीं है। पहले मुझे इसकी जांच तो कर लेने दो। वह ठीक हो जाए फिर फीस भी आ ही जाएगी। स्वामी जी ने श्रमिक की पत्नी की बीमारी का पता लगाकर उसके लिए जड़ी-बूटियां बनाईं और उसे पिलाईं। कुछ देर बाद वह श्रमिक को अनेक दवाइयां और उसके साथ ही कुछ रुपये देते हुए बोले, इस समय तुम्हारी पत्नी को इन दवाइयों के साथ इसे फल, दूध व अन्य पौष्टिक आहर देते रहना। कुछ ही दिनों में यह स्वस्थ हो जाएगी। जब कभी तुम्हारे पास रुपये आ जाएं तो किसी रोगी व जरूरतमंद की मदद कर देना। समझ लेना मुझे मेरी फीस मिल गई। यह सुनकर श्रमिक स्वामी जी के प्रति नतमस्तक हो गया।

१०१७) पर्दे के पीछे की तस्वीर - एक बहुत बड़ी कंपनी के कर्मचारी लंच टाइम में जब वापस लौटे, तो उन्होंने नोटिस बोर्ड पर एक सूचना देखी। उसमे लिखा था कि कल उनका एक साथी गुजर गया, जो उनकी तरक्की को रोक रहा था। कर्मचारियों को उसको श्रद्धांजलि देने के लिए बुलाया गया था। श्रद्धांजलि सभा कंपनी के मीटिंग हॉल में रखी गई थी। पहले तो लोगों को यह जानकर दु:ख हुआ कि उनका एक साथी नहीं रहा, फिर वो उत्सुकता से सोचने लगे कि यह कौन हो सकता है? धीरे-धीरे कर्मचारी हॉल में जमा होने लगे। हॉल में दरी बिछी थी और दीवार से कुछ पहले एक परदा लगा हुआ था। वहां एक और सूचना लगी थी कि गुजरनेवाले व्यक्ति की तस्वीर परदे के पीछे दीवार पर लगी है। सभी एक-एक करके परदे के पीछे जाए, उसे श्रद्धांजलि दे और फिर तरक्की की राह में अपने कदम बढ़ायें, क्योंकि उनकी राह रोकनेवाला अब चला गया। कर्मचारियों के चेहरे पर हैरानी के भाव थे। कर्मचारी एक-एक करके परदे के पीछे जाते और जब वे दीवार पर टंगी तस्वीर देखते, तो अवाक हो जाते। दरअसल, दीवार पर तस्वीर की जगह एक आइना टंगा था। उसके नीचे एक पर्ची लगी थी, जिसमें लिखा था दुनिया में केवल एक ही व्यक्ति है, जो आपकी तरक्की को रोक सकता है, आपको सीमाओं में बांध सकता है और वह आप खुद है। अपने नकारात्मक हिस्से को श्रद्धांजलि दे चुके नये साथियों का स्वागत है।

१०१८) वे कौन थे- एक बार मगध नरेश ने कौशल प्रदेश पर हमला कर दिया। युद्ध में कौशल नरेश की हार हुई। कौशल नरेश ने मगध के राजा के समक्ष प्रस्ताव रखा कि उनके साथ के १५-२० व्यक्तियों को वह जाने दें। शेष के साथ वह यथोचित व्यवहार करने को स्वतंत्र हैं। मगध नरेश ने इस प्रस्ताव के लिए हामी भर दी। कुछ समय पश्चात कौशल नरेश २० व्यक्तियों को विदा कर सपरिवार युद्ध बंदी के रूप में मगध के राजा के सामने आकर खड़े हो गए। मगध के राजा

ने सोचा था कि कौशल नरेश स्वयं भागेंगे, पर उन्हें सामने खड़ा पाकर वह बड़े आश्चर्यचकित हुए।

उन्होंने पूछा, वे कौन थे, जिनके जीवन की सुरक्षा के लिए आपने स्वयं को बंदी बना लिया। कौशल नरेश बोले, राजन्। वे भी हमारे राज्य के विद्वान व संत थे। राजा की पहचान उस राज्य के आदर्शों, मूल्यों, सत्कार्यों व संस्कारों से होती हैं। मैं भले ही मारा जाऊं पर इन परम्पराओं को जीवित रखने के लिए उनका जीवित रहना आवश्यक था। मगध नरेश यह सुनकर चकित रह गए और बोले, जिस राज्य में धर्म, दया व परोपकार का इतना ऊंचा स्थान हैं, उस पर आधिपत्य का दुस्साहस मैं कैसे कर सकता हूं? उन्होंने कौशल नरेश को ससम्मान मुक्त कर दिया।

१०१९) किसान ने ठगों को ठगा - एक किसान के पास छोटा-सा खेत और एक बैल था। बड़े परिश्रम से उसने डेढ़ सौ रुपए इकट्ठे किए और एक और बैल पशु हाट से खरीदा। रास्ते में लौटते समय उसे चार लड़के मिले, जिन्होंने उससे बैल खरीदना चाहा। किसान ने सोचा कि यदि मुझे डेढ़ सौ से अधिक मिल गए तो बेहतर बैल खरीदूंगा। उसने बैल की कीमत लड़कों को दो सौ बताई। वे बोले, कीमत तो ज्यादा है। किसी समझदार व्यक्ति को पंच बनाकर फैसला करा लेते हैं। वास्तव में चारों लड़के एक ठग पिता की संतान थे और उन्होंने अपने पिता को ही पंच बना दिया। पिता ने बैल की कीमत मात्र पचास रुपए तय की। वचन से बंधे किसान को बैल पचास रुपए में बेचना पड़ा, किंतु वह इस धोखे को समझ गया। अगले दिन किसान सुंदर महिला के वेश में चारों भाइयों से मिला। उन्होंने विवाह की इच्छा व्यक्त की। तब वह बोला, जो सबसे पहले मेरे लिए बनारसी साड़ी, मथुरा के पेड़े और सहारनपुर के आम लाएगा, मैं उसी से शादी करूंगी। चारों शहर की ओर दौड़ पड़े। तब ठग पिता को अकेले में किसान ने खूब पीटा और अपना धन वापस ले लिया। चारों लड़के वापस लौटे तो पिता को बेहाल पाकर मन मसोसकर रह गए, क्योंकि किसान का पता तो जानते नहीं थे। अगले दिन किसान हकीम बनकर वृद्ध ठग की चोटों का उपचार करने पहुंचा और लड़कों को चार जड़ी-बूटी लाने भेज दिया। इस बार उसने ठग की पिटाई कर अपना बैल छुड़ा लिया। चारों भाई लौटे तो पिता को और बदतर अवस्था में पाया। उन्होंने प्रण लिया कि कभी किसी के साथ ठगी नहीं करेंगे।

१०२०) झरने से सीखें झुकना - स्वामी श्रद्धानंद के शिष्य थे स्वामी सदानंद। जब वह गुरुकुल में पर्याप्त शिक्षा हासिल कर चुके तो उनके व्यवहार में अहंकार आ गया। वह हर किसी को अपने से कमतर देखने लगे। इस तरह उनके काफी मित्र भी दूर होते चले गए। एक दिन स्वामी श्रद्धानंद उनके सामने से गुजरे तो सदानंद ने उन्हें भी अनदेखा कर दिया और उनका अभिवादन तक नहीं किया। स्वामी श्रद्धानंद समझ गए कि सदानंद को अहंकार ने पूरी तरह जकड़ लिया है। दूसरे दिन अल सुबह जब स्वामी श्रद्धानंद और सदानंद वन में एक झरने के पास गए और पूछा- जरा बताओ तुम सामने क्या देख रहे हो? सदानंद ने जवाब दिया- गुरुजी, पानी जोरों से नीचे बह रहा है और गिरकर फिर दोगुने वेग से ऊँचा उठ रहा है। स्वामी ने कहा- देखो सदानंद जीवन में अगर ऊँचा उठकर आसमान छूना चाहते हो तो थोड़ा इस पानी की तरह झुकना भी सीख लेना चाहिए। यदि आप झुकते हैं तो दुनिया को झुका सकते हैं। जल्दी सफल होने का फंडा यह है कि अपने काम करने की स्किल बढ़ाइए और विनम्र रहिए।

१०२१) समाधान- एक बूढ़ा व्यक्ति था। उसकी दो बेटियां थीं। उनमें से एक का विवाह एक कुम्हार से हुआ और दूसरी का एक किसान के साथ। एक बार पिता अपनी दोनों पुत्रियों से मिलने गया। पहली बेटी से हालचाल पूछा तो उसने

कहा कि इस बार हमने बहुत परिश्रम किया है और बहुत सामान बनाया है। बस यदि वर्षा न आए तो हमारा कारोबार खूब चलेगा। बेटी ने पिता से आग्रह किया कि वो भी प्रार्थना करे कि बारिश न हो। फिर पिता दूसरी बेटी से मिला जिसका पति किसान था। उससे हालचाल पूछा तो उसने कहा कि इस बार बहुत परिश्रम किया है और बहुत फल उगाई है परन्तु वर्षा नहीं हुई है। यदि अच्छी बरसात हो जाए तो खूब फसल होगी। उसने पिता से आग्रह किया कि वो प्रार्थना करे और दूसरी का इसके विपरीत कि बरसात न हो। पिता बड़ी उलझन में पड़ गया। एक के लिए प्रार्थना करे तो दूसरी का नुकसान। समाधान क्या हो? पिता ने बहुत सोचा और पुन: अपनी पुत्रियों से मिला। उसने बड़ी बेटी को समझाया कि यदि इस बार वर्षा नहीं हुई तो तुम अपने लाभ का आधा हिस्सा अपनी छोटी बहन को देना और छोटी बेटी को मिलकर समझाया कि यदि इस बार खूब वर्षा हुई तो तुम अपने लाभ का आधा हिस्सा अपनी बड़ी बहन को देना।

१०२२) समर्पण और खुशहाली - एक बार एक राजा ज्ञान प्राप्ति के लिए एक प्रसिद्ध मठ पर गया। मठ में गुरु के अलावा बाकी सभी राजा को देखकर अति उत्साहित थे। राजा ने मठाधीश से अपने आने का कारण बताया और कहा- गुरूदेव, मैं आपके ज्ञान व प्रसिद्ध मठ से बहुत प्रभावित हूं और मैं अपने राज्य में अपने शासन से खुशहाली लाना चाहता हूं। कृपया कुछ दिशा दर्शन करें। गुरुदेव ने कहा- अच्छी बात है, मगर खुशहाली शासन व नियंत्रण से नहीं आती है, बल्कि सभी के अपने कार्यों के प्रति समर्पण से प्राप्त होती है। अपने कार्य के प्रति समर्पण का भाव पैदा करें, खुशहाली, प्रगति अपने आप प्राप्त होगी।

१०२३) अहंकार में गंवाई जान - किसान रामलाल को अपनी ऊंटनी से बड़ा प्यार था। जब ऊंटनी का बच्चा हुआ तो किसान ने बड़े प्यार से उसके गले में सुंदर सी घंटी पहना दी। किसान अपनी ऊंटनी को ऊंट की एक टोली के साथ चरने के लिए छोड़ देता और वह शाम तक लौट आती। ऊंटनी का बच्चा कुछ बड़ा हुआ तो वह भी चरने जाने लगा। लेकिन गले में बंधी घंटी की वजह से वह खुद को दूसरों से विशिष्ट मानने लगा। अहंकारवश वह खुद को खास समझता और ऊँटों की टोली से प्राय: दूर दूर ही चलता। कोई साथ चलने को कहता तो उसकी ओर ध्यान नहीं देता। वह मुंह फेरकर चल देता। उधर वन का एक शेर ऊँटों की टोली को आते-जाते देखता रहता था। वह ऊँटों के झुंड पर तो आक्रमण नहीं कर सकता था, लेकिन जब उसने घंटीधारी ऊँट को अकेले चरते हुए देखा तो उसकी बांछें खिल उठीं। एक दिन जब ऊँटों का दल डेरे की तरफ लौट रहा था, तो घात लगाए बैठा शेर उस घंटीधारी ऊँट को जंगल में खींच ले गया। इस तरह उस घंटीधारी ऊंट को अपने अहंकार की वजह से जान से हाथ धोना पड़ा। जो स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को हीन समझता है, उसका अहंकार शीघ्र ही उसे ले डूबता है।

१०२४) काना सांभर - एक काना सांभर समुद्र के किनारे घास चर रहा था। अपने आपको किसी होनेवाले हमले से बचाने के लिए वह अपनी नजर हमेशा जमीन की ओर रखता था जबकि अपनी कानी आँख समुद्र की ओर रखता था क्योंकि उसे समुद्र की ओर से किसी हमले की आशंका नहीं थी। एक दिन कुछ नाविक उस ओर आए। जब उन्होंने सांभर को चरते हुए देखा तो आराम से उस पर निशाना साधकर अपना शिकार बना लिया। अंतिम आंहें भरते हुए सांभर बोला- मैं भी कितना अभागा हूं। मैंने अपना सारा ध्यान जमीन की ओर लगा रखा था जबकि समुद्र की ओर

से मैं आश्वस्त था। पर अंत में शत्रु ने उसी ओर से हमला किया। खतरा प्राय: उसी ओर से दस्तक देता है जिस ओर से आपने अपेक्षा न की हो।

१०२५) कमियों को दूर करना कठिन - एक नगर में एक चित्रकार रहता था। चित्रकार ने एक सुंदर तस्वीर बनाई और उसे नगर के चौराहे में लगा दिया और नीचे लिख दिया कि जिस किसी को, जहां भी इसमें कमी नजर आये वह वहां निशान लगा दे। जब उसने शाम को तस्वीर देखी उसकी पूरी तस्वीर निशानों से खराब हो चुकी थी। यह देख वह दुखी हुआ। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या करे वह दु:खी बैठा हुआ था। तभी उसका एक मित्र वहां से गुजरा उसने उसके दु:खी होने का कारण पूछा तो उसने उसे पूरी घटना बताई। उसने कहा एक काम करो कल दूसरी तस्वीर बनाना और उसमें लिखना कि जिस किसी को इस तस्वीर में जहां कहीं भी कोई कमी नजर आये उसे सही कर दे। उसने अगले दिन यही किया। शाम को जब उसने अपनी तस्वीर देखी तो उसने देखा की तस्वीर पर किसी ने कुछ नहीं किया। वह संसार की रीति समझ गया। कमी निकालना, निंदा करना, बुराई करना आसान है लेकिन उन कमियों को दूर करना अत्यंत कठिन होता है।

१०२६) कड़वा खरबूजा हो गया मीठा - कोई व्यक्ति एक महात्मा के पास एक अनाथ लड़के को छोड़ गए। महात्मा ने उसे बड़े जतन से पाला पोसा। वैसे महात्मा की कोई घर-गृहस्थी नहीं थी, लेकिन उसे अपने बेटे की तरह ही पढ़ाया-लिखाया। महात्मा उस लड़के से बहुत प्रेम करते। एक दिन वह बाजार से एक खरबूजा खरीद लाए और चाकू से उसके फांकें करना शुरू किया। महात्मा बातें करते-करते खरबूजा काट-काटकर लड़के को देते जा रहे थे और लड़का भी मजे से खाता जाता था। अचानक महात्मा को ध्यान आया कि खरबूजा आधा रह गया। महात्मा ने लड़के से कहा, तुम भी अजीब हो। खरबूजा आधा हो गया। तुमने मुझे बताया भी नहीं। लड़के ने माफी मांगी और कहा कि मुझसे भूल हो गई। खैर, महात्मा ने फिर खरबूजा काटना शुरू किया। उन्होंने कुछ फांकें की और पहली फांक मुंह में रखी थी थू-थू कर उठे। वह इतना कड़वा लगा कि मुंह से थूकना पड़ा। फिर लड़के से पूछा, तुमने मुझे बताया क्यों नहीं कि खरबूजा कड़वा है? लड़के ने कहा, खरबूजे की कड़वाहट पर तो मैंने ध्यान ही नहीं दिया। मेरा ध्यान तो उस हाथ पर था, जो मुझे खरबूजा दे रहा था। इन्हीं हाथों से मैं हमेशा स्वादिष्ट चीजें खाता रहा हूं। वे चीजें जिस स्नेह और आत्मीयता से आप देते रहे हैं, उसकी मिठास के आगे दुनिया भर का स्वाद बेमजा है।

१०२७) आफत में मातृभाषा - राजा कृष्णचंद्र के दरबार के नवरत्नों में से थे गोपाल भांड। एक बार राजा कृष्णचंद्र की सभा में बाहर से एक विद्वान पधारे। वह उस समय की भारत में प्रचलित अधिकांश भाषाएं, यहां तक कि संस्कृत, अरबी, फारसी आदि प्राचीन भाषाओं में बेहतर तरीके से बोलते हुए अपना परिचय देने लगे। विद्वान द्वारा कई भाषाओं में बोलने पर राजा कृष्णचंद्र ने अपने दरबारियों की ओर देखा। लेकिन दरबारी यह अनुमान न लगा सके कि दरबार में पधारे विद्वान की मातृभाषा क्या है? राजा कृष्णचंद्र ने गोपाल भांड से पूछा, क्या तुम कई भाषाओं के ज्ञाता अतिथि की मातृभाषा बता सकते हो? गोपाल भांड ने बड़ी विनम्रता के साथ कहा, महाराज, मैं भाषाओं का जानकार हूं नहीं, फिर भी पूरा प्रयास करूंगा। दरबार की सभा समाप्त होने के बाद सभी दरबारी सीढ़ियों से उतर रहे थे। गोपाल भांड ने तभी अतिथि विद्वान को

जोर का धक्का दिया। वे अपनी मातृभाषा में गाली देते हुए नीचे आ पहुंचे। सभी जान गए कि उनकी मातृभाषा क्या है। गोपाल भांड ने विनम्रता से कहा, देखिए, तोते को कोई कितना ही राम-राम क्यों न सिखाए, लेकिन जब बिल्ली आकर उसे दबोचना चाहती है, तो उसके मुख से टें-टें के सिवाय और कुछ नहीं निकलता। आराम के समय सब भाषाएं चल जाती हैं, किंतु आफत में मातृभाषा ही काम देती है। इस बात पर विद्वान बड़े लज्जित हुए।

१०२८) उद्यान का मूल्य - किसी शहर में एक संत रहते थे। वे प्राय: गरीब बच्चों के साथ ही खेलते रहते और अपने हाथों से खूबसूरत खिलौने बनाकर उन्हें देते। एक दोपहर वे पेड़ के साये में बैठे घास, फूल व पत्तों से एक छोटे उद्यान की प्रतिकृति बना रहे थे। तभी पास के गांव की एक महिला वहां से गुजरीं उस बहुत सुंदर उद्यान को देखकर उसने संत से पूछा, पूछ सकती हूं, आप यह क्या बना रहे हैं? संत ने कहा, मैं स्वर्ग का उद्यान बना रहा हूं, क्या तुम इसे खरीदना चाहोगी? उस महिला ने संत से उद्यान का मूल्य पूछा। संत ने कहा, इसका मूल्य है एक हजार रुपये। उस समय एक हजार रुपये बहुत बड़ी रकम होती थी, लेकिन महिला ने संत की मदद करने के उद्देश्य से एक हजार रुपये देकर उसे खरीद लिया। संत ने हजार रुपये के अनाज-कपड़े खरीदकर शहर के गरीब और बेसहारा लोगों में बांट दिए। उस रात एक अजीब घटना घटी। महिला को स्वप्न में खरीदा वह उद्यान दिखाई दिया। यही नहीं, उसे वहां प्रवेश करने का अवसर भी मिला। वहां रत्नों से जड़े महल थे और परम आनंद का वातावरण था। तभी महिला के पास एक देवदूत आया और उसने अपनी किताब में उस स्वर्ग के उद्यान को उसके नाम लिख दिया। दूसरे दिन से वह एक अनूठी प्रसन्नता में रहने लगी। पति ने खुशी का कारण पूछा तो उसने सारी बात बता दी। उसका पति भी संत के पास गया और उद्यान खरीदने की इच्छा जताई। संत ने कहा, तुम्हारी पत्नी ने उद्यान प्रत्युपकार की आशा के बिना खरीदा और उसे वह मिला। तुम प्रतिफल की आशा से खरीदने आए हो, इसलिए तुम्हें वह प्राप्त न हो सकेगा। बिना प्रतिफल की आशा से किया दान ही आशाओं से परे फल देता है।

१०२९) सम्मान की पट्टी - पूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की मां स्वरूपरानी बड़ी देशभक्त थीं। उन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष के लिए काफी कुछ किया। एक बार जब वह एक विरोध प्रदर्शन का नेतृत्व कर रही थीं तभी उनके माथे पर चोट लगी। चोट लगते ही वह बेहोश होकर जमीन में गिर पड़ी। माथे से खून बहने लगा। पुलिस ऑफिसर ने उन्हें अपनी कार में डाला और आनंद भवन ले गया जहां वह रहती थीं। जवाहरलाल मां को इस तरह लगी चोट से काफी परेशान थे। वह उनके स्वास्थ्य को देखते हुए चिंतित थे। एक महीने बाद नेहरू बरेली जेल में डाल दिये गये और स्वरूपरानी उन्हें देखने पहुंचीं। उनके माथे पर अब भी पट्टी बंधी थी। जवाहरलाल ने उनसे कहा, अरे ऐसी हालत में आपने यात्रा करने का कष्ट क्यों उठाया। इस पर स्वरूपरानी बोली, जवाहर मेरे लिए यह माथे पर बंधी साधारण पट्टी नहीं है बल्कि सम्मान की पट्टी है। मैं इसे बांधे रहने का आनंद उठा रही हूं। देशहित में उठायी गई कोई भी व्यक्तिगत परेशानी गौरव की बात होती है।

१०३०) संघर्ष का सौंदर्य - मिट्टी ने मटके से पूछा- मैं भी मिट्टी तू भी मिट्टी, परंतु पानी मुझे बहा ले जाता है और तुम पानी को अपने में समा लेते हो। वह तुम्हें गला भी नहीं पाता, ऐसा क्यों? मटका हंसकर बोला- यह सच है कि तू भी मिट्टी है और मैं भी मिट्टी हूं। पर मेरा संघर्ष अलग है। पहले मैं पानी में भीगा, पैरों से गूंथा गया फिर चाक पर चला कुम्हार के थापी

की चोट, आग की तपन को झेला। संघर्ष झेलकर पानी को अपने में रखने की ताकत मैंने पायी। मंदिर की सीढ़ियों पर जड़े पत्थर ने मूर्ति के पत्थर से पूछा- भाई तू भी पत्थर मैं भी पत्थर पर लोग तुम्हारी पूजा करते हैं और मुझे पैरों से रौंदकर, बिना ध्यान दिये चलते हैं। ऐसा क्यों? मूर्ति के पत्थर ने उत्तर दिया- क्या तू मेरे संघर्ष को जानता है? मैंने इस शरीर पर कितनी छैनियों के प्रहार सहे हैं, मुझे कई बार घिसा गया है, मार और संघर्ष की पीड़ा को सहकर ही मैं इस रूप में आया हूं। संघर्षों की भट्टी में तपकर ही जीवन स्वर्ण बनता है।

१०३१) उत्तेजित नहीं संतुलित - गौतम बुद्ध एक बार कुरुनगर गए। वहां की रानी के बारे में लोगों का कहना था कि वह बहुत क्रूर है। जैसे ही बुद्ध ने कुरुनगर में प्रवेश किया तो सेवकों ने अपशब्द कहे। लेकिन बुद्ध शांत रहे। यह बात उनके शिष्य आनंद को अच्छी नहीं लगी। वह उनसे बोले, हमें यहां से किसी ऐसे स्थान पर चले जाना चाहिए, जहां कोई हमारे साथ दुर्व्यवहार न करे। बुद्ध ने कहा, यह जरूरी नहीं है कि हम जहां जाएंगे, वहां हमारा आदर हो। लेकिन यदि कोई अनादर कर रहा है तो उस स्थान को जब तक नहीं छोड़ना चाहिए तब तक वहां शांति स्थापित न हो जाए। व्यक्ति का व्यवहार युद्ध में बढ़ते हुए उस हाथी की तरह होना चाहिए जो चारों ओर के तीरों को सहता रहता है, उसी तरह हमें दुष्ट पुरुषों के अपशब्दों को सहन करते रहना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि सबसे उत्तम तो वह है, जो स्वयं को वश में रखे। किसी भी बात पर कभी भी उत्तेजित न हों। अपमान पर उत्तेजित होने की बजाय स्वयं को संतुलित रखना बुद्धिमानी है।

१०३२) लेनेवाला एक देनेवाले अनेक - पंडित मदनमोहन मालवीनय ने विश्वविद्यालय के लिए दान मांगने का अभियान चलाया। एक सज्जन ने ५००० रुपये नकद दान दिया तो उनकी धर्मपत्नी ने बहुमूल्य कंगन दे दिया। पति ने फिर दोगुना दाम देकर कंगन खरीद लिया। उनकी यह दान देने की शुद्ध भावना ही थी कि पत्नी कंगन दान में देती और पति उसे पुन: दोगुने दाम देकर वापस ले लेता। ऐसा करते हुए ही पत्नी ने वह कंगन फिर दान में दे दिया। यह क्रम इतनी देर तक चलता रहा कि रात हो गई और चारों तरफ अंधेरा हो गया। ऐसे में लैंप की रोशनी में ही आई धनराशि गिनी जाने लगी। दूसरी ओर धन संग्रह एवं नीलामी का काम भी चल रहा था, तभी कोई बदमाश व्यक्ति पहुंचा और बत्ती बुझाकर रुपयों से भरी तीनों थैलियां छीनकर ले भागा। सब लोग इस घटना को लेकर दुखी बैठे थे कि उनमें से एक सज्जन ने मालवीय से कहा, पंडितजी, इस पवित्र और नेक कार्य में भी जब लोग धूर्तता से बाज नहीं आते तो आप ही क्यों व्यर्थ परेशानियों का बोझ अपने सिर पर लेते हैं। कोई बड़ा काम किया जाए, यह देश इस योग्य है ही नहीं। इस पर पं. मालवीय ने जवाब दिया- चिंता मत कीजिए, मैं जानता हूं कि ले जानेवाला कोई एक है लेकिन देनेवालों की संख्या ज्यादा है। अपना काम सतत करते रहें, हानि नहीं पहुंचेगी।

१०३३) जितनी झोली उतना दान - एक संत महात्मा एक शहर में प्रवचन दे रहे थे। उन्होंने प्रवचन के बाद आखिर में कहा, जागो, समय हाथ से निकला जा रहा है। उसके बाद एक स्त्री संत महात्मा से मिलने आई। उसने कहा, मैं नर्तकी हूं। आज नगर के श्रेष्ठी के घर मेरे नृत्य का कार्यक्रम पहले से तय था, लेकिन मैं उसके बारे में भूल चुकी थी। आपने कहा कि जागो समय निकला जा रहा है तो मुझे तुरंत इस बात की याद आई। उसके बाद एक डाकू आया, उसने कहा, मैं आपसे कोई बात नहीं छिपाऊंगा। मैं भूल गया था कि आज मुझे एक जगह डाका डालने जाना था। आज उपदेश सुनते

ही मुझे अपनी योजना याद आ गई। इस तरह एक वृद्ध व्यक्ति संत के पास आया उसने कहा, जिन्दगी भर दुनिया भर की चीजों के पीछे भागता रहा। अब मौत का सामना करने का दिन नजदीक आता जा रहा है, तब मुझे लगता है कि सारी जिन्दगी यूं ही बेकार हो गई। आपकी बातों से आज मेरी आंखें खुल गईं। आज से मैं अपने सारे मोह छोड़कर निर्वाण के लिए कोशिश करूंगा। जब सब लोग चले गए तो संत महात्मा ने अपने शिष्यों से कहा, प्रवचन मैंने एक ही दिया, लेकिन उसका हर किसी ने अलग-अलग मतलब निकाला। जिसकी जितनी झोली होती है, उतना ही दान वह समेट पाता है। निर्वाण प्राप्ति के लिए भी मन की झोली को उसके लायक होना होता है। इसके लिए मन का शुद्ध होना बहुत जरूरी है।

१०३४) धर्म और दुकानदारी- एक दिन एक पण्डितजी कथा सुना रहे थे। बड़ी भीड़ इकट्ठी थी। मर्द, औरतें, बच्चे सब ध्यान से पण्डितजी की बातें सुन रहे थे। पण्डितजी ने कहा- इस दुनिया में जितने प्राणी हैं, सबमें आत्मा है, सारे जीव एक समान हैं। भीड़ में एक लड़का और उसका बाप बैठा था। पण्डितजी की बात लड़के को बहुत पसंद आई और उसने उसे गांठ बांध ली। अगले दिन लड़का दुकान पर गया। थोड़ी देर में एक गाय और दुकान के सामने रखे अनाज को खाने लगी। लड़के ने उसे देखा तो उसको पण्डितजी की बात याद आ गई। उसने कहा- ठीक है, हममें और गाय में अंतर ही क्या है? यह खाती है तो खाए। उसी समय उसका बाप आ गया। गाय को अनाज खाते और लड़के को चुपचाप बैठे देखकर उसका पारा चढ़ गया। उसने कहा- मूर्ख। देखता नहीं गाय नुकसान कर रही है? लड़के ने कहा- पिताजी, कल आपने पण्डितजी से सुना था न, सब जीव एक समान है? बाप ने उसको कसकर चांटे जमाए और बोला- अरे बुद्धू, बात सुनने की थी, दुकान चलाने की नहीं। तूने आगे ऐसा किया तो दुकान का सफाया हो जाएगा। बाप की बात सच थी। उपदेश और व्यापार साथ नहीं चलते।

१०३५) धन का अभिमान - यूनान में आल्सिबाएदीस नामक एक जमींदार था। उसकी जमींदारी बहुत बड़ी थी। उसे अपने धन-वैभव एवं जागीर पर बहुत गर्व था। वह इसका वर्णन करते हुए थकता नहीं था। एक दिन वह प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात के पास जा पहुंचा और अपने ऐश्वर्य का वर्णन करने लगा। सुकरात उसकी बातें कुछ देर तक सुनते रहे। फिर उन्होंने पृथ्वी का एक नक्शा मँगवाया। नक्शा फैलाकर उन्होंने आल्सिबाएदिस से पूछा- अपना यूनान देश इस नक्शे में कहां है? जमींदार कुछ देर तक नक्शा देखने के बाद एक जगह अंगुली रख कर बोला- अपना यूनान देश यह रहा। सुकरात ने पुन: पूछा- और अपना एटिका राज्य कहाँ है? बड़ी कठिनाई के बाद जमींदार एटिका राज्य को ढूंढ सका। अच्छा, इसमें आपकी जागीर की भूमि कहां है? सुकरात ने एक बार फिर पूछा। अब जमींदार कुछ सकपका गया। वह बोला- आप भी खूब हैं, इस नक्शे में इतनी छोटी सी-जागीर कैसे बताई जा सकती है? तब सुकरात ने कहा- भाई, इतने बड़े नक्शे में जिस भूमि के लिए एक बिन्दु भी नहीं रखा जा सकता उस नन्हीं-सी भूमि पर आप गर्व करते हैं? इस पूरे ब्रह्माण्ड में आपकी भूमि और आप कहाँ कितने हैं, जरा यह भी तो सोचिये। सुकरात के मुंह से यह सुनते ही आल्सिबएदिस का अपनी जागीर और सम्पत्ति पर जो गर्व था चकनाचूर हो गया।

१०३६) फेंक दिया नीलम - एक मछुआरा सुबह से शाम तक नदी में जाल डालकर मछलियां पकड़ने की कोशिश करता रहा लेकिन एक भी मछली जाल में न फंसी। उसने एक बार और जाल डाला और इस बार भी वह असफल रहा

लेकिन एक भारी पोटली उसके जाल में अटकी। मछुआरे ने पोटली निकाली और टटोला तो झुंझला गया और बोला- हाय ये तो पत्थर है फिर मन मारकर उसने नाव किनारे लगा दी। मन में आगे की योजनाओं के बारे में सोचने लगा- कल दूसरे किनारे पर जाल डालूंगा। मन चंचल था तो फिर हाथ कैसे स्थिर रहता। वह एक हाथ से उस पोटली के पत्थर को एक-एक करके नदी में फेंकता जा रहा था। पोटली खाली हो गई। जब एक पत्थर बचा था तो अनायास ही उसकी नजर उस पर गई तो वह स्तब्ध रह गया। उसे अपनी आंखों पर यकीन नहीं हो रहा था, यह क्या, ये तो नीलम है। मछुआरे के पास अब पछताने के अलावा कुछ नहीं बचा था। नदी के किनारे अपनी नाव में बैठा वह सिर्फ अब अपने को कोस रहा था। प्रकृति और प्रारब्ध ऐसे ही न जाने कितने नीलम हमारी झोली में डालता रहता है जिन्हें पत्थर समझ हम ठुकरा देते हैं।

१०३७) कांटों के बीच गुलाब - सुभाष के घर से लगे बगीचे में माली गुलाब के पौधों को पानी दे रहे थे। नन्हे सुभाष वहां पहुंच गए और बोले, काका, मुझे गुलाब बहुत पसंद हैं। लाइए, मैं इनको पानी दूं। माली ने सुभाष के हाथ में पानी का जग थमा दिया। वह पौधों में पानी डालने लगे। तभी उनके हाथ में एक कांटा चुभ गया और उनके मुंह से चीख निकल गई। वह बोले, काका, गुलाब तो बहुत सुंदर हैं पर इनमें कांटे क्यों हैं। क्या आप ऐसी कोई खाद जानते हैं जो बिना कांटों के गुलाब उगा सके। उनका प्रश्न सुनकर माली बोले, बेटा, जीवन में कोई चीज सरलता से नहीं मिलती। अब यह देखो, आज हमारा देश गुलाम है। हम आजाद होना चाहते हैं। तो हमें गुलाम बनाए रखनेवाले अंग्रेज हमारे देश के कांटे हुए न। अब अगर हम उन कांटों को निकालने की जुगत करेंगे तो हमें अपना खून बहाना पड़ेगा। ऐसे ही जैसे गुलाब को निकालने के लिए कांटों को निकालना पड़ता है। माली काका की बात सुभाष के हृदय में उतर गई। युवा होने पर सुभाषचंद्र बोस ने लोगों से कहा- तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा। उनके इस नारे पर खून देनेवालों की लंबी कतार लग गई और कांटे रूपी अंग्रेज भारत की बगियों से निकाले गए।

१०३८) सार्थकता - नदी में हाथी की लाश बही जा रही थी। नदी तीव्र वेग से महासागर की ओर बढ़ी जा रही थी। एक कौवे ने लाश को देखा, तो प्रसन्न हो उठा, तुरंत उस पर आ बैठा। सोचने लगा- अहा। यह तो अत्यंत सुंदर यान है, यहां भोजन और जल की भी कमी नहीं। फिर क्यों इसे छोड़कर अन्यत्र भटकता फिरूं? एक दिन महासागर से नदी का मिलन हुआ। नदी मुदित थी कि अंतत: उसे अपना गंतव्य प्राप्त हुआ। यह सागर से मिलन ही उसका चरम लक्ष्य था, किंतु उस दिन लक्ष्यहीन कौवे की बड़ी दुर्गति बनी। शारीरिक सुख और चार दिन की संतुष्टि ने उसे ऐसी जगह ला पटका था, जहां उसके लिए न भोजन था, न पेय जल और न क्षणभर के लिए कोई आश्रय। सब ओर सीमाहीन अनंत खारी जल-राशि स्वच्छंदतापूर्वक तरंगायित हो रही थी। कौवा बहुत ही क्लांत-श्रांत सा क्षुधित तृषार्त्त हो कुछ दिन चारों दिखाओं में पंख फटकारता रहा, अपनी छिछली और टेढ़ी-मेढ़ी उड़ानों से झूठा रौब फैलाता फिरा, किंतु उसे कहीं महासागर का ओर-छोर नजर नहीं आया और तब थककर, दुख से कातर हो, उन्हीं गगनचुंबी लहरों में वह गिर गया। कोई गति नहीं। कोई द्वीप नहीं। सत्वर एक विशाल मगरमच्छ उसे निगल गया। शरीर-सुख में लिप्त संसारी मनुष्यों की भी गति उसी निर्बुद्धि कौवे की गति की तरह ही होती है, जो आहार और आश्रय को ही परम गति मानता आया था।

१०३९) सहिष्णुता की शक्ति - दादू संत को गुरु मानने की इच्छा से एक सैनिक उस संत की खोज में निकला। रास्ते में उसे एक साधारण सा व्यक्ति दिखाई दिया। वह सैनिक उसके पास पहुंचा और कहा, आप बता सकते हैं कि संत

का आश्रम कहां है? उस साधारण व्यक्ति ने उस सैनिक की बात अनसुनी कर दी और आगे बढ़ चला। तब सैनिक ने उस साधारण व्यक्ति को बहुत अपमानित किया, क्योंकि सैनिक अपनी उपेक्षा सहन नहीं कर सकता था। इस तरह वह सैनिक गुस्से में आगे की ओर निकल चला। आगे चलने पर उसे एक और व्यक्ति मिला, उसने उससे भी यही सवाल किया। लेकिन इस व्यक्ति ने उस सैनिक को संत के घर का पता बता दिया। जैसे ही सैनिक ने संत को देखा तो वह शर्म से पानी पानी हो गया। दरअसल जिस साधारण व्यक्ति को उस सैनिक ने अपमानित किया था वही तो वह संत थे जिसे सैनिक खोज रहा था। सैनिक संत के चरणों में गिर गया और उनसे क्षमायाचना करने लगा। तब संत ने कहा, भाई, इसमें बुरा मानने की क्या बात? कोई मिट्टी का एक घड़ा भी खरीदता है तो ठोक बजाकर देख लेता है। फिर तुम तो मुझे गुरु बनाने आए थे। इस तरह वह संत की सहनशीलता जिसे हम सहिष्णुता भी कहते हैं, महसूस कर नतमस्तक हो गया।

१०४०) बुरे वक्त की जमा पूंजी - एक किसान था। इस बार वह फसल कम होने की वजह से चिंतित था। घर में राशन ११ महीने चल सके उतना ही था। बाकी एक महीने के राशन का कहां से इंतजाम होगा, यह चिंता उसे बार बार सता रही थी। किसान की बहू का ध्यान जब इस ओर गया तो उसने पूछा, पिताजी आजकल आप किसी बात को लेकर चिंतित नजर आ रहे हैं। तब किसान ने अपनी चिंता का कारण बहू को बताया। किसान की बात सुनकर बहू ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह किसी बात की चिंता न करें। उस एक महीने के लिए भी अनाज का इंतजाम हो जाएगा। जब पूरा वर्ष उनका आराम से निकल गया तब किसान ने पूछा कि आखिर ऐसा कैसे हुआ? बहू ने कहा, पिताजी जब से आपने मुझे राशन के बारे में बताया तभी से मैं जब भी रसोई के लिए अनाज निकालती उसी में से एक दो मुट्ठी हर रोज वापस कोठी में डाल देती। इस उसी की वजह से बारहवें महीने का इंतजाम हो गया।

जीवन में बचत की आदत डालना चाहिए। ताकि किसान की तरह बुरे वक्त में जमा पूंजी काम आ सके।

१०४१) कोयल की आवाज - गरमियों की एक सुबह घनिष्ठ मित्र तोताराम और कल्लू एक जंगल में गए। सहसा उन्हें कोयल की कुहूक सुनाई पड़ी। यह एक पक्षी की आवाज है जो किसी मंगल की सूचना देती है। अंधविश्वासी तोताराम ने कहा, मैंने इसकी आवाज सुबह-सुबह सुनी है। मुझे विश्वास है कि आज का दिन बड़ा भाग्यशाली होगा। अवश्य ही मुझे रुपयों से भरा थैला मिलेगा।

नहीं। कल्लू ने तोताराम की बात का प्रतिवाद किया, जो उससे भी अधिक वहमी था- तुम मुझसे अधिक भाग्यशाली नहीं हो। मुझे विश्वास है, यह आवाज मेरे लिए अधिक भाग्यशाली साबित होगी। तुम देखना, जरूर मुझे अच्छी खासी रकम प्राप्त होगी। खूबसूरत मौसम का मजा लेने के बजाय वे दोनों इसी बात पर लड़ने लगे। तू-तू, मैं-मैं के बाद हाथापाई पर उतारू हो गए। कुछ ही समय में वे बुरी तरह जख्मी हो गए। दोनों डॉक्टर के पास पहुंचे। डॉक्टर ने उनसे पूछा कि वे आखिर इस स्थिति में पहुंचे कैसे? सारी घटना बयान करने के बाद उन दोनों ने डॉक्टर से पूछा- आप बताएँ कि कोयल ने किसके भाग्यशाली होने की सूचना दी थी? डॉक्टर ने हँसते हुए कहा- कोयल ने मेरे भाग्यशाली होने की सूचना दी थी। अगर तुम दोनों इसी तरह लड़-झगड़कर हाथ-पैर तोड़ते रहे तो मुझे रुपयों का ढेर तुम्हारे इलाज के एवज में मिलता रहेगा। बेकार के झगड़े से दूसरों को फायदा होता है।

१०४२) सोच का अंतर - एक बार श्रीकृष्ण और अर्जुन घूमने निकले तो मार्ग में एक निर्धन ब्राह्मण भीख मांगते दिखा। अर्जुन को दया आ गई और उन्होंने उसे स्वर्ण मुद्राओं की एक पोटली दी। राह में एक लुटेरे ने उससे वह पोटली छीन ली। दुखी ब्राह्मण फिर भिक्षावृत्ति में लग गयां उसे फिर से भीख मांगते देख अर्जुन ने फिर से उसे एक मूल्यवान माणिक दिया। इस बार ब्राह्मण ने उसे घर में रखे एक घड़े में छिपा दिया और सो गया। इस बीच ब्राह्मण की स्त्री वही घड़ा लेकर पानी भरने चली गई। पानी भरते समय नदी की धारा के साथ वह माणिक भी बह गया। ब्राह्मण काफी दुखी हुआ और फिर भिक्षावृत्ति में लग गया। अर्जुन और कृष्ण ने उसे फिर भीख मांगते हुए पाया। इस बार कृष्ण ने उसे दो कौड़ियां दीं। अर्जुन ने पूछा, इससे उसका क्या होगा? कृष्ण ने अर्जुन से उस ब्राह्मण के पीछे जाने को कहा। रास्ते में ब्राह्मण की दृष्टि एक मछुआरे पर पड़ी, जिसके जाल में फंसी एक मछली छूटने के लिए तड़प रही थी। ब्राह्मण को उस मछली पर दया आ गई। उसने दो कौड़ियों में उस मछली का सौदा कर लिया और उसे अपने कमंडल में डालकर नदी में छोड़ने चल पड़ा। तभी मछली के मुख से वही माणिक निकला जो उसने घड़े में छिपाया था। ब्राह्मण प्रसन्नता के मारे चिल्लाने लगा मिल गया, मिल गया। भाग्यवश वह लुटेरा भी वहीं से गुजर रहा था जिसने ब्राह्मण की मुद्राएं लूटी थीं। उसने समझा कि ब्राह्मण उसे पहचान गया और अब वह पकड़ा जाएगा। उसने माफी मांगते हुए लूटी हुई सारी मुद्राएं उसे वापस कर दीं। यह देख अर्जुन ने पूछा, यह कैसी लीला है? श्रीकृष्ण बोले, यह अपनी सोच का अंतर है।

१०४३) चतुर किसान ने खाई खीर - एक बार किसी गांव से तीन भाई धन कमाने के लिए परदेश रवाना हुए। रास्ते में उन्हें उन्हीं की तरह यात्रा पर निकला किसान मिला, जिसके पास कुछ धन था। सभी भाइयों के मन में किसान को ठगने का विचार आया। उन्होंने उसे यात्रा में साथ ले लिया। रात को वे एक मंदिर में रुके तो तीनों भाइयों ने किसान को खाना लेने भेजा। जब वह खाना लेकर आया तो उसे किसी काम में उलझाकर अधिकांश खाना तीनों ने खा लिया। किसान बेचारा अधपेटा ही रह गया। वह आगे के लिए सावधान हो गया। परदेश में धन कमाकर लौटने से पहले तीनों ने किसान से रात को खीर बनवाई और कहां, जिसे सबसे अच्छा सपना आएगा, वही इस खीर को सुबह खाएगा। चतुर किसान ने उनके सोने के बाद सारी खीर खा ली। सुबह तीनों भाइयों ने सपने सुनाने शुरू किए। एक ने कहा, मैंने जयपुर नरेश को सपने में मेरा सत्कार करते देखा। दूसरा बोला मैं ओरछा दरबार में राजा के साथ नर्तकियों का नृत्य देख रहा था। तीसरे ने कहा, मैं तो सपने में मक्का पहुंच गया। इसके बाद किसान बोला, सपने में मुझे एक बलिष्ठ आदमी ने खूब मारा और सारी खीर खाने को बाध्य कर दिया। यह सुनते ही तीनों चिल्लाए, तूने हमें जगाया क्यों नहीं? हम तुझे बचा लेते। किसान बोला, कैसे जगाता? तुम तीनों तो तीन अलग शहरों में थे।

१०४४) अंधकार की दुविधा - एक बार अंधकार ने भगवान के पास जाकर शिकायत की, भगवान, ये सूर्य मेरे पीछे बुरी तरह पड़ा है। मैं इससे बहुत परेशान हूं। यह व्यर्थ ही मेरा पीछा करता रहता है। मैं थोड़ी देर के लिए भी विश्राम नहीं कर पाता हूं। सदियों से ऐसा ही चलता आ रहा है। अंधकार की बात सुनकर भगवान ने कहा, सचमुच ये तो बहुत गलत बात हैं। मैं अभी सूर्यदेव को बुलाकर इस बारे में पूछता हूं। सूर्यदेव से भगवान ने कहा, अंधकार के पीछे तुम क्यों पड़े रहते हो। सूर्यदेव ने कहा, मैंने अंधकार को कभी देखा ही नहीं। मैं उसे क्यों परेशान करूंगा। आप अंधकार का मेरे सामने

सामना करवाइये। यदि मुझसे गलती हो जाए तो मैं क्षमा मांग लूंगा। भगवान ने अंधकार को बुलाया लेकिन वह गायब हो गया। सूर्य प्रकाश यानी सकारात्मकता का प्रतीक है और अंधेरा नकारात्मकता का प्रतीक है। जब सूर्य रहता है तो अंधकार का अस्तित्व नहीं रहता। इसी तरह मनुष्य के भय के संबंध में भी यही स्थिति बनती है। हम भय दूर करने की कोशिश करते हैं लेकिन भय दरअसल होता ही नहीं है।

१०४५) नहले पर दहला - कथाकार चार्ल्स डिकेन्स की इंग्लैंड में ख्याति फैल गई तो एक दिन महारानी विक्टोरिया ने उन्हें अपने महल में आमंत्रित किया। जब वो वहां पहुंचे तो उन्होंने उनसे कहानी सुनाने का आग्रह किया। चार्ल्स परम स्वाभिमानी व्यक्ति थे। उन्हें महारानी के महल में पहुंचकर कहानी सुनाने में अपना अपमान महसूस हुआ। वह अदब से झुककर बोले, महारानी मैं अभी तक राजमहल में सुनाने के लायक कोई कहानी नहीं लिख पाया हूं कभी इस योग्य हुआ तो आपकी मदद जरूर करूंगा। मैं सिर्फ सामान्य लोगों पर कहानियां लिखता हूं। महारानी बोलीं, तब तो आप मुझे वही कहानियां सुनाइए। चार्ल्स ने कहा, महारानी मेरी कहानी तभी आपको आनंदित कर पाएंगी जब आप उन्हें सामान्य लोगों के बीच बैठकर सुनें। इस तरह नहले पे दहला मारते हुए चार्ल्स ने अपनी बात मनवा लीं। महारानी कथाकार का आशय समझ गई।

१०४६) दूसरा चेहरा - मिक्की की आंखों में नींद नहीं थी। वह पिल्ले को अपने पास नहीं रख पाएगा, यह सोचकर उसका मन बहुत उदास था। पिल्ले को लेकर ढेरों सपने बुने थे, पर घर आते ही सब कुछ खत्म हो गया था। माँ ने पिल्ले को देखते ही चिल्ला कर कहा, अरे, यह क्या उठा लाया तू? तेरे पिताजी ने देख लिया तो किसी की भी खैर नहीं। जा, इसे वापस छोड़ आ। दादी माँ ने बुरा सा मुंह बनाया और कहा राम-राम, बाहर फेंक इसे यह सब सुनकर उसे रोना आ गया। कितनी खुशामद करने पर दोस्त पिल्ला देने को राजी हुआ था। चूंकि दोस्त का घर दूर था, इसलिए एक रात के लिए उस पिल्ले को घर में रखने की इजाजत मिली थी। पिताजी के आने से पहले ही उसने बरामदे के कोने में टाट बिछाकर उसे सुला दिया था। कूँ... कूँ... की आवाज से वह चौंक पड़ा। बरामदे में स्ट्रीट लाइट की वजह से हल्की रोशनी थी। पिल्ले को ठंड लग रही थी और वह बरामदे में सो रही दादी की चारपाई पर चढ़ने का प्रयास कर रहा था। मिक्की घबरा गया। सोना तो दूर दादी अपना बिस्तर किसी को छूने भी नहीं देती। उनकी नींद खुल गई तो वे बहुत शोर करेंगी। पिताजी जाग गए तो पिल्ले को तिमंजिले से उठाकर नीचे फेंक देंगे। वह रजाई में पसीने-पसीने हो गया। माँ ने सोते हुए एक हाथ उस पर रखा हुआ था, वह चाहकर भी उठ नहीं सकता था। पिल्ले की कूँ-कूँ ओर पंजों से चारपाई को खरोंचने की आवाज रात के सन्नाटे में बहुत तेज मालूम हो रही थी। दादी की नींद उचट गई थी, वह करवटें बदल रही थी। आखिर वह उठकर बैठ गई। आनेवाली भयावह स्थिति की कल्पना से ही उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसे लगा दादी पिल्ले को घूरे जा रही हैं। दादी ने दाएँ-बाएँ देखा। पिल्ले को उठाया और पायताने लिटाकर रजाई ओढ़ा दी।

१०४७) कर्मफल की सीख - किसी देश में वसु सेन नाम का एक राजा राज करता था। वह एक पुरुषार्थी और चक्रवर्ती सम्राट था। राजा सदैव प्रजा की भलाई के बारे में सोचता और भला करने की हरसंभव कोशिश करता था। लेकिन उस राजा में एक कमी थी कि वह कभी-कभी कुछ ऐसा कर बैठता था जो प्रजा के साथ-साथ खुद राजा के परिवार

के लिए मुसीबत का सबब बन जाता था। राजा वसु सेन के राज ज्योतिषी ने उनका मस्तिष्क ज्योतिष की ओर मोड़ रखा था। राजा पर ज्योतिष का ऐसा प्रभाव पड़ा था कि बिना राज ज्योतिष के परामर्श के कोई काम नहीं करता। धीरे-धीरे हर काम में राज ज्योतिष पर राजा की निर्भरता बढ़ती जा रही थी। राजा वसु सेन बिना मुहूर्त देखे कोई भी काम नहीं करता था। एक दिन राजा अपने राज ज्योतिष के साथ अपने देश के दौरे पर निकले। रास्ते में उन्हें एक किसान मिला जो हल-बैल लेकर खेत जोतने जा रहा था। राज ज्योतिषी ने किसान को रोककर कहा, तुम जिस दिशा की तरफ जा रहे हो उससे तुम्हें हानि होगी। राज ज्योतिषी ने ऐसा इसलिए कहा, क्योंकि वह राजा के सामने अपना ज्ञान बताना चाह रहा था। लेकिन यहां उल्टा असर हुआ। उस किसान ने राज ज्योतिषी को जवाब दिया, मैं बिल्कुल इसी तरह खेत पर जाता हूं। यदि ऐसा होता तो मुझे रोज ही हानि होती। राज ज्योतिषी ने कहा, तो तुम अपना हाथ दिखाओ। किसान नाराज हो गया और वह बोला, मैं अपना हाथ किसी के सामने क्यों फैलाऊं, मेहनत मजदूरी करता हूं। मुहूर्त और हस्तरेखा तो वो देखते हैं जो कर्महीन और निठल्ले होते हैं। मुझे तो कर्म और कर्मफल पर जरा भी शंका नहीं है। अब राज ज्योतिषी के पास कोई जवाब नहीं था, लेकिन राजा वसु सेन समझ गए कि कर्मफल से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। वह जान गए कि दुनिया का सबसे बड़ा फल कर्मफल है।

१०४८) बात उस समय की है जब पं. जवाहर लाल नेहरू किशोर अवस्था के थे। पिता मोतीलाल नेहरू उन दिनों अंग्रेजों से भारत को आजाद कराने की मुहिम में शामिल थे। इसका असर बालक जवाहर पर भी पड़ा। मोतीलाल ने पिंजरे में एक तोता पाल रखा था। एक दिन जवाहर ने तोते को पिंजरे से आजाद कर दिया। मोतीलाल को तोता बहुत प्रिय था। उसकी देखभाल एक नौकर करता था। नौकर ने यह बात मोतीलाल को बता दी। मोतीलाल ने जवाहर से पूछा, तुमने तोता क्यों उड़ा दिया? जवाहर ने कहा, पिताजी पूरे देश की जनता आजादी चाह रही है। तोता भी आजादी चाह रहा था, सो मैंने उसे आजाद कर दिया। मोतीलाल जवाहर का मुंह देखते रह गये।

१०४९) जवाहर लाल नेहरू उन दिनों प्रधानमंत्री थे। अपने कुछ खास सहयोगियों के साथ वे एक दिन ग्रामीण क्षेत्रों का भ्रमण कर रहे थे। एक खेत में उन्होंने चने की फसल देखी। अधपके चने देखकर सबके मुंह में पानी आ गया और कच्चे चने खाने के लिए कार रुकवाई। सब लोग खेत में घुस गये। नेहरू ने चने की केवल फलियां ही फलियां तोड़ीं। कुछ लोगों ने पौधे ही उखाड़ लिए। इस पर नेहरू ने उन्हें डांटा, पौधों में कुछ फलियां अभी लगी ही हैं जिनमें दाना नहीं है। तुम केवल दानेवाली फलियां ही तोड़ो जिनकी तुम्हें जरूरत है। पौधे उखाड़ लेने से नुकसान हो रहा है। ऐसा तो जानवर करते हैं।

१०५०) भाखड़ा बांध से सिंचाई योजना का उद्घाटन होना था। नेहरू को योजना के व्यवस्थापकों ने चांदी का फावड़ा उद्घाटन करने के लिए पकड़ाया। इस पर नेहरू झुंझला गये। उन्होंने पास में पड़ा लोहे का फावड़ा उठाया और उसे जमीन पर चलाते हुए कहा, भारत का किसान क्या चांदी के फावड़े से काम करता है। महाराष्ट्र में अकाल पड़ा तो वहां भूख से तमाम मौतें हुई। सरकारी स्तर पर जो मदद पीड़ितों को दी जानी संभव थी वह दी गई। नेहरू अकालग्रस्त क्षेत्रों में मुआयने के लिए गये। एक स्थान पर लोगों की भीड़ में से नन्हें ग्रामीण बच्चे को हाथों में ऊपर उठा लिया और उसकी ठोड़ी पकड़ कर सिर ऊंचा किया। लोग नेहरू का आशय समझ गये कि मुसीबत में मनोबल बनाए रखकर साहस के साथ

मुकाबला करना चाहिए। एक मेले से नेहरू की कार गुजर रही थी। लोग उन्हें देख रहे थे और नेहरू उनका हाथ जोड़कर अभिवादन कर रहे थे। लोग उनकी कार को, उनसे मिलने के लिए घेर रहे थे और सुरक्षाबल लोगों को हटाकर कार के लिए रास्ता बना रहे थे। भीड़ में से एक बुढ़िया ने चिल्लाकर कहा, ओ नेहरू, तू इत्ता बड़ा हो गया कि लोग तुझसे मिल नहीं सकते। नेहरू कार से उतर पड़े, बुढ़िया के पास हाथ जोड़ते हुए गये और बोले, कहां बड़ा हो गया मां, बड़ा हो जाता तो तूं मुझसे ऐसे बोल पाती? फिर उन्होंने उसकी परेशानी पूछी। उसने अपनी फटेहाली बताई तो नेहरू ने अफसरों को सख्त हिदायत दी कि उसके लिए आर्थिक सहायता का इंतजाम तुरंत किया जाए।

१०५१) नेहरू खूब मजाक करते थे। एक विदेशी महिला पत्रकार काफी दिन उनके साथ रहकर उनकी दिनचर्या और काम-काज तथा व्यवहार पर रिपोर्टिंग कर रही थी। एक दिन उसने कहा, जब आप मंच से भाषण करते हैं तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। मैं चाहती हूं कि आप हमेशा भाषण करते रहें और मैं सुनती हूं। नेहरू बोले, लोग कहते हैं मुझे बोलने की बीमारी है। तुम दुआ करो कि मेरी यह बीमारी ठीक हो जाए। एक कार्यक्रम में एक छात्र ने उनसे आटोग्राफ लेने के लिए अपनी कापी उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा, इसमें सिग्नेचर कर दीजिए। नेहरू ने उसमें अपने दस्तखत अंग्रेजी में कर दिए। छात्र को पता था कि नेहरू आमतौर पर हिंदी में हस्ताक्षर करते हैं। उनसे पूछ लिया, आप तो हिंदी में हस्ताक्षर करते हैं फिर मेरी कापी में आपने अंग्रेजी में किए, ऐसा क्यों? नेहरू मुस्कराते हुए बोले, भाई, तुमने सिग्नेचर करने को बोला था, हस्ताक्षर करने को नहीं।

१०५२) नेहरू जी की अनुशासनप्रियता की झलक उनके जीवन में इस प्रसंग में देखने को मिलती है। एक स्थान पर जब जवाहरलाल नेहरू भाषण दे रहे थे तो बरसात शुरू हो गई। लोग बरसात में भी उनका भाषण सुनते रहे लेकिन अपने अपने छाते खोल लिए। इससे सभा में थोड़ी अव्यवस्था भी उत्पन्न होने लगी। नेहरू जी को यह बिल्कुल पसंद नहीं आया। उन्होंने कहा-एकता का महत्व बहुत अधिक होता है लेकिन एकता के साथ समानता भी जरूरी है। कुछ लोग अपनी छतरियां लगाएं रहें और कुछ लोग बिना छतरियों के भीगते रहें, यह कैसे उचित हो सकता है? पं. नेहरू के इन शब्दों को सुनकर लोगों ने तुरंत अपने छाते बंद कर दिए और बरसात में भीगते हुए भाषण सुनते रहे।

१०५३) जादू की झप्पी और स्नेह की भाषा- बात उन दिनों की है, जब देश आजाद नहीं था। सन १९०२ में महात्मा गांधी को ६ वर्ष के कारावास की सजा हुई। उन्हें येरवडा जेल भेजा गया। वहां का जेलर अंग्रेज था। वह गांधीजी को अंग्रेज साम्राज्य का सबसे बड़ा शत्रु मानता था, इसलिए बापू के लिए जब सेवक देने का अवसर आया, तो उसने एक अफ्रीकी व्यक्ति को उनकी सेवा में नियुक्त किया।

वह अफ्रीकी न तो हिंदी समझता था और न ही अंग्रेजी। केवल इशारों के जरिए ही गांधीजी उससे बात करते थे। गांधीजी जेलर की धूर्तता समझ गए। फिर भी उन्होंने कोई ऐतराज नहीं जताया। एक दिन उस अफ्रीकी सेवक को बिच्छू ने काटा, तो वह दौड़ता हुआ गांधीजी के पास पहुंचा। गांधीजी ने तुरंत काटे हुए स्थान पर मुंह लगाया और जहर निकलने लगे। कुछ ही देर बाद वह अफ्रीकी ठीक हो गया। फिर गांधीजी ने कुछ दवाएं भी दीं और उसे गले लगा (जादू की झप्पी) लिया। उस अफ्रीकी को कभी भी इतना स्नेह देखने को नहीं मिला।

१०५४) देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद सच्चे राष्ट्रवादी थे

भारत के प्रथम राष्ट्रपति बाबू राजेंद्र प्रसाद ने प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश किया। सादगी उनके व्यक्तित्व की एक महती विशेषता थी। जब वे पहले दिन कक्षा में गये तो धोती, बंद गले का कोट और टोपी पहने थे। शेष लड़के एंग्लो परिवेशों में थे। उन्हें देखकर सबने उनका खूब मजाक बनाया। ऐसा भाव व्यक्त किया मानो पूछ रहे हों, कहां से रस्सा तुड़कार भाग आये हो। कक्षा में प्राध्यापक आये और सबका नाम परिचय सब को मिला तो दोनों ही आश्चर्य में थे। राजेंद्र बाबू इसलिए कि उन्हें मालूम हुआ कि ये सभी विद्यार्थी भारतीय ही हैं, एंग्लो इंडियन नहीं। शेष विद्यार्थी इसलिए कि जिन्हें वे निपट गंवार समझ रहे थे उन बाबू राजेंद्र प्रसाद ने उस वर्ष विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया था। विद्यार्थी उनकी सादगी और भारतीय वेशभूषा में छिपी ज्ञान गरिमा को देखकर हतप्रभ थे, अपने व्यवहार के लिए शर्मिंदा भी। उन्होंने फिर कभी मजाक नहीं बनाया। वही राजेंद्र बाबू आगे चलकर भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। वास्तव में जो सांस्कृतिक परिवेश का वेश विन्यास का सम्मान करता है, वही सच्चा राष्ट्रवादी है, ऐसे व्यक्ति को ही सच्चा आध्यात्मिक मनुष्य कहेंगे।

राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद ने आजादी के बाद नए भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने हमेशा सादगी और संयम का जीवन जीया। उनका पूरा जीवन देश और देशवासियों के प्रति समर्पित था। उन्होंने अपने व्यक्तिगत साधन सुविधाओं की पर्वाह नहीं की। देश उन्हें सदैव स्मरण में रखेगा।

१०५५) एक पैसे का सच और एक पैसे का झूठ। एक बार गुरुनानक सियालकोट पधारे। लोगों से उन्हें पता चला कि हमजागौस नामक एक मुसलमान पीर लोगों को तंग करता है। नानकदेव ने हमजागौस को बुलाकर लोगों को तंग करने का कारण पूछा। वह बोला, यहां के एक व्यक्ति ने पुत्र प्राप्ति की कामना की थी। मैंने उससे कहा कि तुम्हें पुत्र होगा, किंतु वह मेरी कृपा से होने के कारण तुम्हें उसे मुझे देना होगा। उसने उस समय तो यह शर्त स्वीकार कर ली, पर बाद में वह अपने वायदे से मुकर गया। इसलिए मैं इस झूठी नगरी के लोगों को उसका दंड देता हूं। नानक देव ने हंसते हुए पूछा, गौस। मुझे यह बताओ कि क्या उस व्यक्ति के लड़का वास्तव में तुम्हारी कृपा से ही हुआ है? नहीं, वह तो उस पाक परवरदिगार की कृपा से हुआ है। उसने उत्तर दिया।

नानक देव ने आगे प्रश्न किया, फिर उनकी कृपा को नष्ट करने का अधिकार तुम्हें है या स्वयं परवरदिगार को? खुदा को सभी लोग प्यारे हैं। गौस ने कहा, मुझे तो इस नगरी में खुदा का प्यारा एक भी आदमी दिखाई नहीं देता। यदि होता, तो उसे मैं नुकसान न पहुंचाता। इस पर संत नानक ने अपने शिष्य मरदाना को बुलाकर दो पैसे देते हुए एक पैसे का सच और एक पैसे का झूठ लाने को कहा। मरदाना गया और जल्दी ही एक कागज का टुकड़ा ले आया, जिस पर लिखा हुआ था, जिंदगी झूठ, मौत सच। गौस ने इसे जब पढ़ा तो बोला, केवल लिखने से क्या होता है? तब नानक देव ने मरदाना से उस व्यक्ति को लाने को कहा। उसके आने पर वे उससे बोले, क्या तुम्हें मौत का भय नहीं है? अवश्य है, उसने जवाब दिया।

तब माया जंजाल में तुम कैसे फंसे हो? नानक बोले। अब मैं अपना कुछ भी नहीं समझूंगा। यह कहकर वह व्यक्ति चला गया। गौस को भी सब कुछ समझ में आ गया।

१०५६) ऐसे ही एक रोज तलवंडी का शासक महाराजा राय दुलार घुड़सवारी करता वहां से गुजरा। बालक को सोया देख वह इसलिए ठिठक गया, कि एक भयंकर नाग अपना फन फैलाए बालक के चेहरे पर पड़नेवाली धूप से उसकी रक्षा

कर रहा था। राजा को समझने में देर नहीं लगी कि यह कोई साधारण बच्चा नहीं है। यह कोई देवात्मा है, जो निश्चित ही इस तप रही धरती का उद्धार करने आया है। उसी दिन से राजा राय दुलार बालक नानक का मुरीद हो गया। राजा की जुबानी जिसने भी यह कौतुक सुना, सब समझ गए यह कोई चमत्कारिक बालक है। इसी संदर्भ में इसी तरह छोटे नानक एक रोज पशुओं को चरा रहे थे नित्य की भांति पशु खेतों में चरते रहे, नानक सत करतार के ध्यान में मग्न थे। पास की लहलहाती खेत को पशु खुशी खुशी सफाचट करते रहे। रहे-सहे पेड़ पौधे भी पशुओं ने नष्ट कर डाले। उस खेत के मालिक को जब सारी खेत उजड़ने की जानकारी हासिल हुई, उसने रोष में बुदबुदाया। मेरे तो भाग्य ही फूट गए। मेरी सारी मेहनत पर पानी फिर गया। नासमझ किसान को रह-रहकर बालक चरवाहा पर गुस्सा आ रहा था। बांह से दबोच लिया और न्याय पाने राजा राय दुलार के दरबार में ले बालक नानक की महिमा से राजा पहले ही प्रभावित थे। सोचा इस घटना में भी जरूर बाबा की कोई चमत्कारी मंशा रही होगी। फरियाद सुनने के पश्चात किसान को पहुंचे नुकसान का हरजाना दिलाने जैसे ही राजा के नुमाइदों ने किसान के कथनासुर उजड़ी खेत का जायजा लिया, तो लौटकर राजा से बस इतना ही कहा, महाराज खेत को रत्तीभर भी क्षति नहीं पहुंची है। न कोई पेड़ टूटा मिला। बल्कि लहलहाती फसल की हरीयाली देखकर हमारी भी सूरत हरी भरी हो गई। यह कौतुक सुन देख स्वयं खेत का मालिक किसान भी हतप्रभ रह गया। उसे भी नानक की बाल लीला पर श्रद्धा जाग गई और वह इस एक चमत्कार से नानक नाम लेवा बन गया। अभी भी बालक को गंभीर मुद्रा में देख पिता ने अपने इकलौते पुत्र नानक को बीस रुपए देकर (तब की बड़ी रकम) उसके एक अन्य मित्र बाला से कहा कि तुम नानक को अपने साथ शहर ले जाकर कोई ढंग का किंतु सच्चा व्यापार करो, ताकि इसका मन व्यापार में लगा रहे और मैं नानक को हमेशा प्रसन्न रहते देख सकूं। सखा के पिता की राय स्वीकार कर दोनों ही आज्ञानुसार शहर की ओर प्रस्थान कर गये। बीच रास्ते में बाबाजी को साधु सन्यासियों का एक झुंड जय-जयगान करता सुनाई दिया। उसी प्रवृत्ति के बालक नानक जी ने भक्त मंडली को तहे दिल से नमस्कार (सत श्री अकाल सत करतार) किया। साधुओं ने कई दिन के भूखे होने की व्यथा सुनाई, तो नानकजी का हृदय पसीज गया।

पिता जी का कथन कानों में गूंजने लगा, व्यापार करना पर खरा व सच्चा। फिर क्या था, सोचा, भूखों की भूख मिटाने से खरा व्यापार भला और क्या हो सकता है। पिता के दिये २० रुपयों से आपने सन्यासियों की भूख तृप्त कर दी। इस तरह सच्चा सौदा कर आपने उन २० रुपयों की बदौलत लंगर प्रथा आरंभ कर दी, जो आज भी बदस्तूर कायम है। खाली हाथ घर लौटे पुत्र पर पिता कालूराय ने अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए उन्हें दो-एक थप्पड़ मार दिए।

महाराज राय दुलार को जब उक्त घटना ज्ञात हुई, तो कालूराय को २० रुपए देते हुए बस इतना ही कहा, अभी से नानक मेरा हुआ। इसे किसी भी हानि पर मारना-डाटना कभी नहीं। आप क्षतिपूर्ति मुझसे ले लेना।

१०५७) आदतों से छुटकारा - एक बार स्वामी रामकृष्ण से एक साधक ने पूछा, मैं हमेशा भगवान का नाम लेता रहता हूं, भजन कीर्तन करता हूं, ध्यान लगाता हूं, फिर भी मेरे मन में कुविचार क्यों उठते हैं? यह सुनकर स्वामीजी मुस्कुराए। उन्होंने साधक को समझाने के लिए एक किस्सा सुनाया। एक आदमी ने एक कुत्ता पाला हुआ था और वह उससे बहुत प्यार करता था। उसके साथ ही मग्न रहता था। उसे गोद में लेता, उसके मुंह से मुंह लगाकर बैठा रहता। यहां

तक कि खाते-पीते, सोते-जागते या बाहर जाते समय भी कुत्ता उसके साथ ही रहता था। उसकी इस हरकत को देखकर एक दिन एक बुजुर्ग ने उससे कहा कि एक कुत्ते से इतना लगाव ठीक नहीं। आखिरकार है तो पशु ही। क्या पता कब किसी दिन कोई अनहोनी कर बैठे। तुम्हें नुकसान पहुंचा दे या काट ले। यह बात उस आदमी के दिमाग में घर कर गई। उसने तुरंत कुत्ते से दूर रहने की ठान ली। लेकिन वह कुत्ता इस बात को भला कैसे समझे? वह तो मालिक को देखते ही दौड़ कर उसकी गोद में आ जाता था। मुंह चाटने की कोशिश करता। मालिक उसे मार-मार कर भगा भी देता। लेकिन कुत्ता अपनी आदत नहीं छोड़ता था। बहुत दिनों की कठिन मेहनत और कुत्ते को दुत्कारने के बाद कुत्ते की यह आदत छूटी। यह कथा सुनाकर स्वामी जी ने साधक से कहा, तुम भी वास्तव में ऐसे ही हो। जिन सांसारिक भोग-विलास में आसक्ति की आदतों को तुमने इतने लंबे समय से पालकर छाती से लगा रखा है वे भला तुम्हें इतनी आसानी से कैसे छोड़ सकती हैं? पहले तुम उनसे लाड़-प्यार करना बंद करो। उन्हें निर्दयी, निर्मोही होकर अपने से दूर करो। तब ही उनसे पूरी तरह से छुटकारा पा सकोगे। जैसे-जैसे बुरी आदतों का दमन करोगे, मन की एकाग्रता बढ़ती जाएगी और चित्त में अपने आप धर्म विराजता जाएगा।

१०५८) अपराध से छुटकारा - लंदन का वालवर्थ उपनगर अपराधियों की बस्ती के रूप में जाना जाता था। यहां के अधिकांश निवासी निर्धन और अशिक्षित थे। इसी वजह से अपराध का ग्राफ काफी ऊपर था। बस्ती के इस प्रदूषित माहौल ने बच्चों को भी अपनी चपेट में ले लिया था। छोटे छोटे बच्चे भी गलत कार्यों में संलग्न थे। ऐसे समय में वहां एक दिन एक युवक कैंब्रिज यूनिवर्सिटी से अपनी शिक्षा पूरी करके आया। उसने पहले बस्ती के लोगों से परिचय बढ़ाया और धीरे-धीरे उनके साथ घुल-मिल गया। जब सभी उसे पसंद करने लगे, तब उसने अपने छोटे से कमरे में पहले बस्ती के बच्चों को पढ़ाना आरंभ किया। वह उन्हें दैनिक जीवन की छोटी, किंतु महत्वपूर्ण बातें बताता और उदाहरणों से अपनी बातों की पुष्टि करता। फिर धीरे-धीरे वह उन्हें उत्तम संस्कार देने लगा। बस्ती के लोगों को महसूस हुआ कि यह व्यक्ति उनके बच्चों को सही शिक्षा दे रहा है क्योंकि उन्होंने बच्चों में कार्य व आचरण दोनों स्तरों पर काफी सुधार महसूस किया। इससे बस्ती के लोगों में युवक के प्रति विश्वास बढ़ा। युवक ने अपने काम को आगे बढ़ाते हुए लोगों से कहा- हर रविवार आप सभी कक्षा में आया करें। वे लोग तैयार हो गए। युवक ने उन्हें तैयार किया कि वे सप्ताह में एक दिन कोई अपराध न करें। युवक की अच्छाई से अभिभूत लोगों ने इसे भी स्वीकार कर लिया। फिर लोगों ने स्वयं ही तय किया कि वे चार दिनों तक कोई अपराध नहीं करेंगे। धीरे-धीरे वालवर्थ का पूर्णत: कायाकल्प हो गया और वह सभ्य समाज का एक अंग बन गया। वह समाज सुधारक युवक बाद में भारत आया, जिसे सीएफ एंड्रयूज दीनबंधु के नाम से जाना गया। यह सत्यकथा बताती है कि यदि संकल्प दृढ़ हो तो मार्ग में आनेवाली बाधाएं हटती जाती हैं और सफलता के द्वार खुलते जाते हैं।

१०५९) मंजिल की लगन - प्रसिद्ध विद्वान पंडित टोडरमल राजस्थान के रहनेवाले थे। एक बार उन्होंने एक ग्रंथ लिखने की योजना बनाई। इसके लिए उन्होंने अपना पूरा ध्यान पठन-पाठन और लेखन पर केंद्रित कर लिया। कार्य करते हुए उन्हें पता ही नहीं चला कि दिन, महीने कैसे बीत गए। काफी दिनों बाद एक दिन वह अपनी मां के साथ भोजन करने

बैठे। मां ने बड़े प्रेम से टोडरमल को सब्जी परोसी, चपातियां दीं और उन्हें खाने के लिए कहा। टोडरमल ने एक टुकड़ा खाया, फिर दूसरा टुकड़ा खाया और वह खाते-खाते अचानक रुक गए। यह देखकर मां ने पूछा, बेटा। क्या बात है? क्या आज तुम्हें सब्जी अच्छी नहीं लग रही है? टोडरमल ने सहजता से जवाब दिया, नहीं मां, ऐसी बात नहीं है। पर मुझे लग रहा है कि आज आप सब्जी में नमक डालना भूल गई हैं। बेटे की बात सुनकर मां हैरानी से देखने लगीं। इस पर टोडरमल ने पूछा, मां क्या मैंने कोई गलत बात कह दी। आप मुझे इतनी हैरानी से क्यों देख रही है? यह सुनकर मां मुस्करा कर बोलीं, बेटा, मैं तेरे सवाल का जवाब अवश्य दूंगी। पहले मुझे यह बता कि क्या आज तेरा ग्रंथ पूरा हो गया? टोडरमल प्रसन्न होकर बोले, हां, मां। आज मेरा ग्रंथ पूरा हो गया, तभी तो मैं चैन की सांस ले पा रहा हूं। फिर वह मां की ओर देखकर बोले, पर मां, तुम्हें यह कैसे पता चला कि मेरा ग्रंथ पूरा हो गया। मैंने तो अभी इस बारे में तुम्हें कुछ बताया ही नहीं। मां बोलीं, बेटा, दरअसल मैं कई दिनों से सब्जी में जान-बूझकर कुछ कमी छोड़ती थी कि इसी बहाने तुम मुझसे कुछ देर बातें कर लोगे। लेकिन तुम अपने काम में इतने मगन थे कि तुम्हें सब्जी की कमी का पता ही नहीं चलता था। सच कहा गया है, किसी भी काम को पूरी लगन से करना चाहिए, सफलता जरूर मिलती है। टोडरमल का वह ग्रंथ मोक्षमार्ग अत्यंत प्रसिद्ध है।

१०६०) कबीर की सीख - एक राजा ने कबीर से प्रार्थना की कि आप दया करके मुझे सांसारिक बंधनों से छुड़ा दो। कबीर ने कहा, आप तो हर रोज पंडित जी से कथा करवाते हो, सुनते भी हो। राजा बोला, कथा तो पंडित जी रोज सुनाते हैं, विधि विधान भी बतलाते हैं, लेकिन अभी तक मुझे भगवान के दर्शन नहीं हुए। शांति भी नहीं मिल पा रही। समझ नहीं आता क्या करूं। बड़ी उम्मीदें लेकर आपकी शरण आया हूं। आप ही कृपा करें। कबीर बोले, ठीक है, आप चिंता न करें। मैं कल कथा के वक्त आ जाऊंगा। देखूंगा कि क्या किया जा सकता है। अगले दिन कबीर वहां पहुंच गए जहां राजा पंडित से कथा सुन रहा था। राजा उठकर श्रद्धा से खड़ा हो गया। कबीर बोले- राजन्। अगर आपको प्रभु के दर्शन करने हैं तो आपको मेरी हर आज्ञा का पालन करना पड़ेगा। राजा ने वजीर को हुक्म दिया कि कबीर जैसा कहें, वैसा ही करना। कबीर ने वजीर को कहा कि एक खंभे के साथ राजा को बांध दो और दूसरे खंभे के साथ पंडितजी को बांध दो। राजा ने तुरंत वजीर को इशारा किया कि आज्ञा का पालन हो। दोनों को दो खंभों से बांध दिया गया। कबीर ने पंडित को कहा देखो, राजा साहब बंधे हुए है, उन्हें तुम खोल दो। पंडित हैरान होकर बोला, महाराज। मैं तो खुद ही बंधा हुआ हूं। मैं उन्हें कैसे खोल सकता हूं भला। फिर कबीर ने राजा से कहा, ये पंडित जी तुम्हारे पुरोहित हैं। वे बंधे हुए हैं। उन्हें तुम खोल दो। राजा ने बड़ी दीनता से कहा, महाराज। मैं भी बंधा हुआ हूं, भला उन्हें कैसे खोलूं। तब कबीर ने सबको समझाया कि जो पंडित खुद ही कर्मों के बंधन में फंसा है, जन्म-मरण के बंधन से छूटा नहीं, भला वह तुम्हें कैसे छुड़ा सकता है। अगर तुम सारे बंधनों से छूटना चाहते हो तो किसी ऐसे प्रभु के भक्त के पास जाओ जो जन्म-मरण के बंधनों से छूट चुका हो।

१०६१) खुद पर भरोसा - एक बार मगध सम्राट कुमारगुप्त को खबर मिली कि हूणों की सेना हिमालय पार करके हमला करने आ रही है। अपने सेनापतियों के साथ वह हमले का उत्तर देने की योजना बना रहे थे कि वहां राजकुमार स्कंदगुप्त आए और बोले- मैं युद्ध करने जाउंगा। उनकी छोटी उम्र देखते हुए कुमारगुप्त ने उन्हें काफी समझाया, हूणों से

डराया भी, लेकिन स्कंदगुप्त ने कहा कि राज्य और धर्म की रक्षा के लिए मर जाना गर्व की बात है। कुमारगुप्त बोले कि हूणों पर हमला करने के लिए हिमालय पार करना होगा, जो आसान नहीं है। इस पर समुद्रगुप्त ने कहा कि बैठे-बैठे मर जाने से आसान तो इस संसार में कुछ भी नहीं। वह हूणों को हराकर ही रहेंगे और यही उनका अंतिम निर्णय है। पुत्र हठ के आगे कुमारगुप्त ने हार मान ली और स्कंदगुप्त को युद्ध में जाने की आज्ञा दे दी। मगध के दो लाख वीरों के साथ युवराज स्कंदगुप्त राज्य की सीमा की ओर चल पड़े। हूणों की सेना पहाड़ के दूसरी तरफ थी तो स्कंदगुप्त ने इधर से कठिन चढ़ाई शुरू की। लेकिन बर्फ थी कि आगे बढ़ने ही न देती। अपने दृढ़ निश्चय के बल से आखिरकार वह पहाड़ की उस चोटी पर जा पहुंचे, जिसके दूसरी तरफ हूणों की सेना थी। हूणों ने कभी यह नहीं सोचा था कि दुर्गम पहाड़ों को पार करके भी कोई उन पर आक्रमण कर सकता है। जब उन्होंने देखा कि पहाड़ों की चोटी पर से भारी सेना उन पर आक्रमण करने उतर रही है तो वह भी युद्ध के लिए तैयार हुए। युद्ध शुरु हुआ तो थोड़ी देर बाद ही हूणों की हिम्मत छूटने लगी। वे लोग इधर से उधर भागने लगे। थोड़ी ही देर में सबसे बर्बर मानी जानेवाली हूण सेना मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। स्कंदगुप्त जब लौटकर आए तो कुमारगुप्त बोले, आज तुमने साबित कर दिया कि खुद पर यकीन हो तो पहाड़ भी छोटे पड़ जाते हैं।

१०६२) सच्ची शांति - आरिफ सुभानी नामक एक दरवेश हुए हैं। उन्हें दुनिया की किसी भी चीज से बिल्कुल भी लगाव न था। उनके पास पहनने के कपड़ों के अलावा उनकी अपनी कहलानेवाली कोई चीज नहीं थी। अत्याधिक शांतिप्रिय और सादगी पसंद होने के कारण उनके विचार दूसरों से कभी मेल ही नहीं खाते थे। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरजाघर हो या कोई और धार्मिक स्थल या व्यक्ति, वे किसी में कोई भेद नहीं मानते थे। एक बार उनके पास एक व्यक्ति धर्म की बातें सीखने आया। तब उन्होंने उस व्यक्ति से पूछा, क्या तुम्हें सिखाने के लिए और कोई दूसरा आदमी नहीं मिला? उस व्यक्ति ने कहा, नहीं, मुझे तो आपसे ही सीखना है। इस पर आरिफ सुभानी ने कहा, सुन भाई। यदि तू मुसलमान है तो ईसाइयों के पास जा, हिंदू है तो मुसलमान के पास जा और अगर इसाई है तो सिख के पास जा। उस व्यक्ति को यह सब सुनकर बहुत अटपटा सा लगा। उसने पूछा, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं, ऐसा कहने का आपका मकसद क्या है? मैं समझा नहीं। इस पर आरिफ बोले, मतलब यह कि तू जिस धर्म को मानता है, उस धर्म के विरोधी के पास जा। उस विरोधी के मुंह से उसके धर्म की बातें सुनते-सुनते जब तुझमें इतनी सहनशक्ति आ जाएगी कि तुझे किसी बात का दुख नहीं होगा और तुझे अपने विरोधियों के साथ रहने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं होगी, तभी तुझे सच्ची शांति मिलेगी और तभी तू खुदा के बंदों में भी स्थान पा सकता है। तू इस बात को अपनी गांठ में बांध ले कि कोई भी धर्म, दूसरे धर्म का बाधक नहीं होता। खोट हमारे मन में होती है कि हम अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे धर्मों को तुच्छ समझते हैं और उन्हें कुधर्म मानकर घृणा करते हैं। यह सुनकर उस व्यक्ति को समझ में आ गया कि वास्तव में सच्ची शांति क्या है।

१०६३) बलिदान का गर्व - पूना में प्लेग का प्रकोप हुआ। उनके निवारण का बहाना बनाकर तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने ऐसे कड़े कदम उठाए कि जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। मि. रेंड नामक एक अंग्रेज अधिकारी लोगों का अपमान और अत्याचार करने में सबसे आगे था। अमर शहीद दामोदर चाफेकर, बालकृष्ण चाफेकर और वासुदेव चाफेकर ने अंग्रेजों के अत्याचारों का बदला लेने का निश्चय किया और मि. रेंड और मि. आर्यस्ट को दिन-दहाड़े गोलियों से उड़ा

दिया। मुकदमे के बाद तीनों को फांसी की सजा सुना दी गई। इस घटना से देश में उनकी मां के प्रति बहुत गहरी सहानुभूति उमड़ी। लोग खून का घूंट पीकर रह गए। फांसी के बाद स्वामी विवेकानंद की प्रमुख शिष्या सिस्टर निवेदिता उनकी मां को सांत्वना देने के विचार से पूना पहुंची। उनका अनुमान था कि चाफेकर बंधुओं की मां बहुत दुखी होंगी। तीनों के तीनों पुत्र मारे गए थे। बुढ़ापे की लाठी टूट गई थी। किंतु जब सिस्टर निवेदिता उनके मकान पर पहुंची तो उनके स्वागत में वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी मिलीं। उस वीरमाता के धैर्य को देखकर सिस्टर की आंखें उमड़ आईं। मां ने सिस्टर निवेदिता से सादर कहा, सिस्टर, आप तपस्विनी हैं। आपने तो संसार की मोह-माया त्याग दी है, फिर आपकी आंखों में ये मोह के आंसू क्यों? आप विश्वास रखें, मुझे तो गौरव है कि मेरे तीनों बेटे देश के लिए बलिदान हुए। दुख है तो केवल इतना ही कि मेरी और कोई संतान नहीं है, जिसे मैं देश को दे सकूं। इतना कहते-कहते उनकी आंखें लाल हो उठीं। मुट्ठियां बंध गई। सिस्टर निवेदिता से न रहा गया। वह उनके चरणों में झुककर भीगे गले से बोलीं, धन्य हो मां। तुम्हीं सच्ची मां हो भारतवर्ष की। जब तक किसी देश में ऐसी मांएं हैं, तब तक उस देश का कोई कितना भी चाह ले, अहित नहीं कर सकता।

१०६४) नर्तकी की सीख - एक बार स्वामी विवेकानंद खेतड़ी से जयपुर आए। खेतड़ी नरेश उन्हें विदा करने के लिए जयपुर तक साथ आए थे। वहीं संध्या समय मनोरंजनार्थ नृत्य और गायन का आयोजन रखा गया था। इस कार्यक्रम के लिए विख्यात नर्तकी को आमंत्रित किया गया था। जब स्वामीजी से इस आयोजन में सम्मिलित होने का आग्रह किया गया तो उन्होंने यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि नृत्य-गायन में सन्यासी का उपस्थित रहना अनुचित है। जब नर्तकी को यह ज्ञात हुआ तो वह बहुत दुखी हो गई। उसे लगा कि क्या वह इतनी घृणा की पात्र है कि सन्यासी उसकी उपस्थिति में कुछ देर भी नहीं बैठ सकतै? नर्तकी ने दर्द भरे स्वर में सूरदास का यह भक्ति गीत गाया, प्रभु मोरे अवगुण चित्त न धरो, समदरसी है या तिहारो। भजन के बोल जब स्वामीजी के कानों में पड़े तो वे नर्तकी की वेदना को समझ गए। बाद में उन्होंने नर्तकी से क्षमा याचना की। इस घटना के बाद से स्वामीजी की दृष्टि में समत्व भाव आ गया। उसके बाद उन्होंने कहा कि वह दक्षिणेश्वर तीर्थ में न जा सकें, तो कहां जाएंगी? पतितों के लिए ईश्वर विशेष अनुग्रह रखता है पुण्यात्माओं के लिए उतना नहीं, क्योंकि उन्हें इसकी वैसी जरूरत नहीं है। प्रभु शरणागत की जाति, धर्म, लिंग आदि का विचार नहीं करता। वह तो गिरे हुए को उठाता है। इसलिए मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि उनके चरणों पर शीश झुकाने के लिए शत-शत चोर, डाकू, शराबी, वेश्याएं आएं ताकि उन सभी का उद्धार हो सके और समाज सही अर्थों में प्रगति कर सके। ईश्वर ने सभी मनुष्यों को समान बनाया है। जब उसकी दृष्टि में भेदभाव नहीं है तो उसकी रचना को भी परस्पर भेद-दृष्टि नहीं अपनाना चाहिए।

१०६५) पद की अकड़ - राजा अलेक्जेंडर अपने देश की आंतरिक दशा जानने के लिए वेश बदलकर जाया करते थे। एक दिन वह ऐसी जगह जा पहुंचे, जहां से वापसी का रास्ता उन्हें मालूम नहीं था। वहां उन्होंने किसी हवलदार को सरकारी वर्दी पहने देखा तो उससे पूछा, महोदय, मुझे शहर के चौक का रास्ता बता दीजिए। हवलदार अकड़कर बोला, मूर्ख। मैं सरकारी हाकिम हूं। मेरा काम रास्ता बताना नहीं है। राजा ने नम्रता से पूछा- महोदय। यदि सरकारी आदमी ही

किसी यात्री को रास्ता बता दे, तो कोई हर्ज नहीं है। वैसे क्या आप सिपाही हैं? हवलदार बोला, नहीं, उससे ऊंचा। राजा बोले, तब क्या नायक हैं? हवलदार बोला, उससे भी ऊंचा। राजा बोले, हवलदार हैं? हवलदार बोला, हां। पर तू इतनी पूछताछ क्यों कर रहा है? राजा ने कहा, मैं भी सरकारी आदमी हूं। हवलदार ने पूछा, क्या तुम नायक हो? राजा बोले नहीं, उससे ऊंचा। हवलदार बोला, हलवदार हो? राजा बोले, उससे भी ऊंचा। दरोगा? राजा बोले, उससे ऊंचा। हवलदार बोला, कप्तान? राजा- उससे भी ऊंचा। अब हवलदार घबराने लगा। उसने पूछा, आप मंत्रीजी हैं? राजा ने कहा, भाई। बस एक सीढ़ी और बाकी। अब हवलदार ने गौर से देखा पता चला कि ये तो राजा अलेक्जेंडर हैं। उसके होश उड़ गए। वह राजा के पैरों पर गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा। राजा अलेक्जेंडर ने मीठी वाणी में कहा, भाई। तुम पद की दृष्टि से कुछ भी हो, परंतु व्यवहार की कसौटी पर बहुत नीचे हो। जो जितना नीचे होता है, उसमें उतना ही अहंकार होता है और वह उतना ही अकड़ता है। यदि ऊंचा बनना चाहते हो तो पहले मनुष्य बनो। सहनशील और नम्र बनो। अपनी ऐंठ कम करो क्योंकि तुम जनता के सेवक हो। हवलदार को अपनी गलती समझ आ चुकी थी।

१०६६) चिड़िया का ज्ञान - राजा भानुप्रताप के विशाल महल में एक सुंदर वाटिका थी, जिसमें अंगूरों की एक बेल लगी थी। वहां रोज एक चिड़िया आती, मीठे अंगूर चुन-चुनकर खा जाती और अधपके व खट्टे अंगूरों को नीचे गिरा देती। माली ने चिड़िया को पकड़ने की बहुत कोशिश की, पर वह हाथ नहीं आई। हताश होकर एक दिन माली ने राजा को यह बात बताई। यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा, इस चिड़िया को वह खुद पकड़ेगा और उसे सबक सिखाएगा। अगले दिन वह वाटिका में छिपकर बैठ गया। जब चिड़िया अंगूर खाने आई तो राजा ने उसे पकड़ लिया। वह चिड़िया की गरदन मरोड़ने ही वाला था कि चिड़िया बोली, राजन, मैं आपको ज्ञान की चार महत्वपूर्ण बातें बताऊंगी। राजा ने कहा, जल्दी बता। चिड़िया बोली, पहली बात ये कि हाथ में आए शत्रु को कभी मत छोड़ो। राजा ने कहा दूसरी बात? चिड़िया ने कहा, असंभव बात पर भूलकर भी विश्वास मत करो। राजा ने कहा, अब चौथी बात भी जल्दी बता दो। इस पर चिड़िया बोली, चौथी बात बड़ी गूढ़ और रहस्यमयी है। मेरी गरदन थोड़ी ढीली करें क्योंकि मेरा दम घुट रहा है। कुछ सांस लेकर ही बता सकूंगी। चिड़िया की बात सुन राजा ने अपना हाथ ढीला किया। बस चिड़िया उड़कर एक डाल पर बैठ गई। राजा भौंचक्का सा उसे देख रहा था। चिड़िया बोली, हे राजन्, चौथी बात यह है कि ज्ञान की बात सुनने और पढ़ने से कुछ लाभ नहीं होता, उस पर अमल करने से होता है। मैं आपकी शत्रु थी। फिर भी, मुझे पकड़ने के बाद आप मेरी अच्छी अच्छी बातों के बहकावे में आ गए और मुझे छोड़ दिया। अब तो आप अपनी गलती पर बस पछता सकते हैं। इतना कह चिड़िया उड़ गई और राजा वहीं ठगे से खड़े रह गए।

१०६७) सिद्धि का रहस्य- महर्षि सूत जी से गुरु वेदव्यास जी ने कहा, उग्रश्रवा, तुम्हारी तपस्या कठोर एवं साधना उत्कृष्ट है। लेकिन अभी तुमने अध्यात्म-ज्ञान के रहस्य को नहीं जाना है। यह रहस्य गुरुभक्त अनिमेष के पास है। जाओ और शिव नगरी-काशी जाकर उनसे अध्यात्म के सच्चे स्वरूप की शिक्षा प्राप्त करो। व्यास की बात पर उग्रश्रवा उद्विग्न हो उठे। सोचा कि काशी के साधारण से व्यक्ति अनिमेष के सामने उनकी सारी तपस्या निष्फल हो गई। फिर भी वह गुरुभक्त अनिमेष तक जा पहुंचे। उन्हें आया देख अनिमेष बोले, मुझे ज्ञात है कि अविश्रांत दुर्गमपथ पार करके आप मेरे

समीप आए हैं। थोड़े विश्राम के बाद जिज्ञासा बताइए। उग्रश्रवा ने निवेदन किया, आप मुझे अध्यात्म ज्ञान को समझाने की कृपा करें। अनिमेष बोले, हे देव। मुझे भली-भांति ज्ञात है कि निरंतर कठोर तप से आपकी देह में पक्षियों द्वारा घोंसले बना लेने पर भी आप विचलित नहीं हुए। किंतु सबसे बड़े अध्यात्मवेत्ता होने का मिथ्या गर्व आपके लिए अनिष्टकर बन गया। साधना को छिन्न-भिन्न करनेवाला अहंकार दीर्घ साधना के बाद भी आप में छिपा रहा। अनिमेष ने संयत वाणी में अध्यात्म का रहस्य रखते हुए कहा कि मैं स्वयं अपने सद्गुरु का यंत्र मात्र हूं। मेरे अंदर उपस्थित सब के सब सद्गुण मेरे गुरुदेव के हैं। जो कमियां हैं, वे सिर्फ मेरी हैं। मेरे गुरुदेव ने ही मुझे शिक्षा दी है कि सच्ची साधना, यथार्थ तप का मूल उद्देश्य अहं का उन्मूलन और अच्छेदन है। हे तपोधन उग्रश्रवा। सच्ची साधना क्रिया में नहीं, विचारों एवं भावनाओं में निहित है। जो समस्त प्राणियों में मैत्री भाव रखता है, सबका हित चिंतन करता है, वही सच्चा अध्यात्मवेत्ता है। किसी प्राणी के साथ द्रोह-भाव विहीन जीवनवृत्ति ही श्रेष्ठ धर्म है। अनिमेष की वाणी सुन उग्रश्रवा ने सच्ची साधना एवं सच्ची सिद्धि के रहस्य को जान लिया।

१०६८) मंजिल की राह - मियामी के गरीब इलाके में लेस ब्राउन और उनके जुड़वा भाई को उनकी कामवाली बाई ने गोद ले लिया था। बचपन से ही लेस को डिस्क जॉकी बनने की धुन सवार थी। घर की आर्थिक स्थिति बेहद दयनीय थी। इस हाल में भी लेस ट्रांजिस्टर पर डिस्क जॉकियों के कार्यक्रम सुनते थे। लेस ने अपने एक छोटे से कमरे को काल्पनिक रेडियो स्टेशन बना लिया। बाल बनाने का ब्रश माइक्रोफोन बन जाता था और वह काल्पनिक श्रोताओं के सामने अपनी प्रस्तुति देते थे। उनकी चाह ने उन्हें रेडियो स्टेशन तक पहुंचा दिया। वह वहां पर डिस्क जॉकियों के लिए कॉफी, लंच आदि पहुंचाने का काम करते रहे। किसी को अंदाजा नहीं था कि लेस के मन में क्या है? अचानक डीजे की तबीयत खराब हो गई। लाइव कार्यक्रम चल रहा था। स्टेशन मास्टर बोले, लेस, जल्दी से कहीं से एक डीजे तलाश कर लाओ। एक पल में ही लेस ने जवाब दिया कि सर, डीजे का काम तो मैं खुद भी कर सकता हूं। स्टेशन मास्टर यह सुनकर हैरान रह गए। उन्होंने पूछा, आर यू श्योर? लेस ने कहा, जी सर। इसके बाद लेस कंट्रोल पैनल की सामनेवाली सीट पर बैठे और माइक्रोफोन का स्विच ऑन करते हुए उन्होंने कुछ ऐसा बोलना शुरू किया जिसे ट्रांजिस्टर सुननेवाले श्रोताओं ने आज तक नहीं सुना था। आवाज में गजब का उत्साह, चुस्ती-फुर्ती और स्टइाल से श्रोताओं को जोड़ने की तरकीब ने उन्हें पल में सुपरहिट बना दियां इसके बाद लेस ब्राउन का करियर जो शुरू हुआ, तो वह उन्हें राजनीतिक और सार्वजनिक भाषणों, विश्व प्रसिद्ध मोटीवेटर और टेलिविजन के क्षेत्र तक ले गया। लेस ब्राउन ने यह साबित कर दिया कि यदि चाह हो तो लगन और संघर्ष की बदौलत व्यक्ति कहीं से भी शुरुआत कर शिखर तक पहुंच सकता है।

१०६९) लक्ष्य पर ध्यान - म्यांमार के राजा थिबा महान ज्ञानयोगी थे। जितना गहरा उनका ज्ञान था, उतने ही वे सरल और निरहंकारी थे। उनके जीवन का लक्ष्य ही प्रजा की सेवा करना एवं प्रभु भक्ति में संलग्न रहना था। प्रजा एवं परमात्मा की भक्ति एवं सेवा में निश्छलता एवं पवित्रता ही उनकी अतुल्य उपलब्धियों का कारण थी। एक बार एक अहंकारी भिक्षुक उनके पास आया और बोला, राजन। मैं वर्षों से अखंड जप-तप करता आ रहा हूं, कठोर साधना करता रहा हूं, लेकिन आज तक मुझे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई, जबकि आप राजवैभव में लिप्त होने के बावजूद परमात्मा के मार्ग पर बहुत

आगे बढ़ चुके है। मैंने सुना है, आपको ज्ञानयोग की प्राप्ति हुई है। क्या वजह है? राजा बोले, भिक्षुक, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं उचित समय पर दूंगा। अभी तो तुम यह दीपक लेकर मेरे महल में निस्संकोच प्रवेश करो। मनचाही चीज ले सकते हो, महल के सारे सुख भोग सकते हो। तुम्हारे लिए कोई रोक-टोक नहीं है। पर यह ध्यान रहे कि दीपक हरगिज न बुझे। अगर दीपक बुझ गया तो तुम्हें कठोर दंड भोगना होगा। भिक्षुक पूरे महल में दीपक लेकर घूमा, सुख-भोग के साधन देखे, राजवैभव देखा, सब कुछ देख घूमकर वापस आया। राजा थिबा ने उससे पूछा, कहो बंधु, तुम्हें मेरे महल में क्या चीज पसंद आई? राजन्, मेरा अहोभाग्य जो आपने मेरे लिए राजवैभव के सारे द्वार खुले रख छोड़े। पर छप्पन भोग, सुरा-सुंदरी, नृत्य-संगीत इन सारी चीजों का आस्वाद लेने के बावजूद मेरे मन को कुछ भी अच्छा नहीं लगा। चाहकर भी सारे सुखों का आनंद नहीं ले पाया, क्योंकि मेरा सारा ध्यान आपके दिए हुए इस दीपक की ओर था। भिक्षुक की बात सुनकर राजा ने कहा, बस यही वजह है कि मैं राजा होकर भी राजवैभव, ऐशोआराम से अलग हूं। मेरा ध्यान या तो प्रजा पर रहता है या फिर परमात्मा में।

१०७०) सिकंदर से सामना - सिकंदर एक महत्वाकांक्षी राजा था। उसकी सबसे बड़ी इच्छा थी कि वह दुनिया के सभी देशों को जीतकर विश्व विजेता का सम्मान प्राप्त करे। उसने अपनी विशाल सेना के बल पर अनेक छोटे-छोटे देशों को युद्ध की चुनौती दे डाली। जीवन में उसने खूब खून खराबा किया और कई देशों पर अपना अधिकार भी कर लिया। लोगों में सिकंदर नाम की दहशत इतनी बढ़ गई कि लोग सिकंदर को क्रूर और खूनी समझकर उसके नाम से ही कांप उठते थे। एक वृद्ध महिला जब भी सिकंदर की क्रूरता के बारे में सुनती, वह दुखी हो जाती थी। वह सदा यही कहा करती, दूसरे का खून बहाकर इकट्ठा की गई संपत्ति से कभी भी किसी को सुख शांति नहीं मिलती। कोई सिकंदर को यह बात क्यों नहीं बताता? एक दिन सिकंदर ने एक नगर को चारों तरफ से घेर लिया। जब उसे भूख लगी, तो उसने एक मकान का दरवाजा खटखटाया। वह मकान उसी वृद्ध महिला का था। उसी महिला ने दरवाजा खोला। सैनिक वेश में खड़े व्यक्ति को देखकर उसे लगा, हो न हो यह सिकंदर ही है। सिकंदर ने कहा, मां, मैं भूखा हूं, कुछ खाने को दो। उसकी बात सुनते ही वह महिला अंदर गई और कपड़े से ढकी थाली लेकर लौटी। सिकंदर ने कपड़ा हटाया, तो भोजन की जगह सोने के जेवरात देखकर वह बोला, मैंने तो खाना मांगा था। क्या ये मेरी भूख मिटा सकते हैं? महिला ने निर्भीकता से कहा, यदि तुम्हारी भूख रोटियों से मिटती, तो तुम अपना घर व देश छोड़कर यहां संपत्ति लूटने क्यों आते? मेरे जीवन की कमाई का यह सोना ले जाओ, पर मेरे नगर पर चढ़ाई न करो। वृद्ध महिला ने सिकंदर को झकझोर दिया। वह उनके चरणों में झुक गया। वृद्धा ने प्रेम से उसे भरपेट भोजन कराया। सिकंदर उस नगर को जीते बिना ही वापस चला गया।

१०७१) गुरु का आदेश - भगवान श्रीकृष्ण को उज्जयिनी के सुविख्यात विद्वान और धर्मशास्त्रों के प्रकांड पंडित ऋषि संदीपनी के पास विद्या अध्ययन के लिए भेजा गया। ऋषि संदीपनी भगवान श्रीकृष्ण और दरिद्र परिवार में जन्मे सुदामा को एक साथ बिठाकर शास्त्रों की हर प्रकार से शिक्षा देने लगे। श्रीकृष्ण गुरुदेव के यज्ञ हवन के लिए स्वयं जंगल में जाकर लकड़ियां काटकर लाया करते थे। वे देखते और समझते थे कि गुरुदेव तथा उनकी पत्नी दोनों परम संतोषी हैं। श्रीकृष्ण रात के समय गुरुदेव के चरण दबाया करते और सबेरे उठते ही उनके चरण स्पर्श कर आशीर्वाद ले अपने दिन का शुभारंभ

करते। कई वर्ष गुरु से शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत उनकी शिक्षा पूरी हो गई। शिक्षा पूरी होने के बाद श्रीकृष्ण को ब्रज लौटना था। वह विदा लेने से पूर्व अपने गुरु ऋषि संदीपनी के पास पहुंचे। गुरु के चरणों में बैठते हुए हाथ जोड़कर बोले, गुरुदेव, मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं दक्षिणा के रूप में आपको कुछ भेंट करूं। उनकी बात सुनकर ऋषि संदीपनी ने मुस्कराकर उनके सिर पर प्यार से हाथ रखते हुए कहा, वत्स कृष्ण। सुनो, ज्ञान बदले में कुछ लेने के लिए नहीं दिया जाता है। सच्चा गुरु वही है, जो शिष्य को शिक्षा के साथ संस्कार भी देता है। मैं दक्षिणा के रूप में यही चाहता हूं कि तुम औरों को भी संस्कारित करते रहो। क्योंकि शिक्षा के दौरान ऋषि जान गए थे कि वह तो मात्र गुरु हैं, यह बालक आगे चलकर जगद्गुरु कृष्ण के रूप में ख्याति पाएगा। उन्होंने कहा, वत्स, मैं तुमसे यही कामना करता हूं कि तुम जब धर्मरक्षार्थ किसी का मार्गदर्शन करो, तो उसके बदले में कभी भी कुछ स्वीकार न करना। श्रीकृष्ण अपने गुरु का आदेश शिरोधार्य कर लौट आए। और अपने इसी गुरुकर्म का पालन करते हुए, आगे चलकर उन्होंने अर्जुन को न केवल ज्ञान दिया, अपितु उनके सारथी भी बने।

१०७२) बुद्धि का प्रयोग - एक शिष्य ने गुरु से पूछा, गुरुजी सभी प्राणी जन्म लेते हैं और मरते हैं। इस जगत के सभी प्राणी चाहे वे जीव जंतु हो अथवा मनुष्य, सभी में भूख, पीड़ा, हर्ष आदि के भाव प्रकट करने की क्षमता है। सभी अपना बचाव करना भी जानते हैं। सभी को बीमारी आदि से भी जूझना पड़ता है। पशु-पक्षी, जीव-जंतु, मनुष्य सभी का अंत निश्चित है, लेकिन क्या कारण है कि केवल मनुष्यों में ही साधु, तपस्वी, ज्ञानी, चोर, डाकू, लुटेरे, आतंकवादी, वहशी दरिंदे आदि होते हैं? मनुष्यों में ही भांति भांति की जातियां और धर्म क्यों होते हैं? शिष्य का प्रश्न सुनकर गुरुजी मुस्कुरा कर बोले, तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न पूछा वत्स। दरअसल इसके पीछे प्रमुख कारण है व्यक्ति के अंदर बुद्धि का होना। बुद्धि के कारण ही मनुष्य वह भी हो सकते हैं जो पशु-पक्षी, जीव-जंतु आदि नहीं हो सकते। वह पंडित, ज्ञानी, तपस्वी, चोर, लुटेरे और आतंकवादी भी हो सकते हैं। किंतु मनुष्य अपनी बुद्धि का सार्थक प्रयोग करने के बजाय भटक जाता है और गलत कार्यों के वशीभूत अपने जीवन को बर्बाद कर अपनी बुद्धि का गलत प्रयोग कर विनाश की ओर चला जाता है। इस बुद्धि का सही दिशा में ही प्रयोग करना चाहिए। बुद्धि का प्रयोग करके मनुष्य ने स्वयं को एकता के सूत्र में बांधने की जगह धर्मों, जातियों और विभिन्न पेशों में बांट लिया है और असंख्य विवादों को जन्म दिया है। यदि मनुष्य चाहता तो वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करके सारी मनुष्य जाति को एकता के सूत्र में बांधकर अपना जीवन सार्थक व सफल बना सकता था किंतु उसने ऐसा नहीं किया। यदि अभी भी मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग अच्छे व नेक कार्यों में करे तो वह जीवन को कामयाब बना सकता है जो कि जीव जगत के अन्य प्राणी नहीं कर सकते। शिष्य गुरु की बात से सहमत हो गया।

१०७३) रूमी की किताबें - एक शाम मशहूर सूफी और दार्शनिक रूमी दरिया किनारे कुछ लिख रहे थे। उनके इर्द-गिर्द उनकी खुद की लिखी किताबों का ढेर लगा था। उस दौर में किताबें हाथ से लिखी जाती थीं। रूमी इतने ऊंचे दर्जे के विद्वान थे कि उनसे दूर -दूर से लोग पढ़ने आते थे। वह लोगों को पूरी रुचि लेकर पढ़ाते भी थे। उस वक्त रूमी दरिया किनारे खामोशी और मन की गहराइयों से कुछ लिखने में व्यस्त थे कि तभी शम्स तबरेज उनके पास आए। शम्स तबरेज बिल्कुल फटेहाल, उजड़े से बालों के साथ उनके सामने आकर बैठ गए। रूमी ने उनको देख उनका हाल पूछा और फिर

लिखने लगे। शम्स तबरेज ने उनके इर्द गिर्द ढेर किताबों को देखा। वह रूमी जैसे विद्वान तो नहीं थे, फिर भी पूछ बैठे कि यह क्या है, इनमें क्या है? अपनी विद्वता पर गर्व करनेवाले रूमी ने कहा इसमें जो है वह तुम नहीं जानते। यह इल्म है तुम्हारे बस का नहीं। शम्स तबरेज ने फौरन किताबों को उठाया और दरिया में फेंक दिया। अपनी बरसों की मेहनत को पानी में डूबता देख रूमी चीख पड़े। बोले- यह क्या किया शम्स, मेरी सारी मेहनत तबाह कर दी? शम्स मुस्कुराए और कहा ठंड रख रूमी और दरिया में हाथ डाल एक किताब निकाली। एक के बाद एक किताबें सब पानी से हाथ डालकर दरिया से निकाल दीं। रूमी की आंखें खुली रह गईं जब एक भी किताब न भीगी और न खराब हुई। उन्होंने शम्स से कहा, यह क्या है शम्स और कौन सा इल्म है? शम्स ने कहा यह वह जो तुम्हें नहीं आतां यह इल्म तुम्हारी समझ से बाहर है। यह कहते हुए शम्स वहां से चले गए। इसीलिए कहा जाता है कि किसी को कम मत समझो। अपने ज्ञान पर इतराओ मत। हो सकता है सामनेवाले को वह आता हो जो तुम्हे न आता हो। ईश्वर ने हर एक को खूबियां दी हैं, इसलिए सबकी इज्जत करें।

१०७४) परीक्षा धैर्य की - एक बार स्वामी विवेकानंद का एक शिष्य उनके पास आया और उसने कहा, स्वामी जी, मैं आप की तरह भारत की संस्कृति, दर्शन और रीति-रिवाज का प्रचार-प्रसार करने के लिए अमेरिका जाना चाहता हूं। यह मेरी पहली यात्रा है। आप मुझे विदेश जाने की अनुमति और अपना आशीर्वाद दें। स्वामी जी ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा फिर कहा, सोच कर बताऊंगा। शिष्य हैरत में पड़ गया। उसने फिर कहा, स्वामीजी, मैं आपकी तरह ही सादगी से अपने देश की संस्कृति का प्रचार करूंगा। मेरा ध्यान और किसी चीज पर नहीं जाएगा। विवेकानंद ने फिर कहा, सोच कर बताऊंगा। शिष्य ने समझ लिया कि स्वामी जी उसे विदेश नहीं भेजना चाहते इसलिए ऐसा कह रहे हैं। लेकिन फिर भी वह उनके पास ही रुक गया। दो दिनों के बाद स्वामी जी ने उसे बुलाया और कहा, तुम अमेरिका जाना चाहते हो तो जाओ। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। शिष्य ने सोचा कि इतनी छोटी सी बात के लिए दो दिन सोचने में क्यों लगे। उसने अपनी यह दुविधा स्वामी जी को बताई। स्वामी जी ने कहा, मैं दो दिनों में यह समझना चाहता था कि तुम्हारे अंदर कितनी सहनशक्ति है। कहीं तुम्हारा आत्मविश्वास डगमगा तो नहीं रहा है। लेकिन तुम दो दिनों तक यहां रहकर निर्विकार भाव से मेरे आदेश की प्रतीक्षा करते रहे। न क्रोध किया, न जल्दबाजी की और न ही धैर्य खोया। जिसमें इतनी सहनशक्ति और गुरु के प्रति प्रेम का भाव होगा, वह शिष्य कभी भटकेगा नहीं। मेरे अधूरे काम को वही आगे बढ़ा सकता है। किसी दूसरे देश के नागरिकों के मन में अपने देश की संस्कृति को अंदर तक पहुंचाने के लिए ज्ञान के साथ-साथ धैर्य, विवेक और संयम की आवश्यकता होती है। मैं इसी बात की परीक्षा ले रहा था। शिष्य स्वामी जी की इस अनोखी परीक्षा से अभिभूत हो गया।

१०७५) कीमती हीरा - बगदाद के खलीफा के पास एक गुलाम था जिसका नाम था हाशम। वह देखने में काफी बदसूरत था। दूसरे गुलाम उसकी बदसूरती का काफी मजाक उड़ाया करते थे, लेकिन हाशम इसकी कभी परवाह नहीं करता था। वह अपने खलीफा के प्रति वफादार था और हर वक्त उनकी सेवा के लिए तत्पर रहता था। उनके हर आदेश का पालन पूरे मनोयोग से करता था। अपना ध्यान हमेशा अपने काम पर लगाया करता था। वह इस बात की पूरी कोशिश रखता था कि खलीफा को किसी बात की तकलीफ न हो। एक बार खलीफा अपने कई गुलामों के साथ बग्घी से कहीं जा

रहा था। साथ में हाशम भी था। एक जगह कीचड़ में खलीफा के हाथ में हीरे-मोतियों की एक पेटी थी। घोड़े के फिसलने से खलीफा का हाथ हिला और वह पेटी खुल कर गिर गई। रास्ते में चारों ओर हीरे-मोती बिखर गए। खलीफा ने ऐसा शगुन माना कि यह होनी थी, लेकिन ईश्वर की कृपा से कहीं चोट नहीं लगी, जान नहीं गई। इसलिए खुश होकर उसने गुलामों से कहा, तुम सबको खुली छूट देता हूं। जाओ, जल्दी से अपने लिए हीरे-मोती उठाने की होड़ लग गई। लेकिन हाशम चुपचाप खलीफा के ही पास खड़ा रहा। तब खलीफा ने पूछा, तुमने मेरी बात नहीं सुनी क्या? तुम क्यों नहीं जा कर हीरे-मोती चुनते? क्या तुम्हें उनकी जरूरत नहीं है? हाशम ने जवाब दिया, मेरे लिए तो सबसे कीमती हीरा आप ही हैं। आपको छोड़कर कैसे जा सकता हूं। खलीफा बेहद खुश हुआ। हाशम की अपने प्रति वफादारी एवं हीरे मोती के प्रति अनासक्ति के उसके भाव ने खलीफा को बहुत प्रभावित किया। उसने उसी वक्त हाशम को गुलामी से मुक्त कर दिया।

१०७६) चाणक्य की झोपड़ी - यह बात उस समय की है जब चाणक्य एक जंगल में झोपड़ी बनाकर रहते थे। उनके निवासस्थान पर अनेक लोग उनसे ज्ञान व शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते। वह लोगों की समस्याओं का समाधान भी करते थे। जिस जंगल में वह रहते थे, वह पत्थरों और कंटीली झाड़ियों से भरा हुआ था। उस समय लोग नंगे पैर ही आया जाया करते थे। उनकी झोपड़ी तक पहुंचते-पहुंचते लोगों के पांव कांटे चुभने से लहूलुहान हो जाते। एक दिन कुछ लोग उस मार्ग से बेहद परेशानियों का सामना कर चाणक्य तक पहुंचे। वहां पहुंचने पर एक व्यक्ति उनसे निवेदन करते हुए बोला, आपके पास पहुंचने में हम लोगों को बहुत कष्ट हुआ। तमाम जमीन पथरीली व कांटों से भरी है। आप राजा से कहकर इस कंटीली जमीन व झाड़ियों को चमड़े से ढंकवाने की व्यवस्था करा दें। इससे लोगों का बचाव होगा और उनके पैर लहूलुहान नहीं होंगे। उस व्यक्ति की बात सुनकर चाणक्य मुस्कुराते हुए बोले, महाशय, सिर्फ यही चमड़ा बिछाने से समस्या हल नहीं होगी। कांटे व पथरीले पथ तो इस विश्व में अनगिनत हैं। ऐसे में पूरे विश्व में चमड़ा बिछवाना तो असंभव है। यदि आप लोग चमड़े के द्वारा अपने पैरों को सुरक्षित कर लें तो अवश्य ही पथरीले पथ व कंटीली झाड़ियों के प्रकोप से बच सकते हैं। वह व्यक्ति सिर झुकाकर बोला, हां गुरुजी, मैं आपकी बात पर अमल कर ऐसा ही करूंगा। इसके बाद चाणक्य बोले, मेरी इस बात के पीछे भी गहरा सार है। वह यह कि सबको सुधारने के बजाए पहले खुद को सुधारो। खुद को सुधारने पर तुम अपने कार्य में विजय अवश्य हासिल कर लोगे। <u>दुनिया को नसीहत देनेवाला कुछ नहीं कर पाता जबकि उस नसीहत का स्वयं पालन करनेवाला व्यक्ति कामयाबी की बुलंदियों तक पहुंच जाता है</u>।

१०७७) मंजिल की ओर - एक बार की बात है। एक गुरु सौ वर्ष के हुए तो उन्होंने तय किया कि अब योग समाधि लगाकर देह त्यागना है। लेकिन इससे पहले आश्रम का उत्तराधिकारी घोषित करना बाकी था। गुरु की सेवा में बीस वर्षों से एक शिष्य पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ जुटा था। गुरु ने उसे आज्ञा दी कि वह पहाड़ स्थित आश्रम से नीचे तराई में जाए और अध्यात्म की राह पर चलने के इच्छुक और तत्पर सौ युवकों को लेकर आए। शिष्य गुरु को प्रणाम करके चला। मार्ग में उसके मन में कई प्रश्न उठे। मन में आया कि गुरु मुझे ही उत्तराधिकार देंगे तो, मेरे पीछे इतने शिष्य और सहयोगी छोड़कर क्यों जा रहे हैं? लेकिन गुरुजी ने कहा है तो गलत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आखिरकार शिष्य नीचे तराई में आकर, सौ युवकों को एकत्र करके आश्रम के लिए रवाना हो गया। मार्ग में उसने देखा कि एक राज्य में मातम

मचा था। पता चला कि राज्य की अस्सी कन्याओं की बारात को लेकर एक जहाज समुद्र में डूब गया है। राजा ने घोषणा कर दी कि जो उन कन्याओं से विवाह करेगा, उसे अपार संपत्ति मिलेगी। यह सुनते ही सौ में से अस्सी युवक शिष्य का साथ छोड़ विवाह करने चल पड़े। बचे हुए बीस युवकों में से उन्नीस युवक एक-एक कर रास्ते की कठिनाइयों से हार मान कर लौटते गए। जब शिष्य अपने गुरु के पास पहुंचा तो उसके साथ मात्र एक युवक था। जाते ही उसने गुरु से कहा- गुरुवर, शुरू में मेरे मन में कई संदेह उठ रहे थे, पर अब मैं समझ गया आपने क्यों सौ लोगों को लाने के लिए कहा था। मैं यह जान गया हूं कि मंजिल की ओर निकलते सौ हैं, पर पहुंचता एक ही है। उसने गुरु के चरण पकड़कर उनसे क्षमा मांगते हुए अपनी गलती स्वीकार की। गुरु ने उसे हृदय से लगा लिया।

१०७८) पागल की बात - राजमार्ग पर एक घना वृक्ष था जिसकी शीतल छाया में बैठकर सभी राहगीर आराम करते थे। गपशप करते हुए अपनी थकान मिटाते थे। भीषण गर्मी पड़ रही थी। धरती-आकाश दोनों तप रहे थे। एक पागल उस पेड़ के नीचे सुस्ता रहा था और रह-रहकर अपनी मानसिक विक्षिप्तता के कारण जोर-जोर से अट्टहास भी कर रहा था। उसी समय एक आधुनिक वस्त्रों से सुसज्जित व्यक्ति उस वृक्ष के नीचे आया और उसने उस पागल से कहा-यहां से हट मुझे आराम करना है। पागल ने कहा- क्यों हटूं? तब उस व्यक्ति ने कहा- तू जानता नहीं मैं राजकीय अधिकारी हूं और यहां विश्राम करने का पहला हक मेरा है। पागल हंसा और दूसरी ओर चला गया। वह अधिकारी कुछ पल ही आराम कर पाया था कि एक संन्यासी वहां आए। गर्मी से उनका भी हाल बेहाल था। उन्होंने पेड़ के नीचे बैठे उस अधिकारी से कहा- थोड़ा सा उधर सरक जाइए, मैं भी वृक्ष की शीतलता ले लूं और अपनी थकान मिटा लूं। अधिकारी ने अपनी ऐंठ में कहा- क्यों सरकूं? मुझे आप जानते नहीं, मैं राजकीय अधिकारी हूं। मैं राजमहल में एक महत्वपूर्ण पर कार्यरत हूं। मैं नहीं सरकूंगा। संन्यासी बोले- तुम अगर राजकीय अधिकारी हो तो मैं भी राजगुरु हूं। इसलिए छाया में बैठने का अधिकारी मैं भी हूं। दोनों में विवाद शुरू हो गया। दोनों की वाणी में कटुता आ गई। उसी समय वह पागल आया और उसने जोर-जोर से हंसते हुए कहा- पागलों की तरह लड़ क्यों रहे हो? लड़ने की अपेक्षा तो मिल बांटकर छाया का उपयोग कर लो। जो काम लड़ने से नहीं होता वह प्रेम से हो जाता है। दोनों की ही थकान दूर हो जाएगी। इतना कहकर वह पागल जोर से ठहाका लगाते हुए वहां से चला गया। लेकिन वह राजपुरुष और राजगुरु दोनों सोच में पड़ गए पागल वह है या हम दोनों?

१०७९) सतगुरु का पाठ - एक बार एक सच्चे सतगुरु के शिष्यों में स्वयं को महाज्ञानी दिखाने की होड़ लगी हुई थी। एक दिन सच्चे सतगुरु ने सभी शिष्यों को अपने पास बुलाया। सतगुरु के पास अंगीठी में दहक रहे कोयले गर्मी की तपन दे रहे थे। उन्होंने अपने शिष्यों को कहा कि इसमें दहक रहा सबसे बड़ा कोयला निकाल कर मेरे पास रख दो ताकि मैं उसकी तपन को नजदीक से प्राप्त करूं। गुरु की आज्ञा मानकर शिष्यों ने तुरंत एक बड़ा अंगारा निकाल कर सतगुरु के पास रख दिया। थोड़ी देर में जो अंगारा तेजस्वी दिख रहा था और दहक रहा था, वह धीरे-धीरे ठंडा होने लगा और उस पर राख जमने लगी। कुछ देर बाद वह पूरी तरह से मुरझा कर कोयला बनकर रह गया। सतगुरु ने वह कोयला शिष्यों को दिखाते हुए कहा कि तुम सब लोग चाहे जितने तेजस्वी एवं ज्ञानी क्यों न हो, पर अपने जीवन में कोयले जैसी भूल ना कर बैठना। यह कोयला अगर अंगीठी में रहता तो देर तक गर्मी देता, परंतु अकेले यह ज्यादा देर तक न टिक सका।

अब न तो इसका श्रेय रहा और न ही इसकी प्रतिभा का लाभ हम उठा सकते हैं। हर एक प्रतिभा की अपनी एक जगह है, अपनी एक उपयोगिता है, अपनी एक खासियत है। न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है। इससे अलग मौखिक के सहारे स्वयं को ज्ञानी कहकर व्यक्तिगत प्रतिभा का दिखावा सिर्फ अहंकार है जो पतन और विनाश की ओर ही ले जाता है। इसलिए स्वयं को जानकर अपने भीतर शांति का अनुभव करें। सबसे सच्चा प्रेम करें और सबको सम्मान दें तो व्यक्तिगत प्रतिभा प्रदर्शन कर अपने अहं को तुष्ट करने की जरूरत ही नहीं रह जाएगी। हम आसानी से मानवता की जरूरत को समझकर भेदभाव से दूर रह सकते हैं।

१०८०) सच्चा कन्यादान - संत नजीर ईश्वर के परम भक्त थे। वे बेहद सादगी भरा जीवन जीते थे। उनके सद्‌गुणों के कारण उनकी ख्याति दूर दूर तक फैली थी। उनका ईश्वर में परम विश्वास था और मानना था कि भगवान जो कुछ करते हैं, भलाई के लिए ही करते हैं। दीन दुखियों की सेवा को वह ईश्वर सेवा मानते थे। संत नजीर पेशवा राजकुमारों को पढ़ाने जाया करते थे। उनके आने जाने के लिए पेशवा ने एक घोड़ी भी दे रखी थी। अक्सर वह इसी घोड़ी से ही राजकुमारों को पढ़ाने के लिए जाया करते थे। एक बार वे राजकुमारों को पढ़ाने के बाद अपना वेतन लेकर घोड़ी पर सवार जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें एक वृद्ध मिला। वह कुछ परेशान-सा लग रहा था। उसने नजीर को रोका और प्रार्थना की कि वह उसकी कुछ आर्थिक सहायता करें। पूछने पर उसने बताया कि उसे अपनी लड़की का विवाह करना है। यदि उसे कुछ रुपये मिल जाएं, तो वे विवाह के काम आ सकेंगे। नजीर बोले, बाबा। तुम्हारी जरूरत मेरी जरूरत समझो। मैं तुम्हारे काम आ सकूं, यह तो मेरा सौभाग्य है। ईश्वर की ही इच्छा थी कि हम दोनों की मुलाकात हो। आज संयोग भी अच्छा है, मेरी गांठ में अच्छी खासी रकम है। इसे लो और अपनी बेटी का विवाह करो। उन्होंने अपना पूरा वेतन उस बूढ़े व्यक्ति को दे दिया। उस बूढ़े ने स्वप्न में भी सोचा नहीं था कि एक अनजान व्यक्ति से ही उसे इतना रुपया मिलेगा। नजीर की उदारता देख उसकी आंखों में आंसू आ गए। उसने उन्हें बार-बार धन्यवाद दिया। यह देख नजीर बुदबुदाए- दौलत जो तेरे पास है, रख याद तू ये बात। खा तू भी और अल्लाह की कर राह में खैरात। नजीर आज अपने आपको बहुत भाग्यवान महसूस कर रहे थे। क्योंकि उनकी दृष्टि में इस तरह का सहयोग कन्यादान से कम नहीं था।

१०८१) समय की बचत - एक युवक अत्यंत नेक व समझदार था। वह निर्धनों व शोषितों पर अत्याचार होते हुए देख नहीं सकता था। वह सदैव इसी प्रयास के लिए सोचता रहता कि कैसे समाज से शोषक व शोषित वर्ग की खाई को पाटा जा सकता है। कैसे दुनिया में समानता आ सकती है और सबका जीवन अच्छा हो सकता है। यही सोचते हुए एक दिन वह कहीं जा रहा था कि उसकी नजर दीवार पर पुताई कर रहे एक श्रमिक पर पड़ी। उस युवक ने महसूस किया कि वह श्रमिक पुताई तो कर रहा था, पर इस ढंग से कि सामान व समय दोनों की बर्बादी हो रही थी। यह देख उससे रहा नहीं गया। वह उसके पास जाकर विनम्रतापूर्वक बोला, मित्र। क्या तुम ऐसी विधि सीखने की इच्छा रखते हो, जिसमें पुताई भी अच्छी तरह हो जाए और समय व सामान भी कम लगे? श्रमिक उसे अचरज से देखने लगा। उसका मालिक भी वहीं पर खड़ा था। फिर दोनों ने विचार करके एक साथ कहा, हां भाई। यदि तुम ऐसी कोई विधि जानते हो तो हमें अवश्य बताओ। उस युवक ने कमीज की आस्तीन ऊंची चढ़ाई व पुताई का सामान लेकर उपर चढ़ गया।

शाम होने से पहले ही उसने अपना सारा काम खत्म कर दिया। श्रमिक व मालिक उसकी इस समय व सामान बचाने की विधि से काफी प्रभावित हुए। जब युवक जाने लगा तो मालिक ने खुश होकर उसे पारिश्रमिक देना चाहा। उसने यह कहते हुए श्रमिक को दे दिया कि यह कार्य तो उसी का था, उसने तो बस, थोड़ी सी बुद्धि ही लगाई थी। वह युवक कोई और नहीं कार्ल मार्क्स था। मार्क्स ने साम्यवाद के रूप में एक ऐसी संकल्पना दी जिसमें इंसान का इंसान के हाथों शोषण संभव नहीं होता। इसकी व्यावहारिकता को लेकर भले बहस होती रहे, इसमें दो राय नहीं कि मार्क्स के विचार शोषितों के हाथ मजबूत करनेवाले महत्वपूर्ण हथियार साबित हुए।

१०८२) वैद्य का धर्म - झंडू भट्ट जी एक नेकदिल इंसान व अनुभवी वैद्य थे। एक बार सौराष्ट्र के बढ़वाणा राज्य के महाराज ठाकुर साहब बाल सिंह जी बहुत बीमार पड़ गए। ठाकुर साहब के लिए जाने कितने ही वैद्य और डॉक्टर आए और अपना उपचार आजमाकर तथा फर्क न पड़ने पर भी अपनी फीस पाकर चले गए। किसी भी वैद्य से फर्क न पड़ते देखकर अंतत: ठाकुर जी की चिकित्सा के लिए जामनगर से झंडू भट्ट को बुलाया गया। भट्ट जी को ठाकुर साहब का उपचार करते तीन माह बीत गए। तीन महीने बाद एक दिन ठाकुर साहब ने भट्ट जी से कहा- आप अपनी औषधि और उपचार आदि का बिल क्यों नहीं देते हैं? उसका भी तो भुगतान होना चाहिए। भट्ट जी ने हंसते हुए कहा- महाराज। ऐसी जल्दी भी क्या है? आप अच्छे हो जाएं, फिर आप जो कुछ देंगे, मुझे स्वीकार होगा। मगर, ठाकुर की स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा था। धीरे-धीरे उनकी बीमारी का कोप बढ़ता गया और एक दिन वह स्वर्ग सिधार गए। ठाकुर साहब के अंतिम संस्कार के बाद भट्ट जी बिना किसी से कुछ कहे-सुने अपने घर जामनगर लौट आए। बाद में राज्य की ओर से ठाकुर साहब के उपचार के लिए भट्ट जी को दो हजार रुपये का एक चेक भेजा गया। भट्ट जी ने वह चेक लौटाते हुए राज्याधिकारी को लिखा- ठाकुर साहब थोड़े दिन के मेहमान हैं, यह बात मुझे पहले से ज्ञात थी, पर मरीज की श्रद्धा टूट न जाए, इस दृष्टि से वैद्य का धर्म निभाते हुए मैं उनकी सेवा करता रहा। लेकिन जो रोगी मेरे हाथों से स्वस्थ नहीं होता, मैं उसका पैसा नहीं लिया करता। अत: आपका चेक सादर लौटा रहा हूं। राज्याधिकारी ने जब यह बात सबको सुनाई तो संपूर्ण राज्यसभा के पदाधिकारियों का मस्तक उनकी इंसानियत, अनुभव व नेकदिली के समक्ष आदर से झुक गया।

१०८३) मेहनत की जीत - द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सोइशिरो होंडा नामक एक युवक बिल्कुल दिवालिया हो गया। उसकी फैक्टरी तबाह हो गई, सारी पूंजी खत्म हो गई। फिर भी उसने हार नहीं मानी। किसी तरह उसने ऑटो पार्टस् का प्लांट खोला परंतु दुर्भाग्यवश भूकंप ने पार्टस् के उस प्लांट को भी नष्ट कर दिया। एक दिन उसके मित्र सांत्वना देने के लिए उसके पास बैठे थे। एक मित्र बोला, सोइशिरो, लगता है तुम्हारा भाग्य ही खराब है। जहां भी हाथ डालते हो, असफलता ही हाथ लगती है। मेरी मानो तो अपने भाग्य को मनाओ। मित्रों की बात सुनकर वह अपने उस मित्र के कंधे पर हाथ रखते हुए बोला, दोस्त, मैं भाग्य को नहीं मानता, केवल मेहनत और कर्म में विश्वास करता हूं। अभी भी मैंने कुछ खोया नहीं है, बल्कि अब तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं कुछ ऐसा करनेवाला हूं जिससे पूरी दुनिया में तहलका मचनेवाला है। सोइशिरो की बात सुनकर मित्रों को लगा कि असफलता व दिवालिएपन ने उसे पागल बना दिया है। वे उसके पास से उठकर चले गए। इसके बाद सोइशिरो ने एक बेकार जीआई इंजन लिया और उसे अपनी साइकिल

में लगाकर मोटरसाइकिल बना डाली। कुछ दिनों बाद उसके एक मित्र ने इस मोटासाइकिल को देखा और उससे अपने लिए भी ऐसी ही एक मोटारसाइकिल बनाने के लिए कहा। फिर एक और मित्र, फिर एक और मित्र, इस तरह यह सिलसिला चल पड़ा। धीरे-धीरे सोइशिरो का काम चल निकला। उसने १९४८ में जब अपनी पहली फैक्टरी खोली तो उसके पास पार्टस् खरीदने तक के लिए रुपए नहीं थे। अपनी पत्नी के गहने बेचकर उसने स्पेयर पार्टस् खरीदे। आखिरकार सोइशिरो होंडा की कठिन मेहनत एवं उनकी पत्नी का त्याग सफल हुआ और उनके द्वारा शुरू की गई कंपनी होंडा दुनिया की सर्वश्रेष्ठ कंपनियों में गिनी जाने लगी।

१०८४) वचन का प्रभाव - परम विरक्त संत स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज गढ़मुक्तेश्वर तीर्थ क्षेत्र में गंगा के किनारे पैदल भ्रमण करते हुए एक गांव में पहुंच गए। वह गांव के बाहर गंगा तट पर एक मंदिर में रुक गए। वहां सुबह-शाम गंगा स्नान करते और दिनभर साधना में लगे रहते। गांव के बुजुर्गों को पता चला कि मंदिर में एक संत आया हुआ है और वह तीन दिनों से निराहार है। एक बुजुर्ग स्वामी जी के पास पहुंचा और उसने कहा, महाराज जी, आज आप हमारे यहां भोजन करने की कृपा करें। स्वामी जी ने उत्तर दिया, हम उसी के घर में भोजन ग्रहण करते हैं, जिस घर का एक भी सदस्य तंबाकू, शराब तथा मांस का सेवन न करता हो। ज्यादातर परिवार मांस-मदिरा का सेवन नहीं करते थे, लेकिन हुक्का-बीड़ी का चलन तो घर-घर था। गांव का एक भी घर ऐसा नहीं निकला जिसके यहां बना भोजन स्वामी जी ग्रहण कर पाते। स्वामी जी हफ्ताभर बिना भोजन के रहे। आठवें दिन गांव के बुजुर्गों ने बैठक की। उनके मुखिया ने कहा कि कितने दुर्भाग्य की बात है, कि हमारे गांव में एक भी घर ऐसा नहीं है, जिसका एक भी सदस्य नशा न करता हो। कितनी शर्म की बात है कि एक संत तीन दिनों से भूखा है। इसके बाद, एक के बाद एक करके कुछ बुजुर्ग उठे तथा उन्होंने संकल्प लिया कि आज से वे हुक्का-बीड़ी नहीं पिएंगे। कुछ ने शराब व मांस न खाने का संकल्प लिया। उसी दिन शाम को कुछ लोग स्वामी जी के पास पहुंचे। वे हुक्के व शराब की बोतलें भी अपने साथ ले गए। इन सभी ने हाथ में गंगाजल लेकर मांस-मदिरा तथा तंबाकू का सेवन न करने की शपथ ली। तब स्वामी जी ने आशीर्वाद देते हुए एक घर की भिक्षा ग्रहण की। स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज ने बिना दुराग्रह के भोजन ग्रहण करने के नियम की शर्त पर सैकड़ों गांवों को व्यसनों से मुक्ति दिलाई।

१०८५) नेहरू की ताजगी - एक बार इलाहाबाद से एक सज्जन जवाहरलाल नेहरू से मिलने आए। बातचीत में उन्होंने कहा- पंडित जी, आपकी उम्र साठ वर्ष से ऊपर हो गई और आप गुलाब के फूल की तरह ताजे दिखाई देते हैं। मैं उम्र में आपसे बहुत छोटा हूं। लेकिन बूढ़ा सा हो गया हूं। आपकी इस ताजगी का रहस्य क्या है? पंडित जी हंस पड़े। बोले, इसके तीन कारण है। आगंतुक ने जिज्ञासा से पूछा- वे क्या हैं पंडित जी? पंडित जी ने कहा, पहला कारण यह है कि मैं बच्चों के साथ घुल-मिल जाता हूं। उन्हें प्यार करता हूं। उनके भोलेपन और मासूमियत का मेरी जिंदगी पर बड़ा असर पड़ता है। यह मुझे हर बार महसूस कराता है कि मैं उनके जैसा ही हूं। दूसरा कारण? उस आदमी ने पूछा। मैं प्रकृति और उसके सुंदर दृश्यों से गहरा संबंध रखता हूं। पहाड़, नदी, पेड़, पक्षी, चांद, सितारे आदि के साथ मेरा घनिष्ठ नाता रहता है। हरे-भरे जंगल और ताजा हवाएं मेरी जिंदगी को तरोताजा रखती हैं। और तीसरा? पंडित जी मुस्कुराते हुए बोले, देखो,

ज्यादातर लोग छोटी छोटी बातों में फंसे रहते हैं। जरा जरा सी बातों से अपने दिमाग को खराब करते रहते हैं। मैं ऐसा नहीं करता। छोटी छोटी बातों का मेरे दिमाग पर कोई खास असर नहीं पड़ता। जिंदगी को लेकर मेरा सच, मेरा नजरिया बिल्कुल अलग है। रचनात्मक है। इतना कहकर पंडित जी खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले, मैं चिर यौवन संपन्न हूं, क्योंकि मैं बच्चों के साथ बच्चा बना रहना चाहता हूं। वह आदमी भी जीवन की इस सत्यता को जानकर बहुत प्रभावित हुआ और पंडित जी की इस मूल बात को उसने गांठ बांध लिया कि यदि तनावों ने जीवन को घेर लिया है तो बचपन का अनुसरण करें। कोई हमेशा बच्चा ही बने रहकर जीवन गुजारता है तो वह सदैव के लिए जवान बना रह सकता है।

१०८६) इंसानियत का धर्म - वर्जीनिया में जंगलों की पैमाइश चल रही थी। पैमाइश कर रही टीम को किसी स्त्री की चीत्कार सुनाई पड़ी। उस समय टीम भोजन कर रही थी। चीत्कार सुन लोग भोजन करना छोड़ उधर भागे। उन्होंने देखा कि एक स्त्री को कुछ लोग पकड़े हुए हैं और वह उनसे अपने को छुड़ाने की भरसक कोशिश कर रही है और साथ में छोड़ो... बचाओ चिल्ला भी रही है। जो लोग उसे पकड़े हुए थे उन्हें डर था कि यदि उन्होंने स्त्री को छोड़ दिया तो नदी में गिरे अपने बच्चे के साथ यह भी डूब जाएगी। नदी में गिरा बच्चा अभी मरा नहीं था। वह बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा था, लेकिन तैरना न जानने के कारण निकल नहीं पा रहा था। टीम में कई नवयुवक थे, लेकिन तैरना उन्हें भी नहीं आता था। उन्हें यह डर था कि कहीं बच्चे को बचाने के दौरान, वे भी न डूब जाएं। टीम को यह समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसे विकट हालात में वे क्या करें कि बच्चा भी बच जाए और उनके कार्य पर भी आंच न आए। तभी अचानक एक युवक ने अपने कपड़े उतारे और बिना देरी किए नदी में कूद गया। वह पानी को चीरते हुए डूबते बच्चे के पास पहुंचा। देखा बच्चा अभी जिंदा है। काफी कोशिश के बाद वह बच्चे को बचाकर ले आया। यह देख सभी उसके साहस की तारीफ करने लगे। लोगों ने कहा कि आज पहली बार उन्होंने इस युवक की बहादुरी देखी थी। अपनी तारीफ सुनकर उस युवक ने कहा, इसमें मेरी तारीफ करनेवाली कोई बात नहीं है। एक आदमी को दूसरे आदमी के संकट में काम आना चाहिए, क्योंकि यही इंसानी धर्म हैं। इस युवक का नाम था, वॉशिंगटन। आगे चलकर वही अमेरिका का प्रथम राष्ट्रपति बना, जिसकी साहस की कहानियां इतिहास में दर्ज हैं। कहते हैं जो महान होते हैं उनके लक्षण बचपन से दिखने लगते हैं।

१०८७) स्वर्ग का अधिकारी कौन - मरने के बाद एक व्यक्ति की आत्मा को यमदूत धर्मराज के सामने ले गए। दूतों ने धर्मराज को बताया कि यह एक बड़ा महात्मा है। युवावस्था में ही अपने माता-पिता और स्त्री-बच्चों को छोड़कर यह जंगल चला गया और जीवन भर तप करता रहा। धर्मराज ने कहा, कर्त्तव्यों को त्यागकर कोई धर्मात्मा नहीं बन सकता। इसे पुन: धरती पर भेजो और बता दो कि कर्त्तव्यपालन के साथ-साथ भजन करे तभी इसे स्वर्ग में स्थान मिलेगा अन्यथा नहीं। यमदूतों ने एक दूसरे व्यक्ति की आत्मा उपस्थित की और कहा, यह व्यक्ति बड़ा कर्त्तव्यपरायण है। काम को ही सब कुछ समझता है। इसकी स्त्री बीमार पड़ी और मर गई, पर इसने उसकी कुछ भी परवाह नहीं की। अपने कर्त्तव्यपालन में लगा रहा। धर्मराज ने कहा, ऐसे हृदयहीन व्यक्ति का स्वर्ग में क्या काम? भावनापूर्वक किया गया कर्त्तव्य ही प्रशंसनीय हो सकता है। जिसे अपने नैतिक कर्त्तव्यों का ज्ञान नहीं है, उसकी शारीरिक दौड़-धूप क्या महत्व रखेगी? इसे पृथ्वी पर भेजो और कहो कि भावनापूर्वक अपना जीवन जिए और दूसरों से प्रेम करना सीखे, तभी उसे स्वर्ग में

स्थान मिलेगा अन्यथा नहीं। अब यमदूत एक तीसरे व्यक्ति की आत्मा को लेकर आए। यमदूतों ने कहा, यह एक साधारण गृहस्थ प्राणी है। अपने पूरे जीवन में सदा आस्तिक रहा, पवित्र जीवन जिया, प्रेमपूर्वक परिवार को सुविकसित किया और दूसरों के उत्थान के लिए निरंतर प्रयास करता रहा। धर्मराज ने प्रसन्न होकर कहा, स्वर्ग ऐसे ही लोगों के लिए बनाया गया है। इसे आदरपूर्वक ले जाओ और इसके वहां आनंदपूर्वक रहने की संपूर्ण व्यवस्था कर दो। अब बाकी दोनों आत्माएं समझ गई थीं कि वास्तव में पवित्र जीवन जीनेवाला, प्रेमी स्वभाव का परमार्थ-परायण कर्त्तव्यनिष्ठ साधक ही स्वर्गीय आनंद का अधिकारी होता है।

१०८८) जीवन की जागीर - तर्कशास्त्र के विद्वान पंडित रामनाथ ने नवद्वीप के पास एक निर्जन वन में विद्यालय स्थापित किया था। उस समय कृष्ण नगर में महाराज शिवचंद्र का शासन था। महाराज नीति कुशल होने के साथ विद्यानुरागी भी थे। उन्होंने पंडित रामनाथ की चर्चा सुनी। उन्हें यह जानकर दुख हुआ कि ऐसा महान विद्वान गरीबी में दिन काट रहा है। महाराज वहां गए तो रामनाथ जी ने उनका स्वागत किया। राजा ने उनसे पूछा, पंडित प्रवर, मैं आपकी क्या मदद करूं? पंडित जी ने कहा, राजन्। भगवत्कृपा ने मेरे सारे अभाव मिटा दिए है, अब मैं पूर्ण हूं। राजा कहने लगे, मैं घर खर्च के बारे में पूछ रहा हूं। पंडित जी बोले, इस बारे में गृहस्वामिनी मुझसे अधिक जानती हैं। आप उनसे पूछ लें। राजा पंडित जी के घर गए और साध्वी गृहणी से पूछा, माता जी घर खर्च के लिए कोई कमी तो नहीं है? इस परम साध्वी ने कहा, महाराज। भला सर्व समर्थ परमेश्वर के रहते उनके भक्तों को क्या कमी रह सकती है? राजा बोले, फिर भी माता जी, कुछ तो बताएं। साध्वी बोलीं, महाराज। कोई कमी नहीं है। पहनने को कपड़े हैं, सोने के लिए बिछौना हैं। पानी रखने के लिए मिट्टी का घड़ा है। खाने के लिए विद्यार्थी भिक्षा ले आते है। भला इससे अधिक की जरूरत भी क्या है। राजा ने आग्रह किया, देवी, हम चाहते है कि आप को कुछ गांवों की जागीर प्रदान करें। इससे होनेवाली आय से गुरुकुल भी ठीक तरह से चल सकेगा और आपके जीवन में भी कोई अभाव नहीं होगा। उत्तर में वह वृद्धा ब्राह्मणी मुस्कराई और कहने लगीं, प्रत्येक मनुष्य को परमात्मा ने जीवन रूपी जागीर पहले से ही दे रखी है। जो जीवन की इस जागीर को संभालना सीख जाता है, उसे फिर किसी चीज का कोई अभाव नहीं रह सकता। राजा निरुत्तर हो गए।

१०८९) ब्रह्मानंद की खोज - २१ वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते यूजी कृष्णमूर्ति जीवन के हर पहलू को लेकर प्रश्न करने लगे। उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान और पश्चिमी दर्शन का अध्ययन किया। इसी समय उनके एक मित्र ने उन्हें भगवान श्री रमण महर्षि के आश्रम में जाने के लिए कहा जो उस समय दक्षिण मद्रास के तिरुवन्नमलाई में था। सन १९३९ में बड़े अनमने भाव से यूजी वहां गए। भगवान रमण महर्षि को देखकर उन पर अलग ही प्रभाव पड़ा। यूजी ने उनसे तीन प्रश्न किए- क्या ब्रह्मानंद जैसी कोई चीज है? यूजी ने पूछा। हां है। रमण महर्षि ने उत्तर दिया। क्या इसका कोई स्तर होता है? यूजी ने पूछा। महर्षि ने कहा- नहीं, स्तर कतई संभव नहीं है। यह एक ही चीज है। या तो तुम वहां हो, या फिर नहीं हो। अब यूजी ने तीसरा और अंतिम प्रश्न किया- क्या ब्रह्मानंद को तुम मुझे दे सकते हो? रमण महर्षि ने इस गंभीर युवा व्यक्ति की आंखों में झांकते हुए उत्तर दिया- हां, मैं तुम्हें दे सकता हूं। लेकिन क्या तुम इसे ले सकते हो? उसी क्षण से यूजी के मन में लगातार यह प्रश्न चक्कर काटने लगा कि वह ऐसी कौन सी चीज

है, जिसे मैं धारण नहीं कर सकता। उन्होंने उसी समय संकल्प लिया कि रमण महर्षि ने मुझसे जो भी धारण करने के लिए कहा है, उसे मैं धारण करने के योग्य बनकर रहूंगा। इसके बाद वे रमण महर्षि के पास कभी नहीं गए। उस मुलाकात के तकरीबन बीस साल बाद यूजी ने कहा, क्या ब्रह्मानंद का अस्तित्व है? लेकिन दुर्भाग्यवश मैंने अपने इस प्रश्न के बारे में ही कभी कोई प्रश्न नहीं किया। क्योंकि मैंने यह सोच लिया था कि इस ब्रह्मानंद का अस्तित्व है। इसी सोच ने मेरे अस्तित्व की स्वाभाविक स्थिति को जकड़ रखा था। सच तो यह था कि आध्यात्मिक या मनोवैज्ञानिक ब्रह्मानंद जैसी कोई चीज होती ही नहीं।

१०९०) प्रेम की सीख - स्वामी रामतीर्थ उन दिनों अमेरिका में थे। एक दिन उनके पास एक महिला आई। वह आ तो गई थी, पर कुछ बोल पाने में असमर्थ थी। गहरे दुख ने उसकी आवाज को जकड़ रखा था। काफी देर वह यूं ही बैठी रही। इन क्षणों में रामतीर्थ भी उससे कुछ बोले नहीं, बस करुणापूर्ण नेत्रों से उसकी ओर देखते रहे। उनकी करुणापूर्ण दृष्टि उस महिला को छू गई। उसका जमा हुआ विषाद पिघल उठा। दुख की परत आसुओं में घुलने लगी। कुछ देर रोती ही रही। स्वामी रामतीर्थ उसे स्नेहभाव से निहारे जा रहे थे। उनके स्नेह की संजीवनी से वह जैसे-तैसे बोलने लायक हुई। भरे गले से उसने अपनी कथा सुनाई। कथा का सार इतना ही था कि वह प्रेम में छली गई थी। तन-मन-धन-जीवन, सब कुछ निस्सार करने के बाद भी उसे धोखा मिला था। उसकी बातें सुनने के बाद रामतीर्थ बोले- बहन, यहां हर कोई अपनी क्षमता के अनुसार ही बर्ताव करता है। जिसके पास जितनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक क्षमता है, वह उसी के अनुसार बर्ताव करने के लिए विवश है। जिनकी भावनाएं स्वार्थ एवं कुटिलता से भरी हैं, वे तो बस क्षमा के पात्र हैं। महिला का अगला प्रश्न था- तब क्या जीवन में सच्चा प्रेम पाना असंभव है? स्वामी रामतीर्थ ने कहा, सच्चा प्रेम मिलता है, पर उन्हें जो सच्चा प्रेम करना जानते हैं। महिला ने कहा, मेरा प्रेम भी तो सच्चा था। रामतीर्थ बोले- नहीं बहन, तुम्हारे प्रेम में स्वार्थ की मांग थी, उसमें किसी न किसी अंश में वासना भी घुली थी। सच्चा प्रेम तो सेवा, करुणा एवं श्रद्धा के रुप में ही प्रकट होता है। रामतीर्थ की बातों का अर्थ उसकी समझ में आ गया। वह समझ गई कि प्रेम केवल दिया जाता हैं, उसमें पाने की मांग नहीं होती। इसके बाद वह एक अस्पताल में नर्स बन गई।

१०९१) गणित ने दिखाई राह - प्रसिद्ध गणितज्ञ और ज्योतिषी भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती कम उम्र में ही विधवा हो गई। वह अत्यंत दुखी रहने लगी। भास्कराचार्य से अपनी पुत्री का दुख देखा न गया और वह उसे उसकी ससुराल से अपने घर ले आए। लीलावती यहां भी सारा दिन बैठकर अपने भाग्य पर आंसू बहाती रहती। एक दिन भास्कराचार्य बोले, बेटी, मैं तुम्हारा दुख समझता हूं। लेकिन जो हो चुका वह वापस तो नहीं आ सकता। यदि तुम इसी प्रकार रो-रोकर घुलती रही तो तुम्हारे अस्तित्व और व्यक्तित्व का नामो निशान ही मिट जाएगा। तुम्हें अपने समय को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए और अपने व्यक्तित्व को सार्थक रूप देने का प्रयास करना चाहिए। यह सुनकर लीलावती बोली, पिताजी, मैं क्या करूं? मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा। आप ही बताइए कुछ। भास्कराचार्य बोले, बेटी, तुम प्रखर बुद्धि हो। अपना मन गणित सीखने में लगाओ। यह तुम्हें सदमे तथा दुख को भुलाने में मदद करेगा और तुम्हें जीने की एक नई दिशा देगा। अपने पिता की यह बात लीलावती को ठीक लगी और वह अपना समय

गणित सीखने में लगाने लगी। धीरे-धीरे वह अपना सारा दुख भूलती गई। अब वह दिन रात गणित के प्रश्नों व पहेलियों में खोई रहती। उसने अंकगणित के अनेक नए नियम निर्धारित किए। उसके बनाए नियम आज तक माने जाते हैं। उसने अंकगणित पर अनेक ग्रंथों की रचना भी की। लीलावती ने पिता भास्कराचार्य को गणित संबंधी शोध कार्य में इतना सहयोग दिया कि उन्होंने अपने एक ग्रंथ का नाम भी लीलावती के नाम पर रखा। इस ग्रंथ ने लीलावती तथा भास्कराचार्य को अमर कर दिया। इस तरह लीलावती ने साबित किया कि यदि व्यक्ति दृढ़ संकल्प कर ले तो वह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी एक अलग राह बना सकता है।

१०९२) सही परिभाषा - प्राचीन काल की बात है। शंख और लिखित दो सगे भाई थे। दोनों भाई अलग-अलग आश्रमों में रहते थे। एक बार लिखित शंख के आश्रम पर आए। शंख आश्रम में नहीं थे। लिखित को भूख लगी, तो वे आश्रम में लगे वृक्षों से फल तोड़कर खाने लगे। थोड़ी देर में शंख वापस आश्रम में आए। आश्रम में आने के बाद उन्होंने लिखित से पूछा- भैया, तुम्हें ये फल कहां से मिले? लिखित ने कहा- ये इसी पेड़ से तोड़े हैं। यह जानकर शंख को बुरा लगा और वह बोले- तब तो तुमने चोरी की। अब तुम राजा के पास जाकर कहो कि तुम्हे वह दंड दे, जो एक चोर को दिया जाता है। लिखित ने राजा के पास जाकर वैसा ही कहा। राजा बोले- यदि मुझे दंड देने का अधिकार है, तो क्षमा करने का भी अधिकार है। मैं आपको क्षमा करता हूं। किंतु लिखित ने दंड देने का अपना आग्रह जारी रखा। अंत में राजा ने न चाहते हुए भी नियमानुसार उनके दोनों हाथ कटवा दिए। दंड पाकर लिखित शंख के पास गए और उनसे फिर क्षमा मांगी। शंख ने लिखित को नदी पर जाकर देवता व पितरों का विधिवत तर्पण करने को कहा। लिखित द्वारा कार्य संपन्न होते ही उनके कटे हाथ जुड़ गए। उन्होंने शंख को जाकर यह बात बताई, तो शंख बोले, मैंने अपने तप के प्रभाव से ये हाथ उत्पन्न किए हैं। लिखित ने पूछा- यदि आपके तप का ऐसा प्रभाव है तो आपने ही मेरे हाथ क्यों नहीं काट दिए? शंख ने जवाब दिया- तुम्हें दंड देने का अधिकार मुझे नहीं, राजा को ही था। इससे राजा के अधिकार का पालन हुआ और तुम भी दोषमुक्त हो गए। अधिकारों का संबंधित व्यक्ति द्वारा उपयोग करना उचित न्याय है। दंड भोगने पर ही उसका सही पश्चाताप होता है। शंख की बात सुनकर लिखित उनके समक्ष नतमस्तक हो गए। अब लिखित अधिकार की सही परिभाषा समझ गए थे।

१०९३) संकल्प की शक्ति - अमेरिकी शहर बाल्टिमोर की गलियों में एक बालक उल्टी रखी दूध की क्रेटों पर खड़ा होकर गेंद उछाला करता था। उसे खेलों से बहुत लगाव था। जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ, वैसे-वैसे उसका झुकाव एनबीए बास्केटबॉल की तरफ होता गया। वह हर तरह से स्वस्थ व चुस्त दुरुस्त था, लेकिन उसका कद महज पांच फीट तीन इंच था। वहीं एनबीए बास्केटबॉल खेलने वाले सभी खिलाड़ी छह फीट से अधिक थे। ऐसे में जब वह अपनी यह इच्छा व्यक्त करता कि वह एनबीए बास्केटबॉल खेलना चाहता है तो लोग उस पर व्यंग्य करते और कहते, एनबीए बास्केटबॉल के लिए लंबा कद चाहिए। यह छोटे कद के लोगों के लिए नहीं है। जब लोग यह सब बोलकर उसका उत्साह तोड़ने की कोशिश करते तो वह कहता, बेशक मेरा कद लंबा नहीं है, लेकिन मेरी गति, स्टेमिना और विस्फोटकता शायद एनबीए बास्केटबॉल के अन्य खिलाड़ियों से अधिक है। तुम सब देखना कि मैं अपने इन्हीं गुणों के कारण एक दिन एनबीए

बॉस्केटबॉल का खिलाड़ी बनकर रहूंगा। लोग उसकी सकारात्मक बातों को सुनकर चुप हो जाते। बालक नकारात्मक बोलनेवाले व्यक्तियों को नजरअंदाज करते हुए अपनी क्षमता बढ़ाता रहा। आखिर वह दिन भी आया जब उसका चुनाव एनबीए बास्केटबॉल के लिए हो गया। उसकी विशेष खेल क्षमता को देखकर सभी दंग रह गए। वह कोर्ट में अपनी विस्फोटक गति और चुस्ती से पूरा कर लेता था। उसने अपनी इच्छा को अपने संकल्प के जरिए पूरा किया। बालक का नाम था टायरोन। पांच फुट तीन इंचवाले टायरोन एनबीए के इतिहास में अब तक के सबसे छोटे कद के खिलाड़ी हैं। उनके संकल्प के आगे कद की बाधा आड़े नहीं आ पाई और उन्होंने सहजता से इस पर विजय पाकर इतिहास रच दिया।

१०९४) अभय का संदेश - स्वामी रामकृष्ण परमहंस बीमार थे। यह उनके जीवन का अंतिम समय था। इन्हीं दिनों स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरु से हिमालय के किसी एकांत स्थान में योग समाधि के लिए जाने की अनुमति मांगी। रामकृष्ण ने कहा, आसपास के लोग जब भूख से तड़प रहे हों और चारों तरफ अज्ञान का अंधेरा छाया हो, तो क्या तुम्हारी आत्मा स्वीकार करेगी कि एकांत समाधि में जाओ? यह स्वामी परमहंस की अपने शिष्य को प्रेरणा थी कि आत्मकल्याण के साथ जनकल्याण जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। कुछ समय बाद ही स्वामी रामकृष्ण का निधन हो गया। उनके तमाम शिष्य यहां-वहां बिखरने लगे। स्वामी विवेकानंद भी दीन-दुखियों की सेवा के लिए निकले। कुछ समय वह बनारस में भी रहे। वहीं किसी दिन वह देवी दुर्गा मंदिर के पास से निकल रहे थे कि बंदरों ने उन्हें घेर लिया। बंदर उनके हाथ में रखा प्रसाद भी छीनने लगे। स्वामीजी खुद को बचाने के लिए भागे तो बंदरों ने उन्हें दौड़ा लिया। अचानक एक वृद्ध संन्यासी प्रकट हुए और स्वामीजी को रोककर कहा, रुको। डरो मत, उनका सामना करो। यह सुनकर स्वामीजी पलटे और बंदरों की तरफ बढ़े। उनके ऐसा करते ही सभी बंदर तुरंत भाग गए। इस घटना का स्वामीजी ने कई बार जिक्र किया। वह कहते थे कि बंदरों से डरकर मैं चुप रह जाता, तो स्वामी परमहंस के बाद हम लोगों की जैसी दशा हो गई थी, उसे संभालते और खुद को बचाते हुए ही हम अपना जीवन गुजार देते। लेकिन स्वामी रामकृष्ण यह नहीं चाहते थे, इसलिए उन्हें प्रकट होकर विवेकानंद को अभय का संदेश देना पड़ा। इस घटना से स्वामी विवेकानंद को मंत्र मिला कि कभी डरकर भागो मत, पलटो और सामना करो। समस्याओं से डरकर भागने से बेहतर है, उनका डटकर मुकाबला करना।

१०९५) मूर्खता की पहचान - पुराने समय की बात है। एक मजदूर अपने गधे के साथ जंगल से होकर गुजर रहा था। उसे रास्ते में पड़ा हुआ एक चमकीला पत्थर दिखलाई दिया। उसे वह पत्थर अच्छा लगा। उसने पत्थर उठाया और अपने गधे के गले में लटका दिया। वह थोड़ा ही आगे बढ़ा था कि सामने से एक जौहरी आता मिला। जौहरी ने बेशकीमती पत्थर देख मजदूर से पूछा, भइया मैं यह पत्थर खरीदना चाहता हूं। बोलो इसके कितने पैसे लोगे? कुम्हार को पत्थर की कीमत के बारे में कोई इल्म नहीं था। फिर भी उसने मजे-मजे में कहा कि वह पत्थर के सौ रुपए लेगा। जौहरी ने कहा, सौ रुपए तो बहुत ज्यादा है। मैं इसके पचास रुपए से ज्यादा नहीं दूंगा। जौहरी यह सोचकर आगे बढ़ गया कि इसे कोई इस पत्थर का कोई और ग्राहक तो मिलेगा नहीं। थोड़ी देर में वह खुद पचास रुपए में पत्थर देने के लिए वापस आ जाएगा। पर मजदूर आगे बढ़ा तो उसे एक और जौहरी मिला। दूसरे जौहरी ने भी कीमती पत्थर को फौरन पहचान लिया और मजदूर से पूछा, भइया अपने गधे के गले में बंधा हुआ यह पत्थर बेचोगे? इस बार मजदूर कुछ चौंका और उसने पत्थर के दो सौ

रुपए मांग लिए। दूसरे जौहरी ने फौरन दो सौ रुपए देकर पत्थर ले लिया। तब तक पहले वाले जौहरी को चिंता हुई और वह भागता हुआ वापस आया कि चलो पत्थर खरीद ही लूं। यहां आने पर जब उसे पता चला कि मजदूर ने दो सौ रुपये में पत्थर बेच दिया तो खीझ कर बोला, अरे मूर्ख वह दो सौ रुपए का मामूली पत्थर नहीं, लाखों रुपए का बेशकीमती पत्थर था। मजदूर ने हंसते हुए जवाब दिया, मूर्ख मैं नहीं, आप हैं। मैं तो पत्थर की असली कीमती नहीं जानता था इसलिए उसे दो सौ रुपए में बेचा। आप तो उसकी असली कीमत जानते हुए भी ५० रुपये के लालच में उससे वंचित रह गए।

१०९६) नेक सलाह - उन दिनों अब्राहम लिंकन की गिनती अमेरिका के प्रतिष्ठित अधिवक्ताओं में होती थी। अदालत में उनकी प्रैक्टिस बहुत अच्छी चल रही थी। उनके चैंबर में क्लाइंट्स का तांता लगा रहा था। फिर भी वह सबको संतुष्ट करके भेजते थे। एक बार दो भाइयों में जमीन-जायदाद के बंटवारे को लेकर झगड़ा हो गया। पड़ोस के लोगों ने खूब समझाया, किंतु वे एक-दूसरे की बात मानने को तैयार नहीं हुए। दोनों ने अपने अपने पक्ष को न्यायसंगत ठहराते हुए कोर्ट में जाने का निर्णय लिया। उनमें से एक, एडवोकेट अब्राहम लिंकन के पास गया और उनसे अपने पक्ष में मुकदमा लड़ने का आग्रह किया। सारा वृत्तांत सुनने के बाद लिंकन ने कहा, कोर्ट-कचहरी में कुछ नहीं रखा। दोनों भाइयों की भलाई इसी में है कि आपस में सुलह-समझौता कर लो। किंतु वह अपनी बात पर अड़ा रहा। लिंकन ने उससे कहा, कुछ देर शांत होकर सोचो। लिंकन कुछ देर के लिए अपने चैंबर से बाहर आ गए। लिंकन ने देखा कि दूसरा भाई बाहर घूम रहा है। लिंकन ने उससे भी समझौता कर, समस्या निपटाने की सलाह दी। लेकिन उसे भी यह विमर्श अच्छा नहीं लगा। फिर भी लिंकन ने धैर्य नहीं छोड़ा। उन्होंने दोनों भाइयों को समझाकर अपने चैंबर में बैठा दिया और बाहर निकल कर दरवाजा बंद कर दिया। दो घंटे बाद दोनों भाई दरवाजा खटखटाने लगे। अब्राहम लिंकन ने द्वार खोला तो दोनों बाहों में बांहें डालकर मुस्करा रहे थे। दोनों एक स्वर में बोले, शुक्रिया साहब, हमने समझौता कर लिया है। अब हम मुकदमा नहीं लड़ेंगे। यह सुनकर अब्राहम लिंकन को बहुत प्रसन्नता हुई। लिंकन फीस के लालची वकीलों में से नहीं थे। विवेकपूर्ण सलाह देकर ही मुकदमों का निपटारा करवाने में विश्वास रखते थे। तभी तो वह अमेरिका के सम्मानित अधिवक्ता व जनप्रिय राष्ट्रपति बने।

१०९७) अर्थ का अनर्थ - स्वामी रामकृष्ण परमहंस अक्सर बातचीत में भी अपने शिष्यों को अध्यात्म और नैतिकता की शिक्षा दिया करते थे। एक बार उन्होंने कहा कि सृष्टि ईश्वर की बनाई हुई है और कण-कण में ईश्वर का वास है। सृष्टि के प्रत्येक जीव के प्रति आदर एवं प्रेम का भाव रखना चाहिए। एक शिष्य ने इस बात को मन में बैठा लिया। एक दिन वह कहीं जा रहा था। रास्ते में उसने देखा कि सामने से एक हाथी आ रहा है। हाथी पर बैठा महावत चिल्ला रहा था सामने से हट जाओ, हाथी पागल है। वह मेरे काबू में भी नहीं है। शिष्य ने यह बात सुनी, पर उसने सोचा कि रामकृष्ण परमहंस ने तो कहा था कि सृष्टि के कण-कण में ईश्वर का वास है। अत: इस हाथी में भी ईश्वर का ही वास है। ईश्वर मुझे हानि कैसे पहुंचाएगा? यह सोचकर उसने महावत की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया। हाथी के पास जाकर उसने उसे ईश्वर का रूप मानकर साष्टांग प्रणाम किया। इससे हाथी भड़क गया और सूंड में लपेटकर उसे दूर फेंक दिया। शिष्य को इससे काफी पीड़ा हुई और वह कराहता हुआ रामकृष्ण परमहंस के पास आया और बोला, आपने जो बताया था, वह सच नहीं

है। यदि मुझमें भी वही ईश्वर है, जो हाथी में है, तो उसने मुझे फेंक क्यों दिया? रामकृष्ण परमहंस यह सुनकर पहले तो हंसे, फिर उन्होंने पूछा, क्या हाथी अकेला था? शिष्य ने कहा, नहीं, उस पर महावत बैठा चिल्ला रहा था कि हाथी पागल है। पास मत आओ। इस पर परमहंस ने कहा, पगले, हाथी परमेश्वर का रूप था, तो उस पर बैठा महावत भी तो उसी का रूप था। तुमने महावत रूपी परमेश्वर की बात नहीं मानी, इसलिए तुम्हें हानि उठानी पड़ी। यानी ज्ञान और अध्यात्म के सिद्धांतों को आचरण में उतारते हुए विवेक से भी काम लेना चाहिए। बिना विवेक के अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

१०९८) धार तेज करना होगा - कमल टिंबर व्यवसायी के यहां नौकरी करता था उसका काम पेड़ काटने का था। कई साल तक काम करने के बावजूद व्यवसायी ने उसका वेतन नहीं बढ़ाया, जबकि उसके साथी रमन का वेतन हर साल बढ़ जाता। उसे रमन से ईर्ष्या होने लगी। कमल अंतत: मालिक के पास गया और बोला, आप हर साल रमन का वेतन बढ़ा देते हैं, पर मेरा क्यों नहीं? व्यवसायी बोला- तुम भी अगर रमन की तरह पांच के बजाय रोज १० पेड़ काटो, तो तुम्हारा भी बढ़ा दूंगा।

कमल मेहनत से ज्यादा पेड़ काटने में जुट गया। लेकिन वह पांच से ज्यादा पेड़ नहीं काट पाता, जबकि रमन उससे पहले ही १० पेड़ काट लेता। आखिरकार उसने रमन से पूछ ही लिया- तुम क्या करते हो, जिससे इतने सारे पेड़ देखते ही देखते काट डालते हो? इस पर रमन एक क्षण के लिए मुस्कराया और बोला- मैं हर पेड़ काटने के बाद अपनी कुल्हाड़ी की धार को तेज करता हूं। क्या तुम नहीं करते? अब कमल निरूत्तर था।

कथा- मर्म- हमें अपने हुनर को निरंतर धार देते रहना पड़ेगा, तभी इस प्रतिस्पर्धा वाले युग में टिके रह सकते हैं।

१०९९) खरगोश और चिड़ा हुए बिल्ली के शिकार - एक चिड़ा पेड़ पर घोंसला बनाकर मजे से रहता था। एक दिन वह दाना-पानी के चक्कर में अच्छी फसलवाले खेत में पहुंच गया। वहां खाने-पीने की मौज से बड़ा ही खुश हुआ। उस खुशी में रात को वह घर आना भी भूल गया। उसके दिन वहीं मजे में बीतने लगे। इधर शाम को एक खरगोश उस पेड़ के पास आया, जहां चिड़े का घोंसला था। पेड़ बिल्कुल भी ऊंचा नहीं था, इसलिए खरगोश ने उस घोंसले में झांककर देखा, तो पता चला कि यह घोंसला खाली पड़ा है। घोंसला अच्छा खासा बड़ा था, इतना कि उसमें खरगोश आराम से रह सकता था। खरगोश को भी वह बना बनाया घोंसला काफी पसंद आया और उसने वहीं रहने का फैसला कर लिया। कुछ दिनों बाद वह चिड़ा खा-खाकर मोटा ताजा हो गया। अब उसे अपने घोंसले की भी याद आने लगी और वह वापस लौटा। आकर उसने देखा कि घोंसले में खरगोश आराम से बैठा हुआ है। उसे बहुत गुस्सा आया, उसेन खरगोश से कहा, चोर कहीं के, मैं नहीं था तो मेरे घर में घुस गया? चलो निकलो मेरे घर से, जरा भी शर्म नहीं आई मेरे घर में रहते हुए? इस पर खरगोश बोला, कौन-सा घर? कहां का घर? यह तो मेरा घर है। पागल हो गए हो तुम। अरे। कुआं, तालाब या पेड़ एक बार कोई छोड़कर जाता है, तो अपना हक भी गवां देता है। यहां तो जब तक हम हैं, वह अपना घर है। बाद में तो उसमें कोई भी रह सकता है। अब यह घर मेरा है। बेकार में मुझे तंग मत करो। जाओ यहां से।

खरगोश की बात सुनकर चिड़ा कहने लगा, ऐसे बहस करने से कुछ हासिल नहीं होनेवाला। किसी धर्म-पंडित के पास चलते हैं। वह जिसके हक में फैसला सुनाएगा, उसे ही यह घर मिल जाएगा। उस पेड़ के पास से ही एक नदी बहती थी।

वहां पर एक बड़ी सी बिल्ली बैठी थी, जो कुछ धर्मपाठ करती नजर आ रही थी। वैसे तो वह बिल्ली उन दोनों की जन्मजात शत्रु थी, लेकिन वहां और कोई भी नहीं था, इसलिए उन दोनों ने उसके पास जाना और उससे न्याय लेना ही उचित समझा। सावधानी बरतते हुए बिल्ली के पास जाकर उन्होंने अपनी समस्या बताई। उन्होंने कहा, हमने अपनी उलझन तो बता दी, अब उसका हल क्या है? इसका जवाब आपसे सुनना चाहते हैं। जो भी सही होगा, उसे वह घोंसला मिल जाएगा और जो झूठा होगा उसे आप खा लें।

अरे रे, यह तुम कैसी बातें कर रहे हो, इस दुनिया में हिंसा जैसा कोई पाप नहीं। दूसरों को मारनेवाला खुद नरक में जाता है। मैं तुम्हें न्याय देने में तो मदद करूंगी, लेकिन झूठे को खाने की बात है, तो वह मुझसे नहीं हो पाएगा। मैं एक बात तुम लोगों को कानों में कहना चाहती हूं, जरा मेरे करीब आओ तो।

खरगोश और चिड़ा खुश हो गए कि अब फैसला होकर रहेगा और उसके बिलकुल करीब गए। फिर क्या? करीब आए खरगोश को पंजे में पकड़ कर और मुंह से चिड़े को बिल्ली ने नोच लिया। इस तरह दोनों का काम तमाम कर दिया। अपने शत्रु को पहचानते हुए भी उस पर विश्वास करने से खरगोश और चिड़े को अपनी जाने गंवानी पड़ीं। इस कहानी से आपको यह सीख मिलती है कि शत्रु से संभलकर रहना चाहिए और हो सके तो चार हाथ दूर ही रहने में भलाई होती है।

११००) अगर मिटने का साहस हो तो सागर से मिलन सुनिश्चित है - एक छोटी-सी नदी सागर से मिलने को चली है। नदी छोटी हो या बड़ी, सागर से मिलने की प्यास तो बराबर ही होती है- छोटी नदी में भी और बड़ी नदी में भी। छोटा-सा झरना भी सागर से मिलने को उतना ही आतुर होता है, जितनी कोई बड़ी गंगा हो। नदी के अस्तित्व का अर्थ ही सागर से मिलन है।

नदी भाग रही है सागर से मिलने को, लेकिन एक रेगिस्तान में भटक गयी है, एक मरुस्थल में भटक गयी है। सागर तक पहुंचने की कोशिश व्यर्थ मालूम होने लगी और नदी को पीने लगी। दो-चार कदम चलती है और फिर नदी खोती है और फिर गीली रेत ही रह जाती है। नदी बहुत घबड़ा गयी है। सागर तक पहुंचने के सपने का क्या होगा? नदी ने रोकर, चीखकर रेगिस्तान की रेत से पूछा कि क्या मैं सागर तक कभी भी नहीं पहुंच पाऊंगी? क्योंकि रेगिस्तान मालूम पड़ता है अनंत और चार कदम मैं चलती नहीं हूं और रेत में मेरा पानी खो जाता है, मेरा जीवन सूख जाता है। मैं सागर तक पहुंच पाऊंगी या नहीं?

रेत ने कहा कि सागर तक पहुंचने का एक उपाय है। ऊपर देख, हवाओं के बवण्डर जोर से उड़े चले जा रहे हैं। रेत ने कहा कि अगर तू भी हवाओं की तरह हो जा, तो सागर तक पहुंच जायेगी। लेकिन अगर नदी की तरह ही तूने सागर तक पहुंचने की कोशिश की, रेगिस्तान बहुत बड़ा है, यह तुझे पी जायेगा और हजारों-हजारों साल की कोशिश के बाद भी तू एक दलदल से ज्यादा नहीं हो पायेगी, सागर तक पहुंचना बहुत मुश्किल है। तू हवा की यात्रा पर निकल। उस नदी ने कहा कि रेत, तू पागल तो नहीं है? मैं नदी हूं, मैं आकाश में उड़ नहीं सकती। रेत ने कहा तू अगर मिटने को राजी हो, तो आकाश में भी उड़ने का उपाय है। अगर तू तप जाये, वाष्पीभूत हो जाये, तो तू हवाओं पर सवार हो सकती है; हवाएं तेरे वाहन बन जायेंगी और तुझे सागर तक पहुंचा देंगी।

उस नदी ने कहा, मिटने को। मैं स्वयं रहते ही सागर से मिलने की आकांक्षा रखती हूं, मिटकर नहीं। मिटकर मिलने का मजा ही क्या? अगर मैं मिट गयी और सागर से मिलना भी हो गया, तो उसका सार क्या है? मैं बचते हुए रहते हुए सागर से मिलना चाहती हूं।

नदी की बात को सुनकर रेत ने कहा, तब फिर कोई उपाय नहीं है। आज तक सागर से मिलने जो भी चला है, मिटे बिना नहीं मिल पाया है और जिसने अपने को बचाने की कोशिश की है और मैंने कुछ नदियों को आकाश पर चढ़कर सागर तक पहुंचने भी देता है। तू मिटने को राजी हो जा। तुझे अभी पता नहीं कि मिटकर ही तू वस्तुत: सागर हो पायेगी।

लेकिन नदी को भरोसा कैसे आये। परम वचन का अर्थ है, जो हमारा अनुभव नहीं है, लेकिन जिसकी हमें प्यास है। जिससे हमारा परिचय नहीं है, लेकिन जिसकी हमारे हृदय में आकांक्षा है। जिसे हमने जाना नहीं है, लेकिन जिसे खोजना है। ऐसी जिसकी अभीप्सा है, उसे कहीं न कहीं, किसी न किसी क्षण में ऐसा कदम भी उठाना पड़ेगा, जो अज्ञात में है।

११०१) दीये की लौ देखकर नहीं होती सर्दी दूर - एक बार शहंशाह अकबर ने घोषणा की कि यदि कोई व्यक्ति सर्दी के मौसम में नर्मदा नदी के ठंडे पानी में घुटनों तक डूबा रहकर सारी रात गुजार देगा उसे भारी भरकम तोहफे से पुरस्कृत किया जाएगा। एक गरीब धोबी ने अपनी गरीबी दूर करने की खातिर हिम्मत की और सारी रात नदी में घुटने पानी में ठिठुरते बिताई और जहांपनाह से अपना इनाम लेने पहुंचा।

बादशाह अकबर ने उससे पूछा, तुमने कैसे सारी रात बिना सोए, खड़े-खड़े ही नदी में बिताई? तुम्हारे पास क्या सबूत है? धोबी ने उत्तर दिया, जहांपनाह, मैं सारी रात नदी छोर के महल के कमरे में जल रहे दीपक को देखता रहा और इस तरह जागते हुए सारी रात नदी के शीतल जल में गुजारी। तो, इसका मतलब यह हुआ कि तुम महल के दीये की गर्मी लेकर सारी रात पानी में खड़े रहे और इनाम चाहते हो। सिपाहियों इसे जेल में बंद कर दो, बादशाह ने क्रोधित होकर कहा।

बीरबल भी दरबार में था। उसे यह देख बुरा लगा कि बादशाह नाहक ही उस गरीब पर जुल्म कर रहे हैं। बीरबल दूसरे दिन दरबार में हाजिर नहीं हुआ, जबकि उस दिन दरबार की एक आवश्यक बैठक थी। बादशाह ने एक खादिम को बीरबल को बुलाने भेजा। खादिम ने लौटकर जवाब दिया, बीरबल खिचड़ी पका रहे हैं और वह खिचड़ी पकते ही उसे खाकर आएंगे। जब बीरबल बहुत देर बाद भी नहीं आए तो बादशाह को बीरबल की चाल में कुछ संदेह नजर आया। वह खुद तफ्तीश करने पहुंचे। बादशाह ने देखा कि एक बहुत लंबे से डंडे पर एक घड़ा बांधकर उसे बहुत ऊंचा लटका दिया गया है और नीचे जरा सी आग जल रही है। पास में बीरबल आराम से खटिए पर लेटे हुए हैं।

बादशाह ने तमककर पूछा, यह क्या तमाशा है? क्या ऐसे भी खिचड़ी पकती है? बीरबल ने कहा, माफ करें, जहांपनाह, जरूर पकेगी। वैसी ही पकेगी। जैसे कि धोबी को महल के दीये की गर्मी मिली थी। बादशाह को बात समझ में आ गई। उन्होंने बीरबल को गले लगाया और धोबी को रिहा करने और उसे इनाम देने का हुक्म दिया।

११०२) अगर दुनियाभर में चाहते हैं नाम तो मेहनत से मत घबराओ- थॉमस अल्वा एडिसन एक महान वैज्ञानिक थे। उन्होंने बिजली का बल्ब जैसा आविष्कार करके दुनिया को रोशन कर दिया। एडिसन बहुत ही मेहनती और जुझारू व्यक्ति थे। उन्हें बचपन में यह कहकर शिक्षक ने निकाल दिया था कि बच्चा मंदबुद्धि है, जिंदगी में कुछ नहीं कर

पाएगा। कहते हैं कि उन्होंने बल्ब का आविष्कार करने के लिए हजारों बार प्रयोग किए थे। इसी दरम्यान उनसे किसी ने पूछा- आपने करीब एक हजार प्रयोग किए, लेकिन आपके सारे प्रयोग असफल रहे और आपकी मेहनत बेकार हो गई। क्या आपको दुख नहीं होता?

एडिसन बोले - मैं नहीं समझता कि मेरे एक हजार प्रयोग असफल हुए हैं। मेरी मेहनत बेकार नहीं गई, क्योंकि मैंने एक हजार प्रयोग करके यह पता लगाया है कि इन एक हजार तरीकों से बल्ब नहीं बनाया जा सकता। मेरा हर प्रयोग, बल्ब बनाने की प्रक्रिया का हिस्सा है और मैं अपने प्रत्येक प्रयास के साथ एक कदम आगे बढ़ता हूं। आखिरकार वह दिन आया, जब एडिसन की मेहनत रंग लाई और उन्होंने बल्ब का आविष्कार करके पूरी दुनिया को रोशन कर दिया।

आशा की किरण को बुझने नहीं देना चाहिए। हो सकता है थॉमस अल्वा एडिसन की तरह आप भी ऐसा ही कुछ प्रयोग करें, जिससे सारा संसार जगमगा जाए।

११०३) आखिरकार ऐसे हुए घमंडी राजा की हार - बहुत प्राचीन समय की बात है। एक राजा था। उसका नाम उदय सिंह था। वह बहुत अत्याचारी और क्रूर राजा था। उसका एक रसोइया था, जिसक नाम रामू था। रामू का अस्त्र-शस्त्र चलाने में कोई जोड़ नहीं था।

अक्सर राजा युद्ध में उसे अपने साथ ले जाते थे। एक दिन रसोइया रामू से भोजन परोसने में देर हो गयी। जिसके कारण राजा उदय सिंह ने क्रोध में आकर रामू के दोनों हाथ कटवा दिये। रसोइया रामू ने सोचा मेरी इतनी सी गलती के लिए इतनी बड़ी सजा। उसने राजा को सबक सिखाने की प्रतिज्ञा ली। वह राज्य के गरीब बच्चों को अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान देने लगा। एक दिन जब रामू बच्चों को शस्त्र सिखा रहा था। इस दौरान वह राजा द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के बारे में भी उन बच्चों को बताता था। एक दिन सैनिकों ने उसकी बात सुन ली। उसने जाकर सारी बातें राजा को बतायी। क्रोध में आकर राजा ने रामू और उसके शिष्यों पर आक्रमण कर दिया।

रामू के शिष्यों ने राजा उदय सिंह के अनेक योद्धाओं को मार डाला। इस प्रकार राजा के बहुत कम सैनिक बचे। इससे पूरे राज्य में हाहाकार मच चुका था। अपनी हार को देखते हुए राजा स्वयं युद्ध करने आए। किन्तु रसोइया रामू के सैनिकों ने क्षणभर में ही राजा उदय सिंह को बंधक बनाकर रामू के सामने खड़ा कर दिया। रामू ने राजा से पूछा- महाराज मेरी एक गलती के लिए आपने मुझे कमजोर, बेबस और गरीब के हाथ कटवा दिये, आज आप उसी रसोइया रामू के सामने बंदी बनकर खड़े हैं। यदि मैं चाहूं, तो आपके प्राण भी ले सकता हूं, पर मैंने आपका नमक खाया है, इसलिए प्राण नहीं लूंगा। लेकिन इतना अवश्य कहूंगा कि किसी को भी गरीब और कमजोर समझ कर सताना अच्छी बात नहीं, इसे सदा ध्यान में रखियेगा। इतना कहकर रामू ने राजा को कैद से मुक्त कर दिया। राजा शर्म से सिर झुकाकर महल की ओर चल पड़ा।

११०४) सब्र का फायदा - दो मुसाफिर घूमते-घूमते शहर खुरासान पहुंचे। उन दोनों में से एक बहुत कमजोर था क्योंकि दो दिन में एक ही बार खाता था। दूसरा बहुत ही तंदुरुस्त पहलवान जैसा था और दिन में तीन बार खूब पेटभर खाना खाता था और भूख लगते ही खाता था उसके लिए भूख को बर्दाश्त करना और सब्र करना मुश्किल था, जब कि दुबले पतले आदमी में सब्र बहोत ज्यादा था, इत्तेफाक से दोनों को पुलिस ने शक के बिना गिरफ्तार कर लिया और

हवालात में डाल दिया। तीन दिन के बाद हवालात का दरवाजा खुला तो ये देखकर सब हैरान रह गये कि दुबला पतला आदमी जिंदा है और पहलवान मरा पड़ा है। मालूम हुआ कि मोटा ताजा आदमी ज्यादा खानेवाला था। इसलिए भूख की मुसीबत बर्दाश्त न कर सका और मर गया। जबकि कमजोर और दुबले पतले आदमी को सब्र की आदत थी इसलिए वो भूख की मुसीबत को बर्दाश्त कर गया और सब्र किया, और सलामती के साथ कैद से मुक्ति पा गया। सब्र इन्सान को मजबूत बनाता है और छोटी बड़ी परेशानियों से लड़ने की हिम्मत देता है। जो लोग मुसीबत से घबराकर गलत कदम उठा लेते हैं। दरअसल उनके अंदर सब्र की कमी होती है। लिहाजा मुसीबत में सब्र को ढाल बनाएं और कोई भी गलत कदम उठाने से परहेज करें। सब्र करनेवालों की खुदा मदद करता है।

११०५) नामी शायर को खलीफा ने दिया सबक - बहुत समय पहले अरब में अल मंसूर नामक शासक था, जो वहां का खलीफा भी था। अल मंसूर को शायरी बहुत अच्छी लगती थी और जब कभी उसें किसी शायर की कोई नज्म बहुत पसंद आती, तो वह उसे इनाम भी देता था। एक दिन तालिबी नामक एक शायर खलीफा के पास आया और उसने खलीफा को अपनी एक लम्बी नज्म सुनाई। नज्म सुनाने के बाद उसने अदब से सर झुकाया और इनाम मिलने का इंतजार करने लगा। खलीफा ने शायर से पूछा- तुम्हें कैसा इनाम चाहिए? तीन सौ सोने की अशर्फियां या मेरी कही गई इल्म की तीन बातें?

शायर खलीफा को खुश करना चाहता था, इसलिए उसने कहा- मेरे आका, धन-दौलत पाने के बजाय हर आदमी इल्म की बातें सुनना ज्यादा पसंद करेगा। खलीफा ने मुस्कुराते हुए कहा- बहुत अच्छा। तो मेरी इल्म की पहली बात सुनो। अगर तुम्हारा कोट फट जाए, तो उसमें पै बंद मत लगाओ। वह बदसूरत लगेगा।

या खुदा, शायर ने मन मसोस कर सोचा सोने की सौ अशर्फियां हाथ से निकल गई। खलीफा ने मुस्कुराते हुए फिर कहा- अब मेरी इल्म की दूसरी बात सुनो। अपनी दाढ़ी में कभी भी ज्यादा तेल मत चुपड़ो। तुम्हारे कपड़े गंदे हो जाएंगे। मेरी सोने की दो सौ अशर्फियां हाथ से निकल गई, शायर ने बहुत रंज से भीतर कहा। खलीफा मंद-मंद मुस्कुराते हुए बोले- और इल्म की तीसरी बात यह है कि रहम करो खलीफा। शायर चिल्लाया-इल्म की इस बात को अपने लिए ही रखों और मुझे इसके बदले में सोने की अशर्फियां दे दो। खलीफा बेहतर हंस दिए और वहां मौजूद हर शख्स भी हंस पड़ा। उन्होंने अपने खजांची को शायर को सोने की पांच अशर्फियां देने के लिए कहा, क्योंकि उसने वाकई बहुत अच्छी नज्म सुनाई थी। खलीफा अल मंसूर लगभग तेरह सौ साल पहले हुए थे। बगदाद शहर उन्होंने ही बनवाया था।

११०६) विद्या का सदुपयोग - एक व्यक्ति पशु-पक्षियों का व्यापार किया करता था। एक दिन उसे पता लगा कि उसके गुरु को पशु-पक्षियों की बोली की समझ है। उसके मन में ये ख्याल आया कि कितना अच्छा हो अगर ये विद्या उसे भी मिल जाये तो उसके लिए भी यह फायदेमंद हो। वह पहुंच गया अपने गुरु के पास और उनकी खूब सेवा की और उनसे ये विद्या सिखाने के लिए आग्रह किया। गुरु ने उसे वो विद्या सिखा तो दी लेकिन साथ ही उसे चेतावनी भी दी कि अपने लोभ के लिए वो इसका इस्तेमाल नहीं करे अन्यथा उसे इसका कुफल भोगना पड़ेगा। व्यक्ति ने हामी भर दी।

वो घर आया तो उसने अपने कबूतरों के जोड़े को यह कहते हुए सुना कि मालिक का घोड़ा दो दिन बाद मरनेवाला है इस

पर उसने अगले ही दिन घोड़े को अच्छे दाम पर बेच दिया। अब उसे भरोसा होने लगा कि पशु-पक्षी एक दूसरे को अच्छे से जानते हैं। अगले दिन उसने अपने कुत्ते को यह कहते हुए सुना कि मालिक की मुर्गियां जल्दी ही मर जाएंगी तो उसने बाजार जाकर सारी मुर्गियों को अच्छे दामों पर बेच दिया। और कई दिनों बाद उसने सुना कि शहर की अधिकतर मुर्गियां किसी महामारी की वजह से मर चुकी हैं वो बड़ा खुश हुआ कि चलो मेरा नुकसान नहीं हुआ। हद तो तब हो गयी जब उसने एक दिन अपनी बिल्ली को यह कहते हुए सुना कि हमारा मालिक अब तो कुछ ही दिनों का मेहमान है तो उसे पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ लेकिन बाद में अपने गधे को भी उसने वही बात दोहराते हुए सुना तो वो घबरा कर अपने गुरु के पास गया और उनसे बोला कि मेरे अंतिम क्षणों में करने योग्य कोई काम है तो बता दें क्योंकि मेरी मृत्यु निकट है। इस पर गुरु ने उसे डांटा और कहा कि मूर्ख मैंने पहले ही तुझसे कहा था कि अपने हित के लिए इस विद्या का उपयोग मत करना क्योंकि सिद्धियां न किसी की हुई हैं और न किसी की होंगी। इसलिए मैंने तुझसे कहा था कि अपने लाभ के लिए और किसी के नुकसान के लिए इनका प्रयोग मत करो।

११०७) परीक्षा - मनु महाराज की पुत्री का नाम देवहूति था। वह बड़ी सौम्य और ज्ञानी थी। बड़ी हुई तो मनु महाराज को उसके ब्याह की चिंता हुई। तभी एक दिन देवर्षि नारद ने सुझाव दिया, कर्दम ऋषि से बढ़कर योग्य वर आपकी अपनी कन्या के लिए दूसरा नहीं मिलेगा। मनु महाराज को भी बात जंच गई। वे पत्नी शतरूपा तथा कन्या देवहूति के साथ कदर्म ऋषि के आश्रम पहुंचे। कर्दम ऋषि तीक्ष्ण बुद्धिवाले ऋषि थे। उनके आगमन का अभिप्राय समझ गए। परखना था उन्हें देवहूति को। अत: उन्होंने मेहमानों के लिए तीन आसन बिछाए और बैठने के लिए कहा। मनु महाराज बैठ गए और शतरूपा भी बैठ गई। किन्तु तब वह कैसे बैठे? फिर कर्दम ऋषि ने अपने बैठने के लिए तो आसन बिछाया ही नहीं है। साथ ही उन्होंने तीनों को आसन ग्रहण करने का अनुरोध किया है। उसे टालना भी अनुचित है। उसने एक उपाय सोचा। अपना एक हाथ आसन पर रख वह जमीन पर बैठ गई। देवहूति की इस चतुराई पर कर्दम ऋषि रीझ गए और उन्होंने उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। हर मुश्किल का एक हल होता है।

११०८) तुम क्या हो, यह जान लेना काफी है - स्वामी विवेकानंदजी एक कहानी अपने प्रवचनों में सुनाया करते थे। एक गडरिये को जंगल में शेर का नवजात बच्चा मिला, जिसकी आंख भी नहीं खुली थी। मां संभवत: किसी शिकारी के हाथों मारी गई थी। गडरिया दया करके उस बच्चे को अपने साथ ले आया तथा बकरियों का दूध पिलाकर उसे पालने लगा। बच्चा बड़ा हुआ। वह स्वयं को बकरी ही समझने लगा। उनके साथ धक्के खाता हुआ झुण्ड में चलता। बाड़े के बाहर कुत्तों से डरता तथा गडरिये को अपना मालिक समझता था उसकी लाठी से भयभीत होता। एक दिन जंगल के शेर ने उसकी हालत देखी तो उसे बहुत अचम्भा हुआ। उसने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया कितु स्वयं को बकरी समझनेवाला यह शेर से बचने को भागा। जैसे-तैसे जंगल के शेर ने उसे पकड़ा और कहा कि तू कैसा शेर है। जो बकरी बना हुआ है। उसने जवाब दिया कि, हे जंगल के राजा आपसे किसी ने झूठ शिकायत कर दी है, मैं कोई शेर-वेर नहीं हूं। मैं तो गरीब बकरी ही हूं। तब शेर कान पकड़कर उसे एक कुएं के पास ले गया व उसके निर्मल जल में परछाईं दिखाकर बोला- देख यह मैं हूं और यह तू है। हम दोनों एक जैसे हैं, अथवा नहीं? यदि मैं शेर हूं तो तू भी तो शेर है। जरा गर्जना तो कर के देख।

अभी तुझे समझ आ जाएगा और जैसे ही आत्मविस्मृत शेर ने दहाड़ लगाई, उसे तो उसे, सारी कायनात को मालूम हो गया कि जंगल में एक नया शेर आ गया है। जो बकरियाँ अब तक उसे धकिया देती थीं, वे उसके सामने से गायब हो गईं और जिन कुत्तों के भौंकने से वह थर-थर कांपने लगता था, वे कुत्ते उसके सामने से दुम दबाकर भाग गये।

११०९) बादशाह का गुस्सा - अकबर और बीरबल के किस्सों में बीरबल की बुद्धिमत्ता से हर कोई वाकिफ है।

बादशाह अकबर अपनी बेगम से किसी बात पर नाराज हो गए। नाराजगी इतनी बढ़ गई कि उन्हें बेगम को मायके जाने को कह दिया। बेगम ने सोचा कि शायद बादशाह ने गुस्से में ऐसा कहा है, इसलिए वह मायके नहीं गई। जब बादशाह ने देखा कि बेगम अभी तक मायके नहीं गई है, तो उन्होंने गुस्से में कहा- तुम अभी तक मायके नहीं गई है, तो उन्होंने गुस्से में कहा- तुम अभी तक यहीं हो, गई नहीं, सुबह होते ही अपने मायके चली जाना वरना अच्छा न होगा। तुम चाहो तो अपनी मनपसंद चीज साथ ले जा सकती हो।

बेगम सिससकर जनानखाने में चली गई। वहां जाकर उसने बीरबल को बुलाया। बीरबल बेगम के सामने पेश हो गया। बेगम ने बादशाह की नाराजगी के बारे में बताया और उनके हुक्म को भी बता दिया।

बेगम ने बीरबल से कहे अनुसार बादशाह को रात में नींद की दवा दे दी और उन्हें नींद में ही पालकी में डालकर अपने साथ मायके ले आई और एक सुसज्जित शयनकक्ष में सुला दिया। जब बादशाह की नींद खुली, तो स्वंय को अनजाने स्थान पर पाकर हैरान हो गए। वह उठते ही आस-पास देखकर पुकारने लगे- कोई है?

उनकी बेगम साहिबा उपस्थित हुई। उन्हें वहां देखकर वह समझ गए कि वह अपने ससुराल में हैं। उन्होंने गुस्से से पूछा- तुम हमें भी यहां ले आई, इतनी बड़ी गुस्ताखी कर डाली। मेरे सरताज, आपने ही तो कहा था कि अपनी मनपसंद चीज ले जाना। इसलिए आपको ले आई।

यह सुनकर बादशाह का गुस्सा जाता रहा, मुस्कुराकर बोले जरूर तुम्हें यह तरकीब बीरबल ने ही बताई होगी। बेगम ने हामी भरते हुए सिर हिला दिया।

१११०) कौन सी सेवा है अधिक श्रेष्ठ - गंगा किनारे गुरु अभंद्र का आश्रम था। एक बार भीषण अकाल पड़ा। गुरु अभंद्र ने तीन शिष्यों को बुलाकर कहा- ऐसे संकट के समय में हमें अकालपीड़ितों की सेवा करनी चाहिए। तुम लोग अलग-अलग क्षेत्रों में जाकर भूखों को भोजन कराओ।

शिष्य बोले- गुरु जी हम इतने सारे लोगों को भोजन कैसे कराएंगे? हमारे पास न तो अन्न भंडार है और न ही अनाज खरीदने के लिए धन।

गुरु ने उन्हें एक थाली देते हुए कहा- यह थाली दिव्य है। तुम जितना भोजन चाहोगे, यह उपलब्ध करवाएगी। तीनों थाली लेकर निकल पड़े दो शिष्य एक स्थान पर बैठ गए। उधर से जो भी गुरजता, उसे वे भोजन कराते, किंतु तीसरा मोहन घूम-घूमकर भूखों को खोजता रहा और उनको खाना बांटता रहा।

कुछ दिन बाद जब तीनों आश्रम लौटे तो गुरु ने मोहन की खूब प्रशंसा की। दोनों शिष्यों को यह अजीब लगा। उन्होंने पूछा- गुरुदेव, हमने भी तो अकालपीड़ितों की सेवा की है। फिर मोहन की ही प्रशंसा क्यों?

गुरु ने उत्तर दिया- तुमने एक ही जगह बैठकर पीड़ितों की सहायता की। ऐसा करने से वे लोग तुम्हारी सहायता से वंचित रह गए, जो चल कर तुम्हारे पास आने में असमर्थ थे, जबकि मोहन ने लोगों के पास जाकर उन्हें भोजन कराया। उसकी सहायता अधिकतम लोगों तक पहुंची, इसलिए उसकी सेवा अधिक प्रशंसनीय है।

१११) मित्रता का फल - एक फकीर बहुत दिनों तक बादशाह के साथ रहा। बादशाह का बहुत प्रेम उस फकीर पर हो गया। प्रेम भी इतना कि बादशाह रात को भी उसे अपने कमरे में सुलाता। कोई भी काम होता, दोनों साथ-साथ ही करते। एक दिन दोनों शिकार खेलने गए और रास्ता भटक गए। भूखे-प्यासे एक पेड़ के नीचे पहुंचे। पेड़ पर एक ही फल लगा था। बादशाह ने घोड़े पर चढ़कर फल को अपने हाथ से तोड़ा। बादशाह ने फल के छह टुकड़े किए और अपनी आदत के मुताबिक पहला टुकड़ा फकीर को दिया। फकीर ने टुकड़ा खाया और बोला, बहुत स्वादिष्ट, ऐसा फल कभी नहीं खाया। एक टुकड़ा भी फकीर को मिल गया। फकीर ने एक टुकड़ा और बादशाह से मांग लिया। इसी तरह फकीर ने पांच टुकड़े मांग कर खा लिए। जब फकीर ने आखिरी टुकड़ा मांगा, तो बादशाह ने कहा, यह सीमा से बाहर है, आखिर मैं भी तो भूखा हूं। मेरा तुम पर प्रेम है, पर तुम मुझसे प्रेम नहीं करते। और सम्राट ने फल का टुकड़ा मुंह में रख लिया। मुंह में रखते ही राजा ने उसे थूक दिया, क्योंकि वह कड़वा था। राजा बोला, तुम पागल तो नहीं, इतना कड़वा फल कैसे खा गए? उस फकीर का उत्तर था, जिन हाथों से बहुत मीठे फल खाने को मिले, एक कड़वे फल की शिकायत कैसे करूं? सब टुकड़े इसलिए लेता गया ताकि आपको पता न चले। जहाँ मित्रता हो वहाँ संदेह न हो, आओ कुछ ऐसे रिश्ते रचे। कुछ हमसे सीखें, कुछ हमें सिखाएं। किस्मत की एक आदत है कि वो पलटती जरूर है और जब पलटती है, तब सब कुछ पलटकर रख देती है, इसलिए अच्छे दिनों में अहंकार न करो और खराब समय में थोड़ा सब्र करो।

१११२) सत्य की खोज - हिमालय के पर्वतीय प्रदेश के कुमायूं नामक स्थान का राजा एक बार अल्मोडे की घाटी में शिकार खेलने गया। उस समय वह स्थान घने जंगल से ढका था। एक खरगोश झाड़ियों में से निकला। राजा ने उसका पीछा किया, किंतु अचानक वह खरगोश चीते में बदल गया और शीघ्र ही दृष्टि से ओझल हो गया। उस आश्चर्यजनक घटना से स्तंभित हुए राजा ने पंडितों की एक सभा बुलाई और उनसे इसका अर्थ पूछा। उन्होंने उत्तर दिया, इसका अर्थ यह है कि जिस स्थान पर चीता दृष्टि से ओझल हुआ था, वहां आपको एक नया शहर बसाना चाहिए, क्योंकि चीते केवल उसी स्थान से भाग जाते हैं, जहां मनुष्यों को एक बड़ी संख्या में बसना हो। अतएव नया शहर बसाने के लिए मजदूर लोग काम पर लगा दिए गए। अंत में जमीन को कठोरता देखने के लिए एक स्थान पर उन्होंने लोहे की एक मोटी कील गाड़ी उस समय अचानक पृथ्वी में एक हल्का-सा कंपन हो उठा। ठहरो। पंडित लोग चिल्ला पड़े, इसकी नोक सर्पराज शेषनाग की देह में धंस गई है। अब यहां शहर नहीं बनाना चाहिए। जब वह लोहे की कील पृथ्वी से बाहर निकाली गई तो वह वास्तव में शेषनाग के रक्त से लाल हो रही थी।

यह तो बड़े दु:ख की बात है, राजा बोला, हम यहां शहर बनाने का निश्चय कर चुके हैं, इसलिए अब बनाना ही होगा। पंडितों ने क्रोध में आकर भविष्यवाणी की कि शहर पर कोई भारी विपत्ति आएगी और राजा का अपना वंश भी शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा। जमीन वहां की उपजाऊ थी और पानी भी खूब था। छ: सौ साल से अल्मोड़ा शहर उस पहाड़ पर बसा हुआ है।

इस प्रकार बुद्धि रखते हुए भी वे पंडित अपनी भविष्यवाणी में गलत निकले।

नि:संदेह वे सच्चे थे और उन्हें विश्वास था कि वे सत्य कह रहे हैं, किंतु लोग ऐसी गलती प्राय: करते हैं और अंध-विश्वास को वास्तविकता समझ लेते हैं। संसार अंधविश्वासों से भरा पड़ा है। सत्य को ढूंढने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि मनुष्य सदा अपने विचारों, कार्यों और वचनों में अधिकाधिक सच्चे और निष्कपट रहे, क्योंकि दूसरों को सब बातों में धोखा देना छोड़कर ही हम अपने आपको कम से कम धोखा देना सीखते हैं।

१११३) मां की तपस्या - पत्नी बार-बार मां पर इल्जाम लगाए जा रही थी और पति बार बार उसको अपनी हद में रहने को कह रहा था। लेकिन पत्नी चुप होने का नाम ही नहीं ले रही थी व जोर-जोर से चीख-चीखकर कह रही थी कि उसने अंगूठी टेबल पर ही रखी थी और तुम्हारे और मेरे अलावा इस कमरे में कोई नहीं आया। अंगूठी हो ना हो, मां जी ने ही उठाई। बात जब पति के बर्दाश्त के बाहर हो गई तो उसने पत्नी के गाल पर एक जोरदार तमाचा दे मारा। अभी तीन महीने पहले ही तो शादी हुई थी। पत्नी से तमाचा सहन नहीं हुआ। वह घर छोड़कर जाने लगी और जाते जाते पति से एक सवाल पूछा कि तुमको अपनी मां पर इतना विश्वास क्यों है? तब पति ने जो जवाब दिया, उस जवाब को दरवाजे के पीछे खड़ी मां ने सुना तो उसका मन भर आया। पति ने पत्नी को बताया कि जब वह छोटा था, तब उसके पिताजी गुजर गए। मां मोहल्ले के घरों में झाड़ू-पोछा लगाकर जो कमा पाती थी, उससे एक वक्त का खाना आता था। मां एक थाली में मुझे परोस देती थी और खाली डिब्बे को ढककर रख देती थी और कहती थी- मेरी रोटियां इस डिब्बे में हैं, बेटा तू खा ले।

मैं भी हमेशा आधी रोटी खाकर कह देता था कि मां, मेरा पेट भर गया है। मुझे और नहीं खाना हैं। मां ने मेरी जूठी आधी रोटी खाकर मुझे पाला-पोसा और बड़ा किया है। आज मैं दो रोटी कमाने लायक हो गया हूं लेकिन यह कैसे भूल सकता हूं कि मां ने उम्र के उस पड़ाव पर अपनी इच्छाओं को मारा है, वह मां आज उम्र मे इस पड़ाव पर किसी अंगूठी की भूखी होगी। यह मैं सोच भी नहीं सकता, तुम तो तीन महीने से मेरे साथ हो, मैंने तो मां की तपस्या को पिछले २५ वर्षों से देखा है। यह सुनकर मां की आंखों से आंसू छलक उठे। वह समझ नहीं पा रही थी कि बेटा उसकी आधी रोटी का कर्ज चुका रहा है या वह बेटे की आधी रोटी का कर्ज।

१११४) आखिरकार मौत का दोषी कौन ? - बनारस में देवस्वामी नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके हरिदास नाम का पुत्र था। हरिदास की बड़ी सुंदर पत्नी थी। नाम था लावण्यवती। एक दिन वह महल के ऊपर छत पर सो रहे थे कि आधी रात के समय एक गंधर्व कुमार आकाश में घूमता हुआ उधर से निकला। वह लावण्यवती के रूप में मुग्ध होकर उसे उड़ाकर ले गया। जागने पर हरिदास ने देखा कि उसकी स्त्री नहीं है तो उसे बड़ा दुख हुआ और वह मरने के लिए तैयार हो गया। लोगों के समझाने पर वह मान तो गया, लेकिन यह सोचकर कि तीरथ करने से शायद पाप दूर हो आए और स्त्री मिल जाए, वह घर से निकल पड़ा। चलते-चलते वह किसी गांव में एक ब्राह्मण के घर पहुंचा। उसे भूखा देख ब्राह्मणी ने उसे कटोरा भरकर खीर दे दी और तालाब के किनारे बैठकर खाने को कहा। हरिदास खीर लेकर एक पेड़ के नीचे आया और कटोरा वहां रखकर तालाब में हाथ-मुंह धोने गया। इसी बीच एक बार एक बाज किसी सांप को लेकर उसी पेड़ पर आ बैठा और जब वह उसे खाने लगा तो सांप के मुंह से जहर टपककर कटोरे में गिर गया। हरिदास को कुछ पता नहीं था।

वह उस खीर को खा गया। जहर का असर होने पर वह तड़पने लगा और दौड़ा-दौड़ा ब्राह्मणी के पास आकर बोला, तूने मुझे जहर दे दिया है। इतना कहने के बाद हरिदास मर गया। पति ने यह देखा तो ब्राह्मण को ब्रह्मघातिनी कहकर घर से निकाल दिया। इतना कहकर बेताल बोला, राजन्। बताओ कि सांप, बाज और ब्राह्मणी इस तीनों में अपराधी कौन है? राजा ने कहा, कोई नहीं। सांप तो इसलिए नहीं क्योंकि वह शत्रु के वश में था। बाज इसलिए नहीं कि वह भूखा था। जो उसे मिल गया, उसी को वह खाने लगा। ब्राह्मणी इसलिए नहीं कि उसने अपना धर्म समझकर उसे खीर दी थी और अच्छी दी थी। जो इन तीनों में से किसी को दोषी कहेगा, वह स्वयं दोषी होगा। इसलिए अपराधी ब्राह्मणी का पति था जिसने बिना विचार ब्राह्मणी को घर से निकाल दिया। इतना सुनकर बेताल फिर पेड़ पर जा लटका।

१११५) कंजूस के बेटे - एक कंजूस आदमी जब मरने लगा, तो उसने अपने तीनों बेटों को बुलाया और बोला- मैंने हमेशा लोगों को यह कहते सुना है कि मरने के बाद आदमी के साथ कुछ भी नही जाता। लेकिन मैं इस धारणा को गलत साबित कर दूंगा। मेरे पास कुल तीन लाख रुपए हैं। मैं तुम तीनों को एक-एक लिफाफा दूंगा, जिनमें से हरेक में एक लाख रुपए होंगे। मैं चाहता हूं कि मुझे दफनाते समय तुम लोग ये रुपए मेरी कब्र में डाल दो।

जब वह आदमी मर गया, तो वादे के मुताबिक तीनों बेटों ने उसकी कब्र में अपने अपने लिफाफे डाल दिए। घर लौटते समय बड़ा बेटा गमगीन स्वर में बोला- भाई, मुझे बड़ी आत्मग्लानि हो रही है। मुझे बैंक का कर्ज लौटाना था, इसलिए मैंने लिफाफे से २५ हजार निकाल लिए थे।

मंझला बेटा भी आंखों में आंसू भरकर बोला- मैंने भी नया घर खरीदा है। उसके लिए ४० हजार की जरूरत थी, सो मैंने लिफाफे में केवल ६० हजार ही डाले हैं। उन दोनों की बातें सुनकर छोटा बेटा तैश में आकर बोला- शर्म आनी चाहिए। आप लोग पिताजी की अंतिम इच्छा का भी पालन नहीं कर सके। मैंने तो एक पैसे की भी बेईमानी नहीं की। पूरे एक लाख रुपए का चैक लिफाफे में डालकर आया हूं।

१११६) गोखले अपने बुजुर्ग माता पिता के बारे में बताता है। वह कहता है, बाबा अपने अंतिम दिनों में बहुत बीमार थे। घर पर ही रहते थे। दफ्तर का काम मां संभालती थी। मैं १२वीं में फेल हो गया था, तो घर पर ही रहता था। बाबा को हमेशा मुझसे कुछ बोलना होता था, लेकिन मुझे हमेशा उनका बोलना निरर्थक लगता था। मुझे अपने दोस्तों से बात करना, पार्टी करना पसंद था। इसलिए मैं बार बार घर के बाहर चला जाता था। बाबा को कॉफी बहुत पसंद थी। एक बार की बात है, घर में कॉफी खत्म हो गयी। बाबा रोज मुझे याद दिलाते कि कॉफी खरीदते हुए आना। मैं हां कहता और निकल जाता। दोस्तों के साथ पार्टी में कॉफी लाना भूल जाता। जब घर आता और बाबा को दरवाजे पर बैठा देखता, तब कॉफी की याद आती। यह सिलसिला कई दिनों तक चला। बाबा एक दिन बोले- तेरी उम्र है दोस्तों के साथ घूमने की, लेकिन कभी कभी अपने बाबा से भी कुछ बात कर लिया कर। मैंने उनकी बात को फिर टाला और निकल गया। एक दिन दुकान देख अचानक कॉफी की याद आई। सोचा कि आज कॉफी ले ही जाता हूं। मैं खरीद कर घर ले गया। बाबा दरवाजे पर नहीं थे। मैंने सोचा कि चलो अच्छा है। आज कॉफी हाथों से बनाकर सरप्राइज दूंगा। मैंने किचन में जाकर अच्छी कॉफी बनाई। कॉफी का कप हाथ में लेकर बाबा के कमरे में गया। वे कुर्सी पर लेटे थे। मैंने कहा, बाबा बाबा उठो कॉफी लाया हूं। बाबा

नहीं देख रहे थे। मैंने कहा, बाबा भाव मत खाओ। क्या बोलना है बोलो आज। कॉफी पीते पीते। पर बाबा नहीं बोले। मैंने उनके शरीर पर हाथ लगाया, लेकिन वे गुजर चुके थे। मुझे आज तक पता नहीं चला कि उन्हें क्या बोलना था।

१११७) अबुल हसन खिरकानी मुस्लिम संत थे। उनके एक भाई थे। दोनों मिलकर अपनी वृद्ध और बीमार मां की सेवा करते थे। पिता अर्सा पहले गुजर गए थे। दोनों भाइयों के बीच बहुत स्नेह था और दोनों ने कार्य विभाजन इस प्रकार किया था कि जब एक भाई मस्जिद में नमाज पढ़ने जाता, तो दूसरा उस समय मां के पास रहकर उसकी सेवा करता। फिर पहले के आने पर वह मां की देखभाल करता और दूसरा मस्जिद जाता। मां भी अपने पुत्रों से बेहद प्रसन्न थी। एक बार अबुल हसन के भाई की बारी मां की सेवा करने की थी, किंतु उसका मन मस्जिद जाकर नमाज पढ़ने का था। इसलिए उसने अबुल हसन से मां का ध्यान रखने को कहा।

अबुल ने भाई की बात मान ली और भाई को भेज दिया। जब अबुल हसन का भाई मस्जिद में नमाज पढ़ रहा था, तो उसे ऐसा लगा कि खुदा उसके कानों में कह रहे हैं- मैंने तेरे भाई को जन्नत अदा की है और उसके कारण तेरे गुनाह माफ कर दिए हैं। अबुल का भाई हैरान रह गया कि अल्लाह की नमाज को अधिक महत्व देने के बावजूद जन्नत अबुल को मिल रही है। उसने खुदा से पूछा- मैंने आपकी प्रार्थना को मां की सेवा से भी ऊपर रखा, तो मेरे कारण भाई का भला होना चाहिए, न कि उसके कारण मेरा। यह अन्याय क्यों?

तब खुदा ने कहा- तू मेरी इबादत करता है, जबकि तेरा भाई मां की सेवा करता है, जिसकी मां को बहुत जरूरत है। इसलिए वह तुझसे अधिक पुण्यवान है। खुदा की बात सुनकर उसे अपनी भूल का अहसास हुआ।

१११८) संयुक्त राज्य अमेरिका के १६ वें राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन लोकतंत्र के मसीहा माने जाते हैं। राष्ट्रपति बनने से पहले भी वे बहुत लोकप्रिय नेता थे। वे हमेशा जनमत का आदर करते थे। साधारण व्यक्ति के अच्छे सुझाव को भी मान लेने में उन्हें संकोच नहीं होता था। उनका बचपन अभावों में बीता। कभी नाव चलाकर, तो कभी लकड़ी काटकर भी उन्हें जीविका चलानी पड़ती थी। उनकी उदारता का परिचय एक छोटी-सी कहानी से मिलता है।

एक बार उन्हें पता चला कि एक पड़ोसी के पास जॉर्ज वॉशिंगटन की जीवनी वाली एक किताब है। लिंकन के लिए पुस्तक खरीद कर पढ़ना भी मुमकिन नहीं था। मगर पड़ोसी से किताब मांगने में उन्हें हिचक महसूस हुई। पड़ोसी ने उनकी रुचि को देखते हुए वह पुस्तक उन्हें दे दी। लिंकन ने उसे जल्दी ही लौटाने का वादा किया। एक दिन जोरों की बारिश हुई। चूंकि लिंकन झोपड़ी में रहते थे, जिसकी छत बारिश का पानी नहीं रोक पाती थी।

बारिश में वह पुस्तक पूरी तरह भीग गयी। लिंकन ने वह पुस्तक पूरी तरह पढ़ी भी नहीं थी फिर भी दुखी मन से पड़ोसी के पास जाकर बोले, आपकी पुस्तक को ठीक से संभाल नहीं पाने का मुझसे अपराध हुआ है, किंतु मैं आपको नयी पुस्तक लाकर दूंगा। पड़ोसी ने उनकी गरीबी को देखते हुए सवाल किया, नयी पुस्तक किस तरह लाकर दोगे? लिंकन बोले, मुझे अपनी मेहनत पर पूरा विश्वास है। मैं आपके खेत में मजदूरी कर पुस्तक के दोगुने दाम का काम कर दूंगा। पड़ोसी मान गया। लिंकन ने काम करके पुस्तक के दाम की भरपाई कर दी और वॉशिंग्टन की जीवनी वाली किताब उन्हीं की संपत्ति हो गयी। इस प्रकार अपनी मेहनत से लिंकन ने अपने पुस्तकालय की पहली पुस्तक प्राप्त की थी। लिंकन के

जीवन की यह घटना सिखाती है कि हमें जीवन में अगर कुछ हासिल करना है, तो अपने श्रम पर ही भरोसा करना चाहिए, न किस किसी दूसरे पर।

खुद के मेहनत से जो उपलब्धि प्राप्त होती है, उसमें ही आप प्रशंसा के पात्र होते हैं। अपने ऊंचे विचारों और महान व्यक्तित्व के कारण ही एक दिन लिंकन अमेरिका के राष्ट्रपति पद तक पहुंचे।

१११९) शहर बनारस। बनारस में हरिश्चन्द्र हाईस्कूल। हरिश्चन्द्र हाईस्कूल के स्काउट मास्टर श्री निष्कामेश्वर मिश्र ने बच्चों को आगरा का ताजमहल दिखाने की योजना बनाई। आगरा जाने के लिए प्रति छात्र २० रुपये इकट्ठा किये गये। कक्षा में सभी बच्चों ने अपने-अपने, बीस-बीस रुपये जमा कर दिये। एक छात्र जिसे सभी नन्हें कहा करते थे, ने बीस रुपये जमा नहीं किये। श्री मिश्र जानते थे कि यह बच्चा मेधावी और अध्ययनशील है। नन्हे के पिता का स्वर्गवास हो गया है। कुछ विशेष लगाव था उन्हें नन्हे के प्रति। मिश्र जी ने नन्हें से पूछा- बेटा नन्हें तुम तो किसी से पीछे नहीं रहते, फिर इस बार २० जमा करने में पीछे क्यों ?

गुरुजी, मैं आगरा नहीं जाना चाहता। नन्हा बोला।

सभी तो जा रहे है, फिर तुम क्यों नहीं ?

जी, मेरा मन नहीं करता।

क्या मां ने मना कर दिया ?

नहीं तो, मां भला क्यों मना करने लगी।

गुरुजी ने बड़े प्यार से नन्हे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा- नन्हें, क्या पैसे नहीं हैं ?

गुरुजी, पैसे तो हैं।

लाओ मुझको दिखाओ।

नन्हें ने एक पैसा निकालर गुरुजी के हाथ पर रखा और मुंह फेर कर आंसुओं को रोकने की असफल चेष्टा करने लगा। गुरुजी का गला भी भर गया और आंखें भी छलछला उठी। गुरुजी ने कहा- नन्हें, तू महान है। मैं तेरे दिल की बात न जान सका। तू निश्चित ही एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। माह का अन्तिम सप्ताह है। जब वह घर पहुंचे तो उनका पोता बाबा जी आ गये, बाबा जी आ गये कहते हुए उनकी ओर दौड़ा। बाबा ने प्यार से उसे गोदी में उठाया और उसके मुख पर चुम्बन जड़ दिया।

बाबा ने कहा- जाओ बेटे, जाकर पढ़ो।

लेकिन, बाबा जी। पोता बोला।

लेकिन क्या बेटे, बताओ।

मुझे एक स्लेट चाहिए, बाबा जी।

ठीक है। तीन-चार दिन में अपने राजा बेटे को एक स्लेट ला देंगे।

परन्तु बाबा जी, मुझे तो आज ही चाहिए।

आज। कुछ सोचने के अंदाज में बाबा का माथा सिकुड़ा।

क्या सोचने लगे बाबा।

यही कि अभी पहली तारीख के तीन-चार दिन है। तनख्वाह भी अभी चार दिन बाद मिलेगी। तभी....।

११२०) पहले क्यों रोया, फिर क्यों हंसा? - कलिंग देश में शोभावती नाम का एक नगर है। उसमें राजा प्रद्युम्न राज करता था। उसी नगरी में एक ब्राह्मण रहता था, जिसके देवसोम नाम का बड़ा ही योग्य पुत्र था। जब देवसोम सोलह बरस का हुआ और सारी विद्याएँ सीख चुका तो एक दिन दुर्भाग्य से वह मर गया। बूढ़े माँ-बाप बड़े दु:खी हुए। चारों ओर शोक छा गया। जब लोग उसे लेकर श्मशान में पहुंचे तो रोने-पीटने की आवाज सुनकर एक योगी अपनी कुटिया में से निकलकर आया। पहले तो वह खूब जोर से रोया, फिर खूब हँसा, फिर योग-बल से अपना शरीर छोड़कर उस लड़के के शरीर में घुस गया। लड़का उठ खड़ा हुआ। उसे जीता देखकर सब बड़े खुश हुए। वह लड़का वहीं तपस्या करने लगा। इतना कहकर बेताल बोला, राजन, यह बताओ कि यह योगी पहले क्यों रोया, फिर क्यों हँसा?

राजा ने कहा, इसमें क्या बात है। वह रोया इसलिए कि जिस शरीर को उसके माँ-बाप ने पाला-पोसा और जिससे उसने बहुत-सी शिक्षाएँ प्राप्त कीं, उसे छोड़ रहा था। हँसा इसलिए कि वह नये शरीर में प्रवेश करके और अधिक सिद्धियाँ प्राप्त कर सकेगा। राजा का यह जवाब सुनकर बेताल फिर पेड़ पर जा लटका।

११२१) लालसा न रखें, संन्यासी की तरह जीवन का आनंद उठाएं - पुरानी बात है। सन्यासी राजा के निमंत्रण पर महल में चला गया। सन्यासी बड़े मजे से वहां रहा। महल से जाने की कहीं कोई चर्चा ही नहीं की उसने। राजा ने सोचा- मैं तो संन्यासी को एक अतिथि के तौर पर लाया था कि दो चार दिन रहेगा पर जम गया यहां आकर। जाता ही नहीं है। जाने का नाम ही नहीं लेता। आखिर राजा बोला- महाराज। जंगल में चलें। बहुत दिन हो गये बैठे-बैठे जंगल यात्रा करें आनंद मिलेगा। संन्यासी उठ खड़ा हुआ। चल दिया। जाकर एक पेड़ के नीचे बैठ गया। राजा बोला- मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूं। मैं भी महल में रहता हूं और आप भी मेरे महल में रहे। ऐसा लगता था मुझे आप शायद वहीं रहना चाहते थे और रह भी गये। तो मुझमें और आपमें क्या अंतर हुआ?

संन्यासी मुस्कुराया और बोला- और कोई अंतर नहीं है। अंतर इतना ही है कि मेरे मन में महल नहीं रहा मैं महल में रहा। तुम्हारे मन में महल रहता है तुम महल में नहीं रहते। यही अंतर है। कहने का अर्थ यही है कि जिस व्यक्ति में लालच है लोभ है भोग की आकांक्षा है उसके दिमाग में पदार्थ रहता है। वह पदार्थ का भोग कभी नहीं कर सकता। उसे पता ही नहीं चलता। इतनी मूर्च्छा के साथ भोग करता है कि पदार्थ का उसे पता ही नहीं रहता कि मैं क्या कर रहा हूं क्या खा रहा हूं? क्या भोग रहा हूं? किंतु जब लालसा चली जाती है तृष्णा टूट जाती है आकांक्षा का धागा टूट जाता है तो फिर वह महल में रह सकता है। उसके दिमाग में महल नहीं रहता। पदार्थ का उसके दिमाग में कोई स्थान नहीं रहता।

११२२) लुहार ने बनाया यमराज को कैदी; फिर समझ में आया मृत्यु क्यों जरूरी है - एक बार महान तपोबल वाले एक महात्मा किसी लुहार के घर रुके। निर्धन लुहान ने उनका खूब सत्कार किया। महात्मा उसके आतिथ्य-सत्कार से बहुत प्रसन्न हुए। जाते समय उन्होंने लुहार से तीन वर मांगने को कहा। लुहार बोला, महाराज। मुझे जीवन

में किसी वस्तु का अभाव न रहे और मैं सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहूं। महात्मा ने तथास्तु कहकर तीसरा वर मांगने को कहा। लुहार को कुछ समझ में नहीं आया तो उसके मुंह से यह निकल गया, मेरे यहां जो लोहे की कुर्सी है उस पर जो बैठे वह मेरी मर्जी के बिना न उठ पाए।

महात्मा वर देकर चले गए। लुहार ने प्रथम दो वरदानों की बदौलत बड़े ऐश्वर्य के साथ सौ वर्ष का जीवन पूर्ण किया। सौ वर्ष पूर्ण होने के बाद जब यमराज उसे लेने आए तो वह घबरा गया। उसने चतुराई दिखाते हुए यमराज से कहा, महाराज। आप इस लोहे की कुर्सी पर विराजें। मैं अपने जीवन का अंतिम कार्य निपटा लूं। यमराज उस कुर्सी पर बैठकर लुहार के कैदी हो गए। लुहार ने खुश होकर मुर्गा खाने की सोची। किंतु जैसे ही उसने मुर्गे की गर्दन काटी वह तुरंत जुड़ गई, क्योंकि बिना यमराज के मौत कैसे आती?

लुहार ने मन मारकर दाल-रोटी खाई। एक वर्ष होते होते तो अनर्थ हो गया। मृत्यु के अभाव में हवा में कीट, पतंगे, मक्खी, मच्छरों की इतनी भरमार हो गई कि सांस लेना दूभर हो गया। चूहों ने सारी फसलें तबाह कर दीं। पानी में जलीय जीव इतने हो गए कि इंसानों के लिए पीने का पानी ही न बचा। अब लुहार को अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने यमराज को मुक्तकर क्षमा मांगी। जीवन के साथ मृत्यु भी अनिवार्य आवश्यकता है। मृत्यु के अभाव में धरती नर्क बन जाएगी। इसलिए प्रकृति के नियमों का आदर करना चाहिए।

११२३) अमेरिकी प्रेसीडेंट जानसन बचपन में जूता-पॉलिश करते थे - उन्होंने अब तक जितने बॉस देखे, वह उनसे हटकर थे। वह अपने संगणक को खुद ही साफ करते और फ्रिज तक जाकर खुद अपना गिलास भरते। काम को लेकर छोटे-बड़े का वर्गीकरण उन्हें पसंद न था। उनके लिए हर काम बस काम था, जिसे हर हाल में पूरा किया जाना चाहिए। अमूमन हम काम के जरिए उसे करनेवाले की सोच व व्यवहार को आंकते हैं, जो गलत है। अमेरिका के राष्ट्रपति रहे लिंडन बी जॉनसन ने गर्मियों की छुट्टियों में पैसे कमाने के लिए नौ साल की उम्र में जूतों की पॉलिश की। बाद में उन्होंने कपास के खेतों में काम किया, बस चालक बने और वेटर भी। वह कहते थे कि उन कामों में कोई फर्क नहीं था। उनका लक्ष्य सभी कामों के लिए एक था- पूर्णत: के साथ उन्हें निभाना। यही सोच बराक ओबामा की है। उन्होंने उम्र के एक पड़ाव पर आइसक्रीम बेची, सैंडविच बनाई और गिफ्ट शॉप पे काम किया। मनोवैज्ञानिक चार्ल्स स्पीलबर्गर कहते हैं कि प्रत्येक काम को इज्जत बख्शने वाले लोग अधिक शालीन व विनम्र होते हैं। जो माता-पिता अपने बच्चों से उनसे जुड़े सभी काम खुद करने को कहते हैं, उनमें तुरंत इच्छापूर्ति की समस्या नहीं होती। वे मेहनत और उसके परिणाम को बेहतर तरीके से समझते हैं। शायद ऐसा ही कुछ सोचकर नारायण मूर्ति ने अपने बेटे को इंफोसिस में सबसे छोटे पदों में से एक की कमान सौंपी। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने सर्कस में काम किया, फिर लाइफ गार्ड का काम करते हुए ५७ लोगों को डूबने से बचाया। कैफेटेरिया में टेबल साफ करने की ड्यूटी भी संभाली। उन्होंने कहा कि इन कामों से ही उन्हें जीवन का मकसद मिला।

११२४) संतोष सबसे कीमती धन- इसके सामने सारे धन धूल के समान होते हैं - आसफउद्दौला नेक बादशाह था। जो भी उसके सामने हाथ फैलाता, वह उसकी झोली भर देता था। एक दिन उसने एक फकीर को गाते सुना जिसको

न दे मौला उसे दे आसफउद्दौला। बादशाह खुश हुआ। उसने फकीर को बुलाकर एक बड़ा तरबूज दिया। फकीर ने तरबूज ले लिया मगर वह दुखी था। उसने सोचा तरबूज तो कहीं भी मिल जाएगा, बादशाह को कुछ मूल्यवान चीज देनी चाहिए थी। थोड़ी देर बाद एक और फकीर गाता हुआ बादशाह के पास से गुजरा। उसके बोल थे- मौला दिलवाए तो मिल जाए, मौला दिलवाए तो मिल जाए। आसफउद्दौला को अच्छा नहीं लगा। उसने फकीर को बेमन से दो आने दिए। फकीर ने दो आने लिए और झूमता हुआ चल दिया। दोनों फकीरों की रास्ते में भेंट हुई।

उन्होंने एक दूसरे से पूछा, बादशाह ने क्या दिया? पहले ने निराश स्वर में कहा, सिर्फ यह तरबूज मिला है। दूसरे ने खुश होकर बताया, मुझे दो आने मिले हैं। तुम ही फायदे में रहे भाई, पहले फकीर ने कहा। दूसरा फकीर बोला, जो मौला ने दिया ठीक है। पहले फकीर ने वह तरबूज दूसरे फकीर को दो आने में बेच दिया। दूसरा फकीर तरबूज लेकर बहुत खुश हुआ। उसने तरबूज काटा तो उसकी आंखें फटी रह गईं। उसमें हीरे-जवाहरात भरे थे। कुछ दिन बाद पहला फकीर फिर आसफउद्दौला से खैरात मांगने गया। बादशाह ने फकीर को पहचान लिया। तुम अब भी मांगते हो? उस दिन तरबूज दिया था वह कैसा निकला? फकीर ने कहा, मैंने उसे दो आने में बेच दिया था।

बादशाह ने कहा, भले आदमी, उसमें मैंने तुम्हारे लिए हीरे जवाहरात भरे थे परंतु तुमने उसे बेच दिया। तुम्हारी सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि तुम्हारे पास संतोष नहीं है। अगर तुमने संतोष करना सीखा होता तो तुम्हें वह सब कुछ मिल जाता जो तुमने सोचा भी नहीं था लेकिन तुम्हें तरबूज से संतोष नहीं हुआ।

११२५) क्रोध के प्रति सतर्क रहते हुए उसके कारण को ही मिटा दिया जाए - रोमन सम्राट जूलियस सीजर की गिनती दुनिया के श्रेष्ठ योद्धाओं में की जाती है। वह स्वयं को वीनस देवी का वंशज मानते थे। सीजर भी अपने पूर्वजों की राह पर चलते हुए एक तानाशाह बन गया। उसने अपने जीवन में अनेक युद्ध लड़े।

उसके दोस्तों की संख्या भी अच्छी खासी थी और दुश्मन भी अनेक थे, जो तरह-तरह से उसके खिलाफ साजिश रचते रहते थे। लेकिन सीजर इन सब चीजों की परवाह नहीं करता था।

वह मानता था कि जीवन के हर पल को भरपूर जीने में ही सुख है। इसलिए घोर विपत्ति में भी वह जरा भी परेशान नहीं होता था। उसमें काम करने की एक धुन थी। उसके बारे में मशहूर है कि वह एक बार में तीन काम एक साथ करता था। एक दिन सीजर अपने कुछ मित्रों के साथ बैठा था कि अभी उसे पत्रों का एक पुलिंदा मिला। वे पत्र उसके किसी विरोधी ने लिखे थे।

सीजन ने उन्हें बिना पढ़े ही आग के हवाले कर दिया। यह देखकर उसके एक मित्र ने कहा, आपने पत्र जलाकर अच्छा नहीं किया। इनके जरिए हम उनके षडयंत्रों का पर्दाफाश कर सकते थे। अपने उस हितैषी को परामर्श के लिए धन्यवाद देने के बाद बड़े सधे अंदाज में सीजर ने कहा, मैं क्रोध के प्रति बेहद सतर्क रहता हूं, पर मेरी दृष्टि में उससे भी ज्यादा आवश्यक कदम यह है कि क्रोध के कारण को ही मिटा दिया जाए।

११२६) संत अबू उस्मान ने समझाया, सबसे बड़ी होती है माता-पिता की सेवा - अबू उसमान हैरी नाम के एक प्रसिद्ध संत थे। वह अरब देश के खुरासान में वह रहते थे। दूर दूर तक उनका नाम था। लोग बड़ी श्रद्धा से उनके पास

आते थे और उनके सात्विक उपदेशों से लाभ उठाते थे।

एक बार एक आदमी हज करने के विचार से घर से निकला। रास्ते में अबू उसमान हैरी की जगह पड़ती थी। उसने सोचा कि थोड़ा रुककर संत के दर्शन कर लेता हूं। यह सोचकर वह उनके निवास पर पहुंचा और उनको सलाम किया, लेकिन संत ने उसके सलाम का जवाब नहीं दिया।

इस बात से वह आदमी दु:खी हो गया। वह कितनी श्रद्धा से उनके पास आया था और उन्होंने उसका अभिवादन भी स्वीकार नहीं किया। यह सोचकर वह हैरान था। तब संत ने कहा मां को नाराज करके हज करना अच्छा नहीं। अब उसे ध्यान आया कि उसकी मां को उसकी जरूरत थी और वह उसे रोकती रही थी। जब वह नहीं माना तो वह नाराज हो गई। उसकी नाराजगी की चिंता किए बगैर वह हज करने निकल चला आया। संत की बात सुनकर वह उल्टे पैर घर लौट आया और मां की सेवा अंतिम समय तक करता रहा।

मां का देहांत हो जाने के बाद जब वह संत के पास पहुंचा, तो उन्होंने बड़े प्यार से उसका स्वागत किया और उसे अपना आशीर्वाद दिया और कहा कि दुनिया में सबसे बड़ी सेवा अपने माता-पिता की सेवा करना ही है।

११२७) जब तक दूसरों से कुछ सीखने में शर्म नहीं आए तब तक सीखते रहिए - यूनानी दार्शनिक अफलातून के पास हर दिन कई विद्वानों का जमावड़ा लगा रहता था। सभी उनसे कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करके जाया करते थे। लेकिन स्वयं अफलातून खुद को कभी भी ज्ञानी नहीं मानते थे। वे हमेशा कुछ न कुछ नई बात सीखने को उत्सुक रहते थे।

एक दिन उनके एक मित्र ने कहा, आपके पास दुनिया के बड़े-बड़े विद्वान कुछ न कुछ सीखने और जानने आते हैं और आपसे बातें करके अपना जन्म धन्य समझते हैं। किंतु आपकी एक बात मेरी समझ में नहीं आती।

मित्र की बात पर अफलातून बोले, तुम्हें किस बात पर शंका है? इस पर मित्र बोला, आप स्वयं इतने बड़े दार्शनिक और विद्वान हैं, लेकिन फिर भी आप दूसरे से शिक्षा ग्रहण करने के लिए हमेशा तेयार रहते हैं, वह भी बड़े उत्साह और उमंग के साथ। उससे भी बड़ी बात यह है कि आपको साधारण व्यक्ति से सीखने में भी झिझक नहीं होती। आपको सीखने की भला क्या जरूरत है? कहीं आप लोगों को खुश करने के लिए उनसे सीखने का दिखावा तो नहीं करते?

मित्र की बात पर अफलातून जोर से हंसे और फिर उन्होंने कहा, हर किसी के पास कुछ न कुछ ऐसी चीज है जो दूसरों के पास नहीं। इसलिए हर किसी को हर किसी से सीखना चाहिए।

ज्ञान अनंत है इसकी कोई सीमा नहीं है। जब तक दूसरों से कुछ सीखने में शर्म नहीं आए तब तक सीखते रहिए। यही आगे बढ़ने का फलसफा है।

११२८) डॉ. जाकिर हुसैन ने जर्मन टीचर को सिखाया तहजीब किसे कहते हैं - डॉ. जाकिर हुसैन जब विशेष अध्ययन के लिए जर्मनी गए हुए थे। वहां कोई भी अनजान व्यक्ति दूसरे अनजान को देखकर अपना नाम बताते हुए हाथ आगे बढ़ा देता था। इस प्रकार अपरिचित लोग भी एक दूसरे के दोस्त बन जाते थे। दोस्ती करने का यह रिवाज वहां काफी लोकप्रिय था। एक दिन जाकिर हुसैन के कॉलेज में वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा था। कार्यक्रम का समय हो चुका था। सभी विद्यार्थी व शिक्षक वार्षिकोत्सव के लिए निर्धारित स्थल पर पहुंच रहे थे। जाकिर साहब भी जल्दी-जल्दी वहां जाने

के लिए अपने कदम बढ़ा रहे थे। जैसे ही उन्होंने कॉलेज में प्रवेश किया, एक शिक्षक महोदय भी वहां पहुंचे। दोनों ही जल्दबाजी और अनजाने में एक दूसरे से टकरा गए। शिक्षक महोदय जाकिर साहब से टक्कर होने पर गुस्से से उन्हें देखते हुए बोले, इडियट। यह सुनकर जाकिर साहब ने फौरन अपना हाथ आगे की ओर बढ़ाया और बोले, जाकिर हुसैन। भारत से यहां पढ़ने के लिए आया हुआ हूं। जाकिर साहब की हाजिरजवाबी देखकर शिक्षक महोदय का गुस्सा मुस्कराहट में बदल गया। वह बोले, बहुत खूब। आपकी हाजिरजवाबी ने मुझे प्रभावित कर दिया। इस तरह परिचय देकर आपने हमारे देश के रिवाज को भी मान दिया है और साथ ही मुझे मेरी गलती का अहसास भी करा दिया है। वाकई हम अनजाने में एक-दूसरे से टकराए थे। ऐसे में मुझे क्षमा मांगनी चाहिए थी। अपशब्द नहीं बोलने चाहिए थे।

११२९) इंसान दूसरों के दोष देखने की जगह अपने दोष देखे तो जिंदगी में काफी आगे बढ़ सकता है - एक बार एक लड़का महात्मा के पास आया और उसने कहा हे महात्मा आप मुझे अपना चेला बना लीजिए। बुढ़ापा आ रहा है यह सोचकर उन्होंने उसे चेला बना लिया। चेला बहुत चंचल प्रकृति का था। ध्यान में उसका मन नहीं लगता था। गुरु ने कई बार उसे समझाने की चेष्टा की पर सफलता नहीं मिली। उसने एक दिन गुरुदेव से कहा मुझे कोई चमत्कार सिखा दें। गुरु ने कहा, वत्स। चमत्कार कोई काम की वस्तु नहीं है। पर चेला अपनी बात पर अड़ा रहा। बालहठ के सामने गुरूजी को झुकना पड़ा। उन्होंने अपने झोले में से एक पारदर्शी डंडा निकाला और चेले के हाथ में उसे थमाते हुए कहा, यह लो चमत्कार। इस डंडे को तुम किसी व्यति के सामने करोगे, उसके दोष इसमें प्रकट हो जाएंगे। गुरु ने चेले के हाथ में डंडा क़्या थमाया, मानो बंदर के हाथ में तलवार थमा दी। कोई भी व्यक्ति उस आश्रम में आता, चेला हर आगंतुक के सामने उस डंडे को घुमा देता। फलत: उसकी कमजोरियां उसमें प्रकट हो जातीं और चेला उनका दुष्प्रचार शुरू कर देता। गुरुजी सारी बात समझ गए। एक दिन उन्होंने चेले से कहा, एक बार डंडा अपनी ओर भी घुमाकर देख लो, इससे स्वयं का परीक्षण हो जाएगा कि आश्रम में आकर अपनी साधना से तुमने कितनी प्रगति की है। चेले को बात जंची, उसने फौरन डंडा अपनी ओर किया। लेकिन देखा कि उसके भीतर तो दोषों का अंबार लगा है। शर्म से उसका चेहरा लटक गया। वह तत्काल गुरु के चरणों में गिर पड़ा और अपनी भूल की क्षमा मांगते हुए बोला, आज से मैं दूसरों के दोष देखने की भूल नहीं करूंगा।

११३०) अहंकार से बचने के लिए व्यक्ति को सादगी अवश्य अपनानी चाहिए - हेनरी फोर्ड संसार के अग्रणी उद्योगपति थे। उन्होंने अमेरिका में फोर्ड मोटर कंपनी की स्थापना की। उनके नाम पर बनाई गई फोर्ड मोटर ने हर जगह नाम कमाया। एक भारतीय उद्योगपति ने मोटर का कारखाना लगाने से पहले हेनरी फोर्ड से भेंट करने निश्चय किया। अमेरिका पहुंचकर उसने हेनरी फोर्ड को फोन किया और मिलने की इच्छा व्यक्त की। फोर्ड ने कहा शाम छह बजे मेरे घर पर आ जाना। उद्योगपति उनके घर पहुंचा तो उसने देखा कि एक व्यक्ति अपने खाने के बर्तन स्वयं साफ कर रहा है। बर्तन साफ कर एक और रख देने के बाद उसने कहा कि बैठिए मुझे हेनरी फोर्ड कहते हैं।

भारतीय ने कहा कि आप इतने बड़े व्यक्ति होकर भी साधारण व्यक्तियों की तरह रहते हैं। अपना काम स्वयं करते हैं यह काम के लिए आप नौकर भी रख सकते हैं। फोर्ड ने उत्तर दिया- मैं शुरू से ही अपना काम स्वयं करता था, हाथों से किए

गए कठोर परिश्रम के कारण ही मैं आज फोर्ड कारखाने का मालिक बन पाया हूं।

मैं उन दिनों को भूल न जाउ। इसलिए अपना काम स्वयं करता हूं। संसार के इतने बड़े आदमी को इस तरह सादगी देखकर भारतीय उद्योगपति हतप्रभ हो गए।

इंसान को जीवन में सादगी जरूर अपनानी चाहिए इससे उसमें अहंकार और कई ऐसे दुर्गुण जो उसे नष्ट कर सकते हैं नहीं पनप सकते हैं।

११३१) आनन-फानन में कार्य शुरू करने के बजाय गंभीर होकर सही दिशा में आगे बढ़ें - नए साल के जश्न में शामिल होने लंबे-चौड़े कदवाला एक कलाकार अपना सामान और संगीत वाद्य लेकर रेलवे स्टेशन पर उतरा। उसने टैक्सीवाले को इशारे से बुलाया और कहा- सैंड होटल ले चलो।

टैक्सीवाले ने कहा, सौ रुपए लगेंगे। वह व्यक्ति शहर में नया आया था, लेकिन उसे यह पता था कि यह होटल स्टेशन से सिर्फ दो किलोमीटर दूर है। हालांकि उसे टैक्सी के किराये के बारे में नहीं पता था। वह बोला- आप तो लूट रहे हैं। मेरे अंदर इतनी ताकत है कि अपना सामान उठाकर सैंड होटल चला जाऊ।

वह व्यक्ति काफी दूर तक सामान लेकर निकल गया। अब उसे सामान के साथ चलना काफी भारी पड़ रहा था। कुछ देर बाद उसे वही टैक्सी वाला जाते हुए दिखा। उसने टैक्सीवाले को रोककर पूछा, अब तो मैंने आधे से ज्यादा दूरी तय कर ली है, अब सैंड होटल के कितने रुपये लोगे? टैक्सीवाला बोला- २०० रुपए। वह व्यक्ति फिर गुस्से से भर गया, वहां से सौ रुपए, यहां से दो सौ रुपए?

टैक्सीवाले ने कहा, श्रीमान जी, आप होटल की विपरीत दिशा में चल रहे हैं। अब आप उससे और भी दूर आ चुके हैं। अब वह व्यक्ति चुपचाप टैक्सी में बैठ गया।

कोई भी काम आनन-फानन में शुरू करने के बजाय हमें पहले उसके हर पहलू पर गंभीरता से सोच लेना चाहिए। आपकी दिशा सही होगी, तभी मेहनत रंग लाएगी।

११३२) असल उपलब्धि है निर्मलमन, अगर मन पवित्र नहीं हुआ तो सारा ज्ञान व्यर्थ है - एक युवा ब्रह्मचारी ने दुनिया के कई देशों में जाकर अनेक कलाए सीखीं। एक देश में उसने धनुष बाण बनाने और चलाने की कला सीखी और कुछ दिनों के बाद वह दूसरे देश की यात्रा पर गया।

वहां उसने जहाज बनाने की कला सीखी क्योंकि वहां जहाज बनाए जाते थे। फिर वह किसी तीसरे देश में गया और कई ऐसे लोगों के संपर्क में आया, जो घर बनाने का काम करते थे।

इस प्रकार वह सोलह देशों में गया और कई कलाओं को अर्जित करके लौटा। अपने घर वापस आकर वह अहंकार में भरकर लोगों से पूछा- इस संपूर्ण पृथ्वी पर मुझ जैसा कोई गुणी व्यक्ति है?

लोग हैरत से उसे देखते धीरे-धीरे यह बात भगवान बुद्ध तक भी पहुंची। बुद्ध उसे जानते थे। वह उसकी प्रतिभा से भी परिचित थे। वह इस बात से चिंतित हो गए कि कहीं उसका अभिमान उसका नाश न कर दे। एक दिन वे एक भिखारी का रूप धरकर हाथ में भिक्षापात्र लिए उसके सामने गए।

ब्रह्मचारी ने बड़े अभिमान से पूछा- कौन हो तुम? बुद्ध बोले- मैं आत्मविजय का पथिक हूं। ब्रह्मचारी ने उनके कहे शब्दों का अर्थ जानना चाहा तो वे बोले- एक मामूली हथियार निर्माता भी बाण बना लेता है, नौ चालक जहाज पर नियंत्रण रख लेता है, गृह निर्माता घर भी बना लेता है। केवल ज्ञान से ही कुछ नहीं होनेवाला है, असल उपलब्धि है निर्मल मन। अगर मन पवित्र नहीं हुआ तो सारा ज्ञान व्यर्थ है। अहंकार से मुक्त व्यक्ति ही ईश्वर को पा सकता है। यह सुनकर ब्रह्मचारी को अपनी भूल का अहसास हो गया।

११३३) समय का प्रभाव - महाराज युधिष्ठिर के राज्य में एक वैश्य ने अपना मकान एक ब्राह्मण को बेचा। ब्राह्मण ने उस पुराने मकान को गिरवा दिया और उसकी जगह नया मकान बनवाना शुरू किया। उसी समय मकान से सोने की मुहरों से भरा एक घड़ा मिला। ब्राह्मण मुहरों से भरा घड़ा लेकर वैश्य के पास पहुंचा। उसने कहा, लालाजी, यह घड़ा आपके मकान की जमीन में गड़ा मिला। इसे आपको वापस करने आया हूं। वैश्य ने हाथ जोड़कर कहा, पंडित जी, मकान को मैंने बेच दिया है और उस मकान के बिकने के बाद आप उसके स्वामी हैं। वहां से निकली मोहरें मैं कैसे ले सकता हूं? इस तरह से दोनों सोने की मुहरों से भरे घड़े को लेने को तैयार नहीं हो रहे थे। अंत में किसी तरह उन्होंने घड़ा राजकोष में जमा करा दिया। महाराजा युधिष्ठिर तक जब इस घटना की खबर पहुंची तो उन्होंने भीम से कहा, देखो, मेरे राज्य में लोग कितने ईमानदार हैं? भीम बोले, महाराज, यह द्वापर युग का प्रभाव है। छह माह बाद कलियुग आएगा। तब देखिएगा प्रजा की नीयत कैसे बदलती है। पूरे छह माह बाद वैश्य और ब्राह्मण घड़े पर अधिकार का झगड़ा लेकर युधिष्ठिर के दरबार में पहुंचे। ब्राह्मण का कहना था कि जब उसने मकान खरीद लिया तो उसकी जमीन के अंदर जो भी है, वह उसका है। वैश्य का दावा था कि उसने मकान ही बेचा था। जमीन के अंदर दबे धन पर उसका ही अधिकार है, क्योंकि वह उसके पूर्वजों का है। महाराजा युधिष्ठिर ने दोनों से पूछा कि छह महीने पहले तो तुम दोनों इस घड़े को लेने से इन्कार कर रहे थे, अब क्या बात हो गई? पास बैठे भीम ने कहा, महाराज उस समय इन दोनों की बुद्धि ठीक थी, अब कलिकाल के प्रभाव से दोनों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। दोनों की नीयत में अंतर आ गया है। यह सब समय का प्रभाव है।

११३४) अतिथि की गरिमा - ब्रिटिश राजनयिक और फाइनैंसर सेसिल रोड्स सही पोशाक पहनने के पाबंद थे। एक दिन उन्होंने कई महत्वपूर्ण लोगों को खाने पर आमंत्रित किया। इसमें उन्होंने एक युवक को भी बुलाया था। उस दिन शहर से बाहर था। उसी दिन ट्रेन से लौटा। लेकिन ट्रेन लेट हो गई। युवक के पास इतना वक्त नहीं था कि वह घर जाकर वहां से अपने वार्डरोब में रखे नए और अच्छे कपड़े पहन पाता। मगर वह प्रतिभाशाली युवक रोड्स के डिनर की अहमियत भी समझ रहा था। उसमें जाना टाल नहीं सकता था। आखिर वह धूल से सने कपड़ों में ही रोड्स के घर पहुंच गया। वहां युवक ने देखा कि अन्य अतिथि पार्टी ड्रेस में और बेहद सजे धजे थे। मेहमानों ने युवक के गंदे कपड़ों पर एक उड़ती सी नजर डाली और व्यंग्य से मुस्कराने लगे। यह देखकर युवक को बेहद ग्लानि महसूस हुई। कुछ देर बाद रोड्स भी अपने मेहमानों से मिलने पहुंच गए। सभी अतिथिगण आश्चर्यचकित हो उन्हें देखते रह गए क्योंकि सही पोशाक पहनने के हिमायती रोड्स उस दिन पुराना सा सूट पहने हुए ही पार्टी में पहुंच गए थे। युवक ने जब रोड्स को पुराने सूट में देखा तो उसे थोड़ी राहत महसूस हुई और उसने सहज होकर पार्टी का आनंद लिया। बाद में युवक को पता चला कि उस दिन

रोड्स भी एक सुंदर इवनिंग ड्रेस पहन कर भोजन कक्ष आ रहे थे। युवक को गंदे कपड़ों में आता देख वे लौट गए। निजी कक्ष में जाकर उन्होंने अपनी महंगी इवनिंग ड्रेस उतारी और एक पुरानी ड्रेस पहन ली ताकि युवक को आत्मग्लानि न महसूस हो। यह जानकर युवक उनके प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो गया। रोड्स के अंदर समानुभूति के भाव थे। वह प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा की परवाह करते थे। ये वही विश्वविख्यात रोड्स थे जिनके धन से प्रसिद्ध रोड्स छात्रवृत्ति आरंभ की गई थी।

११३५) लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की विनोदप्रियता और हाजिरजवाबी - लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक धुन के पक्के थे। उनकी एक और विशेषता उनकी विनोदप्रियता थी। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वह मनोविनोद करते हुए समस्या को सुलझा लेते थे। वह केसरी नाम का मराठी दैनिक अखबार निकालते थे, जिसके तीखे तेवर से अंग्रेज सरकार परेशान रहती थी। वह छोटी-छोटी बात को लेकर उन पर मुकदमा कर देती थी। एक बार हाईकोर्ट में उन पर एक मुकदमा चल रहा था। तिलक की ओर से एक सीनियर वकील पैरवी कर रहे थे। संयोगवश उस दिन उनको अदालत आने में विलंब हो गया। जब वह काफी देर तक नहीं आए तो वहां मौजूद एक युवा वकील अपने एक अन्य मित्र वकील को लेकर उनके समीप गया और बोला, सर, लगता है आपके वकील साहब को जरूरी काम आ गया है। तभी तो उन्हें आने में देर हो रही है। आप कहें तो हम दोनों उनके स्थान पर आपकी सहायता करने के लिए तैयार हैं। तिलक बोले, अच्छा तो आप मेरे सीनियर वकील की जगह लेने के लिए बिल्कुल तैयार हैं। युवा वकील बोला, जी सर, आप हमें अवसर तो दीजिए। तिलक मुस्करा कर बोले, मेरे वकील आपसे लगभग दोगुनी उम्र के होंगे। युवा वकील बोला, कोई बात नहीं सर। हम बहुत अच्छा काम करेंगे। तिलक ने कहा, बीस-बाईस वर्ष की किसी कन्या के लिए वर के स्थान पर क्या दस-बारह वर्ष के दो किशोर चल सकते हैं? तिलक की बात सुनकर वहां उपस्थित सभी लोग हंस पड़े।

अपनी कार्यक्षमता के अनुसार ही हमें अपना काम करना चाहिए।

११३६) यदि किसी व्यक्ति का सब कुछ छीन लिया गया हो तो उसकी रातों की नींद उड़ जाती है - महाभारत में एक समय जब महाराज धृतराष्ट्र बहुत व्याकुल थे और उन्हें नींद नहीं आ रही थी, तब उन्होंने महामंत्री विदुर को बुलवाया। कुछ समय बाद विदुर महल में महाराज के सामने पहुंच गए। धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा कि मेरा मन बहुत व्याकुल है। जब से संजय पांडवों के यहां से लौटकर आया है, तब से मेरा मन बहुत अशांत है। संजय कल सभा में सभी के सामने क्या कहेगा, यह सोच-सोचकर मन व्यथित हो रहा है। नींद नहीं आ रही है। यह सुनकर विदुर ने महाराज से महत्वपूर्ण नीति की बात कही। विदुर ने कहा जब किसी व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष दोनों के जीवन में ये बातें होती हैं, तब उसकी नींद उड़ जाती है और मन अशांत हो जाता है।

पहली बात- विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा यदि किसी व्यक्ति के मन में कामभाव जाग गया हो तो उसे नींद नहीं आती है। जब तक कामी व्यक्ति की काम भावना तृप्त नहीं हो जाती है, तब तक वह सो नहीं सकता है। कामभावना व्यक्ति के मन को अशांत कर देती है और कामी किसी भी कार्य को ठीक से नहीं कर पाता है। यह भावना स्त्री और पुरुष दोनों की नींद उड़ा देती है।

दूसरी बात- जब किसी स्त्री या पुरुष की शत्रुता बहुत बलवान व्यक्ति से हो जाती है तो उसकी नींद उड़ जाती है। निर्बल

और साधनहीन व्यक्ति हर पल बलवान शत्रु से बचने के उपाय सोचता रहता है। उसे हमेशा यह भय सताता है कि कहीं बलवान शत्रु की वजह से कोई अनहोनी न हो जाए।

तीसरी बात- यदि किसी व्यक्ति का सब कुछ छीन लिया गया हो तो उसकी रातों की नींद उड़ जाती है। ऐसा इंसान न तो चैन से जी पाता है और ना ही सो पाता है। इस परिस्थिति में व्यक्ति हर पल छिनी हुई वस्तुओं को पुन: पाने की योजनाएं बनाते रहता है। जब तक वह अपनी वस्तुएं पुन: पा नहीं लेता है, तब तक उसे नींद नहीं आती है।

११३७) दूसरों के लिए जीनेवाला मनुष्य ही महान होता है - एक गांव में एक वृद्ध रहता था। उसकी उम्र अस्सी पार कर चुकी थी और वह कृशकाय था। उसका गांव हरे-भरे खेतों से भरपूर था। वह प्रतिदिन गांव से पांच मील दूर उस उजाड़ वन में जाता, जो उसके गांव को पास वाले गांव से जोड़ता था और दोनों गावों के लोग इस मार्ग से आते-जाते थे। इस वन के अधिकांश पेड़-पौधे सूख चुके थे। वृद्ध वन में बने एक नाले से पानी ला-लाकर उन पेड़-पौधों को रोज सींचता। एक दिन जब नाले का पानी सूख गया, तो वह कुछ दूर स्थित एक किसान के खेत पर गया। किसान खेत पर बनी झोपड़ी में बैठा था। उसने वृद्ध से पूछा- क्या चाहिए बाबा? वृद्ध बोला- मुझे चार-पांच घड़े पानी चाहिए। वन के सूखे पेड़-पौधों को सींचना है। नाले का पानी सूख गया है, यदि तुम थोड़े दिन मुझे अपने कुओं से पानी दे दोगे, तो ये पेड़-पौधे पनप जाएंगे। किसान ने हैरानी से पूछा- बाबा, तुम गांव से पांच मील यहां आकर क्यों पेड़-पौधे सींच रहे हो? वृद्ध ने कहा- मेरा एक ही बेटा था, जो जवानी में किसी बीमारी से मर गया। मैं ठहरा गरीब। उसकी याद में धर्मशाला, तालाब, बावड़ी तो बना नहीं सकता, इसलिए पेड़-पौधों को इस आस में सींचता हूं कि जब ये हरे-भरे हो जाएंगे, तो इनकी छाया में मनुष्य, पशु-पक्षी विश्राम लेंगे और फल के रूप में उन्हें कुछ आहार मिलेगा। जब तक मेरे शरीर में ताकत है, तब तक तो यह काम करूंगा। उस कृशकाय वृद्ध की कल्याणकारी भावना देख किसान उसके प्रति नतमस्तक हो गया। किसान ने भी उस दिन से उसके कार्य में हाथ बंटाना शुरू कर दिया। सार यह है कि अपने लिए तो सभी जीते हैं, दूसरों के लिए जीनेवाला मनुष्य सच्चे अर्थों में महान होता है।

११३८) जब अपने सम्मान के लिए बहुरूपिये ने हजारों अशर्फियां ठुकरा दीं - राजा भोज के दरबार में एक बहुरूपिया पहुंचा और पांच रुपए की दक्षिणा मांगी। राजा भोज ने कहा- कलाकार को उसकी कला के प्रदर्शन पर पुरस्कार तो दिया जा सकता है, दक्षिणा नहीं। बहुरूपिये ने स्वागत दिखाने के लिए तीन दिन का समय मांगा, जिसे भोज ने स्वीकार कर लिया। अगले दिन राजधानी के बाहर एक पहाड़ी पर एक जटाधारी तपस्वी को समाधि रूप में देखकर चरवाहों का समूह इकट्ठा हो गया। उनमें से किसी एक ने पूछा महाराज, इस भूमि को पवित्र करने के लिए आप कहां से पधारे? लेकिन तपस्वी ने न आंखें खोली और न शरीर को हिलाया। चरवाहों से उस तपस्वी का वर्णन सुन उस पहाड़ी पर धनिकों, दरबारियों का जमघट लग गया। फल, फूल और मिठाई तपस्वी के चरणों में रखी गई, किंतु बाबा के नेत्र बंद ही रहे। दूसरे दिन राजा भोज का प्रधानमंत्री पहुंचा और तपस्वी के चरणों में रुपए व रत्न रखकर आशीर्वाद देने की प्रार्थना की, किंतु सब व्यर्थ रहा। लौटकर प्रधानमंत्री ने राजा को यह बात बताई तो राजा स्वयं बाबा के पास पहुंचे, किंतु तपस्वी मौन रहा। चौथे दिन बहरूपिये ने दरबार में उपस्थित होकर तपस्वी के स्वांग की बात बताई तो विस्मित भोज बोले- मूर्ख,

खुद मैंने हजारों अशर्फियां तेरे चरणों में रखवाईं, तब तूने आंख न खोली और अब मात्रा पांच रुपए मांग रहा है। तब बहुरूपिये ने कहा- उस समय सारे वैभव तुच्छ थे, क्योंकि वेश या सम्मान की लाज रखनी थी, लेकिन अब कला का प्रदर्शन, अपने परिश्रम का पुरस्कार चाहता हूं।

वस्तुत: सच्चे कलाकार को कला के बल पर प्राप्त लघु उपलब्धि में ही संतोष मिलता है। दान में प्राप्त अपार संपदा उसके लिए तृण समान होती है।

११३९) सफलता पाने के लिए आसान तरीकों की आदत बदलनी होगी - एक गरीब बहुत बुद्धिमान था। वह रोज भिक्षा मांगने शहर जाता था। एक दिन वह शहर में सबसे पहले एक धनवान व्यापारी के घर गया। व्यापारी बहुत खुश नजर आ रहा था। भिक्षुक ने व्यापारी से पूछा- आज आप इतने खुश क्यों हैं? व्यापारी बोला- आज मुझे भगवान की कृपा से एक पुत्र की प्राप्ति हुई है। व्यापारी ने खुश होकर उसे एक सोने की मोहर दे दी। सोने की मोहर पाकर वह खुश हुआ और व्यापारी को दुआएं देता हुआ दूसरे घरों से आटा मांगने चला गया। जब वह भिक्षा लेकर अपने गांव लौट रहा था, उसने मोहर को आटे में छुपा लिया। वह घने जंगल से गुजर ही रहा था कि उसे डाकुओं ने घेर लिया। डाकुओं के सरदार ने उनसे कहा- ऐ बुढ्ढे, तेरे पास जो कुछ भी है, हमारे हवाले कर दे, वरना जान से हाथ धोना पड़ेगा। वह घबरा गया, पर उसने धीरज नहीं खोया और कहा- मेरे पास यह मोहर है। यह तुम ले जाओ पर यह आटा मेरे पास ही रहने दो। डाकुओं के सरदार ने सोचा कि यह आटा भला क्यों नहीं दे रहा? मोहर देने को क्यों तैयार है। उसने पूछा- तुम आटा न देकर मोहर ही क्यों दे रहे हो? तब ब्राह्मण ने कहा- क्योंकि यह आटा चमत्कारी है और रोज एक सोने की मोहर पैदा करता है। डाकुओं के सरदार ने सोचा- मोहर लेने की बजाय रोज एक मोहर पैदा करनेवाला आटा ही ले लिया जाए। डाकुओं के सरदार ने सोने की मोहर वहीं फेंकी और उससे आटा लेकर चंपत हो गया। ब्राह्मण बहुत खुश हुआ और अपने घर आ गया। संकट आने पर भी जो बुद्धि से काम लेते हैं, अपना संतुलन नहीं खोते और धैर्य बनाए रखते हैं, वे बड़ी कठिनाई में भी सफलता पा लेते हैं। जीवन निर्माण के लिए संतुलन और अनुशासन जरूरी है। संतुलित वही होता है जिसका आत्मविश्वास प्रबल होता है। जीवन को सफल और सार्थक बनाना है तो आसान तरीकों से काम करने की आदत को बदलना होगा।

११४०) मुक्ति का रास्ता अपनी जिम्मेदारियों से भागना नहीं होता : रामकृष्ण परमहंस - यह उस समय की कथा है, जब स्वामी रामकृष्ण परमहंस की चर्चा दूर दूर तक होने लगी थी। लोगों में खासकर युवा पीढ़ी में उनका शिष्य बनने की होड़ सी लग गई थी। एक दिन इसी उद्देश्य से एक उत्साही युवक रामकृष्ण परमहंस के पास पहुंचा। परमहंस के चरणों में झुककर उसने कहा, महात्मन्, मुझे अपना शिष्य बना लीजिए और गुरुमंत्र दीजिए ताकि मैं भी एक संत बन सकूं। युवक की बात सुनकर परमहंस मुस्कराए। फिर उन्होंने उससे पूछा, नवयुवक, तुम्हारे परिवार में तुम्हारे अलावा और कौन-कौन है? युवक ने उत्तर दिया, मेरे घर में मेरे अलावा सिर्फ मेरी बूढ़ी मां है। परमहंस कुछ देर मौन रहे फिर पूछा, तुम गुरुमंत्र लेकर साधु क्यों बनना चाहते हो? इस पर वह युवक बोला, मैं इस मोहमाया और ऊंच-नीच से भरे संसार को छोड़कर मुक्ति पाना चाहता हूं। इस पर परमहंस ने समझाया, तुम मुक्ति नहीं चाहते, बल्कि अपनी जवाबदेही से भाग रहे हो। मुक्ति वगैरह तो एक बहाना है। तुम्हें लगता है कि साधु बनकर तुम बिना किसी दायित्व के जीवनयापन करोगे।

तुम्हारा काम तो चल ही जाएगा, बाकी लोग चाहे जो करें। यह साधना नहीं पलायन है। आजकल बहुत से लोग ऐसा ही कर रहे है। यह अपनी शक्ति का दुरुपयोग है। समझ लो, अपनी बूढ़ी मां को असहाय छोड़कर तुम्हें मुक्ति कभी नहीं मिलेगी। तुम्हारी सच्ची मुक्ति तो इसी में है कि तुम पूरी शक्ति के साथ अपनी बूढ़ी और असहाय मां की सेवा करो। उनकी सेवा ही ईश्वर की भक्ति है। वैसे भी मां को ईश्वर के समान बताया गया है। युवक उनकी बात समझ गया। उसने साधु बनने की योजना छोड़ दी और घर लौटकर अपनी मां की सेवा में जुट गया।

११४१) ब्रह्म ज्ञान देकर अष्टावक्र ने सुधारी जनक की गलती - राजा जनक राजा होने के बावजूद राजपाट में आसक्ति नहीं रखते थे। लोभ-मोह से वे कोसों दूर रहते थे। विनम्रता उनके स्वभाव में थी। इस कारण वे सदैव अपने दोषों को देखकर उन्हें दूर करने की कोशिश करते थे। आत्मशोधन व आत्मालोचन उनकी प्रकृति में था।

एक बार वे नदी के किनारे एकांत में बैठकर सोऽहम का जाप कर रहे थे। बड़े ऊंचे स्वरों में उनका जाप चल रहा था। तभी उधर से अष्टावक्र निकले, जो परम ज्ञानी थे।

राजा जनक को ऊंचे स्वर में सोऽहम का जाप करते देखकर वे रुके और एक हाथ में छड़ी लेकर थोड़ी दूर खड़े हो गए। फिर तेज आवाज में निरंतर बोलने लगे- मेरे हाथ में पानी का कटोरा है, छड़ी है। राजा जनक के कानों में उनकी आवाज पहुंची, किंतु उन्होंने जाप नहीं छोड़ा। अष्टावक्र भी लगातार यही बात जोर-जोर से दोहराते रहे। आखिर जनक ने जाप रोककर उनसे पूछा- यह तुम क्या कह रहे हो? अष्टवक्र ने कहा- मेरे हाथ में पानी का कटोरा है, छड़ी है। जनक बोले- वह तो दिखाई दे रहा है। इसे बोलने की क्या जरूरत है? तब अष्टावक्र ने जनक को समझाया- फिर तुम क्यों सोऽहम ऊंची आवाज में बोल रहे हो? तुम ही ब्रह्म हो, यह क्या तुम्हें नही दिख रहा है? मंत्र को रटने से कुछ नही होता। उसे अंतर की चेतना के साथ जोड़ने पर ही उसका फल मिलता है। जनक ने अपनी गलती के लिए क्षमा मांगी। सार यह है कि भाव के साथ मन का तादात्म्य होने पर ही तत्संबंधी दिव्य अनुभूति होती है, अन्यथा कोरे शब्दों से तो यह असंभव है।

११४२) ऑटोग्राफ (हस्ताक्षर) लेने वाले को बर्नार्ड शॉ का संदेश - स्वयं में योग्यता पैदा करो - बर्नार्ड शॉ व्याख्यान देकर लौट रहे थे। तभी एक युवक ऑटोग्राफ बुक लेकर उनके पास आया और उसमें हस्ताक्षर के साथ संदेश लिखने के लिए कहा। शॉ ने लिखा-दूसरों के हस्ताक्षर इकट्ठे करने में ही अपना समय मत गंवाओ। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध नाटककार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ से प्राय: कई व्यक्ति भेंट करने आते थे। जब भी उनकी कोई नई पुस्तक प्रकाशित होती तो यह संख्या और बढ़ जाया करती थी। लोग उनसे जानना चाहते कि वे किस प्रकार सफल होते चले गए। शॉ ने भी कभी लोगों को निराश नहीं किया। वे यथासंभव सभी से बातें करते और पूछे गए प्रश्नों का समाधान करते। एक दिन किसी कार्यक्रम में शॉ अपने नाटकों व नाट्य कला पर व्याख्यान दे रहे थे। जब उनका व्याख्यान समाप्त हुआ तो उनके मंच से उतरते ही लोगों ने उन्हें घेर लिया। सभी चाहते थे कि शॉ उनसे बात करें। शॉ ने सभी से हाथ मिलाया और बातचीत की। तभी एक युवक ऑटोग्राफ बुक लेकर उनके पास आया और निवेदन किया कि शॉ नवयुवकों के लिए कोई संदेश उसमें लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दें। शॉ मुस्कराए और उन्होंने युवक के हाथ से हस्ताक्षर पुस्तिका लेकर उसमें लिखा, दूसरों के हस्ताक्षर एकत्रित करने में समय नष्ट नहीं करें। इससे कुछ भी सकारात्मक उपलब्धि नहीं मिलेगी। बेहतर तो यह होगा कि

आप लोग स्वयं को ही इस योग्य बना लें कि लोग आपके हस्ताक्षर पाने के लिए ललचाने लगें। शॉ ने ऐसा लिखकर न केवल उस युग की बल्कि आज की युवा पीढ़ी को भी यह संदेश दिया कि नामचीन हस्तियों के पीछे दीवाने होकर भागने से कुछ हासिल नहीं होगा बल्कि उनकी सफलता से प्रेरणा लेकर स्वयं अपनी प्रतिभा को विकसित करना चाहिए। यदि हम अपना संपूर्ण समय व शक्ति अपनी योग्यता को बढ़ाने और उसका सार्थक उपयोग करने में लगाएं तो बेशक हम भी सफल एवं विख्यात हस्ताक्षरों में शामिल होंगे।

११४३) बड़े नुकसान के बाद भी शांत रहे ब्रिटेन के महान वैज्ञानिक न्यूटन - गुरुत्वाकर्षण की खोज करनेवाले ब्रिटेन के महान वैज्ञानिक आइजेक न्यूटन बहुत ही शांतिप्रिय व्यक्ति थे। बड़ी से बड़ी पेरशानी में भी वे अपना आपा नहीं खोते थे। हर प्रतिकूल परिस्थिति का सामना शांति एवं धैर्य से करते थे। उनके इसी स्वभाव को दर्शाती उनके जीवन की एक घटना है। बात उस समय की है, जब न्यूटन ट्रिनिटी कॉलेज में प्रोफेसर थे। उस समय उनकी आयु ५१ वर्ष थी। तब तक न्यूटन अनेक प्रयोग कर एक वैज्ञानिक के रूप में ख्याति और विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। वे उस समय एक ऐसी पुस्तक लिखने में व्यस्त थे, जिसमें विगत वर्षों में उनके द्वारा किए गए सभी प्रयोगों का विवरण था। काम बड़े परिश्रम का था, जिसमें वे दिन-रात लगे रहते।

एक दिन वे अपनी मेज पर कागजों को बिखरा छोड़कर गिरिजाघर में प्रात:कालीन प्रार्थना के लिए चले गए। उनके जाने के बाद घर में उनका डायमंड नाम का कुत्ता ही था। न्यूटन की अनुपस्थिति में मेज पर एक चूहा आकर उनके कागज कुतरने लगा। स्वामी भक्त डायमंड से यह देखा नहीं गया और वह चूहे पर झपड़ पड़ा। इस छीना-झपटी में चूहा तो भाग गया, किंतु मेज पर रखी जलती हुई मोमबत्ती लुढ़क गई और कागजों में आग लग गई। न्यूटन ने लौटने पर पाया कि उनकी वर्षों की साधना राख के ढेर में तब्दील हो गई है। यह देखकर भी न्यूटन ने अपने कुत्ते से केवल यही कहा, ओ डायमंड। तुझे पता नहीं कि आज तूने क्या शैतानी की है। उन्होंने न कुत्ते को मारा और न ही क्रोध जाहिर किया। वे पुन: अपनी पुस्तक को शुरू करने में उसी उत्साह से जुट गए। किसी बड़े नुकसान पर आवेश रहित रहकर शांति से उसे सह जाना, वह राह खोल देता है जिस पर चलने से उपलब्धियां हासिल होती हैं। वस्तुत: प्रगति, शांति में ही संभव है।

११४४) ऐतिहासिक रहस्य : रावण की माता ने बचाए थे लक्ष्मण जी के प्राण - राम रावण युद्ध के समय जब लक्ष्मण जी मूर्छित थे तो हनुमान जी संजीवनी के रूप में पर्वत ही लेकर आ गए। संजीवनी आगमन के उपरांत राजवैद्य श्री सुषैण ने कहा कि इस संजीवनी को खरल में रगड़ने के लिए दो चार बूंदे आंसूओं की चाहिए और वो आंसू उस व्यक्ति के होने चाहिए जो आपने जीवन काल में कभी रोया न हो। गंभीर समस्या खड़ी हो गई। आखिर वैध सुषेण जी ने ही उपाय सुझाया कि, रावण की माता कैकशी अपने जीवन काल में कभी नहीं रोई, अगर उसके आंसू मिल जाए तो शीघ्र ही लक्ष्मण जी की मूर्छा को दूर किया जा सकता है।

हनुमान जी इस कार्य के लिए लंका में रावण की माता के राजभवन में गए। हनुमान जी ने पहले तो रावण की माता को जाकर प्रेमपूर्वक बोला, माताजी। आपको रोना पड़ेगा। आप शीघ्र रोएं, हमें आपके आंसूओं की दो-चार बूंदे अभी चाहिए।

रावण की माता क्रोधित होते हुए हनुमान जी से बोली, चले जाओ यहां से हम क्यों रोएंगे? हम किसी किम्मत पर नहीं

रोएंगे। एक तो तुम दुश्मन हो ऊपर से तुम्हारा इतना साहस हमें रोने को कह रहे हो।

हनुमान जी ने बहुत विनय की मगर कैकशी ने एक न मानी। तब हनुमान जी ने अपने साथ लाई हुई दो बड़ी हरी मिर्च रावण की माता की बड़ी बड़ी राक्षसी आंखों में घुसेड़ दी तो वो एकदम चिल्लाकर ऊंचे स्वर में रोने लगी। उसकी आंखों से टपटप आंसूओं की झड़ी लग गई। हनुमान जी बहुत प्रसन्न हुए उनका काम जो बन गया था। उन्होंने झटपट कुछ आंसुओं की बूंदे संचित की और अपनी पवन गति से मूर्छा स्थल पर आ गए।

११४५) अपने विचारों पर विचार करें : सहानुभूति और सहायता में क्या श्रेष्ठ है - निर्मल भाव से किया गया प्रत्येक कार्य हमें संतोष देनेवाला होगा। आपके भीतर भाव हैं तो आपका किया हुआ छोटे से छोटा कार्य भी अपने में परिवर्तन लाने में सफल रहता है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में कई महान विभूतियों का योगदान रहा है। इन्हीं में से एक थे-यतीन्द्रनाथ बोस। वह क्रांतिकारी थे और भारत की आजादी के लिए इनके प्रयास अत्यंत सराहनीय रहे। इन्हीं के जीवन की एक घटना है जो आज के यंत्रवत और अमानवीय होते जा रहे समाज के लिए काफी प्रेरणास्पद है।

एक दिन यतीन्द्रबाबू भीषण गर्मी में कोलकाता की एक सड़क पर चले जा रहे थे। एक जगह उन्होंने लोगें के भारी हुजूम को देखा। वह उस भीड़ में रास्ता बनाते हुए घुस गए और जो देखा उससे अवाक रह गए। एक वृद्धा गर्मी की चिलचिलाती धूप से परेशान, बोझा उठाने में असमर्थ होकर पसीने से लथपथ बेसुध पड़ी थी। भीड़ में खड़े लोग उसके प्रति सहानुभूति जता रहे थे तो कुछ गर्मी में बोझा उठाकर निकल पड़ने पर सवालिया निशान लगा रहे थे किंतु उसे उठाकर, सहायता करने और घर तक उसका सहारा बनने को कोई तैयार न था। यतीन्द्रनाथ ने वृद्धा को सहारा दिया। समीप कहीं से पानी लाकर पिलाया और उसका बोझा अपनी पीठ पर उठाते हुए बोले, चलो मां, घर चलें घर पहुंच कर उन्होंने पूछा, तुम्हारा और कोई नहीं है क्या? वृद्धा यह सुन कर रो पड़ी और बोली, एक बेटा था, जो महामारी के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गया। अब बोझा ढोकर पेट की आग बुझाती हूं। यतीन्द्र बाबू द्रवित होकर बोले, मां यह बेटा अभी जीवित है। अब तुम्हें कभी बोझा नहीं ढोना पड़ेगा। यह कहते हुए उन्होंने वृद्धा के चरण छुए और कुछ रुपए दिए। इसके बाद भी नियमित रूप से उसकी खोज खबर लेते रहे और आजीवन उसका भरण-पोषण किया।

११४६) नि:स्वार्थ सेवा भावना ने सेंट फ्रांसिस को अमर बना दिया - इटली के असीसी प्रांत में एक बालक सीसो रहता था। उसके पिता पीत्रो एक धनी व्यापारी थे। सीसो का मन पढ़ाई में नहीं लगता था। वह अपने पिता के काम में हाथ बंटाता था। वह और बच्चों से अलग था। उसके भीतर दीन-दुखियों के प्रति करुणा की भावना भरी थी।

एक बार उसे रास्ते में कोढ़ से ग्रस्त भिखारी मिला। सीसो ने उसे रुपए दिए तो वह कातर भाव से उसे देखने लगा। सीसो को लगा कि कोढ़ी व्यक्ति को पैसों से ज्यादा सेवा और स्नेह की जरूरत है। वह उसकी सेवा में जुट गया। फिर उसे दूसरे बीमार लोग मिले। वह उनकी भी सेवा करने लगा। सीसो कोढ़ियों, बीमारों की सेवा ही नहीं करता, उनमें जीने की उमंग भी पैदा करता।

उसने एक बार एक चर्च बनाने का फैसला किया। इस काम में उसने गरीब, दुखियों को भी शामिल किया। सबने मिलकर चर्च के लिए पत्थर जमा किए। सीसो के काम की प्रसिद्धि धीरे-धीरे फैलने लगी। अनेक धनी प्रतिष्ठित लोग

उसके साथ जुड़ गए। सीसो ने अपने इन्हीं मित्रों के साथ मिलकर एक संगठन द पुअर ब्रदर्स ऑफ असीसी बनाया, जिसका मकसद सेवा और निर्माण कार्य करता था। समय के साथ इस संगठन के अनुयायी बढ़ते गए और कुछ समय बाद इसका नाम फ्रांसिस्कोंस रख दिया गया।

मात्र ४५ वर्ष की आयु में सीसो ने कोढ़ियों की सेवा करते हुए प्राण त्याग दिए लेकिन उसका यह संगठन आज भी दीन दुखियों का सहारा बना हुआ है। दुनिया सीसो को सेंट फ्रांसिस ऑफ असीसी के रूप में याद करती है।

११४७) फकीर ने कहा- मृत्यु रोने का नहीं, खुशी से विदा देने का अवसर होती है - चीन में च्वांगत्से नाम का एक फकीर था। उसकी स्त्री मर गई। राजा च्वांगत्से का आदर करता था अत: च्वांगत्से के पास संवेदना के दो शब्द कहने पहुंचा। जब राजा वहां पहुंचा तो देखकर हैरान हुआ। च्वांगत्से एक झाड़ के नीचे बैठकर खंजड़ी बजा रहा था। सुबह उसकी पत्नी मरी थी। राजा थोड़ा हैरान हुआ।

उसने च्वांगत्से से कहा, यह तो बर्दाशत के बाहर है। तुम दु:ख न मनाते, इतना ही काफी था। लेकिन तुम खंजड़ी बजाओ और गीत गाओ। यह तो कुछ समझ में नहीं आता। च्वांगत्से बोला, जिसको विदा दी है, उसने इस विदा से कुछ पाया है, खोया नहीं तो खुशी मनाऊं कि रोऊं? और फिर जिसके साथ इतने दिन रहा हूं, उसे आंसुओं के साथ विदा करना क्या शुभ होगा?

उचित है कि मेरे गीत की छाया में ही उसकी विदाई हो। उसके आगे के मंगल-पथ पर यही उचित होगा कि मेरे गीत उसके साथ जाएं, बजाय मेरे आंसुओं के और मेरे रोने के। और च्वांगत्से ने कहा, स्मरण रखो, जब मैं मरूं तो जरूर तुम गीत गाना, क्योंकि मैं तो प्रतीक्षा कर रहा हूं उस क्षण की, जब मैं विदा होऊंगा। कब मेरी तैयारी पूरी होगी और कब मैं विदा होऊंगा? क्योंकि स्कूल से विदाई का वक्त दु:ख का थोड़े ही होता है। प्रशिक्षण था, पूरा हुआ। विदाई आ गई।

जीवन तो एक प्रशिक्षण है, एक बहुत गहरे अर्थों में, बहुत गहरी अनुभूतियों का। जब परिपक्व होकर कोई विदा होता है, तब प्रसन्नता से विदा होता है। जब असफल होकर कोई विदा होता है, तो दु:ख से विदा होता है।

११४८) पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं : पशुओं को भी नाक में नकेल डलवाना मंजूर नही - एक दिन एक ऊंट किसी प्रकार अपने मालिक से नकेल छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ। वह भागा और सीधे पश्चिम की ओर भागता गया, वहां तक जहां रास्ते में एक नदी आ गई। अब आगे भागने का रास्ता बंद हो गया। वह रास्ते में हरे भरे खेत, पत्तेभरी झाड़ियां और खूब घने नीम के पेड़ छोड़ आया था। वह चाहता तो अपनी ऊंची गर्दन उठा कर पत्तियों से पेट भर लेता, लेकिन वह वहां से दूर भाग आया था।

सामने चौड़ी गहरी नदी बह रही थी, पीछे ऊंचा कगार खड़ा था और दोनों ओर दूर तक रेत ही रेत थी। कहीं हरियाली का नाम तक नहीं था। बेचारा ऊंट वहां आकर खड़ा हो गया और जब थक गया, तो बैठ गया। वह डर के मारे बिलबिला भी नहीं सकता था कि कहीं उसका मालिक आकर उसे पकड़ न लें। उसे खूब भूख लगी थी, लेकिन पानी के सिवा वहां था भी क्या। वह लाचार था।

दो तीन दिन बीत गए। भूख से ऊंट अधमरा हो गया। उसी समय एक कौआ आया। उसे ऊंट की दशा पर दया आ

गई। उसने कहा, ऊंट भाई। मैं उड़ता हूं तुम मेरे पीछे चलो। मैं तुम्हें हरे खेत तक पहुंचा दूंगा।

ऊंट बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कौए को धन्यवाद दिया। चलने को तैयार हो गया लेकिन उसी समय उसे याद आया और उसने पूछा, भाई। उस खेत में कभी आदमी तो नहीं आता?

कौआ हंस पड़ा। उसने कहा, भला हरा खेत आदमी के बिना कैसे होगा?

तब तो मैं यहीं अच्छा हूं। ऊंट ने खिन्न होकर कहा। यहां तो तुम भूखों मर जाओगे। कौए ने समझाया।

लेकिन यहां रात-दिन नकेल डालकर कोई सताया तो नहीं करेगा। ऊंट ने संतोष एवं गर्व भरे स्वर में उत्तर दिया। सच ही तो है। पराधीन सपनेहुं सुखु नाहीं।

११४९) ग्रामीणों ने बापू से वादा किया कि पानी का सदुपयोग करेंगे, व्यर्थ नहीं गंवाएंगे - एक दिन बापू गंगा तट पर कपड़े धो रहे थे। वह हर चीज का उतना ही उपयोग करते थे जितना करना चाहिए। बापू नदी से पानी लेकर कपड़ों में डाल रहे थे। वह कपड़ों को नदी से दूर धो रहे थे ताकि कपड़ों की गंदगी नदी में न जाए। पास ही अनेक ग्रामीण स्नान कर रहे थे और अपने अपने कामों में लगे थे। बापू देख रहे थे कि लोग जरूरत से ज्यादा पानी ले रहे हैं और उसे व्यर्थ ही बहा रहे हैं। वह लोगों को बिना कुछ बोले इस बारे में बताना चाहते थे। इसलिए चुपचाप अपने काम में लगे हुए थे।

एक ग्रामीण बहुत देर से बापू को देख रहा था। उसने नोट किया कि बापू नदी से थोड़ा सा पानी लेते हैं और उसे कपड़ों पर डालते हैं। कुछ देर बाद वह बोला, बापू जी, एक बात हमारी समझ में नहीं आ रही है। नदी में तो पानी अपार है। फिर पानी लेने में भी आप कंजूसी क्यों बरत रहे हैं? गंगा मैया में पानी की कमी थोड़े ही है। इसका प्रयोग तो जी भर के करिए। ग्रामीण को ऐसा बोलते देख दूसरे लोग भी उसकी हां में हा मिलाने लगे।

उन्हें ऐसा बोलते देख बापू बोले, आप गलत कह रहे हैं। यदि सभी लोग ऐसे ही पानी बर्बाद करते रहे तो एक दिन गंगा नदी गायब ही हो जाएगी। फिर कहां से पानी व्यर्थ बहाओगे और कैसे गंगा मैया की पूजा करोगे? बापू की बात सुनकर वहां उपस्थित लोग खामोश रह गए। उन्हें समझ आ गया कि बापू क्यों पानी को भी तोल-मोल कर प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने बापू से वादा किया कि आगे से वह पानी का सदुपयोग करेंगे और उसे व्यर्थ नहीं गंवाएंगे।

११५०) जिसकी जितनी झोली होती है, वह व्यक्ति उतना ही दान समेट पाता है - एक बार भगवान बुद्ध एक शहर में प्रवचन दे रहे थे। उन्होंने प्रवचन के बाद आखिर में कहा, जागो। समय हाथ से निकला जा रहा है। इस तरह उस दिन की प्रवचन सभा समाप्त हो गई। सभा के बाद तथागत ने अपने शिष्य आनंद से कहा, थोड़ी दूर घूम कर आते हैं। आनंद, भगवान बुद्ध के साथ चल दिए। अभी वे विहार के मुख्य द्वार तक ही पहुंचे ही थे कि एक किनारे रुक कर खड़े हो गये। प्रवचन सुनने आये लोग बाहर निकल रहे थे, इसलिए भीड़ का माहौल था, लेकिन उसमें से निकल कर एक स्त्री तथागत से मिलने आई। उसने कहा, तथागत मैं नर्तकी हूं। आज नगर के श्रेष्ठी के घर मेरे नृत्य का कार्यक्रम पहले से तय था, लेकिन मैं उसके बारे में भूल चुकी थी। आपने कहा, जागो समय निकला जा रहा है तो मुझे तुरंत इस बात की याद आई।

उसके बाद एक डाकू भगवान बुद्ध से मिला उसने कहा, तथागत मैं आपसे कोई बात नहीं छिपाऊंगा मैं भूल गया था कि आज मुझे एक जगह डाका डालने जाना था कि आज उपदेश सुनते ही मुझे अपनी योजना याद आ गई। इस तरह एक

बूढ़ा व्यक्ति बुद्ध के पास आया वृद्ध ने कहा, तथागत। जिन्दगी भर दुनिया भर की चीजों के पीछे भागता रहा। अब मौत का सामना करने का दिन नजदीक आता जा रहा है, तब मुझे लगता है कि सारी जिन्दगी यूं ही बेकार हो गई। आपकी बातों से आज मेरी आंखें खुल गईं। आज से मैं अपने सारे मोह छोड़कर निर्वाण के लिए कोशिश करूंगा। जब सब लोग चले गए तो भगवान बुद्ध ने कहा, आनंद। प्रवचन मैंने एक ही दिया, लेकिन उसका हर किसी ने अलग अलग मतलब निकाला।

संक्षेप में कहने का तात्पर्य यह है कि जिसकी जितनी झोली होती है, उतना ही दान वह समेट पाता है। निर्वाण प्राप्ति के लिए भी मन की झोली को उसके लायक होना होता है।

११५१) भगवान के पास ही क्यों रहना चाहता था संसार में आनेवाला यह बच्चा - एक बच्चे ने जन्म से कुछ क्षण पहले भगवान से पूछा, मैं इतना छोटा हूं, खुद से कुछ कर भी नहीं पाता, भला धरती पर मैं कैसे रहूंगा, कृपया मुझे अपने पास ही रहने दीजिए, मैं कहीं नहीं जाना चाहता। भगवान बोले, मेरे पास बहुत से फरिश्ते हैं, उन्हीं में से एक मैंने तुम्हारे लिए चुन लिया है, वह तुम्हारा ख्याल रखेगा। पर आप मुझे बताइए, यहां स्वर्ग में मैं कुछ नहीं करता बस गाता और मुस्कुराता हूं, मेरे लिए खुश रहने के लिए इतना ही बहुत है। तुम्हारा फरिश्ता तुम्हारे लिए गाएगा और हर रोज तुम्हारे लिए मुस्कुराएगा और तुम उसका प्रेम महसूस करोगे और खुश रहोगे और जब वहां लोग मुझसे बात करेंगे तो मैं समझूंगा कैसे, मुझे तो उनकी भाषा नहीं आती? तुम्हारा फरिश्ता तुमसे सबसे मधुर और प्यारे शब्दों में बात करेगा, ऐसे शब्द जो तुमने यहां भी नहीं सुने होंगे और बड़े धैर्य और सावधानी के साथ तुम्हारा फरिश्ता तुम्हें बोलना भी सिखाएगा और जब मुझे आपसे बात करनी हो तो मैं क्या करूंगा? तुम्हारा फरिश्ता तुम्हें हाथ जोड़ कर प्रार्थना करना सिखाएगा और इस तरह तुम मुझसे बात कर सकोगे।

मैंने सुना है कि धरती पर बुरे लोग भी होते हैं, उनसे मुझे कौन बचाएगा? तुम्हारा फरिश्ता तुम्हें बचाएगा, भले ही उसकी अपनी जान पर खतरा क्यों न आ जाए? लेकिन मैं हमेशा दुखी रहूंगा क्योंकि मैं आपको नहीं देख पाऊंगा। तुम इसकी चिंता मत करो, तुम्हारा फरिश्ता हमेशा तुमसे मेरे बारे में बात करेगा और तुम वापस मेरे पास कैसे आ सकते हो बताएगा। उस वक्त स्वर्ग में असीम शांति थी, पर पृथ्वी से किसी के कराहने की आवाज आ रही थी। बच्चा समझ गया कि अब उसे जाना है और उसने रोते-रोते भगवान से पूछा, हे ईश्वर, अब तो मैं जाने वाला हूं, कृपया मुझे इस फरिश्ते का नाम बता दीजिए? भगवान बोले, तुम उसे मां कहकर पुकारो।

११५२) महात्मा की बात का मर्म : मंदिर के साथ अस्पताल और अनाथालय भी जरूरी - एक महात्माजी ने नगर में एक भव्य मंदिर निर्माण करवाने का संकल्प लिया। उन्होंने दस वर्ष तक अथक परिश्रम करके करोड़ों रुपए इकट्ठे कर लिए, लेकिन जब मंदिर निर्माण का समय आया तो नगर में महामारी फैल गई। लोग मरने लगे। महात्माजी ने एकत्र सारा धन लगाकर एक अस्पताल बनवा दिया ताकि लोगों को अकाल मौत के मुंह में जाने से बचाया जा सके।

महात्माजी ने मंदिर निर्माण के लिए फिर धन संग्रह करना प्रारंभ कर दिया और दस वर्ष तक अपने प्रयासों से पुन: करोड़ों रुपए एकत्र कर लिए। इस बार भी जब मंदिर निर्माण प्रारंभ होना था तो भयंकर भूकंप आ गया। असंख्य लोग बेघर हो गए। महात्माजी ने इस बार का सारा पैसा भूकंप पीड़ितों के पुनर्वास व अनाथ हुए बच्चों के लिए अनाथालय और

विद्यालय बनवाने में खर्च कर दिया।

इसके बाद भी महात्माजी ने अगले दस वर्षों तक कठोर परिश्रम करके पैसे इकट्ठे किए और मंदिर का निर्माण प्रारंभ करवा दिया। मंदिर पूरा होने पर महात्माजी ने उस पर लिखवाया- मंदिर संख्या तीन। लोगों ने हैरान होकर पूछा- ऐसा क्यों? मंदिर संख्या एक और दो कहीं दिखाई नहीं पड़ते। महात्माजी ने कहा- मंदिर संख्या एक तो हमारा अस्पताल है जो बीस साल पहले महामारी के दौरान बना था और मंदिर संख्या दो वह अनाथालय और विद्यालय है जो दस साल पहले भूकंप के समय बने थे।

महात्माजी ने कहा कि वैसे तो इस मंदिर का भी महत्व हे, लेकिन इसके बिना काम चल सकता है। मंदिर संख्या एक और दो तो जरूरी हैं। इसीलिए अस्पताल, अनाथालय व विद्यालय को भी मंदिर ही कहना उचित प्रतीत होता है। लोग महात्माजी की बात का मर्म समझ गए।

११५३) ध्यान रखें, जो दूसरों के लिए गड्ढा खोदता है वो पहले खुद उसमें गिरता है - एक गांव में रहीम नाम का एक किसान रहता था। वह बड़ा सरल, मिलनसार और मेहनती था। गांव के सभी लोग उसे पसंद करते थे क्योंकि वह लोगों की मदद करने को हरदम तैयार रहता था। अपनी मेहनत से उगाई फसल बेचकर वह अच्छी-खासी कमाई कर लेता था। उसी गांव में दूसरा किसान रफीक भी रहता था। रफीक और रहीम के खेत पास-पास ही थे। यह बात रफीक को बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी कि सभी गांव वाले रहीम को अच्छा मानते थे। वह रहीम से नफरत करता था। रहीम तो हमेशा अपने खेतों पर काम करता रहता था, लेकिन रफीक इधर-उधर घूमने में ही समय निकाल देता। वह हमेशा ऐसे मौके की तलाश में रहता था जिससे वह रहीम को नुकसान पहुंचा सके। एक साल रहीम के खेत में बहुत अच्छी फसल पैदा हुई। यह देखकर रफीक को बड़ी जलन हुई। फसल कटने से कुछ दिन पहले एक दिन मौका पाकर उसने रहीम के खेत में आग लगा दी। आग फैलने लगी तो रफीक का खेत भी जलने लगा। गांव वालों को पता चला कि रहीम के खेत में आग लगी है तो वे जी-जान से आग बुझाने में जुट गए।

रहीम की आधी फसल जलने से बच गई, लेकिन रफीक के खेत की ओर चलने वाली तेज हवा और आग ने उसकी पूरी फसल चौपट कर डाली। लोग चाहकर भी रफीक की मदद नहीं कर पाए। यह उसकी लगाई हुई आग का परिणाम था तो उसे ही भुगतना पड़ा। वह अपना सिर पकड़ कर बैठ गया। अब उसकी समझ में आ गया था कि दूसरों के लिए गड्ढा खोदनेवाला पहले खुद उसमें गिरता है।

११५४) कर्म से ही मनुष्य की पहचान होती है, कुल और गोत्र से नहीं - एक दिन राजकुमार अभय कुमार को जंगल में नवजात शिशु मिला। वह राजकुमार उसे अपने घर ले आया और उसका नाम जीवक रख लिया। अभय कुमार ने बच्चे को खूब पढ़ाया-लिखाया। जब जीवक बड़ा हुआ तो उसने अभय कुमार से पूछा, मेरे माता-पिता कौन हैं? अभय कुमार ने उस जीवक से कुछ भी छिपाना ठीक न समझते हुए उसे सारी बात बता दी। लेकिन यह सुनकर जीवक बोला, मैं आत्महीनता का भार लेकर कहां जाऊं। इस बात पर अभय कुमार ने कहा, तुम तक्षशिला विद्या अध्ययन करने जाओ। जीवक विद्या अध्ययन के लिए चल पड़ा। विद्यालय में प्रवेश करते समय वहां के आचार्य ने जीवक से पूछा, बेटा। तुम्हारे

माता-पिता का क्या नाम है? तुम्हारा कुल क्या है? तुम्हारा गोत्र क्या है? इस सभी प्रश्नों के उत्तर जीवक ने सही-सही दिए। इस बात से प्रसन्न होकर आचार्य ने जीवक को विद्यालय में प्रवेश दे दिया। जीवक ने वहां कठोर परिश्रम करते हुए आयुर्वेदाचार्य की उपाधि ली। उसके आचार्य चाहते थे कि जीवक मगध जाकर वहां लोगों का उपचार करे। जब यह बात जीवक को पता चली तो उसने आचार्य से कहा, मैं जहां भी जाउंगा तो लोग मेरे माता-पिता और कुल-गोत्र के बारे में पूछेंगे। मैं यहीं रहना चाहता हूं। लेकिन आचार्य बोले, तुम्हारी प्रतिभा और ज्ञान ही तुम्हारा कुल और गोत्र है। तुम जहां भी जाओगे वहां तुम्हें सम्मान मिलेगा। तुम लोगों की सेवा करोगे। इसी से तुम्हारी पहचान बनेगी। क्योंकि कर्म से ही मनुष्य की पहचान होती है, कुल और गोत्र से नहीं।

११५५) जब कोई अपना भटक जाए तो चुप न रहकर उसे सही रास्ता दिखाएं - हमारे जीवन में कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब हमारा कोई परिचित या परिजन गलत रास्ते पर चल पड़ता है और हम भी यह सोचकर चुप रह जाते हैं कि हमें क्या करना? उस स्थिति में हम भी उसके भटकने के उतने ही बड़े दोषी होते हैं जितना वह स्वयं। एक पिता के दो बेटे थे। बड़ा बेटा समझदार था जबकि छोटा थोड़ा चंचल था। पिता के पास बहुत संपत्ति थी। जब दोनों बेटे बड़े हुए तो उनके स्वभाव को देखते हुए उनके पिता ने सोचा कि अब इनमे संपत्ति का बंटवारा कर देना चाहिए। छोटे बेटे के हिस्से में जो संपत्ति आई उसे वह ले जाकर शहर में ठिकाने लगा आया और एक दिन कंगाल हो गया। जो बड़ा बेटा था वह गांव में रहा और मेहनत कर अपनी सम्पत्ति को दोगुना कर लिया। एक दिन जब पिता को मालूम हुआ कि छोटा बेटा कंगाल हो गया है तो उसे वापस बुलाया कि अपने पास बहुत संपत्ति है तू वापस आ जा। बेटा जब वापस आने लगा तो पिता ने उसके स्वागत की बड़ी तैयारी की। जब यह बात बड़े बेटे को पता चली तो उसने कहा पिताजी यह आप क्या कर रहे हैं? मैंने जीवनभर आपकी सेवा की और उसने सारा पैसा खत्म कर दिया। फिर भी आप उसे इतने सम्मान के साथ वापस बुला रहे हैं। तब पिता ने अपने बड़े बेटे से कहा- बेटा जब तू भेड़ चराने जाता है और जब कोई एक भेड़ रास्ता भटक जाती है तो तू उसे ढूंढता है और कंधे पर बैठाकर लाता है। दूसरी भेड़ों को कंधे पर नहीं उठाता क्योंकि वो तो सही रास्ते पर चल रही हैं। बस यही बात है कि वो भटक गया था आज लौटकर आ रहा है इसलिए मैं उसका स्वागत कर रहा हूं।

११५६) यकीन करो, काले रंग का गुब्बारा भी आसमान में ऊंचाई पर उड़ सकता है - एक बार अमरीका के एक छोटे शहर में मेला लगा। उस शहर में काले-गोरे दोनों रंग के लोग रहते थे। मेले में एक रंग-बिरंगे गुब्बारे बेचनेवाला व्यक्ति भी आया हुआ था। उसके गुब्बारों में हीलियम गैस भरी होने के कारण आकाश में उड़ रहे थे। जिनका एक सिरा उसकी दुकान से बंधा हुआ था। जब कभी उसकी बिक्री कम होने लगती, तो वह एक गुब्बारे को खोलकर हवा में उड़ा देता।

उसे ऊंचाई पर उड़ते देख बच्चे उत्साहित हो उठते और उसके पास गुब्बारे खरीदने के लिए आने लगते थे। एक काला बच्चा यह सब बड़े ध्यान से देख रहा था। अचानक वह गुब्बारेवाले के पास आया और बोला, मैं आपसे एक सवाल पूछना चाहता हूं। गुब्बारेवाले ने उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा, हां पूछो, क्या जानना चाहते हो?

बच्चे ने कहा, यही कि काले रंग का गुब्बारा भी आसमान पर उड़ेगा इसे देखकर यकीन नहीं होता? उस मासूम बच्चे का सवाल सुनकर गुब्बारेवाले की आंखें नम हो उठीं। उसने बड़े प्रेम से बच्चे को समझाया, बेटे गुब्बारा हो या मनुष्य उसके

ऊपर उठने से उसके रंग का कोई संबंध नहीं है। उसके अंदर जो चीज है, वही उसे ऊपर उठाता है। काले रंग का गुब्बारा भी आसमान में उतनी ही ऊंचाई तक पहुंचेगा, जितनी ऊंचाई पर दूसरे गुब्बारे जाते हैं। अपना यकीन कायम रखना, ऊंचाई पर जाने से कोई नहीं रोक सकता।

११५७) संगत की रंगत का प्रभाव कैसे पड़ता है - मनुष्य बचपन में जो कुछ सीखता है, वह अपने घर-परिवार और आस-पड़ोस के माहौल से ही सीखता है। उसकी संगत जीवन निर्माण में नींव का पत्थर बन जाता है। एक मादा तोते ने दो जुड़वां बच्चों को जन्म दिया। मालिक उन दोनों को बेचने बाजार पहुंचा, जिनमें से एक को डाकू सरदार ने व दूसरे को एक महंत ने खरीदा। एक बार उस राज्य का राजा शिकार के दौरान रास्ता भटकते हुए एक बस्ती के पास पहुंचा तो दूर पेड़ पर बैठा एक तोता आवाज देने लगा- कोई अमीर आ रहा है, लूटो-लूटो, पकड़ो-पकड़ो, मारो-मारो। यह सुनते ही राजा सावधान हो गया। उसने तुरंत अपना घोड़ा दूसरी दिशा में मोड़ लिया। थोड़ी दूर पर राजा दूसरी बस्ती में पहुंचा। घोड़े की टाप सुनकर पेड़ पर बैठा तोता बोल उठा- पधारिए अतिथि देवता, ऋषि आश्रम में आपका स्वागत है।

राजा ने रातभर वहां विश्राम किया। सुबह राजा ने मंत्री से पूछा, एक तोते ने लूटने, मारने की आवाज में पुकारा, दूसरे ने अतिथि देवो भव: के स्वर में स्वागत किया। दोनों में इतना अंतर कैसे आया होगा? मंत्री ने तोते वाले से जानकारी ली और बताया, राजन, ये दोनों तोते सगे भाई हैं। किंतु एक को डाकू सरदार ने खरीद लिया। उसे डाकुओं जैसे संस्कार मिले। दूसरों को एक महंत जी ने खरीद लिया। उसे ऋषि आश्रम में अतिथि सत्कार के संस्कार मिले, इसलिए आचरण में इतना अंतर आ गया। अच्छी संगति मिलने पर पशु भी शिष्ट आचरण सीख जाता है। गलत संगति मिलने पर मनुष्य भी पशु जैसा आचरण करने लगता है।

११५८) स्वामी रामदास जी ने बताया कि इस तरह मिल सकता है सच्चा सुख - एक बार वीर शिवाजी के गुरु समर्थ स्वामी रामदासजी भिक्षा मांगते हुए एक घर के सामने खड़े हुए और उन्होंने आवाज लगायी- जय जय रघुवीर समर्थ। घर से महिला बाहर आयी। उसने उनकी झोली मे भिक्षा डाली और कहा, महात्माजी, कोई उपदेश दीजिए। स्वामीजी बोले, आज नहीं, कल दूंगा।

दूसरे दिन स्वामीजी ने पुन: उस घर के सामने आवाज दी उस घर की स्त्री ने उस दिन खीर बनाई थी, जिसमे बादाम-पिस्ते भी डाले थे। वह खीर का कटोरा लेकर बाहर आयी। स्वामी जी ने अपना कमंडल आगे कर दिया। वह स्त्री जब खीर डालने लगी, तो उसने देखा कि कमंडल में गोबर और कूड़ा भरा पड़ा है। उसके हाथ ठिठक गए। वह बोली, महाराज। यह कमंडल तो गन्दा है। स्वामीजी बोले, हां, गन्दा तो है, किन्तु खीर इसमें डाल दो। स्त्री बोली, नहीं महाराज, तब तो खीर खराब हो जायेगी। दीजिए यह कमंडल, मैं इसे शुद्ध कर लाती हूं।

स्वामीजी बोले, मतलब जब यह कमंडल साफ हो जाएगा, तभी खीर डालोगी न? तब स्वामी जी ने उपदेश दिया कि... मन में जब तक चिन्ताओं का कूड़ा-कचरा और बुरे संस्कारों का गोबर भरा है, तब तक उपदेशामृत का कोई लाभ न होगा। यदि उपदेश करना है, तो पहले अपने मन को शुद्ध करना चाहिए, कुसंस्कारों का त्याग करना चाहिए, तभी सच्चे सुख और आनन्द की प्राप्ति होगी।

११५९) मन की शांति के लिए सबसे सरल युक्ति है अपने परिश्रम व पुरुषार्थ पर भरोसा - एक सेठ के पास अपार धन-संपत्ति थी, किंतु फिर भी उसके मन को शांति न थी। एक दिन किसी व्यक्ति ने बताया कि अमुक नगर में एक साधु रहता है। वह लोगों को ऐसी सिद्धि देता है, जिससे मनचाही वस्तु प्राप्त हो जाती है।

सेठ उस साधु के पास जाकर बोला, महाराज मेरे पास बहुत पैसा है, लेकिन मन की शांति नहीं है। साधु ने कहा कि, बेटा जैसा मैं करूं उसे चुपचाप देखते रहना। इससे तुम्हें मन में शांति करने की युक्ति मिल जाएगी।

अगले दिन साधु ने सेठ को कड़ी धूप में बिठाए रखा और खुद कुटिया में चले गए। सेठ गर्मी से बेहाल हो गया, मगर चुप रहा। दूसरे दिन साधु ने उसे कुछ भी खाने पीने को नहीं दिया और स्वयं तरह-तरह के पकवान खाता रहा, सेठ इस दिन भी चुप रहा। तीसरे दिन सेठ गुस्से में वहां से जाने लगा तो साधु बोला, क्यों, क्या हुआ? इस बात पर सेठ बोला, महाराज, मैं यहां बड़ी आशा लेकर आया था, किंतु मुझे यहां निराशा ही मिली।

इस बात के उत्तर पर साधु ने कहा, मैंने तो तुम्हें शांति की युक्ति बता दी, पहले दिन जब मैंने तुम्हें धूप में बैठनें के लिए कहा और मैं स्वयं कुटिया में बैठा तो, तुम्हें बताया कि मेरी छाया तुम्हारे काम नहीं आएगी। यह तुम्हें समझ नहीं आने पर मैंने तुम्हें भूखा रखा और खुद भरपेट खाया। उससे मैंने तुम्हें समझाया कि मेरी साधना से तुम्हें सिद्धि नहीं मिलेगी। उसी तरह शांति भी तुम्हें अपनी मेहनत और पुरुषार्थ से ही मिलेगी। मैं तुम्हारे मन को शांत नहीं कर सकता।

११६०) ईश्वर का सच्चा भक्त निडर, विनम्र, सहनशील एवं पवित्र हृदयवाला होता है - उत्तर भारत में आंबेरगढ़ के राजा थे माधवसिंह। उनकी पत्नी रत्नावली भले स्वभाव की थी। एक दिन उसने अपनी प्रिय दासी को रोते हुए देखा। कारण पूछने पर बोली, ये तो भगवान की भक्ति से मिले अपार सुख के कारण उपजे प्रेमाश्रु हैं। दासी की बातों ने रानी में भक्ति-भाव जाग्रत कर दिया। वह सादे वस्त्र पहनकर भगवान श्रीकृष्ण की उपासना में लीन रहने लगी। राजा माधवसिंह उस समय उज्जैन गए हुए थे। इस बीच, आंबेरगढ़ में कुछ संत-महात्माओं का आगमन हुआ। रत्नावली ने उनके साथ सत्संग किया और लंबी आध्यात्मिक चर्चा भी की। यह जनचर्चा का विषय बना।

माधवसिंह को वजीर ने पत्र लिखा कि रानी महल छोड़कर साधु-संतों के साथ घंटों तक बैठी रहती हैं। यह पत्र पढ़कर माधवसिंह क्रोधित हुआ। जब वह आंबेरगढ़ लौटा तो पहले रानी को मृत्युदंड देना चाहा, किंतु उसके मंत्रियों ने राज्य में आक्रोश फैलने की आशंका जताई। फिर तय हुआ कि भूखे शेर को रानी के महल के द्वार पर छोड़ देंगे। भूखा शेर रानी का शिकार कर लेगा और हम इसे दुर्घटना बता देंगे।

जब शेर भावमग्न रानी की ओर दौड़ा तो दासी शेर-शेर कहकर चिल्लाई पर रत्नावली उसे देखकर बोलीं, नहीं, ये तो नृसिंह भगवान हैं। मेरे गिरधर आज यह वेश लेकर आए हैं। रानी ने सिंह की आती उतारी। शेर चुपचाप खड़ा रहा और फिर पलटकर चला गया। राजा अटारी से देख रहा था। माधवसिंह ने हाथ जोड़कर क्षमा मांगी। तब रानी बोलीं- क्षमा मैं नहीं, मेरे गिरधर गोपाल ही कर सकते हैं। मैं आपके लिए उनसे प्रार्थना करूंगी। माधवसिंह ने रानी के भक्ति भाव के मुताबिक महल की सारी व्यवस्थाएं बदल दीं। सच्चा भक्त निडर और पवित्र हृदयवाला होता है। ऐसे ही लोग ईश्वरीय साक्षात्कार को उपलब्ध होते हैं।

११६१) महात्मा ने समझाया तो सेना के साथ लौट गया राजा - एक दिन महात्मा जी भिक्षा मांगने जा रहे थे, सड़क पर एक सिक्का दिखा, जिसे उठाकर उन्होंने झोली में रख लिया। उसके साथ जा रहे दोनों शिष्य इससे हैरान हो गए। वे मन में सोच रहे थे कि काश सिक्का उन्हें मिलता, तो वे बाजार से मिठाई ले आते। महात्मा जी जान गए। वह बोले यह साधारण सिक्का नहीं है, मैं इसे किसी योग्य व्यक्ति को दूंगा, पर कई दिन बीत जाने के बाद भी उन्होंने सिक्का किसी को नहीं दिया।

एक दिन महात्मा जी को खबर मिली कि सिंहगढ़ के महाराज अपनी विशाल सेना के साथ उधर से गुजर रहे हैं। महात्मा जी ने शिष्यों से कहा, सोनपुर छोड़ने की घड़ी आ गई।

शिष्यों के साथ महात्मा जी चल पड़े। तभी राजा की सवारी आ गई। मंत्री ने राजा को बताया कि ये महात्मा जा रहे हैं। बड़े ज्ञानी हैं। राजा ने हाथी से उतर कर महात्मा जी को प्रणाम किया और कहा, कृपया मुझे आशीर्वाद दें।

महात्मा जी ने झोले से सिक्का निकाला और राजा की हथेली पर उसे रखते हुए कहा, हे नरेश, तुम्हारा राज्य धन-धान्य से संपन्न है। फिर भी तुम्हारे लालच का अंत नहीं है। तुम और पाने की लालसा में युद्ध करने जा रहे हो। मेरे विचार में तुम सबसे बड़े दरिद्र हो। इसलिए मैंने तुम्हें यह सिक्का दिया है। राजा इस बात का मतलब समझ गया। उन्होंने सेना को वापस चलने का आदेश दिया। लालच इंसान को इतना अंधा कर देता है कि उसे अच्छे और बुरे में फर्क दिखाई नहीं देता।

११६२) तो आप अपने बच्चों के लिए भी चांदी के बर्तन में खाना ले जाएं - गिरीशचंद्र घोष बांग्ला के प्रसिद्ध कवि-नाटककार थे। उनके एक धनी मित्र थे। वह अपनी रईसी अपने व्यवहार में भी दिखाते थे। जैसे ही वह कहीं जाते तो उनका नौकर उनके लिए चांदी के बर्तन साथ लेकर चलता था ताकि वह अपना खाना उसी में खाएं। घोष जी को यह बात अच्छी नहीं लगती थी पर वह मित्र का दिल नहीं दुखाना चाहते थे। तब उन्होंने तय किया कि वह उसकी आदतों को सुधार कर रहेंगे।

एक दिन घोष जी ने अपने रईस दोस्त को खाने पर आमंत्रित किया। हमेशा की तरह उनके मित्र अपने नौकर के साथ पहुंचे। नौकर बर्तन लेकर आया था। लेकिन घोष जी अपने मित्र के आते ही उन्हें और लोगों के बीच ले गए। जब तक मित्र कुछ समझ पाते तब तक उनके सामने पत्तल में खाना परोस दिया। बाकी लोगों के सामने भी पत्तल में खाना रखा था।

तब उनके रईस मित्र संकोच में पड़ गए। उन्होंने नौकर को आवाज देना चाहा लेकिन तब तक सब लोग खाने लगे और उनसे भी खाने का अनुरोध करने लगे। बेचारे को उनके साथ पत्तल में खाना पड़ा। खाने के बाद जैसे ही वे उठे, तो घोष जी उनके बर्तनों में व्यंजन लेकर उनके सामने हाजिर हुए। उन्होंने हंसते हुए मित्र से कहा- क्षमा करें थोड़ी गलतफहमी हो गई। जब तुम्हारे नौकर को घर की महिलाओं ने बर्तन लेकर आते देखा तो उन्हें लगा कि शायद तुम अपने बच्चों के लिए खाना ले जाना चाहते हो। उन्होंने इसमें खाना दे दिया है। मित्र लज्जित होकर चले गए। उन्हें गलती का अहसास हो गया। उन्होंने प्रदर्शन करना छोड़ दिया।

११६३) आजादी पर मर मिटने वालों की शहादत को यूं नहीं भुलाया जा सकता - बात उस समय की है, जब रंगून में नेताजी सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज में भर्ती होने के लिए भीड़ लगी हुई थी। नेताजी ने एक मंच से

जनता को संबोधित करते हुए कहा, दोस्तों, आजादी बलिदान चाहती है, तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा। भीड़ चिल्ला उठी, नेताजी, आप के एक इशारे पर हम अपना तन, मन और धन सब कुछ भारत माता के चरणों में समर्पित कर देंगे।

तब नेताजी ने कहा ठीक है दोस्तों, आगे आइए इस शपथ पत्र पर हस्ताक्षर कीजिए। भीड़ में आपाधापी मच गई। हर एक व्यक्ति शपथपत्र पर हस्ताक्षर के लिए आगे आना चाहता था।

शपथपत्र पर पहले हस्ताक्षर कर नेताजी की नजरों में महान बनने की फिराक में सभी थे। इससे पहले कि नेताजी की आवाज गूंजी ठहरो, मुझे तुम्हारे खून के हस्ताक्षर चाहिए।

जो आजादी के लिए सर्वस्व अर्पित करने का दंभ भरता हो वह अपने खून से हस्ताक्षर करे, यह सुनकर भीड़ में मौजूद सभी लोग सहम गए और धीरे-धीरे पीछे जाने लगे। तभी अचानक १७ लड़कियां आगे बढ़ीं और आनन-फानन में उन्होंने अपनी कमर से छुरियां निकालीं और अपनी अंगुलियों को काट कर शपथ पत्र पर हस्ताक्षर किए।

आजादी पर मर मिटनेवालों की शहादत को यूं नहीं भुलाया जा सकता इनमें समर्पण की भावना होती थी। जो आज लगभग गुम हो गई हो। इसे फिर से जिंदा करने की जरूरत है।

११६४) कौवे के प्रश्न और मोर की सीख : दूसरों से अपनी तुलना करके दुखी न हों - एक कौवा सोचने लगा कि पक्षियों में, मैं सबसे ज्यादा कुरूप हूं। न तो मेरी आवाज ही अच्छी है, न ही मेरे पंख सुंदर हैं। मैं काला हूं। ऐसा सोचने से उसके अंदर हीन भावना घर करने लगी और वह दुखी रहने लगा। एक दिन एक बगुले ने उसे उदास देखा तो उसकी उदासी का कारण पूछा।

कौवे ने कहा- तुम कितने सुंदर हो। मेरा तो जीना ही बेकार है। बगुला बोला- दोस्त मैं कहां सुंदर हूं। मैं जब तोते को देखता हूं, तो यही सोचता हूं कि मेरे पास हरे पंख और लाल चोंच क्यों नहीं है।

अब कौएं में सुंदरता को जानने की उत्सुकता बढ़ी। वह तोते के पास गया। बोला- तुम इतने सुंदर हो, तुम तो बहुत खुश रहते होगे? तोता बोला- खुश तो था, लेकिन जब मैंने मोर को देखा, तब से बहुत दुखी हूं, क्योंकि वह बहुत सुंदर होता है। कौवा मोर को ढूंढने लगा, लेकिन जंगल में कहीं मोर नहीं मिला। जंगल के पक्षियों ने बताया कि सारे मोर चिड़ियाघर वाले पकड़ कर ले गए हैं। कौवा चिड़ियाघर गया, वहां एक पिंजरे में बंद मोर से जब उसकी सुंदरता की बात की, तो मोर रोने लगा। रोते-रोते बोला- शुक्र मनाओ कि तुम सुंदर नहीं हो, तभी आजादी से घूम रहे हो, वरना मेरी तरह किसी पिंजरे में बंद होते। दूसरों से तुलना करके दुखी होना बुद्धिमानी नहीं है। असली सुंदरता हमारे अच्छे कार्यों से आती है।

११६५) राममोहन राय ने इस तरह अपने मित्र को एक धोखेबाज से बचाया - एक बार राममोहन राय के एक करीबी मित्र के पास एक व्यक्ति आया और उसने उन्हें एक विचित्र शंख दिखाया। उसने बताया कि यह शंख बहुत चमत्कारी है। यह जिसके पास रहेगा वह व्यक्ति अतुल्य संपत्ति का मालिक हो जाएगा। इसलिए वह कोई अच्छा ग्राहक खोज रहा है ताकि इस शंख को बेचा जा सके। उस व्यक्ति ने शंख के विषय में और भी कई उत्साहित करनेवाली बातें बताईं। यह बातें सुनकर राममोहन राय के मित्र उस शंख को खरीदने के लिए व्याकुल हो गए।

शंख की कीमत पांच सौ रुपए थी। शंख खरीदने से पहले यूं ही उनके मन में विचार आया कि क्यों न इस चमत्कारी

शंख के विषय में वह अपने मित्र राममोहन राय से भी विचार विमर्श कर लें। जब उन्होंने राममोहन राय को शंख के विषय में बताया तो वे चुपचाप शंख का महिमा गान सुनते रहे और फिर बोले, उस व्यक्ति को बुलाओ। मैं उससे मिलना चाहता हूं और शंख देखना चाहता हूं। मित्र ने शंख बेचनेवाले को बुलाया। राममोहन राय ने उससे प्रश्न किया, यदि आपके पास इतना चमत्कारी शंख है तो इसे आप अपने पास क्यों नहीं रखते? इतने समय से यह शंख आपके पास है, आप तो संपन्न नजर नहीं आते। मात्र पांच सौ रुपए में आप इस शंख को बेचने के लिए इतने व्याकुल क्यों हैं? राममोहन राय के प्रश्न सुनकर वह व्यक्ति घबरा गया। उससे कोई उत्तर देते नहीं बन रहा था। वह वहां से चुपचाप खिसक गया। इस प्रकार राममोहन राय ने अपने मित्र को एक धोखेबाज के चंगुल में फंसने से तो बचाया ही उसके पांच सौ रुपए भी बेकार न जाने दिए।

११६६) बुद्ध के तर्कपूर्ण जवाब से मुखिया सहित सारे ग्रामवासी लज्जित हो गए - सन्यास लेने के बाद गौतम बुद्ध ने अनेक क्षेत्रों की यात्रा की। एक बार वह एक गांव में गए। वहां एक स्त्री उनके पास आई और बोली- आप तो बिलकुल किसी राजकुमार की तरह लगते हैं। क्या मैं जान सकती हूं कि इस युवावस्था में आपके गेरुआ वस्त्र पहन लेने का क्या कारण है? बुद्ध ने उसे विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया- तीन प्रश्नों के हल ढूंढने के लिए मैंने सन्यास मिलया है। यह शरीर जो युवा व आकर्षक है, पर जल्दी ही यह वृद्ध होगा, फिर बीमार व अंत में मृत्यु के मुंह में चला जाएगा। मुझे वृद्धावस्था, बीमारी व मृत्यु के कारण का ज्ञान प्राप्त करना है। उनकी बातों से प्रभावित होकर उस स्त्री ने उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया। शीघ्र ही यह बात पूरे गांव में फैल गई। गांववासी बुद्ध के पास आए व आग्रह किया कि वे उस स्त्री के घर भोजन करने न जाएं क्योंकि वह चरित्रहीन है। बुद्ध ने गांव के मुखिया से पूछा- क्या आप भी मानते हैं कि वह स्त्री चरित्रहीन है? मुखिया ने कहा कि मैं शपथ लेकर कहता हूं कि वह बुरे चरित्र वाली स्त्री है। आप उसके घर कदापि न जाएं। बुद्ध ने मुखिया का दायां हाथ पकड़ा और उसे ताली बजाने को कहा। मुखिया ने कहा- मैं एक हाथ से ताली नहीं बजा सकता क्योंकि मेरा दूसरा हाथ आपने पकड़ा हुआ है। बुद्ध बोले- इसी प्रकार वह स्त्री स्वयं चरित्रहीन कैसे हो सकती है, जब तक इस गांव के पुरुष चरित्रहीन न हो। अगर गांव के सभी पुरुष अच्छे होते तो यह औरत ऐसी न होती। इसलिए इसके ऐसे चरित्र के लिए यहां के पुरुष भी जिम्मेदार हैं। यह सुनकर सभी लज्जित हो गए।

११६७) ईश्वर पर भरोसा रखनेवालों की इच्छाएं अवश्य ही पूर्ण होती हैं - एक फकीर यात्रा करते हुए कहीं जा रहा था। घने जंगल से गुजरते हुए उसे कई दिनों तक कोई बस्ती नहीं मिली। जंगली फल-फूल खाकर फकीर ने कई दिन बिताए। एक दिन फकीर ने सोचा, कहीं कुछ खाने को मिल जाए तो बेहतर होगा। फकीर को भरोसा था कि ईश्वर सबका ध्यान रखता है इसलिए उसने ईश्वर को कहा, हे प्रभु तुम्हीं पालनहार हो। कई दिनों से रोटी नहीं मिली तुम्हीं कहीं से इसका जुगाड़ करो। आखिर चोंच दी है तो चना भी खाने को दो। यह कहते हुए वह एक पेड़ पर चढ़ बैठा। दोपहर का वक्त था। एक नवाब अपने लोगों के साथ वन भ्रमण करते हुए उधर से गुजरा। उसके साथ वजीर और दो सिपाही थे। वे सब उसी वृक्ष के नीचे आकर बैठे।

घनी छाया में आराम फरमाते हुए नवाब ने कहा, चलो आज खाना यहीं बनाया जाए। दोनों सिपाहियों ने नवाब और वजीर समेत चार-पांच लोगों का खाना बना लिया। नवाब के सामने गरमा-गरम, नरमा-नरम चकाचक छप्पन भोग

परोसे गए। नवाब ने हाथ जोड़कर ईश्वर की कामना की, हे प्रभु। रोज मैं महल में किसी फकीर को भोजन देकर भोजन करता हूं। आज इस घनघोर जंगल में किसी दरवेश के दर्शन करा दे तो मैं भोजन करूं। नवाब की प्रार्थना सुनते ही पेड़ पर बैठे फकीर ने जोर से खांस दिया। नवाब ने ऊपर देखा और बोला, धन्यवाद परवरदीगार आखिर तूने मेरी दुआ कबूल कर ली। घर बैठे गंगा भेज दी।

नवाब ने फकीर को प्रेमपूर्वक नीचे आकर भोजन करने को कहा। फकीर ने भोजन कर नवाब के सामने ईश्वर को धन्यवाद दिया। हे प्रभु तेरी महिमा निराली है। कीड़े को कण और हाथी को मण आप ही देते हैं। देनेवाला तो खुदा ही है, बंदे को तो बस खांसना पड़ता है। वह कहते हुए फकीर ने अपना इकतारा बजाया और आगे सफर के लिए चल पड़ा।

११६८) दूसरों की मदद और परोपकार के कार्य करने में ही है जीवन की सार्थकता - एक दिन राजा विक्रमादित्य अपने गुरु के दर्शन करने उनके आश्रम पहुंचे। वहां उन्होंने गुरु से कहा, गुरुजी, मुझे कोई ऐसा प्रेरक वाक्य बताइए जो महामंत्र बनकर न केवल मेरा बल्कि मेरे उत्तराधिकारियों का भी मार्गदर्शन करता रहे। गुरुजी ने उन्हें एक श्लोक लिखकर दिया जिसका आशय यह था- मनुष्य को दिन व्यतीत हो जाने के बाद कुछ समय निकालकर यह चिंतन अवश्य करना चाहिए कि आज का मेरा पूरा दिन पशुवत गुजरा या सत्कर्म करते हुए बीता। क्योंकि बिना कार्य, समाजसेवा, परोपकार आदि के तो पशु भी अपना गुजारा प्रतिदिन करते हैं, जबकि मनुष्य का कर्त्तव्य तो अपने जीवन को सार्थक करना है।

इस श्लोक का राजा विक्रमादित्य पर इतना असर पड़ा कि उन्होंने इसे अपने सिंहासन पर अंकित करवा दिया। अब वह रोज रात को यह विचार करते कि उनका दिन अच्छे काम में बीता या नहीं। एक दिन अति व्यस्तता के कारण वह किसी की मदद अथवा परोपकार का कार्य नहीं कर पाए। रात को सोते समय दिन के कामों का स्मरण करने पर उन्हें याद आया कि आज उनके हाथ से कोई सद्कार्य नहीं हो पाया। वह बेचैन हो उठे। उन्होंने सोने की कोशिश की पर उन्हें नींद नहीं आई।

आखिरकार वह उठकर बाहर निकल गए। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक गरीब आदमी ठंड में सिकुड़ता हुआ पड़ा है। उन्होंने उसे अपना दुशाला ओढ़ाया और फिर राजमहल में लौट आए। अब उन्हें इस बात का अहसास हुआ कि आज का दिन अच्छा बीता। उन्होंने सोचा कि यदि प्रत्येक व्यक्ति नेक कार्य, सद्भावना व परोपकार को अपनी दिनचर्या में शामिल कर ले तो उसका जीवन अवश्य सार्थक हो जाएगा। यह सोचते हुए उन्हें नींद आ गई।

११६९) भगवान के दर्शन - महर्षि रमण के कुछ भक्तों ने पूछा, क्या हमें भगवान के दर्शन हो सकते हैं? हां, क्यों नहीं हो सकते? परंतु भगवान को देखने के लिए उन्हें पहचाननेवाली आंखें चाहिए होती हैं, महर्षि रमण ने भक्तों को बताया। एक सप्ताह तक चलनेवाले समारोह के अंतिम दिन भगवान आएंगे, उन्हें पहचानकर, उनके दर्शन कर तुम सब स्वयं को धन्य कर सकते हो, महर्षि ने कहा। भगवान के स्वयं आने की बात सुनकर भक्तों ने मंदिर को सजाया, अत्यंत सुंदर ढंग से भगवान का श्रृंगार किया तथा संकीर्तन शुरू कर दिया। महर्षि रमण भी समय-समय पर संकीर्तन में जाकर बैठ जाते। सातवें दिन भंडारा करने का कार्यक्रम था। भगवान के भोग के लिए तरह-तरह के व्यंजन बनाए गए थे। भगवान को भोग लगाने के बाद उन व्यंजनों का प्रसाद स्वरूप वितरण शुरू हुआ। मंदिर के ही सामने एक पेड़ था जिसके नीचे मैले कपड़े

पहने एक कोढ़ी खड़ा हुआ था। वह एकटक देख रहा था और इस आशा में था कि शायद उसे भी कोई प्रसाद देने आए। एक व्यक्ति दया करके साग पूरी से भरा एक दोना उसके लिए ले जाने लगा तो एक ब्राह्मण ने उसे लताड़ते हुए कहा, यह प्रसाद भक्तजनों के लिए हैं, किसी कंगाल कोढ़ी के लिए नहीं बनाया गया। ब्राह्मण की लताड़ सुनकर वह साग-पूरी से भरा दोना वापस ले गया। महर्षि रमण मंदिर के प्रांगण में बैठे यह दृश्य देख रहे थे। भंडारा सम्पन्न होने पर भक्तों ने महर्षि से पूछा, आज सातवां दिन है, किंतु भगवान तो नहीं आए। मंदिर के बाहर जो कोढ़ी खड़ा था, वे ही तो भगवान थे। तुम्हारे चर्म चक्षुओं ने उन्हें कहां पहचाना? भंडारे के प्रसाद को बांटते समय भी तुम्हें इंसानों में अंतर नजर आता है, महर्षि ने कहा। इतना सुनना था कि भगवान के दर्शनों के इच्छुक लोगों का मुंह उतर गया।

११७०) संत सोलोमन ने बदल दी गणिकाओं के जीवन की राह - संत सोलोमन अत्यंत उदार हृदय के थे। उनके पास जो भी दीन-दुखी आता, वे उसकी हर संभव सहायता करते थे। उनकी सहृदयता सभी पर समान रूप से बरसती थी। संत सोलोमन एक स्थान पर नहीं टिकते थे, सदा भ्रमण करते रहते। ऐसे ही एक बार वह घूमते हुए ऐसे स्थान पर पहुंच गये, जो गणिकाओं का निवास स्थान था। चूंकि गणिकाओं के पास व्यक्ति अपनी वासना पूर्ति के लिए ही जाता है, अत: वे समझीं कि संत का भी यही उद्देश्य है।

उनमें से कुछ ने संत का उपहास किया कि वह साधु के वेश में विलासी है, तो किसी ने संत सोलोमन को संकेत से अपने पास बुलाया, चूंकि संत का हृदय निष्कपट था, इसलिए वे निर्विकार भाव से उसके पास चले गये। संत ने अपना परिचय दिया और गणिका ने अपना। तब सोलोमन उसके विषय में जानकर रो पड़े और बोले- हे भगवान। तेरी इतनी सुंदर सृष्टि में यह कैसा अनर्थ हो रहा है? इन्हें भी तेरा प्रेम और दया मिलनी चाहिए। संत का ऐसा निष्पाप भाव देख गणिका इतनी प्रभावित हुई कि वह साध्वी बन गई। उसका अनुगमन करते हुए सारी गणिकाएं साधना के मार्ग पर चल पड़ीं।

संत की प्रेरणा से उन लोगों ने वेश्यावृत्ति द्वारा अर्जित धन से एक मठ और नारी निकेतन का निर्माण करवाया और परोपकार को सदा के लिए अपना लिया। वस्तुत: विवशतावश या अविवेक के कारण जिनका पतन हुआ है, उन्हें निर्विकार भाव से विकास की मुख्यधारा में लाना महान परमार्थ होता है, जिसे करनेवाला सच्चा संत और समाज सुधारक होता है।

११७१) हमारे भीतर काम, क्रोध, मद, लोभ व भय के बोझ हैं - एक व्यक्ति संन्यासी के पास पहुंचा और बोला, बाबाजी। मुझे परमात्मा से मिला दो। संन्यासी ने बात टालनी चाही। लेकिन वह अपनी बात पर अड़ा रहा। सन्यासी ने उसकी भावना परखने की दृष्टि से कहा, भगवान से मिलना है तो कल आना होगा। दूसरे दिन फिर यही उत्तर मिला। लेकिन वह निराश नहीं हुआ, निरंतर आता रहा।

सन्यासी ने देखा, इसे शब्दों से उलझाना कठिन है। आखिर उसे एक युक्ति सूझी। कहा, परमात्मा से मिलने के लिए तो ऊपर चढ़ना होगा। उसने स्वीकृति दे दी। सन्यासी ने उसके सिर पर पांच बड़े-बड़े पत्थर रखे और पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ने के लिए कहा। दो चार कदम चला होगा कि उसकी सांस फूलने लगी और वह वहीं रुक गया। सन्यासी बोले, यहां बैठने से भगवान नहीं मिलेंगे। वह साहस बटोरकर चला, लेकिन असफल रहा। सन्यासी ने उसके सिर पर से एक पत्थर उतार दिया। वह कुछ दूर चला फिर रुक गया। चलते-चलते पांचों पत्थर नीचे गिरा दिए गए।

वह पहाड़ की चोटी पर पहुंच गया।

सन्यासी बोला- कुछ समझे या नहीं। उसने उत्तर दिया- मैं कुछ नहीं समझा। आप ही समझा दीजिए।

सन्यासी बोला- जब तक तुम्हारे सिर पर पत्थर थे, तुम चल नहीं सके और हल्के होकर चोटी तक पहुंच गए। इन बाहरी पत्थरों में भी इतनी शक्ति है तो हमारे भीतर काम, क्रोध, मद, लोभ और भय रूप में जो पांच बड़े-बड़े पत्थर हैं, उनको उतारे बिना भगवान तक कैसे पहुंचोगे? इसलिए इन पाषाणों से हल्का बनने के लिए साधुओं का सान्निध्य पाना आवश्यक है।

११७२) मंत्री होकर भी शास्त्रीजी ने सुविधा लेने से किया था इंकार - यह प्रसंग उस समय का है, जब देश को आजाद हुए कुछ ही समय हुआ था। लालबहादुर शास्त्री उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री थे। शास्त्रीजी अपनी सादगी के लिए विख्यात थे और उच्च पद प्राप्त होने के बाद भी उन्होंने इसे कायम रखा था। वे कम से कम साधनों में अपना और परिवार का काम चलाते थे तथा किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा पर धन का अपव्यय पसंद नहीं करते थे। गृहमंत्री बनने के बाद एक दिन जब वे कार्यालय में थे, तो उनके घर पीडब्ल्यूडी विभाग के कर्मचारी आये। शास्त्रीजी की पत्नी ललिताजी को उन लोगों ने बताया कि वे कूलर लगाने आये हैं। यह सुनकर शास्त्रीजी के बच्चे ऐसा सोचकर बड़े प्रसन्न हुए कि इस बार गर्मी का मौसम बहुत अच्छा कटेगा। जब शाम को शास्त्रीजी घर आये, तो उन्हें यह बात मालूम हुई। उन्होंने तत्काल पीडब्ल्यूडी विभाग में फोन लगाकर कूलर लेने से इंकार कर दिया। ललिताजी ने कहा कि यदि बिना मांगे कोई सुविधा मिल रही है, तो हम क्यों मना करें? तब शास्त्रीजी ने जवाब दिया कि यह जरूरी नहीं कि मैं हमेशा मंत्री पद पर ही रहूंगा। फिर हमें सुविधाओं में जीने की आदत पड़ जायेगी, तो उस समय परेशानी होगी। यदि लड़कियों को शादी के बाद ये सुविधाएं नहीं मिलीं, तो उन्हें कष्ट होगा। इसलिए सादगी से जीवन जीने में ही हम सबकी भलाई है। कथा का सार यह है कि मोह के नाश से निस्पृहता आती है, जो प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति को सुखी बनाए रखती है।

११७३) त्याग का अर्थ वासना को मिटा देना है - एक लकड़हारा लकड़ी बेच कर अपना जीवन चलाता था। वह संसार से विरक्त होकर साधु बन गया। एक दिन वह राज्यसभा के निकट से गुजरा। प्रधानमंत्री अभयकुमार धर्मनिष्ठ था। उसने मुनि को देखा और निकट जाकर साष्टांग नमस्कार किया। मंत्रिमंडल ने देखा- प्रधानमंत्री एक लकड़हारे के चरणों में प्रणाम कर रहे हैं। उन्होंने हल्का-सा व्यंग्य किया। प्रधानमंत्री समझ गए। उन्होंने मंत्रिमंडल के सदस्यों को निर्देश दिया- आज एक दिन के लिए अमुक व्यक्ति नंगे पैर चले, अमुक व्यक्ति कच्ची सब्जी न खाए, अमुक व्यक्ति हजामत न कराए, अमुक व्यक्ति स्त्री का स्पर्श मात्र न करे, आदि आदि।

मंत्रियों पर मुसीबत आ गई, पर करें भी क्या? जैसे-तेसे उन्होंने चौबीस घंटे निकाल दिए। दूसरे दिन प्रधानमंत्री ने सब की स्थिति पूछी। मंत्रियों ने कहा- आपके आदेश का पालन हमने किया है, पर दिन बड़ी मुसीबतों में बीता अभय कुमार बोले- क्या एक दिन में ही कतरा गए? यदि कोई व्यक्ति जीवन भर इन सब नियमों को स्वीकार करे तो? मंत्री- ऐसा व्यक्ति नि:संदेह वंदनीय है, जो जीवन भर ऐसी कठोर साधना करे।

अभय कुमार- मैंने उस मुनि को नमस्कार कर कौन-सा गुनाह किया, जिस पर आपको हंसी आई। संभव है भविष्य साथ दे तो, वह भविष्य में प्रधानमंत्री और उससे भी ऊपर कुछ बन सकता है, लेकिन उसने विरक्त होकर संसार का त्याग

कर दिया, ऐसी स्थिति में वह अर्चनीय है या नहीं? वहां उपस्थित सब लोगों को अपनी भूल का अनुभव हो गया।

११७४) जब भीलों ने राजा भोज के महल में बाजरे की रोटियां खाईं - एक बार राजा भोज जंगल में घूम रहा था। वह प्यास से बेचैन हो उठा। कहीं पानी नहीं मिला। एक टीले पर कुछ भील दिखाई दिए, जो सर्दी-गर्मी जीतकर प्रकृतिस्थ बन गए थे। राजा ने इशारे से उनको बुलाया और पानी मांगा। भीलों के पानी ने राजा के प्राणों की रक्षा कर ली।

प्रसन्न होकर राजा ने कहा- तुम लोग भी कभी मेरे राज्य में आना। राजा ने अपना और शहर का नाम बता दिया। कुछ दिनों बाद वे धारा नगरी में राजभवन में जा पहुंचे। राजा ने उचित सत्कार किया। विभिन्न प्रकार के पदार्थ अलग-अलग कटोरियों में परोसे गए। वे, जो हमेशा बाजरे की रोटी खानेवाले थे, ऐसा भोजन देखकर सोचने लगे- ये लोग हमें बेवकूफ बनाना चाहते हैं। इसलिए जादू कर रहे हैं। पर हम भी समझदार हैं, नहीं खाएंगे ऐसी चीजें। वे उठ गए। राजा ने स्थिति को संभालते हुए बाजरे की रोटी और प्याज मंगाकर दिए। उन्होंने खुश होकर भोजन कर लिया।

थोड़ी देर बाद राजा ने कहा- ये जंगल में रहते हैं। इनको यहां आने का अवसर कब मिलता है तो इनको नाटक भी दिखा दो। राजा की आज्ञा से नृत्य करनेवाली स्त्रियां नाचने लगीं। भीलों ने सोचा कि यहां कोई वैद्य नहीं है। इन स्त्रियों के धनकिया वाय का रोग हो गया है। हम इनको ठीक कर दें, ये हमारा उपकार कभी नहीं भूलेंगी। उन्होंने गरम लोहे की छड़े निकालीं और उनके शरीर पर दाग दिया। स्त्रियां कराहने लगीं। राजा ने कहा- जल्दी निकालो इन्हें। ये क्या जानें नाटक क्या होता है? शहरी वातावरण इनको आश्चर्य लगता है।

११७५) व्यर्थ की चिंता न करें; भविष्य में जो होना है, होगा ही - राजा भोज विद्वान, विवेकी, उदार और दाता राजा था। उसने अपने खजाने से दान देना शुरू किया। वर्षों तक यह क्रम चला। मंत्री ने देखा और सोचा- राजा पर दान देने की धुन सवार हो गई है, ये खजाने को खाली कर देंगे। पर इन्हें समझाएं भी कैसे?

आखिर उसे एक उपाय सूझा। राजा के आने-जाने का जो मुख्य मार्ग था, उसमें बड़े बड़े अक्षरों में लिखवा दिया- आपदर्थे धनं रक्षेत् आपात काल के लिए धन संग्रह करें। सुबह राजा उधर से निकला, उस वाक्य को पढ़ा और समझ गया कि यह मंत्री का काम है। उसने वहीं पर दूसरी पंक्ति लिख दी- श्रीमतां आपद: कुतं अर्थात भाग्यवान के आपदाएं आती ही नहीं। मंत्री ने देखा, राजा ने उसकी तर्क को खंडित कर दिया। लेकिन वह भी हार माननेवाला नहीं था। उसने फिर लिख दिया- कदाचित कु पितो दा:।

राजा ने इसके उत्तर में इतना गहरा तथ्य दिया कि मंत्री मौन हो गया। उसने चतुर्थ पद की पंक्ति करते हुए लिखा- सञ्चितमपि नश्यति- मंत्री ने भाग्य पलटने पर धन आवश्यकता बताई तो राजा ने कह दिया भाग्य विपरीत होने पर तो अर्जित धन भी चला जाता है। फिर व्यर्थ ही भविष्य की चिंता क्यों करें? जो व्यक्ति भविष्य के लिए धन संग्रह करते हैं, उनका कथन है- संग्रह न करें तो जीना मुश्किल है। झूठे अभिमान से मनुष्य को जितना खतरा है, व्यर्थ की चिंता भी उससे खतरनाक नहीं। क्योंकि भविष्य की चिंता करे ही क्यों? भविष्य में जो होना है, होगा। आज सबको अपना घर भरने की चिंता है, न्याय और प्रामाणिकता से काम करनेवाले लोग कम ही मिलते हैं।

११७६) अहंकार से मुक्त रहने पर रिश्तों में मिठास आती है - अरब देश का एक व्यक्ति हाफिज भ्रमण के उद्देश्य

से निकला। उसकी इच्छा थी कि दूरस्थ स्थानों को नजदीक से देखे, उनके बारे में गहराई से जाने। इसलिए उसने साथ में किसी परिजन या मित्र को नहीं लिया। कई दिनों तक वह सफर करता रहा। वह रात में धर्मशाला या मंदिरों में रुक जाता और अगले दिन फिर निकल पड़ता। एक दिन उसे समय का ख्याल नहीं रहा और चलते-चलते रात हो गई। अब उसे होश आया कि गांव तो पीछे छूट गया और यह जंगल था।

वह परेशान हो गया। इधर-उधर आश्रय खोजने लगा। अंतत: उसे एक झोपड़ी मिल गई। झोपड़ी का द्वार बंद था। उसने धीरे-से द्वार पर दस्तक दी। भीतर से आवाज आई- कौन है? व्यक्ति ने कहा- मैं हूं। उसका जवाब सुनने के बाद किसी ने द्वार नहीं खोला। उसने थोड़ी देर इंतजार करने के बाद फिर द्वार खटखटाया। फिर आवाज आई- कौन है? उसने थके हुए स्वर में कहा- मैं हूं- हाफिज। लेकिन अब भी द्वार नहीं खोला गया। हाफिज हैरान रह गया कि भीतर से कोई परिचय पूछता भी है और जवाब सुनने के बाद भी द्वार नहीं खोलता।

उसने अंतिम बार दस्तक दी। फिर वही आवाज आई- कौन? इस बार हाफिज ने कहा- एक थका हुआ मुसाफिर। रातभर रहने की जगह दे दीजिए। सवेरे ही चला जाऊंगा। इस बार भीतर से किसी ने कहा- भाई। इस कुटिया में मैं के लिए स्थान नहीं है, मुसाफिर के लिए है। आजाओ और मजे से रात बिताओ। इतना कहने के बाद द्वार खुल गया। हाफिज समझ गया कि मैं के लिए किसी भी घर में कोई स्थान नहीं होता। कथा का संकेतार्थ यह है कि उचित निर्वाह में अहं सदैव बाधक होता है- चाहे वह लौकिक रिश्ता हो या पारलौकिक। अहं से स्वयं को मुक्त रखने पर ही रिश्तों की सहजता और अपनापन बना रहता है।

११७७) सद्आचरण व सत्कर्म से ही व्यक्तित्व निखारकर सफलता पाई जा सकती है - अमरीका में एथेंस नामक एक अनाथ युवक रहता था। उसे पढ़ने का बेहद शौक था।

एक दिन उसने किसी किताब में पढ़ा कि अध्ययन से व्यक्ति विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर सकता है। इससे वह न सिर्फ धन-संपदा का मालिक बन सकता है बल्कि सद्-आचरण के मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल बना सकता है। एथेंस ने संकल्प किया कि वह बिना कर्म के प्राप्त धन का उपयोग नहीं करेगा और दुर्व्यसनों से दूर रहेगा।

एथेंस ने प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। कुछ सम्पन्न परिवारों के विद्यार्थी उसकी अनूठी प्रतिभा और लगन देखकर उससे ईर्ष्या करते थे। एक दिन कुछ ईर्ष्यालु विद्यार्थियों ने उस पर चोरी का इल्जाम लगाकर उसे कटघरे में खड़ा कर दिया।

न्यायाधीश ने एथेंस से कहा, तुम्हारे सहपाठियों का कहना है कि तुम चोरी करके अपनी फीस जमा करते हो। आखिर तुम्हारे जैसा अनाथ विद्यार्थी इतने महंगे विश्वविद्यालय का खर्च कैस वहन करता है?

इस पर एथेंस विनम्रतापूर्वक बोला, सर, मैं बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर अपना खर्च निकालता हूं।

दुर्व्यसनों से दूर होने के कारण मेरा खर्चा काफी कम होता है। मैंने यही सीखा है कि बिना परिश्रम के धन संचय करना पाप है। मेरे दोस्त साबित करके दिखाएं कि मैंने चोरी की है। एथेंस की बात का उसके सहपाठी जवाब न दे पाए। न्यायाधीश ने इस बात की जांच की और एथेंस के कहे गए तथ्यों को सही पाया। उसे मुक्त कर दिया गया।

एथेंस ने मेहनत और कर्म से अपना व्यक्तित्व निखारा। आज भी अमरीका के प्रमुख बुद्धिजीवियों में एथेंस का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

११७८) कर्म सदा यहीं आज है, लेकिन फल सदा भविष्य में हैं - चीन में एक सम्राट ने अपने मुख्य वजीर को फांसी की सजा सुना दी, लेकिन नियम था कि फांसी के एक दिन पहले स्वयं सम्राट फांसी पर लटकनेवाले कैदी से मिलें और उसकी आखिरी आकांक्षा पूछें। सम्राट मुख्य वजीर के पास पहुंचा और पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है? वजीर रोने लगा। सम्राट ने कहा, तुम रोते क्यों हो?

वजीर ने कहा, मैं मौत के डर से नहीं रोता, रोता किसी और वजह से हूं। मेरी वह इच्छा पूरी नहीं हो सकेगी। इसलिए जाने दें। सम्राट जिद पर अड़ गया कि क्यों नहीं हो सकेगी? आखिरी इच्छा मुझे ही पूरी करनी है। उस वजीर ने कहा, नहीं मानते हैं तो सुन लें। मैंने एक कला सीखी थी। तीस बरस लगे थे उस कला को सीखने में। वह कला यह है कि घोड़ों को आकाश में उड़ना सिखाया जा सकता है, लेकिन एक विशेष जाति के घोड़े को। उस घोड़े को मैं खोजता रहा, लेकिन वह मिला नहीं। जिस घोड़े पर आप सवार होकर आए हैं, वह उसी जाति का घोड़ा है। सम्राट के मन को लोभ पकड़ा। आकाश में घोड़ा उड़ सके, तो उस सम्राट की कीर्ति का कोई अंत न रहे पृथ्वी पर। सम्राट ने पूछा, आकाश में उड़ना सीखने में कितना समय लगेगा। वजीर ने कहा, एक साल। सम्राट ने कहा, फांसी एक साल बाद भी लग सकती है। अगर घोड़ा उड़ गया तो फांसी से बच जाओगे तो आधा राज भी तुम्हें दे देंगे। वजीर घोड़े पर बैठकर घर आ गया। सारांश यह है कि कल की कोई भी अपेक्षा नहीं की जा सकती। फल सदा कल हैं, फल सदा भविष्य में है। कर्म सदा है अभी है यहीं।

११७९) जब तक हम चिन्ताओं में डूबे रहेंगे, तब तक सुख व आनंद की प्राप्ति नहीं हो सकती - एक सम्राट ने एक रात अपने नगर का भ्रमण करते हुए एक भिखारी को एक वृक्ष के नीचे आनन्द से अपने भिक्षापात्र को बजाकर गीत गाते देखा। सम्राट बहुत चकित हुआ। भिखारी के पास कुछ भी न था और वह गीत गा रहा था।

गीत में कुछ जादू था। सम्राट ने अपना घोड़ा रोक दिया। उसकी स्वर लहरी में मिठास थीं, जो कहीं दूर से आती महसूस होती थी। थोड़ी देर के लिए सम्राट भूल गया कि मैं राजा हूं। जब गीत रुका तो सम्राट ने उस भिखारी से पूछा, तेरे पास क्या है? क्या है तेरे पास, जिस कारण तू चिन्तित नहीं है?

वह भिखारी हंसने लगा। उसने कहा, मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है। लेकिन गा सकूं, ऐसा मेरे पास सब कुछ है। मुझे देखो, पूछो मत। इस प्रश्न का उत्तर मैं न दे सकूंगा। मेरी आंखों में झांककर देखो। सम्राट भिखारी से बड़ा प्रभावित हुआ, उसे महल में लेकर आया और सुला दिया।

जब सुबह हुई तो सम्राट ने शिष्टाचारवश पूछा, महाराज रात कैसी बीती। उसने कहा, कुछ आप जैसी, कुछ आपसे बेहतर। सम्राट हैरान हुआ। आशय पूछा तो भिखारी ने कहा, जब तक जागते रहे, हम प्रभु को याद करते रहे, तुम चिंताओं में डूबे रहे। जब नींद आ गई तो आप जैसी नींद आ गई। इसलिए कहता हूं, कुछ आप जैसी, कुछ आपसे बेहतर। कहने का आशय यह कि जब तक हम चिन्ताओं में डूबे रहेंगे, तब तक सुख व आनन्द की उपलब्धि हो ही नहीं सकती।

११८०) जानिए, कब और किस धुन पर नाचने लगे भोले भंडारी - श्री राम के भक्तों में हनुमान अग्रगण्य हैं। इस

महाबलशाली वीर की अपने स्वामी श्रीराम के प्रति निष्ठा अतुलनीय है। जब अयोध्यापति राम की कीर्ति दूर दूर तक फैल रही थी और वह मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने लगे थे तब एक दिन महादेव शिव की इच्छा भी इस महापुरुष से मिलने की हुई। पार्वती जी को साथ लेकर कैलाश पर्वत से उतर कर अयोध्या नगरी के रास्ते चल पड़े। भगवान शिव और मां पार्वती को अयोध्या आया देखकर श्री सीताराम बहुत खुश हुए। माता जानकी ने उनका उचित आदर सत्कार किया और स्वयं भोजन बनाने के लिए रसोई में चली गईं। इस बीच भगवान शिव ने श्रीराम से पूछा, आपके सेवक हनुमान दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। श्री राम बोले, वे बगीचे में हैं। भगवान शिव ने श्रीराम से बगीचे में जाने की अनुमती मांगी और पार्वती जी का हाथ थामकर बगीचे में आ गए। बगीचे की खूबसूरती देखकर उनका मन मोहित हो गया। आम के एक घने वृक्ष के नीचे हनुमान दीन-दुनियां से बेखबर गहरी नींद में सोए थे और एक लय में खर्राटों से राम नाम की ध्वनि उठ रही थी। चकित होकर भगवान शिव और पार्वती एक दूसरे की ओर देखने लगे। राम नाम सुनकर पेड़ की डालियां भी झूमने लगी थी और इनके बीच से भी राम नाम उच्चारित हो रहा था। भगवान शिव इस राम नाम की धुन में मस्त होकर खुद भी राम राम कहकर नाचने लगे। पार्वती जी भी अपने कोमल पांव थिरकाने लगी। शिव और पार्वती के नृत्य से ऐसी झनकार उठी कि स्वर्गलोक के देवतागण भी आकर्षित होकर बगीचे में आ गए और राम नाम की धुन में सभी लोग मस्त हो गए।

११८१) केवल यही वो द्वार जहां से खुल सकता है स्वर्ग का रास्ता - नगर की प्रसिद्ध वैश्या की गली से एक योगी जा रहा था कंधे पर झोली डाले। योगी को देखते ही एक द्वार खुला सामने की महिला ने योगी को देखा। ध्यान की गरिमा से आपूर, अंतर मौन की रश्मियों से भरपूर। योगी को देखकर महिला ने निवेदन किया गृह में पधारने के लिए। उसके आमंत्रण में वासना का स्वर था। योगी ने उत्तर दिया, देखती नहीं झोली में दवाएं पड़ी हैं, गरीबों में बांटनी हैं उन्हें रोगों से मुक्त करना है। हमारे और तुम्हारे कार्य में अंतर है तुम रोग बढ़ाती हो, हम रोग मिटाते हैं। तुम शरीर और वासना की भाषा बोलती हो, हम सत्य और बोध की। योगी की बात पर क्रोधित होकर वैश्या बोली, योगी तुम्हें पता है। मेरे रंग रूप के पीछे सारा शहर दिवाना है। मुझे पाने के लिए वह अपने जीवन की भरपूर धन संपदा लुटाने को तत्पर रहते हैं। मैं स्वयं को तुम्हारे आगे समर्पित कर रही हूं और तुम इंकार कर रहे हो। योगी ने कहा, मुझे तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार है परंतु अभी नहीं। मैं आऊंगा और जरूर आऊंगा। समय बीतता गया, महिला वृद्ध हो गई। अब उसे पाने के लिए कोई न आता था। तबले की थाप, घुंघरू की आवाज सुनाई नहीं देती थी बल्कि कराहने की आवाज आती थी। अंदर प्रवेश करके देखा एक वृद्धा जिसे कोढ़ हो गया था। दर्द से तड़प रही थी। योगी ने कहा, मैं आ गया हूं। कहा था न मैं आऊंगा। योगी ने झोली खोली, उसके घाव साफ किए दवा लगाई और कहा चिन्ता न करो जल्दी ठीक हो जाओगी। आपका चुनाव है, आप बीच में खड़े हैं। दोनों द्वार खुले हैं, नर्क का भी, स्वर्ग का भी। सुख लोलुपता का, सेवा का भी।

११८२) नियम और परोपकार - पांचों पांडवों की एक ही पत्नी थी द्रौपदी। महर्षि व्यास की आज्ञा से पांचों भाइयों के बीच नियम बनाया गया था कि कि जब एक भाई द्रौपदी के साथ होगा, तब दूसरा वहां नहीं जाएगा। एक बार की बात है। युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ कक्ष में विश्राम कर रहे थे। बाहर बैठे अर्जुन को एक ब्राह्मण की करुण पुकार सुनाइ दी। कुछ लुटेरे उस ब्राह्मण का गोधन लूटकर भाग रहे थे। ब्राह्मण ने अर्जुन से सहायता मांगी। अर्जुन असमंजस में पड़ गए। वह

सोचने लगे कि ब्राह्मण की किस प्रकार मदद की जाए? दुविधा यह थी कि उनका गांडीव उसी कक्ष में रखा था, जहां युधिष्ठिर और द्रौपदी विश्राम कर रहे थे। लुटेरे हर पल दृष्टि से दूर होते जा रहे थे। अर्जुन ने अंतत: नियम के विपरीत उस कक्ष का द्वार धीरे से सरकाया, जहां युधिष्ठिर और द्रौपदी बैठे थे। वह कक्ष में रखे अपने धनुष बाण लेकर निकल आए। लुटेरों का पीछा करके वह ब्राह्मण का गोधन उनसे छीन लाए और ब्राह्मण को वापस लौटाया। इसके बाद अर्जुन फिर युधिष्ठिर के पास पहुंचे और नियम भंग करने की सूचना देते हुए पूर्व निर्धारित दंडस्वरूप अपने लिए १२ वर्ष के राज्य निर्वासन की अनुमति मांगी। युधिष्ठिर अत्यंत व्यथित हो उठे। उन्होंने अर्जुन से कहा, हे अर्जुन। माना कि तुमने नियम तोड़ा है, लेकिन अपने स्वार्थ के लिए नहीं, अपितु परोपकार के लिए ऐसा किया। ब्राह्मण के गोधन की रक्षा कर तुमने मुझे प्रजा से मिलनेवाले अपयश से बचाया है। यदि परोपकार के लिए नियम शिथिल करना पड़े तो भी अपराध नहीं है, बल्कि श्रेष्ठ कार्य है। तुम दंड के नहीं, यश के पात्र हो। अत: परोपकार के लिए या किसी की रक्षा के लिए और अच्छे कार्य के लिए कभी भी नियम को भंग करना पड़ जाए तो ऐसा अवश्य करना चाहिए क्योंकि यह अपराध नहीं माना जाता।

११८३) आवाज का बाजीगर - एक लड़के का परिवार स्वीडन से इलिनॉय (शिकागो) में आकर रहने लगा। उनके घर की आर्थिक स्थिति बेहद दयनीय थी। लड़का बहुत प्रतिभाशाली था। घर की बुरी स्थिति देखकर उसने सोचा कि उसे भी ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे कि उसके परिवार की मदद हो सके। उसने अनेक कार्यों में हाथ आजमाया, लेकिन सफलता नहीं मिली। एक दिन वह चिंतामग्न बैठा था तो उसके मित्र ने उसकी चिंता का कारण पूछा। उसकी बात सुनकर मित्र बोला, मैंने कई लोगों को फोटोग्राफी में अच्छी कमाई करते देखा है। तुम फोटोग्राफी जानने के लिए एक पुस्तक मंगाओ। उसे पढ़कर तुम कुछ ही समय में फोटोग्राफी का काम कर सकते हो। मित्र की बात मानकर लड़के ने एक प्रकाशक के पास रुपयों के साथ ही फोटोग्राफी की पुस्तक के लिए मांग भेज दी। प्रकाशक ने लड़के के पास फोटोग्राफी के बजाय आवाज की बाजीगरी की पुस्तक भेज दी। लड़के ने पुस्तक को देखकर सोचा कि इस पुस्तक से उसे कोई भी काम नहीं मिल पाएगा न ही इससे वह कुछ सीख पाएगा। कुछ दिन तक वह पुस्तक यूं ही रखी रही। आखिर एक दिन लड़के ने पुस्तक पढ़नी आरंभ कर दी। पुस्तक पढ़ने के बाद लड़का बेहद प्रभावित हुआ। उसने पुस्तक के अनुसार आवाज की बाजीगरी करनी आरंभ कर दी। वह दिन प्रतिदिन अभ्यास करता रहा और उसकी आवाज में जादू उत्पन्न होता गया। इसके बाद उसने यही काम करना शुरू कर दिया। इसके बाद तो उस लड़के की आवाज की बाजीगरी का जादू ऐसा चला कि आगे चलकर यही लड़का प्रसिद्ध मनोरंजनकर्ता एडगर बर्गेन के रूप में प्रसिद्ध हुआ। एडगर बर्गेन चालीस साल से अधिक समय तक चार्ली मैककार्थी नाम के कठपुतले से बेहद प्रसिद्ध हुआ। इतना ही नहीं, उनका शो इतना प्रसिद्ध था कि लोगों में उसे देखने के लिए होड़ लग जाती थी।

११८४) धर्म का मर्म - चीन में एक महान दार्शनिक संत हुए- ताओ बू चिन। परम विद्वान और नितांत सादा जीवन व्यतीत करने वाले ताओ बू चिन धर्म की सही शिक्षा देने के लिए विख्यात थे। लाखों की तादाद में लोग उनके पास आते और परम संतुष्टि का भाव लेकर वापस जाते। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी प्रकृति के अनुकूल शिक्षा देना और तदनुसार उसे कर्मशील बनाना उनकी विशेषता थी। एक दिन उनके पास चुंग सिन नाम का एक व्यक्ति पहुंचा। उसने उनसे धर्म की

शिक्षा देने की प्रार्थना की। संत ताओ ने उस व्यक्ति को कुछ समय तक तो अपने पास रखा, फिर उसे दीन-दुखियों की सेवा में लगा दिया। चुंग सिन इस कार्य में निष्ठापूर्वक लगा रहा। वह वृद्धों व लाचारों की सेवा करता, उनका उपचार करवाता, उन्हें यथासमय पथ्यादि देता। चुग सिन ने इस कार्य को करने में न दिन देखा, न रात। वह अपना आराम, सुख-चैन छोड़कर असहायों की मदद करने में लगा रहता। जब सेवा कार्य करते-करते उसे काफी समय हो गया, तब उसने संत ताओ बू चिन से आग्रह किया- महात्मन, आपके पास रहते हुए मुझे इतने दिन हो गए, किंतु आपने मुझे अब तक धर्म की शिक्षा नहीं दी। संत ने मुस्कराते हुए कहा- तुम्हारा तो जीवन ही यहां रहते हुए धर्ममय हो गया है। फिर मैं तुम्हें इस विषय में और क्या शिक्षा देता? तुम्हें जो कर्त्तव्य सौंपे गए, उनका पालन तुम पूरी निष्ठा से करते हो। यही सबसे बड़ा धर्म है और तुम इस धर्म का यथाशक्ति पालन करते हो। चुंग सिन को कर्त्तव्य पालन के रूप में सही धर्म की शिक्षा मिल गई। प्रत्येक कार्य को कर्त्तव्य पालन का भाव लेकर करना ही सच्चा धर्म है। धर्म पालन से आशय मंदिर मस्जिद में पूजा या व्रत उपवास अथवा किसी भी प्रकार के बाह्याडंबर से नहीं है। विशुद्ध सात्विक भाव से अपना कर्त्तव्य पालन करना ही धर्म का मर्म है।

११८५) कूड़े में पड़े हीरे - संत पुरंदर भगवान के सच्चे भक्त तथा विरक्त प्रवृत्ति के महापुरुष थे। भगवान की भक्ति को सर्वोपरि मानकर वह अपना तमाम समय पूजा-अर्चना तथा गरीबों की सेवा में बिताते थे। धन हो या कोई दूसरा लालच, उनसे वह कोसों दूर रहा करते थे। विजयनगर के राजा कृष्णदेव ने गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी उनके निर्लोभी होने की बात सुनी, तो वह आश्चर्य में पड़ गए। उन्होंने अपने मंत्री व्यासराम की सहायता से संत पुरंदर की परीक्षा लेने का निर्णय किया। संत पुरंदर को दी जानेवाली भिक्षा के चावल में हीरे व रत्न मिलाकर दिए जाने लगे। एक महीने तक भिक्षा के अन्न में छोटे-छोटे हीरे मिलाकर संत पुरंदर को दिए जाते रहे। महीने के अंत में राजा ने अपने मंत्री से संत पुरंदर के घर जाने की सोची। अपने मंत्री को साथ लेकर और वेश बदलकर दोनों संत पुरंदर के घर जा पहुंचे। जैसे ही दोनों ने घर का दरवाजा पार किया, अंदर से आती संत पुरंदर की पत्नी की आवाज उनके कानों में पड़ी। वह पति से कह रही थीं, आजकल आप किस गरीब के यहां से भिक्षा लाते हैं? वह चावलों में कंकड़ मिलाकर देता है। मैं उन्हें चुनते-चुनते परेशान हो जाती हूं। राजा को यह देख बड़ा ताज्जुब हुआ कि कोठरी के एक कोने में, जहां संत की पत्नी कूड़ा फेंकती थीं, वहां उनके द्वारा दिए गए हीरों का ढेर लगा हुआ था। संत पुरंदर ने राजा को पहचान लिया। वह बोले, महाराज, मैं जानता था कि आप मेरी गरीबी को देखते हुए चुपचाप भिक्षा के चावलों में कुछ हीरे मिलाकर भेजते हैं। परंतु मुझ ब्राह्मण के लिए हीरे व कंकड़ में कोई अंतर नहीं है। इन हीरों को आप ले जाएं तथा गांव में मीठे पानी के कुएं खुदवा दें। इन हीरों की सार्थकता इसी में है। राजा तथा मंत्री दोनों संत की विरक्ति के सामने नतमस्तक हो गए।

११८६) कामयाबी का मूलमंत्र - रिचर्ड हूकर ने सात सालों की मेहनत के बाद अपना उपन्यास एमएएसएच लिखने में सफलता पाई। इस उपन्यास को पूरा करने के लिए उन्हें दिन रात तक का बोध नहीं रहा। कई कई दिनों तक उन्होंने खाना तक नहीं खाया। यहां तक कि जब उनके मित्र उनके पास आते तो वह उनसे बात तक न करते, बस अपना उपन्यास लिखने में लगे रहते। अथक मेहनत के बाद उपन्यास पूरा हुआ। वह इसे लेकर एक प्रतिष्ठित प्रकाशक के पास

गए। प्रकाशक ने उपन्यास के प्रथम पृष्ठ को देखते ही रिचर्ड पर व्यंग्य करते हुए कहा, यह उपन्यास केवल रद्दी की टोकरी में डाले जाने लायक है। इसे मैं तो क्या, कोई छोटा-मोटा प्रकाशक भी प्रकाशित नहीं करेगा। अथक मेहनत के बाद पहली बार ही मिले इतने बड़े नकारात्मक जवाब से रिचर्ड के विचारों में जंग शुरू हो गई। उनके सकारात्मक विचारों पर नकारात्मक विचार हावी होने लगे। एक दिन जब उनका मन यह कह रहा था कि यह उपन्यास कभी भी प्रकाशित नहीं हो पाएगा तो उन्होंने उस धारणा को दबाकर मंद मंद स्वर में बोलना आरंभ कर दिया कि यह उपन्यास न केवल प्रकाशित होगा, अपितु पूरी दुनिया में यह ऐसी धूम मचा देगा कि लोग देखते रह जाएंगे। वह हर प्रकाशक के पास जाने से पहले और बाद तक यही बोलते रहते। २१ प्रकाशकों ने उनके उपन्यास को अस्वीकृत कर दिया। लेकिन रिचर्ड का आत्मविश्वास और उत्साह बलवती होता रहा। आखिर एक दिन एक प्रकाशक ने उसे प्रकाशित करने पर अपनी सहमति की मुहर लगा दी। कुछ ही समय बाद यह उपन्यास न केवल बेस्टसेलर बन गया, अपितु इस उपन्यास पर एक सफल फिल्म और एक सफल टेलीविजन धारावाहिक भी बना। इस प्रकार रिचर्ड हूकर अपने बुलंद हौसलों के कारण कामयाब होकर पूरी दुनिया के सामने एक प्रेरणा बन गए।

११८७) लक्ष्य और लगन - एक लड़के को सदैव कुछ जानने, नया करने की उत्सुकता घेरे रहती थी। वह अमेरिका के शहर नैशविले में एक फोटोग्राफर के यहां काम करता था। फोटोग्राफर की दुकान पर एक दिन एक ग्राहक आया और वह ज्योतिष विद्या से संबंधित अपनी एक पुस्तक वहीं भूल गया। उस व्यक्ति ने दुकान के मालिक से पूछा कि क्या मैं यह पुस्तक पढ़ सकता हूं? मालिक से आज्ञा मिलते ही उसने पुस्तक पढ़नी शुरू कर दी। उसे पुस्तक इतनी रोचक लगी कि उसे वह सारी रात पढ़ता रहा। बाद में उसने निश्चय किया कि वह तारामंडल और आकाश के संबंध में ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्राप्त करेगा। मालिक को उस लड़के में काफी संभावना दिखती थी। लड़के ने जब उसे मन की बात बताई तो उसने उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा, मुझसे जो भी मदद की जरूरत हो बेझिझक कहना, मैं तुम्हारे लक्ष्य में तुम्हारे साथ हूं। दूसरे दिन ही उसने एक छोटी-सी दूरबीन खरीदी और उसकी मदद से रात को घंटों छत पर बैठकर आकाश का सौंदर्य देखने लगा। ऐसा करना उसे बहुत आनंद देता था। ऐसा करके उसने लगातार अपना ज्ञान बढ़ाना शुरू किया। फोटोग्राफर की दुकान पर काम करने से जो आय होती थी, उसी में से पैसे बचाकर उसने एक बड़ी दूरबीन खरीदी। उसे शक्तिशाली बनाने के लिहाज से उसमें भारी लेंस लगवाने के लिए उसे फिलाडेलफिया भेजी। बड़ा लेंस लग जाने पर आकाशमंडल के संबंध में उसने जो नई खोज की वह कुछ ही दिनों में बड़े-बड़े खगोल शास्त्रियों में चर्चा का विषय बन गई। फोटोग्राफर की दुकान पर कार्य करने वाला बेहद उत्सुक स्वभाव वाला वह लड़का एक दिन अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में शामिल हुआ। यह लड़का कोई और नहीं बल्कि प्रोफेसर बर्नर थे जो एक प्रमुख खगोलशास्त्री के रूप में आज भी याद किए जाते हैं।

११८८) रिश्तों का पर्दा - अमूमन मैं शादियों में बहुत कम जाता हूं, मगर इस बार श्रीमतीजी अड़ गईं। कहने लगीं आपको चलना ही पड़ेगा। वह मेरी मुंह बोली बहन है और फिर आपकी भी तो कुछ लगती है। बात में दम था। मैं बेदम हो गया। खैर, मैं भी तैयार होकर हो लिया शादी में शरीक होने के लिए। रोशनी में जगमगाता पंडाल। रंग-बिरंगे कपड़ों में

लिपटे लोग हंसी ठहाकों के बीच खाने का आनंद ले रहे थे। अभी मैं इस माहौल में खोया हुआ था कि मेरे कानों में शहद घोलती-सी मगर जोर की आवाज पड़ी- जीजाजी मैं मुड़ा, देखा सामने शीला दुल्हन के जोड़े में सजी खड़ी थी। मैंने व श्रीमतीजी ने उसे भावी जीवन की शुभकामनायें दीं। फिर मैंने कहा शीला। अरे भई अपने दूल्हे से तो मिलाओ। उस चांद को हम भी तो देखें जिसकी चांदनी में तुम्हारा चेहरा इतना दमक रहा है। अपनी तारीफ सुनकर वह थोड़ी लज्जा-सी गई थी। फिर उसने प्रसन्नता से मुड़कर अपने पीछे खड़े दोस्तों में मशगूल दूल्हे को आवाज दी। आवाज का पीछा करती जब मेरी नजर लक्ष्य पर पहुंची तो जो देखा वह किसी अजूबे से कम नहीं था। यह तो वही शख्स था जिसे पिछली बार उसने धर्म भाई कहकर मिलवाया था। विस्मय में डूबे जब मैंने उससे यह बात पूछी तो वह हंसकर बोली आप भी जीजाजी, इतना भी नहीं समझते। यह तो पर्दा था दुनिया की नजर से अपने प्यार को बचाने का और वह फिर मशगूल हो गई थी श्रीमतीजी से बातों में। मैं सोचता ही रह गया रिश्तों के इस अगाढ़ पर्दे के बारे में जो कितना गाढ़ा है, हर एब छुपा लेता है।

११८९) देने का आनंद - स्वामी विवेकानंद के जीवन की यह एक घटना है। भ्रमण करने एवं भाषणों के बाद स्वामी विवेकानन्द अपने निवास स्थान पर आराम करने के लिए लौटे हुए थे। उन दिनों वे अमेरिका में ठहरे हुए थे और वे अपने ही हाथों से भोजन बनाते थे। वे भोजन करने की तैयारी कर ही रहे थे कि कुछ बच्चे उनके पास आकर खड़े हो गए। उनके अच्छे व्यवहार के कारण बहुत बच्चे उनके पास आते थे। वे सभी बच्चे भूखे मालूम पड़ रहे थे। स्वामीजी ने अपना सारा भोजन बच्चों में बांट दिया। वहीं पर एक महिला बैठी ये सब देख रही थी। उसने बड़े ही आश्चर्य से पूछा- आपने अपनी सारी रोटियां तो इन बच्चों को दे डाली, अब क्या आप खाएंगे? स्वामी जी मुस्कुराते हुए बोले- माता। रोटी तो मात्र पेट की ज्वाला शांत करने वाली वस्तु है। यदि इस पेट न सही तो उनके पेट में ही सही। आखिर वे सब भगवान के ही अंश तो हैं। देने का आनंद, पाने के आनंद से बहुत बड़ा है। अपने बारे में सोचने से पहले दूसरों के बारे में सोचना ज्यादा आनन्ददायी होता है।

११९०) बनावटी दर्द - मां एक दिन चौके में खीर बना रही थी। उसका बच्चा कहीं खेलते-खेलते गिर पड़ा और बड़ी जोर से चीख कर रोया तो, मां खीर को छोड़कर भागी और बच्चे को उठा लिया। तब तक खीर में उबाल आ गया। सारी खीर जमीन पर गिर गई। मां ने बच्चे को चुप कराया, उसे मिठाई दी और जो थोड़ी बहुत खीर बची थी, उसे ठंडा करके बच्चे को खिलाया। बच्चा बोला कि मां, तुम मुझे इतनी चाहती हो कि तुमने खीर को भी कुछ नहीं समझा? मां बोली- हां बेटा।

बच्चे को प्यार मिला और फिर खेलने लगा। एक दिन बच्चे ने सोचा कि उस दिन तो मां ने बहुत प्यार किया था और खीर भी खिलाई थी। आज कई दिनों से खीर भी नहीं बनी। यह सोच वह जमीन पर गिरा और बड़ी जोर से चिल्लाया, मां चौके मैं बैठी रही और टस से मस नहीं हुई। अपना खाना बनाती रही और बच्चा चिल्लाता रहा। वह घंटों चिल्लाता रहा पर मां उठकर नहीं गई। फिर वह अपने आप हाथ-पैर झाड़ते हुए आया और बोला- मां, उस दिन मैं गिरा था तो तुम दौड़ कर चली आयी थी और आज मैं घंटों रोया तो तुम क्यों नहीं आयी? कहने लगी- बेटा। वह दर्द नहीं था। अगर वह दर्द होता तो मै सेकंड भी चौके मैं नहीं बैठ सकती थी। आज तो तुम्हारा बनावटी दर्द था। जिनको सच में दर्द है, उनके लिए परमात्मा हमेशा तैयार खड़े हैं।

११९१) विश्वास की ताकत - इंग्लैंड के एक पादरी का विश्वास की आध्यात्मिक शक्ति में अटल भरोसा था। जो कोई भी उनके घर में एक बार आ जाता, वो उनके आतिथ्य और सत्कार के प्रभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। उनके मन में लोगों के लिए अथाह प्रेमभाव था इसलिए लोग उनका बहुत सम्मान भी करते थे। एक दिन जेल से भागा हुआ चोर रात में शरण लेने के लिए इधर-उधर घूम रहा था। उसने देखा कि पादरी के घर का दरवाजा खुला हुआ है, इसलिए वो उस ओर चला गया और पादरी के घर में प्रवेश कर गया।

पादरी ने उसे देखते ही उसका अभिवादन किया और उससे कहा- तुम्हारा मेरे इस घर में स्वागत है मेरे भाई, लेकिन तुम ये बताओ कि तुम कौन हो और यहां क्या करने आए हो? इस पर चोर ने सफेद झूठ बोलते हुए कहा- फादर, मैं एक मुसाफिर हूं और रास्ता भटक गया हूं, सो इधर-उधर भटक रहा था और आपके घर का दरवाजा खुला हुआ तो इस ओर चला आया। क्या मुझे सिर छुपाने के लिए जगह मिल सकती है? मैं सुबह होते ही यहां से चला जाऊंगा।

पादरी ने उससे कहा- हाँ क्यों नहीं, तुम यहां आराम से रह सकते हो और मुझे लगता है कि तुम बहुत थक गए हो, इसलिए तुम जाकर आराम से हाथ-मुंह धो लो। मैं तुम्हारे सोने और खाने का प्रबंध करता हूं। इस पर चोर पादरी का आभार व्यक्त करते हुए स्नानघर की ओर बढ़ गया और इतने में पादरी ने उसके खाने और सोने की व्यवस्था कर दी। पादरी ने उसका बहुत अच्छे से आतिथ्य सत्कार किया और उसे अच्छा भोजन करवाकर उसके सोने की व्यवस्था कर दी।

रात को सभी के सो जाने के बाद चोर के मन में चोरी की इच्छा जागृत हुई और वह पादरी के घर से सोने के दो दीपदान चुराकर वहां से निकल भागा। रात में पुलिस उसकी तलाश में ही थी, सो वो पुलिस के हत्थे चढ़ गया तो पूछताछ में उसने बता दिया कि मैंने ये पादरी के घर से चुराए हैं। इस पर उसे पादरी के सामने लाया गया तो पादरी ने पुलिस वालों से कहा- आप कृपया इन्हें छोड़ दीजिए, ये मेरे घर में मेहमान के तौर पर आए थे और मैंने ये दीपदान इन्हें उपहार के तौर पर दिए हैं। इतने में चोर के ज्ञानचक्षु खुल गए और उसे अपनी भूल का एहसास होने लगा। पादरी की उदारता देखते हुए चोर के मन में पश्चाताप होने लगा और उसने माफी मांग कर कभी फिर से चोरी नहीं करने का वचन दिया।

११९२) चरवाहे को समझ आया कि नई चीज का लोभ कर पुरानी को नहीं छोड़ना चाहिए - शाम होते-होते खूब आंधी आई और पानी बरसने लगा। चरवाहा घबरा गया। उसने अपनी बकरियों और उनके बच्चों के साथ एक गुफा में आश्रय लेना चाहा, किंतु देखा कि उसमें पहले से ही कुछ जंगली भेड़ें अपने बच्चों के साथ बैठी हैं।

यह देखकर चरवाहे ने प्रसन्न होकर सोचा, बहुत अच्छा हुआ। अब इन भेड़ों और उनके बच्चों को खुश कर इन पर अपना अधिकार जमा लूं। फिर गांव में मेरी धाक होगी। इस आशा में चरवाहे ने अपनी बकरियों व उनके बच्चों को खिलाने के लिए दिनभर में जितना घासफुस इकट्ठा किया था, वह सब जंगली भेड़ों और उनके बच्चों को खिला दिया।

इस लोभ के सामने उसे अपनी पालतू बकरियों और उनके बच्चों का भी ख्याल न आया। उन्हें रातभर गुफा के बाहर रहकर आंधी, पानी और सर्दी का सामना करना पड़ा। सवेरा होने पर जब चरवाहा बाहर निकला तो उसने देखा कि उसकी अधिकांश बकरियां अपने नन्हे-नन्हे बच्चों के साथ मरी पड़ी हैं। इतने में जंगली भेड़ें अपने मेमनों के साथ गुफा से बाहर आईं और जाने लगीं। चरवाहे ने उन्हें पुकार लगाई- अरे बेईमान भेड़ो। मैंने अपनी बकरियों का भोजन तुम्हें खिलाया।

रातभर उन्हें छोड़कर तुम्हारा ख्याल रखा और तुम मुझे ही छोड़कर जा रही हो? तभी एक बूढ़ी भेड़ ने कहा- बेईमान तो तुम हो, जो आज हमें देखकर अपनी पुरानी बकरियों का ख्याल भूल गए। कल किसी और की खातिर हमें भुला दोगे। चरवाहे को अब समझ आया कि किसी भी नई चीज का लोभ कर पुरानी वस्तु को नहीं छोड़ना चाहिए। वस्तुत: नए की उपलब्धि हेतु प्रयास करना बुरा नहीं है किंतु उसे पुराने के त्याग की कीमत पर हासिल नहीं किया जाना चाहिए।

११९३) माली ने सिखाई थी लाल बहादुर शास्त्री को जीवन की सही दिशा - पांच-छह साल का एक लड़का एक दिन अपने साथियों के साथ आम के बगीचे में चला गया। वहां सभी बच्चे आम तोड़ने लगे। लेकिन वह लड़का चुपचाप एक कोने में खड़ा रहा। साथियों के बहुत उकसाने पर भी उसने आम तो नहीं तोड़े, लेकिन इसी बीच गुलाब के पौधे पर खिले एक सुंदर फूल पर उसकी दृष्टि पड़ी। गुलाब का वह बड़ा फूल देखकर उसका मन ललचा उठा। उसने चुपचाप वह फूल तोड़ लिया। ठीक उसी समय बगीचे का माली वहीं आ धमका।

माली को देख सभी लड़के उड़न छू हो गए। लेकिन वह लड़का घबराहट में वहीं खड़ा रह गया। माली ने उसे देखते ही पकड़ लिया और पूछा, बता कहां है तेरा घर। चल जरा मैं तेरे बाबू जी से तेरी यह करतूत बताकर आता हूं। माली की यह बात सुनकर लड़का मायूस हो गया। उसने सहमते हुए धीमे स्वर में कहा, मेरे पिताजी नहीं हैं। लड़के का भोला-भाला चेहरा और सरल आंखें देखकर माली बड़ा प्रभावित हुआ। उसने उसे प्यार से समझाया, फिर तो तुम्हें ऐसे काम बिल्कुल नहीं करना चाहिए। क्योंकि तुम्हें तो पिटाई से बचानेवाला भी कोई नहीं है। कभी कोई चीज अच्छी लगे तो उसके मालिक से मांग लेनी चाहिए। इस तरह लेना तो चोरी कहलाता है।

लड़के को लगा जैसे माली के रूप में उसके जीवन को सही दिशा बतानेवाला कोई गुरु मिल गया हो। उसने तभी अच्छा इंसान बनने का संकल्प कर लिया। माली की बात को उसने ऐसे गांठ बांध लिया कि उसका जीवन एक मिसाल बन गया। यह लड़का लाल बहादुर शास्त्री थे, जो आगे चलकर अपनी सच्चाई, ईमानदारी, सेवा भावना और कर्त्तव्यनिष्ठा के बल पर हमारे देश के प्रधानमंत्री बने।

११९४) खैय्याम उस वक्त खुदा के साथ थे इसलिए शेर से भी डर नहीं लगा - एक बार उमर खय्याम अपने एक शिष्य के साथ बीहड़ से गुजर रहे थे। नमाज पढ़ने का समय हुआ तो दोनों ने नमाज पढ़ने के लिए ठीक-ठाक जगह देखनी शुरू कर दी। लेकिन तभी उन्हें कहीं दूर से आती शेर की आवाज सुनाई दी।

उसे सुनकर शिष्य बेहद घबरा गया और तुरंत नजदीक के पेड़ पर चढ़ गया। लेकिन खय्याम तो अपने में डूबे थे। उन्होंने जैसे वह आवाज सुनी ही नहीं थी। वह एकाग्र होकर नमाज पढ़ने में लग गए। कुछ देर बाद शेर सचमुच वहां आ पहुंचा। लेकिन आश्चर्य, वह कुछ देर रूक कर चुपचाप आगे निकल गया।

उसके चले जाने के बाद शिष्य पेड़ से नीचे उतर आया। इस तरह नमाज खत्म होने के बाद दोनों आगे बढ़े। थोड़ी देर बाद जब उमर खय्याम को एक मच्छर ने काटा, तो उसे मारने के लिए उन्होंने अपने गाल पर जोर से चपत लगाई। यह देख वह शिष्य बोला, गुरुदेव अभी-अभी जब शेर आपके करीब आया था, तब आप बिल्कुल नहीं घबराए, लेकिन एक मच्छर के काटे जाने पर आपको इतना गुस्सा आ गया।

खय्याम ने उत्तर दिया, तुम कहते तो ठीक हो, लेकिन यह भूल रहे हो कि जब शेर आया था तब मैं खुदा के साथ था, जबकि मच्छर काटे जाने के समय मैं एक इंसान के साथ था। यही वजह है कि मुझे शेर से डर नहीं लगा और मैं एक मच्छर से घबरा गया।

इंसान भगवान के साथ हो तो हमेशा सुरक्षित रहता है। जबकि मनुष्य के साथ उसे कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। शिष्य समझ गया कि खुदा के साथ का असल अर्थ क्या है। उससे इंसान की हिम्मत बढ़ जाती है।

११९५) मंत्री की बुद्धिमानी - एक बार एक राजा ने सोचा कि उसके राज्य की सबसे बड़ी नदी पड़ोस के राज्य में चली जाती है, इसलिए क्यों न इसके पानी को रोककर उसका उपयोग अपनी प्रजा के हित में किया जाए। उसने अपने मंत्री के सामने यह विचार रखा तो मंत्री ने कहा, महाराज। न जाने कितनी सदियों से यह पानी बहकर उधर जाता है और लाखों लोग इसका उपयोग करते हैं। हम इस जल को रोककर बेवजह पड़ोस के राज्य से शत्रुता क्यों मोल लें। किंतु राजा ने मंत्री की एक न सुनी और बोला, हमारा आदेश है कि नदी को आगे से भर दिया जाए ताकि इसका जल उस ओर जा ही न सके। ऐसा ही किया गया। गर्मी के दिनों में जब नदी में जल बहुत कम रह गया तो उस जल का सभी ने प्रयोग किया, लेकिन जैसे ही वर्षा आरंभ हुई, नदी में जल चढ़ गया। जल के आगे जाने का मार्ग दीवार बनाकर रोक दिया गया था। लेकिन इससे नदी का पानी नगर में प्रवेश कर लोगों के घरों में घुस गया। अब तो समूची प्रजा इधर-उधर भागने लगी। धीरे-धीरे पानी राजमहल तक जा पहुंचा। राजा चिंतित हो उठा। यह देखकर मंत्री बोला, महाराज, मैंने तो आपसे पहले ही कहा था कि दूसरों का अहित करने से पहले मनुष्य अपना ही अहित करता है। इस पर भी राजा ने नदी की दीवार को तोड़ने के लिए नहीं कहा। मंत्री सोचने लगा कि आखिर राजा को कैसे समझाया जाए। अगले दिन राजा देर तक सोता रहा। बादल के कारण सूर्य नहीं निकला था। जब राजा ने अंधेरा होने का कारण जानना चाहा तो मंत्री बोला, महाराज, सूर्य की दिशा हमारे पड़ोसी राज्य में है। उन लोगों ने भी ठान लिया है कि सूर्य का केवल अपने लिए ही प्रयोग करेंगे। यह सुनकर राजा को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने उसी क्षण नदी की दीवार तुड़वाने का आदेश दिया।

११९६) ऐसे लोग होते हैं ईश्वर - एक दिन कन्फ्यूशियस के पास सम्राट ने आकर कहा, राज्य में बेईमानी बढ़ती जा रही है, जाहं देखो वहां छल-कपट और धोखेबाजी के दर्शन किए जा सकते हैं। क्या राज्य में ऐसा कोई आदमी होगा, जो सदाचारी और गुणों के देवता की कृपा रखता हो। कन्फ्यूशियस ने जवाब दिया, ऐसा व्यक्ति है। एक तो स्वयं आप क्योंकि सत्य को जानने की जिज्ञासा रखनेवाले व्यक्ति को मैं महान मानता हूं। लेकिन कन्फ्यूशियस की बातों में न आते हुए सम्राट ने कहा कि मैं महान हो सकता हूं। लेकिन मैं एक अन्य व्यक्ति को देखना चाहूंगा। कन्फ्यूशियस बोले, तब तो वह व्यक्ति मैं हूं। सम्राट ने कहा, मैं आपसे भी महान आदमी को देखना चाहता हूं। कृपया मुझे उसके पास ले चलिए। कन्फ्यूशियस ने एक क्षण के लिए सम्राट की ओर देखकर कहा, सम्राट हमें उठकर कहीं जाने की जरूरत नहीं। हमें अपने आसपास कई ऐसे व्यक्ति देखने को मिलेंगे। हमें केवल उनकी ओर उस दृष्टि से देखना होगा। कन्फ्यूशियस ने सामने की ओर इशारा करते हुए कहा, देखिए सम्राट उस सौ साल की महिला को जो कुदाल से कुआं खोद रही है। सम्राट ने कहा, लेकिन उसे कुआं खोदने की क्या जरूरत। कन्फ्यूशियस बोले, आपने ठीक कहा, मगर जरूरत ही सब कुछ नहीं हुआ कराती। जो

दूसरों के लिए इस तरह निर्लिप्त होकर अपना जीवन बलिदान करते हैं, वही वास्तव में महान हैं। वह इस धरती पर ईश्वर हैं।

११९७) मन पर नियंत्रण आवश्यक - तीरंदाजी की कई प्रतियोगिताएं जीतने के बाद वह नौजवान खुद को सबसे बड़ा धनुर्धर मानने लगा था। वह जहां भी जाता, लोगों को मुकाबला करने की चुनौती देता और उन्हें हराकर उनका मजाक उड़ाता। एक बार उसने एक प्रसिद्ध जेन मस्टर को चुनौती दी। दोनों के बीच मुकाबला शुरू हुआ। युवक ने अपने पहले प्रयास में ही दूर रखे लक्ष्य के ठीक बीचों-बीच निशाना लगा दिया। अपनी कामयाबी पर इतराते हुए वह बोला, मास्टर, आप इससे बेहतर दिखा सकते हैं? मास्टर ने उस युवक से कहा, पुत्र, मेरे पीछे आओ। चलते-चलते दोनों एक खतरनाक खाई के पास पहुंच गए। युवक ने देखा कि वहां दो पहाड़ियों को जोड़ने के लिए किसी ने लकड़ी का एक कामचलाऊ पुल बनाया है, जो काफी जर्जर हो चुका है। मास्टर पुल के बीचों-बीच पहुंचे। उन्होंने कमान से तीर निकाला और दूर एक पेड़ के तने पर निशाना लगाया। उनका निशाना सही लगा। निशाना लगाने के बाद मास्टर बोले, अब तुम भी उसी पेड़ पर निशाना लगाकर अपनी दक्षता साबित करो। युवक डरते-डरते आगे बढ़ा और बड़ी मुश्किल से पुल के बीचों बीच पहुंचा। उसने किसी तरह निशाना लगाया, पर निशाना लक्ष्य के आसपास भी नहीं लगा। युवक ने अपनी हार स्वीकार कर ली। तब मास्टर बोले, तुमने तीर-धनुष पर तो नियंत्रण हासिल कर लिया है, पर उस मन पर अब भी तुम्हारा नियंत्रण नहीं है, जो किसी भी परिस्थिति में लक्ष्य भेदने के लिए आवश्यक है। यह बात हमेशा याद रखो कि जब तक मनुष्य के अंदर सीखने की जिज्ञासा है, तब तक उसके ज्ञान में वृद्धि होती है। पर जब उसे सर्वश्रेष्ठ होने का अहंकार हो जाता है, तो उसका पतन शुरू हो जाता है।

११९८) विद्वत्ता पर घमंड कैसा - महाकवि कालिदास एक बार भ्रमण करते-करते एक गांव पहुंचे गए। बहुत प्यास लगी थी, तो एक घर के द्वार पर जाकर कालिदास बोले, माते, पानी पिला दीजिए, बड़ा पुण्य होगा। स्त्री बोली, बेटा, मैं तुम्हें जानती नहीं। अपना परिचय दो। मैं अवश्य पानी पिला दूंगी। कालिदास ने कहा, मैं मेहमान हूं, कृपया पानी पिला दें। उस पर स्त्री ने कहा, तुम मेहमान कैसे हो सकते हो? संसार में दो ही मेहमान हैं। पहला धन और दूसरा यौवन। इन्हें जाने में समय नहीं लगता। सत्य बताओ, कौन हो तुम? कालिदास बोले, मैं सहनशील हूं। अब आप पानी पिला दें। स्त्री ने कहा, नहीं, सहनशील तो दो ही हैं। पहली, धरती जो पापी-पुण्यात्मा सबका बोझ सहती है। उसकी छाती चीरकर बीज बो देने से भी अनाज के भंडार देती है, दूसरे पेड़, जिनको पत्थर मारो, फिर भी मीठे फल देते हैं। तुम सहनशील नहीं। सच बताओ तुम कौन हो? कालिदास तर्क-वितर्क से झल्लाकर बोले, मैं हठी हूं। स्त्री ने कहा, फिर झूठ, हठी तो दो ही हैं- पहला नख और दूसरे केश, कितना भी काटो, बार-बार निकल आते हैं। सत्य कहें ब्राह्मण, कौन हैं आप? कालिदास पूरी तरह पराजित हो चुके थे। फिर उन्होंने कहा, फिर तो मैं मूर्ख ही हूं। स्त्री फिर बोली, नहीं, तुम मूर्ख कैसे हो सकते हो? मूर्ख दो ही हैं। पहला राजा, जो बिना योग्यता के भी सब पर शासन करता है और दूसरा दरबारी पंडित, जो राजा को प्रसन्न करने के लिए गलत बात पर भी तर्क करके उसको सही सिद्ध करने की चेष्टा करता है। उसके बाद कुछ बोल न सकने की स्थिति में कालिदास स्त्री के पैर पर गिर पड़े और पानी की याचना में गिड़गिड़ाने लगे। स्त्री ने कहा, उठो वत्स, शिक्षा से ज्ञान आता है, न कि अहंकार। तुमने शिक्षा के बल पर प्राप्त मान और प्रतिष्ठा को ही अपनी उपलब्धि मान लिया और अहंकार

कर बैठे, इसलिए मुझे तुम्हारे चक्षु खोलने के लिए ये स्वाग करना पड़ा।

११९९) सच्ची सेवा - बात उन दिनों की है जब अमेरिका में दास प्रथा अपने पूरे चरम पर थी। वहां बेकर नाम का एक दास रहता था। वह लगन, मेहनत से काम करते रहने के कारण स्वामी का विश्वासपात्र व्यक्ति बन गया। एक दिन जब बेकर अपने मालिक के साथ बाजार गया तो उसने देखा कई दास बिकने के लिए खड़े थे। तब उसकी निगाह एक वृद्ध दास पर पड़ी। बेकर ने अपने मालिक से गुजारिश की कि वह उस वृद्ध दास को खरीद लें। बेकर का मन रखने के लिए मालिक ने उस दास को खरीद लिया। कुछ देर बाद मालिक ने बेकर से पूछा, बेकर तुमने इतने बलशाली दास में से इस वृद्ध को क्यों चुना? बेकर ने कहा, मालिक मैं इससे बेहतर ढंग से काम ले सकता हूं। बेकर उस वृद्ध की सेवा करता और हमेशा उससे अच्छे तरीके से पेश आता। मालिक यह सब कुछ देखता रहता। एक दिन मालिक ने पूछा, यह कौन है? बेकर ने कहा, यह वही व्यक्ति है जिसने मुझे गांव से पकड़कर दास के रूप में आपको बेच दिया था। इसे मालूम नहीं था कि मेरे लिए दास बनना कितना पीड़ादायक रहा है। लेकिन अब यह वृद्ध हो चुका है और दया का पात्र है। यही कारण है कि मैं इसकी इतनी सेवा करता हूं।

१२००) जिंदगी भर भागते हैं हम - एक जंगल में एक लोमड़ी रहती थी। अमूमन वह सुबह जल्दी जाग जाती थी, लेकिन उस दिन थोड़ा देर से जागी। लोमड़ी जैसे ही अपने घर से बाहर आई तो उसकी पूंछ सूरज की ओर थी। छाया सामने पड़ रही थी। छाया देखकर लोमड़ी को पहली बार अपने शरीर का स्वरूप पता चला। छाया में उसका रूप बहुत बड़ा दिखाई दे रहा था। तब लोमड़ी ने सोचा, क्यों न किसी बड़े जीव का शिकार किया जाए। बस, यही भ्रम में वह इतनी उतावली हो गई कि घने जंगल में बड़े शिकार की चाह लिए पहुंच गई। सूरज अब तक सिर पर चढ़ आया था। लोमड़ी को भूख भी बहुत लग रही थी। उसने सोचा क्यों ना आज हाथी का शिकार किया जाए। भूखी लोमड़ी हाथी की तलाश में इधर-उधर भटकने लगी। वह थक गई और एक जगह आराम करने लगी। लेकिन आमसान में सूर्य की दिशा बदल चुकी थी। लोमड़ी को उसकी छाया छोटी दिखाई दे रही थी। लोमड़ी ने सोचा कि मेरा आकार तो इतना छोटा है क्यों न अब मैं छोटे जीव का शिकार करूं, मेरे लिए तो एक मेंढ़क ही काफी है। मैं बेकार में छाया के भ्रम के चलते इधर-उधर भटक रही थी। उसे जब इस बात का ज्ञान हुआ तो उसने अपने लिये एक छोटा शिकार किया और भोजन के बाद एक गहरी नींद में किसी पेड़ के नीचे सो गई।

१२०१) तृप्ति के बाद भोग - शिवभक्त कुमारप्पा को न जाने क्या सूझी कि उन्होंने अपने इष्टदेव शंकर का हौद दूध से लबालब भर देने के बारे में सोचा। मंदिर का हौद काफी गहरा और चीड़ा था। कुमारप्पा ने प्रधान से मंत्रणा की। प्रधान ने राजा से कहा और राजाज्ञा हुई कि नगर के ग्वाले शहर का पूरा दूध लेकर मंदिर आएं। जो इसका उल्लंघन करेगा, वह दंड का भागी होगा। उस दिन किसी ने घूंट भर भी दूध बछड़ों को नहीं पीने दिया। दूध लाकर हौद में डाल दिया गया, पर वह थोड़ा खाली ही रह गया। राजा को चिंता हुई। इसी बीच एक बूढ़ी आई। भक्ति भाव से उसने लुटिया भर दूध चढ़ाकर भगवान से कहा कि शहर भर के दूध के आगे मेरी लुटिया की क्या बिसात, फिर भी भगवन, बुढ़िया की श्रद्धा भरी ये दो बूंदें स्वीकार करो। दूध चढ़ाकर बुढ़िया बाहर निकल आई। सभी ने देखा- भगवान का हौद अचानक भर गया। राजा के

आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दूसरे सोमवार को फिर वैसा ही हुआ। तीसरे-चौथे सप्ताह भी वही क्रम रहा। राजा का आश्चर्य बढ़ता ही गया। आखिरकार राजा ने स्वयं उपस्थित होकर रहस्य का पता लगाने का निश्चय किया। गांव भर से आया दूध राजा ने अपने सामने हौद में डलवाया पर हौद पूरा नहीं भरा। इसी बीच वही वृद्धा आई और उसके दूध समर्पित करते ही हौद भर गया। बुढ़िया पूजा करके निकल गई। राजा भी उसके पीछे हो लिया। कुछ दूर जाने के बाद उसने बुढ़िया को रोका और पूछा, तुमने कौन-सा जादू कर दिया, जो हौद भर गया? उसने कहा, घर के बाल-बच्चों, ग्वाल-बालों-सभी को पिलाने के बाद बचे दूध में से एक लुटिया लेकर मैं आती हूं। सभी को तृप्त करके शेष दूध भगवान को चढ़ाते ही वह भाव से उसे ग्रहण करते हैं और हौद भर जाता है।

१२०२) अनुशासन और विकास - प्राचीन समय में एक नगर था। वहां एक मठ था। उस मठ के एक वरिष्ठ भिक्षु रहते थे। उनके पास अनेकों सिद्धियां थीं, जिसके चलते उनका सम्मान होता था। सम्मान बहुत बड़ी चीज होती है ये वो जानते थे। इसलिए उनकी महत्वाकांक्षा और कुछ न थी। एक दिन दोपहर के समय वह अपने शिष्यों के साथ ध्यान कर रहे थे। अन्य भिक्षु शिष्य भूखे थे। तब वरिष्ठ भिक्षु ने कहा, क्या तुम भूखे हो? वह भिक्षु बोला, यदि हम भूखे भी हों तो क्या? मठ के नियम के अनुसार दोपहर में भोजन नहीं कर सकते हैं। वरिष्ठ भिक्षु बोले, तुम चिंता मत करो मेरे पास कुछ फल हैं। उन्होंने वह फल शिष्य भिक्षु को दे दिए। उसी मठ में एक अन्य भिक्षु थे वह मठ के नियमों को लेकर जागरूक रहते थे। वह एक सिद्ध पुरुष थे। लेकिन ये बात उनके सिवाय और कोई नहीं जानता था। अगले दिन उन्होंने घोषणा की जिसने भी भूख के कारण मठ का नियम तोड़ा है उसे मठ से निष्कासित किया जाता है। तब उन वरिष्ठ भिक्षु ने अपना चोंगा उतारा और हमेशा के लिए उस मठ से चले गए।

१२०३) आदमी और इंसान - एक नगर के नजदीक एक होटल था, जिसका मालिक दयालु और सज्जन व्यक्ति था। होटल अच्छी आमदनी देता था। उस सेठ का जीवन सुख से चल रहा था। परिवार में उसके कोई नहीं था, माता-पिता का देहांत काफी समय पहले हो चुका था। उसका विवाह भी नहीं हुआ था। लालचंद्र की एक विशेषता थी कि वह अपने होटल में आनेवाले हर विकलांग को मुफ्त भोजन कराता था। कई वर्षों तक यह कार्य निरंतर चलता रहा। वह रोज सुबह चिड़ियों को दाना भी दिया करता था। ऐसा करने पर उसे बहुत शांति मिलती थी, यह बात अमूमन अपने दोस्तों से कहा करता था। एक दिन एक और सज्जन ने लालचंद्र से पूछा, आप ऐसा करते हैं तो आपको नुकसान नहीं होता। तब लालचंद्र ने कहा, मैं हर दिन पक्षियों को दाना देता हूं। मैंने गौर किया किसी अपाहिज पक्षी का दाना कोई अन्य पक्षी नहीं चुनता है। वह पक्षी है उनमें यह भाव है तो मैं तो इंसान हूं। मुझे लगा मुझे भी हर विकलांग व्यक्ति को भोजन करवाना चाहिए। तभी से मैं इस राह पर चल दिया। ऐसा करने पर मुझे आत्मिक सुकून मिलता है। इंसान तो सभी होते हैं लेकिन इंसानियत कुछ इंसानों में होती है। यही इंसान सही मायनों में असली इंसान है जो दूसरों के दुख में उन्हें खुश कर अपनी खुशियां खोजें।

१२०४) अहंकार का त्याग करें - बहुत समय पहले की बात है। धार्मिक विचारों वाले एक राजा के पास कोई संत मिलने आए राजा प्रसन्न हो गया। भाव विभोर और आंखों में खुशी के आंसू के साथ राजा बोले, मेरी इच्छा है कि आज

आपके मन की कोई भी मुराद मैं पूरी करूं। बताइए आपको क्या उपहार चाहिए। संत असमंजस में पड़ गए। उन्होंने कहा, आप स्वयं अपने मन से जो भी उपहार देंगे वह मैं स्वीकार कर लूंगा। लेकिन, राजा ने तपस्वी के सामने अपने राज्य के समर्पण की इच्छा जाहिर की। तब संत ने कहा, राज्य तो जनता का है। राजा केवल उसका संरक्षक होता है। तब राजा ने दूसरे विकल्प के रूप में महल और सवारी आदि की बात कही। तपस्वी बोले, राजन यह भी जनता का है। यह तो आपके राज-काज चलाने की सुविधा के लिए है। तब राजा ने तीसरे विकल्प के तौर पर अपना शरीर दान करने की इच्छा जाहिर की। तब संत ने कहा, नहीं राजन्, यह शरीर तो आपके बच्चों और पत्नी का है। आप इसे कैसे दान कर सकते हैं। राजा परेशान हो गया। तब संत ने कहा, राजन्, आप अपने मन के अहंकार का त्याग करें। अहंकार ही सबसे सख्त बंधन होता है। अगले दिन सूर्य की पहली किरण के साथ ही राजा ने अहंकार का त्याग किया। तब उसे मानसिक शांति मिली। अहंकार एक ऐसा भाव है, जो जब तक रहता है, व्यक्ति अपनी उन्नति नहीं कर सकता। इसीलिए अहंकार का त्याग करें।

१२०५) डिग्रियों की क्या कीमत - लियो टॉलस्टॉय को एक बार अपना कामकाज देखने के लिए एक आदमी की जरूरत पड़ी। इस बारे में उन्होंने अपने मित्रों से भी कहा कि कोई योग्य युवक हो, तो उसे भेजना। कुछ दिन बाद एक मित्र ने किसी युवक को उनके पास नौकरी के लिए भेजा। वह युवक काफी पढ़ा-लिखा था। अपने साथ वह कई प्रमाणपत्र और डिग्रियां लेकर आया था। लेकिन तमाम डिग्रियां होने के बावजूद टॉलस्टॉय ने उसे नौकरी पर नहीं रखा। बल्कि उन्होंने एक ऐसे युवक को रख लिया, जिसके पास कोई शैक्षणिक उपाधि नहीं थी। कुछ समय बाद वह मित्र टॉलस्टॉय के पास मिलने आया और बातों ही बातों में भेजे गए पढ़े-लिखे व्यक्ति की जगह कम काबिल व्यक्ति को रखने की वजह पूछी। टॉलस्टॉय ने कहा, जिस व्यक्ति को मैंने चुना है, उसके पास तो अमूल्य प्रमाणपत्र हैं, उसने कमरे में आने से पहले अनुमति मांगी। दरवाजे पर रखे गए डोरमैट पर जूते साफ किए और फिर आगे आया। उसके कपड़े बेशक मामूली थे, लेकिन साफ-सुथरे थे। उससे जो पूछा, बिना घुमाए-फिराए उसने उसके उत्तर दिए और मुलाकात पूरी होने पर वह इजाजत लेकर वापस चला गया। उसने कोई खुशामद नहीं की, न सिफारिश। अधिक पढ़ा-लिखा न होने के बावजूद उसे अपने पर विश्वास था। तुमने जिस व्यक्ति को भेजा था, उसके पास इनमें से कोई भी प्रमाणपत्र नहीं था। वह सीधा ही कमरे में चला आया, बिना आज्ञा कुर्सी पर बैठ गया और काबिलियत की जगह तुमसे जान-पहचान के बारे में बताने लगा। अब तुम्हीं बताओ, उसकी इन डिग्रियों की क्या कीमत है?

१२०६) मृत्यु से बड़ा प्रेम - भगवान बुद्ध एक बार उपदेश देने एक गांव में पहुंचे। वहां उनके पड़ाव का अंतिम दिन था। तब वह उस गांव के एक व्यक्ति के यहां पहुंचे। वो गरीब था। उसके पास भगवान बुद्ध के आतिथ्य के लिए कुछ भी न था। तब उसने घर के बाहर देखा। जहां उसकी नजर बरसात में भीगी लकड़ियों पर पड़ी, जिन पर कुकुरमुत्ता (मशरूम) लगे हुए थे। उसने उन्हें तोड़ा और बड़े ही प्रेमपूर्वक उनकी सब्जी बनाई। लेकिन उस गरीब को पता नहीं था की मशरूम काफी कड़वे जहर के समान थे। वह बुद्ध से पूछता कि कैसा है भोजन? और बुद्ध कहते बहुत ही स्वादिष्ट। मशरूम जहरीले थे। जिसके कारण उसका जहर बुद्ध के शरीर में फैल गया। यह देख उस व्यक्ति ने वैद्य को बुलाया। वैद्य ने बुद्ध से कहा, कि जब आपको मशरूम कड़वे लगे तब आपने उस व्यक्ति से क्यों नहीं कहा। बुद्ध थोड़ा मुस्कुराए और बोले, मौत के

लिए प्रेम को कैसे रोक देता? मैंने प्रेम को आने दिया और मृत्यु को स्वीकार किया।

१२०७) मिट्टी का शरीर - जब मानव का जन्म नहीं हुआ था तो विधाता सूनी पृथ्वी को देखता, तो उसे कुछ न कुछ कमी नजर आती और वह दिन-रात सोच में पड़ा रहता। आखिर विधाता ने चंद्रमा की मुस्कान, गुलाब की सुगंध, अमृत की माधुरी, जल की शीतलता, अग्नि की तपिश और पृथ्वी की कठोरता से मिट्टी का एक पुतला बनाकर उसमें प्राण फूंक दिए। मिट्टी के पुतले में प्राण का संचार होते ही सब ओर रौनक हो गई और घरौंदे महकने लगे। देवदूतों ने विधाता की इस अद्भुत रचना को देखा, तो हैरान रह गए और विधाता से बोले, यह क्या है? विधाता ने कहा, यह जीवन की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव है। विधाता की बात पूरी भी न हो पाई थी कि एक देवदूत बीच में ही बोल पड़ा, क्षमा कीजिए प्रभु, लेकिन यह बात हमारी समझ से परे है कि आपने इतनी मेहनत कर एक मिट्टी को आकार दे दिया। उसमें प्राण फूंक दिए। मिट्टी तो तुच्छ है, जड़ से भी जड़ है। मिट्टी के बजाय अगर आप सोने अथवा चांदी के आकार में यह सब करते, तो ज्यादा अच्छा रहता। देवदूत की बात पर विधाता मुस्कुरा कर बोले, यह तो जीवन का रहस्य है। मिट्टी के शरीर में मैंने संसार का सारा सुख-सौंदर्य, सारा वैभव उड़ेल दिया है। जड़ में आनंद का चैतन्य फूंक दिया है। इसका जैसे चाहे उपयोग करो। जो मानव मिट्टी के इस शरीर को महत्व देगा, वह मिट्टी की जड़ता भोगेगा; जो इससे ऊपर उठेगा, उसे आनंद के परत-दर-परत मिलेंगे। इसलिए जीवन का प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। तुम मिट्टी के अवगुणों को देखते हो, उसके गुणों को नहीं। मिट्टी में ही अंकुर फूटते हैं और मेहनत से फसल लहलहाती है।

१२०८) सफलता के गुण - एक विधवा थी, उसका एक पुत्र था। पुत्र ज्यादा होशियार न था, लेकिन मां के प्रयासों के चलते वह पढ़-लिख गया। उस मां का बेटा वैज्ञानिक बनना चाहता था। एक दिन उसने अपनी मां से अपनी इच्छा प्रकट की। मां बोली बेटा, मैं तुझे वैज्ञानिक बनने में पूरी सहायता करूंगी। मां ने फिर एक वैज्ञानिक का पता लगाया और उसके घर अपने बेटे को ले गईं। वैज्ञानिक ने बेटे से बात की। उसे उस लड़के में अदम्य साहस दिखाई दिया। वैज्ञानिक बोला, आप अपने बेटे को दो दिनों के लिए मेरे घर छोड़ जाइए, मैं इस लड़के की परीक्षा लूंगा। उधर वैज्ञानिक ने उस लड़के को अपनी प्रयोगशाला की सफाई का कार्य सौंपा। लड़के ने यंत्रों को उठाकर चमका दिया और सब कुछ व्यवस्थित कर दिया। तीसरे दिन उस लड़के की मां आई तो वैज्ञानिक बोला, महोदया, आपका बेटा महान वैज्ञानिक बनेगा। यह प्रतिभावान भी है और जीवन की सफलता के दो गुण स्वच्छता और सुव्यवस्था भी इसे अच्छे तरीके से मालूम है। यही बालक बड़ा होकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक थामस अल्वा एडीसन के नाम से विख्यात हुआ, जिनके आविष्कार बल्ब की रोशनी से दुनिया जगमगा रही है। यदि जीवन में स्वच्छता और सुव्यवस्था हो, तो कुछ भी असंभव नहीं। यही बात थामस अल्वा एडीसन के गुरु यानी उस वैज्ञानिक ने कही थी।

१२०९) खोटा सिक्का - शेख उस्मान ख्यातिप्राप्त विद्वान थे। उन्होंने अपने उस्ताद कनजामुदीन औलिया के सान्निध्य में आध्यात्मिक गुणों का विकास किया था। शेख उस्मान का धर्मग्रंथों पर अच्छा अधिकार था। मानव की सेवा ही उनके जीवन का उद्देश्य था। वे नहीं चाहते थे कि समाज से रोटी, कपड़ा मुफ्त प्राप्त किया जाए। इसलिए वह सुबह-शाम एक-एक घंटे के लिए सड़क किनारे अपनी छोटी सी दुकान लगाकर बैठ जाते और शिगम, चुकंदर आदि सब्जी

बेचते। जो कुछ पैसा मिलता उससे उनके परिवार का पालन-पोषण हो जाता। अगर कोई व्यक्ति उन्हें खोटा सिक्का दे जाता, तो भी वह उसे जान-बूझकर रख लेते और सब्जी दे देते। वह अच्छी तरह जानते थे कि यदि किसी के पास एक भी खोटा सिक्का आ जाता तो उसे वह किसी दूसरे को दे देना चाहता है। इस तरह एक व्यक्ति दूसरे को और दूसरा तीसरे को देकर आगे बढ़ जाता है। शेख उस्मान के पास पहुंचकर खोटा सिक्का आगे न बढ़ता। वह उसे अपने पास रख लेते। इससे लोगों में यह धारणा बन गई थी खोटे सिक्के की परख नहीं है। परिणामस्वरूप अनेक व्यक्ति खोटा सिक्का देते और खरा सिक्का ले जाते या छुट्टे कराकर ले जाते। शेख का जीवन समाप्त होने को आया। अंतिम दिन खुदा को याद करते हुए वे बोले- परवरदिगार तुझसे मेरी स्थिति छुपी नहीं है। लोग मेरे पास खोटे सिक्के लेकर आते थे, मैं बदले में उन्हें खरे सिक्के देता था। किसी का खोटा सिक्का मैंने वापस नहीं किया। तेरे इस नाचीज बंदे से भी कितने खरे बंदे होंगे। उनमें मुझ जैसा एक खोटा बंदा भी कहीं पड़ा रहेगा। मेरे मालिक, मुझ पर रहम करना।

१२१०) संसार का नियम - शरशैया पर लेटे बाणों से बिंधे भीष्म के प्राण धीरे-धीरे निकल रहे थे। शरीर के जिस हिस्से से उनके प्राण निकलते वहां के बाण अपने-आप शरीर छोड़ देते। उन्होंने अर्जुन से कहा, वत्स, थोड़ा पानी पिलाओ अर्जुन ने तत्काल धरती में तीर मारा और वहां से निकली जलधारा सीधे पितामह के मुंह में गिरी। प्यास बुझने पर वह बोले, जीवन तो नदी के समान है। इसकी धारा मोड़ने के लिए कितना ही संघर्ष करें, धारा अपने रास्ते ही जाएगी। इसलिए जीवन से लड़े नहीं, उसके साथ सामंजस्य बिठाएं। इसे समझाते हुए उन्होंने एक कथा सुनाई। कबूतर को अपना आहार बनाने के लिए बाज ने उसका पीछा किया। कबूतर राजा शिबि की शरण में पहुंचा। पीछे पीछे बाज भी आ गया। उसने कहा, मैंने इस पक्षी को अभय दिया है। तुम्हें भूख मिटाने के लिए मांस चाहिए, सो मैं इस कबूतर के वजन के बराबर मांस अपने शरीर से काटकर देता हूं। उन्होंने एक तराजू मंगाई और उसके एक पलड़े में कबूतर को रखा, दूसरे में अपने शरीर से मांस काटकर डालने लगे। काफी मांस काट दिया, किंतु दूसरा पलड़ा जरा भी नहीं हिला। आखिर बाज ने कहा, राजन्, आप कितना मांस दे पाएंगे? आपके बाद तो कबूतर को अपनी चिंता स्वयं ही करनी पड़ेगी। जब तक एक प्राणी नहीं मरेगा, संसार में दूसरा प्राणी नहीं आएगा। यह सुनकर राजा को लगा कि कहीं कबूतर को बचाकर मैं गलती तो नहीं कर रहा। शिवि की अंतरात्मा ने कहा, संसार का यही नियम है। जीवित प्राणी यही सोच सकते हैं, पर मनुष्य जीवन के नियम से आगे जीवन का अर्थ भी खोज सकता है। मनुष्य जीवन को अपनी गति से चलने देकर संवेदना भी जता सकता है।

१२११) भीतरी और बाहरी सम्पदा - एक महर्षि थे। उनका नाम था कणाद। किसान जब अपना खेत काट लेते थे तो उसके बाद जो उन्न कण पड़े रह जाते थे, उन्हें बीन करके वे अपना जीवन चलाते थे। इसीसे उनका यह नाम पड़ गया था। उन जैसा दरिद्र कौन होगा। देश के राजा को उनके कष्ट का पता चला। उसने बहुत-सी धन-सामग्री लेकर अपने मंत्री को उन्हें भेंट करने भेजा। मंत्री पहुंचा तो महर्षि ने कहा, मैं सकुशल हूं। इस धन को तुम उन लोगों में बांट दो, जिन्हें इसकी जरूरत है। इस भांति राजा ने तीन बार अपने मंत्री को भेजा और तीनों बार महर्षि ने कुछ भी लेने से इनकार कर दिया। अंत में राजा स्वयं उनके पास गया। वह अपने साथ बहुत-सा धन ले गया। उसने महर्षि से प्रार्थना की कि वे उसे स्वीकार कर लें, किन्तु वे बोले, उन्हें दे दो, जिनके पास कुछ नहीं है। मेरे पास तो सबकुछ है। राजा को विस्मय हुआ।

जिसके तन पर एक लंगोटी मात्र है, वह कह रहा है कि उसके पास सबकुछ है। उसने लौटकर सारी कथा अपनी रानी से कही। वह बोली, आपने भूल की। ऐसे साधु के पास कुछ देने के लिए नहीं, लेने के लिए जाना चाहिए। राजा उसी रात महर्षि के पास गया और क्षमा मांगी।

कणाद ने कहा, गरीब कौन है? मुझे देखो और अपने को देखो। बाहर नहीं, भीतर। मैं कुछ भी नहीं मांगता, कुछ भी नहीं चाहता। इसलिए अनायास ही सम्राट हो गया हूं। एक सम्पदा बाहर है, एक भीतर है। जो बाहर है, वह आज या कल छिन ही जाती है। इसलिए जो जानते हैं, वे उसे सम्पदा नहीं, विपदा मानते हैं। जो भीतर है, वह मिलती है तो खोती नहीं। उसे पाने पर फिर कुछ भी पाने को नहीं रह जाता।

१२१२) इच्छाएं कभी पूरी नहीं होती - एक दिन मनुष्य गहरी निराशा में अकेला बैठा था। तब धरती के सभी जीव-जंतु उसके निकट आए और उससे बोले, तुम्हें इस प्रकार दुखी देखकर हमें अच्छा नहीं लग रहा। तुम्हें हमसे जो कुछ भी चाहिए, तुम नि:संकोच मांग लो और हम तुम्हें वह देंगे। मनुष्य ने कहा, मैं चाहता हूं कि मेरी दृष्टि पैनी हो जाए। इस पर गिद्ध ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हें अपनी दृष्टि देता हूं। मनुष्य को इतने से संतोष नहीं हुआ। उसने कहा, मैं शक्तिशाली बनना चाहता हूं। जगुआर ने कहा, मैं अपनी शक्ति देता हूं, तुम मेरे जैसे शक्तिशाली बनोगे। मनुष्य ने फिर कहा, मैं पृथ्वी के रहस्यों को जानना चाहता हूं। सर्प भी वहीं था। उसने कहा, मैं तुम्हें उनके बारे में बताऊंगा। इस प्रकार अन्य जीव-जंतुओं ने भी मनुष्य को अपनी खूबियों और विलक्षणताएं सौंप दीं। जब मनुष्य को उनसे सब कुछ मिल गया, तो वह अपने रास्ते चला गया। जीव-जंतुओं के समूह में उपस्थित उल्लू ने सभी से कहा, अब जबकि मनुष्य इस पृथ्वी के बारे में इतना कुछ जान गया है, वह बहुत सारे काम करने में सक्षम होगा। इस विचार से मैं भयभीत हूं। हिरण ने कहा, मनुष्य को जो कुछ भी चाहिए था, वह उसे मिल गया। अब वह कभी उदास नहीं होता। इस पर उल्लूने उत्तर दिया, नहीं, मैंने मनुष्य के भीतर एक गहरा गड्ढा देखा है। उसके कारण मनुष्य के भीतर नित-नई इच्छाएं जन्म लेती रहेंगी। उन्हें कोई पूरा नहीं कर सकेगा। एक इच्छा पूरी होने के बाद वह फिर से उदास होगा और नई इच्छाएं करने लगेगा। वह सबसे कुछ न कुछ लेता जाएगा और एक दिन यह पृथ्वी ही कह देगी, मैं अब पूरी रिक्त हो चुकी हूं।

१२१३) सच्ची सहिष्णुता - यूनान के महान दार्शनिक थे सुकरात। उनकी पत्नी झगड़ालू थी। वह छोटी-छोटी बातों पर अमूमन सुकरात से लड़ती थी। लेकिन हर समय सुकरात शांत रहते। सुकरात के पढ़ने की आदत पत्नी को ठीक नहीं लगती थी। एक दिन सुकरात अपने कुछ शिष्यों के साथ घर आए तो पत्नी किसी बात को लेकर नाराज हो गई। सुकरात ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। लेकिन वह ऊंची आवाज में सुकरात को भला-बुरा कहने लगी। इतना कुछ होने पर भी सुकरात कुछ न बोले तो उनकी पत्नी ने बाहर से कीचड़ उठाकर सुकरात के मुंह पर डाल दिया। सुकरात जोर से हंसे और कहा, तुमने आज पुरानी कहावत झुठला दी। कहा जाता है जो गरजते हैं बरसते नहीं, लेकिन तुम गरजती भी हो और बरसती भी हो। सभी शिष्य यह घटनाक्रम देख रहे थे। एक शिष्य ने सुकरात से पूछा, आप ये सब कैसे सह लेते हैं। सुकरात बोले, वह योग्य है। वह ठोकर लगा कर देखती है कि सुकरात कच्चा है या पक्का। उसके इस व्यवहार से मुझे पता चलता है कि मेरे अंदर सहनशीलता है या नहीं। ऐसा करके वह मेरा भला कर रही है। पत्नी ने जब यह शब्द सुने तो वह शर्मिंदा हुई। उसने कहा, मुझे क्षमा करें। आप देवता हैं, मैंने यह जानने में भूल की।

१२१४) अवसर लौटा नहीं - दो यात्री पैदल यात्रा कर रहे थे। उनका लक्ष्य था धन और सफलता। उनको एक वर मिला था कि इस यात्रा में उनको असीमित धन मिल सकता है, बशर्ते वे हर कार्य सावधानी से करें। दोनों भोजन, पानी आदि लेकर चल पड़े। काफी थक जाने के बावजूद उन्हें बहुत ही पथरीली सड़क पर चलना पड़ा। वहां कई बोर्ड लगे थे, जिन पर लिखा था, जो इन पत्थरों को उठाएगा, वह अंत में रोएगा। जो इनको नहीं उठायेगा, वह भी रोएगा। एक यात्री ने कहा कि उठाओ, तो रोना पड़ेगा, न उठाओ, तो रोना पड़ेगा, अत: मैं तो प्रयोग के लिए एक छोटा-सा कंकड़ उठाकर जेब में डाल लेता हूं। दूसरा बोला कि कैसे भी हो, रोना तो पड़ेगा ही। फिर क्यों यह वजन पालूं? यात्रा कठिन थी, लेकिन किसी तरह वे आखिरी चरण पर पहुंचे, तो सड़क एकदम अच्छी हो गई। उस सड़क पर एकाध मील और चले होंगे कि बड़े अक्षरों में यात्रा समाप्त लिखा दिख गया। उसके नीचे छोटे अक्षरों में काफी कुछ लिखा था और वह इस प्रकार था : हे यात्री, तुमने जो पत्थर देखे थे, वे अमूल्य हीरे थे। जिसने एक भी पत्थर नहीं उठाया था, वह बुक्का फाड़कर रोने लगा कि हे प्रभु, मेरे कपड़ों में इतनी जेबें, पीठ पर इतने बड़े थैले थे, लेकिन मैं कैसा बेवकूफ था कि एक भी पत्थर नहीं उठाया। जिसने एक छोटा-सा कंकड़ उठाया था, वह तो इस बीच विक्षिप्त हो चुका था। बार-बार छाती पीट-पीटकर, बाल नोच-नोचकर वह रो रहा था, हे प्रभु, जब उठाना ही था, तो मैंने सिर्फ एक कंकड़ क्यों उठाया? कम से कम अपना थैला भर सकता था या अपनी जेब भर सकता तो आज मैं क्या से क्या होता।

१२१५) बुरे समय को ऐसे टालिए - शाम का समय था। महात्मा बुद्ध एक शिला पर बैठे हुए थे। वह डूबते सूर्य को एकटक देख रहे थे। तभी उनका शिष्य आया और गुस्से में बोला, गुरुजी रामजी नाम के जमींदार ने मेरा अपमान किया है। आप तुरंत चलें, उसे उसकी मूर्खता का सबक सिखाना होगा। महात्मा बुद्ध मुस्कुराकर बोले, प्रिय तुम बौद्ध हो, सच्चे बौद्ध का अपमान करने की शक्ति किसी में नहीं होती। तुम इस प्रसंग को भुलाने की कोशिश करो। जब प्रसंग को भुला दोगे, तो अपमान कहां बचेगा? लेकिन तथागत, उस धूर्त ने आपके प्रति भी अपशब्दों का प्रयोग किया है। आपको चलना ही होगा। आपको देखते ही वह अवश्य शर्मिंदा हो जाएगा और अपने किए की क्षमा मांगेगा। बस, मैं सतुष्ट हो जाऊंगा। महात्मा बुद्ध समझ गए कि शिष्य में प्रतिकार की भावना प्रबल हो उठी है। इस पर सदुपदेश का प्रभाव नहीं पड़ेगा। कुछ विचार करते हुए वह बोले, अच्छा वत्स, यदि ऐसी बात है तो मैं अवश्य ही रामजी के पास चलूंगा और उसे समझाने की पूरी कोशिश करूंगा। बुद्ध ने कहा, हम सुबह चलेंगे। सुबह हुई, बात आई गई हो गई। शिष्य अपने काम में लग गया और महात्मा बुद्ध अपनी साधना में। दूसरे दिन जब दोपहर होने पर भी शिष्य ने बुद्ध से कुछ न कहा तो बुद्ध ने स्वयं ही शिष्य से पूछा- प्रियवर, आज रामजी के पास चलोगे न? नहीं गुरुवर, मैंने जब घटना पर फिर से विचार किया तो मुझे इस बात का आभास हुआ कि भूल मेरी ही थी। मुझे अपने कृत्य पर भारी पश्चाताप है। अब रामजी के पास चलने की कोई जरूरत नहीं। तथागत ने हंसते हुए कहा, यदि ऐसी बात है तो अब अवश्य ही हमें रामजी महोदय के पास चलना होगा। अपनी भूल की क्षमा याचना नहीं करोगे।

१२१६) अंतरात्मा की मजबूती - एक बार शेख फरीद एक गांव में पहुंचे। लोगों ने क्रमश: अपनी अपनी समस्याएं उनसे कह सुनाईं। एक व्यक्ति ने पूछा, जब प्रभु यीशु को सूली पर चढ़ाया गया तब उनके चेहरे पर खुशी थी। उनके साथ

जुल्म किया गया लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा। मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता। फरीद कुछ देर चुप रहे, फिर उन्होंने एक कच्चा नारियल मंगवाया और जिस व्यक्ति ने प्रश्न पूछा था उसे नारियल फोड़ने के लिए कहा। वह व्यक्ति नारियल फोड़ने ही वाला था कि फरीद ने बोला, ध्यान रखना गरी (नारियल का सफेद भाग, जिसे खाया जाता है) अलग निकल आए। उस व्यक्ति ने आश्चर्य के साथ कहा, गुरुवर यह कैसे हो सकता है। यह नारियल तो कच्चा है और इसमें अभी गरी कहां से आएगी। तब शेख फरीद ने उसे सूखा नारियल दिया और कहा, इसे फोड़ें। इसे फोड़कर इसकी गरी देना। उस व्यक्ति ने नारियल फोड़कर गरी निकाल ली। अब शेख फरीद ने उस व्यक्ति से कहा, इसकी गरी कैसे निकल आई? व्यक्ति ने उत्तर दिया, क्योंकि यह नारियल सूखा था। फरीद बोले, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर यही है। दरअसल आम लोगों का शरीर चर्म से जुड़ा रहता है। जब उनको चोट लगती है तो उनकी अंतरआत्मा को भी दर्द होता है लेकिन प्रभु यीशु और मंसूर जैसे महान और दिव्य लोग शरीर को इस आवरण से दूर रखते हैं। यही कारण था कि उन्हें यातना दिए जाने पर भी पीड़ा नहीं हुई थी। यदि हमें अपनी अंतरआत्मा को मजबूत बनाना है तो धैर्य, सहिष्णुता के पथ पर चलना होगा।

१२१७) सही गलत का ज्ञान - अवंतिका देश का राजा रवि सिंह महात्मा आशुतोष पर बड़ी ही श्रद्धा रखता था। वह उनसे मिलने रोज कुटिया में जाता था। लेकिन हर बार जब महात्मा को राजा अपने महल में आने के लिए आमंत्रित करता, महात्मा मना कर देते। एक दिन राजा रवि सिंह ने जिद पकड़ ली। तब महात्मा ने कहा, मुझे तुम्हारे महल में दुर्गंध महसूस होती है। रवि सिंह अपने महल लौट आए लेकिन काफी देर तक महात्मा की बातों पर विचार करते रहे। कुछ दिनों बाद जब राजा फिर से महात्मा के पास पहुंचे तो महात्मा राजा को पास के ही गांव में घुमाने ले गए। दोनों जंगल को पार करते हुए एक गांव में पहुंचे। उस गांव में कई पशु थे। उनके चमड़े के कारण दुर्गंध आ रही थी। जब दुर्गंध सहन करने योग्य नहीं रह गई तो राजा ने महात्मा से कहा, चलिए महात्मा यहां से, मुझसे ये दुर्गंध बर्दाश्त नहीं होती। तब महात्मा ने कहा, यहां सभी हैं लेकिन दुर्गंध आप को ही आ रही है। राजा ने कहा, ये लोग इसके आदी हो चुके हैं मैं नहीं। तब महात्मा ने कहा, राजन् यही हाल तुम्हारे महल का है। जहां भोग और विषय की गंध फैली रहती है। तुम इसके आदी हो चुके हो। लेकिन मुझे वहां जाने की कल्पना से ही कष्ट होने लगता है। जब हम अपनी जिन्दगी में किसी वातावरण, व्यवहार के आदी हो जाते हैं। हमारी दृष्टि संकुचित हो जाती है। इसलिए जब तक वातावरण से दूर होकर विचार, कर्म और जीवन की गतिविधियों का चिंतन नहीं किया जाता तब तक हमें सही और गलत का ज्ञान नहीं होता है।

१२१८) सपना और सत्य - ज्ञान की खोज में एक बार तीन साधु हिमालय पर जा पहुंचे। वहां पहुंचकर तीनों को बहुत भूख लगी। मगर उनके पास मात्र दो ही रोटियां थी। उन तीनों ने तय किया कि वे भूखे ही सो जाएंगे। ईश्वर जिसके सपने में आकर रोटी खाने का संकेत देंगे, वही ये रोटियां खाएगा। ऐसा कहकर तीनों सो गए। आधी रात को तीनों साधु उठे और एक दूसरे को अपना-अपना सपना सुनाने लगे। पहले साधु ने कहा, मैं सपने में एक अनजानी जगह पहुंचा। वहां बहुत शांति थी। वहां मुझे ईश्वर मिले। उन्होंने मुझे कहा कि तुमने जीवन में सदा त्याग ही किया है, इसलिए ये रोटियां तुम्हें ही खानी चाहिए। दूसरे साधु ने कहा, मैंने सपने में देखा कि विगत में तपस्या करने के कारण मैं महात्मा बन गया हूं और मेरी मुलाकात ईश्वर से होती है। ईश्वर ने मुझसे कहा कि लंबे समय तक कठोर तप करने के

कारण रोटियों पर सबसे पहला हक तुम्हारा है, तुम्हारे मित्रों का नहीं। अब तीसरे साधु की बारी थी। उसने कहा, मैंने सपने में कुछ नहीं देखा। बल्कि मुझे सपना आया ही नहीं। मैं सोने की कोशिश कर रहा था, थोड़ी नींद आई भी। पर पता नहीं, उस बीच नींद कब खुली। मैं उठा और रोटियां खा गया। यह सुनकर दोनों साधु क्रोधित हो गए। उन्होंने तीसरे साधु से पूछा, ऐसा करने से पहले तुमने हमें क्यों नहीं उठाया? तब तीसरे साधु ने कहा, कैसे उठाता? एक बार खयाल आया भी था कि तुम लोगों को भी बता दूं, लेकिन तुम दोनों तो ईश्वर से बातें कर रहे थे। ईश्वर ने तुम्हारी बातें सुनते-सुनते मेरी ओर देखा और कहा कि तुम्हें भूख लगी है। उठो और रोटियां खा लो। मैंने उनका आदेश माना।

१२१९) सर्वश्रेष्ठ शासक - प्रियदर्शी सम्राट अशोक के जन्म दिन का महोत्सव था। सभी प्रांतों के शासक इकट्ठा हुए थे। सम्राट की ओर से घोषणा हुई कि सर्वश्रेष्ठ शासक को पुरस्कृत किया जाएगा। उत्तर सीमांत प्रांत के शासक ने बताया, मैं प्रादेशिक शासन की आय तीन गुना कर चुका हूं। दक्षिण के शासक ने कहा, राजकोष में पिछले वर्ष की तुलना में दोगुना स्वर्ण मेरे प्रांत ने अर्पण किया है। पूर्वी प्रदेशों के अधिकारियों ने सूचना दी, हमने पूर्वी सीमांत के उपद्रवियों को कुचल दिया है। वे राज्य के विरुद्ध सिर उठाने का फिर साहस न कर सकेंगे। एक और प्रांत के शासक उठ खड़े हुए और उन्होंने कहा- प्रजा से प्राप्त होनेवाली आय बढ़ गई है, सेवकों का व्यय घटा दिया है और आय के कुछ दूसरे साधन भी ढूंढ लिए गए हैं। अंत में उठे मगध के शासक। उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा, श्रीमान, मैं क्या बताऊं। मेरे प्रांत ने पिछले वर्ष के मुकाबले आधे से भी कम धन राजकोष में दिया है। प्रजा का कर घटाया गया है। राज्य सेवकों को कुछ और सुविधाएं दी गई हैं। सार्वजनिक धर्मशालाएं एवं रास्ते पर कुएं बनवाए गए हैं। कई नए चिकित्सालय और पाठशालाएं खोली गई हैं। सम्राट सिंहासन से उठे और बोले, मुझे प्रजा का शोषण करके प्राप्त होनेवाली स्वर्ण राशि नहीं चाहिए। प्रजा का दुख-दर्द सुने बिना उनका दमन करने की मैं निंदा करता हूं। प्रजा की सुख-सुविधा का ख्याल रखा जाए। यही मेरी इच्छा है। इसलिए मुझे लगता है कि मगध के प्रांतीय शासक ही सर्वश्रेष्ठ शासक हैं। इस वर्ष यह पुरस्कार उन्हें ही दिया जाना चाहिए। साथ ही, मैं यह भी कहना चाहूंगा कि अन्य प्रांतों के शासकों को भी उनसे प्रेरणा लेकर प्रजा के हित में काम करना चाहिए।

१२२०) सही कर दें - एक नगर में एक चित्रकार रहता था। उस चित्रकार ने एक सुंदर तस्वीर बनाई और चौराहे पर टांग दी। चित्रकार ने तस्वीर के नीचे लिख दिया, जहां भी इस तस्वीर में कोई कमी दिखाई दे वहां निशान लगा दें। शाम होते ही वह तस्वीर खराब हो चुकी थी। आने-जाने वाले लोगों ने वहां कई निशान लगा दिए थे। यह देख चित्रकार बहुत दुखी हुआ। तभी उसका मित्र वहां पहुंचा। उसने अपने दुख का कारण बताया। तब मित्र ने कहा, कल एक दूसरी तस्वीर बनाना और उसे चौराहे पर टांगना। जिसके नीचे लिखना इस तस्वीर में जहां कहीं भी कोई कमी नजर आए उसे सही कर दें। अगले दिन चित्रकार ने यही किया। शाम को जब उस चित्रकार ने उस तस्वीर को देखा तो उसे किसी ने खराब नहीं किया। वह समझ गया कि यही संसार की रीति है। कमी निकालना, निंदा करना लेकिन उन कमियों को दूर करना कठिन है। यदि प्रश्न सही पूछा जाए तो उत्तर भी सही मिलेगा। इसलिए किसी चीज में कमी नहीं खोजें बल्कि उसे और बेहतर बनाने के लिए सुझाव मांगे। जिंदगी खुशनुमा हो जाएगी।

१२२१) काम का नजरिया - एक बार एक मुनि तीर्थ यात्रा पर निकले, रास्ते में एक गांव आया। मुनि बहुत थक चुके थे, उन्होंने गांव में ही एक खेत के नजदीक बरगद के पेड़ के नीचे शरण ली। वहीं कुछ मजदूर पत्थर से खंभे बना रहे थे। मुनि ने पूछा, यह क्या बन रहा है? एक मजदूर ने कहा, पत्थर काट रहा हूं। मुनि ने फिर पूछा, वो तो दिखाई दे रहा है लेकिन यहां बनेगा क्या? दूसरे मजदूर ने कहा, मालूम नहीं। मुनि आगे चल दिए। उन्हें एक और मजदूर मिला उन्होंने उससे भी यही पूछा कि, यहां क्या बनेगा? लेकिन उस मजदूर ने भी निराशा से भरा उत्तर दिया। लेकिन अब तो मजदूर मिला उसने ठीक उत्तर दिया, मुनि ने पूछा तो उसने कहा, मुनिवर यहां मंदिर बनेगा। इस गांव में कोई बड़ा मंदिर नहीं था। गांव के लोगों को बाहर दूसरे गांव में त्योहार मनाने जाना पड़ता था। मैं अपने हुनर से यहां मंदिर बना रहा हूं। जब मैं पत्थरों पर छैनी चलाता हूं तो मुझे मंदिर की घंटी की आवाज सुनाई देती है। मैं अपने इसी काम में मगन रहता हूं। मुनि उस मजदूर के इस नजरिए से अभिभूत हो गए और उसे आशीर्वाद दिया। जीवन आप किस तरीके से जीते हैं यह आपका रवैया तय करता है। काम को यदि आनंद के साथ किया जाए तो हमेशा परमानंद की अनुभूति होती है। उस मजदूर को छैनी की आवाज में भी मंदिर की घंटी सुनाई दे रही थीं। यानी उसका नजरिया महान था। इसलिए वो इस काम को कर पाया। इसलिए कहते हैं कि खुशी आपके काम में नहीं, काम के प्रति आपके नजरिए में है।

१२२२) प्रेम की बाढ़ - संत राबिया किसी धर्मग्रंथ का अध्ययन कर रही थीं। अचानक उनकी दृष्टि एक पंक्ति पर अटक गई, दुर्जनों से घृणा करो। कुछ देर वे मौन सोचती रहीं, फिर उन्होंने उस पंक्ति को काट दिया। कुछ समय बाद एक संत घूमता-घामता उनके यहां आकर ठहरा। उसने कोई धर्मग्रंथ पढ़ने के लिए मांगा। संयोगवश उसे वही धर्मग्रंथ दे दिया गया। उसने वह कटी हुई पंक्ति देखी तो पूछा, इस पंक्ति को किसने काटा? राबिया ने विनम्र उत्तर दिया, मैंने ही। संत उबल पड़ा, धर्म के विषय में दखल देना कोई अच्छी बात नहीं है। फिर आपने ऐसा क्यों किया? राबिया गंभीर हो गईं, महात्मन, एक समय मैं भी स्वीकार करती थी कि दुर्जनों से घृणा करनी चाहिए; किन्तु जब मेरे अंत:करण में प्रेम की बाढ़ उमड़ आती हैं तो मुझे पता ही नहीं चलता कि घृणा को कहां स्थान दूं। संत निरुत्तर हो राबिया को देखने लगा। अपने में घृणा का होना अपनी कमजोरी की निशानी है।

१२२३) गले से लगा लिया - एक बार एक गुरु ने अपने शिष्य से कहा, पूजा के लिए सामान का प्रबंध करो। शिष्य पूजा सामग्री लेने चल दिए। बाजार से सामान खरीदा और थोड़े आगे चले ही थे कि उन्हें एक बीमार गाय दिखाई दी। वह जमीन पर लेटी तड़प रही थी। शिष्य वहां रुके और आसपास मौजूद घास उखाड़कर गाय को खिलाने लगे। उधर, पूजा करने का समय बीता जा रहा था। तब गुरु शिष्य को खोजने चल दिए। वह आगे चले तो उन्होंने देखा कि शिष्य एक बीमार गाय के पास बैठे उसकी सेवा कर रहे थे। गुरु ने शिष्य से कहा, आप पूजा हेतु सामग्री लेने गए थे और इस बीमार गाय जो कुछ देर बाद मृत हो जाएगी, उसकी सेवा कर रहे हो। तब शिष्य ने कहा, स्वामी जीवदया से बढ़कर और पूजा क्या हो सकती है। इसके बाद गुरु ने शिष्य को गले लगा लिया।

१२२४) दुष्टों के लिए प्रार्थना - एक संत सुबह अपने शिष्यों के बीच बैठकर प्रभु से प्रार्थना कर रहे थे। उन्होंने सबसे पहले पूरी मानव जाति के कल्याण के लिए प्रार्थना की। उसके बाद उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, हे परमपिता, आप

दुष्कर्म करनेवालों को सद्बुद्धि प्रदान करें। उनको सही रास्ता दिखाए, ताकि वे दुष्कर्म करना छोड़ दें। प्रभु, उन भटके हुए लोगों पर विशेष रूप से दया करें। पास बैठे एक शिष्य ने आश्चर्यचकित होकर पूछ लिया, संत तो अच्छे लोगों के कल्याण के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। आज पहली बार मैंने आपको दुष्टजनों के कल्याण के लिए प्रार्थना करते देखा है। गुरुदेव, इस प्रार्थना का क्या मतलब? संत मुस्कुराए और बोले, सत्कर्म करनेवाले अच्छे लोग तो स्वत: भगवान की दया और स्नेह के अधिकारी बन जाते हैं। अच्छे लोग अच्छे कर्म करके औरों को भी अच्छा बनाते रहते हैं। प्रार्थ ना तो बुरे लोगों को सद्बुद्धि प्रदान करने के लिए करनी चाहिए, जिससे वे दुष्कर्म त्यागकर सत्कर्मों में लग जाएं। इस तरह भक्त की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

१२२५) पैरों को देखकर ज्योतिषी हुए दंग - आषाढ़ माह की गर्म दोपहर थी। भगवान बुद्ध अपने शिष्यों के साथ भ्रमण पर जा रहे थे। उस रास्ते में कहीं पेड़ भी नहीं थे। चारों तरफ बिखरी थी तो बस रेत ही रेत। रेत पर चलने के कारण तथागत के पैरों के निशान बनते जा रहे थे। ये निशान सुंदर थे। तभी अचानक शिष्यों को दूर एक पेड़ दिखाई दिया। सभी ने वहां विश्राम किया। तथागत और सभी शिष्य उस पेड़ की छांव के नीचे आराम करने लगे। तभी वहां एक ज्योतिषी आए वो उसी रास्ते से अपने घर जा रहे थे।

उन्होंने रेत पर बुद्ध के पैरों के निशान देखे। उसने अपने जीवन में ऐसे पदचिन्ह नहीं देखे थे। ज्योतिषी ने सोचा शायद यह पदचिन्ह किसी चक्रवर्ती सम्राट के हो सकते हैं। लेकिन सामने उसने बुद्ध को देखा तो उसे यकीन नहीं हुआ। क्योंकि यह पद चिन्ह एक संन्यासी व्यक्ति के थे। बुद्ध के चेहरे पर एक चमकती कांति थी। ज्योतिषी ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, आपके पैरों में जो पद्म है, वह अति दुर्लभ है, हजारों साल में कभी किसी भाग्यशाली में देखने को मिलता है। हमारी ज्योतिष विद्या कहती है कि आपको चक्रवर्ती सम्राट होना चाहिए, परंतु आप तो? भगवान बुद्ध हंसे और कहा, मैं सब बंधनों से मुक्त हो गया हूं। जब आप सारे बंधनों से मुक्त हो जाते हैं तो न कोई ज्योतिष और न कोई और विद्या काम करती है, बस रहता है तो ईश्वर का परमतत्व ज्ञान और मोक्ष प्राप्ति का रास्ता।

१२२६) बलिदान - एक राजा को खबर मिली कि दुश्मनों ने उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी है। उसके राज्य में एक बहुत गरीब बुढ़िया रहती थी। उसका एक बेटा था। देश पर आए संकट को देख वह किसी प्रकार राजा के पास पहुंची। उस समय राजा मंत्री से लड़ाई के बारे में सलाह कर रहा था, तभी बुढ़िया को उसके सामने उपस्थित किया गया। राजा ने बुढ़िया से पूछा, कहो माई, कैसे आना हुआ? बुढ़िया ने कहा- महाराज, मेरे पास कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे मैं अपने देश के लिए दे सकूं। लेकिन जिस तरह अन्य माताएं अपने अपने बेटों को शस्त्रों से सजाकर लड़ाई में भेज रही हैं, मेरी भी इच्छा है कि मेरा इकलौता बेटा देश की रक्षा में मदद करे। राजा बुढ़िया की इच्छा सुन दंग रह गया। उसने बुढ़िया को बहुत समझाने की कोशिश की, पर वह अपने इरादे से टस से मस न हुई। भयानक युद्ध हुआ। खून की नदियां बह निकलीं। वीर कट-कटकर गिरने लगे। उस बुढ़िया का बेटा भी युद्ध में काम आया। बेटे के बलिदान की खबर पाकर बुढ़िया बिलखती हुई राजदरबार में पहुंची। यह देख राजा बड़ा दु:खी हुआ। बोला- मुझे बहुत दु:ख है कि बुढ़िया बोली, राजन। दु:खी न हों। मैं तो इसलिए रो रही हूं कि अगर फिर देश पर संकट आया तो मैं दूसरा बेटा कहां से लाकर दूंगी।

१२२७) दो मेंढ़क - कुछ समय पहले की बात है। दो मेंढ़क थे। वे जंगल में तालाब के किनारे एक पेड़ के नीचे रहते थे। एक दिन उन दोनों ने सोचा, हमने तो बाहर की दुनिया देखी ही नहीं। जंगल के बाहर भी तो कुछ होगा। चलो जरा इंसानों की दुनिया में घूम कर आते हैं। खाने-पीने का थोड़ा सा सामान लेकर वे दोनों निकल पड़े। फुदकते-फुदकते वे जंगल की सीमा को पार करके शहर पहुंचे। वहां उन्होंने बहुत कुछ देखा- बड़ी बड़ी ऊंची इमारतें, प्रदूषण फैलाते हुए वाहन, रोटी कमाने की दौड़ में भागते हुए लोग, खेलकूद और पढ़ाई में मस्त नन्हें-नन्हें बच्चे, शोर शोर और बहुत शोर।

उन्हें अपनी घर की याद आने लगी। वे बहुत थक भी गए थे। उनका दिल कर रहा था कि उन्हें पानी मिल जाए और वे एक गीली जगह पर थोड़ा आराम कर लें। खोजते-खोजते वे एक दूध वाले की दूकान में घुस गए। वहां एक बाल्टी रखी थी। उन्हें लगा कि इस बाल्टी में पानी होना चाहिए। फिर क्या था, झट से दोनों ने एक ऊंची छलांग लगाई और पहुंच गए उस बाल्टी के अन्दर। पर यह क्या बाल्टी में तो पानी नहीं था। वह तो मलाई से भरी हुई थी। बेचारे दोनों मेंढ़क उस मलाई में डूबने लगे। उनका दम घुटने लगा। सांस फूलने लगी, आंखें पलट कर बाहर आने लगीं। एक मेंढ़क ने सोचा, मेरा तो अंतिम समय आ गया है, हाय रे मेरी किस्मत। शहर आकर इन अनजान लोगों के बीच ही मरना था। उसने अपने ईश्वर को याद किया और मौत का इन्तजार करने लगा। परंन्तु दूसरा मेंढ़क हार मानने को तैयार नहीं था। वह कोशिश करने लगा कि किसी तरह उस मलाई भरी बाल्टी में से वह बाहर निकल आए। वह अपने पैर जोर से चलाने लगा। बहुत कोशिश करने पर भी वह बार-बार फिसल जाता। फिर भी उसने अपना दिल छोटा नहीं किया। हिम्मत का दामन नहीं छोड़ा। वह लगातार कोशिश करता रहा और अपने पैर चलाता रहा।

अरे यह क्या, अचानक उसने देखा कि वह ऊपर उठने लगा। उसके लगातार जोर से पैर चलाने से मलाई भी लगातार हिल रही थी और वह मक्खन बनने लगी। मेढ़क में उम्मीद की लहर दोड़ गई। वह बहुत थक चुका था, पर फिर भी पैर चलाता रहा। फिर क्या था। मक्खन बनता गया और आखिर में उस मक्खन के ढेर पर सवार वह साहसी मेंढ़क ऊपर उठने लगा। जब मक्खन छाछ के ऊपर तैरने लगा तब उस साहसी मेंढ़क ने बाल्टी से बाहर छलांग लगा दी। अपनी हिम्मत, लगन, मेहनत और जीने की उमंग के कारण वह बच गया परन्तु निराशावादी मेंढ़क उसी मलाई की बाल्टी में डूब कर मर गया।

मुश्किलें सब के रास्ते में आती हैं, पर ईश्वर ने हमें उनका मुकाबला करने की शक्ति भी दी है। इसलिए शक्ति से काम लेते हुए साहस बनाए रखना चाहिए। अंत में जीत उसी की होती है जो कभी हार नहीं मानता। अधिक बुद्धि या बल ही केवल काम नहीं आते हैं। हिम्मत वाले जीवन का संग्राम जीत जाते हैं।

१२२८) हाथी का बदला - बहुत समय पहले एक छोटे से शहर में एक बड़ा हाथी रहता था। हाथी धार्मिक प्रवृत्ति का था और एक मंदिर में रोजाना पूजा किया करता था। रोज सुबह-सुबह नहा धोकर पूजा करके ही वह अपने अन्य काम शुरू करता था। ऐसे तो वह बहुत ही शक्तिशाली था, लेकिन फिर भी वह बहुत दयावान और प्यारा जानवर था। वह रहता इंसानों की बस्ती में था, फिर भी उसने आज तक किसी को शिकायत का मौका नहीं दिया था। उसके अच्छे व्यवहार के कारण आसपास मौजूद सभी लोग उससे बहुत प्यार करते थे। उसे खाने के लिए स्वादिष्ट फल देते थे। मंदिर में चढ़ाने के लिए

वह हमेशा फूलों की माला का इस्तेमाल करता था जो उसे एक फूलवाला देता था।

जब भी वह बाजार होते हुए मंदिर जाता फलवाला उसे फल देता, फूलवाला फूलों की माला देता था। हाथी भी हमेशा उन लोगों के काम के लिए हमेशा तत्पर रहता था, लेकिन एक दिन की बात है, फूलवाले की दुकान में एक नया लड़का बैठा। उस नए लड़के को हाथी से मजाक करने की सूझी।

अगले दिन जब हाथी फूलों की माला लेने आया तो फूलवाले ने माला के साथ सुई भी उसे दे दी, जो हाथी की सूंड में चुभ गई। हाथी दर्द से करहाने लगा और जमीन पर बैठ गया। उसे कराहते देख फूलवाला हंसने लगा, जिससे हाथी को बहुत गुस्सा आया। वह गुस्से में नजदीक के गंदे तालाब में गया। तालाब गंदे पानी से भरा था। हाथी ने अपनी सूंड में गंदा पानी भरा और फूलवाले की दुकान की ओर जाने लगा। दुकान पर पहुंच कर हाथी ने सारा गंदा पानी दुकान पर फेंक दिया, जिससे दुकान में रखे सारे फूल खराब हो गए और फूलवाले के कपड़े भी गंदे हो गए। इससे फूलवाले को भारी नुकसान उठाना पड़ा। दूसरे भी उसको मदद को आगे नहीं आए।

जैसे को तैसा ही मिलता है, अत: कभी भी दूसरों को दुख देने का कोई कार्य कदापि न करें।

१२२९) अहं का त्याग - भगवान ऋषभदेव के सौ पुत्रों और एक पुत्री में बाहुबली सबसे बड़े थे। जब ऋषभदेव ने संन्यास लिया तो उनकी प्रेरणा से बाकी पुत्रों ने भी उन्हीं का मार्ग अपना लिया, किंतु बाहुबली ने ऐसा नहीं किया। तब लोगों का आग्रह बढ़ा और धीरे-धीरे बाहुबली के मन में भी सन्यास का विचार आने लगा। किंतु यदि वे सन्यास लेते तो उन्हें आयु में अपने से छोटे भाइयों को प्रणाम करना पड़ता। कारण यह कि छोटे होने के बावजूद संन्यास के मार्ग पर उनके छोटे भाई बाहुबली से आगे निकल चुके थे। बाहुबली ने सोचा कि यदि मैं इतना तप कर लूं कि सन्यास के मार्ग पर पहले निकल चुके अपने अनुजों से आगे हो जाऊं तो फिर अनुजों को ही मुझे नमन करना होगा। यह सोचने के बाद बाहुबली ने इतना कठोर तप किया कि उनके शरीर पर चीटियों ने घर बना लिए। पर बाहुबली नहीं थमे, उनका तप निरंतर बढ़ता गया। तप का तेज इतना फैला कि सारा वातावरण इससे प्रभावित हो गया। यह देखकर लोग भगवान ऋषभदेव के पास पहुंचे और पूछने लगे- इतना कठोर तप, फिर भी बुद्धत्व क्यों नहीं घटता? यह सुनकर ऋषभदेव मुस्कराए और उन्होंने अपनी पुत्री को बाहुबली के पास भेजा। उसने जाकर अपने बड़े भाई बाहुबली के कान में धीरे से कहा- हाथी की सवारी बहुत हो गई अब जरा नीचे उतरो। कहते हैं कि उसके बाद तत्क्षण बाहुबली ने अपनी छोटी बहन के चरण छुए और संन्यास घटित हो गया। उनका तप इसीलिए था कि अपने से छोटे को क्यों प्रणाम करूं। तप बहुत ऊंचा हो चुका था, किंतु छोटे को प्रणाम न करने का अहंकार शेष था, इसीलिए संन्यास घटने में बाधा थी। जैसे ही उन्होंने प्रणाम किया, बाहुबली स्वयं भगवत तुल्य हो गए। अहं के त्याग के बिना किसी के जीवन में उन्नति संभव नहीं है।

१२३०) भूल का अहसास - आखेट की खोज में भटकता विश्वबंधु शवर नील पर्वत की एक गुफा में जा पहुंचा। वहां भगवान नील माधव की मूर्ति के दर्शन पाते ही शवर के मन में भक्ति भावना का स्रोत उमड़ पड़ा और उनका हृदय परिवर्तित हो गया। वह हिंसा छोड़कर भगवान नील माधव की रात दिन पूजा करने लगे। उन्हीं दिनों मालव राजा इंद्र प्रद्युम्न किसी अपरिचित तीर्थ में मंदिर बनवाना चाहते थे। उन्होंने अपनी इस इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से, स्थान की

खोज के लिए अपने मंत्री विद्यापति को भेजा। विद्यापति ने लौटकर राजा को नील पर्वत पर शवर विश्वबंधु द्वारा पूजित भगवान नील माधव की मूर्ति की सूचना दी। यह सुनते ही राजा तुरंत मंदिर बनवाने के लिए वहां पहुंचा। किंतु घोर आश्चर्य, मूर्ति वहां नहीं थी। राजा ने क्रोधित होकर कहा, विद्यापति तुमने व्यर्थ ही हमारा समय नष्ट किया है। यहां तो मूर्ति ही नहीं है। विद्यापति ने कहा, महाराज मैंने स्वयं अपनी आंखों से इसी गुफा में भगवान नील माधव की मूर्ति देखी है। अवश्य ही कोई ऐसी बात हुई है, जिससे भगवान की मूर्ति अंतर्धान हो गई है। राजन्, यह बताइए, आते समय आप क्या सोचते हुए आए हैं? राजा इंद्र प्रद्युम्न ने बताया, मैं सारे रास्ते केवल इतना सोचता आया हूं कि अपने स्पर्श से भगवान की मूर्ति को अपवित्र करने वाले शवर को सबसे पहले भगा दूंगा और कोई अच्छा पुजारी नियुक्त कर दूंगा। विद्यापति ने बड़ी नम्रता से कहा, आपकी इसी भेदभावना के कारण भगवान रुष्ट होकर चले गए हैं। समदर्शी भगवान जात-पात नहीं, सदैव हृदय की सच्ची निष्ठा ही देखते हैं। बात समझ में आते ही राजा को अपनी भूल का अहसास हो गया। उन्होंने भगवान से क्षमा मांगी उनकी स्तुति की और तब उसी स्थान पर प्रसिद्ध जगन्नाथ जी के मंदिर की स्थापना कराई।

१२३१) जब नेहरू जी का जवाब सुनकर इंग्लैंड के प्रधानमंत्री चर्चिल खामोश रह गए- भारत की स्वतंत्रता के लिए निर्णायक लड़ाई महात्मा गांधी के नेतृत्व में लड़ी गई। उनकी अगुआई में स्वतंत्रता सेनानियों ने अद्भुत साहस का परिचय देते हुए देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने का हरसंभव प्रयास किया। अंग्रेज भारतीयों को मानसिक व शारीरिक प्रताड़नाएं देकर तोड़ने में लगे हुए रहते थे, किंतु भारतीय एकजुट रहे। इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री चर्चिल हमेशा से भारत की स्वतंत्रता के खिलाफ थे। इसलिए मौका मिलने पर वह गांधी नेहरू की बखिया उधेड़ने में कोई कसर नहीं रखते थे। किंतु १५ अगस्त सन् १९४७ को भारतीयों की मेहनत व कुर्बानी रंग लाई और देश स्वतंत्र हो गया। पंडित जवाहर लाल नेहरू स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री बने। उन्हें १९५० में इंग्लैंड जाना पड़ा। वहां उनकी मुलाकात प्रधानमंत्री चर्चिल से हुई। चर्चिल ने पंडित नेहरू से मिलने पर कहा अंग्रेज सरकार ने सदैव आपकी आलोचना की। कई प्रकार के कष्ट दिए। फिर भी आप हमसे प्यार करते हैं, घृणा नहीं, क्यों? प्रश्न सुनकर पंडित नेहरू विनम्रतापूर्वक बोले, हमारे मार्गदर्शक महात्मा गांधी थे। उन्हीं के कारण हमने यह लड़ाई जीती। बापू ही थे जिन्होंने हमें निडरता व अहिंसा का पाठ पढ़ाया। उनका कहना था कि निडरता से अहिंसा के पथ पर चलकर मंजिल को पाना कठिन नहीं है। यदि इंसान निडरता से अहिंसा व सत्य के पथ पर चलकर कार्य करे तो मंजिल उसके कदम चूमती है। इसलिए हम आपसे घृणा नही करते क्योंकि हम अपने उद्देश्य पर चलते रहे और विजयरथ पर सवार हुए, अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा। आज हमारा देश स्वतंत्र है और एक स्वतंत्र देश के पहले प्रधानमंत्री की हैसियत से मैं आपसे मिलने आया हूं। नेहरू जी का जवाब सुनकर चर्चिल खामोश रह गए।

१२३२) जरूरत से ज्यादा चाह हमेशा दुख देती है, इसका हमेशा ध्यान रखें- कभी कभी जरूरत से ज्यादा धन भी घर परिवार में अशांति फैला देता है। धन का अपना स्वभाव है, वह सीमित मात्रा में मिलता रहे, जरूरत के काम पूरे होते रहें तो कभी परेशानी नहीं आती। एक गांव में एक सेठ और बढ़ई पड़ोसी थे। सेठ बड़ा पैसे वाला था लेकिन उसे कोई संतान नहीं थी। उसके घर में केवल पत्नी और बूढ़ी मां थी। इतना धनवान होने के बाद भी उसके घर में शांति नहीं थी।

वे दोनों अक्सर झगड़ते रहते थे। वहीं दूसरी ओर बढ़ई के घर में उसकी पत्नी और दो बच्चे थे, वे गरीब थे मगर बड़े प्रेम से रहते थे। एक दिन सेठानी ने सेठ को अपने पास बुलाया और बढ़ई के घर में झांकते हुए कहा कि ये लोग गरीब हैं मगर फिर भी कितने खुश हैं। सेठ ने पत्नी से कहा कि संतोषी को झोपड़ी भी महल लगती है।

सेठ ने सेठानी को समझाने के लिए एक उपाय किया। सेठ ने अगले दिन पैसों से भरी एक पोटली बढ़ई के घर में फेंक दी। जब बढ़ई ने सेठ से पूछा कि ये पोटली तुम्हारी है तो सेठ ने साफ इंकार कर दिया। बहुत दिनों के इंतजार के बाद बढ़ई ने सोचा कि इतने पैसों का क्या किया जाए। उसकी पत्नी का दिमाग घूमने लगा। उसने पति को समझाते हुए कहा कि इन पैसों को हम अपनी बेटियों की शादी के लिए रख लेते हैं लेकिन बढ़ई राजी न था, बस अब क्या था बढ़ई के घर में रोज झगड़े होने लगे। अब उनके मन में पहले की तरह संतोष न था। सेठ ने सेठानी से कहा कि जब इनके पास पैसे नहीं थे। तब ये लोग कितने संतोष पूर्वक रहा करते थे पैसों से भरी पोटली मिलने के बाद इनकी जिंदगी में क्लेश हो रहा है।

१२३३) इस सीख को अपनाने से कोई भी ताकत आपको सफल होने से नहीं रोक पाएगी- एक बार की बात है किसी शहर में एक लड़का रहता था जो बहुत गरीब था। मेहनत मजदूरी करके बड़ी मुश्किल से दो वक्त का खाना जुटा पाता। एक दिन वह किसी बड़ी कम्पनी में चपरासी के लिए इंटरव्यू देने गया। बॉस ने उसे देखकर उसे काम दिलाने का भरोसा जताया। जब बॉस ने पूछा, तुम्हारी ई-मेल आई.डी. क्या है? लड़के ने मासूमियत से कहा कि उसके पास ई-मेल आई.डी. नहीं है। यह सुनकर बॉस ने उसे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा और कहा कि आज दुनिया इतनी आगे निकल गई है और एक तुम हो कि तुम्हारे पास ईमेल आई.डी तक नहीं है, मैं तुम्हें नौकरी पर नहीं रख सकता। यह सुनकर लड़के के आत्मसम्मान को बहुत ठेस पहुंची। उसकी जेब में उस समय ५० रुपए थे। वह उन ५० रुपयों से १ किलो सेब खरीद कर वह अपने घर चलता बना।

वह घर-घर जाकर उन सेबों को बेचने लगा और ऐसा करके उसने ८० रुपए जमा कर लिए। अब तो लड़का रोज सेब खरीदताऔर घर-घर जाकर बेचता। सालों तक यही सिलसिला चलता रहा। लड़के की कठिन मेहनत रंग लाई और एक दिन उसने खुद की कम्पनी खोली जहां से विदेशों में सेब सप्लाई किए जाते थे। उसके बाद लड़के ने पीछे मुड़कर नहीं देखा और जल्दी ही बहुत बड़े पैमाने पर अपना व्यापार फैला दिया और एक सड़क छाप लड़का बन गया अरबपति।

एक दिन कुछ मीड़िया वाले लड़के का इंटरव्यू लेने आए और अचानक किसी ने पूछ लिया, सर आपकी ई-मेल आई.डी. क्या है? लड़के ने कहा, नहीं है। यह सुनकर सारे लोग चौंक गए कि एक अरबपति आदमी के पास एक ई-मेल आई.डी. तक नहीं है। इस पर लड़के ने हंसकर कहा, मेरे पास ई-मेल आई.डी. नहीं है इसलिए मैं अरबपति हूं, अगर ई-मेल आई.डी. होती तो आज मैं एक चपरासी होता।

१२३४) हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, हर बुराई के पीछे अच्छाई भी छुपी होती है- हर बुराई के पीछे कोई ना कोई अच्छाई छुपी होती है।

एक गांव में किसान रहता था। उस गांव में उसे पानी भरने अपने घर से बहुत दूर जाना पड़ता था। उसके पास पानी लेकर आने के लिए दो बाल्टियां थीं। उनमें से एक बाल्टी में छेद था। किसान रोज उस कुएं से पानी भरकर जब तक अपने

घर तक लाता था। वह पानी सिर्फ डेढ़ बाल्टी रह जाता था, क्योंकि छेदवाली बाल्टी का पानी आधा ही रह जाता था। अब वो बाल्टी जिसमें कोई छेद नहीं था। उसे धीरे-धीरे घमंड आने लगा। वह उस छेद वाली बाल्टी से बोली तुम में छेद है। तुम किसी काम की नहीं मालिक बेचारा तुम्हें जब तक भरकर घर लेकर आता है, तुम्हारा आधा पानी खाली हो जाता है। यह सुनकर वह बाल्टी दुखी हो जाती है उसे दूसरी बाल्टी रोज ताना मारती थी। एक दिन उस बाल्टी ने दुखी होकर अपने मालिक से कहा: मालिक आप मुझसे यदि परेशान हो गये हैं तो मेरे इन छेदों को बंद क्यों नहीं कर देते या फिर आप मुझे छोड़कर नई बाल्टी क्यों नहीं खरीद लेते तो किसान मुस्कुराते हुए बोला तुम इतनी दुखी क्यों हो तुम जानती हो कि तुम्हें मैं जिस रास्ते से भरकर यहां तक लाता हूं।

उस रास्ते के एक ओर हरियाली है वहां कई छोटे-छोटे सुन्दर पौधे उग आए हैं। दूसरी ओर जहां से बिना छेद वाली बाल्टी को लेकर निकलता हूं। वहां हरियाली नहीं है सिर्फ सूखा है तो अगर वो बिना छेद वाली बाल्टी मेरे घर के सदस्यों की प्यास बुझा रही हो तो तुम भी तो कई नन्हे पौधों को जीवनदान दे रही हो बाल्टी यह सुनकर खुश हो गई उसे अपनी अहमियत का एहसास हो गया।

१२३५) उर्वशी का आकर्षक प्रस्ताव ठुकरा कर अर्जुन ने धर्म का पालन किया- सुख और दुख दोनों ही जीवन के ऐसे अंग है जो हर इंसान के जीवन में एक बार जरूर आते है। कई बार अच्छा काम करते करते भी परिणाम बुरा हो जाता है, कई बार हमारे साथ बुरा होने पर भी परिणाम सुखद होता है। हम परिणाम कैसा चाहते हैं। ये हमारे ऊपर ही निर्भर होता है। अगर हम सही रास्ते पर सच्चाई और ईमानदारी से चलें तो उसका परिणाम हमेशा अच्छा ही होता है।

ऐसा ही एक उदाहरण है महाभारत में। बात पांडवों के वनवास की है। जुए में हारने के बाद पांडवों को बारह वर्ष का वनवास और एक साल का अज्ञातवास गुजारना था। वनवास के दौरान अर्जुन ने दानवों से युद्ध में देवताओं की मदद की। इंद्र उन्हें पांच साल के लिए स्वर्ग ले गए। वहां अर्जुन ने सभी तरह के अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा हासिल की। गंधर्वों से नृत्य-संगीत की शिक्षा ली। अर्जुन का प्रभाव और रूप देखकर स्वर्ग की प्रमुख अप्सरा उर्वशी उस पर मोहित हो गई। स्वर्ग के स्वच्छंद रिश्तों और परंपरा का लोभ दिखाकर उर्वशी ने अर्जुन को रिझाने की कोशिश की। लेकिन उर्वशी अर्जुन के पिता इंद्र की सहचरी भी थी, सो अप्सरा होने के बावजूद भी अर्जुन उर्वशी को माता ही मानते थे। अर्जुन ने उर्वशी का प्रस्ताव ठुकरा दिया। खुद का नैतिक पतन नहीं होने दिया लेकिन उर्वशी इससे क्रोधित हो गई। उर्वशी ने अर्जुन से कहा तुम स्वर्ग के नियमों से परिचित नहीं हो। तुम मेरे प्रस्ताव पर नपुंसकों की तरह ही बात कर रहे हो, सो अब से तुम नपुंसक हो जाओ। उर्वशी शाप देकर चली गई। जब इंद्र को इस बात का पता चला तो अर्जुन के धर्म पालन से वे प्रसन्न हो गए।

१२३६) इस बात का रखेंगे ध्यान तो जीवन के प्रत्येक पग पर सफलता पाएं - संत एकनाथ को अपने उत्तराधिकारी की तलाश थी। उन्होंने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। एक दिन उन्होंने सभी शिष्यों को बुलाया और एक दीवार बनाने का निर्देश दिया। दीवार बनकर तैयार भी हो गई लेकिन तभी एकनाथ ने उसे तोड़ने का आदेश दे दिया। दीवार टूटते ही फिर से उसे बनाने को कहा। दीवार फिर बनी तो एकनाथ ने उसे फिर तुड़वा दिया।

दीवार ज्यों ही तैयार होती, एकनाथ उसे तोड़ने को कहते। यह सिलसिला चलता रहा। धीरे-धीरे उनके अनेक शिष्य उकता गए और इस काम से किनारा करने लगे। मगर चित्रभानु पूरी लगन के साथ अपने काम में जुट रहा। बार बार तोड़े जाने के बावजूद वह जरा भी नहीं झुंझलाया। एक दिन एकनाथ उसके पास गए और बोले, तुम्हारे सभी मित्र काम छोड़कर भाग गए, पर तुम अब तक डटे क्यों हो?

चित्रभानु बोला, गुरु की आज्ञा से पीछे कैसे हट सकता हूं। तब तक यह कार्य करता रहूंगा, जब तक आप मना न कर दें।

एकनाथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने चित्रभानु को अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हुए सभी शिष्यों से कहा, संसार में अधिकतर लोग ऊंची आकांक्षाएं रखते हैं और सर्वोच्च पद पर पहुंचना भी चाहते हैं। मगर वे नहीं जानते कि इसके लिए पात्रता भी जरूरी है।

वे पात्रता पाने का प्रयास नहीं करते या थोड़ा प्रयास करके पीछे हट जाते हैं। कोई भी लक्ष्य हासिल करने के लिए मात्र इच्छा और परिश्रम ही नहीं, दृढ़ता भी आवश्यक है।

१२३७) जीत की भूख ही बनाती है सफल, यह पूरी तरह सच है कि मन के हारे हार है मन के जीते जीत - मन की शक्ति ही वह ताकत है, जो किसी को भी वो हर काम करने की हिम्मत देती है, जिसे कोई इंसान ये सोचता है कि ये मुझसे नहीं होगा। हर व्यक्ति हर काम कर सकता है सिर्फ जरूरत है तो अपनी पूरी आंतरिक शक्ति से लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित करने की।

राघव क्रिकेट की प्रेक्टिस करने लगातार जाता था। बहुत प्रेक्टिस करने के बाद भी वह टीम में सिलेक्ट नहीं हो पाया। जब वह प्रेक्टिस करता तो उसकी मां मैदान में बैठकर उसका इंतजार करती रहती थी। इस बार जब नया प्रेक्टिस सीजन शुरू हुआ, तो वह चार दिन तक प्रेक्टिस पर नहीं आया। क्वार्टर फाइनल और सेमीफाइनल मैच के दौरान भी नहीं दिखा। राघव फाइनल मैच के दिन आया। उसने अपने कोच के पास जाकर कहा आपने मुझे हमेशा रिजर्व खिलाड़ियों में रखा और कभी क्रिकेट टीम में खेलने नहीं दिया लेकिन आज मुझे खेलने दीजिए। कोच ने कहा बेटा मुझे दुख है। मैं तुम्हें यह मौका नहीं दे सकता। फाइनल मैच के कालेज की इज्जत का सवाल है। मैं तुम्हें खिलाकर अपनी इज्जत दांव पर नहीं लगा सकता। राघव ने खूब मिन्नतें की। कोच का दिल पिघल गया। कोच ने कहा ठीक है जाओ खेलो लेकिन याद रखना कि मैंने यह निर्णय अपने कर्त्तव्य के विरुद्ध लिया है, ध्यान रखना मुझे शर्मिंदा ना होना पड़े।

मैच शुरु हुआ लड़का तूफान की तरह खेला उसने छ: गेंद पर छ: छक्के मारे। उस मैच का हीरो बन गया। उस मैच मैं टीम को शानदार जीत मिली। मैच खत्म होने के बाद कोच ने उस राघव के पास जाकर पूछा मैंने तुम्हें कभी इस तरह खेलते हुए नहीं देखा। यह चमत्कार कैसे हुआ?

राघव बोला कोच आज मेरी मां मुझे खेलते हुए देख रही थीं। कोच ने उस जगह मुड़कर देखा जहां उसकी मां बैठा करती थीं। कोच ने कहा बेटा तुम जब भी मैच की प्रैक्टिस करने आते थे। तब तुम्हारी मां हमेशा उस जगह बैठा करती थीं लेकिन आज मैं वहां किसी को नहीं देख रहा हूं।

१२३८) ऐसा होता है सच्चा प्यार जो बिना देखे भीड़ के बीच प्रिय को पहचान ले- कहते हैं प्रेम की पहचान के लिए कोई शब्द और साक्ष्य की जरूरत नहीं होती। प्रेम आंखों से ही झलक जाता है। पति-पत्नी हो या प्रेमी प्रेमिका, वे प्रेम की भावनाओं को आंखों से ही समझ जाते हैं। विद्वान कहते हैं कि वो रिश्ता प्रेम का हो ही नहीं सकता, जिसमें भावनाओं को शब्दों से बताया जाए। प्रेम तो वह होता है जिसमें बिना कुछ बोले और बिना कुछ सुनें हम अपनों की बात समझ जाएं।

पुराणों में नल-दमयंती की प्रेम कहानी ऐसी ही है। दमयंती एक सुंदर राजकुमारी थी। उसके राज्य से बहुत दूर किसी दूसरे राज्य में नल नाम का राजा था। नल बहुत पराक्रमी और सुंदर था। नल के राज उद्यान में दो हंस थे। उन्होंने नल को दमयंती की सुंदरता के बारे में बताया और कहा कि वो दमयंती को अपनी रानी बना ले। दोनों हंसों ने दमयंती को भी जाकर नल की सुंदरता और वीरता का बखान कर दिया। दमयंती ने नल को मन ही मन अपना पति मान लिया। दोनों में संदेशों का आदान-प्रदान होने लगा। कुछ समय के बाद दमयंती का स्वयंवर रखा गया। जिसमें न केवल धरती के राजा, बल्कि देवता भी आ गए। नल भी स्वयंवर में जा रहा था। देवताओं ने उसे रोककर कहा कि वो स्वयंवर में न जाए। उन्हें यह बात पहले से पता थी कि दमयंती नल को ही चुनेगी। सभी देवताओं ने भी नल का रूप धर लिया। स्वयंवर में एक साथ कई नल खड़े थे। सभी परेशान थे कि असली नल कौन होगा। लेनिक दमयंती जरा भी विचलित नहीं हुई, उसने आंखों से ही असली नल को पहचान लिया।

१२३९) संसार में ईमानदारी और देशभक्ति ही इंसान की सबसे महत्वपूर्ण पूंजी- गोपाल कृष्ण गोखले भारत के ऐसे स्वतंत्रता सेनानी, समाजसेवी, विचारक एवं सुधारक थे। जो अपने साथियों के बीच अपनी ईमानदारी का पर्याय माने जाते थे। उनके बचपन का एक रोचक प्रसंग है। जो गोखले जी की ईमानदारी का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण पेश करता है। जब वह महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले के काटलुक गांव में एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे। तब एक बार उनके अध्यापक ने ईमानदारी पर सभी विद्यार्थियों के विचार जानने की जिज्ञासा से एक प्रश्न किया। प्रश्न कुछ इस तरह था कि यदि तुम्हें रास्ते में एक हीरा मिल जाए तो तुम उसका क्या करोगे? एक विद्यार्थी ने कहा कि मैं इसे बेचकर धनवान बन जाऊंगा। दूसरे विद्यार्थी ने कहा कि वह उसे बेचकर विदेश यात्रा करूंगा। तीसरे विद्यार्थी ने कहा कि उस में हीरे के मालिक का पता लगाकर उसे यह हीरा लौटा दूंगा। तीसरे विद्यार्थी का उत्तर सुनकर अध्यापक चकित रह गए, फिर उन्होंने उस विद्यार्थी से कहा कि- मान लो बहुत पता लगाने पर भी उस हीरे का मालिक अगर तुम्हें न मिले तो? वह बोला- तब मैं हीरे को बेचूंगा और इससे मिले पैसे को देश की सेवा में लगा दूंगा। अध्यापक बालक का उत्तर सुनकर बहुत खुश हो गए और बोले कि शाबाश तुम बड़े होकर सचमुच देशभक्त बनोगे और यही विद्यार्थी अपनी ईमानदारी से ओत प्रोत विचारों के चलते महान स्वतंत्रता सेनानी गोपाल कृष्ण गोखले के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ईमानदारी एक ऐसा गुण है जो इंसान की सबसे बड़ी पूंजी है। यह पूंजी भले ही दिखाई न दे, पर इसका अहसास सामने वाले को स्वत: हो जाता है।

१२४०) सिद्धियों का प्रयोजन - एक वन में एक बहुत बड़े ऋषि का आश्रम था। उन्होंने कठिन तपस्या करके अनेक सिद्धियां प्राप्त की थी। इनमें से एक सिद्धि जीवन मृत्यु की भी थी। इसी कारण उनमें कुछ घमंड आ गया था। ऋषि का गर्व दूर करने के लिए एक दिन भगवान ने खुद उनके पास जाने का निश्चय किया। वह एक साधु का वेश धारण करके ऋषि के आश्रम पहुंचे। साधु को देखकर ऋषि अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने आदरपूर्वक उन्हें बैठाकर कुशलक्षेम पूछा। फिर भोजन और विश्राम के बाद दोनों सत्संग के लिए बैठे। साधु के रूप में आए भगवान ने ऋषि से पूछा, महाराज। सुना है, आपने अनेक सिद्धियां प्राप्त कर ली हैं? क्या आप किसी को मार भी सकते हैं? ऋषि बोले, आपने ठीक सुना है। मैंने तपस्या करके अनेक सिद्धियां प्राप्त कर ली हैं और मैं जिसे चाहूं, उसे मार सकता हूं। तभी आश्रम के पास से एक हाथी गुजर रहा था। उसे देखकर साधु ने ऋषि से कहा, क्या आप इस विशालकाय हाथी को भी मार सकते हैं? ऋषि ने गर्व से कहा, यह कौन-सी बड़ी बात है। इसके बाद ऋषि ने धरती से थोड़ी मिट्टी उठाई, मंत्र फूंका और हाथी पर दे मारा। देखते ही देखते उस विशालकाय हाथी के प्राण-पखेरू उड़ गए। साधु ने कहा, आपने मेरे कहने पर इस हाथी को मारा है, इसलिए इसकी हत्या का पाप मुझे लगेगा। अत: इसे जीवित कर दीजिए। ऋषि ने पुन: मंत्र फूंका और हाथी को जीवित कर दिया। साधु बोले, महाराज। आपमें तो विलक्षण शक्ति है। आपने हाथी को मार दिया और उसे पुन: जीवित भी कर दिया। परंतु इससे आपको या किसी को क्या मिला? इन चमत्कारों का क्या अर्थ है? इन सिद्धियों का क्या प्रयोजन है? साधु की बात सुनकर ऋषि को समझ आ गई कि जिस उपलब्धि पर उन्हें गर्व है, वह उपलब्धि तो मिथ्या मात्र है और उपलब्धि पर गर्व कैसा?

१२४१) वैराग्य का पाठ - महाराष्ट्र के रोजन नगर में एक ब्राह्मण हमेशा अपनी पत्नी से लड़ता रहता था। अक्सर वह पत्नी को धमकी देता, मेरी बात नहीं मानेगी, तो संत संतोबा पवार का शिष्य बन जाऊंगा। एक दिन ब्राह्मण की अनुपस्थिति में संत संतोबा भिक्षा मांगने उसके घर आए। ब्राह्मण पत्नी ने संत जी को बताया कि पति आपका शिष्य बनने की धमकी देता है। संत जी मुस्कुराकर बोले, बेटी, अब उसे कह देना कि बन जाओ शिष्य संतोबा जी के। मैं ऐसा मंत्र फूंक दूंगा कि फिर वह घर छोड़ने की धमकी नहीं देगा। अगले दिन ब्राह्मण घर आया। भोजन में विलंब देख पत्नी से झगड़ते हुए बोला, मैं घर छोड़कर बाबा जी बन जाऊंगा। पत्नी बोली- ठीक है, जाओ। ब्राह्मण बड़बड़ाता हुआ चल दिया और संत संतोबा जी के आश्रम में पहुंचकर बोला, महाराज, मुझे वैराग्य हो गया है। मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। संत जी ने उसे कुटिया में रहने की आज्ञा दे दी। सबेरे नदी में स्नान के बाद संतोबा जी ने कहा, अपने कपड़े त्यागकर लंगोटी धारण कर लो। उसने कपड़े उतार दिए और ठंड में ठिठुरने लगा। दोपहर में उसे कंदमूल खाने को मिले। स्वादहीन कंदमूल उसके गले से ही नहीं उतरा। पत्नी के साथ वह प्राय: भोजन में स्वाद न होने की बात पर ही झगड़ता था। कंदमूल न खा सकने के कारण वह भूख से बिलखने लगा। संतोबा जी उसकी पीड़ा समझ गए। बोले, वत्स, वैराग्य का पहला पाठ जिह्वा के स्वाद पर नियंत्रण करना है। तुम पहले पाठ के पहले ही दिन रोने लगे, तब संत कैसे बनोगे? उन्होंने ब्राह्मण को समझाते हुए कहा, अपने घर लौट जाओ। परिवार में प्रेमपूर्वक रहो और दूसरों की सेवा करो। तुम्हें गृहस्थ संत के रूप में

ख्याति मिलेगी। संत की सीख ने उसका जीवन बदल दिया। आगे चलकर वही संत नरोत्तम राव के नाम से विख्यात हुए।

१२४२) स्वाभिमान की रक्षा - युवावस्था में आई एक बड़ी समस्या ने डॉ. नॉर्मन को तनावग्रस्त और चिड़चिड़ा बना दिया। एक दिन उन्हें किसी ने बताया कि एक व्यक्ति उनकी समस्या सुलझा सकते हैं। डॉ. नार्मन उस व्यक्ति के पास पहुंचे और बोले, मेरी समस्या किसी भी तरह सुलझती ही नहीं। यह सुनते ही प्रेरक व्यक्ति बोले, अरे वाह, आपके पास एक समस्या है, बधाई हो। यह सुनकर अपने गुस्से को दबाते हुए वह बोले, बधाई किसलिए? आपको तो मुझसे सहानुभूति होनी चाहिए कि मैं बेहद परेशान हूं। प्रेरक व्यक्ति बोले, सहानुभूति क्यों भाई? यह सचमुच बधाई वाली बात है। इस समस्या से कोई बड़ी अद्भुत चीज निकलकर आपके जीवन में आनेवाली है। यह सुनकर नॉर्मन सोच में पड़ गए। कोई व्यक्ति समस्या को इस तरह से भी देख सकता है। उनका मूड बदल गया था। अब उन्होंने इतमीनान से उन्हें अपनी समस्या बताई। धैर्यपूर्वक उनकी पूरी बात सुनने के बाद सज्जन फिर मुस्करा कर बोले, इससे मत डरिए। ध्यान दीजिए, यह आपकी ओर देखकर आपको लुकाछिपी खेलने के लिए बुला रही है। इसमें कोई दिलचस्प चीज छिपी है। मजा इस में है कि आप इसे खोज लें। इसके बाद वह बोले, हर समस्या की एक कमजोर जगह होती है। उसे ढूंढ लें तो फिर समस्या तो हल होती ही है, इसके साथ ही अद्भुत सफलता और नए मार्गों का निर्माण भी करती है। नॉर्मन ने उनकी यह बात गांठ बांध ली। उन्हीं नॉर्मन को आगे चलकर पूरी दुनिया ने महान मोटिवेटर के रूप में जाना। उन्होंने ५० से ज्यादा पुस्तकें लिखी हैं। उनकी पुस्तकें लोगों को समस्याओं का स्वागत करना सिखाती है। यहां बात हो रही है डॉ. नॉर्मन विन्सेंट पील की। १९९३ में ९५ साल की उम्र में देहांत से पहले अपनी बेस्ट सेलर पुस्तकों के जरिए वह दुनिया को समस्याओं से जूझने की मजेदार राह दिखा चुके थे।

१२४३) शिवदेवी की रातें - बात उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध की है। मुंशीराम के पास रुपयों की कोई कमी नहीं थी और कोतवाल पिता के पद के कारण अहंकार भी बहुत था। उसका मन हमेशा आमोद-प्रमोद में लगा रहता था। इसके चलते मदिरापान से लेकर हर संभव दुर्गुण उसमें था। समय आने पर उसका विवाह शिवदेवी नाम की एक सुसंस्कृत कन्या से कर दिया गया, लेकिन इसके बाद भी मुंशीराम की विलासी जीवनशैली पहले की तरह जारी रही। पति की खराब जीवनशैली को देखकर शिवदेवी को बहुत दुख हुआ। उनका चरित्र त्याग, श्रद्धा, उदारता और प्रेम जैसे दैवीय गुणों से परिपूर्ण था। उन्होंने महसूस किया कि जो काम शब्दों से संभव नहीं, उसे प्रेम से ही किया जा सकता है। रोजाना पति के लौटने के बाद उसे भोजन कराकर ही वह खुद भोजन करती थीं। एक बार शराब के नशे में धुत मुंशीराम नाच-गाना देखकर देर रात घर पहुंचा। शिवदेवी ने उसके कपड़े बदले और सेवाभाव से पैर दबाना शुरू कर दिया। जब मुंशीराम की आंख खुली तो देखा कि आग के सामने आटा गुंथा रखा था और शिवदेवी पैर दबाते-दबाते बिना कुछ खाए-पिए भूखी सो चुकी थीं। यह देखकर मुंशीराम का हृदय पश्चाताप की आग से जल उठा। उसे महसूस हुआ कि उसकी वजह से शिवदेवी को न जाने कितनी रातें भूखी गुजारनी पड़ीं, लेकिन उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा और नि:स्वार्थ भाव से अपने कर्त्तव्य में लगी रहीं। इस घटना के बाद मुंशीराम का हृदय पूरी तरह से परिवर्तित हो गया। आगे चलकर वे

स्वामी श्रद्धानंद के नाम से विख्यात हुए और अपना जीवन समाज-सेवा में अर्पित कर दिया। गांधी जी ने स्वयं उन्हें महात्मा की उपाधि दी थी। नि:स्वार्थ प्रेम की शक्ति न केवल स्वयं को ऊंचा उठाती है, बल्कि दूसरे के भीतर भी महानता के गुण को प्रस्फुटित कर देती है।

१२४४) मकड़ी की मिसाल - एक राजा के पड़ोसी राजा ने उसके राज्य के कुछ हिस्से पर कब्जा कर लिया। राज्य के इस हिस्से को पाने के लिए राजा शत्रु से छह बार लड़ाई कर चुका था। हर बार उसे हारना पड़ा। बावजूद इसके, उसने एक बार फिर हिम्मत की और अपनी भूमि प्राप्त करने के लिए सातवीं बार शत्रु राज्य पर चढ़ाई की। उसके सैनिक वीरता से लड़े, किंतु वे सातवीं बार भी हार गए। राजा को प्राणों के लाले पड़ गए। वह अपनी जान बचाकर भागा। भागते भागते घने जंगल में पहुंच गया। जंगल में बैठकर सोचने लगा कि सातवीं बार हारने के बाद अब शत्रु से राज्य प्राप्त होने की कोई आशा शेष नहीं रही और मुझे अब इस जंगल में रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। वह बुरी तरह हताश था। इसी स्थिति में उधेड़बुन में खोये हुए कब उसे नींद आ गई, पता ही नहीं चला। सुबह वह उठा तो देखा कि एक मकड़ी उसकी तलवार पर जाला बना रही है। वह ध्यान से इस दृश्य को देखने लगा। मकड़ी बार बार गिरती और पुन: जाला बनाती हुई तलवार पर चढ़तीं। इस तरह वह दस बार नीचे गिरी और हर बार नए जोश और उत्साह से जाला बनाती हुई पुन: चढ़ी। राजा इस दृश्य को बड़ी गंभीरता से देख रहा था कि वहां एक साधु आए। राजा को निराश देखकर बोले- देखो राजन्। मकड़ी जैसा तुच्छ जीव भी बार बार हारकर निराश नहीं होता। युद्ध हारने को हार नहीं कहते, हिम्मत हारने को हार कहते हैं। राजा ने कहा- बाबा मैं तो सब कुछ हार चुका हूं। तब साधु ने कहा- ऐसा मत कहो, साहस बटोरकर अपने सैनिकों को पुन: एकत्रित करो और युद्ध करो। राजा ने वैसा ही किया और युद्ध में जीत गया। असफलता पर निराश होकर निष्क्रिय हो जाने के स्थान पर अधिकाधिक प्रयत्नशील हो जाना चाहिए, इससे सफलता एक दिन अवश्य मिलती है।

१२४५) स्वामी की शिक्षा - स्वामी दयानंद सरस्वती पंजाब में धर्मप्रचार कर रहे थे। झेलम में उनका प्रवचन चल रहा था। वे गृहस्थजनों को सात्विक जीवन बिताने तथा ईमानदारी से कमाई करने की प्रेरणा दे रहे थे। उनके प्रवचन के बाद वहां एक व्यक्ति पहुंचा और उसने भजन सुनाने की इच्छा व्यक्त की। उस व्यक्ति का नाम अमीचंद था। स्वामी जी ने उन्हें भजन सुनाने की इजाजत दे दी। उसके सुंदर और सुरीले भजन को सुनकर न केवल श्रोता अपितु स्वामीजी भी झूम उठे। सभा समाप्त होने के बाद जब वह व्यक्ति चला गया तो किसी ने स्वामी जी को बताया, जिस व्यक्ति ने अभी अभी भजन सुनाया, वह यहां तहसीलदार के पद पर है। भजन तो उसने बहुत सुंदर सुनाया, परंतु वह चरित्रहीन व भ्रष्ट है। उसने अपनी पत्नी को त्याग दिया है और रखैल को रखे हुए है। वह प्रतिदिन शराब व मांस का सेवन करता है, रिश्वत भी लेता है। यह सुनकर स्वामी जी गंभीर हो गए। उन्होंने किसी को कुछ कहा नहीं। अगले दिन प्रवचन में वह व्यक्ति पहुंचा और उसने फिर भजन सुनाने की इच्छा व्यक्त की। स्वामी जी ने उसे भजन सुनाने की स्वीकृति दे दी। सभी हैरान रह गए, लेकिन किसी ने कुछ नहीं कहा। भजन की समाप्ति के बाद स्वामी जी ने कहा,

अमीचंद, तुम हो तो हीरे, पर कीचड़ में धंसे हो। तुम्हारे हृदय में प्रभु के प्रति श्रद्धा है, तुम्हारे शब्दों में भी आकर्षण है, परंतु जब तक तुम व्यक्तिगत जीवन को दुर्गुणों से मुक्त नहीं करोगे, तुम्हारा भजन सुनाना व्यर्थ है। स्वामी जी के चंद शब्दों ने अमीचंद का जीवन बदल दिया। उसने घर पहुंचते ही शराब की बोतलें तोड़ डालीं। अगले ही दिन उसने पत्नी को प्रेमपर्वूक अपना लिया और रिश्वत न लेने का संकल्प लिया। आगे चलकर वही अमीचंद भजन गायक अमीचंद मेहता के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२४६) सम्राट का इलाज - जर्मनी के सम्राट जोसेफ प्रजा की समस्याओं को समझने के लिए भेष बदल कर घूम रहे थे। एक युवक ने उनका रास्ता रोक लिया और विनम्रता से कहा, मेरी मां दवा के अभाव में दम तोड़ रही हैं, क्या आप मेरी कुछ आर्थिक मदद कर सकते हैं? सम्राट ने उसे एक मुद्रा दी और उससे पता पूछने के बाद कहा, तुम डॉक्टर को बुलाकर लाओ। मैं उनकी और मदद का प्रयास करूंगा। जोसेफ तुरंत उसके घर जा पहुंचे। उन्होंने देखा कि एक वृद्धा चारपाई पर लेटी हुई है। एक बालक पास बैठा रो रहा था। आगंतुक ने अपने आप को डॉक्टर बताकर महिला से उसकी बीमारी के बारे में पूछा। महिला ने कहा, मेरी असली बीमारी चिंता है। मेरे पति ही हमारे घर का खर्च चलाते थे, पर हाल ही में उनकी मृत्यु हो गई। कमानेवाला कोई नहीं रहा। मेरे मरने के बाद मेरे अनाथ बच्चों का क्या होगा इसकी चिंता मुझे बीमार बनाए हुए है। सम्राट ने यह सुना तो उनका हृदय करुणा से भर गया। उन्होंने एक कागज पर कुछ लिखा और वृद्धा को देते हुए बोले, इस पर मैंने दवा लिख दी है, अपने बेटे को भेजकर मंगा लेना। उनके जाने के कुछ देर बाद वृद्धा का बेटा डॉक्टर को लेकर आया। वृद्धा ने बताया कि एक और डॉक्टर आकर गया और उसने इस पर्चे में दवा लिख दी है। वह बहुत ही दयालु था। उसके पुत्र के साथ आए डॉक्टर ने पर्चा हाथ में लिया और उसे पढ़ते ही वह आश्चर्य से बोला, माताजी, आपके पास एक ऐसा अनूठा डॉक्टर होकर गया है जो आपकी असली बीमारी को परख कर उसके स्थायी इलाज की व्यवस्था कर गया है। वह तो हमारे देश का राजा था। सम्राट जोसेफ ने उस कागज पर आदेश लिखा था, इस वृद्धा तथा इसके परिवार के निर्वाह के लिए राजकोष से धन की व्यवस्था की जाए।

१२४७) शुक्रिया राम मोहन राय - १०० साल से भी पुरानी बात है। जगह पश्चिम बंगाल के हुगली में राधानगर। उन दिनों आज की तरह सब भाई अलग अलग नहीं रहते थे। सबका आंगन एक ही होता था। ऐसे ही एक घर में जन्मे एक लड़के का लालन-पालन उसकी भाभी ने किया। लड़का किस दिन क्या पहनेगा या उसकी कौन सी कॉपी भरनेवाली है, भाभी को सब पता होता था। कभी किसी को लगा ही नहीं कि वह लड़के की भाभी है या मां है। घर में सबके विरोध के बावजूद सबसे लड़कर भाभी ने उसे पढ़ने के लिए घर से दूर भेजा। जब लड़का लौटा तो पता चला कि न तो उसकी भाभी जीवित हैं और न ही बड़ा भाई। दरअसल बड़े भाई के मरने पर ढोल नगाड़ों की आवाज के शोर में चीखती-चिल्लाती भाभी की आवाज दब गई। उसको बालों से पकड़कर घसीटते हुए श्मसान तक ले जाया गया और पति की जलती चिता में झोंक दिया गया। जनाने मर्द मंत्र पढ़ रहे थे और नामर्द औरतें सती मैया की जय के उद्घोष से पूरे माहौल में शोर भरी उदासी भर रही थीं। पूरे विधि-विधान से जीवित स्त्री को आग के हवाले करके सब लोग अपने अपने घरों

को वापस लौट गए। अगले दिन सुबह जब गांव का एक व्यक्ति शौच के लिए श्मशान की ओर गया तो उसने देखा कि वह भाभी तो आधी जली हुई नग्नअवस्था में झाड़ियों में छुपी हुई है। हर हाल में वह जिंदा रहना चाहती थी। शायद उसे देखना चाहती थी, जिसे कुछ बना देने के सपने के साथ खुद से दूर किया था। दोबारा पूरा गांव आया और इस बार हड्डियां जलती देखकर ही वापस लौटा। उस भाभी के देवर का नाम था राजा राम मोहन राय। जिसकी वजह से आज न जाने कितनी भाभियां जिंदा हैं। हालांकि हमारे देश में धन्यवाद कहने का रिवाज है नहीं, लेकिन हम जंगलियों के लिए राम मोहन राय किसी पैगंबर से कम नहीं थे।

१२४८) खुशियों का खजाना - एक बार कुछ लोगों का समूह एक मीटिंग में हिस्सा ले रहा था। मीटिंग शुरू हुए अभी कुछ ही समय हुआ था कि वक्ता महोदय ने सभी सदस्यों को गुब्बारे और मार्कर देते हुए कहा- आप सभी को गुब्बारा फुलाकर उस पर मार्कर से अपना नाम लिखकर साथवाले कमरे में रखना है। सभी ने ऐसा ही किया। अब वक्ता महोदय ने अगला आदेश दिया- अब सभी एक साथ जाकर अपने नाम का गुब्बारा उठा कर लाएं और इस काम के लिए आपके पास कुल दो मिनट का समय है। सभी सदस्य तेजी से रूम में घुसे और पागलों की तरह अपने नाम वाला गुब्बारा ढूंढने लगे। लेकिन किसी को भी अपने नाम वाला गुब्बारा नहीं मिल पा रहा था। वक्ता महोदय ने पूछा, अरे। क्या हुआ? आप सभी खाली हाथ क्यों हैं? क्या किसी को अपने नाम वाला गुब्बारा नहीं मिला? नहीं। हमने बहुत ढूंढा पर हमेशा किसी और के नाम का ही गुब्बारा हाथ आया। एक सहभागी सदस्य बोला। इस पर वक्ता ने उनसे कहा, कोई बात नहीं, आप लोग एक बार फिर कमरे में जाए, पर इस बार जिसे जो भी गुब्बारा मिले उसे अपने हाथ में लें और उस व्यक्ति को दे दें जिसका नाम उस पर लिखा है। इतना सुनकर सभी सदस्य एक बार फिर कमरे के अंदर चले गए। सभी ने एक दूसरे को उनके नाम के गुब्बारे दिए और बाहर निकल आए। वक्ता महोदय गंभीर होते हुए बोले, यही हमारे जीवन में भी हो रहा है। हर कोई अपने लिए ही जी रहा है, उसे इससे कोई मतलब नहीं कि वह किस तरह औरों की मदद कर सकता है। वह तो बस पागलों की तरह अपनी ही खुशियां ढूंढ रहा है, पर बहुत ढूंढने के बाद भी उसे कुछ नहीं मिलता। हमारी खुशी दूसरों की खुशी में ही छिपी हुई है। जब हम औरों को उनकी खुशियां देना सीख जाएंगे तो अपने आप ही हमें हमारी खुशियां मिल जाएंगी।

१२४९) दामाजी की दया - तेरहवीं शताब्दी में भारत में भयकर अकाल पड़ा। उन दिनों गोलकुंडा-बेदरशाही के अंतर्गत मंगलबेड़ा प्रांत का कारोबार संत दामाजी के जिम्मे था। अकाल में भूखे लोगों की चीत्कार उनसे सुनी न गई और उन्होंने बादशाह की अनुमति के बगैर अन्न भंडार प्रजा के लिए खोल दिया। संत दामाजी के सहायक सूबेदार से यह न देखा गया। उसने मामला बादशाह को पत्र लिखकर बताया तो बादशाह ने सिपाहियों को दामाजी को पकड़ लाने की आज्ञा दी। तभी हाथ में थैली और कंधे पर कंबल लिए एक किशोर बादशाह के दरबार में आया और बताया कि वह मंगलबेड़ा में दामाजी पंत के पास से आया है। बादशाह ने उसके आने का उद्देश्य पूछा। किशोर ने जवाब दिया कि उसका नाम बिठू है और वह दामाजी की दया पर पला है। उसने कहा- आपकी प्रजा भूख से मर रही थी और आपकी अनुमति लेने में विलंब होता। इसलिए उन्होंने भंडार खोलकर सबके प्राण बचाये। मैं उसी अन्न का मूल्य

चुकाने आया हूं। कृपया इसे सरकारी खजाने में जमा करें। यह सुनकर बादशाह को बड़ा पश्चाताप हुआ कि उन्होंने व्यर्थ ही एक बेकसूर को बंदी बनाने की आज्ञा दी। उधर खजांची ने जैसे ही उसकी थैली उड़ेली, वह फिर भर गई। उसने फिर उड़ेली, वह फिर भर गई। इस तरह दो-तीन बार हुआ। आखिर उसने अनाज की पूरी कीमत गिनकर बाकी उसे लौटा दिए। उसके जाने के बाद खजांची ने वह बात बादशाह को बताई। बादशाह से न रहा गया। वह बिठू के दर्शन के लिए उतावला हो गया और तुरंत मंगलबेड़ा के लिए रवाना हुआ। वहां पहुंचने पर उसने दामाजी से बिठू को बुलाने को कहा। दामाजी की समझ में कुछ भी न आया। तब बादशाह ने पूरा किस्सा सुनाया। दामाजी ने बादशाह से कहा कि वे बड़े ही भाग्यवान हैं, जो स्वयं भगवान ने उन्हें दर्शन दिए।

१२५०) मेहनत की कमाई - एक बार ईश्वरचंद्र विद्यासागर बाजार से होकर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक भिखारी मिला। भिखारी ने उनसे एक पैसा मांगा। ईश्वराचंद्र ने उससे पूछा, तुम एक पैसे का क्या करोगे? मैं उससे अपना पेट भरूंगा। अगर मैं तुम्हें दो पैसे दूं, तो तुम क्या करोगे? ईश्वरचंद्र ने उससे फिर पूछा। एक पैसे से मैं खाऊंगा तथा एक पैसे से अपनी बूढ़ी मां का पेट भरूंगा। भिखारी ने तपाक से उतर दिया। इस पर ईश्वरचंद्र बोले, अगर मैं तुम्हेंचार पैसे दूं, तो तुम क्या करोगे? दो पैसे से मैं अपना और अपनी मां का पेट भरूंगा और बाकी दो पैसे से कोई चीज खरीदकर बेचूंगा। ईश्वरचंद्र उसके उत्तर से बहुत खुश हुए। बोले, ठीक है, मेहनत करके पेट भरना ही सच्ची कमाई है। उन्होंने भिखारी को एक रुपया दिया और आगे बढ़ गए। अपने कहे अनुसार भिखारी ने वही किया। उसने बाकी पैसों से आम खरीदे और बेचे और इसी मेहनत एवं लगन के बल पर वह एक दिन फलों की एक बड़ी दूकान का मालिक बन गया।

१२५१) खुशहाली का रास्ता - एक बार एक बेटे ने अपने परोपकारी पिता से सवाल किया, अगर मुझे भगवान के साक्षात दर्शन हो जाएं और वह कहें कि कोई चीज मांगो, तो मैं क्या मांगू? पिता ने जवाब दिया, परमार्थ का धन। बेटे ने फिर कहा- दूसरी चीज मांगनी हो तो? पिता ने कहा, पसीने की कमाई मांगना। बेटे ने फिर पूछा, तीसरी चीज? जवाब मिला, उदारता, चौथी चीज- शर्म, पांचवी चीज अच्छा स्वभाव। बेटे ने फिर पूछा और कुछ मांगने के लिए कहें तो? पिता ने उत्तर दिया बेटा जिसको ये पांच चीजें यानी परमार्थ का धन, पसीने की कमाई, उदारता, शर्म और अच्छा स्वभाव मिल गया हो, उसके मांगने के लिए क्या बचता है। यही खुशहाली का रास्ता है।

१२५२) लकड़ी की चिप्पी - सर्दी की एक शाम को एक ईमानदार क्लर्क रुपयों की गड्डियाँ लेकर जा रहा था, तभी उस पर किसी ने हमला कर दिया। रुपये छीन लिए और उसे मार डाला। खून की धारा बहकर बर्फ पर जम गई। सुबह मालिक घटनास्थल का मुआयना करने गए। तभी उन्हें लकड़ी की एक चिप्पी पड़ी दिखाई दी। चुपचाप चिप्पी उठाकर उन्होंने जेब में डाल ली। दूसरे दिन सुबह जब वे अपने दफ्तर पहुंचे तो यह देखकर चकित रह गए कि जो छड़ी उनका दूसरा क्लर्क उपयोग करता है, उसकी एक जगह से चिप्पी निकली हुई है। उन्होंने पाई हुई चिप्पी जेब से निकाली और उसी जगह पर लगाकर देखा तो पाया कि वह वहाँ पर एकदम फिट बैठती है। सारा माजरा उनकी समझ में आ गया। उन्होंने फौरन क्लर्क को कैद कर लेने की आज्ञा दी और उसे जेल में डलवा दिया। लोगों को जब इस घटना की जानकारी

हुई तो वे हैरान रह गए कि लकड़ी की एक छोटी सी चिप्पी ने हत्यारे को कैसे रँगे हाथों पकड़वाया। कर बुरा तो हो बुरा।

१२५३) हत्यारा त्यौहार - हर वर्ष जब नील नदी अपने पूरे यौवन पर होती तो मिस्रवासी उसके स्वागत में एक शानदार जश्न मनाया करते, जिसमें वे नील देवता के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए मिस्र की सबसे खूबसूरत और कुमारी युवती की कुरबानी दिया करते थे। मिस्रवासियों का विश्वास था कि इस भेंट से प्रसन्न होकर नील देवता हमेशा उनके देश को धन-धान्य से भरा-पूरा रखेंगे और उनकी फसल को अपने पानी से सींचेंगे। इसके लिए बहुत छानबीन के बाद देश के कोने-कोने से सबसे सुंदरी कुमारी तलाश करके लाई जाती और उसे दुल्हन की तरह सजाया जाता। इसके बाद एक खूबसूरत नौका में बैठाकर उसे ले जाया जाता और नदी के पानी में, जहाँ खूब भँवर उठ रहे होते, यह दुल्हन देवता को नजर कर दी जाती। कहते हैं, पुराने मिस्र में यह त्यौहार सदियों तक इसी शान-शौकत से मनाया जाता रहा। लेकिन आज से हजार वर्ष पहले, जब फातमी खलीफाओं की हुकूमत यहाँ कायम हुई तो उनके हुक्म से कुमारी लड़की की कुरबानी रोक दी गई और उसकी जगह कपड़े की एक गुड़िया, जिसको अरबी में ओरूसा कहते हैं, सजा धजाकर नील नदी को भेंट की जाने लगी। असत्य के मार्ग पर हम चाहे जितनी दूर जा चुके हों, वहीं से लौट पड़ना उस पर चलते रहने से बेहतर है।

१२५४) बंदर आदमी का हिस्सा क्यों नहीं है - भगवान ने जब सृष्टि की रचना की तो सबसे पहले मिट्टी के जानवर बनाकर उन्हें तरह-तरह के आकार दिए। उसने उन्हें नाम नहीं दिए, यही सोचकर कि सब बन जाने पर उचित नाम दूंगा। लेकिन सारा काम अपने आप न कर पाने की वजह से उन्होंने दूसरे जानवरों से सहायता माँगी। ऐसी ही सहायता माँगते हुए वे बंदर के पास आए और कहा, चूंकि तुम्हारे हर हाथ में पाँच उँगलियाँ हैं, तुम मेरी ज्यादा सहायता कर सकोगे और अगर तुमने मन लगाकर काम किया तो मैं तुम्हें जानवरों की श्रेणी में न रखकर मनुष्यों में शामिल कर लूंगा। यह सुनकर बंदर मारे खुशी के उछल पड़ा। दूसरे दिन सवेरे जब भगवान निरीक्षण करने आए तो देखा कि सभी जानवर काम में लगे हैं। कुछ ज्यादा काम कर रहे हैं, कुछ कम। लेकिन बंदर सबसे धीरे काम कर रहा था, वह सिर्फ तालियाँ बजाता हुआ चिल्ला रहा था, मैं आदमी बनूंगा। मैं आदमी बनूंगा। जब भगवान ने यह सुना तो उसे बुलाकर कहा, मुझे दु:ख है, तुम कभी भी मनुष्य नहीं बन सकोगे और अपने इस आलस्य की वजह से हमेशा बंदर ही बने रहोगे।

१२५५) गधे का भाई - एक अंग्रेज साहब थे। पहाड़ पर उनका बंगला था। नीचे उनके सहायकों के बंगले थे। एक दिन अंग्रेज साहब बड़े मस्त मूड़ में बंगले के बरामदे में इधर से उधर देखते घूम रहे थे, तभी उनकी दृष्टि नीचे गई। उनका धोबी गधे के ऊपर कपड़ों का गट्ठर लादे उनके सहायकों के बंगले बंगले जाकर कपड़े दे रहा था। नीचे सबको कपड़े देकर धोबी ऊपर आया, पर गधा अधिक ऊंचाई पर नहीं चढ़ पा रहा था, अत: धोबी कपड़ों का गट्ठर उसकी पीठ पर से उठा, अपनी पीठ पर लाट साहब के बंगले पर आ पहुंचा। यह देख अंग्रेज साहब गुस्से से भर उठे। सहायकों के घर तो धोबी गधा लेकर गया था, पर उनके घर अकेला ही आया था। धोबी के सामने पड़ते ही वे छड़ी फर्श पर पटककर गुस्से से दहाड़े, देखो धोबी। हमारा सहायक लोग गद्धा। फिर तुम क्यों नहीं गद्धा? धोबी माजरा समझ गया। फौरन बोला, साहब, आप भी गद्धा।

१२५६) सेब का पेड़ - बूढ़ा दादा अपने घर के सामने सेब के पेड़ की छाया में बैठा हुआ अपने पोतों को लाल-लाल पके सेब खाता हुआ देख रहा था। बच्चे सेब खाने में लगे हुए थे, पर उनमें से कोई भी इन बढ़िया सेबों की तारीफ नहीं कर रहा था। बूढ़े दादा ने बच्चों को पास बुलाकर कहा, अब मैं तुम्हें बताऊँगा कि यह सेब का पेड़ यहाँ कैसे आया। बच्चे ध्यान से सुनने लगे। करीब पचास साल पहले, एक दिन मैं इसी बंजर जमीन पर यों ही उदास खड़ा हुआ अपने पड़ोसी से अपनी गरीबी का रोना रो रहा था। पड़ोसी बड़े भले आदमी थे। सुनकर बोले, अगर तुम सचमुच रुपये चाहते हो तो जहाँ इस वक्त तुम खड़े हो ठीक उसी जमीन के नीचे सौ से भी ज्यादा रुपये गड़े हुए हैं। चाहो तो खोद निकालो। उस समय मैं छोटा था। बिना ज्यादा सोचे-समझे उसी रात को मैंने वह जगह खोद डाली, पर काफी गहरे तक खोद डालने के बावजूद मेरे हाथ कुछ नहीं लगा। सुबह जब मेरे पड़ोसी ने वह गड्ढा देखा तो ठहाका मारकर हँस पड़े। फिर वे बोले, मैं तुम्हें सेब का यह नन्हा पौधा ईनाम में दे रहा हूं। इसे उस गड्ढे में रोप दो। कुछ वर्षों बाद तुम पाओगे कि तुम्हारे रुपये तुम्हें मिल गए हैं। मैंने पौधा लगा दिया। शीघ्र ही वह बढ़ने लगा और कुछ वर्षों के भीतर बहुत बड़ा पेड़ बन गया, जो तुम अपने सामने देख रहे हो। उस पेड़ के मीठे सेबों की आय मुझे साल भर में सैकड़ों रुपये से ऊपर बैठती है।

१२५७) बड़प्पन - एक सैनिक लकड़ी की टांग लगाए एक कस्बे में पहुंचा। अचानक उसे बुखार ने दबोच लिया। निरुपाय होकर उसे अपनी यात्रा स्थगित कर उसी कस्बे में शरण लेनी पड़ी। टोकरी बनाने वाले एक गरीब की बेटी एजी का ध्यान सहसा बीमार सैनिक की ओर गया। दयालु एजी रात दिन उसकी सेवा में लग गई। कुछ ठीक होने पर वह रोज उस सैनिक को देखने जाती और कुछ न कुछ पैसे लेकर लौट आती। सैनिक बड़ा ईमानदार था। एक दिन उसने एजी से पूछा, मेरी प्यारी बिटिया मुझे पता चला है कि तुम्हारे माता-पिता बहुत गरीब हैं, फिर तुम ये पैसे मुझे कहाँ से लाकर देती हो? मैं भूखा रहना पसंद करूंगा, पर गलत ढंग से लाकर दिए गए पैसे स्वीकार नहीं करूंगा। सैनिक की बात सुन एजी मुसकराई और बोली, आप बिलकुल निश्चिंत रहिए। ये पैसे जो मैं आपको देती हूं, मेरी खरी कमाई के पैसे हैं। रोज सुबह जब मैं स्कूल जाती हूं, रास्ते में पड़नेवाले जंगल से टोकरी भरकर फूल तोड़ती हूं। फिर उसे गाँव में बेच देती हूं। मेरे माता-पिता यह बात जानते हैं और मेरी इस बात से वे बड़े प्रसन्न हैं। वे कहते हैं कि बहुत से लोग हमसे भी खराब स्थिति में हैं। हम उनकी जितनी भी सहायता कर सकते हैं, हमें अवश्य करनी चाहिए। एजी की बात सुनकर सैनिक की आंखें भर आईं।

१२५८) एक धागे जितनी है जिंदगी की सच्चाई - एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया और उसने वजीर को आकाश-छूती एक मीनार में कैद कर दिया। वहां से कूद कर भागने का कोई उपाय न था। कूद कर भागता तो प्राण ही खो जाते। लेकिन वजीर जब कैद किया जा रहा था, तब उसने अपनी पत्नी के कानों में कुछ कहा। पहली ही रात पत्नी मीनार के करीब गई। उसने एक साधारण-सा कीड़ा दीवार पर छोड़ा और उस कीड़े की मूंछों पर थोड़ा सा मधु लगा दिया। कीड़े को मधु की गंध आयी। मधु को पाने के लिए कीड़ा मीनार की तरफ, ऊपर की तरफ सरकने लगा। मूंछ पर लगा था मधु, तो गंध तो आती ही रही और कीड़ा मधु की तलाश में सरकता गया। उस कीड़े की पूंछ से एक पतला से पतला रेशम का धागा पत्नी ने बांधा हुआ था। सरकता-सरकता कीड़ा उस तीन सौ फीट ऊंची मीनार के आखिरी हिस्से पर

पहुंच गया। वजीर वहां प्रतीक्षा कर रहा था। कीड़े को उठा लिया, पीछे बंधा हुआ रेशम का धागा पहुंच गया। रेशम के धागे में एक पतली सी सुतली बांधी, सुतली में एक मोटा रस्सा बांधा था और वजीर रस्से के सहारे उतर कर कैद से मुक्त हो गया। कहानी कहती है कि वजीर न केवल इस कैद से मुक्त हुआ, बल्कि उसे उस मुक्त होने के ढंग में जीवन की आखिरी कैद से भी मुक्त होने का सूत्र मिल गया। पतला-सा धागा भी पकड़ में आ जाए तो छुटकारे में कोई बाधा नहीं है। पतले से पतला धागा भी मुक्ति का मार्ग बन सकता है। लेकिन धागा पकड़ में आ जाए। एक छोटी-सी किरण पहचान में आ जाए, तो उसी किरण के सहारे हम सूरज तक पहुंच सकते हैं।

१२५९) मिलकर काम करो - समुद्र में भारंड नाम का एक विचित्र जीव रहता था। उसके मुख तो दो थे, किन्तु पेट एक था। एक दिन भारंड समुद्र में नहा रहा था, तभी एक छोटा सा फल समुद्र में बहता हुआ आया। भारंड ने उसे खाया तो वह उसे मीठा लगा। खानेवाला मुख बोला, आहा, कितना मीठा है यह फल। दूसरा मुख बहुत बिगड़ा और बोला, अरे, तू बड़ा स्वार्थी है। तूने मुझे उसका आधा भाग क्यों नहीं दिया? पहला मुख हंसकर बोला, अरे, तू इतना बिगड़ता क्यों है? क्या मैं और तू अलग अलग है? चाहे मैं खाऊं चाहे तू, बात तो एक ही है, पेट तो दोनों का एक ही है। दूसरे मुख ने उत्तर में कुछ कहा नहीं, पर मन-ही-मन इस अपमान का बदला लेने का उपाय सोचने लगा। अंत में एक दिन कहीं से उसे विष फल हाथ लग गया, तो पहले मुख को दिखाकर बोला, अरे देख, मुझे भी आज एक फल मिला है, पर तुझे इसमें से एक टुकड़ा भी नहीं दूंगा। पहला मुख चिल्लाया, यह क्या गजब करता है। इसे मत खा। यह विष फल है। इसमें जहर है। इसके खाने से मैं ही नहीं, तू भी मर जाएगा। पहले मुख ने बहुत मना किया, पर दूसरे मुख ने एक न सुनी। वह विष फल खा गया। नतीजा वही हुआ जो होना था। फल का विष पेट में जाकर फैल गया और भारंड छटपटाकर मर गया। सभी बड़ी गलतियों की तह में अभिमान ही होता है।

१२६०) हमेशा लगाइए जीत का नुक्ता - जब अब्राहम लिंकन वकालात किया करते थे, उनके पास एक आदमी अपने मुकदमे के कागजात लेकर आया, जिसमें वह लिंकन को अपना वकील बनाना चाहता था। सारे कागज को देखने के बाद लिंकन बोले, हालांकि कानूनी नुक्ते से आपका मुकदमा जीता जा सकता है और उन्होंने यह कहते हुए सारे कागजात उसे वापस करते हुए कहा- लेकिन सच्चाई के नुक्ते से यह मुकदमा जीतना असंभव है। बेहतर है, आप मेरे स्थान पर कोई दूसरा वकील कर लें, क्योंकि यह मुकदमा मेरे हाथ में लेते समय अदालत में भी मेरे मन में यह बात रह सकती है कि मैं झूठ बोल रहा हूं। हो सकता है मैं यही बात बहुत जोर से अदालत में बोल दूं। तब पासा एकदम पलट सकता है।

१२६१) राज की बात - यह कहानी तब शुरू हुई जब एक मछुआरा नदी किनारे बैठा मछली पकड़ रहा थज्ञ। जब उसने कांटा बाहर खींचा तो देखा कि मछली की जगह एक अत्यंत सुंदर जलपरी फंसी हुई है। उसने मछुआरे से कहा, तू चाहो तो मुझसे शादी कर सकते हो, लेकिन एक शर्त पर कि तुम मेरे विषय में कभी किसी को कुछ भी नहीं कहोगे। यह सुनकर मछुआरा बहुत खुश हुआ। वह उसे अपने साथ ले आया। उसने एक कुटिया बना ली और वह सुंदरी उसके साथ एक साधारण स्त्री की तरह रहने लगी। कई लोगों ने यह बात जानने की कोशिश की कि उस जैसे गरीब मछुआरे को इतनी

खूबसूरत बीवी कैसे मिल गई। लेकिन उसने राज को सबसे छिपाए रखा। कुछ साल बाद उसके घर संतानें हुई- दो पुत्र और दो पुत्रियां। वह मछुआरा अपने गांव का सबसे सुखी व्यक्ति था। लेकिन एक दिन, जब वह पीकर धूत था ता दूसरे मछुआरों ने उसे घेरकर उससे यह राज उगलवाना चाहा कि उसकी बीवी कहां से आई है। डींगे हांकते हुए उसने अपनी शादी का राज बता दिया। जैसे ही उसकी पत्नी ने यह बात सुनी, वह अपने पति को छोड़ फिर उस नदी में समा गई। उसकी बेटियां भी उसके साथ चली गई और जलपरी बन गई। बेटे पिता के साथ ही रहने लगे, लेकिन इन्होंने अपनी उस रहस्यमयी मां को फिर कभी भी नहीं देखा। राज की बात राज ही रहे तो अच्छा है।

१२६२) मछलियां पेट में - एक सिद्ध महात्मा अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे कि जंगल में उन्हें एक तालाब दिखा। तालाब में मछलियां भरी थीं। महात्माजी तालाब के किनारे रुक गए और तालाब में से मछलियां निकाल-निकालकर मुंह में भरने लगे। उनकी देखा-देखी उनके शिष्य भी तालाब में घुस गए और बड़े चाव से मछलियों को खाने लगे। महात्मा कुछ बोले नहीं और थोड़ी देर बाद शिष्य मंडली सहित आगे बढ़ गए। गांव के निकट उन्हें दूसरा तालाब मिला। इस तालाब में एक भी मछली नहीं थी। बस, महात्मा तालाब के किनारे खड़े होकर निगली हुई मछलियों को उगलने लगे। आश्चर्य, उनके पेट में से सभी मछलियां जीती-जागती निकलीं। भला शिष्य गुरुजी की नकल करने से क्यों चूकते। वे भी अपने अपने गले से अंगुली डालकर उल्टी करने लगे। बड़ी कठिनाई से उनके पेट से कुछ मरी हुई मछलियां निकलीं। तब महात्मा ने अपने शिष्यों से कहा, मूर्खों, जब तुममें इतनी शक्ति नहीं थी कि तुम मछलियों को मेरी तरह पेट में जीती जागती सुरक्षित रख सकते, तो तुमने व्यर्थ ही मेरा अनुकरण किया। नकल को अकल नहीं होती।

१२६३) जनता का विश्वास - चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस से एक शिष्य ने प्रश्न किया, शासन प्रभावशाली किस तरह बनाया जा सकता है? दार्शनिक ने उत्तर दिया, पर्याप्त भोजन, अस्त्र-शस्त्र तथा जनता का विश्वास प्राप्त करके। शिष्य ने पुन: प्रश्न किया, यदि तीनों में से किसी एक का त्याग करना पड़े, तो किसे छोड़े? अस्त्र-शस्त्र को। दार्शनिक ने कहा। और यदि शेष दोनों में से एक का त्याग करना पड़े, तब? कन्फ्यूशियस गंभीर हो गए, ऐसी स्थिति में भोजन का त्याग करें। अनंत काल में मानव मृत्यु का ग्रास बनता आया है। भोजन के अभाव में कुछ लोग और मरेंगे। यदि जनता का विश्वास त्याग दें तो कैसा रहे? शिष्य बोला। दार्शनिक ने बिना एक क्षण सोचे उत्तर दिया, ऐसी स्थिति में सर्वनाश हो जाएगा। कोई भी शासन भोजन और अस्त्र-शस्त्र के अभाव में चल सकता है, किन्तु जन-विश्वास के समाप्त होने पर एक क्षण भी नहीं टिक सकता। विश्वास का प्रधान अंग संतोष है।

१२६४) घोड़ा और बारहसिंगा - बहुत पहले, घोड़ा सारे चारागाह का अकेला मालिक था, तभी एक बाहरसिंगे ने आकर उसके चारागाह में चरना शुरू कर दिया। घोड़ा यह बरदाश्त नहीं कर सका। वह दौड़ा-दौड़ा आदमी के पास गया और बारहसिंगे से बदला लेने में उसकी सहायता करने की प्रार्थना की। ठीक है। आदमी ने जवाब दिया, पर जरा यह लगाम मुझे तुम अपने मुंह में लगाने दो। फिर देखो, हम बारहसिंगे का सफाया कैसे करते हैं। घोड़ा राजी हो गया। आदमी ने फौरन घोड़े के मुंह में नकेल डाली और उछलकर उसकी पीठ पर सवार हो गया। कुछ देर बाद बारहसिंगे को खोजकर

आदमी ने उसे मौत के घाट उतार दिया, पर वह स्वयं घोड़े पर से नहीं उतरा। तब से घोड़ा आदमी का गुलाम है। मुझे मेरे मित्रों से बचाओ, शत्रुओं से बचने का प्रबंध मैं स्वयं कर लूंगा।

१२६५) आखिर मिल ही गए - लगभग ५० वर्ष पहले बिछड़े तीन भाई जेम्स, माइकल और जॉन बकले ने जिंदगी में दोबारा मिलने की उम्मीद छोड़ दी थी। ४९ साल मिलने पर तीनों भाइयों के सब्र का बांध टूट गया और वो एक दूसरे से लिपटकर खूब रोए। १० दिसंबर १९६६ को जेम्स की शादी के मौके पर तीनों भाई आखिरी बार मिले थे। मां की मौत के बाद तीनों का बचपन चाइल्ड केयर सेंटर में गुजरा। ६५ वर्षीय जॉन सबसे छोटे हैं। भाई की शादी के बाद उन्होंने स्कॉटलैंड छोड़ दिया था। जबकि ७० वर्षीय जेम्स किलब्राइड में जाकर बस गए। वहीं, ६८ वर्षीय माइकल डम्फ्रीसशायर में रह रहे थे। बीच में माइकल और जेम्स का संपर्क तो स्थापित हो गया, लेकिन जॉन के बारे में कुछ नहीं पता था। जेम्स और माइकल छोटे भाई जॉन को तलाशने में जुटे रहे। काफी मशक्कत के बाद उन्हें जॉन का फोन नंबर मिल गया। जेम्स ने जब जॉन को फोन लगाया, तो उनकी पत्नी ने फोन उठाया। उन्होंने कहा मैं जेम्स बोल रहा हूं, क्या अपने भाई से बात कर सकता हूं। यह सुनकर जॉन की पत्नी रोने लगीं और जॉन को पता लगा, तो वो भी रोने लगे। इस तरह तीनों एक बार फिर मिल गए हैं।

१२६६) हमशक्ल - एक बिल्ली ने दो बच्चों को जन्म दिया। दोनों रंग रूप में एक जैसे थे। बिल्ली ने प्यार से एक का नाम पूपू रखा तथा दूसरे का नाम पीपी। दिन भर दोनों बच्चे हल्की गुनगुनी धूप में कुलाँचे भरते-खेलते रहते। बिल्ली ने सोचा, मैंने इनका नाम तो रख दिया है, मगर दोनों एक जैसे होने की वजह से मुझे यह लगता है कि मैं जब पूपू को पुकारती हूं तो पीपी आ जाता है और पीपी को बुलाती हूं तो पूपू आ जाता है। उसने लाख कोशिश की कि बच्चे अपना नाम पहचानें, मगर वे बड़े नासमझ थे। क्या करें? तभी उसे एक उपाय सूझा। क्यों न पूपू के गले में लाल फीता बाँध दें और पीपी के गले में नीला, ताकि वह उन्हें पुकारे तो जो भी पास आए, उसे सही नाम से पहचान सके और उन्हें भी समझा सके कि तुम पूपू नहीं, पीपी हो। बिल्ली ने यही किया। अब वह पुकारती-पूपू तो पीपी दौड़ता। उसे वह टोक देती, तुम पीपी हो। धीरे धीरे बच्चे अपने नाम को खुद पहचानने लगे। वह पुकारती, पीपी। तो पीपी दौड़कर उसके पास आता। अब उनकी शक्ल से हू-ब-हू पहचानने में उसे कतई गड़बड़ नहीं होती थी। हर पहेली बूझी जा सकती है।

१२६७) पछतावा - ये जूते कितने के हैं? साहब, आठ सौ पचास रुपए के। दुकानदार से भाव सुनकर धीरज बाबू ने अपने बेटे को धीरे से समझाया, पुनीत। मैं तुम्हें दूसरी दुकान लिए चलता हूं। ये जूते बहुत महंगे हैं। दोनों उस दुकान से बाहर निकलने लगे। अरविंद के पिताजी और मेरे पिताजी एक ही पद पर हैं, लेकिन दोनों में कितना अंतर है, उसके पिताजी उसकी हर मांग पूरी करते हैं, उसकी हर चीज कितनी अच्छी होती है और मेरे पिताजी कोई चीज खरीदते समय कितना सोचते हैं? अपने मन पसंद जूतों को न खरीद पाने के कारण पुनीत मन ही मन झल्ला रहा था और अपने पिताजी की कंजूसी पर उसे क्रोध भी आ रहा था। मैं जो कपड़े पहनता हूं, उससे अच्छे तुम्हें पहनाता हूं। तुम तसल्ली रखो, मैं तुम्हें अच्छे जूते दिलवाऊंगा। बेटा, ईमानदारी के पैसों की फिजूल में खर्च करने की मैं हिम्मत नहीं

जुटा पाता हूं। तुम बड़े होकर समझोगे कि ईमान और बेईमानी के धन में क्या फर्क होता है। अपनी बात पूरी कर पिताजी ने पुनीत के सिर पर हाथ रख दिया। पुनीत चाहकर भी निगाहें ऊपर नहीं कर पा रहा था। पिताजी की बात सुनकर पुनीत को अपनी सोच पर पछतावा हो रहा था, शायद इसीलिए उसके मन में अरविंद के पिताजी अब उसके लिए बुराई और अपने पिताजी श्रद्धा के पात्र बन गए थे।

१२६८) हीरा और भूख - एक मुर्गा खाने के लिए खेत में कीड़े ढूंढ रहा था। वहीं एक हीरा अपनी पूरी आभा लिए तारे की तरह जगमगा रहा था। यह देखकर सारी मुर्गियां वहां दौड़ी आईं और हीरे की प्रशंसा करने लगीं। पर मुर्गा वहां नहीं ठहरा। कीड़े खोजता हुआ वह आगे बढ़ गया। तब एक मुर्गी ने उसे टोका, अरे बेवकूफ। ऐसा हीरा तो भाग्यशालियों को मिलता है और एक तुम हो जो उसे छोड़कर आगे बढ़े जा रहे हो। मुर्गे ने मुस्कराकर जवाब दिया, यह हीरा मेरे किस काम का, जो मेरी भूख भी नहीं मिटा सकता। जिसकी जरूरत होती है वह वही बहुमूल्य।

१२६९) गधा और गुलामी - एक छोटे से द्वीप में एक गधा रहता था। वह सारे दिन इधर-उधर घूमता रहता। एक दिन उसे महसूस हुआ कि यह द्वीप बहुत बड़ा है। घूमते-घूमते वह बहुत थक जाता है। नई जगह जाना चाहिए। द्वीप में रहनेवाले अन्य जीव-जंतुओं ने उसे रोका, मित्र। भला तुम्हें यहाँ क्या परेशानी है जो हम सबको छोड़कर जा रहे हो? पर गधा था सनकी। उसने किसी की एक न सुनी। द्वीप से लगे समुद्र में कूदा और तैरकर दूसरे किनारे जा पहुंचा। किनारे से लगा हुआ हरा-भरा जंगल था। उसे वहाँ तमाम जानवर मिले। नये साथी थे, नई-नई जगह थी। हरी-हरी घास चरता। तालाब में पानी पीता। आराम से सोता। कुछ ही दिनों में वह अच्छा खासा मोटा हो गया। एक दिन एक किसान जंगल से गुजर रहा था। उसने गधे को खरगोश के साथ बतियाते देखा। उसकी अच्छी-खासी कद काठी देखकर किसान उस पर मोहित हो गया। किसान को अपनी तरफ आता देख खरगोश सर्र से भाग गया। किसान ने लपककर गधे के गले में रस्सी डाली और उसे घर ले आया। अब तो किसान उससे मनमाना काम लेता और खाने को थोड़ा सा चारा डाल देता। किसान के पास एक लड़का भी काम करता था। उसका भी हाल ठीक गधे जैसा ही था। एक दिन जब किसान बुखार में पड़ा कराह रहा था, गधे ने अपने उस मित्र लड़के से प्रार्थना की कि वह उस पर तरस खाए और इस राक्षस किसान से छुटकारा दिलवाए। लड़का स्वयं किसान से चिढ़ बैठा था। उसने गधे को ही नहीं, अन्य सभी जानवरों को भी छोड़ दिया। गधे को अपनी गलती का एहसास हो चुका था। वह खुद तो अपने द्वीप लौटा ही, नये मित्रों को भी साथ लेता गया।

१२७०) संगति का प्रभाव - एक बार एक धनी व्यक्ति ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस से निवेदन किया, भगवान, यह रुपयों की थैली मैं आपके चरणों में भेंट करना चाहता हूं। कृपया आप इसे स्वीकार करें। परमहंस मुस्कराए, भाई, मुझे माया के जाल में न फंसाओ।

मैं तुम्हारा धन ले लूंगा तो मेरा चित्त उसमें लग जाएगा। इससे मेरी मानसिक शांति भंग होगी। धनिक ने तर्क दिया, स्वामी। आप तो परमहंस हैं आपका मन उस तेल-बिंदु के समान है जो कामिनी-कंचन के महासमुद्र में स्थित होकर भी सदैव उससे अलग रहेगा। परमहंस गंभीर हो गए, भाई, क्या तुम नहीं जानते कि अच्छे से अच्छा तेल भी यदि बहुत दिनों

तक पानी के सम्पर्क में रहे तो वह अशुद्ध हो जाता है और उससे दुर्गंध आने लगती है। धनी ने अपना आग्रह त्याग दिया। मोह माया जीवन का बंधन है।

१२७०) शिक्षक का पेशा - एक बार बाल गंगाधर तिलक अपने कुछ मित्रों के साथ बात कर रहे थे। उन दिनों उन्होंने वकालत पास की थी। एक मित्र बोला, तिलक, वकालत तो तुमने पास कर ली है, किन्तु आगे के लिए क्या सोचा है? क्या अब सरकारी नौकरी करोगे या किसी कोर्ट कचहरी में वकालत? मित्र की बात सुनकर तिलक बोले- अब तुमने पूछ ही लिया है तो सुन लो। मुझे ऐसे पैसे की जरूरत नहीं जो मुझे सरकार का गुलाम बना कर रखे। मैं ऐसी वकालत नहीं करना चाहता जहां दिन में कई बार झूठ बोलना पड़े। बात आई-गई हो गई। सभी अपने अपने कामों में लग गए। एक दिन उनकी मित्र मंडली को पता चला कि बाल गंगाधर ने एक स्कूल में पढ़ाना शुरू कर दिया है। तनख्वाह है तीस रुपये महीना। यह सुनकर उस मित्र को सबसे ज्यादा आश्चर्य हुआ जिसने कुछ समय पूर्व उनका मन जानना चाहा था। वह सीधे तिलक के पास जा पहुंचा और बोला- यह तुमने क्या किया तिलक? वकालत की उपाधि लेकर अध्यापक क्यों बने? क्या तुम शिक्षकों की आर्थिक स्थिति के बारे में नहीं जानते? दोस्त, जब तुम अंतिम सांस लोगे, तब तुम्हारे दाह-संस्कार के लिए भी घर में कुछ नहीं होगा। मित्र की बात सुनकर तिलक मुस्कुराते हुए बोले- मैंने जो पेशा चुना है वह बहुत पवित्र है, ईमानदारी वाला है। रही अंतिम समय की बात तो मेरे दाह संस्कार का प्रबंध नगरपालिका कर देगी। मैं इसकी चिन्ता क्यों करूं? तिलक की बात सुनकर मित्र हैरान रह गया। उसने आज तक संतुष्टि के ऐसे भाव किसी व्यक्ति में नहीं देखे थे। वह मन ही मन तिलक के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो गया।

१२७१) एक पेच कसने के २० हजार - मोहनलाल बहुत बड़े उद्योगपतियों में से एक थे। उनका नाम और उनकी पहचान उनके कारखाने की वजह से बढ़ती जा रही थी जहाँ हजारों मजदूर और कारीगर काम किया करते थे। कारखाने से उन्हें हर साल लाखों का मुनाफा होता और इसी के कारण हजारों मजदूरों के घर में चूल्हा जलता था। एक दिन अचानक उनके कारखाने में एक मशीन खराब हो गई जिसको बनाने के लिए दूर दूर से इंजीनीयर आए लेकिन वो उसे सही करने में असफल साबित हुए। मशीन की खराबी के कारण मोहनलाल को लाखों का नुकसान हो रहा था।

कुछ दिन बाद वहां एक इंजीनियर आया और उसने दावा किया कि वह उस मशीन को सही कर सकता है। यह सुनते ही मोहनलाल उसे अपने कारखाने के अंदर ले गए। अंदर पहुंचते ही इंजीनियर ने एक शर्त रखी कि मशीन ठीक हो जाने के बाद पैसे का भुगतान या अपना मेहनताना वे खुद तय करेंगे। मोहनलाल अब कर भी क्या सकते थे क्योंकि उनका हर दिन लाखों का नुकसान हो रहा था इसलिए उन्होंने इस शर्त को स्वीकार लिया।

इंजीनियर ने मशीन का निरीक्षण किया और उसने पाया कि मशीन का एक पेंच ढीला है, उसने उस पेंच को कस दिया और मशीन दोबारा फिर से चालू हो गई। यह सब देख मोहनलाल बहुत खुश हुए और उन्होंने उससे अपना मेहताना तय करने की बात की। इंजीनियर ने उनसे मशीन को ठीक करने का २०००० रुपये माँगा। मोहनलाल इस बात से बहुत चकित हुए कि सिर्फ एक पेंच कसने का ही केस कोई बीस हजार रुपये ले सकता है लेकिन उन्होंने अपना वादा पूरा किया

और पैसे देते हुए पूछा- सिर्फ एक छोटा सा पेंच कसने का बीस हजार लेना, कुछ ज्यादा नहीं हो रहा है?

इस पर इंजीनियर ने कहा- महोदय, मैंने तो पेंच कसने का सिर्फ १ रुपया ही लिया है, बाकी १९९९९ रुपये इतनी बड़ी मशीन में कौन सा पेंच ढीला है, उसे देखकर कसने का लिया है। मोहनलाल उस इंजीनीयर की चतुराई और बातों से बहुत प्रभावित हुए और उसे अच्छी वेतन के साथ एक उच्च पद पर नौकरी पर रख लिया गया। किसी भी चीज में या कहीं भी अपनी मेहनत की कीमत अपनी हुनर से की जाती है। हुनर की कीमत हमेशा अनमोल रहती है।

१२७२) श्रद्धा नहीं तो बेड़ा गर्क - एक साधु था। उसने अपने चेले से कहा, राम नाम जपने से मनुष्य हर संकट से पार हो सकता है। गुरु वाक्य पर शिष्य को श्रद्धा तो थी, लेकिन पूरा-पूरा विश्वास नहीं था कि राम नाम चाहे जिस संकट से उबार देगा। एक बार उसे नदी पार करनी थी। वह बेचारा अर्धश्रद्धालु राम नाम रटता हुआ नदी पार करने लगा। जैसे जैसे गले तक पानी में गया और वहां से गोते खाता हुआ बड़ी मुश्किल से वापस आ गया। गुरु से कहने लगा, लगातार नाम स्मरण किया, लेकिन पानी कम नहीं हुआ। सब अकारथ गया। गुरु बोला, अनेक बार नाम-स्मरण किया, इसलिए अकारथ गया। अगर नाम स्मरण में श्रद्धा थी तो एक बार किया हुआ नाम स्मरण तुझे काफी क्यों नहीं लगा? श्रद्धा कम थी इसीलिए तूने बार बार नाम स्मरण किया और इसीलिए गोते खाये।

१२७३) जब विनोबाजी ने गांधीजी का भेजा पत्र फाड़ दिया - आचार्य विनोबा भावे के पास संपूर्ण देश से पत्र आया करते थे, जिन्हें वे बहुत संभालकर रखते थे। जिन पत्रों का जवाब देना होता, उनका तत्काल जवाब देते और सभी पत्रों को एक व्यवस्थित फाइल में रख देते। एक बार किसी सिलसिले में कमलनयन बजाज भी विनोबाजी की पत्रों के विषय में सावधानी व सजगता को जानते थे। कुछ देर बाद एक पत्र आया, जिसे विनोबाजी ने ध्यान से पढ़ा और फिर कुछ सोचकर फाड़ दिया। विनोबाजी की आदत के विपरीत इस व्यवहार को देखकर पास बैठे कमलनयन बजाज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उत्सुकतावश पूरे पत्र के टुकड़ों को जोड़कर पढ़ा तो पाया कि वह पत्र गांधीजी ने भेजा था और उसमें विनोबाजी के कार्य व्यवहार की प्रशंसा थी। बड़े आश्चर्य से बजाज ने विनोबाजी से पूछा- आपने इतने काम का पत्र फाड़कर क्यों फेंक दिया? विनोबाजी ने उत्तर दिया- यह पत्र मेरे लिए बेकार था। बापू ने स्नेहवश मेरी प्रशंसा तो कर दी, लेकिन दोष एक भी नहीं बताया। प्रशंसा किस महत्व की? मेरे दोष कोई बताए तो मैं उन्हें दूर करने का प्रयास करूं। उससे मेरा लाभ होगा, इसलिए मैंने यह पत्र महत्वपूर्ण न मानकर फाड़ दिया।

तात्पर्य यह कि प्रशंसा प्रोत्साहन देती हैं, किंतु दोषान्वेषण उत्तम से अतिउत्तम बनने की दिशा में अग्रसर करता है और व्यक्ति को अहंकारमुक्त रख सच्चे अर्थों में बड़ा बनाता है।

१२७४) सदा नहीं डरते - किसी नगर में एक सेठ रहता था। वह बड़ा ही उदार और परोपकारी था। उसके दरवाजे पर जो भी आता था, वह उसे खाली हाथ नहीं जाने देता था और दिल खोलकर उसकी मदद करता था। एक दिन उसके यहां एक आदमी आया उसके हाथ में एक पर्चा था, जिसे वह बेचना चाहता था। उसके पर्चे पर लिखा था- सदा न रहे।

इस परचे को कौन खरीदता, लेकिन सेठ ने उसे तत्काल ले लिया और अपनी पगड़ी के एक छोर में बांध लिया। नगर

के कुछ लोग सेठ से ईर्ष्या करते थे। उन्होंने एक दिन राजा के पास जाकर उसकी शिकायत की जिससे राजा ने सेठ को पकड़वाकर जेल में डलवा दिया। जेल में काफी दिन निकल गए। सेठ बहुत दुखी था। क्या करे, उसकी समझ में कुछ नहीं आता था। एक दिन अकस्मात सेठ का हाथ पगड़ी की गांठ पर पड़ गया। उसने गांठ को खोलकर पर्चा निकाला और पर्चा पढ़ा। पढ़ते ही उसकी आंखें खुल गईं। उसने मन ही मन कहा- अरे, तो दुख किस बात का। जब सुख के दिन सदा न रहे तो दुख के दिन भी सदा न रहेंगे।

इस विचार के आते ही वह जोर से हंस पड़ा और बहुत देर तक हंसता रहा। जब चौकीदार ने उसकी हंसी सुनी तो उसे लगा, सेठ मारे दुख के पागल हो गया है। उसने राजा को खबर दी। राजा आया और उसने सेठ से पूछा- क्या बात है? सेठ ने राजा को सारी बात बता दी। उसने कहा- राजन आदमी दुखी क्यों होता है? सुख-दुख के दिन तो सदा बदलते रहते हैं। सुख और दुख तो जीवन के दो पहलू हैं। यदि आज सुख है तो हो सकता है कि कल हमें दुख का मुंह भी देखना पड़े। यह सुनकर राजा को बोध हो गया। उसने सेठ को जेल से निकलवाकर उसके घर भिजवा दिया। सेठ आनंद से रहने लगा, क्योंकि उसे ज्ञात हो गया था कि सुख के साथ-साथ दुख के दिन भी सदा नहीं रहते।

१२७५) अनोखी अंगूठी - राजा चंद्रसेन का राज्य और कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनके राज्य में एक से बढ़कर एक विद्वान थे। एक दिन राजा ने उनकी बुद्धिमानी की परीक्षा लेने की सोची। उसने सभी विद्वानों को दरबार में बुलाया और कहा- मुझे स्वप्न में एक अंगूठी दिखाई दी। जिसे पहनकर मुझे बहुत खुशी होगी, लेकिन जब भी मैं उसे देखूंगा तो उदास हो जाऊंगा। क्या आप लोग मेरे लिए ऐसी अनोखी अंगूठी ला सकते हैं? किसी भी विद्वान के पास राजा की बात का जवाब नहीं था। उन्हें तो वैसे ही राजा की बात अजीब लग रही थी। वे सभी सोच में पड़ गए कि भला ऐसी अंगूठी कहां मिलेगी। बहुत देर तक विचार-विमर्श करने के बाद उन्होंने अंगूठी बनवाने का निश्चय किया। कुछ दिनों बाद उन्होंने वह अंगूठी राजा के भेंट कर दी। राजा खूबसूरत अंगूठी को पहनकर बहुत खुश हुआ। लेकिन जैसे ही उसने अंगूठी को गौर से देखा, वह उदास हो गया। विद्वानों ने अंगूठी पर लिखवा दिया था- एक दिन सब कुछ नष्ट हो जाएगा।

१२७६) भक्त का अहंकार - एक बार देवर्षि नारद ने भगवान विष्णु से पूछा, भगवान आप का सबसे बड़ा भक्त कौन है। भगवान विष्णु नारद के मन की बात समझ गए। उन्होंने कहा, अमुक गांव का अमुक किसान हमारा सबसे प्रिय भक्त है। भगवान विष्णु का उत्तर सुनकर नारद जी को निराशा हुई।

वह बोले, भगवान आपका प्रिय भक्त तो मैं भी हूं फिर सबसे प्रिय क्यों नहीं। भगवान विष्णु ने कहा, तुम उस किसान के यहां जाकर उसकी दिनभर की दिनचर्या देखकर मुझे आकर बताओ फिर मैं बताऊंगा। नारद उस विष्णु भक्त किसान के घर पहुंचे। उन्होंने देखा कि किसान सुबह उठकर कुछ देर भगवान विष्णु का स्मरण किया फिर रूखी सूखी रोटी खाकर हल बैल लेकर खेत जोतने चला गया। शाम को लौटा तो बैलों को चारा पानी दिया। उसके बाद थोड़ी देर के लिए भगवान का नाम लिया और रात को खाना खाकर सो गया। एक दिन उस किसान के घर रहकर नारद जी भगवान विष्णु के पास आए और उसकी आंखों देखी दिनचर्या के बारे में बताया। अंत में नारद ने कहा, प्रभु उसके पास तो आपका नाम लेने का समय

भी नहीं है फिर वह आपका सबसे प्रिय भक्त कैसे बन गया। मैं तो दिन रात आपका नाम जपने के सिवाय कोई काम करता ही नहीं फिर भला वह किसान कैसे आपका सबसे प्रिय भक्त बन गया।

भगवान विष्णु उस बात को टालते हुए नारद को एक लबालब भरा अमृत कलश देते हुए कहा, देवर्षि तुम इस कलश को लेकर त्रैलोक्य की परिक्रमा करो। लेकिन यह ध्यान रखना कि इसकी एक बूंद भी छलकने न पाए। यदि एक बूंद भी नीचे गिरी तो तुम्हारा अब तक का किया गया सारा पुण्य खत्म हो जाएगा।

नारद अमृत कलश लेकर तीनों लोकों की यात्रा पर निकल गए और यात्रा पूरी करके वह भगवान विष्णु को कलश देते हुए कहा, प्रभु कलश से एक बूंद भी अमृत नहीं छलकने पाई। भगवान विष्णु ने कहा- नारद, परिक्रमा के दौरान तुमने कितनी बार मेरा नाम स्मरण किया था। नारद ने कहा, प्रभु परिक्रमा के दौरान तो मेरा ध्यान इस कलश पर केंद्रित था इसलिए एक बार भी आपका स्मरण नहीं कर पाया। भगवान विष्णु ने हंस कर कहा, जब तुम परिक्रमा के दौरान एक बार भी अपना ध्यान कलश से हटाकर मेरा स्मरण नहीं कर सके जब कि वह किसान अपने सभी काम करते हुए भी कम से कम दो बार नियमित रूप से मेरा स्मरण करना नहीं भूलता तो वह सबसे बड़ा भक्त हुआ या आप। सबसे प्रिय भक्त वो होता है जो अपना कर्म करते हुए प्रेम से मेरा स्मरण भी करता है। नारद जी को सबसे प्रिय भक्त होने का अहंकार खत्म हो गया।

१२७७) कर्ण और अर्जुन - द्रोणाचार्य ने पाण्डव तथा कौरव राजकुमारों के शस्त्रास्त्र विद्या की परीक्षा लेने का विचार किया। इसके लिये एक विशाल मण्डप बनाया गया। वहां पर राज परिवार के लोग तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित हुये। सबसे पहले भीम एवं दुर्योधन में गदा युद्ध हुआ। दोनों ही पराक्रमी थे। एक लम्बे अन्तराल तक दोनों के मध्य गदा युद्ध होता रहा किन्तु हार-जीत का फैसला न हो पाया। अन्त में गुरु द्रोण का संकेत पाकर अश्वत्थामा ने दोनों को अलग कर दिया।

गदा युद्ध के पश्चात अर्जुन अपनी धनुर्विद्या का प्रदर्शन करने के लिये आये। उन्होंने सबसे पहले आग्नेयास्त्र चलाकर भयंकर अग्नि उत्पन्न की फिर वरुणास्त्र चला कर जल की वर्षा की जिससे प्रज्वलित अग्नि का शमन हो गया। इसके पश्चात उन्होंने वायु-अस्त्र चलाकर आंधी उत्पन्न की तथा पार्जन्यास्त्र से बादल उत्पन्न कर के दिखाया। यही नहीं अन्तर्ध्यान-अस्त्र चलाया और वहां पर उपस्थित लोगों की दृष्टि से अदृश्य होकर सभी को आश्चर्य में डाल दिया। वहां पर उपस्थित समस्त जन उनकी धनुर्विद्या की प्रशंसा करने लगे।

अचानक उसी समय एक सूर्य के समान प्रकाशवान योद्धा हाथ में धनुष लिये रंगभूमि में उपस्थित हुये। वे कर्ण थे। कर्ण ने भी उन सभी कौशलों का प्रदर्शन किया जिसका कि प्रदर्शन अर्जुन पहले ही कर चुके थे। अपने कौशलों का प्रदर्शन कर चुकने के पश्चात कर्ण ने अर्जुन से कहा कि यदि तुम्हें अपनी धनुर्विद्या पर इतना ही गर्व है तो मुझसे युद्ध करो। अर्जुन को कर्ण का इस प्रकार ललकारना अपना अपमान लगा। अर्जुन ने कहा, बिना बुलाये मेहमान की जो दशा होती है, आज मैं तुम्हारी भी वही दशा कर दूंगा। इस पर कर्ण बोले, रंग मण्डप सबके लिये खुला होता है, यदि तुममें शक्ति है तो धनुष उठाओ।

उनके इस विवाद को सुनकर नीति मर्मज्ञ कृपाचार्य बोल उठे, कर्ण। अर्जुन कुन्ती के पुत्र हैं। वे अवश्य तुम्हारे साथ युद्ध के लिये प्रस्तुत होंगे। किन्तु युद्ध के पूर्व तुम्हें भी अपने वंश का परिचय देना होगा क्योंकि राजवंश के लोग कभी नीच वंश

के लोगों के साथ युद्ध नहीं करते। कृपाचार्य के वचन सुनकर कर्ण का मुख श्रीहीन हो गया और वे लज्जा का अनुभव करने लगे। कर्ण की ऐसी हालत देखकर उनके मित्र दुर्योधन बोल उठे, हे गुरुजनों एवं उपस्थित सज्जनों। मैं तत्काल अपने परम मित्र कर्ण को अंग देश का राजपद प्रदान करता हूं। कर्ण इसी क्षण से अंग देश का राजा है। अब एक देश का राजा होने के नाते उन्हें अर्जुन से युद्ध का अधिकार प्राप्त हो गया है। दुर्योधन की बात सुनकर भीम कर्ण से बोले, भले ही तुम अब राजा हो गये हो, किन्तु हो तो तुम सूतपुत्र ही। तुम तो अर्जुन के हाथों मरने के भी योग्य नहीं हो। तुम्हारी भलाई इसी में है कि शीघ्र जाकर अपने घोड़े तथा रथ की देखभाल करो।

वाद-विवाद बढ़ता गया और वातावरण में कटुता आने लगी। यह विचार कर के कि बात अधिक बढ़ने न पाये, द्रोणाचार्य एवं कृपाचार्य ने उस सभा को विसर्जित कर दिया।

१२७८) जब वरुण ने अपने पुत्र की कठोर परीक्षा ली - एक बार वरुण के पुत्र भृगु के मन में परमात्मा को जानने की अभिलाषा जाग्रत हुई। उनके पिता वरुण ब्रह्म निष्ठयोगी थे। अत: भृगु ने पिता से ही अपनी जिज्ञासा शांत करने का विचार किया। वे अपने पिता के पास जाकर बोले- भगवन। मैं ब्रह्म को जानना चाहता हूं। आप कृपा कर मुझे ब्रह्मतत्व समझाइए। वरुण बोले- जिससे सभी का पालन-पोषण होता है, वही ब्रह्म है। भृगु ने सोचा-अन्न ही ब्रह्म है। अत: उन्होंने अन्न उपजाया और कई वर्ष तप कर पिता के पास गए और कहा- प्रभु अन्न को समझा, लेकिन शांति नहीं मिली। वरुण बोले- तुम तप द्वारा ब्रह्मतत्व को समझने का प्रयास करो। तब भृगु ने सोचा- प्राण ही ब्रह्म है। अत: उन्होंने प्राणायाम किया। इससे शरीर तो तेजस्वी हो गया किंतु फिर भी शांति प्राप्त नहीं हुई। पुन: वे पिता के पास गए और अपनी जिज्ञासा दोहराई- ब्रह्म तत्व का रहस्य बताइए। पिता ने कहा- तू तप कर। भृगु ने मन को संयम में रखने व पवित्र करने की साधना की किंतु शांति इस बार भी दूर ही रही। इस बार पिता ने कहा- विज्ञान ही ब्रह्म है। तब भृगु ने निश्चय किया कि विज्ञान स्वरूप जीवात्मा ही ब्रह्म है। उन्होंने निरंतर साधना की। जब इससे भी शांति नहीं मिली, तो फिर पिता को पास गए। जब पिता को विश्वास हो गया कि पुत्र ब्रह्म विद्या के ज्ञान का अधिकारी हो गया है, तब उन्होंने भृगु को ब्रह्मतत्व का ज्ञान दिया, जिससे भृगु को दिव्य आनंद की प्राप्ति हुई। तैतरीय उपनिषद के इस प्रसंग से प्रेरणा मिलती है कि सच्चा गुरु बिना पात्रता का विचार किए किसी शिष्य को ज्ञान नहीं देता। ज्ञान प्राप्त करने का सच्चा अधिकारी वही है, जो निरहंकार भाव से गुरु की आज्ञा का पालन करे।

१२७९) शिष्य आनंद के जवाब से प्रसन्न हुए गौतम बुद्ध - एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में थे। जनसमूह को नित्य प्रवचन देने के उपरांत सायंकाल बुद्ध अपने शिष्यों के साथ बैठकर विभिन्न विषयों पर वार्तालाप किया करते थे। ऐसा करने से शिष्यों का भी ज्ञानवर्धन होता था और बुद्ध को उन सभी का तुलनात्मक बौद्धिक स्तर भी ज्ञात हो जाता था। एक दिन बुद्ध अपने शिष्यों के साथ बैठे बातचीत कर रहे थे। अचानक उन्होंने एक प्रश्न उठाया- तुममें से कोई यह बता सकता है कि सबसे उत्तम जल कौन सा है? एक शिष्य ने तत्काल उत्तर दिया- गंगाजल। बुद्ध ने नकारात्मक मुद्रा में सिर हिलाया। दूसरे शिष्य ने कहा- जमीन पर गिरने से पहले का वर्षाजल। बुद्ध इससे भी असहमत थे। तीसरे शिष्य का विचार

था उषाकाल की किरणों में चमकता ओसजल। बुद्ध इस बार भी संतुष्ट नहीं हुए। चौथे शिष्य की दृष्टि में बिछुड़े हुए बेटे से मिलने पर मां की आंखों में आया अश्रुजल सबसे उत्तम जल था तो पांचवें शिष्य के अनुसार फरेब से इकट्ठे धन को देखकर मरणासन्न धनी की आंखों से पश्चाताप स्वरूप निकलनेवाले आंसू से बेहतर कोई जल न था। बुद्ध फिर बोले- नहीं, इससे कहीं अधिक वंदनीय व पवित्र जल भी है? काफी देर से मौन बैठे शिष्य आनंद ने कहा- सर्दी, गर्मी और वर्षा में रात-दिन कठोर परिश्रम कर हमारे लिए अन्न पैदा करनेवाले किसान का श्रमजल। यह उत्तर सुनकर बुद्ध के चेहरे पर संतुष्टि की आभा फैल गई और उन्होंने आनंद को आशीष दिया।

१२८०) बाप सेर तो बेटा सवा सेर - प्राचीन काल में एक राजा के राज्य में अकाल पड़ गया। उसने सुअर की प्रेमिका को सांपों के रथ से और पानी की बौछारों से ढंक दिया। इस प्रकार से उत्पन्न अन्न से राजा ने अकाल को नष्ट कर दिया। यह पहेली सुनाकर मूलदेव ने लड़के से पूछा अब तुम बताओ कि इस पहेलीनुमा कहानी का क्या अर्थ है?

लड़का मुस्कराकर बोला इसका अर्थ तो बहुत आसान है। सांपों के रथ का अर्थ है, बादल। सुअर की प्रेमिका धरती है, क्योंकि वह भगवान विष्णु को उनके शूकरावतार में बहुत प्रिय थी, इसलिए आप कहना चाहते हैं कि राजा ने वर्षा द्वारा धरती पर अन्न उगाया था।

मूलदेव लड़के की तीक्ष्ण समझदारी पर अवाक रह गया। तब लड़के ने उनसे कहा अब मैं एक अद्भुत कहानी सुनाता हूं। अगर आप समझ सको और सच बता तो यह पलंग आपका, नहीं तो आप मेरे सेवक बनकर रहेंगे।

मूलदेव ने अपनी सहमति व्यक्त की। वह बोला ठीक है, मुझे स्वीकार है तुम्हारी यह शर्त।

लड़का कहने लगा बहुत पहले उस धरती पर एक अद्भुत लड़का पैदा हुआ था। जैसे ही वह पैदा हुआ, उसने अपने भार से धरती को हिला दिया। जब वह बड़ा हुआ तो उसने दूसरी दुनिया में कदम रखा। मूलदेव उस पहेली को हल न कर सका। वह कहने लगा यह कहानी झूठी है। इस पर उस विद्वान लड़के ने कहा झूठी नहीं, बिल्कुल सच्ची है यह कथा। धर्म पुस्तकों के विद्वान महाशय, क्या भगवान विष्णु ने वामन अवतार में बौने का जन्म लेकर धरती को कंपाया नहीं था? फिर अपने विराट रूप से उन्होंने आकाश में कदम नहीं रखा था?

मूलदेव चुप हो गया। लड़के ने बिल्कुल सही वर्णन किया था। मूलदेव को चुप देखकर लड़का बोला महाशय। आप मुझसे हार गए। अब आप हथियार डाल दीजिए और जहां मैं जाऊं, मेरे सेवक बनकर साथ चलिए।

वचन से बंधा मूलदेव लड़के के साथ चलकर पाटलिपुत्र जा पहुंचा। लड़का मूलदेव को सीधा अपनी मां के पास ले गया। यह देखकर मूलदेव को अत्यंत हैरानी हुई कि उस लड़के की मां उसकी परित्यक्ता (छोड़ी हुई) पत्नी थी। उसके मुंह से बरबस ही निकल पड़ा अरे। सुमंगला तुम। तुम हो इस लड़के की मां?

हां मैं। सुमंगला बोली तुम्हारी वही पत्नी, जिसे तुम छोड़कर चले गए थे। याद है, मैंने क्या प्रतिज्ञा की थी। मैंने कहा था कि तुम जहां भी जाओगे, लौटकर मेरे पास ही आओगे और वह भी मेरे बेटे के पिता बनकर। आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई।

लेकिन मेरा तो तुम्हारे साथ समागम ही नहीं हुआ था। मधुयामिनी ही वह रात तो हमने वादविवाद में ही बिता दी थी, तब

फिर यह लड़का?

फिर भी यह तुम्हारा ही पुत्र है। याद करो कामरूप नगर में उज्जयिनी में आई उस नर्तकी सुमंगला को। वह नर्तकी मैं ही तो थी। अपनी पत्नी से सारी बातें जानकर मूलदेव के मन का संताप जाता रहा। उसने बांहें पसारकर अपने पुत्र को अपने अंक में भर लिया और उस पर अपनी ममता लुटाने लगा।

सुमंगला ने उससे पूछा अब तो कभी हमें छोड़कर न जाओगे? हरगिज नहीं। मूलदेव ने मुस्कराकर कहा जाना भी चाहूं, तभी भी नहीं जा पाऊंगा। मेरे लड़के ने मुझे शास्त्रार्थ में जीतकर अपना सेवक जो बना लिया है। मूलदेव की इस बात पर तीनों ने एक मिश्रित ठहाका लगाया। जिससे वातावरण मुखरित हो उठा।

१२८१) देह अमर नहीं - एक राजा को फूलों का शौक था। उसने सुंदर, सुगंधित फूलों के पचीस गमले अपने शयनखंड के प्रांगण में रखवा रखे थे।

उनकी देखभाल के लिए एक नौकर रखा गया था। एक दिन नौकर से एक गमला टूट गया। राजा को पता चला तो वह आगबबूला हो गया। उसने आदेश दिया कि दो महीने के बाद नौकर को फांसी दे दी जाए। मंत्री ने राजा को बहुत समझाया, लेकिन राजा ने एक न मानी। फिर राजा ने नगर में घोषणा करवा दी कि जो कोई टूटे हुए गमले की मरम्मत करके उसे ज्यों का त्यों बना देगा, उसे मुंहमांगा पुरस्कार दिया जाएगा। कई लोग अपना भाग्य आजमाने के लिए आए लेकिन असफल रहे।

एक दिन एक महात्मा नगर में पधारे। उनके कान तक भी गमलेवाली बात पहुंची। वह राजदरबार में गए और बोले, राजन् तेरे टूटे गमले को जोड़ने की जिम्मेदारी मैं लेता हूं। लेकिन मैं तुम्हें समझाना चाहता हूं कि यह देह अमर नहीं तो मिट्टी के गमले कैसे अमर रह सकते हैं। ये तो फूटेंगे, गलेंगे, मिटेंगे। पौधा भी सूखेगा। लेकिन राजा अपनी बात पर अडिग रहा।

आखिर राजा उन्हें वहां ले गया जहां गमले रखे हुए थे। महात्मा ने एक डंडा उठाया और एक एक करके प्रहार करते हुए सभी गमले तोड़ दिए। थोड़ी देर तक तो राजा चकित होकर देखता रहा। उसे लगा यह गमले जोड़ने का कोई नया विज्ञान होगा। लेकिन महात्मा को उसी तरह खड़ा देख उसने आश्चर्य से पूछा, ये आपने क्या किया? महात्मा बोले, मैंने चौबीस आदमियों की जान बचाई है। एक गमला टूटने से एक को फांसी लग रही है। चौबीस गमले भी किसी न किसी के हाथ से ऐसे ही टूटेंगे तो उन चौबीसों को भी फांसी लगेगी। सो मैंने गमले तोड़कर उन लोगों की जान बचाई। राजा महात्मा की बात समझ गया। उसने हाथ जोड़कर उनसे क्षमा मांगी और नौकर की फांसी का हुक्म वापस ले लिया।

१२८२) कौआ चला मोर बनने - एक कौआ जब जब मोरों को देखता, मन में कहता- भगवान ने मोरों को कितना सुंदर रूप दिया है। यदि मैं भी ऐसा रूप पाता तो कितना मजा आता। एक दिन कौए ने जंगल में मोरों की बहुत सी पूंछें बिखरी पड़ी देखीं। वह अत्यंत प्रसन्न होकर कहने लगा- वाह भगवान। बड़ी कृपा की आपने, जो मेरी पुकार सुन ली। मैं अभी इन पूंछों से अच्छा खासा मोर बन जाता हूं। इसके बाद कौए ने मोरों की पूंछें अपनी पूंछ के आसपास लगा ली। फिर वह नया रूप देखकर बोला- अब तो मैं मोरों से भी सुंदर हो गया हूं। अब उन्हीं के पास चलकर उनके साथ आनंद मनाता

हूं। वह बड़े अभिमान से मोरों के सामने पहुंचा। उसे देखते ही मोरों ने ठहाका लगाया। एक मोर ने कहा- जरा देखो इस दुष्ट कौए को। यह हमारी फेंकी हुई पूंछें लगाकर मोर बनने चला है। लगाओ बदमाश को चोंचों व पंजों से कस-कसकर ठोकरें। यह सुनते ही सभी मोर कौए पर टूट पड़े और मार-मारकर उसे अधमरा कर दिया। कौआ भागा-भागा अन्य कौओं के पास जाकर मोरों की शिकायत करने लगा तो एक बुजुर्ग कौआ बोला- सुनते हो इस अधम की बातें। यह हमारा उपहास करता था और मोर बनने के लिए बावला रहता था। इसे इतना भी ज्ञान नहीं कि जो प्राणी अपनी जाति से संतुष्ट नहीं रहता, वह हर जगह अपमान पाता है। आज यह मोरों से पिटने के बाद हमसे मिलने आया है। लगाओ इस धोखेबाज को कसकर मार। इतना सुनते ही सभी कौओं ने मिलकर उसकी अच्छी मरम्मत की। कथा का सार यह है कि ईश्वर ने हमें जिस स्वरूप में बनाया है, उसी में संतुष्ट रहकर अपने कर्मों पर ध्यान देना चाहिए।

१२८३) नम्रता का पाठ - एक बार अमेरिका के राष्ट्रपति जॉर्ज वॉशिंगटन नगर की स्थिति का जायजा लेने के लिए निकले। रास्ते में एक जगह भवन का निर्माण कार्य चल रहा था। वह कुछ देर के लिए वहीं रुक गए और वहां चल रहे कार्य को गौर से देखने लगे। कुछ देर में उन्होंने देखा कि कई मजदूर एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर इमारत पर ले जाने की कोशिश कर रहे हैं, किंतु पत्थर बहुत ही भारी था, इसलिए वह इतने मजदूरों के उठाने पर भी उठ नहीं आ रहा था। ठेकेदार उन मजदूरों को पत्थर न उठा पाने के कारण डांट रहा था, पर खुद किसी भी तरह उन्हें मदद देने को तैयार नहीं था। वॉशिंगटन यह देखकर उस ठेकेदार के पास आकर बोले, इन मजदूरों की मदद करो। यदि एक आदमी और प्रयास करे तो यह पत्थर आसानी से उठ जाएगा। ठेकेदार वॉशिंगटन को पहचान नहीं पाया और रौब से बोला- मैं दूसरों से काम लेता हूं, मैं मजदूरी नहीं करता। यह जवाब सुनकर वॉशिंगटन घोड़े से उतरे और पत्थर उठाने में मजदूरों की मदद करने लगे। उनके सहारा देते ही पत्थर उठ गया और आसानी से ऊपर चला गया।

इसके बाद वह वापस अपने घोड़े पर आकर बैठ गए और बोले, सलाम ठेकेदार साहब, भविष्य में कभी तुम्हें एक व्यक्ति की कमी मालूम पड़े तो राष्ट्रपति भवन में आकर जॉर्ज वॉशिंगटन को याद कर लेना। यह सुनते ही ठेकेदार उनके पैरों पर गिर पड़ा और अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा मांगने लगा। ठेकेदार के माफी मांगने पर वॉशिंगटन बोले- मेहनत करने से कोई छोटा नहीं हो जाता। मजदूरों की मदद करने से तुम उनका सम्मान हासिल करोगे। मदद के लिए सदैव तैयार रहनेवाले को ही समाज में प्रतिष्ठा हासिल होती है। इसलिए जीवन में ऊंचाइयां हासिल करने के लिए व्यवहार में नम्रता का होना बहुत जरूरी है। उस दिन से ठेकेदार का व्यवहार बिल्कुल बदल गया और वह सभी के साथ अत्यंत नम्रता से पेश आने लगा।

१२८४) धन्यवाद का मूल्य - रुडयार्ड किपलिंग अपनी व्यवहार कुशलता और हाजिरजवाबी के कारण अक्सर लोगों की ईष्या का पात्र बन जाते थे। इसलिए विरोधी उन पर वार करने के किसी भी मौके से नहीं चूकते थे। एक दिन उनका साक्षात्कार लिया जाना था। विरोधियों को जब इसका पता चला तो उन्होंने साक्षात्कार लेने वाले पत्रकार से ऐसे प्रश्न पूछने को कहा जिनसे उन्हें आघात पहुंचे। पत्रकार स्वयं भी किपलिंग से चिढ़ता था। उनसे मुलाकात होने पर पत्रकार ने पहला प्रश्न पूछा, सर, मैंने पढ़ा है कि आप अपने लेखन से बहुत पैसा कमाते हैं। रुडयार्ड बोले, लेखन विचारों को भाषा

रूप में उतारता है और लेखन के ही माध्यम से हम अपने विचारों को तेजी से अन्य व्यक्तियों तक पहुंचा सकते हैं। यह जवाब सुनकर पत्रकार व्यंग्य करते हुए बोला, वह तो ठीक है, लेकिन मैंने यह भी सुना है कि आपका एक-एक शब्द सौ डॉलर्स से भी अधिक मूल्यवान है। इसमें कहां तक सचाई है? यह सुनकर किपलिंग मुस्कराते हुए बोले, यह बात तो आपको वहीं से पता चल सकती है जहां से आपने इसको सुना है। इसका जवाब मैं कैसे दे सकता हूं? इस पर पत्रकार तुरंत बोला, सर बिलकुल दे सकते हैं। आप मुझे इसी समय सौ डॉलर का एक शब्द दें। यह लीजिए सौ डॉलर। यह बोलकर पत्रकार ने सौ डॉलर का नोट किपलिंग की ओर बढ़ाया। किपलिंग ने एक नजर सौ डॉलर के नोट पर डालीं उस वक्त उनका इंटरव्यू अनेक लोग सुन रहे थे। इसके बाद उन्होंने सहजता से पत्रकार से सौ डॉलर का नोट लिया और उसे तह करके अपने पास रखते हुए मुस्कराकर बोले, धन्यवाद। यह सुनते ही हर ओर तालियां बज उठीं। तालियां बजती देख रुडयार्ड किपलिंग मुस्करा कर बोले, महाशय, मैंने आपको सौ डॉलर का शब्द दे दिया है। अब पत्रकार का चेहरा देखने लायक था।

१२८५) परोपकार में धर्म - संत सेरोपिया मिस्र देश के निवासी थे। वह बड़े ही परोपकारी थे। दूसरों की सेवा करना, उन्हें सुकून देता था। संत हमेशा ही मोटे कपड़े का चोगा पहनते थे। एक दिन उनके चोगे को फटा देखकर एक व्यक्ति ने उनसे कहा, आपका चोगा तो फट गया है। उसके बदले नया चोगा क्यों नहीं पहनते? संत ने कहा, भाई बात यह है कि मैं मानता हूं कि एक इंसान को दूसरे इंसान की मदद करनी चाहिए। इसके लिए उसे अपने शरीर का बिल्कुल ख्याल नहीं करना चाहिए। यही धर्म की सीख है और आदेश भी। उस व्यक्ति ने हैरान होकर पूछा, धर्म की सीख? जरा वह ग्रंथ तो दिखाएं, जिसमें ऐसा आदेश और सीख दी हुई है। संत ने कहा, ग्रंथ मेरे पास नहीं है, उसे मैंने बेच दिया। उस व्यक्ति को हंसी आ गई। वह बोला, क्या पवित्र ग्रंथ भी कहीं बेचा जाता है? संत ने कहा, बेशक बेचा जाता है। जो ग्रंथ दूसरों की सेवा करने के लिए अपनी चीजों को बेचने का उपदेश देता है, उसे बेचने में कोई हर्ज नहीं। इस ग्रंथ को बेचने पर जो रकम मिली थी, उससे मैंने जरूरतमंदों की जरूरतें पूरी कीं। वह ग्रंथ जिसके पास भी होगा, उसके सद्गुणों का विकास होगा, वह परोपकारी बनेगा। किसी भी धर्म का पवित्र ग्रंथ सहेजकर रखने के लिए नहीं होता, बल्कि उसमें लिखे हुए ज्ञान का अनुसरण करना होता है। ईश्वर को पूजा-पाठ में तलाशने के साथ-साथ अपने काम के प्रति निष्ठा और ईमानदारी जैसी वृत्तियों को भी बनाए रखें। जहां तक हमारे बस में हो हम कोई ऐसा काम न करें, जिससे किसी निर्दोष को तकलीफ हो। अच्छे काम से मतलब है अपनी और अपने आसपास की दुनिया को संवारना। हम सबमें ईश्वर वास करता है। दुनिया में थोड़ी भी खुशी बिखेर सकें तो यही हमारी सबसे बड़ी खुशी होगी। हमारा यही कर्म, यही धर्म होगा।

१२८६) कर्म का फल - एक बार देवर्षि नारद बैकुंठवास गए। प्रणाम निवेदित करने के बाद नारद जी ने श्रीहरि से कहा, प्रभु। पृथ्वी पर अब आपका प्रभाव कम होता जा रहा है। धर्म पर चलनेवालों को कोई अच्छा फल नहीं मिल रहा, जो पाप कर रहे हैं उनका भला हो रहा है। तब श्रीहरि ने कहा, ऐसा नहीं है देवर्षि। जो भी हो रहा है सब नियति के माध्यम से हो रहा है। नारद बोले, मैं तो देखकर आ रहा हूं, पापियों को अच्छा फल मिल रहा है और भला करनेवाले, धर्म के रास्ते

पर चलनेवाले लोगों को बुरा फल मिल रहा है। भगवान ने कहा, कोई ऐसी घटना बताओ। नारद ने कहा, अभी मैं एक जंगल से आ रहा हूं, वहां एक गाय दलदल में फंसी हुई थी। कोई उसे बचानेवाला नहीं था। तभी एक चोर उधर से गुजरा, गाय को फंसा हुआ देखकर भी वह नहीं रुका, वह उस पर पैर रखकर दलदल लांघकर निकल गया। आगे जाकर चोर को सोने की मोहरों से भरी एक थैली मिली। थोड़ी देर बाद वहां से एक वृद्ध साधु गुजरा। उसने उस गाय को बचाने की पूरी कोशिश की। पूरे शरीर का जोर लगाकर उसने उस गाय को बचा लिया। लेकिन मैंने देखा कि गाय को दलदल से निकालने के बाद वह साधु आगे बढ़ा तो कुछ ही दूर चलने पर उसके पैर में कील चुभ गई। प्रभु, बताइए यह कौन सा न्याय है? नारद जी की बात सुन लेने के बाद प्रभु बोले, तुमने जितना देखा उसी आधार पर नतीजा निकाल लिया। सच्चाई यह है कि जो चोर गाय पर पैर रखकर भाग गया था, उसे तो उस दिन खजाना मिलना था, लेकिन अपने बुरे कार्यों के चलते वह केवल कुछ मोहरें पा सका। जिस साधु ने गाय को बचाया उसे उस दिन सूली पर चढ़ाया जाना था। लेकिन अपने अच्छे कर्मों की बदौलत वह सूली पर चढ़ने से बच गया। उसे सिर्फ कील चुभने का ही कष्ट सहना पड़ा।

१२८७) महात्मा का जवाब - एक राजा की एक महात्मा पर बहुत श्रद्धा थी। राजा संत सेवा के महत्व को जानता था। उसने महात्मा जी के रहने के लिए अपने महल के समान एक बहुत बड़ा भवन बनवा दिया। उस भवन के सामने अपने उद्यान जैसा उद्यान बनवा दिया। हाथी, घोड़े, रथ दे दिए। सेवा के लिए सेवक नियुक्त कर दिए। अपने समान ही अनेक सुख-सुविधाएं उस राजा ने महात्मा जी के लिए जुटा दीं। राजा महात्मा जी के पास जाता रहता था, जिसकी वजह से वह महात्मा जी से काफी खुल गया था। वह कभी कभी उनसे हंसी-मजाक भी कर लिया करता था। एक दिन राजा ने महात्मा जी से पूछा कि हम दोनों के पास सुख-सुविधा की सभी वस्तुएं मौजूद हैं। अब आपमें और मुझमें अंतर क्या रहा? महात्मा समझ गए कि राजा के हृदय में बाह्य जीवन का ही महत्व है। महात्मा जी राजा से बोले, राजन। इसका उत्तर कुछ समय बाद आपको मिल जाएगा। कुछ दिन बाद राजा महात्मा जी से मिलने गया, तो महात्मा जी ने राजा से सैर पर चलने का आग्रह किया। महात्मा की बात पर राजा तुरंत तैयार हो गया। महाराज जी राजा के साथ वन की ओर चल दिए। जब दोनों काफी आगे निकल गए तब महात्मा राजा से बोले, राजन्। मेरी इच्छा इस नगर में लौटने की नहीं है। हम दोनों सुख-वैभव तो बहुत भोग चुके हैं। मेरी इच्छा है कि अब हम दोनों यहीं वन में रहकर भगवान का भजन करें। राजा तुरंत बोला, भगवन। मेरा राज्य है, मेरी पत्नी है, मेरे बच्चे हैं, मैं वन में कैसे रह सकता हूं? महात्मा जी हंसकर बोले, राजन्। मुझमें और आपमें यहीं अंतर है। बाहर से एक जैसा व्यवहार होते हुए भी असली अंतर मन की आसक्ति का होता है। भोगों में जो आसक्त है, वह वन में रहकर भी संसारी है। जो भोगों में आसक्त नहीं है, वह घर में रहकर भी विरक्त है।

१२८८) दान का सुख - एक बार महात्मा बुद्ध उपदेश दे रहे थे, देश में अकाल पड़ा है। लोग अन्न एवं वस्त्र के लिए तरस रहे हैं। उनकी सहायता करना हर मनुष्य का धर्म है। आप लोगों के शरीर पर जो वस्त्र हैं, उन्हें दान में दे दें। यह सुनकर तो कुछ लोग तुरंत सभा से उठकर चले गए तो कुछ आपस में बात करने लगे, यदि वस्त्र इन्हें दे दें, तो हम क्या पहनेंगे? उपदेश के बाद सभी श्रोता चले गए किंतु निरंजन बैठा रहा। वह सोचने लगा, मेरे शरीर पर एक वस्त्र है। अगर मैं

अपने वस्त्र दे दूंगा तो मुझे नग्न होना पड़ेगा। फिर सोचा- मनुष्य बिना वस्त्र के पैदा होता है और बिना वस्त्र के ही चला जाता है। साधु-संन्यासी भी बिना वस्त्र के रहते हैं। यह सोचकर निरंजन ने अपनी धोती दे दी। बुद्ध ने उसे आशीर्वाद दिया। निरंजन अपने घर की ओर चल पड़ा। वह खुशी से चिल्ला कर कह रहा था, मैंने अपने आधे मन को जीत लिया। उसी वक्त उसी ओर से महाराज प्रसेनजित चले आ रहे थे। निरंजन की बात सुनकर उन्होंने उसे बुलाया और पूछा, तुम्हारी बात का क्या अर्थ है? निरंजर ने उत्तर दिया, महाराज। महात्मा बुद्ध दुखियों के लिए दान में वस्त्र मांग रहे थे। यह सुनकर मेरे एक मन ने कहा कि शरीर पर पड़ी एकमात्र धोती दान में दे दो, परंतु दूसरे मन ने कहा कि यदि यह भी दे दोगे तो पहनोगे क्या? आखिर दान देनेवाले मन की विजय हुई। मैंने धोती दान में दे दी। अब मुझे गरीबों की सेवा के सिवा कुछ नहीं चाहिए। यह सुनकर राजा प्रसेनजित ने अपना राजकीय परिधान उतारकर निरंजन को दे दिया। मगर राजा का परिधान भी निरंजन को अपने लिए व्यर्थ लगा। उसने राजा के शाही परिधान को भी महात्मा बुद्ध के चरणों में डाल दिया। बुद्ध ने निरंजन को सीने से लगाते हुए कहा, जो दूसरों के लिए अपना सब कुछ दे देता है, उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

१२८९) जान बचाने की सुपारी - उन दिनों कोलंबस, ओहियो में डिस्क जॉकी लेस ब्राउन घर लौटते समय अक्सर ग्रांट हॉस्पिटल जाया करते थे। वहां वह मरीजों से बातें करते थे और उन्हें सकारात्मक विचारों से प्रेरित भी करते थे। अपनी व्यस्त दिनचर्या के बावजूद यह काम वे पूरे मन से करते थे। एक दिन उन्होंने अपने कार्यक्रम के दौरान ऐसे प्रमोटर का पर्दाफाश किया जो नकली मनोरंजनकर्ताओं को शहर में ला रहा था। इससे नाराज होकर प्रमोटर ने एक हत्यारे को लेस ब्राउन की हत्या की सुपारी दे दी। एक रात क्लब में कार्यक्रम खत्म करके लेस ब्राउन घर की ओर चले तो कोई उनका पीछा करने लगा। इस बात से अनजान ब्राउन घर पहुंचे। इससे पहले कि वह घर के अंदर जाते, वह व्यक्ति उनके सामने आ गया और बोला, मिस्टर लेस ब्राउन मुझे आपकी हत्या करने के लिए भेजा गया है। लेस ब्राउन परेशान हो गए। उन्हें परेशान देखकर वह व्यक्ति बोला, एक प्रमोटर आपसे नाराज है। आपने उसका भंडाफोड़ किया है। वह आपकी जान का प्यासा बन गया है। लेस बोले, क्या आप सचमुच मेरी हत्या करेंगे? व्यक्ति बोला, नहीं, मैं आपकी हत्या नहीं कर पाऊंगा। यह सुनकर लेस के चेहरे पर खुशी के भाव चमक उठे। तभी हत्यारा बोला, मेरी माँ ग्रांट हॉस्पिटल में भर्ती थी। एक दिन उन्होंने मुझे चिट्ठी में लिखा कि आपने उनके पास पहुंचकर प्रेम से उनके माथे पर हाथ रखा था और उन्हें सकारात्मक विचारों से प्रेरित पुस्तक पढ़कर सुनाई थी। आपने उन्हें जीवन की नई रोशनी दिखाई थी। उस वक्त मैं ओहियो जेल में था। जेल से छूटने के बाद जब अपराधियों के बीच मैंने यह बात सुनी कि कोई आपके नाम की सुपारी देना चाहता है तो मैंने वह सुपारी ले ली ताकि कोई आपका बाल भी बांका न कर सके। अब आप सुरक्षित है। यह कहकर वह अपराधी वहां से चला गया।

१२९०) लगन का नृत्य - बहुत पुरानी बात है। मारथा नाम की एक लड़की को बचपन से ही डांस करने का शौक था। उसके पिता डॉक्टर थे। वह विकार से ग्रस्त मरीजों को अंग संचालन के व्यायाम सिखाते थे। मारथा को अपने पिता से नृत्य सीखने की इजाजत नहीं मिली। दरअसल मारथा एक ईसाई परिवार से थी। जिस ईसाई पंथ से उसका परिवार जुड़ा

था, उसमें नृत्य की मनाही थी। पर मारथा का मन नहीं माना, उसे डांस का बहुत शौक था। लिहाजा उसने अपने पिता की आज्ञा लेकर कला से जुड़े एक स्कूल में दाखिला ले लिया। उसके बाद उसने टेड शॉन के साथ रहकर पेशेवर नृत्य करना शुरू कर दिया। टेड ने खास उसके लिए एक विशेष नृत्य तैयार किया, जिसमें उसे काफी प्रशंसा मिली। नृत्य में आगे बढ़ने के लिए उसने बहुत मेहनत की। उसकी मेहनत रंग लाई। वर्ष १९२६ में अपने अथक प्रयास के बाद उसने मारथा ग्राहम डांस नाम की अपनी कंपनी बनाई। उसने नृत्य पर खूब प्रयोग किए, जिससे वह बहुत लोकप्रिय हो गई। उसने नृत्य को अध्यात्म से जोड़ दिया। नृत्य की इस शैली का पश्चिम नृत्य में अभाव था। मारथा ने नृत्य की कई शैलियां विकसित कीं। इनमें फ्रंटियर, एपलेशन, स्प्रिंग, सेराफिक डायलॉग और लैमनरेशन शामिल हैं। ये शैलियां समय के साथ विकसित होती गईं। नृत्य विशेषज्ञ इनमें से अनेक शैलियों को अमेरिका के सांस्कृतिक इतिहास की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानते हैं। अमेरिका में मारथा ऐसी पहली नृत्यांगना थी, जिसे वाइट हाउस में नृत्य करने का अवसर प्राप्त हुआ था। उसे देशी और विदेशी अनेक पुरस्कार मिले। मारथा ने जिस नृत्य शैली का आगाज किया, वह आज आधुनिक नृत्य शैली कहलाती है। उसे नृत्य की पिकासो कहा जाता है। मारथा ने अपनी कड़ी मेहनत और लगन से साबित कर दिया, इस दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं है।

१२९१) आत्मविश्वास का खजाना - न्यूयॉर्क में एडवर्ड ऐनिस नाम का एक व्यक्ति था। वह धर्म-कर्म और ईश्वर में बहुत विश्वास रखता था। वह अपने संबंधियों में सबसे निर्धन था, लेकिन उसमें गजब का आत्मविश्वास था। इसी एक गुण के कारण सभी उसका सम्मान करते थे। निर्धनता की अवस्था में काफी समय बीत गया। एक दिन वह कहीं जा रहा था। उसे ऐसा आभास हुआ कि जिस स्थान से वह गुजर रहा है, वहां काफी सोना है। उसने एक ज्योतिषी से इस बारे में पूछा। वह अपने विश्वास को महत्व देता था। वह अक्सर कहा करता था, मेरा हृदय, मन और मेरी आत्मा इतने विकार रहित हैं कि उनमें भविष्य के संदर्भ भी ऐसे प्रकट हो जाते हैं, जैसे उन्हें मैं सचमुच देख रहा हूं। जब मेरा विश्वास दृढ़ हो जाता है तो फिर उस कार्य की सफलता में कुछ संदेह भी नहीं रह जाता। ऐनिस के पास धन नहीं था, फिर भी उसने अपने तमाम साधन एकत्र किए, कुछ मित्रों से सहायता प्राप्त की और वह जमीन खरीद ली। वहां खुदाई शुरू करा दी गई। दुर्भाग्य कि वहां चांदी के कुछ टुकड़े ही उपलब्ध हुए और उसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। मरने से पूर्व अपने एक संदेश में एनिस ने कहा, जो बात आत्मा से निकलती है, वह कभी झूठ नहीं होती। मुझे नहीं मिला तो क्या, अभी उस स्थान पर सोना अवश्य है। उसकी मृत्यु के १६ वर्ष बाद मार्या मारले ने, जिन्हें एनिस के आत्मविश्वास पर काफी भरोसा था, वहां फिर से खुदाई का काम करवाया। ६०० फीट तक खुदाई करने के बाद वहां सोने, चांदी, तांबे और जिंक के भंडार मिले। इससे उस महिला को कई लाख डॉलर का लाभ हुआ। अपनी सफलता पर उन्होंने केवल इतनी ही टिप्पणी की, आत्मविश्वास अपने आप एक ज्योतिष है, ऐसा मनुष्य भले ही अपने लिए कुछ न करे, पर उसकी विकसित अंतरशक्ति दूसरों का भी कल्याण कर सकती है।

१२९२) हाथी का मनोबल - एक बार गौतम बुद्ध विहार करते हुए शाल्यवन में एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गए। धर्म चर्चा शुरू हुई तो एक भिक्षु ने प्रश्न किया- भगवन, कई लोग दुर्बल और साधनहीन होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य कर जाते

हैं, जबकि साधन संपन्न लोग भी वैसा नहीं कर पाते। ऐसा क्यों? इस प्रश्न पर बुद्ध एक प्रेरक कथा सुनाने लगे, विराट नगर के राजा सुकीर्ति के पास लौहशांग नामक एक हाथी था। राजा ने कई युद्धों में इस पर आरूढ़ होकर विजय प्राप्त की थी। धीरे-धीरे लौहशांग भी वृद्ध होने लगा और युवावस्था वाला पराक्रम जाता रहा। उपयोगिता और महत्व कम हो जाने के कारण उसके भोजन में कमी कर दी गई। अक्सर हाथी को भूखा प्यासा ही रहना पड़ता। कई दिनों से पानी न मिलने पर एक बार लौहशांग हाथीशाला से निकलकर पुराने तालाब की ओर चला गया। वहां उसने भर पेट पानी पिया और नहाने के लिए गहरे में जाने लगा। उस तालाब में कीचड़ बहुत था तो वृद्ध हाथी उसमें फंस गया। यह समाचार राजा सुकीर्ति तक पहुंचा। हाथी को निकलवाने के कई प्रयास किए गए पर फायदा नहीं हुआ। जब सारे प्रयास असफल हो गए, तब एक चतुर मंत्री ने युक्ति सुझाई। सैनिकों को जिरह बख्तर पहनाए गए और सबको हाथी के सामने खड़ा कर दिया गया। हाथी के सामने युद्ध नगाड़े बजने लगे और सैनिक इस प्रकार कूच करने लगे जैसे वे शत्रु पक्ष की ओर से लौहशांग की ओर बढ़ रहे हैं। यह देखकर लौहशांग में यौवन काल का जोश आ गया। उसने जोर की चिंघाड़ लगाई और शत्रु सैनिकों पर आक्रमण करने के लिए कीचड़ से निकलकर उन्हें मारने दौड़ पड़ा। बाद में बड़ी मुश्किल से उसे नियंत्रित किया गया। कथा सुनाकर तथागत बोले, संसार में मनोबल ही प्रथम है। वह जाग उठे तो असहाय और विवश प्राणी भी असंभव होनेवाले काम कर दिखाते हैं।

१२९३) उत्साह का ईंधन - हेनरी फोर्ड सोलह साल की उम्र तक खेतों में काम करते रहे, जो उन्हें पसंद नहीं था। खेती का कार्य करते समय वह कल्पनाओं में डूब जाते कि सड़कों और खेतों पर गाड़ियां भाग रही हैं। आखिर उन्होंने अपने सपने को पूरा करने की ठान ली और खेती का काम छोड़कर डेट्रॉइट की एडिसन कंपनी में फोरमैन नियुक्त हो गए। फोरमैन का काम पूरे मन और लगन से करने लगे। उस समय हेनरी फोर्ड की अपनी कोई पहचान नहीं थी और एडिसन विश्व विख्यात हो चुके थे। इसलिए हेनरी फोर्ड के लिए उनको नजर भर देखना भी आश्चर्य से भर देता था। वह कल्पना करते रहते थे कि यदि कभी एडिसन से उनको बात करने का अवसर मिला तो वह उनसे अपने उस सवाल का जवाब अवश्य पूछेंगे जो उनके मन में अक्सर घूमता रहता है। आखिर सन १८९८ में उनकी यह कामना पूरी हो गई। उस दिन वह एडिसन से रू-ब-रू हुए। उन्होंने उन्हें रोका और बोले, सर, मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। फोर्ड की आंखों में उत्साह की चमक देखकर एडिसन रुक गए और मुस्करा कर बोले, पूछिए। फोर्ड ने पूछा,क्या आपको लगता है कि मोटर कारों के लिए पेट्रोल ईंधन का अच्छा स्रोत हो सकता है? एडिसन उन दिनों बेहद व्यस्त रहते थे। वे फोर्ड से बोले, हां बिल्कुल हो सकता है और आगे बढ़ गए। एडिसन के इस जवाब ने फोर्ड के उत्साह को चरम पर पहुंचा दिया और वह गाड़ी बनाने में जुट गए। सन १९०९ में उन्होंने टिन लिजी नामक कार बनाई। उन्हें गाड़ियों के निर्माण के समय अनेक बार आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी। आखिरकार वे सफल हुए और ऐसे सफल हुए कि दुनिया भर में उनके संघर्ष और सफलता की मिसाल दी जाने लगी। उत्साह और लगन ने हेनरी फोर्ड को गुमनाम नाकामी से चमचमाती कामयाबी की मंजिल तक पहुंचा दिया।

१२९४) तारीफ का असर - रॉजर क्रैफोर्ड एक्ट्रोडैक्टिलिजम से पीड़ित थे। यह एक असामान्य जन्मजात डिसऑर्डर है। अमेरिका में पैदा होनेवाले ९० हजार बच्चों में से एक को यह दोष रहता है। डॉक्टर ने बताया कि रॉजर कभी चल नहीं पाएगा। रॉजर जैसे-जैसे बड़े होते गए, उनकी विकलांगता पहचान में आने लगी। माता-पिता उनका उत्साह बढ़ाते हुए कहते, बेटा तुम विकलांग सिर्फ वहां तक हो, जहां तक तुम खुद को विकलांग समझते हो। वरना दुनिया की कोई ताकत तुम्हें विकलांग नहीं बना सकती। तुम अत्यधिक बुद्धिमान हो और पूरी दुनिया पर विजय पाने की ताकत रखते हो। इसका नतीजा यह हुआ कि रॉजर अपनी विकलांगता भूलकर अपनी रुचि को तराशने में जुट गए। उन्हें फुटबॉल खेलना बहुत पसंद था। पिता ने उन्हें फुटबॉल खेलने के तरीके बताए। रॉजर को १२ साल की उम्र में स्कूल की फुटबॉल टीम में शामिल होने में सफलता मिल गई। हर मैच से पहले उनके माता-पिता उसकी प्रशंसा करते और कहते, बेटा। तुम जीतोगे। यह सुनकर रॉजर कल्पना करने लगते कि वह गोल कर रहे हैं। एक दिन फुटबॉल खेलते समय वह नकली पैर से ही तेजी से गोलपोस्ट की तरफ भागे। कोच और टीम खुशी से चिल्लाने लगी। महज दस गज की दूरी पर दूसरी टीम के खिलाड़ी ने रॉजर के बाएं टखने को पकड़ लिया। आखिर नकली पैर विरोधी टीम के खिलाड़ी के हाथ में आ गया। विरोधी टीम का खिलाड़ी हैरानी से देखता रहा। उसी दौरान वह उछलकर चलने लगे। रॉजर का खेल प्रेम बढ़ता गया। कॉलेज में उन्होंने टेनिस खेलना शुरू किया। आज वे ऐसे पहला विकलांग टेनिस खिलाड़ी हैं, जिन्हें यूनाइटेड स्टेट्स प्रफेशनल टेनिस असोसिएशन ने टीचिंग प्रफेशनल के रूप में प्रमाणित किया। वह कहते हैं, चाहे आपकी हालत कैसी भी हो, आप विजेता बन सकते हैं।

१२९५) प्रयोग की धुन - जर्मन स्विस केमिस्ट क्रिश्चियन फ्रेडरिक स्कोन्बीन को नए-नए प्रयोग करना काफी पसंद था। वह अक्सर घर में ही प्रयोग करने बैठ जाते। इस कारण कई बार नुकसान भी होता। उनकी पत्नी जब देखतीं कि घर के कीमती सामान को नुकसान पहुंच रहा है तो वह क्रोधित होकर बोलतीं, इतना तो आप कमाते भी नहीं है जितना आलतू-फालतू के काम करके गंवा देते हैं। सामान का नुकसान करते हैं सो अलग। मगर स्कोन्बीन पर इन सबका कोई असर नहीं होता। वह चुपचाप अपने काम में लगे रहते। उन्हें पता था कि बहस करने का अर्थ होगा दिन खराब करना। पत्नी सही थीं, लेकिन वह भी क्या करते, उन्हें नई-नई खोजें करने का जुनून था। एक दिन पत्नी की अनुपस्थिति में वह प्रयोग के सामान लेकर काम में जुट गए। सहसा कुछ मिश्रण किचन टेबल पर छलक गया। यह देखते ही स्कोन्बीन की सांस अटक गई कि अब पत्नी की डांट से बचना नामुमकिन है। उन्होंने तुरंत एक सूती एप्रन उठाई, टेबल पर छलके द्रव को साफ किया और एप्रन को आग के पास सूखने के लिए टांग दिया। अचानक एक जोरदार विस्फोट हुआ। यह देखकर स्कोन्बीन दंग रह गए। उन्होंने मिश्रण की तरफ ध्यान दिया तो समझ गए कि सूती कपड़े से कुछ केमिकल लोचा हुआ, जिससे यह विस्फोट हुआ। दरअसल, अनजाने में ही स्कोन्बीन ने नाइट्रोसेल्युलोज का आविष्कार कर दिया था। इसी को गन-कॉटन कहा गया। इसके बाद स्कोन्बीन अपने इस आविष्कार को बेचने लगे। उनके इस आविष्कार की बाजार में काफी सराहना हुई। इस आविष्कार से उनके घर के हालात बदल गए और वे आर्थिक रूप से काफी समर्थ

हो गए। उनकी पत्नी को भी अहसास हो गया कि स्कोन्बीन नए-नए प्रयोग करने की अपनी धुन के कारण ही कामयाबी की मंजिल तक पहुंच पाए।

१२९६) संत की क्षमाशीलता - महान संत श्री हरिबाबा को एक भक्त ने अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। तय समय पर संत श्री हरिबाबा अपने भक्त के घर पहुंच गए। जिस समय भोजन तैयार किया जा रहा था उस समय घर में अंधेरा था। सब्जी तैयार करते समय भूलवश उसमें घी की जगह अरंडी का इस्तेमाल हो गया। घर के किसी सदस्य को यह पता नहीं चल पाया कि सब्जी अरंडी के तेल से बन गई है। भोजन तैयार हो गया। संत हरिबाबा ने जब भोजन करना शुरू किया तो वह समझ गए कि सब्जी में अरंडी के तेल का इस्तेमाल हो गया है। उन्हें यह समझते भी देर नहीं लगी कि ऐसा जान-बूझकर नहीं किया गया होगा। संत हरिबाबा ने सब्जी के बारे में कोई शिकायत नहीं की। खाना खाते हुए वह आलू की सब्जी को स्वादिष्ट बताते रहे और उसे बनानेवाली गृहणी की प्रशंसा भी की। लेकिन अरंडी तेल को अपना असर तो दिखाना ही था। खाना खाने के बाद हरिबाबा को दस्त लग गए। किसी भक्त ने चिंता व्यक्त की तो बाबा ने जवाब में कहा कि कई दिनों से पेट खराब था, आज जुलाब ले लिया है। वहां तो सब संतुष्ट हो गए, लेकिन भोजन करानेवाले भक्त के घर जब यह खबर पहुंची कि बाबा को दस्त लगे हैं, तो उन लोगों को माजरा समझते देर नहीं लगी। उस घर में भी लोगों को अरंडी के तेल की सब्जी खाने के कारण दस्त लगे थे। बाबा को भोजन करानेवाले भक्त परिवार का मुखिया भागा-भागा आश्रम पहुंचा। वहां उस वक्त भजन चल रहा था। बाबा भजन में रमे थे। वह बाबा के चरणों में बैठ गया, महाराज, हमारी गलती से आपको बीमार होना पड़ा। मगर बाबा ने भक्त की गलती को कोई अहमियत नहीं दी। उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए जोर से बोले, हरि बोल, हरि बोल और फिर उसे भी संकीर्तन में शामिल कर लिया।

१२९७) खेल खेल में - १९२९ की मंदी की मार अनेक लोगों पर पड़ी। उद्योगपति दिवालिए हुए तो लोगों के रोजगार छूटे। चार्ल्स डैरो भी ऐसे ही लोगों में थे। एक दिन उनके सभी दिवालिया मित्र बैठकर अपनी-अपनी परेशानी एक दूसरे से साझा कर रहे थे। अचानक डैरो का एक मित्र बोला, अब तो हमारे पास कुछ बचा ही नहीं है। चलो आज एक खेल खेलते हैं जिसमें हम खुद को ऐसा दिखाएंगे कि हम बेहद अमीर हैं। इससे कम से कम कुछ देर के लिए तो तनाव और चिंता कम हो जाएगी। मित्र की बात सुनते ही चार्ल्स डैरो खुशी से उछल पड़े। उन्होंने पुलकित होकर चुटकी बजाते हुए कहा, अब हम अपना धन इस खेल के बल पर ही वापस पाएंगे और फिर से वास्तव में समृद्ध और संपन्न बनकर दिखाएंगे। चार्ल्स की इस बात से उनके मित्रों को लगा कि मंदी की मार का उनके दिमाग पर असर हो गया है। मित्र उन पर व्यंग्य करने लगे। लेकिन चार्ल्स डैरो पर दोस्तों की बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह आइडिया उन्हें पसंद आया और वह इस पर काम में जुट गए। वह सचमुच ऐसा खेल बनाने की कोशिश करने लगे जो खिलाड़ियों को यह अहसास दे कि वे कोई कारोबार कर रहे हैं और उसके जरिए धन कमाकर अमीर हो गए हैं। आखिर उनका कड़ा परिश्रम और संघर्ष रंग लाया। उन्होंने एक ऐसा बोर्ड गेम बनाया जिससे लोगों को यह महसूस हो कि वे धनी हैं। इस खेल को मोनोपली नाम दिया गया। सबके मना करने के बावजूद उन्होंने इस खेल को बाजार में उतारा। उनके तमाम मित्र उस समय आश्चर्य चकित रह गए जब उन्हें

पता चला कि चार्ल्स डैरो द्वारा बनाए गए मोनोपली खेल के एक साल के अंदर ही बीस हजार से अधिक यूनिट बिक गए हैं और चार्ल्स खेल-खेल में खेल का आविष्कार करके वास्तव में मल्टीमिलियनेअर बन गए हैं।

१२९८) जो व्यक्ति शराब पीता है वह इन पापों का शिकार हो जाता है - एक बार कवि कालिदास बाजार में घूमने निकले। वहां उन्होंने एक स्त्री को एक घड़ा और कुछ कटोरियां लिए ग्राहकों के इंतजार में बैठे देखा। कालिदास यह देखकर परेशानी में पड़ गए। वह उस स्त्री के पास गए। उन्होंने वहां जाकर पूछा कि बहन तुम क्या बेचती हो। उस स्त्री ने कहा मैं पाप बेचती हूं। मैं स्वयं लोगों से कहती हूं कि मेरे पास पाप हैं, मर्जी हो तो ले लो। लोग रुचि से ले जाते हैं।

इस जवाब को सुनकर कालिदास उलझन में पड़ गए। उन्होंने पूछा कि घड़े में कैसे पाप हो सकता है? स्त्री बोली, हां होता है, जरूर होता है। देखो, मेरे आठ घड़े में आठ पाप भरे हैं। बुद्धिमान, पागलपन, लड़ाई-झगड़े, बेहोशी, विवेक का नशा, सद्गुण का नाश, सुखों का अंत और नर्क में ले जानेवाला दुष्कर्म।

और भी हैरानी में पड़ते हुए कालिदास ने पूछा, अरे बहन। इतने सारे पाप बताती हैं आप, तो आखिर इन घड़ों में है क्या?

स्त्री बोली, शराब, वह शराब ही उन सभी पापों की जननी है। जो शराब पीता है, वह व्यक्ति इन आठ पापों का शिकार हो जाता है। कालिदास उस स्त्री की चतुराई को देखकर दंग रह गए।

१२९९) एक चमत्कारी घटना से जब दादू दुकानदार से बन गए एक प्रसिद्ध संत - दादू दयाल प्रसिद्ध संत हुए हैं। उनकी वाणी ने अनगिनत लोगों को प्रेरणा दी है। संत होने से पहले उनकी एक दुकान हुआ करती थी। उसी से उनकी गुजर-बसर होती थी। एक बार ऐसी घटना हुई कि उनका जीवन ही बदल गया।

एक दिन वह जब अपनी दुकान पर बैठे हिसाब कर रहे थे। बाहर बारिश हो रही थी, लेकिन वह हिसाब में इतने लीन थे कि उन्हें इसका पता ही नहीं चला। संयोग से एक साधु आ गए और उनकी दुकान के सामने पानी में भीगते खड़े हो गए। दादू दयाल अपने काम में तल्लीन रहे। जब हिसाब पूरा हो गया तो उन्होंने नजर उठाकर देखी। बारिश में साधु को भीगते देख उन्हें काफी दुख पहुंचा। वे तत्काल उठकर गए और साधु से क्षमा मांगी।

दादु दयाल ने पूछा, महात्मा जी आप यहां कब से खड़े हैं। तब साधु ने कहा, मुझे तो यहां खड़े हुए काफी देर हो गई है। लेकिन, मेरी कोई बात नहीं, तुम्हारे दरवाजे पर एक और खड़ा है।

दादू दयाल ने पूछा, कौन? ईश्वर। साधु ने प्रसन्न होकर कहा। वह न जाने कब से खड़ा है और तुम्हें पुकार रहा है। अब भी वह तुम्हारी राह देख रहा है।

इतना सुनते ही दादू दयाल का शरीर कांप उठा। उन्होंने अनुभव किया कि साधु जो कह रहे थे, वह सत्य था। सचमुच ईश्वर उनके सामने खड़े हुए थे और इस तरह से उनके जीवन की धारा बदल गई और वह दादू दयाल से संत दादू दयाल बन गए और लोगों को सत्य की राह पर चलने के लिए प्रेरित करते रहे।

१३००) साधु ने विश्व विजेता सिकंदर को समझाया- तुम राजा नहीं रंक हो - सिकंदर उन दिनों भारत में था। अपने गुरु के कहने पर वह यहां के साधु-संतों के जीवन का अध्ययन कर रहा था। एक बार जाड़े के दिनों में सिकंदर ने

देखा कि अधिकांश साधु नाममात्र के वस्त्र पहने हुए हैं। सिकंदर ने उनमें से कुछ को कपड़े देने का निश्चय किया। एक दिन उसने नौकरों के सिर पर कपड़ों की गठरी लदवाई और साधुओं के आश्रमों की ओर चल पड़ा। वहां पहुंचने पर एक वृद्ध महात्मा ने उससे प्रश्न किया तुम कौन हो? सिकंदर ने परिचय दिया मैं विश्व विजेता सिकंदर हूं।

महात्मा ने पूछा क्यों आए हो यहां? सिकंदर बोला आप लोगों को कुछ गरम कपड़े देना चाहता हूं। महात्मा ने कटाक्ष करते हुए कहा उससे क्या लें जिसके पास कुछ भी नहीं है।

सिकंदर ने महात्मा का यह अटपटा कथन सुना, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने प्रश्न किया मैं आपका मतलब नहीं समझा। महात्मा ने उसे समझाते हुए सरलतापूर्वक कहा अरे नादान, क्या तूं नहीं जानता कि लूटमार कौन करता है? इतनी सी बात क्या तुझे नहीं मालूम कि लूट-खसोट वही करता है जिसके पास कुछ नहीं होता? तूं तो लुटेरा है, जो दूसरों को लूटता फिर रहा है। जा तेरे वस्त्र लेकर हम क्या करेंगे? तू अपनी कमाई का नहीं, बल्कि लूट का माल हमें देने आया है। यह लूट का सम्मान हमारे किस काम का? तू कहता तो अपने को विश्व विजेता है लेकिन तूं ही सोच कि असल में तू राजा है या रंक? महात्मा की भेदभरी बातें सुनकर सिकंदर को बड़ी ग्लानि हुई। वह उदास होकर वहां से सारा सामान साधुओं को बांटे बिना वापस लौट गया।

१३०१) महात्मा ने अपने चंचल शिष्य को इस तरह जिंदगी का यथार्थ समझाया - एक महात्मा अपने शिष्यों के साथ जंगल में आश्रम बनाकर रहते थे और उन्हें योगाभ्यास सिखाते थें वह सत्संग भी करते थे। एक शिष्य चंचल बुद्धि का था। बार बार गुरु से कहता, आप कहां जंगल में पड़े हैं, चलिए एक बार नगर की सैर करके आते हैं। महात्मा ने कहा, मुझे तो अपनी साधना से अवकाश नहीं है। तुम चले जाओ। शिष्य अकेला ही नगर चला गया। नगर में बाजार की शोभा देखी। मन अति प्रसन्न हुआ। इतने में एक भवन की छत पर निगाह पड़ी। देखा कि एक परम सुंदरी छत पर कपड़े सुखा रही है। बस वह कामदेव के बाण से आहत हो गया। जब शिष्य आश्रम लौटा तो चेले का चेहरा देखकर महात्मा जान गए कि यह बच्चा काम वासना का शिकार हो गया है। पूछने पर चेले ने उत्तर दिया- गुरुदेव हृदय में असहनीय पीड़ा हो रही है। महात्मा बोले, क्या नजर का कांटा हृदय में गड़ गया? चेले ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। चेले से गुरुजी ने उस स्त्री का पता पूछा तो पता चला कि वह नगर के एक सेठ की पत्नी है। महात्मा ने एक पत्र के जरिए सेठ को अपनी पत्नी को लेकर आश्रम में एक रात के लिए आने के लिए कहा। सेठ आया तो उसे अलग बैठाकर महात्मा स्त्री को लेकर शिष्य के पास गए और कहा, यह स्त्री रातभर तेरे पास रहेगी, पर ध्यान रखना कि सूर्य निकलते ही तेरा देहांत हो जाएगा। उस स्त्री को सारी बात बताकर आश्वासन दिया कि तुम्हारे धर्म पर कोई आंच नहीं आएगी। इधर चेला रात भर कांपता रहा। सारी वासना काफूर हो गई। सुबह गुरु जी ने पूछा, तेरी इच्छा पूरी हुई शिष्य ने आपबीती सुना दी। स्त्री को सम्मानपूर्वक सेठ के साथ रवाना कर महात्मा जी ने शिष्य से कहा, मृत्यु की चिंता और चिंतन सदा करते रहना चाहिए। यही तुझे बचाएगी।

१३०२) जल और ज्योति के अवतार भगवान झूलेलाल, बादशाह को दिखाई ताकत - सिन्ध (पाकिस्तान) के नगर ठट्ठा पर बादशाह मिरक शाह राज्य करता था। वह धर्म के आधार पर लोगों से अत्याचार करता था। एक बार उसने

आदेश दिया कि सभी हिन्दुओं को मुस्लिम धर्म स्वीकार करना होगा, नहीं तो उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाएगा।

हिन्दुओं ने एक सप्ताह का समय मांगा। सिन्ध की प्रजा ने सिन्धु नदी के किनारे पहुंचकर प्रलाप करते हुए अपने ईष्ट को याद किया। नदी में लहरें उठने लगीं। विशाल मछली पर दिव्य पुरुष दिखाई दिए, आकाशवाणी हुई, सात दिन बाद नसरपुर नगर के भक्त रतनराय की पत्नी माता देवकी के गर्भ से मैं अवतार लूंगा। सातवें दिन विक्रम सम्वत् १००७ की चैत्र शुक्ल द्वितीय को भगवान झूलेलाल ने अवतार लिया।

भगवान झूलेलाल बादशाह के दरबार पहुंच गए और बादशाह को समझाने का प्रयास किया, लेकिन उसने सैनिकों को उन्हें बंदी बनाने की आज्ञा दी। इस पर दैवीय शक्ति से उन्होंने समुद्री तूफान को प्रकट कर दिया इससे महल पानी में डूबने लगा। अपनी मृत्यु से घबराकर बादशाह ने भगवान के आगे समर्पण कर दिया। भगवान झूलेलाल ने भक्तों को संदेश दिया कि सभी को प्रेम से रहना चाहिए। छोटी अवस्था में ही झूलेलाल जी ने अपने कई रूपों का दर्शन करवाया।

संवत् १०२० (सन् ९६४) के भाद्रपद शुक्ल चतुर्थदशी पर भगवान झूलेलाल अन्तर्ध्यान हुए। उस पवित्र स्थान पर हिन्दुओं ने मंदिर की स्थापना की जहां आज भी ज्योति जलती है। मुस्लिम अनुयायियों ने वहीं मजार बनवाई।

१३०३) मुश्किल है इस जहां में एक सच्चे और नेक इंसान को तलाशना - एक दार्शनिक थे। वह चिंतन में लीन रहते थे। बोलते थे, तो बड़ी गहरी बात कहते थे। इससे लोग उनका बहुत मान-सम्मान किया करते थे। लेकिन कभी कभी उनकी बातें अजीब-सी होती थीं, और वो स्वयं अपनी ही बातों पर हंसी नहीं रोक पाते थे। एक दिन लोगों ने देखा कि दार्शनिक महोदय हाथ में जलती लालटेन लिए कहीं जा रहे थे। दोपहर का समय था। धूप निकली हुई थी। चारों ओर प्रकाश फैल रहा था। ऐसे में जलती लालटेन हाथ में लेकर चलने में क्या तुक थी।

इस दृश्य को देखकर लोग मारे हंसी से लोट-पोट हो गए। पर दार्शनिक तो गंभीर भाव से आगे बढ़ते जा रहे थे। एक आदमी से न रहा गया। उसने दार्शनिक से पूछा आप दिन में लालटेन लेकर कहां जा रहे हैं। दार्शनिक ने उसकी ओर देखा और बोले, कुछ खो गया है उसे खोज रहा हूं। जिज्ञासा में उस आदमी ने पूछा, क्या खो गया है आपका। दार्शनिक ने उसी लहजे में कहा कि इंसान। मैं उसी की तलाश कर रहा हूं। उस समय तक और भी कई लोग वहां पहुंच गए। दार्शनिक की बात सुनकर एक साथ बोले, महोदय आप यह क्या कह रहे हैं? क्या हम इंसान नहीं हैं? दार्शनिक बोले, नहीं, आप इंसान नहीं है? तब लोगों ने कहा, तो हम लोग क्या हैं? देखो, दार्शनिक ने कहा, तुममें से कोई व्यापारी है, कोई इंजीनियर, कोई शिक्षक है, कोई भाई। पर अफसोस कि तुममे से कोई भी इंसान नहीं है। इंसान तो वह होता है, जो सबको समान समझता है, सबको प्यार करता है। जरा अपने दिल को टटोलकर देखो मेरी बात में कितनी सच्चाई है।

१३०४) गरीब विद्वान व महाराजा भोज कैसे बन गए आपस में भाई-भाई? - कई वर्ष पहले धार में राजा भोज का शासन था। उस राज्य में एक गरीब विद्वान रहता था। आर्थिक तंगी से घबराकर एक दिन विद्वान की पत्नी ने उससे कहा- आप राजा भोज के पास क्यों नहीं जाते? वह विद्वानों का बड़ा आदर करते हैं। हो सकता है आपकी विद्वता से प्रभावित होकर वह आपको ढेर सारा धन दे दें।

विद्वान राजा के दरबार में पहुंचा। पहरेदार ने पूछा- आप कौन हैं? कहां जाना है? विद्वान ने कहा- जाओ राजा से कहो कि उनका भाई आया है। पहरेदार ने जब भोज को यह बात बताई तो वह सोचने लगे- मेरा तो कोई भाई नहीं है फिर कौन हो सकता है। कहीं कोई धूर्त तो नहीं। उनकी उत्सुकता जागी। उन्होंने विद्वान को बुलवा लिया।

भोज ने विद्वान से पूछा- क्या तुम मेरे भाई हो? किस नाते से? विद्वान ने कहा- मैं आपका मौसेरा भाई हूं। आपकी मौसी का लड़का। भोज ने पूछा, कैसे? मेरी तो कोई मौसी नहीं है। विद्वान बोला- महाराज। आप संपत्ति माता के पुत्र हैं और मैं विपत्ति माता का पुत्र। संपत्ति और विपत्ति बहनें हैं। इस नाते मैं आपका मौसेरा भाई हुआ न। यह सुनकर भोज बेहद प्रसन्न हुए। उन्होंने ढेर सारी स्वर्ण मुद्राएं विद्वान को दीं।

फिर भोज ने पूछा- मेरी मौसी तो कुशल हैं न? इस पर विद्वान ने जवाब दिया- राजन्, जब तक आपकी मौसी जीवित थीं, आपके दर्शन नहीं हुए थे। अब आपके दर्शन हुए तो आपकी मौसी स्वर्ग सिधार गईं। इस उत्तर से भोज को और भी प्रसन्नता हुई। उन्होंने विद्वान को गले लगा लिया।

१३०५) क्या आप जानते हैं रामदूत हनुमान जी की पूंछ किस देवी का रूप थी? - भोले शंकर ने माता पार्वती का मनोरथ पूर्ण करने के लिए कुबेर से कहलवाकर स्वर्ण का भव्य महल बनवाया। रावण की दृष्टि जब इस महल पर पड़ी तो उसने सोचा इतना सुंदर महल तो त्रिलोकी में किसी के पास नहीं है। अत: यह महल तो मेरा होना चाहिए। वह ब्राह्मण का रूप धर कर अपने इष्ट भोले शंकर के पास गया और भिक्षा में उनसे स्वर्ण महल की मांग करने लगा।

भोले शंकर जान गए कि उनका प्रिय भक्त रावण ब्राह्मण का रूप धर कर उनसे महल की मांग कर रहा है। द्वार पर आए ब्राह्मण को खाली हाथ लौटाना उन्हें धर्म विरूद्ध लगा क्योंकि शास्त्रों में वर्णित है द्वार पर आए हुया याचक को कभी भी खाली हाथ या भूखे नहीं जाने देना चाहिए। भूलकर भी अतिथि का अपमान मत करो। हमेशा दान के लिए हाथ बढ़ाओ। ऐसा करने से सुख, समृद्धि और प्रभु कृपा स्वयं तुम्हारे घर आएंगी परन्तु याद रहे दान के बदले में कुछ पाने की इच्छा न रखें। निर्दोष हृदय से किया गया गुप्त दान महाफल प्रदान करता है।

भोले शंकर ने खुशी-खुशी महल रावण को दान में दे दिया। जब पार्वती जी को ज्ञात हुआ कि उनका प्रिय महल भोले शंकर ने रावण को दान में दे दिया है तो वह खिन्न हो गई। भोले शंकर ने उनको मनाने का बहुत प्रयत्न किया मगर वह न मानीं। जब सभी प्रयास विफल हो गए तो उन्होंने पार्वती जी को वायदा किया कि त्रेतायुग में जब राम अवतार होगा तो मैं वानर का रूप धरकर हनुमान का अवतार लूंगा। तब आप मेरी पूंछ बन जाएं।

राक्षसों का संहार करने के लिए प्रभु राम की माया से रावण माता सीता का हरण कर ले जाएगा तो मैं माता सीता की खोज खबर लेने तुम्हारे स्वर्ण महल में आऊंगा जोकि भविष्य में सोने की लंका के नाम से विख्यात होगी। उस समय तुम मेरी पूंछ के रूप में लंका को आग लगा देना और रावण को दण्डित करना। पार्वती जी मान गई।

१३०६) जानिए आखिरकार क्या होती है ईमानदारी और सच्चाई की कीमत? - सऊदी अरब में बुखारी नामक एक विद्वान रहते थे। वह अपनी ईमानदारी के लिए मशहूर थे। एक बार वह समुद्री जहाज से लंबी यात्रा पर निकले।

उन्होंने सफर में खर्च के लिए एक हजार दीनार रख लिए। एक यात्री से उनकी नजदीकियां कुछ ज्यादा बढ़ गईं। एक दिन बातों-बातों में बुखारी ने उसे दीनार की पोटली दिखा दी। उस यात्री को लालच आ गया।

उसने उनकी पोटली हथियाने की योजना बनाई। एक सुबह उसने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया, हाय मैं मर गया। मेरा एक हजार दीनार चोरी हो गया। वह रोने लगा। जहाज के कर्मचारियों ने कहा, तुम घबराते क्यों हो। जिसने चोरी की होगी, वह यहीं होगा। हम एक-एक की तलाशी लेते हैं। वह पकड़ा जाएगा।

यात्रियों की तलाशी शुरू हुई। जब बुखारी की बारी आई तो जहाज के कर्मचारियों और यात्रियों ने उनसे कहा, आपकी क्या तलाशी ली जाए। आप पर तो शक करना ही गुनाह है। यह सुनकर बुखारी बोले, नहीं, जिसके दीनार चोरी हुए है उसके दिल में शक बना रहेगा। इसलिए मेरी भी तलाशी की जाए। बुखारी की तलाशी ली गई। उनके पास से कुछ नहीं मिला। दो दिनों के बाद उसी यात्री ने उदास मन से बुखारी से पूछा, आपके पास तो एक हजार दीनार थे, वे कहां गए? बुखारी ने मुस्करा कर कहा, उन्हें मैंने समुद्र में फेंक दिया। तुम जानना चाहते हो क्यों? क्योंकि मैंने जीवन में दो ही दौलत कमाई थीं - एक ईमानदारी और दूसरा लोगों का विश्वास।

१३०७) मनुष्य के जन्म से पहले ही लिख दी जाती हैं कर्म की रेखाएं - एक बार स्काटलैंड पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया। उस समय स्काटलैंड पर राजा ब्रूस का शासन था। युद्ध स्थल पर ब्रूस ने शत्रुओं का डट कर सामना किया परंतु दुश्मन की सेना अधिक होने के कारण उसे युद्ध में पराजय का सामना करना पड़ा और प्राण बचाकर वहां से भागना पड़ा। युद्ध में पराजित होने पर भी उसने साहस न छोड़ा और फिर से सेना को सुदृढ़ करने में लग गया। उसने अपने हृदय में यह निश्चय कर लिया था कि अपने देश को मैं हर हाल में मुक्त करा कर रहूंगा। उसने शत्रुओं पर आक्रमण किया पर इस बार भी उसकी हार हुई। उसने बहुत बार प्रयत्न किया पर हर बार उसकी हार ही हुई। शत्रु उसके पीछे हाथ धोकर पड़ गए। अपने प्राण रक्षा के लिए उसने एक गुफा में शरण ली। अपनी पराजय से हताश हो उसने सोचा अपने राज्य को पाने का विचार उसे त्याग देना चाहिए। अभी वह निर्णय ले भी न पाया था कि तभी एक घटना ने उसके जीवन में क्रांति ला दी। ब्रूस ने देखा गुफा की छत पर एक मकड़ी तेजी से चढ़ने की कोशिश कर रही थी तभी वह नीचे गिर गई। ब्रूस ने सोचा लगता है यह भी मेरी तरह भाग्यहीन है। तभी उसने देखा मकड़ी फिर से प्रयास करने लगी मगर दुर्भाग्यवश वह फिर से फिसल कर गिर पड़ी। उसे जैसे अपनी असफलता पर तनिक भी निराशा न थी। ब्रूस मकड़ी के इस कार्य को बड़े ध्यान से देख रहा था। ब्रूस का विचार था कि इतनी असफल होने के बाद भी अब वह अपना विचार छोड़ देगी परंतु उसका विचार बिल्कुल गलत निकला। वह फिर से अपने कार्य में जुट गई और धीरे-धीरे अपने पैर मजबूती से टिकाते हुए अपने लक्ष्य पर पहुंचने में सफल हो गई। मकड़ी का ब्रूस पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने एक बार फिर से सेना को संगठित किया और शत्रु पर धावा बोल दिया। इस बार उसने अपने देश को मुक्त करा लिया।

१३०८) अभिमान से नहीं उदारता से करो दान और उससे किसी लाभ की इच्छा न करें - राजा जानुश्रुति अपने समय के महान दानी थे। एक शाम वह महल की छत पर विश्राम कर रहे थे, तभी सफेद हंसों का जोड़ा आपस में बात

करता आकाश-मार्ग से गुजरा। हंस अपनी पत्नी से कह रहा था। क्या तुझे राजा जानुश्रुति के शरीर से निकल रहा यश प्रकाश नहीं दिखाई देता। बचकर चल, नहीं तो इसमें झुलस जाएगी। हंसिनी मुस्कराई, प्रिय मुझे आतंकित क्यों करते हो? क्या राजा के समस्त दानों में यश निहित नहीं है, इसलिए मैं ठीक हूं। जबकि संत रैक्व एकांत साधना में लीन हैं? उनका तेज देखते ही बनता है। वहीं सच्चे अर्थों में दानी हैं। जानुश्रुति के हृदय में हंसो की बातचीत कांटों की तरह चुभी। उन्होंने सैनिकों को संत रैक्व का पता लगाने का आदेश दिया। बहुत खोजने पर किसी एकांत स्थान में वह संत अपनी गाड़ी के नीचे बैठे मिले। जानुश्रुति राजसी वैभव से अनेक रथ, घोड़े, गौ और सोने की मुद्राएं लेकर रैक्व के पास पहुंचे। रैक्व ने बहुमूल्य भेटों को अस्वीकार करते हुए कहा कि मित्र यह सब कुछ ज्ञान से तुच्छ है। ज्ञान का व्यापार नहीं होता। राजा शर्मिंदा होकर लौट गए कुछ दिन बाद वह खाली हाथ, जिज्ञासु की तरह रैक्व के पास पहुंचे। रैक्व ने राजा की जिज्ञासा देखकर उपदेश दिया कि दान करो, किंतु अभिमान से नहीं उदारता से, अहं से नहीं, उन्मुक्त भाव से दान करो। राजा रैक्व की बात सुनकर प्रभावित हुए और लौट गए।

दान हमेशा निश्छल भाव से करना चाहिए। दान करते समय यह नहीं सोचना चाहिए कि हमें दान करने से भविष्य में कोई लाभ मिलेगा।

१३०९) सुकरात ने समझाया- सफल होने के लिए जरूरी है सफलता की छटपटाहट - महान दार्शनिक सुकरात से एक बार एक युवक मिला। उसने सफलता पाने का उपाय पूछा। सुकरात ने उसे अगले दिन आने के लिए कहा। अगले दिन युवक ने फिर से वही सवाल पूछा तो सुकरात ने उसे फिर से अगले दिन आने को कहा।

कई महीने बीत जाने के बाद भी लड़का रोज आता और सुकरात उसे अगले दिन आने को टाल देते। एक दिन लड़के ने कहा कि, मैं रोज इतनी दूर से यहां आने से अच्छा मैं आपके आंगन में ही बैठ जाता हूं। सुबह, दोपहर, शाम, रात, दिन में बार-बार मुझे देखकर आपका दिल जरूर पिघलेगा। सुकरात ने लड़के के तरफ ध्यान नहीं दिया परंतु वह मन ही मन खुश जरूर थे। रात में सुकरात ने लड़के से अगले दिन सुबह सफलता का रहस्य बताने का वादा किया। अगली सुबह सुकरात लड़के को लेकर नदी किनारे गए। सुकरात ने लड़कों को नदी किनारे लाकर कहा कि तुम नदी में डुबकी लगाओ फिर मैं तुम्हें सफलता पाने का तरीका बताता हूं। लड़के ने जैसे ही डुबकी लगाया सुकरात ने उसका सिर पकड़कर पानी में दबा दिया। लड़का छटपटाने लगा। सुकरात ने उसे फिर से डुबकी लगाने के लिए कहा जैसे ही लड़का अंदर गया सुकरात ने फिर उसका सिर दबा दिया। एक बार सुकरात उसे निकलने नही दे रहा था। लड़का बहुत जोर से छटपटाने लगा। सुकरात के छोड़ते ही लड़का बाहर निकला। सुकरात ने कहा तुम सफलता के लिए इसी तरह छटपटाओगे जिस तरह हवा के लिए छटपटा रहे थे, मानो उसके बिना मर जाओगे, तो सफलता हर हाल में तुम्हारे कदमों में होगी।

१३१०) जब दो दिल बेहद करीब हों तब शब्द मौन में बदल जाते हैं - एक हिन्दु सन्यासी अपने शिष्यों के साथ गंगा नदी के तट पर नहाने पहुंचे। उन्होंने देखा कि वहां एक ही परिवार के कुछ लोग आपस में बात करते हुए एक दूसरे पर क्रोधित हो रहे थे।

सन्यासी से यह दृश्य देखकर रहा नहीं गया और उसने तुरंत अपने शिष्यों से पूछा कि क्रोध में लोग एक दूसरे पर चिल्लाते क्यों हैं? शिष्य कुछ देर सोचते रहे, तभी एक शिष्य ने उत्तर दिया कि क्योंकि हम क्रोध में शांति खो देते हैं पर जब दूसरा व्यक्ति हमारे सामने ही खड़ा है तो भला उस पर चिल्लाने की क्या जरूरत है, जो कहना है वो आप धीमी आवाज में भी तो कह सकते हैं। सन्यासी ने फिर से प्रश्न किया जब कुछ और शिष्यों ने भी अपने-अपने विवेक से उत्तर देने का प्रयास किया पर इन जवाब से लोग संतुष्ट नहीं हुए।

तब सन्यासी ने समझाया कि जब दो लोग आपस में नाराज होते हैं तो उनके दिल एक दूसरे से बहुत दूर हो जाते हैं ऐसी परिस्थिति में वह एक दूसरे पर बिना चिल्लाए बात नहीं सुन सकते उनको क्रोध आएगा और उनके बीच की दूरी उतनी ही अधिक हो जाएगी इसलिए वह तेजी से चीखते चिल्लाते हैं।

जब दो लोग प्रेम में होते हैं तब वे चिल्लाते नहीं बल्कि धीरे-धीरे बात करते हैं, क्योंकि उनके दिल करीब होते हैं, उनके बीच की दूरी नाम मात्र की रह जाती है और जब वे एक दूसरे को हद से भी अधिक चाहने लगते हैं तो वे बोलते भी नहीं, वे सिर्फ एक दूसारे की तरफ एक टक देखते रहते हैं।

१३११) शतरंज की तरह जिन्दगी में भी गलत चालें चलने से जीत नहीं मिलती - प्रत्येक गुरु सामनेवाले को अपने तरीके से शिक्षा प्रदान करता है। कोई सरल तरीके से कोई कठिन तरीके से। ऐसे ही एक यहूदी संत सिम्शा बुनेन अपने ढंग से लोगों को शिक्षित करने के लिए विख्यात थे। उनके पड़ोस में एक दुराचारी व्यक्ति रहता था। यह सब देखकर संत को बहुत दुख हुआ। संत ने सोचा कि इसे कुछ अलग तरीके से ही सुधारा जा सकता है। संत ने उसके बारे में सारी जानकारी प्राप्त कर ली। संत को पता चला कि वह दुराचारी व्यक्ति शतरंज का शौकीन था। जब सिम्शा को उसके शतरंज का शौकीन होने का पता चला, तो एक दिन उन्होंने उसे शतरंज खेलने के लिए बुलाया। संत देखना चाहते थे कि वह किस तरह खेलता है। खेल के दौरान सिम्शा ने जान-बूझकर गलत चाल चली। जब वह व्यक्ति उनके मोहरे मारने लगा, तो माफ कीजिए कह कर वे मोहरे वापस लेने लगे। उस आदमी ने कोई आपत्ति नहीं की और चाल वापस लेने दी। थोड़ी देर बाद बुनेन ने पुन: गलत चाल चली और माफी मांगते हुए अपनी चाल वापस लेनी चाही, लेकिन इस बार वह व्यक्ति नाराज हो गया और बोला, मैंनेएक बार मोहरा वापस लेने क्या दिया, आप तो बार-बार चाल वापस लेने को कहते हैं। मैं ऐसा नहीं करने दूंगा। तब सिम्शा ने हंसकर उससे कहा, भाई, तुम खेल में मेरी दो गलत चालों को नजरअंदाज करने को राजी नहीं हो, लेकिन अपनी जिंदगी में गलत चालें चलकर चाहते हो कि ईश्वर उन्हें हमेशा नजरअंदाज करता रहे। लेकिन ध्यान रखो कि गलत चालों का अंजाम कभी अच्छा नहीं होता। जिस तरह मेरे द्वारा गलत चाल चलने पर मैं शतरंज में बुरी तरह हार सकता था, वैसे ही तुम भी जिंदगी के शतरंज में खराब चालें चल कर हारनेवाले हो। इस बात को समझो कि यदि हमें दुनिया में रहना है, तो बुरे कर्मों का त्याग कर स्वयं को अच्छे कामों में ही लगाना होगा।

१३१२) संतोष का धन - पंडित श्री रामनाथ शहर के बाहर अपनी पत्नी के साथ रहते थे। एक बार जब वो अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए जा रहे थे तो उनकी पत्नी ने उनसे सवाल किया- आज घर में खाना कैसे बनेगा क्योंकि

घर में केवल मात्र एक मुठी चावल भर ही है? पंडित जी ने पत्नी की और एक नजर से देखा फिर बिना किसी जवाब के वो घर से चल दिए।

शाम को वो जब वापस लौटकर आए तो भोजन के समय थाली में कुछ उबले हुए चावल और पत्तियां देखी। यह देखकर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा- भद्रे, ये स्वादिष्ट शाक जो है वो किस चीज से बना है? पत्नी ने कहा- मैंने जब सुबह आपके जाते समय आपसे भोजन के विषय में पूछा था तो आपकी दृष्टि इमली के पेड़ की तरफ गई थी। मैंने उसी के पतों से यह शाक बनाया है। पंडित जी ने बड़ी निश्चिंतता के साथ कहा- अगर इमली के पत्तों का शाक इतना स्वादिष्ट होता है फिर तो हमें चिंता करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। अब तो हमे भोजन की कोई चिंता ही नहीं रही।

जब नगर के राजा को पंडित जी की गरीबी का पता चला तो राजा ने पंडित को नगर में आकर रहने का प्रस्ताव दिया किन्तु पंडित ने मना कर दिया, तो राजा हैरान हो गया और स्वयं जाकर उनकी कुटिया में उनसे मिलकर इसका कारण जानने की इच्छा हुई। राजा उनकी कुटिया में गया तो राजा ने काफी देर इधर उधर की बातें की लेकिन वो असमंजस में था कि अपनी बात किस तरह से पूछे। लेकिन फिर उसने हिम्मत कर पंडित जी से पूछ ही लिया कि आपको किसी चीज का कोई अभाव तो नहीं है न?

पंडित जी हँसकर बोले- यह तो मेरी पत्नी ही जाने। इस पर राजा पत्नी की और आमुख हुए और उनसे वही सवाल किया तो पंडित जी की पत्नी ने जवाब दिया कि अभी मुझे किसी भी तरीके का अभाव नहीं है क्योंकि मेरे पहनने के वस्त्र इतने नहीं फटे कि वो पहने न जा सकें और पानी का मटका भी तनिक नहीं फूटा कि उसमे पानी नहीं आ सके और इसके बाद मेरे हाथों की चूड़ियां जब तक हैं मुझे किसी चीज का क्या अभाव हो सकता है? और फिर सीमित साधनों में भी संतोष की अनुभूति हो तो जीवन आनंदमय हो जाता है। राजा श्रद्धा से उस देवी के सामने झुक गए।

१३१३) नानक देव की सीख : गिरवी के पत्थर - एक बार गुरु नानक बगदाद गये हुए थे। वहां का शासक बड़ा ही अत्याचारी था। वह जनता को कष्ट तो देता ही था, उनकी संपत्ति लूटकर अपने खजाने में जमा भी कर लिया करता था। उसे जब मालूम हुआ कि हिंदुस्तान से कोई साधु पुरुष आया है तो वह नानकजी से मिलने उनके पास पहुंचा।

कुशल समाचार पूछने के उपरांत नानकजी ने उससे १०० पत्थर गिरवी रखने की विनती की।

शासक बोला, पत्थर गिरवी रखने में कोई आपत्ति नहीं है किंतु आप उन्हें ले कब जाएंगे?

आपके पूर्व ही मेरी मृत्यु होगी। मेरे मरणोपरांत, इस संसार में आपकी जीवन यात्रा समाप्त होने पर जब आप मुझसे मिलेंगे, तब इन पत्थरों को मुझे दे दीजिएगा, नानक बोले।

आप भी कैसी बातें करते हैं, महाराज। भला इन पत्थरों को लेकर मैं वहां कैसे जा सकता हूं?

तो फिर जनता को चूस-चूसकर आप जो अपने खजाने में नित्य वृद्धि किए जा रहे हैं, क्या वह सब यहीं छोड़ेंगे? उसे भी अपने साथ ले ही जाएंगे। बस साथ में मेरे इन पत्थरों को भी लेते आइएगा।

इतना सुनते ही उस दुराचारी की आंखें खुल गईं। नानक के चरणों पर गिरकर उनसे क्षमा मांगने लगा। नानक ने कहा,

मुझसे क्षमा क्यों मांगते हो और मैं कौन होता हूं क्षमा करनेवाला। वैसे भी तुमने मुझे कोई कष्ट दिया नहीं कि तुम मुझसे क्षमा मांगो। अगर क्षमा मांगनी ही है तो अपने देश की जनता से मांगो जिसका तुमने खून चूसा है। तुम यदि समझ रहे हो कि तुमने गलत किया है तो वचन दो कि आज के बाद कभी अपनी प्रजा को कष्ट नहीं दोगे।

शासक की समझ में सारी बात आ गई। उसने नानकजी को वचन दिया कि वह ऐसा ही करेगा। नानकजी ने उसे क्षमा कर दिया और वह शासक प्रजा को कष्ट न देने के वचन के साथ अपने महल की ओर चल दिया।

१३१४) हकदार - उड़ीसा में भयंकर बाढ़ आई थी। जगह-जगह हाहाकार और तबाही मची थी। महात्मा गांधी ने डॉ. विश्वेश्वरैया को पत्र लिखा, आप फौरन जाकर उड़ीसा में बाढ़ रोकने की योजना बनाएं। वे उड़ीसा गए। एक महत्वपूर्ण योजना बनाई और उसे सफल बनाने के लिए सरकार को रिपोर्ट सौंप कर लौट आए। कुछ दिन बाद सरकार ने उन्हें पारिश्रमिक स्वरूप एक मोटी रकम का चेक भेजा। उन्होंने उड़ीसा सरकार को चेक वापस करते हुए लिखा- मैं बापू की आज्ञा से वहां गया था। सरकार से पारिश्रमिक का हकदार नहीं हूं। अत: चेक वापस कर रहा हूं। हृदय की विशालता ही उन्नति की नींव है।

१३१५) लक्ष्य की ओर उन्मुख - महाभारत में पांडवों की जीत हुई थी। उन्होंने कुछ समय राज करने के बाद सशरीर स्वर्ग की यात्रा शुरू की, मगर युधिष्ठिर ही जीवित स्वर्ग पहुंच सके। वहां पहुंच कर उन्होंने नरक और फिर स्वर्ग, दोनों स्थानों को देखा। स्वर्ग में प्रवेश करते ही सबसे पहले उन्हें दुर्योधन दिखाई दिया। अपने भाइयों से भी उनका सामना हुआ। स्वर्ग आने के रास्ते में अन्य भाइयों के गिरते समय प्रश्न करनेवाले भीम के मन में यहां भी जिज्ञासा उठी कि दुर्योधन को स्वर्ग कैसे मिला? उसने धर्मराज से पूछा, भैया दुष्ट दुर्योधन तो आजीवन अनीति का ही पक्ष लेता रहा।

जीवन में उसने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसके पुण्य से उसे स्वर्ग मिल सके। मगर यहां स्वर्ग में तो वह मौज कर रहा है, आखिर ऐसा क्यों? क्या ईश्वरीय विधान में कहीं कोई चूक हुई है? युधिष्ठिर ने कहा, नहीं भीम, ईश्वरीय विधान के अनुसार पुण्य का परिणाम अच्छा और अनीति का परिणाम दंड रूप में मिलता ही है। चाहे वह किंचित ही क्यों न हो। सभी बुराइयों के होते हुए भी दुर्योधन में एक अच्छा गुण था, जिसके प्रसाद स्वरूप उसे स्वर्ग में स्थान मिला है। भीम के चेहरे पर जिज्ञासा देखकर धर्मराज ने आगे कहा, वह अपने संस्कारों के कारण जीवन को सही दिशा भले ही न दे सका हो, परंतु अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तन्मयतापूर्वक जुटा रहा।

१३१६) गायब होतीं गायों का रहस्य - दो संन्यासी युवक यात्रा करते-करते किसी गांव में पहुंचे। वहां लोगों से पूछा हमें एक रात्रि यहां रहना है किसी पवित्र परिवार का घर दिखाओ। लोगों ने बताया कि वहां एक चाचा का घर है। साधु महात्माओं का आदर-सत्कार करते हैं। उन्होंने उन सज्जन चाचा का पता बताया। दोनों संन्यासी वहां गए। चाचा ने प्रेम से सत्कार किया, भोजन कराया और रात्रि-विश्राम के लिए बिछौना दिया। रात्रि को कथा वार्ता के दौरान एक संन्यासी ने प्रश्न किया कि आपने कितने तीर्थों में स्नान किया है? कितनी तीर्थयात्राएं की हैं? हमने तो चारों धाम की तीन-तीन बार यात्रा की है। चाचा ने कहा, मैंने एक भी तीर्थ का दर्शन या स्नान नहीं किया है। यहीं रहकर भगवान का भजन करता हूं और आप जैसे भगवत्स्वरूप अतिथि पधारते हैं तो सेवा करने का मौका पा लेता हूं। अभी तक कहीं भी नहीं गया हूं। दोनों

संन्यासी आपस में विचार करने लगे कि ऐसे व्यक्ति का अन्न खाया, अब यहां से चले जाएं तो रात्रि कहां बिताएंगे? यकायक चले गए तो उसको दु:ख भी होगा। चलो, कैसे भी करके इस विचित्र वृद्ध के यहां रात्रि बिता दें। जिसने एक भी तीर्थ नहीं किया उसका अन्न खा लिया, हाय, इस प्रकार विचारते हुए वे सोने लगे लेकिन नींद कैसे आए। करवटें बदलते-बदलते मध्यरात्रि हुई। इतने में द्वार से बाहर देखा तो गौ के गोबर से लीपे हुए बरामदे में एक काली गाय आई, फिर दूसरी आई, तीसरी, चौथी, पांचवी, ऐसा करते करते कई गायें आईं। हरेक गाय वहां आती, बरामदे में लोटपोट होतीं और सफेद हो जातीं तब अदृश्य हो जाती। ऐसी कितनी ही काली गायें आयीं और सफेद होकर विदा हो गईं। दोनों संन्यासी फटी आंखों से देखते ही रह गए। वे दंग रह गए कि यह क्या कौतुक हो रहा है। आखिरी गाय जाने की तैयारी में थी तो उन्होंने उसे प्रणाम करके पूछा, हे गौ माता। आप कौन हो और यहां कैसे आना हुआ? यहां आकर आप श्वेतवर्ण हो जाती हो इसमें क्या रहस्य है? कृपा करके आपका परिचय दें। गाय बोलने लगी, हम गायों के रूप में सब तीर्थ हैं। लोग हममें गंगे हर, यमुने हर, नर्मदे हर आदि बोलकर गोता लगाते हैं।

१३१७) नसीहत - अफ्रीका के एक राष्ट्रीय उद्यान में जॉर्ज नाम का एक छोटा सा जिराफ अपने माता-पिता के साथ रहता था। एक दिन जॉर्ज दोपहर में अपनी माँ के साथ पेड़ की हरी-हरी पत्तियाँ चर रहा था, तभी उद्यान से लगी सड़क पर से एक जीप गुजरी। जीप में एक प्रसिद्ध फिल्म निर्माता बैठे थे। जैसे ही उनकी दृष्टि जॉर्ज और उसकी मां पर गई, उन्होंने जीप रुकवा दी और उसकी छत पर चढ़कर उस सुंदर दृश्य का फोटो उतारने लगे। अचानक हवा का एक तेज झोंका आया और निर्माता की टोपी उड़कर ठीक उसी पेड़ पर जा अटकी, जिसकी डाल से जॉर्ज और उसकी माँ पत्तियाँ चर रहे थे। वाह। मैं इसे भी खाऊंगा। जॉर्ज ने कहा और अपनी गरदन उस तरफ बढ़ाई। माँ उसकी इस बात पर हँसी, यह कतई स्वादिष्ट नहीं होती, जॉर्ज। इसे उन सज्जन को लौटा दो। जॉर्ज को माँ की बात माननी पड़ी। उसने सावधानी से गरदन उचकाकर टोपी डाल पर से उतारी और उद्यान की चारदीवारी के पास जाकर उन सज्जन को लौटा दी। वे फिल्म निर्माता उसके इस व्यवहार से अत्यंत खुश हुए। उन्होंने फौरन जानवरों पर एक फिल्म बनाने का निश्चय किया, जिसका नायक उन्होंने जॉर्ज को चुना। जॉर्ज को भी इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि सारे साथी जानवरों में उसे ही प्रधानता दी गई।

१३१८) ऐसी शिक्षा किस काम की - एक बार एक बादशाह बगदाद शहर का मुआयना करने निकले। रास्ते में उन्हें एक आलीशान इमारत दिखाई दी, जिस पर पाठशाला की तख्ती लगी हुई थी। बादशाह ने मंत्री से पूछा, हमारे दोनों शहजादे इसी पाठशाला में तालीम पाते हैं न? मंत्री ने कहा, जी हां। बादशाह घोड़े से उतरे और पाठशाला में प्रवेश किया। तब उन्हें एक बुजुर्ग हाथ-मुंह धोते दिखाई दिए। वह उस पाठशाला के शिक्षक थे। हाथ-मुंह धोने के बाद उन्होंने बादशाह को सलाम किया। सलामी का जवाब देकर बादशाह बोले, हम आपकी पाठशाला का मुआयना करने आए थे, लेकिन हमें यह देखकर बड़ा अफसोस हुआ कि यहां पूरी तालीम नहीं दी जाती है। शिक्षक डरते हुए बोले, गुस्ताखी माफ हो हुजूर मुझसे क्या गलती हो गई? बादशाह ने कहा, जब आप मुंह-हाथ धो रहे थे, तब हमारे बच्चे चुपचाप खड़े थे। दरअसल शिक्षक की जगह बहुत ऊंची होती है और उनकी खिदमत करना हर विद्यार्थी का

फर्ज है। लेकिन हम देखते हैं कि हमारे शहजादे चुपचाप खड़े थे। उनको चाहिए था कि वे आपको पानी लाकर दें आपके पैरों पर डालें। मालूम होता है आपने उनको यह शिक्षा नहीं दी है? यह सुनकर शिक्षक हैरान हो गए। दोनों शहजादे शर्म से पानी-पानी सिर झुकाकर खड़े हुए थे।

१३१९) यात्री और पेड़ - चिलचिलाती धूप में पसीने से तर दो यात्रियों को सहसा दूर एक पेड़ दिखाई पड़ा। दोनों जाकर उस पेड़ की छांव में बैठ गए। कुछ देर सुस्ताने के बाद एकाएक एक यात्री की दृष्टि ऊपर गई तो उसने पाया कि पेड़ पर एक भी फल नहीं लगा था। वह बोला, जिस पेड़ पर न फल हों, न फूल, वह भला आदमी के किस काम का। तभी पेड़ से आवाज आई, ओ स्वार्थियों, मैंने तुम्हें छांव दी, फिर भी तुम यह कह रहे हो कि मैं तुम्हारे किस काम का?

१३२०) न मिटनेवाले दाग - पुत्र किसी के घर में डाका डालकर आता तो माँ कमरे में एक कील गाड़ देती थी। किसी का खून करता तो एक और कील गाड़ देती। यह सिलसिला काफी दिनों से पुत्र देख रहा था। एक दिन पुत्र ने पूछा, माँ तुमने सारा कमरा कीलों से भर दिया है। यह सब क्या है? पुत्र, यह सब तुम्हारे बुरे काम हैं। अब तो पूरा कमरा कीलों से भर गया है। पुत्र का हृदय पछतावे से भर गया। उसने निश्चय किया कि अब से वह बुरे काम छोड़ अच्छे काम करेगा और उसने अच्छे काम करने शुरू कर दिए। अब माँ को वह अपने अच्छे काम बताता। माँ उन कीलों में से एक कील उखाड़ देती। कई वर्षों तक इसी प्रकार चलता रहा। एक दिन सब कीलें उखड़ गई। तब पुत्र ने माँ से पूछा, माँ, अब तो कोई पाप नहीं रहा? माँ ने उत्तर दिया, बेटा। कीलें तो सभी निकल गई हैं, पर कीलों के न मिटनेवाले दाग दीवार पर रह गए हैं, जो तुम्हारे बुरे कामों की हमेशा याद दिलाते रहेंगे। प्रायश्चित हृदय की वेदना है और निर्मल जीवन का उदय है।

१३२१) चापलूस से अच्छा होता है आलोचक - अमेरिका के राष्ट्रपति ने अपने कार्यकाल में रक्षा मंत्रालय का कार्यभार एक ऐसे व्यक्ति को सौंपा जो उनका कटु आलोचक था। वह व्यक्ति लिंकन के विरुद्ध कुछ न कुछ गलत बोला करता था। जब यह बात लिंकन के दोस्त को पता चली तो उन्होंने कहा, क्या आप नहीं जानते कि जिसे आपने रक्षा मंत्रालय का कार्यभार सौंपा है, वह कौन है? लिंकन बोले, ऐसा क्या हुआ? दोस्त बोला, उस व्यक्ति ने कल ही एक सभा में आपको दुबला-पतला गुरिल्ला बताया है। लिंकन बोले, मुझे पता है, समाचार पत्र में पढ़ा था। उसने लिंकन को भड़काने के लिहाज से कहा, इससे पहले भी एक सभा में उसने आपको बहुरूपिया कहा था। लिंकन बोले, वह भी मुझे पता है। दोस्त अब नाराज होकर बोला, जब सब पता है तो उसे रक्षा मंत्रालय जैसा महत्वपूर्ण विभाग क्यों सौंपा? लिंकन बोले, वह जैसा भी है लेकिन कुशल प्रशासक है। अपने कार्य को लगन-निष्ठा से पूरा करता है। मुझे ऐसे ही देशभक्त रक्षामंत्री की आवश्यकता है न कि चापलूस की। लिंकन का जीवन ऐसी विषम परिस्थितियों में भी उज्ज्वल इसीलिए रहा, क्योंकि उनकी सोच औरों से हटकर थी।

१३२२) हीरा गंवा दिया - एक कुम्हार अपने बर्तनों और खिलौनों को बेचकर गुजारा चलाता था। किसी दिन वह बाजर से लौट रहा था कि उसे रास्ते में एक बड़ा हीरा दिखाई दिया। चमकदार पत्थर समझकर उसने उसे उठा लिया। सोचा, घर पर बच्चे खेलते रहेंगे और उसने उसे गधे के गले में लटका लिया। रास्ते में उसे एक जौहरी मिला। उसने गधे

के गले में पत्थर देखा, तो समझ गया कि यह हीरा है। उसने कुम्हार से पूछा- इसका क्या लेगा? कुम्हार ने कहा- एक रुपया भी मिल जाए, तो ठीक है, जौहरी समझ गया कि इसे कुछ पता नहीं कि यह क्या है। बोला बारह आने लेने हैं, किंतु कुम्हार एक रुपया पर ही डटा रहा।

जौहरी ने सोचा- मूरख है, अभी आते हैं लौटकर। फिर उधर से दूसरा जौहरी निकला। उसने भी गधे के गले में हीरा देखा। उसने कुम्हार से कीमत पूछी, तो उसने उससे भी एक रुपया ही मांगा। उसने तुरंत कीमत चुकाई और हीरा खरीद लिया। थोड़ी देर के बाद वह पहले वाला जौहरी लौटकर आया और पूछा, क्या किया उस पत्थर का? उसने रुपया दिखाकर कहा, वह तो बिक गया एक रुपया में। पहला जौहरी बोला- अरे मूरख। तूने लाखों का हीरा एक रुपया में बेच दिया। कुम्हार बोला, मुझे तो नहीं मालूम था कि हीरा है। मैंने पत्थर समझकर उसे एक रुपया में बेच डाला, किंतु आप तो जानकार थे, फिर भी रुपया देने में डर रहे थे और कीमती हीरा गंवा दिया। सही कहा है, शास्त्रों के ज्ञाता, ज्ञानी और जानकार अपना हीरे जैसा बहुमूल्य जीवन इसी तरह गंवा देते हैं।

१३२३) बुद्धिमान बंजारा - एक बंजारा था। वह बैलों पर मेट (मुल्तानी मिट्टी) लादकर दिल्ली की तरफ आ रहा था। रास्ते में कई गाँवों से गुजरते समय उसकी बहुत-सी मेट बिक गई। बैलों की पीठ पर लदे बोरे आधे तो खाली हो गए और आधे भरे रह गए। अब वे बैलों की पहठ पर टिके कैसे? क्योंकि भार एक तरफ हो गया। नौकरों ने पूछा कि क्या करें? बंजारा बेाला- अरे सोचते क्या हो, बोरों के एक तरफ रेत (बालू) भर लो। यह राजस्थानी जमीन है। यहां रेत बहुत है। नौकरों ने वैसा ही किया। बैलों की पीठ पर एक तरफ आधे बोरे में मेट हो गई और दूसरी तरफ आधे बोरे में रेत हो गई।

दिल्ली से एक सज्जन उधर आ रहे थे। उन्होंने बैलों पर लदे बोरों में से एक तरफ रेत झरते हुए देखी तो बोले कि बोरों में एक तरफ रेत क्यों भरी है? नौकरों ने कहा- सन्तुलन करने के लिए। वे सज्जन बोले- अरे, यह तुम क्या मूर्खता करते हो? तुम्हारा मालिक और तुम एक जैसे ही हो। बैलों पर मुफ्त में ही भार ढोकर उनको मार रहे हैं। मेट के आधे-आधे दो बोरों को एक ही जगह बाँध दो तो कम-से-कम आधे बैल तो बिना भार के खुले चलेंगे।

नौकरों ने कहा कि आपकी बात तो ठीक जँचती हैं, पर हम वही करेंगे, जो हमारा मालिक कहेगा। आप जाकर हमारे मालिक से यह बात कहो और उनसे हमें हुक्म दिलवाओ। वह मालिक (बंजारे) से मिला और उससे बात कही।

बंजारे ने पूछा कि आप कहाँ के हैं? कहाँ जा रहे हैं? उसने कहा कि मैं भिवानी का रहनेवाला हूं, रुपये कमाने के लिए दिल्ली गया था। कुछ दिन वहाँ रहा, फिर बीमार हो गया। जो थोड़े रुपये कमाये थे, वे खर्च हो गए। व्यापार में घाटा लग गया। पास में कुछ रहा नहीं तो विचार किया कि घर चलना चाहिए। उसकी बात सुनकर बंजारा नौकरों से बोला कि इनकी सम्मति मत लो। अपने जैसे चलते हैं, वैसे ही चलो, इनकी बुद्धि तो अच्छी दीखती है, पर उसका नतीजा ठीक निकलता नहीं तो ये धनवान हो जाते। हमारी बुद्धि भले ही ठीक न दिखे, पर उसका नतीजा ठीक होता है। मैंने कभी अपने काम में घाटा नहीं खाया।

बंजारा अपने बैलों को लेकर दिल्ली पहुंचा। वहाँ उसने जमीन खरीदकर मेट और रेत दोनों का अलग-अलग ढेर लगा

दिया और नौकरों से कहा कि बैलों को जंगल में ले जाओ और जहाँ चारा-पानी हो, वहाँ उनको रखो। यहाँ उनको चारा खिलाएंगे तो नफा कैसे कमाएंगे? मेट बिकनी शुरू हो गई। उधर दिल्ली का बादशाह बीमार हो गया। वैद्य ने सलाह दी कि अगर बादशाह राजस्थान के धोरे (रेत के टीले) पर रहें तो उनका शरीर ठीक हो सकता है। रेत में शरीर को नीरोग करने की शक्ति होती है। अत: बादशाह को राजस्थान भेजो। राजस्थान क्यों भेजें? वहाँ की रेत यहीं मँगा लो। ठीक बात है। रेत लाने के लिए ऊँट को भेजो। ऊँट क्यों भेजें? यहीं बाजार में रेत मिल जाएगी। बाजार में कैसे मिल जाएगी?

अरे, दिल्ली का बाजार है, यहाँ सब कुछ मिलता है। मैंने एक जगह रेत का ढेर लगा हुआ देखा है। अच्छा, तो फिर जल्दी रेत मँगवा लो। बादशाह के आदमी बंजारे के पास गए और उससे पूछा कि रेत क्या भाव है? बंजारा बोला कि चाहे मेट खरीदो, चाहे रेत खरीदो, एक ही भाव है। दोनों बैलों पर बराबर तुलकर आए हैं। बादशाह के आदमियों ने वह सारी रेत खरीद ली। अगर बंजारा दिल्ली से आए उस सज्जन की बात मानता तो ये मुफ्त के रुपये कैसे मिलते? इससे सिद्ध हुआ कि बंजारे की बुद्धि ठीक काम करती थी।

इस कहानी से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जिन्होंने अपनी वास्तविक उन्नति कर ली है जिनका विवेक विकसित हो चुका है, जिनको तत्व का अनुभव हो चुका है, जिन्होंने दु:ख, संताप, अशान्ति आदि को मिटा दिया है, ऐसे व्यक्तियों की बात मान लेनी चाहिए; क्योंकि उनकी बुद्धि का नतीजा अच्छा हुआ है। जैसे, किसी ने व्यापार में बहुत धन कमाया हो तो वह जैसा कहे, वैसा ही हम करेंगे तो हमें भी लाभ होगा। उनको लाभ हुआ है तो हमें भी लाभ क्यों नहीं होगा?

१३२४) गोलू-मोलू और भालू - गोलू-मोलू पक्के दोस्त थे। गोलू जहां दुबला-पतला था, वहीं मोलू मोटा गोल-मटोल। दोनों एक दूसरे पर जान देने का दम भरते थे, लेकिन उनकी जोड़ी देखकर लोगों की हंसी छूट जाती। एक बार उन्हें किसी दूसरे गांव में रहनेवाले मित्र का निमंत्रण मिला। उसने उन्हें अपनी बहन के विवाह के अवसर पर बुलाया था। उनके मित्र का गांव कोई बहुत दूर तो नहीं था, लेकिन वहां तक पहुंचने के लिए जंगल से होकर गुजरना पड़ता था और उस जंगल में जंगली जानवरों की भरमार थी। फिर भी दोनों चल दिए। जब वे जंगल से होकर गुजर रहे थे, तो उन्हें सामने से एक भालू आता दिखा। उसे देख कर दोनों भय से भर थर कांपने लगे। तभी दुबला-पतला गोलू तेजी से दौड़ कर एक पेड़ पर जा चढ़ा, लेकिन मोटा होने के कारण मोलू उतना तेज नहीं दौड़ सकता था। उधर, भालू भी निकट आ चुका था, फिर भी मोलू ने साहस नहीं खोया। उसने सुन रखा था कि भालू मृत शरीर को नहीं खाते। वह तुरंत जमीन पर लेट गया और सांस रोक ली। ऐसा अभिनय किया कि मानो शरीर में प्राण हैं ही नहीं। भालू घुरघुराता हुआ मोलू के पास आया, उसके चेहरे व शरीर को सूंघा और उसे मृत समझ कर आगे बढ़ गया। जब भालू काफी दूर निकल गया, तो गोलू पेड़ से उतर कर मोलू के निकट आया और बोला, मित्र मैंने देखा था भालू तुमसे कुछ कह रहा था। क्या कहा उसने? मोलू ने गुस्से में भर कर जवाब दिया, मुझे मित्र कहकर न बुलाओ और ऐसा ही कुछ भालू ने भी मुझसे कहा, उसने कहा, गोलू पर विश्वास न करना, वह तुम्हारा मित्र नहीं है।

सुनकर गोलू शर्मिंदा हो गया। उसे आभास हो गया था कि उससे कितनी भारी भूल हो गई थी। उसकी मित्रता भी सदैव

के लिए समाप्त हो गई। सच्चा मित्र वही है, जो संकट में काम आए।

१३२५) मैं बहरा था, बहरा हूं और बहरा रहूंगा - एक बार एक सीधे पहाड़ पर चढ़ने की प्रतियोगिता हुई। बहुत लोगों ने हिस्सा लिया। प्रतियोगिता को देखनेवालों की सब जगह भीड़ जमा हो गई। माहौल में सरगर्मी थी, हर तरफ शोर ही शोर था। प्रतियोगियों ने चढ़ना शुरू किया, लेकिन सीधे पहाड़ को देखकर भीड़ में एकत्र हुए किसी भी आदमी को ये यकीन नहीं हुआ कि कोई भी व्यक्ति ऊपर तक पहुंच पाएगा। हर तरफ यही सुनाई देता अरे ये बहुत कठिन है। ये लोग कभी भी सीधे पहाड़ पर नहीं चढ़ पाएंगे, सफलता का तो कोई सवाल ही नहीं। इतने सीधे पहाड़ पर तो चढ़ा ही नहीं जा सकता। और यही हो भी रहा था, जो भी आदमी कोशिश करता, वो थोड़ा ऊपर जाकर नीचे गिर जाता। कई लोग दो-तीन बार गिरने के बावजूद अपने प्रयास में लगे हुए थे पर भीड़ तो अभी भी चिल्लाए जा रही थी- ये नहीं हो सकता, असंभव। और वो उत्साहित प्रतियोगी भी ये सुन-सुनकर हताश हो गए और अपना प्रयास धीरे धीरे करके छोड़ने लगे।

लेकिन उन्हीं लोगों के बीच एक प्रतियोगी था, जो बार बार गिरने पर भी उसी जोश के साथ ऊपर पहाड़ पर चढ़ने में लगा हुआ था। वो लगातार ऊपर की ओर बढ़ता रहा और अंतत: वह सीधे पहाड़ के ऊपर पहुंच गया और इस प्रतियोगिता का विजेता बना। उसकी जीत पर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी लोग उसे घेर कर खड़े हो गए और पूछने लगे, तुमने ये असंभव काम कैसे कर दिखाया, भला तुम्हें अपना लक्ष्य प्राप्त करने की शक्ति कहाँ से मिली, जरा हमें भी तो बताओ कि तुमने ये विजय कैसे प्राप्त की?

तभी पीछे से एक आवाज आई अरे उससे क्या पूछते हो, वो तो बहरा है तभी उस व्यक्ति ने कहा हर नकारात्मक बात के लिए- मैं बहरा था, बहरा हूं और बहरा रहूंगा। ये कहानी हमें यही सिखाती है कि हम हमें कमजोर बनानेवाली हर एक आवाज को अनसुना करें और उसके प्रति बहरे हो जाएँ जो हमें सफलता के शिखर तक पहुंचने से रोकती हैं।

१३२६) दुकानदार पर वह अच्छा प्रभाव नहीं छोड़ पाया - एक दुकानदार को नौकर की सख्त जरूरत थी। उसने अपने मिलने जुलने वालों से कह रखा था कि कोई पढ़ा-लिखा, ईमानदार आदमी मिल जाए तो बताना, क्योंकि मैं अकेला हूं। जब कभी बाहर सामान लेने जाता हूं या किसी अन्य काम से यहां वहां जाता हूं तो मुझे दुकान बंद ही करनी पड़ती है। कहते हैं ग्राहक और मौत का क्या ठिकाना? कब आए और लौट जाए।

कुछ दिनों बाद ही दुकानदार का एक मित्र एक युवक को साथ लेकर उस दुकान पर पहुंचा। युवक मुसीबत का मारा था और नौकरी की तलाश में था। दुकान के मालिक ने उसकी योग्यता के बारे में पूछताछ करने के बाद कहा- ठीक है, आप अभी अपने घर जाइए। मैं सोचकर उत्तर दूंगा और आपके घर सूचना भिजवा दूंगा। मालिक ने कहा। युवक निराश होकर अपने घर चला गया। जो दुकानदार की मदद के लिए उस लड़के को लाया था उस मित्र ने पूछा- भैया, आपको व्यापार के लिए एक व्यक्ति की सख्त जरूरत थी, इसलिए मैं उस युवक को आपके पास लाया था। मेरी दृष्टि में वह युवक परिश्रमी, ईमानदार और पढ़ा-लिखा है, पर आपने उसे टाल दिया। दुकानदार ने उत्तर दिया- पर उसमें एक कमी थी। मेरे प्रश्नों के उत्तर उसने दिए तो, पर श्रीमान, महोदय या साहब जैसे शिष्टतासूचक शब्दों का कहीं प्रयोग उसने नहीं किया।

व्यापार की सार सफलताएं शिष्ट व्यवहार पर ही टिकी होती हैं। शिष्टता के अभाव में तो मेरा सारा व्यापार ही चौपट हो जाएगा। दुकानदार ने अपने मित्र को समझाया। कहानी का गूढ़ार्थ यह है कि वही व्यक्ति श्रेष्ठ है, जो अपने शिष्ट आचार-व्यवहार से दूसरों के हृदय पर विजय प्राप्त कर सकता है।

१३२७) संस्कारों का महत्व समझिये - दक्षिण भारत के परम विरक्त व ज्ञानी संत तिरुवल्लुवर उपदेशों के माध्यम से लोगों को मांस-मदिरा, बेईमानी व अन्य दुर्व्यसनों का त्याग करके अपना जीवन सरल व सात्विक बनाने की प्रेरणा दिया करते थे। लोग उनसे अपनी समस्याओं के निराकरण का उपाय पूछा करते थे। एक दिन एक धनाढ्य व्यक्ति संत के पास पहुंचा। उसने कहा, महाराज, मैंने कड़ा परिश्रम करके असीमित धन कमाया और कंजूसी में सारा जीवन बिता दिया। किंतु मेरा इकलौता पुत्र कुसंग में पड़कर दुर्व्यसनी बन गया है। वह मेरे द्वारा संचित धन-संपत्ति को व्यसनों में उड़ा रहा है। संत तिरुवल्लुवर ने पूछा, तुम केवल धन संचय में लगे रहे या कुछ समय अपने पुत्र को संस्कारित करने में भी लगाया? क्या कभी अपने द्वारा अर्जित धन के कुछ अंश धर्म-सेवा-परोपकार के कार्यों पर भी खर्च किया? सेठ ने रोते हुए कहा, मैं अंधा होकर धनार्जन में लगा रहा। न कभी पुत्र को संस्कारित करने की सोची, न किसी की सेवा में कुछ खर्च किया। संत जी ने शास्त्र का प्रमाण देते हुए कहा सबसे बड़ा धन तो अच्छे संस्कार होते हैं। तुम्हारे पुत्र को संस्कार नहीं मिले, कुसंगियों का साथ मिला। अब वह स्वाभाविक रूप से दुर्व्यसनों में प्रवृत्त हो गया है। दूसरी बात यह है कि वही धन लक्ष्मी का रूप धारण करता है, जिसका उपभोग परोपकार व सेवा में होता है। धर्मशास्त्रों की दोनों बातों की अवज्ञा के कारण तुम्हारे धन व संतान की यह दशा हो रही है।

१३२८) जब चोर के स्थान पर लालची चरवाहे ने पाई सजा - एक गांव में एक चोर चोरी के इरादे से आया और ग्रामीणों द्वारा पकड़ लिया गया। उन्होंने उसे एक पेड़ से बांध दिया। फिर विचार करने लगे कि इसे क्या सजा दी जाए? आखिर तय हुआ कि गांव के मुखिया से पूछा जाए। चोर को वहीं बंधा छोड़कर सब मुखिया के पास चले गए। इधर उस चोर को एक चरवाहे ने देखा। वह भेड़ों का रेवड़ लेकर चराने जा रहा था। उसने चोर से पूछा- तुम कौन हो और यहां तुम्हें किसने बांधा है? तुमने ऐसा क्या किया था? चोर ने कहा- यहां कुछ चोर-डाकू आए थे, जो लोगों को लूटकर धन कमाते हैं। पाप से बचने के लिए वे धन को दान भी करते हैं। कई दिनों से वे सोने की मोहरें दान करना चाहते थे, किंतु लेनेवाला कोई नहीं मिल रहा था। मैं एक सच्चा फकीर हूं। मैंने मोहरें लेने से मना किया, तो वे मुझे जबर्दस्ती बांध गए। वे अपनी पाप की कमाई लेने गए हैं, जिसे मुझे जबरन देंगे, जबकि मैं उससे दूर रहना चाहता हूं। चोर की बात सुनकर चरवाहे के मन में लोभ जाग गया। उसने कहा- मैं तुम्हें छोड़ देता हूं। तुम मुझे अपनी जगह बांध दो। अभी अंधेरा हो रहा है। अंधेरे में वे मुझे नहीं पहचान पाएंगे और मोहरें मुझे दे देंगे, जिससे मेरी गरीबी दूर हो जाएगी। चोर ने यही किया और चरवाहे का रेवड़ लेकर चला गया। उधर ग्रामीणों के मुखिया ने चोर को समुद्र में फेंकने का आदेश दिया। ग्रामीणों ने चरवाहे को समुद्र में फेंक दिया। इस प्रकार लालच ने चरवाहे के प्राण ले लिए।

१३२९) हम रोज गड्ढों में गिर रहे हैं - एक अमावस की रात्रि में एक अंधा मित्र अपने किसी मित्र के घर मेहमान था। आधी रात ही उसे वापस विदा होना था। जैसे ही वह घर से विदा होने लगा उसके मित्र ने कहा कि साथ में लालटेन लेते

जायें तो अच्छा होगा। रात बहुत अंधेरी है और आपके पास आंखें भी नहीं है। उस अंधे आदमी ने हंसकर कहा कि मेरे हाथ में प्रकाश का क्या अर्थ हो सकता है? मैं अंधा हूं, मुझे रात और दिन बराबर हैं। मुझे दिन का सूरज भी वैसा है, रात की अमावस भी वैसी है। मेरे हाथ में प्रकाश का कोई अर्थ नहीं है लेकिन मित्र का परिवार मानने को राजी न हुआ और उन्होंने कहा कि तुम्हें तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन तुम्हारे हाथ में प्रकाश देखकर दूसरे लोग अंधेरे में तुमसे टकराने से बच जायेंगे इसलिए प्रकाश लेते जाओ।

यह तर्क ठीक मालूम हुआ और वह अंधा आदमी हाथ में लालटेन लेकर विदा हुआ लेकिन २०० कदम भी नहीं जा पाया कि कोई उससे टकरा गया। वह बहुत हैरान हुआ और हंसने लगा। उसने कहा कि मैं समझता था कि वह तर्क गलत है, आखिर वह बात ठीक हो ही गई। दूसरी तरफ जो आदमी था उससे कहा कि मेरे भाई, क्या तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता कि मेरे हाथ में लालटेन है? तुम भी क्या अंधे हो? उस टकराने वाले आदमी ने कहा- मैं तो अंधा नहीं हूं लेकिन आपके हाथ की लालटेन बुझ गई है। अंधे आदमी के हाथ में लालटेन हो तो यह पता चलना कठिन है कि वह कब बुझ गई है लेकिन अंधे आदमी को भी एक बात पता चल जाती है कि कोई उससे टकरा गया है। मनुष्यता इससे भी ज्यादा अंधी मालूम पड़ती है। हम रोज टकराते हैं लेकिन हमें यह पता नहीं चलता कि हमारे हाथ का प्रकाश बुझ गया होगा। अंधे हम हैं, यह तो मनुष्य जाति का पूरा इतिहास कहेगा कि हमारे पास जैसे आंखें नहीं हैं क्योंकि हम उन्हीं गड्ढों में रोज गिर जाते हैं जिनमें कल भी गिरे थे और परसों भी और पीछे भी।

१३३०) गतांक से आगे धन्य कौन - आपसे ही सृष्टि उत्पन्न होती है, अतएव आपके तुल्य अन्य कौन हो सकता है? इस पर ब्रह्मा जी बोले, नारद। इन धन्य, आश्चर्य आदि शब्दों से तुम मेरी क्यों स्तुति कर रहे हो? धन्य और आश्चर्य तो ये वेद हैं जिनसे यज्ञों का अनुष्ठान तथा विश्व का संरक्षण होता है। अब मैं वेदों के पास गया जाकर उनकी प्रशंसा करने लगा तो उन्होंने यज्ञों को धन्य कहा। तब मैं यज्ञों की स्तुति करने लगा। इस पर यज्ञों ने मुझे बताया कि हम धन्य नहीं, विष्णु धन्य हैं, वे ही हम लोगों की अंतिम गति हैं। सभी यज्ञों के द्वारा वे ही आराध्य हैं। तदनंतर मैं विष्णु की गति की खोज में यहां आया और आपको राजाओं के मध्य श्रीकृष्ण के रूप में इन्हें देखा- जब मैंने इन्हें धन्य कहा, तब इन्होंने अपने को दक्षिणाओं के साथ धन्य बतलाया। दक्षिणाओं के साथ भगवान विष्णु ही समस्त यज्ञों की गति हैं। यही मेरा प्रश्न समाहित हुआ और इतने से ही मेरा कूतुहल भी निवृत्त हो गया। अतएव मैं अब जा रहा हूं। ऐसा कहकर देवर्षि नारद चले गए। इस रहस्य तथा संवाद को सुनकर राजा लोग भी बड़े विस्मित हुए और सबने एकमात्र प्रभु को ही धन्य, आश्चर्य एवं सर्वोपरि प्रशंसा का पात्र माना।

** न मंदिर में भगवान होता है न मस्जिद में खुदा होता है।*
हम ही ने यह सब तमाशा किया है न हम होते तो यह सब न होता।।
** पैर की मोच और मन की छोटी सोच कभी किसी को आगे नहीं बढ़ने देती।*
** आंखें कितनी भी छोटी क्यों ना हो। ताकत तो उसमें सारा आसमान देखने की होती है।*
** सोच से संभावनाओं तक का सफर हौसलों से होकर गुजरता है।*

हमारे न्यास के माननीय कोषाध्यक्ष विश्वस्त

श्री बजरंगलाल चमडिया

को अश्रुपूर्ण श्रद्धांजली

लोक आगमन - ०४-०१-१९३५ लोक विदाई- १२-०९-२०१७

❊ आंसू की कीमत वो ही जानते है जो किसी को याद आते हैं।
दिल का गम वो ही जानते है जो किसी को दिल से चाहते है।
प्यार का दर्द वो ही महसूस करते है जो दिल से प्यार करते है।

हमारे अजीज परममित्र

श्री कन्हैयालाल भजनलालजी अग्रवाल

को अश्रुपूर्ण श्रद्धांजली

लोक आगमन -

लोक विदाई-

** दिन बीत जाते सुहानी यादें बनकर बातें रह जाती कहानी बनकर,*
आप हमेशा हमारे दिल में बसते हो और हमेशा दिल में बसे रहोगे।

हमारे न्यास के विश्वस्त

श्री शंकरलाल रामलालजी जालाण

को अश्रुपूर्ण श्रद्धांजली

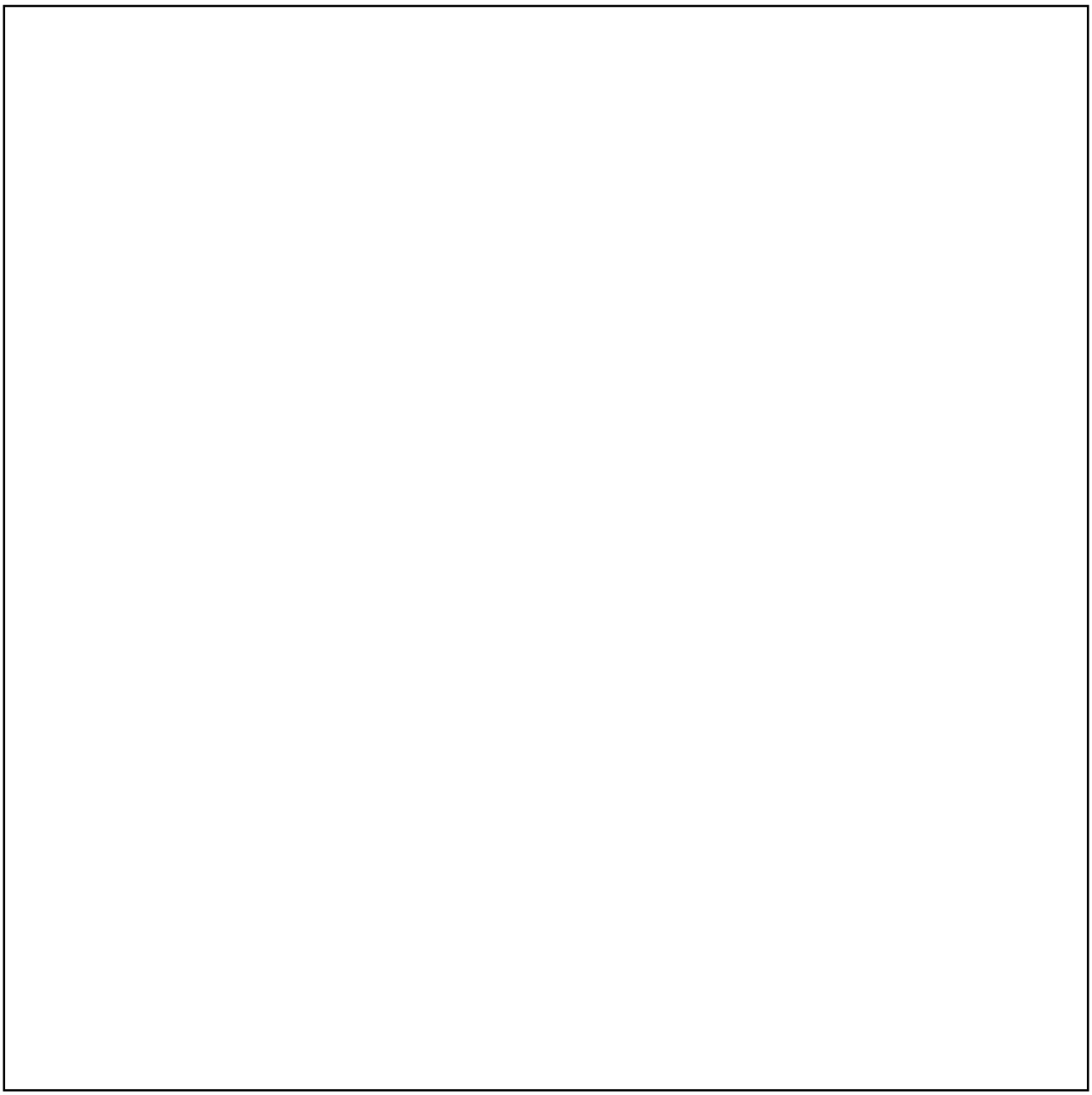

लोक आगमन -

लोक विदाई-

❊ जीवन मिलना भाग्य की बात है। मृत्यु होना समय की बात है।
पर मृत्यु के बाद भी लोगों के दिलों में जीवित रहना ये कर्मों की बात है।